घर का वैद्य

घर का वैद्य

लेखक
कविराज श्रीअत्रिदेव गुप्त
विद्यालङ्कार, भिषग्रत्न
(गुरुकुल विश्वविद्यालय, कांगड़ी)

भिषजां साधुवृत्तानां भद्रागमशालिनाम् ।
अभ्यस्तकर्मणां भद्रं भद्रं भद्राभिलाषिणाम् ॥
[अ० सं०]

प्रकाशक
आनन्द-बुकडिपो
सुलतानपुर

मूल्य—बारह रुपये

Printed by R. N. Tripathi at the Hindi-Mandir Press, Allahabad
and Published by R. N. Tripathi, Anand Book Depot, Sultanpur
COPIES 1000 ; 1936. SEPTEMBER.

प्रस्तावना

मनुष्य को मानव जन्म की सार्थकता के लिये और सुख के साथ तथा सफलता पूर्वक जीवन वृत्त चरितार्थ करने के लिये अनेक प्रकार की विद्या, ज्ञान-विज्ञान, साहित्य, कला आदि का जानना आवश्यक होता है। इनमें से किसी के द्वारा वह रोज़ी कमाता, किसी के द्वारा सांसारिक ज्ञान की वृद्धि करता, किसी के द्वारा कौटुम्बिक कर्तव्य-पालन की शिक्षा लेता और किसी के द्वारा अपना मनोरंजन करता है। इस तरह "काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम्" के न्याय के अनुसार वही पण्डित और वही बुद्धिमान् समझा जाता है जो हँसी-खुशी और सफलता के साथ अपनी जीवन-यात्रा पूरी करता रहता है। केवल किसी तरह उदर-दरी को पूर्ण कर ज़िन्दगी को रोते-गाते ठेलते जाना सफल जीवन-यात्रा नहीं कहलाती। मनुष्य को जहाँ अनेक शास्त्रों का परिशीलन करना आवश्यक होता है, वहाँ शरीर का स्वास्थ्य बनाये रखने और शरीर को व्याधियों से बचाते हुए सुखी रखनेवाले शास्त्र का जानना भी नितान्त आवश्यक है। इसके बिना उसके सब ज्ञान अधूरे हैं। क्योंकि भारतीय शास्त्रों और मनीषियों का सिद्धान्त है कि धर्म, अर्थ और काम की सिद्धि-पूर्वक जीवन-यात्रा सफलता से चलाकर अन्त में ईश्वर-प्राप्ति अर्थात् आवागमन से रहित हो मोक्ष प्राप्त करना ही मनुष्य-जन्म का उद्देश्य है। इन चारों उद्देश्यों की सिद्धि स्वस्थ और सबल शरीर के बिना नहीं हो सकती। इसलिये प्रत्येक मनुष्य को अपने चिकित्सा-शास्त्र की कुछ स्थूल जानकारी होना नितान्त आवश्यक है। यह ठीक है कि अस्वस्थता और रोगाक्रमण के समय वैद्य-डाक्टरों से सहायता लेकर शरीर-रक्षा की जा सकती है; किन्तु जहाँ तक सम्भव हो, इसकी नौबत कम ही आवे तो अच्छी बात है। साधारणतया स्वास्थ्य-रक्षा और शरीर-रक्षा की जानकारी रखकर जहाँ तक हो सके, पराधीनता-पूर्वक नहीं, स्वयं अपने ज्ञान और बुद्धि के उपयोग तथा स्वास्थ्यविज्ञान और चिकित्सा-शास्त्र की सहायता से अपनी रक्षा करते रहना अधिक अच्छा है।

हमारा आयुर्वेद संसार का सब से पुराना और चिकित्सा-विज्ञान का आदि जनक है। संसार की सभी चिकित्सा-पद्धतियाँ इसी के मूल सिद्धान्तों के विकसित रूपों

से प्रचलित हुई हैं। यद्यपि यह ठीक है कि चिकित्सा-विज्ञान अनुभव तथा प्रयोग-जन्य शास्त्र है और इसमें समयानुसार परिवर्त्तन और परिवर्द्धन होता रहता है; किन्तु हमारे त्रिकालदर्शी ऋषियों और आचार्यों ने आयुर्वेद की भित्ति ऐसी दृढ़ और स्थिर सिद्धान्तों के ऊपर रची है कि इसमें अधिकांश रूप से स्थिरता आ गयी है। इसके सिद्धान्त अबाधित चल रहे हैं। प्रकीर्ण विषयों में भले ही परिवर्तन हो, किन्तु इसके मूल सिद्धान्त पूर्ण और अडिग हैं। ऐसे महत्वपूर्ण शास्त्र की जानकारी प्रत्येक भारतवासी को जितनी अधिक हो उतनी ही अभीष्ट है। शास्त्र-पारदर्शी और शास्त्रालोचन की इच्छा रखनेवालों के लिये तो सिद्धान्त-ग्रन्थ अनेक हैं; किन्तु सर्वसाधारण के उपयोग के लिये सर्वसाधारण की भाषा में साधारण जानकारी की बातें सरलता से बतलानेवाली पुस्तकों की आवश्यकता होती है। बँगला, गुजराती और मराठी में कविराजी शिक्षा घरेलू वैद्य, आर्यभिषक्, सुबोध वैद्यक आदि के ढंग की ऐसी पुस्तकें मौजूद हैं; किन्तु हिन्दी में ऐसी अधिकारयुक्त संग्रह-पुस्तकों का नितान्त अभाव है। यदि बाजार में ऐसी एक-दो पुस्तकें दिखें भी तो अनधिकारी का खोमचा और धन कमाने का प्रयत्न अथवा अनुवाद ही कहा जा सकता है। किसी अधिकारी पुरुष-द्वारा ऐसी स्वतन्त्र पुस्तक की रचना की आवश्यकता थी जिसमें शरीर और शरीर-रक्षा की जानकारी की आवश्यक बातें दी गयी हों। हमें प्रसन्नता है कि आयुर्वेदालङ्कार, कविराज अत्रिदेवजी ने "घर का वैद्य" बनाकर इस विषय का मार्ग-प्रदर्शन किया है और अधिकांश अंशों में सफलता भी पायी है। आप गुरुकुल कांगड़ी के स्नातक हैं और मननशील तथा परिश्रमी युवक हैं, इस ग्रन्थ में उनके इस गुण की छाप मौजूद है।

इस पुस्तक के आदि में सृष्टि-विकास के साथ शरीर और शरीर-क्रिया विज्ञान की मोटी बातें दी गयी हैं; फिर स्वास्थ्य-रक्षा की बातों पर प्रकाश डाला गया है। जल-वायु और खान-पान की बातें बतलाकर रोग के सामान्य कारण, आयुर्वेद की मूल भित्ति त्रिदोष तथा रोग परीक्षा की देशी-विदेशी विधि लिखी गयी है। औषधि-योजना, परिभाषा, अनुपान और पथ्यापथ्य का वर्णन कर पहला खण्ड समाप्त किया गया है। दूसरे खण्ड में औषधि-कार्य में प्रयुक्त होनेवाली वनस्पति 'खनिजद्रव्य' 'सिद्धान्त वर्ग' रस भस्म आदि की निर्माण-विधि, क्वाथ, चूर्ण, वटी, अवलेह आदि औषधि बनाने की विधि और प्रसिद्ध औषधियों के पाठ दिये गये हैं। औषधियों के प्रकरण में प्रसिद्ध आयुर्वेदिक औषधियों के अतिरिक्त यूनानी और अँग्रेजी दवाइयाँ भी लिख दी गयी हैं। जिससे पुस्तक की उपयोगिता अधिक बढ़ गयी है। क्योंकि इस समय भारत में आयुर्वेद के अतिरिक्त यूनानी और एलोपैथी का भी प्रचार है और उनकी जानकारी भी सर्व-साधारण को नहीं तो वैद्यों के लिये होना आवश्यक है। इसके बाद रोगों का पृथक्-पृथक् वर्णन और उनके उपाय लिखे गये हैं। जिनमें चिकित्सा-क्रम, अनुभूत प्रयोग (मुष्टियोग) और शास्त्रीय तथा यूनानी औषधियाँ बतलायी गयी हैं।

इस तरह यह पुस्तक घर-गृहस्थीवालों के लिये ही नहीं, बल्कि वैद्यक विद्यार्थियों और वैद्यों के लिये भी उपयोगी हुई है। पुस्तक को मैंने उलट-पुलटकर ही देखा है। इसलिये सम्भव है कि इसके वर्णनात्मक विषय कहीं-कहीं आलोच्य हों या विवेचना में कहीं कमी रह गयी हो; किन्तु यह विषय शास्त्रालोचन करनेवालों का है। सर्व-साधारण से जिन बातों का सम्बन्ध है वे बातें आवश्यकतानुसार ही नहीं, किन्तु आवश्यकता से भी अधिक दी गयी हैं। आशा है, पुस्तक का समाज में अच्छा प्रचार होगा, जिससे लेखक और प्रकाशक का उद्देश्य सिद्ध हो और उनका उत्साह बढ़े। लेखक का उद्योग और परिश्रम सराहनीय और धन्यवाद-योग्य है।

शुद्ध भाद्र शुक्ल २
संवत् १९९३ वै० }

जगन्नाथप्रसाद शुक्ल

ॐ नमः श्री-श्री गुरवे

लेखक की ओर से

चरक-संहिता में कहा है कि यह आयुर्वेद नित्य है; इसकी उत्पत्ति कभी हुई है, यह कभी नहीं था; ऐसा सुना नहीं जाता। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य सब को यह आयुर्वेद पढ़ना चाहिये। प्राणियों का भला करने के लिये ब्राह्मणों को, अपनी रक्षा के लिये क्षत्रियों को और जीविका उपार्जन करने के लिये वैश्यों को, अथवा धर्म, अर्थ, काम रूपी पुरुषार्थ को प्राप्त करने के लिये सब पुरुषों को सामान्य रूप से आयुर्वेद पढ़ना चाहिये।*

चूँकि आयु की परम्परा अनन्त काल से चली आरही है, इसका विच्छेद कहीं नहीं हुआ, इसी से हम आयुर्वेद को नित्य कहते हैं। यही कारण है कि जङ्गली जातियों में, जङ्गली पशुओं में, यह आयुर्वेद किसी न किसी स्वाभाविक रूप में परम्परा से चलता आता है। उनको ज्ञात है कि इस प्रकार का होने पर उनको क्या करना है। कुत्ते को मालूम है कि पेट खराब होने पर, कोई बुरी वस्तु खा लेने पर, घास आदि खाकर वमन कर देना चाहिये। जो प्रकृति या परमात्मा बच्चों को यह सिखाता है कि स्तन किस प्रकार से चूसना चाहिये, वही प्रकृति या परमात्मा पशुओं को यह बताता है कि जख्म होने पर उसको जीभ से चाटना चाहिये।

यदि हम प्रकृति को अपनाये रखते, उससे दूर न हट जाते तो शायद हमको इस प्रकार की वा इससे बड़ी पुस्तकों की तथा वैद्य या डाक्टरों की ज़रूरत न पड़ती; परन्तु दौर्भाग्य से हम प्रकृति से बहुत दूर हट गये; इतने दूर हो गये हैं कि हम प्रकृति को भी भूल गये। हम विकृति को प्रकृति मान बैठे, और जो लोग प्रकृति के उपासक हैं उनको हम गँवार, देहाती और अशिक्षित कहते हैं और अपने को नागरिक, सभ्य और शिक्षित बताते हैं। परन्तु वास्तव में हम गुलाम और वे स्वतन्त्र हैं। हमको हर समय शरीर के लिये किसी न किसी डाक्टर या हकीम का मुहताज रहना पड़ता है, हमारा उनके बिना जीना दूभर हो गया है। यह गुलामी अब इतना घर कर चुकी है कि ज़रा सा ज़ुकाम होने पर या ज़रा-सी खरोंच लगने पर तुरन्त डाक्टर के पास दौड़ना पड़ता है, जब कि इन छोटी-सी बातों के लिये हम स्वयं उपचार कर सकते हैं और चिकित्सकों के भारी बिलों से बच सकते हैं।

---

* देखिये चरक-संहिता सूत्र-स्थान, अ० ३०

इसके अतिरिक्त यदि हमको जीवन सम्बन्धी साधारण बातों का परिज्ञान भी हो जाय, तो बहुत-सी होनेवाली शिकायतों से बचा जा सकता है। हमको दुःख है कि आजकल की स्कूली शिक्षा जहाँ हमको प्रकृति से दूर ले जाती है, वहाँ पर इन साधारण बातों में कुछ भी ज्ञान नहीं कराती। एक एम० ए० पास विद्यार्थी को यह भी ज्ञात नहीं कि उसको भोजन क्यों चबाकर खाना चाहिये, उसको क्यों ठोस भोजन अधिक खाना चाहिये, अथवा कपड़ों में आग लगने पर उसे क्या करना चाहिये। ये ऐसी बातें जो नित्य प्रति हमारे घर में, हमारे व्यवहार में आती हैं, जिनको जानना हमारे लिये नितान्त आवश्यक है, क्योंकि ये बातें अब हमारे घर का, हमारे जीवन का अङ्ग बन गई हैं। यह कितने आश्चर्य और दुःख की बात है कि जिस घर में परब्रह्म परमात्मा का अंश रहे उस घर के विषय में हम कुछ न जानें उसको किस प्रकार से अच्छा रख सकते, यह हमको ज्ञात न हो; उसके टूटने पर साधारण मरम्मत किस प्रकार से की जाय, इसका हमको ज्ञान न हो। इस दृष्टि से यह परिश्रम किया है। इस पुस्तक में यथा-शक्ति यही प्रयत्न किया है कि इसके नुस्खे अमीर और ग़रीब दोनों के लिये उपयोगी हो सकें; साधारण गृहस्थ या साधारण शिक्षित व्यक्ति इसको समझकर इससे लाभ उठा सकें।

हमारे हिन्दी-साहित्य में सम्भवतः इस विषय पर कोई पुस्तक नहीं है। अँग्रेज़ी में मूर साहब की लिखी फैमिली मेडिसिन भारत में बहुत प्रचलित है। इसके अतिरिक्त 'लायब्रेरी ऑफ़ हेल्थ' [मूल्य ६५)] भी तथा 'होम डाक्टर' आदि कई पुस्तकें हैं। गुजराती में भी इन्हीं पुस्तकों को देखकर इनके आधार पर तथा आर्ष वैद्यक के ग्रन्थों के आधार पर 'घर वैद्दु'' नामक पुस्तक राजमान्य राजश्री स्वर्गीय वैद्य जटाशंकर लीलाधरजी ने तैयार की थी; उसका बहुत प्रचार हुआ। गुजरात में बहुत से वैद्य उसी से वैद्यक कर रहे हैं।

हिन्दी के प्रसिद्ध कवि श्री पण्डित रामनरेश त्रिपाठीजी ने इसी गुजराती पुस्तक के ढंग की पुस्तक हिन्दी में लिखने की प्रेरणा की। उन्हीं की प्रेरणा से यह श्रम किया गया है। इसमें यथा-सम्भव गुजराती, बँगला, हिन्दी और संस्कृत की पुस्तकों से सहायता ली गई है; जिसकी तालिका पीछे दे दी गई है। इन सब प्रकाशकों के तथा लेखकों के प्रति मैं हृदय से आभार मानता हूँ।

प्रस्तुत पुस्तक के सम्बन्ध में एक दो आवश्यक बातें—

१. प्रस्तुत पुस्तक को लिखे लगभग ४-५ साल हो गये हैं। इस बीच में चिकित्सा शास्त्र के अन्दर पर्य्याप्त परिवर्त्तन हो गये हैं। कई नई दवाइयाँ निकल आईं और कई रोगों पर अधिक जोर दिया जाने लगा। उदाहरण के लिये मलेरिया के लिये अब प्लाजमो क्युनीन या एटेब्रीन का प्रयोग बहुत उत्तम सिद्ध हुआ। शहरों

में अनिद्रा रोग, हाई ब्लड प्रेशर का रोग बहुत बढ़ गया है, और व्यापक रोगों में गर्दन-तोड़ बुखार काफी फैलने लग गया है। इसी प्रकार की और भी कई आवश्यक बातें थीं जिनको इसमें संक्षेप से लिखा गया पर विस्तार से लिखने की आवश्यकता थी।

२. पुस्तक का लेखक प्रकाशक से पर्याप्त दूर बैठा हुआ था और प्रेस में आयुर्वेद जाननेवाला कोई था भी नहीं; इसलिये प्रेस की भूलें भी रह गई हैं। उसका मुझको दुःख है। परन्तु अब कोई उपाय भी और नहीं है।

३. मात्रा के विषय में—योग को बरतने से पहले आप रोगी के शरीर, देश, काल, अवस्था आदि को ठीक प्रकार से देख ले और फिर मात्रा का निश्चय कर लें। मात्रा को जानने के लिये जो भी साधारण नियम हैं, वे पुस्तक के पृष्ठ ३०० से ३०२ तक दिये हैं। चूँकि प्राचीन ग्रन्थों में मात्रा को अनिश्चित बताया है। प्राचीन ग्रंथो में दी हुई मात्रा आजकल के रोगियो के लिये बहुत अधिक होती है। इसलिये इसका बहुत कुछ विचार रोगी को देखकर उसके खान-पान आदि बातों के आधार पर करना चाहिये। अतः साधारण रूप में लिखी मात्राओं को पुनः रोगी के अनुसार मात्रा में बरतना चाहिये।

४. योगों के विषय में—यहाँ पर प्रायः जो योग दिये हैं, वे शास्त्रीय हैं, या जो वृद्ध गुरुजनों के अनुभव में आये, वे हैं। इन योगो में भी यदि कोई औषधि किसी रोगी के लिये ठीक न जँचे, तो आप उसको छोड़ सकते हैं; अथवा उसके स्थान पर नई औषधि मिला सकते हैं। साथ ही यदि कोई और उपयोगी औषधि आप इन प्रयोगों में जोड़कर बरतना चाहें, तो सुगमता से जोड़ सकते हैं।

५. मुष्टियोग या शास्त्रीय-औषधि—सब प्रामाणिक पुस्तकों से लिखी गई हैं। अनार्य-चिकित्सा तथा यूनानी प्रयोग भी इसी प्रकार के दिये हैं, जो अपनी प्रामाणिकता, अपने गुणो के लिये उत्तम हैं, साथ ही शहर या देहात में सब स्थानो पर मिल सकें। यदि इनमें से कोई एक-दो वस्तुये न भी मिले, तो भी सुगमता से आप प्रयोग का उपयोग करके लाभ उठा सकते हैं।

अन्त में पाठक-वृन्द से यह विनती करता हूँ कि आपको इसमें जो अच्छा लगे, वह रख लीजिये और मेरी त्रुटियाँ मुझको वापस कर दीजिये। उनका संशोधन करके मैं फिर आपकी सेवा में भेज दूँगा। इस प्रकार परस्पर आदान-प्रदान ही से दोनों का मंगल होगा, यही भगवान कृष्ण का उपदेश है।*

अत्रिदेव गुप्त

*"परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ"। गीता

पुस्तकों की तालिका

जिनसे इस पुस्तक के लिखने में सहायता ली गई है—

सांख्य-कारिका
हमारे शरीर की रचना—भाग १, २
घर वैद्दु [गुजराती]
हाईजीन एण्ड पब्लिक हेल्थ—जे० पी० मोदी कृत
सुश्रुत-संहिता
अनुभूत-चिकित्सा-सागर
चरक-संहिता
क्लीनिकल मेडिसिन
परिभाषा-प्रदीप
आयुर्वेद-संग्रह [बँगला]
फैमिली मेडिसिन—मूर-कृत
मेटेरिया मेडिका—घोष-कृत
आयुर्वेद-सोपान [बँगला]
रस-तरंगिणी
सिद्ध भैषज्य-मणिमाला
तिब्बे अकबर
मैनेजमेंट ऑफ़ चिलड्रन—वर्च-कृत
डिजीज़ ऑफ़ वुमन
जीवन-रहस्य [गुजराती]
लेक्चर्स आन इंग्लिश मेडिसिन—डाक्टर राधाकृष्ण
योग-रत्नाकर
रसेन्द्र-सार-संग्रह

विषय-सूची

प्रकरण पहला

प्रकरण दूसरा

प्रकरण तीसरा

प्रकरण चौथा

प्रकरण पाँचवाँ

प्रकरण छठा

प्रकरण सातवाँ

प्रकरण आठवाँ

प्रकरण नवाँ

प्रकरण दसवाँ

दूसरा खंड

औषधियाँ

बनस्पति-वर्ग—अकरकरा, अखरोट, तेल निकालने की विधि, अगर, अगस्त, अपामार्ग, अजमोदा, उड़द, अतीस, अफीम, अमर-बेलि, अम्लवेतस, अर्जुन-वृक्ष, अडूसा, अरलु, अरणी, अरीठी, अहालिम, अलसी, आक, अंकोल, आर्द्रक, अम्लिका, आँवला, आँबाहल्दी, आम, आवर्त्तकी, अश्मन्तक, अशोक, अश्वगन्ध, इंगुदी, इन्द्रजौ, इन्द्रवारुणी, ऊँट कटेरा, उन्दर-कानी, उपलसरी, उपलेट, उदुम्बर, ईक्षुगन्धा (तालमखाना), एरण्ड, एला (इलायची), एलुवा, ईषबगोल, कचूर, कूठ, कड़वी तोरी, कड़वी तुम्बी, कटुनाही, कुटज, कटुकी, करबीर, काम्पील्ल, कपूर, कपूर कचरी, कपूर मधुरी, कमल, करञ्ज, किरातक (चिरायता), काली जीरी, कलम्भ, करौंदा, कसौंदी, कुलत्थी, कठकरञ्जवा, काकड़ा-शृङ्गी, ककड़ी, कचनार, कुरंड, कत्था, कायफल, काला जीरा, कालीपाठ (पाठा), कीटमारी, कुकड़बेल (देवदाली), द्रोणपुष्पी (गोमा), कुलिंजन, चकमर्द, कुमारी, करीर, केसर, कोकम (वृक्षाम्ल), कैथ, कुष्मांड, कौंच, कक्कोल, खेत पापड़ा, खसखस के बीज, ढाक, खदिरसार, खुरासानी अजवाइन, गोकर्णी (मूर्वा), गरमाला (अमलतास), गोभी (गोजिह्वा), नील, गिलोय (अमृता), गुग्गुल, गोंद, गुलाब के फूल, गुलबाँस, गोखुरू, गोरखमुंडी, गुड़मार, गोबाधारी लकड़ी, चन्दन, चणोठी (गुंजा), चमार दुधेली (कण्टकफला), चांगेरी, चित्रक (चीतामूल) चोपचीनी, जटामासी, जौखार, जवास, जामुन, जायफल, जाविश्री, जीरा, जूही, (जाती), जेठीमधु (मुलहट्टी), जहर कुचला, तकमरिया (कुठेरक), तज (दालचीनी), तमाखू, तमाल-पत्र (तेज-पत्र), तिल, तबाशीर (तुगाक्षीरी), त्रायमाण, तालीस-पत्र, तुलसी,

अँग्रेज़ी औषधियाँ

प्रकरण तीसरा

प्रकरण चौथा

प्रकरण पाँचवाँ

पाचन-संस्थान-सम्बन्धी रोग

प्रकरण छठा

प्रकरण सातवाँ

आँख, कान, नाक, मुख और दाँत के रोग

प्रकरण आठवाँ

प्रकरण नवाँ

प्रकरण दसवाँ

गर्भ-निरोध के उपाय, योनि-रोग, भग के त्वचा-सम्बन्धी रोग, एरीथीमा, विसर्प, भग पर छोटी-छोटी फुन्सियाँ, उपदंश, श्लीपद, भग-शोथ, कुरोसिस वैल्व, उदाहरण के लिये भग-कंडू, मूत्राशय के कारण, गर्भाशय के कारण, चिकित्सा, भग-प्रदेश पर आघात, आकस्मिक आघात, संभोग-जन्य आघात, प्रसवकालीन आघात, योनि के आघात, चिकित्सा बाह्य-वस्तु, योनि-शोथ, आघात-जन्य शोथ, संक्रमण-जन्य शोथ, भेद, १—साधारण योनि-शोथ, लक्षण, २—भग शोथ से मिश्रित, योनि-शोथ (बच्चों में), लक्षण, ३—श्लैष्मिक-कला के कारण योनि-मार्ग की शोथ, आर्त्तव-सम्बन्धी रोग, ऋतु का न आना, नष्टार्त्तव, सेकन्डरी एमीनोरिया, क्रीप्टोमेनोरिया, प्राइमरी एमीनोरिया के कारण, पूर्व-कथन, चिकित्सा, सेकेंडरी एमीनोरिया के कारण, परीक्षा, चिकित्सा, क्रीप्टो मेनोरिया, अत्यार्त्तव, अकाल में ऋतु, १—अत्यार्त्तव के कारण, २—स्थानिक कारण, ३—अकाल में ऋतु, वह अवस्था जब कि रुग्णा विवाहिता हो, जब रुग्णा गर्भवती नहीं हुई हो, जब रुग्णा गर्भवती हो चुकी हो, चिकित्सा, ऋतु का बन्द होना, कष्ठार्त्तव, कारण, १—वस्ति-गह्वर में रक्त-संचय होना, २—बनावट सम्बन्धी-रोग, ३—स्थिति का दोष, ४—वस्ति गह्वर की शोथ, शरीर-सम्बन्धी कारण, चिकित्सा, आयुर्वैदिक औषधियाँ, शास्त्रीय औषधि, गर्भाशय-शोथ, नवीन शोथ का कारण, इस रोग की चिकित्सा, चिरकालीन गर्भाशय-शोथ, लक्षण, इस रोग की चिकित्सा, गर्भाशय-भ्रंश, कारण, डिम्ब-कोश की शोथ, गर्भाशय-मुख का व्रण, उपाय, श्वेत प्रदर, कारण, लक्षण, चिकित्सा, सोमरोग, स्तन का पकना, लक्षण, चिकित्सा, मेदरोग, कारण, उपाय, औषधियाँ, हिस्टोरिया, कारण, लक्षण, उपाय, पौष्टिक औषधियों में, कुछ यूनानी औषधियाँ, रज न आने पर, अत्यार्त्तव में, गर्भ रहने की दवाई, गर्भवती स्त्री की पहचान, गर्भपात को रोकने के लिये, दिवाल-मुश्क, शीघ्र प्रसव के उपाय, मृत बालक को बाहर निकालना, प्रसव के पीछे का रक्त रुक जाने पर, गर्भ गिराने का उपाय, अँग्रेजी दवाइयाँ, गर्भपात

प्रकरण ग्यारहवाँ

प्रकरण बारहवाँ

प्रकरण तेरहवाँ

घर का वैद्य

सृष्टि-विकास

"एतस्मात् किमिवेन्दु जालमपरं यद् गर्भवासस्थितम्,
रेतश्चेतयति हस्तमस्तकपदप्रोद्भूत नानाङ्कुरम् ।
पर्य्यायेण शिशुत्व-यौवन-जरा-वेशैरनेकैर्वृतम् ,
पश्यत्यत्ति शृणोति जिघ्रति तथा गच्छत्यथा-गच्छति ।।†"

—पञ्चदशी

परमपिता परमात्मा की बनाई हुई चीजों में सबसे अधिक सुन्दर, आश्चर्यकारक, श्रेष्ठ वस्तु यह दिव्यतनु वाला "पुरुष" है। इसका ऊपर का भाग स्वर्ण से (हिरण्यमय) बना हुआ है। इसलिये इसको 'हिरण्यमय' कहते हैं ('हिरण्यमयः कोशः'—अथर्ववेद)। और इस हिरण्यमय पुरुष को भली प्रकार जानने से परमपिता को भली प्रकार प्राप्त कर सकते हैं। इस स्वर्णमय पुरुष के ज्ञान कराने के लिए परम दयालु पिता ने अपना दिव्य ज्ञान वेद इस धरातल पर भेजा है। इसी पुरुष के उपभोग के लिये नाना प्रकार की वनस्पति, रंग-बिरंगे फूल, सुन्दर-रम्य पहाड़, नदी-नाले, मीठे स्वादिष्ट फल, गाने वाली चिड़ियाँ, नाचने वाले मोर बनाये हैं। इन चीजों के मनोहर रूप, इनका मीठा स्वाद "पुरुष" को सदा उस अनन्त शक्तिमान दयालु पिता का स्मरण दिलाता रहता है। इन चीजों की आश्चर्यकारक रचना इनको उत्पन्न करनेवाले की स्वभावतः पुरुष की प्रकृति को खींच रही है।

†इससे अधिक क्या विचित्रता हो सकती है कि गर्भाशय में रहनेवाला रेत-वीर्य, अनुभव करता है, उसमें हाथ, पाँव और शिर आदि अंकुर उत्पन्न होते हैं। क्रम से शिशु, युवा और वृद्धावस्था में से वह गुजरता है। वह देखता भी है, खाता भी है, सुनता भी है, सूँघता भी है, और फिर चला जाता है, और फिर वापस भी आजाता है।

इनका ज्ञान उस परम कारुणिक 'पुरुष' परमात्मा के समीप पहुँचने का एक सरल मार्ग है।

इसी प्रकार इस शरीर की—अपने देह की—आश्चर्यकारक रचना का ज्ञान भी हमको उसी परम कारुणिक के समीप पहुँचाता है। इस पुरुष देह के अन्दर परमपिता ने सम्पूर्ण बाह्य जगत को समाविष्ठ कर रक्खा है। यथा—

"यथा लोकस्य सर्गादिः तथा पुरुषस्य गर्भाधानम्,
यथा कृतयुगमेवं बाल्यं, यथा त्रेता तथा यौवनम्,
यथा द्वापरं तथा स्थाविर्यम् यथा कलिरेव मातुर्यम्,
यथा युगान्तस्तथा मरणम्।" चरक।

"जिस प्रकार बाहर जगत में सृष्टि की उत्पत्ति होती है, उसी प्रकार पुरुष का गर्भाधान होता है। जिस प्रकार सत्ययुग है, उसी प्रकार बाल्यावस्था, जिस प्रकार त्रेता उस प्रकार यौवन, जिस प्रकार द्वापर उसी प्रकार बुढ़ापा, और जिस प्रकार कलियुग उसी प्रकार मृत्यु।"

इसलिये इस शरीरमय पुरुष को समझने से हम बाह्यजगत का भी ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं और इस ज्ञान से अपने दुःखों का भी अन्त कर सकते हैं। क्योंकि सब प्रकार के कायिक अथवा मानसिक दुःखों का मूल कारण अज्ञान है। और सब प्रकार के अज्ञानों में शरीर सम्बन्धी ज्ञान का अभाव सबसे अधिक क्लेश का कारण है। क्योंकि जिस घर में यह "अंगुष्ठमात्र पुरुष" रहता है उसी घर को हम भली प्रकार न जानें, उसमें [illegible] हुई चीज़ों को न पहचानें, उनका भली प्रकार उपयोग न कर सकें, तो इससे अधिक शर्म की बात क्या हो सकती है?

इस शरीर-ज्ञान के लिये सबसे सरल स्वाभाविक मार्ग बाह्य स्थूल [illegible] ज्ञान है। बाह्य जगत को भली प्रकार समझकर हम अपने शरीर को भी पूर्ण रूप से जान सकेंगे; क्योंकि दोनों की एकीभाव—समानता है। अतः सबसे प्रथम हमको सृष्टि-ज्ञान करना आवश्यक है।

सृष्टि-क्रम

पुरुषोऽयं लोकसंमितः यावन्तो हि लोके
भाव विशेषाः तावन्तः पुरुषे,
यावन्तः पुरुषे तावन्तो लोके
इति बुधास्त्वेवं द्रष्टुमिच्छन्ति ।।" चरक

प्रकृति का यह नियम है कि उसमें क्रमिक विकास होता है, यह नियम स्वाभाविक है। बड़ का बीज राई से छोटा होता है, वह धीरे-धीरे बढ़कर कालान्तर में एक विशाल वृक्ष का रूप धारण कर लेता है। इसी प्रकार एक आम का फल कैरी से बढ़कर बड़ा आम बन जाता है। और फिर जब ये नष्ट होते हैं, या शीर्ण होकर समाप्त होजाते हैं, तो फिर अपने उसी वास्तविक रूप में समाप्त होते हैं। जिस प्रकार एक कुम्हार मिट्टी के कणों को इकट्ठा करके एक घड़ा तैयार करता है, और कुछ समय पश्चात् वह टूट जाता है और उसके छोटे कण बन जाते हैं, वे कण अपने असली रूप में आजाते हैं। अर्थात् वे फिर मिट्टी ही के कण बन जाते हैं। इसी से हम कहते हैं कि प्रकृति नष्ट नहीं होती; वह अनश्वर है।

इसी प्रकार वट-बीज एक विशाल वृक्ष को जन्म देकर अपने जैसे हजारों वट-बीज उत्पन्न करता है अर्थात् वह फिर अपने रूप में आजाता है।, इसमें भी उसकी प्रकृति नष्ट नहीं होती। केवल रूपान्तर अवश्य होजाता है।

यही नियम प्रकृति की अन्य वस्तुओं के साथ है। अर्थात् उनका प्रारम्भ छोटे रूप में होता है; धीरे-धीरे बढ़कर वे बड़ी होती हैं, और फिर जब कालान्तर में शीर्ण होती हैं तो फिर उसी प्रारम्भिक रूप में आजाती हैं। यह प्रारम्भ सूक्ष्मतम कण से होता है, और समाप्ति भी सूक्ष्मतम रूप में ही होती है। प्रारम्भ काल में सूक्ष्मतम से सूक्ष्मतर, फिर सूक्ष्म, फिर पूर्वोत्तर बढ़ती-बढ़ती स्थूल रूप धारण कर लेती है। और फिर नष्ट होते समय स्थूलतम से स्थूलतर, स्थूल, सूक्ष्म, होती हुई सूक्ष्मतम में आकर समाप्त होजाती है। अर्थात् एक-एक अणु मिलकर "द्व्यणुक" बनाते हैं, और द्व्यणुक से त्रसरे-

णुक आदि उत्तरोत्तर स्थूल रूप बनता जाता है। और फिर नष्ट होने के समय त्रसरेणु से द्व्यणुक और फिर अणु बनकर समाप्ति होती है। और फिर इसी अणु से प्रारम्भ चलता है। इस प्रकार से यह सृष्टि-चक्कर चल रहा है।

प्राचीन आर्यों ने सृष्टि का विकास "प्रधान" से माना है। इसी प्रधान को सांख्य शास्त्र में "प्रकृति" माना है, और इसी को "अव्यक्त" शब्द से सुश्रुत में कहा है। इस अव्यक्त से २४ तत्त्व उत्पन्न होते हैं। यथा—अव्यक्त से महान्, महान् से अहङ्कार, अहङ्कार से पञ्चतन्मात्र और ग्यारह इन्द्रियाँ तथा इनमें पञ्चतन्मात्र से पंचमहाभूत उत्पन्न होते हैं। इनमें पञ्च-तन्मात्र—रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द—ये हैं—एकादश इन्द्रियाँ—श्रोत्र, जिह्वा, घ्राण, चक्षु, त्वचा, हाथ, पाँव, पायु, उपस्थ, वाणी और मन ये ग्यारह इन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं। इनमें प्रथम पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं, और पिछली पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं। और मन दोनों प्रकार का है, ज्ञान तथा कर्म दोनों धर्म वाला है। और पंच महाभूत—पृथ्वी, अप, तेज, वायु और आकाश हैं। ये पञ्च महाभूत क्रमशः इस प्रकार से उत्पन्न होते हैं—शब्दतन्मात्र से आकाश—शब्द गुणवाला; और स्पर्शतन्मात्र से वायु—शब्द और स्पर्श गुणवाला; रूप तन्मात्र से तेज—शब्द, स्पर्श और रूप गुणवाला; और रस तन्मात्र से जल—शब्द, स्पर्श, रूप और रस गुणवाला; गन्ध तन्मात्र से पृथ्वी—शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्धवाली उत्पन्न होती है। अर्थात् मूल वस्तु का गुण उससे उत्पन्न होने वाले कार्य में आजाता है। इस प्रकार से ये २४ तत्त्व पूरे कियेजाते हैं।* संक्षेप से इन २४ तत्त्वों में कुछ तत्त्व कारण अर्थात् प्रकृति; और कुछ कार्य्य अर्थात विकृति हैं। जैसे कि मिट्टी प्रकृति है, और घड़ा उसकी विकृति है। इसी प्रकार सूत प्रकृति है और वस्त्र विकृति है। इन २४ तत्त्वों में भी कोई पदार्थ प्रकृति हैं; कोई विकृति हैं और कोई प्रकृति और विकृति दोनों हैं तथा कोई न प्रकृति है न विकृति हैं। मूल प्रकृति—केवल कारण द्रव्य अर्थात् प्रकृति मात्र है। यह विकृति नहीं है। इसी को प्रधान, अव्यक्त और माया भी कहते हैं। महान्

*(१) प्रकृतेर्महान् ततो अहंकारः तस्माद्गणश्च षोडशकः।
तस्मादपि षोडशकात् पञ्चभ्यः पञ्च भूतानि ॥ सांख्यकारिका।

(२) तस्माद् गुण वृद्धि परे-परे। चरक।

(३) "भौतिकानि चेन्द्रियाणि, आयुर्वेदे वर्ण्यन्ते तथेन्द्रियार्थाः ॥" सुश्रुत।

अहंकार और पञ्चतन्मात्र ये सात वस्तुएँ प्रकृति भी हैं और विकृति भी हैं। महान् अहंकार की प्रकृति है, और मूल प्रकृति अर्थात प्रधान की विकृति है। इसी प्रकार अहंकार पञ्चतन्मात्रों की और इन्द्रियों की प्रकृति है; और महान् की विकृति है। पञ्चतन्मात्र पाँचों महाभूतों की प्रकृति २४ हैं और ये अहंकार की विकृतियाँ हैं। इनके अतिरिक्त १६ विकृतियाँ हैं यथा पञ्च महाभूत और ग्यारह इन्द्रियाँ हैं। ये सोलह वस्तुएँ किसी की प्रकृति नहीं; क्योंकि इन में से कोई भी किसी तत्व को उत्पन्न नहीं करता है इसलिये सोलह की सोलह विकृतियाँ गिनी जाती हैं। बाकी रहा पुरुष। यह पच्चीसवाँ तत्व है। यह न तो प्रकृति ही है और न किसी की विकृति ही है अर्थात् इससे न तो कुछ उत्पन्न होता है और न यह स्वयं उत्पन्न होता है।*

इससे स्पष्ट होता है कि प्रकृति और पुरुष दो भिन्न वस्तुएँ हैं। चरक में पञ्चमहाभूत और चेतना धातु इन छहों का अथवा चौबीस तत्वों को पुरुष के नाम से कहा है। इन दोनों का अर्थात् प्रकृति और पुरुष का संयोग किस प्रकार से और क्यों होता है—इस विषय में बहुत भेद है। यथा—

(१) स्वभाव—स्वभाव को मानने वाले आचार्यों का कथन है कि यह सब संयोग स्वभाव से ही होता है। जिस प्रकार कि काँटे में तीक्ष्णता का होना, चित्र-विचित्र पत्तियों का होना, गन्ने में मीठास, मिरच में कटुता, ये सब बातें स्वभाव ही से होती हैं। अतः प्रकृति का कारण स्वभाव ही है।

(२) ईश्वर—दूसरे आचार्य प्रकृति का कारण ईश्वर को मानते हैं। ईश्वर ही पृथ्वी, पर्वत, जन्तु, प्राणी, स्वर्ग और नरक का कारण है। मूर्ख प्राणी अपने सुख दुःख का स्वामी नहीं है। ईश्वर की प्रेरणा ही से वह स्वर्ग या नरक में जाता है।

(३) यदृच्छा—जो जिस-जिस से उत्पन्न होना चाहता है, वह स्वयं होजाता है, कोई किसी को उत्पन्न नहीं करता। जिस प्रकार तृण और अरणी के संयोग से आग उत्पन्न होतो है।

(४) नियति—पूर्व-जन्म-कृत पाप-पुण्य के फल-स्वरूप ही इस जन्म में फल मिलता है।

(५) परिणाम—प्रधान ही महत, अहङ्कार आदि रूपों में बदलता

---

*मूल प्रकृतिरविकृति महदाद्याः प्रकृति विकृतियः सप्त।
षोडशकस्तु विकारो न प्रकृति न विकृतिर्पुरुषः॥ सांख्य कारिका

हुआ इस सम्पूर्ण प्रकृति का निमित्त बनता है, यह परिणामवादी आचार्य मानते हैं।

संक्षेप में, ये २४ तत्त्व अव्यक्त से व्यक्त रूप में उगते हैं, उस समय इनमें रज और तम का संयोग होता है। पुनः जब ये तत्त्व छिन्न-भिन्न होते हैं, उस समय फिर व्यक्त अवस्था से अव्यक्त रूप में चले जाते हैं। इस प्रकार से यह एक चक्कर चलता जाता है।

पुरुष प्रकृति से भिन्न वस्तु है; क्योंकि प्रकृति और पुरुष के गुण धर्मों में बहुत अन्तर है। प्रकृति त्रिगुणात्मक है अर्थात् उसमें सत्, रज और तम इनका योग होता है। परन्तु पुरुष में इनका कुछ सम्बन्ध नहीं। दूसरी बात यह है कि प्रकृति एक संघातमय तत्त्व है जो सत्व, रज, तम से बना है। संघात, सदा परार्थ—दूसरे के उपभोग के लिए—होता है। जिस प्रकार पलँग की प्रत्येक वस्तु मिलकर दूसरे के उपभोग के लिए शय्या को बनाती है उसी प्रकार इन चौबीस तत्त्वों से बनी हुई वस्तु किसी दूसरे के उपभोग के लिये ही होनी चाहिये।

जिस प्रकार जड़ वस्तु रथादि स्वयं बिना सारथि के इष्ट मार्ग पर नहीं चल सकते; उसी प्रकार इन चौबीस तत्वों से बना हुआ यह जड़ शरीर भी पुरुष रूपी सारथि के बिना नहीं चल सकता। इसीलिए सांख्य-शास्त्र में पुरुष को अधिष्ठाता भी कहा है। तीसरी बात यह है कि भोग्य और भोक्ता ये दोनों वस्तुएँ पृथक्-पृथक् होती हैं। पुरुष भोक्ता है और जगत् उसका भोग्य है। यदि ये दोनों वस्तुएँ एक दूसरे से अलग न हों तो इनमें भोग्य और भोक्ता का सम्बन्ध नहीं रहता। चौथी बात यह है कि शास्त्रों की प्रवृत्ति मोक्ष के लिये है। यदि पुरुष का शरीर से अलग होना असम्भव होता, अथवा ये दोनों वस्तुएँ एक ही होतीं, तब शास्त्रों की प्रवृत्ति व्यर्थ हो जाती। क्योंकि किसका मोक्ष होता? इसलिये पुरुष को प्रकृति से भिन्न माना जाता है।

पुरुष और प्रकृति का संयोग केवल दर्शन के लिये अथवा मोक्ष की प्राप्ति के लिये होता है। पुरुष प्रकृति (प्रधान) से मिलकर प्रकृति को और उसके कार्य्यों को देखता है। एक तरह से वह प्रकृति का भोग करता है। जिस प्रकार कि बच्चे को बढ़ाने के लिये माता के स्तनों में अचेतन—जड़ दूध की प्रवृत्ति होती है; ठीक उसी प्रकार पुरुष को मोक्ष दिलाने के लिए इस जड़-प्रधान (प्रकृति) की प्रवृत्ति होती है। और जिस प्रकार एक

अभिनेत्री रंगमञ्च पर आती है, अपना काम दिखाती है और पीछे से चली जाती है; उसी प्रकार यह प्रकृति भी द्रष्टा पुरुष को अपना अभिनय दिखाकर निवृत्त होजाती है। प्रकृति नाना उपायों से पुरुष का उपकार करती है। इस उपकार के बदले में वह पुरुष से कुछ भी प्रत्युपकार नहीं माँगती।

जिस प्रकार एक अन्धा और दूसरा लँगड़ा ये दोनों व्यक्ति मिलकर अपना काम बना ले जाते हैं, ठीक उसी प्रकार प्रधान और पुरुष मिलकर अपना काम साध लेते हैं। इनमें पुरुष अकर्ता—क्रियारहित, पंगु है और प्रकृति अन्धी परन्तु क्रियाशील है। इससे दोनों का काम बन जाता है।

पुरुष ही जब शरीर-पिञ्जर में बद्ध होजाता है, तब इसको जीवात्मा, साक्षी, द्रष्टा, अकर्त्ता आदि नामों से कहा जाता है। यह विभु है। ये अनन्त हैं। यदि ये सब एक होते तो सब का एक ही साथ जन्म और सब की एकही साथ मृत्यु होती। सब पुरुष एक साथ ही गति करते। इसके अन्दर एकही समान गुण होता है। परन्तु नहीं; कोई सत्त्वगुणी है, कोई रजोगुणी है।

कुछ दार्शनिक इस शरीरस्थ "आत्मा" को प्रकृति और पुरुष से भिन्न मानते हैं। उनके अनुसार तीन वस्तुयें अनादि हैं। परन्तु शरीरस्थ आत्मा और पुरुष के अन्दर बहुत कुछ समानता है। दोनों अनादि हैं, दोनों अनन्त हैं। शरीरस्थ आत्मा का नाम जीव है।†

प्रकृति—सत्व, रज और तम इन तीन वस्तुओं के संयोग से उत्पन्न होती है। इनमें सत्व हल्का और प्रकाशक है। रज उत्तेजक और चल है। तम भारी और रोकने वाला है। सत्व हल्का है इसलिये सत्व वाले पदार्थ अथवा सत्वबहुल सृष्टि ऊपर रहती है। जिनमें रजबहुल होता है वे चंचल और अधिक क्रियाशील और उत्तेजित रहते हैं। रज चंचल होने से सत्व को चलाता रहे, यदि इसके रोकने के लिये तम जैसी भारी वस्तु न हो। रज का स्थान तम और सत्व के मध्य में है। तम भारी और रोकने वाला है इसलिये तम की अधिकता होने से भारीपन और आलस्य रहता है। तम का स्थान नीचे—सबसे नीचे है।‡ जिस प्रकार बत्ती और तेल दोनों

†पाशबद्धो भवेज्जीवः पाशमुक्तः सदा सुखी "सत्यार्थ प्रकाश"। शरीर रूपी पिंजर में बँधी हुई आत्मा जीव है, और मुक्त होने पर सुखी—परब्रह्म है।

‡(१) ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्वस्था: मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः।
जघन्य गुणवृत्तिस्थाः अधोगच्छन्ति भारत ॥ गीता—

अग्नि के विरोधी हैं, परन्तु दोनों का संयोग प्रकाश को उत्पन्न करता है, अथवा जिस प्रकार शरीर को धारण करनेवाले वात, पित्त और कफ परस्पर विरोधी गुण रखते हुये भी मिलकर इस शरीर की रक्षा करते हैं, ठीक उसी प्रकार ये तीनों तत्व भी परस्पर मिलकर कार्य करते हैं। कहा भी है—

"अन्योन्य मिथुनाः सर्वे सर्वे सर्वत्रगामिनः ।
रजसो मिथुनं सत्वं सत्वस्य मिथुनं रजः ॥"
"तमसश्चापि मिथुने ते सत्व रजसी उभे ।
उभयो सत्व रजसो मिथुनं तम उच्यते ॥"

शरीर को बनाने के लिये इन चौबीस तत्वों के अन्दर जो परिवर्तन होते हैं उनको ठीक-ठीक समझना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। मुख्यतः पञ्चमहाभूत और चेतनाधातु के संयोग होने से यह "पुरुष" उत्पन्न होता है। इसको उत्पन्न करने के लिये सबसे प्रथम आकाश के अन्दर गति होती है और फिर क्रमशः यह गति वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी में संचरित होती है। इस शरीर के अन्दर भी सत्व, रज और तम इन तीन तत्वों का योग रहता है; क्योंकि अहङ्कार से दो प्रकार की सृष्टि उत्पन्न होती है। एक दश इन्द्रियाँ और दूसरा मन, ये ग्यारह। दूसरी प्रकार की सृष्टि पञ्चतन्मात्र रूप है। इन्द्रियों की उत्पत्ति सत्व गुणी अहङ्कार से होती है और पञ्चतन्मात्र तमो गुणी अहङ्कार से उत्पन्न होता है। रज उत्तेजक होने से दोनों को प्रवृत्त करता है। इसी से वह दोनों में मिला है। इन तत्वों के परस्पर आंशिक भेद के कारण ही इन्द्रियों में परस्पर भेद हो गया है।

इन चौबीस तत्त्वों में महत् से लेकर जितना कार्य-जगत है, वह सब "व्यक्त" है और मूल प्रकृति "अव्यक्त" है। यह मूल प्रकृति "अव्यक्त" इसलिये है कि ज्ञान के साधन इन्द्रियों से इसका प्रत्यक्ष नहीं होता, और अन्य कार्य जगत का अनुभव होता है। कई बार वस्तु उपस्थित होते हुये भी कुछ कारणों से अनुभव नहीं किया जा सकता। यथा—किसी वस्तु के बहुत दूर होने से, बहुत ही समीप आँख के साथ लगा होने से, साधन-इन्द्रिय के नष्ट होने से, वस्तु के अति सूक्ष्म होने से, पानी या वायु के कणों को अति सूक्ष्म होने से अनुभव नहीं कर सकते। इस प्रकार की वस्तु की उपस्थिति

(२) ऊर्ध्व सत्व विशालः तमो विशालश्च मूलतः सर्गः ।
मध्ये रजो विशालो ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तः ॥ सांख्य

अथवा अनुपस्थिति अनुमान से उसका कार्य देखकर की जाती है। जिस प्रकार दूर से धुआँ देखकर यह मान लिया जाता है, कि कहीं पर आग लगी है। इसी प्रकार यहाँ पर भी व्यक्तरूपी कार्य-जगत को देखकर अव्यक्त रूपी प्रधान का अनुमान किया जाता है। इनमें व्यक्त, कार्य-जगत, वह किसी न किसी का कारण बनता है, इसीलिये वह सदा बना नहीं रहता। और वह कार्य-जगत सब स्थानों में व्यापक नहीं है और सदा कार्य करता रहता है। इसके अवयव भी हैं, परन्तु अव्यक्त इन सबसे भिन्न है। अव्यक्त, व्यक्त जगत का कारण है, परन्तु किसी का कार्य नहीं है। यह उत्पादक गुण व्यक्त और अव्यक्त दोनों में समान है।

जो वस्तु परिणामी होती है, वह किसी वस्तु का असली कारण नहीं बन सकती। पर्वत, वृक्ष, धातु आदि वाह्य जगत और मन, बुद्धि, अहंकार आदि आभ्यन्तरीय जगत परिणामशील हैं। इसलिये ये किसी वस्तु का मूल कारण नहीं हो सकते। इसके अतिरिक्त इन सब के अन्दर समन्वय—एक समान गुण मिलता है; जिस प्रकार सोने के भिन्न-भिन्न आभूषणों में स्वर्णत्व समान रहता है, इसी प्रकार सब गौओं में गात्व जाती रहती है। जाति वाली वस्तु मूल कारण नहीं बन सकती, मूल कारण एक ही होना चाहिये। इसके अतिरिक्त "कारण" शक्तिवाला होना चाहिये। जिस प्रकार तेल का कारण तिल शक्तिवाला है, इसलिये उससे तैल निकल जाता है, रेत में वह शक्ति नहीं, इसलिये उससे तेल भी नहीं निकलता है। इसके साथ में कारण और कार्य का विभाग होना आवश्यक है, मिट्टी कारण है और घड़ा कार्य है। परन्तु कार्य में कारण के गुण आते हैं, इसी से कुछ गुणों में दोनों वस्तुयें मिलती हैं। इसी प्रकार यहाँ पर भी "अव्यक्त" नाना प्रकार के सब नाना जगत का कारण है। और यह सब जगत उसका कार्य है।

दोनों के अन्दर कार्य और कारण में (व्यक्त और अव्यक्त में) कुछ समानतायें हैं। यथा—दोनों ही प्रसवधर्मि उत्पन्न करनेवाले हैं, दोनों ही त्रिगुणी—सत्त्व, रज और तमवाले हैं। दोनों ही अचेतन जड़ हैं। इस त्रिगुण गुण के परिणाम से ही यह सब कार्य-जगत बनता और बिगड़ता है। सत्त्व, रज और तम परिणामित होकर इस कार्य-जगत को बनाते हैं, और ये ही पुनः परिणामित होकर इसको तोड़ते हैं।

जिस प्रकार एकही आकाश से गिरा हुआ पानी स्थान और

आश्रय-भेद से भिन्न-भिन्न रूपों या नामों को धारण कर लेता है, उसी प्रकार इस त्रिगुण वाले अव्यक्त के परिणाम से यह सब कार्य-जगत् व्यक्त रूप में बदल जाता है, और नष्ट होने पर पुनः उसी अव्यक्त में आकर "लय" होजाता है। यह अव्यक्त ही मूल प्रकृति है। इसी से सब कारण का विकास है। यह मूल प्रकृति कभी नष्ट नहीं होती है, अनश्वर है।

इस अचेतन प्रकृति के साथ जब "पुरुष" का योग होता है, तब वह भी चेतन होजाती है और कार्य करने लगती है। उस समय यह मालूम होता है कि यह सब कार्य "पुरुष" कर रहा है। परन्तु वास्तविक कार्य पुरुषं, बुद्धि, अहङ्कार आदि कर रहे होते हैं। "पुरुष" तो केवल साक्षी के रूप में, या मध्यस्थ बनकर रहता है।* इसी से सुख-दुःख का मान और "मैं" का अभिमान इन तत्वों में होता है, पुरुष में नहीं। पुरुष के जाने से यह सब खेल बिगड़ जाता है, उसके आने से फिर चल पड़ता है। शरीर की प्रकृति के ये तत्व हैं। इन तत्वों का समझना शरीर को समझनेवाले के लिये आवश्यक है। इसी से यह सृष्टि-क्रम दिया गया है।

आयुष्य और मृत्यु

"शरीरं हि गते तस्मिन् शून्यागारमचेतनम्।
पञ्चभूतावशेषत्वात् पञ्चत्वं गतमुच्यते॥" चरक

पृथ्वी, अप, तेज, वायु और आकाश तथा चेतना इन छः धातुओं के संयोग का नाम 'पुरुष' है। जिस समय रज और शुक्र ये दो धातु परस्पर मिलते हैं उस समय पूर्व कर्मों के कारण यह 'पुरुष' भी उनमें आकर मिल जाता है। इनमें रज आग्नेय गुणी (सूर्य्य) और शुक्र सौम्य गुणी (चन्द्रमा) है। इन दोनों के मिलने ही से सम्पूर्ण सृष्टि का निर्माण होता है। इसीलिये कहा जाता है कि "अग्निषोमीयम् जगत्"।

जिस प्रकार पञ्चभूतों का संयोग होता है उसी प्रकार कुछ समय बाद इनका वियोग भी होता है। घड़ा मिट्टी से बनता है और फिर मिट्टी में ही मिल जाता है। इसी प्रकार यह 'पुरुष' पञ्चमहाभूतों के संयोग-समय में आता है और वियोग होने पर चला जाता है। आने का नाम जन्म या संयोग और जाने का नाम मृत्यु या भंग (वियोग) है। इन दोनों के बीच के समय का नाम 'आयुष्य' है।

*साक्षी चेतः केवलो निगुर्णश्च॥"

प्रत्येक वस्तु की आयुष्य कितनी है अथवा कितनी होनी चाहिये; इसके लिये कोई विशेष नियम नहीं है। ज्योतिष-शास्त्र के अन्दर मनुष्य और हाथी की आयु एक समान मानी है। जिसका कि समय १२० वर्ष और ५ दिन है। इसी प्रकार और प्राणियों की भी आयु का विचार किया गया है। जन्म और मृत्यु यह नैसर्गिक अर्थात् स्वाभाविक नियम हैं। ये दोनों संसार के स्वभाव हैं। इनसे बचना मनुष्य के लिये असम्भव है। बाकी आयुष्य को बढ़ाना अथवा कम करना यह मनुष्य के अपने हाथ में है। साधारणतः यदि एक बैल गाड़ी को उचित रीति से चलाया जाय, उसको ठीक रास्तों से ले जाया जाय, तो उसका नाश होगा तो जरूर, परन्तु अपने समय पर होगा। यदि इसी गाड़ी को अनुचित रास्तों से ले जाया जाय तो कल टूटने की अपेक्षा वह आज ही टूट जायगी। इसी प्रकार यह अपना आयुष्य यदि सम्यक् प्रकार से इस जीवन-रूपी गाड़ी को चलाया जाय तो अपने समय पर घिसकर समाप्त होजायगी। क्योंकि समाप्त होना (टूटना) इसका धर्म है। परन्तु यदि इस पर ध्यान न देकर अनुचित उपायों से इसका वाहन किया जायगा तो समय से पूर्व ही इसकी शान्ति होजाती है। इसी आयुष्य की रक्षा के उपाय बताने के लिये इस आयुर्वेद की रचना की गई है।

दूसरों का विचार है कि मृत्यु निश्चित है। अर्थात् जो भी आदमी मरता है वह अपनी आयुष्य भोगकर ही मरता है। जब तक उसकी आयु शेष रहती है तब तक तलवार के घाव भी उसकी जान के दुश्मन नहीं बनते हैं। आयु के शेष न होने पर तृण का घाव भी मौत का कारण बन जाता है। इसलिये मृत्यु निश्चित है।*

साधारणतः जो मृत्यु नियत समय से पूर्व होती है उसको अकाल मृत्यु कहते हैं और जो नियत समय पर होती है उसे काल मृत्यु कहा जाता है। जिस प्रकार कि वृक्षों में कई बार समय से पूर्व या पीछे पुष्प या फल आ जाते हैं; अथवा वर्षा अपनी ऋतु के सिवाय दूसरी ऋतु में भी होती है उसी प्रकार समय के बिना भी मृत्यु हो जाती है। यदि आयुष्य के बढ़ाने का

---

* (१) एकोत्तरं मृत्युशतमथर्वाणः प्रचक्षते।
तत्रैकः काल संज्ञस्तु शेषा आगन्तवः स्मृताः ॥ सुश्रुत
(२) इहाग्निवेश ! भूतानामायुः युक्तिमपेक्षते ॥ चरक

कोई उपाय न होता, तो जप, तप, प्रायश्चित्त अथवा आयुर्वेद आदि का विधान व्यर्थ ही था। पाप करने से आयु का क्षय होता है और पुण्य करने से आयु की वृद्धि होती है यह मान्यतः चिरकाल से चली आती है। साथ ही उत्पत्ति और विनाश का नियम भी स्वाभाविक ही है। पुरुष और प्रधान का कुछ समय के लिये संयोग होता है और फिर कुछ दिनों बाद उनका वियोग हो जाता है। प्रकृति अपने कारण के अन्दर जाकर उसी में लय होती है। जिस समय पाँच भूत ही शेष रहते हैं और पुरुष अलग हो जाता है, उसका नाम मृत्यु या पञ्चत्व है।

शरीर-स्थान

"पञ्चात्मकं पञ्चसु वर्त्तमानं षड़ाश्रयं षड्गुण योक्तम्।
तं सप्तधातुं त्रिमलं द्वियोनीं चतुर्विधाऽऽहारमयं शरीरम्॥" गर्भोपनिषद्*

"शरीर मन और आत्मा के संयोग का नाम "पुरुष" है। पुरुष के साथ दुःख का संयोग होने से व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं। यह संयोग दो प्रकार का है—शारीरिक और मानसिक। शारीरिक व्याधियाँ शारीरिक उपायों से; मानसिक व्याधियाँ शारीरिक तथा समाधि सान्त्वना आदि उपायों से शान्त होती हैं। अर्थात् यह शरीर रोगों की तथा चिकित्सा की अधिष्ठान भूमि है; इसलिये सबसे प्रथम "शरीर" को जानना चाहिये।"

शरीर को जानने के दो उपाय हैं—एक बाह्य और दूसरा अभ्यन्तर। बाह्य उपाय पंच ज्ञानेन्द्रियों द्वारा अन्य साधनों की सहायता से जानना है। और दूसरा अभ्यन्तर उपाय ज्ञान-चक्षु द्वारा योगियों से ही साध्य है। हम जैसे स्थूल बुद्धि वालों के लिये प्रथम उपाय ही श्रेयस्कर और सरल है।"

प्रत्यक्ष शरीर

शुक्रशोणितंगर्भाशयस्थमात्मप्रकृतिविकारसंमूर्छितं "गर्भ" इत्युच्यते। तं चेतनावस्थितंवायुर्विभजति, तेज एनं पचति, आपःक्लेदयन्ति, पृथिविसंहन्ति,

---

* यह शरीर पंच महाभूतों से मिलकर बना है, पाँच भूतों में रहता है, इसके छः आश्रय हैं, इसलिये छः गुणों वाला है, सात धातु, तीन मल, दो योनि और चार प्रकार का आहार इस शरीर को बनाता है।

पंच महाभूत—पृथ्वी, अप्, तेज, वायु और आकाश।

आकाशं विवर्धयति। एवं विवर्धित स यदा हस्तपाद जिह्वानितम्बादिभिरङ्गै-रूपेतस्तदा "शरीरं" इति संज्ञा लभते।" सुश्रुत।

"कामान्मिथुन संयोगे शुक्रशोणितयोगजः।
गर्भं संजायते नार्यां स जातो बाल उच्यते॥" शार्ङ्गधर

जिस प्रकार वट वृक्ष के सब उत्पादक गुण उसके कारण वट-बीज में रहते हैं, जिस प्रकार घड़े के सब गुण उसके कारण-भूत मृत्तिका में उपस्थित होते हैं: और जिस प्रकार नील वस्त्र का नीला-गुण उस वस्त्र को बनानेवाले तन्तुओं में है; ठीक उसी प्रकार इस मानव-देह के सब गुण-धर्म इसको बनानेवाले कारण में रहते हैं।

जिस प्रकार आम के अंकुर में आम्र फल के स्वाद, रूप, रस, गन्ध का पता स्पष्ट रूप से नहीं चलता, परन्तु कालान्तर में बड़ा होने पर उसके अन्दर आम्रफल के सब गुणों का प्रकाशन होता है; ठीक उसी प्रकार इस मानव-देह के कारण में भो कालान्तर में जाकर सब गुणों का आविर्भाव प्रकट होता है।

जिस प्रकार एक वट-बीज हजारों वट-बीजों को उत्पन्न करता है, उसी प्रकार एक अव्यक्त, अगोचर, परमात्मा, परब्रह्म ने इस जगत में हजारों मानव प्रकृतियाँ उत्पन्न कर दीं। और जिस प्रकार इस लौकिक जगत में द्वन्द्व नियम से वृद्धि होती है, उसी प्रकार परब्रह्म ने द्वन्द्व नियम से इस मानव सृष्टि का विस्तार किया। अर्थात् उसने "स्त्री" को उत्पन्न किया और उससे इस मानव देह का विस्तार किया।

इस मानव देह का निर्माण पंच महाभूत पृथ्वी, जल, वायु, तेज,

॥ पंच भूत—गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, और शब्द, अथवा, नासिका, जिह्वा, आँख त्वचा और कान।

छः आश्रय—शिर, दो हाथ, दो पाँव, और मध्य भाग।

छः गुण—मधुर, अम्ल, लवण, तिक्त, कटु और रस।

सात धातु—रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र।

दो योनि—आग्नेय और सौम्य, स्त्री (आग्नेय) और पुरुष (सौम्य) "अग्निषोमीयम् जगत्"

चार प्रकार का आहार—भक्ष्य, चोष्य, लेह्य और पेय। भक्ष्य रोटी आदि; चोष्य-गन्ने आदि; लेह्य-चटनी आदि; पेय-पानी।

तीन मल—सत्त्व, रज और तम; अथवा वायु, पित्त, और कफ।

आकाश और छठी चेतना धातु के संयोग से होता है। और ये छः धातुयें माता-पिता के शोणित और शुक्र द्वारा गर्भाशय में पहुँच कर गर्भ का निर्माण करते हैं। इसलिये इस मानव देह को "षडङ्ग" "छः अंगों वाला" कहा जाता है। यथा—शिर, कोष्ठ, दो पाँव और हाथ +। इसी प्रकार इन पंच महाभूतों के प्रतिनिधि पंच ज्ञानेन्द्रियाँ भी (नासिका, जिह्वा, त्वचा, आँख और कान) इन महाभूतों के गुणों को (गन्ध, रस, स्पर्श, रूप और शब्द) ग्रहण करने के लिये इस शरीर में उत्पन्न होती हैं। जिनके द्वारा हम प्रत्यक्ष रीति से इन महाभूतों की उपस्थिति का ज्ञान कर सकते हैं। कार्य को देखकर कारण का ज्ञान हो जाता है।

जिस प्रकार एक स्फटिक ताल (Lens) को सूर्य के सामने रखकर उसके द्वारा रूई या तिनके को जला सकते हैं, परन्तु उस तिनके में सूर्य की किरणें स्पष्ट रूप में जाती नहीं दीखती, केवल दहन रूपी कार्य से उन किरणों के आगमन का अनुमान किया जाता है, और जिस प्रकार चन्द्रकान्तमणि को चन्द्रमा के सामने रखने से उसमें से पानी बहने लगता है, परन्तु उसके अन्दर चन्द्रमा की किरणें जाती हुई नहीं दीखती हैं, ठीक उसी प्रकार इस मानव देह में भी चेतना धातु शुक्र और शोणित के द्वारा जाती हुई नहीं दीखती। केवल उसके कार्य से हम उसकी उपस्थिति जान सकते हैं। प्रतिमास गर्भ में वृद्धि का होना और मृतगर्भ में वृद्धि का न होना इस चेतना धातु का सुगमता से ज्ञान करा देता है।

जिस प्रकार एक वट-वृक्ष की उत्पत्ति के लिये ऋतु, क्षेत्र, अम्बु और बीज इन चार वस्तुओं की आवश्यकता है, उसी प्रकार इस मानव देह की उत्पत्ति के लिये क्षेत्र—गर्भाशय, ऋतु—ऋतुकाल; अम्बु—रस, बीज—शुक्रबीज, इन चार वस्तुओं की आवश्यकता है। जिस प्रकार ठीक समय पर उत्तम क्षेत्र में, उत्तम समय पर बढ़िया बीज डाला हुआ और पानी से सिंचित होने पर कालान्तर में फलदायी होता है, उसी प्रकार ऋतुकाल में उत्तम गर्भाशय में उत्तम बीज का पुरोहण मातृ-रस से पुष्ट होकर कालान्तर में फलदायी होता है ‡।

---

* "प्रजापतिः ईक्षाञ्चक्रे हन्ताऽस्मै प्रतिष्ठां कल्पयामीति। सस्त्रियं संसृजे, तं सृष्ट्वाऽधः उपास्त सोऽकामयत् बहुस्याम। प्रजायेय।

+ तच्च षडङ्गम्—शाखाश्चतस्रो, मध्यं पञ्चमं, षष्ठं शिर इति॥ सुश्रुत

‡ ध्रुवं चतुर्णां सान्निध्याद् गर्भः स्याद् विधिपूर्वकः।
ऋतु क्षेत्राम्बुबीजानां सामग्र्याद् अंकुरो यथा॥ सुश्रुत

ऋतु—जिस प्रकार प्रकृति में प्रत्येक बीज के बोने के लिये विशेष समय अपेक्षित होता है, उसी प्रकार इस मानव-बीज के लिये भी एक समय होता है, उसको साधारण भाषा में "ऋतु-काल" कहते हैं। इस समय में स्त्री-जाति के शरीर में परिवर्तन होता है। यह समय प्रत्येक स्त्री में भिन्न-भिन्न होता है, और प्रति २८वें दिन आता है। इस समय एक प्रकार का अशुद्ध रक्त उनके योनि-मार्ग से बाहर होता है, जो तीन या चार दिन तक जारी रहता है। इसका रंग और इसकी गन्ध प्राय: मैले दाँतों में से निकलते हुये रक्त के समान होती है। इसको यदि पानी में घोलें तो यह एकदम नहीं घुलता, इसमें कुछ तन्तु से दिखाई देते हैं। आयुर्वेद-शास्त्र में इसका रंग खरगोश के रक्त के समान या लाख के पानी के समान बताया गया है।† तीन-चार दिन में जब यह रक्त बन्द होजाता है, उस समय स्त्री स्नान कर शुद्ध होती है, अर्थात् वह अब स्पर्श करने के योग्य होजाती है।

क्षेत्र—जिस प्रकार उर्वरा भूमि में बीज सुगमता से उत्पन्न होजाता है, उसी प्रकार गर्भाशयरूपी क्षेत्र के शुद्ध होने पर बीज भी सुगमता से उत्पन्न हो सकता है। जब तक ऋतु-दर्शन रहता है (अर्थात् तीन-चार दिन तक) तब तक क्षेत्र गर्भाशय भी अशुद्ध रहता है। इसलिए ऐसी अवस्था में बीज का प्ररोहण नहीं होसकता। जिस प्रकार बहते हुये नदी के पानी में डाली हुई रेत की मट्ठी भी पानी की लहर के साथ बह जाती है, उसी प्रकार इस समय किया हुआ संयोग भी निष्फल होता है। इसके अतिरिक्त अन्य प्रकार के रोगों को भी उत्पन्न कर देता है।¶

साधारणत: ऋतु और क्षेत्र ऋतुदर्शन के पन्द्रह दिन पश्चात तक गर्भ ग्रहण करने के लिये योग्य रहते हैं। उसके पीछे फिर धीरे-धीरे उनकी ग्रहण-शक्ति कम होजाती है। अर्थात् ऋतुदर्शन से गर्भाशय का अन्त:मुख खुलता है, जिससे कि बीज पुरुष-शुक्र उसमें प्रवेश कर सकता है और ऋतु-दर्शन के पन्द्रह दिन पीछे वह अन्त:मुख बन्द होजाता है। जिस प्रकार कि एक कमल का पुष्प सूर्य के निकलने के साथ खिलना आरम्भ करता है और सूर्यास्त के समय फिर बन्द होजाता है, और फिर दूसरे दिन खिलता है, इसी

---

† शशासृक् प्रतिमं यत्तु यद्वा लाक्षारसोपमम्।
तदार्त्तवं प्रशंसन्ति यद्वासो न विरंजयेत्॥ सुश्रुत

¶ आर्त्तव समय में किया हुआ सम्भोग पुरुष के शिश्न पर "कैंसर" जैसे व्रण को उत्पन्न कर देता है। इसके तीन रोगी मेरी आँखों से गुजरे हैं।

प्रकार गर्भाशय का मुख भी ऋतुकाल में खुलता है और फिर बन्द होजाता है। इसलिये मानव-जाति में ऋतुकाल ऋतुदर्शन के पन्द्रह दिन पीछे तक रहता है।

अम्बु--जिस प्रकार एक बीज को उसके पोषण के लिये पानी की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार इस मानव-देह के गर्भ को भी इसकी आवश्यकता होती है। यह रस-पानी माता के शरीर से गर्भ के अन्दर पहुँचता रहता है। इसीसे उसका पोषण और वृद्धि होती रहती है। जिस प्रकार अति गरम या ठंडा पानी बीज को नुकसान पहुँचाते हैं, उसी प्रकार दूषित रस भी बीज को हानि करता है। अतः शास्त्र में इस समय के लिये विशेष निर्देष दिये हैं।§

बीज—यदि बीज में कीड़ा लगा हो या वह अपक्क हो, तो वह बोने के अयोग्य समझा जाता है। इसी प्रकार पुरुषबीज-शुक्र यदि दूषित हो अथवा कच्चा (सोलई साल की आयु से पहिले) होगा तो वह भी गर्भोत्पत्ति के अयोग्य समझा जाता है। इस प्रकार से अयोग्य बीज से या तो संतति उत्पन्न ही नहीं होगी; और यदि कदाचित हो भी गई तो देर तक जीवित नहीं रहेगी। अतः पूर्ण पका हुआ, विकार रहित शुक्र ही गर्भोत्पत्ति में कारण बन सकता है। शास्त्र ने उत्तम शुक्र की पहिचान-स्फटिक के समान, हल्की नीली उड़ती हुई चमक, मधुर गन्ध, स्निग्ध आदि शब्दों से बताई है। शुद्ध शुक्र इतना सान्द्र और उज्ज्वल होता है कि वस्त्र पर पड़ा हुआ उसका दाग पानी से साधारणतया धोने पर नहीं जाता। और यदि उस शुक्र को हाथ में लेकर दिवार पर फेंकें तो वह वहीं रह जाता है, नीचे को नहीं बहता है। शुक्र की इस सान्द्रता को कम करने के लिये ही (जिससे कि वह बह सके) परमात्मा ने उसके मार्ग में कुछ ग्रन्थियाँ बना दी हैं, जो कि शुक्र-प्रवाह के समय अपना रस इसमें मिलाकर इसको बहने योग्य तरल कर देती हैं।❀

यह शुक्र पुरुष के अण्डकोषों से उत्पन्न होता है, और ये अण्डकोष इस पदार्थ को शरीर में बहते हुये रक्त से पृथक् कर लेते हैं। जिस प्रकार कि शरीर की अन्य ग्रन्थियाँ (निकण्ठ ग्रन्थि, उपवृक्क आदि) अपनी रचना विशेष के कारण रक्त से भिन्न-भिन्न पदार्थ बनाती हैं, उसी प्रकार ये अण्डकोष

§आर्तवकाल के पश्चात् और आर्तवकाल में स्त्री के अन्दर सम्भोग की इच्छा बहुत बढ़ जाती है।

❀आयुर्वेद में शुक्र वृद्धि कारक औषधियों के तीन विभाग हैं। यथा—एक

भी जो कि प्रणाली-रहित ग्रन्थियों में एक हैं, कामेच्छा के उत्पन्न होने पर रक्त से शुक्र को पृथक् कर लेते हैं। और वैसे साधारणावस्था में शरीर को जीवन देनेवाले "ओज" नामक पदार्थ को उत्पन्न करके शरीर का पोषण करते हैं।*

कामेच्छा के उत्पन्न होने से जिस प्रकार श्वास-गति, नाडि-स्पन्दन और हृदय की धड़कन में अन्तर आ जाता है, उसी प्रकार अण्डकोष की ग्रन्थियाँ भी अपने अन्तःस्राव के उत्पन्न करने का कार्य छोड़कर बहिःस्राव को उत्पन्न करने लगती हैं। और जब फिर कामेच्छा से उत्पन्न अवस्थायें अपनी स्वाभाविक रूप में आ जाती हैं, तब पुनः वे अन्तःस्राव-ओज उत्पन्न करने लगती हैं। इससे बहिःस्राव को "शुक्र" शब्द से पहचाना जाता है और अन्तःस्राव को "ओज" शब्द से।

यह शुक्र देखने में तरल, चिकना और श्वेत रंग का जिसमें नीले रंग की कुछ झाँईं होती है, मीठी विशेष गन्धवाला होता है। सूक्ष्म दृष्टि से यदि अणुवीक्षण यंत्र-द्वारा इसको देखें तो इसमें एक प्रकार के कीटाणु दिखाई देते हैं जो तरल द्रव में अपनी पूँछ की सहायता से इधर-उधर हिल रहे होते हैं। इनके तीन भाग हैं-एक शिर, दूसरा ग्रीवा और तीसरी पूँछ। पूँछ इनको गर्भाशय में ऊपर की ओर जाने के लिये विशेष सहायता देती है। इसी की सहायता से ये योनि-मार्ग से गर्भाशय की ६ से ८ इञ्च तक की दूरी पूरी करके गर्भाशय में पहुँचते हैं-और वहाँ स्त्री कीट-डिम्ब से मिलकर गर्भ बनाते हैं।

ये कीट हल्के क्षारीय माध्यम में पाँच-सात दिनों तक उचित अवस्थाओं के रहने पर भली प्रकार से जीवित रह सकते हैं। परन्तु प्रतिकूल अवस्थाओं में, यथा-योनि-मार्ग में तीव्र क्षारीय या अम्लता के होने से शीघ्र

शुक्र की मात्रा बढ़ानेवाली; यथा—अश्वगन्धा, नागबला आदि। दूसरी शुक्र के क्षरण या तरलता बढ़ानेवाली; यथा—माष, कौंच के बीच। तीसरी जो मात्रा और क्षरण दोनों को बढ़ावे; यथा—दूध।

*येनौजसा वर्त्तयन्ति प्रीणिताः सर्वजन्तवः।
यदृते सर्वभूतानां जीविते नावतिष्ठते॥ चरक

ही मर जाते हैं। अतः सन्तति-निरोध के नियमों में क्षारीय या तीव्र कृमिघ्न पदार्थों का उपयोग करना भी एक साधन बताया गया है। ये शुक्र-कीट पुरुष के वीर्य में बारह साल से पूर्व प्रायः नहीं मिलते और पच्चीस साल की आयु में इनका परिपाक होता है।

जिस प्रकार पुरुष में बाहर वृषण, जो कि बाहर दृश्यमान ग्रन्थियाँ हैं, उसी प्रकार स्त्रियों में उदर के अन्दर रहनेवाली "डिम्ब कोष" नाम की दो ग्रन्थियाँ दक्षिण और वाम पार्श्व में रहती हैं। ये भी वृषणों की भाँति प्रति मास एक डिम्ब को गर्भाशय में भेजती हैं। और यह डिम्ब गर्भाशय में पहुँचकर शुक्र-कीट को अपनी ओर खींचता है, जैसे चुम्बक लोहे को खींच लेता है। और यदि समय पर डिम्ब न पहुँचे तो शुक्र, और यदि शुक्र-कीट न पहुँचे तो डिम्ब नष्ट होजाता है और अगले ऋतुकाल में रज के साथ बाहर आ जाता है।

जिस प्रकार पतीली में पानी उबालते हुये, पतीली के अन्दर उसकी पेंदो में पानी के छोटे-छोटे कण बन जाते हैं और फिर धीरे-धीरे गरम होते हुये पानी की पृष्ठ पर आकर फूट जाते हैं; उसी प्रकार डिम्बकोषों में भरे हुये डिम्बों में से जो भी डिम्ब परिपक्व होता है वही गर्भाशय में पहुँचता है और अपना कोष वहीं डिम्बकोष में छोड़ आता है। यह कार्य रजोदर्शन के प्रारम्भ से लेकर उसकी समाप्ति की अवधि तक रहता है; अर्थात् बारह साल से लेकर पैंतालीस या पचास साल तक होता है।

कई बार दुर्भाग्य से ऐसा होजाता है कि डिम्ब गर्भाशय में न पहुँच कर प्रणाली ही में रह जाता है और शुक्र-कीट भी वहीं प्रणाली में पहुँच जाता है। जिससे गर्भ का विकास गर्भाशय में न होकर प्रणाली में होता है। इसको अस्वाभाविक रूप कहते हैं।

गर्भ का विकास—पंच महाभूत और चेतना इन छः धातुओं से बना हुआ गर्भ गर्भाशय में शनैः-शनैः बढ़ने लगता है। प्रथम मास के अन्त में इसका आकार एक छोटे से कीड़े की भाँति होता है और इसकी लम्बाई $\frac{1}{4}$ इञ्च से $\frac{1}{3}$ इञ्च तक होती है। इस समय इसमें अंगों का विभाग पूर्णतः अस्पष्ट रहता है, केवल मुँह के स्थान पर एक पतली रेखा होती है। दो मास का गर्भ $1\frac{1}{4}$ से $1\frac{1}{2}$ इञ्च लम्बा और वज़न में $1\frac{1}{2}$ तोला भर होता है। इस दूसरे

मास में चेहरे के अवयव मुँह, नाक, कान और आँख स्पष्ट दीखने लगते हैं। हाथ और पाँव के स्थान पर चिह्न बन जाते हैं। आँख के ऊपर का भार कमान की भाँति बनने लगता है। तीन मास के गर्भ की लम्बाई २ से २½ इञ्च और भार २½ से ४ तोला होता है। इस महीने में अस्थि-निर्माण आरम्भ होता है और मांस भी स्पष्ट होने लगता है। चेहरा और शिर प्रायः स्पष्ट होजाते हैं। आँख की पलकें बन्द रहती हैं, भ्रू की भीनी रेख पड़ जाती है, मुँह बन्द होता है, हाथ और पाँव स्पष्ट होजाते हैं और उनमें अँगुलियों के चिह्न बन जाते हैं।* चतुर्थ मास का गर्भ ५ से ६ इञ्च लम्बा और ७ से ८½ तोला भार में होता है। इस मास में शरीर की त्वचा गुलाबी रंग की, मुँह ज़रा खुला, ओठ अलग-अलग-रहते हैं, आँख के ऊपर का पतला पड़ बन जाता है, नख बनने लगते हैं और लिंग-भेद (स्त्री, पुरुष, नपुंसक) स्पष्ट होजाता है। इस मास में गर्भ के सब अंग और प्रत्यंग बन जाते हैं जिससे माता को विशेष भार स्पष्ट होने लगता है। इस चतुर्थ मास में ही हृदय के अन्दर स्थित छठी चेतना-धातु स्पष्ट होती है, जिससे माता के उदर पर हृदय की धड़कन सुनाई देने लगती है। इस मास से ही गर्भ हलना-डुलना आरम्भ करता है। इस मास में गर्भिणी विशेष रूप से रूप, रस, गन्ध आदि विषयों की ओर लालायित रहती है। पाँचवें मास का गर्भ ६ से ७ इञ्च लम्बा और १२ से १८ तोला भार में होता है। इस मास में विशेष रूप से अस्थि, मांस और रक्त में वृद्धि होती है, इसलिये मात शरीर में कृश होजाती है। शिर का आकार विशेष बड़ा होता है। नख बन चुके होते हैं और शिर के बाल बनने लगते हैं। पाँचवे मास में गर्भ का मन उद्बुध होजाता है। छठे मास का गर्भ ९ से १० इञ्च लम्ब और वज़न में आध सेर (४० तोला) होता है। इस मास में गर्भ के अन्दर बल और वर्ण की वृद्धि विशेष रूप से होती है; इसलिये माता का बल और

* आयुर्वेद-शास्त्र की दृष्टि से गर्भ स्थिति के तीन मास के पीछे तक भी लिंग भेद किया जाता है। उसे समय औषधि के प्रभाव से कन्या पुरुष में बदली जा सकती है। यथा—"तस्मादापन्न गर्भांस्त्रियमभिमीक्ष्य प्राग्व्यक्ति" भावात् गर्भस्य पुंसवनम् कर्मणा वेदोक्तेन विवर्त्तनमुपदिश्यते-प्राग् व्यक्तिभावात् प्रयुक्तेन सम्यक्। चरक।

पुंसवन की औषधियाँ—वटशुंग, लक्ष्मणा, सहदेवी इनका रस माता को दक्षिण नासा में ग्रहण करना चाहिये।

वर्ण घट जाता है। पलकें पूर्णतः बन जाती हैं, और चेहरा लाल रंग का होता है और बाल कुछ भूरे से होते हैं। सातवें मास के गर्भ की लम्बाई १३ से १५ इञ्च और भार १२० तोले से १६० तोले तक होता है। त्वचा मोटी और गुलाबी रंग की होती है। नख मोटे परन्तु अँगुलियों के सिरे तक पहुँचे हुये नहीं होते। पलकें दोनों स्पष्ट अलग-अलग होजाती हैं। इस मास में बुद्धि का उदय हो जाता है। आठवें मास का गर्भ १४ से १६ इञ्च लम्बा और १६० से २०० तोले तक भार में होता है। इस मास में गर्भ की चमड़ी मोटी और नख उँगलियों के सिरे तक पहुँचे होते हैं। इस मास में ओज धातु माता से बालक में और बालक से माता में रसवाहिनियों-द्वारा आता-जाता है इससे गर्भिणी कभी प्रसन्न और कभी म्लान रहती है। नवें मास में गर्भ की लम्बाई १७ से २१ इञ्च और भार २०० से ३६० तोले तक होता है। इस मास में वह सम्पूर्ण रूप से पूर्ण होकर २७० से २८० दिन के पश्चात् गर्भाशय से बाहर आता है। बाहर आने पर इसका नाम "बालक" होजाता है।

गर्भ के अन्दर सब अवयव पूर्णतः परिपक्व नहीं होते। बाहर आकर उनमें पूर्णतः विकास—वृद्धि होती है। यथा—मस्तिष्क और अस्थियाँ। ये अस्थियाँ शनैः-शनैः कठोर बनने लगती हैं। इसी प्रकार मांस, शिरा, स्नायु, सन्धि आदि बनती जाती हैं, जो कहीं २५ से २८ वर्ष की आयु में जाकर पूर्ण होती हैं।

अस्थि-पिञ्जर

अभ्यन्तर गतैः सारैर्यथा तिष्ठन्ति भूरुहाः
अस्थिसारैस्तथा देहा ध्रियन्ते देहिनां ध्रुवम् ॥
तस्माच्चिर विनष्टेषु त्वङ् मांसेषु शरीरिणाम्।
अस्थीनि न विनश्यन्ति साराण्येतानि देहिनाम् ॥ सुश्रुत‡

शरीर का मुख्य आधार यह अपना अस्थि-पिञ्जर है। शरीर के अन्य भाग इसी के आधार पर खड़े हुये हैं। और भाग शिरा, स्नायु, मांस

‡जिस प्रकार वृक्ष अपने अन्दर के सार पदार्थ के कारण खड़े रहते हैं, उसी प्रकार शरीरधारियों का ढाँचा भी इन्हीं सार-भूत अस्थियों पर खड़ा है। त्वचा, मांस आदि पदार्थ शीघ्र नष्ट होजाते हैं, परन्तु अस्थियाँ नष्ट नहीं होतीं। इसलिये इनको "सार" कहते हैं।

आदि कुछ दिनों में (मृत शरीर के अन्दर) नष्ट होजाते हैं, परन्तु ये अस्थियाँ कई वर्षों में जाकर शीर्ण होती हैं। इसलिये इनको शरीरधारियों का सार कहते हैं, (साराण्येतानि देहिनाम्)। इसलिये सब अन्य अवयवों को परमात्मा ने इनसे बनाये हुये सन्दूक में रक्खा है, जिससे उनमें किसी प्रकार की क्षति सुगमता से न पहुँच सके। यथा—शिर के अन्दर मस्तिष्क को चपटी, पतली परन्तु सुदृढ़ अस्थियों के अन्दर इस प्रकार से बन्द करके रक्खा है, कि मनुष्य एक-दो मन का बोझ भी इन पर सुगमता से ले जाये, तो भी अन्दर के अवयव को किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचती। इसी प्रकार जीवन के साधन, श्वास-प्रश्वास के कारण फेफड़ों को और हृदय को गोल, पतली, लम्बी अस्थियों में इस प्रकार से रख दिया है कि मनुष्य इनके ऊपर हाथी तक के बोझ को भी उठा ले, तो भी अन्तः अवयवों को किसी प्रकार की हानि न पहुँचे।

इतना ही नहीं, परन्तु परमात्मा ने स्थिति के अनुसार इनको भिन्न-भिन्न रूप दिया है। जैसे, कोई एकदम लम्बी, (यथा– जांघ और बाहु की), कोई गोल, (यथा घुटने के ऊपर की चपनी), कोई चपटी, पतली (यथा—शिर के कपाल), कोई टेढ़ी मुड़ी हुई (यथा—हँसली की अस्थि), कोई लम्बी गोल मुड़ी हुई (यथा—पसलियाँ), कोई गोल-मोहरे जैसी (यथा—पृष्ठवंश के कशेरू) और कोई छोटी-छोटी पतली (यथा—हाथ और पाँव की) अस्थियाँ बनाई हैं। जिससे इनके रूप के कारण शरीर की गति में किसी प्रकार की अड़चन न पड़कर सुगमता होती है।

रचना—अस्थियों का निर्माण गर्भाशय में ही होने लगता है। परन्तु वहाँ ये बहुत सुकुमार रहती हैं। पीछे-पीछे ज्यों-ज्यों अवस्था बढ़ती जाती है, इनमें भी कठोरता आती जाती है। यह कठोरता अस्थि के ऊपरवाले भाग में अधिक होती है और अन्दर के भाग में कुछ कोमलता रहती है। ये अस्थियाँ ऊपर से प्रायः खुरदरी, जगह-जगह स्पञ्ज की भाँति छिद्रोंवाली होती हैं। इन छिद्रों में से शरीर और अस्थियों को पोषण देनेवाली शिरा—धमनी, उनके प्रतान घुसते और निकलते हैं। खुरदरी होने से ये मांसपेशियों को भली प्रकार पकड़ लेती हैं।

अस्थियों के ऊपर का भाग श्वेत कठोर होता है। और अन्दर का भाग नरम, खोखला और लाल रंग का होता है। यह लाल रंग मज्जा

(Marrow) होती है जो शरीर के लिये पोषक है। आयुर्वेद की दृष्टि से इस मज्जा से ही शुक्र उत्पन्न होता है।

अस्थियों का निर्माण मुख्यत: दो पदार्थों से होता है। इनमें एक पदार्थ चिकना, जान्तवीय (Animal-matter) है, और दूसरा खनिज या पार्थिव (Earthy matter) है। जान्तवीय पदार्थ के कारण अस्थि में मजबूती (स्निग्धता) रहती है, और खनिज पदार्थ के कारण कठोरता रहती है। खुली हवा में अस्थियों के जलाने से जान्तवीय भाग सहसा जल जाता है और केवल खनिज भाग रहता है। और इस प्रकार से जले हुये भाग को हाथ से छूकर चूरा कर सकते हैं। और यदि तेज शोरे के तेजाब में अस्थियों को डालकर कुछ समय तक रख दें तो अस्थियाँ नरम हो जाती हैं। इसका कारण यह है कि इनका पार्थिव पदार्थ उस तेजाब में घुल जाता है; जिसमे उनका नरम, मृदु, जान्तवीय भाग ही शेष रह गया।

रासायनिक विश्लेषण के द्वारा अस्थियों में निम्न वस्तुयें प्राप्त हुई हैं--

अस्थियों के अन्दर के पदार्थ	प्रतिशतक रूप में
१—जान्तवीय भाग	३३ प्रतिशत
२—पार्थिव भाग	५१ प्रतिशत
(क) फौस्फेट ऑफ लाईम (चूने का खार)	१२ ,,
(ख) कार्बनेट ऑफ लाईम (,, ,,)	२ ,,
(ग) क्लोराईड ऑफ कैलसियम	१ ,,
(घ) मैगनेशिया	१ ,,
(ङ) अन्य क्षार—यथा, नमक, सोडा आदि	

यह विश्लेषण अवस्थाओं के अनुसार भिन्न-भिन्न हो सकता है। यथा बालक की अस्थियों में पार्थिव भाग कम रहता है और जान्तवीय पदार्थ अधिक होता है। इसलिये उनकी अस्थियाँ नरम रहती हैं। इसी कारण से बच्चों में अस्थियाँ टूटती कम हैं, परन्तु मुड़ जाती हैं। इसके विपरीत युवा पुरुष की अस्थियों में पार्थिव पदार्थ की अधिकता होने से और जान्तवीय पदार्थ की न्यूनता के कारण ये अस्थियाँ ज़ोर पड़ने पर टूट जाती हैं। इसी

कारण से बचपन के अस्थि-भंग प्रायः जुड़ जाते हैं; चूँकि उनमें स्निग्धता रहती है, और युवावस्था के भंग दुस्साध्य होते हैं।

आयु के अनुसार अस्थियों में दोनों पदार्थ निम्न रूप में होते हैं—

अस्थियों के अन्दर के पदार्थ	बचपन में	यौवन में	वृद्धावस्था में
जान्तवीय पदार्थ	४७ भाग	२० भाग	१२ भाग
पार्थिव पदार्थ	४८ भाग	७५ भाग	८३ भाग

संख्या—इस शरीर यंत्र का विभाग छः भागों में (यथा—शिर, धड़, दो हाथ और दो पाँव) किया गया है। अतः उसी के अनुसार यहाँ संख्या गिनी जायगी।

(क) शिर और चेहरे में मिलाकर कुल बाईस (२२) अस्थियाँ हैं, जिनमें आठ अस्थियाँ शिर में और चौदह चेहरे में हैं।

(ख) धड़ के अन्दर सब मिलाकर अट्ठावन (५८) अस्थियाँ हैं; जिनमें छाती के सामने—पसलियाँ चौबीस, छाती के सामने में एक अस्थि, दो हँसली की अस्थियाँ और एक छोटी सी ग्रीवा की अस्थि है। धड़ के पिछले भाग में कुल मिलाकर छब्बीस मन के और दो अंसफलक हैं। इसके अतिरिक्त श्रोणी को बनानेवाली दो और विशाल चपटी अस्थियाँ हैं, जिनके सहारे आदमी बैठता है। इस प्रकार से अट्ठावन अस्थियाँ इस मध्य भाग में हैं।

(ग) दोनों हाथों में कुल मिलाकर साठ (६०) अस्थियाँ हैं, जिनमें प्रत्येक हाथ में तीस-तीस हैं।

(घ) दोनों पाँव में कुल मिलाकर साठ (६०) अस्थियाँ हैं, जिनमें प्रत्येक पाँव में तीस-तीस अस्थियाँ हैं।

इनके अतिरिक्त कानों के अन्तःभाग में प्रत्येक ओर तीन-तीन छोटी अस्थियाँ हैं। उनको मिलाकर अर्वाचीन शास्त्र के पण्डित इस शरीर में दो सौ छः (२०६) अस्थि-संख्या मानते हैं।

इन स्थूल अस्थियों के अतिरिक्त शरीर में और भी कहीं-कहीं नरम, मृदु अस्थियाँ (तरुणास्थि) पाई जाती हैं। परन्तु वे सब में नहीं मिलतीं। अतः उनको यहाँ नहीं गिना।

इसके अतिरिक्त कुछ अन्य मृदु अस्थियाँ भी हैं। यथा—पसलियों को उर:फलक से जोड़ने वाली तरुण अस्थियाँ। इनको भी यहाँ पर नहीं गिना गया। ये अस्थियों के पूर्वरूप हैं। ये तरुणास्थियाँ कुछ तो बचपन में, कुछ यौवन में, और कुछ वृद्धावस्था में कड़ी बनकर अस्थि-रूप धारण कर लेती हैं, और कुछ सारी आयु में तरुणास्थि ही बनी रहती हैं।

प्राचीन आचार्यों ने इस शरीर में अस्थि-संख्या तीन सौ साठ (३६०) और तीन सौ (३००) मानी हैं।* उन्होंने इस गणना के अनुसार दाँत और नखों को भी अस्थियों में गिन लिया है। साथ ही कुछ चणकास्थियों को भी सम्मिलित कर लिया है। इसके अतिरिक्त जो एक अस्थि बचपन की भिन्न-भिन्न अस्थियों से मिलकर बनी है, उसको प्राचीनों ने विभक्तरूप में ही गिना है। यथा श्रोणी फलक की एक अस्थि तीन अस्थियों से मिलकर बनती है। अर्वाचीनों ने उसे एक माना है। इसी प्रकार पुच्छास्थि जो कि चार अस्थियों से जुड़कर एक बनी है, उसे एक माना जाता है।

उनके भेद-प्रदर्शक कोठे का चित्र नीचे दिया जाता है।

अंगों के नाम	चरक (वेदवादि)	सुश्रुत	अर्वाचीन
१. हाथ और पाँव की अँगुलियों में	साठ ६०	६०	५६
२. शलाकास्थियाँ	बीस २०	२०	२०
३. कूर्चास्थियाँ	छः ६	६	३०
४. प्रकोष्ठ की अस्थियाँ	चार ४	४	४
५. प्रकोष्ठास्थियों के उभार	चार ४	२	
६. कूर्पर कूट	दो २	२	
७. जंघा की अस्थियाँ	चार ४	४	४
८. जंघास्थियों के सिरे	चार ४		
गिट्टे बनाते हैं	दो २	२	

* त्रीणि सषष्ठानि अस्थि शतानि वेद वादिनो भाषन्ते। शल्यतंत्रे त्रीण्येव शतानि। तेषां सविंशमस्थिशतं—शाखासु सप्तदशोत्तरं शतं श्रोणि पार्श्व पृष्ठोदरोर:सु ग्रीवां प्रत्युर्ध्वं त्रिषष्ठिः। सुश्रुत।

त्रीणि षष्ठानि शतानि अस्थ्नां सह दन्त नखेन। चरक।

अंगों के नाम	चरक (वेदवादि)		सुश्रुत	अर्वाचीन
९. जान्वस्थि	दो	२	२	२
१०. प्रगण्डास्थि	दो	२	२	२
११. ऊर्वस्थि	दो	२	२	२
१२. अक्षक	दो	२	२	२
१३. स्कन्धास्थि	दो	२	२	२
१४. पसलियाँ	बहत्तर	७२	७२	२४
१५. उरोऽस्थि	चौदह	१४	१७	१
१६. पीठ के समस्त कशेरू	पैंतालिस	४५	३२	१९
१७. नितम्बास्थि	तीन	३	३	२
१८. ग्रीवा के कशेरु			९	७
१९. स्वर-यंत्र वायु-प्रणाली	पन्द्रह	१५	४	
२०. कपालास्थियाँ	एक	१	१७	२३
२१. दाँत	बारह	१२	३२	
२२. दन्तोदूखल	बत्तीस	३२		
२३. नख	बत्तीस	३२		
२४. अक्षिकोष	बीस	२०	२	
२५. कर्ण			२	६
		३६०	३००	२०६

सन्धियाँ

"नौर्यथा फलकास्तीर्णा बन्धनैर्बहुभिः वृता ।
भारक्षमा भवेदप्सु नृयुक्ता सुसमाहिता ॥"
"एवमेव शरीरेऽस्मिन्यावन्तः सन्धयः स्मृताः ।
स्नायुभिर्बहुभिर्बद्धास्तेन भारसहाः नराः ॥"

सुश्रुत

वे अस्थियाँ जहाँ एक दूसरी से मिलती हैं उसका नाम 'सन्धि' है । और ये सन्धियाँ कुछ तो 'स्थिर' अर्थात् 'गतिरहित' हैं; यथा, शिर की अस्थियों

की सन्धियाँ; और कुछ 'गतिशील' हैं। यथा हाथ और पाँव की सन्धियाँ।

अस्थियों की रचना वैषम्य के कारण सन्धियों में भी विषमता आजाती है। यथा— ऊर्वस्थि का नितम्बास्थि के साथ जुड़ना। इस सन्धि में नितम्बास्थि के अन्दर एक ऊखल जैसा गड्ढा है, उसमें ऊर्वस्थि का मूसल जैसा भाग ठीक रूप से बैठ जाता है। इसी प्रकार बाहु की सन्धि में। और कुछ सन्धियाँ एक दूसरे में फँसकर बनी हैं यथा—शिर की अस्थियों की सन्धियाँ।

सन्धियाँ आपस में रगड़ से घिस न जायँ, इसलिये उनमें एक गद्दी रखी हुई है। और उनको लगातार चिकना रखने के लिये एक प्रकार का द्रव इन सन्धियों में रहता है, जो सदा इनको चिकना रखता है। जिस प्रकार तेल या घी पहिये को चिकना रखता है, जिससे वह भली प्रकार घूम सके।

सन्धियों को दृढ़ करने के लिये उनको दृढ़ स्नायुवों से बाँधा गया है। ये स्नायु भिन्न-भिन्न, आकार के हैं। कोई लम्बे, कोई शाखावाले और कोई गोल होते हैं। इन स्नायुवों की संख्या सुश्रुत के अनुसार ९०० हैं। और अस्थियों की सन्धियाँ २१० हैं। और सन्धियाँ यहाँ पर नहीं गिनी जायँगी।

मांस-पेशियाँ

"कर्कशंकीकसं येन मांसली भूय शोभते।
बलमूलं क्रियामूलं पेशीजालं तदीरितम॥"

प्रत्यक्ष शारीर

सम्पूर्ण शरीर का आधा भाग, शरीर को सुन्दर, सुघड़, सुदृढ़ बनाने वाली ये ही 'मांस-पेशियां' हैं। जिस पुरुष की ये पेशियाँ जितनी मजबूत और सुदृढ़ बनी होती हैं; वह उतना ही बलवान माना जाता है। शरीर का बल इनमें रहता है।

जिस प्रकार यह अस्थिपञ्जर नाना प्रकार की छोटी बड़ी अस्थियों के मिलने से बना है, परन्तु देखने में एक ही बनावट का प्रतीत होता है, उसी प्रकार यह मांसमय शरीर भी भिन्न-भिन्न प्रकार की छोटी, लम्बी, गोल, नाना प्रकार की पेशियों से बना है, परन्तु देखने में एक ही मांस का बना टुकड़ा दीखता है। मांस के छोटे-छोटे टुकड़े अस्थियों के गढ़ों में भरकर

उसको समान चिकना और सुन्दर बना देते हैं। इन टुकड़ों की (मांसपेशियों की) संख्या प्राचीन आचार्यों ने पाँच सौ मानी है।

ये पाँच सौ पेशियाँ कार्य-भेद के कारण दो भागों में विभक्त की हुई हैं। एक तो वे पेशियाँ जो हमारी इच्छा के अधीन हैं, अर्थात् उनको जिधर घुमाना और मोड़ना चाहें, हम उनको चला सकते हैं। यथा हाथ, पाँव और मुख आदि की पेशियाँ। दूसरी प्रकार की पेशियाँ वे हैं, जिन पर हमारा अधिकार नहीं है; अर्थात् वे स्वयं कार्य करती हैं—चलती हैं। यथा--आमाशय आंत्र आदि की। इन पर हमारा किसी प्रकार का अधिकार नहीं है। इनमें प्रथम प्रकार की पेशियों को "ऐच्छिक" और दूसरी प्रकार की पेशियों को "अनैच्छिक" कहते हैं। ये दोनों प्रकार की पेशियाँ अपना पोषण भुक्त आहार में से प्राप्त करती हैं। इन पेशियों में से ऐच्छिक मांसपेशियों के तन्तु धारीदार और लम्बे होते हैं। और ये अनैच्छिक पेशियों की अपेक्षा अधिक लाल, मजबूत और भार उठाने में योग्य होते हैं। दूसरी प्रकार के तन्तु चूंकि शरीर के अन्तरावयवों में प्रायः रहते हैं, अतः उनको इतनी सामर्थ्य की आवश्यकता नहीं होती।

मांसपेशियों का स्वाभाविक गुण संकोच और विकास है। इसके कारण शरीर के भिन्न-भिन्न अवयवों को नाना प्रकार की गतियाँ, यथा–हाथ को ऊपर उठाना, नीचे करना, अन्दर को मोड़ना, बाहर को मोड़ना, फैलाना और सिकोड़ना, मिलती हैं। जिस समय किसी कारण से मांसपेशी में से संकोच या विकास गुण जाता रहता है, उस समय वह पेशी निष्क्रिय होजाती है। अथवा जब एक पार्श्व की पेशी निष्क्रिय हो जाय, तो भी शरीर के रूप में परिवर्त्तन आ जाता है। यथा—'आर्दित' रोग में, जब कि मुँह का एक पार्श्व निष्क्रिय होजाता है, तो मुँह दूसरी ओर मुड़ जाता है। इसी प्रकार कुछ पेशियाँ एक दूसरी पेशी के विरुद्ध भी कार्य करती हैं। यथा—एक पेशी हाथ को ऊँचा करती है, या आँख को खोलती है, तो दूसरी हाथ को नीचा करती है, या आँख को बन्द करती है।

रुधिराभिसरण

"इदं शरीरमाराम इव जलहारिणीभिः केदार इव च कुल्याभिरुपस्निह्यतेऽनुगृह्यते च, आकुञ्चन प्रसारणादिभिः विशेषैः। द्रुमपत्रसेवनी

नाभिश्च तासां प्रतानाः; तासां नाभिर्मूलं, ततश्च प्रसरन्ति ऊर्ध्वं, अधः, तिर्यक् च ॥ सुश्रुत

इस अस्थि-संघात और मांसपेशियों से बने हुये ढाँचे को पोषण देने के लिये सम्पूर्ण शरीर में जाल की भाँति रक्तवाहिनियाँ फैली हुई हैं। ये रक्तवाहिनियाँ हृदय से प्रारम्भ होती हैं और वहीं पर आकर समाप्त होजाती हैं। इस प्रकार से एक चक्कर बना हुआ है। फेफड़ों में शोधित हुये रक्त को हृदय से लेकर एक बड़ी वाहिनी निकलती है। यह आगे चलती हुई छोटी बड़ी असंख्य शाखाओं में बँट जाती है और फिर इन शाखा प्रशाखाओं के आगे शाखायें होजाती हैं। इन शाखाओं के द्वारा शरीर के छोटे से लेकर बड़े अवयव तक सब का पोषण होता है। प्रत्येक अवयव अपना भोजन इनके अन्दर से पाते हैं, और जो मैला या टूटा हुआ पदार्थ होता है, वह इसमें मिला देते हैं। इस प्रकार से अन्त में यह रक्त सर्वथा अशुद्ध होजाता है। इसका चमकता लाल रंग एकदम से नष्ट होजाता है, उसके स्थान में काला रंग बन जाता है। अब यह रक्त छोटी-छोटी शाखाओं द्वारा एकत्रित होता हुआ बड़ी शिरा को बनाता है, और वे शिरायें मिलकर और अधिक बड़ी शिरा को बनाती हैं। इस प्रकार से एकत्रित होकर यह सारा रक्त शुद्ध होने के लिये फिर हृदय में लौट आता है और वहाँ से फिर फेफड़ों में जाता है। वहाँ शुद्ध प्राण-वायु के संसर्ग से फिर गहरा लाल रंग धारण कर लेता है। इस प्रकार से यह चक्कर रात दिन चलता रहता है। इस चक्कर का रुकना ही मृत्यु है।

स्नायु-बन्धन

ये 'स्नायु' प्रान्तों में चिकने और मजबूत होते हैं। इनके द्वारा अस्थियाँ भली प्रकार बँधी रहती हैं, जिससे कूदने-फाँदने में या गिरने में सुगमता से अस्थियाँ सन्धि-च्युत नहीं होतीं। कई बार अस्थि के प्रान्त टूटने पर भी स्नायुबन्धन बना रहता है।

संयोजक तन्तु

शरीर में भिन्न-भिन्न पदार्थों को और एक समान पदार्थों को परस्पर जोड़ने के लिये ये संयोजक तन्तु सम्पूर्ण शरीर में फैले हुये हैं। अस्थियों के साथ मांसतन्तुओं को, एक दूसरे के साथ जोड़ने में शिराधमनी आदि को

स्थिर रखने का कार्य इन तन्तुओं का है। ये तन्तु देखने में श्वेत पतले धागे की भाँति होते हैं।

वसा (चरबी)

त्वचा के नीचे एक पतला, चिकना पदार्थ बिछा हुआ है। इसका नाम वसा है। यह शरीर की उष्णिमा स्थिर रखती है। इसके होने के कारण शीत और गरमी सुगमता से शरीर में घुस नहीं सकती। और न शरीर के अन्दर की गरमी बाहर आ सकती है। यही कारण है कि सब ऋतुओं में हमारा ताप-परिमाण एक जैसा रहता है। पलकों में और अण्डकोष की त्वचा में इसका अभाव होता है। इसके अतिरिक्त यह वसा चोट आदि से शरीर की रक्षा करती है। रक्तवाहिनियों को चोट से बचाने के लिये यह एक प्राकृतिक गद्दी है।

त्वचा

अस्थिपिञ्जर के सबसे ऊपर के परत को त्वचा कहते हैं। इसके द्वारा हमको नानाप्रकार के शीत, उष्ण, मृदु, कठोर, रूक्ष, स्निग्ध स्पर्श होते हैं। इसमें छोटे-छोटे छिद्र हैं, जिनमें बाल लगे हुये हैं। इन बालों के द्वारा शरीर का मैल पसीने के रूप में बाहर निकलता रहता है। इसके अतिरिक्त इन छिद्रों की सहायता से हम तेल आदि पदार्थ शरीर के अन्दर पहुँचा सकते हैं। शरीर की सफ़ाई करने में यह मुख्य भाग लेती है।

प्रकरण दूसरा

शरीर के मुख्य भाग

यह शरीर यद्यपि मुख्यतः छः अंगों में बँटा हुआ है, तथापि इसके और भी कई छोटे-छोटे भाग किये हुये हैं। यथा—धड़ और शिर को जोड़ने-वाले भाग का नाम ग्रीवा, धड़ और टाँगों को जोड़नेवाले भाग का नाम कटि या कमर है। इनमें मुख्य प्राणावयव—जीवन के आधार—परब्रह्म पर-मात्मा का निवास-स्थान अपना धड़ और शिर है। यदि इन दोनों की सन्धि तोड़ दी जाय तो इसका बोलना एक क्षण में बन्द हो जाता है। इसी से भगवान ने इन दोनों को बहुत दृढ़ बने अस्थियों के सन्दूकचे में बन्द किया है।

शिर या मस्तिष्क—यह सब अंगों में श्रेष्ठ है, इसी से परमात्मा ने इसे सबसे ऊपर रक्खा है। यह ऊपर रहकर सारे शरीर को नियम में रखता है। इसके अन्दर पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ—कान, आँख, नाक, रसना और त्वचा रहती हैं। इसीसे यह ज्ञान का साधन है। वेदों में "हिरण्मय कोष" अर्थात् सोने का खजाना कहा है। मनुष्य इसी मस्तिष्क की सहायता से लाखों रुपये बटोर लेता है। इसी के अन्दर मुख्यतः प्राण रहते हैं।* इसके अन्दर से निकलकर सब ज्ञान-तन्तु शरीर में फैलते हैं, और चेष्टावह तन्तुओं का भी उत्पत्ति-स्थान यही है। इन दोनों तन्तुओं की सहायता से यह सारे शरीर पर अधिकार रखता है।

इतने आवश्यक क़ीमती खज़ाने की रक्षा के लिये भगवान् ने भी कितने साधन दिये हैं। सबसे प्रथम लम्बे-लम्बे काले बाल, फिर मोटी त्वचा, कपालास्थियाँ और अन्दर पर्दे बनाये हैं। और फिर उनके नीचे मस्तिष्क को रक्खा है। वह भी एक तरल पदार्थ में जिससे कि चोट या आघात वहाँ तक न पहुँचे।

इसके अतिरिक्त शरीर के जीवन का साधन मुँह भी इसी शिरो-भाग में बनाया है जहाँ से अन्न मार्ग प्रारम्भ होता है। इस मुँह के द्वारा ही हम नानाप्रकार के आहार, आदि शरीर में पहुँचाते हैं, जिनसे रस-रक्त आदि बनता है, जो हमारे शरीर की पुष्टि में मुख्य कारण है।

तीसरी मुख्य वस्तु श्वासमार्ग का प्रारम्भ भी इसी शिरोभाग से होता है। नासिका के द्वारा हम प्राणवायु को लेकर फेफड़ों में पहुँचाते हैं।

धड़—ग्रीवा के अधोभाग से लेकर कटि तक के भाग को 'धड़' कहते हैं। यह दो भागों में एक पर्दे के द्वारा बँटा हुआ है। अस्थियों से बने कोष्ठ भाग को 'उर' या 'छाती' कहते हैं; और मांस से बने भाग को 'पेट' या 'उदर' कहते हैं। छाती में रहनेवाले अवयव—दो फेफड़े (दक्षिण और वाम पार्श्व में,) एक हृदय, श्वासनलिका, अन्नमार्ग और दो स्तन (स्त्रियों में) हैं।

*(१) प्राणाः 'प्राण' भृतां यत्र श्रिताः सर्वेन्द्रियाणि च।
यदुत्तमांगमङ्गानां शिरस्तदभिधीयते॥

चरक

(२) तद्वा अथर्वणः शिरो देवकोशः समुब्जितः।
तत्प्राणोऽभिरक्षति शिरोऽन्नमथो मनः॥

अथर्ववेद

छाती के नीचे लगे परदे का छेदन करके अन्नमार्ग उदर में आजाता है। और वहाँ आमाशय के मुख से मिल जाता है। इस भाग में मुख्यतः पाचन अवयव रहते हैं। और उर के भाग में रुधिराभिसरण के अवयव रहते हैं। पाचन अवयवों में आमाशय, बृहदंत्र, सूक्ष्मांत्र तथा दक्षिण पार्श्व में यकृत, क्लोम; वाम पार्श्व में प्लीहा और अग्न्याशय रहते हैं।

इसी उदर भाग में मूत्र सम्बन्धी अवयव भी रहते हैं। यथा—कटिभाग में पीठ की ओर दोनों पार्श्वों में एक-एक वृक्क हैं, जो मूत्र बनाते हैं। इन वृक्कों से मिला मूत्राशय रहता है। स्त्रियों में गर्भाशय और डिम्बकोष भी यहीं रहते हैं।

इस धड़ में पीठ की ओर सुषुम्ना नाड़ी मणकों में से होती हुई कटि तक पहुँचती है। इसका प्रारम्भ मस्तिष्क से होता है।

इसके अतिरिक्त धड़ में ऊपर और नीचे दोनों पार्श्वों में दो-दो शाखायें जुड़ी हुई हैं। जिनमें निचली शाखाओं के द्वारा यह धड़ और मस्तिष्क एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचता है और ऊपर की शाखाओं के द्वारा किसी चीज़ को उठाता, पकड़ता या मुँह में रखता है। इस प्रकार ये दोनों शाखायें धड़ और मस्तिष्क के अवयवों की सहायक बनी हुई हैं।

मस्तिष्क या भेजा

खोपड़ी के नीचे से और ऊपर तक तीन पट आये हुये हैं। इनमें प्रथम पट बहुत मज़बूत है। दूसरा पट अर्ध प्रवाही द्रव से भरा हुआ है। तीसरा पट मस्तिष्क के साथ चिपटा हुआ है। यह अत्यन्त पतला, त्वचामय और पारदर्शक तथा सूक्ष्म केशवाहिनियों के झुण्डों द्वारा चारोंओर से भरा है। यह पट मस्तिष्क की रक्षा करता है।

इन पड़दों के हटाने से मस्तिष्क नंगा हो जाता है। उसका रंग धूसर होता है और उसके ऊपर खाइयाँ (नालियाँ) दिखाई देती हैं।

सम्पूर्ण मस्तिष्क चार भागों में विभक्त है। यथा 'बृहद् मस्तिष्क', 'मध्य मस्तिष्क', 'लघु मस्तिष्क' और 'सुषुम्ना'। इनमें 'बृहद् मस्तिष्क' दो गोलार्द्धों में विभक्त है। एक का नाम 'दक्षिण गोलार्द्ध' और दूसरे का नाम 'वाम गोलार्द्ध'।

मस्तिष्क की लम्बाई सामने से पीछे तक ६ से ६॥ इञ्च; और चौड़ाई एक कान से दूसरे कान तक ५॥ इञ्च होती है। १५ से ४९ वर्ष की आयु

में इसका भार पुरुषों में २२ छटाँक और स्त्रियों में २० छटाँक होता है। स्त्रियों का मस्तिष्क पुरुषों की अपेक्षा छोटा होता है। युवा मनुष्य में मस्तिष्क का भार सम्पूर्ण शरीर के भार का $\frac{1}{40}$वाँ भाग होता है। नवजात बालक में मस्तिष्क का भार ७ छटाँक होता है। पहले वर्ष के अन्त में दुगुना हो जाता है; छठे वर्ष में तिगुना हो जाता है; और अठारहवें में प्रायः युवा के लगभग आ जाता है।

वृहत् मस्तिष्क—यह भाग शिर के अगले भाग में रक्खा हुआ है। ऊपर से देखने पर भूरा और काटने पर श्वेत दिखाई देता है। बुद्धिमानों में धूसर भाग की मोटाई अधिक रहती है। यह धूसर भाग श्वेत भाग को इस प्रकार से घेर कर रहता है, जैसे फल के गूदे को उसका छिलका। और श्वेत भाग 'वात सूत्रों' से बना होता है।

यह वृहत् मस्तिष्क दक्षिण और वाम दो खण्डों में विभक्त होने पर भी बीच में एक पड़दे के द्वारा जुड़ा होता है। इन दोनों खण्डों के और कई छोटे छोटे खण्ड और पृष्ठ माने गये हैं। इन खण्डों का विभाग मस्तिष्क में गहरी पड़ी हुई घाइयों के द्वारा होता है।

लघु मस्तिष्क—इसका आकार एक पिचके हुये गोले के समान होता है। इसकी चौड़ाई चार इञ्च और भार दो से ढाई छटाँक होता है। इसका स्थान शिर की पिछली अस्थि के नीचे रहता है। इसको वृहत् मस्तिष्क अपनी गोद में लेकर रहता है। इस पर की घाइयाँ अधिक गहरी और पास-पास होती हैं। यह पत्रों से बना होता है। इसको काटने से अन्दर में वृक्ष जैसी शाखा-प्रशाखायें फैली दिखाई देती हैं।

मध्य मस्तिष्क या मस्तिष्क की तलहटी—इस भाग में शरीर के लिए आवश्यक कई ग्रन्थियाँ रहती हैं। मस्तिष्क में इस भाग का स्थान लघु मस्तिष्क के सामने और वृहत् मस्तिष्क के नीचे है। दृष्टि नाड़ी, पोषण ग्रन्थि और जवनिकायें आदि रचनायें इसी स्थान में रहती हैं।

सुषुम्ना—इसका प्रारम्भ कपाल के महाछिद्र से आरम्भ होकर द्वितीय कटि कशेरू तक होता है। इसकी लम्बाई साधारणतः १८ इञ्च होती है। इसका आकार बेलनाकार और रस्सी के समान होता है। नीचे यह पतली होती जाती है, और अन्त में एक पतले श्वेत धागे के रूप में गुदा तक पहुँचती है। इसका रंग बाहर से श्वेत और अन्दर धूसर होता है। शरीर के

आवश्यकीय तन्तु और केन्द्र कुछ इसमें भी रहते हैं। यथा—श्वास-प्रश्वास का केन्द्र सुषुम्ना में रहने से यदि मनुष्य के मस्तिष्क का अगला भाग कट जाय तो श्वास-प्रश्वास चलता रहता है।

आँख (Eye)—देखने का साधन दो आँखें हैं, जो नाक के दोनों ओर भौंहों के नीचे गोलकों में रक्खी हुई हैं। भ्रमर, पलक, पलकों के बाल इसके बाह्य अवयव हैं। आँख का डोला नासिका के पार्श्व में रहता है।

यह डोला तीन परदों से बना है। बाहर का परदा श्वेत रंग का है। यह अपार दर्शक है, इसलिये प्रकाश इसके अन्दर नहीं जा सकता। यह परदा कठोर है, इसलिये आँख की आकृति स्थिर बनी रहती है; परन्तु इसका सामनेवाला मध्यभाग काँच जैसा स्वच्छ है, इसलिये इसमें से प्रकाश जा सकता है। आँख के सफेद पर्त के नीचे एक काला पट है, जो पतली नसों और तन्तु-जालों से मिलकर बनता है। मस्तिष्क से चेतन बाह्य नाड़ियाँ भी यहाँ आकर पहुँचती हैं। इन जालों के रंग के कारण यह पुतली काली, नीली या भूरी दिखाई देती है। आँख के अन्दर जो गोल चक्कर दिखता है, वह कीकी का परदा है। इसके मध्य में एक छेद (नाका) है, जिसको साधारण भाषा में कीकी या पुतली कहकर पहचानते हैं। कीकी के छेद के ऊपर केवल पहले श्वेत पट का नाजुक स्वच्छ अगला भाग आया रहता है। कीकी का परदा संकुचित और विकसित हो सकता है। जानवरों (शेर-बिल्ली) में यह परिवर्तन विशेष रूप से होता है। अवस्था पड़ने पर यह संकोच $\frac{१}{२०}$ से $\frac{१}{३}$ इञ्च तक हो सकता है। इसके अतिरिक्त कई रोगों में भी यह संकोच-विकास हो जाता है। आँख का तीसरा परदा एकदम अन्दर है। यह परदा आँख के दृष्टि-तन्तुओं के डोले में फैलने से बना है। इस पर्त को 'तन्तुवाला पर्त' कहते हैं। आँख के बाह्य पट के साथ छः मांस पेशियाँ लगी हुई हैं, जो नेत्र-संचालन में, उसको बन्द करने में या खोलने में सहायता करती हैं।

आँख के अन्दर तीन कोठरियाँ जैसी जगहें बनी हैं, जिनमें पानी और रस-जैसी आवश्यक चीजें रहती हैं। अगली कोठरी आँख के स्वच्छ—सफेद पट और रस के बीच में है। यह कोठरी सबसे छोटी है। इसमें पानी रहता है, जिसका भार पाँच चावल जितना होता है। आँख के बीच की कोठरी कठोर पर्तों की बनी हुई है। इसमें आँख का रस लटका हुआ है।

यह रत्न आगे और पीछे से गोल एवं हीरे-जैसा सफेद-पारदर्शक है। आँख की तीसरी कोठरी सबसे अधिक बड़ी है। इसमें बिल्लौर पत्थर की भाँति निर्मल पदार्थ भरा होता है। इन द्रवों की क़ीमत बहुत अधिक है। ये द्रव तेज प्रकाश की चमक को कम कर देते हैं, जिस कारण से कोमल दृष्टि तन्तुओं से बने अन्तिम पट को किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचती। आँख की एक नाली नाक में उतरी हुई है।

कान (Ear)—सुनने के साधन का नाम कान है। इसका स्थान चेहरे में आँख से चार अंगुल की दूरी पर दोनों पार्श्वों में रक्खा है। कान का बाह्य भाग जो स्पष्ट दिखाई देता है, नरम-तरुणास्थियों तथा मांस से बना है। प्रत्येक कान में एक पतली-लम्बी सुरंग है। इसकी लम्बाई लगभग १½ इञ्च होती है। यह सुरङ्ग कोमल मांस से बनी है। इसका भीतरी भाग अस्थियों के साथ मिला है। कान के अन्दर जो मल निकलता है वह इसी त्वचा से बना होता है।

कान का मध्य भाग एक छोटी सुरङ्ग से बना है। इसके तथा बाह्य कर्ण सुरङ्ग के बीच में एक परदा है जो बहुत ही कोमल और देखने में लाल वर्ण का है। इसको 'कर्ण-पटह' कहते हैं। इस भाग में से एक बारीक नली निकलकर अन्दर के भाग में गई है। इस नली के द्वारा कान के मध्यभाग का सम्बन्ध मुख के साथ होता है।

कान का सबसे अन्दर का भाग सबसे अधिक महत्व का है। चूँकि इसमें सुनने के तन्तु रहते हैं, यह भाग विशेष रूप से चक्करदार है। साधारण वर्णन से समझ में नहीं आ सकता। मस्तिष्क से निकले हुये श्रवण-तन्तु इस भाग में प्रविष्ट होते हैं, उनके लिये इसमें छिद्र होते हैं।

नाक (Nose)—सूँघने की इन्द्रिय को नाक कहते हैं। इसको परमात्मा ने ठीक चेहरे के मध्य में रक्खा है। नाक का अगला भाग कोमल अस्थियों से बना है। उसके नीचे दो नथुने हैं। कान और आँख की भाँति इसके भी दो भाग हैं। एक बाहर दिखनेवाला और दूसरा अंदर का भाग। जिस प्रकार बाहर दो छिद्र दिखाई देते हैं, उसी प्रकार अन्दर भी दो छिद्र हैं। इन अन्तःछिद्रों का सम्बन्ध मुँह के पिछले भाग के साथ है। दोनों बाह्य छिद्रों के बीच में एक परदा है, जिससे ये परदे अलग-अलग रहते हैं। मुँह के पिछले भाग में ये दोनों छिद्र एक बन जाते हैं। नथुनों में बाल

उगते हैं, जो नाक के अंदर धूल आदि को जाने से रोकते हैं और साथ ही शीत ऋतु में ठण्डी वायु को सहसा अन्दर जाने से रोकते हैं। इन नथुनों में मस्तिष्क से आये हुये घ्राण-तन्तु फैले हुये हैं, जिनके द्वारा गंध-ज्ञान होता है। श्वास-प्रश्वास और गन्ध-ज्ञान इसी नासिका-द्वारा हमको मिलता है।

जिह्वा (Tounge)—यह जीभ या रसना, रस-ज्ञान कराने का एक-मात्र साधन है। रस-संवाहक-तन्तु इस मांस से बनी जिह्वा में भली प्रकार से बिछे हुये हैं। इसके अतिरिक्त भोजन को चबाकर पचने के योग्य बनाने में भी जिह्वा विशेष रूप से सहायता करती है। यह भोजन को मुँह में इधर-उधर घुमाती और पलटती है। जिह्वा ही के द्वारा हम खट्टा, मीठा, तीखा, कसैला आदि का ज्ञान प्राप्त करते हैं। इन दोनों कार्यों के अतिरिक्त शब्दोच्चारण में जिह्वा विशेष सहायता देती है। इसके बिना कोई भी अक्षर स्पष्ट रूप में (विशेषतः ऋ, ट, ठ, ड, ढ़, आदि) नहीं बोल सकते।

✓ उरोगुहा—इस गुहा में प्राणावयव रहते हैं। दोनों फुप्फुस, हृदय, मुख्य-मुख्य रक्तवाहिनियाँ, अन्तर्नलिका और श्वास-पथ। इसीसे परब्रह्म परमात्मा ने इसको सामने भिन्न-भिन्न अस्थियों से घेरकर रक्खा है। यथा पार्श्वों में दोनों ओर सामने और पीछे बारह-बारह पसलियाँ रक्खी हैं, और मध्य में सम्मुख एवं उरोस्थि तथा पीछे छोटे-छोटे मणकों से मिलकर बना हुआ पृष्ठवंश बनाया है। इसके साथ ही पीठ की ओर दो उरःफलक भी बनाये हैं। ये पसलियाँ पीछे पृष्ठ-वंश के मणकों के साथ बँधी हैं और सामने की प्रथम सात पसलियाँ उरोऽस्थि के साथ बँधी हैं। और तीन अपने से ऊपर वाली पर्शुका ही में जुड़ जाती हैं। बाकी दो पसलियाँ सामने में छुटी रहती हैं। सम्मुख की उरोऽस्थि कई टुकड़ों के मिलने से बनी होती हैं। ये सब पसलियँा नरम और लचकदार हैं। अतः वायु के कारण फेफड़ों के फैलने से ये भी फैल जाती हैं और वायु के निकलने से, फेफड़ों के संकुचित होने पर ये फिर अपनी स्थिति में आजाती हैं।

फेफड़े (Lungs)—दो हैं, जो कि दक्षिण और वाम पार्श्व में रहते हैं। इनमें दक्षिण फेफड़ा बायें फेफड़े से अधिक बड़ा होता है। इनका आकार ऊपर से तंग और नीचे से चौड़ा होता है। रंग लाल होता है। वज़न प्रत्येक फेफड़े का लगभग १॥ पौण्ड होता है।

फेफड़े स्पञ्ज की भाँति संकुचित और विकसित हो सकते हैं। फेफड़ों

के अन्दर छोटे-छोटे अनन्त छिद्र होते हैं, जो कि हवा से भरे होते हैं। वैज्ञानिकों का कहना है कि इन सब छिद्रों की संख्या तीस करोड़ है और ये छिद्र हवा से भरने पर १४०० फीट वायु को रोकते हैं। ये छिद्र चारोंओर से सूक्ष्म रक्तवाहिनियां द्वारा घिरे हुये हैं। प्राण-वायु द्वारा जब ये छिद्र भरकर फूलते हैं तो इनकी प्राण-वायु सूक्ष्म दीवाल पार कर अशुद्ध रक्त के साथ मिलकर उसको उज्ज्वल, लाल बना देती है और उसका कालापन उसी दीवाल से छिद्र-गुहा में आकर श्वास-पथ से बाहर होजाता है।

और जब ये छिद्र किसी कारण से बन्द हो जायँ, जिससे कि वायु द्वारा फूल न सकें; तो वह अवस्था रोग की होती है। यथा—दोनों दीवालें सूजन के कारण आपस में जुड़ जायँ अथवा कफ के कारण भर जायँ—जैसे कि कई रोगों में होजाता है।

एक वृहत् श्वास-मार्ग गले से उतरकर दो भागों में (दक्षिण और वाम) विभक्त होते हैं और फिर प्रत्येक भाग दो या तीन भागों में बँट गये हैं और ये भाग और छोटे भागों में। इस प्रकार बँटते-बँटते ये भाग फुफ्फुस के प्रत्येक छिद्र तक पहुँच जाते हैं। अथवा वही श्वास-पथ अन्त में इन छिद्रों में बदल गया है।

हृदय (Heart)—अपने उर:स्थल में बायें चूचक के दो अंगुल नीचे धड़कनेवाले अवयव को "हृदय" शब्द से जानते हैं। इसका स्थान छाती के मध्य भाग में और वाम फेफड़े के अन्दर होता है। जहाँ कि साधारणत: प्रेम-प्रदर्शन करने के लिये हाथ रक्खा जाता है, वही स्थान हृदय का है। प्रेम का और हृदय का क्या सम्बन्ध है इस बात का कवियों को अतिरिक्त अभी वैज्ञानिकों को पता नहीं लगा।* उनके लिये तो यह केवल मांस से बना एक लोचा है, जो कि शरीर से अशुद्ध रक्त को एकत्रित करता है और शुद्ध कराने के लिये उस रक्त को दोनों फेफड़ों में भेज देता है। वहाँ से प्राण-वायु के संसर्ग से शुद्ध होने पर पुन: यहीं वापस आजाता है और यहाँ से फिर शरीर की पुष्टि के लिये सारे शरीर में धकेला जाता है। इस प्रकार से यह एक पंपिंग (Pumping) स्टेशन का कार्य करता है।

* "हृदयंत्वेव जानाति प्रीति योगं परस्परम्।
तथैव राम: सीताया प्राणेभ्योऽपि प्रियो ऽभवत्॥" भवभूति

परस्पर की प्रीति को हृदय जानता है। इसीसे राम-सीता को प्राणों से भी अधिक प्रिय हुये।

इस "हृदय" के मुख्य दो भाग हैं। एक दाहिना और दूसरा वाम। दाहिना भाग शरीर के अशुद्ध रक्त से सम्बन्ध रखता है, और वाम भाग शुद्ध रक्त से। ये दोनों भाग फिर दो-दो भागों में बँटे हुये हैं। उनमें एक ग्राहक-क्षेपक अर्थात् लेनेवाला भाग है, और दूसरा क्षेपक-धकेलनेवाला भाग है। इस प्रकार से हृदय के चार कोठे होजाते हैं। एक कोठे से दूसरे कोठे में रक्त जा तो सकता है, परन्तु इन कोठों में लगी कपाटिकाओं के कारण वापस नहीं हो सकता।

हृदय सम्पूर्ण शरीर के रक्त को दो महाशिराओं द्वारा एकत्रित करता है और एक महाधमनी के द्वारा सम्पूर्ण शरीर में भेजता है।

उरोदर पटल (Diaphragm)—उरोगुहा और उदर-गुहा को एक दूसरे से अलग करने के लिये यह घूँघट जैसा परदा रहता है। यह मांस से बना है। इस परदे का सम्बन्ध ऊपर दोनों फेफड़ों से और हृदय से रहता है। नीचे यकृत, आमाशय और प्लीहा से मिला रहता है। यह परदा श्वास-प्रश्वास कार्य में विशेष सहायता देता है।

इस परदे के बीच मे तीन मुख्य और बड़े छिद्र हैं। एक छिद्र हृदय से निकलती हुई महाधमनी का है, और दूसरा अन्नमार्ग का, जो आमाशय मुख से मिला है। तीसरा छिद्र अधूग महाशिरा का है, जो कि निचले शरीर का अशुद्ध रक्त लेकर हृदय को ओर जाती है।

उदरगुहा (Abdomen)

शरीर को सबसे बड़ी गुहा उदरगुहा है। इस गुहा के पिछले भाग में पृष्ठवंश की सबसे बड़ी, मोटी कसेरुकायें आती हैं। इसका सम्मुख का और पार्श्ववर्ती भाग मांसमय पेशियों से बना हुआ है। इसी के अन्दर सब छोटे-बड़े अवयव रहते हैं। इन अवयवों को एक झिल्ली लपेटे रहती है, जिसका एक पार्श्व नीचे अवयवों के साथ है और दूसरा ऊपर की ओर आया हुआ है।

इस गुहा में अवयवों की स्थिति समझने के लिये दो सीधी लम्बी रेखायें चूचक से लेकर नीचे तक खींचनी चाहिये और फिर एक आड़ी रेखा दसवीं पर्शुका से आरम्भ करके दूसरी ओर की दसवीं पर्शुका तक खींचनी चाहिये और दूसरी आड़ी रेखा नाभि के नीचे से दोनों जघनकूटों को (जहाँ

धोती बाँधी जाती है) मिलाती हुई खींची जानी चाहिये। इस प्रकार से ९ भाग बन जाते हैं। इनमें अवयव निम्न प्रकार से रहते हैं।

यहाँ पर यह स्मरण कर लेना चाहिये कि दक्षिण और वाम शब्द का प्रयोग नाभि से बीच में सीधी लम्बी रेखा खींचने पर उसके लिहाज से किया गया है।

दक्षिण-पार्श्व के अवयव	मध्यप्रदेश के अवयव	वामपार्श्व के अवयव
याकृतिक प्रदेश १—यकृत, क्लोम, सूक्ष्मांत्र का प्रथम भाग; बृहदंत्र का ऊपर जाने वाला भाग और यकृत के पीछे पीठ की ओर दक्षिण वृक्क।	आमाशयिक प्रदेश १—आमाशय के मध्य का भाग, यकृत का वाम खण्ड।	प्लैहिक-प्रदेश १—आमाशय का वाम भाग, प्लीहा, बृहदांत्र का नीचे जानेवाला भाग, वाम वृक्क।
दक्षिण कटि-प्रदेश २—बृहदंत्र का ऊर्ध्व-मुखी भाग, दक्षिण वृक्क; सूक्ष्मांत्र का थोड़ा-सा भाग।	नाभि प्रदेश २—बृहदांत्र का आड़ा भाग; सूक्ष्मांत्र की कुण्डलियाँ।	वाम कटि-प्रदेश २—बृहदांत्र का अधोमुखी भाग, वाम वृक्क, सूक्ष्मांत्र की कुंडली, अग्नाशय।
दक्षिण श्रोणि-प्रदेश ३—सूक्ष्मांत्र का अंतिम सिरा और बृहदांत्र के प्रारम्भ का भाग, पेशाब लानेवाली दक्षिण गविनी।	(वस्ति) पेडू-प्रदेश ३—सूक्ष्मांत्र की कुण्डली, मूत्राशय, गर्भ से बढ़ा हुआ गर्भाशय।	वाम श्रोणि-प्रदेश ३—बृहदांत्र का निचला भाग और गुदा का उपरला भाग, वाम गविनी।

उपरोक्त कोष्ठक से यह सुगमता-पूर्वक समझा जा सकता है कि कौन-कौनसा अवयव किस-किस स्थान पर है।

आमाशय—मुँह से आरम्भ होकर गुदा तक समाप्त होनेवाली नलिका का नाम "अन्न-प्रणाली" है। आवश्यकतानुसार यह कहीं पर तंग और कहीं पर चौड़ी होगई है। यथा—आमाशय-प्रदेश में फैलकर चौड़ी बन गई है। इस चौड़े भाग का नाम आमाशय या स्टमक (Stomach) है।

मुँह से खाया हुआ सब प्रकार का पतला, मोटा, अच्छा, बुरा भोजन यहीं पर पहुँचता है। इस आमाशय के दायें ओर यकृत, और बायें ओर प्लीहा है।

मुँह में दाँतों से चबाया हुआ भोजन, लाला-ग्रन्थियों की लार से मिलकर मधुर बना हुआ भोजन जब आमाशय में पहुँचता है तो कुछ समय के लिये यहाँ रुक जाता है। इस समय आमाशय अपने आमाशयिक-रस को उस भोजन में मिला देता है, जिससे कि वह पचने में सुपच बन जाता है। यह रस इसकी दीवालों से चूता है।

इसका आकार पानी से भरी मशक के समान होता है और इसकी दीवालें मांस-तन्तुओं से बनी हैं, जो कि भोजन की मात्रा के अनुसार फैल सकती हैं। इसकी ऊपर की भित्ति चिकनी है और अन्दर की सतह खरखुचरी और खुरदरी है। उसमें शहद की मक्खी के छत्ते की भाँति छिद्र से बने होते हैं। इनमें ग्रन्थियाँ रहती हैं जो कि आमाशयिक-रस को उत्पन्न करती हैं।

सब भोजन का पाचन आमाशय में नहीं होता। चिकने पदार्थ, घी और तैल आदि आगे आँतों में पचते हैं। यहाँ भोजन आमाशयिक-रस पचने में सुगम कर देता है। यहाँ से परिवर्तित भोजन आँतों में जाता है। साधारणत: प्रत्येक भोजन आमाशय में तीन घण्टे तक रुकता है और भोजन करने के ½ घण्टे पश्चात् आँतों में जाना प्रारम्भ होजाता है।

'अन्ननल महास्रोत' (Alimentary Canal)—इस नल का प्रारम्भ मुँह में दाँतों से आरम्भ होकर गुदा के अन्तिम भाग तक समाप्त होता है। इसकी लम्बाई ३० फ़ीट है। इस नल में अन्य समीपवर्त्ती ग्रन्थियाँ भी अपना-अपना रस भेजती रहती हैं। यही रस उस भोजन के पचने में अति आवश्यक भाग है। इस रस के कारण छ: रसोंवाला भोजन बदलता हुआ, नाना प्रकार के रूपों में से होता हुआ शरीर का पोषण करता है। यह नलिका गले में श्वास-मार्ग के पीछे रहती है और फिर उरोदर पटल को भेदन करके आमाशय की मुख से मिल जाती है। खाया हुआ भोजन श्वास-मार्ग में न आजाय, इसलिये श्वास-मार्ग पर एक कपाटि रहती है जो कि ग्रास के निगलने के समय श्वास-मार्ग को बन्द कर लेती है।

इस नलिका में लाला-ग्रन्थियाँ जो कि कान और जीभ के नीचे

रहती हैं, अपना रस मिलाकर भोजन के नशास्ता भाग को मधुर विपाक में बदल देती हैं।

आंत्र या पक्वाशय—आमाशय का निचला भाग आंत्र मुख से (चित्र १३ आकृति) मिला हुआ है। इन आंत्रों की कुल लम्बाई २५-२८ फ़ीट लम्बी है, परन्तु ये आँतें उदर-गुहा में इस प्रकार से कुण्डली मारकर पड़ी हैं कि देखने में इतनी लम्बी प्रतीत नहीं होतीं। आँतों के दो भाग हैं। एक सूक्ष्मांत्र और दूसरी बृहदांत्र।

सूक्ष्मांत्र—बृहदांत्र की अपेक्षा यह पतली और बहुत अधिक लम्बी हैं। यह आशामय के निचले भाग से प्रारम्भ होती हैं और फिर कुण्डली मारकर नाभि और वस्ति-प्रदेश में पड़ी हुई हैं। इसका दूसरा सिरा दक्षिण श्रोणि प्रदेश में आता है और वहाँ बृहदाँत्र के मुख से मिल जाता है। (चित्र में १६ चिन्ह)

इन आँतों की लम्बाई २० फ़ीट और मोटाई १ से १½ इञ्च है। इसका प्रारम्भ मुख घोड़े की नाल की भाँति टेढ़ा मुड़ा हुआ है। इस भाग को "ग्रहणी" कहते हैं। इस स्थान में यकृत के साथ जुड़ा काम अपना पित्त रस और अग्राशय अपना रस इन सूक्ष्मांत्रों में पहुँचाता है, जहां कि वह आमाशय से आये हुये भोजन से मिल जाता है।

सूक्ष्मांत्र अन्दर से नली की भाँति खोखली हैं। ये नली भिन्न-भिन्न प्रकार के चार पटों से बनी हैं। इनमें एक पट मांस की बनी है। इसके रेशे गोल और उभरे हुये हैं। सम्पूर्ण सूक्ष्मांत्र में यह मांस-तन्तु एक ही समय संकुचित और विकसित नहीं होते। परन्तु थोड़े-थोड़े समय के अन्तर में कुछ-कुछ भाग संकुचित होता रहता है। इससे जब एक भाग संकुचित होता है तो दूसरा अगला भाग फैला रहता है। जिससे संकुचित भाग के अन्दर का पदार्थ अगले फैले हुए भाग में आजाता है। इस प्रकार से यह चलता हुआ पदार्थ सूक्ष्मांत्र के अन्तिम मुख पर आ पहुँचता है और वहाँ से बृहदाँत्र में प्रविष्ट हो जाता है। आँतों के अन्दर का भाग खुरदरा और अंकुरों जैसे उभार-वाला है। ये उभार १ से २ इञ्च लम्बे और आध इञ्च मोटे होते हैं। इनके अन्दर भोजन को चूसनेवाली रगें लगी रहती हैं। और इन सब रगों के मिलने से एक बड़ी नलिका बनती है और यह नलिका दक्षिणी पार्श्व में जाकर मोटी शिरा में मिल जाती है।

इन आँतों से एक प्रकार का रस निकलता है। यह रस भोजन-परिपाक में विशेष सहायता करता है और आँतों में विदाह उत्पन्न नहीं होने देता।

वृहदांत्र—दक्षिण श्रोणि-प्रदेश से इसका प्रारम्भ होता है और वाम श्रोणि-प्रदेश में इसकी समाप्ति। इसके मुख्य तीन भाग हैं। एक भाग तो दक्षिणी पार्श्व में ऊपर याकृतिक प्रदेश तक पहुँचा है और दूसरा भाग याकृतिक प्रदेश से आड़े रूप में चलकर प्लैहिक प्रदेश तक पहुँचा है और तीसरा जो इसका अधोभाग है, प्लैहिक भाग से चलकर नीचे श्रोणि-प्रदेश में पहुँचता है। इसके आगे गुदामार्ग प्रारम्भ होता है।

वृहदांत्र की लम्बाई ५ फ़ीट है और ऊर्ध्वगामी भाग २॥ इञ्च मोटा है और आगे पतला होता गया है और अन्त में इसकी मोटाई १॥ इञ्च से अधिक नहीं रहती।

गुदामार्ग—वृहदांत्र के अधोभाग का निचला भाग वाम श्रोणि-प्रदेश में होकर फिर मध्य भाग में वस्ति-प्रदेश की ओर आता है और वहाँ गुदा के रूप में परिवर्तित होजाता है।

गुदा-मार्ग के सम्मुख में मूत्राशय और स्त्रियों में गर्भाशय तथा पीछे पृष्ठ वंश के कटि-कशेरू के निचले कशेरू रहते हैं। गुदाभाग की लम्बाई ६ से ८ इञ्च तक होती है।

यकृत—उरोदर-पटल के नीचे दक्षिण की तरफ़ आधी उदर-गुहा को घेरे हुये, पके हुये जामुन के रंगवाला सबसे बड़ा अवयव है। इसका भार दो सेर के लगभग होता है। इसके दो भाग हैं, एक बड़ा दक्षिणी-खण्ड और दूसरा छोटा वाम-खण्ड। यह दूसरा खण्ड प्रायः आमाशय के ऊपर रहता है। दक्षिण-खण्ड स्वस्थ अवस्था में पसलियों तक रहता है; परन्तु रोग की अवस्था में नीचे भी सरक आता है। इसकी लम्बाई लगभग एक फ़ीट और चौड़ाई आठ इञ्च होती है। इसके नीचे आंत्र और पीछे की ओर दक्षिण वृक्क रहता है। इसका जामुन जैसा रंग रक्त के कारण होता है।

इसका मुख्य कार्य रक्त का शोधन और भोजन को पचने में सहायता करना है। दूसरा इसका कार्य स्टोर-कीपर—भण्डारी का है। अर्थात् शरीर में जो वस्तु अधिक बन जाती है, उसको अपने पास सुरक्षित रखता है और

ज़रूरत पड़ने पर उस स्थान में भेज देता है। इन संग्रहीत रहनेवाली-वस्तुओं में मुख्य वस्तु शर्करा है।

इसके अतिरिक्त यह यकृत "पित्त" नामक पदार्थ को बनाकर क्लोम में एकत्रित करता है, जो अन्न-पाचन में विशेष सहायक होता है। इस पित्त के कारण भोजन का चिकना भाग शीघ्र पच जाता है। यह पित्त शरीर की कृमियों से रक्षा करता है। मल में पीला रंग इसी का होता है। पित्त के न आने से कई प्रकार के रोग होजाते हैं। नीरोग शरीर में चौबीस घण्टे के अन्दर लगभग १½ सेर पित्त उत्पन्न होता है।

क्लोम (Gall Bladder)—इसका आकार गाजर को भाँति होता है। इसको यकृत अपने नीचे के और अन्दर छिपाकर रखता है, अतः ऊपर से देखने में इसका पता नहीं लगता। यकृत पित्त बना-बनाकर इसमें एकत्रित करता रहता है और जब भोजन ग्रहणी भाग में आने लगता है, उसी समय यह पित्त भी प्रणाली द्वारा उसमें आकर मिलने लगता है। जब सब भोजन समाप्त होजाता है तो प्रणाली से पित्त बहना भी बन्द होजाता है। जब कभी किसी रोग के कारण (यथा पित्ताश्मरी आदि) पित्त-प्रणाली का मुँह बन्द होजाता है तो यह पित्त रक्त में घुलने लगता है, जिससे आँखों में पीलापन आजाता है और पित्त के अभाव से मल का रंग श्वेत या भूरा होजाता है।

अग्नाशय—यह अवयव वाम कटि-प्रदेश में आँतों के नीचे रहता है। इसका आकार पिस्तौल के आकार की भाँति है। इससे भी एक प्रकार का रस ग्रहणी में पित्त-प्रणाली के द्वारा आकर गिरता है। यह रस भोजन के पचाने में भाग लेते हैं। इसकी प्रतिक्रिया क्षार है। इस रस का अभाव या इस अवयव का विकार शरीर में शर्करा की वृद्धि कर देता है, जो मूत्र-मार्ग से बाहर आने लगती है।

प्लीहा—नाभि के वाम पार्श्व में, ९, १०, ११ वीं पसली के नीचे यह अवयव रहता है। रोग-विकार में और अधिक नीचे उतर आता है, जिसको कि हाथ से छूकर स्पर्श भी कर सकते हैं। इसका रंग काला भूरा-सा होता है। इसकी लम्बाई ५ इञ्च, चौड़ाई ३ इञ्च और भार १० से १५ तोला होता है।

इसका मुख्य कार्य रक्त-शोधन करना है। रक्त के श्वेत कण यहाँ

आकर जाल बनते हैं। ज्वर आदि में यह बहुत अधिक बढ़ जाती है। यहाँ तक कि कई बार नाभि से नीचे भी आजाती है और कई बार इतनी घट जाती है कि इसका वज़न एक तोले तक आजाता है। आधुनिक वैज्ञानिक इसका विशेष गुण अभी बता नहीं सके।

मूत्र-स्थान अवयव

ये अवयव पीठ की ओर कटि-प्रदेश में स्थित हैं। इन अवयवों में तीन अवयव मुख्य हैं।

एक—मूत्र को उत्पन्न करनेवाले दक्षिण और वाम; दो वृक्क।

दूसरा—मूत्र को मूत्राशय तक ले जानेवाली दो गविनियाँ या मूत्र-प्रणालियाँ।

तीसरा—इस लाये हुये मूत्र को संचित करनेवाला मूत्राशय।

वृक्क या मूत्र पिण्ड—ये दो हैं। ये याकृतिक और प्लैहिक प्रदेश में पीठ की ओर दोनों तरफ़ कटि-प्रदेश तक रहते हैं। प्रत्येक गुरदा या वृक्क चार इञ्च लम्बा, दो इञ्च चौड़ा और एक इञ्च मोटा होता है। इसका वज़न १० से १२ तोला होता है। बाहर से साफ़ और चिकना होता है। इसका आकार शिम्बी बीज के समान होता है। दक्षिण वृक्क वाम वृक्क से कुछ आध इञ्च ऊँचाई पर रहता है।

प्रत्येक वृक्क बारीक-बारीक नालियों से बना हुआ है। इन नालियों के आस-पास रक्त-वाहिनियों के सूक्ष्म जाल बिछे हुये हैं और इन नालियों में छनना लगा होता है। एक नाली देखने में ज़रा-सी दीखती है, परन्तु वह घूम-घूमकर बड़ी होती है। इन नालियों द्वारा रक्त-वाहिनियों में से मूत्र-जल तथा कुछ नमक पृथक् होजाता है, जिस जल की मात्रा स्वस्थ पुरुष में २४ घन्टे के अन्दर १ सेर से १॥ सेर तक होती है। वृक्क के अन्दर की सब छोटी-छोटी नालियाँ मिलकर वृक्क की वस्ति में आती हैं और वहाँ से एक बनकर मूत्रवाहिनी के रूप में बाहर आती हैं।

मूत्रवाहिनी या गविनी—ये दो हैं। इनका ऊपरी सिरा वृक्क के साथ और निचला सिरा मूत्राशय के साथ मिला होता है। वृक्क में बना मूत्र एक-एक बूँद के रूप में इनके द्वारा मूत्राशय में आता रहता है और यहाँ एकत्रित होता है। कभी-कभी पत्थरों आदि के कारण इनका मार्ग जो कि मूँग

के दाने के समान होता है—बन्द होजाता है। तब बड़ी विषम स्थिति होजाती है।

मूत्राशय—इसका स्थान नाभि से नीचे पेडू प्रदेश में है। वृक्कों से बूँद-बूँद करके टपकता हुआ मूत्र यहाँ पर कुछ समय तक एकत्रित रहता है और जब यह मूत्राशय भर जाता है, तब मनुष्य को मूत्रत्याग की इच्छा होती है। इसका आकार अंडे की भाँति होता है। इसकी रचना केवल मांसमय तन्तुओं से हुई है। इसके अन्दर तीन छिद्र हैं, जिनमें दो छिद्र मूत्रवाहिनियों के हैं और तीसरा छिद्र मूत्र के बाहर निकलने के लिये है। इसका सम्बन्ध शिश्न के अन्तर्गत मूत्र-मार्ग से है। ज्यों-ज्यों मूत्र इसमें भरता जाता है, मांस-तन्तु विकसित होते जाते हैं और मूत्र निकलने पर फिर संकुचित होजाते हैं। कई रोगों में यह संकोच और विकास की शक्ति नष्ट होजाती है। अतः मनुष्य को बार-बार मूत्र जाने की इच्छा होती है।

जननेन्द्रिय-अवयव

जो अवयव संतति की उत्पत्ति में भाग लेते हैं, उन सबों को "जननेन्द्रिय अवयव" या "उत्पादक अवयव" कहा जाता है। स्त्री और पुरुष के अवयव भिन्न २ स्वरूप के होते हैं, परन्तु योगिक दृष्टि से दोनों अवयव—बाह्य अवयव—एक ही हैं। केवल प्रकार-भेद है; ऐसा योगी लोग मानते हैं। उनकी दृष्टि में पुरुष के दोनों वृषण स्त्री के दोनों डिम्बकोष हैं और पुरुष का शिश्न स्त्री की बाह्य-योनि है।

पुरुष के जननेन्द्रिय अवयव—इसमें मुख्य अवयव तीन हैं। यथा—वृषण, वीर्याशय और शिश्न।

वृषण—(Testicles)—पेडू प्रदेश के नीचे, दोनों जंघाओं के सन्धि-स्थान के नीचे, मध्य में, गुठली की भाँति लटकनेवाली दो ग्रन्थियाँ हैं। ये ग्रन्थियाँ गर्भाशय में उदर-गुहा के अन्दर रहती हैं। पीछे आठवें मास में अथवा गर्भोत्पत्ति के कुछ समय बाद उदर-गुहा से सुरंग-मार्ग द्वारा उतरकर वृषण थैलियों में आजाती हैं। जहाँ ये दोनों गोलियाँ अन्य रक्त-वाहिनियों नसों से बँधी हुई लटकती रहती हैं। इनका आकार अंडे की भाँति लम्बोतरा होता है। दक्षिणी वृषण, वाम वृषण की अपेक्षा अधिक ऊँचा और पतला होता है। प्रत्येक गोली की लम्बाई १ से १½ इञ्च, चौड़ाई १¼ इञ्च और मोटाई १ इञ्च होती है। स्वस्थ शरीर में प्रत्येक गोली का वज़न २ से २½

तोले तक होता है। इस थैली के एक परदे के द्वारा दो भाग बने होते हैं। कई बार ये अण्डे नीचे अण्डकोषों में नहीं उतरते और उदर-गुहा ही में रहते हैं। अथवा एक अण्ड उतरता है और दूसरा वहीं रहता है। गोली के ऊपर एक मोटा, मजबूत, श्वेत पट होता है और इसके नीचे एक दूसरा पतला पट होता है। इस पट के नीचे प्रत्येक गोली में ८०० सूक्ष्म नलिकायें लगी होती हैं। इन नलिकाओं में प्रत्येक नली की मोटाई १/१८० इञ्च के बराबर होती है और लम्बाई कम से कम १३ इञ्च और अधिक से अधिक ३३ इञ्च होती है। इस प्रकार की अत्यन्त सूक्ष्म नलिकाओं से इन गोलियों की रचना हुई है। इस गोली में दो-दो, तीन-तीन नालियाँ मिलकर आगे-आगे मोटी होती जाती हैं। नली के बाहर श्वेत नसों का जाल बिछा होता है। इन नसों ही में रक्त से धातु उत्पन्न होता है। इन गोलियों को लटकानेवाली रगों में एक शिरा, एक धमनी और एक रस्सी (स्परमेटिक-कॉर्ड) होती है। शिरा के अन्दर जब रक्त भर आता है, तो सूज जाती है। इन रगों का सम्बन्ध उदरगुहा की रगों के साथ होता है।

वृषण के साथ ही एक दूसरा अवयव लगा होता है, जिसको 'उपाण्ड" या "पुच्छ" कहते हैं। वास्तव में यह उपाण्ड अण्डकोष से निकलती हुई वीर्य-वाहिनियों की रगें हैं, जो प्रायः धीरे-धीरे एकत्रित होती जाती हैं और अन्त में एक मुख्य वीर्य-वाहिनी बनकर उपरोक्त रगों के साथ ऊपर जाकर मूत्राशय के पीछे वीर्याशय में पहुँचती हैं। पूय मेह आदि में जब विष इस उपाण्ड में रुक जाता है तो इसकी सूजन होजाती है और इनका मार्ग रुक जाता है।

वीर्याशय—अण्डकोष से उत्पन्न वीर्य, वीर्य-वाहिनयों द्वारा वीर्याशय में आकर एकत्रित होता है, जिस प्रकार मूत्र वृक्कों में उत्पन्न होकर मूत्राशय में एकत्रित होता है। इस वीर्याशय का स्थान मूत्राशय के पीछे की ओर और गुदा के आगे है। इस वीर्याशय में भी तीन छिद्र हैं। दो छिद्र वीर्य-वाहिनियों के लिये और एक छिद्र वीर्य के मूत्र-मार्ग में जाने के लिये, जो मूत्राशय से निकलते हुये मूत्र-मार्ग से मिलकर एक होगया होता है।

शिश्न—यह सम्भोग का साधन है। मूत्र-मार्ग इसमें होकर जाता है। यह तीन सुदृढ़ पेशियों से बना हुआ है। ये पेशियाँ दण्डाकार हैं। इनमें दो पेशियाँ बराबर-बराबर रक्खी हैं और तीसरी पेशी दोनों के नीचे है। बीच

में मूत्र-मार्ग रहता है। इन पेशियों में रक्त-वाहिनियाँ विशेष रूप से आती हैं और जब ये रक्त से भर जाती हैं तो यह शिश्न सुदृढ़ और मजबूत होजाता है और रक्त के वापस होने पर पुनः शिथिल होजाता है। साधारणतः इसकी लम्बाई तीन से चार इञ्च रहती है, परन्तु रक्त के कारण तनने पर ६, ७ इञ्च तक होजाती है।

स्त्रियों के जननेन्द्रिय अवयव—इनको दो भागों में विभक्त किया हुआ है। एक वे इन्द्रियाँ जो बाहर हैं और आँखों से देखी जा सकती हैं। दूसरी वे इन्द्रियाँ जो उदर-गुहा के अन्दर रहती हैं और जिनको हम साधारणतः नहीं देख सकते। बाह्य-इन्द्रियों में योनि या भग-प्रदेश का अवयव है और अन्तः इन्द्रियों में गर्भाशय और इसके साथ सम्बन्धित अन्य अवयव।

योनि—पुरुषों में जहाँ शिश्न अवयव रहता है, वहाँ स्त्रियों में यह अवयव आता है। इसका आकार गवाक्ष की भाँति होता है। इसके अन्दर कुल मिलाकर सात अवयव हैं। यथा—दो वृहत् भगोष्ठ, दो लघु भगोष्ठ, एक भग-शिश्निका, एक भगालिन्द, एक मूत्र-प्रेषक-द्वार, एक भग-द्वार और एक भगाञ्जलिका।

वृहत् भगोष्ठ लघु भगोष्ठ को छिपाकर अपने अन्दर रखता है। इस वृहत् भगोष्ठ ही पर बाल उगे होते हैं, यह चर्बी से भरा होता है। ये दोनों ओष्ठ अन्दर के अवयवों को बचाकर सुरक्षित रखते हैं। भग-शिश्निका—यह अवयव पुरुषों के शिश्न के अनुरूप होता है। जिस समय इस अवयव में रक्त-संचार बढ़ता है, उस समय इसका आकार भी शिश्न की भाँति बढ़ जाता है। इसके नीचे मूत्र-प्रेषक-द्वार है, जहाँ से मूत्राशय से मूत्र बाहर होता है और जिसके नीचे भग-द्वार या योनि-द्वार है। कुमारियों में इस छिद्र के ऊपर एक पतली झिल्ली रहती है, जिसमें एक साधारण छोटा-सा छिद्र होता है, जिससे रज बाहर आता है और प्रथम सम्भोग के समय यह झिल्ली फट जाती है, जिससे थोड़ा रक्त निकलता है और झिल्ली दोनों पार्श्वों में खिंच आती है। इस आवरण को कुमारी-आवरण कहते हैं। कई बार इसमें छेद नहीं होता, तब रज का अवरोध होजाता है। उस समय चिकित्सक की सहायता सापेक्ष होती है।

अन्तः अवयवों में—गर्भाशय, बीज-वाहिनी (डिम्ब-प्रणाली), बीज-कोष (डिम्ब-कोष) हैं।

गर्भाशय (Uterus)—इसका स्थान वस्ति-प्रदेश में मूत्राशय और गुदा के बीच में आया हुआ है। गर्भाशय का आकार अमरूद या नासपाती के समान ऊपर से बड़ा चौड़ा और नीचे से तंग और पतला है।* यह ३ इञ्च लम्बा और १ इञ्च चौड़ा होता है। कुमारी अवस्था में इसका भार २ से ४ तोला तक होता है। यह मांसमय तन्तुओं से बना रहता है और ज्यों-ज्यों गर्भ बढ़ता जाता है, यह भी उसी के अनुसार आकार में बढ़ता जाता है और ९ वें मास की गर्भस्थिति में नाभि से ऊपर भी बढ़कर आमाशय प्रदेश तक पहुँच जाता है। यह अन्दर से पोला होता है। इस गर्भाशय को आठ मांसपेशियाँ ख़ूब दृढ़ रूप में बाँधकर रखती हैं। इनके कारण ही वह इतने भार को उठा सकता है। नीचे का मुख कमल कहलाता है। यह कमल मुख आगे चलकर योनि-मार्ग से मिल जाता है। साधारणतः यह मुख बन्द रहता है, परन्तु ऋतुकाल में यह खुल जाता है, जिससे रज बाहर होजाता है। रज-स्राव के पन्द्रह दिन पश्चात् यह मुख पुनः बन्द होजाता है।

गर्भाशय के शिखर पर दो नालियाँ लगी होती हैं, जिनकी लम्बाई ३ से ४ इञ्च तक होती है।

'स्त्री अण्ड' (फल कोष) इसका आकार बादाम की भाँति होता है। ये दो होती हैं। इनमें प्रत्येक ग्रन्थि १$\frac{1}{2}$ इञ्च लम्बी $\frac{3}{4}$ इञ्च चौड़ी और मोटाई में $\frac{1}{4}$ इञ्च होती है। प्रत्येक ग्रन्थि का भार $\frac{1}{4}$ से $\frac{3}{4}$ तोला होता है। इन कोषों में छोटे-छोटे बीज रक्खे रहते हैं। इन बीजों में एक श्वेत तरल द्रव भरा रहता है। जिस समय ये अण्ड ख़ूब मजबूत होते और पक जाते हैं, उस समय यह बीज अपने कोष को वहीं छोड़कर डिम्ब-प्रणाली के द्वारा गर्भाशय में आजाता है। यह बीज जब पक जाता है, तब बीज-वाहिनियों के किनारे पर लगी झालर इसको पकड़ लेती है और वहाँ से गर्भाशय में आजाता है।

'फलवाहिनी' बीज वह स्रोत (Fallopian tube)—ये दो हैं; और गर्भाशय के दक्षिण और वाम भाग में एक-एक जुड़ी हुई हैं। एक प्रान्त गर्भाशय से मिला हुआ है और दूसरा स्वतन्त्र है। स्वतन्त्र प्रान्त के सिरे पर झालर लगी रहती है। इस झालर के सिरे साधारणतः स्त्री अण्डकोष (Ovary) से मिले नहीं रहते। परन्तु ऋतुकाल में जब कि डिम्ब पककर गर्भाशय में जाने लगता है, उस समय ये प्रान्त अण्डकोष के बहुत ही

---

*सुश्रुत में गर्भाशय की उपमा रोहितमत्स्य के मुख से दी है।

नजदीक आजाते हैं, यहाँ तक कि विद्वानों की धारणा है कि यह अन्तर ¼ से ⅟₁₆ इञ्च रह जाता है। झालर के प्रान्त इस पके हुये डिम्ब को डिम्बकोष के मुख से खींच लेते हैं, जिस प्रकार कि चुम्बक लोहे को दूर से खींच लेता है। इस डिम्ब को अपने अन्दर लेकर झालर के प्रान्त अब बाहर लटकने की अपेक्षा अन्दर को मुड़ जाते हैं। इससे डिम्ब सुरक्षित रूप में फलवाहिनी मार्ग से गर्भाशय में पहुँच जाता है; परन्तु कई बार ऐसा भी होजाता है कि इसी फलवाहिनी में डिम्ब और शुक्रकीट का परस्पर संयोग होजाता है। उस समय गर्भ, गर्भाशय में न रहकर यहीं फलवाहिनी में कुछ दिन बढ़ता है और जब बड़ा होने लगता है, तब माता को कष्टदायक होता है और फिर डाक्टर को चाकू से कार्य करने की आवश्यकता होती है।

ये फलवाहिनी, पुरुषों की वीर्यवाहिनी की प्रतिरूप होती हैं और डिम्बकोष, अण्डकोष का; डिम्ब-वीर्य के कीटाणु के प्रतिरूप हैं, यह मान्यता लोगों की है।

स्तन—दो हैं। ये स्त्रियों ही के जननेन्द्रिय अवयव हैं। जिस प्रकार कि युवावस्था के प्रारम्भ होने पर उत्पादन अंगों में वृद्धि, रक्त-संचार का बढ़ना आदि होता है उसी प्रकार स्तनों में भी वृद्धि होने लगती है। इनके अन्दर के दुग्धवाहक स्रोत और दुग्धवाहिनी ग्रन्थियाँ बढ़ने लगती हैं। चूचक ऊपर को उठने लगते हैं। विशेष परिवर्त्तन गर्भाधान होने पर होता है। जिस समय ऋतुदर्शन गर्भाधान ही के कारण बन्द होजाता है, उस समय रक्त-संचार स्तनों में बढ़ने लगता है। इससे वे अधिक पीवर-मोटे होजाते हैं। ऋतु ही स्तनों में जाकर दूध के रूप में बदल जाता है। यही कारण है कि जबतक ऋतु दर्शन होता है, तभी तक स्तनों में दूध नहीं आता है और जिस समय माता बच्चे को दूध पिलाती है, उस समय आर्त्तव-स्राव भी नहीं होता; और जब आर्त्तव-स्राव नहीं होता, तब गर्भाधान भी नहीं हो सकता। अतः गर्भाधान को रोकने का सहज उपाय देर तक दूध पिलाना है।

स्तन देखने में मांस का एक टुकड़ा है। इसके अन्दर रक्तवाहिनी, दुग्धवाहिनी आदि प्रणालिकायें और दुग्ध ग्रन्थियाँ फैली हैं। ये ग्रन्थियाँ रक्त में से दूध को पृथक् करके दुग्ध वाहिनियों द्वारा चूचक में भेजती हैं। सब दुग्धवाहिनियों के मुख चूचक में आकर खुलते हैं। प्रत्येक स्तन में दुग्धवाहिनियाँ १५ से २० हैं। कभी-कभी जब स्तन-विद्रधि रोग होजाता है,

उस समय इन दुग्धवाहिनियों को बचाकर अर्द्ध चन्द्राकार छेदन करना चाहिये। जिस समय शिशु के मर जाने पर या अन्य कारणों से स्तनों से दूध नहीं निकलता, उस समय माता को स्तनों पर भार और बेचैनी अनुभव होती है।

"शरीरं सर्वदा सर्वं सर्वथा वेद यो भिषक्।
आयुर्वेदं स कात्स्न्र्येन वेद लोक सुखप्रदम्॥" चरक

शरीर की बनावट को तो संक्षेप में जान चुके। इसकी क्रिया को भी जानना चाहिये। बिना इस ज्ञान के हम अपने शरीर को स्वस्थ नहीं रख सकते। जिस क्रिया या शक्ति के कारण हम अपने हाथ-पाँव हिलाते हैं, या सोचते और देखते हैं, उसको प्राण या जीव कहते हैं और इस क्रिया या शक्ति के अभाव को मृत्यु कहते हैं। ये दोनों कार्य स्वाभाविक हैं; परन्तु अपने अज्ञान के कारण इनमें देर या जल्दी होजाती है। अर्थात् यदि हम अपने शरीर-शास्त्र की क्रियाओं से अनभिज्ञ न रहें तो मृत्यु शीघ्र हो सकती है। अतः इस अज्ञान को दूर करना प्रत्येक प्राणी का कर्त्तव्य है। अज्ञान ही सब प्रकार के दुःखों का कारण है।

यह हमारा छः अंगोंवाला शरीर मुख्यरूप से तीन गुहाओं में बँटा हुआ है। यथा—शिरोगुहा, उरोगुहा और उदरगुहा। इन तीन गुहाओं ही में शरीर के मुख्य कार्य करनेवाले अवयव रहते हैं। यथा—शिरोगुहा—सारे शरीर का नियन्त्रण करती है, सब प्रकार के ज्ञान इसके अन्दर आते हैं और सब प्रकार की आज्ञायें इसी गुहा से चलती हैं। दूसरी उरोगुहा में शरीर का पोषण करनेवाले रक्तावयव—फेफड़े और हृदय रहते हैं। सारे शरीर का रक्त यहाँ इस गुहा में आता है और फिर यहीं से सम्पूर्ण शरीर में फैलता है। तीसरी उदरगुहा—इसमें सब प्रकार का भोजन पहुँचता है और उसका रस बनकर सारे शरीर को तर्पण करता है। इनमें से एक भी गुहा में किसी प्रकार का विकार होने से शरीर में विकार होजाता है। ये तीनों यद्यपि देखने में और कार्य-शक्ति में पृथक्-पृथक् लगती हैं; परन्तु है इन सबका परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध। एक दूसरे को नियम में रखकर ये तीनों गुहायें आपस में रहती हैं।

इन तीनों गुहाओं में क्रम से तीन तत्त्व रहते हैं। जिस प्रकार यह प्रकृति सत्त्व, रज और तम से मिलकर बनी है, उसी प्रकार यह शरीर भी वात, पित्त और कफ से बना है। इनमें वात का स्थान शिरोगुहा में, पित्त का स्थान उरोगुहा में और कफ का स्थान उदरगुहा में है। इसका विस्तृत विवेचन आगे किया जायगा। यहाँ पर तो इतना ही समझना पर्य्याप्त है कि ये तीनों धातुएँ मुख्य भाग से उपरोक्त तीन गुहाओं में रहती हैं और इन तीन गुहाओं में शरीर को चलानेवाले मुख्य-मुख्य अवयव रहते हैं। यथा—

१. रुधिराभिसरण अवयव = Circulatory System
२. श्वासोच्छ्वास अवयव = Respiratory System
३. पक्वाशय अवयव = Digestive System
४. मूत्राशय अवयव = Urinary System
५. जननेन्द्रिय अवयव = Generative System
६. चेतन अवयव = Nervous System
७. ज्ञानेन्द्रिय अवयव = Organs of Senses

इसके अतिरिक्त तीन धातु—वात, पित्त और कफ; सप्तधातु—रस, रक्त, मांस, मेद, मज्जा, अस्थि और शुक्र; तथा स्वाभाविक वेग—मल, मूत्र, छींक, आदि का भी वर्णन इसी अध्याय में किया जायगा, क्योंकि ये भी शरीर की क्रियाओं में विशेष भाग लेते हैं।

रुधिराभिसरण-यन्त्र

"देहस्य रुधिरं मूलं रुधिरेणैव धार्यते।
तस्माद् यत्नेन संरक्ष्यं रक्तं जीव इति स्थितिः॥"

रक्त—शरीर को जीवन देनेवाला, शक्ति का आधार, कान्ति का सागर; यही अपना "रक्त या लहू" है। यह रक्त इस पाँच भौतिक शरीर में, छः रसोंवाले चार प्रकार के (भक्ष्य, लेह्य, चोष्य, और पेय) आहार से बनता है। यह परिवर्त्तन अपने यकृत और प्लीहा में होता है*। यह रक्त भोजन से पुष्टिकारक अंश को लेकर सम्पूर्ण शरीर में, शिर से लेकर

* "स खलु आप्यो रसः यकृत् प्लीहानौ प्राप्य रागतामुपैति॥" सुश्रुत

पैर के नख तक, छोटे-बड़े सब अवयवों में और सब स्थानों में दौड़ता फिरता है। जिस भाग में इसकी गति या संचार नहीं होता, वह स्थान निर्बल होजाता है, या मर जाता है। इसलिये इसको जीवन का आधार मानते हैं।

रक्त का दूसरा कार्य शरीर का शोधन है। शरीर के सब भागों में चक्कर काटता हुआ रक्त, जहाँ सब अवयव, सब तन्तुओं को ख़ुराक देता है, वहाँ उनके मल को अपने में मिलाता जाता है और फिर इस मल को ले जाकर शरीर से बाहर फेंकनेवाले अवयवों में पहुँचा देता है। वहाँ से यह मल नाना रूपों में बाहर होजाता है। यथा—त्वचा से पसीने के रूप में, प्रश्वास से दूषित वायु के रूप में और वृक्क से मूत्र के रूप में बाहर निकल जाता है। इस प्रकार से यह रक्त हमारे शरीर को धोता रहता है।

इसके अतिरिक्त रक्त का तीसरा काम शरीर को गरमी देना है। यदि किसी कारण से इसकी गति रुक जाती है तो शरीर ठण्डा होजाता है। विशेषतः वृद्धावस्था में या किसी तीव्र रोग के कारण (यथा—कुष्ठ) जब रक्त-संचार मन्द होजाता है, तब पाँव और अँगुलियों के अगले सिरे 'सुन्न' रहते हैं। अर्थात् वहाँ पर रक्त-संचार भली प्रकार नहीं होता। रक्त सारे शरीर में घूमता है, इसलिये सम्पूर्ण शरीर का ताप-परिमाण भी एक जैसा ही रहता है।

रक्त की रचना—जब कहीं कटने से रक्त निकलता है, तो वह पानी की तरह तरल होता है; परन्तु बाह्य वायु के संयोग से वह कुछ ही समय बाद जम जाता है। उस समय इसके दो भाग दिखाई देते हैं। एक वह जमा हुआ भाग जिसको "चक्का" कहते हैं और दूसरा पतला पानी जैसा भाग। इस जमे हुये भाग को और अधिक सूक्ष्म दृष्टि से अणुवीक्षण यंत्र की सहायता से यदि देखें, तो इसके और कई भाग दिखते हैं। यथा—इसमें कुछ तन्तु धागे-से दिखाई देते हैं, जिनका जाल-सा बिछा होता है। इस जाल में गोल लम्बोतरे कण-से दिखाई देंगे, जिन कणों में कुछ लाल और कुछ श्वेत होंगे। इन कणों को "रक्ताणु" और "श्वेताणु" कहते हैं। रक्ताणु शरीर की पुष्टि करते हैं और श्वेताणु शरीर का शोधन। रक्ताणुओं में लोहू का भाग होता है। श्वेताणु—शरीर को हानि पहुँचानेवाले पदार्थ को अपने में घोल लेते हैं और बहते-बहते शरीर से मल फेंकनेवाले अवयवों में दे देते हैं। रक्ताणुओं की संख्या श्वेताणुओं से कहीं अधिक रहती है। इनका आकार

गोल परन्तु दोनों तरफ़ से पिचका होता है। श्वेताणु—रंग में श्वेत, आकार में रक्ताणुओं से बड़े होते हैं। इन श्वेतकणों में एक मींगी रहती है, जो मनुष्य के रक्ताणु में नहीं पाई जाती। कई रोगों में इन कणों की संख्या में परिवर्त्तन होजाता है। अर्थात्—श्वेताणु-रक्ताणुओं से अधिक होने लगते हैं, तब शरीर पीला, रक्तहीन दिखाई देता है। यथा—मलेरिया या 'काला-आज़ार' ज्वर में (जो प्राय: आसाम बङ्गाल में होता है)।

इनके अतिरिक्त रक्त में अन्य नमक भी पाये जाते हैं। यथा—चूना मैगनेसिया, सोडा, आदि। जिनके कारण इसका स्वाद नमकीन रहता है और प्रतिक्रिया क्षारीय होती है।

रक्त का संचार—शरीर के अन्दर रक्त, मोटी, पतली, सूक्ष्म सब तरह की छोटी, बड़ी वाहिनियों में बहता है। ये वाहिनियाँ दो प्रकार के रक्त को बहाती हैं। एक तो काले-मैले रक्त को बहाती हैं। इस तरह की वाहिनियाँ हृदय की ओर जा रही होती हैं। दूसरी प्रकार की वाहिनियाँ लाल, उज्जवल रक्त को बहाती हैं। ये हृदय से निकलती हैं और शरीर के अन्य भागों में पहुँचती हैं। इन दूसरी प्रकार की वाहिनियों की जहाँ समाप्ति होती है वहाँ से प्रथम प्रकार की वाहिनियाँ आरम्भ होजाती हैं।

शुद्ध रक्त को ले जानेवाली सब से बड़ी धमनी हृदय के वाम भाग के वाम-क्षेपक कोष्ठ से निकलती है और ज़रा ऊपर पहुँचते ही इसके तीन भाग होजाते हैं। एक शाखा ऊपर को शिर की तरफ़ चली जाती है। दूसरी शाखा भुजा की तरफ़ चली जाती है और तीसरी शाखा के दो भाग होजाते हैं। एक भाग नीचे उदरगुहा की ओर आजाता है और दूसरी वाहिनी दूसरी भुजा में चली जाती है। इसके पश्चात् इन वाहिनियों में से और छोटी-छोटी शाखा-प्रशाखायें और अनुशाखायें फूटती हैं।

इस प्रकार से यह एक चक्कर है, जो दिन-रात अनवरत-गति से बिना एक भी मिनट रुके, लगातार चलता रहता है। प्राय: इस चक्कर में १॥ मिनट या कुछ कम लगता है। अशुद्ध रक्त-वाहिनियाँ हृदय में रक्त को पहुँचाती हैं और शुद्ध रक्त-वाहिनियाँ हृदय से रक्त को ले जाती हैं।

आमाशय, आंत्र, प्लीहा और क्लोम का अशुद्ध-मैला रक्त हृदय में नहीं पहुँचता। इनका रक्त प्रतिहारिणी शिराओं-द्वारा यकृत में पहुँचता है। वहाँ इस रक्त का कुछ शोधन या परिवर्त्तन होता है। फिर यकृत के रक्त के

साथ मिलकर 'अधरा-महाशिरा' के साथ में एक शिरा के द्वारा हृदय में पहुँचता है।

गर्भाशय में "गर्भ" के अन्दर रक्त-सञ्चार जरा भिन्न रूप का होता है। उसमें फुप्फुस रक्त-शोधन का कार्य या श्वास-क्रिया को नहीं करते। चूँकि वह एक जरायु के अन्दर बन्द होता है। गर्भाशय से रक्त 'रस-संवाहिनी' द्वारा 'अपरा' में जाता है। यह 'अपरा' माता के गर्भाशय में लगी रहती है और इस अपरा के साथ "गर्भ" लटकता है। इसकी नसें और वाहिनियाँ गर्भ के शरीर में फैली होती हैं और गर्भ का अशुद्ध रक्त गर्भ-नाल के द्वारा पुनः "अपरा" के द्वारा गर्भाशय-शिराओं द्वारा मातृ-हृदय में पहुँचता है और फिर शुद्ध होकर गर्भनाल की धमनी द्वारा शरीर में आ-जाता है।†

रक्त-क्रिया का प्रारम्भ—रक्त शरीर में रात-दिन अनवरत गति से बहता रहता है। इस गति का प्रारम्भ उस दिन, उस घड़ी और उस क्षण से होता है, जब कि गर्भ भूमितल होने पर प्रथम श्वास लेता है और जब-तक अन्तिम साँस चलता है, उस समय तक यह रक्त अपनी गति से चलता रहता है। जो फेफड़े श्वास नहीं लेते, वे पानी में डूब जाते हैं और एक श्वास लेने पर भी वे पानी में तैरने लगते हैं। श्वास के प्रारम्भ के साथ ही हृदय की मांसपेशियाँ भी संकुचित होने लगती हैं। इधर फेफड़ों ने श्वास-प्रश्वास का कार्य प्रारम्भ किया कि उधर हृदय ने अपना पम्पिङ्ग कार्य प्रारम्भ किया। माता से पृथक् होने के साथ ही यह हृदय बालक को स्वतंत्र जीवन देने लगता है और जीवन की अन्तिम घड़ी तक कार्य करता रहता है। हृदय रक्त को फेंकने के समय संकुचित होता है और लेने के समय विकसित होता है। इस प्रकार से लगातार संकोच और विकास के कारण एक तरंग रक्त में उत्पन्न होजाती है, जो धमनी में स्पन्दन के रूप में अनुभव होती है। इस स्पन्दन के द्वारा विज्ञ वैद्य शरीर के रोगों

---

†"मातृजं चास्य हृदयम्। मातृ हृदयेन सहाभिसम्बद्धम् रसवाहिनीभिः संवाहिनीभिः। नाभ्यां ह्यस्य नाडी प्रसक्ता; नाड्यांञ्चापरा। अपरा चास्य मातुः प्रसक्ता हृदये। मातृहृदयं ह्यस्य तामपरामभि संप्लवते सिराभिः स्यन्दमानाभिः। स तस्य रसः बलवर्णं करः सम्पद्यते॥" चरक

को पहचानते हैं। इसलिये धमनी को "जीव साक्षिणी" कहा है। यह एक आश्चर्य कारक रचना है।

नाड़ी—हृदय का वाम भाग जब संकुचित होता है, तब रक्त वाम क्षेपक कोष्ठ धमनी के अन्दर पहुँचता है और फिर वहाँ से अन्य शाखा, प्रशाखाओं और अनुशाखाओं में जाता है। जिस समय हृदय रक्त को महाधमनी में फेंकता है, उस समय धमनी की दीवालें फैल जाती हैं। चूँकि उसमें विस्तृत होने पर (एलास्टिक) तन्तु लगे होते हैं। फिर संकुचित होने पर यह रक्त की धार आगे जाती है। इस प्रकार से इस रक्त की धार में एक तरंग चलती रहती है। यह तरंग पृष्ठवर्त्ती धमनियों में स्पन्दन के रूप में अनुभव होती है। यथा—अंगुष्ठ की जड़ में यह तरंग केशिकाओं या शिराओं में (अशुद्ध रक्त को बढ़ानेवाली) नहीं होती, क्योंकि उनकी दीवालों में विस्तृत तन्तु नहीं होते। इस नाड़ी का स्पन्दन एक मिनट में उतना ही होता है जितना कि हृदय का, क्योंकि इस तरंग का आदि स्रोत हृदय ही है। यह स्पन्दन एक मिनट में युवा व्यक्ति में ७२ से ८० होता है, बच्चों में अधिक होता है। रोग आदि के कारण इसकी गति और संख्या में अन्तर आजाता है। विज्ञ चिकित्सक इस गति को देखकर रोग निर्णय कर लेते हैं। मूल-स्थूल दृष्टि से एक ही महाधमनी सम्पूर्ण शरीर में फैली हुई है। जिस प्रकार एक ही वृक्ष के जड़ प्रगण्ड शाखा, प्रशाखा, पत्ते आदि भेद हैं, उसी प्रकार इस एक धमनी ही के और रूप हैं।

श्वासोच्छ्वास यंत्र (Respiratory system)

"नाभिस्था: प्राणपवन: स्पृष्ट्वा हृत्कमलान्तरम्।
कोष्ठाद् वहि: विनिर्याति पातु विष्णुपदामृतम्॥
पीत्वा चाम्बर पीयूषं पुनरायाति वेगत:।
प्रीणयन् देहमखिलं.................. ॥"

रक्त जीवन है, परन्तु श्वास-प्रश्वास की क्रिया इस "जीवन" को उत्पन्न करती है। रक्त सम्पूर्ण शरीर में चक्कर काटता है। सब स्थानों से मैल भाग को लेकर मैला होजाता है। अब इस मलिनता को दूर करके, उसे फिर से लाल, उज्ज्वल बनानेवाली क्रिया यही अपनी श्वास-प्रश्वास की क्रिया है, जिस क्रिया का आधार ये अपने दोनों फुप्फुस हैं। कोई भी प्राणी जब साँस लेता है, तो बाहर की वायु शरीर के अन्दर जाती है और जब श्वास

बाहर फेंकता है, तो शरीर के अन्दर की वायु बाहर करता है। यह क्रिया लगातार इतने स्वाभाविक रूप में चल रही है कि मनुष्य को उस ओर ज़रा ध्यान देने की आवश्यकता नहीं होती और रात-दिन, चौबीसों घण्टे, बिना किसी रुकावट के चलती ही जाती है और गर्भ के भूमि पर आने के प्रथम क्षण से प्रारम्भ होकर जीवन की अन्तिम घड़ी तक चालू रहती है।

श्वास-मार्ग—हम नासिका से श्वास लेते हैं और यह श्वास फेफड़ों में पहुँचता है, जिससे कि वे थोड़ा-सा फैलते भी हैं और फिर श्वास निकालने के समय थोड़े सिकुड़ते भी हैं। नासिका से लेकर फेफड़ों के अन्तिम कोन तक यह एक श्वास-मार्ग है; परन्तु जिस प्रकार रूपान्तर भेद से एक ही धमनी के भाग मान लिये हैं और उनके नाम रख लिये गये हैं, उसी प्रकार इस मार्ग के भी तीन भाग किये गये हैं और उनके भिन्न-भिन्न नाम दिये गये हैं। यथा—

(क) श्वासनलिका—इसका प्रारम्भ नाक के नथुनों से होता है और ग्रीवा के ऊपरी भाग तक जिह्वा के ज़रा नीचे तक इस भाग की अन्तिम सीमा होती है। यह भाग और भागों की अपेक्षा ज़रा चौड़ा है। यह मार्ग चूँकि मुख में से होकर जाता है, इससे मुख और नासिका का सम्बन्ध होजाता है। यही कारण है कि कई बार पानी आदि पीते समय हँसने आदि से पानी नासिका से निकलने लगता है।

(ख) स्वर-यंत्र—श्वासनलिका के अन्तिम भाग से लेकर इस नलिका के विभाग होने से पूर्व तक का भाग "स्वर-यंत्र" कहलाता है, क्योंकि हम सब स्वर, अक्षर इसी नलिका या यंत्र में भिन्न-भिन्न प्रतिघात करके उत्पन्न करते हैं। जिस समय हम कोई अक्षर बोलना चाहते हैं, उस समय प्राण-वायु फुप्फुस से चलकर स्वर-यंत्र में प्रतिघात करती है और फिर हम मुँह के ओष्ठ, जिह्वा की सहायता से बोलते हैं। इस स्वर-यंत्र की रचना घोड़े की नाल के आकार की तरुणास्थियों से हुई है, जो बीच में एक दूसरों से पेशियों के द्वारा जुड़ी होती हैं। इसका मार्ग प्रथम मार्ग से ज़रा तंग होता है।

(ग) यहाँ पर स्वर-यंत्र के दो भाग होजाते हैं और दक्षिणी भाग दक्षिणी फुप्फुस में और वाम भाग वाम फुप्फुस में चला जाता है। इन दोनों

भागों के फिर तीन और दो भाग होते हैं। तीन भाग दक्षिणी फेफड़े के तीन खंडों में जाते हैं और दोनों भाग, वाम फेफड़े के दोनों खंडों में। इनके इन-इन खंडों में और छोटे-छोटे भाग होजाते हैं। यहाँ तक कि ये इतनी छोटी-छोटी कोठरियों के रूप में बदल जाते हैं कि हम इनको आँखों से भी देख नहीं सकते। अब हम जब श्वास लेते हैं, तो यह श्वास-वायु इन कोठरियों में पहुँचती है, जिससे इनकी दीवाल फूलती है और जब श्वास निकालते हैं, तो इनकी दीवाल संकुचित होती है। इससे फिर अपनी स्थिति के क़रीब हो जाती है।

श्वास-क्रिया—इस क्रिया का प्रारम्भ शिशु के प्रथम श्वास से होता है, जो श्वास उसके रोने के रूप में होता है। इस एक रुदन रूपी श्वास से शिशु के फेफड़े काम करना प्रारम्भ कर देते हैं और यदि फेफड़े श्वास न लें तो वे इतने भारी होते हैं कि पानी में डालने से डूब जायँगे। यह एक गहरा श्वास फेफड़ों की कोठरियों तक वायु पहुँचा देता है। बस, अब वे अपना कार्य आप आरम्भ कर देती हैं और यह क्रिया जीवन की अन्तिम घड़ी तक रात-दिन चलती रहती है। इसका बन्द होना मृत्यु है। यह क्रिया युवा व्यक्ति में प्रत्येक मिनट में १५ से १८ बार होती है। रोग आदि के कारण इसमें अन्तर आजाता है। तब यह कम या अधिक होजाती है। इस क्रिया को नियंत्रित रखने के लिये परब्रह्म परमात्मा ने अंकुश रूपी एक केन्द्र बनाया है, जो कभी नहीं सोता। अपना मस्तिष्क दिन भर कार्य करके रात्रि को विश्राम चाहता है; परन्तु इसका केन्द्र सब समय चौकस रहता है। इस केन्द्र का स्थान अपनी ग्रीवा के पिछले भाग में "सुषुम्ना-काण्ड" में रक्खा है। वहीं से भिन्न-भिन्न तारों के द्वारा वह इस गति को अपने क़ाबू में रखता है।

इस क्रिया में फेफड़ों के आसपास की पेशियाँ भी सहायता करती हैं। जब हम श्वास लेते हैं, तब पसलियों में लगी पेशियाँ फैलती हैं। इनके साथ उरोदर-पटल भी नीचे को दबता है; चूँकि फेफड़ों को फैलने के लिये स्थान चाहिये। इस उरोदर-पटल के नीचे दबने से फेफड़ों को जहाँ स्थान मिलता है, वहाँ कोष्ठ के अवयव भी थोड़ी देर के लिये दब जाते हैं, इससे कोष्ठ की पेशियाँ भी तन जाती हैं। अब दूसरे क्षण में ये दबे हुये अवयव और उरोदर-पटल फिर ऊपर उठते हैं। इसके कारण अब फेफड़ों को दबना

पड़ता है, जिससे उनकी कोठरियों की भिन्नियाँ भी दबकर संकुचित होजाती हैं। इससे उनके अन्दर की वायु बाहर होजाती है। यह क्रिया इतने स्वाभाविक रूप में चल रही है कि मनुष्य का ध्यान इस ओर खिंचता ही नहीं। खाते-पीते, उठते-बैठते, चलते-सोते हुये यह अपने आप स्वयं चल रही है। जब कभी किसी रोग के कारण इसमें रुकावट आती है, तभी मनुष्य का ध्यान इस ओर जाता है।

श्वास-क्रिया से होनेवाले परिवर्त्तन—जिस प्रकार के वायुमण्डल में हम रहेंगे, उसी प्रकार की वायु को हम साँस के रूप में शरीर के अन्दर ले जायँगे। यदि पहाड़ के ऊपर रहेंगे तो वहाँ की वायु को अन्दर लेंगे और रेगिस्तान में होंगे तो वहाँ की वायु को शरीर के अन्दर लेंगे और इस वायु में जो भी वस्तुयें इस वायुमंडल में सूक्ष्मरूप में होंगी, वे भी इस वायु के साथ हमारे शरीर में पहुँचेंगी। उनमें से कई गुणकारी वस्तुयें शरीर के लिये लाभकर भी हो सकती हैं और कई शरीर को हानि भी पहुँचा सकती हैं। इसी प्रकार हम जहाँ खड़े होंगे वहीं अपनी अन्दर की वायु को बाहर करेंगे। यह वायु चूँकि शरीर के लिये हानिकारक होती है, अतः हमारे द्वारा प्रकृति इसे बाहर फेंकवा देती है। जहाँपर हम खड़े, बैठे या सोते हैं, वहाँ पर यदि बाहर की वायु और न आने दी जाय तो हमारे अन्दर से निकली वायु वहाँ भर जायगी। इस वायु से वह स्थान दूषित हो जायगा। इससे पता लगता है कि वहाँ की पहली वायु में कुछ परिवर्त्तन आगया है। इसी प्रकार का परिवर्त्तन हमारे शरीर में हर श्वास के साथ हो रहा है। ये परिवर्त्तन स्थूल दृष्टि से निम्न होते हैं—

(क) बाह्य प्राण-वायु के संसर्ग होने पर फेफड़ों के अन्दर का काला, भूरा रक्त एकदम लाल उज्जवल रंग का बन जाता है।

(ख) श्वास-प्रश्वास की गति से रक्त में कुछ उष्णिमा बढ़ जाती है।

(ग) श्वास-प्रश्वास-क्रिया से 'फिब्रिन' नामक तत्त्व में वृद्धि होती है।

(घ) श्वास से रक्त में ओषजन (औक्सीजन) की मात्रा बढ़ जाती है और 'कॉर्बोनिक एसिड गैस' तथा नत्रजन की मात्रा घट जाती है।

(क) इसके सिवा शरीर से वेगों को बाहर करने में (यथा—मल-त्याग में, सन्तान-प्रसव में) यह क्रिया विशेष सहायक होती है।

बाह्य वायुमंडल में सूर्य, हवा, पानी के वाष्प आदि के कारण निरन्तर परिवर्त्तन होता रहता है। इस परिवर्त्तन के कारण वायुमंडल सदा स्वच्छ बना रहता है। शरीर के अशुद्ध मल भी, जो हम इस वायुमंडल में फेंकते हैं, उपरोक्त परिवर्त्तनों से शुद्ध होजाते हैं और शुद्ध वायु भी शरीर में पुनः कुछ काल में अशुद्ध होकर बाहर आजाती है। इस प्रकार से यह एक चक्कर होता है। हम शुद्ध वायु को लेते हैं और उसको अशुद्ध रूप में फेंक देते हैं। शरीर इस वायु में से अपने लिये उपयोगी पदार्थ ले लेता है और अपने अनुपयोगी पदार्थ इसमें मिला देता है। इस प्रकार से शरीर का पोषण और उसकी शुद्धि होती रहती है।

इस गति से वायु में होनेवाला परिवर्त्तन निम्न-रूप में होता है। यदि हम एक हज़ार भाग श्वास-वायु के और एक हज़ार भाग प्रश्वास-वायु के एकत्रित करके परीक्षा करें तो उनमें निम्न वस्तुयें निम्न-रूप में पायेंगे।

वस्तुयें जो प्राप्त होंगी	श्वास की वायु प्रति १००० भाग	प्रश्वास की वायु प्रति १००० भाग
१. ओषजन	२०.८	१६.०
२. कॉर्बोनिक एसिडगैस	०.०४	४.०
३. नाइट्रोजन	७८.८७	७८.८७
४. जलीय वाष्प	अंशमात्र	अधिक मात्रा में
५. अन्य हानिकारक पदार्थ	स्वच्छ वायु मे नहीं होते	होते हैं।

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि मुख्य परिवर्त्तन नं० १ और नं० ~~४~~ २ में आया है। नम्बर चार—जलीय वाष्प की परीक्षा के लिये यदि हम शीशे पर अपनी साँस या फूँक फेंकें तो उस पर वाष्प भर जाते हैं और प्रथम

वस्तु-'कार्बोनिक एसिड गैस' की परीक्षा के लिये यदि हम एक प्याले में चूने का पानी भरकर उसमें प्रश्वास या फूँकें मारें तो कुछ समय के पश्चात् वह श्वेत—दूधिया होजायगा, जो श्वास की वायु—ओषजन से नहीं होगा। नाइट्रोजन जितनी हम फेंकते हैं, उतनी ही अन्दर ले लेते हैं। अन्य हानिकारक पदार्थ, धूल, धुआँ, सूक्ष्म-कण ये वायु-मंडल की स्थिति पर, जिसमें हम श्वास ले रहे हैं, निर्भर करते हैं। लाल, उज्ज्वल रक्त के अन्दर ओषजन की मात्रा अधिक रहती है और काले रक्त के अन्दर 'कार्बोनिक एसिड गैस' की मात्रा अधिक रहती है। जब यह मात्रा साधारणावस्था से अधिक बढ़ जाती है, तो श्वास में कठिनता होजाती है, अर्थात् रोगी प्राणवायु-ओषजन को भली-प्रकार श्वास-रूप में नहीं ले सकता। जिससे रक्त अशुद्ध होता जाता है और जब रक्त अधिक मात्रा में अशुद्ध होजाय तब स्थिति विषम होजाती है। साधारणतः जिस वायु में ओषजन की मात्रा कार्बोनिक एसिड गैस से अधिक रहती है, वह वायु शुद्ध है और वही शरीर भी स्वस्थ रहता है।

एक मनुष्य के लिये साधारणतः कितनी वायु की आवश्यकता है, इसका हिसाब विज्ञ चिकित्सकों ने लगाकर बताया है कि, एक तन्दुरुस्त, जवान आदमी प्रत्येक श्वास में ३० से ३५ घन इञ्च वायु लेता और छोड़ता है। इस प्रकार से सम्पूर्ण दिन-रात के २४ घण्टों में प्रत्येक मनुष्य ६,८६,००० अथवा ७ लाख घन इञ्च वायु का उपयोग करता है। मेहनत करनेवाले मनुष्य को इस राशि से अधिक चाहिये। इस परिमाण से हम किसी घर की वायु कितने मनुष्यों के लिये पर्याप्त है, इसका सहज ही में अनुमान कर सकते हैं और उस वायु में ओषजन या 'कार्बोनिक एसिड गैस' के अनुपात को जानकर उसकी शुद्धता को भी समझ सकते हैं।

पाचन-अवयव

'पञ्चभूतात्मके देहे आहारः पाञ्च भौतिकः।
विपक्वः पञ्चधा सम्यग् गुणान् स्वानभिवर्धयेत्॥'

ये अवयव मुख्य रूप से उदरगुहा में रहते हैं; इनके सहायक मूल अवयव शिरोगुहा में भी रहते हैं, क्योंकि सब अवयवों का आदि स्रोत यही हिरण्य-

मय-कोष शिरोभाग है। मुँह से लेकर गुदा-पर्यंत सब अवयव पाचन-अवयव कहलाते हैं। इन पाचन-अवयवों के द्वारा भुक्त आहार से "रस" उत्पन्न होता है और वही रस यकृत और प्लीहा में जाकर "रक्त" का रूप धारण कर लेता है, जो इस शरीर को जीवन दे रहा है। रक्त शरीर को जीवन देता है और रस शरीर का पोषण करता है। रस को उत्पन्न करनेवाले पाचन-अवयवों का प्रारम्भ मुँह से होता है। मुँह में दाँत और जीभ तो स्पष्ट हैं। इनके अतिरिक्त कुछ और ग्रन्थियाँ भी हैं, जो साधारणतः आँखों से नहीं दिखतीं, जिनके द्वारा मुँह लिसलिसा, चिकना रहता हैं। ये ग्रन्थियाँ छः हैं, जो जीभ के नीचे, जबड़ों के नीचे रहती हैं। इनका काम लाला-थूक उत्पन्न करना है, विशेषतः भोजन के चर्वण के समय।

दाँत बत्तीस या अट्ठाईस होते हैं। ये प्रकृत की चक्कियाँ हैं। इनमें कठोर भोजन पिसकर बारीक मैदा जैसा होजाता है। कुछ दाँत पीसते हैं, कुछ फाड़ते हैं। जीभ इस भोजन को इधर-उधर पलटती रहती है,। कभी इधर ले जाती है और कभी उधर, जिससे सारे भोजन में लाला-थूक भली-प्रकार मिल जाय और सारा भोजन पिसकर एकरस-मय होजाय। उसमें कोई कठिन अंश बाक़ी न रहे।

इस थूक या लाला के मिलने से भोजन में नीचे लिखे परिवर्त्तन आजाते हैं।

१. भोजन नर्म होजाता है, जिससे दाँत उसको अच्छी प्रकार चूरा कर सकते हैं।
२. अच्छी प्रकार चबाने से भोजन के रस का भी भली प्रकार पता लग सकता है।
३. भोजन के अन्दर वर्त्तमान कई पदार्थों में इस लाला के कारण रसायनिक अन्तर आजाता है। यथा—भोज्य-पदार्थ का निशास्ता (स्टार्च) भाग शर्करा में बदल जाता है (मधुर विपाक होजाता है)। इससे वह कुछ मीठा प्रतीत होता है।

आमाशय में पाचन-क्रिया—यह लाला-मिश्रित भोजन कुछ परिवर्त्तनों के साथ अन्न-नलिका से सीधा आमाशय में पहुँचता है। यहाँ पर वह आमाशय में से चूते हुये आमाशय रस के साथ मिल जाता है। यह रस अम्लता लिये हुये होता है। इसलिये भोजन भी अपना क्षारीय गुण छोड़कर अब अम्ल-गुणयुक्त होजाता है। यहाँ पर आमाशय की पेशियाँ इसको फिर

चक्कर देती हैं, जिससे और भी छोटे-छोटे टुकड़े बन जाते हैं और उन पर आमाशय-रस अपनी क्रिया भली प्रकार कर देता है। इस क्रिया के कारण यह आहार और भी अधिक सुपच होजाता है। यह आमाशयिक-रस प्रतिदिन दस से बीस पौण्ड पैदा होता है। यहाँ की गति के कारण वसा-चिकनाई के कण अलग-अलग होजाते हैं और जो कुछ अंश नरम और पचने योग्य होता है, वह यहाँ, आमाशय की भित्तियों में पहुँची रस-ग्रन्थियों के द्वारा खींचा जाकर रस-प्रणालियों में पहुँच जाता है और उनसे एक बड़ी 'रस प्रपा' द्वारा हृदय के वाम भाग में पहुँच जाता है। †

ग्रहणी में पाचन—आमाशय से भोजन प्राय: आधे घंटे के पश्चात् सूक्ष्मांत्र में जाने लगता है। जिस समय यह भोजन सूक्ष्मांत्र के प्रथमांश (ग्रहणी) में आता है, उस समय इसमें और भी रस आकर मिलते हैं। ये सब रस क्षार गुणवाले होते हैं। यह रस—क्लोम से आनेवाला पित्त और अग्नाशय से आनेवाला अग्नाशय का रस होता है। इनके मिलने से अब भोजन फिर क्षारीय होजाता है। इन रसों के मिलने से वह और भी सुपच बन जाता है। अब इस भोजन का रंग श्वेत साबुन-सा बन जाता है। ये दोनों रस पाचन-क्रिया के आरम्भ होने के साथ ही बनने प्रारम्भ होते हैं और पाचन-क्रिया की समाप्ति होने पर बनने बन्द होजाते हैं।

क्षुद्रांत्रों में पाचन—ग्रहणी से चलकर भोजन सूक्ष्मांत्र में आता है, जिसकी लम्बाई २७ फ़ीट के लगभग है। यहाँ पर भी क्षुद्रांत्रों का क्षारीय-रस इस आहार में मिलता है, जिससे वह और भी सुपच होजाता है। मुख्य रूप से यहीं इस भोजन का पाचन होता है। इस २७ फ़ीट के लम्बे मार्ग में वह पूर्णत: चूस लिया जाता है। केवल फोकट भाग ही शेष रहता है। भोज्य रस को चूसने के लिये यहाँ पर लम्बे-लम्बे अंकुर हैं, जो आँतों की दीवार

---

†एक बिल्ली को भोजन दिखाया गया, परन्तु दिया नहीं गया। इसके आमाशय को चीरकर देखा तो उसमें आमाशय रस मिला। दूसरी बिल्ली को भोजन दिखाया नहीं गया, उसके आमाशय में सीधा रख दिया गया। वह कहीं घंटे तक पड़ा रहा। वहाँ आमाशय रस नहीं मिला। इससे पता लगता है कि भोजनेच्छा आमाशय रस को उत्पन्न करती है। यही कारण है कि आँख से भोजन देखने पर जीभ में पानी भर आता है।

में छिपे रहते हैं। वे इस रस को खींचकर रस-वाहिनियों में पहुँचा देते हैं। वसा या चिकने पदार्थों का पाचन विशेषरूप में यहीं होता है।

बृहदांत्र में पाचन—क्षुद्रांत्रों से बचा फोकट भाग जब यहाँ पहुँचता है, तब उसमें रहा अवशिष्ट पानी का भाग यहाँ चूसा जाता है। पानी का शोषण सिवा इस बृहदांत्र के और कहीं नहीं होता और वह भी इसके अन्तिम भाग में सबसे अधिक होता है। भोजन में यदि कुछ उपयोगी अंश रह गया होता है, तो उसका पाचन इस बृहदांत्र में होजाता है। केवल निःसार भाग इस भाग से बचता है, जो गुदा के द्वारा बाहर होजाता है। द्रव का पाचन इस भाग में होता है। इसलिये जब भोजन मुँह से नहीं जा सकता, तब गुदा-मार्ग से दूध आदि पोषक पदार्थ देते हैं। इससे बृहदांत्र में उनका पाचन होने से शरीर को भी पोषण मिल जाता है।

पाचन-क्रिया सम्बन्धी आवश्यक बातें—

१. पाचन-क्रिया में भाग लेनेवाले लगातार २४ घंट, उरोगुहा के अवयवों की तरह काम नहीं करते। इनका कार्य मुँह में ग्रास आने पर आरम्भ होता है और उसके रस का चूषण होने पर बन्द होजाता है।

२. पाचन-क्रिया के अवयव रक्त ही में से इन रसों को उत्पन्न करते हैं और फिर इन रसों के द्वारा बने हुये आहार-रस ही से रक्त बनता है।

३. यदि सोते हुये बेभान अवस्था में भोजन दे दिया जाय तो रसों का पाचन पूर्णरूप से नहीं होता।

मूत्रावयव

"यदान्त्रेषु गविन्योर्यद् वस्तावधि संश्रितम्।
एवाते मूत्र मुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम्॥" अथर्व

मूत्र को उत्पन्न करनेवाले अवयव भी उदरगुहा में रहते हैं। ये अवयव वृक्क, मूत्रगविनी और मूत्राशय हैं। इनमें वृक्क मूत्र को रक्त से पृथक् करते हैं। यह रक्त धमनियों द्वारा गुरदे या वृक्क में पहुँचता है और वहाँ जाकर और भी छोटी-छोटी धमनियों में होता हुआ वृक्क के अन्दर फैली

हुई नलिकाओं के चारोंओर केशिकाओं में पहुँच जाता है। इन केशिकाओं की दीवारों में से रक्त का कुछ अंश नलिका के फूले हुये भाग में से चू जाता है। नली का फूला हुआ भाग छनने का काम करता है। जिस प्रकार कागज़ या कपड़े में से द्रव छन जाता है, उसी प्रकार नली की भित्ति में से रक्त का द्रव भाग छन जाता है। इस द्रव भाग के साथ रक्त में घुले हुये पदार्थ भी इस छनने में से छन जाते हैं, जिससे कुछ नमक, यथा— यूरिया, यूरिक एसिड आदि होते हैं। रक्त से अलग हुआ जल सम्पूर्ण वृक्क में से एकत्रित होकर उसके मुँह पर पहुँच जाता है और वहाँ से मूत्र-प्रणाली द्वारा मूत्राशय में आजाता है। वृक्क में इस प्रकार के बहुत से छनने लगे हुये हैं।

यहाँ पर यह स्मरण रखना चाहिये कि इस छनने में से साधारण स्वस्थ अवस्था में रक्त के अन्दर की शर्करा नहीं छनती। अतः मूत्र में शर्करा का अभाव रहता है, परन्तु रोग के कारण जब यह छनना खराब होजाता है, तब रक्त की शर्करा भी छनकर मूत्र के साथ आने लगती है। यह एक प्रकार का रोग है।

एक स्वस्थ व्यक्ति चौबीस घण्टे में १¼ सेर से १½ सेर तक मूत्र-त्याग करता है। ग्रीष्म-ऋतु में पसीना निकलने के कारण इसकी राशि घट जाती है और सर्दी में बढ़ जाती है। मूत्र का रंग गेहूँ की नाली के रंग से ज़रा गहरा होता है। ज्वर में गहरा पीला या लाल होजाता है। इसका गुरुत्व १०१५ से १०२५ तक रहता है। नीरोगी मूत्र में मिलनेवाले कुछ पदार्थ—

यूरिया—यह पदार्थ भोजन में नत्रजन होने के कारण बनता है। मांसाहारियों के मूत्र में इसकी मात्रा अधिक होती है। यह पदार्थ यकृत में बनता है और रक्त के द्वारा वृक्क में पहुँचता है और यदि वहाँ पूर्णरूप से बाहर न निकले तो रक्त ही के अन्दर रहता है, जिससे कि रक्त दूषित होजाता है।

यूरिक एसिड—यह पदार्थ भी नाइट्रोजन से बनता है। यह पदार्थ यदि बहुत अधिक मात्रा में बने या शरीर से पूर्ण बाहर न निकले तो जमकर शर्करा या अश्मरी—पथरी का रूप धारण कर लेता है, जो कभी-कभी वृक्क की नालियों में रुककर तीव्र दर्द को उत्पन्न करती है और मूत्राशय के मूत्र-द्वार को रोककर मूत्र बन्द कर देती है।

शर्करा—यह पदार्थ साधारणतः मूत्र से बाहर नहीं जाता; परन्तु शरीर के विकृत होने पर यह भी मूत्र में आने लगती है, जिससे कि इस मूत्र का गुरुत्व बढ़ जाता है और उसकी गन्ध में भी अन्तर होजाता है।

एल्ब्युमिन—यह एक पोषक और शरीर का उपयोगी पदार्थ है, परन्तु वृक्क के रोगों में यथा वृक्क पर चोट लगने पर यह मूत्र में जाने लगता है जिससे शरीर की शक्ति क्षीण होजाती है।

इसके अतिरिक्त "फौस्फेट" "औक्ज़ेलिक एसिड" आदि और भी पदार्थ मूत्र में आते हैं। अवस्थाओं के अनुसार इनकी राशि में अन्तर आजाता है।

जननेन्द्रिय अवयव

"द्व्यङ्गुले दक्षिणे पार्श्वे वस्तिद्वारस्य चाप्यधः।
मूत्रस्रोतः पथाच्छुक्रं पुरुषस्य प्रवर्त्तते॥" सुश्रुत

स्त्री और पुरुष के ये दोनों जननेन्द्रिय अवयव उदरगुहा ही में रहते हैं। पुरुष के अवयव कुछ समय पश्चात् बाहर दृश्यरूप में उतर आते हैं, जो अण्डकोष के अन्दर रस्सी के द्वारा लटकते रहते हैं। इनका कार्य रक्त के अन्दर से शुक्र को उत्पन्न करना है। साधारणतः यह अण्ड अन्तःस्राव अर्थात् ओज को उत्पन्न करते रहते हैं, परन्तु कामेच्छा उत्पन्न होने पर यह इस स्राव को बन्द करके वीर्य अर्थात् बहिःस्राव उत्पन्न करने लगते हैं। यह बहिःस्राव वृषण के अन्दर फैली हुई नलिकाओं में रक्त से उत्पन्न होता है और फिर सब नलिकाओं से संग्रहीत होकर उपाण्ड में आजाता है। यह उपाण्ड एक प्रकार की वीर्य-वाहिनी प्रणाली ही है जो एकत्रित होकर अण्ड के पार्श्व में पड़ी होती है और वहाँ से चलकर स्परमेटिक रस्सो के साथ-साथ वीर्याशय में पहुँच जाती है। इन वीर्य-वाहिनियों द्वारा अण्डों में उत्पन्न, वीर्य, वीर्याशय में पहुँच जाता है।

ओज—या अण्डों का अन्तःस्राव—साधारण स्वस्थ शरीर में यह अण्डों के द्वारा उत्पन्न होकर पुनः शरीर के अन्दर लय होजाता है। इसके कारण शरीर में दीप्ति और कान्ति, मेधा आदि रहते हैं। जिस प्रकार की उपवृक्क (सुप्रारीनल ग्लैण्ड) निकन्ठ-ग्रंथि (थाई रौयड ग्लैन्ड), पोषण-ग्रन्थि (पिट्रीट्युरी ग्लैंड) जो (क्रम से) वृक्क, ग्रावा और मस्तिष्क में

रहते हैं; वे अपना-अपना रस रक्त से अलग करते हैं और फिर उस बने हुये रस को रक्त ही में मिला देते हैं, जिससे हृदय द्वारा सारे शरीर में चक्कर लगने लगता है। इसी प्रकार यह "अण्ड" भी अपना रस रक्त से बनाते हैं और फिर शरीर-पोषण के लिये उसी में मिला देते हैं। इन सब ग्रन्थियों की कोई प्रणाली नहीं है। जैसे यकृत में क्लोम की प्रणाली है, वैसे रक्त में रस मिलाने के लिये इनमें कोई नाली आदि नहीं होती। अतः इस प्रकार की ग्रन्थियों को 'प्रणाली-रहित ग्रन्थियाँ' कहते हैं।

यह ओज शरीर के जीवन का आधार है। इसके नाश से शरीर का नाश होजाता है*। जिस प्रकार भ्रमर फल और पुष्पों से मधु का सञ्चय करता है, उसी प्रकार शरीर के सब गुण इसी "ओज" से पुष्ट होते हैं। अतः जीवन की इच्छावालों के लिये इसकी रक्षा करनी सबसे आवश्यक है।

वीर्य—या अण्डों का बहिःस्राव—जिस समय पुरुष के अन्दर कामेच्छा उत्पन्न होती है, उस समय शरीर के अन्दर रक्त ज़रा वेग से दौड़ने लगता है। धमनी में स्पन्दन ज़ोर से होने लगता है, मुँह पर लालिमा आ जाती है, श्वास की गति तेज़ होती है। इस समय रक्त के अन्दर भी अन्तर आजाता है†। इस अवस्था में "अण्ड" अन्तःस्राव बनाना बन्द करके बहिःस्राव उत्पन्न करने लगते हैं। चूँकि यदि वे इस समय अन्तःस्राव उत्पन्न करें, तो वह शुद्ध नहीं बनेगा। यह प्रकृति की अद्भुत माया है। इस समय जो शुक्र उत्पन्न होता है, वह संतानोत्पत्ति के लिये होता है। इस शुक्र में सब अवयव, शिर से लेकर पाँव तक अपना-अपना अंश भेजते हैं। रक्त की गति बढ़ने से रक्त सब स्थानों में घूमकर आता रहता है और सब अवयवों के प्रतिनिधियों को इकट्ठा करके वृषणों में आता है और वहाँ से शुक्र के रूप में सन्तानोत्पत्ति के लिये बाहर होता है। यह शुक्र उन नालियों से चूकर उसी

*(क) "यच्छरीरं स स्नेहः प्राणा यत्र प्रतिष्ठिताः।
ओजः शरीरे संख्यातं तन्नाशान्ना विनश्यति॥" चरक

(ख) "तत्र खलु रसादिनां शुक्रांतानां धातूनां यत्परं तेजः तत् खलु ओजः।
तदेव बलमुच्यते॥" सुश्रुत

†कामेच्छा के उत्पन्न होने पर या क्रोध के समय शिशु को दूध पिलाना (चूचकों से) हानिकारक है। चूँकि इस समय रक्त के अन्दर दोष आने से दूध भी दूषित होजाता है। क्योंकि दूध को स्तनमध्यवर्ती दुग्ध-ग्रन्थियाँ रक्त ही से उत्पन्न करती हैं। कहा भी है—

प्रकार बाहर आता है, जिस प्रकार नये घड़े के अन्दर का पानी उसके छिद्रों में से बाहर निकल आता है।

यह वीर्य यदि शरीर से न निकाला जाय, अर्थात् ओज के रूप में यदि शरीर के अन्दर रहे, तो शरीर को पुष्ट, मेधावी, कान्तिमान करता है। अतः इस वीर्य को जीवन का आधार कहा है† ।

शुक्र की स्थिति—जिस प्रकार गन्ने के अन्दर रस और दही के अन्दर घी रहता है और विशेषरूप से बाहर आता है, उसी प्रकार यह शुक्र भी सम्पूर्ण शरीर में रहता हुआ विशेष कारणों से बाहर आता है और जिस प्रकार एक छोटे आम के वृक्ष मे फल या पुष्प नहीं आते, अपितु उसके ठीक समय पर पुष्प आता है और फल आता है और कुछ सालों तक आने के पश्चात् फिर उसमें पुष्प और फल नहीं आते; उसी प्रकार इस मानव-देह में कुछ समय तक संभोगेच्छा होने पर भी वीर्य नही आता—इस अवस्था को बाल्यावस्था कहते हैं और जबतक वीर्य बाहर आता है, उस अवस्था को यौवनावस्था कहते हैं और फिर जब वीर्य आना बन्द होजाता है उसको वृद्धावस्था कहते हैं। बाल्यावस्था और वृद्धावस्था ये दोनों अवस्थायें सन्तानोत्पत्ति के अयोग्य हैं। इन अवस्थाओं में या तो सन्तान उत्पन्न नहीं होगी और होगी भी तो निर्बल और देर तक नहीं जियेगी* ।

बालकों में सोलह वर्ष से पूर्व जो श्वेत-चिकना, वीर्य के रंग का स्राव होता है, वह या तो वीर्य के मार्ग में रहनेवाली ग्रन्थियों का होता है, या वीर्याशय का। वीर्य होने पर भी इसमें "शुक्रकीट" नहीं होते और यदि हुये भी तो निर्बल होते हैं। यही अवस्था वृद्धावस्था में होजाती है। उस समय शुक्र-कीट निर्बल होजाते हैं। अतः संतानोत्पत्ति के अयोग्य रहते हैं। उसके अन्दर वह सान्ध्रता, वह मधुर गन्ध नहीं होती।

---

†"आहारस्य परधाम शुक्रं तद्रक्ष्यमात्मनः।
क्षयोऽह्यस्य बहून् रोगान्मरणं वा नियच्छति॥" चरक

* "नर्ते वै षोडशाद् वर्षात् सप्तत्याः परतो न च।
आयुष्कामो नरः स्त्रीभिः संयोगं कर्त्तुमर्हति॥१॥
अतिबालो ह्यसम्पूर्ण सर्व धातुः स्त्रियो व्रजन्।
उपतप्यते सहसा तडागमिव काजलम्॥२॥
शुष्कं रूक्षं यथा काष्ठं जन्तुदग्धं विजर्जरम्।
स्पृष्टमाशु विशीर्येत तथा वृद्धः स्त्रियो व्रजन्॥" ३॥ चरक

एक बार के वीर्यस्राव में वीर्य की मात्रा १ तोले से २½ तोले तक होती है और इसमें चार करोड़ शुक्र-कीट होते हैं। जिस व्यक्ति के जन्तु जितने पुष्ट होते हैं, उसका वीर्य उतना ही क्षमता-शील होता है। इन जन्तुओं का जीवित होना ही वीर्य में "जीव" है, इस बात को सिद्ध करता है। ढाई तोला वीर्य दो पौण्ड रक्त से बनता है और दो पौण्ड रक्त एक मन भोजन से बनता है। यह २½ तोला वीर्य बनने के लिये ४० दिन की जरूरत है।

स्त्रियों में शुक्र तथा सब धातुओं का बनना समान है, परन्तु इनका शुक्र पुरुष-शुक्र से भिन्न होता है। इनमें न तो वह गन्ध होती है और न इसमें कोई जीव होता है, न यह गर्भोत्पत्ति में कोई भाग लेता है। हाँ, इसका रंग अवश्य शुक्र से मिलता है और इसका स्थान भी योनि-मार्ग होता है और निकलता भी संभोगेच्छा के समय है। इसलिये सम्भवतः प्राचीन विद्वानों ने इसको यह नाम दे दिया होगा†।

जिस प्रकार विरेचक दवाओं से आदमी को रेच होता है और मूत्रल दवाओं से मूत्र अधिक आता है, उसी प्रकार शुक्र को बढ़ानेवाली दवाओं से पुरुष में शुक्र की मात्रा बढ़ जाती है और वह शीघ्र आने लगता है—अर्थात् संभोगेच्छा बढ़ जाती है। यद्यपि शुक्र आहार-रस का अन्तिम धातु है, तथापि जिस प्रकार एक चक्र, जो अपनी स्वाभाविक गति से चल रहा होता है, बलवान् मनुष्य के कारण तेज चलने लगता है, उसी प्रकार औषधि या खान-पान के कारण शुक्र भी शीघ्र बनने लगता है। इसलिये यह बात स्मरण रखनी चाहिये कि शुक्र की शुद्धता भोजन पर निर्भर है।

शुक्र को बढ़ानेवाली और शरीर को पुष्ट करनेवाली सबसे उत्तम वस्तु "दूध" है। दूध और शुक्र के गुण परस्पर मिलते हैं‡।

स्त्रियों के जननेन्द्रिय अवयव—जिस प्रकार पुरुषों में यौवनारम्भ होने पर उत्पादक अंगों में परिवर्त्तन आरम्भ होता है, अर्थात् विटप प्रदेश पर

† "योषितोऽपि स्रवन्त्येव शुक्रं पुंसां समागमे।
तद् न गर्भस्य किंचित्करोति इति न चिन्त्यते॥" वाग्भट

‡ "स्वादु शीतं मृदु स्निग्धं बहलं श्लक्ष्ण पिच्छिलम्।
गुरु मन्दं प्रसन्नं च गव्यं दश गुणं पयः॥"
"तदेवं गुणमेवौजः सामान्यादभिवर्धयेत्।
प्रवरं जीवनीयानां क्षीरमुक्तं रसायनम्॥" चरक

शिश्न के ऊपर बाल आने लगते हैं और शिश्न आकार में बढ़ जाता है, उसी प्रकार कन्याओं के युवती होने पर उत्पादक अंगों में परिवर्त्तन होता है। उनके बाह्य अंगों में बाल उत्पन्न हो जाते हैं और अन्तःअंगों में परिवर्त्तन होकर प्रति मास योनि-मार्ग से रज या रक्त आने लगता है। यह रज प्रायः बारह वर्ष की आयु से आरम्भ होकर ५० वर्ष की आयु तक रहता है। जबतक यह रजोदर्शन होता रहता है, तबतक कन्या गर्भ धारण करने के योग्य मानी जाती है। यह आर्त्तव प्रायः २८ वें दिन होता है, और ३-४ दिन तक रहता है।*

आर्त्तव या रज—यह एक प्रकार का रक्तमय स्राव है, जो गर्भाशय से प्रति २८वें दिन होता है। इसमें कफ का अंश मिला रहता है। जिससे वह शीघ्र नहीं जमता। इसकी प्रतिक्रिया क्षारीय होती है। इसमें गर्भाशय की भित्तियों के कुछ टूटे हुये अंश भी होते हैं। इसकी मात्रा एक छटाँक से चार छटाँक तक होती है। आर्त्तव प्रति मास क्यों होता है, इस प्रश्न का उत्तर अभी वैज्ञानिक नहीं दे सके; परन्तु जब यह होता है, उससे पूर्व गर्भाशय की दीवारों में रक्त संचार अधिक मात्रा में बढ़ जाता है। इस रक्त-संचार की वृद्धि के कारण गर्भाशय के अन्दर की कलामय भित्तियाँ मोटी हो जाती हैं। अब यह रक्त-वाहिनियों में से निकलकर कला में जगह-जगह इकट्ठा हो जाता है। इस रक्त संचय के कारण कला, मुलायम और पिलपिली हो जाती है। फिर रक्त कला से बाहर निकलता है। जब यह रक्त निकल चुकता है, तब यह कला फिर सिकुड़ जाती है, जिससे रक्त-वाहिनियों के मुँह बन्द होजाते हैं। टूटी हुई भित्ति फिर बन जाती है।

आर्त्तव के काल में स्त्री के मानसिक अवयवों में भी परिवर्तन होजाता है। उसमें आलस्य और अरुचि का होना साधारण बात है। स्वभाव चिड़चिड़ा होजाता है। आर्त्तव-काल में अंगों का टूटना भी साधारण लक्षण है।

आर्त्तव का सम्बन्ध डिम्ब के साथ है। रजोदर्शन से पूर्व डिम्ब परिपक्व नहीं होता और आर्त्तव के बन्द होने के पश्चात् डिम्ब ग्रन्थि

---

* "रसादेव स्त्रिया रक्तं रजः संज्ञं प्रवर्त्तते।
तद् वर्षाद् द्वादशाद् ऊर्ध्वं याति पञ्चाशतः क्षयम्॥" सुश्रुत

में सिकुड़ने लगती है और डिम्ब का निकलना बन्द होजाता है। रजोदर्शन के दूसरे या तीसरे दिन डिम्ब गर्भाशय में आ जाता है और अपनी अनुकूल स्थिति के कारण जीता रहता है। कइयों में यह डिम्ब अगले आर्तव-काल तक जीता रहता है।

रजोदर्शन का दूसरा अभिप्राय गर्भाशय को गर्भ धारण—ग्रहण करने के योग्य बनाना है। इसके द्वारा एक प्रकार से गर्भाशय की शुद्धि हो जाती है।

यह देखा गया है कि रजोदर्शन के पश्चात् के पक्ष में जितनी जल्दी गर्भाधान होता है, उतनी जल्दी पिछले दिनों में नहीं होता। अर्थात् रजोदर्शन के पन्द्रह दिन बाद गर्भाधान कम होता है। चूँकि गर्भाशय का कमल-मुख बन्द होने लगता है और गर्भ रहने पर स्त्री रजस्वला नहीं होती। जितने दिनों के अन्तर से स्त्री रजस्वला होती है, उतने दिनों को १० से गुणा करने पर प्रसव का दिन आ सकता है। अर्थात् जो स्त्री २८ वें दिन रजस्वला होती है, वह २८×१०=२८० दिन में बच्चा उत्पन्न करेगी।

दूध—गर्भाधान होने पर स्त्रियों में रजोदर्शन बन्द होजाता है और स्तनों के अन्दर वृद्धि आरम्भ होती है। गर्भ के चौथे या पाँचवें महीने में इनको दबाकर दूध भी निकाल सकते हैं और प्रसव के पश्चात् इसी दूध से शिशु का पालन होता है। यह दूध स्तन्य ग्रन्थियों में उत्पन्न होता है और वहाँ से दुग्ध को ले जानेवाली प्रणालियो द्वारा चूचकों मे आ जाता है और इन चूचकों से बच्चा दूध चूसता है। जिस समय फिर रजोदर्शन होता है, उस समय यह दूध कम हो जाता है या बन्द हो जाता है। यह दूध भी शरीरस्थ रक्त ही से उत्पन्न होता है।*

मैथुन—इस क्रिया के द्वारा पुरुष का शुक्र स्त्री की योनि में पहुँचता है। शिश्न मुण्ड में सांवेदनिक कण होते हैं। इसलिये इस स्थान की रक्षा के लिये प्रकृति ने इस पर त्वचा बनाई है। मुसलमान आदि धर्म के कारण या रोग के कारण जब इस त्वचा को काट देते हैं, तो यहाँ के कणों का स्पर्श-

---

* "रस प्रसादो मधुरः पक्वाहार निमित्तजः।
कृत्स्नदेहात् स्तनौ प्राप्तः स्तन्यमित्यभिधीयते॥"
"तदेवापत्य संस्पर्शाद् दर्शनात् स्मरणादपि।
ग्रहणाच्च शरीरस्य शुक्रवत्सं प्रवर्त्तते॥" सुश्रुत

ज्ञान कम होजाता है। यह शिश्नमुण्ड योनि की दीवारों से रगड़ खाता है। इस संघर्षण से स्त्री-पुरुष दोनों को एक विशेष आनन्द आता है *। योनि की दीवालों से एक चिकना, तरल पदार्थ चूता रहता है। (प्राचीन आचार्य इस रस को "शुक्र" कहते हैं)। इस रस से योनि की दीवारें तर रहती हैं और उनको किसी प्रकार की रगड़ नहीं पहुँचती।

शिश्नमुंड गर्भाशय के मुख के समीप पहुँच जाता है। थोड़ी देर पश्चात शुक्र बड़े वेग के साथ मूत्र बहिर्द्वार से बाहर निकलता है और गर्भाशय के मुख के पास ही योनि में गिर जाता है। कभी-कभी यह शुक्र गर्भाशय ही में गिरता है। शुक्र निकलने से मैथुन क्रिया की समाप्ति होजाती है। रक्त के लौट जाने से शिश्न शिथिल होजाता है। जब मैथुन ठीक-ठीक होता है, तो दोनों व्यक्तियों को एक विशेष सुख अनुभव होता है और तृप्ति अनुभव होती है †।

गर्भाधान—शुक्राणु को डिम्ब के साथ विशेष आकर्षण है। जो शुक्राणु प्रबल होता है वह डिम्ब की भित्ति को तोड़कर अन्दर पहुँच जाता है। गर्भाधान के लिये एक ही शुक्राणु पर्य्याप्त है। इस संयोग का नाम "गर्भाधान" है। इससे जो वस्तु बनती है वह गर्भ है।

कई बार ऐसा होता है कि दो शुक्राणु एक डिम्ब के साथ मिल जाते हैं। इससे जो बच्चा उत्पन्न होता है, उसके दो शरीर होते हैं, जो आपस में जुड़े होते हैं और कई बार दो शुक्राणु दो डिम्बों के साथ मिल जाते हैं, इससे दो बच्चे उत्पन्न होते हैं।

---

* (i) "ऋतौ स्त्री पुंसयोर्योगे मकरध्वज वेगतः।
मेढ्योन्यभिसंघर्षात् शरीरोष्मानिलाहतः ॥१॥
पुंसः सर्व शरीरस्थः रेतो द्रावयतेऽथ तत्।
वायुमैहन मार्गेन पातयेद्ंगना भगे ॥२॥
तत् संश्रुत्य व्यक्तमुखं याति गर्भाशयं प्रति।
तत्र शुक्रत्वायानेनार्त्तवेन युतं भवेत् ॥" १॥ अष्टांग संग्रह

(ii) "संयोगे योषितः पुंसां कण्डूतिरपनुद्यते।
तच्चाभिमान संसृष्टं सुखमित्यभिधीयते ॥" वात्स्यायन

† (i) "न ह्यसत्यांभाव प्राप्तौ गर्भः संभव इति बाभ्रवीयः।" वात्स्यायन

(ii) "तृप्तिश्च बीज ग्रहणं च योन्यां गर्भस्य सद्योनुगतस्य लिंगम् ॥" चरक

प्राय: यह माना जाता है कि यदि पुरुष का शुक्राणु प्रबल होगा, तो संतान पुरुष होगी और जब डिम्ब प्रबल हो और शुक्राणु निर्बल, तो स्त्रीलिंग उत्पन्न होगा ‡।

प्रसव किस प्रकार से होता है—जब बच्चे के नौ मास पूर्ण हो चुके होते हैं, उस समय गर्भाशय का मांस संकुचित होने लगता है। यह संकोच धीरे-धीरे लहरों के रूप में होता है। इन लहरों के साथ माता को पीड़ा होती है। इस संकोच के कारण अन्दर का स्थान तंग होने लगता है और अन्दर की वस्तु बाहर आने लगती है। इस दबाव में गर्भ के ऊपर की झिल्ली फट जाती है और 'गर्भोदक'—गर्भ के चारोंओर का पानी बह जाता है। इस संकोच के उत्तरोत्तर बढ़ने से गर्भाशय का मुख भी धीरे-धीरे चौड़ा होजाता है और शिर गर्भाशय के मुख पर आ जाता है और लगातार संकोच के कारण शिर योनि मार्ग से बाहर होजाता है। शिर के पीछे स्कन्ध, नितम्ब आदि और भी अवयव बाहर आ जाते हैं।

गर्भनाल—इस नाल या रज्जु के कारण शिशु गर्भाशय में माता के साथ जुड़ा होता है। यह नाल रक्तवाहिनियों का एक जत्था है, जिसमें धमनी और शिरायें होती हैं। इस नाल के द्वारा ही शिशु को रक्त, जीवन मिलता है। गर्भाशय से गर्भ के निकलने पर यह भी वहाँ से छूटकर बाहर आजाती है। जब शिशु श्वास-प्रश्वास लेने लगता है, उस समय यह व्यर्थ होजाती है और चिकित्सक या धात्री इसको कैंची से काट देती है।

चेतना-यन्त्र

(Nervous system)

"तद्वाऽथर्वणः शिरो देवकोषः समुब्जितः ।
तत्प्राणोऽभिरक्षति शिरोऽन्नमथो मनः ॥" अथर्ववेद

मस्तिष्क और चेतना-यंत्र—शरीर के अन्दर चलते हुये व्यापार को और शरीर के साथ सम्बन्ध रखनेवाले बाहर के व्यापार को संदेश के रूप में लेजानेवाले तन्तुओं को मज्जा-तन्तु (चेष्टावह और संज्ञावह) कहते हैं।

---

‡ "रक्तेन कन्यामधिकेन पुत्रं, शुक्रेण तेन द्विविधीकृतेन ।
बीजेन कन्यां च सुतं प्रसूते यथास्वबीजान्यतराधिकेन ॥" चरक.

इन तन्तुओं के समूह-चक्रों को "चेतनाचक्र" (Nerve-centres) कहते हैं; और इस सब व्यापार को और इससे सम्बन्धित सम्पूर्ण प्रदेश को चेतना-यंत्र (Nervous-system) कहते हैं। इस चेतनायंत्र का मुख्य भाग मस्तिष्क और पृष्ठवंश में रहता है। मस्तिष्क और करोड़रज्जु का कुछ वर्णन दूसरे प्रकरण में किया जा चुका है; परन्तु मस्तिष्क और उससे निकलते हुये चेतना-तन्तु शरीर में क्या कार्य करते हैं, इस बात का विचार यहाँ करेंगे। इस चेतना-यंत्र को समझने के लिये प्रथम इसके उत्पत्ति-स्थान और मस्तिष्क-सम्बन्धी कुछ ज्ञान होना चाहिये।

'पृष्ठवंश' (Spine) इस पृष्ठवंश की सहायता से हमारे शिर, धड़ टिके हुये हैं। यह वंश अँगूठी के आकार के ३३ मणकों से जुड़कर बना है। यह पृष्ठवंश कहीं पर अन्दर को गया है और कहीं पर बाहर को। वृद्धावस्था में यह कमर पर से और भी बाहर निकल आता है। यह जितना ही अधिक सीधा रहता है, उतनी ही मनुष्य की आयु लम्बी होती है।

कहना है कि गर्भावस्था में सबसे प्रथम बालक में यही बनता है। योगशास्त्र में जिसको मेरुदंड कहा है, वह यही पृष्ठवंश है। शरीर को धारण करने के अतिरिक्त यह वंश मस्तिष्क-व्यापार में बहुत सहायता पहुँचाता है; क्योंकि इन ३३ मणकों के बीच का छिद्र खोखला है और जब ये मणके ईंट की भाँति एक दूसरे पर चिनकर रक्खे होते हैं, तब ये छिद्र एक सीध में आजाते हैं। इस छिद्र में से मगज-तन्तु मस्तिष्क में से निकलकर इस मार्ग से सम्पूर्ण शरीर में फैलते हैं।

बृहत मस्तिष्क (Cerebrum)—चेतना-यंत्र का मुख्य स्थान मस्तिष्क है और दूसरा स्थान पृष्ठ-वंश है। यह अपना मस्तिष्क दो गोलार्द्धों में बँटा हुआ है। इन दोनों गोलार्द्धों के बीच में बाह्य पट का परदा आया हुआ है। इन गोलार्द्धों की ऊपरी पृष्ठ पर गहरी सीतायें पड़ी हैं। प्रत्येक अर्ध-गोलक के बीच में एक पोल होती है। इस प्रत्येक पोल के अन्दर अत्यन्त आवश्यक अवयव होते हैं। अन्दर दो उभार हैं, इन्हीं के ऊपर स्पर्श और गति का आधार है। आर्यशास्त्र के अनुसार, या योगशास्त्र में जिसको "ब्रह्मरन्ध्र" कहते हैं, वह स्थान इसी भाग में है। मस्तिष्क के इस भाग के नीचे मध्य मस्तिष्क (Ponsvirolii) होता है। पृष्ठवंश द्वारा आये हुये संदेशों को मस्तिष्क में पहुँचाने का, और मस्तिष्क की आज्ञाओं को पृष्ठवंश

के तन्तुओं में देने का कार्य मस्तिष्क का यही मध्यभाग करता है। यहीं पर दृष्टि तन्तु भी विभक्त होते हैं। यह एक प्रकार से तन्तुओं का परस्पर 'क्रौस' होने का स्थान है।

इस भाग में से बारह तन्तु जोड़ों के रूप में निकलते हैं। जो कि निम्न प्रकार हैं। ये सब तन्तु शरीर के सब मुख्य अंगों में और पंच ज्ञानेन्द्रियों में पहुँचते हैं। यथा—

बारह तन्तु युग्म—

(१) दर्शन-तन्तु—मस्तिष्क के 'ओपटिक थैलिमा' और 'कोरपरा-क्यार्डिजिम्रा' नाम के प्रदेशों से निकलकर दोनों पार्श्वों के समस्त तन्तु-प्रवाहों के आसपास लिपट जाते हैं।

(२) घ्राण-तन्तु—मस्तिष्क के तलेटी प्रदेश में घ्राणतन्तुओं की जड़ों के पास से निकलकर मस्तिष्क की तलेटी के अग्र भाग में होते हैं। और वहाँ से अपनी बीस शाखाओं के रूप में नासिका के अन्दर फैले हैं।

(३-४-६)—संख्या के तन्तु युग्म अक्षिगोलकों में प्रविष्ट होकर नेत्र-संचालक पेशियों के साथ जुड़ते हैं ये तीनों क्रिया-तन्तु हैं।

(५) पाँचवे नम्बर का तन्तु युग्म 'त्रिशिरा' तन्तु युग्म है। इसका विशेष सम्बन्ध मुख के साथ है।

(७) सातवाँ तन्तु मुखाभिगम तन्तु है।

(८) श्रौतिक तन्तु है—यह प्रायः सुनने का कार्य करता है।

(९) मिश्र तन्तु है—यह तीन प्रकार से विभक्त होता है।

(१०) 'वेगस' या 'न्यूमो थोरेकेस'।

(११) सहानुभूति प्रदर्शक तन्तु युग्म।

(१२) जिह्वाधःरीय तन्तु युग्म।

मनुष्य की बुद्धि का मुख्य आधार मस्तिष्क है। जिस मनुष्य के मस्तिष्क की सीतायें मोटी, गहरी और गुंचणदार अधिक होती हैं, वह अधिक बुद्धिमान होता है। मस्तिष्क के इन सीताओं में धूसर पदार्थ भरा होता है। इस पदार्थ की अधिकता ही बुद्धि का आधार है। इस मस्तिष्क में बाह्य ज्ञान को ले जानेवाले तन्तु और उनके लाये हुये ज्ञान को संस्मरणों के रूप स्थिर रखने के लिये यहाँ पर तन्तु होते हैं। शरीर में उत्पन्न होनेवाली इच्छायें और दूसरे "ऐच्छिक" व्यापार इस मस्तिष्क द्वारा प्रकट होते हैं। स्मृति आदि

धर्म भी इसी मस्तिष्क के द्वारा प्रगट होते हैं। विषयों को समझने, उनके संस्कारों को स्मरण रखने, विचार करने, आदि सब ज्ञान का आधार यही है। कोई भी सन्देश इस वृहत मस्तिष्क में पहुँचे बिना अंत:करण नहीं पहुँच सकता। मस्तिष्क में चोट पहुँचने पर कोई कार्य नहीं हो सकता।

लघु मस्तिष्क (Creuellum)—मस्तिष्क के पिछले भाग में, शिर की अस्थि के नीचे यह लघु मस्तिष्क रहता है। यह एक छोटी नारंगी के आकार का होता है। इसको काटने पर इसमें पुस्तक के पन्नों की भाँति छोटे-छोटे पत्र मालूम होते हैं। इस लघु मस्तिष्क में ज्ञान और विचार के तन्तु नहीं होते। यह ऐच्छिक गतियों को (यथा—चलने, फिरने, हाथ को उठाने, गिराने आदि) शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों में पहुँचाता है। इसका कार्य गति देना और शरीर के स्नायु-मांसपेशियों पर अंकुश रखना है।

मध्य मस्तिष्क (Porvs Virolii)—वृहत मस्तिष्क के नीचे यह भाग आया है। ब्रह्मरन्ध्र प्रदेश में चार कोनोंवाला एक चौड़ा स्थान है। इसी को 'सेतु' या मध्य मस्तिष्क कहते हैं। सामने के भाग में यह ज़रा लम्बा है, और पिछला भाग 'मैडूल्या औवलैगेठा'-"सुषुम्ना काण्ड" के साथ जुड़ा हुआ है। यह सेतु श्वेत तन्तुओं से बना हुआ है; ये तन्तु वृहत् मस्तिष्क के दोनों गोलार्द्धों को परस्पर मिलाते हैं। सुषुम्ना, सुषुम्ना काण्ड इन दोनों भागों को यही सेतु मस्तिष्क की तलेटी में रहनेवाली पोल के साथ जोड़ता है। मस्तिष्क की तलेटी में से ९ तन्तु युग्म निकलते हैं। उन तन्तुओं का इस सेतु के साथ सम्बन्ध रहता है। वृहत् और लघु दोनों मस्तिष्कों को यदि काट भी दिया जाय, तो भी इस सेतु में इच्छाशक्ति चलती रहती है और मन को ज्ञान का भास होता है। मस्तिष्क से जो चेतना-तन्तु (संज्ञावहा) बाहर जाते हैं, वे इस सेतु ही से होकर जाते हैं, और जो संज्ञावह तन्तु मस्तिष्क में आते हैं, वे भी इसीमें से होकर मस्तिष्क में पहुँचते हैं। एक प्रकार से यह "सेन्ट्रल टेलीफ़ोन" का कार्य करता है।

सुषुम्ना काण्ड—इसका वर्णन आगे किया जायगा। यह बहुत ही सुकोमल भाग है, शरीर के सम्पूर्ण जीवन का आधार इसी पर है। इसको यदि थोड़ी-सी हानि पहुँचे तो प्राणहानि होजाय। इसको इसलिये "प्राण-ग्रन्थि" भी कहते हैं। इतनी आवश्यक वस्तु को भगवान ने मस्तिष्क की

तलेटी में छिपाकर रक्खा है, जिससे किसी प्रकार का नुक़सान इसको न पहुँचे।

चेतना चक्र (Nerul Centres)—मस्तिष्क का निर्माण सूक्ष्म तन्तुओं अथवा सूक्ष्म अणुओं के द्वारा होता है। ये तन्तु श्वेत पतले सूक्ष्म पदार्थ के तन्तुओं से (Filres) बने हैं। ये तन्तु भिन्न-भिन्न मूलों में से निकलते हैं। इन मूलों को 'चेतन चक्र' या 'नर्व सेन्टर' कहते हैं। सूर्य के चारों ओर जिस प्रकार किरणें बिखरी रहती हैं, उसी प्रकार इन चक्रों के चारों ओर तन्तु निकलते रहते हैं। सब प्रकार के ज्ञान और क्रिया का बीज इन चेतना चक्रों में रहता है। इस प्रकार के चेतना चक्र हजारों हैं। ये चक्र दो प्रकार के हैं। एक चेष्टावहा —अर्थात् चेष्टा को ले जानेवाले, जो कि लघु मस्तिष्क में रहते हैं और दूसरे संज्ञावहा-ये संज्ञा को ले जाते हैं-ये बृहत् मस्तिष्क में रहते हैं और मध्य मस्तिष्क में आकर इनसे उत्पन्न तन्तु आपस में मिलकर सुषुम्ना काण्ड के द्वारा पृष्ठवंश में पहुँच जाते हैं और वहाँ से सब अंगों में फैल जाते हैं।*

पृष्ठवंश—मस्तिष्क के सब तन्तु (चेष्टावहा और संज्ञावहा दोनों प्रकार के) सुषुम्ना कन्द के रूप में रज्जु के आकार में इकट्ठे होकर गुदा तक पहुँचे हुये हैं। पृष्ठवंश में से कुछ तन्तु स्थान-स्थान पर जोड़ों के रूप में बाहर निकल आते हैं। ये तन्तु वही होते हैं, जो कि मस्तिष्क से मेरुदण्ड के अन्दर वाले छिद्र में से नीचे रस्सी के रूप में गुदा तक जा रहे होते हैं। ये तारों के रूप में फटते हैं और बाहर आकर फिर एक रस्सी के रूप में बँट जाते हैं।

इस प्रकार के तन्तु युग्म इकतीस हैं। जो कि पृष्ठवंश के दोनों ओर फटे हुये हैं और शरीर के भिन्न-भिन्न भागों तक पहुँचे हुये हैं। शरीर की गति और ज्ञान-शक्ति का सारा आधार इन्हीं तन्तुओं पर है। इनका विभाग इस प्रकार से है—

(क) ग्रीवा के अन्दर सात मणकें हैं—अतः ग्रीवा प्रदेश से निकलनेवाले तन्तु युग्म सात हैं, और ये दोनों हाथ, गरदन और चेहरे में जाते हैं।

---

* प्राणः प्राणभृतां यत्र श्रिताः सर्वेन्द्रियाणि च।
यदुत्तमांगमंगानां शिरस्तदभिधीयते ॥ (चरक)

(ख) पृष्ठवंश में बारह मणकें हैं—इसलिये इस भाग में बारह तन्तु युग्म निकलते हैं। जो कि छाती, पार्श्व और पसलियों में फैले हुये हैं।

(ग) कटि-प्रदेश में पाँच मणकें हैं—अतः इस भाग में पाँच तन्तु युग्म बाहर आते हैं। ये तन्तु पेट, वस्ति और पांव में जाते हैं।

(घ) त्रिक-प्रदेश पाँच मणकों के जुड़ने से बना है—इसमें से भी पाँच ही तन्तु युग्म बाहर जाते हैं। जो कि पेडू के अन्तः अवयवों में, जङ्घा, आंत्र, मूत्राशय, स्त्रीयोनि, जननेन्द्रिय तथा दोनों पैरों के पिछले भाग में जाते हैं।

(ङ) गुदास्थि—यहाँ से दो तन्तु युग्म निकलते हैं। ये गुदा के भाग में ही जाते हैं।

इन दोनों प्रकार के तन्तुओं के निकलने में भी भेद है। चेष्टावहा तन्तु मणकों के सम्मुख और पार्श्ववर्त्ती भागों में से निकलते हैं। और संज्ञा वहा तन्तु पिछले भाग में से निकलते हैं। यदि इन चेष्टा वहा तन्तुओं को काट डालें तो जिन-जिन भागों में ये तन्तु पहुँचते हैं, उन-उन भागों में क्रिया की शक्ति का नाश होजाता है, और यदि ज्ञान तन्तुओं का मूल काट दिया जाय तो जिन भागों में ये तन्तु पहुँचते हैं, वहाँ इनकी संज्ञा नष्ट हो जाती है। इन संज्ञावह तन्तुओं के साथ एक और भी विशेषता है, वह यह कि जिस भाग में ये तन्तु होते हैं, यदि उस स्थान का पोषण बन्द हो जाय तो ये संज्ञावह तन्तु भी उस स्थान के निर्बल हो जाते हैं।

मस्तिष्क से जो भी ज्ञान या क्रिया चलती हैं, वह इन तन्तुओं के द्वारा शरीर के अंगों में पहुँच जाती है, परन्तु हाथ या पैर से जो संज्ञा या चेष्टा ज्ञान मस्तिष्क की ओर जाता है, वह उसी रज्जु या तन्तु के द्वारा ऊपर नहीं जाता। परन्तु सामने की रज्जु में जाकर उसके द्वारा यह ज्ञान मस्तिष्क में ऊपर चढ़ता है। यदि पृष्ठवंश के वाम ओर के तन्तु काट दिये जायँ तब इसके विरुद्ध के अंगों में ज्ञान-शक्ति का नाश हो जाता है। इस प्रकार से ज्ञान तन्तुओं के तारों के अगले भाग गति तन्तुओं के साथ मिलकर एक दूसरे के विरुद्ध दो भागों में बँटकर चले जाते हैं। अर्थात् दक्षिणी पार्श्व में मस्तिष्क से चले हुये तन्तु वाम पार्श्व से पहुँच कर समाप्त होते हैं। शरीर के ऊपर जो ऊष्णता या शीत का ज्ञान होता है, वह ज्ञान सुषुम्ना

दण्ड में से निकलते हुये ज्ञान-तन्तुओ द्वारा सुषुम्ना दण्ड में पहुँचता है और पीछे सुषुम्ना दण्ड में से मस्तिष्क में पहुँचता है। मस्तिष्क के पीछे यह ज्ञान अन्तःकरण में पहुँचता है।

सुषुम्ना काण्ड (medula-oulangata)—सुषुम्ना दण्ड के मूल भाग को यह नाम दिया गया है। सुषुम्ना काण्ड का मूल स्थान मस्तिष्क की तलेटी में है। वहाँ पर इसका आकार छोटे गोलकन्द के रूप में रहता है। इसका मध्य मस्तिष्क के साथ बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है। यह प्रदेश बहुत ही कोमल होता है। इसलिये ही इसको मस्तिष्क में खूब छिपाकर रक्खा है। जिससे किसी प्रकार का आघात इस तक नहीं पहुँचता। सुषुम्ना दण्ड और सुषुम्ना काण्ड यह एक ही वस्तु के दो भाग हैं। मनुष्य के जीवन का आधार इस सुषुम्ना काण्ड पर ही है। यदि संपूर्ण मस्तिष्क काट दिया जाय, और यह स्थान सुरक्षित रहे तो भी मनुष्य कुछ समय तक जीवित रह सकता है। उसका श्वास-प्रश्वास चलता रहता है, परन्तु इस भाग के कटने से तत्काल मृत्यु हो सकती है। श्वास-प्रश्वास की क्रिया इस सुषुम्ना काण्ड के एक भाग की प्रेरणा से हो रही है। इस भाग में से एक तन्तुयुग्म (न्युमोगैस्ट्रीक) निकलता है; जो कि मस्तिष्क से निकलने वाले बारह तन्तुओं में से दसवाँ है। श्वास-प्रश्वास की क्रिया इस कन्द की परावर्त्तन शक्ति से होती है। श्वास-प्रश्वास के इच्छाधीन और अनिच्छाधीन व्यापार भी इसी भाग में से होते हैं। छींकना, उल्टी करना, मल-मूत्र का त्याग और गर्भ का गर्भाशय से बाहर निकलना (आपान वायु के कर्म भी) आदि कार्य भी श्वास क्रिया के ही एक अंगमूल हैं। अतः आयुर्वेद में ये कार्य उदान, अपान आदि वायु के बताये हैं, जो कि प्राण वायु के ही भेद हैं। और इन सबका आधार यह अपना सुषुम्ना काण्ड ही है। जहाँ कि दसवाँ तन्तु युग्म निकलता है। और यही तन्तु जिस प्रकार अपनी शाखाओं द्वारा फेफड़ों और हृदय में फैला है, उसी प्रकार आंत्र, मूत्राशय, गर्भाशय और आमाशय में फैलता है। इस सुषुम्ना काण्ड के ऊपर ही जीवन का आधार होने से इनको "प्राण-ग्रन्थि" भी कहते हैं। बोलना आदि कार्य भी इसी दसवें तन्तु की सहायता से होते हैं।

सहानुभूति-प्रदर्शक तन्तुओं की ग्रन्थिमाला—पृष्ठवंश के दोनों ओर कुछ ग्रन्थियाँ चेन के रूप में रक्खी हुई हैं। यह ग्रन्थिमाला उपरोक्त सब

तन्तुओं से, सब चक्रों से भिन्न है। इन ग्रन्थियों के द्वारा शरीर के अन्दर नियमित व्यापार चल रहा है। बाह्य शरीर का नियंत्रण मस्तिष्क और सुषुम्ना के ज्ञान तन्तु या क्रियातन्तुओं से होता है। परन्तु अन्त: शरीर का यथा—हृदय, फेफड़े, आमाशय, आंत्र आदि का नियमन इस ग्रन्थिमाला के द्वारा ही होता है। जैसे कि यदि मनुष्य चाहे कि नाक पर बैठी मक्खी को उड़ाऊँ, या मेज पर की पुस्तक को उठाऊँ, तो मस्तिष्क से चली हुई चेष्टावहा नाड़ी हाथ को गति देकर वैसा करा देती है; परन्तु मनुष्य यदि यह चाहे कि आमाशय गति न करे, या आंत्र गति न करे तो वह इसको नहीं रोक सकता। इसमें विकार तभी होगा जब कि इन पर अंकुश रखनेवाले अवयव में अन्तर आ जावे। और अंकुश रखनेवाला अवयव यह ग्रन्थिमाला है। इससे स्पष्ट है कि इस ग्रन्थिमाला का नियंत्रण "अनैच्छिक" मांसपेशियों पर है। और मस्तिष्क और सुषुम्ना का नियंत्रण "ऐच्छिक" मांसपेशियों पर है। ग्रन्थि-माला की हजारों शाखायें रक्त-वाहिनियों में, हृदय में, फेफड़ों में, छाती के प्रदेश में, वस्ति में, आंत्र में, मूत्राशय में, वृक्कों में, यकृत में, सब अवयवों में फैली हुई हैं। और सारे शरीर की खबर रखती हैं। जब देखती हैं कि शरीर के एक भाग में रक्त कम पहुँच रहा है तो उसकी सूचना मस्तिष्क को देकर उस स्थान में रक्त की मात्रा बढ़ा देती हैं; इस प्रकार से सब स्थानों पर रक्त समान पहुँचता है और रक्त-वाहिनियों का संकोच-विकास भी एक समान होता है। सब प्रकार के मानसिक भावों का प्रदर्शन इन्हीं ग्रन्थमाला के द्वारा होता है। जैसे कि—स्त्री के देखने से पुरुष में कामेच्छा का उत्पन्न होना, या क्रोध के उत्पन्न होने से मुँह पर लाली आना, बच्चे को देखकर माता के स्तनों से दूध का चूना, दु:ख के कारण आँखों से पानी आना आदि कार्य सब ग्रन्थिमाला के द्वारा होते हैं। इसी प्रकार आमाशय, या आंत्रों को अब किस वस्तु की जरूरत है, वह इसी माला से अनुभव होता है। इसी प्रकार मूत्र से मूत्राशय के भरने पर उसको त्याग करने की इच्छा भी इसी के द्वारा होती है।

इस उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि ज्ञान दो प्रकार का है। एक ज्ञान तो तन्तुओं के द्वारा मस्तिष्क में पहुँचता है। दूसरा ज्ञान, जिसके द्वारा भूख, प्यास, मूत्र-त्याग या मल त्याग की इच्छा या अनुभव होती है, वह है। यह ज्ञान इस सहानुभूति प्रदर्शक ग्रन्थिमाला के द्वारा अनुभूत होता है। संक्षेप से

विचार-शक्ति, मनन-शक्ति का स्थान मस्तिष्क में रहता है। जिसके द्वारा मनुष्य यह सोचता है, कि मैं नाक पर बैठी मक्खी को उड़ाऊँ, या नहीं; मैं आग के समीप और अधिक देर रहूँ या नहीं; यह सब विचार और निर्णय मस्तिष्क में होता है। इस निर्णय के अनुसार अपना लघु मस्तिष्क कार्य कराता है। दूसरे प्रकार के ज्ञान का स्थान सुषुम्ना और यह ग्रन्थिमाला है। इसमें मनुष्य का कोई वश नहीं होता।

शरीर में असंख्य तन्तु, जाल के रूप में फैले हुये हैं। ये बहुत ही पतले तागे की तरह हैं। इनके अन्दर तेल जैसा स्वच्छ पदार्थ भरा होता है। इस पदार्थ में तन्तुओं का गुण रहता है। बिजली के तार में जिस प्रकार अन्दर धातु रहती है और ऊपर गटापरचे का लेप होता है, उसी प्रकार इन सूत्रों के अन्दर ही अन्दर प्रवाही तरल पदार्थ रहता है, और ऊपर सूत्र तन्तु। इस प्रकार अनेक तन्तु एकत्रित होकर बंडल बनाते हैं, और कई बंडल मिलकर एक स्थूल तन्तु बनाते हैं। अपने सब ज्ञान इसी तरल पदार्थ के द्वारा मस्तिष्क तक पहुँचते हैं और इसी के द्वारा मस्तिष्क से आते है। यह काम तार वर्की के समान चलता है। जिस प्रकार यहाँ के तार लाखों मील तक पहुँच जाते हैं, उसी प्रकार पैर का ज्ञान मस्तिष्क में पहुँच जाता है। संदेशा ले जानेवाला यही प्रवाही द्रव है। प्रत्येक तन्तु के दो छोर होते हैं। एक छोर मस्तिष्क में रहता हैं और दूसरा शरीर के उस भाग में जहाँ कि तन्तु पहुँचा होता है। शरीर के अन्दर नख से लेकर शिर तक ऐसा कोई स्थान नहीं, जहाँ ये तन्तु न हों। यदि किसी कारण से यह तन्तुओं के तार टूट जायें, या इसमें कोई विकार हो जाये, तब मस्तिष्क तक ज्ञान नहीं होता। उदाहरण के लिये जिस प्रकार कि पक्षाघात रोग में, जब कि पृष्ठवर्त्ती तन्तु मर जाते हैं, तब स्पर्श-ज्ञान नहीं होता। इसी प्रकार यदि स्पर्श-ज्ञान के केन्द्र पर चोट आ जाय तो इस ज्ञान को अनुभव करने का स्थान नष्ट होजाता है। इससे भी स्पर्श-ज्ञान नहीं हो सकता। तीसरी बात यह है कि स्पर्श-ज्ञान को ले जानेवाला तन्तु बीच में से कट जाय, तब भी मस्तिष्क तक ज्ञान नहीं पहुँच सकता। इसलिये तीनों साधन ठीक हों तभी हमको ज्ञान हो सकता है। ज्ञान करनेवाला, ज्ञान ले जानेवाला और ज्ञान को लेने (ग्रहण करनेवाला) वाला तीनों वस्तुयें सही सलामत होने पर ही ज्ञान हो सकता है, अन्यथा नहीं।

शरीर की सब आन्तरिक और बाह्य क्रियायें मस्तिष्क तथा इसके अंगभूत वात संस्थान के अधीन हैं। तन्तु या सूत्र इसके जासूस हैं। इनमें ज्ञान-तन्तु (संज्ञा वहा) सब प्रकार की खबरे मस्तिष्क में पहुँचाती हैं। मस्तिष्क उन पर विचार करता है और फिर गतितन्तुओं (चेष्टा वहा) को आज्ञा देता है। उनके द्वारा उस अवयव की मांसपेशी गति करती है। उदाहरण के लिये नाक पर मक्खी बैठती है; नासिका के संज्ञावहा तन्तुओं ने मस्तिष्क में खबर दी कि नाक पर मक्खी बैठी है, मस्तिष्क ने (मन द्वारा) सोचा कि उसका बैठना अच्छा नहीं, फौरन हाथ को आज्ञा हुई कि इसको उड़ाओ। उसी समय लघु मस्तिष्क में से हाथ के चेष्टावहा तन्तुओं को आज्ञा हुई। उन्होंने हाथ को ऊँचा करनेवाली और घुमानेवाली पेशियों को गति दी; हाथ ने नासिका के पास जाकर मक्खी को हटाया। यह कार्य इतनी शीघ्रता से होता है, कि आदमी कल्पना भी नहीं कर सकता। यही तो उस परब्रह्म का आश्चर्य है। 'किमाश्चर्य्यं मतः परम्'।

ज्ञानेन्द्रियाँ (Organs of senses)

"पंचाभिभूतस्त्वथ पंचकृत्वा, पंचेन्द्रियं पञ्चषुभावयन्ति।"
पंचेन्द्रियं पंचषुभावयित्वा पंचत्वमायान्ति विनाश काले ॥ सुश्रुत

इन पाँच भूतों से बने, छः अंगोंवाले शरीर में ज्ञान का साधन पाँच इन्द्रियाँ हैं। यथा—कान, नाक, जिह्वा, त्वचा और आँख। ये इन्द्रियाँ भी पंच महाभूतों से उत्पन्न हुई हैं। यथा, कान आकाश से, नाक पृथ्वी से, जिह्वा-जल से, त्वचा-वायु से और आँख तेज से उत्पन्न हुई हैं। इसलिये ये अपने-अपने विषय को स्वयं ही ग्रहण करती हैं। यथा—कान आकाश से उत्पन्न होते हैं, अतः अपने विषय शब्द की ओर प्रवृत्त होते हैं; उसे ग्रहण करते हैं। इसी प्रकार नासिका गन्ध को; जिह्वा रस को, त्वचा-स्पर्श को; और आँख रूप को ग्रहण करती है। इन इन्द्रियों में इसी प्रकार के ज्ञान-तन्तु लगे होते हैं। अर्थात् आँख में रूप को देखने के ही तन्तु लगे होते हैं। इन सब तन्तुओं का सम्बन्ध मस्तिष्क के साथ होता है। वही इस सबका आधार या आदि स्रोत है। बाहर के सब पदार्थों का ज्ञान इन्हीं पाँच ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा होता है। प्रत्येक ज्ञान के लिये तन्तु भी भिन्न-भिन्न होते हैं। इसलिये

ज्ञानेन्द्रियाँ भी भिन्न-भिन्न हैं। बिजली की चमक को आँख देखती है, परन्तु उसके शब्द को कान सुनते हैं। इसी प्रकार पुष्प की गन्ध को नासिका ग्रहण करती है, परन्तु उसके रंग को आँख देखती है।

२—नासिका-घ्राणेन्द्रिय—यह इन्द्रिय शरीर में गन्ध का साधन है। इसके द्वारा हम किसी पदार्थ में रहनेवाली सुगन्धया दुर्गन्ध का ज्ञान करते हैं। नाक के अन्तिम भाग में से श्वास-नलिका प्रारम्भ होती है और नाक के ऊपरी भाग में घ्राण-तन्तु फैले हुये हैं। यह तन्तु मस्तिष्क से उत्पन्न होनेवाली प्रथम तन्तु युग्म की शाखा-प्रशाखायें हैं। इसकी बीस शाखायें इस स्थूल इन्द्रिय में फैली हैं। स्थूल नासिका इन तन्तुओं के रहने का घर, और श्वास-प्रश्वास का साधन है। सच्ची इन्द्रिय तो अपने मस्तिष्क में ही रहती है, जिसके द्वारा हम यह ज्ञान करते हैं कि यह वस्तु गन्ध में अच्छी है, यह बुरी है। घ्राण शक्ति सब प्राणियों में एक समान नहीं होती। मांसाहारियों में और प्राणियों की अपेक्षा अधिक होती हैं। कई व्यक्तियों में यह शक्ति मन्द या नष्ट हो जाती है। इससे वे किसी प्रकार की गन्ध को नहीं पहिचान सकते। कई बार रोग आदि के कारण (यथा—जुकाम) भी यह शक्ति नष्ट होजाती है।

३—आँख (दृष्टेन्द्रिय)—आँख के अन्दर मुख्य तीन पर्त पड़े हैं और अन्दर किरणों को पुनः एकत्रित करने के लिये तीन ही नेत्र रस हैं। ये पर्त बाह्यपर्त, मध्यम पर्त और अन्तिम नेत्रदर्पण है। और रस-जल रूप रस, स्फटिक रूप रस और काच रूप रस—ये तीन रस हैं। बाह्यपर्त मोटा, श्वेत और अपारदर्शक है। इसके बीच का मध्य भाग—जो कि कृष्णमण्डल—काला दिखता है, वही भाग पारदर्शक है। बाह्यपर्त के अन्तः पृष्ठ के पार्श्वों में काले रंग का एक मध्यम पर्त है और कृष्ण मण्डल के पीछे एक मांसमय परदा है। इस मांसमय परदे को कनीनिका का मण्डल कहते हैं। इस परदे के बीच में एक छेद है। इस छेद को "की-की" कहते हैं। मध्य पर्त का अधिक भाग सूक्ष्म रक्त वाहिनियों से बना हुआ है। इस मध्यम पर्त के भी दो पर्त हैं। बाह्य पर्त में रक्त नालियाँ रहती हैं और अन्दर का पर्त काले पदार्थ से भरा है। इस काले लेप के अन्तःपार्श्व पर नेत्र दर्पण रहता है। कनीनिका मण्डल का परदा गोल है, और कृष्ण मण्डल के पीछे एवं स्फटिक रस के आगे, जल रस में टँगा हुआ है। इस परदे के मध्य में "की-की" का

छेद है। किरणें इस छिद्र में से होकर जाती हैं। जब यह परदा छोटा और बड़ा होता है, तो "की-की" भी छोटी और बड़ी होती है, और 'की-की' के छोटा बड़ा होने से किरणें भी थोड़ी या अधिक आँख में जाती हैं। इस परदे का पिछला पार्श्व काला होने से 'की-की' भी काली दिखाई देती है। यह पर्त मांस से बना होता है, इसलिये मांस के रेशे, काले, नीले, भूरे, जिस रंग के होंगे, 'की-की' के अन्दर से भी वही रंग दिखाई देगा। तीसरा पर्त नेत्र-दर्पण बहुत आवश्यक है। इसके अन्दर काचरूप रस रहता है। वाह्य पदार्थों की फोटो इस परदे पर उतरती है। इस दर्पण में भी तीन सूक्ष्म पर्त हैं। अन्दर की तीसरी पर्त दर्शन तन्तुओं से बनी है। यह दर्शन तन्तु मस्तिष्क से उत्पन्न होनेवाले दूसरे तन्तु युग्म की शाखायें हैं; जो कि सूक्ष्म जाल के रूप में इस परदे के अन्दर फैली होती हैं। इस प्रकार से यह आँख मुख्य रूप में तीन पर्तों से बनी है। आँख के अन्दर तीन रस हैं। इन रसों के अन्दर किरणों को इकट्ठा करने की शक्तिहै। इसके साथ ही प्रकाश की जो किरणें तीव्र, अधिक चमकदार होती हैं, उनकी उग्रता इस द्रव से घट जाती है। जिस प्रकार कि फोटो लेने के कैमरे के अन्दर बड़ी से बड़ी वस्तु की फोटो उतर सकती है, उसी प्रकार इस आँख में बड़ी से बड़ी वस्तु का रूप समा सकता है। कैमरे का लैन्स वस्तु के सब भागों से किरणों को इकट्ठा करके प्लेट पर फेंकता है और वहाँ उस वस्तु का एक्स उतर आता है। यही कार्य आँख में होता है। आँख का द्रव भाग भी सब किरणों को लेकर अन्तिम पर्त पर फेंकता है, वहाँ उसी का रूप दिखने लगता है। सब से प्रथम किरणें डोले के सफेद पर्त में से प्रथम खंड में आती हैं। वहाँ से 'की-की' में होकर रसपड़ में जाती हैं; और वहाँ से रतन पर एकत्रित होती हैं। रतन में से निकलकर यह किरणें पिछले खंड के बिलौरी पदार्थ में मिलकर, वहाँ से चलकर तन्तुवाले पड़ के ऊपर एकत्रित होती है। वहाँ पर मूल वस्तु का प्रतिबिम्ब पड़ता है, इस प्रतिबिम्ब का ज्ञान मस्तिष्क को होता है। वृद्धावस्था में आँख का यह रसपड़ अपारदर्शक हो जाता है, तब भली प्रकार दिखाई नहीं देता। इस अवस्था को "मोतिया" कहते हैं। अँधेरे में पड़ी चीजों से किरणें नहीं निकलतीं, अतः अन्धकार में पड़ी वस्तुओं का ज्ञान भी नहीं होता! इससे स्पष्ट है कि सूर्य या तेज के बिना आँख रूप का ग्रहण नहीं करती।

वस्तु की किरणों को एकत्रित करने के लिये कैमरे में जिस प्रकार

लैन्स को आगे पीछे करना पड़ता है, उस प्रकार इस आँख की प्राकृतिक लैन्स को हिलाने की जरूरत नहीं होती। दूर से दूर की वस्तु और पास से पास की वस्तु अपने असली रूप में, इस आँख से दिखाई देती है। यह कितना आश्चर्य है। कई बार इसमें अन्तर आ जाता है, उसके लिये कृत्रिम साधन, ऐनक आदि की आवश्यकता पड़ती है। दूसरी विशेषता इस आँख में यह है कि कैमरे के अन्दर लैन्स के कारण परदे पर फोटो उल्टी आती है। अर्थात् ऊपर का भाग नीचे और नीचे का भाग ऊपर। परन्तु इस आँख में वस्तु जैसी होती है, वैसी ही दिखाई देती है।

आँख का सम्पूर्ण आधार शरीर के वीर्य पर निर्भर है। जिस पुरुष में वीर्य का रक्षण जितना अधिक होगा उसकी दृष्टि शक्ति भी उतनी उज्जवल होगी।*

कान (श्रवणेन्द्रिय)—शब्द को सुनने का साधन कान हैं। इसके तीन भाग हैं—बाह्य भाग, मध्य भाग और अन्तः भाग। अध्यापक लोग जिस कान को पकड़कर खींचते हैं, यह तो अपना बाह्य कान है। असली कान तो मस्तिष्क के अन्दर रहता है और जो छेद दिखाई देता है, वह बीच में जाने का रास्ता है। इस छिद्र के अन्दर एक छोटी पतली जगह है। मध्य कान के बाह्य पार्श्व में कान का परदा है। मध्यकान में एक नली है, जिसका एक मुख मध्य कान में है, और दूसरा मुख गले के अन्दर रहता है। इसके द्वारा मुख में से वायु कान के अन्दर आती है। कान का परदा मध्यकान और बाह्य भाग की नली के बीच में रहता है। यह परदा अर्द्ध-पारदर्शक है। मध्यकान में तीन छोटी-छोटी अस्थियाँ हैं। यहाँ पर स्नायु भी हैं। अन्तःकर्ण तीन अर्द्धचन्द्राकार नलियों से बना है, इन नालियों में एक प्रकार का द्रव रहता है। जिस समय किसी प्रकार का ऊँचा शब्द यथा भेरी या पटह की जोरदार आवाज इस कान में पहुँचती है, उस समय उसकी तीव्रता इसी पानी के द्वारा कम हो जाती है। ठोस वस्तु में आवाज जोर से जाती है, पानी में उसकी तीव्रता घट जाती है। इसी प्रकार से यही अन्तःकरण श्रवण-तन्तुओं की रक्षा करता है। श्रवण-तन्तु जो कि मस्तिष्क से निकलनेवाले बारह तन्तु युग्मों में से एक है, वह इसी अन्तःकर्ण में आकर समाप्त होता है। इसके अतिरिक्त इसी

---

*"दृष्टिस्तेजोमयि प्रोक्तः शुक्रं तेजश्च केवलम्।
तस्माद् दृष्टि बलापेक्षि तेजो वृद्धिं समाचरेत्॥" चरक टीका

अन्त:कर्ण में एक भाग और है, उसका आकार शंख के समान चक्करदार है। इसके अन्दर से शब्द के गुजरने से उसकी तीक्ष्णता घट जाती है। यह सब परमात्मा की अद्भुत रचना को स्मरण कराती है।

इन अर्धचन्द्राकार प्रणालियों का एक और लाभ है। ये हमारा गुरुत्व ठीक रखती हैं। जिस समय इनके अन्दर का पानी बहुत हिलता रहता है, उस समय हमको दिशा का भान नहीं रहता। जहाज़ आदि पर नये यात्री को गुरुत्व न ठीक रहने से ही चक्कर आते हैं और जिनको अभ्यास पड़ जाता है, उनको कष्ट नहीं होता।

त्वचा (स्पर्शेन्द्रिय) यह अपनी त्वचा दो भागों से बनी है। ऊपर का पृष्ठ बहुत ही पतला है। यह पर्त शरीर की रक्षा करता है। इसका निचला भाग या पृष्ठ बहुत सख्त और मोटा है, इस भाग पर ज्ञान-तन्तुओं का सूक्ष्म जाल बिछा हुआ है। आवश्यकता होती है, तो चेष्टावहा तन्तुओं को आज्ञा मिलती है। रगों आदि में इन्हीं ज्ञान-तन्तुओं में विकार आता है, इसी से स्पर्श-ज्ञान में भी अन्तर आ जाता है। इन ज्ञान-तन्तुओं के साथ-साथ सूक्ष्म रक्त-वाहिनियाँ भी इस त्वचा में फैली हैं। इन वाहिनियों के मुख और तन्तुओं के छेद उपरिपृष्ठ तक पहुँचे होते हैं। रक्त-वाहिनियाँ त्वचा के उपरिपृष्ठ पर नहीं आतीं।

त्वचा के नीचे छोटी-छोटी ग्रन्थियाँ हैं। इनके द्वारा शरीर का मल पसीने के रूप में बाहर होता है। इस मल के निकलने के लिये शरीर में छेद बने हुये हैं। ये छेद बहुत ही सूक्ष्म होते हैं। एक वर्ग इञ्च त्वचा पर २८०४ छिद्र होते हैं।

पसीना एक तरल पदार्थ है, यह लगातार त्वचा से बाहर होता रहता है। गरमियों में अधिक होता है, और सरदियों में कम। इस पसीने के द्वारा शरीर के बहुत से हानिकारक पदार्थ बाहर निकल जाते हैं। इसके अतिरिक्त इस त्वचा से एक चिकना पदार्थ बाहर निकलता है, जिसके कारण त्वचा कोमल रहती है।

त्वचा पर बाल दिखाई देते हैं। इन बालों की जड़ें त्वचा के अन्दर गहरी गई हुई हैं। ये बाल बीच से खोखले होते हैं। इनके अन्दर से पसीना बाहर आता है और इन्हीं के द्वारा चिकास बाहर आता है। कई व्यक्तियों में बाल बहुत अधिक और बहुत मोटे होते हैं। उनके अन्दर पसीना बहुत

होता है। इसी प्रकार मोटे चर्बीवाले आदमियों में भी पसीना बहुत आता है और यदि ये शरीर को शुद्ध न रक्खें तो इनके शरीर से बहुत दुर्गन्ध आती है। इन बालों के द्वारा या रोमकूपों-द्वारा शरीर की त्वचा पर मले हुये तेल आदि का शोषण होता है, जिससे औषधि आदि शरीर के अन्दर पहुँच सकती है।

जिह्वा (रसना) मुँह के अन्दर रहनेवाली, मांस से बनी है। देखने में यह मांस से बनी है, परन्तु इसके अन्दर छः रसों का ज्ञान करनेवाले तन्तु और रक्त-वाहिनियाँ तथा चेष्टावहा तन्तु फैले हुये हैं। इन चेष्टावहा तन्तुओं की सहायता से हम सब प्रकार के वर्णों का उच्चारण इस जिह्वा के द्वारा कर सकते हैं। इसमें फैले हुय ज्ञान-तन्तु मस्तिष्क से उत्पन्न होनेवाले बारह तन्तु युग्मों में से हैं। पाँचवें तन्तु-युग्म की एक शाखा, और नवें तन्तु-युग्म के कुछ सूत्र तथा बारहवाँ तन्तु-युग्म सम्पूर्ण इसमें आता है। मधुर, अम्ल, लवण, कटु, तिक्त और कषाय रस के लिये जिह्वा में भिन्न-भिन्न तन्तु बिखरे हुये हैं। यथा कटु-रस को अनुभव करनेवाले तन्तु जिह्वा के अग्र भाग में रहते हैं। इस प्रकार मधुर रस के तन्तु जिह्वा के पिछले भाग में, अम्ल और लवण रस को अनुभव करनेवाले तन्तु पार्श्वों में रहते हैं।

शरीर के अंदर यही एक इन्द्रिय है जो कि दो कार्य करती है। रस-ज्ञान और बोलने का और सब इन्द्रियाँ एक ही कार्य करती हैं। परमात्मा ने उनको दो-दो बनाया है, परन्तु इसको एकही बनाया है। अतः औरो से इसका कार्य कम होना चाहिये। अर्थात् कम खाना और कम बोलना चाहिये। देखना और सुनना अधिक चाहिये।

शरीरस्थ जीव पञ्च महाभूतों से उत्पन्न इन पञ्च ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा विश्व के समस्त पदार्थों का उपभोग कर रहा है। उसको कहीं बाहर जाने की आवश्यकता नहीं। केवल इच्छामात्र ही पर्याप्त है, कि तत्काल वस्तु आकर उपस्थित होजाती है। वह एक प्रकार से इस विश्व पर राज्य कर रहा है। इन्द्रियाँ उसके नौकर हैं।*

---

*उपनिषदों में कहा है कि 'आत्मा' रथी है, और शरीर रथ है। मन सारथी है, और घोड़े इन्द्रियाँ हैं, और विषय लगाम है। मन को चाहिये कि इन्द्रियों को विषयों से खींचकर रक्खे। अर्थात अपने वश मे रक्खे।

सप्तधातु

"रसाद्रक्तं ततो मांसं मांसान्मेदः प्रजायते।
मेदसोऽस्थि ततो मज्जा, मज्ज्ञः शुक्रं प्रजायते॥"

जो पदार्थ इतने बड़े शरीर को धारण कर रहा है, उसको "धातु" कहते हैं। प्राचीन वैद्यक के अनुसार इस शरीर को धारण करनेवाले सात धातु हैं। इनके द्वारा शरीर का धारण और पोषण होता है। ये धातु सात हैं। यथा—

१. रस = शरीर के अंदर तृप्ति और तरावट करता है।
२. रक्त = शरीर में जीवन देता है।
३. मांस = लेपन करके अवयवों को जोड़ता है।
४. मेद = स्नेहन अर्थात् चिकास देता है।
५. अस्थि = शरीर को धारण कर रही है।
६. मज्जा = अस्थियों की नलियों को भरती है।
७. वीर्य = शरीर का सत्व है और प्रजा उत्पन्न करता है।

स्त्रियों के अंदर एक और आठवीं धातु है, जिसका नाम "आर्त्तव" है। यह प्रति मास गर्भाशय से आता है। इसका वर्णन प्रथम आ गया है।

जिस प्रकार कि गर्भाशय में गर्भ के अंदर पाँच तत्त्व इकट्ठे होकर इस शरीर को बाँधते हैं, उसी प्रकार ये धातु भी उत्पन्न होकर शरीर का निर्माण करते हैं। जिस प्रकार दूध के ऊपर मलाई आती है और उसको हटा लेने पर फिर भी आती है, इसी प्रकार इस आहार रस से ये सात धातु भी मलाई की भाँति उत्पन्न होते हैं।

रस—जिस समय चार प्रकार का भोजन (भक्ष्य, चोष्य, लेह्य और पेय) मुँह में जाता है और दाँतों की चक्की में पीसा जाता है, उसमें लाला रस मिलता है, तब उसके अंदर एक मधुर रस उत्पन्न होता है। यही रस अंदर पहुँचता है। आमाशय और आंत्र के अंदर पाचन हुये भोजन से भी "रस" उत्पन्न होता है। यह रस, जलरूप, प्रवाही, श्वेत, शीत, मधुर, स्निग्ध और गतिवाला है। इस प्रकार का रस सारे शरीर में होता है। इसका मुख्य स्थान हृदय है। यह रस शरीर में फैली हुई रस वाहिनियों द्वारा सम्पूर्ण

शरीर में फैलकर सब धातुओं का पोषण करता है और जब यह रस घट जाता है, या बढ़ जाता है, तब शरीर में अनेक उपद्रव उत्पन्न होते हैं। उस समय यही रस विष का कार्य करता है। साधारण बोली में इसको "अजीर्ण" कहते हैं।

रक्त—यही रस जिस समय यकृत और प्लीहा में पहुँचता है, उस समय वहाँ के पित्त द्वारा रँगा जाता है। इस रँगे हुये रस का नाम "रक्त" होता है। यह रक्त भी सम्पूर्ण शरीर में रहता है। रक्त सम्पूर्ण जीवन का आधार है। यह रक्त स्निग्ध, तथा गतिवाला है। रक्त के विकृत होने से, पित्त भी विकृत हो जाता है, तब शरीर में विकार हो जाता है। इस विकार को रक्त-विकार कहते हैं। यकृत और प्लीहा इस रक्त के उत्पत्ति स्थान हैं।

मांस—रक्त जब परिपाक होकर घन अथवा सान्द्र बन जाता है, तब इसका नाम मांस हो जाता है। इस मांस का विभाग होकर शरीर में ५०० पेशियाँ बन गई हैं। जिनके द्वारा यह शरीर सुडौल, भरावदार, सुगठित दिखता है। इसी मांस के अन्दर मनुष्य का बल स्थिर है।

मेद—मांस का परिपाक होने से मेद बनता है। इस मेद के द्वारा शरीर में स्थूलता आती है। जिस पुरुष में यह मेद बढ़ी होती है, उसके उदर और नितम्ब भारी हो जाते हैं।

अस्थि—शरीर का ढाँचा इन्हीं से बना है। ये अस्थियाँ "मेद" के परिपाक से उत्पन्न होती हैं। ये अस्थियाँ इतनी सुदृढ़ होती हैं कि शरीर के अन्य धातु नष्ट हो जायँ, परन्तु ये चिरकाल में जाकर नष्ट होती हैं। इनकी कुल संख्या २०६ है।

मज्जा—यह धातु अस्थियों के परिपाक से उत्पन्न होता है और अस्थियों के अन्दर भरा रहता है। इसका रंग हल्का गुलाबी होता है। इससे रक्त की विशेष पुष्टि होती है।

शुक्र—यह धातु मज्जा के परिपाक द्वारा उत्पन्न होता है। यह सार भूत पदार्थ है। इसका संक्षेप वर्णन प्रथम आ चुका है।

संक्षेप से—इस सम्पूर्ण क्रिया का आधार अपना रक्त है। वही इन सब पदार्थों को उत्पन्न करनेवाला अवयवों को शक्ति दे रहा है और यह रक्त रस से बनता है। जिस समय आहार रस आमाशय, आंत्र आदि

से चूसा जाकर रस-वाहिनियों द्वारा हृदय में पहुँचता है, उस समय वहाँ इसका परिपाक होता है । जिससे तीन भाग उत्पन्न होते हैं। एक स्थूल भाग, दूसरा सूक्ष्म भाग और तीसरा मल भाग । स्थूल भाग उसी धातु की अर्थात् रस की वृद्धि करता है। सूक्ष्म भाग-अगले धातु का अर्थात् रक्त में परिवर्तित हो जाता है और मल भाग शरीर से बाहर हो जाता है। इस प्रकार से यह क्रिया चलती जाती है और धातु तथा मल बनते जाते हैं, परन्तु जब सातवाँ धातु "शुक्र" बनता है, उस समय इसके परिपाक से कोई मल नहीं निकलता । इसका सूक्ष्म भाग "ओज" कहलाता है।

इन सब धातुओं का परिपाक शरीरस्थ पित्त रूपी अग्नि से होता है। * क्योंकि इसके अतिरिक्त शरीर में किसी दूसरी अग्नि की उपलब्धि नहीं होती । इसलिये कहा जाता है कि पुरुष के अन्दर यदि अग्नि शान्त हो जाय तो वह मर जाता है और यदि यह स्वस्थ रहे तो मनुष्य चिरकाल तक जीवित रहता है। इसमें विकार आने से शरीर भी विकृत हो जाता है। इस अग्नि रूपी पित्त का आधार शरीरस्थ रक्त है। अतः इस रक्त को जीवन कहा है। इसके द्वारा ही अन्य सब धातुओं में वृद्धि होती है। रस के बढ़ने से शरीर में रक्त भी बढ़ता है, और रस के घटने से शरीर में रक्त भी कम हो जाता है। इसी प्रकार अन्य धातुओं को भी समझना चाहिये ।

शरीरस्थ मल—इस परिपाक हुये रस से निम्न प्रकार धातुओं से मल निकलते हैं—

रस में से निकलनेवाला मल.........कफ

रक्त में से निकलनेवाला मल.........पित्त

मांस में से निकलनेवाला मल.........कान का मल

मेद में से निकलनेवाला मल.........पसीना

अस्थि में से निकलनेवाला मल.........नख-केश

मज्जा में से निकलनेवाला मल.........नेत्रमल

शुक्र के सारभूत होने से उसमें से कोई मल नहीं निकलता ।

इन धातुओं का शरीर पर प्रभाव—शरीर के अन्दर इन सप्त धातुओं के बढ़ने या घटने से शरीर के अन्दर विषमता आ जाती है। अर्थात् रस के बढ़ने से-उबकाई आना, डकार आना और लालास्राव होता है और यदि

---

*न खलु पित्त व्यतिरिक्तोऽग्नि रूप लभ्यते ॥ (सुश्रुत)

शरीर में रस घट जाय तब हृत्पीड़ा, कम्प, शोष और प्यास अधिक लगती है। इसके बढ़ने से शरीरस्थ कफ भी बढ़ जाता है और घटने से कफ की मात्रा में भी न्यूनता आ जाती है। इसी प्रकार—

धातु	धातुओं के बढ़ने का लक्षण	धातुओं के घटने का लक्षण	मलों का परिणाम
रस	उँबकाई आना, डकार आना, लाला का स्राव होना	हृत्पीड़ा, कम्प, शोष और प्यास	इन धातुओं के जो-जो मल हैं, धातुओं के बढ़ने से वे भी बढ़ते हैं, और घटने से घट जाते हैं। यथा अस्थियों के बढ़ने से नेत्र और बाल भी बढ़ जायेंगे और मोटे आदमियों में, जिनमें कि मेद बढ़ी होती है, उनमें पसीना बहुत आता है। इसके कारण एक दुर्गन्ध आती है। यथा रीछ के शरीर में।
रक्त	धमनियों का भरा होना, रक्त की चाह	त्वचा में कठोरता, शीत की प्रार्थना, शिराओं में शिथिलता	
मांस	नितम्ब, गाल, ओष्ठ जंघाओं में मांस वृद्धि और शरीर का भारीपन	नितम्ब, गाल, वक्ष, कक्षा, पिंडली में शुष्कता, शरीर में रौक्ष्यता, धमनियों की शिथिलता	
मेद	स्निग्धता, उदर में वृद्धि, कास, श्वास और दुर्गन्ध	प्लीहा का बढ़ना, सन्धिशून्यता रूक्षता	
अस्थि	चणकास्थियों का बनना और दाँतों का अधिक बनना	अस्थिशूल, दाँत और नखों का टूटना और रूक्षता	
मज्जा	सब अंगों में और नेत्र के अंदर भारीपन	शुक्र की कमी, जोड़ों का टूटना, अस्थियों में आवाज होना	
शुक्र	शुक्राश्मरी का बनना सम्भोग की इच्छा	शिश्न और वृषण में दर्द, मैथुन में अशक्ति, देर में वीर्य का क्षरण और राशि में थोड़ा	

निन्दित पुरुष—इस शरीर-शास्त्र के अनुसार आठ पुरुष निन्दित माने जाते हैं। यथा—अति स्थूल, अति कृश, अति दीर्घ, अति कृश, अति-लोम, अलोम, अति कृष्ण और अति गौर। इन आठों पुरुषों में भी प्रथम

प्रकार के दो व्यक्ति अर्थात् बहुत मोटे और बहुत पतले व्यक्ति निन्दित हैं। इनमें भी बहुत मोटा आदमी सबसे अधिक निन्दित है।*

शरीर में स्थूलता और कृशता का कारण यह आहार रस ही है। जो पुरुष अधिक कफकारक पदार्थों का सेवन करता है, बहुत अधिक खाता है, व्यायाम नहीं करता, दिन में सोता है, उसका अपरिपक्व आहार-रस मेदे को बढ़ाता है। इस कारण उसमें मोटाई आ जाती है, और कई बार यह मोटाई माता-पिता के मोटे होने से भी आती है। इस शरीर में मेद ही सबसे अधिक बढ़ती है और अन्य धातु उतने अधिक पुष्ट नहीं होते। इस कारण इस व्यक्ति की आयु कम होती है, बुढ़ापा जल्दी आता है, मैथुन में अशक्ति होती है, शरीर निर्बल रहता है, और उससे बहुत दुर्गन्धि आती है। इस स्थूलता को कम करने के लिये मेद वृद्धि के कारणों को छोड़ दे। शिलाजीत, त्रिफला, लौह, व्यायाम का उपयोग करे। रूक्षता उत्पन्न करनेवाली वस्तुयें सेवन करे।

इसी प्रकार बालों के बढ़ने या न होने का कारण अस्थियाँ हैं। जिनके यह मल हैं। अत: शरीर के निन्दित या प्रशंसित होने का मुख्य कारण यह अपना आहार-रस ही है। बालों के अधिक होने से शरीर से पसीना अधिक मात्रा में निकलेगा, शरीर से बदबू आती रहेगी और बालों के न होने से पसीना बाहर नहीं निकलेगा।

तीन दोष

वात, पित, कफ।

Vat, Pita, Couph

"वात पित्त श्लेष्मण: एव देह संभव हेतव: तैरेवशव्यापन्नैरधोमध्योर्ध्व"
"सन्निविष्टै: शरीरमिदं धार्यतेऽगारमिव स्थूणाभि: तिस्टभिरतश्च त्रिस्थूण माहुरेके। त एव च व्यापन्न: प्रलय हेतव:॥" —सुश्रुत

जिस प्रकार इस प्रकृति को बनानेवाले सत्त्व, रज और तम, ये तीन गुण हैं, और जिस प्रकार इस चराचर विश्व को धारण करनेवाले सोम, सूर्य और वायु ये तीन पदार्थ हैं, उसी प्रकार इस देह को धारण करनेवाले, वात,

*अत्यन्त गर्हिता वेतौ सदा स्थूल कृशौ नरौ।
श्रेष्ठो मध्य शरीरस्तु कृशः स्थूलात्तु पूजितः॥ सुश्रुत

पित्त और कफ ये तीन दोष हैं। यद्यपि ये शरीर को धारण करते हैं, तथापि इनको 'दोष' शब्द से कहा जाता है। क्योंकि शरीर के अन्दर जब विकार या रोग उत्पन्न होता है, तो सबसे प्रथम ये तीन पदार्थ ही विकृत होते हैं। इनके विकृत होने पर शरीर को धारण करनेवाले सात धातु भी विकृत हो जाते हैं। अतः इन, वात, पित्त, कफ को दोष कहते हैं, और सात धातुओं को 'दुष्य' कहते हैं।

यद्यपि ये तीनों दोष सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त हैं, तथापि मुख्य भेद से इनके तीन स्थान हैं। यथा—वायु का स्थान शिरोगुहा, पित्त का स्थान उरोगुहा और कफ का स्थान उदरगुहा है। विकृत होने पर यह अपने स्थान में विकार उत्पन्न करते हैं, और उसके साथ ही दूष्यों को दूषित करके अन्य स्थानों में भी विकार उत्पन्न कर देते हैं। आर्य-वैद्यक शास्त्र इन तीन स्तम्भों पर ही खड़ा है।

वात—शरीर के अन्दर जो कुछ गति है, वह सब इसके द्वारा होती है। जैसे कि संज्ञावहा या चेष्टावहा तन्तुओं का कार्य, रक्त का सम्पूर्ण शरीर में चक्कर काटना, श्वास-प्रश्वास की क्रिया। कार्य भेद से यह एक वायु पाँच प्रकार का है। यथा—

(क) प्राणवायु—इसका स्थान मुँह, नासिका और फेफड़े हैं। इसके कारण जीवन रहता है। इसके कुपित होने से हिचकी आती है।

(ख) अपानवायु—इसका स्थान मुख्य करके वस्ति, पक्काशय गुदा में रहती है। इसका कार्य शरीर की उदर गुहा से मल-मूत्र, रज, शुक्र और गर्भाशय से गर्भ का बाहर निकालना है। जिस समय यह कुपित होती है तो वस्ति, पक्काशय आदि में तीव्र दर्द उत्पन्न करती है।

(ग) व्यानवायु—यह वायु सम्पूर्ण शरीर में रहती है। रस-वाहिनियों में रस को, धमनियों में शुद्ध रक्त को, शिराओं में अशुद्ध रक्त को, ज्ञानतन्तु में चेष्टा को यह वायु उत्पन्न करती है। इसी प्रकार आँख को घुमाना, हाथ-पाँव को गति देना भी इसी वायु का कार्य है। इस वायु के कुपित होने से सम्पूर्ण शरीर में कोप होता है।

(घ) समानवायु—इसका स्थान आमाशय और पक्काशय है। जठरस्थ पित्त के साथ मिलकर अन्न को पचाती है, रसों का विभाग करती

है। मल और मूत्र को पृथक करती है। इस वायु के कोप से मंदाग्नि, गुल्म और अतिसार आदि रोग होते हैं।

(ङ) उदानवायु—उदानवायु का स्थान नासिका और गला है। वर्णोच्चारण इसी वायु के द्वारा होता है। इसके कुपित होने से ग्रीवा से ऊपरे भाग में रोग होते हैं।

संक्षेपत: शरीर में सब प्रकार की चेष्टाओं को प्रवृत्त करनेवाली "वायु" है। प्रकृति में जो स्थान "रज" का है, वही स्थान शरीर में "वात" का है। इसका स्वभाव रुक्ष, शीतल और हल्का है।

पित्त—इसका गुण उष्ण, प्रवाही, पीला, लाल, सारक, तीक्ष्ण और कड़वा है। शरीर के अन्दर जो भी उष्णिमा हम को मिलती है वह, और जो रंग दिखाई देता है यथा—मल-मूत्र में या रक्त में, वह सब इसी पित्त के कारण है। शरीर में इसका स्थान प्रकृति के "सत्त्व" गुण के समान है। पित्त के कारण ही बुद्धि स्मृति होती है। कार्य भेद से इसके पाँच भेद हैं। यथा—

(क) पाचक पित्त—यह भोजन को पचाता है। अग्नि को बढ़ाता है। मल मूत्र का विरेचन करता है। रस को रंग देता है। रूप धारण करना, कान्ति बढ़ाना, इस पित्त का कार्य है।

(ख) रंजक पित्त—रस को रुधिर बनाता है। रक्त के अन्दर रङ्ग इसी के कारण आता है। स्थान, यकृत और प्लीहा हैं।

(ग) साधक पित्त—बुद्धि, धृति, स्मृति आदि को उत्पन्न करता है। इस पित्त का स्थान अन्त:करण में है।

(घ) आलोचक पित्त—यह रूप अर्थात आकार को ग्रहण करता है। इसका स्थान आँख है।

(ङ) भ्राजक पित्त—इस पित्त का स्थान त्वचा है। जिसके द्वारा शरीर के ऊपर लगाये हुये तेल, आदि शरीर के अन्दर प्रविष्ट होते हैं।

कफ—इसका गुण श्वेत, भार, स्निग्ध, शीतल, मीठा और जोड़नेवाला है। कफ के कारण ही यह अपना शरीर स्थिर रहता है। प्रकृति में जो स्थान "तम" का है, वह स्थान शरीर में कफ का है। कफ के कारण शरीर में भार होता है। इसके भी पाँच भेद हैं।

(क) क्लेदनक—अन्न को क्लिन्न बनाता है। रस का ग्रहण करता है। सम्पूर्ण इन्द्रियों को तृप्त करता है।

(ख) अवलम्बक—अन्त:करण हृदय और त्रिक इस श्लेष्मा का स्थान है। यह शरीर का अवलम्बन करता है। इस श्लेष्मा के विकार के कारण त्रिकशूल आदि रोग होते हैं।

(ग) बोधक—इस श्लेष्मा का स्थान मुख है। इसके मिलने से आहार के रस प्रकट होते हैं।

(घ) तर्पक—नासा, मस्तिष्क और शिर को स्निग्ध रखता है।

(ङ) श्लेष्क—मिलानेवाली श्लेष्मा का नाम श्लेष्क है। यह श्लेष्मा सन्धियों को जोड़कर रखता है।

संक्षेप से—यह श्लेष्मा शरीर को पित्त वृद्धि से बचाती है। यथा आमाशय को पित्त से बचाने के लिये यहाँ पर क्लेदनक पित्त रक्खा है। इसी प्रकार दो आवरणों को रगड़ से बचाने के लिये उनमें भी द्रव रक्खा है, उसका नाम श्लेष्मा है।

जिस समय यह वात, पित्त और कफ तीनों धातु समानावस्था में रहते हैं, उस समय शरीर भी स्वस्थ रहता है। और जिस समय इनमें से किसी एक में भी विकार आ जाता है, तो सम्पूर्ण शरीर में अन्तर आता जाता है। जिस प्रकार की एक समान बाहुवाले त्रिभुज में एक भुजा के भी बड़ा छोटा होना से उसकी शेष दो भुजाओं में भी अन्तर आ जाता है। उसी प्रकार इस त्रिभुज में [जिसकी एक भुजा वात है, दूसरी पित्त और तीसरी कफ] भी अन्तर आ जायगा।

इस भेद के कई कारण हैं। कुछ तो प्राकृतिक कारण हैं। यथा—

बचपन में कफ प्राधान्य बलवान रहता है।
युवावस्था में पित्त प्राधान्य बलवान रहता है।
वृद्धावस्था में वात प्राधान्य बलवान रहता है।
भोजन के पीछे प्रथम प्रहर में कफ बलवान होता है।
भोजन के पीछे मध्यम प्रहर में पित्त बलवान होता है।
भोजन के पीछे अन्तिम प्रहर में वात बलवान होता है।
रात्रि के प्रथम भाग में कफ बलवान होता है।

रात्रि के द्वितीय भाग में पित्त बलवान होता है।
रात्रि के तीसरे भाग में वात बलवान होता है।
दिन के प्रथम भाग में कफ बलवान होता है।
दिन के मध्यम भाग में पित्त बलवान होता है।
दिन के अन्तिम भाग में वात बलवान होता है।

इसी प्रकार वर्षा ऋतु में वात, शरद ऋतु में पित्त और हेमन्त ऋतु में कफ का प्राबल्य रहता है। इसके अतिरिक्त कुछ अप्राकृतिक कारण हैं— यथा आहार विहार की विषमता। इसका विचार आगे करेंगे। इस विषमता से भी इन दोषों में अन्तर आ जाता है। जिस समय ये तीनों समानावस्था में रहें वही स्वस्थ अवस्था है। इनकी विषमता प्रलय-मृत्यु है, इनकी समानता उत्पत्ति या जीवन है। इसलिये इनको तीन स्तम्भ कहा है।

स्वाभाविक वेग (Natural Calls)

"न वेगान्धारयेत् धीमान् जातान्मूत्र पुरीषयोः।
न रेतसो न वातस्य न छर्द्याः क्षवथोर्न च ॥ १ ॥
नोद्‌गारस्य न जृम्भाया न वेगान्क्षुत् पिपासयोः।
न बाष्पस्य न निद्राया निश्वास्य श्रमेण च ॥
एतान्धार यतो जातान् वेगान्रोगा भवन्ति ॥ २ ॥" चरक

उपरोक्त सात धातु और तीन दोषों के अतिरिक्त और भी कुछ वस्तुयें हैं, जो कि इस शरीर को धारण किये हुये हैं। इनमें से कुछ वस्तुयें पुरीष-मल, मूत्र और स्वेद आदि हैं। इनके द्वारा शरीर का धारण होता है। अतः इनके विषय में भी सामान्य ज्ञान प्रत्येक व्यक्ति को होना चाहिये।

शरीर के अंदर कुछ ऐसे कार्य हैं, जो कि अपनी इच्छा के अधीन नहीं। यथा—छींक का आना या मूत्रत्याग की इच्छा का होना। ये कार्य स्वाभाविक हैं। इनको बलपूर्वक रोकने से शरीर में नाना प्रकार के रोग होते हैं। अतः इनकी प्रवृत्ति को नहीं रोकना चाहिये। ये वेग या इच्छायें निम्न हैं—

(१) मल—शरीर में इसका कार्य शरीर का, वायु और अग्नि का धारण करना है। यह मल भोजन का निरुपयोगी अंश होता है, जिसको कि शरीर गुदा मार्ग से बाहर फेंकता है। जिस समय गुदा में यह मल पहुँचता

है, उस समय अपान वायु इसको बाहर फेंकने का प्रयत्न करती है। इस समय को इच्छा को रोकने से अपान वायु का मार्ग उल्टा हो जाता है, अर्थात वही अपान जो बाहर जानी चाहिये थी, अब पक्काशय में बृहदांत्र के अंदर ऊपर की ओर जोर करती है। जिससे कि मल रुक जाता है, वह रुक्ष हो जाता है, पक्काशय में दर्द होता है, शिर के अन्दर दर्द होता है। इस प्रकार से बराबर आदत पड़ने से क्षय-रोग भी हो जाता है ऐसा आयुर्वेद में लिखा है। अतः इस स्वाभाविक प्रवृत्ति को नहीं रोकना चाहिये।

(२) मूत्र—वृक्कों में बना हुआ मूत्र बूँद-बूँद करके मूत्राशय में पहुँचता है। जिस समय मूत्राशय भर जाता है, उस समय मनुष्य को मूत्र-त्याग की इच्छा होती है। यदि मनुष्य इस इच्छा को रोकना चाहे तो रोक सकता है। परंतु बच्चे के अंदर यह शक्ति नहीं होती। इसलिये रात्रि में मूत्र शिशु की बिना इच्छा के ही बिस्तर में निकल जाता है। इससे स्पष्ट है कि उसमें इस इच्छा को रोकनेवाले तंतु उत्पन्न नहीं हुये। ८ या १२ साल की आयु में यह तंतु सुदृढ़ बन जाते हैं। अतः इस आयु में मनुष्य मूत्र को रोक सकता है। यदि मूत्र को देर तक मूत्राशय में रोका जाय तब वस्ति-मूत्राशय, शिश्न में दर्द होता है और मूत्र भी रुक-रुककर आता है। शिर में दर्द होता है। पेट में वायु का आध्मान होजाता है। अतः इस वेग को नहीं रोकना चाहिये।

(३) वीर्य—मल और मूत्र की भाँति वीर्य की प्रवृत्ति हर समय नहीं होती। परन्तु जिस समय कामेच्छा के कारण वीर्य उत्पन्न होता है, और वीर्याशय में पहुँच जाता है, उस समय इसकी प्रवृत्ति होती है। उस समय बने हुये वीर्य को रोकने से—बाहर न निकलने देने से—शिश्न और वृषणों में दर्द होता है, शरीर टूटने लगता है, और अन्तःकरण में एक प्रकार की वेदना होती है। इस वीर्य के रोकने से कई बार शुक्राश्मरी भी बन जाती है, जो कि प्रायः बालकों में होती है। कई बार यह वीर्य स्वप्नावस्था में निकल जाता है। यह क्रिया इतनी शीघ्र होती है, कि मनुष्य को उसका ज्ञान तभी होता है, जब कि वीर्य निकल चुकता है। कई बार मालूम भी नहीं होता।

वीर्य को बनने से पूर्व ही रोकना अच्छा है, और बन जाने पर उसका निकल जाना ही उत्तम है। इसके लिये कामेच्छा को उत्पन्न होते ही रोक देना उत्तम है। 'शुक्रं चोपस्थितं मोहान्न संधार्यं कथं चन'। (सुश्रुत)

(४) अधोवायु—गुदा के द्वारा जो वायु बाहर मल के साथ बाहर निकलती है, उसका नाम "अपान वायु" है। इसका कुछ वर्णन प्रथम आ चुका है। जिस समय यह वायु अन्दर रुक जाती है, उस समय मल को कड़ा कर देती है। इसके अतिरिक्त पेट को फुला देती है। शरीर थका-सा होजाता है, शरीर में दर्द होता है। इसके कारण कई बार मूत्र भी रुक जाता है। शिर घूमने लगता है। इसलिये इस वायु को कभी नहीं रोकना चाहिये।

(५) उल्टी—जिस समय उल्टी चालू हो, उस समय इसको बल-पूर्वक रोकने से अरुचि, ज्वर, मुँह का टेढ़ा होना, जी का मिचलाना आदि कई रोग होते हैं। उल्टी के द्वारा प्रकृति शरीर के लिये अयोग्य पदार्थ को बाहर करती है, अतः इस क्रिया में रुकावट डालना हानिकारक है, परन्तु जिस समय इसका वेग न हो, उस समय उचित उपायों से कारण को समझकर बन्द करना चाहिये।

(६) छींक—छींक एक प्राकृतिक वेग है। इसको रोकने से ग्रीवा में दर्द, शिरः शूल, मुँह का एक ओर मुड़ जाना, आधे सिर में तीव्र दर्द, इन्द्रियों में कमजोरी आ जाती है। आती हुई छींक को नहीं रोकना चाहिये, परन्तु इसके कारण की चिकित्सा करना चाहिये।

(७) उद्गार-डकार—उद्गार के रोकने से हिचकी, खाँसी, अरुचि कम्प और छाती में दर्द होता है।

(८) जम्भाई—आती हुई जम्भाई को रोकने से अंग टूटने लगते हैं, त्वचा शून्य हो जाती है, संधियाँ संकुचित हो जाती हैं। इसके अतिरिक्त आँख, नाक, कान और मुख के बहुत से दर्द उत्पन्न होते हैं।

(९) भूख—शरीर में निरन्तर क्रिया के होने से जो पदार्थ घट जाते हैं, उनके पोषण के लिये आहार चाहिये। इस आहार की इच्छा का नाम भूख है। इसको रोकने से शरीर में कृशता, दुर्बलता, विवर्णता-रंग का बदलना होता है। अंग टूटने लगते हैं। अरुचि रहती है। शिर में चक्कर आता है। हठात् क्षुधा-भूख को रोकना (सामर्थ्य के न होने पर भी इसमें प्रवृत्त होना), अनेक प्रकार के रोगों को उत्पन्न करता है। अतः उपवास आदि शरीर के बल को देखकर करना चाहिये।

(१०) प्यास—भूख की भाँति प्यास भी स्वाभाविक है। इसके रोकने

से गला और मुख सूख जाते हैं। कानों से सुनना बन्द हो जाता है। शरीर थक जाता है। कलेजे में दर्द अनुभव होने लगता है।

(११) आँसू—अत्यन्त हर्ष के कारण या दुःख के कारण आँखों में आँसू आ जाते हैं। इसके साथ ही आँख में कोई वस्तु गिरने से भी पानी निकलने लगता है। ये आँसू आँख में आई हुई रक्त-वाहिनियों के रक्त से बने होते हैं। हर्ष और शोक के कारण आँख का रक्त-संचार बढ़ जाता है। इसलिये यदि इन आँसुओं को रोका जायगा, तब प्रतिश्याय, आँख के रोग, शिर दर्द, अरुचि आदि हो जाती हैं।

(१२) थकान से उत्पन्न श्वास—व्यायाम आदि से बढ़े हुये श्वास को बलपूर्वक रोकने से, अर्थात् शीघ्र-शीघ्र श्वास-प्रश्वास की क्रिया न होने देने से गुल्म, हृदय-रोग और मूर्च्छा आती है। इसलिये इसको नहीं रोकना चाहिये।

(१३) निद्रा—शरीर को धारण करनेवाली यह नींद है। दिनभर कार्य करने के पीछे शरीर विश्राम चाहता है। शरीर-क्रिया के बन्द होने के साथ मानसिक अवयव भी शान्त होकर सो जाते हैं। यदि शरीर और मन को पूर्ण विश्राम न मिले तो जम्भाइयाँ आने लगती हैं, शरीर का अंग-अंग टूटने लगता है, तन्द्रा से शरीर में भारीपन होता है, शिर में दर्द होता है। ❀ अतः इस वेग को नहीं रोकना चाहिये।

स्वस्थ वृत्त

"स्वस्थ वृत्तं यथो दिष्टं यः सम्यगनु तिष्ठति।
स समाः शतमव्याधि रायुषा न वियुज्यते ॥"—चरक

परब्रह्म परमात्मा ने संसार के सब पदार्थ इस मानव देह के उपभोग के लिये, उसको सुख पहुँचाने के लिये बनाये हैं। परंतु यदि मनुष्य इनकी विधि को न समझे, या अज्ञान में रहें तो उसको कई प्रकार की हानियाँ

❀ (i) "त्रयः उपस्टम्भाः शरीरस्य आहारः स्वप्नो ब्रह्मचर्यमिति ॥"

(ii) "यदातुमनसि क्लान्ते कर्मात्मनः क्लमान्वितः।
विषयेभ्यो निवर्त्तन्ते तदा स्वपिति मानवः ॥"

(iii) "निद्रायत्तं सुखं दुःखं पुष्टिः कार्श्यं बलाबलम्।
वृषता क्लीवता ज्ञानमज्ञानं जीवितं न च ॥" (चरक)

पहुँचती हैं। जैसे—नमक एक खाने की वस्तु है, इसके बिना किसी भी शाक आदि में स्वाद नहीं आता। शरीर के लिये यह एक आवश्यक वस्तु है। परंतु यही नमक यदि मात्रा से अधिक खाया जाय तो शरीर में शिथिलता, ग्लानि और दुर्बलता आ जाती है। इसलिये संक्षेप में अपने इस शरीर के सम्पर्क में प्रतिदिन आनेवाली वस्तुओं की उपभोग विधि प्रत्येक मनुष्य को जाननी चाहिये।

इसके अतिरिक्त यह प्रकृति भी हर समय एक समान नहीं रहती। कभी गरमी होती है, कभी सरदी और कभी बरसात होती है। इस भिन्नता के कारण मनुष्य को रहन-सहन में भी परिवर्तन करना पड़ता है। परंतु यह परिवर्तन यदि वह समझ-बूझकर नहीं करता, तो कभी न कभी इस भिन्नता के कारण अस्वस्थ हो जाता है। यह भिन्नता स्वाभाविक है। इस भिन्नता के कारण शरीर पर होनेवाले प्रभाव को भी समझना चाहिये, साथ ही इस भिन्नता से शरीर को स्वस्थ रखने की विधि भी जाननी चाहिये।

इस चर और अचर सब प्रकार की सृष्टि को उत्पन्न करनेवाला कोई होगा ही ? क्योंकि घड़े जैसी छोटी वस्तु भी बिना बनानेवाले के नहीं बनती। अतः इस समस्त विश्व को, जिसमें सूर्य, चंद्र, तारे से लेकर चींटी जैसे सूक्ष्म प्राणी बने हैं, कोई न कोई बनानेवाला होना चाहिये। पिछले प्रकरणों में शरीर की आश्चर्यकारक योजना देखी है। वह योजना किसी अद्भुत महान् शक्ति के बिना नहीं बन सकती है। अतः इस महान् शक्ति को दिन में एक बार अवश्य ही स्मरण करना चाहिये। इस महान् शक्ति के किये हुये उपकारों को न मानना कृतघ्नता है, और कृतघ्न व्यक्ति होना सब सब से बड़ा पाप है।*

इसके अतिरिक्त कुछ नियम हैं; जिनको कि सद्वृत्त या सदाचार के नियम कहते हैं। इन नियमों का पालन करना जहाँ वैयक्तिक जीवन के लिये लाभकारी है, वहाँ अन्य मनुष्यों के लिये समाज के लिये भी लाभदायक होता है। यदि सब व्यक्ति अपने घरों को साफ़ रक्खें, तो समाज के मुखिया उस मैल को इकट्ठा करवाकर सुगमता से साफ करवा सकते हैं। इसी प्रकार यदि सब व्यक्ति इन नियमों का पालन करने लगें तो उनका, समाज का, जीवन सुखी और आनन्दमय बन सकता है।

---

* "पातकेभ्यः परं चैतत्पातकं नास्तिकग्रहः" ॥ चरक

इस प्रकरण को इसलिये निम्न भागों में बाँटा है:—

(१) दिनचर्य्या और रात्रिचर्य्या।

(ख) ऋतुचर्य्या

(ग) सद्वृत्त

(४) अन्य उपयोगी बातें, यथा—वायु, पानी, आहार

दिन-चर्या

प्रातःकाल उठना—स्वास्थ्य की कामना करनेवाले, निरोगी मनुष्य को यथासम्भव "ब्राह्म-मुहूर्त्त" में उठना चाहिये। यह समय घड़ी के अनुसार चार और पाँच के बीच का होता है। इस समय शरीर में उत्साह और मन में स्फूर्ति रहती है। बुद्धि साफ़ और जागृति होती है। कठिन कार्य भी सुगमता से थोड़े समय में समाप्त हो जाता है। इस समय उठने से शरीर के लिये अन्य उपयोगी नियमों का पालन भी भली प्रकार हो सकता है। इस समय साधारणतः नींद पूरी हो चुकी होती है। (स्वप्न-दोष, वीर्य का निकलना और स्वप्न आदि प्रायः इस समय होते हैं,) यदि मनुष्य हठ करके पड़ा रहता है, तो नींद अधकची रहती है। स्वप्न और वीर्यनाश प्रायः इसी अधकची नींद के ही परिणाम हैं। अतः मनुष्य को चाहिये कि यथासम्भव शीघ्र उठे। **"जल्दी सोना और जल्दी उठना, यह स्वास्थ्य का और सुखी रहने का मन्त्र है।"** एक बार जागकर फिर बिस्तर पर नहीं सोना चाहिये।

ईश्वर स्मरण—बिस्तर से उठकर उस जगन्नियन्ता परब्रह्म परमात्मा का स्मरण करना चाहिये; जिसकी असीम कृपा से हमारी रात सुख-पूर्वक बीती। उससे प्रार्थना करनी चाहिये कि हमारा दिन भी इसी प्रकार सुख से बीते। वे दुखियों के आश्रयदाता हैं, उनकी शरण में आया हुआ व्यक्ति कभी निराश नहीं होता।* इस समय की करी हुई प्रार्थना को भगवान् अवश्य सुनते हैं, चूँकि यह स्वच्छ बुद्धि से की जाती है।

उषापान—ब्राह्म-मुहूर्त्त में—पिछली चार घड़ी रात्रि में उठकर जो पानी पिया जाता है, उसको 'उषापान' कहते हैं। यह पानी मिट्टी या ताम्र के पात्र में रात्रि को रख देना चाहिये। इसकी मात्रा १५ से २० तोला होनी चाहिये। इस पानी को पीने से आयुष्य की वृद्धि होती है, अर्श, मल-बन्ध,

* "कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥" (भगवद्गीता)

प्रतिश्याय आदि रोग दूर होते हैं। इस उषापान में कोई-कोई व्यक्ति प्रकृति-भेद के कारण पानी के स्थान में घी, मधु-शहद और दूध का भी उपयोग करते हैं। दूध यदि पीना हो तो धारोष्ण दूध पीना चाहिये। परन्तु सबसे सस्ती, सरल और लाभकारी वस्तु "पानी" ही है। पानी का निषेध कहीं पर नहीं होता †। पानी प्राणियों का प्राण है, परन्तु देर में उठने से इस पानी का वह असर नहीं रहता। 'पान' उषाकाल में ही होना चाहिये।

मल-मूत्र त्याग—प्रातःकाल उठकर मल-मूत्र त्याग करने से शरीर मे निरोगता बढ़ती है। आयु लम्बी होती है। उषापान मल को उतारने में सहायता करता है। इस समय सबसे प्रथम मल त्याग करने से शरीर हल्का हो जाता है, और अगले कार्यों में प्रवृत्ति होती है। इस समय मल को रोकने से शरीर-दूषित परमाणु शरीर के अन्दर पहुँच जाते हैं। इसी प्रकार मूत्र को भी रोकना हानिकारक है। यदि इस समय मल-त्याग की प्रवृत्ति न हो तो लगातार नित्यप्रति प्रवृत्ति करने से मल-त्याग की आदत इस समय पड़ जाती है।

नियम—१. दूसरे से किये मल-मूत्र के स्थान पर मल-मूत्र त्याग नहीं करना चाहिये।

२. मल-मूत्र त्याग करते समय बोलना नहीं चाहिये।

३. मल या मूत्र को जोर करके बाहर न करे। $

४. देर तक उकड़ूँ (घुटनों को ऊँचा करके) नहीं बैठना चाहिये। यदि मल नहीं आता तो फिर जाना चाहिये।

५. मल-मूत्र त्याग करने के पश्चात् हाथ, मुँह और पैरों की शुद्धि करनी चाहिये।

६. टट्टी आदि में यदि मल त्याग करना पड़े तो उस स्थान को स्वच्छ रखना चाहिये। उसको किसी डिसइन्फैक्ट वस्तु से धुलवा देना चाहिये। और यदि कुछ न हो तो प्रत्येक मनुष्य मल-त्याग के बाद राख या चूना मलपर डाल दे, जिससे दूषित परमाणु न उड़ें।

---

† "पानीयं प्राणिनां प्राणाः विश्वमेव च तन्मयम्।
अतोऽत्यन्त निषेधेन न क्वचिद् वारिवार्यते॥" (अष्टांग हृदय)

$ "नोर्ध्वं जानु चिरं तिष्ठेत्। न वेगान् निःसारयेत् बलात्॥" (चरक)

७. मल त्याग के समय कान और नाक तथा मुख के छिद्रों को दूषित परमाणु से बचाना चाहिये।

८. मल त्याग या मूत्र त्याग के पश्चात् पानी का उपयोग अवश्य करना चाहिये और वह पानी ठंडा होना चाहिये। इससे गुदा की रक्त वाहिनियों की दीवार संकुचित हो जाती है।

मुख शुद्धि— (दातुन)—नित्य कर्मों में दातुन का करना आवश्यक है। रात्रि को सोते समय दुर्गन्धित श्वास और आमाशय के अन्न रस के परमाणु आकर दाँत और जिह्वा पर मैल के रूप में जमते हैं। इनको निकालना शरीर से दूर करना आवश्यक है। यदि इनको वहाँ से न हटाया जाय तो यह स्थान दूषित रहता है। और इस स्थान से जानेवाली वस्तुयें भी दूषित हो जाती हैं। यथा—आहार और श्वास जिनका कि रास्ता इसी मार्ग में से गुज़रता है। इसके अतिरिक्त किसी दूसरे व्यक्ति के सामने मुँह करके बोलते समय मुँह से दुर्गन्ध आती है। दाँतों पर मैल जमकर उनकी जड़ों को निर्बल कर देती हैं। अतः इस मैल को दूर करना आवश्यक है।

इसके लिये प्रतिदिन दातुन, मंजन या ब्रुश करना चाहिये। यदि दातुन प्राप्त हो सके तो सब से उत्तम है। यह आक, कीकर, दहीया, तेजबल, नीम आदि की होनी चाहिये। जिसकी कूची अच्छी बन जाय, या जिसके अन्दर तिक्त या कड़ुवा रस हो। जिससे दूषित पानी निकल जाय। दातुन इतनी लम्बी होनी चाहिये कि सुगमता से पकड़ी जा सके। न बहुत मोटी न बहुत पतली होनी चाहिये। साधारणतः कनिष्ठिका अंगुली के समान होनी चाहिये। दातुन से साफ़ करके उसको बीच में से चीरकर जीभ को साफ़ करना चाहिये।

यदि ब्रुश करना हो तो उसे किसी दूसरे को नहीं देना चाहिये। ब्रुश को प्रतिदिन गरम पानी में कोई डिसइनफैक्ट (कृमिनाशक) दवा यथा (लाईज़ोल) डालकर धो देना चाहिये। ब्रुश के बाल खुले होने चाहिये।

१—प्रत्येक दाँत को अलग-अलग साफ़ करना चाहिये।

२—दाँतों को ऊपर से नीचे (निचले दाँतों को) और नीचे से ऊपर (ऊपर के दाँतों को) साफ़ करना चाहिये।

३—दातुन या ब्रुश इस प्रकार से करना चाहिये कि मसूड़ों को हानि न पहुँचे।

४—एक-एक दाँत को साफ़ करना चाहिये।

५—दातुन करने के पश्चात् प्रत्येक दाँतों के बीच में धागा फेरना चाहिये।

६—दाँतों को अन्दर की तरफ़ से और ऊपर से भी साफ़ करना चाहिये।

मंजन—कई बार दातुन के अभाव में मञ्जन का उपयोग करना पड़ता है। मंजन में तीन गुण होने चाहियें। यथा १—वह क्षारीय गुण रखता हो; परन्तु मृदु, २—जन्तुओं को मारनेवाला और दुर्गन्ध नाश करने वाला, ३—दाँतों को साफ़ करे; परन्तु दाँतों की बनावट को हानि न करे।

कुछ मंजन—(१) सेंधा लवण और तेल (कड़वा-सरसों का) मिलाकर प्रतिदिन करना चाहिये।

२—बकुल की छाल, माजूफल, अकरकरा, फिटकरी, सेंधा नमक यह भी उत्तम मंजन है।

३—आक, नीम, खैर, चिरचिटा इनकी राख में नमक मिलाकर करना भी उत्तम है।

रेत या कोयला करना हानिकारक है, इससे दाँतों पर रेखायें पड़ जाती हैं। दातुन करने के पश्चात् मुख को ख़ूब अच्छे प्रकार पानी से साफ़ करना चाहिये साथ ही में आँखों पर ठण्डे पानी के छींटे भी देने चाहियें। जिससे आँखों का मल दूर हो जाय।

तैलाभ्यंग—शरीर के ऊपर प्रतिदिन तैल मर्दन करने से त्वचा के ऊपर झुर्रियाँ नहीं पड़तीं। त्वचा कोमल, चिकनी रहती है। त्वक् में रहने वाली रक्तवाहिनियों में रक्त-संचार बढ़ता है। इसको प्रतिदिन करना चाहिये। इसके करने से निम्न लाभ होते हैं।

१. शरीर के अवयव कोमल और दृढ़ होते हैं।

२. रस और रक्त के बन्द हुये मार्ग खुल जाते हैं।

३. रक्त की गति बढ़ जाती है। शरीर की कान्ति बढ़ती है।

४. जिस प्रकार पानी के सिंचन से अंकुर बढ़ता है, उसी प्रकार तैल के सिंचन से धातुओं की वृद्धि होती है।

अभ्यंग-ऋतु के अनुसार और प्रकृति को देखकर घी या तैल से करना चाहिये। तैलों में सरसों का तेल सर्वोत्तम है। चूँकि तीक्ष्ण होने से शरीर के रोम कूपों में घुस जाता है। यदि सम्पूर्ण शरीर पर तैल लगाना सम्भव न हो तो; कान, शिर और पैर के तलुवे पर प्रतिदिन लगाना चाहिये। इससे नींद भली प्रकार आती है, और शिर ठंडा रहता है। कानों में तेल डालने से शिर और कान के रोग नहीं होते। सप्ताह में एक बार अवश्य तैल स्नान या तैलाभ्यंग करना चाहिये। तैल की चिकास निकालने के लिये आँवले का उबटन, या स्नान रज चूर्ण* का उपयोग स्नान के समय पर कर लेना चाहिये; और यदि साबुन लगाना हो तो कम क्षार वाला साबुन काम में लाना चाहिये। तैलाभ्यंग करके कुछ समय धूप में बैठना चाहिये; जिससे कि तैल शरीर के अन्दर घुस जाय।

व्यायाम—शरीर में जिस कार्य से थकान का अनुभव हो, वह व्यायाम है। यह थकान मांस पेशियों की भी हो सकती है, और ज्ञान तन्तुओं की भी, परन्तु यहाँ पर मांस पेशियों की थकान से अभिप्राय है। व्यायाम इतनी देर तक करना चाहिये कि श्वास-प्रश्वास की संख्या साधारण अवस्था से दुगुनी हो जाय। अर्थात् यदि श्वास-प्रश्वास एक मिनिट में १८ बार आता है, तो जब ३६ बार आने लगे, तब व्यायाम बन्द कर देना चाहिये। व्यायाम के अन्दर मात्रा का ध्यान अवश्य रखना चाहिये। व्यायाम ऐसा होना चाहिये कि शरीर के प्रत्येक अंग का व्यायाम हो जाय। व्यायाम नित्य-प्रति एक ही समय करना उत्तम है। व्यायाम से मांस पेशियों का संकोच और विकास-शक्ति नष्ट नहीं होने देना चाहिये। चलना, प्राणायाम, तैरना, योग के कुछ आसन, तथा दण्ड, बैठक, मुग्दर आदि व्यायाम उत्तम हैं।

लाभ—व्यायाम स्त्री, पुरुष, बालक, वृद्ध और युवा प्रत्येक के लिये उचित रूप में आवश्यक है। इसके सेवन करने से शरीर सुडौल भराव-दार बनता है।

२. शरीर में कान्ति, प्रत्येक अंग-प्रत्यंग का विभाग, लघुता, शरीर का हल्कापन, कार्य करने में शक्ति, और आरोग्यता व्यायाम से प्राप्त होती है।

३—शरीर के दोषों का नाश होता है, जठराग्नि बढ़ती है। शीत,

* स्नान रज चूर्ण = हरद, लोध्र निम्ब पत्र, सरसों का आटा, आम की त्वचा, अनार की छाल, इनका चूर्ण रात्रि में दूध के अन्दर भिगोकर प्रतिदिन लगाना चाहिये।

थकान, गरमी आदि को सहने की शक्ति व्यायाम से आती है। मोटाई को कम करने के लिये व्यायाम से उत्तम कुछ और नहीं है।

४—व्यायाम करनेवाले मनुष्य में बुढ़ापा, व्याधि, और अन्य शारीरिक कष्ट शीघ्रता से नहीं होते।

५—व्यायाम का सेवन शीत और वसन्त ऋतु में अवश्य करना चाहिये। ग्रीष्म में बहुत साधारण व्यायाम करना चाहिये।

६—शरीर के बल से अधिक व्यायाम करने से कई बार कास, श्वास, शोष, ज्वर आदि रोग होते हैं।

७—भोजन के पश्चात या स्त्री सेवन के उपरान्त व्यायाम नहीं करना चाहिये।

उद्वर्त्तन (उबटन)— व्यायाम के पीछे शरीर को उबटन से मलना चाहिये। पीली सरसों को बारीक पीसकर रात्रि में कच्चे दूध में भिगोकर रख देना चाहिये। प्रात: इसको लगाना चाहिये। इसके लगाने से शरीर की कान्ति (विशेषत: स्त्रियों में) बढ़ती है इसके द्वारा मुँह या शरीर की छोटी-छोटी फुंसियाँ, जाती रहती हैं। शरीर हल्का बन जाता है। कफ और चर्बी को नष्ट करता है।

स्नान—स्नान या नहाना एक बाह्य शरीर की शुद्धि है। इसके द्वारा थकान, नींद का आलस्य, पसीना, और अन्य मल दूर होते हैं। स्नान शरीर की शुद्धि लिये आवश्यक है। इसीसे इसको "धर्म" माना गया है। शुद्धि न करना, केवल बदन पर पानी उड़ेल लेना धर्म नहीं है। स्नान के लिये कुछ नियम हैं, प्रत्येक मनुष्य को चाहिये कि वह उनको समझ ले।

१—स्नान यथा सम्भव ताजे, ठण्डे पानी से करना चाहिये* विशेषत: यदि कुयें का पानी प्राप्त हो सके और यदि यह सम्भव न हो तो शिर और आँखों पर कभी भी गरम पानी नहीं डालना चाहिये। इससे बालों को और आँखों को नुकसान होता है। आँखें निर्बल हो जाती हैं; और बाल गिरने लगते हैं। जिस प्रकार कि गरम पानी के देने से वृक्ष का अंकुर सूख जाता है।

* कुंवे का पानी, बड़ की छाया और श्यामा स्त्री में यह गुण होता है कि ये तीनों वस्तुयें शीतकाल में गरम होती हैं, और ग्रीष्मकाल में शीत होती हैं।

१—कटि से निचले भाग को गरम पानी से धोया जाय तो उत्तम है। इससे अंगों का बल बढ़ता है।

२—स्नान एकान्त में करना चाहिये-जिससे प्रत्येक अंग का शोधन भले प्रकार का हो जाय।

३. स्नान के पीछे शरीर को शुष्क रूमाल या तौलिये से भली प्रकार पोंछना चाहिये, जिससे कि शरीर पर पानी का निशान न रहे।

४. स्नान करते समय भी यदि स्पंज या खद्दर के गीले टुकड़े से बदन को रगड़ा जाय तो बहुत उत्तम है। इससे रक्त-संचार बढ़ जाता है।

५. शीत-ऋतु में थोड़े गरम पानी से स्नान किया जा सकता है। भोजन के पीछे या ज्वर-अतिसार की अवस्था में स्नान नहीं करना चाहिये।

स्नान करने से मनमें प्रसन्नता होती है, कार्य में उत्साह बढ़ता है। व्यायाम से उत्पन्न पसीना दूर हो जाता है।

वस्त्र—वस्त्र या कपड़े श्वेत, निर्मल होने चाहिये। शरीर की उनके द्वारा पूरी रक्षा होनी चाहिये। यदि वे सच्छिद्र हों तो अच्छा। जिससे कि शरीर का पसीना सुखा लें। वायु का स्पर्श शरीर को हो सके। शरीर की गति में किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न न करें। त्वचा के साथ सदा कोई सूती, हल्का वस्त्र पहनना चाहिये। अधिक गरम वस्त्र त्वचा को हानि पहुँचाता है।*

भोजन—भोजन के विषय में भिन्न-भिन्न देशों में भिन्न-भिन्न रिवाज है। भारतवर्ष में भोजन प्राय: सायंकाल और मध्याह्न में किया जाता है। भोजन जो भी हो वह सुपच, रुचिकारक और शरीर के लिये पोषणकारी होना चाहिये। भोजन शुद्ध और पवित्र होना चाहिये। भोजन के ऊपर शरीर के सब कार्यों का आधार है। जैसा अन्न खायँगे वैसी ही बुद्धि और मन

---

* "काम्यं यशस्यमायुष्यं अलक्ष्मीघ्नं प्रहर्षणम्।
श्रीमत्पारिषदं शस्तं निर्मलाम्बर धारणम्॥" (चरक)

■ "आहारः प्राणीनां सद्यो बलकृद् देह धारकः।
आयुस्तेजो समुत्साहस्मृत्योजोऽग्निवर्धनम्॥" (सुश्रुत)
"सायं प्रातमनुष्याणां भोजनं विधि निर्मितम्।
नान्तरे भोजनं कुर्यात् अग्नि होत्र समो विधिः॥" (वाग्भट्ट)

बनेगें। अन्न की पवित्रता की ओर विशेष ध्यान देना चाहिये। सात्त्विक अन्न यथा सम्भव खाना चाहिये। निम्न बातों को भोजन के समय अवश्य देखना चाहिये।

१. भोजन कड़ा होना चाहिये। कठोर भोजन-रोटी आदि खाकर नर्म भोजन पीछे खाना चाहिये।

२. भोजन को गरम खाना चाहिये। गरम भोजन अच्छा लगता है, जल्दी पच जाता है, वात और श्लेष्म को कम करता है।

३. स्निग्ध भोजन खाना चाहिये। अग्नि को बढ़ाता है, जल्दी पच जाता है। बल बढ़ाता है।

४. मात्रा के अनुकूल-जितनी भूख हो उतना-खाना चाहिये। यह बिना कष्ट के पच जाता है।

५. प्रथम भोजन के जीर्ण होने पर, पच जाने पर, खाना चाहिये। अजीर्ण में किया हुआ भोजन नुकसान करता है।

६. वीर्य के विरुद्ध नहीं खाना चाहिये। जो वस्तुयें आपस में नहीं मिलतीं, उनको नहीं खाना चाहिये। यथा—दूध को मछली के साथ नहीं खाना चाहिये। या दूध में नमक डालकर नहीं खाना चाहिये।

७. इष्ट-अनुकूल स्थान पर खाना चाहिये। जिससे भोजन में अरुचि उत्पन्न न हों।

८. बहुत जल्दी-जल्दी नहीं खाना चाहिये। इससे भोजन के रस का पता नहीं चलता, देर में पचता है।

९. बहुत देर में भी नहीं खाना चाहिये। इस प्रकार देर में खाने से पेट नहीं भरता।

१०. बिना बोले, बिना हँसे खाना चाहिये। कई बार भोजन हँसने या बोलने से नाक में आ जाता है।

११. आत्मा के अनुकूल भोजन खाना चाहिये। यह मेरे शरीर के योग्य है, यह शरीर के योग्य नहीं है, यह बात देखकर भोजन खाना चाहिये।

१२. भोजन में सबसे प्रथम मधुर खाना चाहिये, उसके पीछे नमकीन फिर तिक्त, कटु और कषाय रस सबसे पीछे खाने चाहिये।

१३. भोजन से पूर्व नमक और आर्द्रक से जिह्वा को साफ़ करना चाहिये।

१४. रात्रि को दही या छाछ नहीं खानी चाहिये। खानी हो तो शर्करा के साथ खानी चाहिये।

१५. भोजन के साथ पानी यथा सम्भव नहीं पीना चाहिये। विशेषत: प्रथम भाग में तो पीना ही नहीं चाहिये।

१६. रात्रि में दिन की अपेक्षा हल्का भोजन करना चाहिये।

१७. भोजन के पीछे आँखों पर मलकर हाथों को लगाना चाहिये। इससे आँखों के रोग दूर होते हैं।

१८. भोजन के पश्चात् १०० कदम घूमना चाहिये। तुरन्त लेटने या सोने से स्थूलता आती है।

१९. भोजन के पश्चात् स्नान या व्यायाम नहीं करना चाहिये।

२०. भोजन के पीछे दाँतों को भली प्रकार साफ़ करना चाहिये।

२१—भोजन का समय निश्चित रखना चाहिये। बार-बार भोजन नहीं करना चाहिये।

२२—भारी भोजन थोड़ी मात्रा में खाना चाहिये। यथा—लड्डू, वासुदी, पायस-दुग्धपाक आदि।

भोजन के समय माता, या स्त्री होनी चाहिये। जो कि भोजन के समय आनन्द और प्रसन्नता से भोजन करा सके।

मुखवास—भोजन के पश्चात् खूब अच्छी प्रकार पानी से कुल्ले करना चाहिये। इसके पश्चात् कोई सुगन्धित वस्तु यथा, भुना हुआ धनिया, या इलायची खानी चाहिये। अपने देश में पान, और सुपारी खाने का बहुत रिवाज है। पान में कत्था, चूना, सुपारी और तम्बाकू रखकर खाते हैं। कत्था और चूना दाँतों के लिये उपयोगी अवश्य हैं; परन्तु बहुत थोड़ी मात्रा में। अधिक मात्रा में दाँतों को हानि करते हैं। दाँतों पर काली रेखायें पड़ जाती हैं। रात को सोते समय जब इनके छोटे-छोटे टुकड़े मुँह में रह जाते हैं, तो यह सड़कर दाँतों में मवाद उत्पन्न कर देते हैं। अत: इनको यथा शक्ति कम खाना चाहिये। और यदि खाना हो तो रात के समय मुँह को

धोकर, कुल्ले करके सोना चाहिये। सौंफ या धनिया मुँह साफ करने के लिये अच्छा है। साधारणतः यह आदत अच्छी नहीं है।*

नींद—दिन भर परिश्रम से थके हुये शरीर को रात्रि में सोने की या विश्राम की आवश्यकता होती है। यदि दिन भर परिश्रम न किया जाय, या दिन में सोया जाय, तो रात्रि को पूरी रीति से नींद नहीं आती। रात्रि में अधिक खाने से या पेट भरा होने से नींद भली प्रकार नहीं आती, या रात्रि को स्वप्न आते हैं। परमात्मा ने दिन काम करने के लिये बनाया है; और रात्रि सोने या विश्राम करने के लिए। रात्रि में सोने के लिए निम्न नियमों का ध्यान रखना चाहिये।

१—बिस्तर बहुत सख्त, या बहुत अधिक कोमल नहीं होना चाहिये। अधिक गद्दों पर सोने से प्रायः रात्रि में वीर्यनाश होता है।

२—पेट भरकर या सोने से पूर्व पानी आदि नहीं पीना चाहिये।

३—उत्तर दिशा की ओर सिर करके नहीं सोना चाहिये। विशेषतः यदि भूमि पर सोना पड़े। क्योंकि पृथ्वी में चुम्बक धारा उत्तर और दक्षिण में बह रही है। उसके समानान्तर होने से शरीर को हानि पहुँचती है।

४—सोने का स्थान स्वच्छ, हवादार होना चाहिये। उस स्थान में और सामान नहीं रखना चाहिये। यदि वायु बहुत आती हो तो किवाड़ों को कुछ तिरछा बन्द कर देना चाहिये।

५—सोने के कमरे में मिट्टी का तेल, या कोयले नहीं जलाने चाहियें।

६—सोते समय मुँह खुला रहना चाहिये। श्वास नासिका से लेना चाहिये। एक पार्श्व के बल (दक्षिण) सोना चाहिये। पीठ के भार सोने से स्वप्न-दोष होता है।

७—सोने से पूर्व हाथ, पाँव गरम पानी में या शीत पानी में धोकर सुखा लेने चाहियें।

८—रात्रि को सोते समय दूध पीना चाहिये। यह नियम गृहस्थियों के लिये है।

९—सब प्रकार की चिन्ताओं को दूर करके, भगवान् का नाम स्मरण करके सोना चाहिये।

*अपने प्राचीन ग्रन्थों में पान का खाना आवश्यक बताया गया है। उसके गुणों की असीम प्रशंसा की गई है। परन्तु प्रत्यक्ष रूप में दांतों को हानि करता हुआ दिखता है। अतः उससे बचना ही उत्तम है।

१०—सोते समय बदन पर कोई तंग कपड़ा नहीं पहनना चाहिये ।

यहाँ पर संक्षेप से दिन-चर्य्या के नियम लिख दिये हैं । इनका अधिक विस्तार चरक-सुश्रुत आदि ग्रन्थों में देख सकते हैं । जिस प्रकार कि एक नागरिक अपने घर की देख-भाल करता रहता है, और जिस प्रकार एक रथी अपने रथ की देख-रेख करता है, उसी प्रकार मनुष्य को भी चाहिये कि वह अपने शरीर की देख-रेख करता रहे ।

सदाचार

"वैष्णव जन तो तेने कहिये, जो जाने पीर पराई रे ।

पर उपकार कर तोये, मन अभिमान न माणे रे ।।" नरसिंह मेहता

आर्य-चिकित्सा शास्त्र में और अर्वाचीन चिकित्सा शास्त्र में मुख्य भेद यही है कि नवीन चिकित्सा शास्त्र, रोगों की चिकित्सा बताता है, परन्तु प्राचीन चिकित्सा शास्त्र जहाँ रोगों की चिकित्सा को बताता है, वहाँ रोगों से बचने के उपाय भी बताता है । अर्थात् स्वस्थ मनुष्य किन उपायों से सम्पूर्ण आयु तक स्वस्थ रह सकता है, इसके उपाय भी प्राचीन शास्त्र बताता है । इन उपायों में से एक उपाय "सदाचार" का पालन भी है । उसके कुछ नियम यहाँ नीचे दिये जाते हैं । जिस प्रकार दिन-चर्य्या का सम्बन्ध बाह्य शरीर के साथ है, उसी प्रकार सदाचार का सम्बन्ध मन के साथ है ।

१. सब प्राणी सुख की कामना करते हैं; सुख बिना धर्म नहीं होता, अतः धर्म का पालन करना चाहिये । धर्म क्या है ? इसकी चर्चा करने की यहाँ आवश्यकता नहीं । जिसको जिस पर श्रद्धा हो, उसके लिये वही धर्म है । इस पुस्तक में श्रद्धा ही धर्म है ।*

२. अपना भला चाहनेवाले मित्रों पर प्रेम रखना चाहिये और शत्रुओं से बचना चाहिये ।

३. कायिक, मानसिक और वाणी के पाप कर्मों से बचना चाहिये ।

४. गरीब पुरुषों पर या अपांग व्यक्तियों पर दया करनी चाहिये ।

* "स्वर्ग का कारण धर्म है उस धर्म का पालन करना चाहिये । कहा भी है—
ऊर्ध्व बाहू विरोम्येष न च कश्चित् शृणोति माम् ।
धर्मात् अर्थश्च कामश्च, धर्मः किं न सेव्यते ।" (महाभारत)

यथा शक्ति जो बने वह उनको देना चाहिये। और न हो तो प्रिय वाणी से उनको उत्तर देना चाहिये।

५. देवता—जिसमें अपनी श्रद्धा हो, गाय, ब्राह्मण श्रोत्रिय-वेद पाठी, वृद्ध पुरुष, वैद्य, अतिथि और राजा गुरुजनों में आदर की दृष्टि रखनी चाहिये।

६. कीड़े जैसे सूक्ष्म प्राणी के लिये भी शरीर में दया रखना।

७. अपकार करनेवाले व्यक्ति के लिये भी उपकार का भाव रखना चाहिये। उपकार करनेवाले के लिये तो सब आदमी उपकार करते ही हैं। उपकार करके किसी से कहना नहीं चाहिये।

८. सम्पत्ति और विपत्ति में मन को सुखी या दुःखी नहीं करना चाहिये। जिस प्रकार सूर्य उदय होता हुआ भी लाल होता है और अस्त समय में भी लाल रहता है।

९. प्रसंग बिना बोलना नहीं चाहिये। जहाँ तक बने सत्य बोलना चाहिये। वह सत्य भी कल्याणकारी और सुन्दर होना चाहिये। (सत्यं शिवं सुन्दरम्)।

१०. सदा प्रसन्न मुख, प्रथम बोलने वाला, होना चाहिये। अकेला सुख का उपभोग नहीं करना चाहिये।

११. सब स्थानों पर विश्वासी नहीं होना चाहिये और न सब स्थानों पर अविश्वासी रहना चाहिये।

१२. कोई मनुष्य मेरा शत्रु है, या मैं किसी का शत्रु हूँ; यह बात किसी को नहीं कहनी चाहिये। और न किसी दूसरे से किये हुये अपने अपमान को कहना चाहिये।

१३. जो आदमी जिस प्रकार से प्रसन्न होता है, उसको उसी प्रकार से प्रसन्न करना चाहिये।

१४. इन्द्रियों को बहुत दुःख नहीं देना चाहिये और न उनकी बहुत लालसा करनी चाहिये।

१५. जिस काम में धर्म, अर्थ, और काम इन तीनों में से एक की भी प्राप्ति नहीं होती, उस काम को नहीं करना चाहिये। इन तीनों का इस प्रकार से सेवन करना चाहिये कि इनमें से किसी एक में बाधा न हो। अर्थात् तीनों का समान मात्रा में सेवन करना चाहिये।

१६. एक ही वस्तु पर आसक्ति नहीं करनी चाहिये।

१७. बाल, नख, दाँत आदि को शुद्ध रखना चाहिये। इसी प्रकार नाक के बालों को नहीं उखाड़ना चाहिये। और न दाँतों से नखों को काटना चाहिये।

१८. नित्य प्रति स्नान करना चाहिये। श्वेत, उज्ज्वल वस्त्र पहनने चाहिये। वेश इस प्रकार का होना चाहिये, जिसमें अभिमान, उद्धतपन दिखाई न दे।

१९. जूता और छतरी तथा छड़ी (स्टिक) लेकर जाना चाहिये। चलते समय चारों ओर का ध्यान रखकर चलना चाहिये। धूप, वायु, वर्षा, और सरदी से शरीर को बचाना चाहिये।

२०. रात्रि को अकस्मात् बाहर जाना पड़े तो साथी लेकर जाना चाहिये। शिर पर पगड़ी बाँधनी चाहिये।

२१. बल करके नदी को तैरना नहीं चाहिये, अग्नि के ऊपर से नहीं लाँघना चाहिये। दुष्ट यान पर-टूटी हुई नाव पर नहीं बैठना चाहिये। नंगा होकर पानी में नहीं नहाना चाहिये। पानी में मूत्र या मल का त्याग नहीं करना चाहिये।

२२. छींक या जम्भाई के समय मुख पर हाथ रखना चाहिये। भूमि पर रेखा नहीं खींचना चाहिये। हाथ पाँव अथवा शरीर के किसी अंग को नहीं बजाना चाहिये।

२३. रात्रि को वृक्ष के नीचे नहीं सोना चाहिये। देर तक घुटने के बल नहीं बैठना चाहिये।

२४. देवालय, चबूतरा, चौसरा, वृक्ष आदि स्थानों पर या एकान्त स्थान में, जंगल में, श्मशान में रात्रि के समय नहीं रहना चाहिये और न पवित्र स्थानों पर मल-त्याग करना चाहिये।

२५. सूर्य के सामने देखना नहीं चाहिये। शिर पर भार नहीं उठाना चाहिये। तेज या मन्द प्रकाश में नहीं पढ़ना चाहिये। न हिलते हुये या अपवित्र, अप्रिय रूप को न देखना चाहिये।

२६. मद्य और मांस का पान या भोजन नहीं करना चाहिये।

२७. पूर्व दिशा की वायु, पूर्व का प्रकाश, उड़ती धूल, कठोर वायु से बचना चाहिये।

२८. शरीर को टेढ़ा करके या मुँह बिगाड़कर हँसना, छींकना नहीं चाहिये।

२९. दुष्ट पशुओं से, जहरीले जानवरों से, सींगवाले पशुओं से बचना चाहिये। नीच पुरुषों की सेवा नहीं करनी चाहिये।।

३०. सन्ध्याकाल के समय स्त्री-सेवा, निद्रा, अभ्यास, भोजन नहीं करना चाहिये।

३१. शव-मृत देह को देखकर हँसना व उसका चक्कर नहीं लेना चाहिये। स्त्रियों का बहुत अधिक विश्वास नहीं करना चाहिये, और न उनको अधिक स्वतंत्रता देनी चाहिये।

३२. पूज्य गुरुजनों, माता-पिता, आचार्य और वृद्ध पुरुषों के अनुकूल रहकर बरतना चाहिये।

३३. रात और दिन किस प्रकार से व्यतीत होते हैं, इस बात का सदा ध्यान रखना चाहिये।

३४. सड़ा हुआ मांस, बूढ़ी स्त्री के साथ सम्भोग, उदय होता हुआ सूर्य, अधकची दधि, प्रातःकाल का सोना, प्रातःकाल का सम्भोग, ये छः वस्तुयें जल्दी प्राणों को ले लेती हैं।

३५. शिर को नीचा रखकर नहीं सोना चाहिये। न उत्पन्न हुये स्वाभाविक वेगों को रोकना चाहिये। राजपुरुषों से विरुद्ध होकर न रहे, और न उनके शत्रु से मित्रता करे।

३६. बिना स्नान किये, बिना अतिथि या गुरुजनों को खिलाये, बिना पाठ किये, बिना मुख धोये, बिना अग्नि में डाले, भोजन नहीं करना चाहिये।

३७. रास्ते में मल-मूत्र आदि का त्याग नहीं करना चाहिये। प्रतिज्ञा भंग नहीं करना चाहिये। बालक, वृद्ध, भीरु, लोभी के साथ मित्रता नहीं करनी चाहिये। मद्य, जुये या वेश्या प्रसंग में न फँसे। किसी की गुप्त बात न सुने। गाय को डण्डे से न मारे। आलसी न बने।

इसके अतिरिक्त सम्भोग सहवास के भी कुछ नियम हैं। मनुष्यों के अन्दर खाने की इच्छा, पानी की इच्छा, सोने की इच्छा और सम्भोग की इच्छा ये चार इच्छायें स्वाभाविक हैं। इनमें और इच्छाओं के विषय में साधारण नियम दिये जाते हैं।

१. स्त्रियों का अपमान कहीं नहीं करना चाहिये, इनका अधिक

विश्वास न करे, इनको गुप्त बात न सुनावे, इनको अधिकार नहीं देना चाहिये।

२. रजस्वला, रोगी, अपवित्र, कुरूप, अकुशल (फूहड़), बिना कामेच्छा के उत्पन्न हुये दूसरे को चाहनेवाली, अन्य स्त्री के साथ; अन्य पशु आदि की योनि में, योनि के अतिरिक्त अन्य स्थानों में मैथुन नहीं करना चाहिये।

३. पानी या औषधि खाकर, अपवित्र रूप में, बिना संकल्प किये, बिना उत्तेजना हुये, खाली पेट, या खूब पेट भरे, विषमावस्था में, मूत्र आदि वेग से पीड़ित होकर या प्रकट स्थान में मैथुन न करे।

४. झुककर या पार्श्व के बल लेटकर स्त्री को सम्भोग नहीं करना चाहिये। पीठ के भार लेटकर ही शुक्र ग्रहण करना चाहिये।

५. गर्भिणी स्त्री के साथ, योनि दोषयुक्त, समान गोत्रवाली, गुरुपत्नी के साथ, सन्यासिनी के साथ, सन्ध्या या पर्व काल में, दुपहर को या आधी रात में, स्त्री के साथ सम्भोग नहीं करना चाहिये।$

६. दिन के समय सम्भोग नहीं करना चाहिये।*

फैलनेवाले रोगों से बचने का उपाय

सभ्य देशों में नियम रहता है कि राज्य की ओर से सफ़ाई का एक विभाग अलग रहता है। इस विभाग का कार्य शहर की सफ़ाई की देख-रेख करना है। यह विभाग तब तक सफल नहीं हो सकता, जब तक कि जनता उसको सहयोग न देवे। अर्थात् वह अपने घर की सफ़ाई न करे, या सफ़ाई के नियमों का पालन न करे। जैसे—मल और मूत्र-त्याग इनके उचित स्थानों पर ही करना चाहिये। इसके साथ ही राजकीय विभाग का भी कर्त्तव्य है कि वह शरीर या नगर सम्बन्धी-आवश्यक बातें लोगों को सिखावे। इसके लिये—

(१) स्थान-स्थान पर मोटे इश्तिहार लिखकर लगा देने चाहियें। जिनमें शरीर सम्बन्धी आवश्यक बातें लिखी हों।

(२) छोटे-छोटे बच्चों की रीडरों में शरीर सम्बन्धी बातें, हवा

$ स्त्री में कामेच्छा के उत्पन्न किये बिना जब पुरुष बलपूर्वक प्रवृत्त होता है, तब उसको अवदारिका (पेराफाइ मोसिस) रोग हो जाता है। यह प्रायः उनमें होता है, जिनका अगला मूत्र-छिद्र तंग होता है। वात्स्यायन सूत्र की टीका।

* प्राणं वा एते प्रस्कन्दन्ति ये दिवा रत्या संयुज्यन्ते। प्रश्नोपनिषद

और पानी का वर्णन, तथा उनसे किस प्रकार रोग फैलते हैं; इत्यादि बातें बड़े सुन्दर रूप में चित्रों के साथ दी जानी चाहियें।

(३) स्थान-स्थान पर जादू की लालटैन (मैजिक लैन्टर्न) के द्वारा बच्चों को चित्र दिखायें जायें, कि नित्य नियम पालन से यह लाभ होता है।

(४) सदाचार या नित्य के नियमों का उसको बचपन से ही अभ्यास डालना चाहिये। बच्चा जो सीखता है, वह बचपन में ही सीखता है।

(५) घरों में जाने के लिये शिक्षित धात्रियाँ, या स्त्रियाँ नौकर रखनी चाहियें, जो कि बच्चों को और परिवार के अन्य आदमियों को स्वास्थ्य का मूल्य बतावें और बतावें कि स्वास्थ्य किन बातों पर टिका हुआ है।

कई बार यह देखने में आया है कि विज्ञान की उच्च श्रेणी में पढ़ता हुआ विद्यार्थी, जो कि पानी के बनाने की वस्तुओं को भली प्रकार जानता है, उसको यह मालूम नहीं होता कि पानी भी हैजे को फैला सकता है। इसी प्रकार वायु मण्डल को समझनेवाला विद्यार्थी उसमें होनेवाले विकार को नहीं समझता। यह कितने अज्ञान की बात है, कि हम अपने नित्य प्रति काम में आनेवाले शरीर के लिये उपयोगी बातों को भी नहीं जानते। इस शिक्षा से शरीर के स्वास्थ्य पर कोई अच्छा प्रभाव न पड़कर ईश्वर प्रदत्त यह अमूल्य शरीर नष्ट हो जाता है। इसके फल-स्वरूप बुढ़ापा जल्दी आ जाता है।

एक बच्चा बड़ा होता है, कालेज से बी० ए० या एम० ए० पास कर लेता है, परन्तु उसको यह पता नहीं होता कि किस महीने में क्या चीज नहीं खानी, और किस प्रकार से रहन-सहन किस समय, किस ऋतु में करना चाहिये। जिस अज्ञान के कारण वह कहीं न कहीं फँस जाता है। यह शिक्षा आधुनिक चिकित्सा-शास्त्र भी नहीं देता। वह तो केवल उत्पन्न रोग का प्रतिकार बताता है। यह इतनी मामूली बातें समझी जाती हैं कि मनुष्य इनकी ओर ध्यान देना भी आवश्यक नहीं समझता। पर शरीर का स्वास्थ्य इन्हीं पर निर्भर करता है। अतः इनको जानना प्रत्येक व्यक्ति का कार्य है।

अपने प्राचीन रीति-रिवाजों में कुछ नियम थे, जिनका कि एक आवश्यक महत्त्व होता था। आजकल की शिक्षा ने उनके प्रति भी मनुष्य के विचार बदल दिये। यथा-शरद्-ऋतु की पूर्णिमा के दिन एक बृहत् यज्ञ होता था। गुजरात में यह दिन आज भी बड़ी पूजा और आनन्द के साथ मनाया

जाता है। इस यज्ञ के द्वारा यह सिद्ध होता था कि अब रोगों की शान्ति हो गई। इस प्रकार के यज्ञ प्रत्येक ऋतु परिवर्त्तन में या भयानक, व्यापक रोग (यथा—प्लेग आदि) फैलने पर भी किये जाते थे। इनके द्वारा वायु साफ़ हो जाती है। परन्तु आजकल शिक्षित व्यक्ति भी इसको एक निरर्थक कार्य मानते हैं। यह शिक्षा का अभाव ही है।

इसी प्रकार व्यापक रोग फैलने पर क्या करना चाहिये? इत्यादि बातों के लिये संकेत, स्थान-स्थान पर लगा देना चाहिये। उनसे बचने के उपाय बच्चों को स्कूल में पढ़ा देना चाहिये। जिस समय ये शिक्षित व्यक्ति, नागरिक बनेंगे, उस समय स्वास्थ्य के विभाग को बहुत ही सरलता अपने कार्य में हो जायगी।

यहाँ पर व्यापक-भयानक प्लेग आदि रोगों से बचने के लिये कुछ नियम दिये जाते हैं। जिनको समयानुसार पालन करने से मनुष्य भयानक रोगों के पंजे में आने से बच सकता है। शिक्षित व्यक्तियों को चाहिये कि ये नियम अपने पास रहनेवाले अशिक्षित व्यक्तियों को भी बता दें।

साधारण नियम ये हैं—व्यापक रोग जब फैलता है, तो उसका कारण ऐसी वस्तु में होता है, जो कि सब के लिये एक समान है। उदाहरण के लिये-यदि कुयें का पानी खराब होगया तो इस पानी को पीनेवाले सब व्यक्ति रोगी हो जायेंगे। अतः ऐसी वस्तु से बचना चाहिये। ये वस्तुयें वायु, पानी और भोजन हैं। इनमें—

(१) पानी से बचने के लिये उत्तम है कि, जो कुआँ खराब होगया हो, उसका पानी न बरतें। परन्तु कई बार यह करना असम्भव होता है। इसके लिये सबसे अच्छा है कि पानी को उबालकर काम में लाना चाहिये। उबालने से पानी का स्वाद खराब हो जाता है, परन्तु मनुष्य रोगों से बच जाता है।

(२) पानी से बचने का दूसरा उपाय यह है कि उसमें कोई ऐसी दवा (पोटासियम परमैंगनेट*) डाल दी जाये, जिससे कि रोग का कारण नष्ट हो जाये।

(३) रोगी के घरवालों को सबसे अलग कर देना चाहिये।

*पोटाशियम पारमैंगनेट एक प्रकार की दवाई है, जिसको पानी में डालने से जामुनी रंग का हो जाता है।

इसी प्रकार वायु से बचने के लिये साधारण बातें यह हैं। परन्तु पानी की अपेक्षा वायु से बचना अधिक कठिन है। पानी के खराब होने पर एक कुयें या तालाब के खराब होने से दूसरे स्थान से पानी का उपयोग किया जा सकता है। परन्तु वायु से बचकर कहाँ जाना होगा? परन्तु तो भी इसके शुद्ध करने के उपाय हैं। यथा—

(१) जिस समय वायु खराब हो जाती है, उस समय उसको शुद्ध करने के लिये खूब बड़े-बड़े यज्ञ करने चाहिये। जिस प्रकार उबालने से पानी शुद्ध होता है, उसी प्रकार आग के द्वारा वायु भी शुद्ध हो जाती है। क्योंकि आग जलाने से, आग के आस-पास की वायु हल्की हो जाती है; हल्की होने से वह ऊपर चली जाती है। उसका स्थान लेने के लिये और वायु आती है, और वह भी हल्की होकर ऊपर जाती है। इस प्रकार से सब वायु शुद्ध हो सकती है। अग्नि-सब वस्तुओं को शुद्ध कर देती है।*

(२) दूसरा सरल उपाय यह है कि—जहाँ तक वायु मण्डल खराब हो, वहाँ तक बचकर अन्य स्थानों में जाना चाहिये। ये स्थान खुले हुये, जङ्गल होने चाहियें। जहाँ कि प्रकृति अभी स्वस्थ हो।

(३) इस समय विशेष रूप से ब्रह्मचर्य्य का पालन करना चाहिये। व्रत उपवास आदि करने चाहिये। जिससे कि शरीर की जीवन शक्ति बनी रहे।

तीसरी वस्तु आहार है। यह भोजन प्रायः एक परिवार के ही कार्य में आता है। अतः इससे फैलनेवाले रोग प्रारम्भ में परिवार तक ही सीमित रहते हैं। अतः उनको वहीं रोक दिया जाय तो उत्तम है। इसके लिये—

(१) रोगी मनुष्य को पृथक् कर देना चाहिये, उसके बर्त्तन और वस्त्र भी अलग रखने चाहियें।

(२) यदि हो सके तो उसकी सेवा करने वाले भी अलग कर देने चाहियें।

---

*सत्यं भूते दयादानं बलयो देवतार्चनम्।
सद्वृत्तस्यानुवृत्तिश्च प्रशमोगुप्तिरात्मनः॥
हितं जनपदानां च शिराना मुपसेवनम्।
सेवनं ब्रह्मचर्य्यस्य तथैव ब्रह्मचारिणाम्॥
सङ्कथा धर्मशास्त्राणां महर्षिणां जितात्मनाम्।
धार्मिकैः सात्विकैर्नित्यं सहास्या वृद्ध संमतैः॥ चरक॥

(३) यदि यह न हो सके तो उनको चाहिये कि खूब अच्छी तरह हाथ धोकर, वस्त्र बदलकर वे दूसरों से मिलें।

(४) आहार या भोजन में विष प्राय: मक्खियों द्वारा फैलता है। ये विष को एक स्थान से उठाकर दूसरी जगह ले जाती हैं। अत: इनसे भोजन को अवश्य बचाकर रखना चाहिये। शहर में प्राय: मिठाई आदि खुली रहती है, मक्खियाँ उस पर भिनभिनाती रहती हैं; अत: इससे बचना चाहिये।

(५) सड़े फल, मांस या अन्य भोजन की वस्तु फेंक देना चाहिये।

ऋतुचर्य्या

"द्वादश प्रधय: चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत।
तत्राहता: त्रीणि शतानि शंकव: षष्टिश्च कीला अविचा चलाये॥" अथर्व

बारह परिधियाँ— वर्ष के बारह महीने; तीन नाभ हैं-तीन ऋतुयें-वर्षा, ग्रीष्म और शरद; उसमें ३६० कीलें —दिन हैं।

जिस प्रकार कि मनुष्य की सारी जिन्दगी एक समान नहीं बीतती, उसी प्रकार यह साल भी कभी एक समान नहीं रहता। कभी साल में गरमी होती है, फिर सरदी होती है, और फिर बरसात पड़ती है। ये तीनों इतनी प्राकृतिक हैं, और स्वाभाविक हैं, कि प्रत्येक मनुष्य जानता है कि इस समय बरसात होगी, इस समय सरदी होगी, या इस समय गरमी होगी। जब कभी बरसात या गरमी अपने समय पर नहीं होती, तभी मनुष्य कहने लगते हैं कि इस साल बरसात देर में शुरू हुई या जल्दी शुरू हुई है।

उनको इन प्राकृतिक बातों का ज्ञान है, और वे इनके समय से परिचित हैं, इसीसे वे इनके आने से पूर्व ही अपना बन्दोबस्त कर लेते हैं। इनके अनुसार ही खेतों में बीज बो देते हैं। और इनके अनुसार अपने शरीर के कपड़े बना लेते हैं। ये बातें भी स्वाभाविक सी हो गई हैं। प्रत्येक अशिक्षित व्यक्ति भी इन बातों से परिचित होता है।

परन्तु यदि उनसे पूछा जाय कि भाई! यह हरसाल क्यों होता है, क्यों जेष्ठ-आषाढ़ में गरमी पड़ती है? तो उनके पास एक ही जवाब होगा कि "कुदरत की माया है," इसके सिवाय उस परवरदिगार के कौन जानें? ये उत्तर भी इतने स्वाभाविक हैं कि किसी गाँव में जाकर सुने जा सकते हैं।

ऋतुभेद के कारण—प्रत्येक प्राणी के लिये कुछ नियम बने होते हैं। ये नियम चाहे जैसे बने हों, या परब्रह्म ने बनाये हों। इसी प्रकार जड़ पदार्थों के लिये भी नियम हैं-यथा-सूर्य का सबेरे पूर्व दिशा से निकलना, और सायंकाल पश्चिम में छिप जाना। चन्द्रमा का धीरे-धीरे बढ़कर एक दिन पूरा होना, और फिर घटकर एक दिन सर्वथा छिपे रहना। और फिर अगले दिन थोड़ा-सा निकलना। ये सब बातें स्वाभाविक हैं या नियम से चलती रहती हैं। इसमें किसी का भी दखल नहीं होता। इन नियमों को हम प्राकृतिक या कुदरत के बनाये हुये कहते हैं। चूँकि इनमें किसी का दखल नहीं हाता अतः इनमें अन्तर भी नहीं आता। साल के बारह महीने या ३६५ दिन यह एक समान चलते रहते हैं। रोज सूर्य निकलता है, और सायंकाल छिपता है इसका नाम दिन; और जब तक छिपा रहता है—उसका नाम रात। सूर्य निकलता और छिपता प्रतिदिन है, परन्तु इन ३६५ दिनों में कभी तो देर से निकलता है, और जल्दी छिप जाता है इससे दिन का परिमाण घट जाता है, अर्थात् दिन छोटा होता है। और कभी सूर्य जल्दी निकल आता है, और देर में छिपता है; इससे दिन बड़ा हो जाता है। जब दिन बड़ा होगा तो रात छोटी होगी, और जब दिन छोटा होगा तो रात बड़ी होगी; क्योंकि वही २४ घण्टे हैं। चाहे इधर घटा लो, तो उधर बढ़ेंगे, चाहे इधर बढ़ा लो, तो उधर घटेंगे। यह भी स्वाभाविक ही है। इस वर्ष जिन दिनों सूर्य देर में निकलता है, और जल्दी छिपता है, अगले साल भी इन्हीं दिनों सूर्य देर से निकलेगा और जल्दी छिपेगा। यह एक चक्कर है।

इस चक्कर के दो भाग किये हुये हैं। एक तो वह भाग-जब कि दिन बड़े होते हैं, और रात छोटी होती हैं—इसको "उत्तरायण" कहते हैं। और जब दिन छोटे होते हैं, और रातें बड़ी होती हैं, उसको "दक्षिणायन" कहते हैं। उत्तरायण काल में गरमी अधिक होती है, और दक्षिणायन में सर्दी अधिक होती है। इन दोनों विभागों को बनानेवाला "सूर्य" भगवान ही है। उसकी गति के कारण ये दोनों विभाग हो जाते हैं। इसी से उत्तरायण काल में सूर्य का तेज बढ़ा होता है, और दक्षिणायन काल में सूर्य का तेज घटा रहता है। जिस समय सूर्य का तेज बढ़ा होता है, उस समय चन्द्रमा का तेज घटा रहता है; और जब सूर्य का तेज घट जाता है, उस समय चन्द्रमा का तेज बढ़ जाता है।

इन दो विभागों को करनेवाली रेखा है—और दोनों विभागों में एक-एक दिन आता है, जब कि दिन और रात बराबर-बराबर (१२ घंटे के) होते हैं। वह दिन अँग्रेजी महीनों में २३ जून और २३ दिसम्बर हैं। इन विभागों के समझने के लिये एक कल्पित रेखा पूर्व से पश्चिम तक खींचनी चाहिये। सूर्य जब इस रेखा से उत्तर की तरफ़ होगा तब गरमी अधिक होगी, और जब दक्षिण की ओर रहेगा तो सर्दी अधिक होगी। अर्थात् ये दोनों विभाग सूर्य के कारण किये हुये हैं।

सूर्य गरमी को देनेवाला है, और चन्द्रमा सर्दी को देनेवाला है। गरमी के कारण सब पदार्थ सूख जाते हैं, और सर्दी के कारण पदार्थों में तरी आती है। जिस प्रकार गर्मियों में थाली में रक्खा पानी सूख जाता है; और सर्दी की ऋतु में जमीन पर या पत्तों पर पानी "ओस के रूप में पड़ा होता है। अर्थात् सूर्य खींचता है, अर्थात् लेता है, और चन्द्रमा देता है।*

यह बात बहुत ही स्वाभाविक है। वर्ष रूपी चक्कर के एक भाग में पदार्थों का शोषण होता है, और दूसरे भाग में उनका पोषण होता है। यह शोषण कार्य उत्तरायण में होता है; जबकि सूर्य बलवान होता है, और पोषण कार्य दक्षिणायन में होता है; जबकि चन्द्रमा बलवान होता है। उत्तरायण काल में सब तालाब, वृक्षों के पत्ते सूख जाते हैं। और पशु भी पतले हो जाते हैं। और दक्षिणायन में सब बनस्पति और तालाब भरे रहते हैं। अत: उत्तरायण को 'आदानकाल' लेनेवाला समय कहते हैं; और दक्षिणायन को "विसर्ग काल" अर्थात् देने का समय कहते हैं। †

इन दोनों समयों के और भी छोटे विभाग कर रक्खे हैं; यथा—जिस समय गरमी अधिक होती है, उसको "ग्रीष्म ऋतु" कहते हैं, और जब सरदी अधिक होती है, उसको "हेमन्त ऋतु कहते हैं, और जब बरसात होती है, उसको "वर्षा ऋतु" कहते हैं इन तीनों ऋतुओं को भी और तीन भागों में विभक्त किया है यथा—

* सतपोतप्यत्। सतपस्तप्त्वा मिथुनमुत्पादयते। रयिंच प्राणं च। आदित्यो वै प्राणः रयिरेव चन्द्रमा। उपनिषद्

† सुश्रुत ने वर्षा, शरद और हेमन्त काल को विसर्ग काल माना है। शिशिर, बसन्त और ग्रीष्म को आदान काल।

उत्तरायण काल	दक्षिणायन काल
वसंत ऋतु—फागुन और चैत्र ग्रीष्म ऋतु—बैशाख और ज्येष्ठ वर्षा ऋतु—आषाढ़ और श्रावण	शरद् ऋतु—भाद्रपद और आश्विन हेमंत ऋतु—कार्तिक और मार्गशीर्ष शिशिर ऋतु—पौष और माघ

इन महीनों के हिसाब में कुछ फ़र्क रहता है। कोई तो चैत और बैशाख में वसन्तु ऋतु मानते हैं। इस प्रकार से गिनती करनेवाले साल का प्रारम्भ चैत्र मास से मानते हैं। दूसरे बैशाख से मानते हैं, और प्रारम्भ ग्रीष्म ऋतु से करते हैं। तीसरे व्यक्ति वर्ष का प्रारम्भ मार्गशीर्ष से करते हैं। इनका प्रारम्भ हेमन्त ऋतु से अर्थात् मार्गशीर्ष और पौष से होता है।

वसन्त ऋतु में ग्रीष्म ऋतु का प्रारम्भ होता है, और शीत ऋतु का अन्त होता है, इसी प्रकार शरद् ऋतु में वर्षा ऋतु की समाप्ति और हेमन्त ऋतु का प्रारम्भ होता है।

ऋतुओं में होनेवाला शरीर पर परिवर्त्तन—जिस प्रकार उत्तरायण और दक्षिणायन का प्रभाव शरीर पर पड़ता है, उसी प्रकार इन ऋतुओं का भी शरीर पर प्रभाव पड़ता है। गरमियों में जिस प्रकार शरीर के रस क्षीण हो जाते हैं, उसी प्रकार सरदियों में यह रस पुन: प्राप्त हो जाते हैं। इस प्रकार से इन ऋतुओं का प्रभाव शरीर को धारण करनेवाले वात, पित्त और कफ पर भी पड़ता है। अर्थात् किसी ऋतु में ये धातु बढ़ जाते हैं और किसी में घट जाते हैं। यथा—

	वसन्त ऋतु	ग्रीष्म ऋतु	वर्षा ऋतु	शरद् ऋतु	हेमन्त ऋतु	शिशिर ऋतु
बढ़ती होती हैं	×	वायु	पित्त	×	×	कफ
घटती हैं	×	कफ	×	वायु	पित्त	×
कुपित होते हैं	कफ	×	वायु	पित्त	×	×

उदाहरण के लिये शिशिर या ठण्ड की ऋतु में शरीर के अन्दर कफ

का संचय होता रहता है, और वसन्त ऋतु में जब गरमी पड़ने लगती है; उस समय गरमी पड़ने से कफ पिघलने लगता है, जिससे कि वह कफ अन्य रोगों को उत्पन्न करता है और ग्रीष्म काल में यही कफ फिर शान्त हो जाता है। इसी प्रकार ग्रीष्म काल में वायु बढ़ती है, वर्षा ऋतु में वायु का कोप होता है, और शरद् ऋतु में वायु शान्त हो जाती है। इसी प्रकार वर्षा ऋतु में पित्त एकत्रित होता रहता है, और शरद् ऋतु में कुपित होता है और हेमन्त में शान्त हो जाता है। ये दोष कुपित हों इससे पूर्व ही इनको आहार-विहार द्वारा शान्त कर देना चाहिये। शरीर की प्रकृति के अनुसार ये दोष अपनी-अपनी ऋतुओं में अधिक कष्टदायक होते हैं। यथा—वात प्रकृतिवाले को या वात रोगी को वर्षा ऋतु खराब होती है; कफ प्रकृतिवालों के लिये या कफ रोगियों के लिये वसन्त-ऋतु; और पित्त प्रकृति वालों के लिये या पित्त रोगियों के लिये शरद् ऋतु खराब होती है।

जिस प्रकार इन छः ऋतुओं का शरीर की प्रकृति के साथ सम्बन्ध है, उसी प्रकार भोजन के छः रसों के साथ भी इन ऋतुओं का सम्बन्ध है; और इन रसों का सम्बन्ध शरीर की प्रकृति-वात, पित्त और कफ के साथ है। इनमें से कुछ रस इन प्रकृतियों को बढ़ाते हैं, और कुछ घटाते हैं। जैसे मीठा अधिक खाने से शरीर में कफ की बढ़ती होती है, और कड़वी, तीखी-सोंठ आदि खाने से कफ की शान्ति होती है। इसी प्रकार तिक्त, कटु और कषाय रस से वायु की वृद्धि होती है, और मधुर-अम्ल और लवण से वात शान्त होती है। अम्ल, लवण से पित्त बढ़ता है, और कषाय और मधुर रस से पित्त शान्त होता है।

वसन्त ऋतु— फाल्गुन और चैत्र मास में यह ऋतु आती है। इस ऋतु के अन्दर सब वनस्पति आदि में नये-नये पत्ते आ जाते हैं। फूल निकल आते हैं। सुगन्धित वायु सब स्थानों पर बहने लगती है। संक्षेपतः इस ऋतु में प्रकृति-वानस्पतिक जगत् में गर्भाधान क्रिया कर रही होती है। इसी ऋतु में हेमन्त और शिशिर ऋतु में संचित हुआ कफ सूर्य की गरमी के कारण कुपित होता है। शीत ऋतु में ठंड होने से कफ जम जाता है, शीत दूर करने के लिये मनुष्य भी मधुररस—घी-दूध शर्करा आदि पदार्थ अधिक खाते हैं। सूर्य की तेज बढ़ने से यही कफ पिघलने लगता है, और रोग उत्पन्न करता है। जैसे, शिरोगुहा के अन्दर सञ्चित हुआ कफ सूर्य की गरमी से पिघलकर

गले में आने लगता है; जिससे कि प्रतिश्याय, जुकाम, खाँसी आदि रोग तथा छाती में दर्द होता है। इसी प्रकार छाती का कफ पिघलकर उदर में आता है; इससे अग्नि मन्द पड़ जाती है, पेट में मरोड़ा होता है। इस कफ को शान्त करने के दो उपाय हैं। या तो कफ को निकाल देना चाहिये, या शरीर के अन्दर ही उसको शान्त कर देना चाहिये। शरीर के अन्दर कफ को या अन्य दोषों को शान्त करने के लिये आहार-विहारादि के नियम हैं। इन नियमों से यथा—लंघन-पाचन आदि से ये दोष दब तो जाते हैं, परन्तु फिर कालान्तर में, समय पड़ने पर कुपित हो जाते हैं। परन्तु जो दोष शरीर के अन्दर से निकाल दिये जाते हैं, उनका फिर कोप नहीं होता। इसके लिये वमन और रेचन साधन हैं। इनके द्वारा शरीर का कफ बाहर निकल जाता है। परन्तु ये उपाय उन्हीं के लिये उपयोगी हैं; जिनके शरीर में सामर्थ्य हों। निर्बल व्यक्तियों के लिये प्रथम उपाय ही है।

वसन्त ऋतु में पालन करने योग्य नियम—

(१) इस ऋतु में कफ कुपित होकर रोग उत्पन्न करे, इससे पूर्व ही वमन आदि करा देना चाहिये।

(२) गुरु—भारी भोजन—दही आदि अम्ल-स्निग्ध-घृत आदि, मधुर-शहद आदि, नवीन धान्य इस ऋतु में नहीं खाने चाहिये। और न दिन में सोना चाहिये—इससे कफ बढ़ता है। कफ को घटाने के लिये व्यायाम, उद्वर्त्तन, आँखों में अञ्जन करना चाहिये। उबटन से कफ शीघ्र नष्ट होता है। स्नान के लिये गरम-कवोष्ण पानी काम में लाना चाहिये।

(३) जौ और गेहूँ का भोजन इस ऋतु में अच्छा है। अरिष्ट-आसव इस ऋतु में उत्तम है। युवती स्त्रियों का अनुभव तथा जंगल में घूमना-कफ को कम करता है। मेहनत करनेवाले व्यक्तियों में कफ इस समय भी कुपित नहीं होता।

ग्रीष्म ऋतु—वैशाख और ज्येष्ठ मास में यह ऋतु आती है। इस ऋतु में कफ घटने लगता है। वह शान्त हो जाता है। इस ऋतु में सूर्य का तेज बढ़ता है। वह शरीर के रस को सुखा देता है। शरीर के रस सूखने से, शरीर कमजोर हो जाता है। पसीना निकलने से, पानी का भाग कम हो जाता है। इस समय शरीर के अन्दर वायु संचित होने लगती है। इस

समय गरम पदार्थ और नुकसान करते हैं। इस समय ऐसे पदार्थ खाने चाहियें, जिनसे शरीर में रस की मात्रा बढ़े। इस ऋतु में मधुर रस विशेष लाभदायक होता है। मधुर रस सूखते हुये शरीर को थाम लेता है।

नियम—ग्रीष्म-ऋतु में पालन करने योग्य नियम—

१. नमक, तीखे, कड़वे पदार्थ (करेला आदि), रूखी चीजें—बाजरा आदि नहीं खाना चाहिये। व्यायाम, धूप में बैठना, चलना आदि कार्य नहीं करने चाहियें। मसाला, आचार, सिरका आदि नहीं खाने चाहियें।

२. मधुर, मीठा, हल्का चिकना, शीत और तरल पदार्थ विशेष रूप में खाने चाहियें। इस ऋतु में शर्करा के साथ जौ का सत्तू विशेषरूप से लाभदायक होता है।* बेल (श्रीफल) का शर्बत इस ऋतु में विशेष उपयोगी और ठण्डा होता है। प्रातःकाल पीने से गरमी शरीर पर असर नहीं करती।

३. इस ऋतु में मद्य नहीं पीना चाहिये; क्योंकि गरम होने से शरीर को हानि करता है। यदि पीना ही हो तो उसमें खूब अधिक पानी मिलाकर पीना चाहिये, जिससे उसकी तेजी कम हो जाय।

४. चावल, दूध की खीर, श्रीखण्ड खाना चाहिये। नये मिट्टी के बर्तन में रक्खा हुआ पानी पीना चाहिये। रहने के घरों के दरवाजों पर पानी से तर चिक या टट्टियाँ लगवा दें। किसी प्रकार गरमी से शरीर को बचाकर अन्धकार में शीतल ठण्डे घरों में दिन का समय बिताना चाहिये। इस ऋतु में स्त्री-सम्भोग नहीं करना चाहिये।

वर्षा-ऋतु—आषाढ़ और श्रावण मास वर्षा-ऋतु के हैं। इस समय ग्रीष्म-ऋतु में संचित हुई वायु कुपित होती है। इसलिये शरीर में नाना प्रकार के दर्द होते हैं। वायुमण्डल में स्निग्धता (पानी के कारण) होने से, तथा काम-काज के कम होने से शरीर की क्रिया मन्द हो जाती है; इसलिये जठराग्नि मन्द हो जाती है। भूख कम हो जाती है, खाया हुआ अन्न पचता नहीं। पानी अशुद्ध और कच्चा होता है। अर्थात् उसमें बरसात का पानी मिल जाता है। वनस्पतियों में रस-पानी भरा होता है। परन्तु शक्ति उत्पन्न नहीं होती। पानी की इतनी अधिकता के कारण शरीर का पित्त दब जाता है।

---

*पूर्व में जहाँ गरमी बहुत पड़ती है, वहाँ सत्तू खाने का विशेष रिवाज़ है।

यह ऋतु वात प्रकृतिवालों के लिये, या वात रोगियों के लिये हानिकारक है। इस ऋतु में निम्न नियम पालन करने चाहियें।

१. इस ऋतु में मधुर, अम्ल, लवण, तिक्त, कटु आदि सब रसों का सेवन करना चाहिये, जिससे अग्नि बढ़ती रहे। इस ऋतु में जठराग्नि का ध्यान विशेष रूप से रखना चाहिये। पुराना अन्न इस ऋतु में खाना चाहिये।

२. नदी, तालाब, कुयें आदि में बरसात का पानी मिल जाता है। अतः वह नहीं पीना चाहिये। पानी ऐसा होना चाहिये जिसमें यह पानी न मिला हो। अथवा बरसात के पानी को एकत्रित करके पीना चाहिये।

३. दिन में सोना, रात्रि में पड़नेवाली ओस, व्यायाम, धूप, मैथुन इनसे बचना चाहिये। हलके, सूखे वस्त्र पहनने चाहियें। पैरों को बरसात के पानी से बचाना चाहिये।

४. दही में नमक डालकर उसका सेवन करना चाहिये। आम, नींबू, फल विशेष उत्तम हैं। सत्तू का खाना इस ऋतु में नुक़सानकारक है।

शरद्-ऋतु—भाद्रपद और आश्विन मास का नाम शरद् ऋतु है। इस ऋतु में आकाश निर्मल होजाता है। वनस्पतियों के अन्दर रस परिपाक होने लगता है। इस समय उठती हुई गरमी के कारण शरीर में रहने वाला पित्त कुपित होता है। पित्त चूँकि अग्नि है; अतः इस समय विकार होने से प्रायः सारा शरीर विकृत हो जाता है। इसी से कहा जाता है कि "रोगाणां शारदी माता" रोगों की माता—जन्म देनेवाली यह शरद् ऋतु है। इस ऋतु में उत्पन्न हुये रोग बड़ी कठिनता से अच्छे होते हैं। इस ऋतु में प्रायः करके "ज्वर" होता है। यही "ज्वर" सब रोगों का राजा है।

इस ऋतु में वर्षा का संचित पित्त कुपित होता है। अतः उसको शान्त करना चाहिये। जिस प्रकार कफ को शान्त करने के लिये वमन; वायु को शान्त करने के लिये तैल, उसी प्रकार पित्त को शान्त करने के लिये विरेचन सबसे उत्तम वस्तु है। विरेचन के द्वारा शरीर की गरमी बाहर निकल जाती है। इसी प्रकार इस ऋतु में पित्तनाशक पदार्थ परवल आदि के खाने से शरीरस्थ गरमी कम होजाती है, वह रोग उत्पन्न नहीं करती। तीसरा उपाय शरीर से रक्त निकालना है। इसके लिये जोंक या सींग उत्तम है। यदि ऊपर लिखे हुये दोनों उपाय काम में लाये जायें, तो इस उपाय की आवश्यकता

नहीं होती। विरेचन के लिये बड़ी हरड़, निशोथ आदि किसी का उपयोग करना उत्तम है। इस ऋतु में घी का उपयोग भी पित्त को शान्त करता है।

इस ऋतु में पालने योग्य नियम—

१. मधुर, लघु, पुराने अन्न—गेहूँ, चावल आदि, शीत पदार्थ खाने चाहियें। तिक्त और कषाय रस भी उत्तम हैं। पड़वल, मूँग, चावल, आँवला विशेष खाना चाहिये।

२. जो पानी दिन भर सूर्य की किरणों से गरम रहता हो, और रात्रि को चन्द्रमा की किरणों से ठण्डा होता है, ऐसा पानी नहाने, पीने में काम लाना चाहिये। नदी या तालाब का पानी इस ऋतु में उत्तम होता है। यह पानी न तो बहुत ठण्डा होता है, और न गरम।

(३) इस ऋतु में दूध और भुने हुये चावल अति उत्तम भोजन हैं। गन्ने का उपयोग भी उत्तम है। इसके द्वारा शरीर का पित्त कम हो जाता है।

(४) ओस, क्षार-नमक आदि, दही, तैल, चर्बी, धूप, तेजमद्य, दिन में सोना, सामने से आती वायु—इन चीजों से अपने शरीर को बचाना चाहिये।

यमदंष्ट्रा—आश्विन मास का अन्तिम सप्ताह और सम्पूर्ण कार्त्तिक मास, इन दिनों को यमदंष्ट्रा कहते हैं। इसमें थोड़ा खानेवाला मनुष्य ही जीवित रहता है। कारण—भारी ख़ुराक़ अजीर्ण उत्पन्न कर देता है, और अजीर्ण के कारण शरीर में और रोग उत्पन्न होते हैं।

हेमन्त ऋतु—और शिशिर ऋतु—कार्त्तिक और मार्गशीर्ष के मिलने से हेमन्त ऋतु बनती है, और पौष और माघ के मिलने से शिशिर ऋतु बनती है। इन दोनों ऋतुओं में शीत की प्रधानता रहती है। इस समय शरीर के अन्दर बढ़ा हुआ पित्त शान्त हो जाता है। पित्त शरीर के अन्दर रुकने से भूख को बढ़ा देता है। इस समय यदि शरीर में भोजन न मिले तो वह शरीर के धातुओं का ही पाचन करना आरम्भ कर देता है। इसलिये इस ऋतु में मधुर भारी, देर में पचने योग्य भोजन करने चाहिये।

इस ऋतु में सूर्य दक्षिणायन होते हैं, इसलिये चन्द्रमा का बल बढ़ा होता है। इस बल के बढ़ने के कारण शरीर के सब धातुओं का पोषण होता

है। बनस्पतियां के अन्दर भी रस, वीर्य, विपाक आदि पक्क जाते हैं। ग्रीष्म ऋतु में जो रस खींचा होता है, इस ऋतु में वह रस पुनः प्राप्त हो जाता है।

इस ऋतु में वायु के अन्दर रुक्षता आ जाती है। पानी भी रूखा हो जाता है। अतः इस ऋतु में तैल का उपयोग अवश्य करना चाहिये।

नियम—

१. तैल-मर्दन, व्यायाम, स्नान करना चाहिये। शरीर में गरमी रहे इसलिये केशर, कस्तूरी आदि का लेप करना चाहिये। उष्ण परन्तु हलके वस्त्र पहिनने चाहियें। धूप की किरणों को पीठ की ओर से सेकना चाहिये। गरम पानी का उपयोग करना चाहिये।

२. नया अन्न, घी, मीठा, कचौरी, हलुवा आदि भारी चीजें, दही खाना चाहियें।

३. घरों को अँगीठी से गरम रखना चाहिये।*

४. इस ऋतु में सम्भोग करने में हानि नहीं होती। पौष्टिक पदार्थों के उपभोग के साथ मनुष्य स्त्री-संग करता हुआ भी निर्बल नहीं होता।†

इस ऋतु में प्रायः वाजीकरण-(जिनके द्वारा स्त्रियों में प्रवृत्ति होती है) औषधियों का उपभोग करना होता है; अतः इस विषय में निम्न नियम हैं—

१. मधुर पदार्थ, स्निग्ध पदार्थ, भारी पदार्थ, जीवन और बृंहण पदार्थ और मन की प्रसन्नता सबसे उत्तम वृष्य है।

२. घी और दूध का खानेवाला व्यक्ति, व्याधि-रोग रहित, युवा व्यक्ति, संकल्प रखनेवाला व्यक्ति सदा स्त्रियों में समर्थवान रहता है।

३. क्षय से; रोग के कारण, भय से, विश्वास के न होने से, शोक से, स्त्री का दोष देखने से, स्त्रियों की प्रकृति न जानने से समर्थता नष्ट हो जाती है।

४. अति स्त्री संभोग से—शूल, कास, ज्वर, श्वास आदि रोग और बुढ़ापा होता है।

---

*"हेमन्त कालेऽत्र वियोगि काले, शीतस्य हृक् पश्य न तस्य यस्य।
अङ्के हसन्ति दयिता हसन्ति पार्श्वे हसन्ति वसनानि सन्ति" ॥ सिद्धभैषज्यमणिमाला

† "पीवरोरु स्तनः श्रोण्यां सुमदः प्रमदाप्रियाः।
हरन्ति शीतमुष्णांगोधूमकुंकुम यौवने ॥" चरक

५. हेमन्त और शिशिर में प्रत्येक तीन अन्तर के दिन से स्त्री-सेवन किया जा सकता है। गरमियों में पन्द्रह-पन्द्रह दिन के अन्तर से जाना चाहिये।

६. सम्भोग करने के पश्चात् स्नान करना चाहिये, दूध पीना चाहिये; सोना चाहिये। इससे पुनः शुक्र बढ़ जाता है।

७. सम्भोग रात्रि के समय करना चाहिये। दिन में करने से शरीर-शक्ति-प्राण का ह्रास होता है।

८. शास्त्र में पुत्र की इच्छा से सम्भोग करने का विधान करता है।

९. शीत ऋतु में धातु-भस्म खानेवाला कभी दुःखी नहीं होता। स्त्रियाँ सदा धातु—वीर्य को ग्रहण करती हैं; (खाती हैं)। इससे वे आग्नेय गुण रहती हैं--उनका सहवास सर्दी को हटाता है। पुरुष सौम्य हैं और स्त्रियाँ आग्नेय गुणवाली होती हैं।* अतः तीसरे दिन सहवास करना कहा है।

ऋतु-सन्धि—जिस समय ऋतु का अन्तिम सप्ताह चालू होता है; और अगले ऋतु का प्रथम सप्ताह प्रारम्भ हो जाता है, इन दो सप्ताहों को अर्थात् पन्द्रह दिनों को ऋतु-सन्धि कहते हैं। इन दिनों में पूर्व ऋतु का आहार-विहार घटाते जाना चाहिये, और नई ऋतु का आहार-विहार धीरे २ ग्रहण करना चाहिये। एकदम ऋतु का आहार-विहार छोड़ने से या ग्रहण करने से कई प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं अतः इस ऋतु-सन्धि में विशेष चौकस रहना चाहिये।

तन्दुरुस्ती की कीमत—निरोगता या स्वास्थ्य संसार की वस्तुओं में एक न्यामत है। यह इस प्रकार की वस्तु है कि धनी या राजा इसको धन देकर नहीं खरीद सकते। इसकी कीमत एक रोगी मनुष्य समझ सकता है। रोगी होना, यह केवल अपने लिये दुःखदायी नहीं होता, अपितु अपने आस-पास रहनेवालों को भी दुःखी कर देता है। विशेषतः जब कि सारा परिवार उस एक व्यक्ति पर आश्रित हो। उसकी चिकित्सा में, और उसके विशेष भोजन में खर्च होता है।

---

* सौम्यं शुक्रमार्तव माग्नेयम्। सुश्रुत
"सेवेत कामतः कामं तृप्तो बाजिकृतां हिमे।
प्रकामं तु निषेवेत मैथुनं शिशिरागमे॥" योगरत्नाकर

शरीर निरोग रहे इसका यत्न करना चाहिये। रोगी होकर उसको अच्छा करना दूसरी बात है। कपड़े पर मैल न चढ़े तो अच्छा। मैल लगाकर धोना बुद्धिमानी नहीं है। शरीर के रोगी होने पर सब दवा करने दौड़ते हैं, परन्तु शरीर को रोग से बचाने का कोई उपाय नहीं करता।

शरीर रक्षा के नियम कुछ तो दैव या प्रकृति के अधीन हैं; कुछ नियम राज्य के अधीन हैं, कुछ नियम लोक समुदाय के अधीन हैं, और कुछ नियम प्रत्येक मनुष्य के अधीन हैं। हवा आदि में परिवर्त्तन होने से प्लेग आदि का फूट निकलना दैवाधीन है। गन्दगी आदि से रोग फैलना राज्य के अधीन हैं। बाल्यावस्था में विवाह, आदि कुरीतियों का होना लोक समुदाय के हाथ में है। खान-पान आदि से शरीर में रोग उत्पन्न होना यह प्रत्येक मनुष्य के अज्ञान का फल है। यदि प्रत्येक मनुष्य को स्वास्थ्य के नियमों का पता हो जाय, तो इससे समाज का सुधार होगा; और समाज का सुधार होने से राज्य के अधिकारी भी मदद करेंगे। इस प्रकार से प्रत्येक मनुष्य अपने लिये, अपने समाज के लिये हितकारी बन सकता है।

स्वास्थ्य के नियम किसी कालेज या स्कूल में नहीं सिखाये जाते। इन नियमों की शिक्षा घर में होती है। वह भी बचपन में। शैशवकाल में बच्चे के अन्दर जैसी आदतें डाली जायेंगी, वैसा ही वह बड़ा होगा। यह आदतें उसके अन्दर पढ़ाकर नहीं डाली जा सकतीं। बच्चा बचपन में जो सीखता है, वह अनुकरण से सीखता है। अतः उसके सामने जैसा रहन-सहन होगा, वह वैसा ही करेगा। व्यायाम करना, प्रातःकाल उठना, श्वेत वस्त्र पहिनना ये आदतें बचपन से ही डाली जा सकती हैं। आरोग्यता के नियम तथा और बातें वह घर के स्कूल में सीखता है, जहाँ पर अध्यापक उसके माता, पिता होते हैं।

प्रकरण दूसरा

मनुष्य-जीवन का आधार तीन बातों पर निर्भर है। एक—आहार, दूसरा नींद—सोना और तीसरा ब्रह्मचर्य। पिछले पृष्ठों में नींद और ब्रह्मचर्य के विषय में थोड़ा बहुत लिखा जा चुका है। यहाँ पर आहार के विषयमें कुछ लिखना है।

आहार—शब्द साधारणतः भोज्य पदार्थ के लिये समझा जाता है; परन्तु यहाँ पर इस शब्द के अन्दर वायु और पानी का भी समावेश किया जाता है। मनुष्य इनका भी आहार ग्रहण करता है। इन तीनों के बिना देर तक मनुष्य जीवित नहीं रह सकता। भोजन के बिना मनुष्य कुछ दिनों तक पानी और वायु की सहायता से जीवन व्यतीत कर सकता है और पानी के बिना भी केवल वायु की सहायता से कुछ समय काट सकता है। परन्तु वायु के बिना साधारणावस्था में पाँच मिनिट से अधिक मनुष्य जीवन धारण नहीं कर सकता।

जिस प्रकार इन तीन वस्तुओं के ऊपर जीवन खड़ा है, उसी प्रकार इनके कारण शरीर का नाश भी हो सकता है। इन तीनों में विकार आने से शरीर भी रोगी हो जाता है। अतः इनकी स्वस्थ अवस्था और विकृत अवस्था समझनी चाहिये। किस रूप में ये शरीर के लिये उपयोगी हैं, और किस रूप में शरीर के लिये हानिकारक हैं। इसी के लिये यह प्रकरण उतारा गया है।

हवा (Air)

जिस समय शिशु गर्भाशय रूपी गुहा से बाहर आता है, उस समय उसका प्रथम कार्य 'रोना' होता है। बस यही कार्य उसके जीवन का प्रारम्भ कर्त्ता है। और जब मरता है, तब भी "रोता" है। ये दोनों कार्य स्वाभाविक हैं। जन्म के समय लिया हुआ श्वास उसकी श्वास प्रश्वास क्रिया को चला देता है। गर्भाशय में बच्चा न तो रोता है, और न श्वास लेता है। उसका मुँह जरायु से लिपटा होता है। प्रथम श्वास वही होता है, जो रोते

समय लिया गया है। और इस समय जिस वायुमण्डल में यह प्रसव होता है, श्वास भी उसी वायुमण्डल में से लिया जाता है। यदि यह वायु शुद्ध है, तो श्वास भी शुद्ध होगा, और यदि वायु अशुद्ध है, तो श्वास भी खराब होगा।

वायु को हम आँखों से नहीं देख सकते—केवल त्वचा के द्वारा उसका अनुभव करते हैं। मुँह से यदि त्वचा पर फूँक मारें तो उस फूँक की वायु का स्पर्श ही होता है। जिस वायु में हम या और प्राणी श्वास लेते हैं, उस वायु का एक समुद्र है जिस प्रकार कि पानी का समुद्र है। यह वायुमण्डल भी उतना ही गहरा है, जितना कि समुद्र। जिस प्रकार समुद्र की तली में मच्छ आदि रहते हैं, वैसे ही हम लोग इस वायुमण्डल रूपी समुद्र में रहते हैं। जिस प्रकार समुद्र के नीचे अधिक नीचे जाने में श्वास लेने में कठिनता होती है, उसी प्रकार वायुमण्डल में ऊपर उड़ने पर भी श्वास में कठिनता अनुभव होती है; क्योंकि ऊपर वायु की घनता कम हो जाती है। वह पतली हो जाती है। यह पतलापन हमारे लिये अधिक उपयोगी है। जिस समय वायु को दूर भेजना हो, उस समय उसे हल्का-पतला कर देना चाहिये। बस वह ऊपर चली जायगी; और दूसरी भारी वायु वहाँ आजायगी। यह क्रिया आग जलाने से बहुत ही सरल रूप में हो जाती है (आग के कारण वायु भारी बनानेवाले पदार्थ (पानी के वाष्प आदि) कम हो जाते हैं।

स्वच्छ वायु के तत्त्व—वायु के अन्दर देखने में कुछ और मिला हुआ प्रतीत नहीं होता। परन्तु वैज्ञानिकों ने इस वायुमण्डल की वायु का विश्लेषण किया है। उनको इस वायुमण्डल में मुख्य वस्तुयें चार मिली हैं। १—ओषजन या औक्सीजन २—नत्रजन या नाइट्रोजन ३—कार्बोनिक एसिड गैस ४—पानी के वाष्प। इनके अतिरिक्त वायुमण्डल में और भी वस्तुओं के परमाणु आदि हैं। उनकी यहाँ पर गिनती करना निरर्थक है।

इनमें ओषजन को प्राण-वायु भी कहते हैं; क्योंकि यही ओषजन सब प्राणियों को प्राण देती है। इसके अभाव में प्राणी मर जाते हैं। निमोनिया आदि रोगों में जब कि इस वायु को मनुष्य वायुमण्डल में से लेने में असमर्थ रहता है, और उसको यह वायु प्राप्त न हो तो वह मनुष्य मर जाता है। अतः इस वायु को "प्राण" कहते हैं। यह वायु जहाँ शरीर में प्राणों को देती है वहाँ इस वायु के और भी गुण हैं।

सम्पूर्ण स्थानों में जो दहन क्रिया या जलन क्रिया हो रही है, वह भी इसी वायु के कारण होती है। इसके अभाव में किसी प्रकार की जलन नहीं होती। एक बर्त्तन में से यदि इस वायु को निकाल दिया जाय, तो उसमें दियासलाई की बत्ती नहीं जलेगी। इससे स्पष्ट है कि जलन इसी वायु की उपस्थिति में होती है। इसके साथ ही इस वायु में तीक्ष्णता बहुत है। यदि इस तीक्ष्णता को कम न किया जाय, तो यह "प्राणवायु" प्राणियों के लिये निरर्थक है। अतः इस वायु की तीक्ष्णता को कम करनेवाली दूसरी वस्तु "नत्रजन" है। उसका परिमाण भी इस वायुमंडल में "ओषजन" से अधिक है। अतः वह इसकी तेजी को कम करती है। श्वास और प्रश्वास की वायु में इस "नत्रजन" का परिमाण एक समान रहता है। इसके अन्दर रक्खा हुआ दिया बुझता नहीं; परन्तु जलता रहता है। वायुमण्डल में इस वायु का परिमाण एक और चार है। अर्थात् यदि ओषजन एक भाग है, तो नत्रजन चार भाग होती है।

प्रायः सम्पूर्ण वायुमण्डल इन दो वायुओं से बना हुआ है। इन दोनों के अतिरिक्त तीसरी वायु "कार्बनिक एसिड गैस" है। यह गैस—वायु कोयलों के जलने से बनती है। कोयला या कोई पदार्थ जलकर कार्बन बनता है। चूँकि जलन-क्रिया ओषजन की उपस्थिति में हो रही होती है; अतः कार्बन और ओषजन के मिलने से यह गैस बनती रहती है। इस गैस का मुख्य गुण यह है कि जलती हुई बत्ती फौरन् बुझ जायगी। इस वायु का श्वास भी प्राणियों को मार देता है। यही कारण है कि पुराने कुओं में या गहरे अन्धकारयुक्त घरों में जब मनुष्य जाता है, तो फौरन मर जाता है। इन अवस्थाओं में प्रथम दियासलाई जलाकर देख लेना चाहिये। यदि बत्ती जलती रहे तो अन्दर जाना चाहिये, नहीं तो अन्दर नहीं जाना चाहिये। श्वास वायु में इसकी मात्रा नहीं होती। परन्तु प्रश्वास वायु में इसकी मात्रा बहुत अधिक होती है। यदि शरीर के अन्दर इसकी मात्रा उचित परिमाण से अधिक होजाय तो श्वास घुटने लगता है। यह वायु यद्यपि हमारे लिये निरुपयोगी है, परन्तु वनस्पति-जगत के लिये लाभदायक है। वनस्पतियों का पोषण इसी वायु की सहायता से होरहा है। यदि यह वायु उनको न मिले तो वे मर जायें। वनस्पति इस वायु को लेते हैं और ओषजन को छोड़ते हैं। यह क्रिया दिन के समय होती है। रात्रि में वे भी इस कार्बनिक एसिड गैस

को छोड़ते हैं, अतः रात्रि में उनके नीचे नहीं सोना चाहिये। इस प्रकार से प्राणी कार्बनिक एसिड गैस के स्रोत हैं, और वनस्पतियाँ "ओषजन" के। वायुमण्डल में इस वायु की मात्रा बहुत कम है। इसका परिमाण कुल ३/१०००० है। इतनी थोड़ी मात्रा में रहने से यह शरीर को नुक़सान नहीं करती।

वायु में चतुर्थ वस्तु पानी के वाष्प हैं। ये वाष्प सूर्य की उष्णता के कारण हैं तथा प्राणियों के प्रश्वास से निकलते हैं। इन वाष्पों के जुड़ने से बादल बनता है, उससे वर्षा होती है। वह पानी पृथ्वी पर आता है, उस पानी को सूर्य की गरमी सुखाती है। इससे वाष्प बनकर फिर वायुमण्डल में पहुँच जाता है। यदि वायुमण्डल में वाष्प न हो तो सूर्य की गरमी से अपना शरीर जलने लगता है। जिस ऋतु में (यथा शीतकाल में) वायुमण्डल में पानी के वाष्प अधिक रहते हैं, उस ऋतु में धूप सुहाती भी है। परन्तु गरमियों में असह्य हो उठती है। अतः यह वाष्प भी हमारे लिये उपयोगी हैं।

वायुमण्डल में यदि ये चारों वस्तुयें उचित प्रमाण में रहें तो उस वायु को शुद्ध समझना और यदि कम-अधिक हो जायें तो वायु को दूषित समझना चाहिये।

हवा को दूषित करनेवाले कारण—जीवन के लिये वायु आवश्यक है, और वह वायु स्वच्छ होनी चाहिये। अस्वच्छ वायु हमको जीवन नहीं दे सकती। वह हमारे शरीर को हानि पहुँचाती है। इससे वह "विष" है। इस दूषित वायु रूपी विष को उत्पन्न करने के कई कारण हैं। मनुष्य को चाहिये कि वह इन कारणों से बचे। यह दूषित वायु एकही समय अनेक प्राणियों का जीवन ले सकती है। सुना जाता है कि इस शताब्दी के योरोपीय महायुद्ध में जर्मन लोगों ने वायु को दूषित करके अनेक प्राणियों का वध किया था। प्राचीन काल में भी राजा लोग अपने शत्रु पर विजय प्राप्त करने के लिये वायु को दूषित कर देते थे।* यह दूषित वायु एक साथ ही अनेक प्राणियों का संहार कर देती है। वायु को दूषित करनेवाले साधारण कारण निम्न हैं।

---

* (१) "राज्ञोऽरिदेशे रिपवः तृणाम्बु मार्गान्न धूम श्वसान्नविषेण।
संदूष्यतेभिरतिप्रदुष्टान् ॥"

(२) "धूमेऽनिलेवा विषसंप्रयुक्ते खगाः श्रमार्त्ताः प्रपतन्ति भूमौ॥" सुश्रुत

वायु में बिगाड़ करनेवाले कारण अनेक हैं। उनमें से मुख्य कारण नीचे लिखे हैं। यथा—

(१) **प्रश्वास के रूप में निकलती हुई वायु**—जो वायु हम श्वास के रूप में लेते हैं, वही वायु दूषित होकर प्रश्वास के रूप में बाहर होती है। यह दूषित वायु "कार्बनिक एसिड गैस" है, जिसकी मात्रा वायु-मंडल में बहुत कम है। प्रश्वास से निकली वायु वायुमंडल में मिल जाती है। यदि इस प्रश्वास वायु को हम वायुमंडल में मिलने न दें, अर्थात् नाक और मुँह को ढाँपकर प्रश्वास निकालें, और मुँह ढके हुये श्वास लें, तो ।थोड़े समय में श्वास में प्राण-वायु का अभाव हो जायगा, और अब .केवल प्रश्वास में निकली हुई वायु ही वहाँ रहेगी। इस वायु का जब श्वास लिया जायगा, तो अवश्य मृत्यु हो जायगी। इसी प्रकार यदि बहुत से आदमी एक कमरे में बैठे हों, या कोयलों की अँगीठी जल रही हो, और मकान के सब दर्वाज़े बन्द हों, जिससे कि अन्दर की वायु बाहर न जा सके, या बाहर की वायु अन्दर न आ सके, तो कुछ समय यह सब वायुमंडल प्रश्वास से निकली वायु "कार्बनिक एसिड गैस" से भर जायगा और मनुष्यों का दम घुटने लगेगा। यदि अब भी दर्वाज़े नहीं खोले जायेंगे तो दूसरे क्षण में सब मनुष्य मर जायेंगे। श्वास की वायु में जो स्थान प्राण-वायु का है, वही स्थान प्रश्वास वायु में कार्बनिक एसिड गैस का है। इसलिये कभी भी मुँह या नाक बन्द करके नहीं सोना चाहिये। जिस मकान में सोना या बैठना है, उसमें पर्य्याप्त स्थान वायु के आने-जाने के लिये छोड़ना चाहिये।

प्रश्वास वायु में निकलनेवाली अन्य वस्तुयें 'पानी के वाष्प' और 'कुछ कचरा' है। पानी के वाष्प प्राय: पर्य्याप्त मात्रा में रहते हैं, परन्तु पानी का अधिक भाग पसीने या मूत्र के रूप में बाहर होता है। 'गन्दा कचरा' इस पदार्थ में रोगों के कीटाणु या रोगों के या शरीर के दूषित भाग के अणु होते हैं। यथा—क्षय रोगी की या इन्फ्लुएञ्जा अथवा जुकाम की अवस्था में कीटाणु श्वास-वायु के द्वारा एक से दूसरे में जाते हैं। विशेषत: यदि स्थान गरम है,, और हवा तंग हो। यथा रात्रि में नाटक या सिनेमा हॉल में। अथवा किसी मनुष्य के साथ मिलकर सोने में। माता जब बच्चे को छाती के साथ लगाकर सुलाती है, तो दोनों एक दूसरे के प्रश्वास को

कुछ न कुछ श्वास के रूप में ले लेते हैं। इसलिये दोनों को यथा सम्भव दूर-दूर सोना चाहिये।

(२) **त्वचा**—से निकला हुआ पसीना वाष्प के रूप में होकर वायु को दूषित करता है। एक मनुष्य के शरीर में २४ घन्टे के अन्दर लगभग ३० औंस वाष्प निकलता है।

(३) **जलाने की क्रिया से वायु बिगड़ती है**—जिस समय घर में दिया, कोयला, या लकड़ी जलाई जाती है, तो उस समय प्राण-वायु की जरूरत होती है। जिस प्रकार हमको प्राण-वायु की आवश्यकता रहती है, उसी प्रकार पदार्थों को भी जलने के लिये प्राण-वायु की आवश्यकता रहती है। जलनेवाली चीजें जलते समय वायुमंडल में से 'ओषजन' को लेते जाते हैं, और 'कार्बन' पदार्थ के साथ मिलाकर 'कार्बनिक एसिड गैस' बनाते जाते हैं, जिससे कि इस वायुमंडल में ओषजन की मात्रा घट जाती है, और कार्बनिक एसिड गैस की मात्रा बढ़ जाती है। 'कार्बन' पदार्थ वस्तुओं के जलने से बनता है, जिसको बोलचाल की भाषा में 'कोयला' कहते हैं। इसलिये रात्रि को सोते समय बन्द घर में कभी कोयले या कोई वस्तु जलाकर नहीं सोना चाहिये।

(४) **सड़ांद**—जिस समय कोई प्राणी मर जाता है, या पत्ते गिरकर किसी स्थान पर ढेर हो जाते हैं, या कहीं पर कचरा-कूड़ा इकट्ठा होता है, उस पर जब पानी पड़ता है, तो फिर उसमें से एक प्रकार की दुर्गन्ध आने लगती है। इस दुर्गन्ध का कारण दुर्गन्धित वाष्प और कार्बनिक एसिड गैस है, जो कि सड़ने से उत्पन्न होती है। इसलिये ये वस्तुयें अपने रहने की जगह से दूर फेंकनी चाहियें। अच्छा यही है कि इनको जलाकर राख कर दिया जाये। चमार लोग, कसाई लोग, रंगरेज आदि भी वायु को खराब करते हैं। अतः इनको शहर से एक ओर रहने की जगह देनी चाहिये।

(५) **घर की नालियाँ**— इनसे भी दूषित वायु उत्पन्न होती है। घर के कारण उनमें सड़ांद रहती है। अतः इन नालियों को प्रतिदिन पानी से धोना चाहिये और इनमें कोई जन्तुनाशक पदार्थ फिनाइल आदि डाल देना चाहिये।

(६) **कारखाना**—कपड़े बुनने के, लोहा बनाने के, कोयला निकालने के, रँगने के, धोने के, रुई के, सब प्रकार के कारखाने वायुमंडल

को खराब करते हैं। अतः इनको शहर से बाहर स्थान देना चाहिये। इनमें से रुई आदि के कण वायु में सदा उड़ते रहते हैं, जो कि श्वास वायु के साथ छाती में पहुँचते हैं और वहाँ रह जाते हैं। अतः इन कारखानों में कार्य करनेवाले प्रत्येक मनुष्य को चाहिये कि वह नदी या तालाब के किनारे घूमने जाये, और वहाँ प्राणायाम करे। विशेषतः ब्राह्म मुहूर्त्त में उठकर घूमना चाहिये, जब कि वायु शुद्ध हो।

इन कारणों के अतिरिक्त "तम्बाकू" का पीना, यह तो वायु को खराब करता है। इसके कारण तो 'कॉर्बनिक एसिड गैस' उत्पन्न होता है। तम्बाकू से जहाँ वायु खराब होती है, फेफड़ों में काला रंग बैठ जाता है। जिस प्रकार कि नली में या हुक्के के पानी में रंग आ जाता है। इस रंग के कारण शरीर के तन्तु मर जाते हैं। शक्ति घट जाती है। और शरीर में कॉर्बनिक एसिड गैस बढ़ने लगती है। अतः बीड़ी का पीना तम्बाकू पीना हानिकारक ही है।

वायु के खराब होने के कारण और भी कई कारण हैं, परन्तु मुख्य कारण यही हैं। मनुष्य को चाहिये कि वह इन कारणों से बचे। बहुत से कारण ऐसे हैं, जिनसे कि मनुष्य सुगमता से बच सकता है। जो प्राणी जितना बड़ा होगा उसको उतनी ही अधिक प्राण-वायु चाहिये, और वह उतने ही अधिक मात्रा में वायु को दूषित करता है। इस नियम से मनुष्य को पशुओं के बँधने के स्थान पर नहीं सोना चाहिये।

कुदरती होनेवाली वायु की शुद्धि—यदि प्रकृति इस वायुमण्डल का शोधन न करे, तो कुछ समय बाद यह सारा वायुमण्डल अशुद्ध हो जाय। क्योंकि ऊपर लिखे कारण इसको रात-दिन अशुद्ध कर रहे हैं। अतः प्रकृति ने इस वायु-मण्डल को शुद्ध रखने के लिये कुछ उपाय बनाये हैं। उन उपायों में सबसे बड़ा उपाय गति है। गति के कारण एक स्थान की खराब हवा दूसरे स्थान पर चली जाती है, वहाँ की शुद्ध हवा इस स्थान पर आ जाती है। गति के कारण वायु-मण्डल में होनेवाले कण बिखर जाते हैं टूट जाते हैं; इस गति के कारण हमारा प्रश्वास वृक्षों तक पहुँच जाता है, वे इसमें से अपनी ख़ुराक ले लेते हैं। उनका छोड़ा हुआ श्वास हमारे तक आ जाता है, उसमें से हम अपनी उपयोगी वस्तु ले लेते हैं।

गति के कारण ही आग जलाने से हल्की होकर उस स्थान की वायु ऊपर चली जाती है, उसका स्थान लेने के लिये चारोंओर की वायु आजाती है, वह भी हल्की होकर ऊपर चली जाती है। इस प्रकार से एक चक्कर बन जाता है। और वायु शुद्ध हो जाता है।

गति के अतिरिक्त सूर्य की गरमी भी वायु को शुद्ध कर रही है। क्षय आदि रोगों के परमाणु वायु में उड़ते हुये इस गरमी से मर जाते हैं और वायु शुद्ध हो जाती है। इसी प्रकार बरसात भी वायुमण्डल को धो डालती है। वायुमण्डल में उड़ते हुये परमाणु पानी में घुलकर भूमि पर आ गिरते हैं।

शुद्ध वायु प्राप्त हो सके इसके लिये मकान बनाते समय ध्यान रखना चाहिये। मकान में वायु और धूप सूर्य का प्रकाश भली प्रकार आ सके, इस बात का ध्यान रखना चाहिये। मकान किस स्थान पर बनाना चाहिये; इसका ज्ञान इंजिनियरों (Engineers) या कारीगरों से प्राप्त करना चाहिये।

समुद्र के किनारे या समुद्र में अथवा पहाड़ के ऊपर वायु अधिक शुद्ध होती है। जहाँ की वायु जितनी शुद्ध होगी, वहाँ पर शरीर भी अधिक स्वस्थ रहेगा। वायु से रक्त के अन्दर लाली या पोषण आता है। इसलिये जितनी वायु शुद्ध होगी रक्त भी उतना ही अधिक उज्ज्वल और पोषक बनेगा। जिस प्रकार की आहार की पवित्रता पर मन की पवित्रता निर्भर है, इसी प्रकार वायु की शुद्धता पर रक्त की शुद्धता निर्भर है। रक्त से ही पोषण मिलता है।

यद्यपि दूषित वायु सहसा मृत्यु का कारण प्रायः कम बनती है; परन्तु इस वायु के परमाणु शरीर के अन्दर इकट्ठे होते रहते हैं और जब अधिक मात्रा में संचित हो जाते हैं, तब मृत्यु का कारण बनते हैं। ये परमाणु रक्त के अन्दर या शरीर के अन्य तन्तुओं में इकट्ठे होते हैं। जिस प्रकार कि थोड़ा-थोड़ा खाया हुआ संखिया या पारा पीछे से हानिकारक होता है, उसी प्रकार यह दूषित वायु भी पीछे से हानि पहुँचाती है।

रोगी व्यक्ति के पास अवश्य ही शुद्ध वायु रहनी चाहिये। इसके लिये कमरे में भीड़ अधिक नहीं करनी चाहिये। उसमें वायु जाने और आने के लिये पर्याप्त रास्ते होने चाहियें।

मनुष्य के लिये वायु की आवश्यकता—साधारणतः एक युवा व्यक्ति के लिये (२४ घन्टों के लिये) ४०० घन फ़ीट वायु चाहिये । श्वास-वायु में कार्बनिक एसिड गैस का भाग बहुत कम होता है; परन्तु प्रश्वास-वायु में इसकी मात्रा अधिक होता है । इस नियम से एक मनुष्य के रहने-सहने के लिये ७ से १० फीट चौरस जगह या घर पर्याप्त है । इसमें अधिक आदमी हों तो अधिक स्थान चाहिये । इसके साथ ही वायु के आने-जाने के मार्ग पर भी स्थान का परिमाण निर्भर करता है । यदि दूषित वायु सहसा दूर होती जाय और नवीन शुद्ध वायु मिलती हो तो, थोड़ा स्थान भी पर्याप्त हो सकता है ।

किसी घर की या स्थान की वायु शुद्ध है या नहीं—इसको पहचानने का सरल उपाय यह है कि बाहर शुद्ध वायुमण्डल से एकदम घर में जाना चाहिये । यदि श्वास में कुछ परिवर्त्तन या बदबू प्रतीत हो तो, उस स्थान की वायु शुद्ध नहीं । साधारणतः वायुमण्डल में कार्बनिक एसिड गैस की मात्रा एक हज़ार भाग में ४/१० है । यदि यह मात्रा बढ़कर ६/१० भी हो जाये, तो भी शरीर के लिये हानिकारक नहीं होती । परन्तु इससे अधिक मात्रा शरीर को हानि पहुँचाती है ।

पानी (Water)

पानी का महत्त्व—वायु से उतरकर शरीर के लिये उपयोगी वस्तु पानी ही है । पृथ्वी पर तीन भाग पानी का और एक भाग स्थल या सूखी ज़मीन का है । परमात्मा ने ऐसा कोई पदार्थ नहीं बनाया, जिसमें पानी का अंश न हो । यह आवश्यक नहीं कि हम पानी को पानी के रूप में ही पियें । बच्चा दूध के रूप में पानी को पीता रहता है । इसी दूध से उसका पोषण होता है । युवा आदमी जो भोजन खाता है, उसमें भी पानी का भाग शरीर के अन्दर जाता है । शरीर के अन्दर जो सात धातु-रस, रक्त, मांस आदि हैं; उनके अन्दर भी पानी की मात्रा है । यदि मनुष्य का भार साधारणतः ७५ सेर माना जाये तो ५६ सेर इसमें पानी का भाग है । धान्य या अन्य पदार्थ को शरीर के लिये उपयोगी बनाने के लिये भी पानी की आवश्यकता होती है । शरीर से जो मल निकलते हैं, उनमें सबसे अधिक राशि में

निकलनेवाला पदार्थ पानी ही है। मूत्र के रास्ते, पसीने के रास्ते, श्वास के रूप में पानी निकलता रहता है। पानी की इस कमी को पूरा करने के लिये शरीर को पानी की आवश्यकता होती है। यदि शरीर को पानी न मिले तो गला-मुख सूखने लगता है, ओठ खुश्क हो जाते हैं। पानी जहाँ शरीर को धारण कर रहा है, वहाँ शरीर का शोधन भी इसी के द्वारा होता है। नहाने से बाह्य शरीर की शुद्धि होती है, और पानी पीने से शरीर के अन्दर का प्रक्षालन होता है। जिस प्रकार एक वृक्ष को पानी की आवश्यकता रहती है, जिससे कि इस द्रव भाग में वह वृक्ष, अपने लिये उपयोगी पदार्थों को जड़ों के द्वारा खींचकर, इस पानी के द्वारा वृक्ष की चोटी, उसकी टहनियों में और पत्तों में पहुँचा सके; इसी प्रकार शरीर को भी इस द्रव की आवश्यकता रहती है। इस द्रव भाग की सहायता से रक्त पोषक पदार्थों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाता है। जिन रोगों में शरीर से द्रव भाग अधिक निकल जाता है (यथा हैजे में), उनमें पानी की प्यास बढ़ जाती है; और रक्तघन—सान्द्र बन जाता है। इससे सूक्ष्म रक्तवाहिनियाँ इस घन हुये रक्त को बहाने में असमर्थ रहती हैं। इसका परिणाम यह होता है कि वृक्क या गुर्दों में मूत्र नहीं बन सकता। अतः मूत्र बन्द रहता है। मूत्र के बन्द रहने से विष शरीर के अन्दर ही लीन होने लगता है, जिसका परिणाम मृत्यु होती है।

पानी के गुण—पानी प्राणियों का प्राण है। यह पानी वायु की भाँति स्वच्छ और शुद्ध होना चाहिये। जिस प्रकार अशुद्ध वायु शरीर के लिये निरुपयोगी है, उसी प्रकार स्वच्छ या दूषित पानी भी शरीर के लिये निरर्थक है। पानी के अन्दर कोई किसी प्रकार का रस नहीं होना चाहिये। यदि उसके अन्दर कोई खट्टा या मीठा स्वाद आता है, तो वह उस भूमि के कारण होता है, जहाँ कि वह लिया गया है। क्योंकि आकाश से गिरनेवाले पानी में अपना न कोई स्वाद, न कोई रंग, न कोई गन्ध होती है। पानी के अन्दर जो गन्ध या रंग दिखाई देता है, वह पृथ्वी के संसर्ग से आ जाता है।

पानी की प्राप्ति के स्रोत—पृथ्वी पर पानी कई स्थानों में प्राप्त किया जा सकता है। कुयें से, तालाब से, नदी से या बरसात से। परन्तु सब प्रकार के पानी का आदि स्रोत 'आकाश' ही है। आकाश से जो पानी बरसता है, उसका कुछ भाग भूमि के अन्दर चला जाता है, जो कि कुयें या

चश्मों के रूप में निकलता है। कुछ नदियों के रूप में बहता हुआ समुद्र में पहुँचता है। और कुछ गड्ढों में एकत्रित रहता है। सूर्य फिर इसी पानी को अपनी किरणों से खींचता है, और फिर बरसाता है। इस प्रकार से यह एक चक्र चलता रहता है।* गरमियों में सूर्य की तेजी बढ़ी होती है, अतः पानी वाष्प के रूप अधिक उड़ता है। इसलिये तालाब आदि सूख जाते हैं। इसलिये आन्तरिक्ष-जल और दूसरा भूमि-जल। इस भूमि-जल के अन्दर ही सब नदी, कुयें, तालाब आदि के जल का समावेश होजाता है।

१. **अन्तरिक्ष-जल**—बरसात का पानी भूमि पर गिरने से पहले इकट्ठा कर लिया जाय तो वह अन्तरिक्ष का जल कहा जाता है। कई बार रात्रि में गिरी हुई ओस को भी इकट्ठा कर लेते हैं। ओस को इकट्ठा करने की सरल विधि यही है कि, किसी महीन श्वेत वस्तु का टुकड़ा लेकर खेत में पौदों के पत्तों पर फेरा जाय, या रात्रि को घास पर पतले वस्त्र को बिछा दें, और प्रातः सूर्य निकलने से पहले साफ़ बर्तन में निचोड़ लें। यह पानी आश्विन और कार्तिक मास में अच्छा होता है। दूसरा अन्तरिक्ष का पानी इस प्रकार से इकट्ठा करते हैं—बरसात हो चुकी हो, और फिर दूसरी बार पानी बरसने लगे या एक आध घन्टा जब वर्षा हो चुके तब साफ़ स्थान पर, छत आदि पर एक चौड़ा बर्तन परात आदि रख देना चाहिये। इससे भी पानी इकट्ठा कर सकते हैं। तीसरा आकाश का पानी 'ओलों' के रूप में हमको प्राप्त होता है। यदि ओलों को इकट्ठा कर लिया जाय तो गरमी से पिघलकर इसका पानी बन जाता है।

यही पानी जब भूमि पर गिरता है, तब इसमें भूमि के पदार्थ मिल जाते हैं। अन्तरिक्ष से गिरते समय वायुमण्डल की भी कुछ चीजें इसमें मिल जाती हैं। अतः बरसात से वायुमंडल धुल जाने पर और भूमि पर गिरने से पूर्व इसको इकट्ठा कर लेना चाहिये। आश्विन और कार्तिक मास में एकत्रित किया हुआ पानी विशेष उत्तम होता है। यह पानी सब समय उपयोग करने के लिये उत्तम है।

---

*१—"पानीयमन्तरिक्षमनिर्देश्यरसममृतं जीवनं तर्पणं धारणमाश्वासजननं... ...युक्तान्ततः पथ्यतमं च॥" सुश्रुत

२—"जलमेकविधं सर्वं पतत्यैन्द्रं नभस्तलात्।
तत् पतत् पतितं चैव देशकालावपेक्षते॥" चरक

२. भूमि-जल—जो पानी आकाश से भूमि पर गिरता है और फिर हम उसको भूमि से लेकर काम में लाते हैं; ऐसे पानी को 'भूमि-जल' कहते हैं। यह भूमि-जल सात प्रकार का है। १—नदी से प्राप्त होता है, २—कुयें से प्राप्त होता है, ३—तालाबों से प्राप्त होता है, ४—झरनों से, ५—छोटी-छोटी बावलियों से, ६—छोटे-छोटे तालाब (पोखुर = जोहड़), ७—चश्मा।

भूमि दो प्रकार की है। एक तो वह स्थान जहाँ पानी कम होता है, वृक्ष कम होते हैं, धूल अधिक होती है, वायु में रुक्षता अधिक रहती है। पानी बहुत गहरा खोदने पर मिलता है। इस भूमि का नाम 'जांगल' प्रदेश है। यथा—राजपूताना। दूसरा—वह स्थान जहाँ पानी बहुत हो, वृक्ष भी बहुत हों और वायु में स्निग्धता हो। इस स्थान को 'आनूप' देश कहते हैं। यथा बंगाल। जांगल देश का पानी लघु—शीघ्र पचनेवाला, पुष्टि-कारक और पथ्य होता है और आनूप देश का पानी भारी, कफ बढ़ानेवाला और मीठा होता है।

३. नदी-जल—सब नदियों का पानी एक समान गुण नहीं रखता; क्योंकि पानी कई प्रकार के स्थान से आता है। अतः उसमें उस-उस स्थान की मिट्टी, वनस्पति के गुण-दोष मिलते जाते हैं। वेग से बहनेवाली, पथरीली भूमि पर से आनेवाली नदियों का पानी अधिक उत्तम माना जाता है। यदि नदी की जमीन खारी है, तो उस पर से बहनेवाला पानी भी खारा हो जायगा। वर्षा ऋतु में नदियों का पानी खराब हो जाता है। क्योंकि उनमें सब प्रकार का मैल पानी के साथ बहकर मिल जाता है। इसी प्रकार जंगल या वनस्पतियों में से बहनेवाली नदी का पानी भी अधिक अच्छा नहीं होता। बहुत-से छोटे-छोटे गाँवों में लोग छोटी नदी का पानी कई बार पीते हैं। इससे उनको कई प्रकार के रोग हो जाते हैं। क्योंकि मनुष्य सब प्रकार की शुद्धि इसी पानी से करते हैं।* लोग इसी पानी में नहाते हैं, कपड़े धोते हैं,

*इंगलैण्ड के अन्दर किसी नदी के किनारे रहनेवाली बस्ती में "टाईफाईड" ज्वर के बहुत से रोगी होगये। उनमें रोग फैलने के कारण जाँचने के लिये लोग नदी के बहाव के ऊपर गये। वहाँ एक झोपड़े में एक लड़का इसी रोग से पीड़ित था। उसकी माता उसका मल और कपड़े उसी नदी के पानी में धोती थी। जिसका प्रभाव बस्ती में फैला।....प्रैक्टिस ऑफ मैडिसन....औसलर

और जानवरों को भी इसी में पिलाते हैं; परन्तु बहुत से गाँवों में नदी न होने से वे अपना कार्य एक छोटे से पाखुए से करते हैं। इस अवस्था में तो बहुत ही दयनीय दशा उन लोगों की होती है। प्रबन्ध ऐसा करना चाहिये कि वस्त्र धोने आदि के लिये या नहाने के लिये लोग नदी में से पानी अलग लेकर अपना कार्य करें। परन्तु यदि नदी जोरदार हो तो सब कचरा बह जाता है, या बैठ जाता है। इस प्रकार से पानी साफ़ हो जाता है।

४. कुएँ का पानी—इस पानी के गुणों का मुख्य आधार भूमि के गुणों पर निर्भर है। गहरे कुएँ का पानी, उथले कुवों के पानी से अधिक अच्छा, पाचक और बलदायक होता है। कुएँ के आसपास की ज़मीन कमज़ोर होती है। अतः पानी उसमें से छनकर शीघ्र कुएँ के पानी से मिल जाता है। यही कारण है कि बरसात आदि में चारोंओर का पानी कुएँ में पहुँचकर पानी को बढ़ा देता है। यह पानी भूमि में जाते हुये समीपवर्ती गन्दगी को भी ले जाता है। अतः बरसात में कुओं का पानी भी खराब हो जाता है। जिस प्रकार स्याहीचूस का एक सिरा पानी में डूबने से सारा स्याहीचूस गीला हो जाता है उसी प्रकार भूमि में भी ऊपर का पानी नीचे पहुँच जाता है। दोनों वस्तुओं में छेद हैं; जिनकी सहायता से पानी पहुँचता है। जो कुएँ गहरे होते हैं, उनमें पानी को बहुत नीचे उतरना होता है। इन गहरे कुवों की भूमि भी सूखी-रेतीली रहती है। इससे पानी को बहुत छनकर जाना पड़ता है। थोड़ा पानी ही नीचे पहुँचने पाता है, अधिक भाग भूमि ही पी जाती है। इस प्रकार से छना होने के कारण पानी अधिक स्वच्छ रहता है। यदि कुएँ के आसपास की भूमि खारी होगी तो पानी भी खारा होगा। गहरे कुओं का पानी मीठा होता है।

दूसरी बात यह है कि जिन कुओं के पास वृक्ष होते हैं, उनके पत्ते उसमें गिरते रहते हैं। सूर्य की धूप उसमें आ नहीं सकती अतः पानी मैला, अशुद्ध हो जाता है। पानी को साफ़ रखने के लिये उसमें धूप का जाना आवश्यक है। कुएँ के आसपास ५ फ़ीट तक चारोंओर पक्का फ़र्श बना देना चाहिये। किसी प्रकार की गन्दगी कुवे के पास इकट्ठी नहीं करनी चाहिये।

५. टङ्की का पानी—आजकल सभ्य शहरों में स्वास्थ्य विभाग ने पानी का प्रबन्ध अपने हाथ में ले रक्खा है। अतः इस विषय में लोग अधिक जानने का परिश्रम नहीं करते। सरकार कहीं पर पानी को एकत्रित-स्वच्छ करके नलों द्वारा सम्पूर्ण शहर में पानी पहुँचाती है। यह पानी या तो कहीं पर बरसात आदि में इकट्ठा हो जाता है, उसीको घेरकर शहर के लिये सुरक्षित कर लिया जाता है; यथा बम्बई में। अथवा कहीं-कहीं पर बड़ी-बड़ी टंकियाँ बनाई जाती हैं, उनमें बरसात का पानी भर लेते हैं। या कहीं पर किसी नदी से, या गहरे कुएँ बनाकर पानी का प्रबन्ध किया जाता है।

कई बार लोग अपने घरों पर ही टंकियाँ बनवा लेते हैं और उसमें बरसात का पानी भर देते हैं। इन टंकियों को यदि ताम्र का बनाया जाय तो अच्छा। परन्तु तांबे के महँगा होने से जस्ते की चादरों की टंकियाँ बनाई जाती हैं। इन टंकियों को प्रति वर्ष बरसात से पूर्व साफ़ कर देना चाहिये। इस पर ढकना रखना चाहिये जो कि समय पर बन्द किया जा सके। शीत ऋतु में प्रातःकाल और रात्रि में खुला रखना चाहिये। बरसात होने से पूर्व पानी निकाल देना चाहिये। कई बार इन टंकियों में सीसा मिला होने से पानी में सीसा घुलकर तकलीफ़ देता है, इससे कभी-कभी पानी की परीक्षा किसी विज्ञान शास्त्री से करवा लेनी चाहिये। यह पानी साल भर तक बरता जा सकता है।

६. तालाब का पानी—भूमि में बने हुये गड्ढों में जो पानी रुक जाता है, उसे तालाब या पोखर का पानी कहते हैं। यह पानी न तो नदी के पानी की तरह कहीं बढ़ता है और न कुयें के पानी की तरह भूमि के अन्दर जाता है। तेज़ गरमी पड़ने से कभी-कभी गर्मियों में सूख जाता है। जहाँ पर पानी का और कोई उपाय नहीं होता, वहाँ पर लोग इसी पानी को काम में लाते हैं। इस पानी से ही सब प्रकार के कार्य किये जाने के कारण यह पानी जल्दी ही अशुद्ध हो जाता है। इसके अतिरिक्त चूँकि यह भूमि नीची होती है, अतः चारोंओर का पानी बहकर इसी में आता है। यह गन्दगी कुछ दिनों में नीचे बैठ जाती है और पानी निर्मल हो जाता है। यदि इस पानी को अपने अज्ञान से बिगाड़ा न जाय तो यह पानी मीठा, भारी, रुचिकर और त्रिदोष हर होता है। परन्तु इसमें नहाने से, कपड़े धोने

से, पशुओं को पानी पिलाने से यह पानी खराब हो जाता है। अतः इन बातों से पानी को बचाना चाहिये।

७. चश्मे का पानी—यह पानी प्रायः कुयें के पानी की तरह होता है। इसमें अन्तर यही है कि चश्मा भूमि की सतह पर आकर फूटता है। यह पानी भी कुयें के पानी की तरह निर्मल होता है। कई बार इस पानी में गन्धक आदि मिली रहती है जो कि पानी के साथ बाहर आती है और अपना स्वाद पानी में देती है।

पानी को शुद्ध करने के उपाय—स्वच्छ निर्मल पानी में न तो किसी प्रकार की गन्ध होती है, न किसी प्रकार का स्वाद होता है, और न किसी प्रकार का रंग होता है। वह पारदर्शक होता है। उबालने से उसमें किसी प्रकार की गन्ध नहीं होती, स्वच्छ पानी के रखने पर उसमें किसी प्रकार निक्षेप—बर्त्तन की तलैटी में नहीं बैठता।

पानी में दो प्रकार की अशुद्धियाँ होती हैं। एक तो वे जो पानी के अन्दर मिली रहती हैं, जैसे पानी में घुला हुआ नमक। दूसरी प्रकार की अशुद्धियाँ वे होती हैं, जो कि कुछ समय तक तो पानी में मिली-सी रहती हैं, परन्तु थोड़े समय बाद स्वयं अलग हो जाती हैं। जैसे पानी में घुला हुआ रेत, थोड़ी देर रक्खा रहने से बर्त्तन के नीचे बैठ जाता है, और ऊपर निर्मल पानी आ जाता है। इस प्रकार से हम पानी को साफ़ कर सकते हैं।

प्रथम प्रकार की अशुद्धियों को दूर करने का उपाय यह है कि, इस पानी को ख़ूब गरम करो यहाँ तक कि यह पानी वाष्प बनकर उड़ने लगे। यदि इन वाष्पों को हम इकट्ठा करते जायँ तो इस पानी में अब कोई स्वाद नहीं रहेगा। और वह पदार्थ बर्त्तन के अन्दर रह जायगा। समुद्र के पानी से जो नमक बनाया जाता है, वह इसी प्रकार से अलग करते हैं। क्यारियों में भरा हुआ पानी समुद्र की गरमी से सूख जाता है। नीचे नमक रह जाता है। ये दोनों उपाय तो कृत्रिम हैं। इसके अतिरिक्त और भी उपाय पानी को शुद्ध करने के हैं। यथा—

१—पानी के अन्दर फिटकड़ी या निर्मली डालकर पानी को रख देना चाहिये। इनसे पानी में अधघुले कण नीचे बैठ जाते हैं।

२—पानी को कपड़े में से छानकर पीना चाहिये। कपड़ा मोटा और श्वेत तथा साफ़ होना चाहिये।

३—एक हाँड़ी में रेत, दूसरी में कोयला आधा-आधा भरकर एक दूसरे के ऊपर एक-एक फ़ीट की ऊँचाई पर टाँग देना चाहिये। नीचे एक अच्छा घड़ा रख देना चाहिये, जिसमें पानी एकत्रित होता रहे। ऊपर पानी का घड़ा भरकर टाँग देना चाहिये। पानी के घड़े के नीचे, रेत की और कोयले की हाँड़ी के नीचे छेद बना देना चाहिये। इनमें से टपकता हुआ पानी निचले घड़े में भरेगा। यह पानी शुद्ध और निर्मल होगा। इसको पीना चाहिये।

४—इसके अतिरिक्त नदी या तालाब के पानी को सूर्य की किरणें तपाकर शुद्ध कर रही हैं। नदियों का प्रवाह, पथरीली भूमि, पानी का वेग ये सब बातें पानी की शुद्धि कर रही हैं।

५—लोहे को लाल गरम करके या मिट्टी के ढेले को पकाकर पानी में बुझाने से भी पानी का शोधन हो जाता है। वह पानी हलका होता है। शीघ्र पच जाता है। दोनों का अनुलोमन करता है। गरम किये हुये पानी के समान गुण रखता है।*

ऋतुओं के अनुसार पानी का उपयोग—हेमंत तथा शिशिर-ऋतु में सरोवर और तड़ाग का पानी हितकर है। बसन्त और ग्रीष्म-ऋतु में कुयें का पानी या बावली अथवा झरने का पानी पीना चाहिये। बरसात में पुराना पानी अर्थात् तड़ाग या सरोवर का पानी, अथवा कुयें का पानी पीना चाहिये। शरद् ऋतु में नदी का पानी या जो पानी दिन भर सूर्य की किरणों से गरम होता हो और रात्रि में चन्द्रमा की किरणों से ठंढा हो रहा हो, उसको पीना चाहिये। यह पानी अन्तरिक्ष के पानी के समान गुणकारी होता है। वैद्य विद्या एक प्राचीन विद्वान का कहना है कि "पौष में सरोवर का, माघ मास में तालाब का, फाल्गुण में कुयें का, चैत्र में पहाड़ी के चश्मे का, वैशाख में झरने का, ज्येष्ठ में चश्मे का, अषाढ़ में कुये का, श्रावण में आकाश से गिरने वाला, भाद्रपद में कुये का; आश्विन में पहाड़ के चश्मे का और कार्त्तिक तथा मार्गशीर्ष में सब जलाशयों का पानी पीने लायक होता है।

सब प्रकार के भूमि जलों का संग्रह प्रतिदिन प्रातःकाल में करना

*विस्तार के लिये लेखक की स्वास्थ्य विज्ञान पुस्तक देखिये।

चाहिये। उस समय पानी मे स्वच्छता, शीतता और समयों से अधिक होती है। पानी के यही दो शुद्धता और शीतता सबसे बड़े गुण हैं।

खराब पानी से होनेवाले रोग

अच्छा पानी जहाँ शरीर का पोषण करता है, वहाँ खराब पानी बहुत-से रोगों को शरीर में उत्पन्न करता है। पानी के द्वारा बहुत-से रोग एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँच जाते हैं। इसमे कई रोग पानी के सबब ही से फैलते हैं। उदाहरण के लिये—

ज्वर—टाईफ़ाइड ज्वर का कीटाणु इस पानी के द्वारा बहुत दूर तक फैल सकता है। मलेरिया ज्वर का पराश्रयी इस पानी की सहायता ही से अपनी ज़िन्दगी व्यतीत करता है। यदि पानी में इनको नष्ट कर दिया जाय, तो मनुष्य इनसे बच सकते हैं। इसकी सरल उपाय यह है कि बरसात का पानी जिन गड्ढों में भरा हो, उनको या तो भठवा दिया जाय, या उनके किनारों पर मिट्टी का तेल डाल दिया जाय। इससे ये पराश्रयी मर जायँगे।

अतिसार-संग्रहणी—हैजा या अतिसार पानी के खराब होने से होता है। हैजे का कीटाणु पानी में बहुत देर तक रह सकता है। पानी में घुली गन्दगी से, या बरसात ऋतु में यह रोग विशेषरूप से होता है। यदि पानी को उबालकर पिया जाय, तो इन रोगों से बचा जा सकता है।

अजीर्ण-कब्जीयत—कई स्थानों का पानी मल को रोक देता है। इससे पाचन-शक्ति मन्द पड़ती है। इस बात का प्रायः सबको कहीं न कहीं अनुभव हो जाता है। कही का पानी ख़ूब भूख लगाता है, कहीं का कम करता है।

कृमि जन्तु—खराब पानी से शरीर के अन्दर और बाहर अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। स्वच्छ पानी कृमियों को नष्ट भी करता है। कई प्रकार के कृमि इसी पानी के आश्रय से जीते हैं।

नारवा—यह एक प्रकार का कीड़ा होता है, जो कि ३-४ फ़ीट लम्बा, धागे के समान पतला होता है। यह कीड़े अन्दर नहाते या पीने के साथ शरीर में पहुँच जाते हैं और बहुत ही अधिक कष्ट देते हैं।

इनके सिवा हाथी-पग (एलफिन्टायसिस), जिसमें कि पाँव बहुत

जाता है; कद्दूदाना (हुक वार्म) आदि कृमि मनुष्य के शरीर में पहुँच जाते हैं और शरीर का नुकसान करते हैं। यह भी देखा गया है कि कृमि या जोंक योनि-मार्ग से शरीर के अन्दर पहुँचते हैं और हानि करते हैं।

त्वचा के रोग--दाद, कण्डू, खुजली आदि रोगों के उत्पन्न होने में पानी बड़ा भारी सहायक है। इन वस्तुओं को पानी का बड़ा सहारा रहता है। जन्तु-नाशक दवाइयों से ये रोग नष्ट हो जाते हैं।

पथरी—कई स्थानों के पानी में कई प्रकार के क्षार, यथा—मैगनेसियम, कैलसियम आदि मिले होते हैं। ऐसे पानी के पीने से शरीर में भी क्षार बढ़ जाते हैं। इन क्षारों को मूत्राशय का छनना साफ नहीं कर सकता। अत: उसी छनने में या वृक्क में इकट्ठे होकर ये पथरी को बना देते हैं। लोगों की यह मिथ्या धारणा है कि मिट्टी या कंकड़ी खाने से यह उत्पन्न होता है।

पानी का औषध के रूप में उपयोग

कई रोगों में पानी "अमृत" का काम करता है। जहाँ यह अशुद्ध पानी कई प्रकार के रोगों को उत्पन्न करता है, वहाँ शुद्ध पानी कई रोगों को शान्त भी करता है। ऊपर कहे हुये रोगों से बचने के लिये पानी को शुद्ध करके—उबालकर काम में लाना चाहिये। औषध या उपचार के रूप में दोनों प्रकार का पानी—शीत और उष्ण—काम में आता है। इस पानी का उपयोग किस प्रकार से किया जाता है, उसके कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

शीतोपचार

शीत पानी रक्तस्तम्भक, दाह-शमक, संकोचक और शान्ति देनेवाला है। बहते हुये रक्त को रोकता है; गरमी को शान्त करता है, नसों को ताकत देता है। नीचे लिखे रोगों में बहुत अधिक उपयोगी है।

रक्त का स्राव—(क) नकसीर—नाक से जब रक्त गरमी के कारण निकलता हो, उस समय शिर पर ठंढे पानी का उपयोग धारा के रूप में करने से नकसीर रुक जाती है। यदि इस प्रकार रक्त न रुके, तो नाक के अन्दर पानी के छींटे डालने चाहियें; या ठंढे पानी में कपड़े की पतली बत्तियों को गीला करके नाक में रखना चाहिये। (ख) किसी स्थान में घाव या चोट लगने से उसी समय गीले पानी की पट्टी बाँधने से रक्त का बहाव

रुक जाता है, पीड़ा शान्त हो जाती है और थोड़े दिन में घाव भर जाता है। (ग) अंडकोश आदि पर चोट लगने से या प्रसूति के पश्चात् गर्भाशय से रक्त के अधिक बहने पर; अण्डकोश या गर्भाशय पर पानी की गद्दी रखने से या बर्फ की थैली रखने से रक्तस्राव रुकता है, पीड़ा दूर होती है और सूजन घटती है। (घ) गर्भपात या गर्भस्राव होने का डर हो, तो उसी समय बिस्तर पर लेटकर पेड़ू, गर्भाशय पर ठंढे पानी की गद्दी रखनी चाहिये। (ङ) जवानों में वीर्य-स्राव को रोकने के लिये रात्रि के समय शिश्न को ठंढे पानी से धोकर सोना चाहिये। (च) स्त्रियों में जब ऋतुस्राव अधिक मात्रा में आता हो, उस समय इस पानी का उपयोग उस स्राव को कम कर देता है।

संकोचन—ठंढा पानी स्नायुओं को सिकोड़ता है। इससे किसी स्थान पर चोट लगने से, जब स्थान सूज गया हो, उस समय ठंढे पानी की गद्दी दर्द को और सूजन को कम करती है। प्रदर—स्त्रियों के अन्दर में योनिमार्ग से निकलता हुआ श्वेत लाल-सा पानी ठंढे पानी की पिचकारी से बन्द हो जाता है। इसी प्रकार बच्चों को गुदभ्रंश—गुदा का नीचे निकल आना या स्त्रियों में कमलमुख का योनिमार्ग से निकलना, शीत पानी के उपचार से बन्द हो जाता है।

दाह-शमक—ठंढा पानी शरीर के अन्दर या बाहर के दाह को बन्द करता है। जब ज्वर के कारण शरीर खूब गरम हो रहा होता है, और ताप परिणाम बढ़ा होता है, उस समय विज्ञ चिकित्सक रोगी को शीत पानी से स्नान कराते हैं। शीत वस्ति देते हैं, सिर पर ठंढे पानी की पट्टी रखते हैं। इसी प्रकार आँख के गरमी से दुखने पर शीत पानी का परिषेक दो-तीन बार करने से सूजन और जलन घट जाती है। ऊपरताप या हिस्टीरिया आदि रोगों में मूर्च्छा दूर करने में ठण्ढे पानी के छींटे, शिर और मुँह पर देने चाहियें। इससे मूर्च्छित आदमी होश में आजाता है।

उष्णोपचार

जिस प्रकार शीत पानी कई रोगों में फ़ायदा करता है, उसी प्रकार गरम पानी भी कई रोगों में लाभ करता है। यथा—सेक करने में, भपारा देने में, पिचकारी—गलाले करने में, पानी में बैठने से लाभ होता है।

सेक—सब प्रकार के दर्दों में, चाहे पसलियों का हो, या पेट

का या सूजन का हो, सब स्थानों पर गरम पानी का सेक बड़ा लाभ करता है। इस सेक के लिये पानी को उबाल देना चाहिये और उसमें दो ऊनी फलालैन के वस्त्र डाल देने चाहियें। फिर एक-एक वस्त्र को निकालकर, निचोड़कर स्थान पर रखना चाहिये। तीन मिनट बाद दूसरा कपड़ा निचोड़कर उस स्थान पर रखना चाहिये; और पहिला कपड़ा पानी में गेर देना चाहिये। इस प्रकार बारी-बारी से सेक करना चाहिये। मूत्र रुकने पर भी पेड़ू पर किया हुआ सेक पेशाब को ला देता है।

भपारा—गरम पानी का बाष्प नाक और मुँह से लेने पर शरीर मे पसीना आता है. और कफ बाहर निकलता है, शरीर हलका पड़ता है। सरदी—इन्फ्लुयञ्जा आदि रोगों मे भाप लेना अच्छा है।

पिचकारी -कठोर मलबन्ध की अवस्था में, जब कि विरेचन की दवाई लाभ नहीं करती, उस समय गरम पानी की पिचकारी लाभ करती है।

गलाले—मुँह के दर्दों मे, दाँत के रोगो में पानी को गरम करके उसमे नमक डालकर गलाले करने मे पीड़ा शान्त होती है। दाँत उखाड़ने के पीछे पानी से गलाले करने पर रक्त बन्द हो जाता है।

स्नान कई रोगों मे पानी के अन्दर बैठना बहुत लाभदायक है। पानी से कई रोगों का इलाज इसी स्नान विधि से हो जाता है। आक्षेप, मूत्रकृच्छ्र आदि रोगों में पानी के अन्दर बैठने मे रोग शान्त हो जाता है। गरम पानी इतना होना चाहिये, जितना कि सहा जा सके। स्त्रियों के ऋतु-रोध में, जब कि रज कठिनता से आता हो, उस समय पानी के अन्दर बैठना अति लाभदायक होता है।

प्रकरण तीसरा

खान-पान

भोजन की आवश्यकता—शरीर के अन्दर से कई पदार्थ बाहर निकलते रहते हैं। यथा—मलरूप में, पसीने के रूप में। इन निकले हुये पदार्थों को पूरा करने के लिये वस्तुओं की आवश्यकता रहती है। इसके अतिरिक्त रात-दिन कार्य करने में भी शक्ति का व्यय होता है; उस शक्ति को पूरा करने के लिये भी भोजन की आवश्यकता रहती है।

यह शरीर एक एंजिन की भाँति है। एंजिन को चलाने के लिये कोयला और पानी की जरूरत रहती है। कोयले के जलने से पानी गरम होकर उसको चलाने की शक्ति देता है। जले हुये कोयलों को राख के रूप में फेंक दिया जाता है। यही कार्य अपने इस शरीर में भी होता है। भोजन शरीर में अग्नि उत्पन्न करता है, उस अग्नि के कारण यह शरीर गति करता है। यदि शरीर में भोजन न जाय, तो अग्नि कम हो जाती है। अग्नि के कम होने से शक्ति भी घट जाती है।

इसके अतिरिक्त शरीर के अन्दर टूटना-फूटना और बनना लगा रहता है। यदि शरीर के अन्दर सदा टूटना ही रहे और उसकी मरम्मत न हो, तो कुछ समय बाद सारा शरीर क्षीण हो जाय। इसी प्रकार यदि शरीर के अन्दर सदा बनना ही रहे, तो कुछ समय पश्चात् शरीर के अन्दर जमा हो जाय। यदि आय और व्यय का खाता समान रक्खा जाय, तो किसी प्रकार हानि नहीं आती—यह स्वस्थ अवस्था होती है। और जब आय कम हो और व्यय अधिक हो, तो कुछ दिनों में दिवाला निकल जाता है। और यदि आय अधिक हो और व्यय कम हो तो, पेट में जमा हो जाती है; जिससे पेट बढ़ जाता है। ये पिछली दोनों अवस्थायें रोग की हैं। होना यह चाहिये कि शरीर में जितना खर्च हो, उतना ही उसमें जमा भी हो जाय। दिनभर की मेहनत से, या व्यायाम से (चाहे वह शारीरिक या मानसिक किसी प्रकार का क्यों न हो) जो कमी शरीर में आती है, उसको प्रतिदिन

पूरा कर लेना चाहिये। इसके साथ टूटना-फूटना, बनना आदि यह तो लगा ही रहता है। विज्ञान-शास्त्रियों का कहना है कि सात साल के पश्चात सम्पूर्ण शरीर बदल जाता है। इसका अर्थ यह है कि शरीर के परमाणु बदल जाते हैं। अर्थात अस्थि का जो परमाणु आज है, सात वर्ष के पश्चात उसकी जगह दूसरा परमाणु ले लेता है। इस परमाणु के भी गुणदोष प्रथम परमाणु के अनुसार होते हैं।

इन परमाणुओं का निर्माण खाये हुये भोजन या आहार से होता है। यह आहार प्रत्येक मनुष्य के लिये भिन्न-भिन्न होता है। बचपन में जो आहार पर्याप्त समझा जाता है, युवावस्था में उससे कहीं अधिक आहार की ज़रूरत होती है। बचपन में जो पदार्थ शरीर के लिये आवश्यक नहीं समझे जाते, युवावस्था में उनकी ज़रूरत पड़ जाती है। इसी प्रकार कार्य-भेद से, रहन-सहन के कारण आहार की राशि में, उसके घटकों में परिवर्त्तन आ जाता है। मेहनत करनेवालों के लिये, कम मेहनत करनेवालों की अपेक्षा अधिक भोजन चाहिये। इसी प्रकार जवान पुरुषों को बच्चे और बूढ़े की अपेक्षा अधिक भोजन चाहिये।

इसके अतिरिक्त कई पुरुष प्रकृति से बलवान होते हैं। वे शीघ्र भोजन को पचा लेते हैं। उनको अधिक भोजन की ज़रूरत रहती है। और कइयों को दो पतली चपातियाँ भी हज़म नहीं होतीं। उनको कम भोजन चाहिये। इसलिये भोजन की मात्रा निश्चित करनी असम्भव है।

दूसरी बात यह है कि कोई वस्तु जल्दी पच जाती है। जैसे चावल का भोजन गेहूँ या बाजरे की अपेक्षा जल्द पच जाता है। जिस पदार्थ में घी और शर्करा अधिक होती है, वह भोजन देर में पचता है। इसी प्रकार कोई भोजन राशि में थोड़ा होने पर भी शरीर को अधिक शक्ति देता है। यथा घी और मीठा। और कोई भोजन राशि में अधिक शक्ति नहीं देता। यथा चावल। जिस प्रकार मजबूत खैर या कीकर अथवा बेर की लकड़ी का कोयला अथवा पत्थर का कोयला जितनी कम राशि में जितनी तेज आँच दे सकता है; उतनी आँच, उसी राशि में ढाक की लकड़ी का कोयला नहीं दे सकता। इसलिये भोजन की मात्रा का निश्चित करना सर्वथा असम्भव रहता है।

साधारणतः एक युवा व्यक्ति के लिये चालीस तोला भोजन कम से

कम होना चाहिये और अधिक से अधिक ८० से १०० तोला तक। मल्ल-कुश्ती करनेवाले या मथुरा के चौबों को इस राशि से दुगना, तिगुना चाहिये।

दृढ़ मज़बूत शरीर, ऊँचा डील-डौल, प्रबल जठराग्नि, पुश्कल खान-पान, उत्तम बुद्धि, ये ईश्वरीय कृपा की निशानियाँ हैं, जोकि पुण्य से प्राप्त होती हैं। छोटा-नाटा शरीर, कमजोर-रोगी देह, मन्द जठराग्नि, थोड़ा खान-पान, बुद्धि का अभाव, ये वस्तुयें ईश्वरीय अपकृपा के चिह्न हैं, जोकि पाप के कारण प्राप्त होती हैं।

शरीर और मन के श्रम के कारण जो कमी होती है, उस कमी को पूरा करने के लिये अन्न ग्रहण करने की जो रुचि होती है, उसका नाम है "भूख"। भूख लगने पर प्रत्येक मनुष्य को आहार—भोजन लेना चाहिये। यदि कम मात्रा में लिया जायगा, तो शरीर को पूरा नहीं पड़ेगा, इससे शरीर निर्बल रहेगा। और अधिक लेने से, वह पूरा पचेगा नहीं, बेकार जायगा। और शरीर से बाहर न निकला, तो रोग उत्पन्न करेगा।

खुराक के वर्ग

भोजन के दो मुख्य विभाग हैं। १—वनस्पति और २—मांस। वानस्पतिक भोजन करनेवालों को निरामिष-भोजी कहते (Vegetarian) कहते हैं, और मांस भोजन करनेवाले को आमिष-भोजी (Non-Vegetarian) कहते हैं। आमिष-भोजी मनुष्यों के भोजन में वानस्पतिक पदार्थ भी होते हैं। उनके भोजनों में भी अधिक भाग वनस्पति से बने पदार्थों ही का होता है।

यद्यपि घी और दूध भी प्राणी से उत्पन्न होते हैं, परन्तु उनको वनस्पति ही में गिना जाता है; क्योंकि घास-पत्ते आदि खानेवाले पशुओं का ही दूध बरता जाता है। वह दूध वनस्पति से बनता है। कुछ लोग "अण्डे" को "मांस" नहीं गिनते। परन्तु "अण्डा" स्त्री और पुरुष के रज और वीर्य से उत्पन्न होता है। और उसी अण्डे से कुछ समय बाद बच्चा भी उत्पन्न हो जाता है। अतः वह भी मांस ही में गिना गया है।

मनुष्य के लिए कौन-सा आहार उत्तम है; इस विषय में बहुत वाद-विवाद है। जिसकी चर्चा यहाँ पर उठाना निरर्थक है। आहार से शरीर, मन और बुद्धि का पोषण होता है। यदि आहार पवित्र, सात्त्विक होगा, तो यह शरीर, मन और बुद्धि भी पवित्र एवं सात्त्विक बनेगी और यदि आहार मैला,

अपवित्र, तामसिक होगा, तो मन और बुद्धि भी वैसी बनेगी। इसलिये सात्त्विक आहार, जोकि बनस्पतियों से प्राप्त होता है, उसकी ओर ही ध्यान रखना चाहिये। इसलिये मनुष्य का वास्तविक भोजन वानस्पतिक है।

जीवन के लिये उपयोगी खुराक

हम ½ सेर या एक सेर भोजन करते हैं। यह सारा भोजन हमारे शरीर में नहीं लग जाता। बहुत-सा भाग बाहर निकल जाता है। इसी प्रकार हम दूध, गेहूँ, ज्वार, बाजरा, दाल, भंग आदि कई पदार्थ खाते हैं। ये सब बदलकर हमारे शरीर में सात धातु ही बनाते हैं। इससे प्रतीत होता है कि हम भोजन चाहे किसी रूप में क्यों न लें, अन्त में वह एक रूप में आजाता है। विज्ञान-शास्त्रियों ने परीक्षा करके यह बताया है कि कोई भी भोजन आप किसी भी रूप में खाइये—चाहे आप चावल और दूध खाइये, चाहे दाल चावल खाइये और चाहे खीर खाइये, ये सब उन्हीं रूपों में आजायेंगे। ये रूप पाँच हैं। इनको तत्त्व कहते हैं। चूँकि इन रूपों के पश्चात् और परिवर्त्तन इनमें नहीं आता; अतः इन तत्त्वों को जीवनोपयोगी "तत्त्व" कहते हैं। यथा १—पौष्टिक। २—चरबीवाले। ३—आटे सत्त्व भाग जिसको स्टार्च या निशास्ता कहते हैं। ४—क्षार और ५—पानी।

शरीर के सब तत्त्व, सातो धातु-रस, रक्त, मेद आदि, मंद आदि पाँचों ज्ञानेन्द्रिय, सब का पोषण इन्हीं पाँच तत्त्वों से होता है। इसलिये अपने प्रतिदिन के भोजन में इन पाँच तत्त्वों का होना आवश्यक है।

पौष्टिक-खुराक शरीर के पोषण और वृद्धि के लिये आवश्यक है। प्रायः सब धान्यों में थोड़ा या बहुत पौष्टिक तत्त्व होता है। परन्तु यदि घी, मक्खन अथवा शर्करा प्रतिदिन खाई जायँ, तो शरीर में यह पदार्थ नहीं पहुँचता। इसी प्रकार साबूदाने में मुख्य पदार्थ स्टार्च का है। पौष्टिक पदार्थ शरीर में गरमी देते हैं। जिस समय शरीर के अन्दर ज्वर आदि से गरमी बढ़ जाती है, उस समय भोजन बन्द करके लंघन या उपवास करते हैं। अथवा विरेचनों द्वारा शरीर की गरमी बाहर करते हैं। और जब गरमी घट जाती है, उस समय नत्रजनवाले पदार्थ गेहूँ आदि या फल विशेषरूप में दिये जाते हैं। फलों में पौष्टिक पदार्थ पर्य्याप्त मात्रा में रहता है। ये पदार्थ शरीर-रूपी एंजिन में कोयला या ईंधन का काम करते हैं।

चरबीवाले

पदार्थों में घी, तेल, मक्खन और चरबी आती है। अनाजवाले पदार्थों में चिकनाई का भाग कम से कम एक प्रतिशतक गेहूँ में है और अधिक से अधिक छः प्रतिशतक मकई में है। चरबीवाले पदार्थ शीत ऋतु में विशेष खाने चाहियें। उस समय जठराग्नि प्रबल होती है और शरीर का बल बढ़ा होता है, अतः सब पच जाता है।

आटे का—सत्व अर्थात स्टार्चवाले पदार्थों में मुख्य शक्कर, खाँड़, गुड़, चावल और दूसरे धान्य हैं। शरीर के अन्दर जो श्वास-प्रश्वास की क्रिया चलती है, वह "कार्बन" नामक एक पदार्थ से होती है। और यह "कार्बन" इस खुराकवाले पदार्थों में से और चरबीवाले पदार्थों में से उत्पन्न होती है। गरम देशों में तथा ग्रीष्म-ऋतु में स्टार्ची तत्ववाले पदार्थ अधिक अनुकूल होते हैं, अतः गर्मियों में खाँड़ का शर्बत या चावल उत्तम रहता है

क्षार—शरीर का प्रत्येक भाग क्षार के मिलने से बना है। दूध में भी क्षार का भाग होता है। रक्त में भी क्षार का भाग होता है। भोज्य पदार्थों में प्रायः थोड़ी बहुत मात्रा में क्षार अवश्य रहता है। अस्थियां का निर्माण प्रायः क्षार ही से होता है। अस्थियों के पोषण के लिये क्षार की आवश्यकता रहती है। क्षार की कमी के कारण अस्थियाँ निर्बल रहती हैं। बच्चों की अस्थियाँ प्रायः मुड़ जाती हैं। उनका कारण भी क्षार की कमी है। छोटे बालकों का पोषण केवल दूध से होता है, उसमें भी क्षार होता है। शरीर को उचित मात्रा में क्षार चाहिये। अधिक खाने से यही क्षार शरीर को नुकसान पहुँचाता है।

पानी—शरीर के पोषण के लिये पानी की आवश्यकता है। यह पानी द्रव के रूप में शरीर के अन्दर पहुँचता है। रक्त की नियमित गति के लिये रक्त में प्रवाहीपन की आवश्यकता है। यदि शरीर के रक्त में प्रवाहीपन कम हो जाय, तो रक्त गाढ़ा हो जायगा, जिससे सुगमता से नहीं बह सकता। यह प्रवाही पदार्थ पानी की भाँति भोजन में से भी शरीर को मिलता रहता है। गेहूँ, बाजरा, मकई, चावल में भी पानी का भाग है। तरकारी, शाक, भाजी में तो पानी पर्य्याप्त होता है।

शरीर के पोषण के लिये इन पाँचों तत्वों में से कौन पदार्थ कितना चाहिये, इसका साधारण हिसाब नीचे दिया जाता है। परन्तु शरीर की प्रकृति के लिहाज से, कार्यक्रम के भेद से इसके अन्दर परिवर्त्तन आवश्यक होता है।

पौष्टिक तत्त्वोंवाली	खूराक—नित्य	१० रु० भार	१ रु० = १ तोले के
चरबीवाले	खूराक	८ रु० भार	
आटे का सत्त्व	खूराक	३० रु० भार	
क्षार	खूराक	४ रु० भार	
पानी		१५० रु० भार	

पानी या प्रवाही तत्त्व प्रायः सब पदार्थों में रहता है। चरबीवाले पदार्थों में इसकी मात्रा नहीं के बराबर होती है। ऊपर जो परिमाण दिया गया है, उनमें पानी का अंश निकालकर दिया है। और यदि इन तत्त्वों को पानी के साथ गिना जाय, तो परिमाण दुगुना आयेगा। अर्थात् ऊपर कुल ५२ तोले खूराक का वजन दिया है। पानी का अंश मिलाकर १०४ तोला अंश आयेगा। और पानी इससे अलग रहा। मिश्र तत्त्वों में ये तत्त्व मिले रहते हैं। उदाहरण के लिये एक मनुष्य को प्रतिदिन ४ तोला क्षार चाहिये। यह क्षार चाहे तो क्षार—नमक के रूप में ४ तोला खाया जाना चाहिये, अथवा अन्य पदार्थों के साथ में—यथा फलों के रूप में—शरीर के अन्दर जाना चाहिये। इस प्रकार से उन पदार्थों ही से ४ तोला क्षार पूरा हो जाना चाहिये। अर्थात् ये पदार्थ किसी न किसी प्रकार से इस मात्रा में शरीर के अन्दर जाने चाहियें। घी को चाहे घी के रूप में खायें, या दूध या दही के रूप में शरीर के अन्दर लें। ये दोनों बातें एक ही हैं। घी की मात्रा ८ तोला होनी चाहिये।

खूराक की मुख्य चीजों में पाँच तत्त्वों का प्रमाण बतानेवाला कोठा

खूराक की मुख्य चीजों में पौष्टिक तत्त्व (नाइट्रोजन), चरबी (फ़ैट), आटे का सत्त्व (स्टार्च), क्षार और पानी प्रति सैकड़े में कितना भाग है, इस बात को निचला कोठा बताता है। चरबीवाले और स्टार्चवाले पदार्थों में कार्बन अधिक होती है।

भोजन की चीजें	नाइट्रोजन वाला पौष्टिक तत्त्व	चरबी का सत्त्व	स्टार्च अर्थात् आटेका तत्त्व	क्षार का तत्त्व	पाणी का प्रवाही तत्त्व
	१०० भाग में (एक सौ भाग में)				
चावल	५	० ३/४	८३ १/४	० १/२	१०
साबूदाना	०	०	८२	०	१८
गेहूँ	१४ १/२	१	६९	१ १/२	१४
ज्वार	१२ १/२	४	७०	१ १/२	१२
बाजरा	१०	४ १/२	७१ १/४	२ १/२	११ ३/४
मूंग	२२ १/४	२ १/४	५४	५ ३/४	१० ३/४
चना	२२	३	६२	२	११
उड़द	२४ १/२	१ १/४	५८ १/२	३	१२ १/२
अरहर	२२	१	६२	३	१०
लोभिया	२२	२	५३	२	१५
मसूर	२५	१ १/४	६०	२	११ ३/४
जव	१३	२	६८	२	१५
मकई	१०	६ ३/४	६४ १/२	१ १/२	१३ १/२
कुलथी	२३ १/४	२ १/२	५९ १/२	३ १/४	१५
आलू	१ १/२	१/१०	२३ ४/५	१	१३ १/२
गोभी	१/४	१/२	५ १/२	३/४	१२
गाजर	१/२	१/४	८ १/२	३/४	७४
कशारकंद	०	०	९६ १/२	१/२	९१
दूध	४	३ ३/४	५	१/२	८५
मक्खन	० ३/४	९१	०	२ १/२	३
घी	०	१००	०	०	८६ ३/४
अण्डा	१३	११ ४/५	०	१	६
बकरी का मांस	२२	८	०	१ १/२	०
मछली	१४	७	०	०	७३ १/२

विज्ञान-शास्त्रियों ने भोजन का विश्लेषण करके उसके अन्दर कौन पदार्थ कितनी मात्रा में है, इसका हिसाब लगाया है। उसीको बताने के लिये ऊपर का कोठा है। शरीर को जब जिस समय वस्तु की आवश्यकता हो, उसीके अनुसार वह पदार्थ भोजन कर लेना चाहिये।

गुणों के अनुसार भोजन के दो भेद हैं। १—पुष्टिकारक खूराक और २—गरमी देनेवाला भोजन। शरीर के भागों को जो भोजन पुष्टि देते हैं, उनको पुष्टिकारक भोजन कहते हैं। और जो भोजन शरीर को गरमी देते हैं, उनको गरमी देनेवाला भोजन कहते हैं। पुष्टिकारक पदार्थों में नाइट्रोजन का भाग अधिक रहता है, और गरमी देनेवाले पदार्थों में "कार्बन" नामक पदार्थ अधिक होता है। गरमी देनेवाले पदार्थ शरीर की गरमी को एक समान रखते हैं। सर्दियों में जब पारा ३२ डिग्री से भी नीचे उतर जाता है, वहाँ पर भी शरीर की गरमी एक समान रहती है। सर्दियों में गरमी देनेवाले पदार्थ विशेष रुचिकर होते हैं और वे पच भी जाते हैं। गरमियों में जब कि गरमी की आवश्यकता नहीं होती, उस समय ये पदार्थ हानि करते हैं। यही कारण है कि शरीर का ताप सब ऋतुओं में एक समान रहता है। इस अग्नि या ताप के ऊपर शरीर का स्वास्थ्य निर्भर रहता है।

जिस प्रकार के भोजन से शरीर के अन्दर यह गरमी रहती है, उस प्रकार के भोजन के अन्दर दो प्रकार के तत्त्व हैं। एक "कार्बन" और दूसरा "हाइड्रोजन"। ये दोनों पदार्थ ऑक्सीजन के साथ मिलकर शरीर के अन्दर गर्मी पैदा करते हैं। इनमें "कार्बन" का वर्णन पहले कुछ आ चुका है। यह हाइड्रोजन बड़ी जलनेवाली होती है और सब प्रकार की वायुओं से हल्की है। इधर "कार्बन" भी जलने का गुण रखता है। "औक्सीजन" (प्राण-वायु) स्वयं नहीं जलती; परन्तु जलने में सहायता करती है। इसकी उपस्थिति के बिना ज्वलन नहीं हो सकता। अब जब यह ज्वलन किसी व्याधि या भोजन की कमी से कम हो जाता है, या बढ़ जाता है, तो शरीर रुग्ण हो जाता है।

जिस प्रकार एंजिन में अधिक कोयला डालने से आग भी तेज जलती है, उसी प्रकार पौष्टिक भोजन के खाने से शरीर के अन्दर विशेष

शक्ति आती है। रक्त की गति बढ़ जाती है, उसमें जोर आजाता है। रक्त शिर, हृदय और यकृत में ज़ोर से दौड़ने लगता है। यदि शरीर निर्बल हो और इस गरमी को शरीर थाम न सके, तो कई रोग हो जाते हैं। अतः पौष्टिक भोजन खानेवालों को उसी प्रमाण में मेहनत करनी चाहिये।

भोजन इस प्रकार का होना चाहिये कि शरीर के लिये उपयोगी सब पदार्थ उसमें से मिलते जायँ। घी, मक्खन, अण्डा आदि में नत्रजनीय पदार्थ बिलकुल नहीं होता। केवल एक वस्तु "दूध" ऐसा है, जिसमें शरीर के उपयोगी सब पदार्थ होते हैं और उचित आवश्यक मात्रा में रहते हैं। घी में केवल चर्बी है, चावलों में आटे का सत्त्व अधिक है, दाल में पौष्टिक पदार्थ अधिक है ; इसलिये इन सब को खाने से मनुष्य का आहार पूरा होता है। दाल में पड़ा नमक सार को पूर्ण करता है। बालकों को चरबी की उतनी आवश्यकता नहीं होती, जितनी युवकों को रहती है। गेहूँ में चरबी का भाग बहुत कम होता है—अतः घी लगाकर खाना चाहिये। तरकारी—शाक भाजी में विशेषतः पानी और क्षार की मात्रा अधिक रहती हैं। चूँकि भूमि के कारण ये दोनों पदार्थ उनमें बहुत पहुँचते हैं, अतः क्षार की कमी के लिये शाक-भाजी की जरूरत इन से पूरी होती है। इसके अतिरिक्त इनको "व्यञ्जन" कहते हैं। इनके कारण भोजन में रस-स्वाद आता है। अतः इनको अवश्य खाना चाहिये।

भोजन के छः रस—शरीर के लिये आवश्यक भोजन में जो भी रस हमको लगते हैं, उन सबका अन्तर्भाव नीचे लिखे छः रसों में हो जाता है। यह स्मरण रखना चाहिये कि "रस" पानी के अन्दर ही है। जबतक पानी न मिले, कोई पदार्थ रस उत्पन्न नहीं कर सकता। ये रस छः हैं। यथा—मीठा, खट्टा, खारा, तीखा, कड़वा और कषाय। ये रस नीचे लिखे तत्त्वों से मिलकर बनते हैं।

पृथ्वी और पानी के गुण की अधिकता से मीठा—मधुर रस उत्पन्न होता है।

पृथ्वी और अग्नि के गुण की अधिकता से खट्टा—अम्ल रस उत्पन्न होता है।

पृथ्वी और वायु के गुण की अधिकता से तुर—कपाय रस उत्पन्न होता है।

पानी और अग्नि के गुण की अधिकता से खारा—लवण रस उत्पन्न होता है।

वायु और अग्नि के गुण की अधिकता से तीखा—तिक्त रस उत्पन्न होता है।

वायु और आकाश के गुण की अधिकता से कड़ुवा—कटु रस उत्पन्न होता है।

इन रसों के गुण निम्न प्रकार से हैं—

मधुर रस—रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, वीर्य और ओज तथा स्त्रियों के दूध को बढ़ाता है। आँख के लिये हितकारी है, बाल और वर्ण को उत्तम-स्वच्छ करता है। बलवर्द्धक है। टूटे हुए अंगों को शीघ्र जोड़ देता है। बालक, वृद्ध और चोट या व्रण से क्षीण मनुष्य के लिये हितकारी है। तृषा, मूर्च्छा और दाह को शान्त करता है। सब इन्द्रियों को प्रसन्न करता है। कृमि और कफ को बढ़ाता है। यही रस अधिक खाने पर कास, श्वास, अलसक, उल्टी, मुँह में बेहद मीठा स्वाद, स्वर-भंग, कृमि रोग और गलगण्ड उत्पन्न करता है। इसके अतिरिक्त अर्बुद, श्लीपद, वस्ति रोग, अभिष्यन्द, मधु-प्रमेह उत्पन्न कर देता है।

अम्ल रस—आहार को जारण करनेवाला, भोजन को पचानेवाला, दीपन, वायु को कम करनेवाला, मल-मूत्र आदि वेगों को निकालनेवाला, कोष्ट में विदाह करनेवाला, क्लेदन—शरीर के अंगों को गीला करनेवाला, और रुचिकर होता है। बाहर लेप करने से शरीर को ठण्डा करता है। इसके अति सेवन से दाँतों में अम्लता—जड़ता उत्पन्न करता है। आँख को बन्द करना, शरीर को रोमाञ्चित करना, श्लेष्मा का नाश, शरीर में शिथिलता उत्पन्न करता है। यही रस व्रणों को पकाता है और कण्ठ, छाती तथा हृदय पर जलन—खट्टास उत्पन्न करता है।

लवण रस—शरीर का शोधन करता है, भोजन या दोषों को पचाता है, कफ को या अन्य पदार्थों को अलग-अलग करता है; शरीर को

गीला रखता है, शिथिलता उत्पन्न करता है, सब रसों के विपरीत है, सम्पूर्ण शरीर को कोमल बनाता है। इसके अति सेवन से खुजली, कोढ़, शोथ—विवर्णता, पुरुषार्थ का नाश, शुक्र का नाश होता है, मुख और आँखों की शक्ति को कम करता है (सैन्धा नमक को छोड़कर) रक्त को बिगाड़कर वात, रक्त-रोग उत्पन्न करता है। इसके अधिक सेवन से भी अम्लता उत्पन्न होती है।

तिक्त रस—(लाल मिर्च आदि)—अग्नि-दीपक, पाचक तथा मल-मूत्र का शोधन करता है। कण्डू, कोठ, तृष्णा, मूर्च्छा और ज्वर को कम करता है। दूध का शोधन करता है। मल-मूत्र, पसीना, मेद, वसा को सुखाता है। इसके अधिक सेवन करने से ग्रीवा की नसें जकड़ जाती हैं, नाड़ियाँ खींचती हैं, शरीर में पीड़ा होती है, चक्कर आते हैं. शरीर टूटता है, मुँह का स्वाद बिगड़ता है।

कटु रस—दीपन, पाचन, मल-मूत्र का शोधन करनेवाला, स्थूलता को घटाता है। आलस्य को दूर करता है, कफ, कृमि और कुष्ठ तथा कण्डू को नष्ट करता है। सन्धियों को ढीला करता है, उत्साह कम करता है, दूध, वीर्य और चर्बी का नाश करता है। इसके अति सेवन से भ्रम, मद, गले, तालु और ओठ में शुष्कता आती है। बल की हानि होती है। कम्प, पीड़ा आदि रोगों को उत्पन्न करता है। हाथ-पाँव आदि में वायु उत्पन्न करके दर्द करता है।

कषाय रस—मल को बन्द करता है, व्रण को भरता है, रक्त को रोकता है, मूत्र का शोधन करता है, कफ आदि का लेखन करता है, कफ आदि का शोष उत्पन्न करता है, गीलेपन को सुखाता है, पस को कम करता है। इसके अति सेवन करने से हृदय में पीड़ा होती है, मुँह सूखता है, पेट में अफारा होता है, नसें जकड़ जाती हैं, शरीर काँपता है, शरीर संकुचित होता है।

भोजन में नित्यप्रति छः रसों का उपभोग करना चाहिये। कड़ुवा रस और कषाय रस प्रायः स्पष्ट रीति से खाने में नहीं आता। परन्तु यह रस भी दातुन के रूप में या अन्य रूप में शरीर के अन्दर पहुँचता है। सब

रसों का खाना ही शरीर को स्वस्थ रख सकता है। तीनों दोष इसी कारण समान रह सकते हैं। किसी एक रस पर विशेष बल या जोर नहीं देना चाहिये।

दुग्ध वर्ग					
प्राणी	प्रोटीन	वसा (चर्बी)	शर्करा	लवण	पानी
यूरोपियन स्त्री का दूध	१.५	३.५	७.०	०.२	८७.८०
बंगाली स्त्री	१.२	२.८०	५.९०	०.२४	८९.८६
गाय	३.५	४.०	३.५	०.७५	८७.२५
घोड़ी	२.०	१.२०	५.६५	०.३६	९०.७९
गधी	२.२५	१.६५	६.००	०.५०	८९.६९
बकरी	४.३	४.७८	४.४३	०.०५	८५.७१
भैंस	६.११	७.८५	४.०७	०.८७	८१४१

मांस वर्ग					
प्राणी	प्रोटीन	वसा	शर्करा	लवण	पानी
गाय-बैल	२०.०	१.५	०.६	१.२	७६.७
सुअर	१९.९	६.२	०.६	१.१	७२.६
घोड़ा	२१.६	२.५	०.६	१.०	७४.३
मुर्गी	२२.७	४.१	१.३	१.१	७०.४
मछली	१८.३	०.७	०.९	०.८	७९.३
बकरा	१८.०	५.०	×	१.०	७६.०
हिरन	१९.७	१.९	×	१.१	७५.७
खरगोश	२२.३	१.१	×	१.१	७४.७

प्रोटीन को पौष्टिक पदार्थ नत्रजन या नाइट्रोजन ही समझना चाहिये। ये दोनों वस्तुयें एक ही हैं, केवल नाम-भेद है। इसी प्रकार वसा, चर्बी का नाम-भेद है।

भोजनों के कुछ नमूने

मजदूरों के लिये भोजन		मानसिक श्रम करनेवालों का भोजन		फौजियों का भोजन	
भोजन २४ घण्टे में	मूल अवयव	भोजन २४ घण्टे में	मूल अवयव	भोजन २४ घण्टे में	मूल अवयव
चावल १०		आटा ७ छ०	प्रोटीन १०५	आटा ६ छ०	
छटांक	प्रोटीन ५०	चावल २ छ०	माशे	चावल ४ छ०	प्रोटीन ११०
दाल २ छ०	माशे	दाल २ छ०	वसा ९६	दाल १ छ०	माशे
तैल $\frac{1}{2}$ छ०	कार्बन ५००	घृत १ छ०	माशे	दुग्ध ८ छ०	वसा ५४
शाक थोड़ा-	माशे	दूध १२ छ०	कार्बन ५१४	मांस २ छ०	माशे
सा	वसा ३३ ,,	शर्करा १ छ०	माशे	घृत $\frac{1}{2}$ छ०	कार्बन ४९०
		शाक			माशे

मानसिक श्रम करनेवालों के भोजन में दूध, दही, मलाई, रबड़ी, घी आदि की मात्रा अधिक सेवन करनी चाहिये। अधिक शारीरिक परिश्रम करनेवालों को चावल और शर्करा अधिक खानी चाहिये।

ऊपर दिये हुये मानसिक श्रम करनेवालों के भोजन में वसा की मात्रा बढ़ाकर १ छटांक के स्थान १½ कर देनी चाहिये, और आटा ७ छटाँक कर दिया जाय तो अच्छा। यह भोजन गुरुकुल कांगड़ी में १८ से २५ वर्ष की आयुवाले विद्यार्थियों को दिया जाता है, जिनका वजन लगभग १½ होता है।

आहार की वस्तुओं का वर्गवार वर्णन

चावल— कई जाति के होते हैं। इनके मुख्य
श्रेष्ठ चावल और दूसरा कुधान्य—निकम्मे धान्य हैं। दो भाग हैं। एक
में लाल चावल, बासमति, साठी, कृष्ण चावल हैं प्रथम प्रकार के ... गों
कोदो, मंडवा आदि होते हैं। इसके अतिरिक्त और कुधान्यों में साँवक,
अंतर होता है। ... इनके बोने, आदि में भी

गुण—सब चावल, मधुर, शीत, शीघ्र पचनेवाले, बल देनेवाले हैं। पित्त को कम करते हैं, स्निग्ध, मल को बाँधते हैं। मूत्र को अधिक लाते हैं।

उपयोग—चावलों में लाल चावल साठी बहुत उत्तम हैं। इनमें लाल चावल मोटे दानेवाले होते हैं। चावलों में पौष्टिक और चरबी का भाग बहुत कम होता है। इसलिये पचने में बहुत हल्के होते हैं। इसीसे बालकों और रोगियों के लिये बहुत उत्तम भोजन है। "साबूदाना" यद्यपि चावलों की जात में नहीं है; परन्तु चावलों से हल्का तथा उनके गुणोंवाला है। अत: बच्चों और रोगियों के लिये विशेष लाभदायक होता है। चावल विशेषत: शुक्र को बढ़ाते हैं।

चावल एक साल का पुराना अच्छा होता है। नया चावल—चालू वर्ष का चावल भारी और वायुकारक होता है। चावल के साथ दाल खाने से शरीर में पौष्टिक पदार्थ पर्य्याप्त मात्रा में पहुँचता है। चावलों के साथ दाल पकाकर खिचड़ी के रूप में खाने से शीघ्र पच जाती है।

गेहूँ— **गुण**—पुष्टि, स्थिरता देनेवाले, वृष्य शुक्र बढ़ानेवाले, स्निग्ध, शीत, मल को निकालनेवाले और भारी होते हैं, देर में पचते हैं। टूटे हुये स्थानों को जोड़ते हैं, वृहण हैं, वायु और पित्त को नष्ट करते हैं। नये साल का गेहूँ कफकारक है; परन्तु एक साल का पुराना गेहूँ कफ नहीं करता।

उपयोग—गेहूँ की दो मुख्य जातें मिलती हैं। एक लाल दूसरी श्वेत या पीली। पीली की अपेक्षा लाल गेहूँ अधिक पुष्टिदायक है। गेहूँ में पुष्टिदायक और गरमी देनेवाले पदार्थ रहते हैं। इसलिये धान्य-वर्ग की अन्य चीजों की पपेक्षा गेहूँ शरीर का पोषण विशेष रूप से करता है। गेहूँ में वसा और क्षार ग बहुत कम है। अत: मनुष्य गेहूँ में नमक गेरकर या रोटी को घी से चु ाते हैं। नमक, दाल आदि में डालकर इस कमी को भी पूरा कर लेते । गेहूँ े आटे में से लोग "मैदा" निकालते हैं; यह पचने में बहुत भारी हो है। इस ने पूरी या अन्य वस्तु बनाते हैं। जिन पुरुषों की पाचन-शक्ति मन्द हो, उनको यह नहीं खाना चाहिये। गेहूँ के आटे से बहुत-सी वस्तुयें बनती हैं। ेहूँ को मोटा दरकच करके उससे दलिया, या सत्तू बनाते हैं। गेहूँ के साथ घी ख ने से वायु या वादी नहीं होती।

बा रा—**गुण**— रम, रुक्ष, पौष्टिक, हृदय के लिये हितकर, स्त्रियों में काम की वृ द्धि करनेवाला, पचने में भारी और वीर्य को नुकसान

उपयोग—बाजरा गरम होने से पित्त को कुपित करता है, इसलिये पित्त प्रकृतिवालों को यथासम्भव बाजरा कम खाना चाहिये। बाजरा रूक्ष होने से वायु को बढ़ाता है। जहाँ पर गेहूँ कम होता है और बाजरा अधिक होता है, वहाँ के लोग प्रायः इसीको बचपन से खाते हैं। अतः यह उनको पथ्य होजाता है; जिस प्रकार कच्छ और काठियावाड़ में। पोषण-तत्व बाजरे में प्रायः गेहूँ के समान होते हैं। बाजरे में वसा का भाग गेहूँ की अपेक्षा अधिक रहता है। अतः कम घी के चल जाता है।

ज्वार—गुण-ठण्डी, मधुर, रूक्ष, हल्की और पौष्टिक।

उपयोग—ज्वार में बाजरे के समान ही पौष्टिक तत्व हैं। ज्वार में चरबी का भाग बाजरे जितना ही है। ज्वार ठंडी और रूक्ष होने से वायु करती है। परन्तु नित्य के उपयोग से पथ्य हो जाती है। काठियावाड़ में और राजकोट में प्रायः ग़रीब लोग इसी पर जीवन व्यतीत करते हैं। उत्तरी हिन्दुस्तान में इसको खाने की प्रथा नहीं है।

मूँग— गुण-शीत, ग्राही, हल्का, स्वादिष्ट, कफ तथा पित्त को शान्त करनेवाला, रक्त-स्राव को रोकनेवाला, नेत्रों के लिये हितकारक, और थोड़ी वायु करता है।

उपयोग—शमी धान्यों में मूँग सबसे उत्तम है। प्राचीन वैद्यक-शास्त्र में मूँग की बहुत अधिक प्रशंसा की गई है। मूँग की दाल या उसका पानी प्रायः सब रोगों में पथ्य समझा जाता है। कई स्थानों में यह दूध से भी श्रेष्ठ है। त्रिदोष जन्य या नवज्वर में जहाँ दूध का देना हानिकारक समझा जाता है, वहाँ मूँग की दाल का पानी सुखपूर्वक दिया जा सकता है। सम्पूर्ण मूँग वायु करता है, परन्तु मूँग की दाल का पानी वायु नहीं करता। मूँग के कई भेद हैं। इन सबमें हरा मूँग सबसे अच्छा है।

अरहर— गुण—मधुर, कषाय, भारी, रुचिकर, संग्राही—मल को बाँधकर लानेवाला, ठंडा, त्रिदोषहर और किसी कदर वायुकारक है।

उपयोग—रक्त-विकार, अर्श, ताव और रक्त पित्त में उपयोग होता है। अरहर का उपयोग दाल के रूप में होता है। अरहर की दाल गुजरात और पूर्व में अधिक बरती जाती है। पूर्व में अरहर का दाना बड़ा होता है। त्रिदोषहर होने के कारण मूँग से उतरकर रोगी के लिये यही पथ्य है।

यदि इसमें घी डालकर खाया जाय, तो वायु नहीं करती। अरहर की दाल में इमली, अमचूर, कोकम (गुजरात या दक्षिण में अधिक आते हैं, एक प्रकार की खटाई है) डालकर खाने से अधिक रुचिकर होती है। परन्तु इस मसाले से उसका असली स्वाद छिप जाता है।

उड़द—गुण—अति पौष्टिक, वीर्य को बढ़ानेवाले—निकालनेवाले मधुर, तृप्तिकारक, मूत्रल, मल को निकालनेवाले, स्तनों में दूध बढ़ानेवाले, मांस तथा मेद को बढ़ानेवाले, कफकारक, वातनाशक, गरम पर स्निग्ध, तथा बलकारक होते हैं।

उपयोग—श्वास, वायु तथा अर्दित मुँह का एक ओर मुड़ जाना तथा अन्य कई वात-रोगों को उड़द पथ्य है। शीत ऋतु में तथा वात-प्रकृतिवालों के लिये हितकारक है। पचने के पश्चात् उड़द खट्टा रस उत्पन्न करता है। इससे पित्त-प्रकृतिवालों को नुकसानकारक है। उड़द की दाल रुचिकर और पौष्टिक है। पंजाब-प्रान्त में इस दाल का व्यवहार बहुत अधिक होता है। इसके अतिरिक्त उड़द की दाल के लड्डू और अन्य पौष्टिक पाक, उर्दाइयाँ तथा बड़ियाँ बनती हैं।

चना—गुण—हल्का, ठंढा, रुक्ष, वायुकारक, कफ, रक्त पित्त और पुंस्त्व (पुरुषार्थ) को नाश करता है, बल को बढ़ाता है।

उपयोग—कफ तथा पित्त के रोग में चना लाभ करता है। ज्वर-रोगी के लिये उत्तम है; क्योंकि इससे गर्मी कम होती है। परन्तु वायुकारक होने से वायु करता है और कब्ज़ीयत करता है। इसलिये खूब घी डालकर देना चाहिये। खाने में चने का उपयोग कई प्रकार से होता है। सबूत चने का पानी या शाक बनाते हैं। चने को दाल के रूप में काम लाते हैं। चने का आटा—बेसन कई वस्तुओं में पड़ता है। चने में भी गेहूँ के समान वसा—चिकनाई का भाग कम होता है; अतः बेसन के पकोड़े या अन्य वस्तुओं को घी या तैल की पर्याप्त मात्रा के साथ काम में लाना चाहिये। इसी प्रकार बेसन के लड्डुओं में भी घी पर्याप्त डालना चाहिये। नहीं तो शरीर में वायु करते हैं।

मोठ—रुचिकर, ग्राही, रुक्ष, हल्के, शीत और वायुकारक होते हैं। कफ और पित्त को नष्ट करते हैं। मोठ के गुण प्रायः मूँग के समान होते हैं। कफ, पित्त, ज्वर, रक्त पित्त, दाह, कृमि रोग तथा उन्माद रोग में मोठ पथ्य है।

मटर—वायुकारक और संग्राही होते हैं। इनके गुण प्रायः चने से मिलते हैं। परन्तु पचने में यह अधिक सरल होते हैं, ज्वर या रक्त पित्त में लाभकारक हैं।

कुलथी—कफ और वायु को नाश करनेवाली है, संग्राही, उष्ण, और रक्त पित्त को उत्पन्न करती है।

उपयोग—इसका उपयोग दाल या शाक में किया जाता है। मेथी आदि शाकों में इसको डालकर पकाते हैं। शुक्र दोष, अश्मरी रोगवाले, गुल्मरोगी, कास-श्वास रोगी और पीनसवाले के लिये उपयोगी है। रक्त-स्राव, बवासीर और हिक्का उत्पन्न करती है।

लोबिया—यह एक प्रकार का दाना होता है, जो कि अंडाकार, एक ओर से चपटा और ऊपर से गोल होता है। गुजरात प्रान्त में इसका उपयोग शाक के रूप में बहुत होता है। गुण—मधुर—कषाय, भारी, दस्त लानेवाला, रूक्ष, वायुकारक, रुचिकर, दूध बढ़ानेवाला, वीर्य को बिगाड़नेवाला आदि—त। ... ...नेवाले

उपयोग—वायुकारक होने से कम खाना चाहिये। इसको ख... इसमें तेल बहुत डालते हैं। खाने में मीठा है, परन्तु पचने में अम्लता उत्पन्न करता है। दस्त साफ़ लाता है। रूक्ष होने से पेट में वायु करता है उष्ण होने से शरीर को सुखाता है, वीर्य का नाश करता है। वीर्य का नाश करने से दृष्टि के तेज का नाश करता है।

तिल—दो प्रकार के होते हैं। एक श्वेत और दूसरे काले। गुण—मधुर, तिक्त, संग्राही, पित्तकारक, गरम बलकारक, स्निग्ध हैं। दाँतों के लिये उपयोगी हैं, अग्नि और बुद्धि को बढ़ानेवाले, त्वचोपयोगी, मूत्रल, बालों के लिये हितकर, वायुनाशक और गुरु होते हैं। तिलों को कूटकर उनको घी में भूनकर फिर शक्कर मिलाकर खाने के काम आते हैं। इसको तिलकूट कहते हैं। इसके अतिरिक्त तिलों की पुलटिस व्रण के लिये अधिक उपयोगी होती है। तिलों का तेल प्रायः खाने में और बालों में लगाने के काम आता है। तिलों में काले तिल श्रेष्ठ होते हैं।

नये धान्य—जौ, गेहूँ, उड़द, तिल ये चारों चीजें नये वर्ष की ... साल की बनिस्बत अच्छी हैं। चावल पुराने बरतने चाहिये। जिन चावलों को एक वर्ष हो जाय, वे चावल उत्तम होते हैं।

शाक

नित्य खान-पान की वस्तुओं में कौन-सी भाजी—शाक उपयोगी है, और कौन-सा निरुपयोगी या हानिकारक, इस विषय को आर्य वैद्यक-शास्त्र के अन्दर वर्णन किया गया है। साधारणतः सब शाक मल को रोकनेवाले, पेट को फुलानेवाले, भारी, रूक्ष, मल को बहुत अधिक मात्रा में उत्पन्न करनेवाले, वायुकारक होते हैं। शाक चूँकि प्रायः अम्लता उत्पन्न करते हैं; अतः इनका उपयोग अति मात्रा में नहीं करना चाहिये। एकान्ततः इनका उपयोग करने से अस्थियों को भंग करता है; आँखों के तेज को कम करता है; शरीर के वर्ण, रक्त तथा कान्ति बिगड़ती है; बुद्धि को कम करता है, और बाल श्वेत हो जाते हैं। स्मृति-शक्ति को कम करते हैं। सब शाकों में प्रायः रोग रहते हैं, और रोग शरीर को नुक़सान करते हैं। अतः शाकों का उपयोग कम करना चाहिये। शाकों में प्रायः क्षार भाग अधिक होता है। उसी क्षार भाग की अधिकता के कारण ऊपर की हानियाँ कहीं [illegible] पानी में धोकर या उबालकर [illegible] क्षार भाग को यदि कम क[illegible]या जाय, तो उतनी हानियाँ नहीं रहतीं, जितनी शास्त्र में दिखाई हैं। क्षार का अधिक उपयोग शरीर को हानि करता है, और यह क्षार अधिकतः शाकों में रहता है, अतः शाकों का एकान्ततः उपयोग करना हानिकारक और रोगकारक है।

शाक या तरकारी छः रूप में प्राप्त होती है। किसी वनस्पति के पत्ते काम में आते हैं, यथा सरसों या पालक; किसी का फूल—यथा गोभी के, किसी का फल—यथा मटर के, किसी की नाल—यथा भिस; किसी की जड़ कन्द—यथा मूली, और किसी की छत—यथा खुम्भी—बरसात में जो सफेद-सी छतरी निकल आती है। इनमें पत्तों का शाक सबसे हल्का होता है, और खुम्भी सबसे भारी होता है।

चौलाई—हल्का, ठण्डा, रूक्ष, मल-मूत्र को उत्पन्न करनेवाली, रुचिकर, अग्निदीपक, विषनाशक, पित्त और कफनाशक तथा रक्त-विकार को अच्छा करता है। प्रायः सब प्रकार के दर्दों में यह शाक पथ्य रहता है। रक्त-विकार, वात-रक्त में यदि इसकी भाजी रोज खाई जाय, तो शरीर में खुजली या जलन बन्द हो जाती है। चूँकि यह शरीर में गरमी नहीं करता, इसलिये कफ और पित्त को भी नष्ट करता है। यह मल साफ लाता है,

पेशाब बढ़ाता है, स्वच्छ करता है। पेशाब में जलन तथा गरमी कम करता है। पित्त के जोर को कम करता है, किसी दवाई का विष शरीर में रह गया हो, तो तांदुण जो का रस या इसकी भाजी विष को मूत्र के साथ बाहर कर देती है। चौलाई के शाक को जितना अधिक पानी में उबाला जायगा, उतना ही अधिक वह लाभ करेगा और स्वादिष्ट बनेगा। दाह, रक्तदोष, मेद, रक्त पित्त, त्रिदोष-ज्वर, कफ, खाँसी और अतिसार के रोग में तांदुण जो अधिक उपयोगी है।

बथुवा—पाचक, रुचिकर, हल्का, दस्त को साफ लानेवाला रक्त-विकार में उपयोगी है। कृमि, प्लीहा बढ़ने में, अर्श—बवासीर में और त्रिदोष ज्वर में लाभदायक है।

गोभी—भारी होने से कुछ संग्राही है, रुचिकर है। वात-पित्त रोग में हितकर है। दूध और वीर्य को बढ़ाती है।

सुवा की भाजी—तीनों दोषों को नष्ट करनेवाली, बुद्धि के लिये हितकारी, रुचिकर और सामान्य रीति से सब रोगों में पथ्य है।

लुणी की भाजी—गरम, कषाय, मधुर, रुचिकर और पाचक है।

सरसों की भाजी—गुरु, मूत्र को बन्द करनेवाला, त्रिदोष—वात-पित्त और कफ को बिगाड़नेवाला और रुचिकर है।

मेथी की भाजी—दुर्जर, पित्तकारक, और ग्राही है। वायु और कृमि का नाश करती है।

अरणवी—अरणवी के पत्तों का शाक रक्त पित्त रोग में उत्तम है; परन्तु मल को रोककर वायु उत्पन्न करता है।

मोघरी—तीक्ष्ण तथा उष्ण है। वायु तथा कफ-प्रकृतिवालों के लिये हितकारी है।

गणजीभि—गणजीभि के पत्ते हल्के होते हैं। कोढ़, रक्त-विकार, मूत्रकृच्छ्र तथा ज्वर की अवस्था में लाभकारी है।

मूली—छोटी मूली गले के लिये अच्छी है, लघु होती है, जल्दी पच जाती है, सब दोषों को नष्ट करती है। खाने में कड़वी, तीखी होती है, रुचिकर होती है और अग्नि को बढ़ाती है। यही जब बड़ी हो जाती है, इसमें रेशे आजाते हैं; तब इसके खाने से पेट में वायु भर जाती है, तीनों

दोषों को कुपित करने लगती है। इसको यदि पका लिया जाय, तो वायु को नष्ट करती है। यदि सुखाकर रख लें, तो शोथ—सूजन को कम करती है, विष दोष को हटाती है और पचाने में हल्की है। इसका फल कफ और वायु को नष्ट करता है।

पोई—मल को निकालती है, स्निग्ध, बल्य, श्लेष्मा को करनेवाली और ठंढी होती है। इसके पत्तों के शाक से पित्त के विकार नष्ट होते हैं। पत्तों से मूत्र कृच्छ्र रोग हटता है। वृष्य—शुक्रवर्द्धक है। वात-पित्त और मद को दूर करता है।

पालक—मल और मूत्र को बाँधनेवाला, कफ को नष्ट करनेवाला और चौलाई के समान गुणकारी है।

परवल—इसके पत्ते पित्त को नष्ट करते हैं, इसका फल-वात, पित्त और कफ को नष्ट करता है। हृदय के लिये हितकारक, बलवर्द्धक, पाचक, हलका और स्निग्ध है। रक्त-विकार, कृमि और पित्त-विकार में अत्यन्त हितकर है। ज्वर के लिये यह उत्तम है। फल-वर्ग के शाकों में परवल सबसे अच्छा है।

दूधी—शीतल, पित्त को नष्ट करनेवाली, धातुवर्द्धक, बलवर्द्धक, पौष्टिक और रुचिकर है। गर्भ का पोषण करती है। दूधी का शाक हलका होने से रोगियों के लिये पथ्य है।

कुम्हड़ा (कूष्माण्ड)—पित्तनाशक, हल्का, दीपक, वस्ति-मूत्र को शोधन करता है। सब दोषों को हटाता है, पथ्य है। रक्त पित्त के लिये या क्षय, खाँसी के लिये अति उत्तम हैं। वीर्य को बढ़ाता है, पुष्टिकारक है। भ्रान्ति और श्रम को दूर करता है। पित्त, रक्त—विकार, दाह तथा वायु को मिटाता है। अधपका कोम्हड़ा कफकारक है। क्षार के साथ पचाने से अग्निदीपक, मूत्राशय को साफ़ करनेवाले और पित्त के रोग को नष्ट कर देता है।

बैगन—यह दो प्रकार का होता है, काला और श्वेत। बैगन नींद उत्पन्न करता है, रुचिकर, भारी और पौष्टिक है। श्वेत बैंगन दाहक और पाचक होता है। गोल बैगन (निम्बु के आकार का) कफ और वायु प्रकृतिवालों के लिये उत्तम है। खुजली, विसर्प, ताप, पांडु और अर्बुद के लिये हितकारी है।

घियातोरी—स्वादिष्ट तथा मधुर है। वायु तथा पित्त को मिटाती है। ज्वर-रोगी के लिये भी हितकारी है।

तुरई—वात-कोपक, शीत और मीठी होती है। कफ-कोपक, पित्त-शमक, दम, खाँसी, ज्वर में लाभदायक है।

करेला—कड़वा, गरम, रुचिकर, हलका और अग्निदीपक है। प्रायः सब प्रकृतिवाले मनुष्यों के लिये उपयोगी है। अरुचि, कृमि और ज्वर में पथ्य है।

कटौला—हलका, अग्निदीपक, रुचिकर, मधुर है। गुल्म, शूल, पित्त, कफ, खाँसी, ज्वर, प्रमेह, वायु और हृदय-रोगों में अच्छा है।

घीलोड़ा—भारी है; शीत है, बलकारक है। दूध को बढ़ाता है, मलबन्ध करता है, पित्त, रक्त-दोष, शोथ, दाह तथा खाँसी के रोगों में उत्तम है। बुद्धि को बिगाड़ता है।

ककड़ी—ठण्डी, रुक्ष, दस्त बन्द करनेवाली, मधुर, भारी, रुचिकर और पित्त को दूर करनेवाली होती है। पकी ककड़ी अग्नि तथा पित्त को बढ़ाती है।

खीरा—पित्त-नाशक होता है। पकने पर कफकारक और जीर्ण होने पर अम्लता उत्पन्न करता है।

चीभड़ा—तीनों दोषों को उत्पन्न करता है। कच्चा चीभड़ा कफ और वायु करता है। पका हुआ वायु और कफ करता है।

सरगवानी सींग—मधुर, कषाय, कफहर, पित्तहर और अत्यन्त अग्नि-दीपक है। शूल, कोठ, क्षय, श्वास तथा गुल्म की व्याधि में बहुत पथ्य है। सींगवाले सब शाक वायु-कारक होते हैं।

सूरन—अग्निदीपक, रुक्ष, कषाय, हलका, पाचक, पित्तकर, तीक्ष्ण, मलस्तम्भक और रुचिकर है। अर्श, शूल, गुल्म, कृमि, कफ, मेद, वात, अरुचि, श्वास में उत्तम है। खुजली या दादवालों के लिए उत्तम नहीं है। अर्श (बवासीर) में इसका शाक दवा की तरह प्रभाव करता है। सब प्रकार के कन्द शाकों में सूरन का शाक अच्छा है।

आलू—ठण्डा, मधुर, रुक्ष, मल तथा मूत्र रोकनेवाला, पोषणकारक, बलवर्द्धक, वीर्य और धातु को बढ़ाता है। रक्तपित्त को नष्ट करता है। वायु-

कोपक है, परन्तु घी में भूनकर खाने से वायु नहीं करता। पानी में उबाला हुआ तले हुये आलू की अपेक्षा हल्का होता है। शरीर के पोषण के लिये विशेष अच्छा है। आग में भूनकर खाने से विशेष गुण करता है।

रतालू—पौष्टिक तथा मधुर है। मल को रोकनेवाला और कफ-कारक है।

गाजर—मधुर, रुचिकर और ग्राही है। रक्त-विकार में उत्तम नहीं है, पौष्टिक है।

प्याज—बल-वर्द्धक, तीखा, भारी, रुचिकारक और वीर्य-वर्द्धक है। कफ तथा निद्रा उत्पन्न करता है। क्षय, क्षीणता, रक्तपित्त, उल्टी, कॉलरा, कृमि, अरुचि, स्वेद, शोथ तथा रक्तदोष के रोग में हितकारक है। लोग तेज गन्ध के कारण इसकी निन्दा करते हैं।

सिंघाड़ा—गुरु, पचने में भारी, वायु करनेवाला परन्तु ठण्ढा होता है।

केला—बलकारक, पित्तनाशक और पचने में भारी है।

खुम्भ—ठण्ढे, कषाय, स्वाद—मधुर, भारी, वमन, अतिसार, ज्वर एवं कफ-कारक होते हैं। इनको साँप की छतरी कहते हैं।

पकाने की युक्ति के कारण तथा और वस्तुओं के मिलने से शाकों के गुणों में अन्तर आजाता है। यदि शाक में वायु-कारक गुण हो तो उसको खूब घी में तलना चाहिये। जो शाक पचने में भारी हों, उनको प्रथम पानी में खूब उबालना चाहिये और फिर मसाला डालना चाहिये। कन्द-शाक—सूरन-आलू आदि को प्रथम पानी में उबालकर फिर घी में छौंकना चाहिये। शाक के साथ मिर्च वा मसाले अधिक नहीं खाने चाहिये। अधिक मसालों से पाचन-शक्ति खराब होती है।

शाकों में अच्छे शाक—छोटी नर्म मूली, चौलाई, बथुवा, मटर, परवल उत्तम हैं।

दुग्ध-वर्ग

दूध के सामान्य गुण—मधुर, शीत, पित्तनाशक, पोषणकारक, मल साफ करनेवाला है। जीवन देनेवाले पदार्थों में सबसे श्रेष्ठ है। वीर्य और ओज के समान गुणवाला होने से इनको विशेष रूप से बढ़ाता है।

शरीर में बल देता है। वात को नष्ट करता है, परन्तु कफ को बढ़ाता है। जवानी को स्थिर रखता है, मैथुन-शक्ति को बढ़ाता है। रसायन है, बुद्धि-वर्द्धक है। सब रोगों में पथ्य है, टूटे हुये अवयव या सन्धि को जोड़ता है। स्त्री-सेवा के अति योग से उत्पन्न क्षीणता को दूर करता है। भूखे, बालक, वृद्ध, युवक सब के लिये प्राणदायक है। वीर्य को बढ़ाने के लिये इससे उत्तम वस्तु नहीं है।

गाय का दूध—कफ को अधिक नहीं बढ़ाता, स्निग्ध है, भारी है, रसायन है। रक्त-पित्त, रक्त-स्राव को दूर करता है। इसीसे यह ओज को सब दूधों से अधिक बढ़ाता है। तत्काल प्रसूता गाय का दूध तीनों दोषों को उत्पन्न करता है। बच्चा देने के चार मास पीछे गाय का दूध उत्तम रहता है। इसके अतिरिक्त दूध का गुण भोजन के ऊपर निर्भर रहता है। जैसी चीज़ें खाने को दी जायँगी, वैसा ही दूध होगा।

भैंस का दूध—बहुत ही अधिक कफकारक, अग्नि को कम करने-वाला, नींद उत्पन्न करता है। गाय के दूध से अधिक ठण्ढा, चिकना और भारी है। स्वाद में मीठा है। पित्त या वात-रोगियों के लिये अच्छा है। कमजोर पुरुषों के लिये गाय का दूध उत्तम है।

बकरी का दूध—कषाय, मधुर, शीत, ग्राही, और लघु होता है। दीपन—अग्नि-वर्द्धक है। रक्त-पित्त, अतिसार, क्षय, कास और श्वास में उपयोगी है। क्षय-रोगियों के लिये एकान्ततः पथ्य है। यह दूध सब रोगों को दूर करता है; क्योंकि बकरियों का शरीर छोटा होता है, वे कड़वा तीखा सब प्रकार का भोजन करती हैं (छः रस खाती हैं), वे बहुत अधिक पानी नहीं पीतीं और दिनभर चलती-फिरती हैं, उनका व्यायाम होता रहता है। इसलिये यह दूध सब रोगों में उत्तम है,

भेड़ का दूध—भारी, देर में पचनेवाला, स्वादु, स्निग्ध, उष्ण, गरम, कफ और पित्त को करता है। केवल वात-रोगियों के लिये पथ्य है।

घोड़ी का दूध—गरम, बलकारक, हाथ और पाँव में वायु-रोग उत्पन्न करता है। स्वाद में थोड़ा खट्टा-मीठा होता है। पचने में हलका होता है। लवण रस के समान गुणकारी है। एक खुरवाले सब प्राणियों का दूध इसी प्रकार के गुण रखता है।

ऊँटिनी का दूध—रूक्ष, गरम, स्वाद में नमकीन, पचने में लघु होता है। शोथ—सूजन में, गुल्म, उदर-रोग में, प्लीहा आदि के बढ़ने में, बवासीर में, कृमि-रोग में और कुष्ट-रोग में उत्तम है। शोथ और उदर-रोग में अति उत्तम है।

गधी का दूध—मधुर, खारा, जरा खट्टा, गरम, बल देनेवाला, अग्नि-दीपक, बुद्धि को मन्द करनेवाला और बालकों को बलदायक है।

स्त्रियों का दूध—मधुर—मीठा, कषाय रसवाला, शीत, पचने में लघु, अग्निवर्द्धक, जीवन देनेवाला है। नस्य और आँख के रोगों के लिये पथ्य है।

हथिनी का दूध—मधुर, वृष्य, कषाय रस, भारी, स्निग्ध, स्थिरता उत्पन्न करनेवाला, शीत, आँखों के लिये हितकर और बल-वर्द्धक है।

धारोष्ण दूध—ताजा दुहा हुआ दूध—जबतक उसके अन्दर गरमी रहती है और झाग नहीं मरता, तबतक वह दूध उपयोगी रहता है। यह दूध विशेषतः शुक्रवर्द्धक और कफकारक है। इसमें थोड़ा पानी मिलाकर पीने से या कच्चा पीने से शुक्र-दोष नष्ट होता है। यह दूध पचने में थोड़ा भारी है। गाय, भैंस और बकरी के सिवा किसी का भी कच्चा दूध नहीं पीना चाहिये। दूध में किसी प्रकार का कृमि या विकार न हो, तभी कच्चा दूध पीना उत्तम है; अन्यथा उबालकर पीना चाहिये।

गरम दूध—दूध के ठण्डा होने पर उसको उबालकर काम में लाना चाहिये। गरम-गरम दूध वायु और कफ-रोगियों के लिये पथ्य है। पित्त-प्रकृतिवालों के लिये गरम करके ठण्डा किया हुआ दूध उत्तम है। जिन मनुष्यों या रोगियों को दूध पचता न हो, उनके लिये—दूध में चार गुना पानी डालकर उबालना चाहिये। और जब सारा पानी जल जाय, उस समय दूध का भाग बचे रहने पर देना चाहिये। अधिक कढ़ा हुआ दूध भारी होता है। अतः रोगी या निर्बल पाचन-शक्तिवालों के लिये अहितकर है। दूध की मात्रा पाचन-शक्ति पर निर्भर है।

प्रातःकाल का दूध—रात्रि में पशु कहीं फिरते नहीं, किसी प्रकार का परिश्रम नहीं करते और रात में सर्दी होती है, इसलिये पशुओं का प्रातःकाल का दूध भारी, वायु करनेवाला, ठण्डा होता है।

सायंकाल का दूध—दिन में सूर्य की गरमी के कारण, जंगल में फिरने आदि से, सायंकाल का दूध वात-नाशक, मल को निकालनेवाला, थकान को दूर करनेवाला, आँखों के लिये हितकर होता है।

ख़राब दूध—जो दूध ख़राब होता है, उसका रंग बदल जाता है, स्वाद बदल जाता है, उसमें खटास आजाती है, उसकी गन्ध बिगड़ जाती है, उसमें फुटकियाँ पड़ जाती हैं। यह दूध पीने में नुक़सान करता है। दूध को उबालकर पीना अच्छा है। गरम दूध दस घण्टे पीछे बिगड़ जाता है।

दूध के साथ अन्य भोजन—दूध के अन्दर जितनी मात्रा क्षार या खटास की रहती है, उससे अधिक मात्रा शरीर को हानि करती है। दूध के साथ खट्टा या क्षारीय भोजन यथा—पत्तों के शाक आदि खाने से नुक़सान होता है। दूध को यथासम्भव अकेला ही पीना चाहिये। दूध पीने का सबसे उत्तम प्रातःकाल या रात्रि को सोने का समय है। दूध के साथ यदि कुछ पदार्थ लेना हो, तो वह मीठा होना चाहिये। रोगी व्यक्ति चावलों के साथ दूध भली प्रकार ले सकता है।

नीचे कुछ पदार्थ दिये जाते हैं, जिनके साथ दूध खाया जा सकता है और जिनके साथ नहीं खाया जा सकता।

दूध के मित्र	दूध के शत्रु
१—दूध में मधुर-रस है—इसलिये शक्कर डालकर खा सकते हैं।	१—दूध के साथ सब नमक नुकसान करते हैं। सेन्धा नमक आँखों के लिये हितकर है और नमक सब आँखों को हानि करते हैं, इससे यह खा सकते हैं। उत्तम यही है कि इससे बचा जाय। दूध के साथ नमक खाने से कोढ़, प्रमेह आदि रोग होते हैं।
२—दूध में अम्ल-रस है—इसलिये आँवला इसका मित्ररूप है।	२—दूध के साथ इमली आदि कोई भी खटाई नहीं खानी चाहिये।
३—दूध में तिक्त-रस है—इसलिये सोंठ मित्ररूप है।	३—दूध के साथ मछली नहीं खानी चाहिये।
४—दूध में कटु-रस है—इसलिये आर्द्रक—आदी मित्ररूप है।	४—दूध के साथ क्षार-शाक आदि अधिक नहीं खाना चाहिये; विशेषतः मूली।
५—दूध में कषाय-रस है—इसलिये हरड़ मित्ररूप है।	५—दूध के साथ मद्य, आसव, दारू नहीं खानी चाहिये।
६—दूध में लवण-रस है—इसलिये सेन्धा लवण मित्ररूप है।	

दूध के साथ खाये हुये नमक, क्षार आदि तुरंत अपना प्रभाव नहीं दिखाते। ये धीरे-धीरे शरीर में विष को एकत्रित करते रहते हैं। कालान्तर में खुजली, दाद आदि रोगों को उत्पन्न करते हैं। अत: शास्त्र के वचन के अनुसार दूध एक ऐसा पदार्थ है, जिसके सेवन करने से सब धातुओं का पोषण होता है। इससे बल और बुद्धि बढ़ती है। खान-पान के सब पदार्थों में एक यही 'दूध' ऐसा पदार्थ है कि जिसमें पोषण के सब पदार्थ आजाते हैं। यही कारण है कि दूध के ऊपर बालक, रोगी कई साल तक अपना जीवन व्यतीत कर सकता है। कितने ही व्यक्ति अकेले दूध पर अपना जीवन व्यतीत करते हैं। दूध सात्त्विक है, इसलिये मन और बुद्धि को बढ़ाता है। कई मनुष्य कहते हैं कि हमारी प्रकृति को दूध अनुकूल नहीं पड़ता। इसलिये वे दूध से नफ़रत करते हैं। इस प्रकार के व्यक्तियों को चाहिये कि वे धीरे-धीरे इसका अभ्यास करें। यदि खाली पेट दूध न पचे, तो भोजन करने के पश्चात् पीना चाहिये, या किसी वस्तु के साथ लेना चाहिये। अभ्यास से विषैली वस्तुयें—अफ़ीम, संखिया आदि भी अनुकूल आजाते हैं। यह तो प्राकृतिक भोजन है। जरायु में उत्पन्न होनेवाले सब प्राणियों का प्रथम भोजन यही दूध होता है। पशु आदि इसीसे बड़े होते हैं। मनुष्यों ने भी यही आहार सब के लिये एक समान बनाया है। श्रीमन्त लोग दूध से बननेवाली वस्तुओं का उपयोग करते हैं। दूध की कमी के कारण ही हमारा शरीर निर्बल रहता है। श्रीमन्त लोग अपने यहाँ गाड़ी-घोड़ा रक्खें, इससे उत्तम है कि एक गाय-भैंस उनके अस्तबल में रखना चाहिये।

दूध का गुण और अवगुण उसके बनने के साधन घास आदि पर निर्भर हैं। गाँव के लोग जिन पशुओं को खली, बिनौले आदि खिलाते हैं, उनका दूध अधिक बलकारक और कफवर्द्धक होता है। और जिन पशुओं को ये पदार्थ नहीं मिलते, जो कि घास और पत्ते पर अपना गुजारा करते हैं, यथा पहाड़ में; वहाँ के दूध में उतनी जीवन-शक्ति नहीं होती। परन्तु वह अधिक सात्त्विक, निरोगी होता है। कलकत्ते आदि शहरों में जहाँ कि लोग घास को पानी में भिगोकर खिलाते हैं, उस दूध में पानी का भाग अधिक रहता है। इसी प्रकार भोजन के अनुसार दूध में अन्तर आजाता है।

घी

घी के सामान्य गुण—रसायन, बुद्धि, अग्नि, और शुक्र को बढ़ाता है। ओज को पुष्ट करता है। शरीर में मेद—चर्बी की वृद्धि करता है। स्मृति को पुष्ट करता है। कफकारक है, वात और पित्त का नाश करता है। विष, उन्माद, शोथ और क्षय तथा बुढ़ापे को हटाता है। सब स्नेह—चरबीवाले पदार्थों में उत्तम है। जिस पदार्थ के साथ देते हैं, उसीके गुण इसमें आजाते हैं—इसलिये यह योगवाही है। मधुर और शीत है। नेत्रों के लिये हितकारी है। कोष्ठबद्धता को दूर करता है। पाण्डु और जीर्ण-ज्वर के लिये तथा विष-दोष में अमृत के समान गुणकारी है। व्रणरोगी को शक्ति पहुँचाता है। त्वचा के रोगों के लिये, पित्तनाशक एवं शीत होने से अति उपयोगी है। मन्दाग्नि पुरुषों के लिये हानिकारक है।

गाय का घृत—सब प्रकार के घृतों में श्रेष्ठ है, चक्षु के लिये हितकारी, बलवर्द्धक है। विपाक में मधुर और वात, पित्त और विषनाशक है।

भैंस का घी—स्वादु, पित्त और रक्त तथा वायु का शमन करता है। ठंडा होता है।

बकरी का घृत—आँखों के लिये उत्तम, पचने में लघु, अग्नि और बलवर्द्धक है।

मक्खन—वृष्य, बलकारक, शुक्रवर्द्धक, शीत, वर्ण और बल तथा अग्नि को बढ़ाता है। मल को बाँधनेवाला है। वात, पित्त, रक्त, क्षय और अर्श, काश-खाँसी को हटाता है। रक्त-स्राव के लिये मक्खन बहुत ही उत्तम वस्तु है। भैंस का मक्खन गाय के मक्खन से भारी होता है। दाह और पित्त को कम करता है। मेद और कफ को बढ़ाता है।

पुराना घी—वात, पित्त, कफ को नष्ट करता है। प्रतिश्याय—जुकाम के लिये, शिरोरोगों के लिये तथा आँखों के लिये उत्तम है। मूर्च्छा, कुष्ठ, विषरोग, उन्माद आदि में उत्तम है।

जो घी दस साल तक एक हाँड़ी में रक्खा जाता है, उसको पुराना घी कहते हैं। इसका रंग लाख के रंग के समान लाल हो जाता है, गन्ध में तेजी—तेजी आजाती है। इसका प्रभाव शीत हो जाता है। यह घृत प्लेग की गिल्टी पर लगाने के लिये उत्तम है। इससे गरमी कम होजाती है।

दही

दही के सामान्य गुण—गरम, अग्निदीपक, भारी, पचने के पीछे अम्लता उत्पन्न करनेवाला, पित्तकारक एवं रक्त-दोष तथा मेदोवृद्धि करता है। मूत्रकृच्छ्र, जुकाम, शीतज्वर, अतिसार, अरुचि और दुर्बलता के लिये दही बहुत उपयोगी है।

दही के बनाने में भेद होने से दही में भी भेद आजाता है। यथा, दूध को गरम करके दही जमाया जाय, तो और तरह का बनता है, और यदि कच्चे दूध में दही जमावें, तो वह और प्रकार का बनता है। इसी प्रकार दूध में से सार भाग निकालकर (मलाई उतारकर) दही जमाने पर और गुण आता है। इसी प्रकार जामन की मात्रा से भी दही के स्वाद में अन्तर आजाता है। इस प्रकार से दही के मुख्य पाँच भेद बन जाते हैं। यथा—मन्द, स्वादु, स्वाद्वम्ल, अम्ल और अत्यम्ल।

१—**मन्द दही**—जब दही दूध के समान पतला और मीठा रहे, इसको मन्द दही कहते हैं। यह दही तीनों दोषों को, दाह को उत्पन्न करता है। मल और मूत्र को लाता है। विदाही भारी होता है।

२—**स्वादु दही**—जब दही भली प्रकार जमकर गाढ़ा हो जाय और स्वाद में मीठा हो और खाने में खटास न मालूम पड़े; इस प्रकार के दही को स्वादु दही कहते हैं। स्वादु दही सर्दी कफ और मेद को बढ़ाता है, वायुनाशक है, रक्त को लाभ पहुँचाता है।

३—**स्वाद्वम्ल दही**—मधुरता के साथ जब खटास मिला रहता है, तब इस प्रकार का दही बनता है।

४—**अम्ल दही**—जिस दही में से मीठापन जाता रहे, केवल खटास मालूम पड़े, इसको अम्ल दही कहते हैं। इस प्रकार का दही अग्नि को बढ़ाता है और पित्त, रक्त और कफ को बिगाड़ता है।

५—**अत्यम्ल दही**—जिस दही के खाने से दाँत खट्टे हो जायँ, शरीर रोमाञ्चित हो जाय, गले में जलन हो, इस प्रकार के दही को अत्यम्ल दही कहते हैं। यह दही अग्नि को बढ़ाता है, रक्त को बिगाड़ता है, वात और पित्त को बहुत कुपित करता है। इन सब प्रकार में स्वादु या स्वाद्वम्लतर दही उत्तम है।

उपयोग—गरम किये हुये दूध से बना हुआ दही कच्चे दूध से बने हुए दही की अपेक्षा अधिक गुणकारी है। यह दही रुचिकारक, पित्त तथा वायु को शान्त करनेवाला, धातुओं के बल को बढ़ानेवाला है। मलाई निकालकर बनाया हुआ दही दस्त को बन्द करता है। यह दही ठण्डा होता है, वायु करता है। पचने में हलका होता है, अग्नि को प्रदीप्त करता है। इसलिये पुराने संग्रहणी रोग में पथ्य है। कपड़े मे से छना दही बहुत स्निग्ध, वायु-नाशक परन्तु कफकारक होता है। पचने में भारी, बलदायक, रुचिकर, मधुर और पित्त-शामक होता है। शक्कर के साथ मिलाकर खाने से प्यास, पित्त, रक्त-विकार तथा जलन में उत्तम है। गुड़ डालकर खाने से दही वायु को मिटाता है, पुष्टि करता है और भारी है। रात्रि को दही नहीं खाना चाहिये। यदि खाना हो, तो उसमें घी, शहद, नमक डालकर खाना चाहिये, अथवा मूँग की दाल के साथ खाना चाहिये। रक्त, पित्त या कफ के विकार में दही का पोना अच्छा नहीं। ऋतुओं के अनुसार हेमन्त, शिशिर और वर्षा में दही का खाना उत्तम है। ग्रीष्म, वसन्त और शरद ऋतुओं में दही प्रतिकूल रहता है। दही के उपयोग से ज्वर, रक्त-विकार, पित्त, विसर्प, कुष्ठ, पाण्डु, भ्रम, शोथ—सूजन आदि रोग दूर होते हैं। क्षय-रोग, पीनस और ज़ुकाम में दही अच्छा नहीं है।

दही के ऊपर जो मलाई आती है उसको "सर" कहते हैं। यह सर स्वादु, पचने में भारी, पौष्टिक, वायु-अग्नि को घटानेवाला, मूत्र को लानेवाला तथा पित्त और कफ को बढ़ाता है। दही के साथ जो पानी का भाग रहता है उसको "मस्तु" कहते हैं। यह मस्तु थकान को हटानेवाला, बलकारक, पचने में लघु, खाने में रुचि करता है। सब स्रोतों को खोलनेवाला है। चित्त को प्रसन्न करता है। कफ और तृष्णा को दूर करता है। शुक्रवर्द्धक नहीं है; परन्तु पौष्टिक है। मल को तोड़ता है। दूध से भी अधिक सुपच और लघु है।

वि

दही के योग—नमक, घी, शक्कर, शहद, आँवला इनमें से कोई वस्तु घी डालकर दही खाना चाहिये। गरम दही विष के समान होता है। घी के साथ दही खाने से वायु की शान्ति होती है। आँवले के साथ खाने से कफ की शान्ति होती है, शहद के साथ खाने से पाचन होता है। शक्कर के साथ

खाने से प्यास, दाह, पित्त और रक्त को शान्त करता है। गुड़ के साथ खाने से शरीर में बल आता है, वायु को दूर करता है। नमक के साथ खाने से वायुनाशक है।

तक्र

छाछ—दही से छाछ बनती है। पानी की मात्रा से इसके गुणों में अन्तर आजाता है। यथा—

१—यदि पानी बिना डाले और मलाई निकाले बिना इसको मथनी से मथा जाय, तब इसका नाम "घोल" होता है। यह घोल वायु और पित्त को नष्ट करता है। इसमें शक्कर मिलाकर पीने से प्यास को नष्ट करता है।

२—यदि पानी के बिना मथा जाय, तब इसका नाम मथित हो जाता है। यह कफ और पित्त को नष्ट करता है। पीने में मीठा लगता है।

३—यदि दही में आधा पानी मिलाकर मथा जाय, तब इसको "उदश्वित" कहते हैं। यह कफकारक है।

४—यदि दही में चौथाई पानी डालकर मथा जाय, तब इसको "तक्र" कहते हैं। यह तक्र वात, पित्त और कफ तीनों दोषों को हटाता है। अतिसार को बन्द करता है। इसको सेवन करनेवाला मनुष्य कभी रोगी नहीं होता।

५—जिस "तक्र" में से मक्खन निकाल लिया जाय, और बिना परिमाण के पानी मिलाया जाय, उसका नाम छिछका है। यह छिछका पित्त और श्रम को तथा तृषा को दूर करता है। वायु को दूर करता है। नमक डालकर पीने से छाछ अग्नि को बढ़ाती है और कफ को कम करती है।

छाछ पीने की विधि—वात-प्रकृतिवालों के लिये या वात-रोगियों के लिये छाछ में नमक डालकर पीना अच्छा है। पित्त-प्रकृति या पित्त-रोगियों के लिये शक्कर डालकर; कफ-प्रकृति या कफ-रोगियों के लिये छाछ में सोंठ, वायु और संचल नमक डालकर पीना अच्छा है। इसके अतिरिक्त, जीरा, धनिया, तेल हींग आदि मसाला डालकर शीत-ऋतु में पीना अच्छा है। ग्रीष्म-ऋतु में दही को मथकर उसमें शक्कर और बर्फ डालकर पीने से थकावट, प्यास

और गरमी दूर हो जाती है। गुल्म और अर्श रोग में छाछ अति लाभकारक है।

छाछ पीने का निषेध—चोट लगने पर, सूजन होने पर, निर्बल शरीर में, मूर्च्छा, भ्रम, रक्त-पित्त, खुजली आदि रोगों में छाछ पीना नहीं चाहिये।

कई बार छाछ को धुआँ देकर बासी पिया जाता है। इसके लिये जलते कोयलों पर घी, हींग, लालमिर्च, डालकर जो धुआँ निकलता है, उसको एक मिट्टी की हाँडी में रख लेते हैं; ऊपर से उसमें "छाछ" डालकर हिला देते है। इसका स्वाद बहुत अच्छा होता है, यह अग्निवर्द्धक है।

प्रशंसा—आर्यवैद्यक-शास्त्र में तक्र की उपमा देवताओं के अमृत से दी है। यथा—

कैलाशे यदि तक्रमस्ति गिरिशः किं नीलकण्ठो भवेत्,
वैकुण्ठे यदि कृष्णतामनुभवेद् अद्यापि किं केशवः।
इन्द्रो दुर्भगतां क्षयं द्विजपतिर्लम्बोदरत्वं गणः,
कुष्टित्वं च कुबेरको दहनतामग्निश्च किं विन्दति॥ योग-रत्नाकर।

अर्थात् महादेव को यदि कैलाश पहाड़ पर तक्र नसीब होता, तो उनको आज कोई "नीलकण्ठ" (नीली गर्दनवाला) न कहता। तक्र विष-हर है। स्वर्ग में यदि कृष्ण महाराज को तक्र मिल जाता, तो उनका काला रंग दूर हो जाता। अर्थात् तक्र रंग को सुन्दर बनाता है। यदि इन्द्र को तक्र मिल जाता, तो उसको व्रण न होता। अर्थात् तक्र व्रण-पूरक है। चन्द्रमा को मिल जाता, तो उसका क्षय दूर हो जाता। यदि गणेश महाराज को मिल जाता, तो उनका पेट इतना न फैलता और यदि यक्षाधीश कुबेर को मिल जाता, तो उसका कुष्ट चला जाता और अग्नि को मिल जाता, तो उसकी ज्वाला शांत हो जाती।

वास्तव में तक्र ऐसा ही प्रभावशाली चीज है और भाग्यवानों ही के घरों में मिलती है। बड़े-बड़े श्रीमन्तों के घर इससे खाली रहते हैं। किसी कवि ने सत्य कहा है कि जहाँ पर दधि के विलोने का शब्द सुनाई नहीं देता, और जहाँ बच्चों का कलरव नहीं है, वह घर नहीं, जंगल है।

फल-वर्ग

अपने देश में बर्ते जानेवाले फलों में आम, जामुन, बेर, अनार, केला, आँवला, नारंगी, द्राक्षा, मीठा नीबू, खजूर, फालसा, अमरूद, सेव आदि फल मुख्य हैं। बादाम, छुहारा आदि सूखे मेवे हैं।

आम— आम का फल हितकारक, रुचिकारक होता है। कच्चा आम गरम, खट्टा, ग्राही तथा रुक्ष होता है। पित्त, वायु, कफ और रक्त-दोष को उत्पन्न करता है। कण्ठ-रोग, वातमेह, योनि-दोष, व्रण, अतिसार और प्रमेह में लाभदायक है। पक्का आम बलवर्द्धक, कान्तिकारक, तृप्ति करनेवाला, मांस और बलवर्द्धक है। कफ करनेवाला होने से इसमें सोंठ मिलाकर खाना चाहिये। पक्का आम विशेषतः शुक्रवर्द्धक है।

जामुन—मल को बाँधकर कब्ज करनेवाला, मधुर, कफनाशक, रुचि उत्पन्न करनेवाला तथा वायुनाशक है। मधुमेह के रोगियों के लिये अति उत्तम पथ्य है। इसकी गुठली का चूर्ण मूत्र में शर्करा को कम करता है।

बेर—कच्चा बेर कफ और पित्त करता है। पक्का बेर पित्त और वायु को नष्ट करता है, स्निग्ध, मधुर, मल को लानेवाला है। सूख जाने पर कफ और वायु को नष्ट करता हैं, पित्त के लिये योग्य है। पुराना बेर प्यास को शान्त करनेवाला, थकान को दूर करनेवाला, लघु और अग्निवर्द्धक है।

अनार—कषाय रस, पित्त को शान्त करनेवाला, दीपक, रुचिकर, मन को प्रसन्न करनेवाला, अतिसार-रोग में उत्तम है। अनार दो प्रकार के होते हैं—एक खट्टा और दूसरा मीठा। मीठा अनार तीनों दोषों को नाश करता है और खट्टा अनार वायु और कफ करता है।

केला—भारी, शीतल, रुचिकारक और पित्तनाशक है। बलदायक, शुक्रवर्द्धक और तृप्तिकारक है। मांसवर्द्धक है, परन्तु कफ करनेवाला है। पचने में कठिनता से पचता है। प्यास, ग्लानि, पित्त, रक्त-विकार, प्रमेह, क्षुधा और नेत्र-रोग नष्ट करता है। भस्मक रोग में केला उत्तम है।

आँवला—खट्टा और कषाय रसवाला है। गुणों में रसायन, पित्तशामक, त्रिदोषहर, सारक, बल-बुद्धि-दायक, वीर्य-सुधारक, पौष्टिक, स्मृति-वर्द्धक, शीतल और शुक्रवर्द्धक है। आँवले का मुरब्बा प्रायः खाया जाता है। जो गुण कच्चे आँवले में हैं, वे मुरब्बे में नहीं होते।

नारंगी—पचने में दुर्जर, भारी, वायुनाशक है। खाने में मधुर, रुचिकारक, शीतल, पौष्टिक, जठराग्नि को प्रदीप्त करनेवाली, हृदय के लिये हितकारक है। प्यास में, मन्दाग्नि में, क्षय में, अरुचि में इसका रस बहुत लाभदायक है। खट्टी नारंगी से मीठी नारंगी उत्तम है।

द्राक्षा—दो प्रकार की होती है—खट्टी, मीठी। सफेद पीले रंग की, दूसरी काले रंग की। इसके अतिरिक्त मुनक्का भी इसीका भेद है। इसमें बीज होता है। मुनक्के को गरम करके नमक के साथ खाने से कफ होने का भय नहीं रहता। सूखी काली दाख प्रायः सब प्रकृतिवालों के अनुकूल होती है। यह मधुर है, तृप्तिकारक है, चक्षु को हितकारी है, श्रमनाशक है, सारक अर्थात् दस्त साफ लानेवाली है। पेशाब को खुलासा लाती है, पौष्टिक है। रक्त-विकार में, दाह, शोष, मूर्च्छा, ताव, श्वास, खाँसी, वमन, शोथ, वात, रक्त आदि में लाभदायक है। दोनों किशमिशें शुक्रवर्द्धक हैं। मुनक्का किशमिश से अधिक भारी है।

नीबू—मीठे नीबू को फलों में गिना जाता है। खट्टा नीबू मसाले के रूप में काम आता है। यह खट्टा नीबू वायु और कफ नष्ट करता है। पित्त को प्रकुपित करता है। प्यास, शूल, कफ के रोगों को, वमन को बन्द करता है। इसीका दूसरा भेद बिजौरा नीबू है, जिसके ऊपर बहुत मोटा छिलका चढ़ा होता है। यह नीबू खट्टा, जल्दी पचनेवाला, अग्नि-दीपक, श्वास-कास, अरुचि को नष्ट करनेवाला, प्यास को हटाता है। मीठा नीबू स्वादिष्ट, मधुर, तृप्तिकारक, अति रुचिकारक, हलका, जन्तुनाशक है। जिसका पेट अकड़ गया हो, और मल बन्द होगया हो (बद्ध-गुदोदर रोग में) उस समय नीबू उपयोगी है। खाने-पीने की अरुचि में, पेट में वायु तथा शूल होने से रोगी के लिये नीबू लाभदायक है। ज्वर-रोग में भी नीबू लाभदायक है। खट्टे नीबू के रस का शर्बत पित्त-शामक, वमन को रोकनेवाला और अरुचि नष्ट करनेवाला है।

फालसा—कच्चा फालसा—वात को नष्ट करनेवाला, पित्तकारक और बहुत खट्टा होता है। पकने पर मीठा तथा वायु और पित्त को शान्त करता है। प्यास रोकता है, इससे ज्वर में पथ्य है।

सीताफल—मधुर, शीतल और पौष्टिक है। कफ और वायु बढ़ाता है।

अंजीर—ठण्डी और भारी है। कास-श्वास, रक्त-दोष, दाह, वायु और पित्त नष्ट करती है।

अमरूद—स्वादिष्ट, शीतल, रुचिकर, वीर्यवर्द्धक और त्रिदोषहर है। परन्तु तीक्ष्ण है, भारी है, कफकारक है, वातल अर्थात वायु कारक है। उन्माद-रोग में हितकारक है।

सेव—मधुर, रुचिकारक, हृदय के लिये हितकर, शीतल, ग्राही और पित्तहर है। अतिसार के रोग में पथ्य है, इसका मुरब्बा बनता है।

आलूबुखारा—हृदय के लिये हितकर, ठंडा, भारी, गरम तथा धातुवर्द्धक है। प्यास को मिटाता है, पित्त कम करता है, पाचन-शक्ति बढ़ाता है। आलूबुखारा बहुत खट्टा होता है, शर्करा के साथ खाने से रुचि पैदा करता है। चित्त प्रसन्न करता है।

इमली—इमली का कच्चा फल सदैव त्याग करना चाहिये। कच्चा फल रक्त-पित्त और आम रोग उत्पन्न करता है। पेट में दाह उत्पन्न करता है। अति ठंडा होने से सन्धियों को जकड़ता है और नसों को ढीला करता है। इमली का नित्य सेवन करना हानिकारक है। गरमी की ऋतु में दाल, शाक और मसाले में इसका उपयोग करना उत्तम है। भोजन में रुचि उत्पन्न करती है। मद्रास में इमली खाने का बहुत प्रचार है। नई इमली की अपेक्षा पुरानी इमली अधिक लाभदायक होती है।

नारियल—इसका फल पचने में भारी, स्निग्ध, पित्त को नाश करता है। स्वादु, शीतल, बल और मांसकारक, हृदय के अनुकूल, बृंहण और वस्ति-शोधक है।

ताल—मीठा, पकने पर भारी, पित्तनाशक है।

खजूर—पौष्टिक, स्वादिष्ट, मधुर, ग्राही, रक्त को साफ करनेवाला, हृदय के लिये हितकारक, त्रिदोषहर, श्वास, क्षय, विष, तृषा, शोथ और अम्ल-पित्त जैसे भयंकर रोगों में पथ्य और हितकारक है। पचने में भारी है। अतः छोटे-छोटे बच्चों के लिये उपयोगी नहीं है। खजूर को दूध के साथ खाने से अधिक पौष्टिक प्रभाव होता है। खजूर में लोहा होता है। व्रण-रोगी, क्षय-रोगी के लिये पथ्य है, शीतल है।

बादाम—पिस्ता, चिरौंजी, .खूबानी आदि सूखे मेवे हैं । ये वस्तु बहुत हितकारक हैं। सब प्रकार के पाक या लड्डुओं में इनका उपयोग किया जाता है। बादाम का प्रभाव मस्तिष्क पर बहुत होता है। कड़वा बादाम हानिकारक है, उसमें एक प्रकार का तेल होता है, जो बहुत हानिकारक होता है। बादाम पचने में भारी है। इसका तेल बहुत उपयोगी है, ठंडा है। नींद लाने के लिये बहुत उत्तम है।

खान-पान की अन्य चीज़ें

गन्ने का रस

गुड़—गन्ने के रस में से बननेवाले पदार्थों में गुड़, खाँड़ और शक्कर मुख्य हैं। नये और पुराने गुड़ के गुण पृथक्-पृथक् होते हैं। नया गुड़ गरम, पचने में भारी,रक्त-विकार तथा पित्त-विकार करनेवाला है। पुराना गुड़ अधिक पथ्य और हितकारी है। अग्नि-दीपक है और रसायनरूप है। पाण्डु, पित्त और कफ को नष्ट करता है। गन्ने के रस में तैयार होने पर एक साल के पश्चात् गुड़ पुराना हो जाता है। तीन साल का पुराना गुड़ सबसे अधिक अच्छा गिना जाता है। औषधि में पुराना गुड़ काम में आता है। यदि शहद न मिलता हो, तो पुराना गुड़ उसके स्थान में काम आ सकता है। तीन वर्ष के पीछे गुड़ के गुण में विकार उत्पन्न हो जाता है। तीन वर्ष का गुड़ आद्रक के साथ खाने से कफ का, हरड़ के साथ खाने से पित्त का और सोंठ के साथ खाने से वायु का नाश करता है। गुल्म, अर्श, अरुचि, क्षय, खाँसी, खाँसी को ज़ख्म, क्षीणता, पाण्डु इन रोगों में पुराना गुड़ योग्य औषधि के साथ खाया जाय, तो उत्तम लाभ करता है। नया गुड़ कफ, श्वास, खाँसी, कृमि, तथा दाह को बढ़ाता है। पित्त-प्रकृतिवालों को नया गुड़ नहीं खाना चाहिये? चूरमा,लप्सी और हलवे में विशेषत: गुड़ का उपयोग होता है। बहुत-से मजदूर किसान रोटी के साथ इसका उपयोग करते हैं। परन्तु जो गुड़ उत्तम और पुराना न हो, वह स्वास्थ्य को हानि पहुँचाता है। चूरमा, लप्सी आदि में गुड़ के साथ बड़ी मात्रा में यदि घी खाया जाय, तो वह शरीर के लिये गरम नहीं होता। जिसका शरीर निर्बल हो, कहीं पर व्रण हो, जिसको अर्श, श्वास और मूर्च्छा का रोग हो, जिसको चलने से थकान लगा हो, जिसको बहुत मेहनत पड़ी हो, जिसको विष चढ़ा हो, जिसको

मूत्र-कृच्छ्र या पथरी का रोग हो, जो जीर्ण ज्वर से पीड़ित हो, जिसको विषम ज्वर, तृषा, दाह, रक्त-पित्त, क्षय, और रक्त-विकार का रोग हो, इनको यदि युक्ति से पुराने गुड़ का उपयोग कराया जाय, तो विशेष लाभ करता है।

खाँड़—पित्त को मिटानेवाली, ठण्ढी, बल देनेवाली, नेत्र को फायदा करनेवाली और वीर्य को उत्पन्न करनेवाली है। खाँड़ कफ उत्पन्न करती है। इसलिये कफ-विकार में, रक्त-विकार से उत्पन्न शोथ में, ज्वर में, तथा कई रोगों में खाँड़ नुकसान करती है।

मिश्री—मधुर, ठण्ढी, बलवर्द्धक और मल-शुद्धिकारक है, परन्तु कफ करती है। क्षय, खाँसी, वमन तथा प्यास को दबाती है। भ्रांति, दाह, श्रम, अर्श, मोह, मूर्च्छा, मद, श्वास, उल्टी, अतिसार, रक्त-विकार, तथा पित्त के विकार में मिश्री पथ्य अर्थात् गुणकारी है। गुड़ में क्षार आदि पदार्थों का मेल होता है और उसमें मैल अधिक होता है। खाँड़ में मैल कम होता है और मिश्री में और भी कम होता है। नित्य उपयोग के लिये सबसे उत्तम मिश्री, उससे कम खाँड़ और सबसे कम गुड़ है।

खाँड़ आदि मिष्ट पदार्थों का आवश्यकता से अधिक उपयोग होने से ये शरीर को हानि पहुँचाते हैं। इसलिये स्वाद के लिये इनका अधिक उपयोग हानि करता है। विवाह आदि में जब जीमन होता है उस समय खाँड़ आवश्यकता से अधिक व्यवहार में आती है। पीछे से यही खाँड़ नुकसान करती है।

गन्ने का रस—यह दो प्रकार का है। एक तो दाँतों से चूसा जाता है और दूसरा कोल्हू से निकलता है। इनमें प्रथम प्रकार का रस शीत, शुक्र को बढ़ानेवाला, तर्पण, जीवन देनेवाला और भारी है। वात, रक्त और पित्त को नष्ट करता है; स्वादु, स्निग्ध, पुष्ट करनेवाला है। यह दाँतों से चूसा हुआ रस कफकारक परन्तु विदाह उत्पन्न नहीं करता। कोल्हू से पेरा हुआ रस विदाही होता है; क्योंकि गन्ने की गाँठों का रस भी उसमें मिल जाता है। गन्ना जड़ में सबसे अधिक मीठा होता है, मध्य भाग में मध्यम और अगले भाग में नमकीन होता है।

पका हुआ—गरम हुआ रस भारी, स्निग्ध, तीक्ष्ण और कफ-वात को नष्ट करता है। पकाने से इसके ऊपर की निकाली हुई मलाई गुरु, कफकारक, पोषक और शुक्रवर्द्धक होती है।

प्रकरण छठा

रोग-परीक्षा

रोग-परीक्षा की कई विधियाँ प्रचलित हैं। आर्य वैद्यक-शास्त्र में दो प्रकार की, छः प्रकार की और आठ प्रकार की परीक्षा-विधियाँ प्रचलित हैं। यथा—अपने आप प्रत्यक्ष देखकर तथा अनुमान से रोग की परीक्षा करना, दो प्रकारी परीक्षा है। और जब इसी विधि में "आप्तोपदेश" किसी गुरु या ग्रन्थ की सहायता से परीक्षा की जाती है, तो यह तीन प्रकार की है। और जब पाँचों ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा तथा रोगी से सहायता ली जाती है, उससे पूछकर रोग का निर्णय करते हैं, तो यह छः प्रकार की परीक्षा होती है। और जब इस छः प्रकार की परीक्षा में मल और मूत्र की परीक्षा, अथवा नाड़ी-परीक्षा मिला दी जाय, तो यह आठ प्रकार की परीक्षा हो जाती है।

नवीन चिकित्सा-शास्त्र में रोग-परीक्षा-विधि दो भागों में विभक्त है। एक—जिसकी चिकित्सक स्वयं परीक्षा करता है; दूसरी विधि—जो बातें रोगी से पूछकर जानता है। प्रथम विधि को फिर चार भागों में विभक्त किया है। यथा—निरीक्षण—अर्थात् आँखों से रोगी के शरीर का निरीक्षण करना, स्पर्शन—हाथों के द्वारा रोगी के शरीर का स्पर्श करना, शरीर के भिन्न-भिन्न भागों पर मृदु प्रहार करके उनके शब्द को सुनना और रोग को पहचानना; श्रवण—ध्वनि-यंत्र (स्टैथसकोप) के सहारे से निर्णय की खातरी करना।

रोगी से प्रश्न पूछते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि रोगी से निर्देशात्मक प्रश्न नहीं करने चाहियें। यथा—तुम्हारे पेट में दर्द है न? इस प्रकार के प्रश्नों का परिणाम यह होता है कि वात-प्रकृति के रोगी दर्द का अनुभव करने लगते हैं, अथवा रोगी समझता है कि दर्द का होना आवश्यक है। इस प्रकार से वह ठीक उत्तर नहीं दे सकता, सन्देह में पड़ जाता है।

संक्षेप से इन सब विधियों का निम्न चार भागों में समावेश कर दिया गया है। यथा—

(१) **प्रकृति-परीक्षा**—रोगी के अन्दर वायु, पित्त, कफ, रक्त आदि दोषों में से कौन प्रधान है, इनकी शरीर में इस समय क्या स्थिति है; धातुवों का क्या रूप है, इस बात की परीक्षा को प्रकृति-परीक्षा कहते हैं।

(२) **स्पर्श-परीक्षा**—इस विधि में शरीर के भिन्न-भिन्न भागों पर स्पर्श करके उनकी अवस्था, उष्णता, शीतता, कठोरता या मृदुता का अनुभव करते है। इस परीक्षा को पूर्ण बनाने के लिये "थर्मामीटर" आदि साधनों का भी उपयोग किया जाता है।

(३) **दर्शन-परीक्षा**—कई बातें रोगी के शरीर-दर्शन से जानी जा सकती हैं। आँखों में पीलापन, शरीर में पित्त-वृद्धि को बता देता है। इसी प्रकार रोगी की जीभ, उसका मल-मूत्र बहुत-से रोगों का निर्णय करा देता है।

(४) **प्रश्न-परीक्षा**—बहुत-सी बातें रोगी से पूछकर जानी जाती हैं। जैसे रोग का प्रारम्भ किस प्रकार से हुआ, दर्दों का स्वरूप, उसके पहले आक्रमण आदि बातों का रोगी से पता चलता है।

प्रकृति-परीक्षा

आर्य वैद्यक-शास्त्र मे वात, पित्त और कफ के ऊपर विशेष ध्यान दिया जाता है। नाड़ी-परीक्षा में भी इसी बात का विशेष ध्यान रक्खा जाता है। इस रोग में इस समय वात-नाड़ी है, पित्त-नाड़ी है, कफ-नाड़ी है, या मिश्रित है, ये बातें भी प्रकृति के ऊपर निर्भर रहती हैं। इसलिये प्रत्येक दोष की प्रकृति के स्वरूप को जानना चाहिये। प्रत्येक मनुष्य को चाहिये कि वह अपनी प्रकृति से परिचित रहे। मेरी प्रकृति शान्त है, गरम है, तामसिक है इत्यादि बातों को समझना आवश्यक है। जो मनुष्य अपनी प्रकृति से परिचित होता है, वह यदि खान-पान के नियमों का पालन करे, उनके गुण दोष को समझे, तो अपनी प्रकृति को स्वस्थ रख सकता है।

वात, पित्त और कफ की समानावस्था का नाम प्रकृति है, जिस प्रकार बाह्य जगत् में सत्त्व, रज और तम का नाम प्रकृति है। इनमें

किसी पदार्थ में रज बहुत होता है और किसी में तम अधिक होता है। इसी प्रकार किसी मनुष्य में वात की मात्रा अधिक होती है, किसी में पित्त की। तीनों धातु समानवाले मनुष्य बहुत कम मिलते हैं। किसी में कोई धातु, और किसी में दो धातु मिलकर प्रधानरूप से रहते हैं। जिस मनुष्य में जो दोष प्रधान रहते हैं, उसकी प्रकृति उसीके अनुसार समझी जाती है। यही कारण है कि एक वस्तु एक प्रकृतिवाले के अनुकूल आती है, परन्तु दूसरी प्रकृतिवाले के अनुकुल नहीं आती। पित्त प्रकृतिवाले को गरम वस्तुयें अनुकूल नहीं आतीं और कफवाले को ठण्डी वस्तुयें।

प्रकृति के मुख्य वर्ग चार हैं, १—वात-प्रधान प्रकृति, २—पित्त-प्रधान प्रकृति, ३—कफ-प्रधान प्रकृति और ४—रक्त-प्रधान प्रकृति। यदि इन प्रकृतियों के लक्षण परस्पर मिले हुये हों, तो मिश्र प्रकृति समझनी चाहिये। प्रकृतियों के साधारण लक्षण नीचे दिये जाते हैं।

१—वात-प्रधान प्रकृतिवाले मनुष्यों के शरीर के अवयव मोटे परन्तु अव्यवस्थित, छोटे-बड़े, बेडौल, शिर शरीर के परिमाण में बड़ा या छोटा, माथा छोटा, शरीर पतला और सूखा हुआ, शरीर का रंग फीका, रक्त की कमी, आँखों के चारोंओर काला रंग, बाल मोटे, काले परन्तु छोटे, चमड़ी तेज बिना रूक्ष परन्तु जल्दी स्पर्श का ज्ञान करनेवाली; मांस के टुकड़े कठिन परन्तु पतले; गति उतावली, चंचल परन्तु कम्पायमान; रक्त का संचार अनियमित होने से किसीका शिर गरम और हाथ-पाँव ठण्डे और किसीका शिर ठण्डा और हाथ-पाँव गरम रहते हैं। काम करने की प्रवृत्ति प्रबल, परन्तु मन चंचल और अस्थिर, काम क्रोधादि शत्रुओं को वश में करने की अशक्ति; प्रीति, अप्रीति तथा भय जल्दी उत्पन्न होता है। वायु प्रकृतिवाले मनुष्य में न्याय और अन्याय का सूक्ष्म विवेचन करने की शक्ति होती है। परन्तु वह अपने इन्साफी विचार को अमल में लाने के लिये असमर्थ रहता है। वायु-प्रधान प्रकृतिवाले मनुष्य की सम्पूर्ण जिन्दगी चंचल और अस्थिर वृत्ति की गुजरती है। इस प्रकृति का मनुष्य सब कार्यों में उतावला रहता है। इसको शारीरिक और मानसिक कष्ट प्रायः अधिक रहते हैं, उनको सहन करने में भी इसको कठिनता होती है। दूसरी प्रकृतिवालों में ज्यों-ज्यों आयु बढ़ती है, उनका मन और शरीर मन्द पड़ता जाता है, परन्तु वात-प्रधान प्रकृतिवालों में शरीर और मन आयु

के बढ़ने के साथ-साथ कठिन और मजबूत बनता जाता है। इस प्रकृतिवाले पुरुषों में अजीर्ण रोग, बद्ध-कोष्ठ, अतिसार, पेट के रोग, शिर की पीड़ा, धस्का, विसर्प, फुस्फुस की सूजन, क्षय, उन्माद आदि रोग विशेष रूप से होते हैं। इस प्रकृतिवाले मनुष्यों की आयुष्य, बल तथा धन अल्प होता है। वात-प्रधान प्रकृति के मनुष्यों की तिक्त, चरपरा, गरमागरम तथा खारे पदार्थों पर विशेष प्रीति होती है। मीठे पदार्थों पर कम प्रेम होता है।

वात-प्रकृतिवाले मनुष्य को नींद कम आती है, शीत से द्वेष करता है, चोर, कृतघ्न, ईर्षालु, गान्धर्व रुचिवाला, क्रोधी, दाँत और नखों को खानेवाला, धैर्य-रहित, इसकी मित्रता दृढ़ नहीं होती। शरीर की धमनियाँ स्पष्ट दीखती हैं, बहुत बोलनेवाला तथा बिना सम्बन्ध के बोलनेवाला होता है।

पित्त-प्रधान प्रकृतिवाले मनुष्यों के शरीर के अंग और उपांग सुन्दर और सुगठित तथा मांस ढीला होता है। शरीर का रंग प्रायः पीला, बाल थोड़े तथा जल्दी श्वेत हो जाते हैं। शरीर पर छोटी-छोटी फुन्सियां हुआ करती हैं। भूख और प्यास इनको जल्दी लगती है; मुँह, बगल और शिर पर के पसीने से बदबू आती है; बुद्धिमान परन्तु क्रोधी और चिड़चिड़ा; आँख, मूत्र और मल का रंग जरा पीला, पराक्रमी, साहसी, उत्साही तथा क्लेश सहन करनेवाला; इसका बल, आयुष्य, द्रव्य तथा ज्ञान मध्यम होता है। इस प्रकृति के मनुष्यों को अजीर्ण और पित्त-विकार होना अधिक सम्भव हैं। पित्त-प्रकृतिवालों को मीठे एवं खट्टे-मीठे रस पर विशेष प्रीति होती है। तीखे और खारे पदार्थ पर अरुचि रहती है। इस प्रकृति का मनुष्य जल्दी ही कुपित होता है और जल्दी ही प्रसन्न हो जाता है।

कफ-प्रधान प्रकृतिवाले मनुष्यों का शरीर सुन्दर, भरावदार और मजबूत, अवयव सम्पूर्ण, शरीर का वर्ण सुन्दर, चमड़ी कोमल, बाल सुन्दर और कोमल, रंग स्वच्छ, आँखें चमकता, श्वेत अथवा भूसर रंग की, दाँत मैला सफेद, स्वभाव गम्भीर, बल और निद्रा अधिक, आहार थोड़ा, विचार-शक्ति कोमल तथा बोलने की शक्ति थोड़ी, याद-शक्ति उत्तम और विवेक-शक्ति विशेष, विचार न्याय-युक्त, व्यवहार साफ, तथा इस प्रकृतिवाले मनुष्यों के मानसिक भाव शारीरिक भावों से बड़े होते हैं। कफ प्रकृति-वाले मनुष्यों की गति मन्द, परन्तु दृढ़ होती है। इस प्रकृति के मनुष्य

बलवान, धनवान और आयुष्यवान् होते हैं। कफ-प्रकृतिवालों के सामान्य कारणों से रोग होते हैं। कफ के साथ रस की वृद्धि होती है, इस कारण शरीर भारी और चर्बीवाला हो जाता है। इससे शरीर आलसी तथा अशक्त रहता है। हाथ-पाँव मोटे और सन्धियाँ भी मोटी होती हैं। चेहरा विरस और फीका होता है। वीर्य की निर्बलता, शोथ, अन्त्र-वृद्धि, हाथी-पग (श्लीपद) आदि रोग इनको प्रायः होते हैं। कफ-प्रकृतिवालों को तीखे और खारे पदार्थों पर अधिक प्रेम रहता है। इस प्रकृति का मनुष्य कृतज्ञ, मधुर पदार्थों की रुचि रखनेवाला, सहिष्णु, निर्लोभी, बलवान और एक बार दुश्मन होने पर फिर मैत्री नहीं करता।

रक्त-प्रधान प्रकृतिवाले मनुष्य—वात, पित्त और कफ-प्रकृति के सिवा जिन मनुष्यों में रक्त की मात्रा अधिक होती है, उनके लक्षण नीचे लिखे अनुसार होते हैं। शरीर की अपेक्षा माथा छोटा, मुखमण्डल चौकोर, शिर कड़ा, कइयों का पीछे से ढलवाँ छाती चौड़ी, गम्भीर और लम्बी होती है। कड़े होने से नाभि पेट के बाहर या अन्दर दिखाई नहीं देती। चरबी थोड़ी, शरीर पुष्ट, लोहू से पूर्ण और बाल सुन्दर, सूक्ष्म, कुञ्चित, त्वचा कठिन, मांस-पेशियों के टुकड़े दिखाई देते हैं। नाड़ी पूर्ण और बलवान होती है। दाँत मजबूत और पीलापन लिये होते हैं। पीने की द्रव वस्तुओं पर अधिक रुचि, पाचन-शक्ति प्रबल, मेहनत करने की शक्ति बहुत, मानसिक-वृत्ति कोमल, बुद्धि स्वाभाविक, सहनशील, संतोषी, लोकोपकारक, बोलने में कुशल, सरल भाषी और हिम्मतवान तथा किसी न किसी काम में फँसा रहना चाहता है। खाली बैठक पसन्द नहीं करता। इस प्रकृति के मनुष्य को दाह, फेफड़े के पर्दों का सूजन, नजला, दाह-ज्वर रक्त-स्राव आदि रोग विशेष होते हैं।

प्रायः दो दोष आपस में मिले रहते हैं। इसीसे प्रकृति की सूक्ष्म विवेचना करने में कठिनता होती है। इसलिये दोनों दोषों के लक्षण मिले रहते हैं। इसलिये लक्षणों का सूक्ष्म विवेचन करके प्रत्येक मनुष्य अपनी प्रकृति का निर्णय कर सकता है।

प्रकृति का निर्माण उस समय ही हो जाता है, जब इस शरीर की आधार-शिला रक्खी जाती है। रज और वीर्य के मिलने के समय जो दोष प्रबल होता है, उसीके अनुसार मनुष्य की प्रकृति बनती है। जिस प्रकार

विष-कीट विष से नहीं मरता, उसी प्रकार दोष-युक्त प्रकृतिवाला मनुष्य भी उस दोष से दुःखी नहीं होता।

रोग की परीक्षा, उसका उपाय तथा पथ्यापथ्य का निर्णय, प्रकृति का ज्ञान प्राप्त करके, करने में सरलता रहती है। इसीसे प्रत्येक मनुष्य को चाहिये कि वह अपनी प्रकृति का ज्ञान रक्खे।

रोग और प्रकृति का आपस में कुछ सम्बन्ध है या नहीं ? यह एक आवश्यक प्रश्न है। प्रायः प्रकृति में जो दोष प्रबल होता है, प्रायः रोग भी उसी दोष के कोप से होता है। यदि रोगी की प्रकृति वायु-प्रधान हो, तो उस मनुष्य को जो ज्वर आदि रोग होगा, वह वायु से सम्बन्धित होगा, इस प्रकार की सम्भावना करना उत्तम है। इसी प्रकार पित्त, कफ और रक्त-प्रकृतिवालों के लिये समझना चाहिये। रोग सदा मूलप्रकृति के दोष के साथ ही आता है, ऐसा कोई नियम नहीं है। प्रायः ऐसा भी होता है कि प्रकृति पित्त की है और रोग वायु का हो, अथवा प्रकृति वायु की हो और रोग पित्त का हो। कई बार ऐसा भी होता है कि प्रकृति के ऊपर रोग का बिलकुल आधार नहीं होता। तथापि रोगों की परीक्षा और उपचार के लिये प्रकृति का ज्ञान आवश्यक है।

स्पर्श-परीक्षा

इस परीक्षा में (अ) नाड़ी-परीक्षा (ब) त्वचा-परीक्षा (स) थरमामीटर—गरमी मापने की नली, जिसमें पारा भरा होता है और स्टैथस्कोप—ध्वनि-यंत्र की परीक्षा शामिल है।

स्पर्श-परीक्षा का सबसे सरल और उत्तम साधन अपना "हाथ" है। रोग-परीक्षा में हाथ बहुत सहायता करता है, शरीर गरम है या ठण्डा; चिकना है या रूखा—इस बात को हाथ बता सकता है। शरीर के अन्दर अमुक अवयव नर्म है या कठिन, अथवा अन्दर के भाग में कहीं गाँठ है या शोथ—इसकी परीक्षा भी हाथ करता है। नाड़ी की परीक्षा करनेवाला भी हाथ है। नाड़ी के ज्ञान से शरीर की गरमी का भी पता चल सकता है। अनुभवी वैद्य और हकीम अपने अनुभव से नाड़ी-परीक्षा करके गरमी का ठीक-ठीक माप बता सकते हैं। जितना काम थर्मामीटर करता है, उतना ही काम चालाक हाथ और अनुभवी अँगुलियाँ कर देती हैं। शरीर की गरमी

मापने के लिये थर्मामीटर एक उत्तम साधन है। इसकी सहायता से कोई भी मनुष्य अपनी गरमी सुगमता से माप सकता है। हृदय में रक्त की गति तथा श्वासोच्छ्वास की क्रिया जानने के लिये स्टैथस्कोप नामक ध्वनि-यंत्र का आविष्कार किया गया है। यह ध्वनि-यंत्र हाथ और कान को मिलाकर परीक्षा को पूर्ण कर देता है।

(अ) **नाड़ी-परीक्षा**—हृदय से रक्त बाहर धमनियों मे फेका जाता है। इससे धमनियों में एक विशेष स्पन्दन होता है। यह स्पन्दन धमनियों ही में रहता है, शिराओं में नहीं। यही स्पन्दन बड़ी धमनियों में से होकर छोटी धमनियों में पहुँचता है। वही स्पन्दन अंगुष्ठ के पासवाली धमनी में प्रतीत होता है। इसीको आर्यवैद्यक-शास्त्र की परिभाषा में "नाड़ी-ज्ञान" कहते हैं। इस नाड़ी-ज्ञान से कई रोगों की परीक्षा हो सकती है। किसी भी धमनी (शुद्ध रक्त-वाहिनी) के ऊपर अँगुली रखने से रोग की परीक्षा हो सकती है। परन्तु कहीं-कहीं शरीर में धमनी मांस और चर्बी में छिपी रहती है। अतः उनका स्पन्दन ठीक अनुभव नहीं होता। जहाँ पर धमनी त्वचा के समीप और पृथक् हो, वहाँ पर स्पन्दन अच्छी प्रकार मालूम हो सकता है। यह स्थान अंगुष्ठ की जड़ मे उभार के पीछे, कलाई के समीप में उत्तम है। इसीसे प्रायः यहीं पर नाड़ी-ज्ञान किया जाता है।

नाड़ी-परीक्षा के लिये चिकित्सक और रोगी दोनों को शान्त और अनुद्विग्न मन से बैठना चाहिये। चिकित्सक अपने बायें हाथ से रोगी की दक्षिण कोहनी को सहारा देकर कोहनी को थोड़ा संकुचित कर दे। फिर कलाई पर अंगुष्ठ की जड़ से दो अँगुली पीछे तर्जनी, मध्यमा और अनामिका इन तीन अँगुलियों को बहिः प्रकोष्ठीया धमनी पर रक्खे। इस प्रकार तीन बार छोड़-छोड़कर परीक्षा करनी चाहिये। यद्यपि नियम यह है कि पुरुषों के दक्षिण हाथ में और स्त्रियों के बायें हाथ में परीक्षा की जाय; तथापि भ्रम न हो इसलिये दोनों के दोनों हाथों मे परीक्षा करनी चाहिये। नाड़ी-परीक्षा का समय सबसे उत्तम प्रातःकाल का है। इसलिये तत्काल स्नान करके, रति-क्रिया के पश्चात्, प्यास, व्यायाम आदि वेगों की अवस्था में नाड़ी नहीं देखनी चाहिये। जिस प्रकार वीणा से नाना प्रकार के शब्द

निकलते हैं; उसी प्रकार नाड़ी भी भिन्न-भिन्न प्रकार की अवस्थाओं का परिचय देती है।

सबसे प्रथम नाड़ी का वेग निश्चित करना चाहिये। नाड़ी-परीक्षा में कुशल वैद्य, अनुभवी हकीम नाड़ी के स्पर्श-मात्र से नाड़ी का वेग और उसकी गति पहचान लेते हैं। नाड़ी का स्पंदन घड़ी की सहायता से भली प्रकार गिना जा सकता है। एक हाथ में घड़ी रखकर दूसरे हाथ से नाड़ी के स्पन्दन गिनने चाहियें। इस प्रकार गिनने से जो संख्या आती है, वह संख्या हृदय के स्पन्दन की होती है, जो धमनी द्वारा नाड़ी तक पहुँची है। यदि यह गिनती ११० आये, तो इसका अर्थ यह है कि स्पन्दन एक मिनिट में ११० बार हो रहा है। कई बार एक मिनिट में पूरी संख्या न गिनकर आधे मिनिट तक गिनते हैं, फिर उसको दुगना कर लेते हैं। इस विधि से भूल प्रायः कम होती है। स्वस्थ मनुष्य में नाड़ी का स्पन्दन निम्न प्रकार से होता है—

आयु	एक मिनिट का स्पन्दन
गर्भावस्था में बालक की	१४० से १५०
सद्यः नवजात बालक की	१३० से १४०
पहले बरस में	११५ से १३०
द्वितीय बरस में	१०० से ११५
तृतीय बरस में	९५ से १०५
४ से ७ बरस में	९० से १००
७ से १४ बरस में	८० से ९०
१४ से २१ बरस में	७५ से ८५
२१ से ५० बरस में	७० से ७५
बुढ़ापे में	७५ से ८०

नाड़ी के सम्बन्ध में आवश्यक सूचनायें—विद्वान चिकित्सकों ने परीक्षा करके ऊपर के आँकड़े निश्चित किये हैं; परन्तु भिन्न-भिन्न जाति और स्थिति के कारण इन में अन्तर आजाता है। (१)—ऊपर के आँकड़ों में एक स्वस्थ युवा व्यक्ति की नाड़ी-गति ७० से ७५ बताई है, परन्तु इसी उमर की स्वस्थ, निरोगी स्त्री की नाड़ी-गति पुरुष की गति से तेज होती है, यहाँ तक कि प्रायः इसमें दस स्पन्दनों का अन्तर रहता है। (२) मनुष्य

खड़ा हो, तो जो स्पन्दन उस समय होते हैं, बैठने पर वे घट जाते हैं और लेटने पर और भी कम हो जाते हैं। ३—कसरत करने से, दौड़ने या चलने से नाड़ी का वेग बढ़ जाता है। इसलिये नाड़ी-परीक्षा में इन बातों का ध्यान रखना चाहिये। ४—नाड़ी की परीक्षा दोनों हाथों में करनी चाहिये। कई बार नाड़ी अपने असली स्थान पर न मिलकर अँगूठे की जड़ के पीछे की ओर मिलती है। इससे यदि शरीर में रक्त-संचार हो

तो दूसरे हाथ में मिल जायगी। ५—कई बार कलाई या

चूड़ी या तंग पहुँचियाँ पहनने से, अथवा बाहु पर पट्टी

के कारण, अथवा शिर के नीचे हाथ रखकर

ठीक-ठीक मालूम नहीं पड़ता, इसलिये इन अवस

देखना चाहिये। ६—कमजोर आदमी डर

घबरा जाता है, इससे नाड़ी का वेग बढ़

शान्ति

चाहिये। ७—श्रम करके आ मनुष्य को शान्ति से

उसे लेटाकर या बैठाकर नाड़ी देखनी चाहिये। खड़े हुये मनुष्य

नहीं देखनी चाहिये। ८—बहुत रक्तवाले मनुष्य की नाड़ी जोर से और जल्दी चलती है। ९—प्रातःकाल की अपेक्षा नाड़ी सायंकाल में मन्द और कम चलती है। १० —भूख में जीमने के पीछे नाड़ी का जोर बढ़ जाता है, इसी प्रकार मादक वस्तुओं के पीछे यथा - चाय, शराब, कॉफी, तम्बाकू पीने के पीछे भी नाड़ी की गति बढ़ जाती है। इस प्रकार से जब स्वस्थ मनुष्य की नाड़ी में अन्तर आजाता है, फिर रोगी मनुष्य की नाड़ी में कितने प्रकार का अन्तर आता होगा, इस बात की कल्पना करना असम्भव नहीं। इसलिये नाड़ी-परीक्षा की विधि में इन सब बातों का ध्यान रखना चाहिये।

आर्य वैद्यक-शास्त्र के अनुसार नाड़ी-परीक्षा—अंगुष्ठमूला धमनी पर यथाक्रम से तर्जनी, मध्यमा और अनामिका अँगुलियाँ चिकित्सक को रखनी चाहिये। इन अंगुलियों के नीचे क्रमशः वात, पित्त और कफ ये तीनों दोष स्पष्ट होते हैं। तर्जनी के नीचे यदि स्पन्दन प्रबल और जोरदार हो, तो इसका अर्थ यह है कि शरीर में वायु की प्रधानता है। इसी प्रकार मध्यमा के नीचे का स्पन्दन पित्त को और अनामिका के नीचे का स्पन्दन कफ को बताता है। आयुर्वेद के ऋषि-प्रणीत ग्रन्थों में इस नाड़ी-

विषय के ऊपर कुछ लिखा हुआ नहीं मिलता। इनके पीछे बने ग्रन्थों में इस विषय की चर्चा मिलती है। उन्हींके आधार पर यहाँ लिखा जाता है।

१ वायु की नाड़ी—सर्प और जोंक की भाँति टेढ़ी होकर चलती है। इसमें तरंग रहती है।

२ पित्त की नाड़ी—कौवे, मेंढक की भाँति कूद-कूदकर चलती है।

३ कफ की नाड़ी—हंस, मोर, कबूतर की तरह गम्भीर, स्थूल, चलती है।

की नाड़ी—कभी सर्प के समान और कभी मेंढक के और मध्यमा अँगुली के नीचे विशेषत: प्रकट

कभी सर्प के समान और कभी हंस की नी और अनामिका अँगुली के नीचे विशेषत:

-कफ की नाड़ी—कभी क. मेंढक के समान और कभ .. समान गति करती हुई मध्यमा और अनामिका के नीचे प्रकट होती है।

७ सन्निपात की नाड़ी—कठफोड़ के समान या तीतर की भाँति जो नाड़ी तीन-चार लगातार आघात देकर रुक जाय और फिर चले और फिर अटके; या दो-तीन बार कुदककर पीछे बन्द हो जाय, इस प्रकार की नाड़ी को सन्निपात की नाड़ी या त्रिदोष की नाड़ी कहते हैं।

८ मृत्यु-नाड़ी—जिस समय नाड़ी का स्पर्श शरीर के और अंगों के स्पर्श के विरुद्ध हो, अर्थात नाड़ी-स्पर्श गरम हो और शरीर-स्पर्श ठण्डा उस समय यह नाड़ी मृत्यु-सूचक है। इसी प्रकार यदि नाड़ी अपना स्थान छोड़ दे, अथवा केवल तर्जनी के नीचे चलती प्रतीत हो, तो यह भी नाड़ी घातक है। यदि नाड़ी एक पतले धागे के समान क्षीण, चञ्चल हो, अथवा तर्जनी के नीचे नाड़ी में पित्त-गति (मेंढक की गति) अनुभव हो या कफ की, तो ये सब नाड़ियाँ मृत्यु के लिये होती हैं।

विशेष विगत—१ हल्की पड़कर फिर सरसर चलने लगे, तो समझना चाहिये कि नाड़ी दो दोषवाली है। जो नाड़ी अपना स्थान छोड़ दे, या रह-रहकर चले, जो नाड़ी बहुत क्षीण हो, या ठण्डी हो, तो ये भी

१० आम्लवक्त्रता—मुँह में खटास रहे।
११ स्वेद-स्राव—बहुत पसीना आये।
१२ अंगपाकता—शरीर पक जाय।
१३ क्लम—शरीर में ग्लानि रहे।
१४ हरितवर्णत्व—शरीर का रंग नीला हो जाय।
१५ पीतकायता—शरीर का रंग पीला हो जाय।
१६ अतृप्ति—जीमने के पीछे भी तृप्ति न हो।
१७ रक्त-स्राव—शरीर के किसी भाग में रक्त-स्राव हो।
१८ अंगदारण—त्वचा फट जाय।
१९ लोह गन्धास्यता—मुँह से रक्त-जैसी बदबू आये।
२० दौर्गन्ध्य—मुँह तथा शरीर से दुर्गन्धि आये।
२१ पीतमूत्रत्व—पेशाब का पीला आना।
२२ अरति—भोजन या अन्य वस्तुओं में अप्रीति।
२३ पीत विट्कता—पीला मल आना।
२४ पीतावलोकन—पीला दिखाई देना।
२५ पीतनेत्रता—आँखों का पीला होना।
२६ पीतदन्तता—दाँतों का पीला होना।
२७ शीतेच्छा—शीत पदार्थों की इच्छा।
२८ पीतनखता—नख पीले हो जायँ।
२९ तेजद्वेष—प्रकाश या तेज का सहन न हो।
३० अल्पनिद्रता—नींद कम आये।
३१ कोप—गुस्सा अधिक आये।
३२ गात्रसाद—गातों में वेदना हो।
३३ भिन्न विट्कत्व—अतिसार (मल टूटकर आये।)
३४ अन्धता—आँखें अन्धी हो जायँ।
३५ उष्णोच्छ्वासत्व- गरम साँस का आना।
३६ उष्णमूत्रत्व—पेशाब का गरम आना।
३७ उष्णमलत्व—मल का गरम आना।
३८ तमोदर्शन—आँखों के आगे अन्धेरा रहना।
३९ पित्तमण्डलदर्शन—पीले चक्कर दिखाई देना।

४० निःसरत्व—वमन और मल में पित्त अधिक आये।

शरीर में जब पित्त का प्रकोप होता है, तो ऊपर लिखे चालीस रोग अथवा इनमें कोई एक अधिक या कम लक्षण उत्पन्न होता है। इनमें कुछ रोग देखने से वायु के विकार प्रतीत होते हैं। उदाहरण के लिये अल्पनिद्रता, मति-भ्रम, क्लम, अरति, गात्रसाद, तमोदर्शन आदि। इनकी चिकित्सा यदि केवल वायु-दोष के अनुसार की जाय, तो लाभ नहीं होता। इसी प्रकार कई रोग देखने में पित्त या कफ के होते हैं; परन्तु मुख्यतः वे रोग वायु-प्रकोप से होते हैं।

यह स्मरण रखना चाहिये कि कोई भी दोष अकेला रोग उत्पन्न नहीं कर सकता। कोई एक दोष प्रबल रहता है और दूसरे दोष उसके साथ अनुबन्ध रूप में लगे होते हैं। क्योंकि कोई भी शिरा या धमनी एक दोष का वहन नहीं करती। सब शिरायें सब दोषों का वहन करती हैं। इन दोषों में जो दोष प्रबल होता है, उससे रोग उत्पन्न होता है। शेष दोष उसके सहायक हो जाते हैं।

शरीरस्थ पित्त, रक्त और अग्नि इन तीनों के गुण और धर्म समान हैं। अतः कहीं-कहीं इनको पर्य्यायवाची भी रक्खा गया है।

कफ-प्रकोप के कारण

भारी, मधुर, अति चिकने (घृत तैल आदि) पदार्थों के सेवन से, दूध से, रस-गुड़ आदि से, बहुत तरल पदार्थों के अति सेवन से, दही से, दिन में सोने से, मालपूआ आदि पौष्टिक पदार्थों से, तथा हेमन्त-ऋतु में, दिन के प्रारम्भ में, भोजन के प्रारम्भ में एवं बसन्त-ऋतु में श्लेष्मा का प्रकोप होता है। इसी प्रकार नये अन्न के सेवन से कफ कुपित होता है।

जिस समय शरीर के अन्दर कफ की अधिकता होती है, उस समय नीचे लिखे हुए बीस रोग उत्पन्न होते हैं।

कफ-जन्य रोग (२०)

१ तन्द्रा—आँखों के सामने अँधेरा आना, नींद की अभिरुचि, आलस्य।

भी देता हो, तो उसको पीना अच्छा नहीं; क्योंकि कभी धोखा हो जायगा। इसलिये यदि कोई तुक्का बैठ गया, तो रोग अच्छा होगया; नहीं तो रोगी की मुश्किल। और यदि शास्त्री (ज्ञाता) वैद्य विष भी दे, तो उसका पीना अच्छा है, वह उसके परिणाम को जानता है और उसका प्रतीकार भी कर सकता है। इसलिये बुद्धिमान का कर्त्तव्य है कि वह योग्य चिकित्सक की सम्मति से कार्य करे; क्योंकि दवाइयाँ जहाँ रोगों को अच्छा कर सकती हैं, वहाँ नाना प्रकार के रोग भी उत्पन्न कर सकती हैं।

एक रोग दूसरे रोग का कारण

कई रोग जिस प्रकार मिथ्या आहार-विहार से उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार कई रोगों से भी वही रोग उत्पन्न होते हैं। जिस प्रकार मिथ्या आहार-विहार से ज्वर होता है, उसी प्रकार शरीर पर चोट लगने से भी ज्वर हो जाता है। कई बार ऐसा होता है कि एक रोग दूसरे को उत्पन्न करके स्वयं शान्त हो जाता है और कई बार वह रोग शान्त नहीं होता और साथ में दूसरा रोग भी खड़ा रहता है। उदाहरण के लिये अतिसार संग्रहणी को उत्पन्न कर देता है, कास क्षय को उत्पन्न कर देता है। मिथ्या आहार से मन्दाग्नि होती है और (१) मन्दाग्नि से अजीर्ण, (२) अजीर्ण से अतिसार, (३) अतिसार से मरोड़, (४) मरोड़ से संग्रहणी, (५) संग्रहणी से अर्श और गुदभ्रंश रोग होते हैं। ये रोग स्वतंत्र रीति से भी उत्पन्न होते हैं और दूसरे रोग के कारण से भी।

२—**सर्दी**—"सर्दी" यह देखने में छोटा-सा रोग है, दो-तीन दिन में अच्छा हो जाता है। परन्तु कई बार यह रोग भयङ्कर रूप धारण कर लेता है। सर्दी में खाने-पीने से दोष बढ़ते हैं। (१) खाँसी होती है, (२) कफ होता है, (३) फेफड़ों में दर्द होता है, (४) क्षय-रोग लागू पड़ जाता है, (५) पीनस रोग होता है।

३—**अजीर्ण**—देखने में यह भी एक सामान्य-सा रोग है। प्रायः अजीर्ण सरल उपायों से अपने आप ही मिट जाता है। जबतक शरीर में शक्ति रहती है, तबतक किसी विशेष प्रकार की हरकत नहीं आती; परन्तु

निर्बल मनुष्यों में यह साधारण रोग भयङ्कर रूप धारण कर लेता है। विषूचिका (कॉलरा) तथा आतशक जैसे भयङ्कर रोग अजीर्ण ही से उत्पन्न होते हैं। अजीर्ण रोग कुछ समय पश्चात् स्थिर रोग हो जाता है। अजीर्ण को अँग्रेज़ी में "डिस्पेप्शिया" कहते हैं।

४—**ताव-ज्वर**—ज्वर से प्लीहोदर, यकृत-रोग, शोथ और जीर्ण-ज्वर जैसे असाध्य रोग उत्पन्न होते हैं।

५—**कृमि**—कृमि रोग को अलग गिना जाता है। परन्तु इसी कृमि-रोग से आक्षेप, शूल, हृदय-रोग, हिस्टीरिया और मस्तिष्क के रोग उत्पन्न होते हैं।

६—**धातु-बिगाड़**—सप्त धातुओं में से किसी एक में विकार आने से रोग होता है, यदि उसका प्रतीकार न किया जाय, तो वह दूसरे धातुओं को भी बिगाड़ देता है। जिस प्रकार "रस" के विकार से ज्वर आता है, यदि रस की चिकित्सा न की जाय, तब रक्त-मांस आदि अन्य धातुओं को भी बिगाड़ देता है और अन्त में क्षय-जैसे भयङ्कर रोग को उत्पन्न कर देता है।

७—**खाँसी**—"खाँसी" की यदि उपेक्षा की जाय, तो क्षय-जैसे भयङ्कर रोग को उत्पन्न करती है। लोगों में प्रचलित भी है कि "लड़ाई की जड़ हाँसी और रोगों की जड़ खाँसी"। इसका प्रतीकार शीघ्र करना चाहिये।

८—**मदात्यय**—अधिक मद्य-पान से जो रोग उत्पन्न होता है, उसको "मदात्यय" कहते हैं। मदात्यय से (१) अजीर्ण, (२) दाह (३) उन्माद, (४) भ्रम और (५) यकृत के रोग उत्पन्न होते हैं।

९—**उपदंश**—(दुष्ट संसर्ग से उत्पन्न गरमी के रोग) इसके कारण (१) विस्फोट, (२) ग्रन्थी, (३) वातरक्त, (४) विसर्प, (५) भगन्दर, (६) नाड़ी-व्रण, (७) अस्थि-विकार (८) वद आदि भयङ्कर रोग उत्पन्न होते हैं।

१०—**प्रमेह**—मूत्र-विकार से (१) मधु-मेह (२) मूत्र कृच्छ्र, (३) मूत्राघात, (४) प्रमेह-पिट्टिका आदि भयङ्कर रोग उत्पन्न होते हैं।

प्रकरण पाँचवाँ

त्रिदोष-जन्य रोग

आर्य वैद्यक-शास्त्र के अनुसार सब रोगों के कारण तीन दोष—वात, पित्त और कफ हैं। जबतक ये तीनों दोष समानावस्था में या अपनी स्वाभाविक स्थित में रहते हैं, तबतक शरीर स्वस्थ रहता है। परन्तु यदि इनमें से एक या दो अथवा तीनों दोषों में थोड़ी-सी भी विषमता आजाय, तो शरीर रुग्ण हो जाता है। सब रोग इन्हींके कारण होते हैं। जिस प्रकार उड़ता हुआ पक्षी अपनी छाया को किसी प्रकार छोड़ नहीं सकता, उसी प्रकार ये रोग भी इन तीनों दोषों को छोड़कर नहीं हो सकते। इन तीनों दोषों में विकार आने का कारण कई बार शरीर के अन्दर होता है, और कई बार शरीर के बाहर। उदाहरण के लिये ज्वर—शरीर के आन्तरिक अजीर्ण आदि कारणों से होता है, परन्तु चोट आदि के कारण भी ज्वर हो जाता है। इस ज्वर का सम्बन्ध सब अवस्थाओं में वात, पित्त और कफ से होता है।

वात-प्रकोप के कारण

वायु—मूत्र तथा मल के वेग को रोकने से, कषाय, कटु, तिक्त पदार्थों के अति सेवन से, अति ठण्डे पदार्थों के खाने से, रात्रि में जागने से, अति स्त्री-सेवन से, अति परिश्रम करने से, अति खाने से, अति चलने से, अति बोलने से, भय से, रूखे पदार्थों के खाने से, उपवास करने से, बहुत भूलने से, या अधिक व्यायाम से, वाहन (घोड़े, बैल आदि की सवारी) के ऊपर चलने से, तथा वर्षा-ऋतु में अथवा बादलों के आने के कारण से वायु प्रकुपित होती है। इसी प्रकार नहाने के पीछे, पानी पीने के पीछे, दिवस के पिछले भाग में भोजन के पचने के पीछे, बहुत वायु-सेवन से शरीर में वायु का कोप बढ़ता है।

वात-जन्य रोग (८०)

आर्य वैद्यक शास्त्र के बहुत-से वातिक रोगों का समावेश एलोपैथिक के नर्वस सिस्टम के रोगों में हो जाता है। आर्य। वैद्यक-शास्त्र के

अनुसार शरीर में जब वायु कुपित होती है, तब नीचे लिखे अनुसार ८० प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं।

१ आक्षेप वायु—जब वायु शरीर की नसों में भरकर शरीर को इधर-उधर फेंकती है।

२ हनुस्तम्भ—वायु से जब जबड़े भिंच जायँ, जकड़ जायँ, जैसा कुचला विष में होता है।

३ ऊरुस्तम्भ—वायु जब जंघाओं को रोककर चलने में गति रोकती है।

४ शिरोग्रह—शिर की नसों में वायु भरकर शिर को जकड़ देती है और वेदना करती है।

५ बाह्यायाम—पीठ अर्थात् पृष्ठवंश की नसों में वायु भरकर शरीर को झुका देती है।

६ अभ्यन्तरायाम—छाती की तरफ़ से शरीर जब धनुष की भाँति झुक जाता है।

७ पार्श्व-शूल—पसलियों में वायु भरकर जब दर्द उत्पन्न करती है।

८ कटि-ग्रह—वायु कमर में रुककर जब कमर को जड़ की भाँति बना देती है।

९ दण्डायतानक—दण्ड अर्थात् लकड़ी की भाँति शरीर को कड़ा बना देवे।

१० खल्ली—पाँव, जंघा, हाथ में वायु भरकर उनको मरोड़ दे।

११ जिह्वास्तम्भक—वायु जीभ की नसों को पकड़कर बोलने की गति को रोक देती है।

१२ आर्दित—मुँह का आधा भाग एक पार्श्व में मुड़ जाता है, मुँह से सीटी नहीं बज सकती।

१३ पक्षाघात—वायु शरीर के आधे भाग में रुककर रसों का शोषण करके गति को बन्द करती है। इसे "अर्धांग" कहते हैं।

१४ क्रोष्टुशीर्ष—वायु रक्त का आश्रय करके घुटने में कठिन शोथ उत्पन्न करे।

१५ मन्यास्तम्भ—वायु कफ के साथ मिलकर गरदन की पिछली नसों को पकड़कर अटका देती है।

१६ पंगु—कमर तथा जंघा में वायु भरकर दोनों पाँवों को मोड़ देती है।

१७ कलाप-खञ्ज—चलते समय शरीर में कम्पन हो और पाँव इधर-उधर टेढ़ा-मेढ़ा पड़े।

१८ तूनी—पक्वाशय में उत्पन्न हुई शूल गुदा और उपस्थ में जाती है (मूत्राशय शूल)।

१९ प्रतितूनी—तूनी की वेदना नीचे उतरकर पीछे नाभि की ओर जाय (गुदा की शूल)।

२० खञ्ज—पंगु के समान लक्षण होते हैं; परन्तु यह रोग एक टाँग में होता है और पंगु दोनों में।

२१ पादहर्ष—पाँव में खाली झनझनाहट हो, पाँव में शून्यता आजाय।

२२ गृध्रसी—कमर से एड़ी तक की गृध्रसी नस को पकड़कर जब वायु वेदना करती है।

२३ विश्वाची—हाथ-बाहु की नसों को पकड़कर जब वायु काम करने में अशक्त बना देती है।

२४ अपबाहुक—हाथ की नाड़ी के संकुचित होने से मारा हाथ खिंच जाय, दूसरे बाहु से लम्बाई में छोटा हो जाता है।

२५ अपतानक—वायु हृदय में जाकर दृष्टि को स्तब्ध करती है, ज्ञान और भाव का नाश करती है और कण्ठ से विलक्षण प्रकार की आवाज निकलती है। बार-बार हिस्टीरिया जैसा चक्कर आये। और जब वायु हृदय से दूर हो, उस समय होश आये।

२६ व्रण-याम—व्रण या चोट के आघात से उत्पन्न वायु शरीर में या व्रण में दर्द उत्पन्न करे।

२७ अपतन्त्रक—पाँव और शिर में पीड़ा हो, मोह हो, गिर जाय अथवा शरीर धनुष की भाँति टेढ़ा हो जाय, दृष्टि स्तब्ध हो जाय और आवाज कबूतर पक्षी के समान हो।

२८ भेद—वायु से चमड़ी फटे।

२९ शोष—वायु शरीर के या एक अंग के रक्त आदि धातुओं का शोषण कर दे।

३० वात-कण्टक—चलते हुए घुटने में दर्द हो।

३१ मिणमिणत्व—मुँह से निकलते हुये शब्दों में नासा का स्वर मिला हुआ हो।

३२ कल्लता—रुक-रुककर शब्द बोले जायँ (तुतलाकर बोलना)।

३३ अष्ठीलिका—नाभि के नीचे पथरी-जैसी गाँठ हो जाय (वातष्ठीला)।

३४ प्रत्यष्ठीला—जब यही गाँठ पेट में आड़े रूप से हो।

३५ वामनत्व—वायु गर्भाशय में भरकर गर्भ को विकृत कर दे, उस समय बालक टेढ़ा होता है।

३६ कुब्जत्व—स्कन्ध और पीठ में वायु भरकर मनुष्य को कुबड़ा बना दे।

३७ अंगपीड़ा—सम्पूर्ण शरीर में पीड़ा हो।

३८ अंग-शूल—सम्पूर्ण शरीर में शूल एकत्रित होकर दर्द उत्पन्न करे।

३९ संकोच—वायु नसों को संकुचित करके शरीर को अकड़ा देवे।

४० स्तम्भ—वायु से शरीर जकड़ा जाय।

४१ रौक्ष्य—वायु के कोप से चेहरा निस्तेज हो जाय।

४२ अंग-भंग—वायु से शरीर टूटकर टुकड़े-टुकड़े हो रहा हो।

४३ अंग-विभ्रंश—शरीर की एक सन्धि खिसक जाय।

४४ मूकत्व—बोलने की नाड़ी में वायु भरकर वाणी बन्द हो जाय (गूँगापन)।

४५ विट्ग्रह—आँतो में वायु कुपित होकर मल और मूत्र को रोक देता है।

४६ बद्ध-विट्कता—वायु से मल बहुत कठिन हो जाता है, इसको बद्ध-विट्कता कहते हैं।

४७ अतिजम्भान—वायु से जम्भाई बहुत आती है।

४८ प्रत्युद्गार—वायु के कोप से बहुत अधिक उबकाई आती हो।

४९ अंत्रकूजन—वायु के कोप से आँतों में वायु कुर-कुर करती फिरती है।

५० वात-प्रवृत्ति—वायु के कोप से अधोवायु बहुत निकलती हो।

५१ स्फुरण—वायु से किसी अंग में स्फुरण (फड़फड़ाहट) हुआ करे, जैसे हाथ में या आँख में होता है।

५२ शिरापूर्ण—वायु से शिरायें भर जायँ, इसको शिरापूर्ण कहते हैं।

५३ कम्प वायु—वायु से सब अंगों में और शिर में कँपकँपी होती है।

५४ कार्श्य—वायु के कोप से शरीर दिन-प्रतिदिन निर्बल पड़ता जाता है।

५५ श्यामता—वायु से शरीर काला पड़ता जाय।

५६ प्रलाप—जिस वायु से मनुष्य बहुत बोलता है, उसे प्रलाप कहते हैं।

५७ क्षिप्रमूत्रता—जिस वायु के वेग से बार-बार मूत्र आये।

५८ निद्रानाश—वायु के कोप से नींद न आये।

५९ स्वेदनाश—वायु बढ़कर छिद्रों को बन्द करके पसीने को बन्द कर दे।

६० दुर्बलत्व—वायु के कोप से शरीर दुर्बल होता जाता है।

६१ बल-क्षय—वायु के प्रकोप से बल का नाश होता है।

६२ शुक्र-क्षय—वायु के कोप से शुक्र बहुत अधिक गिरता हो।

६३ शुक्र-कार्श्य—वायु शुक्र में पहुँचकर उसको सुखा दे।

६४ शुक्र-नाश—वायु शुक्र (वीर्य) को नष्ट कर दे।

६५ अनवस्थित चित्त—वायु मस्तिष्क में जाकर चित्त को अस्थिर बना दे।

६६ काठिन्य—वायु के कोप से शरीर की मृदुता नष्ट हो जाय।

६७ विरसास्यता—वायु के कोप से मुँह का रस (स्वाद) बदल जाय।

६८ कषायवक्त्रता—वायु के कोप से मुँह फीका पड़ जाय।

६९ आध्मान—वायु के कोप से नाभि के नीचे अफरा चढ़ता है।

७० प्रत्याध्मान—हृदय के नीचे और नाभि के ऊपर अफरा चढ़ जाता है।

७१ शीतता—वायु के कारण शरीर ठण्डा पड़ जाय।

७२ रोमहर्ष—वायु के कोप से शरीर का रोमांच हो जाय।

७३ भीरुत्व—वायु के कोप से शरीर में भीरुपन (डरपोकपन) आ जाय।

७४ तोद—शरीर में सुई चुभे, इस प्रकार का दर्द उत्पन्न हो।

७५ कण्डू—शरीर में खुजली आती है।

७६ रसाज्ञता—मीठा कड़ुवा आदि रसों का ज्ञान न मालूम पड़े।

७७ शब्दाज्ञता—वायु श्रवण-तन्तुओं में भरकर कान से सुनाई न दे।

७८ प्रसुप्ति—स्पर्श का पता न चले।

७९ गन्धाज्ञता—नाक के तन्तुवों में वायु भरकर गन्ध-ज्ञान का नाश करे।

८० दृष्टि-क्षय—दृष्टि में वायु प्रवेश करके देखने की शक्ति बन्द करे।

इन अस्सी वात-रोगों के सिवा वायु के और भी लक्षण इस शरीर में देखने को आते हैं। वायु इन सब दोषों में प्रबल है। वायु के बिना पित्त, कफ और रक्त स्वयं गति नहीं कर सकते। इनको वायु ही एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचाती है।

पित्त-प्रकोप के कारण

अतिशय गरम, तीखा, खट्टा खान-पान से, क्रोध से, उपवास से, धूप में बैठने से, स्त्रियों के सेवन से, तिल, अलसी, दधि, सुरा, सिरका के सेवन से पित्त प्रकुपित होता है। भोजन के जीर्ण होने के समय, शरद्-ऋतु में, मध्याह्न में, आधीरात में पित्त प्रकुपित होता है।

पित्त-जन्य रोग (४०)

शरीर में जब पित्त प्रकुपित होता है, तब चालीस प्रकार के रोग उत्पन्न करता है। इन रोगों के नाम इस प्रकार हैं—

१ धूमोद्गार—धुयें जैसा उद्गार आवे।

२ विदाह—शरीर में बहुत जलन हो।

३ उष्णांगत्व—शरीर तपता हुआ गरम रहे।

४ मति-भ्रम—शिर में चक्कर प्रतीत हो।

५ कान्ति-हानि—शरीर के तेज का नाश।

६ कण्ठ-शोष—गले में शोष उत्पन्न हो।

७ मुख-शोष—मुख में शुष्कता रहे।

८ अल्पशुक्रता—धातु थोड़ा हो जाय।

९ तिक्तास्यता—मुँह का स्वाद कड़वा रहे।

तेल

तेल की कई जातियाँ हैं, परन्तु मुख्यतः तिल का तेल और सरसों ही का तेल काम में आता है। जिस प्रकार जंगम प्राणियों के स्नेह में घी है, उसी प्रकार स्थावर वस्तुओं में तेल है। स्थावर पदार्थों का तैल वातनाशक होता है। तेल शरीर के बाह्य उपचार में काम आने के अतिरिक्त खाने में भी वर्ता जाता है। धनी लोग प्रायः घी का उपयोग करते हैं। परन्तु गरीबों के लिये सबसे उत्तम चिकनाई तेल ही है। प्रत्येक देश के रीति-रिवाज के अनुसार इसका उपयोग होता है। गुजरात में तिल का तेल विशेष वर्ता जाता है और पूरब में सरसों का तेल। कई वस्तुयें इस प्रकार की हैं, जिनके लिये तेल का उपयोग आवश्यक होता है। शाक-भाजी तथा पकौड़ी आदि तलने में तेल का उपयोग सबसे उत्तम है। तेल के कारण इनका स्वाद अच्छा हो जाता है। इसलिये तेल के गुण-दोष जानने आवश्यक हैं।

गुण—शरीर पर लगाने से शरीर को दृढ़ करता है, बलदायक है, चमड़ी का वर्ण उत्तम करता है, वायु दूर करता है, पुष्टि देता है, अग्नि प्रदीप्त करता है, शरीर में तुरन्त घुस जाता है, कृमियों को मारता है। कान का दर्द, योनिशूल और माथे के दर्द को मिटाता है, शरीर को हल्का करता है। वस्ति में पिचकारी में इसका उपयोग होता है। तिल संयोगरूपी संस्कार से सब रोगों को दूर करता है। गरम है, पित्तकारक है, मूत्र और मल को बाँधता है, परन्तु श्लेष्मा को बढ़ाता है।

तिल-तैल—परिसेक, मालिश और स्नान के लिये, वस्ति में, पान करने में, नस्य लेने में, कान-आँख आदि के भरने में, अन्न-पान आदि के बनाने में तिल का तेल उत्तम है।

एरण्ड-तैल—तिक्त, कड़वा, भारी मधुर रस, है। गुल्म, वायु-कफ-रोग, उदर-रोग, विषम-ज्वर, दर्द, सूजन, कटिशूल में उत्तम है।

सरसों का तैल—कटुवा, तीक्ष्ण, गरम है। कफ को, वायु को नष्ट करता है। गरम होने से खाने पर शुक्र को कम करता है। हल्का है, रक्त और पित्त को कुपित करता है। कोढ़, कुष्ठ बवासीर, कृमि को नष्ट करता है।

नमक

नमक—यह एक प्रकार का क्षार है, जो शरीर के लिये अत्यन्त आवश्यक है। क्षार को यदि भोजन से निकाल दिया जाय, तो मनुष्य का जीवन देर तक स्थिर नहीं रह सकता। दूध के ऊपर जो मनुष्य कई सालों तक जीवन व्यतीत कर सकते हैं, उसका कारण यही है कि शरीर के लिये आवश्यक मात्रा का नमक दूध में रहता है। नमक खान-पान की वस्तुओं में स्वाद और रुचि उत्पन्न करता है। अस्थियों को मजबूत करता है।

नमक यद्यपि शरीर के लिये उपयोगी है, परन्तु इसमें कुछ अवगुण भी हैं, जिनके कारण इसका अधिक उपयोग करने से शरीर को हानि पहुँचती है। नमक का स्वभाव सड़ाना और गलाना है। यदि नीबू को नमक में रख दिया जाय, तो कुछ समय पश्चात् वह नर्म हो जाता है। इसी प्रकार अधिक मात्रा में लेने से, शरीर के अन्दर के तन्तुवों को नर्म बना देता है। कई लोग नमक को दूध में डालकर उपयोग करते हैं। इससे नमक की मात्रा शरीर में बढ़ जाती है। इसके अतिरिक्त दाल, चटनी, भाजी, पापड़, अचार आदि सब चीजों में नमक अधिक मात्रा में वर्ता जाता है। इसके साथ ही अधिक नमक या क्षार के उपयोग से रक्त में विकार आजाता है। प्लीहा आदि को कम करने के लिये बहुत-से वैद्य बहुत अधिक मात्रा में नमक खिलाते हैं, इससे उसका बहुत दुरुपयोग होता है। नमक के अधिक उपयोग से "पुंस्त्व" का नाश होता है। लोगों में वीर्य-सम्बन्धी शिकायतों का मुख्य कारण चटनी, मसाले, क्षार आदि का अति उपयोग है। अनाज आदि में क्षार आदि का परिमाण थोड़ा रक्खा हुआ है।

नमक कई प्रकार के हैं। परन्तु मुख्यत: दो प्रकार के नमकों का उपयोग होता है। एक नमक, जो कि समुद्र या तालाब या नदी के पानी से बनाया जाता है। यह नमक गुजरात प्रान्त में बहुत खाया जाता है। यह मैला रहता है। इससे अच्छा "लीवरपुल" का नमक होता है। यह अधिक श्वेत और साफ़ रहता है। दूसरी प्रकार का नमक "सैन्धव" है। यह सब नमकों में श्रेष्ठ है, पथ्य है, आँखों के लिये हितकर है। इसका कहीं भी निषेध नहीं होता। यह बड़े-बड़े ढेलों के रूप में पञ्जाब प्रान्त से आता है। गुजरात में महँगा पड़ता है। इससे लोग प्रथम प्रकार का नमक खाते

हैं। परन्तु उत्तरीय हिन्दुस्तान में इसका उपयोग अधिक होता है। आंखों के लिये सैन्धव ही उपयोगी है।

मसाला

आजकल सभ्य लोगों के लिये बाजार में नाना प्रकार के मसाले विलायत से डब्बों में "पैक" किये आते हैं। जिस प्रकार बाह्य-शृङ्गार बढ़ता जा रहा है, उसी प्रकार इन मसालों की ओर भी लोगों की रुचि बढ़ती जा रही है। इन मसालों के उपयोग से शरीर में अजीर्ण, खट्टे डकार आदि शिकायतें होने के साथ रक्त-विकार के रोग भी होते जाते हैं। इनके उपयोग से इन्द्रियों में उत्तेजना आती है, शरीर के अन्दर अस्वाभाविक गर्मी बढ़ती है। इनसे प्रथम खूब भूख बढ़ती है, परन्तु पीछे से यही उत्तेजना मन्द पड़ जाती है। इससे स्वाभाविक बल भी नष्ट हो जाता है।

इससे यह अभिप्राय नहीं कि शरीर को गरम पदार्थों की, मसाले की जरूरत नहीं। इनका उचित मात्रा में उपयोग शरीर के लिये आवश्यक है। विशेषत: जब विवाह आदि में खूब मिठाई खानी पड़ती है, और भोजन भी साधारणावस्था से भारी होता है, उस समय इन मसालों का उपयोग छुहारे की चटनी या सोंठ या जीरे के पानी में करना अच्छा होता है। परन्तु प्रतिदिन इनका उपयोग करना अच्छा नहीं।

मसाले में उपयोग होनेवाली चीजें प्राय: लाल मिर्च, सोंठ, जीरा, धनिया, प्याज, लहसुन, पुदीना, अद्रक, छुहारा आदि हैं। प्राय: ये सब चीजें गरम होती हैं। इसके अतिरिक्त लौंग, इलायची, तेजपात, हींग आदि का उपयोग प्रतिदिन होता रहता है।

मिरचें (लाल)—ये मिरचें पाचन-शक्ति को बढ़ाती हैं, मल को निकालती हैं। इसका अधिक उपयोग बवासीर, खट्टे डकार को उत्पन्न करता है। इनको जब खाना हो, इनके बीज निकालकर खाना चाहिये। हरी मिरचें इनसे अच्छी हैं। इनका उपयोग चटनी में किया जाता है। ये पाचन-शक्ति के लिये उत्तम हैं।

मिरचें (काली)—लघु, गरम, तीक्ष्ण, रोचक, अग्निवर्द्धक हैं, परन्तु रूक्ष हैं। कफ को नष्ट करती हैं, परन्तु पित्तकारक हैं।

हींग—तीक्ष्ण, कटुरस, शूल, अजीर्ण और मलबन्ध के लिये हितकर

(७) संस्कार—बनाने की विधि से लघु वस्तु पचने में भारी हो जाती है और भारी वस्तु हल्की हो जाती है। जिस प्रकार चावल पचने में भारी है। वेही भुनकर हल्के हो जाते हैं।

(८) मात्रा—गुरु वस्तु यदि थोड़ी खाई जाय, तो वह शीघ्र पच जाती है और लघु वस्तु अधिक खाई जाय, तो वह देर में पचती है।

न लेने योग्य मांस—कृश पशु का मांस, अपने आप मरे हुये पशु का, विष या विषैले पशु से मारे हुये पशु का, बालक का, पानी में डूबे हुये या अग्नि में जले हुये पशु का, रोगी पशु का, सूखा हुआ मांस, बूढ़े पशु का, जिसको अपनी आँखों से न देखा हो, बासी, दुर्गन्धित, सड़े हुये, कीड़ों से खाये हुये मांस को न खाना चाहिये।

मांस वर्ग के प्राणी	पोषक पदार्थ	वसा	शर्करा	लवण	जल
गाय-बैल	२०.०	१.५	०.६	१.२	७६.७
सुअर	१९.९	६.२	०.६	१.१	७२.६
घोड़ा	२१.६	२.५	०.६	१.०	७४.३
मुर्गी	२७.७	४.१	१.३	१.१	७०.४
मछली	१८.३	०.७	.९	.८	७९.३
बकरा	१८.०	५.०		१.०	७६.०
हिरन	१९.७	१.९		१.१	७५.७
खरगोश	२२.३	१.१		१.१	७४.०

श्रेष्ठ मांस

बटेर, तीतर, सारंग, मृग, हरिण, कपिञ्जल, मोर, कछुवा, रोहित मत्स्य—इनका मांस उत्तम है।

गाय का मांस और भैंस की चर्बी सबसे अधिक खराब है। सूखी हुई मछलियाँ पचने में दुर्जर, बलनाशक और क़ाबिज़ होती हैं।

मांस के साधारण गुण—मांस वायु-रोग-नाशक, बलकारक, पचने में भारी, पोषण देनेवाला और पाक में मधुर होता है। क्षय आदि रोग

में उपयोगी है। इसका प्रभाव तामसिक होता है। अतः जहाँ शरीर के लिये उपादेय हो सकता है, वहाँ बुद्धि और स्मृति को हानि करता है। इसलिये इसका निषेध किया गया है।

पथ्यापथ्य खान-पान

खान-पान की वस्तुओं की मोटी विवेचना कर चुके हैं। इनमें से कुछ वस्तुयें इस प्रकार की हैं, जो प्रत्येक मनुष्य के लिये, प्रत्येक ऋतु में उपयोगी हो सकती हैं। यथा—दूध। यह किसी भी मनुष्य के लिये, अथवा किसी भी ऋतु में अपथ्य नहीं होता। दूसरी वस्तुयें वे हैं, जो किसी विशेष ऋतु ही में या किसी विशेष देशवासियों के लिये ही पथ्य समझी जाती हैं। उदाहरण के लिये—मकई या बाजरा सर्दियों ही में उपयोगी होता है। इसी प्रकार ज्वार का उपयोग जिस प्रकार काठियावाड़ी कर सकते हैं; उस प्रकार उत्तरीय हिन्दुस्तान के व्यक्ति नहीं कर सकते। और कई वस्तुयें इस प्रकार की हैं, जो सब ऋतुओं में और सब मनुष्यों के लिये हानि-कारक रहती हैं। यथा—इमली, या खार का अति उपयोग। इनमें प्रथम प्रकार की वस्तु को पथ्य कहते हैं; दूसरे प्रकार की वस्तु को पथ्यापथ्य और तीसरे प्रकार की वस्तु को अपथ्य कहते हैं।

पथ्य खान-पान

अनाज—चावल, गेहूँ, जौ, मूँग, अरहर, चना, मोठ, मसूर—ये वस्तुयें साधारणतः सब मनुष्यों के लिये पथ्य हैं। इनका उपयोग किसी भी ऋतु में किया जा सकता है। इन वस्तुओं में अपनी प्रकृति और ऋतु के अनुसार बहुत थोड़ा परिवर्त्तन करने की आवश्यकता होती है। चना यद्यपि पथ्य है; परन्तु इसका भी अधिक उपयोग हानि करता है—पेट में वायु करता है। चावल यदि एक साल का पुराना हो, तो उत्तम है। अरहर की दाल में घी डालकर खाया जाय, तब वह वायु नहीं करती। खड़ी मूँग की दाल वायु करती है, परन्तु पीसी हुई दाल या जूस त्रिदोषहर और भयङ्कर व्याधि में भी पथ्य है।

शाक— चौलाई की भाजी, परवल, मूली, सूरन आदि शाक सदा पथ्य हैं। साधारणतः हितकर वस्तुयें नीचे दी जाती हैं।

पथ्य—हितकारी	अपथ्य—अहितकारी
चावलों में—लाल चावल, साठी	धान्यों में—छोटे-छोटे जौ
दालों में—मूँग की दाल	दालों में—उड़द
पानी में—आकाश का पानी (अन्तरिक्ष का)	पानी में—वर्षा-ऋतु में नदी का पानी
	लवणों में—ऊसर देश में उत्पन्न
नमकों में—सैन्धव	पत्रशाकों में—सरसों का
शाकों में—जीवन्ती	पशुओं के मांस में—गौ का मांस
पशुओं के मांसों में—हिरण का मांस	पक्षियों के मांस में—कपोत
पक्षियों के मांस में—बटेर	मछलियों में—चिलचिम
मछलियों में—रोहित	घी में—भेड़ का घी
घी में—गाय का घी	दूध में—भेड़ का दूध
दूध में—गाय का दूध	तेलों में—धनिये का तेल
तैलों में—तिल का तेल	फलों में—लसोड़ा
फलों में—किशमिश	कन्दशाकों में—आलू
गुड़ में—शक्कर	गुड़ों में—रस की मलाई
धान्यों में—गेहूँ, जौ	
पत्रशाकों में—चौलाई	
खट्टास में—आँवला	
मसाले में—आर्द्रक, धनिया, जीरा	

इन पदार्थों में सबसे उत्तम पथ्य और हितकारी पदार्थ प्रत्येक ऋतु में, प्रत्येक मनुष्य के लिये पथ्य हो सकते हैं। साथ ही अपथ्य (अहितकारी) भोजन प्रत्येक ऋतु में, प्रत्येक मनुष्य के लिये अपथ्य रहते हैं। रोगी अवस्था में पथ्य (हितकारी) वस्तुयें भी अपथ्य हो जाती हैं। उदाहरण के लिये नये कफ-ज्वर में दूध विषरूप होता है। और रोग की अवस्था में अपथ्य वस्तु भी पथ्य हो जाती है। यथा—भस्मक-रोग में, भेड़ का दूध और भेड़ का घी भी पथ्य समझा जाता है।

पथ्यापथ्य

दूसरे प्रकार की वस्तुएँ जो किसी विशेष ऋतु में, किसी विशेष देश के व्यक्ति के लिये, या किसी विशेष प्रकृतिवाले के लिये पथ्य समझी जाती हैं, उनको "पथ्यापथ्य" कहते हैं।

बाजरा, उड़द, राजमाष, कुलथी, गुड़, खाँड़, मक्खन, दही, छाछ, भैंस का दूध, घी, आलू, तोरी, प्याज, करेला, दूधी, कद्दू, मेंथी, मोगरी, मूली, गाजर, चिभड़ा, गोभी, केला, अनन्नास, जामुन, करौंदा, अंजीर, नारंगी, नीबू, अमरूद, सेब, पीलुफल आदि पदार्थ नित्य काम में आते हैं। यदि प्रकृति और ऋतु का विचार बिना किये हुए इनका उपयोग किया जाय, तो नुकसान करते हैं। उदाहरण के लिये—दही शरद्-ऋतु में ज़हर के समान है, वर्षा-ऋतु में हितकर है, ग्रीष्म में खाँड़ के साथ खाने से हितकारक है। दही ज्वरवाले के लिये अपथ्य है, और अतिसार रोगी के लिये पथ्य है। इस प्रकार से प्रत्येक वस्तु का उपयोग समझकर या योग्य वैद्य की सलाह से करना चाहिये।

अपथ्य खान-पान

जो पदार्थ सब पुरुषों के लिये सब देशवालों के लिये, सब ऋतुओं में हानिकारक हैं, उनको "अपथ्य" कहते हैं। इन्हीं पदार्थों का यदि युक्ति से उपयोग किया जाय, तो व्याधि में यही वस्तुयें पथ्य समझी जाती हैं। नमक या क्षार यदि अधिक खाये जायँ, तो पेट के गुल्म, गाँठ या वायु को नष्ट करते हैं, परन्तु "पुरुषत्व" का नाश करते हैं। इसी प्रकार अफीम शरीर के लिये ज़हर होते हुये भी रक्तातिसार में पथ्य-अमृत का काम करती है। इन पदार्थों का उपयोग कभी भी पथ्य के रूप में-या सदा खान-पान के विचार से नहीं करना चाहिये। इन पदार्थों में—शरीर के अन्दर दाह उत्पन्न करनेवाले, शरीर में सड़ांद उत्पन्न करनेवाले, शरीर को गलानेवाले और शरीर में विष उत्पन्न करनेवाले या प्रविष्ट करनेवाले पदार्थों का समावेश होता है।

अभ्यास से भी कुछ वस्तुयें पथ्य हो जाती हैं। जो वस्तुयें "पथ्यापथ्य" हैं, उनका यदि लगातार अभ्यास रक्खा जाय, अथवा बचपन से उनको खाया जाय, तो कुछ समय पश्चात् वे वस्तुयें शरीर के लिये पथ्य हो

जाती हैं। उदाहरण के लिये—बाजरा, गुड़, छाछ, दही, ये वस्तुयें ऋतु के अनुसार पथ्य होती हैं। परन्तु यदि प्रकृति और ऋतु का विचार न किया जाय, तो यही वस्तुयें अहितकर होती हैं। परन्तु जो कुटुम्ब इनका सदा उपयोग करते रहते हैं, उनको ये वस्तुयें किसी प्रकार की हानि नहीं करतीं। दूध यद्यपि पथ्य है, तथापि कइयों के लिये यह अपथ्य रहता है—उनको थोड़ा-सा भी दूध नहीं पचता। इससे स्पष्ट है कि मनुष्य को अपनी प्रकृति के अनुसार, शरीर की बनावट के अनुसार, नित्य के अभ्यास से, तथा ऋतु का विचार करके भोजन लेना चाहिये।

रासायनिक संयोग

जिस प्रकार एक ही पदार्थ प्रकृति और ऋतु-भेद से पथ्य और अपथ्य हो जाता है, उसी प्रकार वही एक पदार्थ रासायनिक संयोग से कई बार हानिकारक हो जाता है। इसके अतिरिक्त कई दो पदार्थ अलग-अलग पथ्य होते हुये मिलाकर उपभोग करने से अपथ्य बन जाते हैं। उदाहरण के लिये—शहद पथ्य है। यही शहद गरम होकर अपथ्य बन जाता है—और आर्य वैद्यक-शास्त्र के अनुसार यह विष हो जाता है। दूध पथ्य है, मछली भी पथ्य है। परन्तु यदि दोनों का उपयोग एक साथ किया जाय, तो यह विष बन जाते हैं। इसी प्रकार शहद भी गरम घी से मिलकर अपथ्य हो जाता है। इसी प्रकार मधु और घी समान भाग मिलाकर खाने से भी विष हो जाता है। इसी प्रकार दूध, मूली के साथ या नमक के साथ खाने से अवश्य हानि करता है।

बर्त्तन के योग से भी वस्तु के अन्दर अन्तर आ जाता है। मिट्टी की हांड़ी का घी, अथवा मिट्टी की हांड़ी में पका हुआ सरसों का साग अधिक स्वादिष्ट होता है। घी यदि कांसी के बर्त्तन या ताम्बे में रक्खा जाय, तो थोड़े समय में हानिकारक हो जाता है। इस प्रकार के अपथ्य का फल तुरन्त नहीं मिलता; परन्तु कुछ समय पश्चात् एक अलग रूप में इनका प्रभाव दिखा देता है। उस समय उस प्रभाव का असली कारण समझ में नहीं आता। परन्तु वास्तव में कितने रोग इसी प्रकार के संयोग जन्य विषों के कारण होते हैं।

कृश शरीरवाले को पथ्य

कृश—निर्बल शरीरवाले पुरुषों के लिये नीचे लिखे अनुसार खान-पान रखना चाहिये।

१—दुर्बल मनुष्यों को पौष्टिक खुराक की जरूरत है। पौष्टिक पदार्थ पचने में भारी होता है और निर्बल मनुष्यों की जठराग्नि मन्द रहती है। इसलिये इनको पचने में हल्की पौष्टिक खुराक देनी चाहिये।

२—गेहूँ, नवीन चावल, साठी के चावल, जौ, मकई, उड़द, मूँग की दाल पथ्य है।

३—दूध सबसे उत्तम भोजन है। दूध में शक्कर मिलाकर थोड़े-थोड़े समय बाद लेना चाहिये। दूध जल्दी पचता है, पुष्टि देता है। घी, मलाई, मक्खन भी पुष्टिकारक वस्तुयें हैं।

४—आम, सेब, अंगूर आदि पदार्थ भी निर्बल मनुष्यों के लिये उत्तम हैं। केला पचने में भारी है। इसलिये पाचन-शक्ति अच्छी होने पर देना चाहिये।

५—जीवन (च्यवन प्राशावलेह) भोजनरूप दवाइयों में जीवन दुर्बल और क्षीण पुरुषों लिये उत्तम वस्तु है। यह रक्त को बढ़ाता है, पोषण देता है, पाचनशक्ति को मदद देता है। जीवन के साथ दूध धीरे-धीरे ५ से १० सेर तक पच सकता है। दूसरी खुराक के साथ दूध इतना अधिक नहीं पच सकता। यदि जीवन के साथ अकेला दूध या दूध के साथ साठी के चावलों का उपयोग किया जाय, तो दूध पचकर रक्त को और अन्य धातुओं को शीघ्र बनाता है।

६—कॉड लीवर ऑयल भी उत्तम दवाई है। इससे शरीर का भार बढ़ता है। परन्तु कई मनुष्यों को पचने में भारी रहता है, अतः इसका उपयोग समझकर करना चाहिये।

७—दिन में सोने से, चिन्ता का त्याग करने से, व्यायाम न करने से, दधि के खाने से, रसायन के उपयोग से, मांस के रसों से पतला आदमी सुअर के समान मोटा होता है।

८—दुर्बल मनुष्य को अश्वगन्धा का उपयोग शीघ्र ही मोटा कर देता है।

९—इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि शरीर में अनावश्यक मोटाई न आजाय। इसके लिये साधारण व्यायाम करते रहना चाहिये, जिससे पौष्टिक खुराक पच जाय। दुर्बल व्यक्तियों को लंघन या तैल का उपयोग नहीं करना चाहिये।

स्थूल शरीरवालों के लिये पथ्यापथ्य

शरीर की तन्दुरुस्ती की परीक्षा शरीर के मोटे या पतलेपन से नहीं की जा सकती। देखने में पतले मनुष्यों का शरीर भी शक्तिवाला दिखाई देता है। इसी प्रकार कई मोटे मनुष्य शक्तिवाले दिखाई देते हैं, परन्तु होते हैं अन्दर से निर्बल। खान-पान की युक्ति से शरीर को सुगठित बना सकते हैं।

१—चरबीवाले पदार्थों का उपयोग छोड़ना चाहिये। यथा—घी, तैल, मिष्ठान्न और दूध के पदार्थ छोड़ने चाहिये।

२—चरबी को कम करने के लिये व्यायाम सबसे उत्तम वस्तु है। अतः व्यायाम अवश्य करना चाहिये।

३—चरबी कम करने के लिये जागना, दिन में न सोना, चिन्ता, मैथुन का उपयोग करना चाहिये। गर्मियों में पानी के अन्दर शहद मिलाकर देना चाहिये। मद्य का उपयोग भी उत्तम है।

४—गेहूँ, जौ, मूँग, कुलथी, चना आदि हल्के पदार्थ भोजन में देने चाहिये। उपवास सबसे अच्छा है।

५—शिलाजीत का उपयोग चरबी को काम करता है।

मस्तिष्क के पोषण करनेवाले पथ्य

कुछ वस्तुयें मस्तिष्क के लिये विशेष पथ्य हैं, और कुछ अपथ्य हैं। जिस प्रकार लोहवाली वस्तुयें रक्त को बढ़ाती हैं, उसी प्रकार सात्त्विक और चिकनाईवाली वस्तुयें मगज़ के लिये उत्तम हैं। स्मरण-शक्ति और बुद्धि को बढ़ाने के लिये मस्तिष्क को तर रखनेवाले सात्त्विक खान-पान करना चाहिये। तामसी खुराक बहुत गरम, बहुत दाहक, बहु क्षोभक, बहु उत्तेजक होने से मगज़ को बिगाड़ देती है। इससे मनुष्य शान्त वृत्ति को छोड़कर

बार-बार क्रोध आदि के वश में हो जाता है। आर्य-शास्त्र में इसीलिये आहार की पवित्रता के ऊपर विशेष ध्यान दिया गया है। किसके घर का अन्न खाना है, इस बात का भी ध्यान रखना चाहिये।

१—गेहूँ, चावल, मूँग, घी, दूध, शक्कर, आँवला, परवल ये सब उत्तम हैं।

२—मदकारी, तामसिक भोजन सदा हानिकारक हैं। यथा—लहसुन, दही, कांजी, मांस आदि।

३—बादाम, पिस्ता, चिरौंजी आदि मेवे मगज़ को लाभ करते हैं।

४—गाय का दूध मस्तिष्क की पुष्टि के लिये सबसे उत्तम है।

५—जीवन मस्तिष्क की विकृति दूर करनेवाला है। उन्माद रोगी भी इसके यथार्थ सेवन करने से अच्छे हो जाते हैं।

६—जीवन के अतिरिक्त शतावरी पाक, अश्वगन्धा पाक, गाय का दूध, मुलहठ्ठी ये सब वस्तुयें बुद्धि को बढ़ाती हैं।

७—शंख-पुष्पी, ब्राह्मी, माल-कंगनी, बच, स्वर्ण, आदि वस्तुयें मस्तिष्क के शोधन के लिये उत्तम वस्तुयें हैं।

८—मस्तिष्क को ठण्डा रखने के लिये सिर पर तैल-मर्दन, ठण्डे पानी का स्नान करना चाहिये।

रोगी मनुष्य का पथ्यापथ्य

रोगों की भिन्नता के कारण, तथा प्रकृति-भेद के कारण एक समान नियम नहीं हो सकता। परन्तु कुछ वस्तुयें इस प्रकार की हैं, जो प्रायः सब रोगों की निर्बलता में पीछे काम आती हैं।

१—साबूदाना, अरारूट, और मूँग की दाल का पानी ये वस्तुयें सब प्रकार के रोगों में, या निर्बलता में उपयोगी हो सकती हैं। इनसे कोई विशेष पोषण नहीं मिलता, परन्तु सुगमता से पच जाती हैं और शरीर के बल को बनाये रखती हैं। जहाँ अधिक पोषण की जरूरत पड़े, वहाँ दूध का उपयोग करना चाहिये।

२—दूध निर्बल मनुष्यों के लिये सबसे उत्तम है। कइयों को दूध अनुकूल नहीं पड़ता; परन्तु युक्ति से सेवन कराने पर पच जाता है। निर्बल मनुष्य को दूध गाढ़ा करके नहीं देना चाहिये। जबतक गाय या बकरी का

दूध मिले, भैंस का दूध नहीं देना चाहिये। बहुत उबालने से पोषक तत्त्व कम हो जाते हैं और दूध पचने में भारी हो जाता है। दूध में तीन-चार उबालें देकर फिर काम में लाना चाहिये। इससे उसके अन्दर के जन्तु मर जाते हैं। निर्बल या बच्चों के दूध में पानी मिलाकर उबालना चाहिये। उबलते दूध में सोंठ या छोटी पीपल डालकर उबालने से वह पचने में और भी सुगम हो जाता है।

३—निर्बल मनुष्यों के लिये "जीवन" पुष्टिकारक वस्तु है। बच्चा, जवान, वृद्ध सबके लिये उपयोगी है। इसके सेवन से स्त्रियों का दूध बढ़ता है। क्षीण व्यक्तियों में रक्त और चर्बी बढ़ाता है। आमाशय और आंत्रों पर इसका बहुत अच्छा प्रभाव होता है। विलायती दवाइयों से, जो प्राणियों के अंगों से बनी हुई हैं, यह कहीं अधिक लाभदायक है। इसका उपयोग कुछ समय तक करना चाहिये, तभी इसका लाभ मालूम होता है।

४—चाह, कॉफी, कोका आदि वस्तुयें पहले उपयोग में आती थीं, परन्तु अब सदा बरती जाने के कारण इनका उपयोग नहीं करना चाहिये। और यदि करना हो, तो डाक्टर की सम्मति से करना चाहिये। इनके लिये नीचे पानक दिये जाते हैं।

५—मांस-रस भी कई रोगों के लिये विशेष उपयोगी होता है। विशेषतः ज्वर में या क्षय की अवस्था में मुर्गे के बच्चों का शोरबा अग्निवर्द्धक, दीपक है।

रोगियों के लिये पीने योग्य कुछ पदार्थ

शुद्ध पानी—रोगी और स्वस्थ दोनों के लिये लाभकारी है। रोगी के लिये पानी को उबालकर ठण्डा करके देना चाहिये, या फिल्टर करके देना चाहिये। पानी को थोड़ा-थोड़ा देना चाहिये और घूँट-घूँट कर पीना चाहिये।

नीबू का पानी—गरम पानी में नीबू निचोड़कर उसमें शक्कर मिलाकर थोड़ा-थोड़ा पानी पीने को देना चाहिये।

का पानी—घड़े भर जौ लेकर चार गुने पानी में उबालने के लिये रख देना चाहिये। जब उबलते-उबलते १० मिनट हो जायँ, तो उनको छानकर उसमें खाँड़ या नमक मिलाकर रोगी को देना चाहिये।

आलूबुखारे का पानी—यह पानी प्यास के लिये उत्तम है। आलू-

कुल्थी लेकर उनको रात्रि में पानी के अन्दर भिगो देना चाहिये। प्रातः उनको मथकर छान लेना चाहिये। फिर इसमें खाँड मिलानी चाहिये।

खान-पान सम्बन्धी कुछ सूचनाएँ

भोजन के पदार्थों का मोटा विवेचन कर चुके। उनके गुण-अवगुण तथा पथ्यापथ्य भी देख लिये। अब भोजन के लिये किन-किन बातों का ध्यान रखना चाहिये, यह भी जानना आवश्यक है।

एक समय खाया हुआ अन्न जबतक पहले पच न जाय, तबतक भोजन फिर नहीं खाना चाहिये। यह बात सब आदमी जानते हैं, परन्तु करता कोई भी नहीं। प्रायः श्रीमन्त लोग अजीर्ण की शिकायत से दुःखी रहते हैं और वे इसी अजीर्ण की अवस्था में सदा खाते-पीते रहते हैं। इससे यह रोग पुराना होकर अन्य रोगों को उत्पन्न कर देता है।

पूरा चबाये बिना भोजन करना दूसरी खराबी है और खाते समय प्रसन्नचित्त न रहना तीसरी खराबी है। खूब चबाकर धीरे-धीरे प्रसन्नमन से खाना अत्यन्त लाभदायक है। खाते समय पानी की मात्रा यथाशक्ति कम पीनी चाहिये। ग्रास को ३२ बार दाँतों से पीसना चाहिये।

निदान-स्थान

वात, पित्त और कफ इन तीनों की सामान्यावस्था का नाम स्वस्थ अवस्था है। जिस समय इनमें से किसी एक में या सबमें विकार उत्पन्न हो जाता है, उस अवस्था को "रोग" कहते हैं। रोगों के पहचान का नाम है निदान-स्थान। जिस प्रकार एक व्यक्ति के लिये किसी वस्तु के असली रूप को समझना आवश्यक है, उसी प्रकार उसी वस्तु के विकृत रूप को भी जानना आवश्यक है।

जिस प्रकार इस सृष्टि के विकास में २४ तत्त्वों से ८ प्रकृति हैं और सोलह विकार हैं, उसी प्रकार इस मानव-शरीर में प्रकृति एक है, और विकार अनन्त हैं। सत्त्व, रज और तम इनकी साम्यावस्था का नाम प्रकृति है, इनमें से किसी एक में भी विकार आने से इस प्रकृति में विकृति

उत्पन्न होजाती है। इसी प्रकार शरीर को बाँधकर रखनेवाले तीन तत्त्व पदार्थ हैं। इनका नाम वात, पित्त और कफ है।

त्रिवर्ग—धर्म, अर्थ और काम का सेवन तभी मोक्षदायक होता है, जब यह सेवन समान रूप में किया जाय। अर्थात् तीनों को इस प्रकार से सेवन करना चाहिये कि कोई किसी से बढ़ न जाय और कोई किसीसे कम न रह जाय। इसी प्रकार वात, पित्त और कफ भी समान अवस्था में रहें, तभी मनुष्य के लिये श्रेयस्कर और सुखदायी होते हैं।

मनुष्य की प्रकृति स्वास्थ्य है और विकृति रोग है। प्रकृति को पिछले अध्यायों में समझ चुके हैं और अब विकृति को समझने के लिये इस अध्याय का अवतरण किया है।

प्रकरण चौथा

रोग के सामान्य कारण

स्वस्थ शरीर में विकार आने का नाम "रोग" है। यह विकार चाहे शरीर के अन्दर अपने आप उत्पन्न हो, अथवा बाहर से आये। जिस प्रकार ज्वर का आना। यह शरीर के अन्दर का विकार है और खेल-कूद में चोट लगकर हाथ या पाँव का अपना कार्य भली प्रकार न। करना बाहर के कारण से हुआ। दोनों अवस्थाओं में शरीर के अन्दर विकार उत्पन्न होता है। इस विकार को चिकित्सा-शास्त्र के शब्दों में "रोग" कहते हैं। रोग के कारणों को जानना प्रत्येक मनुष्य के लिये आवश्यक है। इन कारणों को समझकर, मनुष्य उन कारणों से अपने शरीर को बचा सकता है। कारणों से बचने पर मनुष्य रोग या विकार से भी बच जाता है।

स्वस्थ शरीर में और विकृत शरीर में, प्रकृति-अवस्था में या विकृति-अवस्था में विभाग करनेवाली कोई चौकस या स्थूल निशानी नहीं है। इन दोनों अवस्थाओं का विभाग एक बहुत ही पतली, झीनी रेखा से होता है। जिस समय शरीर प्रकृति-अवस्था को लाँघकर इस रेखा के पार उतरता है, उसी समय वह रोग की अवस्था में पाँव रख देता है। कई बार तो यह परिवर्त्तन इतना स्पष्ट होता है कि व्यक्ति को इसका अनुभव हो जाता है। वह कहता है—कल रात जरा सर्दी लग गई थी, इसीसे मुझे आज नाक से पानी आ रहा है, या कल उनके यहाँ भारी वस्तुयें खाली थीं, इसीसे आज खट्टे डकार आते हैं। यह बात मनुष्य अनुभव करता है। परन्तु कई बार उसको मालूम नहीं पड़ता, यह कब और कैसे होगया। वह चिकित्सक के पास जाता है और कहता है—रात-रात में यह फुन्सी निकल आई, पता नहीं कैसे होगई। इसी प्रकार वह कहता है—कल रात से पेट में मीठा-मीठा दर्द हो रहा है, पता नहीं कैसे होगया। चिकित्सक अपनी बुद्धि से इस दर्द के सब कारणों को उसके सामने एक-एक पूछता है—कल

कोई भारी वस्तु या अमरूद आदि तो नहीं खाये, पेट में कब्ज़ तो नहीं, इत्यादि। रोगी उन सबका उत्तर हाँ या ना में देता है। चिकित्सक अपनी समझ से औषध निर्णय करता है। अब यदि विकार या रोग के कारण का ठीक पता चल गया और दवाई ठीक हुई, तो बस, बेड़ा पार (रोग पहली ही खुराक में साफ़ हुआ)। निशाना भी अचूक बैठता है। और यदि चिकित्सक ने कारण को समझे बिना, अन्धेरे में तीर फेंका, लगा या न लगा, तो सफलता भी अनिश्चित है। इसलिये उस रेखा को, जो रोगी और निरोग अवस्था को काटती है, समझना दोनों के लिये, रोगी और चिकित्सक के लिये आवश्यक है।

जिस समय परिवर्त्तन शरीर के अन्दर सहसा होता है, उस समय मनुष्य विकार को तथा उसके कारण को पहचान लेता है। अथवा जिस समय वह रोग के कारण को जानता है, तो उसका सेवन करने पर उसके परिणाम को भी समझ सकता है। परन्तु कई बार परिवर्त्तन बहुत धीरे-धीरे होता रहता है और जिस समय पर्याप्त मात्रा में हो चुका होता है, तब मनुष्य को मालूम होता है। इस अवस्था में उसे इस सहसा परिवर्त्तन का कारण समझ में नहीं आता है। यह प्राय: खान-पान की विषमता से होता है। जिस प्रकार छाती में जोर से दर्द होने लगे और ज्वर चढ़ जाय, तब उसके कारण का पता नहीं चलता।

पीड़ा—रोग का स्पष्ट चिन्ह है। जिस समय शरीर के किसी भाग में पीड़ा हो, उस समय समझना चाहिये कि किसी प्रकार का रोग है। प्राय: सब रोगों में, विशेषत: जिन रोगों में रोगी को जलन का अनुभव होता है, रोगी निर्बल हो जाता है। जिस समय किसी प्रकार की पीड़ा हो, भोजन में अरुचि हो, अवयव थक जायँ, शिर में दर्द हो, उस समय मनुष्य को समझ लेना चाहिये कि वह किसी रोग में फँसा हुआ है। इस अवस्था के उत्पन्न होने पर आराम करना चाहिये और किसी योग्य वैद्य की सलाह लेनी चाहिये, जिससे रोग आगे न बढ़े। तन्दुरुस्ती प्राकृतिक स्थिति है, रोग या विकार स्वाभाविक स्थिति है। मनुष्य जहाँ तक प्रकृति के नियमों के अधीन रहकर जीवन-यात्रा करता है, वहाँ तक साधारणत: उसे किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता। परन्तु इस लम्बी सौ साल की यात्रा में मनुष्य से भूल होनी स्वाभाविक है। चलते-चलते ठोकर लगना स्वाभाविक

है। इसी प्रकार कई अवस्थाओं में ऐसा होता है कि मनुष्य कितनी ही होशियारी रक्खे, उससे भूल होनी अनिवार्य रहती है। परन्तु जो मनुष्य शरीर-शास्त्र के नियमों को समझकर चलता है, वह अनेक रोगों से अपने शरीर को बचा सकता है।

कारण के बिना रोग होता नहीं। इस बात का प्रत्येक मनुष्य को निश्चय रखना चाहिये। रोग का कारण जाने बिना, उसका ठीक उपाय भी नहीं हो सकता। यदि मनुष्य इसमें जरा गहरा ध्यान रक्खे, तो वह अपने रोग का परीक्षक स्वयं बन सकता है। रोग का कारण समझने पर उसको दूर करना भी उसकी इच्छा के अधीन है। रोग का कारण हटाने से दूसरे उपायों की इतनी जरूरत नहीं रहती। कारण को दूर करना ही रोग को दूर करने का उपाय है। मनुष्य रोग के कारण को समझकर कारण को दूर करे, अथवा भूल सुधारे, इससे शरीर पुनः प्रकृति रूप में वापस आ सकता है।

परमपिता परमात्मा ने रोगों के लिये एक स्वाभाविक शक्ति प्रदान कर रक्खी है। मनुष्य अपने अज्ञान के कारण इस शक्ति का ह्रास करता जाता है। यह शक्ति ओज या वीर्य के रूप में शरीर में रहती और मिलती है। वीर्य का नाश रोगों के लिये उपजाऊ भूमि बनाना है। रोगों के बहुत-से कारण तो इस शक्ति की सहायता से रुक जाते हैं। इस शक्ति के तथा रोग के कारणों में युद्ध चलता रहता है। इस लड़ाई में यदि शक्ति जीत जाय, तो रोग के कारण नष्ट हो जाते हैं, या उस समय के लिये हार जाते हैं। और यदि शक्ति हार जाय, तब शरीर में रोग हो जाता है। जिस पुरुष में यह शक्ति प्रबल होती है, वह रोगों से बचने के लिये उतना ही अधिक बलवान और शक्तिमान समझा जाता है, और जिसमें निर्बल होती है, इसमें रोग उतने ही शीघ्र प्रभाव करते हैं। इस शक्ति को कहीं-कहीं "सत्त्व" भी कहा जाता है। बाहर से मोटे, भारी और मजबूत दीखनेवालों में प्रायः यह शक्ति निर्बल रहती है, और पतले, कमजोर दीखनेवालों में यह शक्ति प्रबल रहती है। अतः बाह्य संगठन प्रायः धोखा दे जाता है।

इसके अतिरिक्त परमात्मा ने शरीर के अन्दर एक और शक्ति दी है। इसका कार्य यह है कि उत्पन्न हुये विकार को बाहर करे। जैसे आँख में गिरा हुआ रज-कण आँसुओं के सहारे बाहर होता है, या लगी हुई चोट कई बार बिना किसी उपाय के अच्छी हो जाती है। शरीर की इस शक्ति का

कार्य इस प्रकार होता है कि विकार को शरीर के रक्षक सिपाही (श्वेताणु) या तो अपने में निगल लेते हैं, या बहाकर आँतों में, त्वचा में, या गुर्दों में पहुँचा देते हैं, जहाँ से वह बाहर हो जाता है। कई बार मात्रा से अधिक खाया भोजन वमन के रास्ते वापस हो जाता है। कई बार यही अपचित भोजन अतिसार के रूप में बाहर होता है। उस समय इसको रोकना अच्छा नहीं। योग्य चिकित्सक का कर्त्तव्य यही है कि वह प्रकृति का सहायक बने। उसके विरुद्ध न चले। इस प्रकार सर्दी भी कई बार बिना उपाय के अच्छी हो जाती है। इसी प्रकार ज्वर भी अपने आप अच्छा हो जाता है। इससे उस परमपिता की बुद्धिमानी का पता चलता है।

यह सत्य है कि बहुत-से रोग परमपिता की कृपा से स्वयं अच्छे हो जाते हैं; परन्तु कई बार इन रोगों के लिये भी चिकित्सक की सहायता की आवश्यकता होती है; क्योंकि एक रोग स्वयं तो अच्छा होता है, परन्तु पीछे से दूसरे रूप में निकलता है अथवा कई बार वही रोग अपने साथ दूसरे रोग को भी खड़ा कर लेता है। यथा—खाँसी अपने साथ क्षय को उत्पन्न कर लेती है। इसलिये रोग या विकार के प्रारम्भ ही में योग्य चिकित्सक से सम्मति ले लेनी चाहिये। अथवा स्वयं समझना चाहिये कि रोग का वास्तविक रूप क्या है। कई रोग शान्त नहीं होते, उनके लिये प्रतीकार की आवश्यकता होती है। यदि अजीर्ण में भोजन करने से ज्वर आता है, उस समय यदि लंघन कर लिया जाय और हलका भोजन—मूँग की दाल का पानी खाया जाय, तो रोग शान्त हो जाता है। परन्तु यदि कारण का पता न हो, तो चिकित्सा करना व्यर्थ होता है।

दवा रोग को हटाती है, यह मानना भूल है, परन्तु दवा रोग के हटाने में सहायक होती है, यह मानना सत्य है। प्राकृतिक शक्ति रोग को हटाने में जोर लगा रही होती है, चिकित्सक या दवा उस शक्ति के सहायक बनते हैं। इन दोनों के परस्पर सहयोग से रोग चला जाता है। इसलिये चिकित्सक का यह मानना कि मैंने दर्द या रोग को अच्छा किया, मिथ्या अभिमान है। यही कारण है कि कई अवस्थाओं में योग्य उपचार करने पर भी रोग अच्छा नहीं होता। उसका मुख्य कारण यही होता है कि उस प्राकृतिक शक्ति का और दवाई का सहयोग नहीं बना। दवाई या चिकित्सक केवल शक्ति के सहायक हैं, रोग का दूर करना उसी दैवी शक्ति का कार्य है।

इसलिये उपचारों को इतना तूल नहीं देना चाहिये, जितना कि आजकल दिया जाता है। रोग के कारण को समझकर उसका प्रतीकार करने का यत्न करना चाहिये।

इसके साथ ही कई प्राकृतिक कारण भी हैं, जिनसे कई बार बचना असम्भव होता है। वे शरीर को निर्बल कर देते हैं, जिससे रोगोत्पत्ति में बड़ी सहायता मिलती है। जिस समय शरीर की रक्षण-शक्ति निर्बल पड़ जाती है, उस समय रोग चारोंओर से आक्रमण करने लगते हैं। जिस समय रोग-रूपी बीज के लिये भूमि पहले ही से तैयार होती है, उस समय उत्पन्न होनेवाले रोगों का कारण भीतर आने ही से रोग खड़ा हो जाता है। कई बार शरीर में शक्ति रहती है, रोग का कारण बाहर से आता है, उस समय जरा देर लगती है। इसलिये कारणों को दो भागों में विभक्त कर रक्खा है—एक, रोग के लिये उचित भूमि बनानेवाले कारण और दूसरे, रोग को उत्पन्न करनेवाले कारण। इनका विवेचन पृथक्-पृथक् आगे किया जायगा।

जिन कारणों से रोग उत्पन्न होते हैं, उनको प्राचीन वैद्यक-शास्त्र ने नीचे लिखे अनुसार विभक्त किया है—

(१) आध्यात्मिक—जो रोग माता-पिता के रज और वीर्य के दोष से, अथवा अपने किये हुए मिथ्या आहार-विहार के कारण शरीर में उत्पन्न होते हैं, उनका समावेश इस शीर्षक में आता है। पिता को यदि सूज़ाक हुआ है, तो पुत्र को जोड़ों में दर्द होता है, जिसका कारण सूज़ाक का विष है, अथवा पिता का बवासीर पुत्र में उतरता है, अथवा अपने ही मिथ्याहार से जब अजीर्ण उत्पन्न होता है, तो यह कारण आध्यात्मिक होता है।

(२) आधिभौतिक—शरीर पर किसी प्रकार की चोट या आघात लगने से रक्त-स्राव या ज़ख्म बन जाता है, अथवा कोई विषैला प्राणी काट लेता है, तो रोग का कारण इस शीर्षक में आता है।

(३) आधिदैविक—जब कोई रोग हवा आदि की खराबी से फैलता है, यथा महामारी (प्लेग), तो इनके कारणों को "आधिदैविक

कारण" कहते हैं। चेचक या प्लेग का फैलाना अपने हाथ में नहीं होता। यह कुदरती कारणों से होता है।

इन्हीं कारणों को दूसरे शब्दों में 'स्वकृत', 'परकृत' और 'दैवकृत' कहते हैं।

स्वकृत-कारण—जो मनुष्य को अपनी ही वैयक्तिक भूल के कारण हों।

परकृत-कारण—जो दूसरे प्राणी के कारण हों।

दैवकृत-कारण—जिनका कारण प्रथम दोनों प्रकारों के कारणों से भिन्न हो। यथा—ऋतुओं के परिवर्त्तन से जब कोई रोग उत्पन्न होता है, तब इसका कारण शरीर में परिवर्त्तन उत्पन्न करके रोग करता है। यदि इन कारणों का और भी मोटा विभाग करें, तो ये सब कारण दो भागों में विभक्त हो जाते हैं—मनुष्यकृत और दैवकृत।

मनुष्यकृत-कारण—भी कई प्रकार के हैं। इनमें से कुछ कारण तो प्रत्येक मनुष्य के हाथ में रहते हैं और कुछ दूसरे व्यक्तियों के हाथ में। उदाहरण के लिये—पड़ोसी के घर की अस्वच्छता पास के स्वच्छ घर-वाले व्यक्ति के लिये हानिकारक हो सकती है। इसी प्रकार कुछ कारण राज्य के अधीन भी हैं। इन सबका समावेश इस शीर्षक में किया जाता है। इस शीर्षक के निम्न प्रकार से विभाग हैं—

(१) **प्रत्येक-कारण**—प्रत्येक मनुष्य के किये हुए मिथ्याहार-विहार का परिणाम-स्वरूप जो रोग उत्पन्न होकर, उस मनुष्य को कष्ट देता है, उसका समावेश इस शीर्षक में किया जाता है।

(२) **कुटुम्ब-कारण**—कुटुम्ब के अन्दर प्रचलित अशुद्ध रीति-रिवाजों के कारण उत्पन्न होनेवाले रोग। कई कुटुम्बों में खास व्यसन और दुराचार होने के कारण कुटुम्ब के मेम्बर उस रोग से ग्रसित होते हैं।

(३) **जाति-कारण**—अपने जाति-बन्धन के कारण कई बार रोगों में फँसना पड़ता है। बाललग्न तथा मदिरापान आदि अशुद्ध प्रचलित रूढ़ियों के कारण रोग का शिकार होना पड़ता है। स्त्रियों को धूप का दर्शन करना भी कई घरों में असम्भव होता है। इसका परिणाम-स्वरूप उनको क्षय-रोग हो जाता है।

(४) **देश-कारण**—कई स्थानों के वायु-जल आदि अपने प्रतिकूल

होता है। वहाँ के पानी से रोग उत्पन्न हो जाता है और अपने देश में आने से ठीक हो जाता है।

(५) **काल-कारण**—बाल्यावस्था, तरुणावस्था और वृद्धावस्था में कई रोग उत्पन्न होते हैं। जिस प्रकार गुदभ्रंश (गुदा का बाहर आना); यह रोग बालकपन ही में होता है। इसी प्रकार आमाशय-व्रण ३५ साल की आयु के पीछे होता है। इसके साथ कई रोग विशेष ऋतु ही में होते हैं। यदि उस समय ऋतु के अनुसार व्यवहार रक्खा जाय, तो उन रोगों से बचा भी जा सकता है।

(६) **माण्डलिक-कारण**—कई रोग हिन्दुओं में अधिकता से मिलते हैं और कई मुसल्मानों में। यथा—मधु-मेह का रोग (पेशाब में शक्कर का आना) प्रायः हिन्दुओं में और यहूदियों में मिलता है; क्योंकि ये दोनों कौमें कम मेहनती और अधिक खानेवाली होती हैं। इसी प्रकार आँखों की बीमारी प्रायः मुसल्मानों में होती है; क्योंकि इनका विवाह परस्पर एक ही रक्त में होता है।

(७) **राज्य-कारण**—देश-वासियों के प्रतिकूल होते हुये भी केवल अपने स्वार्थ ही के उद्देश्य से जब राज्य हानिकारक वस्तुओं का प्रचार करवाता है। यथा भारत में मद्य या अफीम की बिक्री। इनका उपयोग शरीर के लिये हानिकारक है; परन्तु राज्य इनका प्रचार करता है। इधर शिक्षा के प्रचार की ओर उन्नति नहीं करता।

(८) **महाकारण**—ये वे कारण हैं, जो सम्पूर्ण विश्व में एक समान फैलकर रोग उत्पन्न करते हैं। उदाहरण के लिये—सन् १९१८ में जो इन्फ्लुयन्जा रोग फैला था, उसका कारण यही महाकारण था। इस महाकारण का कारण "अधर्म" है। अधर्म के कारण मनुष्यों की प्रकृति में अन्तर आजाता है, इसीसे उसके फल-स्वरूप यह रोग होता है।

दैव-कृत—दैव-कृत कारण नीचे प्रकार के हैं—

(१) गरमी, ठण्डी वायु के कारणों से रोग उत्पन्न होते हैं।

(२) बिजली, धूप या बर्फ के गिरने से अकस्मात् रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

कॉलरा, ब्युबोनिक, प्लेग, महामारी अथवा मरकी आदि रोग

प्राचीन आर्य वैद्यक-शास्त्र के अनुसार दैव-कृत हैं, परन्तु अर्वाचीन चिकित्सा-शास्त्र से ये रोग भी मनुष्यकर्त्तृक ही हैं। मनुष्य की भूल ही से ये सब रोग फैलते हैं। दैव का इसमें किसी प्रकार का हाथ नहीं होता, ऐसी मान्यता अर्वाचीन वैद्यक-शास्त्रियों ने की है। उनका विचार यह है कि इन रोगों का कारण "कृमि" है। ये कृमि पानी और वायु के द्वारा एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य तक पहुँचते हैं। अथवा एक देश से दूसरे देश तक पहुँचते हैं। कृमि भी उसी समय प्रभावशाली होते हैं, जब शारीरिक रक्षण-शक्ति निर्बल होती है। यदि शक्ति प्रबल हो, तो ये कृमि भी प्रभाव नहीं कर सकते।

जिन दैवी कारणों से मनुष्य के अन्दर रोग उत्पन्न होता है, वे कारण मनुष्य को।दु:ख देने के लिये प्रकृति ने बनाये हैं, ऐसी मान्यता करना भूल है। वातावरण के अन्दर जो-जो परिवर्त्तन होते हैं, उनके कारण प्रकृति शुद्ध हो जाती है, रोग शान्त हो जाते हैं। उदाहरण के लिये—गर्मियों में जलाती हुई लुवें वायु-मण्डल में रहनेवाले सब कृमियों को प्राय: मार देती हैं। इसी प्रकार हेमन्त-ऋतु की कड़कड़ाती सर्दी में सब रोगोत्पादक कृमि मर जाते हैं। पानी साफ हो जाता है। यही कारण है कि ज्येष्ठ और आषाढ़ में एवं पौष और मार्गशीर्ष के अन्दर कोई रोग (व्यापक रोग) नहीं रहता। यदि कोई मनुष्य अपनी शारीरिक शक्ति के अनुसार इन परिवर्त्तनों से रक्षा न करे, तो वह इन रोगों से ग्रस्त हो सकता है। इन परिवर्त्तनों से भी उचित उपायों द्वारा बचा जा सकता है।

रोगों के सब कारण नीचे के दो भागों में, मुख्यरूप से, आजाते हैं। यथा—

(१) **प्राथमिक कारण**—रोगोत्पत्ति के लिये उचित भूमि। उदाहरण के लिये—अभीतक संसार में ऐसा कोई मनुष्य या बच्चा उत्पन्न नहीं हुआ, जिसको जन्मते समय क्षय-रोग हो। परन्तु जितने भी बच्चों में क्षय-रोग पाया गया है, उन सबमें इस रोग के लिये उचित क्षेत्र उपस्थित देखा गया है। यदि बच्चे को अच्छे उपायों से पाला जाय, तो उसमें यह रोग नहीं-भी हो सकता है।

(२) **रोगोत्पत्ति के सत्य कारण**—चोट का लगना, उसका पकना और पीब का बनना—इसमें चोट पीब की उत्पत्ति का सत्य कारण है। इन कारणों को तात्कालिक कारण भी कहते हैं।

रोगोत्पत्ति के प्राथमिक कारण

एक ही घर में रहनेवाले एक ही जगह खाना खानेवाले व्यक्तियों में से कुछ एक को तो प्लेग हो जाता है और दूसरे मनुष्य बच जाते हैं, इस बात का क्या कारण है ? इस प्रश्न का निराकरण रोग के योग्य कारणों को समझने से सुगमता-पूर्वक बुद्धि में आ सकता है। मिथ्या आहार-विहार के कारण अथवा पैतृक निर्बलता के कारण जब शरीर किसी विशेष रोग के लिये निर्बल होता है, उस समय यदि वही रोग उस पर आक्रमण करे, तो वह इस रोग में फँस जायगा, दूसरे रोग से बच जायगा। जिस प्रकार एक भूमि ऊसर होती है, उसमें कोई बीज उत्पन्न नहीं होता है। एक दूसरी प्रकार की भूमि होती है, जिसमें खास वस्तु ही—मकई या गेहूँ उत्पन्न होता है, दूसरी कोई वस्तु नहीं होती। तीसरे प्रकार की भूमि वह है, जिसमें उचित उपायों द्वारा हम दूसरी वस्तु भी उत्पन्न कर लेते हैं। इसी प्रकार कई मनुष्य इस प्रकार के होते हैं कि थोड़ी भी सर्दी उनमें रोग उत्पन्न कर देती है। इसी प्रकार कोई मनुष्य किसी रोग के लिये, कोई किसी रोग के लिये योग्य होते हैं। यह सुना जाता है कि चीनी और जापानियों को हैजा, कॉलरा नहीं होता और बकरी को क्षय-रोग नहीं होता। ये कारण स्वयं किसी रोग को उत्पन्न नहीं करते, परन्तु रोगों के उत्पन्न होने के लिये उचित भूमि बना देते हैं। जिस प्रकार मल-बन्ध का होना स्वयं इतना कष्टदायक नहीं होता, जितना इस अवस्था में मलेरिया विष का शरीर में पहुँचकर रोग उत्पन्न करना होता है। यदि मल-बन्ध न होता, तो विष भी प्रभावशाली नहीं बन सकता था।

ये प्राथमिक कारण कई प्रकार के हैं। इनमें से मुख्य कारण नीचे दिये जाते हैं—

(१) माता-पिता की निर्बलता, (२) एक ही रक्त में विवाह, (३) बाल-लग्न, (४) पैतृक कारण, (५) आयु, (६) जाति, (७) धंधा, (८) प्रकृति।

१—माता-पिता की निर्बलता—गर्भ रहते समय माता-पिता दोनों अथवा किसी एक में यदि निर्बलता होगी, तो पुत्र के अन्दर अवश्य ही निर्बलता आयेगी। इसी प्रकार यदि माता अधिक आयु की होगी अथवा बाप अधिक आयु का होगा, तो बेजोड़ से उत्पन्न शिशु अवश्य निर्बल रहेगा।

२—एक ही रक्त में विवाह—इस प्रकार से उत्पन्न प्रजा बहुत ही निर्बल होनी सम्भव है। जिस विवाह से प्रजा निर्बल उत्पन्न होती है, उसका वैद्यक-शास्त्र निषेध करता है। आधुनिक वैज्ञानिक भी दूर-दूर विवाह करने के पक्षपाती हैं। महात्मा मनु ने कहा है कि, "माता के सात पिण्ड बचाने चाहिये और पिता का गोत्र बचाना चाहिये।" जिस प्रकार दो भिन्न-भिन्न आमों की कलम परस्पर करने से एक नया ही आम उत्पन्न होता है, जो गुणों में, स्वाद में दोनों से भिन्न होता है, उसी प्रकार दूर-दूर के विवाहों में सन्तति भी उत्तम उत्पन्न होती है। दूर के विवाहों से दो भिन्न रक्त मिलकर एक नई वस्तु उत्पन्न करते हैं। इसीसे प्राचीन ग्रन्थों में "कन्या" का नाम "दुहिता" दिया है, जिसका अर्थ है कि "दूरे हिता दूहिता सैव दुहिता"—दूर भेजी जाती है, इसीलिये दुहिता कहते हैं। कन्या का सम्बन्ध यथाशक्ति दूर करना चाहिये।

३—बाल-लग्न—अधकच्चा या कच्चा फल जिस प्रकार पूरा स्वाद नहीं दे सकता, या जिस प्रकार बीज के लिये अयोग्य समझा जाता है, उसी प्रकार छोटी आयु का विवाह होता है। इस आयु के बालक न तो विवाह का सच्चा अर्थ समझते हैं, और न उनको इस समय के गर्भाधान की हानि का पता होता है। उनकी दृष्टि में यह एक गुड़िया का खेल होता है। एक होशियार माली जब यह देखता है कि छोटी उमर में फूल आगया है, तो वह उसको तोड़ देता है, जिससे फल न बने और वृक्ष की शक्ति सुरक्षित रहे। इसी प्रकार मनुष्य के अन्दर भी उसकी शक्ति उचित आयु तक सुरक्षित रहनी चाहिये। वह शक्ति इसके शरीर के अन्य धातुओं का पोषण करती है। बाल-लग्न से शरीर अवश्य निर्बल रहेगा, क्योंकि अपक, निर्बल बीज पके हुये बीज को उत्पन्न नहीं कर सकता। इसके अतिरिक्त चिन्ता, कम कमाई, खान-पान की कमी के कारण मनुष्य स्वास्थ्य को सँभाल नहीं सकता। इससे शरीर और भी निर्बल रहता है। निर्बल, कमजोर माता-पिता सशक्त बच्चे का जन्म नहीं दे सकते।

४—पैतृक-कारण—कई रोग, कई बुराइयाँ और कई गुण बच्चों में माता-पिता से उतरते हैं। जिस प्रकार ईमानदारी या सत्यता, स्वच्छता आदि गुण बच्चों में माँ-बाप से आते हैं, उसी प्रकार बेईमानी, धोखेबाजी,

जुल्मीपन आदि अवगुण भी माँ-बाप से बच्चों में आते हैं। इसी प्रकार कई रोग भी बच्चों में उतरते हैं। इन रोगों में दमा, पागलपन, कोढ़, अर्श, अपस्मार, मदिरापान, उपदंश, गरमी आदि मुख्य हैं। क्षय-रोग रोग के रूप में नहीं उतरता; परन्तु क्षय-रोग की उत्पत्ति के सब प्राथमिक कारण शिशु में पाये जाते हैं। पीछे से माता का दूध पीने से या रोग-प्रस्त माता के पास रहने से उसे यह रोग लागू पड़ जाता है। इसलिये मनु महाराज ने कहा है कि, "क्षय-रोगी, खिन्न रोगी, कुष्टी, अपस्मारी, बवासीरवाले, घरों को छोड़ देते हैं।" कई बार कई रोग एक संतति को छोड़कर दूसरे में आते हैं अर्थात् पिता के रोग पुत्र में न जाकर पोते में जाते हैं। कई बार कन्याओं ही में जाते हैं। इस प्रकार के जन्म के रोग का जाना असम्भव होता है; क्योंकि ये रोग बीज-दोष के कारण होते हैं।

५—**आयु**—कई रोग आयु के साथ सम्बन्ध रखते हैं। कफ के रोग प्रायः बच्चों को होते हैं। इसी प्रकार वायु के रोग बुड्ढों को प्रायः होते हैं। युवावस्था में रोगों को रोकने की शक्ति अधिक होती है, अतः रोग भी कम होते हैं।

६—**जाति**—पुरुष की अपेक्षा स्त्री को रोग जल्दी लागू पड़ता है। इनका रोग जाता भी कठिनता से है। स्त्रियों का शरीर पुरुषों की अपेक्षा अधिक कोमल और निर्बल रहता है। संतान-प्रसव के कारण इनका शरीर और भी निर्बल हो जाता है।

७—**धंधा**—कई प्रकार के धंधे शरीर को रोगों के लायक बना देते हैं। क्लर्की का काम आँख और छाती को, रंग का काम फेफड़ों को, छापेखाने का काम पेट को या कलाई को, पत्थर या स्लेट तोड़ने का काम अथवा वस्त्रों के कारखानाओं का काम, कोयले की कानों का काम, बहुत बोलनेवाला काम या शीशों के कारखाने में फूँकने का काम करना शरीर को निर्बल, कमजोर, अशक्त बना देता है। इन व्यक्तियों को बुढ़ापा शीघ्र आजाता है, आयुष्य घट जाता है।

८—**प्रकृति**—प्रकृति, स्वभाव और मिजाज भी रोगोत्पत्ति में सहायक होता है। किसी की प्रकृति वातिक होती है, इसलिये वह वात रोगों से विशेषतः आक्रान्त रहता है। इस प्रकार का मनुष्य जब कभी वायु करनेवाली वस्तु खा लेता है, तभी रोगी हो जाता है। किसी की पित्त-प्रकृति

होती है और किसी की कफ। इसलिये जब कभी किसी को आहार-विहार से प्रकृति में विकार हुआ कि तुरन्त रोग उत्पन्न हो जाता है।।

रोग को उत्पन्न करनेवाले समीपवर्त्ती कारण

रोग को उत्पन्न करनेवाले समीपवर्त्ती कारणों में नीचे लिखे मुख्य कारणों का समावेश होता है।

१—वायु	६—वस्त्र	११—रस-बिगाड़	१६—मन का विकार
२—पानी	७—विहार	१२—जन्तु	१७—अकस्मात्
३—खुराक	८—मलिनता	१३—चेप-संक्रमण	१८—दवाइयाँ
४—कसरत	९—व्यसन	१४—ठण्डी	
५—नींद	१०—विष-योग	१५—गरमी	

इनमें से प्रथम पाँच बातों का वर्णन प्रथम किया जा चुका है। इन पाँचों बातों के योग्य आहार-विहार से शरीर स्वस्थ रहता है, और इनके विकार से रोग उत्पन्न होता है। वस्त्र और विहार का उचित उपयोग शरीर को स्वस्थ रखता है।

६—**वस्त्र**—वस्त्र शरीर का रक्षण करता है। यदि इसको ऋतु के अनुसार और उचित उपाय से पहना न जाय, तो नाना प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं। बच्चे के शरीर पर ठण्डक का असर बहुत जल्दी होता है। यदि इनको ठीक प्रकार से सर्दी से बचाया न जाय, तो खाँसी, छाती तथा पेट के रोग लागू पड़ जाते हैं। पाँव को खुला तथा बार-बार गीला रखने से स्वास्थ्य खराब होता है। तंग वस्त्र पहनने से छाती और यकृत पर दबाव पड़ता है, जिससे रक्त-संचार में बाधा उत्पन्न होती है। गरम देश में, या गरम ऋतु में ढीला कपड़ा पहनना चाहिये, सर्दियों में तंग कपड़ा पहनने की जरूरत है। गरमी में तंग गरम कपड़ा पहनने से शरीर में छोटी-छोटी फुन्सियाँ निकल आती हैं। मैले वस्त्र पहनने से चमड़े के रोग हो जाते हैं। चिकने और मैले वस्त्र से संक्रामक रोग हो जाते हैं।

७—**विहार**—विहार का अर्थ यहाँ पर "स्त्री-सेवन" अर्थ में लिया गया है। विहार भी शरीर का एक धर्म है। तथापि इसके हीन योग और अति योग से कई प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं। अतियोग से क्षय, धातु-क्षय, क्षीणता, पाण्डु, शूल, प्रमेह, प्रदर, गरमी, रक्त-पित्त, अपस्मार, उन्माद आदि उत्पन्न

होते हैं। हीनयोग से धातु-स्राव (स्वप्न में धातु जाना) आदि कई रोग उत्पन्न होते हैं।

८—**मलिनता**—मलिनता बहुत-से दर्दों को उत्पन्न करती है। घर के आस-पास की गन्दगी वायु को खराब करती है। वायु के खराब होने से नाना प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं। शरीर की मलिनता बहुत-से रोगों को उत्पन्न करती है। दाद, गुमड़ा आदि रोग शरीर की मलिनता ही से होते हैं। मलिनता से शरीर के छिद्र रुक जाते हैं। इससे रक्त शुद्ध नहीं होता। इससे कई प्रकार के रोग होते हैं।

९—**व्यसन**—व्यसनों से भी अनेक भयंकर रोग उत्पन्न होते हैं। शराब, ताड़ी, अफीम, भाँग, तम्बाकू, चाय, कॉफी आदि वस्तुओं का अति उपयोग या नित्यप्रति सेवन करने से व्यसन के रूप में पड़ जाते हैं। इन वस्तुओं के उचित उपयोग से शरीर को लाभ भी पहुँचता है; परन्तु नित्य उपयोग करने से फायदा करने की अपेक्षा इनसे नुकसान होता है। इन वस्तुओं में थोड़ा-सा मादक गुण है, इसलिये इनको नशे के रूप में लोग व्यवहार करते हैं। व्यसन के तरीके उपयोग करने से निम्न रोग उत्पन्न होते हैं।

(१) **शराब**—रक्त-विकार, बदहज़मी, वमन, मल-बन्ध, खटास, मन्दाग्नि यकृत रोग और मस्तिष्क के रोग उत्पन्न करता है। आलस्य, सुस्ती, नाहिम्मतपन, डरपोकपन, बेअक़लपन, यह मद्य पीनेवालों के खास गुण हैं। मद्यपान से फेफड़े और जिगर के भयङ्कर रोग उत्पन्न होते हैं। क्षय, मधुप्रमेह, गुरदे का रोग भी प्रायः इनको होते हैं। मद्य की अधिक मात्रा शरीर में विष की मात्रा को बढ़ाती है। मद्य बुद्धि को बिगाड़ता है।

(२) **ताड़ी**—पेशाब के रोग, मन्दाग्नि, आध्मान, अतिसार आदि रोग उत्पन्न होते हैं और बुद्धि को भ्रष्ट करती है। गुरदे का रोग भी इसके सेवन से होता है।

(३) **अफीम**—अफीम के व्यसन से मन की सुस्ती, बुद्धि कम, दिवानापन आदि रोग उत्पन्न होते हैं। अफीम के खाने से शरीर की शक्ति नष्ट हो जाती है।

(४) **भाँग**—बुद्धि तथा होशियारी का नाश हो जाता है, मनुष्यता कम हो जाती है, मूर्खता बढ़ती है, स्मरण-शक्ति घट जाती है। विचार-शक्ति

प्राण-नाशक हैं। २—ज्वर की नाड़ी गरम और अधिक उतावली चलती है। ३—चिन्ता तथा भय से नाड़ी मन्द पड़ जाती है। ४—कामातुर और क्रोधी मनुष्य की नाड़ी तेजी से चलती है। ५—रक्त कुपित हो, तो नाड़ी गरम तथा पत्थर-जैसी भारी चलती है। ६—आम दोषवाले व्यक्ति की नाड़ी बहुत भारी चलती है। ७—गर्भिणी की नाड़ी गम्भीर, पुष्ट और हल्की चलती है। ८—मन्दाग्नि, धातु-क्षय, सोये हुये या निद्रा से उठे और आलसी इन सब मनुष्यों की नाड़ी स्थिर चलती है। ९—बहुत भूख लगी हो, तो नाड़ी चंचल चलती है। १०—जब बहुत दस्त लगे हों, तो नाड़ी बहुत उतावली चलती है। ११—भोजन करने के पीछे नाड़ी मन्द चलती है। १२—जो नाड़ी टूट-टूटकर चले, या कभी धीरे और कभी तेज चले, तो उसे मृत्यु की नाड़ी समझना चाहिये।

डाक्टरी नाड़ी-परीक्षा—डाक्टरी परीक्षा में नाड़ी के ऊपर ध्यान नहीं दिया जाता, यह मानना भूल है। डाक्टर लोग भी नाड़ी देखते हैं और उसके आधार पर रोग निर्णय करते हैं। कई तबीब नाड़ी परीक्षा में गहरा ज्ञान रखते हैं, इसलिये नाड़ी-परीक्षा ही से रोग पहचान लेते हैं। जिस प्रकार वैद्यों ने नाड़ी की भिन्न-भिन्न गति को वात-नाड़ी, पित्त-नाड़ी या कफ-नाड़ी नाम दिया है, उसी प्रकार डाक्टरों ने भी नाड़ी को धीमी, तेज, भरी हुई, छोटी, सख्त, अनियमित, अन्तरिया आदि नाम दिये हैं। भिन्न-भिन्न रोगों में नाड़ी भी भिन्न-भिन्न प्रकार की चलती है। जैसे टाइफाईड ज्वर में नाड़ी का आघात दुहरा होता है। इस बात का विवरण संक्षेप में नीचे दिया जाता है—

उतावली नाड़ी—नाड़ी की गति स्वस्थ अवस्था में आयु के अनुसार कितनी-कितनी रहती है, इसका विवरण प्रथम दे दिया गया है। एक निरोगी और स्वस्थ मनुष्य की आयु यदि २१ से ५० हो, तो नाड़ी का स्पन्दन ७५ से ८५ होगा। रोग की अवस्था में यही संख्या बढ़कर १०० से १५० तक पहुँच जाती है, उस समय इसको उतावली नाड़ी कहते हैं। क्षय-रोग की निर्बलता अथवा अन्य प्रकार की निर्बलता में नाड़ी बहुत तेजी से चलती है। नाड़ी की तेजी के साथ हृदय का स्पन्दन भी अधिक तेजी से होता है; क्योंकि नाड़ी की चाल हृदय के स्पन्दन पर आधार रखती है। जिस-जिस प्रकार नाड़ी की गति बढ़ती जाती है, रोग भी उसी प्रकार बढ़ता जाता है और

मनुष्य भयानक स्थिति में उतरता जाता है। ज्वर में नाड़ी प्रायः सदा तेज रहती है और त्वचा गरम रहती है। नीचे के रोगों में नाड़ी थोड़ी या बहुत तेजी से चलती है और शरीर गरम रहता है—सन्निपात ज्वर, सख्त संधिवात, सख्त खाँसी, क्षय, मस्तिष्क, फेफड़े, हृदय, आमाशय, और आंत्र आदि की शोथ में, तीव्र अतिसार में, यकृत, आँख या कान की विद्रधि में, प्रमेह या तीव्र भयानक व्रण में, पुराने प्रमेह में भी नाड़ी ज्वर के समान रहती है।

धीमी नाड़ी—स्वस्थ अवस्था में जिस प्रकार नाड़ी चलनी चाहिये, उससे यदि मन्द चले, तो इसको मन्द या धीमी नाड़ी कहते हैं। नीचे लिखी अवस्थाओं में नाड़ी धीमी चलती है—शीत या ठण्ड, श्रान्ति, भूख के रोग में, शोक या चिन्ता में, उदासी में, मस्तिष्क के कई रोगों में, यथा—अपस्मार में, बेभान अवस्था में एवं सब रोगों की अन्तिम अवस्थाओं में नाड़ी धीमे-धीमे चलती है।

भरी हुई नाड़ी—नाड़ी-परीक्षा में जिस प्रकार अँगुलियों को नाड़ी की तेज या मन्द गति का अनुभव होता है, उसी प्रकार उसके जोर (वज़न) और कद का भी ज्ञान होता है। जिस समय यह जोर या वज़न साधारणावस्था से अधिक बढ़ा होता है, उस अवस्था को भरी हुई नाड़ी या स्थूल नाड़ी कहते हैं। जिन पुरुषों में रक्त की मात्रा बढ़ी होती है, जिनको ताप बहुत चढ़ा होता है तथा शरीर के किसी स्थान पर शोथ होने पर नाड़ी भरी हुई चलती है। भरी हुई नाड़ी यह बताती है कि शरीर में रक्त पूरा है, या बढ़ा। जिस प्रकार नदी में पानी की बढ़ती आने पर पानी का जोर बढ़ जाता है, उसी प्रकार रक्त के बढ़ने से नाड़ी भी बढ़ जाती है। गर्भवती स्त्री की नाड़ी भरी हुई रहती है। इसका ज्ञान अभ्यास से किया जा सकता है।

छोटी नाड़ी—थोड़े रक्तवाले मनुष्य की नाड़ी हल्की और छोटी रहती है। इस प्रकार नाड़ी पर अँगुली रखने से नाड़ी साधारणावस्था से छोटी मालूम पड़ती है। इस प्रकार की नाड़ी पतली अनुभव होती है। शरीर के किसी भी मार्ग से रक्त अधिक मात्रा में निकल जाय, या जाता हो, इस प्रकार के रोगों में, प्रायः पुराने रोगों में, कॉलरे में तथा रोगों के पीछे की निर्बलता में नाड़ी निर्बल अर्थात् पतली चलती है। इस नाड़ी से यह समझना चाहिये कि शरीर में रक्त की कमी है। रक्त के प्रमाण से नाड़ी

के चार भाग किये जाते हैं। यथा—भरी हुई, मध्यम, छोटी और बे मालूम। रक्त के विशेष जोश में आने से नाड़ी भरी हुई, रक्त की मध्यमावस्था में मध्यम और अल्प रक्त में छोटी और "कॉलरा" आदि रोगों में जब रक्त बहुत ही कम हो जाता है, या उसका संचार घट जाता है, तब नाड़ी 'बेमालूम" चलती है।

सख्त या कोमल नाड़ी—लाल रक्त को बहानेवाली धमनियों की दीवारों में एक प्रकार के तन्तु रहते हैं, जिनमें संकुचित और विकसित होने का गुण रहता है। रोग के कारण इस संकोच और विकास में अन्तर आजाता है। वृद्धावस्था में धीरे-धीरे इनका संकोच-गुण अपने आप कम हो जाता है। जिस समय यह संकोच-गुण कम हो जाता है, उस समय नाड़ी का स्पर्श भी कठोर हो जाता है; और जब यह गुण बढ़ जाय, तो नाड़ी कोमल हो जाती है। इसकी पहचान यह है कि नाड़ी के ऊपर तीन अँगुलियाँ रखकर पुनः नाड़ी के स्थान से ऊपर कोहनी के पास जहाँ यह नाड़ी धमनी से विभक्त होती है, उससे थोड़ा नीचे इसी की दूसरी अँगुलियों से दबाना चाहिये। यदि अब भी नाड़ी-स्थान पर उसी प्रकार का स्पर्श लगे, तो समझना नाड़ी सख्त या कठोर है; और यदि स्पर्श न हो, तो समझना नाड़ी मृदु या कोमल है। रोग में नाड़ी प्रायः कठिन हो जाती है। महाधमनी के प्रत्यावर्त्तन में धमनी का स्पन्दन हथौड़े के माफिक होता है।

अनियमित नाड़ी—स्वस्थ अवस्था में नाड़ी के दो स्पन्दनों या आघातों के बीच में अन्तर रहता है। यह अन्तर हृदय के संकोच और विकास के पश्चात् विश्राम लेने का होता है। स्वस्थ अवस्था में यह अन्तर एक समान रहता है। परन्तु कई रोगों से इसमें अन्तर कम या अधिक हो जाता है। अर्थात् एक स्पन्दन होने के बहुत देर बाद दूसरा स्पन्दन आता है, या दो स्पन्दन देकर फिर अन्तर आता है। इस परिवर्त्तन को अनियमित नाड़ी कहते हैं। यह परिवर्त्तन निम्न रोगों में होता है—हृदय के रोगों में, फेफड़ों के रोगों में, मस्तिष्क के रोगों में, अजीर्ण में, सन्निपात-ज्वर में, प्रसूतिका-रोग में, किसी रोग की भयानक स्थिति में नाड़ी के अन्दर परिवर्त्तन आता रहता है।

आन्तरिया नाड़ी—नाड़ी के दो-तीन प्रहार होने के पीछे बीच में एकाध प्रहार जितना अन्तर पड़ जाता है, अर्थात् प्रहार का पता नहीं चलता।

नाड़ी बन्द होगई है, ऐसा प्रतीत होता है। पीछे फिर एक दूसरे के ऊपर दो-तीन तावड़तोड़ होते हैं और फिर नाड़ी का स्पन्दन बन्द हो जाता है। इस प्रकार से चलनेवाली नाड़ी को "आन्तरिया नाड़ी" कहते हैं। हृदय की बीमारी में जब रक्त भली प्रकार शरीर में नहीं फिरता, तब मोटी रक्त-वाहिनियाँ चौड़ी रहती हैं, उनका छिद्र रक्त से पूरा भरता नहीं; इससे यह गति रहती है। इसी प्रकार मस्तिष्क का कोई भाग बिगड़ने से भी यही परिवर्त्तन आता है।

डाक्टर लोग नाड़ी-परीक्षा में तीन बातों का ध्यान रखते हैं—१—नाड़ी की चाल उतावली है या धीमी, २—नाड़ी का आकार छोटा है या बड़ा, ३—नाड़ी सख्त है या नरम। रक्त की प्रबलतावाले जोरदार मनुष्य के ज्वर में, मस्तिष्क की शोथ में, यकृत के रोग में और सन्धिवात आदि रोगों में नाड़ी उतावली, अधिक बड़ी और अधिक कठोर चलती है। यदि इस प्रकार की नाड़ी अधिक समय तक चले, तो भयावह होती है। ज्वर के रोग में यदि इस प्रकार की नाड़ी बहुत दिन चले, तो रोगी की आशा थोड़ी रहती है। यदि नाड़ी की गति धीरे-धीरे घट जाय, तो रोगी के अच्छा होने की आशा रहती है। फस्द खोलने से या स्वयं रक्त निकलने के कारण अथवा जलौका या सींगी से रक्त निकलवाने पर जब रक्त का दबाव घट जाता है, तो रोगी को स्थिति अच्छी प्रतीत होती है। निर्बल मनुष्यों को जब ज्वर आता है, अथवा शरीर के किसी भाग में शोथ हो जाती है, तो उस समय उतावली और छोटी नाड़ी चलती है। आंत्रों में या पेट के पड़दे में सूजन हो जाय, उस समय नाड़ी उतावली, सख्त और छोटी नाड़ी चलती है। यह नाड़ी यद्यपि छोटी होती है, तथापि इतनी कठिन होती है कि अँगुलियों को तार के समान बारीक और कठिन लगती है। यह नाड़ी भी रक्त के जोर को बताती है।

नाड़ी का श्वास के साथ सम्बन्ध—स्वस्थ, निरोगी, युवा मनुष्य की नाड़ी-संख्या साधारणतः ७२ से ८० रहती है, इसी मनुष्य की श्वास-संख्या १५ से १८ रहती है। इसका मोटा अनुपात १ : ४ का रहता है। कई रोगों में इस अनुपात के अन्दर अन्तर आजाता है। अर्थात् यह १ : ३ या १ : २ हो जाता है। जिस प्रकार निमोनिया में नाड़ी की गति बढ़

जाती है; परन्तु श्वास की गति में कमी आजाती है। इस प्रकार से अनुपात बदल जाता है, जो खतरनाक होता है। ज्वर की साधारणावस्था में नाड़ी की गति अवश्य बढ़ती है; परन्तु उसके साथ श्वास-गति भी बढ़ जाती है और जबतक दोनों का अनुपात एक-सा रहे, तबतक जीवन का इतना भय नहीं होता।

इसी प्रकार ताप-परिमाण--शरीर की गरमी के साथ भी नाड़ी का सम्बन्ध है। यथा—स्वस्थ, युवा व्यक्ति की नाड़ी-संख्या ७५ से ८० है, तो इसी व्यक्ति का ताप-परिमाण ९८.४ फार्नहाइट होता है। अब यदि नाड़ी-संख्या १० अधिक हो, तो ज्वर ९९.४ या इसके लगभग होना चाहिये। अर्थात् एक डिग्री ताप-परिमाण बढ़ने से नाड़ी का स्पन्दन दस अधिक होता है। यदि यह अनुपात चलता जाय और श्वास भी नाड़ी का सहयोग देता जाय, तो योग्य चिकित्सा से रोगी के बचने की सम्भावना करनी चाहिये।

नाड़ी के विषय में लोगों का विश्वास—केवल नाड़ी-परीक्षा ही से सब रोगों का, उनके कारणों का पता लग सकता है, लोगों की यह धारणा सर्वथा असत्य है। इससे ये लोग ठगे जाते हैं और नाड़ी-विज्ञान का बहाना रखनेवाले वैद्यों या हकीमों के जालों में फँस जाते हैं। कई बार नाड़ी-परीक्षा के सम्बन्ध में बड़ी अद्भुत और असंभवित बातें सुनने में आती हैं। इन बातों को सत्य मानना प्रायः भ्रम में डाल देता है। नाड़ी के अभ्यास से बहुत ही सूक्ष्म बातों का कई बार पता चल जाता है। तथापि नाड़ी-परीक्षा से रोग के सब कारणों का अथवा क्या खाया है और क्या पिया है, इन बातों का पता चलना असंभव है। इन बातों पर विश्वास करना भूल है। लोगों की यह जो मान्यता बनी हुई है कि वैद्य को अवश्य इतना ज्ञान होना चाहिये कि वह नाड़ी देखकर रोग का निर्णय, उसके कारण बता दे, वह असत्य है। लोग डाक्टर को अपना सारा कच्चा चिट्ठा सुनाने को तैयार रहते हैं। उनका विश्वास है कि डाक्टर लोगों को नाड़ी-ज्ञान नहीं होता। उधर वैद्य या हकीम के सामने बैठकर हाथ आगे कर देते हैं और पूछने पर कि "क्या शिकायत है"? वे कहते हैं—आप देख लीजिये। उनकी दृष्टि में नाड़ी-ज्ञान सब कुछ बता देता है। सच्चा वैद्य उनको ये बातें समझा देता है। परन्तु मूर्ख वैद्य भी इन मूर्खों को खूब फाँसते हैं। उन्होंने भी सोच रक्खा है कि नाड़ी पर हाथ रखते ही

ज्योतिषी की भाँति वे बातें कहनी हैं, जिनके कई अर्थ हो जायँ। यथा—तुम्हारे शरीर में कमजोरी है, भूख नहीं लगती, भोजन पचता नहीं, कब्जियत रहती है—इत्यादि। ये बातें इस प्रकार की हैं, जो साधारण हैं और प्राय: सबमें मिलती हैं। मूर्ख रोगी भी समझता है कि वैद्यजी नाड़ी-ज्ञान में बड़े पहुँचे हुए हैं।

नाड़ी का स्पन्दन किस प्रकार से उत्पन्न होता है और उसका सम्बन्ध कहाँ से है इत्यादि बातों का विवेचन पहले किया जा सकता है। शरीर के किसी भी अंग में विकार या रोग होने से उसका प्रभाव शरीर के सारे अंग पर पड़ता है। कई बार यह प्रभाव बहुत स्पष्ट होता है और कई बार बहुत कम। उदाहरण के लिये पाँव की चोट से सारा शरीर रोगी हो जाता है। इसलिये स्थानिक रोग भी एक प्रकार से व्यापक रोग होता है। यही कारण है कि पाँव की चोट से भी नाड़ी की गति में अन्तर आजाता है; क्योंकि प्रत्येक धमनी तीनों दोषों का वाहन कर रही हैं। ये दोष रक्त के साथ सब शरीर में फिर रहे होते हैं। इससे यह नहीं समझना चाहिये कि पाँव के काँटे को नाड़ी वैद्य देखकर बता सकता है। इसी प्रकार कान में पड़ी पीव को नाड़ी बता सकती है, यह असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है।

नाड़ी-परीक्षा के साथ रोगी की अन्य स्थिति पर उसके उठने-बैठने, लेटने पर भी ध्यान रखना चाहिये। कई मनुष्य थोड़े-से रोग को भी बहुत मानते हैं और दूसरे भयानक रोग को भी थोड़ा गिनते हैं। कई बार रोगी अपने रोग को स्वयं नहीं बता सकता, जैसा बच्चों में या मूर्च्छित अवस्था में होता है। इसलिये चिकित्सक को चाहिये कि वह अपनी परीक्षा को पूर्ण करने का यत्न करे। जिस चिकित्सक की परीक्षा जितनी पूर्ण होती है, उतनी ही उसे अपने कार्य में सफलता मिलेगी। डाक्टर लोग ध्वनि-यंत्र या स्टैथस्कोप से परीक्षा करते हैं। लोगों का इसके विषय में भी भ्रम फैला हुआ है। उनकी मान्यता यह है कि इसके द्वारा वे सब रोगों को जान लेते हैं। वास्तव में यह भी नाड़ी-ज्ञान ही का एक रूप है। वैद्य मणि-बन्ध पर नाड़ी देखते हैं, डाक्टर हृदय पर ध्वनि-यंत्र से स्पन्दन को जानते हैं।

नाड़ी-ज्ञान शास्त्र के पढ़ने से नहीं आता। बार-बार रोगियों की परीक्षा से तथा पूर्व जन्म में संचित पुण्यों से नाड़ी-ज्ञान प्राप्त होता है। योगा-

भ्यास की भाँति एकाग्रचित होकर नाड़ी-ज्ञान करना चाहिये। यदि इस प्रकार न किया जायगा, तो बृहस्पति के समान बुद्धिमान व्यक्ति को भी नाड़ी-ज्ञान नहीं हो सकता।

(ब) त्वचा-परीक्षा—चमड़ी के स्पर्श से शरीर की गरमी, ठण्ड और पसीने की परीक्षा होती है। वात-रोगी की चमड़ी ठण्डी रहती है, उसमें रूखापन होता है। पित्त-प्रकृति की चमड़ी गरम और लाल रंग की होती है। कफ-प्रकृति के आदमी की त्वचा स्निग्ध रहती है। २—गरम त्वचा—पित्त तथा सब प्रकार के ज्वरों में त्वचा गरम होती है। त्वचा की गरमी से भी ताव की गरमी जानी जा सकती है। परन्तु अन्तर्वेग ज्वर में गरमी शरीर के अन्दर रहती है और शरीर की त्वचा ठण्डी या साधारण रहती है और बहिर्वेग ज्वर में अन्दर शीत या ठण्ड रहती है और बाहर गरमी रहती है। नाड़ी-परीक्षा या थर्मामीटर से अन्दर की गरमी का पता लग सकता है। ३—ठण्डी चमड़ी—कई रोगों में शरीर की त्वचा ठण्डी पड़ जाती है। ज्वर उतरने के उपरान्त निर्बलता में, कॉलरा में और बहुत-से जीर्ण रोगों में त्वचा ठंडी पड़ जाती है। सख्त बीमारी में यदि शरीर ठंडा पड़ जाय, तो उसको भयावह समझना चाहिये। ४—सूखी चमड़ी—चमड़ी के रोम-कूपों से पसीना सदा निकलता रहता है, इससे त्वचा स्निग्ध रहती है। कई रोगों में पसीना निकलना बन्द हो जाता है, इससे चमड़ी शुष्क और रूखी हो जाती है। ज्वर के प्रारम्भ में पसीना बन्द हो जाता है, इससे ज्वर-रोगी की त्वचा रूक्ष रहती है। ५—भीगी त्वचा—साधारणावस्था से अधिक त्वचा गीली रहे। कई रोगों में त्वचा स्पर्श में ठंडी परन्तु गीली रहती है और कई रोगों में त्वचा गरम और भीगी होती है। इनमें प्रथम अवस्था अधिक खतरनाक होती है। संधि-वात रोग में त्वचा गरम, परन्तु भीगी रहती है और कॉलरा में त्वचा ठण्डी और भीगी रहती है। ठण्डा और गीलापन शरीर की निर्बलता को बताता है। रात्रि को पसीना आना, चमड़ी गीली रहे और निर्बलता बढ़ती जाय, तो इसे क्षय-रोग की घण्टी समझनी चाहिये।

(स) थर्मामीटर—शरीर की गरमी मापने का यह एक उपकरण है। इसका आकार नली के समान होता है। नीचे एक ओर बल्ब में पारा भरा होता है। बीच में एक नली खोखली होती है, उसमें यह पारा चढ़ता या उतरता है। ऊपर की नली पर निशान ९५ से ११० तक लगे रहते हैं।

जिस समय इस पारेवाले भाग को मुँह में जीभ के नीचे या बगल में रखते हैं, उस समय शरीर की गरमी से पारा अन्दर की खोखली नाली में चढ़ता है। जहाँ तक गरमी में शक्ति होती है, वह इस पारे को चढ़ाती है। फिर निकालकर जहाँ तक पारा चमकता दीखता है, वही इस मनुष्य की गरमी होती है। झटका देने से या ठण्डे पानी में रखने से पारा फिर नीचे उतर आता है। साधारणतः तन्दुरुस्त मनुष्य की गरमी ९८.४ होती है। परन्तु गरमी की ऋतु में ९९ या १०० तक भी पहुँच जाती है और सर्दियों में ९८ भी हो जाती है। बाहर की गरमी या सरदी का कोई विशेष प्रभाव शरीर पर नहीं पड़ता, जिससे ताप-परिमाण भी प्रायः वही रहता है। गर्मियों में कभी १०० भी हो जाता है। नींद में या शान्ति के समय कुछ घट जाता है। रोग की अवस्था में शरीर की गरमी बढ़ जाती है, तब पारा भी चढ़ जाता है और जब शरीर की गरमी कम होती है, तो पारा भी उतर जाता है। सादे ज्वर में पारा १०१ से १०२ डिग्री तक रहता है, तीव्र ज्वर में १०४ तक चढ़ता है और अतिशय भयंकर ताप में १०५ से १०७ डिग्री तक चढ़ जाता है। शरीर के किसी मर्मस्थान में शोथ या दाह होने के कारण जब ताप १०८ डिग्री तक चढ़ जाता है, तब रोगी का बचना कठिन होता है। इसी प्रकार यदि गरमी स्वाभाविक ताप से कम हो जाय, तो भी रोगी के लिये भयानक अवस्था रहती है। कॉलरे में जब शरीर बहुत ठण्डा पड़ जाता है, तब शरीर की गरमी घटकर ९५ तक आजाती है, तब रोगी के बचने की आशा बहुत कम होती है। यदि ताप १०४ तक हो, तो घबराने का कोई विशेष कारण नहीं। परन्तु यदि ताप आगे बढ़े, तो घबराने की बात है। एक डिग्री ताप बढ़ने से नाड़ी का स्पन्दन १० बार अधिक बढ़ता है।

बगल गीली हो, अथवा वायुवाली जगह हो, तो ताप-परिमाण बराबर में नहीं आता। इसलिये प्रथम बगल को साफ़ करके फिर थर्मामीटर लगाना चाहिये। बगल में थर्मामीटर मुँह से दुगुनी देर रखना चाहिये। थर्मामीटर द्वारा कोई भी आदमी अपने-आप रोगी की गरमी माप सकता है। इसलिये प्रत्येक गृहस्थ को अपने पास थर्मामीटर रखना चाहिये। प्रतिदिन ताप कितना और किस समय चढ़ता है, इस बात का हिसाब इसके द्वारा रक्खा जा सकता है। थर्मामीटर आधा मिनट से लेकर पाँच मिनट तक के समय-वाले आते हैं। इनमें से बढ़िया थर्मामीटर लेना चाहिये। बाजार में कई

प्रकार के घटिया थर्मामीटर भी मिलते हैं। साधारणतः अच्छे थर्मामीटर "हिक्" या "जील" के होते हैं।

(द) स्टैथस्कोप (ध्वनि-यंत्र)—इस यंत्र की सहायता से श्वास-प्रश्वास की क्रिया और रक्त-संचार की स्थिति तथा फेफड़े एवं हृदय की गति समझी जा सकती है। इसका ज्ञान पढ़ने या पढ़ाने की अपेक्षा अनुभव से अधिक आता है। इसका ज्ञान भी नाड़ी-ज्ञान की भाँति कठिन है। सूक्ष्म दृष्टि से नाड़ी-ज्ञान और ध्वनि-यंत्र एकही कार्य को सम्पादित करते हैं।

दर्शन-परीक्षा

इस परीक्षा में (अ) जिह्वा अर्थात् जीभ, (आ) नेत्र अर्थात् आँख, (इ) रूप अर्थात् चेहरा, (ई) त्वचा अर्थात् चमड़ी, (उ) मूत्र अर्थात् पेशाब और (ऊ) मल—इन परीक्षाओं का समावेश है।

(अ) जिह्वा-परीक्षा—जीभ की दशा को देखकर गले की, आमाशय की और आंत्रों की अवस्था का पता चलता है; क्योंकि जीभ के ऊपर का पड़ बहुत ही कोमल श्लेष्म कला या कोष्ठों से बना हुआ है। इनकी रचना प्रायः आमाशय और आंत्रों की श्लेष्मकला से मिलती है। जिस प्रकार सड़ने से या विदाह से खराब बुखारात उड़कर ऊपर जाते हैं, उसी प्रकार आँतों या आमाशय के रोग में दुर्गन्धित वाष्प श्वास-नलिका या अन्य मार्ग-द्वारा मुँह में पहुँचते हैं और वहाँ दाँतों तथा जीभ पर जमते जाते हैं। इन वाष्पों के द्वारा रोग की परीक्षा होती है। साधारणावस्था में जीभ गीली, लाल रंग की रहती है और इसका अग्रभाग अधिक लाल रहता है। रंग और जीभ के ऊपर जमे वाष्पों से रोग का निर्णय होता है।

(१) गीली जीभ—स्वस्थ अवस्था में जीभ थूक से गीली रहती है। ज्वर में जीभ सूखने लगती है। यदि जीभ गीली हो, तो स्पष्ट है कि मनुष्य को ज्वर नहीं है। किसी रोग में जीभ शुष्क होने के पीछे गीली होने लगे, तो समझना चाहिये कि रोगी अच्छा हो रहा है। पानी आदि पीने से जीभ गीली हो जाती है, परन्तु ज्वर आदि में पानी पीने के तुरन्त पीछे जीभ फिर सूख जाती है।

(२) सूखी जीभ—कई रोगों में शरीर का रस बनना कम हो जाता है, जिससे थूक कम उत्पन्न होता है। इससे जीभ सूख जाती है। जैसा

धतूरे या "बैलाडोना" विष की अवस्था में ओठ, जीभ और गला सब सूख जाते हैं। सूखी जीभ पर अँगुली फेरने से जीभ शुष्क और कठिन प्रतीत होती है। प्राय: सब प्रकार के ज्वरों में, शीतला में, प्लेग में तथा अन्य संक्रामक रोगों में जीभ सूख जाती है। ज्वर का ज़ोर जिस प्रकार अधिक होगा, उसी प्रकार जीभ भी अधिक सूखी होगी। अतिशय सूखी और कठिन जीभ भयानक अवस्था का चिन्ह है।

(३) लाल जीभ--जीभ, उसका अग्रभाग तथा पार्श्व सदा लाल रहते हैं। परन्तु यदि सारी जीभ लाल हो या अधिक भाग लाल हो जाय, तो शीतला, मुँह का दुखने लगना, पेट की शोथ, संखिये का विष आदि रोगों का अनुमान करना चाहिये। ज्वर में जीभ अग्रभाग पर तथा पार्श्वों में अधिक लाल होती है।

(४) फीकी जीभ—शरीर से अधिक मात्रा में रक्त निकलने पर, ज्वर में, प्लीहा-रोग में अथवा किसी अन्य कारण से शरीर में रक्ताणुओं की कमी होने पर जिस प्रकार चेहरा और आँखें फीकी पड़ जाती हैं, उसी प्रकार जीभ भी फीकी और सफेद हो जाती है।

(५) मैली जीभ—रोग में जब जीभ पर सफेद तह बैठ जाती है, उसको मैली जीभ कहते हैं। बहुत जोरावर ज्वर में, सख्त सन्धि-वात में, यकृत के रोगों में और मस्तिष्क के रोगों में जीभ मैली हो जाती है। मल-बन्ध की अवस्था में भी जीभ मैली रहती है। जीभ के अग्रभाग पर से और पार्श्वों पर से जब सफेदी हटने लगे, तो समझना चाहिये कि रोग नरम पड़ रहा है। परन्तु यदि जीभ के पिछले भाग पर से मैल की पृष्ठ घटने लगे, तो समझना चाहिये कि रोग का घटाव बहुत धीमे-धीमे हो रहा है। यदि जीभ पर जमा हुआ पृष्ठ एकदम सहसा साफ हो जाय और जीभ का वह भाग चमकता लाल निकल आये, उस पर दरार पड़े हों, तो समझना चाहिये कि आंत्रों में कहीं व्रण या विदाह हो रहा है। जीभ का इस प्रकार का परिवर्तन अशुभसूचक है। बहुत दिनों के ज्वर में जीभ का रंग भूरा अथवा तपखिरिया रंग का हो जाता है। जीभ के ऊपर दरारें पड़ जाती हैं। ये सब भय-सूचक लक्षण हैं। पित्त के रोग में जीभ पीली रहती है।

(६) काली जीभ—कई रोगों में जीभ का रंग काला या जामुन के रंग का होता है। दमा, श्वास और फेफड़ों से सम्बन्धित रोगों में, खाँसी

आदि में जब रक्त अच्छी प्रकार से साफ़ नहीं हो रहा होता, उस समय जीभ काली मैली (झाई के) रंग की या आसमानी रंग की रहती है। जिन रोगों में जीभ काले रंग की हो जाती है, उनमें रोगी के बचने की आशा बहुत कम रहती है।

(७) काँपती हुई जीभ—सन्निपात में, मस्तिष्क के भयंकर रोगों में और कई सख्त रोगों में जीभ काँपती रहती है। जीभ रोगी के काबू में नहीं रहती। जिस समय जीभ बाहर निकालता है, उस समय भी काँपता रहता है। इस प्रकार की काँपती हुई जीभ अतिशय निर्बलता और भय की निशानी है।

(८) सामान्य-परीक्षा—बहुत-से रोगों की परीक्षा करने के लिये जीभ दर्पण का काम करती है। जीभ के ऊपर का श्वेत जमाव पाचन-क्रिया की गड़बड़ को बताता है। मोटी और सूजी हुई तथा दाँत के दबाव में आकर कटी हुई जीभ आमाशय तथा मज्जा-तन्तुओं के दाह या विकार को बताती है। जीभ के ऊपर की पीले रंग की मोटी तह पित्त-विकार को बताती है। काले, भूरे रंग की पृष्ठ खराब बुखार की निशानी है। सफेद तह साधारण ज्वर का चिह्न है। सूखी, मैले पृष्ठवाली, कालिमावाली और काँपती हुई जीभ इक्कीस दिन के भयंकर ज्वर की निशानी होती है। एक पार्श्व पर मुड़ी हुई जीभ वात-विकार को बताती है। जिस समय रोगी की जीभ शनैः-शनैः बाहर निकले और फिर रोगी की इच्छानुसार तुरन्त अन्दर न जा सके, तो समझना चाहिये कि रोगी अतिशय निर्बल है और मरणासन्न है। रोग के तीक्ष्ण रूप में जब जीभ पर कँपकँपी आजाय, तो समझना चाहिये कि बहुत खतरनाक अवस्था है। कॉलरा, आमाशय तथा फेफड़ों के विकार में जब जीभ का रंग "सीसा" जैसा काला पड़ जाय, तब खराब चिन्ह समझना चाहिये। जीभ पर जरा आसमानी रंग इस बात को बताता है कि रक्त की गति में कहीं अटकाव आया है। मुँह के पकने के साथ यदि जीभ सीसे के रंग की हो जाय, तो समझना चाहिये कि मृत्यु नजदीक है। वायु के दोषवाली जीभ खुरदरी, फटी हुई तथा काली होती है। पित्त के दोषवाली जीभ कुछ लाल या पीली होती है। कफ-दोषवाली जीभ सफेद, भीगी तथा नरम होती है। त्रिदोषवाली जीभ काँटेवाली और शुष्क होती है। मृत्यु-काल की जीभ खुरदरी, झागदार, लकड़ी-जैसी कठिन और गति-रहित हो जाती है।

(आ) नेत्र-परीक्षा—रोगी की आँख को देखकर जब रोग की परीक्षा की जाती है, उसे नेत्र-परीक्षा कहते हैं। वायु के दोषवाली आँख अन्दर डूबी हुई, निस्तेज, धूम-वर्ण (धूसर रंग की) तथा चंचल होती है। पित्त के दोषवाली आँख पीली, दाहवाली और दिये के प्रकाश को भी सहन करने में असमर्थ रहती है। कफ-दोषवाली आँख गीली, श्वेत, नरम, मन्द और तेज-रहित होती है। प्रलाप-रोगी की आँख काली और निश्चल होती है। त्रिदोष की आँख भयंकर लाल और ज़रा काली तथा भिँची होती है।

मस्तिष्क में रक्त भर जाने से तथा मस्तिष्क के कई रोगों में, तीव्र ज्वर में, नशा करनेवाले व्यक्तियों में, क्रोधी मनुष्य की, औपसर्गिक प्रमेह-वाले मनुष्य की आँखें लाल रहती हैं।

अफीम के नशे में आँख की पुतली पतली हो जाती है। कृमि या धतूरा आदि विष में पुतली बड़ी हो जाती है। और कई रोगों में पुतली प्रकाश को सहन नहीं करती। क्षय-रोग में आँख श्वेत और निस्तेज हो जाती है। कामला रोग में आँख पीली हो जाती है।

(ई) रूप-परीक्षा—रोगी का चेहरा देखकर कई रोगों की परीक्षा हो सकती है। साधारणतः प्रातःकाल रोगी का चेहरा अच्छा हो जाता है। यदि उस समय रोगी का चेहरा बिना तेज का, विचित्र और झाँईवाला दिखाई देता हो, तो वात-दोष का सन्देह करना चाहिये। यदि यह चेहरा पीला, मन्द और कुछ सूजा हुआ हो, तो पित्त-दोष की शंका करनी चाहिये। यदि चेहरा मन्द या चिकनासवाला हो, तो कफ-दोष की शंका करनी चाहिये।

प्रायः गुर्दे या वृक्क के रोग में और खासकर जब पेशाब में एल्ब्युमन जाता हो, उस समय चेहरे का रंग बदल जाता है। पाण्डु-रोग में चेहरा पीला और विशेष रंग का हो जाता है। उसमें रक्त की कमी साफ़ झलकती है। अन्य निर्बलताओं में भी चेहरे का रंग बदल जाता है। मिट्टी खानेवाले बच्चों के चेहरे पर, आँखों की पलकों पर शोथ दिखाई देता है। इसी प्रकार बहुत-से रोगियों के चेहरे देखने से रोग समझ में आ सकता है।

स्वस्थ और निरोगी पुरुष का चेहरा शान्त और बेचैनी-रहित होता है। रोग से चेहरे का देखाव बदल जाता है। चेहरे के भिन्न-भिन्न स्वरूप

और चिन्ह लिखकर बताये नहीं जा सकते। चेहरे के ऊपर से रोग की परीक्षा करनी और रोगी की स्थिति को समझना केवल अभ्यास से सीखा जा सकता है। तथापि नीचे लिखो बातों से थोड़ी बहुत परीक्षा की जा सकती है।

(१) चिन्तातुर चेहरा—सख्त ताव और भयंकर रोगों के प्रारम्भ में, आक्षेप तथा शरीर को ताव देनेवाले रोगों में, दम तथा श्वास के रोग में, यकृत और फेफड़े के रोग में रोगी का चेहरा फिकरमन्द हो जाता है।

(२) फीका चेहरा—बहुत अधिक रक्त-स्राव होने से, जीर्ण ज्वर से, प्लीहा के रोग से, अधिक निर्बलता, अधिक फिकर, डर आदि कारणों से चेहरा फोका हो जाता है। रक्त में परिवर्त्तन होने से, अर्थात् रक्त के रक्ताणुओं के घट जाने से चेहरा फीका हो जाता है। स्त्रियों में ऋतु-स्राव अधिक होने पर अथवा निर्बल शरीर की स्त्रियों के बालक को दूध पिलाने से उनका चेहरा इस रंग का हो जाता है।

कई बार रजः-स्राव के प्रारम्भ में बिना कारण के चेहरा पीला पड़ जाता है।

(३) लाल चेहरा—कठोर ज्वर में, मस्तिष्क-शोथ में, और लू लगने पर आँखें लाल हो जाती हैं। गाल गुलाबी और तमतमाते रङ्ग के हो जाते हैं। सारा चेहरा धधकते हुये अँगारों के समान लाल और गरम हो जाता है। यदि चेहरा लाल हो, तो समझना चाहिये कि रक्त का दबाव मस्तिष्क की ओर अधिक है।

(४) पीला चेहरा—अधिक निर्बलता में, जीर्ण ज्वर में, जलोदर में चेहरे का रङ्ग झुर्रियोंदार और पीला हो जाता है। आँख की पलकें चढ़ जाती हैं, गाल पर अँगुली से दबाने पर गड्ढा पड़ जाता है, चेहरा सूजा हुआ प्रतीत होता है। यह चेहरा प्रायः हृदय और वृक्क रोग में होता है।

(५) सूखा हुआ चेहरा—जिस प्रकार वृक्ष की शाखा पर से सब पत्ते और छाल उतार लेने पर वह नङ्गी निकल आती है, उसी प्रकार वह चेहरा होता है। कॉलरा रोग से जब मृत्यु सिर पर खड़ी होती है, उस समय जो चेहरा रोगी का होता है, वह इस चेहरे का पूर्ण रूप है।

इस चेहरे की निशानियाँ इस प्रकार हैं—आँख का डोला अन्दर गड़ जाय, आँख में गड्ढा पड़ जाय, नाक नोकदार बन जाय, कनपटी के सामने गढ़ा बन जाय, गाल अन्दर को बैठ जायँ, गण्डस्थियाँ बाहर निकल आयें, चर्बी घुल जाय, चेहरे का रङ्ग काला हो जाय। जब कभी किसी रोग में इस प्रकार का चेहरा दिखाई दे, तो समझना चाहिये कि रोगी भयंकर स्थिति में है, या मरणासन्न है।

(ई) त्वचा-परीक्षा—जिस प्रकार त्वचा के शीत या गरम स्पर्श से रोग की परीक्षा हो सकती है, उसी प्रकार त्वचा पर निकले कोठ, या दानों को देखकर रोग की परीक्षा की जा सकती है। माता (चेचक), खसरा, शीतपित्त आदि रोगों में ज्वर के साथ त्वचा पर दाने निकलते हैं। यही दाने या चमड़ी का लाल रङ्ग इन रोगों का और रोगों से तथा आपस में भेद कराते हैं। शरीर के किसी भी भाग में लाल रङ्ग की शोथ हो, तो समझना चाहिये कि शरीर में पित्त-विकार है और यदि सफेद पड़ती जाय, तो कफ-दोष समझना चाहिये। जिस पुरुष के शरीर की त्वचा फटी हुई हो, तो समझना चाहिये कि उसका रक्त दूषित है। चमड़ी तक रक्त न पहुँचने से त्वचा शीत या गरम और सुन्न पड़ जाती है। चमड़ी का रङ्ग ताम्बे के रङ्ग का होने लगे, और शरीर पर धब्बों के रूप में हो, तो इसे कुष्ठ समझना चाहिये। चमड़ी के ऊपर काले धब्बे, अशुद्ध पोषण तथा बुरी वायु में रहने के कारण होते हैं। उपदंश या गरमी के कारण त्वचा पर विस्फोट निकल आते हैं, जो प्रायः समानान्तर रहते हैं। कॉलरा या विष की अवस्था में हाथ और पाँव के नख काले पड़ जाते हैं, यह अवस्था मरण की सूचक है। इसी प्रकार रक्त की न्यूनता से नख श्वेत हो जाते हैं। कामला रोग में नख पीले पड़ जाते हैं। शरीर की त्वचा पर कई रोगों में छोटे-छोटे दाने निकलते हैं। इन दानों का स्वरूप, निकलने का समय तथा छिपने का समय रोग की परीक्षा में बहुत सहायता करता है।

(उ) मूत्र-परीक्षा—तन्दुरुस्त पुरुष के मूत्र का रङ्ग सूखी हुई घास के समान पीला होता है। इसमें किसी प्रकार का निक्षेप या गँदलापन नहीं होता, इसमें किसी प्रकार की चिकनास नहीं होती। देखने में स्वच्छ, पारदर्शक, स्वाद में तिक्त-कटु होता है। इसमें झाग नहीं होती।

मूत्र से कई रोगों की परीक्षा हो सकती है। मूत्र-रक्त से अलग हुआ निरुपयोगी अंश है। मूत्रोत्पादक वृक्क रक्त में से इस अंश को पृथक् कर लेते हैं। यदि किसी कारण से रक्त में या वृक्क में खराबी आजाय, तो मूत्र में भी खराबी आजाती है। यही कारण है कि ज्वर की अवस्था में, जब शरीर के अन्दर गरमी बढ़ी होती है, मूत्र का रङ्ग भी गहरा लाल हो जाता है। रुग्णावस्था में शरीर का उपयोगी अंश भी मूत्र के साथ बाहर आता है।

देशी वैद्यक-शास्त्र में मूत्र-परीक्षा और उससे मालूम होनेवाले रोगों का विवरण इस प्रकार से दिया गया है।

१. देशी विधि से मूत्र-परीक्षा—(१) वात-दोषवाले रोगी का मूत्र नीला, काली झाँई के रंग का होता है। (२) पित्त-दोषवाले मनुष्य का रंग लाल, पीला अथवा ढाक के फूल के रंग के समान होता है। (३) कफ-दोषवाले रोगी का मूत्र ठण्डा, तालाब के पानी-जैसा निर्मल, श्वेत, झागदार तथा स्निग्ध होता है। (४) वात-पित्तवाले का मूत्र गहरा, लाल या किरमिजी रंग का एवं गरम होता है। (५) सन्निपात रोगी का मूत्र मैला, काला होता है। (६) मिश्र दोषवाले व्यक्ति का मूत्र मिश्र लक्षणोंवाला होता है। (७) रक्त कुपितवाले रोगी का मूत्र स्निग्ध, उष्ण और लाल होता है। (८) वात-कफ-दोषवाले व्यक्ति का मूत्र सफेद तथा घना होता है, इसमें बुलबुले होते हैं। (९) कफ-पित्त रोगी का मूत्र लाल होता है। (१०) अजीर्ण रोगी का मूत्र चावलों के धोवन के समान होता है। (११) नव-ज्वर में मूत्र गहरा लाल और बहुत होता है। (१२) पेशाब करते हुये यदि धारा का रंग लाल हो, तो भयानक रोग समझना चाहिये। काली धारा हो, तो मृत्यु और यदि बकरी के मूत्र-जैसी गन्ध हो, तो अजीर्ण रोग समझना चाहिये। (१३) रोगी के रोग का साध्यासाध्य या कष्टसाध्य (अर्थात् साध्य—सुगमता से अच्छा होनेवाला रोग, कष्टसाध्य—कठिनता से अच्छा होनेवाला और असाध्य—न अच्छा होनेवाला रोग) आदि पहचानने के लिये वैद्यक-ग्रन्थों में निम्न विधि बताई है—प्रातःकाल रोगी को ब्राह्म-मुहूर्त में उठाकर उसके पेशाब को एक काँच के प्याले में भरना चाहिये। पीछे उस प्याले को स्थिर रखना चाहिये। एक घण्टे तक स्थिर रखने के उपरान्त एक सलाई से तेल का बिन्दु उस मूत्र पर धीरे-से रख देना चाहिये। यदि यह तैल का बिन्दु फैल जाय, तो समझना चाहिये कि रोग साध्य है और यदि तैल-बिन्दु फैले

बिना तैरता रहे, तो समझना चाहिये कि रोगी का रोग कष्टसाध्य है। यदि तेल का बिन्दु तली में एकदम चला जाय, या अन्दर से पुन: ऊपर आकर कुण्डली की भाँति फिरने लगे, अथवा उस तैल-बिन्दु के डालने के साथ ही मूत्र में छिद्र पड़ जाय या तैलबिन्दु मूत्र के साथ मिल जाय, तो रोग असाध्य समझना चाहिये।

मूत्र-परीक्षा की यह विधि कई वैद्यक-ग्रन्थ में लिखी हैं। इसमें से कुछ बातें अनुभव से पता चलती हैं और कई बातों में शंका रहती है। मूत्र के रंग से दोषों की परीक्षा बताई है; परन्तु केवल इतने से रोगी अपने दोष का निर्णय नहीं कर सकता। सामान्य रीति से इतना समझना पर्य्याप्त है कि यदि मूत्र में वायु के लक्षण हों, तो वायु दोष; पित्त के लक्षण हों, तो पित्त-दोष और कफ के लक्षण हों, तो कफ-दोष समझना चाहिये। रक्त के लक्षणों से रक्त-दोष और मिश्र लक्षणों से मिश्र-दोष समझना चाहिये।

२. अँग्रेज़ी रीति से मूत्र-परीक्षा—मूत्र की परीक्षा यदि रसायन-शास्त्र के अनुसार की जाय, तो वह अधिक मूल्य और महत्त्व की होती है। अंग्रेजी-परीक्षा की विधि से मूत्र में दो वस्तुयें आती हैं, "यूरिया" और "यूरिक एसिड"। इसके सिवा इसमें कई प्रकार के नमक और क्षार यथा—मैगनेशियम, सोडियम, ऑक्सेजीलिक एसिड आदि भी थोड़ी मात्रा में आते हैं। अधिक भाग प्राय: पानी ही का रहता है। रसायन-विद्या में कुशल वैज्ञानिकों ने पेशाब का पृथक्करण करके निचली वस्तुयें इस परिमाण में पाई हैं—

पेशाब की वस्तुयें		पेशाब के १००० भाग में
पानी		९५६ १/३ भाग
शरीर के घिसने से उत्पन्न होनेवाली चीजें	यूरिया	१४ १/४
	यूरिक एसिड	० १/३
	चरबी आदि	१५
खार	नमक	७ १/४
	फॉस्फेरिक एसिड	२
	गन्धक का तेजाब	१ ३/४
	चूना	१/२
	मैगनेसिया	१/४
	पोटास	१ ३/४
	सोडा	बहुत थोड़ा

पेशाब में ऊपर लिखे तत्त्व पदार्थ मिलते हैं। स्वस्थ अवस्था में भी ये पदार्थ इसी परिमाण में सदा नहीं मिलते। खान-पान के कारण तथा कसरत आदि से इनमें अन्तर पड़ता जाता है। पेशाब की वस्तुओं का परीक्षा रसायन शास्त्री के सिवा कोई दूसरा नहीं कर सकता। जिसको रसायन-शास्त्र का ज्ञान भली प्रकार होता है, वही पेशाब-परीक्षा भली प्रकार कर सकता है; और जब परीक्षा भली प्रकार होती है, तभी रोग का निर्णय हो सकता है।

पेशाब को देखने से आँखों द्वारा उसमें अनेक चीजों का पता नहीं चलता। इसी प्रकार थोड़े-से पेशाब से भी कई बार ठीक निर्णय नहीं होता। यदि एक दिन रात का अथवा सारी रात का पेशाब इकट्ठा किया जाय, तो परीक्षा करने पर रोग-निर्णय हो जाता है। साधारणतः पेशाब को धारा से मूत्र की सान्द्रता या पतलापन का पता चल जाता है।

स्वस्थ मनुष्य सम्पूर्ण दिन-रात में अर्थात २४ घंटे में १। सेर लगभग के पेशाब करता है। परन्तु प्रवाही पदार्थों की थोड़ी या अधिक राशि लेने से इस परिणाम में अन्तर आजाता है। इसके अतिरिक्त ऋतु के कारण भी पेशाब में अन्तर आजाता है। गर्मियों में पसीना अधिक आने के कारण बहुत-सा पानी का भाग निकल जाता है, इससे मूत्र की राशि कम हो जाती है। सर्दियों में पसीना निकलता नहीं, इससे मूत्र की राशि अधिक रहती है। इसी प्रकार मूत्र-संबन्धी रोगों में, यथा वृक्क शोथ (ब्राईट्स डिज़ीज़) में पेशाब के अन्दर शरीर की आवश्यक वस्तु (एल्ब्युमिन) जाने लगती है। इसको परीक्षा मूत्र को देखने से हो सकती है। इसी प्रकार मधुमेह (डायबिटीज-मिलिटस) के रोगी में पेशाब के साथ शक्कर जाती है, जो आँख से दिखाई नहीं देती। परन्तु उचित परीक्षा से इसका पता चल सकता है। इसी प्रकार पेशाब पर कीड़ियों का आना भी पेशाब में मीठे की उपस्थिति को बताता है। पेशाब में भिन्न-भिन्न खार होते हैं, इनकी कम या अधिक मात्रा जाने से रोग होता है। इन खारों की परीक्षा करने से, इनकी मात्रा देखने से, रोग का निर्णय हो सकता है।

पेशाब में जानेवाले पदार्थों की परीक्षा—पेशाब की परीक्षा कई प्रकार से होती है। कई बातों का तो आँख से देखने पर पता लग सकता है, और कई बातों का पता रासायनिक परीक्षा से लगता है, और कुछ बातों

(विशेषतः-कृमियों की परीक्षा) का पता सूक्ष्म-दर्शक यंत्र की सहायता से किया जाता है। इनमें से कुछ मुख्य परीक्षायें यहाँ दी जाती हैं—

१—आँख से देखने पर—पेशाब के रंग पर से कई रोगों का पता चल सकता है। निरोगी पेशाब पानी-जैसा स्वच्छ परन्तु थोड़ा पीलापन लिये होता है। पेशाब में यदि रक्त का भाग जाता हो, तो वह लाल या काला दिखाई देता है। कई दवाइयों के कारण पेशाब का रंग बदल जाता है। यथा "मैथे लीनब्लु" या "ट्रोप्लो फ्लैबरीन" से पेशाब का रंग नीला या हल्दी के समान पीला हो जाता है। पेशाब को थोड़ी देर किसी साफ़ बर्त्तन में रखने से यदि तलछट पर कुछ बैठे, तो समझना चाहिये कि पेशाब में कोई विकार है। क्षार, चर्बी, एल्ब्युमिन या फॉस्फेट, पीव आदि वस्तुएँ प्रायः नीचे बैठ जाती हैं। शर्करा पेशाब में घुली होने से आँखों द्वारा देखी नहीं जा सकती। इसी प्रकार क्षार भी पेशाब में घुले होते हैं। परन्तु यदि इनकी राशि अधिक हो, तो कुछ समय तक पेशाब को रखने से ये सब क्षार नीचे बैठ जाते हैं।

इसके अतिरिक्त पेशाब का आपेक्षिक गुरुत्व भी देखना चाहिये। इस बात को देखने के लिये एक प्रकार का यंत्र (यूरिनोमीटर) आता है, जिसका आकार दूध में पानी देखनेवाले यंत्र की भाँति होता है। इसपर निशान होते हैं। एक चौड़ी नली में पेशाब भरकर उसमें इस यंत्र को छोड़ दो। यह उसमें तैरता रहेगा। इसके उपरले पतले भाग पर निशान हैं। इन निशानों से देखना चाहिये कि मूत्र की उपरली सतह किस स्थान तक पहुँची है। स्वस्थ अवस्था में यह पृष्ठ १०२० या १०२५ तक होती है। पेशाब में शर्करा होने से यह १०३५ या १०४५ तक पहुँच सकती है। और कई रोगों में (बहुमूत्र रोग में) यह कम भी हो सकती है। अर्थात् १०२० से भी नीचे आ सकती है।

पेशाब के ऊपर से रोग-परीक्षा करते समय निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिये।

(१) पेशाब का रङ्ग यदि धुएँ के समान हो, तो इसमें रक्त की सम्भावना करनी चाहिये। (२) पेशाब का रङ्ग लाल हो, तो समझना चाहिये कि पेशाब में खटास (एसिड) जा रहा है। (३) पेशाब के ऊपर की झाग यदि जल्दी बन्द न हो, तो समझना चाहिये कि इसमें एल्ब्युमिन या पित्त जा रहा है। (४) पेशाब यदि गहरा पीला हो, तो उसमें पित्त की

अधिकता समझनी चाहिये। (५) पेशाब का रङ्ग काला-भूरा हो, तो समझना चाहिये कि रोग प्राण-घातक है। (६) पेशाब यदि पानी के समान सफेद आता हो, तो समझना चाहिये कि उदकमेह (डायबिटिज़) रोग है। हिस्टीरिया रोग में भी पेशाब बहुत आता है, और जब पेशाब बहुत आता है, तो उसका रङ्ग पानी-जैसा होता है। पेशाब के ऊपर कीड़ियाँ चढ़ें, तो समझना चाहिये कि पेशाब में शक्कर जाती है। (७) यदि पेशाब मैला हो, या उसमें तन्तु धागे जैसे हों, तो समझना चाहिये कि पेशाब में पीब है। (८) पेशाब का रङ्ग लाल हो और राशि में थोड़ा मूत्र आता हो, तो यकृत, मस्तिष्क और ज्वर की आशंका करनी चाहिये। (९) पेशाब में खटास अधिक जाती हो, तो समझना चाहिये कि पाचन-क्रिया खराब है। (१०) कामला या पित्त प्रकोप में पेशाब का रङ्ग गहरा पीला या लाल होता है। उस समय यह रङ्ग इतना गहरा हो जाता है कि काले रंग का सन्देह होने लगता है। इस प्रकार के पेशाब को हिलाने से या इसमें थोड़ा पानी मिलाने से पेशाब का रङ्ग (पीलापन) साफ़ हो जाता है।

२—रसायन-प्रयोग से—पेशाब के अन्दर की वस्तुवों की परीक्षा नीचे अनुसार करने से कई बातों का पता लग सकता है।

(१) **पित्त**—पेशाब के रङ्ग को देखकर पित्त का अनुमान हो सकता है और रासायनिक परीक्षा से इस बात का दृढ़ निश्चय किया जा सकता है। पेशाब की कुछ बूँदें काँच की प्याली अथवा रकाबी में रखनी चाहिये, इसमें थोड़ा-थोड़ा बूँद-बूँद करके "नाईट्रिक एसिड" (नत्रकाम्ल) डालना चाहिये। दोनों के मिलने से हरा, नीला और पीछे लाल रङ्ग आये, तो पित्त समझना चाहिये।

(२) **यूरिक एसिड**—आदि वस्तुयें थोड़ी मात्रा में सदा निरोगी अवस्था में भी जाती हैं। परन्तु यदि ये वस्तुयें अधिक प्रमाण में जाने लगें, तो परीक्षा से पता चल सकता है। पेशाब को एक रकाबी में लेकर गरम करने पर, यदि उसमें "नाईट्रिक एसिड" डालने से स्फटिक बन जायँ, तो 'यूरिया' की उपस्थिति समझनी चाहिये। और यदि इसमें पेशाब को रकाबी में लेकर उसमें नाईट्रिक एसिड मिलाकर गरम करें, उसमें यदि पीला रङ्ग आजाय, तो पेशाब में "यूरिक एसिड" समझना चाहिये।

(३) एल्ब्युमिन—एल्ब्युमिन एक पौष्टिक पदार्थ है। यदि यह पदार्थ पेशाब में जाय, तो शरीर का पोषण घट जाता है। पेशाब की परीक्षा करने के लिये मूत्र को काँच की परीक्षण-नली में लेकर शराब की बत्ती या मोमबत्ती पर मीठी आँच से गरम करना चाहिये। जब वह उबलने लगे, तब उसमें सुराखार का तेजाब "हाईड्रोक्लोरिक एसिड" बूँद-बूँद करके डालना चाहिये। यदि पेशाब में से बादल-से निकलें, और थोड़ी देर में रखने पर नली के नीचे सफेद वस्तु दिखाई देने लगे, तो इसमें एल्ब्युमिन समझना चाहिये। और यदि नीचे कुछ न बैठे, तो समझना चाहिये कि पेशाब में एल्ब्युमिन नहीं जाती। इसी परीक्षा में यदि गरम करके नाईट्रिक एसिड डाल दें और काँच की नली के नीचे जमा पदार्थ घुल जाय, तो समझना चाहिये कि उसमें फौस्फेट (क्षार) है। और यदि विक्षेप बचा रहे, तो समझना चाहिये कि एल्ब्युमिन है। गरम करने से और एसिड नाईट्रिक डालने से फौस्फेट और एल्ब्युमिन बचा रहता है।

(४) शक्कर (शुगर) —साधारणावस्था में मूत्र के अन्दर थोड़ी-सी शर्करा जाती रहती है। परन्तु यदि इसकी मात्रा अधिक हो जाय या परीक्षण से पता लगने लगे, तो इस रोग को "डायबिटिज मिलिटम" या मधुमेह कहते हैं। यह पेशाब अधिक स्निग्ध, भारी और सफेद पानी जैसा होता है। इसमें शहद-जैसी गन्ध आती है। रासायनिक परीक्षा से मूत्र में शर्करा मालूम होती है। शर्करा की शंका होने पर पेशाब को यदि गरम करके छान लें, या नितार लें, तो यदि एल्ब्युमिन होगा, तो वह अलग हो जाता है। इस पेशाब को अलग काँच की नली में लेकर, इससे आधा "लीकर पोटाश" या "सोडा" इसमें मिलाना चाहिये। पीछे से इसमें "नीले थोथे" का पानी थोड़ा-थोड़ा मिलाना चाहिये। ये बूँद धीरे-धीरे एक के पीछे एक डालते जाना चाहिये और नली को हिलाते जाना चाहिये। इस प्रकार से नली की प्रवाही वस्तु नीले रंग की और पारदर्शक हो जायँगी। पीछे से ख़ूब उसे उबालना चाहिये। उबालने से यदि इसमें शक्कर होगी, तो नारंगी के रूप में नली के नीचे बैठ जायगी और फिर स्थिर और ठण्डा होने के पीछे लाल-भूरे रंग की वस्तु हो जायगी। यदि यह नारंगी-निक्षेप न आये, तो समझना चाहिये कि पेशाब में शक्कर नहीं जाती।

(५) क्षार— या खटास (अम्ल या एसिड; क्षार या एल्कली)—

साधारणत: पेशाब की प्रतिक्रिया हल्की अम्लीय होती है। अर्थात् पेशाब से नीला लिटमस का कागज़ लाल हो जाता है। क्षार—पेशाब में क्षारीय पदार्थ यदि मात्रा से अधिक जाय, तो रोग की आशङ्का करनी चाहिये। इसकी परीक्षा के लिये हल्दी का टिंचर लेकर अथवा हल्दी का पानी करके उसमें सफेद स्याहीचूस का कागज़ (ब्लाटिंग-पेपर) भिगो देना चाहिये। उस कागज़ को सुखाकर उसका थोड़ा-सा टुकड़ा मूत्र में भिगोना चाहिये। यदि पेशाब में क्षार-पदार्थ अधिक होगा, तो इसका पीला रंग बदलकर नारंगी अथवा बादामी रंग का हो जाता है। इस प्रकार से बदले हुये इस बादामी रंग के कागज़ को यदि फिर किसी खट्टी चीज़ में भिगोया जाय, तो इसका नारंगी या बादामी रंग जाता रहेगा। इसका वही पुराना पीला रंग आ जायगा। इस प्रकार की परीक्षा के लिये बाजार में हल्दी का कागज़ "टरमरिक पेपर" मिलता है। इसके अभाव में स्याहीचूस के द्वारा हल्दी का कागज़ बनाकर काम ले सकते हैं।

खटास (अम्लता)—पेशाब में यदि अम्लता अधिक जाती हो, तो भी रोग समझना चाहिये। इसकी परीक्षा लिटमस पेपर से हो सकती है। इसके अभाव में श्वेत ब्लॉटिङ्ग पेपर को "कोर्वाज" के रस में भिगोकर सुखा लेना चाहिये। इससे कागज़ का रङ्ग नीला आसमानी हो जाता है। इस टुकड़े को यदि पेशाब में रक्खें और इसका रङ्ग बदलकर लाल हो जाय, तो पेशाब में अम्लता समझनी चाहिये। जितनी अम्लता अधिक होगी, रङ्ग भी उतना ही अधिक गहरा लाल आयेगा।

मल-परीक्षा—मल के ऊपर से कई रोग परीक्षा-द्वारा जाने जाते हैं। इतना ही नहीं; परन्तु मल के ऊपर से रोग का साध्यासाध्य भी जाना जा सकता है। दोषों के अनुसार मल की परीक्षा—(१) वात-रोगी का मल सूखा, झागदार, काले रङ्ग का तथा उसमें ½ भाग पानी का होता है। (२) पित्त-रोगी का मल पीला, गन्धवाला, ढीला और गरम होता है। (३) कफ-रोगी का मल श्वेत, चिकना, कुछ गीला या कुछ सूखा होता है। (४) वात-पित्त-रोगी का मल पीला, काला तथा भीना और अन्दर से गाँठवाला होता है। (५) वात-कफ-दोषवाले का मल भीना, काला तथा फुदकियाँ-सा होता है। (६) पित्त-कफ-दोषवाले का मल पीला तथा श्वेत होता है। (७) त्रिदोष रोगी का मल श्वेत, काला, पीला, ढीला तथा गाँठवाला होता है। (८) अजीर्ण

रोग में मल दुर्गन्ध-युक्त और ढीला होता है। (९) जलोदर रोगी का मल अति बदबूदार और श्वेत होता है। (१०) मरणासन्न रोगी का मल अति दुर्गन्ध-युक्त, लाल, जरा श्वेत, मांस-जैसा काले रंग का या मांस के धोवन के समान होता है। जिस रोगी का मल पानी में डूब जाता है, वह मर जाता है। इसके अतिरिक्त भिन्न-भिन्न रोगों में मल पतला, कठिन तथा भिन्न-भिन्न रङ्गवाला होता है।

पतला अतिसार---अपचन से या संग्रहणी से मल पतला हो जाता है। मल में ख़ूराक का भाग भी दिखाई देता हो, तो समझना चाहिये कि पाचन भली प्रकार से नहीं हो रहा है। आँतों में पित्त की अधिकता से मल नरम आता है। अतिसार में मल पतला आता है। कॉलरा में मल चावल के धोवन के समान आता है। क्षय-रोग में यदि मल बिना कारण के पतला आये, तो रोगी को असाध्य समझना चाहिये।

कठिन मल—साधारणतः निरोगी पुरुष का मल नर्म, बँधा हुआ और पीला होता है। यदि पाचन-क्रिया ठीक हो, तो साधारणतः गुदा के बहिर्भाग पर मल नहीं लगता। कब्ज़ियत की अवस्था में मल कठिन और ज़ोर से प्रवाहण करने पर आता है। बवासीर के रोगी को प्रायः सख़्त मल आता है। इसलिये गुदा के निचले भाग में रहनेवाले अंकुरों के छिलने से रक्त-स्राव होता है। जिस पुरुष की आँतों में वायु रहती है, उसको मल सख़्त और कठोर आता है। यकृत में यदि पित्त न बने या भोजन में पित्त का मिलाप न हो अथवा आँतों में मल को ढकेलने की शक्ति कम हो अथवा भोजन में वसा का भाग कम रहता हो, तो मल सख़्त और कठोर आता है।

रक्त-मिश्रित मल---मल के साथ रक्त या आम मिली हुई आये, तो समझना चाहिये कि प्रवाहिका या मरोड़ा हुआ है। अर्श-रोग में या रक्त-पित्त-रोग में रक्त मल से अलग गिरता है। अर्थात् मल आने से पूर्व या मल के आने के पीछे रक्त स्वतंत्र रूप से गिरता है। यकृत-शोथ में यदि मल में रक्त और पीव एकदम से मिली हुई बहुत मात्रा में आये, तो समझना चाहिये कि फोड़ा आंत्रों में फूट गया है। यदि मल का रंग काला-जामुन के समान, मांस के पानी की भाँति, दुर्गन्ध-युक्त हो, तो यह समझना चाहिये कि रोग असाध्य है।

मल का रंग—यदि श्वेत हो, तो समझना चाहिये कि यकृत का पित्त उचित मात्रा में आंतों के अन्दर नहीं आ रहा है। कामला, पित्ताश्मरी, यकृत रोग आदि में पित्त मल में कम जाता है। कॉलरे में या तीव्र अजीर्ण रोग में मल का रंग कांजी या चावल के धोवन के समान होता है। आँवला, गुगुल या लोह-युक्त दवाई खाने से भी मल का रंग काला हो जाता है। यदि इन कारणों से मल का रंग काला आये, तो घबराना नहीं चाहिये।

मल में कृमि—कई कृमि तथा उनके अण्डे मल के साथ बाहर आते हैं। इनमें कुछ कृमि तो धागे के समान पतले, श्वेत और छोटे होते हैं। कई बहुत बड़े होते हैं। और कोई गोल मुखवाले (कद्दूदाने) होते हैं। इन कीड़ों के कारण बालक या रोगी का शरीर बढ़ने नहीं पाता है। इन कीड़ों के अण्डे आँख से नहीं दीखते; परन्तु सूक्ष्मदर्शक यंत्र की सहायता से देखे जा सकते हैं। मल की परीक्षा करते समय इसको कृमि के लिये अवश्य देखना चाहिये। विशेषतः जब कोई कृमि-नाशक दवाई दी हो, तो उसका प्रभाव देखने के लिये मल को सुरक्षित रखना चाहिये।

प्रश्न-परीक्षा

रोग-परीक्षा करते समय कई बातें इस प्रकार की होती हैं, जिनका पता रोगों से पूछ कर ही चल सकता है। उन बातों का पता पीछे दी हुई बातों से नहीं चलता। उदाहरण के लिये दर्द का स्वभाव तथा रोग का प्रारम्भ उसके विषय में रोगी का अपना अनुभव उसके द्वारा ही पता चल सकता है। इसलिये "प्रश्न-परीक्षा" को दोनों ही चिकित्सा-पद्धतियों ने आवश्यक ठहराया है। परन्तु कई बार ऐसा होता है कि अपनी हालत के विषय में अधिक नहीं जानता, या वह इस अवस्था में होता है कि वह अपनी स्थिति के विषय में कुछ नहीं बता सकता। इसलिये अन्य उपायों से उस समय परीक्षा करनी होती है। तथापि रोगी की अगली और पिछली बातों को जानना बहुत आवश्यक है। रोग की अगली और पिछली बातों को जानना आवश्यक होता है। इसके द्वारा रोग के कारण का निर्णय कई बार ठीक प्रकार से हो जाता है। यह परीक्षा साधारण वाचक वर्ग के लिये इतनी उपयोगी नहीं, जितनी कि वैद्यक धंधा-धारियों के लिये होती है।

किसी रोगी के पास से एक के पीछे एक प्रश्न करके अपने काम की बात निकाल लेना, और किस प्रकार रोगी से प्रश्न करने चाहियें, ये सब बातें, वैद्य या चिकित्सक की अपनी होशियारी है। कई रोगी बहुत ही शर्मीले होते हैं, वे प्रश्नों का उत्तर बहुत झिझककर देते हैं। रोग का थोड़ा-सा सुराग मिलने पर उस विषय में सम्पूर्ण ज्ञान रोगी से अथवा उसके सम्बन्धियों से बात करने, तथा कुछ समय पीछे अनुभव से प्राप्त हो सकती हैं। किसी रोगी को उल्टी (वमन) होती है, इतने से चिकित्सा प्रारम्भ नहीं करनी चाहिये, अपितु उसका असली कारण का पता लगाने का यत्न करना चाहिये। कारण बता करके फिर चिकित्सा में अग्रसर होना चाहिये। यदि पित्त-विकार से उल्टी होती हो, तो पित्त-विकार की चिकित्सा करनी चाहिये। अजीर्ण के वमन में अजीर्ण की चिकित्सा करनी चाहिये। और यदि आमाशय की उत्तेजना के कारण वमन होता हो, तो आमाशय की उत्तेजना को कम करना चाहिये। इसलिये उल्टी के सम्बन्ध में बहुत-सी बातों का पता लगाना आवश्यक होता है। प्रत्येक रोग के लिये यही समझना चाहिये। यदि ज्वर अजीर्ण के कारण से हो और अजीर्ण की चिकित्सा न की जाय, तो ज्वर शीघ्र वश में नहीं होता। इसी प्रकार प्रदर, पूर्व का आघात, कब्ज़ आदि रोगों का या लक्षणों का पता रोगी से पूछकर ही चलता है।

इतना ही नहीं, रोग की ठीक परीक्षा करने के लिये रोगी का पारिवारिक इतिहास, उसके बाल-बच्चे, माँ-बाप का भी रोग से सम्बन्धित इतिहास जानना चाहिये; विशेषत: दमा, क्षय, मृगी, उपदंश, सन्धि-वात आदि रोगों के निर्णय करने के लिये। क्योंकि पैतृक-रोग प्राय: असाध्य होते हैं। इसलिये चिकित्सक को चाहिये कि वह चारोंओर से अपनी परीक्षा को पूरी करें। और रोगी को चाहिये कि वह अपनी सब अवस्थायें सच्चे दिल से बता दे; जिस प्रकार वकील के आगे उसका मवक्किल सब बातों को साफ़ बता देता है। सच्ची बातों के पता होने ही पर चिकित्सक अपने रोगी को बचा सकता है।

प्रकरण सातवाँ

देशी तथा अँग्रेज़ी निदान का संक्षिप्त स्वरूप

सब प्रकार के रोगों का कारण वात, पित्त, कफ इन दोषों का विकृत होना है। और इन दोषों के विकार का कारण अहित-सेवन है। अहित-सेवन का अर्थ—मिथ्या आहार-विहार है। इसी शब्द को प्राचीन आर्य वैद्यक-शास्त्र के पण्डित ने तीन प्रकार से विभक्त किया है। अर्थात्—मिथ्या आहार-विहार का अर्थ—पंच ज्ञानेन्द्रियों का अनुचित रूप से उपयोग, प्रज्ञापराध और परिणाम है।

पंच ज्ञानेन्द्रियों का अनुचित उपयोग तीन प्रकार से हो सकता है; अर्थात्—

(१) आँख, कान आदि इन्द्रियों से किसी विषय का उपयोग अधिक मात्रा में करना—यह अतियोग है।

(२) आँख, कान आदि इन्द्रियों से किसी विषय का उपयोग सर्वथा न करना—यह हीनयोग है। यथा—गान्धारी ने आँखों पर पट्टी बाँधकर उनको निरर्थक बना लिया था। साधु लोग हाथ को ऊपर रखकर सुखा देते हैं—ये सब हीनयोग के उदाहरण हैं।

(३) आँख या कान आदि का अशुद्ध रूप से उपयोग, इसको मिथ्यायोग कहते हैं। यथा अँधेरे में या कम प्रकाश में पढ़ना।

इसी प्रकार और इन्द्रियों का भी समझना चाहिये।

२—प्रज्ञापराध (बुद्धि का अपराध) यथा—कार्यों का अतियोग, अयोग या मिथ्यायोग। ये कार्य वाणी, मन और शरीर से किये जाते हैं। इस प्रकार से उत्पन्न रोग प्रायः मानसिक होते हैं।

३—परिणाम—काल (ऋतु) आदि। यदि ग्रीष्म-ऋतु में बहुत गरमी पड़े, तो इसको अतियोग कहते हैं और यदि गरमी बिलकुल न हो या कम हो, तो इसको हीनयोग कहते हैं, और यदि गरमी की ऋतु में बरसात हो जाय, तो इसको मिथ्यायोग कहते हैं। इसी प्रकार और ऋतुओं का भी तीन प्रकार से हीनयोग, अतियोग या मिथ्यायोग होता है।

इन तीन रोगोत्पादक कारणों से तीन ही प्रकार की व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं। कुछ व्याधियाँ वायु से सम्बन्ध रखती हैं और कुछ रोग अग्नि से, पित्त से सम्बन्ध रखते हैं, और कुछ रोगों का सम्बन्ध सोम (कफ) से होता है; क्योंकि शरीर का बंधारन इन्हीं तीन दोषों से होता है और प्रत्येक विकार इन्हींके कारण होता है। और चाहे रोग शरीर से बाहर का हो, वह भी कुछ समय पीछे इनके अन्दर परिवर्त्तन उपस्थित कर देता बस, यही प्राचीन आर्य-चिकित्सा का सूत्र है। इसीसे इस चिकित्सा-पद्धति को "त्रिसूत्रीय" पद्धति कहते हैं।

अर्वाचीन चिकित्सा-पद्धति इस प्रकार का कोई नियम नहीं रखती है। उनके यहाँ प्रत्येक रोग के कारण भिन्न-भिन्न कल्पना किये हुये हैं। प्राय: आधे रोगों के कारण "कृमि" माने हुए हैं। शेष रोगों का कारण भी आहार-विहार की गड़बड़ी है। एक को सरदी लगी, उसकी नाक से पानी आने लगा, यह भी आहार-विहार ही का दोष है। इसी प्रकार यदि शरीर स्वस्थ हो, उसमें शक्ति हो, तो कृमि भी अपना प्रभाव शरीर पर नहीं कर सकते। इस मिथ्या आहार-विहार से रोगोत्पत्ति में सहायता मिलती है, इस बात को वे इन्कार नहीं कर सकते। रही बात वात, पित्त और कफ की। इनकी सत्ता का निश्चय इसलिये होना कठिन है कि प्राचीन सिद्धान्त प्राय: "तीन" का रक्खा गया है। यही सबब है कि उन्होंने प्रकृति को भी सत्त्व, रज, तम इन तत्त्वों में बाँधकर रक्खा है। और सृष्टि के नियामक विष्णु को राजसिक, संहारक शिव को तामसिक और उत्पादक ब्रह्मा को सात्त्विक माना है। इसी प्रकार इस शरीर का बंधारन भी इन्हीं सूत्रों पर रक्खा गया है। यदि नवीन चिकित्सक इस प्रकृति को समझ सकें, और सांख्य-शास्त्र के सत्त्व, रज और तम इस त्रिगुण सिद्धान्त का मनन कर सकें, तभी वे इस वात, पित्त और कफ के सिद्धान्त को समझ सकते हैं। अर्वाचीन पद्धति के सातों संस्थानों का समावेश इन तीन धातुओं में हो सकता है। इन तीन धातुओं को समझनेवाला विद्वान् भी काय-चिकित्सा में भली प्रकार सफल बन सकता है।

एक और भी बात है। प्राचीन काल में इस चिकित्सा-पद्धति का अभ्यास करनेवाले विद्यार्थी के लिये जहाँ शवच्छेद करना आवश्यक होता था, वहाँ उसको योग-शास्त्र का भी अभ्यास करना पड़ता था।

इस प्रकार अभ्यास करने के उपरान्त ही वह शरीर के अन्दर के दोषों को समझ सकता था। जिस प्रकार आजकल मृतदेह को काटकर देखने से चिकित्सक निपुणता प्राप्त करने के लिये यत्न करते हैं, उसी प्रकार प्राचीन काल में शिष्य को ज्ञान गुरुमुख से दिया जाता था। उस समय प्रायः ग्रन्थों का निर्माण सूत्ररूप में किया जाता था। इसलिये आधुनिक ग्रंथों की भाँति उसमें सब बातें विस्तार से नहीं लिखी रहती थीं। यही कारण है कि रोगों की सम्प्राप्ति का वर्णन विस्तार से नहीं मिलता। उदाहरण के लिये आर्य-वैद्यक-शास्त्र में ज्वर की सम्प्राप्ति इस प्रकार से दी है—मिथ्या आहार-विहार से कुपित आम-दोष आमाशय में कुपित होकर रस-धातु के साथ मिलकर रस-वाहिनियों को बन्द कर देता है और इससे अग्नि को बन्द करके आमाशय से बाहर निकालकर, त्वचा पर ला देता है। इससे ज्वर होता है। इसमें कौन-सी अग्नि, उसका स्वरूप आदि बातों का घुटाला है। साधारणतः कोई मनुष्य इसे समझ नहीं सकता।

इसी प्रकार शरीर से पसीना क्यों होता है? वह किस प्रकार का है? वह क्यों रुक जाता है? उसके होने से शरीर की गरमी किस प्रकार कम हो जाती है? इत्यादि बातों का ज्ञान बिना शास्त्र के होना असम्भव है। इसी प्रकार ज्वर में शिर के ऊपर ठण्डा पानी क्यों रक्खा जाता है, किसलिये पाँव गरम पानी में रखने चाहियें, नस्य किसलिये लेना चाहिये? इत्यादि बातों का ज्ञान बिना शास्त्र के नहीं हो सकता। बरफ़ रखने से ज्वर कम होता है, केवल इतना सुनने से या देखने से काम नहीं चलता; परन्तु किस कारण से और किस प्रकार गरमी कम होती है, यह बात समझने की आवश्यकता है।

पानी के घड़े के ऊपर ठण्डा कपड़ा रखने से अन्दर का पानी ठण्डा हो जाता है; परन्तु यह किस प्रकार से होता है, इस बात को बहुत कम आदमी जानते हैं। ज्वर में उष्णता होने का कारण अँग्रेज़ी वैद्यक-शास्त्र इस प्रकार से बताता है—किसी प्रकार का विष या ज़हर अथवा हानिकारक पदार्थ रक्त में मिल जाता है। इस पदार्थ को पकाकर बाहर निकालने के लिये शरीर की उष्णता बढ़ जाती है। प्रायः सब ज्वरों में पसीना रुक जाता है। इसका कारण यह है कि सब रोम-कूप आम-दोष से भर जाते हैं। जिस समय पसीना निकलना बन्द हो जाता है, उस समय शरीर के अन्दर गरमी बढ़ जाती है। पसीना निकलने से गरमी कम हो जाती है और

गरमी कम होने से ज्वर घट जाता है। ग्रीष्म-ऋतु में शरीर की गरमी साधारण रखने के लिये शरीर से पसीना बहुत निकलता है और सर्दियों में पसीना कम निकलता है, इससे गरमी भी बनी रहती है।

इसी प्रकार अतिसार-रोग की सम्प्राप्ति भी प्राचीन आर्य-वैद्यक-शास्त्र में इस प्रकार बताया है कि शरीर के अन्दर का द्रवरूप-धातु (रस, रक्त, जल, मूत्र, स्वेद, पित्त, कफ) अत्यन्त दुष्ट होकर अग्नि को मन्द कर देता है और फिर मल के साथ मिलकर वायु के द्वारा बाहर निकलता है। इसको अतिसार कहते हैं। अँग्रेज़ी वैद्यक-शास्त्र में इस रोग की सम्प्राप्ति इस प्रकार है— "किसी कारण से आँतों की ओर का रक्त-प्रवाह बढ़ जाता है, और दूसरी ओर का प्रवाह कम हो जाता है। आँतों से पानी बहुत मात्रा में निकलता है, जिससे आँतों में अटका हुआ पदार्थ बाहर हो जाय। इसी प्रकार रस-विकार नाक में बिगड़ने से ज़ुकाम, फेफड़ों में बिगड़ने से कफ अथवा खाँसी हो जाता है। यदि यह मल इस प्रकार अतिसार के रूप में बाहर न निकले, तो आँतों की अन्तः झिल्ली को हानि पहुँचाता है। उसको छील देता है, जिससे मल में रक्त आजाता है। इसी प्रकार प्राचीन चिकित्सा-पद्धति में अर्श का मूल कारण अजीर्ण भोजन लिखा है; परन्तु किस प्रकार यह रोग मस्सों के रूप में परिवर्त्तित होता है, इसका स्पष्टीकरण नहीं किया है। केवल इतना ही लिखा है कि जब मिथ्या आहार-विहार से दोष कुपित होते हैं, तो वातार्श, या पित्तार्श अथवा कफार्श होते हैं। अंकुरों का निर्माण किस प्रकार होता है, इसका वर्णन कहीं नहीं दिया है। नवीन चिकित्सा-पद्धति में इस विषय पर प्रकाश डाला है। अर्थात् मलबन्ध रोगी जब मल-प्रवाहण के लिये बल लगाता है, तो गुदा में रक्त-संचार बढ़ जाता है। यह रक्त-संचार वहाँ एकत्रित होता रहता है। वहाँ की केश-वाहिनियाँ रक्त से भर जाती हैं, और यह रक्त फिर वापस जाता नहीं। इसीसे ये केश-वाहिनियाँ तन्तु जालों में फँसकर अंकुर का रूप धारण कर लेती हैं। जब मल-प्रवाहण के समय शुष्क मल की रगड़ से या रक्त-संचार के और अधिक बढ़ने से यह भित्ति फट जाती है, तो रक्त-स्राव हो जाता है।

इसी प्रकार यक्ष्मा और प्रमेह की सम्प्राप्ति भी इतने संक्षेप में दी गई है कि उसका समझना आजकल के स्थूल बुद्धिवाले मनुष्यों के लिये कठिन है। मल के रोकने से क्षय-रोग हो सकता है, इस बात को नव्य शास्त्र

के पण्डित शायद ही मानने को तैयार होंगे। परन्तु आर्य-पद्धति में सब प्रकार का मिथ्या आहार-विहार वातादि दोषों को कुपित करता है। इसलिये इस पद्धति में रोग का नामकरण गौण है। "रोग" या "विकार" एक ही शब्द है। इसीसे सब रोगों का नामकरण नहीं किया है। केवल दोषों के आधार ही पर चिकित्सा करने का आदेश दिया गया है।

इसके अतिरिक्त एक बात और है कि प्राचीन ग्रन्थों में वर्णित कुछ रोग आजकल नहीं मिलते। यथा—शिश्न-वृद्धि के लिये किये गये उपायों से "शूक" रोग का होना लिखा है; परन्तु पूर्वकाल में उनका कहीं भी वर्णन नहीं आता। उदाहरण के लिये—सूजाक (गोनोरिया) और कालाजार अथवा प्लेग। इनका वर्णन अथवा लक्षण भी प्राचीन पुस्तकों में नहीं मिलता। बलपूर्वक लक्षणों को मिलाकर रोगों को दिखलाना बुद्धिमत्ता नहीं है। आर्य-वैद्यक-पद्धति पर चिकित्सा करनेवालों का धर्म है कि वे अपने "त्रिसूत्रीय" सिद्धान्त से चिकित्सा करें। रोग के नाम से चिकित्सा न करें।

आर्य-वैद्यक-शास्त्र में रोगों के बहुत-से वर्ग बनाये हैं और फिर उन वर्गों का भी विभाग किया गया है। इसी प्रकार नवीन पद्धति ने भी रोगों को कई विभागों में बाँटकर उनका पुनःवर्गीकरण किया है। उदाहरण के लिये—ज्वर-रोग एक है। देशी चिकित्सा में इसके अनेक (सन्निपात १३ प्रकार का) भेद हैं। नवीन पद्धति में भी इसके कई भेद माने हैं। ये सब भेद प्रायः कारणों के भेद से किये गये हैं और लक्षणों के अनुसार या कारणों के अनुसार इनका नामकरण भी भिन्न-भिन्न किया गया है। देशी वैद्यक के तन्द्रिक सन्निपात को अँग्रेजी में टाइफाइड और प्रलापक संनिपात को टाईफस नाम दिया गया प्रतीत होता है। कान के मूल में गाँठ होनेवाले रोग को कर्णक तथा जिस रोग में थूक के साथ रक्त आता है, उसको रक्तष्ठीवी कहा है। एलोपेथीवाले कर्णक रोग को मम्पस और रक्तष्ठीवी को निमोनिया कहते हैं। आर्य-वैद्यक-शास्त्र में शीतला, मसूरिका, रोमान्तिका आदि रोगों का माधव-निदानकार ने भेद किया है। परन्तु वाग्भट्ट आदि प्राचीन ग्रन्थकर्त्ताओं ने इनका समावेश विस्फोटक-रोग के अन्दर किया है; क्योंकि यह रोग वायु में उड़नेवाले विष से होता है और इसमें त्वचा पर फफोले पड़ते हैं, इससे सम्भवतः इसको यह नाम दिया गया है। इसी

प्रकार कई रोगों का नाम-भेद हो सकता है। परन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं कि अर्वाचीनकाल के सब ज्वरों का पता प्राचीन ग्रन्थकारों को था, या आजकल प्राचीन सब ज्वर मिलते हैं। उदाहरण के लिये माधव-निदान में एक ज्वर आया है, जिसमें बालों के अन्दर माँग (सीमन्त) निकल आती है (केशसीमन्त-कृत)। यह रोग आजकल कहीं देखने में क्या सुनने में भी नहीं आता। इसी प्रकार यदि आजकल के ज्वरों का पता प्राचीन ग्रन्थों में न चले, तो कोई आश्चर्य नहीं।

आर्य-वैद्यक-शास्त्र में क्षय और उरःक्षत ये दो पृथक् रोग गिने हैं। इनमें से क्षय के व्यवसायशोषी, व्रणशोषी, वार्धक्यशोषी इत्यादि सात भेद किये गये हैं। इन्हीं भेदों में उरःक्षतशोषी भी बताया गया है; भेद बताकर इसको पुनः पृथक् रोग माना है। इसी प्रकार कास-रोग पाँच प्रकार का माना है। इनमें क्षत-कास और क्षय-कास ये दो भेद बताये गये हैं। इस क्षत-कास में और उरःक्षत में कोई विशेष भेद है, यह पता नहीं चलता। इन सब भेदों का सम्बन्ध फेफड़ों के साथ है। इसलिये डाक्टरों का कहना है कि उरःक्षत रोग को या क्षत-कास को पृथक्-पृथक् मानने की जरूरत नहीं। एलोपेथी के निमोनिया रोग को बहुत-से विद्वान् उरःक्षत रोग मानते हैं; परन्तु दोनों रोगों के कारणों में आकाश और पाताल का अन्तर है। उरःक्षत रोग या क्षत-क्षय रोग आघात से उत्पन्न होता है और निमोनिया रोग का एक कृमि माना जाता है।

आर्य-वैद्यक-शास्त्र में हिचकी, अरोचक, छर्दि (वमन), तृष्णा और दाह इत्यादि रोग पृथक् गिने गये हैं। इनमें से हिचकी तथा अरोचक रोग को प्राणघातक बताया गया है। अँग्रेजी में ये कोई पृथक् रोग नहीं माने गये; परन्तु रोगों के लक्षण समझे जाते हैं।

मूर्च्छा जिस प्रकार कई रोगों का लक्षण है, उसी प्रकार यह एक स्वतंत्र रोग भी है। स्वतंत्र रोग की अवस्था में इसकी सम्प्राप्ति इस प्रकार बताई है कि शरीर की संज्ञावाहक-नाड़ियों को जब कुपित हुये वातादि दोष बन्द कर देते हैं, तब सुख और दुःख का भान नहीं रहता। अति रक्त जाने से, विष की गन्ध से अथवा रक्त की गन्ध से बहुत आदमी बेहोश हो जाते हैं। यही कारण है कि शल्य-कर्म के समय कई आदमी ख़ून को देखकर बेहोश हो जाते हैं। यह मूर्च्छा मन के आघात का परिणाम है। आर्य-वैद्यक-शास्त्र के

अनुसार इसका कारण पित्त और तम है। डाक्टरों का कहना है कि देशी वैद्यों की यह कल्पनामात्र है। यह रोग रक्त-संचार की क्रिया में अन्तर आने से या रक्त-संचय से होता है। मूर्च्छा-रोग का एक दूसरा रूप है, जिसको देशी वैद्यक में "सन्यास" कहा है और एलोपैथिकवाले इसको "एपोप्लैकसी" कहते हैं। इस रोग में मस्तिष्क के अन्दर रक्त-संचार बढ़ जाता है।

इसी प्रकार देशी चिकित्सा-पद्धति में उन्माद रोग को 'मानस-रोग (मन-सम्बन्धी) रोग माना है। इसके सात भेद किये गये हैं। उन भेदों में एक भेद भूतोन्माद भी है। इस भूतोन्माद के तेरह भेद किये गये हैं। परन्तु यदि इस विषय की गम्भीरता को बिना समझे, इनके कहे हुये लक्षणों से आजकल विभाग किया जाय, तो असंख्य भेद बन जाते हैं। 'भूत' शब्द से क्या ग्रहण करना चाहिये ? नवीन वैज्ञानिक 'भूत' शब्द से कुछ नहीं समझते। प्राचीन साहित्य 'भूत' शब्द तत्वों के लिये बताता है और लौकिक परिभाषा में 'भूत' एक काल्पनिक या अदृश्य अथवा भयानक वस्तु है। इनको वे भूत या प्रेत करके पहचानते हैं। प्राचीन आर्य-वैद्यक-शास्त्र के आठ विभागों में 'भूत-विद्या' भी एक अंग-विभाग माना है। इस विद्या का पण्डित देवता, यक्ष, गान्धर्व आदि योनियों को वश में करता था। इन योनियों में रहनेवाले गण कभी सत्कार या पूजा के लिये या भोग करने के लिये मनुष्य-शरीर के अन्दर आजाने हैं, इससे उसमें अलौकिक सामर्थ्य आजाता है। इसी अलौकिक सामर्थ्य के कारण उसके मानसिक विकार बदल जाते हैं। इन विकारों के परिवर्त्तन का नाम उन्माद है। परन्तु नवीन शास्त्र के पण्डित, इस भूत-कल्पना पर विश्वास नहीं करते। वे इतना मानते हैं कि इस उन्माद-रोग का सम्बन्ध अन्य शरीर की अपेक्षा मस्तिष्क के साथ अधिक है। वे इस रोग के तीन मुख्य भाग करते हैं (१) एक्युटमेनिया, (२) मैलनकोलिया और (३) डिमैन्शीया। ये तीनों भेद मन की अवस्था-भेद से माने गये हैं। मन क्या है ? इसका उत्तर उनके पास नहीं हैं; परन्तु मन का स्थान मस्तिष्क वे भी मानते हैं; क्योंकि सब प्रकार का संकल्प-विकल्प वहीं पर होता है। मस्तिष्क का अधिक भाग तन्तुओं से बना हुआ है। जिस तन्तु में विकार होता है, उस तन्तु के कारण रोग होगा। अब इस विकार-भेद के कारण भी रोग-भेद हो सकता है। मस्तिष्क के भिन्न-भिन्न भाग में भिन्न-भिन्न प्रकार की मनोवृत्तियाँ रहती हैं। यदि जागने की मनोवृत्ति उत्तेजित होगई, अथवा निद्रा की वृत्ति

विकृत होगई, तो मनुष्य सदा जागता रहेगा। इसी प्रकार यदि हँसने की वृत्ति उत्तेजित होगई, तो हँसता रहेगा। मस्तिष्क के वाम पार्श्व के एक भाग में भाषा-ज्ञान के संस्कार रहते हैं। यदि कभी दक्षिण पार्श्व में शरीर के किसी भाग पर चोट बैठे, उससे पक्षाघात होजाय, तो मनुष्य सब वस्तुओं के नाम भूल जायगा, उसका बोलना बन्द हो जायगा। इसी प्रकार रक्त-स्राव के गिरने से भी ये रोग हो जाते हैं। अपस्मार रोग भी मस्तिष्क ही से सम्बन्ध रखता है।

नवीन वैज्ञानिकों की दृष्टि में भूतोन्माद की कल्पना मनगढ़न्त है। अभी इस विषय में अधिक खोज की आवश्यकता है; क्योंकि इस प्रकार के रोगी देखने में आये हैं, जिनको एक अक्षर संस्कृत का नहीं आता था, वे भगवद्गीता का पाठ संस्कृत श्लोकों में आराम से करते जाते थे। इसलिये इन बातों पर सहसा अविश्वास नहीं करना चाहिये।

देशी वैद्यक में इन वात-रोगों की संख्या बहुत अधिक लिखी है। अँग्रेज़ी-चिकित्सानुसार कई रोग मगज-तन्तुओं के विकार से होते हैं, कई रोग आमाशय-विकार से, कई संधि-विकार से होते हैं। इसलिये वात-रोगों का वर्गीकरण ठीक नहीं है, ऐसी डाक्टरों की मान्यता है। इस विषय में थोड़ा खुलासा करना है—

आक्षेप—यह एक वात-रोग है, इसको अँग्रेज़ी में 'कनवेंलशन' कहते हैं। मस्तिष्क-तन्तुओं पर रक्त का दबाव बढ़ने से यह रोग होता है; क्योंकि रक्त की अधिकता से मस्तिष्क के तन्तुओं में उत्तेजना बढ़ जाती है और यह उत्तेजना मांसपेशियों में पहुँचती है। मांसपेशियाँ इस उत्तेजना को सम्भाल नहीं सकतीं, जिससे आक्षेपों के रूप में बदल जाती हैं। रक्त का दबाव पेट में कोड़े होने से, मलबन्ध आदि कारणों से बढ़ जाता है। इन कारणों से रक्त दूषित हो जाता है। रक्त को दूषित करनेवाले कारण वात, पित्त या कफ हैं। इनका कारण वही मिथ्या आहार-विहार है। बालकों में इस रोग को 'वात-ग्रह' या अँग्रेजी में 'इन्फैन्टाइलकनवलूशन्स' कहते हैं।

अपतन्त्रक—यह भी एक वात-विकार है। कई विद्वान् इसको आधुनिक 'हिस्टीरिया' रोग नाम देते हैं। दूसरे विद्वान् अपस्मार को 'हिस्टीरिया' मानते हैं। कई अपतन्त्रक और अपतानक रोग को एकही मानते

हैं। वैद्यक में अपतन्त्रक रोग के कई भेद कर रक्खे हैं। यथा—अन्तरायाम, बाह्यायाम, दण्डापतानक और हनुस्तम्भ आदि। कुछ देशी वैद्यक के विद्वान इन लक्षणों को देखकर अपतन्त्रक तथा इन पृथक् रोगों का समावेश आधुनिक चिकित्सा-शास्त्र के 'टिटैनस' रोग में करते हैं, जो अशुद्ध है। क्योंकि 'टिटैनस' रोग का कारण एक कृमि है। यह सत्य है कि इस रोग के लक्षण आयुर्वेद के अन्तरायाम आदि रोगों से मिलते हैं; परन्तु यही लक्षण कुचला विष में भी होते हैं। इससे कुचला विष और टिटैनस रोग एक नहीं हो जाते। इसी प्रकार लक्षणों के मिलने से, कारण को बिना मिला ही एक रोग नहीं कहना चाहिये; क्योंकि एक ही लक्षण कई रोगों में मिल जाता है।

अपतानक—यह रोग प्रायः विष के परिणाम-स्वरूप होता है। यह विष चाहे कृमि-जन्य हो, अथवा अन्य किसी प्रकार का हो। जिस समय विष रक्त के अन्दर पहुँचकर संज्ञा-वाहिनियों को दूषित कर देता है, उस समय यह रोग होता है। कई विद्वान इसको धनुर्वात मानते हैं; क्योंकि इसमें शरीर धनुष की भाँति टेढ़ा बन जाता है।

पक्षाघात—यह शरीर की शिरा या स्नायु का रोग नहीं है। इसका मूल कारण मस्तिष्क में होता है। ऐसी मान्यता अंग्रेज़ी-चिकित्सा में है। रक्त-दबाव के बढ़ने के कारण अथवा रक्त-स्राव के कारण या किसी प्रकार के आघात से अथवा अन्य किसी कारण से जब मस्तिष्क से निकलते हुये चेष्टा-वहा तन्तु अथवा संज्ञावहा तन्तु मस्तिष्क-ज्ञान को अंग तक नहीं पहुँचाते, तब यह रोग होता है। डाक्टरों की मान्यता है कि इस रोग का "वायु" के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। इसी प्रकार कटि से निचला भाग अथवा एक पार्श्व का भाग चेष्टा-रहित हो जाय, तो उसे पक्षाघात या एकांग रोग कहा जाता है। इन सबका कारण मस्तिष्क ही में है। वात-रोग का एक भेद "अर्दित" है। इसका सम्बन्ध भी मस्तिष्क के साथ रहता है। इस रोग को अंग्रेज़ी में "फेसियल पैरलिसिस" कहते हैं। इस रोग में रोगी का मुँह एक पार्श्व में मुड़ जाता है। वह सीटी नहीं बजा सकता। यह रोग मस्तिष्क से निकलनेवाले त्रिशिरा-स्नायु (ट्राईजीमनल नर्व) के विकार से होता है। इसी प्रकार हनुस्तम्भ, जिह्वास्तम्भ आदि रोग भी मस्तिष्क के तन्तुओं के कारण ही होते हैं। इनका वायु के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। मूकता,

प्रलाप, निद्रा-नाश, शीतता, रसाज्ञता, रोम-हर्ष आदि रोगों का भी वायु से कोई सम्बन्ध नहीं है। रोगों के ये लक्षण हैं, इनको स्वतंत्र रोग मानना डाक्टरों की समझ में नहीं आता। इसी प्रकार तूनी, प्रतूनी, आध्मान और प्रत्याध्मान आदि वात-व्याधियाँ स्वतंत्र नहीं हैं; परन्तु कोष्ठ-विकार से सम्बन्ध रखती हैं।

इस प्रकार से विवेचना करने पर पित्त और कफ के भी बहुत-से रोग अंग्रेजी वैद्यक-शास्त्र के अनुसार रोग-गणना में नहीं आते। परन्तु आर्य-वैद्यक में इस प्रकार से भेद नहीं किया गया है। उनके अनुसार तो जिन रोगों के लक्षणों में वायु की प्रधानता दिखाई देती है, उनको वात-रोगों में गिन दिया गया है। और जिन रोगों में पित्त की प्रधानता रहती है, उनको पित्त रोगों में और कफ दोष की प्रधानतावालों को कफ-रोगों में गिना है। शरीर के अन्दर जितनी गति है, उस सबका नियामक वायु ही है। इसीलिये गति से सम्बन्धित सब रोगों को वायु-विकार में गिना है और गरमी (उष्णिमा) सम्बन्धी विकारों को पित्त-रोग में। इस दृष्टि से पक्षाघात अथवा आध्मान भी वायु रोग में आजाते हैं। रही लक्षणों की बात—अंग्रेजी-चिकित्सा में भी कई लक्षणों को रोग-रूप से गणना की गई है। उदाहरण के लिये "एनीमिया" और "क्लोरोसिस"। ये दोनों रोग कई रोगों के लक्षण होते हैं। इसलिये इस दोष से अंग्रेजी चिकित्सा-पद्धति भी नहीं बचती। शरीर की सम्पूर्ण गति का नियामक मस्तिष्क है, जो "नर्व्स-सिस्टम" का मुख्य केन्द्र है। इसीसे इस सिस्टम की सम्पूर्ण बीमारियों को "वात-व्याधि" कहा गया है। यही कारण है कि अपस्मार को, उन्माद को स्वतंत्र रोग मानकर भी इनकी चिकित्सा वात-वायु के आधार पर की जाती है और सफलता भी इसीसे मिलती है; क्योंकि इनका सम्बन्ध वात-संस्थान अर्थात् नर्व्स सिस्टम से है।

देशी वैद्यक में "वात-रक्त" एक रोग है। इसको अंग्रेजी-चिकित्सा में कहाँ स्थान दिया जाय, इस विषय में बहुत मतभेद है। कुछ लोग इसको रक्त-विकार मानते हैं, जिस प्रकार रक्त-पित्त को पित्त-विकार मानते हैं। इससे दुष्ट रक्त मानकर कुष्ठ रोगों में अन्तर्भाव करते हैं। दूसरे इसको "गाऊट" कहकर पहचानते हैं। बात ठीक ही है। दोनों ही रोगों में रक्त दुष्ट होता है। गाऊट के अन्दर यकृत के विकार से यूरिया या

यूरिक एसिड पेशाब में अधिक जाने लगता है। पित्त गाढ़ा हो जाता है, पित्त के विकार से रक्त को दूषित होना आवश्यक है। इसलिये इसको "वात-रक्त" नाम दिया जाता है। जिस प्रकार दूषित पित्त शरीरस्थ रक्त को विकृत करता है, उसी प्रकार दूषित वायु रक्त को कुपित करके "वात-रक्त" रोग उत्पन्न करती है। जिस समय यही वात सम्पूर्ण शरीर में कुपित हो, उस समय कुष्ठ-रोग उत्पन्न करती है। जो लोग इसको महाकष्टों में गिनते हैं, उनका कहना है कि यह रोग त्वचा से सम्बन्धित है। और यह रोग नाक, मुँह, माथे से प्रारम्भ होता है। इसकी अधिकता गरीबों में दिखाई देती है और "गाऊट" रोग अमीरों में प्रायः होता है।

"आम-वात" नाम के एक अन्य रोग का वर्णन माधव-निदान में आता है। चरक और वाग्भट्ट ने इसको कोई स्वतन्त्र रोग नहीं माना है। इसको कुछ आदमी सन्धि-वात समझते हैं। इससे इसका अर्थ अँग्रेजी चिकित्सा-पद्धति के अनुसार "रोमेटिज्म" करते हैं। सन्धि-वात या आम-वात के लक्षणों का अन्तर्भाव प्रायः "वात-रक्त" रोग में हो जाता है। इसीसे प्राचीन आचार्यों ने इसको पृथक् रोग नहीं माना। गाऊट के अन्दर प्रायः छोटी सन्धियाँ आक्रान्त होती हैं और रोमेटिज्म के अन्दर प्रायः बड़े जोड़ विशेषतः कोहनी या घुटने के आक्रान्त होते हैं। इस भेद को देखकर पिछले ग्रन्थकारों ने भी इस रोग को "वात-रक्त" रोग से अलग किया है, ऐसी मान्यता करना अच्छा रहेगा; क्योंकि "सन्धि-वात" नाम का कोई पृथक् रोग देशी वैद्यक में देखने में नहीं आता। साधारणतः सन्धियाँ भी दो प्रकार की हैं, छोटी और बड़ी। छोटी सन्धियों की वायु को "वात-रक्त" या "गाऊट" कहते हैं और बड़ी सन्धियों की वायु को "आम-वात" या "रोमेटिज्म" कहते हैं।

माधव-निदान में वात-रक्त रोग की सम्प्राप्ति इस प्रकार से दी गई है कि दूषित वायु के प्रकोप होकर उसमें दूषित रक्त मिलता है। हाथी, घोड़े आदि की सवारी से अथवा दाहकारक और उष्ण पदार्थों के सेवन करने से शरीरस्थ रक्त दूषित हो जाता है; और यह दूषित रक्त-पाँव में उतर जाता है। यह दूषित रक्त वायु के साथ मिलकर इस रोग को उत्पन्न करते हैं। अँग्रेजी रोगों में इसकी सम्प्राप्ति इस प्रकार से बताई है—जो लोग कसरत या श्रम नहीं करते और बहुत पौष्टिक पदार्थ खाते हैं, विशेषतः मद्य

या मांस का सेवन करते हैं, उनके रसादि धातु भली प्रकार परिपक्व नहीं होते। इसलिये पदार्थों से, या धातुओं से उत्पन्न होनेवाले क्षार शरीर से भली प्रकार बाहर नहीं निकलते। इसलिये मूत्र में ये वस्तुयें नहीं छनतीं। और रक्त के साथ बहकर सन्धियों में जाकर ये क्षार इकट्ठे होने लगते हैं। इन क्षारों की अधिकता से वह स्थान सूज जाता है और दर्द होता है। इससे स्पष्ट है कि रक्त का दूषित होना दोनों पद्धतियों में समान है। परन्तु क्षारों का मूत्र-मार्ग से न निकलकर सन्धियों में इकट्ठा हो जाना अँग्रेज़ी चिकित्सा में विशेष है।

आम-वात रोग की सम्प्राप्ति इस प्रकार से माधव-निदान में दी है कि अधिक स्निग्ध और चिकने पदार्थों के अधिक खाने से और कसरत न करने से जठराग्नि मन्द पड़ जाती है। इससे वायु दूषित होकर आम को कफ के स्थान में ले जाती है और वहाँ तीनों दोषों से मिलकर नाड़ियों को भर देती है। इसके अनुसार जब वायु और कफ कुपित होकर कमर में पहुँचती है, तब बहुत ज़ोर करती है। इससे सब सन्धियों में शोथ उत्पन्न होती है। अँग्रेज़ी वैद्यक रीति में वात-रक्त का जिस प्रकार का खुलासा किया है, वैसा आर्य-वैद्यक में नहीं है। वात-रक्त में यूरिक एसिड का और आम-वात में "लैकटिक एसिड" का संचय होता है। वात-रक्त में शोथ गाँठवाला होता है, और आम-वात का शोथ स्निग्ध, चिकना होता है। आम-वात रोग का एक विशेष चिन्ह यह है कि इस रोग से रोगी के हृदय पर प्रभाव अवश्य पड़ता है। यदि इस विकार की चिकित्सा न की जाय, तो रोगी को हृदय-रोग स्थायी हो जाता है। आर्य-वैद्यक में भी आम-वात रोग के साथ "हृदय-ग्रह" नामक विकार का लक्षण बताया है।

देशी वैद्यक में "शूल" एक प्रकार का स्वतन्त्र रोग है। अँग्रेजी-चिकित्सा में इसको मुख्य रोग नहीं गिना गया। यह कोष्ठ-रोगों का एक लक्षण है। कोष्ठ में मल का और अपक्व अन्न तथा वायु का संचय जब होता है, तब आंत्र में, आमाशय में, कृमि, व्रण, ग्रन्थि, अर्बुद आदि रोग होते हैं। इन रोगों के परिणाम-स्वरूप "शूल" होता है। इसी प्रकार सीसा तथा कलई का काम करनेवाले व्यक्तियों में भी शूल रोग मिलता है। इनको विशेषत: आमाशय शूल होता है। इसके अतिरिक्त माधव-निदान में "परिणाम शूल" नाम का एक और रोग लिखा है, जो भोजन के जीर्ण

होने के पश्चात् होता है। अँग्रेज़ी पद्धति से यह "परिणाम शूल" नामक रोग आमाशय-व्रण का एक लक्षण है। प्राचीन आचार्यों ने इस शूल-रोग को कोई स्वतन्त्र रोग नहीं माना है। निदान-सम्बन्धी विचार-कर्त्ता माधव-निदान कहता है—यदि आमाशय-सम्बन्धी कोई विकार हो, तो उस समय भोजन करने से (अजीर्ण-से) शूल-रोग उत्पन्न हो जाता है। प्रायः अन्न के विदाह से या खटास से शूल उत्पन्न होती है। इसी प्रकार उदावर्त्त-रोग को जिस प्रकार माधवाचार्य ने अलग स्वतन्त्र रोग गिना है, उस प्रकार प्राचीन आचार्यों ने तथा अँग्रेज़ी वैद्यकों ने इसे पृथक् रोग नहीं माना। वाग्भट्ट ने लिखा है—मल-मूत्रादि के वेग को रोकने से जो रोग या लक्षण होते हैं, उनमें एक रोग या लक्षण 'उदावर्त्त' भी है। आर्य-वैद्यक-शास्त्र में 'आनाह' रोग भी स्वतन्त्र है—अँग्रेज़ी में इससे मिलते-जुलते रोग को 'टिम्पैनाइटिस' कहते हैं। आर्य-ग्रन्थों के अनुसार यह रोग आमाशय अथवा आंत्रों में होता है।

'गुल्म-रोग' को अँग्रेज़ी में 'एबडयोमिनल ट्युमर' कहते हैं। जिस प्रकार ग्रन्थि शरीर के बाहर होती है, उसी प्रकार गाँठ शरीर के अन्दर भी हो जाती है। इस ग्रन्थि के अतिरिक्त उदर में दोष संचित होकर एक प्रकार की विद्रधि उत्पन्न करते हैं। यह विद्रधि जब फटती है, तो इसका मुख त्वचा के पृष्ठ पर नहीं होता, अपितु अन्दर रहता है। इसके अतिरिक्त वैद्य, जिसको 'अर्बुद' कहते हैं, यह एक प्रकार का मांसार्बुद है, जिसको अँग्रेज़ी में 'कैन्सर' कहते हैं। कैन्सर शरीर के किसी भाग में हो सकता है। गर्भाशय में जिस प्रकार रक्त-गुल्म होता है, उसी प्रकार अर्बुद भी होता है। इसलिये इन दोनों को पृथक् रोग समझकर उनके निदान के अनुसार चिकित्सा करनी चाहिये। मांसार्बुद अथवा कैन्सर यदि आमाशय में हो और पककर फूट जाय, तो रक्त वमन द्वारा बाहर निकलने लगता है। आर्य-वैद्यक में पित्त गुल्म-रोग है, इसके लक्षण मांसार्बुद से बहुत कुछ मिलते हैं। आर्य-वैद्यक में गुल्म और विद्रधि—ये दोनों भिन्न-भिन्न रोग माने हैं। इनमें भेद यह है कि विद्रधि फूटती है और गुल्म पकता तक भी नहीं।

हृदय-रोग में और अँग्रेज़ी-चिकित्सा के हार्ट डिज़ीज़ रोग में बहुत अन्तर है। इनको एक रोग मानकर चिकित्सा करने में भूल हो जाती है। अँग्रेज़ी में जो लक्षण या वर्णन हार्ट डिज़ीज़ के लिखे हैं, उनका वर्णन आर्य-

वैद्यक में नहीं मिलता। आर्य-वैद्यक हृदय-रोग को एकदम असाध्य नहीं मानता; परन्तु अँग्रेज़ी चिकित्सा के अनुसार "हार्ट डिज़ीज़" रोग असाध्य है। इस बात का स्पष्टीकरण करने की ज़रूरत है। आर्य-वैद्यक में कहे हुये हृदय-रोग के लक्षण अग्निमान्द्य, कृमि या अशक्ति के कारण हृदय में उत्पन्न लक्षणों से मिलते हैं। कृमि-जन्य हृदय-रोग का वर्णन आर्य-वैद्यक में है। इसका अर्थ यह है कि शरीर में कृमि होने से जो लक्षण हृदय में उत्पन्न होते हैं, उनको हृदय-रोग कहते हैं। साधारणतः हृदय में दो प्रकार का दर्द होता है—एक हृदय के अन्दर स्वयं या हृदय से सम्बन्धित, जिस प्रकार हृदय की कपाटियों के या उसके आवरण के विकार से उत्पन्न होती है। दूसरा अन्य कारणों से। यथा—रक्त की कमी के कारण अथवा आमाशय या यकृत-रोग के कारण। अँग्रेज़ी में जिस रोग को "हार्ट डिज़ीज़" कहते हैं, वह पहले प्रकार का है, उसका वर्णन आर्य-वैद्यक-ग्रन्थों में नहीं आता। आर्य-वैद्यक में कृमि-जन्य हृदय-रोग' कहा है। उसका अर्थ यह है कि पेट में या आंत्रों में कृमि पड़ने से हृदय में विकार आजाता है। उसी प्रकार मन्दाग्नि के बहुत-से भेद बताये हैं। उनमें से एक भेद के अन्दर, हृदय के अन्दर दर्द होता है और इस दर्द को वात-जन्य हृदय-दर्द कहा गया है। अँग्रेज़ी में इस प्रकार के दर्दों को "कार्डेल्जिया" कहते हैं। इसी प्रकार पित्त-जन्य हृदय-रोग के लक्षण आमाशय तथा पक्वाशय के विकार से उत्पन्न होनेवाले परिणाम शूल से मिलते हैं। इसी प्रकार प्राचीन आचार्यों ने "अम्लपित्त" को जो पृथक् रोग माना है, वह भी पक्वाशय या आमाशय के विकारों का लक्षणमात्र है। इसी अम्ल-पित्त के बहुत-से लक्षण बहुत-से पित्त-जन्य हृदय-रोग से मिलते हैं। इस प्रकार से रोगों के नामकरण एवं निदान में बहुत गड़बड़ी है। इसलिये यही सरल उपाय है कि रोग के नाम से चिकित्सा न करके मूल कारण से चिकित्सा करनी चाहिये अथवा दोनों पद्धतियों से रोग की समीक्षा करके चिकित्सक को अपना मार्ग बनाना चाहिये।

मूत्राशय-सम्बन्धी रोगों का निदान प्रायः दोनों पद्धतियों में मिलता-जुलता है। यह निदान दूरवर्ती रूप में अधिक मिलता है। सन्निकृष्ट रूप में दोनों के अन्दर बहुत भेद हैं। मूत्रकृच्छ्र रोग में क्या-क्या अन्तर होते हैं, और मूत्राशय रोग के कारण अन्दर के अवयवों में क्या-क्या अन्तर आता है, इस बात का वर्णन प्राचीन आर्य-ग्रन्थों में नहीं मिलता;

परन्तु आंग्ल-चिकित्सा के ग्रन्थों में बहुत कुछ स्पष्टीकरण किया हुआ है। "मूत्रकृच्छ्र" रोग कई कारणों से होता है—मल के अवरोध से भी होता है; क्योंकि मलाशय और वस्ति-प्रदेश पास-पास में हैं। इससे एक अवयव का विकार दूसरे अवयव पर भी लागू पड़ता है। इसी प्रकार अश्मरी तथा शर्करा रोग से भी मूत्रकृच्छ्र रोग हो जाता है। वीर्य के दोष से भी मूत्र-कृच्छ्र रोग होता है। वीर्य-दोष क्या है? इसका उत्तर बाकी रहता है, इसी प्रकार अश्मरी और शर्करा में क्या भेद है? और ये दोनों वस्तुएँ किस कारण से और कहाँ बनती हैं? इत्यादि बातों का जानना आवश्यक है। अश्मरी मूत्राशय में बनती है, चूंकि वहाँ इसकी वृद्धि के लिये पर्य्याप्त स्थान होता है। शर्करा वृक्क में बनती है। वायु ही इस शर्करा को भिन्न-भिन्न रखती है। मूत्राश्मरी या शर्करा के कारण एक प्रकार का भयंकर शूल होता है। इस शूल का कारण प्राचीन ग्रन्थों में स्पष्ट नहीं है। परन्तु मूत्र-वाहक वृक्क की नालियों में वृक्क-वस्ति में जब शर्करा रुककर रास्ता बन्द कर देती है, तब मनुष्य को दर्द होता है। इसी प्रकार वस्ति या मूत्राशय-द्वार को जब पथरी रोक लेती है, उस समय भी प्रवाहण का वेग होने से परन्तु प्रवाहण न हो सकने के कारण तीव्र दर्द होता है।

मूत्राघात और मूत्रकृच्छ्र रोग के अन्दर इतना अन्तर है कि मूत्राघात में मूत्र सर्वथा बन्द हो जाता है और मूत्रकृच्छ्र रोग में मूत्र कठिनता से आता है। आर्य-वैद्यक में मूत्राघात के बहुत-से भेद हैं। इसी प्रकार आंग्ल-चिकित्सा से भी इस रोग के कई भेद हैं। आर्य-वैद्यक में जिस रोग को "वात-कुण्डलिका" कहते हैं, अनार्य-वैद्यक में उसे "स्पोरमैटिक स्ट्रीक्चर" कहते हैं। अनार्य-चिकित्सा में जिसको "स्ट्रिचर ऑफ यूरिया" कहते हैं, उसी रोग को आर्य चिकित्सा में "मूत्रोत्संग" कहते हैं। अनार्य-चिकित्सा में जो लोग औपसर्गिक प्रमेह (गोनोरिया) का शीघ्र इलाज करने के लिये पिचकारी का उपयोग करते हैं, उनको यह रोग बहुत जल्दी लागू पड़ता है। वात-कुण्डलिका रोग औपसर्गिक प्रमेह, मलावरोध, मूत्राश्मरी आदि रोगों से होता है। मूत्राशय के अग्रभाग में और मूत्र-मार्ग में एक ग्रन्थि है, जिसको अनार्य-चिकित्सा में "प्रोस्टेटग्लैन्ड" कहते हैं। वृद्धावस्था में तथा कई रोगों में यह ग्रन्थि बढ़ जाती है। इससे मूत्र रुक-रुककर आता है, या बन्द हो जाता है। आर्य-चिकित्सा में इस

कारण से उत्पन्न रोग को "अष्ठीला" कहते हैं। इसी प्रकार चौथी प्रकार का मूत्राघात "वात-वस्ति" है। अनार्य-चिकित्सा में इसको "रिटैन्शन ऑफ यूरीन" कहते हैं। इस रोग में मूत्र-शलाका का उपयोग प्राय: करना पड़ता है। मूत्राघात का पाँचवाँ भेद "मूत्रातीत" है। इस रोग में वस्ति की मांस-पेशियाँ और स्नायु ढीले पड़ जाते हैं, इससे मूत्राशय पूर्ण रूप से संकुचित नहीं होता, जिससे मूत्र बाहर नहीं आता। प्राय: यह रोग वृद्धावस्था में होता है। मूत्राघात का एक भेद "मूत्र-क्षय" है। इसका नाम अनार्य-चिकित्सा में "स्प्रैशन ऑफ़ दि यूरिन" है। इस रोग में वृक्कों के अन्दर मूत्र बनता ही नहीं। यह अवस्था प्राय: "कॉलरा रोग" में हो जाती है, जब रक्त इतना गाढ़ा हो जाता है कि वृक्क के छननों में से वह छन नहीं सकता। पानी के न छनने से मूत्र भी नहीं बनता। यदि यह अवस्था बहुत देर तक रहे, तो रोगी मर जाता है। इस अवस्था में मूत्राशय खाली रहता है। इसलिये शलाका का उपयोग, गरम पानी में बैठाना विशेष लाभ नहीं करता। मूत्राघात रोग का एक और भेद है, जिसको "मूत्र-ग्रन्थि" कहते हैं। इस रोग में मूत्राशय के अन्दर एक गाँठ अर्बुद-सा हो जाता है। यह रोग असाध्य है। जब मूत्र के साथ शुक्र जाता हो, तो उसे "मूत्र-शुक्र" कहते हैं। यह रोग बच्चों में १२ वर्ष से पूर्व तथा हस्त-मैथुन करनेवाले युवकों में मिलता है। इस शुक्र में प्राय: शुक्राणु नहीं होते। यह या तो शिश्न के अन्दर रहनेवाली ग्रन्थियों का अथवा अष्ठीला ग्रन्थि का श्वेत, चिकना स्राव होता है, जो आँख से देखने पर वीर्य से बिलकुल मिलता है। "मूत्रसाद" रोग को अनार्य-चिकित्सा में "सिस्टयटिस" कहते हैं। इसका अभिप्राय है मूत्राशय को शोथ। "विड्घात" रोग का अभिप्राय यह है कि मलाशय में विष्ठा के रुकने से अपान वायु कुपित होकर मूत्र को भी बन्द कर देती है। कई लोग इस रोग का यह अर्थ करते हैं कि मलाशय या आन्त्र की विद्रधि का मुख जब फूटकर उसका मल मूत्र के रास्ते बहने लगे। यह बात असम्भव है; क्योंकि आंत्र की भित्ति फटने से विष बाहर हो जायगा। "उष्णवात" रोग को अनवा कहते हैं।

प्रमेह रोगों के विषय में दोनों पद्धतियों के अन्दर बहुत भेद आगया है। उदाहरण के लिये आर्य-वैद्यक में बीस प्रकार के प्रमेह-रोग माने गये हैं।

इनमें दस प्रमेह कफ के विकार से हैं और ये साध्य हैं। छः प्रमेह पित्त के कारण हैं, ये कृच्छ्रसाध्य हैं और चार वात के कारण हैं, जो असाध्य हैं। आयुर्वेद के इक्षुमेह और शीतमेह का अन्तर्भाव कुछ लोग "डायबीटिज-मेलिटस" में करते हैं और उदकमेह का अन्तर्भाव डायबीटिज इन्सीपीडस में करते हैं। सिकतामेह, सुरामेह, सान्द्रमेह आदि भेदों में एक प्रकार का क्षार मूत्र में जाता है। उसी प्रकार वसामेह, मज्जामेह, लालामेह, पिष्टमेह आदि भेद किये हैं, जिनमें क्षार—यूरिक एसिड, ऑक्सेलिक एसिड, लाइम आदि पदार्थ बाहर निकलते हैं। इसी प्रकार मूत्र में जानेवाले एल्ब्युमिन आदि का भी समावेश इन्हीं प्रमेहों में किया गया है। अँग्रेजी में जिस रोग को "हिमेच्युरिया" कहते हैं, उसी रोग को यदि रक्तमेह माना जाय, तो यह रोग वात का भेद होने से असाध्य मानना चाहिये। परन्तु वास्तव में "हिमेच्युरिया" रोग कोई असाध्य रोग नहीं है।

इसके अतिरिक्त आर्य-वैद्यक में "मधुमेह" नामक एक रोग है, जिसका कारण प्रमेहों की चिकित्सा न करने से बढ़कर मधुमेह रोग में परिवर्त्तित होना है। कोई-कोई रोग इसे "डायबीटिज मेलिटस" मानते हैं, जो ठीक है। यह रोग प्रायः असाध्य रहता है; परन्तु अनार्य-चिकित्सा के अनुसार यह रोग पित्ताशय (पैंक्रियास) की खराबी से होता है। इसकी चिकित्सा भी उसी आधार पर की जाती है। परन्तु आर्य-वैद्यक में इसका इस अवयव के साथ कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है।

प्रमेह-रोग के उपद्रव-स्वरूप शरीर में दस पिटिकायें हो जाती हैं, ऐसा आर्य-चिकित्सा में लिखा है। परन्तु अनार्य-चिकित्सा में इस प्रकार का कोई भी उपद्रव नहीं बताया गया है। यह बात दोनों पद्धतियों में समान है कि प्रमेही रोगी के व्रण बहुत देर में भरते हैं।

आजकल गोनोरिया या सिफलिस अथवा सैंकर—ये तीन रोग नये मिलते हैं। इनका मुख्य कारण दुष्ट स्त्री का संक्रमण है। परन्तु आर्य-वैद्यक में इनमें से सिफलिस या उपदंश का कारण दुष्ट स्त्री के संसर्ग के अतिरिक्त पशु आदि योनि से भी सम्बन्ध बताया है। उनकी योनि में गरमी होने से यह रोग प्रायः होता है। गोनोरिया या सूजाक का वर्णन कहीं मिलता नहीं। कुछ विद्वान् इसका अन्तर्भाव शुक्रमेह के अन्दर करते हैं। स्वभावतः इन रोगों के कारण, लक्षण और चिकित्सा, आर्य-चिकित्सा के बीस प्रमेहों से नहीं

मिलते। अतः यह रोग सर्वथा भिन्न हैं। आर्य-वैद्यक का एक भी प्रमेह-रोग संक्रमण-जन्य नहीं है।

आर्य-वैद्यक में "उदर-रोग" एक स्वतन्त्र रोग है। इनमें गिने गये प्लीहोदर (इनलार्जमेंट ऑफ दि स्प्लीन) यकृद्दाल्युदर (इनलार्जमेंट ऑफ दि लीवर) बद्धगुदोदर (स्ट्रीकचर आफ दि रैकूम) तथा जलोदर (एसायटिस) हैं। इनमें से प्रथम दोनों रोग प्रायः रोगों के परिणाम-स्वरूप होते हैं। जलोदर-रोग में किस प्रकार और कहाँ पानी भरता है, इसकी विस्तृत विवेचना आर्य-वैद्यक में नहीं है। परन्तु इस पानी को निकालने की विधि ठीक उसी प्रकार आर्य-वैद्यक में दी गई है, जिस प्रकार अनार्य-चिकित्सा में है। अनार्य-चिकित्सा के अन्दर उदर के अन्दर पानी किस प्रकार से उदरा-वेष्ठनकला के अन्दर इकट्ठा हो जाता है, इसका विस्तृत विवरण दिया गया है।

इसी प्रकार एसायटिस जब व्यापकरूप में सारे शरीर पर फैल जाता है, तो इसको "एनासारका" कह देते हैं और जब आँख, पाँव या अन्य भाग पर सूजन हो जाय, तब इसको ड्रॉप्सी अथवा "शोथ" रोग कहते हैं। इस रोग की पहचान यह है कि अँगुली के दबाने से गड्ढा पड़ जाता है और फिर धीरे-धीरे ऊपर उठता है। यह रोग हृदय, वृक्क आदि के रोगों से भी हो जाता है। इसकी सम्प्राप्ति यह है कि रक्त का द्रवभाग रक्त-वाहिनियों से निकलकर तन्तुओं में इकट्ठा हो जाता है और वह वापस नहीं जाता। अनार्य-चिकित्सा में यह शोथ-रोग कोई स्वतन्त्र रोग नहीं है; परन्तु रोगों का लक्षण है। परन्तु आर्य-चिकित्सा में यह स्वतन्त्र रोग है। आयुर्वेद में वर्णित वात-जन्य शोथ को यदि कार्डिक ड्राप्सी (हृदय-सम्बन्धी) पित्त-जन्य शोथ को लीवर ड्राप्सी (कलेजा-सम्बंधी) और कफ-जन्य शोथ को किडनी ड्रॉप्सी (गुर्दा-सम्बंधी) मान लिया जाय, तो कोई भेद नहीं आता। इसके अतिरिक्त अभिघात-जन्य शोथ साधारण ही है, जो आघात से या विष आदि से (यथा भिलावे के लगने से) उत्पन्न हो जाता है। चिकित्सा की सुगमता से इस प्रकार विभाग किये गये हैं।

प्राचीन ग्रन्थों में रोगों का जो वर्णन मिलता है, वह सम्पूर्ण भी आज उसी प्रकार से मिलना चाहिये, अथवा आजकल के रोगों का प्राचीन-काल मे होना आवश्यक था, यह बात समय और युक्ति विरुद्ध है। लोगों के रहन-सहन, आचार-विचार धर्म आदि से भेद आजाता है। प्राचीन शूक-

रोग का आजकल कहीं पता नहीं चलता। इसी प्रकार आजकल के "एलोफीवर" आदि रोगों का वर्णन पहले के ग्रन्थों में नहीं आता। यहाँ पर तो केवल दोनों देशी और अँग्रेजी निदान को सम...ने के लिये संक्षेप से दोनों पद्धतियों की विवेचना की गई है। विशेष विवेचना का यहाँ पर स्थान भी नहीं। आर्य-चिकित्सा के प्रेमी इस विवेचना पर से इस विषय को समझ सकेंगे, इसीसे यह प्रकरण इसमें लिखा गया है। दोनों पद्धतियों में बहुत भेद है। देशी चिचित्सा का तो एक सूत्र है कि सब रोगों का कारण वात, पित्त और कफ ये तीन दोष हैं। इनके ऊपर यह शरीररूपी मकान खड़ा है। इनके विकार से शरीर में विकार आता है। इन भेदों के कारण रोगों के नाम भिन्न-भिन्न होते हैं और इनके परस्पर भेद असंख्य हैं, अतः रोग भी असंख्य हैं। इस त्रिदोष का सिद्धान्त-मूल बहुत गहरा है, उसको समझना इस सांसारिक जीव के लिये कठिन है। अतः रोग का कारण और उसकी सम्प्राप्ति को समझकर यदि कार्य किया जाय, तभी सफलता होने की आशा है।

प्रकरण आठवाँ

औषधि-योजना

औषधियाँ और उनकी रचना

विकृति को प्रकृति में बदलने का साधन औषधियाँ हैं अथवा प्रकृति को स्वस्थ रखने का भी साधन औषधियाँ हैं। औषधि अर्थात दोषों को नाश करनेवाली वस्तु औषध है। एक प्रकार से यह मनुष्य के शस्त्र हैं, जिसकी सहायता से वह रोगों के साथ युद्ध करता है। जिस प्रकार अस्त्र या शस्त्र सदा तीक्ष्ण चमकते रहने चाहियें, उसी प्रकार औषधियाँ भी सदा ताजी रखनी चाहियें।

प्रतिदिन काम में आनेवाली या आँखों के सामने से गुजरनेवाली चीजें ही समय पर औषधि का रूप धारण कर लेती हैं। पोदीना की चटनी प्रतिदिन खाई जाती है, लहसुन को सब इस्तेमाल में लाते हैं। परन्तु पोदीना प्यास को कम करता है, या गरमी को घटाता है, अथवा लहसुन वायु-रोग को या शूल-रोग को नष्ट करता है, इस बात को बहुत कम जानते हैं। इसी प्रकार हम इनके उपयोग को नहीं समझते कि किस रूप में देने से ये पदार्थ अपना प्रभाव करते हैं। हींग को यदि घी में भूनकर पेट की दर्द में दिया जाय, तो विशेष लाभ करता है।

दवाइयों के भिन्न-भिन्न रूप

१. क्वाथ (कषाय)— क्वाथ को उकाला, जुशांदा भी कहते हैं। इसको बनाने के लिये एक भाग दवाइयाँ और सोलह भाग पानी रखना चाहिये। औषधियाँ थोड़ा मोटा-मोटा कूट लेना चाहिये। इसको आधा घंटा

पहले पानी में भिगो देना चाहिये। फिर मिट्टी के बर्तन में इसको उबालना चाहिये। जब पानी $\frac{3}{4}$ भाग जल जाय और एक भाग बच जाय, तब मथकर छान लेना चाहिये। पकाते समय बर्तन का मुँह खुला रखना चाहिये। धातु आदि के बर्तन प्रायः औषधियों से मिलकर रासायनिक प्रभाव करते हैं। यथा—यदि लोहे के बर्तन में त्रिफले का काढ़ा करें, तो वह काला हो जाता है। ताँबे या पीतल के बर्तन में अधिक कषैला हो जाता है। इस क्वाथ के फोकट को पुनः पकाकर भी दे सकते हैं। विशेषतः जब दवाइयाँ कड़ी हों, या पानी $\frac{1}{8}$ बचाया गया हो। परन्तु यह छान रात का हो, तो उसे अगले दिन नहीं बरतना चाहिये। इस दुबारे के काढ़े को "परकाढ़ा" कहते हैं। यदि क्वाथ जल्दी बनाना हो, तो $\frac{1}{8}$ शेष रख लेना चाहिये। इस प्रकार क्वाथ करने से औषधियों के तत्त्व पानी में आजाते हैं।

जो दवाइयाँ सूखी या कड़ी होती हैं, उनका रस इस प्रकार से निकालता है। मद्य (शराब) की भाँति पानी पदार्थ के सब तत्त्वों को खींच नहीं लेता; क्योंकि मद्य तीक्ष्ण और सूक्ष्म होता है। इससे वह पदार्थ के परमाणुओं में शीघ्ररूप से घुस जाता है। क्वाथ की मात्रा अधिक होती है।

अँग्रेजी पद्धति के अनुसार क्वाथ बनाने में एक भाग क्वाथ और दो भाग पानी आजाता है। क्वाथ में मधु, पुराना गुड़, पीपली, शर्करा आदि पदार्थ अनुपान के अनुसार रोग को देखकर मिला देने चाहिये।

यदि इस ग्रन्थ में लिखे हुये किसी क्वाथ के योग में कोई दवाई न मिले, या रोग तथा स्थिति के अनुकूल न जँचे, तो उसको निकालकर दूसरी दवाई बरत लेनी चाहिये।

२. चूर्ण—किसी भी शुष्क पदार्थ को कूटकर कपड़े में छानकर पाउडर करने का नाम चूर्ण है। यह चूर्ण मैदे की भाँति बारीक नहीं होना चाहिये। आजकल कई फार्मेसियाँ चूर्ण को बिजली की चक्कियों से बनाती हैं। यह चूर्ण मशीन के आटे की भाँति अधिक लाभदायक नहीं होता। इसको थोड़ा करकरा रखना चाहिये। इसकी मात्रा ३ माशा होती है।

३. गोली—इसको वटी, गुटिका कहते हैं। चूर्ण की अपेक्षा दवाई इस रूप में अधिक देर तक रक्खी जा सकती है। गोली से बड़ी गोली को वटक और वटक से बड़ी गोलियों को मोदक कहते हैं। किसी भी दवाई या

दवाइयों के बारीक चूर्ण को अथवा उनके सत्त्व को मधु, नींबू के रस, गुड़, गुग्गुल अथवा पानी या दूध की सहायता से गोली के रूप में बनाया जाता है। यदि गोली या मोदक गुग्गुल अथवा शर्करा में बनानी हो, तो इनकी चाष खींचनी चाहिये। चूर्ण से शर्करा चारगुणी, गुड़ दुगुना, मधु चूर्ण के बराबर और पानी आदि प्रवाही पदार्थ दुगुने अथवा आवश्यकतानुसार लेने चाहिये। मोदक को टुकड़े करके खाना चाहिये। यदि गोली कठोर होगई हो, तो पीसकर खानी चाहिये।

४. अवलेह—आर्य-वैद्यक में अवलेह को ऊँची श्रेणी में रखा गया है। इसमें औषधियों का सत्त्व मधु, शर्करा आदि से मीठा बनाया जाता है। इसमें इलायची, तेजपत्र-जैसी सुगन्धित चीजें डाली जाती हैं। इस रूप में दवाइयाँ अधिक देर तक सुरक्षित रहती हैं। इस अवलेह के साथ भस्म, रस तथा अन्य दवाइयाँ दी जा सकती हैं। जिन वस्तुओं का अवलेह करना हो, उनका स्वरस अथवा क्वाथ करना चाहिये। क्वाथ को छानकर फिर उसको मीठी आँच से गरम करना चाहिये। दुबारा गरम करने के समय इसमें क्वाथ से चतुर्थांश शर्करा डाल देनी चाहिये। जिस समय पकते-पकते क्वाथ इतना गाढ़ा बन जाय कि नीचे उतारने पर ठंडा होने से अँगुली पर चिपटने की आशा हो जाय, उस समय उतार ले। और ठंढा होने पर इसमें घृत, तैल, मधु या सुगन्धित पदार्थ जो डालने हों, वे डाल देने चाहिये। अवलेह ठीक बना है, या नहीं, यह देखने के लिये पानी से भरे कटोरे में थोड़ा-सा अवलेह डालकर देखना चाहिये। यदि अवलेह ठीक पका हुआ होगा, तो वह नीचे तली पर बैठ जायगा। अवलेह की मात्रा ½ तोले से १ तोला है।

५. पाक—पाक बनाने की भिन्न-भिन्न विधियाँ हैं। साधारण विधि यह है कि जिन चीजों का पाक बनाना हो, उन सबका चूर्ण करके सोलहगुणा या बीसगुणा दूध में डालकर खोवा बना ले। फिर इस खोवे को घी में भून लेना चाहिये। कोई इस चूर्ण को अलग घी में भूनते हैं और दूध का खोवा पृथक् बनाकर उसको पृथक घी में भून लेते हैं। घी में इतना भूनना चाहिये कि वस्तु की गन्ध आने लगे, उसका रंग लाल-सा हो जाय। फिर इन सबके बराबर की शक्कर लेकर उसकी चासनी बनानी चाहिये। जब चासनी तीन तार की हो जाय, तो इस भूने हुए पदार्थ को उसमें डालकर हिला देना चाहिये।

है। स्वरस के अन्दर घी, तेल, मधु, शर्करा और सैन्धानमक डालने की मात्रा ½ तोला है। रोगी की प्रकृति के अनुसार मात्रा को निश्चित करना चाहिये।

१९. हिम—औषधियों को कूटकर मोटा चूर्ण कर लेना चाहिये। उसमें जब ठण्डा पानी छ:गुणा रखकर बारह घण्टे रख दे और पुन: प्रात:काल छानकर काम लाये, इसको हिम कहते हैं। हिम की मात्रा ८ तोला है।

२०. मंथ—मिट्टी के बर्त्तन में वनस्पति, चूर्ण से १६ गुणा ठण्डा पानी डालकर, दवाई को खूब मथकर, कपड़े से छानकर, जो प्रवाही द्रव बनता है, उसका नाम मंथ है। हिम के समान होने से इसकी भी मात्रा ८ तोला है।

२१. क्षार—जौ आदि वनस्पतियों के अन्दर से क्षार निकालने की सामान्य विधि यह है कि वनस्पति का पंचांग लेकर इसको साफ़ अच्छे स्थान पर अथवा किसी बड़े बर्तन में रखकर जलाना चाहिये। जब सब राख हो जाय, तब इस भस्म को ६४ गुणे पानी में डालकर मिला देना चाहिये। पीछे इस पानी को थोड़ा-सा उबाल देकर छान लेना चाहिये। उबालने से क्षार का भाग पानी में भली प्रकार मिल जाता है। फिर इस पानी को ऊपर से नितार-कर दूसरे बर्त्तन में छान लेना चाहिये। इस छने हुए पानी को धूप में रख-कर या आग पर गरम करके खुश्क कर देना चाहिये। बर्त्तन के तलछट पर जो श्वेत पदार्थ रहेगा, वह क्षार है। इसी प्रकार से इमली, केला अपा-मार्ग, जौ, दाभ, मूली आदि का क्षार निकाला जाता है।

२२. लेप—शोथ के ऊपर, विषैले जानवर के डङ्क के ऊपर और कोढ़ आदि चमड़ी के ऊपर गीली या सूखी वनस्पति पीसकर मोटा लेप किया जाता है। प्राय: गरमी की सूजन के ऊपर ¼ अंगुल मोटा ठण्डा लेप किया जाता है। कफ और वायु के शोथ के ऊपर तथा गुमड़े के ऊपर गरम करके ⅓ अंगुल मोटा लेप करना चाहिये।

२३. पंचांग—किसी भी वनस्पति के मूल, छाल, पत्ते, फल और फूल इन सबको पंचांग कहते हैं।

२४. मंजन—दाँतों को घिसने की वस्तु को मंजन कहते हैं।

२५. अञ्जन—आँख में अंजन करने की वस्तु को "अंजन" कहते हैं। यह अंजन चूर्णरूप, गोलीरूप और नरम या प्रवाहीरूप होता है।

२६. पिंडी—औषधि की लुगदी बनाकर आँख के ऊपर बाँधी जाती है। इस लुगदी को "पिंडी" कहते हैं। यह भी एक प्रकार की पुलटिस है।

२७. आश्च्योतन—किसी भी प्रवाही दवाई को आँख में बूँद-बूँद करके गिराने का नाम आश्च्योतन है। यह बूँदें सरदी के दिनों में थोड़ी गरम करके और गरमी के दिनों में थोड़ी ठंडी करके गिरानी चाहिये।

२८. नस्य—नाक में सूँघनेवाली वस्तु को "नस्य" कहते हैं। यह घी, तेल या चूर्ण के रूप में हो सकती है।

२९. पान—किसी भी वस्तु को २२ गुणा अथवा इससे भी अधिक पानी में डालकर उबालना चाहिये। जब आधा पानी बाकी रह जाय, तो इसको पीना चाहिये। इसको 'पान' कहते हैं।

३०. धूप—अग्नि में दवा जलाकर घर को धुआँ देने से हवा शुद्ध की जाती है, उसी प्रकार त्वचा के कई रोगों में धुआँ दिया जाता है। विशेषत: गरमी या उपदंश के रोग में। अङ्गारे के ऊपर दवा डालकर उसके ऊपर खाट रखनी चाहिये। इसके ऊपर रोगी को बिठा दिया जाता है। उसका मुँह बाहर खुला रख देना चाहिये और सारे शरीर को ढक देना चाहिए, जिससे धुआँ बाहर न जाय। और यह धुआँ नाक, मुँह आदि के ऊपर भी नहीं आना चाहिये।

३१. धूम्रपान—जिस प्रकार शरीर को धूप दी जाती है, उसी प्रकार कई रोगों में बीड़ी, चिलम, सिगरेट या हुक्के के द्वारा दवाई पी जाती है। यह दवाई कभी नाक से और कभी मुख से ली जाती है।

३२. फलवर्त्ती—योनि अथवा गुदा के अन्दर प्रविष्ट करने योग्य मोटी वा पतली दवाइयों से बनी वस्तु को फलवर्ती कहते हैं। इस बत्ती को सूती पतले वस्त्र से लपेटकर जामुन के आकार अथवा अँगुली जैसी मोटी बनानी चाहिये। और इसको घी या तेल में चिकना करके गुदा या योनि में रखना चाहिये। बाजार में इस प्रकार वर्तियाँ गुदा के लिये और

योनि के लिये बनी आती हैं। गुदा की वर्ति को प्राय: मलबन्ध की अवस्था में रक्खा जाता है। और योनि-रोग तथा अन्य अवस्थाओं में योनि के अन्दर बत्ती रक्खी जाती है।

३३. गलाले--किसी भी प्रवाही को मुँह में भरकर रखना, इसको 'गंडूष' कहते हैं। और जब प्रवाही पदार्थ को मुँह के अन्दर फेर सकें, तो इसको "कवल" कहते हैं। जब मुँह थूक से भर जाय और नाक तथा आँख से पानी झरने लगे, तब मुँह से गन्डूष को फेंकना चाहिये।

३४. वस्ति (पिचकारी)—पिचकारी दो मार्गों से दी जाती है। एक मूत्र-मार्ग से और दूसरी मल-मार्ग से। आजकल रबर की पिचकारी बाजार में जो मिलती है, वह प्राय: अनुकूल हो जाती है। प्राचीन काल में प्राय: पशुओं की वस्ति (मूत्राशय) अथवा चमड़े से कार्य किया जाता था। आर्य-वैद्यक में वस्ति से बहुत-से रोगों की चिकित्सा लिखी है। कई प्रकार के क्वाथ, तैल आदि वस्तुओं से वस्ति दी जाती थी। वस्ति-क्रिया चिकित्सा का मुख्य अङ्ग गिना गया है। वस्ति के द्वारा पोषणकारक पदार्थ शरीर में दिये जाते थे। वस्ति-चिकित्सा का मुख्य हेतु आंत्रों के अपक (आम) मल इत्यादि को बाहर निकालकर आँतों को स्वच्छ करना है। इसके साथ ही वस्ति से आँतों को मजबूती मिलती है। बहुत-से पुराने रोग इस वस्ति से दूर हो सकते हैं। प्रमेहादि विकारों से मूत्र-मार्ग बिगड़ जाता है, उस समय इसको स्वच्छ करने के लिये मूत्र-मार्ग की वस्ति दी जाती है।

वस्ति के अन्दर खाने की दवाई से दुगुना या इससे अधिक द्रव्य देना पड़ता है। विशेषत: इस वस्ति-क्रिया में यह खूबी है कि मुँह का स्वाद नहीं बिगड़ता। बंध-कोष वायु के अफरा आदि में तत्काल लाभ होता है। जिस प्रकार वस्ति फायदा करती है, उसी प्रकार अनुचित उपयोग से हानि भी करती है।

वस्ति वाम पार्श्व में लेटकर, वाम पाँव को फैलाकर और दक्षिण पाँव को सिकोड़कर गुदा में लेनी चाहिये। बर्त्तन में थोड़ा-सा पानी छोड़ देना चाहिये।

३५. स्वेद—(भाप-सेक)—शरीर से गरमी निकालने के लिये, सूजन को कम करने के लिये, दर्द को घटाने के लिये, गीला या सूखा सेक किया जाता है। इस सेक को स्वेद कहते हैं। सेक के साधारणत: तेरह भेद

हैं। इनमें गीला और सूखा दो मुख्य हैं। गीला स्वेद देने के लिये एक बर्त्तन में पानी उबालकर उसमें दो ऊनी कपड़े रख देने चाहियें। बारी-बारी से एक-एक कपड़ा निचोड़कर स्थान पर रखना चाहिये। इस पानी में खस के डोडे आदि दर्दनाशक पदार्थ डाल देते हैं। इस सेक में निचोड़ना न पड़े इसलिये पतीली के मुख पर चलनी रख देते हैं। उसमें वस्त्र के टुकड़े डाल दिये जाते हैं। इस पतीली के वाष्प से कपड़ों को गीला कर देते हैं। इनसे सेक करना चाहिये।

सूखा सेक करने के लिये मिट्टी, ईंट, खल, रेत, बिनौले आदि वस्तुओं की पोटली बनाकर सेक किया जाता है। इससे रोगी को बहुत आराम मिलता है।

भपारा—किसी बर्त्तन में भाप की दवाइयाँ डालकर उसमें चौगुना पानी डालकर अँगीठी पर उबालना चाहिये। इस पानी के जो वाष्प नाक आदि से सूँघे जाते हैं, उनको भपारा कहते हैं।

३६. बन्धारण—शरीर के किसी भाग को, विशेषत: पेट को नरम करने के लिये जो लेप या पट्टी (औषधियों की) बाँधी जाती है, उसका नाम बन्धारण है।

३७. लोपरी—(पुल्टिस)—अलसी, तिल, गेहूँ आदि के आटे को घी, तैल या पानी में पकाकर, हलवे जैसी बनाकर, शोथ या गुमड़े के ऊपर बाँधी जाती है, इसका नाम पुल्टिस है।

३८. चावलों का धोवन—४ तोला साफ़ किये चावलों को ८ गुणे पानी में एक घन्टे तक भिगोकर, एक घन्टे के पीछे मथकर, छान लेना चाहिये। यह पानी कई रोगों में अनुपान रूप से काम आता है।

३९. काञ्जी—गेहूँ, उड़द या चावलों को उबालकर, पानी के साथ मिट्टी के बर्त्तन में मुँह बन्द करके कुछ समय तक रख देने से जो प्रवाही तैयार होता है, उसको काञ्जी कहते हैं। उड़द या चने के भल्ले या बड़ियाँ बनाकर इनमें पानी, राई, धनिया, जीरा, अजवायन आदि गेरकर ऊपर की भाँति बर्त्तन में रखने से काञ्जी बन जाता है। यह काञ्जी, लोहा, सीसा आदि धातुओं के शोधन में काम आती है।

४०. यूष—मूँग आदि दाल के पानी को यूष कहते हैं। किसी भी दाल के सबूत दानों को सोलहगुणा पानी में उबालना चाहिये। जब दाल का दाना गल जाय, तब इस पानी को छान लेना चाहिये और इसमे सैन्धानमक, जीरा, हींग आदि वस्तुयें रोगी की प्रकृति के अनुसार डालनी चाहियें। आर्य-वैद्यक में मूँग के यूष की बहुत प्रशंसा की गई है; क्योंकि यह पचने में हल्का और पुष्टिकारक है।

४१. मण्ड—चावलों को चौदहगुणा पानी में पकाकर, उसके पानी को अलग निकालकर, उसमें सैन्धानमक, जीरा, सोंठ आदि वस्तुयें आवश्यकतानुसार डालने पर "मण्ड" तैयार होता है। यह मण्ड बहुत हल्का है। ज्वर रोगी के लिये बहुत हितकारी है।

४२. पेया—लाल साठी चावल अथवा किसी ऊँचे प्रकार के चावलों को सोलह गुणा पानी में पकाकर खूब गाढ़ी बनानी चाहिये, जिससे वह पीने योग्य हो जाय। यह पेया ताव तथा अतिसार के रोगी के लिये बहुत हल्की है। इसको भी मण्ड की भाँति सैन्धानमक, सोंठ, जीरा आदि डालकर स्वादिष्ट बना सकते हैं।

४३. यवागू—पेया से कहीं कुछ अधिक गाढ़ी रबड़ी को अथवा पकाकर पतले किये हुए भात को "यवागू" कहते हैं। कांजी के नाम से इसको पहचानते हैं। यदि चावलों को छःगुणे पानी में उबाल लें, तो यवागू बन जाता है।

४४. कांजी—वर्त्तमान काल में साबूदाने को सब काञ्जी कहकर पहचानते हैं। यह काञ्जी ऊपर कही हुई पेया से मिलती है। साबूदाने को सोलह गुणे पानी में उबालकर उतारते समय इसमें दूध आदि पदार्थ रुचि के अनुसार डाल देने चाहियें। इसमें कुछ आदमी शकर डालकर पीते हैं और कुछ दूध शकर के स्थान में नमक डालते हैं।

४५. कल्क—गीली बनस्पतियों को पत्थर पर पीसकर अथवा सूखी दवाइयों का चूर्ण करके, पीछे पानी में मिलाकर, लुगदी बनाना—इसका नाम कल्क है। कल्क की मात्रा एक तोला है। यदि इसमें पानी डालना हो, तो ४ तोले डालना चाहिये; घी शहद या तेल डालना हो, तो कल्क से दुगुना डालना चाहिये और शक्कर या गुड़ डालना हो, तो कल्क के बराबर डालना चाहिये।

४६. रस—जिस औषधि में गन्धक और पारे का योग-मिश्रण हो, उस औषधि को "रस" कहते हैं। यथा—आनन्द-भैरव-रस, संनिपात-भैरव-रस।

४७. भस्म—सोना, चाँदी, ताँबा, लोहा, कलई, सीसा, जस्त, मण्डूर, अभ्रक आदि धातु तथा उपधातुओं को प्रथम कांजी, गोमूत्र, तेल आदि में शोधन करके पीछे भिन्न-भिन्न रीति से इनको मारा जाता है। इनको गजपुट आदि भट्टियों में रखकर भस्म किया जाता है, जो दवाई के काम आता है।

४८. भावना—दवाइयों के चूर्ण को औषधियों का रस पिलाना (रस मिलाकर घोटना)—इसको भावना कहते हैं। एक बार इतना रस डालकर, जिससे कीचड़-जैसा उत्पन्न होजाय—इसको रगड़ता जाय और जब सूख जाय, तो इसे भावना कहते हैं।

४९. गजपुट—एक गज़ लम्बा, एक गज़ चौड़ा और एक गज़ गहरा गड्ढा खोदकर उसमें उपले भर देना यह गजपुट होता है। इस गजपुट में कपड़-मिट्टी से बन्द की हुई सम्पुटों को बीच में रखकर जला देना चाहिये। ठण्डा होने पर इन सम्पुटों को भट्टी में पकाने तक--यह एक गज-पुट हुआ।

५०. सराव सम्पुट--मिट्टी की दो सम्पुटों को घिसकर बराबर कर लेना चाहिये। एक सम्पुट में घुटी हुई दवाई रखकर दूसरे सरावे से उसे बन्द कर देना चाहिये। फिर कपड़-मिट्टी (चिकनी या मुलतानी) से उसको लेप देना चाहिये। इस कपड़-मिट्टी को बनाने के लिये मिट्टी में कपड़े के चीथड़े लतपत कर लेना चाहिये। इस कपड़-मिट्टी से दोनों सम्पुटों की सन्धि मिलाकर जोड़ देनी चाहिये और उन पर एक-एक परत कपड़-मिट्टी की कर देनी चाहिये, जिससे आँच से ये सम्पुट फट न जायँ।

५१--कपड़-मिट्टी--सराव सम्पुट को बन्द करने के लिये मिट्टी तथा कपड़े का उपयोग किया जाता है—इसको कपड़-मिट्टी कहते हैं।

५२. दोलायन्त्र—औषधियों को शोधन करने के लिये इस यन्त्र का उपयोग किया जाता है। जिस द्रव्य को शोधन करना हो, उसको तिहरे कपड़े में बाँधकर पोटली बनानी चाहिये। फिर एक हाँडी (मिट्टी का बर्तन)

लेकर उसमें द्रव्य—जिससे शोधन करना हो (काञ्जी, त्रिफला, क्वाथ आदि) उसको ३/४ भर देना चाहिये। इस हाँड़ी के मुख पर लकड़ी या पतली सलाई रखकर उसमें इस पोटली को लटका देना चाहिये। पोटली पानी की तह से १/२ इञ्च ऊपर रखनी चाहिये। इस हाँड़ी को अँगीठी पर रखकर उबालना चाहिये। इसकी भाप से अन्दर के द्रव्य का स्वेदन हो जाता है। इस यन्त्र को "स्वेदन-यन्त्र" कहते हैं।

५३. डमरूयन्त्र—किसी वस्तु के फूल उड़ाने के लिये या पारा उड़ाने के लिये इस यन्त्र का उपयोग किया जाता है। एक हाँड़ी में फूल उड़ानेवाली वस्तु या हिंगुल बिछा देना चाहिये। इस हाँड़ी के मुख के ऊपर दूसरी हाँड़ी के मुख को ठीक तरह बिठाकर कपड़-मिट्टी से सन्धि को बन्द कर देना चाहिये। जिस हाँड़ी में वस्तु रक्खी है, उसको आग पर रख देनी चाहिये और दूसरी हाँड़ी पर ठंडे पानी की गद्दी भिगोकर रखनी चाहिये, जिससे ऊपर की हाँड़ी में लगा हुआ पारा या फूल उड़कर बाहर न जाय। ऊपर की हाँड़ी निचली हाँड़ी से ज़रा मोटी लेनी चाहिये।

५४. बालुका-यन्त्र—आतशी शीशी में दवाई को रखकर पकाने के लिये इस यन्त्र का उपयोग होता है। रस-सिन्दूर, चन्द्रोदय आदि औषधियाँ बालुका-यन्त्र में तैयार होती हैं। एक चौड़ी, मोटी, गहरी हाँड़ी में आतशी शीशी या सराव-सम्पुट रखकर चारोंओर रेत या नमक भर देना चाहिये। शीशी का गला रेते के बाहर निकला रहना चाहिये। नियत समय तक आँच देनी चाहिये। शीशी के ऊपर सात तह कपड़-मिट्टी करनी चाहिये, जिससे शीशी न टूटे।

५५. पञ्चमूल—ये मुख्य तीन हैं। यथा—१ बृहत्पंचमूल—बिल्व की छाल, अग्निमन्थ की छाल, श्योनाक की छाल, काश्मरी की छाल, बादला की छाल। २—लघु पंचमूल—शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी और गोखरू। इन दोनों पंचमूलों का सम्मिलित नाम दशमूल है। ३—तृण-पंचमूल—कुश की जड़, काश की जड़, ईक्षु की जड़, दर्भ की जड़, शर की जड़।

अँग्रेज़ी दवाइयों का रूप

इनफ्युजन = चाय
एक्वा = पानी
एक्स्ट्रैक्ट = घन या सत्त्व
एनिमा = पिचकारी
ओलियम = तेल
ऑइन्टमैन्ट = प्रलेप
इन्फैक्शन = मुरब्बा
टिंकचर = अर्क
डिकॉक्शन = काढ़ा
पल्वीस = चूर्ण
प्लास्टर = लेप
पोल्टीस = लेपरी
फोमेन्टेशन = सेक
बाथ = भाप-स्नान
ब्लिस्टर = छाला (फफोला)
मिक्सचर = मिश्रण
लाइकर = प्रवाही
लिनीमैन्ट = तेल लगाने का
लोशन = धोने की दवाई
वाइन = आसव, शराब

तोल और माप

दवा बनाने का माप (मागध-परिभाषा)

३ राई = १ सरसों
८ सरसों = १ जौ
४ जौ = १ रत्ती
६ रत्ती = १ माशा
४ माशा = १ शाण (½ तोला)
४ शाण = १ कर्ष (१ तोला)
४ कर्ष = १ पल
१६ पल = १ प्रस्थ (६४ तोला)
४ प्रस्थ = १ आढ़क (२५६ तोला)
४ आढ़क = १ द्रोण (१०२४ तोला)
२००० पल = १ भार
१०० पल = १ तुला
१ तुला = १० सेर

आर्य-वैद्यक में औषधियों का निर्माण इसी माप द्वारा किया जाता है।

पीने की औषधियों का माप

(कलिंग-परिभाषा)

१२ सरसों = १ जौ
२ जौ = १ रत्ती
३ रत्ती = १ बाल
३ बाल = १ माशा
५ माशा = १ टाँक ; शाण
२ टाँक = १ तोला
४ बाल = १ आने भर
८ बाल = १ चवन्नी भर
१६ बाल = आधा तोला, अठन्नी भर
३२ बाल = १ रुपया भर
४० रुपया = ½ सेर = १ पौंड

अँग्रेज़ी तोल-माप

सूखी हुई दवाइयों का तोल

१ ग्रेन	=	१ गेहूँ भर
२० ग्रेन	=	१ स्क्रुपल
३ स्क्रुपल	=	१ ड्राम
८ ड्राम	=	१ औंस
१२ औंस	=	१ पाउन्ड

अँग्रेज़ी दवाइयों के घरेलू माप

एक टीस्पुन फुल = १ ड्राम

एक डैजर्टस्पून फुल = २ ड्राम

एक टेबुल स्पुन फुल = ४ ड्राम
या ½ औंस

एक वाइन ग्लास फुल = २ औंस के

प्रवाही दवाइयों के माप

६० बूँद = १ ड्राम

८ ड्राम = १ औंस

१६ औंस = १ पिंट

२० औंस = १ पिन्ट

८ पिन्ट = १ गैलन के

अँग्रेज़ी माप का देशी तोल में परिवर्तन

२ ग्रेन = १ रत्ती

६ ग्रेन = १ वाल

१ औंस = २⅓ तोला

आयुर्वेदीय और अँग्रेज़ी माप

१ गुञ्जा = ...	१⅞ ग्रेन = ...
६ गुञ्जा = १ माशा	११¼ ,, = $\frac{1}{16}$ तोला
४ माशा = १ शाण	४५ ,, = ¼
२ शाण = १ कोल	९० ,, = ½ तोला
२ कोल = १ कर्ष	१८० ,, = १ तोला
२ कर्ष = १ शुक्ति	३६० ,, = २ ,,
२ शुक्ति = १ पल	१ औंस—२८२½ ,, = ४ ,,
२ पल = १ प्रसृति	३ औंस—१२७½ ,, = ८ ,,
२ प्रसृति = १ कुडव	६ औंस—२२५ ,, = १६ ,,
२ कुडव = १ सराव	१३ औंस—७२½ ,, = ३२ ,,
२ सराव = १ प्रस्थ	१ पौन्ड—१० औंस—१४५ ,, = ६४ ,,

१०० पल	= १ तुला	१० पौन्ड— ४ औंस—२५० ग्रैन = ४०० तोला
४ प्रस्थ	= १ आढक	६ पौन्ड— ९ औंस—१४२½ ,, = २५६ ,,
४ आढक	= १ द्रोण	२६ पौन्ड— ५ औंस—१३२½ ,, = १०२४ ,,
२ द्रोण	= १ शुचा	५२ पौन्ड—१० औंस—३६५ ,, = २०४८ ,,
२००० पल	= १ भार	२०५ पौन्ड—११ औंस—१८७½ ,, = ८००० ,,

घरेलू वज़न के अँग्रेज़ी सिक्के में माप

१ रुपया भर	= १ तोला	= १८०	ग्रेन
०॥ ,,	= ½ तोला	= ९०	,,
०। ,,	= ¼ तोला	= ४५	,,
⁄) आनी भर	= ⅛ तोला	= २२½	,,
ताँबे का एक पैसा		= १००	,,

आयु के अनुसार दवाइयों की मात्रा

देशी मात्रा

पूर्ण युवा मनुष्य के लिये पूर्ण मात्रा का प्रमाण १ भाग मानकर—

१—३ मास के	बालक के लिये	पूर्ण मात्रा का	१/३६ भाग
३—६ ,,	,,	,,	१/२४ भाग
६—१२ ,,	,,	,,	१/१८ भाग
१—२ वर्ष के	,,	,,	१/१२ भाग
२—३ ,,	,,	,,	१/६ भाग
३—४ ,,	,,	,,	१/४ भाग
४—७ ,,	,,	,,	१/३ भाग
७—१४ ,,	,,	,,	१/२ भाग
१२—२१ ,,	,,	,,	२/३ भाग
२१—६० ,,	,,	पूर्ण युवा की पूर्ण मात्रा	

एक मास के बालक के लिये वायविडंग १ दाने जितनी तोल की दवा देनी चाहिये। इसी प्रकार दो महीने के बालक को दो दाने जितनी मात्रा देना चाहिये। इसी तरह प्रत्येक मास के बढ़ने के साथ एक-एक दाना

वायविडङ्ग के तोल को बढ़ाते जाना चाहिये। बारह मास के बालक के लिये बारह दाने जितनी मात्रा करनी चाहिये। जिस प्रकार बच्चे की मात्रा बढ़ानी चाहिये, उसी प्रकार ६९ वर्ष की आयु के पीछे मात्रा घटानी चाहिये। मात्रा धीरे-धीरे घटानी चाहिये। अर्थात् ६० वर्ष तक पूर्ण मात्रा रखनी चाहिये और फिर सात-सात वर्ष के पीछे मात्रा को कम करते जाना चाहिये। भस्मों तथा रसायनों की मात्रा १ राई से अधिक से अधिक दो बाल तक होनी चाहिये।

अँग्रेज़ी मात्रा

आयु		अधिक से अधिक भार एक औन्स	अधिक से अधिक भार एक ड्राम	अधिक से अधिक भार एक स्कुपल
१-६	मास	२४ ग्रेन	३ ग्रेन	१ ग्रेन
१-१२	,,	२ स्कुपल	५ ग्रेन	१½ ग्रेन
१-२	वर्ष	१ ड्राम	८ ग्रेन	२½ ग्रेन
२-३	,,	१¼ ड्राम	९ ग्रेन	३ ग्रेन
३-५	,,	१½ ड्राम	१२ ग्रेन	४ ग्रेन
५-७	,,	२ ड्राम	१५ ग्रेन	५ ग्रेन
७-१०	,,	३ ड्राम	२० ग्रेन	७ ग्रेन
१०-१२	,,	½ औन्स	½ ड्राम	½ स्कुपल
१२-१५	,,	५ ड्राम	४० ग्रेन	१४ ग्रेन
१५-२०	,,	६ ड्राम	४५ ग्रेन	१६ ग्रेन
२०-२१	,,	१ औन्स	१ ड्राम	१ स्कुपल = २० ग्रेन

१२ वर्ष से कम व्यक्ति के आयुवाले बच्चों की मात्रा, युवाओं की मात्रा से निम्न प्रकार जानी जा सकती है। यथा—

१ वर्ष के बच्चे के लिये दवाई की मात्रा $= \frac{१}{१+१२} = \frac{१}{१३}$ एक युवा की मात्रा का $\frac{१}{१३}$ वाँ भाग—

४ वर्ष के बच्चे के लिये दवाई की मात्रा = $\frac{४}{४+१२}$ = $\frac{१}{४}$ एक युवा की मात्रा का $\frac{१}{४}$ वाँ भाग—

८ वर्ष के बच्चे के लिये दवाई की मात्रा = $\frac{८}{८+१२}$ = $\frac{२}{५}$ एक युवा की मात्रा का $\frac{२}{५}$ वाँ भाग—

अर्थात्—१२ में सालों को जोड़ लें और सालों को ऊपर रखकर देख लें।

बारह से सोलह वर्ष के लिये $\frac{१}{२}$ से $\frac{२}{३}$ और १७ से २० के लिये $\frac{२}{३}$ से $\frac{४}{५}$ अनुपात होना है। ६० वर्ष के पीछे मात्रा फिर घटनी आरम्भ हो जाती है।

औषधियों के प्रतिनिधि

कई बार सम्पूर्ण दवाइयाँ नहीं मिलतीं, इसलिये उनके स्थान पर अन्य दवाइयाँ डाली जाती हैं। किस दवाई के स्थान पर कौन-सी दवाई देनी चाहिये, यह नीचे दिये कोष्टक से पता लग सकता है।

अतिविषा—नागरमोथा
अमुक सत्त्व—कान्त लोह
अम्लवेतस—चने का क्षार
अष्टमूत्र—गोमूत्र
आक का दूध—मदार के पत्तों का पानी
उपलसरी (कूट)—कपूर कचरी
बड़ी कटेरी—छोटी कटेरी
ऋद्धि-वृद्धि—वराही कन्द, महाबला
कपूर—नागरमोथा, चन्दन, रक्तचन्दन
कंकोल—जूही का फूल, इलायची, जावित्री
कस्तूरी—जावित्री, कबाबचीनी
काला जीरा—जीरा श्वेत
काकोली—अश्वगन्धा
क्षीर काकोली—शतावरी
काला कमल—(कुमुद) रात्रि में खिलनेवाला कमल
काञ्जी—नीबू का रस (अम्ल)
कान्त लोह—गजवेल
केसर—टसू का ताजा फूल
कत्था—कड़वे नीबू की छाल
गजपीपल—पीपरामूल
शीतलचीनी—जावित्री, जूही का फूल
चव्य—पीपरामूल, गजपीपल
नूखला—लवँग

पिस्त—शहद कुचला
पीपल—मिर्च काली
पुष्कर मूल—कूट
बकरी का दूध—गाय का दूध
बकुल—कल्हार, कमल
भारंगी—कटेरी का मूल
भिलावाँ—सर्दी के लिये रतांजलि, गर्मी के लिये चित्रक मूल
काली मिर्च—लवँग
हीरा—वैक्रान्तमणी
क्षार—(कोई भी क्षार) चिरचिटे का क्षार
मधु—पुराना गुड़
मयूरशिखा—हरड़
मसूर—उड़द
मेद महामेदा—शतावरी
मोती—मोती की सीप
मोरवेल—दालचीनी, मजीठ
रतांजलि—बाला
रसवन्ती—(रसाञ्जन) दारुहरिद्रा
रींगणी—कड़वा नीबू
चन्दन—बाला, कपूर, रक्त चन्दन
चित्रक—दन्तीमूल जमालगोटे की जड़
जवासा—धमासा
जावित्री—लवँग
जीरा—धनिया
जीवक—ऋषभक-विदारी कन्द
जेठीमधु—धाय के फूल
तगर—कूठ
दाड़िम—आँवला
दारुहरिद्रा—हल्दी
दन्तीमूल—पाठा
दूध—मूँग का यूप
द्राक्षा—सेमल का फूल, खजूर, महुवे का फूल
धाय के फूल—महुवा का फूल
नागकेसर—कमल का केसर
चाँदी—रौप्य माक्षिक, कान्त लौह
लक्ष्मणा—मयूरशिखा
वज्र मोरवेल, कुलिञ्जन, कठ
बाला—मोथा
शिलाजीत—सुराखार, शोरा (मूत्रल गुण के लिये)
गन्ना—वरू
संचल—नमक
शक्कर—पुराना गुड़, पुराना शहद
सांठ—आर्द्रक
स्वर्ण—स्वर्ण माक्षिक भस्म
स्वर्ण माक्षिक भस्म—सोना गेरू-लौह
सोरठी माटी—(सौराष्ट्री) फिटकिरी
हरड़—आँवला
छोटी हरड़—आँवला

जब एक वस्तु मिल न सके, तब उसके स्थान पर दूसरा प्रतिनिधि द्रव्य उपयोग किया जाता है। इस प्रतिनिधि द्रव्य के गुण तथा प्रभाव वास्तविक द्रव्य से बहुत कुछ मिलते हैं। परन्तु मुख्य औषध के स्थान में उसका प्रति-

निधि काम नहीं दे सकता। उदाहरण के लिये "हींग्वाष्टक" में हींग का प्रतिनिधि काम नहीं दे सकता; क्योंकि इसमें हींग मुख्य है। पीपल के स्थान में पीपला मूल काम दे सकता है।

खैर आदि वृक्षों का सार (गर्भ) लेना चाहिये। नीम आदि वृक्षों की छाल, दाड़िम आदि वृक्षों का फल, जूही आदि वृक्षों का फूल, पर्पटक आदि का पत्ता लेना चाहिये। जिस औषधि में "मूल" लिखा हो, उसमें यदि वृक्ष की जड़ मोटी हो, तो उस जड़ की छाल लेनी चाहिये; छोटी हो, तो सम्पूर्ण जड़ लेनी चाहिये। जो वनस्पति छोटी हो, तो उसका पंचांग लेना चाहिये। इस प्रकार से बृहत्पञ्चमूल में सब वृक्षों की छाल और लघु पंच-मूल में सब का पंचांग लेना चाहिये।

आर्य-वैद्यक में रसादि धातुओं को बरतने से पहले, उनका शोधन, मारण करना आवश्यक होता है। शोधन करने से वस्तु के बहुत-से दोष धुल जाते हैं; क्योंकि जो पदार्थ बाज़ार में मिलता है, वह सीधा खान से निकला होता है। उसमें बहुत-सी अशुद्धियाँ मिली रहती हैं। वे अशुद्धियाँ शरीर के लिये हानिकारक होती हैं। इसके अतिरिक्त कई औषधियाँ, जो आधुनिक रासायनिक विधि से साफ़ की जाती हैं, अत्यधिक विशुद्ध होने से शरीर के लिये अयोग्य समझी जाती हैं। अतः शरीर के लिये धातुओं को योग्य बनाने के लिये आर्य-चिकित्सा में भिन्न-भिन्न विधियाँ दे रक्खी हैं। इन विधियों से औषधि शुद्ध होने पर मल-रहित हो जाती है। उदाहरण के लिये जो पारा बाज़ार में मिलता है, उसके अन्दर सीसा, बङ्ग आदि धातु मिले रहते हैं। इन मलिनताओं को शास्त्र ने "कञ्चुक" रूप से कहा है। पारे को इनसे पृथक् करना आवश्यक है। इसलिये संक्षेप में, परन्तु उपयोगी शोधन-विधि दी जाती है।

धातु-उपधातु आदि कई औषधियों की शोधन-विधि उनके प्रकरण में यथास्थान दी जायगी। इसलिये यहाँ पर उनका वर्णन नहीं किया गया।

पारा—पारे को शुद्ध करने की कई विधियाँ हैं। पारा दो प्रकार से प्राप्त किया जा सकता है। १—पारा—पारे के रूप में बाज़ार में मिलता है, २—शिंगरफ़ से पारा निकाला जाय। शिंगरफ़ भी दो प्रकार का होता है—एक जो पारा गन्धक तथा और वस्तुओं से मिलाकर सूरत आदि स्थानों में बनाया जाता है। दूसरा शिंगरफ़ वह है जो खानों से निकलता है। प्रायः

बाजार में पहले प्रकार ही का शिङ्गरफ मिलता है और लोग इसीसे पारा बनाते हैं, या और चीजों में काम लाते हैं। यह बाजारू शिंगरफ प्रायः अशुद्ध रहता है और इसका पारा भी सर्वोत्तम नहीं होता। हाँ, बाजारू पारे से फिर भी अच्छा रहता है; क्योंकि इसका ऊर्ध्व-पातन हो जाता है। जिस प्रकार भपके में अर्क खींचने से या उड़ाने से पानी वाष्प के रूप में बनकर शुद्ध हो जाता है, उसी प्रकार यह पारा भी शुद्ध हो जाता है।

हिंगुल से पारा निकालने के लिये हिंगुल को खरल में बहुत बारीक पीसकर तीन-चार दिन तक बिजौरे नीबू के रस में रगड़ना चाहिये। इस अम्ल के कारण हिंगुल के कण टूट-टूटकर अलग-अलग हो जायँगे। उसकी चमक कुछ कम हो जायगी। जब बहुत बारीक हो जाय, तब इस हिंगुल को डमरूयंत्र में रखकर ऊर्ध्व-पातन कर लेना चाहिये। ऊपर की हाँड़ी ठण्डी रखनी चाहिये, जिससे पारा वहाँ आकर जम जाय। जब समझे कि पारा निकल चुका है, तो डमरूयंत्र को ठण्डा होने दे। पीछे ऊपर की हाँड़ी में लगी हुई काली या सफेद रज-कणों को रुई के फोये से रगड़ता जाय। जब इसमें पानी डाला जायगा, तो सारा पारा एक बन जायगा। और यदि समझे कि नीचे की हाँड़ी में अभी पारा रह गया है, तो दुबारा फिर उड़ा लेना चाहिये। इस प्रकार से निकाला हुआ पारा प्रायः शुद्ध होता है।

दूसरी विधि यह है कि बाजार से पारा लेकर उसको खरल में डाल दे। साथ में लाल पक्की ईंट के चने के बराबर छोटे-छोटे टुकड़े भी डाल देना चाहिये। फिर इसको बिजौरे नीबू के रस में (रस के अभाव में टार्टरिक एसिड के घोल से) एक दिन बराबर रगड़े। फिर पानी से धोकर दूसरे दिन फिर रगड़े। इस प्रकार तीन दिन रगड़ता जाय। इसके पीछे प्याज के रस (लहसुन के रस से अच्छा है) से इसको रगड़े। फिर ईंटों को निकालकर फेंकदे। इसमें अब उनको छोटे-छोटे करके मिलाकर रगड़ता जाय। यदि मिल सके, तो चीते की मूल के काढ़े से रगड़ दे। और फिर घीकार के रस से रगड़ता जाय। अन्त में धोकर साफ कर ले। अब इस पारे की कान्ति उज्ज्वल हो जायगी। यह पारा औषधि आदि के उपयोग में काम आ सकता है। परन्तु यदि इस पारे से मकरध्वज आदि कोई रस-धातु का जारण करके [illegible]ा हो, तो इसकी तीक्ष्णता बढ़ाने के लिये इसको तीक्ष्ण बनाना पड़ता है। इसके लिये पाँचो नमक (सैन्धव, साम्भर, कालानमक, बिड्लवण,

उद्भिद्), राई, (तुत्थ-नीलाथोथा) और विष कुचला आदि से रगड़ना चाहिये। इस प्रकार से रगड़कर और धोने से पारा उज्ज्वल और तीक्ष्ण हो जाता है। इस प्रकार से साफ़ किया पारा धातु-उपधातु को शीघ्र भस्म कर लेगा।

गन्धक—बाज़ार में मिलनेवाली गन्धक भी प्रायः अशुद्ध रहती है। इसको भी शुद्ध करना आवश्यक है। इसकी शुद्धि घी और दूध में होती है। इस शुद्धि के लिये एक लोहे की कड़छी में घी लेकर उसमें आँवलासार गन्धक का चूर्ण डालकर पिघलाना चाहिये। जब यह पिघल जाय, तब एक बर्त्तन में दूध गाय का, या भैंस का, लेकर उसपर बारीक कपड़ा बाँध देना चाहिये। इस पिघली गन्धक को उस कपड़े से छान लेना चाहिये। इससे मैल कपड़े के ऊपर रह जायगी और गन्धक नीचे दूध में जाकर बैठ जायगी। इस प्रकार दो-तीन बार करने से गन्धक शुद्ध हो जायगी। यदि गन्धक को बहुत अधिक राशि में एक बार शुद्ध करना हो, तो एक बर्त्तन में दूध लेकर उसके मुँह पर बारीक कपड़ा बाँध देना चाहिये। और बर्त्तन के किनारों पर मिट्टी लगाकर उनको ऊँचा उठा देना चाहिये। इस कपड़े पर गन्धक का बारीक चूर्ण बिछा देना चाहिये और किनारों को इतना ऊँचा करना चाहिये कि वे गन्धक के उपरले पृष्ठ से ऊँचे रहें। फिर इन किनारों पर लोहे का पत्तर रखकर, उसमें जलते कोयले रख देना चाहिये। इससे गरमी पाकर गन्धक पिघलेगी और वह कपड़े में से छनकर दूध में जा गिरेगी। इससे गन्धक का शोधन हो जाता है।

गन्धक बाज़ार में तीन-चार प्रकार की मिलती हैं। इनमें आँवलासार गन्धक सब प्रकार से काम आने योग्य है। दोनों विधियों में आवश्यक है कि ताप इतना ही दिया जाय, जिससे गन्धक का कुदरती रंग ज़रा भी न बदले। अधिक गरम करने से गन्धक लाल या काली हो जाती है और इसका गुण बदल जाता है।

हींगुल—हींगुल को खरल में पीसकर उसको सात बार आर्द्रक के रस से अथवा लकुच के रस से या भेड़ के दूध से अथवा नीबू के रस से सात बार रगड़ने से शुद्ध हो जाता है।

मनःसिला—मनसिल को बारीक पीसकर चूने के पानी में तीन दिन

रखने से मनःसिल का शोधन हो जाता है । अथवा भाँगरे के रस में दोलायंत्र से पचाने पर अथवा आर्द्रक-रस से सात बार रगड़ने पर, या अगस्ति-पत्र-रस से सात बार भावना देने से शोधन हो जाता है ।

हरताल—हरताल का चूर्ण करके इसको पोटली में बाँधकर पेठे के रस में दोलायंत्र की विधि से पाक करे । अथवा दो याम तक त्रिफला के पानी में, या तिल-क्षार जल में पाचन करे । अथवा हरताल के चूर्ण को सात बार चूने के पानी की भावना देनी चाहिये ।

सोमल—सोमल के चूर्ण को दोलकायंत्र द्वारा मेघनाद के स्वरस में पकाये । अथवा क्षार जल में दोलायंत्र से पाक करना चाहिये । चौलाई के पानी में या करेले के पानी में भी पकाने से शुद्ध हो जाता है ।

बछनाग—बछनाग के टुकड़े करके, इनको मिट्टी के बर्त्तन में रखकर, गोमूत्र भरकर, धूप में रख दे । इस प्रकार तीन दिन तक बराबर करे । प्रतिदिन नया गोमूत्र डालना चाहिये । अथवा गोमूत्र में दोलिकायंत्र से पाक करे । इसी प्रकार बकरी के दूध से शोधन किया जा सकता है ।

कुचला—कुचले को गोमूत्र में दोलयिकायंत्र से पाक करने से शोधन होता है । अथवा तवे पर घी डालकर मन्दाग्नि से इनको भूनना चाहिये , जिससे ऊपर का छिलका भूरा-सा हो जाय ।

अफीम—आर्द्रक के रस से भावना देने पर अफीम शुद्ध हो जाती है ।

जमालगोटा—जमालगोटे की गिरी निकालकर इनको पोटली में बाँधकर तीन दिन तक भैंस के गोबर में रख देना चाहिये । फिर चौथे दिन छाछ में उबालकर गरम पानी से धोना चाहिये । फिर इनके टुकड़े करके बीच में से जीभ निकाल देनी चाहिये । इस जमालगोटे को नीबू के रस में या गरम पानी में पीसकर मिट्टी की नई हाँड़ियों के ऊपर लेप करके धूप में रख देना चाहिये । और जब लेप में तेल का अंश निकल जाय, उस समय उसको काम में लाना चाहिये । अथवा जमालगोटा को गोदुग्ध में उबालकर मिट्टी की हाँड़ियों पर लेप करना चाहिये । इसका तेल बहुत नुकसानकारक है, अतः उससे बचाना चाहिये । हाथों को ख़ूब धोकर तब मुँह या आँख पर लगाना चाहिये ।

खपरिया—गोमूत्र में सात दिन तक भिगोकर रखने से अथवा दोलायंत्र में पकाने से खर्पर का शोधन हो जाता है।

धत्तूरे के बीज—गोदूध में दोलिकायंत्र द्वारा बीजों को पकाकर गरम पानी से धोना चाहिये। अथवा बीजों को गोमूत्र में दोलिकायंत्र से उबालकर खरल में ख़ूब पीसना चाहिये। और फिर वस्त्र में से छानकर काम में लाना चाहिये।

भाँग—भाँग के पत्तों को सुखाकर, पानी में धोकर, निचोड़ लेना चाहिये। और फिर इनको मन्दाग्नि से गोघृत में भूनना चाहिये। जब ख़ूब भुन जाय, तब काम में लेना चाहिये। अथवा सूखी भाँग को लेकर बबूल की छाल के क्वाथ से स्वेदन करना चाहिये। जब ख़ूब स्विन्न हो जाय, तब धूप में सुखाकर काम में लाना चाहिये।

गुञ्जा-रत्ती—नई रत्तियों को लेकर उनका चूर्ण बना लेना चाहिये। फिर दुहरे वस्त्र में बाँधकर गोमूत्र में या गोदुग्ध में दोलिकायंत्र द्वारा पचाना चाहिये अथवा काञ्जी के अन्दर दोलायंत्र से पकाना चाहिये।

भिलावाँ—भिलावे को प्रथम ईंटों के साथ मोटा कूटकर भैंस के गोबर में सात दिन तक रख देना चाहिये। फिर उसमें से निकालकर नारियल के पानी में पकाना चाहिये और फिर इनको दूध में पकाना चाहिये और जब पकते-पकते दूध गाढ़ा हो जाय, तब दही जमा देना चाहिये। इस दही में सात दिन तक रक्खे रहने देना चाहिये और फिर गरम पानी में धोकर काम में लाना चाहिये। दूध में डालने से पूर्व इनकी टोपी काट डालनी चाहिये।

कनेर—कनेर की जड़ को २४ घण्टे गोमूत्र में उबालने से शुद्ध हो जाता है।

शिलाजीत—गोदूध, त्रिफला, गोमूत्र में क्रमशः उबालकर धूप में सुखाने से शुद्ध हो जाता है।

टंकण क्षार—आग पर गरम करने से, जब फूलकर नरम हो जाय, तब काम में लाना चाहिये।

समुद्रफेन—नींबू के रस में रगड़ने से शुद्ध हो जाता है।

सुराखार—बाजारू शोरे को लेकर उसे पानी में घोलकर कड़ाही

मे चढ़ा देना चाहिये और खूब [illegible] करना चाहिये। जब सब पानी उड़ जाय, तो तेज आँच कर देनी चाहिये। [illegible] बिल्कुल सूख जाय, उस समय काम में लाना चाहिये।

मोरथुथु—तुत्थ को नी[illegible] रस में सात बार भावना देने से, या दोलायंत्र द्वारा गोमूत्र मे उबालने से तुत्थ शुद्ध हो जाता है अथवा तुत्थ के समान कपोत-विष्ठा लेकर इन दोनों को [illegible] पीसकर, कौड़ियों में भरकर, कपड़-मिट्टी करके उपलों की आग मे फूंकना चाहिये। ठण्डे होने पर काम में लाना चाहिये।

सुरमा—सुरमे के पत्थर को [illegible] करके, उसको नीबू के रस की ३ भावना देने से शुद्ध हो जाता है।

गुग्गुल—अच्छा, बड़ा [illegible] लेकर कपड़े में बाँधकर, त्रिफला में पकाने से गुग्गुल का शोधन हो[illegible]। यदि गुग्गुल में बहुत कचरा हो, तो इसको त्रिफला-क्वाथ मे अग्नि [illegible] यथाशक्ति से घोल लेना चाहिये और फिर नितारकर अलग गरम करना [illegible] जब गाढ़ा हो जाय, तब काम में लाना चाहिये। अच्छा गुग्गुल [illegible] पचाता है।

एरण्ड बीज—एरण्ड की [illegible] नारियल के पानी में तीन घंटे दोला-यंत्र में पकाने से शोधन हो जाता [illegible]

लहसुन—लहसुन को छीलक[illegible] अलग-अलग करके, छाछ में तीन दिन या रातभर रखने में उस[illegible] घट जाती है।

हींग—घी में भूनने से शुद्ध हो जाती है।

शंख—बिजौरे नीबू के रस में दोलायंत्र विधि से पचाने से अथवा जयन्ती के स्वरस मे दोलायंत्र से शंख का शोधन हो जाता है।

सीप—जयन्ती के स्वरस में दोलायंत्र [illegible] का शोधन होता है।

कौड़ी—काँजी के अन्दर या कुलथी [illegible] मे दोला-यंत्र विधि से पकाने पर कौड़ी का शोधन होता है।

कुछ पारिभाषिक शब्द

पारिभाषिक शब्दों का विवरण नीचे दिया जाता है। ये शब्द इस ग्रंथ में स्थान-स्थान पर आयेंगे, यथा—

त्रिफला—हरड़, बहेड़ा और आँवला। प्रत्येक समान भाग, या हरड़ तीन भाग, आँवला दो भाग और बहेड़ा एक भाग।

त्रिकटु—सोंठ, काली मिर्च और छोटी पिप्पली।

त्रिजातक—दालचीनी, इलायची और तेजपत्र। त्रिजातक में नागकेशर मिलाने से चतुर्जातक बन जाता है।

पंचकोल—पिप्पली, पिपरामूल, चव्य, चित्रक और सोंठ। इसमें काली मिर्च मिलाने से षडूषण हो जाता है—

वेशवार—बिना हड्डी का मांस, पिपली, काली मिर्च, धनिया, जीरक के साथ पीसने से वेशवार बनता है।

पञ्चामृत—गोक्षीर, गोघृत, गोदधि, मधु और शर्करा।

क्षीरी वृक्ष—वट, गूलर, पीपल।

पंचवल्कल—पिलखन, पीपल, जामुन, वट, अम्लवेतस।

आवश्यक सूचनायें

औषधियों को प्राप्त करने, साफ़ करने, बनाने, रोगी को देने के विषय में कुछ आवश्यक संकेत

१—सब प्रकार की वनस्पतियों का संग्रह करने का उत्तम समय आश्विन और कार्त्तिक मास है। इस समय सब वनस्पतियों के अन्दर रस का परिपाक भली प्रकार होता है। परन्तु रेचक तथा वमनकारक औषधियों का संग्रह वैशाख मास में, बसन्त-ऋतु उतरने के पीछे करना चाहिये।

२—गीली, सड़ी, पानी में भीगी, कीड़ों से खाई, श्मशान या गन्दे स्थानों पर उत्पन्न, अपक्क, चौराहे पर उत्पन्न, अग्नि में जली हुई, बर्फ के गिरने से मुरझाई हुई वनस्पति का उपयोग दवाई बनाने में नहीं करना चाहिये।

३—औषधि लेने के लिये प्रातःकाल उठकर शुभ दिवस में वन को जाना चाहिये। वहाँ पर पहुँचकर वनस्पति का नाम लेकर उसको बुलाना

चाहिये, उसका पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् उसको लेने आने का अभिप्राय सुनाना चाहिये कि मैं अमुक कार्य के लिये—रोगी की हित-कामना के लिये—तेरा आरोहण करता हूँ। वनस्पति लेने का समय प्रायः प्रातःकाल सूर्योदय का है; क्योंकि इस समय पृथ्वी के सब चर-अचर प्राणी जाग जाते हैं, वनस्पतियाँ भी जाग जाती हैं। रात को सोते समय उनको उखाड़ना, तोड़ना, उनको जगाना है। वनस्पति या वृक्ष में उत्तर दिशा की ओर की चीजें लेनी चाहियें; क्योंकि सम्पूर्ण वृक्ष में इस ओर की शाखायें या मूल अधिक परिपक्व होती हैं।

४—सब औषधियाँ ताज़ी और नूतन ही काम में लानी चाहियें; परन्तु वायविडङ्ग, छोटी पीपल, गुड़, धनिया, शहद तथा घी—ये वस्तुयें पुरानी बरतनी चाहिये। घी जितना पुराना होगा, उतना ही प्रलेपों के लिये उत्तम है। पुराना घृत अन्तः-उपयोग के लिये उतना अच्छा नहीं, जितना बाह्य उपयोग के लिये है। यही पुराना घृत प्लेग की गिल्टी पर लगाने के लिये अद्भुत औषधि है। एक वर्ष के पीछे औषधियाँ गुणरहित तथा पुरानी हो जाती हैं।

५—गिलोय, कूड़े की छाल, बाँस के पत्ते, विदारी, शतावरी, असगन्ध, सौंफ, प्रसारणी और कुरण्टक—ये वस्तुयें जहाँ तक ताज़ी और गीली मिलें, वहाँ तक इनका ही उपयोग करना चाहिये और इनका उ‍... कभी भी द्विगुण मात्रा में करने की आवश्यकता नहीं। इनके सिवा ... वनस्पतियाँ सूखी काम में लानी चाहियें और यदि सूखी न मिलें, ... लेकर द्विगुण मात्रा डालनी चाहिये।

६—यदि मोटे पुष्प वृक्ष की मूल बहुत मोटी हो, तो उसकी मूल .. स्थान पर मूल की छाल का उपयोग कर लेना चाहिये। यदि वृक्ष बहुत छोटा हो, तो सम्पूर्ण वृक्ष की जड़ का उपयोग करना चाहिये।

७—किसी प्रयोग में बहुत-सी दवाइयों का उपयोग होता हो, यदि उसमें कोई एक दवाई न मिले अथवा रोगी की प्रकृति के अनुसार प्रयोग की कोई एक या दो दवाई अनुकूल न हो, तो उनके स्थान पर उसका प्रतिनि- अथवा उसके समान गुणवाली दूसरी दवाई या रोगी और ... के अनु- दूसरी औषधि डाल देनी चाहिये। परन्तु दवाई के ब... प्रकृति के अनुकूल करने की योग्यता रखनेवाले वैद्य ह...

का अधिकार "चरकाचार्य" ने दिया है। दूसरे को चाहिये कि वह शास्त्र के अनुसार ही कार्य करे।

८—यदि किसी प्रयोग में यह न लिखा हो कि वस्तु का क्या भाग लिया जाय, वहाँ बड़े वृक्षों की छाल और छोटी वनस्पतियों का पञ्चाङ्ग लेना चाहिये।

९—गीली वनस्पतियाँ यदि सुखानी हों, तो उनको छाया में सुखाना चाहिये, कड़कड़ाती धूप में नहीं।

१०—दवाइयों को शुष्क कराके, उनको शीशी या पीपे में ढककर रखना चाहिये, जिससे इनमें मिट्टी, धूल, धूप, पानी, हवा न जाय। इनमें जन्तु लगने से बचाना चाहिये। चौमासे में इनको समय-समय पर धूप देनी चाहिये।

११—यदि औषधि-प्रयोग में दवाइयों का तोल न दिया हो, तो सब चीजें परस्पर समान लेनी चाहियें।

१२—जिस स्थान पर यह न लिखा हो कि गोली क्वाथ किस पदार्थ में बनाये जायँ, वहाँ पानी समझना चाहिये।

१३—औषधि के लिये जंगल से लाई हुई वनस्पतियाँ यदि छाया में सुखाकर उचित साधनों से रक्खी जायँ, तो ये द्रव्य एक साल तक ...त रह सकते हैं। दवाइयों का चूर्ण काग लगे बोतलों में रखने पर दो ...न तक सुरक्षित रक्खा जा सकता है। औषधियों से संस्कृत घी या तैल ...स तक, गोली तथा अवलेह एक साल तक काम में लाये जा सकते ...इसके पीछे उनका गुण घटने लगता है। रसायन, भस्म, धातु, उपधातु, ...सव और अरिष्ट, जितने अधिक पुराने होंगे, उतने ही अधिक उपयोगी और लाभकारी होंगे। इसलिये इनको एक बार बड़े भारी जत्थे में बना लेना चाहिये; क्योंकि मेहनत एक समान पड़ती है। अधिक राशि में बनाने से भी वही मेहनत होगी और कम राशि में भी वही।

१४—जिस समय उबालने के लिए किसी पात्र का विधान न लिखा ... उस समय मिट्टी का पात्र बरतना चाहिये। क्वाथ करने के लिए मिट्टी ...र्तन ...गी होता है।

... समय दवाई की "मात्रा" न बताई हो, केवल "मात्रा" ...र एक टंक की मात्रा समझनी चाहिए।

१६—औषधि लेने का समय प्राय: सब रोगों में एक समान रहता है। यथा—प्रातः और सायं। किसीमें प्रातः, मध्याह्न और सायं अथवा दो-दो या तीन-तीन अथवा चार-चार घंटे के अन्तर में दी जाती है। परन्तु आर्य-वैद्यक में कई रोगों के लिए औषधि देने का समय विशेष रूप से बताया गया है।

(१) पित्त तथा कफ के विशेष उपद्रव हों, तो पित्त को विरेचन द्वारा और कफ को वमन से निकालने के लिये औषधि प्रातःकाल देनी चाहिए। औषधि का प्रभाव जबतक न हो जाय, तबतक भोजन नहीं करना चाहिये।

(२) वायु का अनुलोमन करना हो, तो औषधि रात्रि को सोते समय देनी चाहिये।

(३) गुदा में वायु रहती हो अथवा गुदा में दर्द हो, तो भोजन से ठीक पहले दवा खानी चाहिए। भोजन करने के पश्चात् अरुचि हो, तो रुचिकारक अनुपानों के साथ औषधि लेनी चाहिये। यदि वायु विकृत हो अथवा पाचनाग्नि मन्द पड़ी हो, तो औषधि भोजन के बीच में लेनी चाहिये। यह औषधि स्वादिष्ट, रुचिकारक होनी चाहिये। यदि सारे शरीर में वायु का कोप हो, तो तुरन्त भोजन के उपरान्त औषधि लेनी चाहिए। उल्टी, आक्षेप-वायु और कम्पवायु में भोजन करने से पूर्व और भोजन करने के पीछे औषधि लेनी चाहिये।

(४) उदानवायु—कण्ठ की वायु के कुपित होने से जब स्वर बैठ गया हो, तो औषधि को ग्रास के साथ-साथ देनी चाहिये। हृदय के अन्दर की प्राण-वायु कुपित होने पर भोजन के पीछे दवाई देनी चाहिये।

(५) प्यास, उल्टी, हिचकी और श्वास आदि रोगों में तथा विष पी जाने पर औषधि बार-बार अन्न के साथ देनी चाहिये।

(६) जत्रु (हँसली) से ऊपर रोगों में—कान, नाक, मुँह, आँख आदि के विकारों में रोगी को शान्त रखनेवाली औषधि रात्रि में सोते समय देनी चाहिये और रात्रि को भोजन नहीं करना चाहिये।

१७--दवाई देने की जो मात्रा ग्रन्थ में बताई है, वह स्वस्थ युवा मनुष्य के लिये बताई है। इसलिये निर्बल या बलवान मनुष्य की शक्ति का विचार करके, रोग-दोष की स्थिति को देखकर, मात्रा का निश्चय करना चाहिये। मात्रा में ऋतु-काल, देश आदि का भी ध्यान रखना चाहिये। देहाती आदमी के लिये नागरिक व्यक्ति की अपेक्षा बलवान विरेचन चाहिये।

१८—यथासम्भव बालकों को विषयुक्त दवाई नहीं देनी चाहिये। चार मास से छोटे बच्चे को तो देनी ही नहीं चाहिये। विशेषतः छोटे बच्चों को अफीम तो कभी देनी ही नहीं चाहिये--जैसा मातायें या दाइयाँ बच्चे को सुलाने के लिये दे देती हैं। यदि कभी देनी हो, तो चिकित्सक या वैद्य की अनुमति से इसका उपयोग करना चाहिये।

१९—बालक को बहुत तीखी या नशा करनेवाली दवाइयाँ कभी भी नहीं देनी चाहिये।

२०—गर्भिणी या दूध पिलानेवाली माता को तीव्र विरेचक या दूध के रास्ते स्तनों से निकलनेवाली औषधि अथवा गर्भ के लिये हानिकारक औषधि कभी भी नहीं देनी चाहिये।

२१—पुरुष की अपेक्षा स्त्रियों की औषधि-मात्रा न्यून होती है।

२२—युवा मनुष्य की अपेक्षा बच्चे और बालक को औषधि जल्दी प्रभाव करती है। पारेवाली औषधियाँ बच्चे सुगमता से जितनी अधिक मात्रा में ले सकते हैं, उतनी मात्रा में युवा व्यक्ति नहीं ले सकते।

प्रकरण नवाँ

अनुपान

जिस प्रकार तैल पानी के ऊपर फैल जाता है, उसी प्रकार औषधि भी अनुपान के बल से सारे शरीर में फैल जाती है। इसके अतिरिक्त अनुपान के योग से दवाई का स्वाद सुधारा जा सकता है, उसकी क्रिया-शक्ति बढ़ाई जा सकती है और रोग को या दर्द को शीघ्र शान्त कर सकते हैं।

किसी चूर्ण, गोली अथवा भस्म की पुड़िया को जिस वस्तु के साथ इसलिये मिलाते हैं कि वह शरीर के अन्दर सुगमता से जा सके और अपना असर कर सके, उसीको "अनुपान" या त्रिकल कहते हैं। अनुपान शब्द का अर्थ "दवा खाकर ऊपर से कुछ पीना" है। देशी वैद्यक-शास्त्र में अनुपान का बहुत महत्व है। एकही दवा अनुपान-भेद से भिन्न-भिन्न रोगों में कार्य्य करती है। उदाहरण के लिये "मकरध्वज" अनुपान-भेद से सभी रोगों में चमत्कारिक प्रभाव रखता है। इतना ही नहीं, कई बार युक्ति से सोचा हुआ अनुपान असाध्य रोगों को भी साध्य कर देता है।

अनुपान का महत्व बङ्गाल के अन्दर विशेषरूप से गिना जाता है। अनुपान की योजना के ऊपर ही चिकित्सक की बुद्धि-वैलक्षण दीखता है। ज्वर आदि रोगों मे दिया हुआ 'मृत्युञ्जय-रस' अथवा 'आनन्द-भैरव' रस अतिसार के अन्दर भी अनुपान-बल से कार्य्य कर देता है, इसलिये अनुपान को विशेष महत्व दिया जाता है।

साधारणत: अनुपान घी, दूध, छाछ, पानी, शहद, मक्खन, शक्कर, अदरक का रस, हींग, पीपल, मुरब्बा, गुलकन्द और तण्डुलोदक (चावलों का धोवन) इत्यादि होते हैं। परन्तु कई मुख्य रोगों के लिये यथा, प्रमेह, वात रक्त, आर्ष आदि के लिये विशेष अनुपानों की योजना करनी पड़ती है।

किस रोग में, किस रोगी को किस प्रकार का अनुपान देना चाहिये? यह बात रोगी की अवस्था, रोग की दशा और चिकित्सक के ऊपर निर्भर करती है। मल्ल चन्द्रोदय अथवा स्वास्थ्य-कुठार के साथ दिया हुआ 'क्षुद्रादिक्वाथ'

अथवा 'अष्टांगावलेहिका' के साथ दिया हुआ नागरादिक्वाथ श्वास-रोग में और कफ-ज्वर में क्रमशः दुगुना प्रभाव को रखते हैं। इसी प्रकार अन्य रोगों में भी यदि अनुपान की वस्तुएँ सदा ध्यान में रहें, तो योजना करने में सरलता होती है। इसलिये नीचे सामान्य अनुपानों को रोगों के अनुपानों के साथ दिया जाता है।

यदि रस-चिकित्सा को काष्ठादिक औषधियों के साथ मिलाकर किया जाय, तो विशेष लाभ की आशा है। यह तब हो सकता है, जब रसादिक औषधियों को मुख्य मानकर काष्ठादिक औषधियों को अनुपान के रूप से बर्ता जाय।

साधारण अनुपान—जो रोगी तीखी, तमतमी और गरम चीजें खा-पी न सकते हों, उन रोगियों के लिये नीचे के अनुपानों में से कोई अनुपान चुना जा सकता है।

(१) पानी अथवा सादा शरबत (शक्कर की चाशनी)। (२) अदरक का रस १ तोला, अनार का रस ४ तोला, शक्कर ५ तोला—इन सबको मिलाकर चाशनी पकाकर रख ले। यह चाशनी कफ और पित्त के रोगों के लिये सुगमता से बरती जा सकती है। (३) नीबू का रस ४ तोला, अनार का रस २ तोला, अदरक का रस १ तोला, शक्कर १० तोला—इन सबको मिलाकर चाशनी बना ले। यह चाशनी अरुचि अग्निमान्द्य और पेट में वायु होने पर उपयोगी है। यह उत्तम पाचक है। (४) ईषबगोल का लुआब पित्त के रोगों के लिये शक्कर डालकर देना बहुत ही उत्तम वस्तु है। इसको बनाने के लिये ईषबगोल को २ तोला लेकर, रात्रि में पानी के अन्दर भिगो देना चाहिये। सबेरे उसका लुआब उठ जाता है। (५) जूफे का शरबत या उन्नाव का शरबत अथवा मगजों का शरबत (कद्दू, ककड़ी, खरबूजा और तरबूज--इन चारों के बीजों को मगज कहते हैं पित्त-रोग के लिये अच्छा है। (६) शहद एक योगवाहि वस्तु है, इसलिये सब दवाइयों के साथ देने से गुणकारी होता है। विशेषतः कफ के, कफ-वात के रोगों में उत्तम है। यदि इसको और अच्छा बनाना हो, तो अदरक का रस अथवा सोंठ का चूर्ण इसमें मिला देना चाहिये। कई काढ़े इस शहद से मीठे और रुचिकर बन जाते हैं। मीठा होने से बच्चे भी इसको चाट लेते हैं।

रोगों के अनुसार अनुपान—ज्वर—१. तुलसी, बिल्वपत्र और इनसे बनी चाय। २. तुलसी, बिल्व और सोंठ से बनी चाय। ३. तुलसी की चाय। ४. तुलसी के पत्ते का रस तथा शहद।

सन्निपात-ज्वर में—१. अदरक का रस। २. तुलसी का रस। ३. अदरक तथा तुलसी का रस। ४. पान के पत्ते का रस शहद के साथ।

शीत-ज्वर—१. भाँगरे का रस। २. अदरक का रस। ३. गिलोय का रस।

जीर्ण-ज्वर—१. मधु और छोटी पिप्पली। २. जीरा तथा पुराना गुड़। ३. जीरा तथा शक्कर। ४. शीतोपलादि चूर्ण और दूध। ५. दूध, शक्कर और सोंठ। ६. दूध। ७. मक्खन और मिश्री।

अतिसार—१. बिल्व-पत्र का रस और मधु। २. चावल का धोवन। ३. कूड़े की छाल अथवा बिल्व का गूदा। ४. बकरी का दूध। ५. छाछ। ६. चूने का पानी।

आमातिसार अथवा मरोड़ा—१. छाछ अथवा चावल का धोवन। २. बिल्व का गूदा।

संग्रहणी—१. जीरा और हींग (घी में सिके हुये)। २. छाछ। ३. दूध।

अजीर्ण—१. उपवास। २. गरम पानी। ३. नीबू की सिकञ्जबीन। ४. हींग। ५. प्याज और पोदीने का उबाला हुआ पानी। ६. छाछ (हींग और अजवायन से धूप दी हुई)। ७. हींग, सेंधानमक और हरड़ का चूर्ण।

मन्दाग्नि—१. शहद तथा छोटी पीपल। २. पान का रस। ३. त्रिकटु और हींग।

अर्श—१. सूनवाले अर्श में मक्खन और शक्कर। २. मक्खन और नागकेशर। ३. दही की मलाई और नागकेशर।

शुष्कार्श में—१. भिलावाँ। २. छाछ। ३. चित्रक-मूल की छाल।

भस्मक-रोग में—१. पका हुआ केला और घी। २. भेड़ के घी या दूध में पकी हुई वस्तुएँ।

खाँसी में—१. छोटी कटेली और त्रिकटु का काढ़ा शहद के साथ। २. पके हुये पान का रस और शहद। ३. सुहागा और शहद।

कफ तथा श्वास में—१. कूठ अथवा पुष्कर-मूल का काढ़ा शहद डालकर। २. भारङ्गी का काढ़ा। ३. अदरक का रस और शहद। ४. गरम पानी। ५. तुलसी का रस और शक्कर।

हिचकी—१. मोर के पंखों की भस्म छोटी पिप्पली और शहद के साथ। २. धतूरे की बीज या भाँग की पत्तियों का चिलम में भरा हुआ एक दम।

खाँसी में जब कफ न निकले—बाँसे का पत्र, कटेरी और अदरक इनका काढ़ा शहद के साथ।

कुत्ता-खाँसी—१. पक्का केला। २. मक्खन और शक्कर ३. धतूरे के बीज में बनी दवाई।

क्षय—१. मक्खन, शहद और घी का मिश्रण। २. मधु और शक्कर। ३. बकरी का दूध। ४. शिलाजीत। ५. बंसलोचन या प्रवाल-पिष्टि अथवा मोती-भस्म मक्खन के साथ।

स्वर-भेद—१. द्राक्षा का क्वाथ। २. दूध, शक्कर और आँवले का चूर्ण।

पांडु—१. त्रिफला और शहद। २. त्रिफला और शक्कर। ३ गोमूत्र।

कामला—१. घी। २. त्रिफला और शक्कर। ३. कुटकी और शक्कर।

अम्ल पित्त—१. किशमिश। २. अदरक तथा अनार से बनी सिकञ्जबीन। ३. शक्कर और किशमिश। ४. चन्दन किशमिश और शक्कर का काढ़ा।

अरुचि—१. बिजौरा। २. दाड़िम। ३. अदरक, नीबू तथा शक्कर की चटनी।

उल्टी—१. कच्चे नारियल का पानी। २. सोंये का पानी। ३. चूने का नितारा पानी। ४. बरफ।

दाह—१. नेत्रवाला का अर्क। २. नेत्रवाला का शरबत। ३. धान्य-पञ्चक वात। ४. मोथा, पित्तपापड़ा, नेत्रवाला, चन्दन और धमासा, सोंठ इनका काढ़ा। ५. चावलों का पानी, चन्दन और शक्कर। ६. आँवले का मुरब्बा। ७. चन्दन का शरबत।

कृमि—वायविडङ्ग और मधु।

अफारा—१. क्षार—वज्रक्षार, यवक्षार। २. पिपली-मूल।

शोथ—१. पुनर्नवा। २. गोमूत्र। ३. दूध। ४. चित्रक-मूल।

अपस्माद तथा उन्माद-रोग—१. ब्राह्मी का रस और घी। २. वच। ३. अकरकरा।

मूर्च्छा तथा भ्रम—१. ब्राह्मी का रस। २. शंखपुष्पी का रस। ३. धमासा

का काढ़ा तथा घी । ४. दूध तथा शक्कर । ५. सतावरी का रस । ६. आँवले का मुरब्बा, अनार का रस और गुलकन्द । ७. शीतोपचार । ८. अश्वगन्धा का रस ।

वात-रोग—१. रासना । २. घी । ३. लहसुन । ४. एरण्ड ।

आम-वात—१. गुग्गुल और घी । २. गोमूत्र ।

वात-रक्त—१. गिलोय का काढ़ा तथा एरण्ड-मूल । २. नीबू और खदिर का काढ़ा ।

सरदी—अदरक का रस और मधु ।

शीतांक—१. कस्तूरी । २. अगर, सोंठ और अजवाइन का लेप । ३. पान और कालीमिर्च ।

मेद-रोग—१. शहद और पानी । २. शिलाजीत ।

कार्श-रोग—अश्वगन्धा का चूर्ण और घी ।

रक्त-पित्त—१. बाँसे के पत्तों का रस और घी । २. गन्ने का रस तथा शहद । ३. सतावरी का रस और शहद । ४. अंगूर का शरबत । ५ नागकेशर और मक्खन । ६. मोच-रस और मक्खन ।

शूल-रोग—१. हींग तथा घी । २. क्षार । ३. सोंठ का काढ़ा और एरण्ड ।

पार्श्व-शूल—पुष्कर-मूल और कूठ का काढ़ा ।

गुदा का शूल—चित्रक-मूल ।

गुल्म-रोग और उदर-रोग—१. गोमूत्र । २. विरेचन । ३ क्षार ।

नेत्र-रोग—१. त्रिफला । २. मुलेहटी और घी ।

मुख-रोग तथा दाँत रोग—१ मौलसरी की छाल और कत्था । २. कत्था और नमक ।

आँखों के दर्द—शिंगरू ।

शिर के रोग—१. घी तथा शक्कर । २. शंखपुष्पी तथा घी । ३. घी और पुराना गुड़ । ४. पेठे का रस ।

कान के रोग—सरसों का तेल ।

उपदंश—१. त्रिफला । २. भाँगरा का रस । ३. घी ।

ग्रन्थी—त्रिफला का काढ़ा तथा चूर्ण ।

गण्डमाला—कचनार की छाल का काढ़ा ।

प्रमेह—१. हल्दी कच्ची का रस तथा शक्कर । २. त्रिफला औ

३. गिलोय का रस तथा शक्कर । ४. आँवले का चूर्ण तथा शक्कर । ५. कच्चा ताज़ा दूध ।

प्रदर—१. चावलों का धोवन, चन्दन और शक्कर । २. जीरा तथा शक्कर । ३. आँवले का मुरब्बा । ४. अनार का रस । ५. अशोक की छाल का काढ़ा । ६. गुलकन्द ।

रक्त-प्रदर—दूर्वा का रस और शहद ।

मूत्रकृच्छ्र तथा मूत्राघात—१. गोखरू का काढ़ा । २. सतावरी, गन्ना और कुष्माण्ड का रस । ३. चावलों का धोवन । ४. पञ्चतृण-मूल का काढ़ा । ५. दूध और पानी । ६. केले का क्षार या सुराखार ।

बहु-मूत्रतः—१. पक्का केला । २. आँवले का चूर्ण । ३. जामुन की गिटकों का चूर्ण । ४. बड़, पीपल, पिलखन, जामुन, गूलर इनके फलों का चूर्ण ।

पथरी—१. पाषाण-भेद का काढ़ा । २. शिलाजीत ।

सफ़ेद कोढ़—बावची और काले तिल ।

विसर्प और त्वचा-रोग—१. नीम पञ्चांग । २. त्रिफला-चूर्ण । ३. बावची । ४. खैर ।

विष—घी ।

शुक्र-क्षय—१. दूध । २. आँवला । ३. विदारी कन्द । ४ अश्वगन्धा । ५. भाँगरा और हरीतकी । ६. ईसबगोल की भूसी ।

वात-पित्त के विकार—घी ।

कफ-पित्त के विकार—मधु ।

रक्त और कफ के विकार—गिलोय का काढ़ा और मधु ।

रसायन—घी और दूध ।

वाजीकरण—१. दूध और मधु । २. दूध और शक्कर । ३. दूध नाग-केशर या केशर इलायची और जायफल के साथ । ४. पान का पत्ता ।

हृदय-रोग—अर्जुन-छाल ।

यहाँ पर कुछ चुन-चुनकर मुख्य अनुपान रख दिये गये हैं । इससे भी अच्छे अनुपान मिल सकते हैं । परन्तु जहाँ पर कोई अनुपान सूझे नहीं, वहाँ पर इनसे काम लिया जा सकता है । औषधि के अभाव में ये ...न दवाई का काम दे सकते हैं ।

भस्म और दवाइयाँ अनुपान-भेद से बहुत-से रोगों में उपयोगी हो

जाती हैं। यदि मनुष्य अनुपान-भेद से जानकारी रखता हो, तो उसको बहुत स्टॉक रखने की आवश्यकता नहीं होती। वह अन्य औषधियों की अनुपस्थिति में एक दवाई से, या थोड़ी दवाई से बहुत-से रोगों को चिकित्सा कर सकता है। अभ्रक-भस्म, प्रवाल-भस्म, लोह-भस्म आदि कई दवाइयाँ लोग अपने घर में रखते हैं; परन्तु उनको इन दवाइयों का अनुपान-भेद मालूम नहीं होता। इसीसे प्रायः वैद्यों के पास दौड़ना पड़ता है। इसलिये इन दवाइयों का अनुपान साधारणरूप से इस प्रकार दिया जाता है।

अभ्रक-भस्म—खाँसी कफ और दम में—पके हुये पान के साथ या उसके रस में, मक्खन या आर्द्रक-रस के साथ।

प्रमेह में—१. शहद, पीपल तथा शिलाजीत। २. इलायची, गोखरू, आँवला, शर्करा, गाय का दूध।

जीर्ण-ज्वर में—पिप्पली और शहद के साथ।

अक्षि-रोग में—त्रिफला घी और शहद में।

ग्रहणी में—सोंठ, कालीमिर्च, पिप्पली और घी के साथ।

रक्त-पित्त में—हरड़, गुड़, छोटी इलायची।

अर्श (पाण्डु-क्षय) में—त्रिफला, त्रिकटु, दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर और शहद के साथ।

प्रमेह में—पिप्पली, हल्दी शहद के साथ; अथवा गिलोय-रस के साथ प्रमेह को नष्ट करती है।

धातु-वृद्धिकारक—स्वर्ण-पत्र और चाँदी के पत्तों के साथ। स्वर्ण-पत्र को अभ्रक के साथ।

मूत्रकृच्छ्र-रोग में—भूम्यामलकी, गोखरू, कपूर, नेत्रवाला, शर्करा इनमें से किसीको गोघृत के साथ मिलाकर चाटने से मूत्रकृच्छ्र नष्ट हो जाता है।

मूत्राघात से—क्षारों के साथ में।

व्रण-रोग में—मूर्वा-काथ के साथ।

बल-वृद्धि में—विदारी कन्द और गोदुग्ध के साथ।

शुक्रस्तम्भ—भाँग का रस और जायफल के साथ।

वात-रोग में—सोंठ, कूठ, मुलहट्टी, अश्वगन्धा और शहद के साथ

हृदय-रोग में—कज्जली और अर्जुन-काथ के साथ।

पित्त-रोग में—गोदूध, शक्कर और दालचीनी, इलायची, और नागकेशर (चतुर्जात) के साथ।

कफ-रोग मे—पिप्पली, कायफल, शहद के साथ लेने से आरोग्य होता है।

लोह-भस्म—पाण्डु-रोग मे—१. गोमूत्र, २. पुनर्नवा-क्वाथ।

गुल्म तथा प्लीहा-रोग मे—गोमूत्र के साथ।

संग्रहणी तथा पुराने मरोड़ मे १. बेल का मुरब्बा। २ छाछ (तोला ४) तथा कालीमिर्च का १ बाल।

अग्निमान्द्य मे—पान के पत्ते के रस मे।

खाँसी मे—बाँस के पत्ते, पिप्पली, द्राक्षा और शहद।

रक्त-पित्त मे—चतुर्जात चूर्ण और शर्करा।

कृमि-रोग मे—वायविडंग के चूर्ण और शहद।

प्रमेह मे—(१) हल्दी और शहद, (२) पिप्पली और शहद।

मूत्रकृच्छ्र मे—शिलाजीत।

कफ-रोग मे—शहद तथा पिप्पली।

धातु-वृद्धि के लिये—त्रिकटु, भाँगरा-मूल तथा शहद।

शक्ति के लिये—शहद और घी।

शूल-रोग मे—हीग, त्रिकटु और घी के साथ।

वृद्धावस्था मे पुनर्नवा और गोघृत या गोदुग्ध के साथ।

पाण्डु-रोग मे (१) हल्दी का रस, घी, शहद, (२) हरड़ और कुटकी के साथ।

मूत्रकृच्छ्र-रोग मे गोखरू, छोटी इलायची।

आयुष्कर—आमलकी रस, त्रिफला के साथ सेवन करना चाहिये।

मण्डूर-भस्म—शोफ-रोग पुनर्नवाष्टक-काढ़े के साथ।

कामला-रोग मे—कुटकी, त्रिफला, हल्दी-चूर्ण।

ज्वर मे—दशमूल-क्वाथ के साथ।

मण्डूर-भस्म का उपयोग प्रायः लोह के समान है।

वंग भस्म—क्षय[redacted]मे—(१) मक्खन और शर्करा के साथ (२) दाड़िम की चटनी, (३) द्राक्षासव।

श्वास मे—खाँसी का अनुपान एवं जायफल, लवंग और शहद।

उरःक्षत मे—मक्खन और शर्करा।

अपस्मार में—लहसुन।

वायु-रोग में—लहसुन।

अग्निमान्द्य में—(१) कस्तूरी तथा पिप्पली, (२) शीतल चीनी।

पाण्डु में—घी।

गुल्म में—टंकण-खार।

रक्त-पित्त में—हल्दी।

जलोदर में—बकरी का दूध।

कटि-शूल में—असगन्ध तथा जायफल।

प्रमेह में—(१) शहद तथा हल्दी, (२) त्रिफला और शर्करा, (३) तुलसीपत्र। औ. शतावरी के साथ।

धातु-क्षीणता में—ज्वर, श्वास और खाँसी हो, क्र . (१) दूध या मक्खन में, (२) घी और शर्करा में।

दाह में—नीबू-पत्र-रस के साथ (२) नीबू के शरबत के साथ।

अजीर्ण में—आमला के चूर्ण के साथ।

धातु-विकार में—जायफल, लवङ्ग तथा शक्कर।

धातु-स्तम्भन में—(१) भाँग, (२) पान के पत्ते के साथ. (३) कस्तूरी।

पुष्टी अंगवृद्धि में—लवङ्ग, समुद्रफल तथा पान के पत्ते का लेप।

पित्त-विकार में—शर्करा के साथ।

गर्मी के विकार में—१. दूध-शर्करा। २. मक्खन। ३. घी शर्करा।

ठंडी प्रकृति में—गाय का दूध, मधु।

उपदंश-जन्य प्रमेह में भी वंग-भस्म लाभ करती है।

प्रमेह-रोग में—१. गिलोय का सत्त्व, मधु। २. शिलाजीत, मधु।

गनोरिया में—रससिन्दूर, कच्ची हल्दी का रस।

शुक्र-शोधक— वंग को समुद्रफेन के साथ खाने से।

धातु-वृद्धि में—मूसली, हल्दी और शहद।

स्वर्ण-भस्म—बल वृद्धि के लिये—दूध में।

नेत्र-तेज के लिये—पुनर्नवा रस से।

वृद्धावस्था के लिये—घी के साथ।

बुद्धि बढ़ाने के लिये—दूध में या बच के साथ ।

कान्ति—केशर के साथ ।

क्षय में—दूध के साथ ।

विष—निर्विषी के साथ ।

त्रिदोष में (उन्माद में)—लौंग, सोंठ और मिर्च के साथ ।

अरिष्ट (मृत्यु-सूचक) लक्षणों की उपस्थिति में—आमला-चूर्ण और शहद ।

आयु-वर्द्धक—शंख-पुष्पी के साथ ।

पुत्र-प्राप्ति के लिये—विदारी कन्द के साथ ।

अतिसार में—जीरा, बिल्व-चूर्ण के साथ ।

पाण्डु-रोग—गिलोय का सत्त्व ।

[illegible] की शुद्धि के लिये—चोप चीनी के साथ ।

उपदंश—गिलोय, सारिवा मंजीष्ठा के काढ़े के साथ ।

अम्लपित्त—आँवला-चूर्ण के साथ ।

अण्ड-शोथ—पुनर्नवा, कज्जलि ।

स्वर-भंग—किशमिश, पिप्पली, जायफल, मुलहट्टी के साथ ।

लावण्य के लिये—लालचन्दन, कमल, मुलहट्टी, शर्करा, मजीठ ।

देह-पुष्टि के लिये—१. शालपर्ण, विदारी, अश्वगन्धा और कौंच के साथ । २. आँवला, शालपर्ण, सोंठ, पुनर्नवा ।

गर्भ-धारक—नागकेशर के साथ ।

अस्थि-रोग में—सिता मिश्री के साथ ।

रौप्य-भस्म(चाँदी की भस्म)—क्षय में—शिलाजीत ।

शोथ में—पुनर्नवा ।

लोहा में—त्रिफला और पिप्पली ।

कामला में—गोमूत्र ।

क्षीणता में— मांस-रस अथवा दूध ।

श्वास में—भारंगी और सोंठ ।

कास में—त्रिकटु तथा बाँस के पत्ते के रस में ।

गुल्म में—क्षार ।

प्रमेह में—तमालपत्र, दालचीनी और इलायची ।

दाह में —शर्करा ।

वात-पित्त रोग में—त्रिफला के साथ ।

कोष्ठ वायु—अजवायन, लवङ्ग के साथ ।

हृदय का स्पन्दन—छोटी इलायची के साथ ।

उर्ध्वभेदक—छोटी इलायची, मिश्री के साथ ।

गर्भाशय रोग—रस-सिन्दूर, लोह शिलाजीत के साथ और त्रिफला के पानी के साथ ।

गनोरिया में—हल्दी के रस, रससिन्दूर, टंकण ।

नाड़ी-शूल—चित्रक, अजवायन के काढ़े के साथ ।

उन्माद में—सिता-मिश्री और घी तथा इलायची ।

कार्श्य—शालपर्णी, कौंच, शतावरी के साथ ।

ताम्र भस्म—शूल में—घी के साथ ।

उदर तथा गुल्म-रोग में—गोमूत्र ।

मन्दाग्नि में—मधु ।

कफ में—कालीमिर्च, लवंग, केशर, पीपल और भारंगी ।

मूर्च्छा—उशीर चूर्ण, नागकेसर को ठण्डे पानी के साथ ।

भ्रम में—दुरालभा काथ के साथ ।

पित्त शूल में—करञ्ज चूर्ण के साथ ।

प्लीहा—त्रिकटु, शंख-भस्म ।

सूतिका रोग में—कौड़ी का भस्म, जीरा ।

अग्निवर्द्धक—पिप्पली-चूर्ण ।

श्वास-रोग—भागी, विभीतक, ।

अर्श—नागकेशर और हरड़ ।

छर्दि-रोग—पीपल के वल्कल की शराब ।

यकृत-रोग—त्रिकटु, पिप्पली, मधु ।

गुल्म-रोग—आर्द्रक-रस के साथ ।

मकल्ल-शूल—त्रिकटु, चित्रक, पिप्पली के काढ़े के साथ ।

मलेरिया में—कुटकी, गिलोय, चिरायता, पित्तपापड़ा, नागरमोथा इनके काढ़े के साथ ।

यशद-भस्म—नेत्र-रोग में—गाय के पुराने घी के साथ ।

प्रमेह में—पान के पत्ते के साथ ।

पित्त-ज्वर में—चावलों के धोवन के साथ।
शीतज्वर में—लौंग और अजवायन के चूर्ण के साथ।
रक्तातिसार में—खजूर या चावलों के साथ।
उल्टी—जीरा और शर्करा के साथ।
सन्निपात में—इलायची, तेजपात और दालचीनी के साथ।
रात्रि-स्वेद में—प्रवाल-भस्म के साथ।
विचर्चिका—गोघृत के साथ लगाने से।
क्षय-कास में—अभ्रक-भस्म और शहद।
श्वास में—आर्द्रक स्वरस के साथ।
पक्षाघात—कौंच, रास्ना, बला, एरण्ड के कषाय के साथ।
स्वप्न-प्रमेह—बंग-भस्म या स्वर्ण-बंग के साथ।
आर्त्तव-स्राव में—अशोक-वल्कल-चूर्ण के साथ।
श्वेत-प्रदर—लोह, राल।
मस्तिष्क-निर्बलता में—रस-सिन्दूर शहद के साथ।

नाग-भस्म(सीसे की भस्म)—शक्कर के साथ खाने से वात, पित्त, मस्तक-रोग, वीर्य-दोष, दाह को नष्ट करती है।
प्रमेह—हल्दी, आँवले का रस और शहद।
रक्त-प्रदर—अशोक-क्वाथ के साथ।
रक्तार्श—नागकेशर के साथ।
कफ-प्रमेह और वात-प्रमेह में—गिलोय का सत्व और शहद।
अन्त्र-शोथ—स्वर्ण-भस्म, रससिन्दूर और ताम्र-भस्म।
वृक्क-शोथ—कौंच, जटामांसी, बला के काढ़े के साथ।

माक्षिक-भस्म (स्वर्ण)—त्रिफला, त्रिकटु, कालीमिर्च, मक्खन और शहद इसके साधारण अनुपान हैं।
यक्ष्मा—शिलाजीत, अभ्रक-भस्म, विडंग, मधु।
मूत्रकृच्छ्र—यव-क्षार।
शोथ—पुनर्नवा, गिलोय, सोंठ, देवदारू इनका काढ़ा।
मसूरिका—कचनार के काढ़े के साथ।
विषम ज्वर—अतिविषा, करञ्ज-चूर्ण के साथ।
रक्तपित्त—कज्जली और शहद के साथ।

बलकारक—वंशलोचन के साथ।

गर्भिणी-ज्वर—रस-सिन्दूर, अभ्रक, त्रिकटु के साथ।

रक्त-स्राव—खर्जूर के रस के साथ मधु मिलाकर।

प्रवाल-भस्म— ज्वर में—चिरायता, कुटकी और हरड़ का काढ़ा।

जीर्णज्वर में—मधु और पिप्पली।

श्वास में—मधु और पीपल।

वायु-रोग में—मधु, शक्कर अथवा तुलसी का रस।

पित्त की खाँसी में—आर्द्रक का रस और शक्कर।

पित्त-विकार में—१. दूध तथा शक्कर। २. आँवला का मुरब्बा गुलकन्द। ३. मक्खन और शक्कर।

दाह-युक्त प्रमेह—१. चावलों का धोवन और शक्कर। २. त्रिफला का चूर्ण और शहद।

कृशता में—अश्वगन्धा के साथ।

धातु-क्षय में—पक्के केले के साथ।

प्रदर में—गाय के ताजे दूध के साथ।

धातु-पुष्टि के लिये—घी और शक्कर में।

रतौंधी (रात्रि में न दीखने पर)—प्रवाल-भस्म और चूहे की मींगनी को तुलसी के पत्ते में पीसकर मधु में मिलाकर अंजन करने से।

मूत्रकृच्छ्र में—चावलों के धोवन के साथ।

मूत्राघात—रस-सिन्दूर के साथ मिलाकर गोखरू-काढ़े के साथ।

क्षय-कास—वंशलोचन, अभ्रक-भस्म के साथ।

मुक्ता-भस्म के अनुपान भी प्रायः प्रवाल के समान हैं।

मृगशृङ्ग की भस्म— खाँसी, श्वास में—मधु और पुष्कर-मूल के साथ।

धातु-विकार में—मुगलई के दाना तथा शक्कर के साथ।

हृदय के रोग में—घी।

वात-शूल में—घी के साथ।

रस-सिन्दूर—नवज्वर में—१. जाति-पुष्प, तुलसी के रस में। २. पान के रस में।

जीर्णज्वर में—गिलोय और धनिया, पित्तपापड़े

प्रमेह में—गिलोय-रस के साथ या हल्दी के रस के साथ।

रक्त-प्रदर में—अशोक-वल्कल-क्वाथ के साथ।

अपस्मार—बच और घी।

उन्माद में—कुष्माण्ड-रस से।

श्वास-रोग में—विभीतक-क्वाथ से।

मूत्रकृच्छ्र में—मिश्री, इलायची, शिलाजीत।

वमन—त्रिकटु, धनिया, जीरा, सोंठ और मधु।

मृगी—ब्राह्मी, बच, शंखपुष्पी, कुष्ठ, इलायची इनके क्वाथ।

भगन्दर—आँवला, हरड़, विभीतक, वायविडङ्ग के काढ़े के साथ।

गुल्म में—कालेनमक के साथ।

वाजीकरण—मूसली या विदारी चूर्ण के साथ।

स्वप्नमेह—अहिफेन, कपूर, लौंग, जायफल।

अग्निमान्द्य—हींग, जीरा, सोंठ, धनिया, चव्य के साथ।

परिणाम-शूल—यव-क्षार और टंकण-क्षार।

रक्त-प्रदर—वासा-क्वाथ के साथ।

रक्त-विकार में—हल्दी तथा शर्करा।

पाण्डु में—त्रिकटु और त्रिफला।

धातु-वृद्धि में- १. लवंग, पीपल, जावित्री, अकरकरा, केशर, भाँग और अफीम। २. लौंग, केशर और पान का पत्ता। ३. विदारीकन्द का चूर्ण।

पूय-व्रण में—बड़ी कटेरी, सोंठ और गिलोय का रस। २. त्रिफला तथा गुग्गुल।

पुष्टि के लिये—१. चतुर्जात। २. त्रिफला और मूसली-चूर्ण।

पारद-भस्म (मकरध्वज)—पारद-भस्म चार रत्ती, कालीमिर्च, घी अथवा छोटी पीपल (दस) के चूर्ण के साथ लेने से सम्पूर्ण शरीर में फैल जाती है।

श्वास तथा शूल में—त्रिकटु, भारंगी का चूर्ण, घी, मधु।

रक्त-विकार में—हल्दी तथा शर्करा।

पांडु-रोग में—त्रिकटु, त्रिफला और वासा के पत्र के साथ।

मूत्रकृच्छ्र में—शिलाजीत, इलायची और शर्करा के साथ।

धातु-वृद्धि के लिये—१. लौंग, केशर, तालीशपत्र, अकरकरा ये सब समान भाग और कपूर तथा अफीम आधी मात्रा में मिलाना चाहिये। २. बिदारीकन्द

सब ज्वरों में—सेंधानमक, लौंग, चिरायता और हरड़ के चूर्ण के साथ।

विरेचन के लिये—सेंधानमक, लौंग, केशर।

उल्टी में—भाँग तथा अजवायन के साथ।

उदर-रोग में—सेंधानमक, हल्दी, भाँग और अजवायन।

कृमि-रोग में—पोस्ता के डोड़े और गुड़ के साथ।

अतिसार में—अफीम, हींग, भाँग, लौंग के साथ।

पुष्टि के लिये—गिलोय का सत्त्व।

पित्त-रोग में—आँवला-चूर्ण और शक्कर।

कफ में—आर्द्रक-रस के साथ।

ज्वर-रोग में—१. पित्तपापड़ा, नागरमोथा। २. तुलसी के रस। ३. पिप्पली-क्वाथ के साथ।

रक्त-पित्त में—लाक्षारस, हरीतकी या वासा-रस के साथ।

अतिसार में—क्षीरी-वृक्ष-कषाय से (वट, पीपल, गूलर, इनके काढ़े से।)

प्रवाहिका—१. आम, जामुन, के पत्ते, गुड़। २ सोंठ और कच्चे बिल्व के साथ।

अजीर्ण—पिप्पली और हींग के साथ।

क्षय—बकरी के दूध में शक्कर मिलाकर।

मूत्र-कृच्छ्र—गोखरू-क्वाथ या मसूर-क्वाथ में शहद मिलाकर।

कामला—दारुहरिद्रा, त्रिफला-क्वाथ के साथ।

वात-रोग—लहसुन के साथ पकाये तिल-तैल के साथ।

कार्श्य—शतावरी, बला, अश्वगन्धा, मूसली इनके कषाय के साथ।

प्रमेह—त्रिफला, शिलाजीत, त्रिकटु, भृङ्गराज का स्वरस।

चन्द्रोदय-रस—मकरध्वज, जायफल, जावित्री, भीमसेनी कपूर, लौंग प्रत्येक एक-एक रत्ती और कस्तूरी आधी रत्ती मिलाकर खाने से बहुत लाभ करता है। अजीर्ण को दूर करता है, भूख लगाता है, खाये हुये को

पचाता है, बल तथा वीर्य की वृद्धि करता है और स्त्री-संग की इच्छा को उत्तेजित करता है। अथवा चन्द्रोदय ४ तोला, भीमसेनी कपूर १ तोला, जायफल, सोंठ, मिर्च, पीपल, लौंग, कस्तूरी प्रत्येक तीन-तीन माशा इनको पान के रस में खरल करके उड़द जितनी गोली बनाकर रख ले। पान में खाने से और पीछे से दूध पीने पर पुरुषत्व बढ़ता है।

हरताल-भस्म—वातरक्त में गिलोय का काढ़ा।

कुष्ठ में—गिलोय-क्वाथ।

रुधिर-विकारों मे—कच्ची हल्दी का रस।

विष तथा मृगी में—जीरा।

जलन्धर में—समुद्र-फल।

भगन्दर में—कुकट बेल का रस।

सब प्रकार के कुष्ठों में—मञ्जीष्ठादि काढ़े के साथ।

पाण्डु-रोग में—त्रिफला और शर्करा।

आम-वात में—सोंठ का चूर्ण।

हिंगुल-भस्म—१. पान के पत्ते के साथ यदि आधी रत्ती दी जाय, तो इससे श्वास, खाँसी, ज्वर आदि रोग नष्ट होते हैं। स्मरण-शक्ति बढ़ती है। २. दालचीनी, इलायची और तेजपत्र के साथ दी जाय, तो बल और जठराग्नि बढ़ती है।

पंचामृत-पर्पटी—संग्रहणी में छाछ, अथवा छाछ, सिका हुआ जीरा और घी में भूनी हींग के साथ।

अग्निमान्द्य तथा गुल्म में—गोमूत्र में।

वमन तथा दमा-रोग में—घीकार के पत्तों को सेंककर रस निकालने से तथा शहद के साथ।

वात-रोग में—घी के साथ।

पाण्डु-रोग में—त्रिफला का चूर्ण और शहद।

कृमि-रोग में—शहद तथा वायविडङ्ग के चूर्ण में।

क्षय में—मधु और शर्करा अथवा घी और शर्करा।

छोटे बच्चों के आक्षेप या अपस्मार-रोग में—गाय के दूध अथवा माता के दूध में। पंचामृत-पर्पटी की पूर्ण मात्रा १ से २ रत्ती है।

स्वर्णमालिनी-वसंत—जीर्ण ज्वर—जब ज्वर पुराना हो जाता है, अर्थात शरीर में थोड़ा-थोड़ा ज्वर बना रहता है, भूख लगती नहीं, इस अवस्था में यह दवा विशेष लाभ करती है। अनुपान (१) १० तोला गाय का दूध और १० तोला पानी, एक पूरी छोटी पिप्पली और ½ तोला शर्करा मिलाकर उबालना चाहिये। जब पानी सम्पूर्ण जल जाय, तब १ से १½ रत्ती यह दवाई इस अनुपान के साथ देनी चाहिये। (२) गरम प्रकृति में जीरा और शक्कर के साथ। (३) शरदी प्रकृति में आँवले के मुरब्बे के साथ। (४) मधु और छोटी पिप्पली का चूर्ण।

धातु-क्षय—१. मधु, मक्खन और शर्करा प्रत्येक आधा तोला। २. गाय का दूध १० तोला, शर्करा १ तोला, गाय का घी ½ तोला डालकर पीना चाहिये।

जीर्ण-ज्वर में—एक साल का पुराना गुड़ १ तोला, जीरा १ से २ बाल।

प्रदर में—चावलों का धोवन।

यह औषध क्षय-रोग के लिये विशेष गुणकारी मानी जाती है।

लघुमालिनी-वसंत—इसमें स्वर्ण का योग नहीं होता।

जीर्ण-ज्वर में—मधु और छोटी पिप्पली।

यही अनुपान अग्निमान्द्य-रोग में है।

उष्णता में—१. जीरा तथा गुड़। २. जीरा और शर्करा। ३. सितो-पलादि चूर्ण। ४. गाय का गरम दूध और शर्करा।

गर्भपाल-रस—गर्भिणी के ज्वर, दमा, कास, संग्रहणी, अम्लपित्त, श्वेत-स्राव, अकाल-प्रसव, गर्भपात आदि उपद्रवों को रोकता है, गर्भ को पुष्ट करता है और सुख से प्रसव कराता है। अनुपान—द्राक्षा ५ तोला, शक्कर १० तोला, पानी ४० तोला इनका काढ़ा करके २० तोला रहने पर छान लेना चाहिये। इस २० तोला को पकाकर शहद जैसा घन बनाकर रखना चाहिये। इसकी मात्रा एक तोला है।

गंधक-रसायन—कुष्ठ तथा इसके उत्पन्न विकारों में—क्षत, पूय, शोथ, कृमि में अनुपान—१. नीबू पंचांग और घी। २. त्रिफला-क्वाथ। कण्डू, दाद, मस्तिष्क-व्रण में—१. पक्का केला। २. घी, शक्कर।

धातु-क्षय में—दूध और मिश्री।

कृमि-विकार में—प्रथम रेचन देकर फिर इस दवा को वाय-विडङ्ग, त्रिफला और शक्कर के साथ देना चाहिये।

नहेरुआ-कृमि में—त्रिफला और शर्करा में।

चन्द्रकला-रस—ज्वर, सन्निपात, महामारी, प्लेग तथा अतिशय दाहवाले रोगों में शान्ति देने के लिये १ से १॥ रत्ती मात्रा में दिया जाता है। अनुपान—अनार का अवलेह, दाड़िमाष्टक, मुरब्बा, गुलकन्द। मूत्र में, दाह, भ्रम, मूर्च्छा, अर्श, नासागत रक्तपित्त, मस्तिष्क-शूल। अम्लपित्त में भी इसी अनुपान से देना चाहिये।

आनन्द-भैरव—अजीर्ण में—छाछ।

विसूचिका में—१. छाछ अथवा सिकी हुई हींग। २. वंशपत्री।

पुराने अतिसार में—चावलों के धोवन में या कूडे की छाल में।

कृमि-रोग में—अतिसार के अनुसार। ज्वरातिसार में—मधु के साथ।

अग्निकुमार-रस—अजीर्ण, कॉलरा, संग्रहणी तथा आम में—छाछ।

पुराने अतिसार में—चावलों का धोवन या कूडे की छाल।

कृमि-रोग-जन्य अतिसार में—अतिसार की भाँति।

श्वास में—१. पान के पत्ते के रस में। २. आर्द्रक का रस और मधु।

वायु-गोला में—घी।

उदर-शूल में—श्वास की भाँति।

इच्छाभेदी-रस—ज्वर उतरने पर, गर्मी, बन्धकोष्ट, वात-रोग, शूल, गुल्म और साधारण उदर-रोगों में निम्न प्रकार से देना चाहिये—प्रथम रात्रि में ८-१० तोला दूध में घी १ तोला डालकर पीना चाहिये। प्रात: दो से तीन रत्ती इच्छाभेदी-रस लेकर शर्करा या गुड़ के शर्बत के साथ पीना चाहिये। कई गुड़ में गोली बनाकर पानी की घूँट के साथ पिला देते हैं। इससे १ या २ घन्टे में विरेचन हो जाता है। विरेचन हो जाने पर दाल, चावल खाना चाहिये। गरम पानी पीने से दस्त बन्द हो जाते हैं। यदि तीन-चार घंटे तक कोई विरेचन न हो, तो दाल-भात खाना चाहिये और गरम पानी पीना चाहिये। इससे विरेचन हो जाता है। इस औषधि के पीछे दो दिन तक हल्का भोजन खाना चाहिये।

शुद्ध गंधक—वात-रोगों में—तुलसी के रस के साथ तथा घी।

पित्त-रोग में—गाय का घी।

कफ-रोग में—गुड़ तथा सोंठ।

श्वास-रोग में—१. आर्द्रक का रस। २. कटेरी का फल तथा घी।

खाँसी में—गाय का घी, मिर्च अथवा पिप्पली।

हृदय के शूल में—पान के पत्तों का रस।

अजीर्ण में—आमला का चूर्ण।

संग्रहणी में—सोंठ तथा घी।

विसूचिका में—बिजौरे का रस।

प्रमेह में—गुड़, कुष्ठ, नीबू-पंचांग।

व्रण में—घी।

नेत्र-रोग में—१. त्रिफला। २. भृङ्गराज का रस। ३. शहद तथा घी।

नाक के मस्सों में—गन्धक का अर्क लगाना चाहिये।

आँख की फूली में—शहद या घी में अथवा केले के रस में गन्धक मिलाकर अंजन करना चाहिये।

महायोगराज गुग्गुल—सब प्रकार के वात-रोगों में—रास्नादि-क्वाथ।

पित्त-रोगों में—काकोल्यादिगण-क्वाथ में।

कफ-रोग में—आरावधादि-क्वाथ में।

प्रदर तथा प्रमेह में—दारुहरिद्रा के काढ़े में।

पाण्डु-रोग में—गोमूत्र में।

मेद-रोग में—मधु के साथ।

कुष्ठ (रक्त-विकार) में—नीबू-क्वाथ में।

वात-रक्त में—गिलोय के रस में।

शोथ तथा शूल में—छोटी पिप्पली के काढ़े में।

मूषिक-विष में—पाठे के काढ़े में।

नेत्र-रोग में—त्रिफला के काढ़े में।

सब प्रकार के उदर-रोगों में तथा गुल्म में—पुनर्नवादि-काढ़े में, सौंफ (½ तोला), सोंठ (½ तोला) तथा धनिया, गोखरू (प्रत्येक ½ तोला) और १½ सेर पानी में काढ़ा करके अष्टमांश पानी शेष रहने पर देना चाहिये।

साधारण अनुपात—घी (½ तोला) और मधु (½ तोला) है।

रक्त-विकार में—मञ्जिष्ठादि-क्वाथ।

भगन्दर तथा नाड़ी-व्रण में—त्रिफला-क्वाथ।

साधारण संधि-वात या आमवात में—घी के साथ लेकर ऊपर से सोंठ से संस्कृत दूध पीना चाहिये। लघु योगराज के भी यही अनुपान हैं।

चन्द्रप्रभा—प्रमेह में—१. गिलोय का रस और शहद। २. गिलोय, आमले का काढ़ा शहद के साथ। ३. हल्दी का रस और मधु। ४. ठंडा पानी।

मूत्र की उष्णता (जलन) में—चावलों का धोवन तथा शर्करा।

उष्ण-वात मूत्र-कृच्छ्र (पत्थरी) में—गोखरू का काढ़ा और सेंधानमक।

पौष्टिक अनुपान—१. गाय का या भैंस का दूध और शर्करा। २. घी और मधु। ३. गिलोय का रस। यह औषधि योगवाही है। सब रोगों में गुणकारी है।

अश्व-चोली—सन्निपात में—अजवायन।

शीत-ज्वर में—जीरा।

पित्त-ज्वर में—जीरा तथा शक्कर।

रोज-दिन के ज्वर में—घीकार का रस।

दाहयुक्त-ज्वर में—आँवले का चूर्ण।

वात-शूल में—१. त्रिकटु। २. आर्द्रक का रस। ३. मधु और पिप्पली। ४. मूली के पत्तों का रस।

सब-शूल में—घी तथा शहद।

मृत्तिका-जन्य वायु में—१. तुलसी का रस। २. शहद। ३. घीकुवार का रस।

संग्रहणी में—१. जायफल। २. भैंस का मूत्र। ३. छाछ।

अतिसार में—दही।

विष-रोग में—१. चावलों का धोवन। २. पिप्पली। ३. अकरकरा।

पीनस-रोग में—जायफल।

मस्तक-रोग में—जायफल।

वायु-रोग में—१. घी। २. बकरी का दूध। ३. त्रिफला। ४. भाँगरे का रस। ५. असगन्ध और शहद।

पित्त-रोग में—आमले का चूर्ण और शर्करा।

उदर-रोग में—१. त्रिफला और एरंड-तैल ।

शोथ में—१. प्याज का रस । २. भांगरे का रस ।

विरेचन के लिये -१. एरण्डी का तेल । २. आर्द्रक का रस ।

अर्श में—जायफल ।

अस्थिगत-वायु में—वच, देवदारू तथा कूट के चूर्ण के साथ ।

कृमि-रोग में—करञ्ज की छाल के काढ़े में ।

सर्पविष में—१. घी में । २. शिरीष के रस में ।

अश्व-चोली में जमालगोटा होता है, अतः इसका उपयोग बहुत होशियारी से करना चाहिये ।

त्रिफला—नित्य उपयोग—मधु और घी के साथ ।

वात-रोगों में—त्रिफला-क्वाथ में गोमूत्र मिलाकर पीने से ।

प्रमेह—त्रिफला-क्वाथ में मधु डालकर पीने से, त्रिफला-चूर्ण, मुलहट्टी-चूर्ण, लोह-भस्म, घी और शहद इनको मिलाकर खाने से स्त्री-संग की अभिरुचि बढ़ती है, आँखों की दीप्ति होती है ।

वात-रोग में त्रिफला—एरण्ड-तैल के साथ ।

पित्त-रोग में—घी के और कफ में मधु के साथ खाना उत्तम है ।

दूध—अतिसार, ज्वर, क्षय, निर्बलता आदि रोगों के लिये दूध अमृत है । संग्रहणी और पुराना अतिसार भी इसके सेवन से चला जाता है ।

संग्रहणी में—फल यथा, आम, खरबूजा इसके पथ्य हैं ।

रक्त-न्यूनता में—खजूर ।

दूध का पाचन करने के लिये उसे निम्न प्रकार से संस्कृत करके भी देते हैं-

(१) सोंठ, मुनक्का, खाँड़, घी इनको दूध में उबालकर पीछे से शहद मिलाकर देने से, शोष, तृषा नष्ट होती हैं ।

(२) द्राक्षा, खरैटी-बीज, मुलहट्टी, कूठ, छोटी पिप्पली, चन्दन इनके काढ़े में या इनको दूध में डालकर उबालने पर छानकर काम में लाना चाहिये ।

(३) लघु पञ्चमूल से संस्कृत दूध पीने से कास, श्वास नष्ट होता है।

(४) एरण्ड-तैल या एरण्ड-मूल के काढ़े के साथ लेने से शोथ, नष्ट होती है ।

(५) धारोष्ण दुग्ध शक्ति-वर्द्धक, पुष्टिकारक है।

(६) शक्कर और पीपल के योग से दूध रसायन गुण करता है।

(७) सोंठ, नागकेशर या केशर, बादाम, शक्कर दूध में डालकर गरम करके पीने से रति-जन्य क्षीणता नष्ट होती है।

चिकित्सा-संकेत

१—आयुर्वेद में दो या दो से अधिक दवाइयों के संयोग से एक प्रयोग बनता है। इस प्रयोग में व्यवहार में आनेवाली दवाइयों के गुण आदि का सम्यक् प्रकार से ज्ञान हो तो उत्तम है। क्योंकि कई प्रयोग इस प्रकार के हैं, जिनकी मात्रा अत्यधिक कर रक्खी है; परन्तु वे इतना लाभ नहीं करते। यथा, शृंगाराभ्र— इसके उपयोग से हजारों रमणियों के साथ रमण कर सकता है। परन्तु इसमें कहीं इतना लाभ नहीं होता। "चन्द्रामृत" खाँसी की एक उत्कृष्ट औषधि है; परन्तु शास्त्र में इसकी कुछ भी प्रशंसा नहीं है। अतः योग के घटकों के गुण और शक्ति को देखकर प्रयोग चुनना चाहिये।

२—कई प्रयोगों के योग प्रायः परस्पर मिलते हैं, उनमें केवल एक या दो औषधि का भेद होता है। इतने से नाम-भेद किया गया है। यदि इन दोनों योगों को अथवा इस प्रकार के योगों की परस्पर तुलना करके एक योग बना लिया जाय, तो वह कई रोगों में लाभ दे सकता है।

३—शास्त्र में लिखा है कि बाकुची और काले तिल के खाने से कुष्ट-रोग (वात-रक्त) नष्ट हो जाता है। इस प्रयोग में बाकुची रक्त-शोधक और तिल वायु-नाशक हैं। इसी प्रकार परवल, कुटकी, गिलोय, त्रिफला, चिरायता इनके काढ़े के पीने से दाह-युक्त वात-रक्त नष्ट होता है। इनमें परवल, आदि पदार्थ, पित्त और वायु-नाशक हैं।

इस प्रकार बुद्धि से रोग-नाशक औषधि को चुनकर फिर उसके सहयोगी दो-तीन औषधियाँ मिला देनी चाहियें, जिससे औषधि का गुण बढ़ जाय। यदि मुख्य औषधि में कोई अवगुण हो, (यथा कड़वी हो) तो उसको दूर करने के लिये और औषधि भी मिला देनी चाहिये। और फिर को उचित अनुपान के साथ देनी चाहिये।

चरकोक्त महाकषाय

१. यौवन-स्थापक—गिलोय, हरड, आँवला, रास्ना, शतावरी, शालपर्णी, पुनर्नवा, मण्डूकपर्णी।

२. गर्भच्युति-निवारक—ब्राह्मी, दूर्वा, आमलकी, हरड़, कटुकी, बला और प्रियंगु।

३. रक्त-शोधक—मधु, मुलहट्ठी, केशर, मोचरस, मिट्टी घड़े की, लोध्र, गेरू, शर्करा।

४. शूल-प्रशमक—पिप्पली, पिप्पली-मूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, कालीमिर्च, अजवायन, जीरा।

५. अंग मर्द-नाशक—शालपर्णी, पृश्निपर्णी, कटेरी, एरण्ड-मूल, चन्दन, नेत्रबाला, इलायची, मुलहट्ठी।

६. उदर्द-रोगनाशक—खैर, बेर, पियाल, सप्तपर्ण, अर्जुन।

७. शीत-प्रशमक—तगर, अगर, धनिया, सोंठ, अजवायन, बच, कटेरी, अग्निमन्थ, सोनापाठा, पिप्पली।

८. दाह-प्रशमक—चन्दन, काश्मरी, मुलहट्ठी, चीनी, नीला कमल, नेत्रबाला, सारिवा, गिलोय, हीवेर।

९. श्रमहर—किशमिश, खजूर, पियाल, बेर, अनार, फालसा, गन्ना, जौ, साठी के चावल।

१०. ज्वर-नाशक—अग्निमन्थ, बिल्व, सोनापाठ, पाठा, गम्भारी, कटेरी, छोटी कटेरी, गोखरू।

११. श्वासहर—कपूर-कचरी, कूठ, अम्लवेतस, इलायची, हींग, अगरु, तुलसी, शंख-पुष्पी।

१२. कासहर—किशमिश, हरड़, पिप्पली, आँवला, धमासा, काकड़ाशृङ्गी, कटेरी।

१३ मूत्र विरेचनीय—गोखरू, पाषाण, इक्षु, भेद, शर, कुश, गन्ना गिलोय।

१४. मूत्र विशोधक—कमल, स्थल पद्म, मुलहट्ठी, कसेरू, धाय फूल, दूर्वा।

१५. मूत्र-संग्राहक—जामुन, आम, पिलखन, बड़, गूलर, पीपल, खैर।

१६. पुरीष विरजनीय—जामुनछाल, कौंच, मुलहट्ठी, मोचरस, तिल।

१७ हिक्का-निवारक—शठी, कूट, बेर की गुठली, कटेरी, हरड़, धमासा, काकड़ा-शृङ्गी।

१८ तृष्णानाशक—सोंठ, धमासा, मोथा, पित्तपापड़ा, लालचन्दन, चिरायता, गिलोय, धनिया।

१९ वमन-निवारक—जामुन और आम के पत्ते, बिजौरा नीबू, अनार, जौ, मुलहट्ठी, नेत्रवाला।

२०. शुक्र-शोधक—कुष्ठ, एलावालुक, कटफल, समुद्रफेन, कदम्ब की गोंद, गन्ना, उशीर।

२१ शुक्र-वर्द्धक—जीवक, मेदा, जटामांसी, काकड़ा-शृङ्गी, मुँग-पर्णी, माषपर्णी।

२२. स्तन्य-शोधक—पाठा, सोंठ, देवदारू, मोथा, मुर्वा-गिलोय, इन्द्र-यव, चिरायता, सारिवा, कुटकी।

२३ दुग्ध-वर्द्धक—उशीर, धान्य, साठी, गन्ना, दर्भ, कुश, मोथा, गन्धवाला।

२४. विष-नाशक—हरिद्रा, मँजीठ, रास्ना, छोटी इलायची, सारिवा, लाल चन्दन, शिरीष, निर्मली फल।

२५ कृमि-नाशक—सहिजन, कालीमिर्च, विडङ्ग, निर्गुण्डी, अपा-मार्ग, गोखरू, भारंगी।

२६. कण्डू-नाशक—लाल चन्दन, जटामांसी, अमलतास, करञ्ज, नीबू कुटज, सरसों, मुलहट्ठी।

२७. कुष्ठ-नाशक—खैर, हरड़, आँवला, हल्दी, भिलावाँ, सप्तपर्ण, अमलतास, विडङ्ग, जातीपुष्प।

२८. अर्श-नाशक—कुटज, बिल्व, चित्रक, सोंठ, अतीस, हरड़, दुरालभा, वच, दारुहरिद्रा।

२९. रुचिकारक—आम, करञ्ज, आमातक, अम्लवेतस, बेर, अनार, बिजौरा, नीबू।

३० स्वर-वर्द्धक—अनन्तमूल, गन्ने की जड़, मुलहट्ठी, पिप्पली, किशमिश, विदारीकन्द, कायफल।

३१ वर्णकारक—लाल चन्दन, पद्माख, नेत्रवाला, मुलहट्ठी, सारिवा, दूर्वा, शर्करा।

३२. बलकारक—कौंच, अश्वगन्धा, मुलहट्ठी, शालपर्णी, खरैटी, कुटकी ।

३३. अग्नि-दीपक—पिप्पली, पिप्पलीमूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, अम्लवेतस, मरिच, अजवायन, हींग ।

३४. अस्थि-संयोजक—मुलहट्ठी, गिलोय, पृश्निपर्णी, पान, मोचरस, धाय के फूल, लोध्र, प्रियंगु, कायफल ।

३५. भेदनीय—निशोथ, एरण्ड, दन्ती, जमालगोटा, चित्रक, करञ्ज, कुटकी, सनाय ।

३६. लेखनीय—मोथा, कूट, हल्दी, वच, अतीस, कुटकी, चित्रक, करञ्ज ।

३७. भोजन में अनिच्छा को नष्ट करनेवाली औषधियाँ—सोंठ, चव्य, चित्रक, विडङ्ग, गिलोय, वच, मोथा, पटोल ।

सुश्रुत में कहे हुये गण

१. विदारीगण—विदारीकन्द, गोखरू, पृश्निपर्णी, शतावरी, सारिवा, दोनों कटेरी । यह गण पित्त, वायु, गुल्म, शोष, कास और श्वास को नष्ट करता है ।

२. आरग्वधादिगण—अमलतास, मैनफल, कुटज, पाठा, गोखरू, सप्तपर्ण, इन्द्रयव, नीम-छाल, गिलोय, चित्रक और करञ्ज । इसके द्वारा विष, मेह, कुष्ठ, ज्वर, वमन और कण्डू नष्ट होते हैं ।

३. वरुणादिगण—वरुण, सहिजन, मेढ़ाशृङ्गी, करञ्ज, मूर्वा, गम्भारी, पाठा, चित्रक, कुश, कटेरी । कफ मेदो-रोग, शिरःशूल और गुल्म को नष्ट करता है ।

४. वीरतरादिगण—मोथा, गिलोय, कुश, काश, पाषाण-भेद, पाठ, इक्षु-मूल, गोखरू, कमल, वायु-विकार, अश्मरी, शर्करा, मूत्रकृच्छ्र और मूत्राघात को नष्ट करता है ।

५. साल-सारादिगण—साल, असन, खैर, सुपारी, अर्जुन, मेढ़ा-शृङ्गी, लाल-चन्दन, शीशम, शिरीष, भव, करञ्ज, ऊगर, कालीयक, कुष्ठ, मेह, पाण्डु और मेदो-रोग-नाशक है ।

६. रोध्रादिगण—लोध्र, ढाक, अशोक, भारंगी, कायफल, कदम्ब, केला, मेदो-रोग, कफ, योनि-दोष-नाशक है।

७. अर्कादिगण—आक, करंज, रास्ना, भारङ्गी, इंगुदी, कफ, मेदो-रोग, विष, कृमि-नाशक है।

८. सुरसादिगण—तुलसी, गन्धबाला, काली-तुलसी, वायुविडङ्ग, कायफल, निगुण्डी, भारङ्गी, मकोय। यह गण कृमि, प्रतिश्याय, अरुचि, श्वास और कास-नाशक है।

९. पिप्पल्यादिगण—पिप्पली, पिप्पली-मूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, कालीमिर्च, गजपिप्पली, इलायची, अजवायन, इन्द्रजौ, पान, जीरा, सरसों, नीबू, बकायन, हींग, बच, कुटकी। कफ, प्रतिश्याय, वायु, अरुचि, गुल्म और शूल-नाशक है।

१०. वचादिगण—वच, मोथा, अतीस, हरड़, देवदारू, नागकेशर। हल्दी, दारूहल्दी, इन्द्रजौ, मुलहट्ठी, पृश्निपर्णी, इसको हरिद्रादिगण कहते हैं। ये दोनों गण स्तन-दुग्धविशोधक, आमातिसार-नाशक हैं।

११. बृहत्यादिगण—बड़ी कटेरी, छोटी कटेरी, इन्द्रजौ, पाठा, मुलहट्ठी। पित्त, वायु, कफ, अरुचि, मूत्रकृच्छ्र-नाशक है।

१२. काकोल्यादिगण—काकोली, गिलोय, काकड़ा-शृंगी, वंशलोचन, पद्माख, किशमिश, मुलहट्ठी। रक्तपित्त और वायु-नाशक, वृंहण वृष्य और स्तन्य-वर्द्धक है।

१३. ऊषकादिगण—सैंधव, शिलाजीत, हीराकसीस, हींग तुत्थ। कफ, मेदो-रोग, अश्मरी, शर्करा, मूत्रकृच्छ्र और गुल्म-नाशक है।

१४. सारिवादिगण—सारिवा, मुलहट्ठी, लाल चन्दन, पद्माख, गम्भारी छाल, खशीर। पिपासा, रक्त-पित्त, पित्त-ज्वर, तथा दाह-नाशक है।

१५. प्रियंगु और अम्बष्ठादिगण—प्रियंगु, मंजीठ, धाय के फूल, नागकेशर, लाल चन्दन, मोचरस, रसाञ्जन (रसौत), पद्माख, सारिवा। पान, धाय के फूल, मुलहट्ठी, सोना, बिल्व, लोध्र, ढाक, पद्मकेशर। ये दोनों गण पक्वातिसार-नाशक। पित्त-नाशक और भग्न-संयोजक हैं।

१६. न्यग्रोधादिगण—वट, गूलर, पीपल, पिलखन, मुलहट्ठी, आम-अर्जुन, जामुन, तेजपत्र, जमोय, कुटकी, कदम्ब, बेंत, बेर, शल्लकी, लोध्र,

डाक, महाशृङ्गी। अण-संग्रहणी-नाशक, भग्न-संधानकर, रक्त, पित्त, दाह और योनि-दोष-नाशक है।

१७. **गुडूच्यादिगण**- गिलोय, नीमछाल, धनिया, चन्दन, पद्माख, इसके सेवन से ज्वर, वमन, पिपासा नष्ट होती है।

१८. **मुस्तादिगण**- मोथा, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, हरड़ आँवला, बहेड़ा, कूठ, स्वर्णक्षीरी, वच, पान, कुटकी, अतीस, इलायची, चित्रक। यह गण श्लेष्म-नाशक, योनि-दोष-हारक, स्तन्य-शोधक एवं पाचक है।

१९. **आमलक्यादिगण**--आमलकी, हरड़, पिप्पली, चित्रक। यह गण सब प्रकार के ज्वरों को नष्ट करता है। आँखों के लिये हितकर, दीपनीय, बलकारक तथा कफ-नाशक है।

२०. **लाक्षादिगण**—लाख, कुटज, कायफल, करवीर, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, नीबू, सप्तपर्ण, मालती-चमेली। यह गण कफ और पित्त की पीड़ा का नाश करता है, एवं दुष्ट व्रण-शोधक है।

प्रकरण दसवाँ

पथ्यापथ्य

मिथ्या आहार-विहार के कारण रोग उत्पन्न होते हैं। यदि इस मिथ्या आहार-विहार को सुधार दिया जाय, तो रोग स्वयं भी शांत हो जाता है। अजीर्णावस्था में भोजन न करने से अजीर्ण-रोग हट जाता है। इसी प्रकार कई रोगों में 'पथ्य' का सेवन करने से रोग भी शांत हो जाता है अथवा रोग के हटने में सहायता होती है। कई बार यह पथ्य रोग के अनुकूल हो सकता है; परन्तु रोग में दी जानेवाली औषधि के अनुकूल नहीं होता। इसलिये दोनों बातों का ध्यान रखना आवश्यक होता है।

वैद्यक-शास्त्रियों ने अपने अनुभव से तथा अनुमान से यह निश्चित कर दिया है कि अमुक पदार्थ अमुक-अमुक रोगों में पथ्य है और अमुक-अमुक पदार्थ अमुक-अमुक रोगों में अपथ्य है। इसी प्रकार अमुक बलवान औषधि के सेवन-काल में अमुक खान-पान अनुकूल आता है, इस तरह का प्रतिकूल आता है. इसको जानना आवश्यक है। पथ्य और अपथ्य के नियम समानगति से सब लोगों के लिये एक समान नहीं हैं। जो आहार-विहार एक मनुष्य के लिये अपथ्य है, वही दूसरे मनुष्य के लिये पथ्य होता है। उदाहरण के लिये संयुक्त-प्रांत-वासियों के लिये चावल ज्वर में पथ्य गिना जाता है और रोटी अपथ्य मानी जाती है; परन्तु बङ्गाल में इससे विपरीत है, वहाँ रोटी पथ्य है और चावल अपथ्य है। इसलिये अभ्यास, देश-प्रथा आदि का भी विचार करना पड़ता है। उदाहरण के लिये—

१—जो मनुष्य सदा गरिष्ठ या कुपथ्य भोजन खाते हैं, वे यदि एकदम अपने इस भोजन को छोड़कर दूसरी हल्की, पथ्य ख़ुराक का उपयोग करने लगें, तो उनको यह ख़ुराक सहसा पथ्य नहीं होगी। इसके लिये उनको चाहिये कि शनैः-शनैः भोजन के अन्दर परिवर्तन करें।

२—रोगी का भोजन रुचिकारक और इतना होना चाहिये कि वह उसको सुगमता से पचा सके। रोगी को एकबार बहुत-सा भोजन देने की अपेक्षा बार-बार थोड़ा देना चाहिये। यदि रोगी का चित्त एक प्रकार के भोजन से उतर जाय, तब उसी गुण का रस-भेद करके, दूसरा भोजन देना चाहिये। उसकी पाचन-शक्ति का ध्यान सदा रखना चाहिये। आग्रह करके, या रोगी की इच्छानुसार, बिना चिकित्सक की आज्ञा के, उसको भोजन नहीं देना चाहिये।

३—यदि दो-तीन रोग या उपद्रव साथ में हों, तो ऐसा भोजन देना चाहिये, जो तीनों में पथ्य हो। यदि मनुष्य अपने शरीर, अपनी प्रकृति, अपने सात्म्य को देखकर यह भोजन (यह आहार-विहार मेरे लिये) अनुकूल है इत्यादि बातों को सोचकर ले, तो वह सदा नीरोग रहता है और दीर्घायु प्राप्त करता है। मनुष्य को सब अवस्थाओं में, नीरोगी और रोगी अवस्था में, सदा अपनी प्रकृति का ध्यान रखना चाहिये।

सामान्य पथ्य—प्रायः सब रोगों में उपयोगी रहता है। जिन रोगों में विशेष पथ्य का ध्यान न रक्खा जा सके, उन रोगों में भी कम-से-कम इस पथ्य को पालना चाहिये। लंघन और मृदु-विरेचन ये दोनों वस्तुयें सब रोगों में पथ्य हैं। लंघन शरीर के बल को देखकर करना चाहिये और भोजन यथा-सम्भव द्रव, सुपच और शक्तिदायक होना चाहिये। रोगी मनुष्य को स्वस्थ और मेहनती पुरुष की अपेक्षा शक्ति की कम आवश्यकता होती है। उसको इतनी ही शक्ति साधारणतः चाहिये, जिससे रोग के कारण शरीर में होती हुई क्षति पूर्ण हो जाय और शरीर की जीवन-शक्ति धीरे-धीरे बढ़ती जाय। इसके लिये ऐसी ख़ुराक चुननी चाहिये, जिसकी मात्रा तो थोड़ी हो, परन्तु शक्ति अधिक मिले और पचने में सुगम रहे। अर्थात इस शरीर-रूपी यन्त्र में इस प्रकार का कोयला डाला जाय, जो जल्दी जल जाय, राशि में थोड़ा हो, परन्तु शक्ति अधिक उत्पन्न करे। यदि इस प्रकार न हो तो राशि को बहुत बार करके बढ़ाना चाहिये। अर्थात पच जाने पर फिर दे देना चाहिये। बिना पचा भोजन शरीर को शक्ति भी नहीं देता। जिस प्रकार बिना जली लकड़ी या कोयला शक्ति को उत्पन्न नहीं करता।

अन्न—पचने में हल्का अन्न, यथा—पुराना चावल, अथवा कणकी, लाल चावल, साठी चावलों की काँजी, मूँग की पतली दाल या पानी अरहर की दाल का पानी, चने या मटर का पानी, साबूदाना पानी या दूध में पकाया हुआ; गेहूँ का हलका फुलका बिना चुपड़ा।

पानी—ज्वर, मन्दाग्नि तथा कफ आदि रोगों में गरम पानी, अथवा गरम [illegible] ठण्डा किया हुआ, या पानी के अन्दर गरम लोहा बुझाकर देना चाहिये। [illegible] ड पानी या बरसात का पानी अथवा प्रातःकाल उबालकर ठण्डा किया हुआ पानी सायंकाल तक काम दे सकता है। पानी में पोदीना, छोटी इलायची के बीज अथवा, नागरमोथा, पित्तपापड़ा, नेत्रवाला, धमासा, लालचन्दन इन पाँच चीजों को डालकर उबालने से भी पानी को काम में ला सकते हैं। गरम करके ठण्डा किया हुआ पानी पचने में सुगम रहता है, वायु और कफ-नाशक है। स्वाद में मधुर कम लगने से अधिक पिया नहीं जाता। अधिक ठण्डा नहीं रहता। रात को उबालकर ठण्डा किया हुआ पानी प्रातः नहीं देना चाहिये। बासा पानी या दो बार उबालकर पानी काम में नहीं लाना चाहिये। साधारण रोगों में कुएँ का ताजा पानी काम दे सकता है; क्योंकि यह विशेष ठण्डा या गरम नहीं होता। पानी का संचय यथा-सम्भव ताम्र के स्वच्छ बर्त्तन में करना चाहिये। पानी को सदा वस्त्र से छानकर काम में लाना चाहिये।

मसाला—रोगी के लिये शाक, भाजी या दाल में डालने के लिये मसाला बहुत ही सादा होना चाहिये। सोंठ, अदरक, धनिया, जीरा, काला जीरा, दालचीनी, लौंग, कालीमिर्च, नागकेशर, सौंफ, इलायची आदि सब वस्तुयें रोगी की इच्छानुसार और रोग के अनुसार डालनी चाहिये। लाल-मिर्च का उपयोग सर्वथा नहीं करना चाहिये, विशेषतः आंत्र या आमाशय के रोगों में। यदि करना ही आवश्यक हो, तो हरी मिर्च का उपयोग किया जा सकता है।

शाक--परवल, करेला, चौलाई, दूधी, नर्म ककड़ी, भिण्डी, तुरई, सूरन, केला आदि शाक काम में लाये जा सकते हैं। शाकों को बनाने के लिये घी तथा जीरे में छौंकना चाहिये। तीक्ष्णता के लिये कालीमिर्च डालनी चाहिये। अदरक और हरी मिर्च या सबूत मिर्च को छौंक में डाल देना चाहिये। हींग का बघार भी उत्तम है।

परचूरण—खटाई में तीन साल पुरानी इमली, या कोलम परन्तु खटाई सबसे थोड़ी चाहिये। अमचूर की खटाई कम बरतनी चाहिये। आँवले की खटाई का उपयोग हो, तो सबसे उत्तम। नमकों में सैन्धानमक सबसे उत्तम। मिठाई में शक्कर (चीनी) उत्तम है।

फल--मीठा अनार, अंगूर, संतरा, मौसम्बी उत्तम हैं। यदि इनका रस दिया जाय, तो और भी उत्तम है।

सूखा मेवा—काली द्राक्षा, मुनक्के के बीज निकालकर उनपर नमक लगाकर, आग पर सेंककर देना चाहिये।

घी-दूध—बकरी का, गाय का दूध सबसे उत्तम है। और यदि यह भी दूध भारी रहे, तब इसमें चौगुना पानी डालकर उबालना चाहिये। जब पानी जल जाय, तब उसको देना चाहिये। गाय का घी, मक्खन, गाय के दूध के मीठे दही में चौगुना पानी मिलाकर बिलोना चाहिये और फिर मक्खन उतारकर छाछ देनी चाहिये। यह छाछ, संग्रहणी, अम्लपित्त, सूतिका-रोग, क्षय, गुल्म में लाभदायक है।

विहार--प्रातःकाल उठकर मल-मूत्र करना चाहिये। ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करना चाहिये। दिन में सोना नहीं चाहिये। यदि सम्भव हो, तो रोगी के लिये दिन में दूसरी चारपाई और दूसरा कमरा रखना चाहिये। रात्रि को दूसरी चारपाई। उसके वस्त्र शुद्ध रखने चाहिये। यदि सम्भव हो, तो स्नान भी कराना चाहिये। रोगी के विश्राम की ओर विशेष ध्यान रखना चाहिये।

रोगी को चाहिये कि वह चिकित्सक के निर्देशों के अनुसार कार्य करे, घबराये नहीं, अपनी शिकायतों को छिपाये नहीं और सदा पवित्र, शुद्ध रहे।

सामान्य अपथ्य--कई पदार्थ स्वस्थ मनुष्यों के लिये भी अपथ्य हैं। फिर यदि वे पदार्थ रोगी मनुष्यों के लिये अपथ्य हों, तो इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं है। प्रायः करके जो पदार्थ या आहार-विहार रोगियों के अनुकूल नहीं होते, उनको नीचे दिया जाता है।

(१) **पित्त को बढ़ानेवाले गरम पदार्थ**—दही, खट्टी छाछ, नया गुड़, सब प्रकार का तेल, तेल में बनी चीजें, सेव, पकौड़ी, साम्भर नमक, हींग, राई, बैंगन, गाजर, करेला, पपीता, कुलत्थी, चौंवड़ा, शहद, खिचड़ी, दही, बासी अन्न, हवा, धूप में घूमना, मेहनत, जागना, मैथुन, क्रोध, उपवास, प्यास को रोकना, भूख को मारना।

(२) **वायु को बढ़ानेवाले और पचने में भारी पदार्थ**—चना, मोठ, बाजरा, मक्की, मसूर, सब प्रकार की फलियाँ, मुंगौड़ी, सिंगोरे,

मसाले, गरम चटनी, लड्डू, घी या तेल में तले पदार्थ, पौवा; गुवार, सेम का शाक, बासी या बिगड़ा हुआ अन्न, नया धान्य, नया पानी, अजीर्ण में भोजन, मेहनत, मैथुन, चिन्ता, शोक आदि।

(३) **कफ को बढ़ानेवाले पदार्थ**—पका केला, कुष्मांड, दही, दूध से बनी चीजें—(रबड़ी, पेड़ा, कलाकन्द, खीर आदि); नया धान्य, खोपरा, मिट्टी के बर्तन का पानी, बरसात का नया पानी, नई इमली, कच्चा तथा खट्टा आम, बेर, करौंदा, कच्चा आँवला, अमरूद, अंजीर, ककड़ी, कलिंगड़ा, बादाम, चिरौंजी, पिस्ता, तिल, ठंडे पानी का स्नान, हवा या ठंडे स्थान में सोना, दिन में सोना—इन सब बातों से कफ बढ़ता है। पीछे से ज्वर, खाँसी, क्षय, दमा आदि उपद्रव होते हैं।

रोगी अवस्था में पथ्यापथ्य—नीरोगी पुरुष के उपयोगी पथ्य-अपथ्य का विचार पीछे सूत्र-स्थान में किया जा चुका है। यहाँ पर प्रत्येक रोग के अनुसार विशेष पथ्य-अपथ्य दिया जाता है। जिन रोगों का इस स्थान पर विचार नहीं किया गया, उनमें साधारण पथ्य दिया जा सकता है।

ज्वर में—साधारण ज्वर में हलका अन्न, यथा मूँग की दाल का पानी, पुराने चावल, अरहर की दाल, साबूदाने की काँजी, पुराना गुड़, पित्त-शमक पदार्थ—परवल, गाय और बकरी का दूध, यवोदक, शक्कर, गीली तथा सूखी किशमिश, फलों के रस, मीठा अनार, चूक की भाजी, दूधी, नारियल का पानी उत्तम है। यदि रोगी को अरुचि हो, तो काली किशमिश घी में सेककर नमक लगाकर देनी चाहिये। पसीना आये, इस प्रकार का उपाय करना चाहिये। कागज़ी नीबू का शर्बत, मोसम्बी उत्तम है। गरम पानी में राई रखकर पाँव रखवाने से पसीना आ जाता है। रोगी के पास बहुत आदमियों को नहीं रखना चाहिये। ज्वर में अपथ्य—मानसिक श्रम, स्नान, मैथुन, व्यायाम, धूप, चलना-फिरना, तमाकू पीना या खाना ये सब अपथ्य हैं।

जीर्ण-ज्वर में, प्लीहा बढ़ने में, पाण्डु, कामला, मन्दाग्नि, मस्तिष्क की निर्बलता आदि रोगों में पथ्य—यदि इन रोगों के साथ ज्वर भी हो, तो ज्वर का पथ्य काम में लाना चाहिये। हलका पथ्य, सोंठ, काली-मिर्च आदि से संस्कृत दूध, तुरन्त बनी मीठी छाछ, गाय या बकरी का

दूध, मूँग की दाल का जूस, परवल, तूरी, चौलाई की भाजी, शाक, अमरूद, साठी चावल, अंगूर, अनार, आम, मेव आदि फल।

पाचन-क्रिया के विकृत होने से उत्पन्न रोगों में—यथा अतिसार, रक्त या आम अतिसार में, मरोड़ा, संग्रहणी, अजीर्ण, कॉलरा, उल्टी और कृमि-रोग में पथ्य—हलका अन्न, पुराने चावलों का भात, चावलों का माँड़, पुराने मूँग की दाल, छाछ, दही, बकरी या गाय का दूध, मक्खन, दही की मलाई, केला, कटहल, केले के फूल की भाजी, सिम्बल के फूल या फल की भाजी, बैंगन, बेल का फल, जामुन, मीठे बेर, अनार।

रक्त-स्राववाले रोग—अर्श (बवासीर), रक्तपित्त, रक्त-प्रदर, मलमूत्र में दाह, गरम औषधियों के खाने से उत्पन्न गरमी में या दाह में, मस्तिष्क की उष्णता, मुँह की गरमी तथा विष-रोग (विष के खाने से उत्पन्न रोग।) इन सबका सामान्य पथ्य—यदि हजम हो सके, तो गेहूँ की रोटी, गेहूँ या जौ की दलिया, हलवा, पुराना चावल, मूँग की दाल, पत्तों के शाक, परवल, केला, किशमिश, पेठा, पुनर्नवा, गन्ने का रस, दूध, दही, आँवले की चटनी, चौलाई की भाजी, घी, मक्खन, ताजी मीठी छाछ, पतले (नरम) पदार्थ, मीठा अनार, सिम्बल के फूलों की या फलों की भाजी, मीठा पका हुआ आम, हरा धनिया, सेंधानमक, शरबत, अंगूर।

अपथ्य—बाजरा, गुड़, खट्टे पदार्थ, तीखे पदार्थ, मिरचें, गरम पदार्थ, मूली, बैंगन, राई, हींग, लहसुन, अदरक, कालीमिर्च, धूपताप, स्त्री सेवन, तम्बाकू, सुपारी आदि पदार्थ नहीं खाने चाहियें।

छाती के कफवाले रोग—कफवाली खाँसी, कफ के साथ दम, कफ, क्षय, हिचकी आदि में पथ्य—इन रोगों में बकरी का दूध, गाय का दूध सर्वोत्तम है।

सूखी खाँसी तथा उरःक्षत-क्षय—(छाती में जख्म होने से कफ के साथ मिश्रित रक्त खाँसी के द्वारा आये) इन रोगों में स्वादु, सौम्य, ठण्डे पदार्थ विशेषतः खाने चाहियें। मुख्य पथ्य बकरी या गाय का दूध, घी, मीठा दही, ताजा मक्खन, आँवले या सेव का मुरब्बा, ताजा घी।

अपथ्य—गरम पदार्थ, खट्टी चीजें, खोपरा, इमली, तली हुई चीजें, तेल, ठण्डी हवा, सरदी, धूल, सेक, ताप, जागना, बहुत परिश्रम, ऊँचे बोलना या पढ़ना, ऊँचे चढ़ना आदि आहार-विहार का सेवन न करे।

मस्तिष्क-सम्बन्धी रोग—यथा अपस्मार, उन्माद, हिस्टीरिया, मृगी, मूर्च्छा, भ्रम, अर्धांग, मस्तिष्क-रोग, मति-विकार तथा शाह आदि रोगों में पथ्यापथ्य निम्न प्रकार से रखना चाहिये।

अभी के पथ्य यव, गेहूँ, चावल, घी अधिक मात्रा में, दाल मूँग, की, उड़द की या अरहर की, दूध, ताजी मीठी छाछ, परवल। पेठे का शाक, मिठाई, पुनर्नवा, माखन, द्राक्षा, अंगूर, विरेचन के लिये एरण्ड-तैल, ब्राह्मी का रस।

लेप- बच, चन्दन, नेत्रवाला, मालरशृङ्ग का मस्तिष्क के ऊपर लेप, सूखे आँवले का लेप, बच, कपूर, सुगन्धित फूल या अतर सूँघना, मालाओं का पहनना, स्नान करते समय सिर पर सुगन्धित ठण्डा पानी, शेष शरीर पर थोड़ा गरम पानी डालना चाहिये। रोगी के साथ प्रेम और सहानुभूति रखनी चाहिये। परमात्मा की भक्ति में मन लगाना चाहिये। सदा उत्तम नीति का पालन करना चाहिये। उत्तम धार्मिक पुस्तकें पढ़ने देनी चाहिये। सदा उसके मन का रञ्जन करना चाहिये। वह जो कुछ माँगे या कहे, उसको स्वीकार करना चाहिये। खुली या ठण्डी हवा में रखना चाहिये। एकान्त में रखना अच्छा नहीं। अपस्मार रोगी के पाँव में रात्रि के समय तेल लगाकर गरम पानी का सेक करना चाहिये। छोटे बालकों को यदि अपस्मार-रोग हो, तो उनको कमर तक गरम पानी में बिठाना चाहिये। अर्धाङ्ग वायु के रोगियों को चाहिये कि वे शरीर पर गरम वस्त्र पहनकर रक्खें। अंगों पर तेल लगायें, मर्दन करें और थोड़ा सेक भी लेना चाहिये।

धनुर्वात आदि तीव्र वात-रोगों में—रोगी को कठिन पदार्थ कभी खाने को नहीं देने चाहिये। इसलिये गेहूँ के दलिये को दूध में पकाकर उसमें घी डालकर उसको खाने के लिये देना चाहिये। लहसुन उत्तम है।

आमवात आदि वात रोगों में—गेहूँ, लाल चावल, परवल, बैंगन, लहसुन, अनार, पक्का आम, एरण्ड-तैल उत्तम हैं। दाल इस रोग में एकदम अपथ्य है। बहुत इच्छा हो, तो मूँग की दाल ले सकता है।

मेदो-रोग में—हलका कम शक्तिदायक अन्न चावल, कोद्रव, दूध, छाछ, परवल, पुराना केला, गिलोय की भाजी।

पेट के विकार में—उदर-शूल, वायु का गोला, प्लीहा-वृद्धि, यकृत की गाँठ, उदर के अन्दर की शोथ (विद्रधि), नल की वायु, पेट फूलना (अफारा), अण्ड-वृद्धि आदि रोगों में—अन्न में एरण्ड-तैल का मोइ डालकर बनाई हुई गेहूँ की रोटी, पुराना चावल, दूध, छाछ, उबालकर ठण्डा किया हुआ पानी नीबू, प्याज, परवल, बैंगन, कच्चा केला, सूखा अनार, आर्द्रक आदि।

रक्त-विकार में त्वचा के रोगों में—व्रण, भगन्दर, अर्बुद, ग्रन्थि, गण्डमाला, गलगण्ड, कान पकने में, उपदंश, वात-रक्त, विसर्प, दद्रु आदि रोगों में पथ्य—गेहूँ की रोटी, घी, उबालकर ठण्डा किया हुआ पानी, दूध, पुराने चावल, मूँग या अरहर की दाल, परवल, भिन्डी, केला, सैंधानमक आदि का सेवन करना चाहिये।

अपथ्य मेहनत का काम, स्त्री-सेवन, बहुत बोलना, दिन में सोना आदि बातों का त्याग करना चाहिये।

प्रमेह, प्रदर तथा मधु-मेह में—यथासम्भव गेहूँ, जौ, त्रिफला से भिगोकर, पुराने चावल का सेवन करना चाहिये। स्नान, परिश्रम, शरीर-शुद्धि इन सबका सेवन करना चाहिये।

गर्भिणी का रोग—सामान्य पथ्य पालना, सामान्य अपथ्य का एवं मद पदार्थों का त्याग करना चाहिये; अन्यथा गर्भ को हानि होगी।

प्रसूता का पथ्यापथ्य—प्रसववाली स्त्री का प्रसव होने के पीछे एक या दो समय स्त्री को उपवास करने की प्रथा बहुत स्थानों पर चलती है। कई स्थानों पर गेहूँ की रबड़ी दलिया-काँजी, दी जाती है। डाक्टरी मत से दूध में बनी काँजी, साबूदाना दिया जाता है। कई स्थानों पर हलवे में सूध घी डालकर दिया जाता है। साधारणतः प्रसूता के स्वास्थ्य को ध्यान में रखकर भोजन निश्चय करना चाहिये। निर्बल स्वास्थ्य की निर्बल गठनवाली स्त्रियों को सहसा हलवा नहीं पच सकता। यदि प्रसूता का शरीर सह सके, तो एक या दो समय लंघन करवाकर घृत का उचित उपयोग करना चाहिये। पानी उबालकर ठंडा किया हुआ पीना चाहिये। बिना उबालकर दिया हुआ ठंडा पानी वायु-रोग करता है।

ताप—ताप का सेंक शरीर पर देना चाहिये, परन्तु शिर पर नहीं। सर्दी की या वर्षा-ऋतु में सेंक भली प्रकार देना चाहिये। गरमी में ताप देने की जरूरत नहीं। रक्त-स्राव, मस्तिष्क में दर्द, भ्रम, आंख-रोग, या गरमी आदि रोग हो, तो सेंक बहुत कम देना चाहिये। थोड़े दिनों पीछे शक्ति तथा दूध बढ़ानेवाले पदार्थ देने चाहियें। गेहूँ, ज्वार, चावल, उड़द, सेंकी हुई मूँग की दाल, घी, खाँड़, भिंडी, पुराना कद्दू, परवल, तूर्री, प्याज और साधारण मसाला दिया जा सकता है। प्रसूता स्त्री को ज्वर, खाँसी, अतिसार आदि रोग हों, तो रोग के अनुसार पथ्य करना चाहिये। प्रसूता को यदि ज्वर आदि रोग हो, तो दूध बच्चे को नहीं देना चाहिये; क्योंकि इससे बालक तथा माता दोनों को हानि है। ज्वर आदि रोगों से ग्रसित माता के दूध से बच्चे को भी रोग होते हैं।

बाल-रोग—दूध पीनेवाले बालकों को यदि विकार हो, तो उस रोग का पथ्य माता को पालना चाहिये। यदि बच्चे को गाय का दूध देना हो, तो यदि वह पतला (बकरी के दूध के समान) न हो, तो उसमें पानी डालकर पतला करके, उसे उबालकर हल्का बनाना चाहिये और फिर बच्चे को देना चाहिये। बकरी का दूध बच्चे को जल्दी पच जाता है। यदि बच्चे को दूध न पचे, तो उसमें छोटी पिप्पली उबालकर देनी चाहिये, या सौंफ का पानी देना चाहिये। बच्चों के लिये उपवास, गरम पानी बहुत उत्तम पथ्य है। चूने का नितरा हुआ स्वच्छ पानी दूध के साथ मिलाकर या स्वतन्त्ररूप से भी देना उत्तम है, विशेषतः जब बच्चा दूध गिराता हो, या उसे फुटकियाँ मल में आरही हों।

पुष्टिकारक-पथ्य—शरीर में किसी प्रकार का रोग न हो, खाया हुआ भोजन भली प्रकार पचता हो, मल साफ होता हो, साधारण मेहनत का कार्य सुगमता से हो सकता हो, तो यदि इस प्रकार के मनुष्य शक्ति बढ़ाने के लिये औषधि सेवन करें, तो उनको चाहिये कि वे औषधि या पथ्य की मात्रा धीरे-धीरे बढ़ायें। दूध यदि पचता न हो, तो उसको थोड़ा-थोड़ा दूसरे पदार्थों के साथ लेना चाहिये। इसी प्रकार दूध की अन्य वस्तुयें—बरफी, पेड़ा, दूध-पाक आदि; दही के पदार्थ—छाछ, घी, खाँड़; गेहूँ की बनी चीजें—रोटी, पूड़ी, लड्डू आदि भी उचित मात्रा में सेवन करने चाहिये। सूखे मेवे—किशमिश, पिस्ता, बादाम, पक्के आम खाने चाहियें।

यदि कोई औषधि या पाक सेवन करना हो, तो उसको देख लेना चाहिये कि वह उत्तम विधि से बना हो, उसके खाने से शरीर में किसी प्रकार का विकार नहीं होना चाहिये। औषधि खाकर पर्याप्त मेहनत भी करनी चाहिये, जिससे वह शरीर में लीन होकर रग-रग में पहुँच जाय, एक ही स्थान पर इकट्ठी न रहे। इस प्रकार पुष्टिकारक औषधि के खाने से पूर्व शरीर की शुद्धि आवश्यक है। जिस प्रकार धुले हुये कपड़े पर रंग अच्छा चढ़ता है, उसी प्रकार नीरोगी, स्वस्थ शरीर पर औषधि भी अपना प्रभाव रखती है।

व्रण-रोगी —जौ, साठी, गेहूँ, पक्षियों का मांस, कटु तैल, घी, शहद, मूँग, अरहर।

अपथ्य—नूतन धान्य, उड़द, कुलत्थी, शीतल जल, दधि, छाछ, गुड़, मद्य, पत्रशाक, विदाही, देर में पचनेवाले भोजन, खट्टी चीजें, मैथुन, व्यायाम, ऊँचे पढ़ना, घूमना, दिन में सोना, स्त्री-दर्शन, रात्रि में जागना, अजीर्ण, भय, क्रोध, धूप, वर्षा ये सब अपथ्य हैं।

दूसरा खण्ड

औषधियाँ

आर्य-चिकित्सा में जो औषधियाँ प्रायः काम में आती हैं, उनका वर्णन यहाँ संक्षेप में किया जाता है। इन औषधियों के परस्पर मिलने से "प्रयोग" बनता है। अतः इन प्रयोगों को समझने के लिये, अथवा उनका विश्लेषण करके गुण-धर्म पहचानने के लिये, अथवा स्वयं प्रयोग निर्माण करने के लिये औषधियों के गुण आदि से परिचय करना आवश्यक है। इस लिये यह प्रकरण लिखा गया है।

यह प्रकरण दो भागों में विभक्त किया गया है। यथा—१ वनस्पति-वर्ग और २—धातु-वर्ग तथा प्राणि-वर्ग की औषधियाँ।

वनस्पति-वर्ग

अकरकरा यह एक प्रकार की लकड़ी बाजार में पंसारियों के यहाँ मिलती है। साधारणतः ३—४ अंगुल लम्बी और अँगूठे जितनी मोटी और भूरे रङ्ग की होती है। इसका स्वाद तीखा और चरपरा होता है। चबाने से जीभ पर चिरचिराहट लगती है। मुँह में रखने से लार (थूक) निकलती है। इसका वृक्ष अफ्रीका के उत्तर में, अलजीरिया तथा मिश्र एवं अरबस्तान देश में मिलता है।

गुण—उष्ण, वातहर, तीक्ष्ण तथा लेखन है। इसका उपयोग प्रायः उच्चारण को शुद्ध और स्पष्ट करने में होता है। अकरकरा को मुँह में रखने से और लार गिरने से मुँह का पक्षाघात आराम होता है। मूत्रल, कफघ्न, आर्त्तवजनक तथा पुरुषत्व देनेवाला है,ऐसा विचार आधुनिक डाक्टरों का है। कोकण और काठियावाड़ प्रान्तों में बच्चों को उच्चारण सिखाने के लिये इसका उपयोग होता है। हिस्टीरीया रोग में यह अच्छा प्रभाव करती है। इसके लिये इसे ब्राह्मी और शंखावली के साथ काढ़े के रूप में देना चाहिये। इसका चूर्ण

उत्तेजक है। अकरकरा और कपूर इन दोनों का मंजन उत्तम है। एक तोला अकरकरा का पाँच तोले काँदे (प्याज के रस में पीसकर लेप करने से इन्द्रिय मोटी होती है।

बनावट—अकरकरा आदि चूर्ण और अकरकरा आदि वटी।

२. अखरोट—इसके वृक्ष हिमालय में काशमीर से लेकर मनीपुर आदि बहुत-से देशों में होते हैं। यह दो प्रकार का होता है, एक बोया हुआ और दूसरा स्वयं उगा हुआ। बोये हुए का छिलका पतला होता है, इसको काग़ज़ी अखरोट कहते हैं। इसके पेड़ प्राय: ५० फ़ीट से अधिक ऊँचे होते हैं। पत्ते ५—७ इञ्च लम्बे अण्डाकार और नोकदार होते हैं। इसका फल प्राय: सूखे मेवे के रूप में काम आता है। अखरोट से तेल निकलता है।

गुण—पोषक, वृष्य, कृमिनाशक, रुचिकर, गरम है। इसका तेल रेचक है (मात्रा २ से ४ तोला)। इसके काढ़े से पेट के कृमि मरते हैं। इसकी छाल और फल के छिलके रङ्ग के काम आते हैं।

तेल निकालने की विधि—१. इसकी गिरी को महीन कूटकर मोटे कपड़े की थैली में रखकर यंत्र में दबाने से तेल निकल जाता है। वह सफेद और पतला होता है।२. यदि दस सेर गिरी में से तेल निकालना हो, तो प्रथम ८ सेर को कोल्हू में पीसना चाहिये। जब उसमें से तेल निकलने लगे, तब बाक़ी दो सेर भी डाल देना चाहिये। जब यह अधपिसा हो जाय, तब उसमें मिश्री के बड़े-बड़े टुकड़े डालकर पेरने से तेल अलग हो जाता है। इसको छानकर चीनी या काँच के बर्त्तन में रखने से निर्मल हो जाता है।

३. अगर—यह चन्दन का एक भेद है। श्याम और सिंगापुर से आता है। इसका रङ्ग काला होता है। अगर एक सुगन्धित एवं गरम पदार्थ है। पंसारी अगर के धोखे में कई बार तगर दे देते हैं। बढ़िया अगर की लकड़ी भार में वज़नदार, तेलदार, पानी में डूबनेवाली और सुगन्धि-युक्त होती है।

गुण—उष्ण, तीक्ष्ण, पित्तकर तथा लेप में उष्ण तथापि दाह को शान्त करनेवाली है। चरक में अगर का उपयोग ज्वर में तथा कासनाशक रूप में किया गया है। सुश्रुत में वात-कफ-हर, वर्ण-कारक, कुष्ठ और कण्डू-नाशक कहा है। विषर्प तथा अन्य उपदंश-जन्य उपद्रवों में इसका लेप उत्तम है।

४. अगस्त—इसके वृक्ष हिन्दुस्तान के दक्षिणी और पूर्वीय प्रान्त में मिलते है। इसके पुष्प वर्षा-ऋतु में आने लगते हैं और अगस्त्य के उदय होने तक रहते हैं, इसीसे इसका नाम "अगस्त" पड़ा है। इसके पश्चात् आश्विन में फलियाँ आजाती हैं। इसके फूलों का शाक भी बनता है। पत्ते, मूल और गोंद औषधि के रूप में काम आते हैं।

गुण—पित्तघ्न, कफघ्न, ग्राही, शीतल तथा कड़वा है। इसकी छाल संग्राही है। इसके पत्ते या फूल का रस नाक में टपकाने से सिर-दर्द और प्रतिश्याय मिटता है। मसूरिका तथा अन्य ज्वरों में इसकी छाल का हिम-क्वाथ पिलाना उत्तम है। चोट पर पत्तों की पुलटिस बाँधने से सूजन उतरता है। रक्तान्ध रोगी को इसके पत्तों का शाक खाना चाहिये। चातुर्थिक ज्वर में इसके फूलों का रस सुँघाने से लाभ होता है। प्रमेह में फूल शाक के साथ दिये जाते हैं।

एक लाल फूल का अगस्तिया होता है। लाल फूल के अगस्तिया की छाल का लेप सूजन को नष्ट करता है, विशेषतः गठिया की सूजन को। इसके पत्ते सारक होते हैं। इसके रस से खुजली मिटती है।

५. अपामार्ग—यह भारत के सब जंगलों में पैदा होता है। वर्षा-ऋतु में पैदा होता है, उसी समय फूलता और फलता है, फल पक जाने पर पीछे सूख जाता है। यह एक से तीन हाथ ऊँचा होता है। यह दो प्रकार का होता है, लाल और सफेद। इसका सारा वृक्ष दवाई के रूप में काम आता है।

गुण—कफघ्न, उष्ण, मूत्रल है। इसमें से क्षार निकलता है। यह क्षार मूत्र-विरेचक है। इसकी जड़ के काढ़े को पिलाने से प्रसव जल्दी होता है। इसकी बाल को गर्भाशय के मुँह पर छुवाने से भी प्रसव तुरन्त हो जाता है। इसके बीजों को दूध में खीर बनाकर खाने से कई दिनों तक भूख नहीं लगती, इसलिये भस्मक-रोग की उत्तम चिकित्सा है। इसके बीजों का चूर्ण कण्डू और पसीने को हटाता है। इसमें संग्राही गुण होने से इसे प्रदर में भी काम लाते हैं। क्षार में "पोटाश" होने से इसका क्षार कास, श्वास, कफ-रोग में भी काम आता है। क्षार में या पञ्चाङ्ग में काढ़े में सिद्ध किया हुआ तिल तैल कान में डालने से कर्ण-शूल (वधिरता) नष्ट होती है। क्षार को हरताल के साथ मिलाकर लगाने से त्वचा से ऊपर की कालिमा मिटती है। इसका फूल

या मूल पानी में पीसकर बिच्छू या ततैये के कटे स्थान पर लगाने से विष उतर जाता है। इसके बीजों को पीसकर तण्डुलोदक के साथ लेने से अर्श का खून बन्द होता है। गर्भवती स्त्री की नाभि और पेड़ू पर किया गया इस की जड़ का लेप शीघ्र प्रसव कराता है। बनावट—क्षार तैल।

६. **अजमोदा**—यह हिन्दुस्तान में सर्वत्र पाया जाता है। इसके वृक्ष शीतकाल में लगाये जाते हैं, इसके पुष्प सफेद होते हैं। पुष्प गिरने के पीछे दाने उत्पन्न होते हैं। इसके बीजों में से तेल निकलता है, जो दवाई की तरह काम आता है। इसके तैल में से एक वस्तु 'थाईमोल' नाम की सफेद रङ्ग की अलग बनाई जाती है।

गुण—उष्ण, वात-हर, कृमि-नाशक, दीपन, पाचन, शूल-नाशक, एवं उत्तेजक है। पेट-दर्द और कृमि-नाशक रूप में यह अमोघ औषधि है।

शायद ही कोई प्रयोग इन दोनों रोगों का ऐसा होगा, जिसमें अजमोदा का योग न हो, नहीं तो सबमें इसका उपयोग है। थाईमोल भी पेट के कीड़ों में, दाँत के कीड़े को मारने के काम आता है। बनावट—अजमोदादि चूर्ण, यवानी खाण्डव-चूर्ण, अजमोदादि गुटिका।

७. **उड़द**—उड़दों की खेती भारत में प्राय: सब स्थान पर होती है। उड़द दो प्रकार के होते हैं, एक काले रंग का और दूसरा हरे रंग का। उड़द दवाई के रूप में प्राय: कम काम आता है। इसको मांस का प्रतिनिधि समझते हैं। औषधि के रूप में इसका गुण पौष्टिक, वातहर, वीर्यवर्द्धक, मूत्रल तथा स्तन्य-वर्धक है। उड़द की दाल के लड्डू बनते हैं। पीपवाले फोड़ों पर इसकी पुल्टिस काम देती है। दाल खाने से दूध बढ़ता है। बनावट—माषादि मोदक।

८. **अतीस**- अतीस के पौदे हिमालय में कमाऊँ तक, शिमले और चम्बा के आसपास होते हैं। प्राचीन वैद्यक ग्रन्थों में श्वेत, भूरी और लाल इन तीन जातियों का वर्णन आता है। अतीस में कीड़ा बहुत जल्दी लगता है, इससे इसका आटा शीघ्र खराब हो जाता है। स्वाद कड़ुवा लगता है, बालकों के अतिसार के लिये यह एक उत्तम दवा है।

गुण—कटु, पौष्टिक, ज्वरघ्न और कृमिघ्न है। अतिसार, खाँसी, विष तथा ज्वर को मिटाती है। आधुनिक चिकित्सक ज्वर के चढ़ने से ४-५ घंटे पूर्व, २० से ३० ग्रेन की मात्रा में देते हैं। ज्वर और बच्चों के अतिसार

के लिये अमोघ औषधि है। इसका चूर्ण शहद के साथ चाटने से खाँसी मिटती है। बनावट—अति विषादि-क्वाथ, कृष्णादि-चूर्ण और वात चतुर्भद्रिका।

९. अफीम—आर्य-वैद्यक में प्राय: अफीम का उपयोग नहीं मिलता। यह हिन्दुस्तान में प्राय: सब जगह मिलती है। खसखस के वृक्ष में से अफीम बनती है, यह वृक्ष ३-४ हाथ ऊँचा होता है।

गुण—स्नायुवों को ढीला करनेवाली, गरम पसीना करनेवाली, कफघ्न तथा विषकारक है। अफीम संग्राही होने से अतिसार और रक्त को बन्द करती है। पीड़ा-शामक होने से प्राय: अन्त: और बाह्यरूप में उपयोग होती है। निद्रा लानेवाली है, इसीसे दर्द के कारण यदि नींद न आती हो, तो उत्तम है। स्तम्भक एवं संग्राही होने से वीर्य-स्तम्भकरूप में बरती जाती है; मधु-मेह में लाभ करती है। अफीम शोषक गुण रखती है, इसीलिये शुष्क-काम में लाभकारक नहीं है। अफीम दूध को सुखाती है, अत: दूध पिलानेवाली माताओं को नहीं देना चाहिये। बनावट—अहिफेनासव, अहि-फेनादि गुटिका।

१०. अमरबेलि—यह भारत में सब स्थान पर मिलती है। यह बड़ी भारी पीले रंग की बेल होती है, वृक्ष पर चढ़कर अपना सम्बन्ध पृथ्वी पर से उठा लेती है। इसके फूलों में से मीठी सुगन्ध आती है।

गुण—पित्तशामक, ग्राही, कड़वी, थोड़ी मधुर, हृदय के लिये हितकारक, कफघ्न और आमनाशक है। यूनानी चिकित्सा में शोथ-रोग के लिये इसे अमोघ औषधि माना है। इसका काढ़ा यकृत और उन्माद-रोग में बहुत ही लाभदायक होता है। यह रेचक गुण रखती है। इसको पीसकर लेप करने में खुजली और पामा मिटती है। इसका काढ़ा पिलाने से आँवल जल्दी गिर जाती है। इसके काढ़े से जलोदर मिटता है।

११. अम्लवेतस—अम्लपंचक में से यह भी एक अम्ल है।

गुण—अतिअम्ल, कषाय, गरम, वातघ्न, अरोचक-हर है। अग्नि-दीपक, पित्तकारक है। उदावर्त्त-रोग में अजीर्ण में उत्तम है।

१२. अर्जुन-वृक्ष—यह हिन्दुस्तान के संयुक्तप्रान्त में, बिहार में, दक्खिन में प्राय: होता है। अर्जुन-वृक्ष ६० से ८० फीट ऊँचा होता है। इसकी गोलाई १० से २० फीट तक होती है। छाल श्वेत, खाकी, भूरी या बैंजनी रंग की होती है।

गुण—शीतल, पौष्टिक और स्तम्भक है। हृद्-रोग में अर्जुन की छाल विशेषतः उपयोगी होती है। क्वाथ, चूर्ण, घृत आदि रूप में इसका उपयोग होता है। टूटी हुई अस्थि के लिये इसका चूर्ण उत्तम है। इसका अन्तः और बाह्य दोनों प्रकार से उपयोग होता है। इसकी छाल का चूर्ण घिसकर लगाने से मुँह की छाया मिटती है।

१३. अड़ूशा—अड़ूशा के पौदे सब जगह पाये जाते हैं। सफेद और काले फूलों के भेद से यह दो प्रकार का है। इसके फूल का आकार सिंह के मुँह के समान होता है, इसलिये इसको "सिंहास्य" भी कहते हैं।

गुण—कफघ्न, रक्तस्तम्भक, ज्वरघ्न। कामला, ज्वर, रक्तपित्त, क्षय-रोग के लिये एक अमोघ औषधि मानी हुई है। कास और श्वास में पुटपाक से बनाया हुआ स्वरस बहुत ही लाभ करता है। बनावट—वासा स्वरस, वासा पुटपाक, वासादि-क्वाथ, वासासव, वासावलेह, वासा घृत।

१४. अरलु—इसके वृक्ष संयुक्तप्रान्त, बिहार, गुजरात में मिलते हैं। इसके वृक्ष की उँचाई ६० से ८० फीट तक होती है। दवा के लिये छाल और मूल का उपयोग होता है।

गुण—कटु, पौष्टिक, ज्वरघ्न, ग्राही, स्वेदन, दीपन है। अतिसार और रक्तातिसार में इसका उपयोग होता है। इसकी छाल के पुट-पाक में या स्वरस में मोचरस और शहद मिलाकर देने से सब प्रकार के अतिसार मिटते हैं। बनावट—अरलु पुट-पाक।

१५. अरणी—गुजरात, सीलोन, बङ्गाल में बहुतायत से होता है। इसकी उँचाई ५ से ११ फीट होती है। छाल का रङ्ग श्वेत, भूरा-सा होता है। फूल श्वेत, सुगन्धित होता है। इसका मूल दशमूल में काम आता है।

गुण—वातहर, शोथघ्न, कफघ्न और संदल है। इसके पत्तों का रस अथवा पत्तों को सेंककर शोथ-युक्त स्थान पर बाँधते हैं। डा० पाण्डुरंग गोपाल अपने आर्य-औषधि-संग्रह-कोष में लिखते हैं कि इसकी छाल का चूर्ण २ माशा लेने से पित्त की उल्टी होती है और स्वेद आता है। इसके काढ़े के पिलाने से वसा प्रमेह मिटता है। बनावट—अग्नि-मन्थ क्वाथ।

१६. **अरीठी**—यह वृक्ष दक्षिण भारत तथा सिंहल-द्वीप में बहुत होता है। इसका आकार बहुत कुछ महुवे से मिलता-जुलता है। डा० डीमोक के कथनानुसार यह दो प्रकार का होता है। रीठे में मैल काटने का तथा चिकनास-गुण होता है। यह कपड़ा धोने के काम प्रायः आता है। दवाई के लिये इसका उपयोग बहुत कम होता है।

गुण—उष्ण, तीक्ष्ण तथा लेखन-गुण करता है। नस्य और वमन के लिये इसका उपयोग होता है। रीठे का पानी पीने से उल्टी होती है। इसलिये विष-चिकित्सा में लाभदायक है। रीठे का बीज गर्भपात करने में तथा ऋतु-प्रवृत्त करने में काम आता है। नाक में इसका पानी डालने से चेतनता आती है, इसलिये हिस्टीरिया रोगी के लिये उत्तम है। बिच्छू या कनखजूरे के दंश पर इसका लेप करना चाहिये। रीठे का निकला हुआ पानी पिलाने से मूत्रकृच्छ्र-रोग मिटता है। रीठे के पानी में पीसकर नस्य देने से अर्धशीशी दूर होता है।

१७. **अहालिम**—यह प्रायः सब स्थानों पर बोये जाते हैं। इसका दाना राई जैसा होता है।

गुण—वात-हर, कफघ्न, शोधक तथा पौष्टिक है। खाने से यकृत तथा प्लीहा के जमे हुये रक्त को तोड़ता है। संधिवात, कमर के दुखाव में इसका उपयोग उत्तम है। इसका लेप अस्थि-भंग में मैदा की लकड़ी के साथ करने पर बड़ा लाभ करता है। जल्दी प्रसव कराने में इसका काढ़ा उत्तम है। इसके काढ़े से गर्भपात हो जाता है।

क्वाथ करने की विधि—दरकच किये हुये दो तोले बीज और मुलहठी ३॥ माशे, पानी १२॥ छटाँक में १० मिनट तक उबालना चाहिये।

१८. **अलसी**—अलसी का दाना लाल रंग का होता है। इसका दाना बहुत कुछ कुलथी से मिलता है। इससे तेल निकलता है। यह तेल लकड़ी के ऊपर पॉलिश करने के काम आते हैं। इसका दाना पुलटिस के रूप में सर्वत्र काम में आता है।

गुण—शीतल तथा मूत्रल है। मूत्र के रुकने में, पथरी की जलन में इसकी चाय काम में आती है। सूजाक में इसका तेल काम में आता है। अस्थि टूटने पर इस तैल का लेप विशेष काम में आता है। सन्धिवात,

निमोनिया, शोथ, छाती के दुःख में पुलटिस बाँधने से लाभ होता है। चूने के पानी में अलसी का तेल मिलाकर जले हुये स्थान पर लगाने से लाभ होता है। इस तैल का उपयोग कॉडलिवर ऑयल के स्थान पर हो सकता है। इसका आटा बहुत ही पौष्टिक होता है। इसको पौष्टिकरूप में काम लाते हैं।

१९. **आक**—आक का झाड़ सर्वत्र प्रसिद्ध है। यह दो प्रकार का होता है, श्वेत और लाल। इसके फल में गिरी नहीं होती, इसमें से रुई निकलती है। इसके सब पञ्चाङ्ग दवाई के काम आते हैं।

गुण—१—उष्ण, शोधक, स्वेदक, वामक, कफघ्न, क्षोभक और वातहर है। आक पारद की भाँति गुणकारी है, इसका उपयोग लम्बे समय तक करना चाहिये। इसमें से 'इमेटीन हाइड्रोक्लोरेट' नाम का तत्त्व निकलता है। प्राचीन काल में इसको उत्तम विरेचन पदार्थ गिना जाता था। आक की मूल की छाल में पसीना लाने का और उल्टी कराने का विशेष गुण है। इसलिये चर्म-रोगों में, यकृत के रोगों में, जलोदर में काम आता है। २—आमवात में, रक्तातिसार में तथा उपदंश के विकार में छाल की १॥ माशा मात्रा की फाँकी दिन में तीन-चार बार देनी चाहिये। ३—अरबी हकीम मीर अब्दुलहमी का कहना है कि श्वित्र-रोग में इसके दूध में भिगोया हुआ अन्न खाना चाहिये। ४—डा० रॉयल तथा डा० प्लेफेर का कथन है कि श्लीपद (हाथी-पाँव) रोग में ३ से ६ रत्ती आक की छाल में १॥ ग्रेन "कैलोमल" मिलाकर गोली के रूप में दो-तीन बार देने से लाभ होता है। ५—मूल की छाल का चूर्ण २ से ३ माशे आधे से एक घन्टे के अन्तर में लेने से अच्छी प्रकार झाड़ा होकर उल्टी होती है। ६—इसका फूल जठराग्नि को बढ़ाता है, इससे अरुचि, अतिसार, खाँसी, श्वास तथा अर्श-रोग में भी फायदा करता है। ७—अर्क-फूल और मिर्च मिलाकर गोली बनाकर खाने से खाँसी और श्वास में लाभ होता है। इसमें यदि थोड़ी-सी अफीम और यवसार थोड़ा-सा मिला दें, तो तत्काल लाभ करता है। इसका दूध अभ्रक आदि की भस्म बनाने में काम आता है। दर्द या पेट पर आक के पत्तों पर घी लगाकर गरम करके बाँधने से लाभ होता है। पके हुए पीले पत्ते का रस कान में डालने से बाधिर्य और कर्ण-शूल नष्ट होता है। इसके रस से जू आदि रक्त-कृमि मरते हैं।

स्नायुक—(नहरवा) कृमि को निकालने या मारने के लिये पत्तों पर एरण्ड का तेल लगाकर बाँधने से कृमि निकल आते हैं, और दूध में रुई

भिगोकर रखने से मर जाते हैं। संधिवात पर भी पत्तों का सेंक सूजन कम करता है। पत्तों और सैंधानमक को एक बन्द हाँड़ी में जलाकर राख बना लेना चाहिये। यह क्षार तक्र के साथ पीने से प्लीहा, यकृत, उदर में विशेष लाभ करता है। लाल फूल के आक का फूल और कालीमिर्च समान भाग लेकर पाँच-पाँच ग्रेन की गोली बनाकर खाने से हिस्टीरिया, मृगी में लाभ होता है, ऐसी लोगों की मान्यता है। खेंचतान, आक्षेप व्याधि में भी लाभदायद है। आक के दूध को सुखाकर यदि उसकी एक-एक ग्रेन की गोली बनाकर रख ली जाय, तो वह छाल तथा फलों की अपेक्षा अधिक प्रभाव रखती है। अर्क एक प्रकार का उपविष है, अतः इसका उपयोग बहुत सावधानी के साथ करना चाहिये। आक के मूल की छाल को छाछ में पीसकर अण्ड-वृद्धि पर लगाने से लाभ होता है।

२०. अंकोल—अंकोला का वृक्ष समस्त भारतवर्ष में मिलता है। इसके कई रूप हैं। इसका झाड़ कनेर के झाड़ के समान होता है; पत्ते भी कनेर के पत्तों से मिलते हैं। फूल श्वेत होता है। औषधि के काम में इसका मूल आता है।

गुण—शोधक, स्वेदल तथा कान्तिकारक है। चूहे तथा कुत्ते के विष में इसकी लकड़ी घिसकर पिलाई और स्थान पर लगाई जाती है। कइयों का विचार है कि इसमें विष प्रतियोगी गुण है, अतः विष-रोग में यह उत्तम औषधि है। रेचक और वामक गुण के लिये सर्पदंश, मूसिकादंश में भी काम आता है। वमन के लिये मात्रा ३ माशे से ६ माशे तक है। पसीना लाने के लिये ३ से ५ रत्ती तक इसकी फँकी देनी चाहिये।

२१. आर्द्रक—एक प्रकार का कन्द होता है। यह पहाड़ी तथा पानीवाले प्रदेश में बहुत होता है। इसका वृक्ष एक हाथ ऊँचा होता है। पत्ते इलायची के ढङ्ग के होते हैं। इसका अचार बनता है।

गुण—उष्ण, दीपन, पाचन, वात और श्लेष्म-नाशक तथा रुचिकर है। आर्द्रक के रस में शहद मिलाकर चटाने से बलगम दूर होती है। हृदय-रोग तथा ज्वर में, शूल में लाभकरता है। जठराग्नि को बढ़ाता है, भोजन में रुचि उत्पन्न करता है। इसकी मात्रा ½ तोला से २ तोला है। आर्द्रक ही से सोंठ

बनती है। आर्द्रक के ऊपर के छिलके को उतारकर धूप में सुखाने से यह सोंठ में बदल जाता है। यह सड़ न जाय, इसलिये इसको चूने के पानी में उबाल देते हैं। बनावट--१. आर्द्रक-स्वरस, २. आर्द्रकावलेह।

२२. अम्लिका—इमली का वृक्ष सर्वत्र देखने में आता है। यह मृदु, रेचक है। दवाई के रूप में इसकी छाल, पत्ते और फल काम में आते हैं। इसकी छाल में खार होता है। यह खार "शंखवटी" औषधि में पड़ता है। इसके पत्ते ठण्डे होने से शोथ-युक्त आँख पर एवं भिलावे की गरमी पर लगाने से ठन्ड देते हैं। इसी प्रकार जमालगोटे के कारण उत्पन्न हुए उपद्रवों को शान्त करने के लिये इमली का शरबत पिलाना चाहिये। गर्मियों में चलती लू या गरमी को, ज्वर की प्यास को इमली का हिम-क्वाथ खाँड़ के साथ देने से चमत्कारिक प्रभाव होता है। इससे पेशाब की जलन भी कम हो जाती है। पक्की इमली के अधिक खाने से जोड़ों में दर्द हो जाता है, सन्धियाँ अकड़ जाती हैं। इसके बीजों को घिसकर फुन्सियों पर लेप किया करते हैं। इसके बीजों को पीसकर भग में मलने से संकोचन होता है। इमली के पानी से कुल्ला करने पर मुख-पाक मिटता है। इमली के बीजों की मींगी और बावची दोनों को पानी के साथ पीसकर लेप करने से श्वेत दाग मिटते हैं।

२३. आँवला—इसके वृक्ष भारत के उष्ण भाग में प्राय: मिलते हैं। यह वृक्ष ३०-४० फीट ऊँचा होता है। छाल भूरी और पतली होती है। पत्ते प्राय: इमली-जैसे होते हैं। कच्चा फल हरा और कड़वा होता है; पकने पर पीला, लाल-सा और स्वाद में मीठा हो जाता है। यह एक अमूल्य रसायन है। आर्य-वैद्यक में इसकी बहुत ही प्रशंसा की गई है। यहाँ तक कि इसके सेवन से बुड्ढा भी जवान बन जाता है। आँवला पौष्टिक है।

गुण—१—अम्ल, शीतल, पित्तशामक, शोधक, सारक, पौष्टिक, वृष्य और रसायन है। आँवला तीनों दोषों का शमन करता है। क्षय-जैसे रोग में च्यवन-प्राश के रूप में आँवला विशेष फायदा करता है। २—आँवला आँख तथा बालों को लाभ करता है। ३-दाह, पित्त, उल्टी में लाभ करता है। ४-प्रमेह के लिये उपयोगी है। शोधक गुण के लिये रक्त-विकार में तथा शरीर की कान्ति के लिये इसका चूर्ण त्वचा पर मला जाता है। ५-रक्त-पित्त या अतिसार में आँवला स्तम्भिक प्रभाव रखता है। इसके चूर्ण के सेवन से प्रदर और बहूमूत्र-रोग कम होता है। उर:-क्षत रोग-अंत्र-जन्य

रक्त-पित्त, मूत्रमार्ग-जन्य रक्त-पित्त आदि रोगों में आँवला विशेष उपयोगी है। आँवले के चूर्ण को आँवले के रस में भावना देकर सेवन करने में वाजीकरण होता है। आँवले का चूर्ण लोह-भस्म के साथ खाने से पाण्डु, कामला आदि रोग नष्ट होते हैं; शरीर में रक्त बढ़ता है। बनावट धात्री-स्वरस, आमलकी रसायन, धात्र्यासव, च्यवनप्राशावलेह, आँवले का मुरब्बा।

२४. आम्बाहल्दी—इसका वृक्ष बंगाल में और कहीं-कहीं गुजरात में मिलता है। इसके पत्ते कमल-जैसे होते हैं। इस पेड़ के तने में गाँठें होती हैं। इन गाँठों में से आम या महुवे-जैसी गन्ध आती है। इसकी गाँठों का उपयोग अचार के रूप में या कच्चे रूप में व्यञ्जन के साथ किया जाता है। इसका लेप जमे हुये रक्त को हटानेवाला है।

गुण—रोपण, कफघ्न, शोधक और वर्णकारक है। रोपण गुण के लिये रक्त-विकार की औषधियों में पड़ती है। गुम चोट के ऊपर सज्जी, खार, मैदा, लकड़ी और इसको पीसकर गरम करके लेप करने से जल्दी आराम होता है। खाँसी, तथा श्वास-रोगी एवं निर्बल फेफड़ेवाले व्यक्तियों को इसका उपयोग निरन्तर करना चाहिये।

२५. आम—आम का पेड़ मशहूर है। औषधि के रूप में इसकी छाल, पत्ते, गुठली और फूल काम में आते हैं।

गुण—पित्त-शामक, ग्राही, कृमि-नाशक और पौष्टिक है। पित्त-शामक और ग्राही होने से इसके छाल का काढ़ा या पत्तों का पुटपाक अथवा गुठली का चूर्ण अतिसार तथा रक्त-स्राव में विशेष लाभकारी है। आम के पके हुये फल का रस कृमिघ्न है और कच्चा सूखा हुआ फल दन्तवेष्टन की शोथ तथा रक्त-स्राव को रोकता है। प्रमेह को नष्ट करता है, शरीर को बढ़ाता है, मन को प्रसन्न करता है। शरीर की कान्ति बढ़ाता है, संभोग-शक्ति की वृद्धि करता है। खट्टा आम आँखों के लिये नुकसानदायक है। बनावट—आम का मुरब्बा

२६. आवर्त्तकी—इसके वृक्ष प्रायः मध्यभारत, दक्षिण-प्रदेश, सीलोन, और राजपूताने में मिलते हैं।

उपयोग—इस वृक्ष के प्रायः सब अंग काम में आते हैं। इसके पंचांग आदि चमड़े को रँगने के काम आते हैं। लोग दवाई की तरह इसके उपयोग बहुत कम करते हैं।

गुण—शोफघ्न, ज्वरघ्न, कफघ्न, पित्तघ्न और ग्राही है। इसके बीजों का लेप करने से आँख की पीड़ा और पीप का बढ़ना बन्द होता है। छाल बहुत संकोचक होती है। शूल, प्रवाहिका, मरोड़ा, उल्टी में मूत्र का काढ़ा दिया जाता है। पेट पर चोट लगने से इसके पत्ते बाँधे जाते हैं। चोट लगने पर तो इसके पत्ते तेल में पीसकर हल्दी के साथ मिलाकर बाँधने चाहिये। यदि अंग अकड़ गये हों और वायु शरीर में जोर कर रही हो, तो इसके पत्तों को चारपाई पर बिछाकर नीचे से आग रखनी चाहिये। इससे अंग खुल जाते हैं। इसके पत्तों को बाँधने से कठिन अंग नर्म पड़ जाते हैं। स्त्रियों के प्रदर तथा रक्त-स्राव में इसके फूल की सोगठी पिलाई जाती है। शर्करा-मेह और बहुमूत्र को रोकने के लिये फूल का काढ़ा दिया जाता है। इसके फूल का गुलकंद प्रमेह तथा प्रदर के काम आता है। इसके फूल का उबटन शरीर को चम्पक-वर्ण बना देता है। पशुओं के लिये भी औषधि के तरीके इसका उपयोग बहुत होता है। बैल को अफारा चढ़ने पर इसका काढ़ा दिया जाता है। पशु के मुँह में लार गिरती हो, घास न खाता हो, तो इसके पत्तों को नमक के साथ मिलाकर उसकी जीभ पर मलना चाहिये।

२७. अश्मन्तक—यह संयुक्त-प्रान्त में बहुतायत से मिलता है। इसका झाड़ सीधा होता है, इसका फूल छोटा और श्वेत रङ्ग का होता है। इसकी फलियों का स्वाद कसैला और मीठा होता है। यह शुद्ध कचनार नहीं है, परन्तु कचनार से मिलता-जुलता है। इसके पत्ते दो भागों में बँटे हुये होते हैं, इसीसे इसको 'युग्मपत्र' भी कहते हैं। दवाई के रूप में इसकी छाल तथा मूल का उपयोग बहुत होता है।

गुण—छाल का रस कषैला और मधुर है और गुण ठण्ढा और कृमिघ्न है। कोढ़, गुद-भ्रंश, विष, गण्डमाला, विदाह, कंठ-रोग तथा रक्त-विकार में लाभ करता है। इसकी मूल की छाल का काढ़ा यकृत-शोथ में उपयोगी है। कृमिघ्न होने से कृमि-जन्य हृदय-रोग में लाभ देता है। इसके काढ़े में दूध मिलाकर पीने से हृदय-रोग मिटता है। कचनार के स्थान में बहुत-से आदमी इसका उपयोग करते हैं। गुजरात में इसके पत्ते प्रायः बीड़ी बनाने के काम आते हैं।

२८. अशोक—इसके वृक्ष प्रायः सब स्थानों पर मिलते हैं। इसका वृक्ष बहुत ऊँचा नहीं होता। इसके पत्ते प्रायः १ फुट लम्बे होते हैं। फूल

बैंजनी रंग के होते हैं, वे फिर धीरे-धीरे लाल हो जाते हैं। इसकी छाल गर्भाशय के रोगों में बहुत काम आती है। इसकी छाल के काढ़े में दूध मिलाकर पिलाने से तीव्र रक्त-प्रदर मिटता है। छाल का काढ़ा पिलाने से रक्तार्श का रुधिर बन्द हो जाता है। हृदय के लिये हितकारी है एवं पित्त, दाह, श्रम, रक्त-पित्त, गुल्म, उदर-शूल, प्रदर तथा विष-रोग को मिटाती है। अशोक का मुख्य उपयोग गर्भाशय के विकार को दूर करने में आता है। बनावट—अशोकारिष्ट।

२९. अश्वगन्ध —यह एक प्रकार का पौधा है। यह भारत के सूखे प्रदेश में होता है। पंसारियों के यहाँ असगन्ध नाम से जो टुकड़े मिलते हैं, वे असली असगन्ध नहीं, असली असगन्ध अँगूठे जितना मोटा और थोड़ा-सा मधुर होता है। इसके पत्ते सुअर के कान जैसे होते हैं,इसलिये इसको वराह-कर्णी कहते हैं। इस औषधि में पुरुषत्व देने की शक्ति है, इसलिये इसे अश्व-गन्ध या वाजिगन्धा कहते हैं। इसकी गन्ध घोड़े के समान होती है। इसमें फल के स्थान पर पोपटा आते हैं, पकने पर बीज लाल रत्ती-जैसे हो जाते हैं। औषधि के रूप में इसकी जड़ काम आती है। यह पौधा मादक-गुण-युक्त माना जाता है, इसकी जड़ घिसकर प्लेग की गाँठ पर लगाई जाती है। इसके और सोंठ के चूर्ण को घी में भूनकर दूध के साथ लेने से सन्धि-वात, गृध्रसी में लाभ करता है। इसका चूर्ण घी या दूध के साथ लेने से शरीर की पुष्टि करता है।

गुण—पौष्टिक,धातु-वर्द्धक और शोधक है। शक्ति देने के लिये और पुरुषार्थ बढ़ाने के लिये इसका स्थान काष्ठौषधि में सबसे ऊपर है। यह कई पौष्टिक पाकों में पड़ता है। कृश आदमी को मोटा करने के लिये इसका उपयोग उत्तम है। असगन्ध का काढ़ा, लोढ़ी, पीपल, घी तथा शहद इन चीजों को मिलाकर देने से शरीर में शक्ति आती है। असगन्ध, काले तिल और खजूर इनको घी में भूनकर खाने से दुबले पुरुष मोटे होते हैं, छोटे ठिगने बड़े होते हैं। वात-रक्त के लिये इसको चोपचीनी के साथ देना चाहिये। गर्भवती स्त्री को पौष्टिक रूप में इसका सेवन करने से बालकों की वृद्धि होती है। इसके चूर्ण में खाँड़ मिलाकर मासिक-धर्म में जाता हुआ अधिक रक्त बंद होता है। बनावट—अश्वगंधादि-चूर्ण, अश्वगंधारिष्ट, अश्वपाक, अश्वगंधघृत।

३०. इंगुदी—इंगुदी के वृक्ष कानपुर से सिकम तक, बिहार, गुजरात, खानदेश, दक्खिन आदि कई देशों में होते हैं। इसका वृक्ष ३० फीट ऊँचा और काँटेदार होता है।

गुण—कटु, उष्ण, कृमिघ्न, शूलघ्न। इसके बीज रेचक हैं। सर्प-विष-हर है। इसका तेल व्रणों को भरने के काम आता है। यह तेल इसके बीजों में से निकलता है। बीज कफ में २ से ३० गेहूँ भर दिये जाते हैं। इसके फूलों को पानी में भिगोकर उसका सत्व निकालना चाहिये। इस सत्व के साथ सोंठ, अगर, पीपल मिलाकर शहद के साथ कालीमिर्च के बराबर गोली बनानी चाहिये। यह गोली हिस्टीरिया-रोग में उत्तम है। इसकी छाल की फक्की देने से पेट के कीड़े मरते हैं। इसकी मींगी को पानी में घिसकर अंजन करने से आँख की ज्योति बढ़ती है। तेल को शरीर पर मर्दन करने से कान्ति बढ़ती है।

३१. इन्द्रजौ—जिसके ये बीज हैं, उस वृक्ष का नाम कुडा है। इसकी फलियों में से बीज निकलते हैं। इसकी छाल बहुत कड़वी होती है। इसके बीज जौ के आकार के होते हैं, परन्तु वे जौ से जरा अधिक लम्बे होते हैं।

गुण—संग्राही, दीपन, पाचन, ज्वरघ्न तथा कृमिघ्न, अतिसार, रक्तातिसार, अर्श, बालकों की प्रवाहिका में, कृमि-रोग में व्यवहृत होता है। वाय-विडंग के साथ देने से इसका कृमिघ्न गुण विशेष लाभ करता है।

३२. इन्द्रवारुणी—इसकी बेल पश्चिमोत्तर प्रदेश में, राजपूताने में प्रायः होती है। यह बहुत ही कड़वा फल होता है। फल का रङ्ग पीला होता है। इसकी जड़ और फल दवा के काम में आते हैं।

गुण—रेचक, उष्ण, कामक, कृमिघ्न तथा पित्तघ्न है। यह एक संशोधक द्रव्य है। उदर-रोग में, रजोनिरोध में, मूढ़-गर्भ में, गर्भ को बाहर निकालने में, प्लीहा तथा यकृत-रोग में इसका उपयोग होता है। इसके फल का चूर्ण या काढ़ा तीव्र रेचक है। इसको सँभालकर और औषधियों के साथ में देना चाहिये। इसकी जड़ योनि में रखने से रजः-प्रवृत्ति होती है और गर्भपात होता है। तीव्र रेचक गुण के कारण कामला, पाण्डु में लाभदायक है। अनार्य-चिकित्सा में इसका सत्व काम में आता है, जिसका नाम कोलोसिन्थ

है। श्वास-रोग की उत्तम औषधि है। इसकी जड़ को पीसकर, गौ के घी में मिलाकर भग में लगाने से बच्चा तुरन्त सुख से पैदा हो जाता है। इसके पके हुए फल की धूनी देने से दाँत का कीड़ा मर जाता है। इसके रस में रुई का फाहा भिगोकर रखने से बच्चा तुरन्त पैदा हो जाता है। इसकी जड़ को गाय के दूध के साथ कई दिन तक लेने से बाल काले हो जाते हैं। बनावट — विशाला चूर्ण।

एक दूसरी प्रकार का इन्द्रायन होता है। इसका फल लाल रङ्ग का होता है। बीज नारंगी के रंग के होते हैं। इसके फल को पीसकर नारियल के तेल में मिलाकर लगाने से कान तथा नाक के व्रण एवं कृमि-युक्त दुष्ट व्रण भी अच्छे हो जाते हैं। फल को चिलम में रखकर पीने से श्वास मिटता है।

३३. ऊँटकटेरा—यह मारवाड़ में बहुत होता है। इसका पौधा कटैली जैसा होता है, इसमें गोल डोडे लगते हैं। फल, डाली और पत्तों पर सीधे काँटे होते हैं। इसका फूल आसमानी रङ्ग का होता है। इसकी जड़ की छाल को गरम काढ़े के रूप में देने से प्रसव के समय स्त्री को अधिक कष्ट नहीं होता। इसकी जड़ को पीसकर गर्भवती स्त्री के पेट पर लेप करने से बालक सुख से पैदा होता है। तालमखाने, मिश्री और इसकी जड़ की छाल के चूर्ण की फक्की देने से मूत्रकृच्छ्र मिटता है। इसकी सूखी जड़ के एक-एक तोले चूर्ण को मधु में मिलाकर ७ दिन खाने से अधिक पसीना आना मिटता है।

गुण—रुचिकर, वीर्य-वर्द्धक, कटु तथा मूत्र-कृच्छ्र, पित्त-वात, तृषा, हृदय-रोग और विस्फोटक मिटाता है। इसके बीज शीतल, वीर्य-वर्द्धक, तृप्ति-कारक और मधुर हैं।

३४. उन्दरकानी—यह अधिक उष्ण प्रदेशों की आर्द्र भूमि में, बिहार, दक्षिण हिन्दुस्तान में होता है। इसके छत्ते होते हैं, इनके गोल पत्ते जमीन पर चिपटे रहते हैं। इसके पत्ते का आकार चूहे के कान से मिलता है। इसका फूल पीला होता है। चूहे के दंश पर इसका स्वरस लगाना चाहिये। इसको कालीमिर्च के साथ घोंट-छानकर पिलाने से मूत्र का विरेचन होता है। इसके पञ्चांग को औटाकर पिलाने से बच्चों के श्वास, कास और पेट के रोग मिट जाते है।

गुण—शोधक तथा मूत्रल है। इसका स्वरस पिलाने से रक्त-विकार मिटता है। विसर्प में इसका रस लगाया जाता है।

३५. उपलसरी—इसको अनन्तमूल भी कहते हैं। इसका पौदा लम्बा होता है। बाजार में इसकी शाखायें इसके मूल के नाम से बिकती हैं। इसकी दो जाति हैं—एक काली और दूसरी सफेद। ऊपर से छिलका उतारने पर नीचे पीली लकड़ी दिखाई देती है। ताजे मूल में एक मीठी गन्ध आती है।

गुण—(चरक के अनुसार)—वर्णकारक, स्तन्य-शोधक, ज्वरहर और दाह-प्रशमक। (सुश्रुत के अनुसार)—वात-पित्त प्रशमन, रक्त-शोधक, रक्त-पित्तहर और शुक्र-दोषनाशक है। मूत्रल और स्वेदक है। उपदंश-रोग में, त्वचा के विस्फोटों में, संधिवात में इसका प्रयोग होता है। सारक औषधियों के साथ भी इसका प्रयोग होता है। इसके काढ़े के साथ अतीस देने पर अतिसार नष्ट होता है। इसके गुण को बढ़ाने के लिये इसे चोपचीनी के साथ उपदंश में दिया जाता है। इसके जड़ का काढ़ा में मधु मिलाकर पीने से आँखों का नेत्र-रोग मिटता है। बनावट—सारिवादि-क्वाथ, अनन्तादिघृत।

३६. उपलेट—इसको साधारणतः कूठ कहते हैं। यह दो प्रकार की है, कड़वी और मीठी। इसके टुकड़े बाजार में आते हैं। ये अंगूठे जितने मोटे और काले, भूरे रंग के होते हैं। इसको कूटने से मीठी गन्ध आती है।

गुण—पौष्टिक, शोधक, वात-कफहर, श्वास-नाशक और जन्तु-नाशक है। इसका धुआँ देने से कृमि मरते हैं। ज्वर में इसका उपयोग श्लेष्मा को कम करता है। श्वास रोग की यह एक अमूल्य औषधि है, विशेषतः "स्पाजमेटिक दमे" के लिये इसका काढ़ा विशेष गुणकारी माना जाता है। गरम होने से हैजे में प्रभाव करता है। वायुनाशक होने से आक्षेप-रोग में लाभ करता है। बनावट—अग्निमुखचूर्ण।

३७. उदुम्बर—इसको गूलर कहते हैं। गूलर का पेड़ बहुत मोटा होता है। इसमें फल लगता है। फूल अभी तक देखने में नहीं आया। औषधि के रूप में इसकी छाल, फल और दूध काम में आता है।

गुण—शीतल, कफघ्न और पित्तहर है। इसके मूल की छाल का काढ़ा, स्वरस, या पुटपाक रक्तातिसार में काम आता है। इसका दूध बताशे में रखकर खाने से प्रमेह और उपदंश में लाभ करता है। इसके फलों का चूर्ण या भाजी मधुमेह रोग में विशेष लाभ करती है। शक्ति के लिये इसका दूध काम में आता है। स्त्रियों को खिलाने से दूध बढ़ता है। बच्चे का पोषण होता है। सब प्रकार के स्रावों को—रक्त-स्राव, मूत्र-स्राव को बन्द करता है। वीर्य और दूध को बढ़ाता है। बनावट—पंचत्वक्।

३८. ईक्षुगन्धा (तालमखाना)—इसका झाड़ दो-तीन हाथ ऊँचा होता है। इसके तने और डाली में गाँठें होती हैं। औषधियों में इसके बीज, छाल और मूल काम में आते हैं। इसके ताजे कटे हुये पौदे की गन्ध गन्ने से मिलती है, इसलिये इसको तालमखाना कहते हैं। इसका दाना काले-भूरे रंग का होता है।

गुण—धातु-पौष्टिक, शीतल, वृष्य और मूत्रल है। इसका उपयोग प्राय: अश्वगन्धा के साथ मिलाकर पौष्टिकरूप में किया जाता है। प्रमेह और मूत्र-रोग में इसका उपयोग लाभदायक रहता है। जलोदर, संधिवात और शोथ में लाभ करता है। असगन्ध, तालमखाने को शक्कर के साथ मिलाकर खाने से शक्ति आती है। इसके ताजे पत्ते खाने से कण्ठमाला मिटती है।

३९. एरण्ड—यह एक साधारण वृक्ष है। इसका पत्ता हाथ की भाँति पाँच स्थानों पर फटा होता है, इसलिये इसे "पञ्चाङ्गुल" भी कहते हैं। इसके दो भेद हैं, लाल और श्वेत अथवा बड़ी और छोटी। बड़ा १० से १५ हाथ ऊँचा रहता है। इसकी लकड़ी खोखली कच्ची रहती है। बीज छोटा होता है। इन बीजों में से तेल निकलता है। यह तेल घरों में जलाने तथा साबुन बनाने के काम आता है। साफ़ किया हुआ यही तैल औषधि के तरीके काम में आता है। इसको "कैस्टर ऑयल" कहते हैं। औषधि के रूप में इसके जड़, पत्ते, छाल सब काम में आते हैं।

गुण—रेचक, शोधक और वातहर है।

एरण्ड-मूल के गुण—शोधक तथा सारक है, वातहर होने से वात-व्याधि तथा आमवात रोगों में काम आता है। कई काढ़ों में इसका उपयोग होता है। पसीना लाने का गुण इसमें होने से ज्वर में इसका

उपयोग होता है। पार्श्वशूल, सन्धिशूल, उदरशूल, में इसका काढ़ा लाभ करता है। प्रसूता तथा प्रसव के समय इसका उपयोग बहुत लाभ करता है। प्रसवकालीन वेदनाओं में दिया जाता है। इस समय इसको दशमूल के साथ मिलाकर देना चाहिये।

एरण्ड-तैल—नवजात शिशु से लेकर वृद्ध व्यक्ति तक इसका उपयोग किया जा सकता है। गर्भिणी स्त्री के लिये भी इसका निषेध नहीं है। सुरक्षित और निरुपद्रवी विरेचन है। इसके पीने से किसी प्रकार का मरोड़ा आँतों में नहीं होता। इसकी दुर्गन्धि कम करने के लिये गरम दूध या गोंद के साथ मिलाकर लेना चाहिये। सोंठ के काढ़े में लेने से किसी भी प्रकार का मरोड़ा या शूल के होने का भय नहीं रहता। इससे हृदय-रोग और योनि-शूल मिटती है। बालोदर में, पेट के अफारे में, गुल्म में, कटि-ग्रह में, वात-रक्त में आमवात में तथा कब्जियत में इससे बहुत फायदा होता है। वायु का यह शत्रु है, इसलिये इसको "वातारि" कहते हैं। यदि मल के शुष्क होने से मरोड़े से मल आता हो या, वायु रुकी हो, तो एरण्ड-तैल से बढ़कर कोई और औषधि उत्तम नहीं है।

पत्ते—इसके पत्तों पर घी या तेल लगाकर, गरम करके शोथ या दर्द-युक्त स्थान पर बाँधने से विशेष लाभ देखने में आता है। स्त्रियों के स्तनों के ऊपर बाँधने से दूध का स्राव कम हो जाता है। यदि गाँठ हो, तो वह घुल जाती है। एरण्ड-तैल का प्रभाव माता के दूध में भी आ जाता है।

बीज—व्रणों का शोधन, रोपण या पकाने के लिये इसके बीजों को पीसकर पुलटिस के रूप में काम में लाते हैं। बनावट—एरण्ड-क्वाथ।

४०. एला (इलायची)—यह एक प्रकार के झाड़ का फल है। यह प्रायः मैसूर, कुर्ग, मलाबार, कोचीन में होता है। इसका वृक्ष हल्दी के वृक्ष से मिलता-जुलता है। इसका फूल श्वेत और लाली लिये होता है। इलायची का दाना मुखवास के रूप में खाया जाता है। यह दो प्रकार की होती है—छोटी और बड़ी।

गुण—शीतल, वात और कफहर। श्वास, खाँसी, अर्श, मूत्रकृच्छ्र तथा प्यास में लाभ करती है। क्षय-रोग में, मूत्रकृच्छ्र रोग में तथा कष्ट के रोग में प्रायः बरती जाती है। अधिक खाने से गर्भपात होता है। इलायची का

चूर्ण, पाषाण-भेद और सर्ज-क्षार के खाने से मूत्र खुलकर आता है। इनके बीजों में से एक प्रकार का तेल निकलता है, जिसको पाचन तथा सुगन्धित गुण के लिये व्यवहार में लाते हैं। बनावट—एलादि चूर्ण, एलाद्यरिष्ट।

४१. एलुवा—एक प्रकार का काला सूखा हुआ पदार्थ बाजार में इस नाम से मिलता है। यह पदार्थ घीक्वार के रस से बनता है। स्वाद में बहुत ही कड़वा होता है। इसका मुख्य तत्त्व "एलोईन" है। यह तत्त्व रेचक है।

गुण—उष्ण, रेचक तथा ऋतु लानेवाला है। भेदन और उष्ण गुण होने के कारण गर्भवती स्त्री को देने से गर्भपात होने की सम्भावना रहती है। पेट के दुखाव में, शूल में इसका पेट पर लेप किया जाता है। गुदा के मस्सों पर लगाने से मस्से गिर पड़ते हैं। बंधकोष में लाभ करता है। हिस्टीरियावाली स्त्रियों को हीग के साथ देने से लाभ होता है; विशेषत: जब रोग का कारण रज-सम्बन्धी हो। इसमें खास गुण यह है कि इसके विरेचन के पीछे बद्धकोष नहीं होता। बनावट—रज:प्रवर्त्तिनी वटी, कन्या-लोहादि गुटी।

४२. ईषबगोल—इसका पौधा होता है। यह भारत में उत्पन्न नहीं होता, ईरान से आता है। अत: आर्य-चिकित्सा में इसका प्रयोग नहीं मिलता। यूनानी में इसका उपयोग बहुत होता है। इसके बीज पानी में भिगोने से इसमें लुवाब उठ जाता है।

गुण—शीतल तथा ग्राही है। चीनी के साथ लेने से शरीर की गर्मी तथा रक्तातिसार को नष्ट करता है। हाथ-पाँव की जलन में इसके लुवाब को प्रात: चीनी के साथ लेना चाहिये। इसके पीने से शुक्र में उत्पन्न गर्मी कम हो जाती है। मरोड़ में खास उपयोगी है। दाँतों या जिह्वा की खुजली में इसका शीत कषाय बहुत लाभ करता है।

४३. कचूर—इसका झाड़ होता है। इसके पत्ते हल्दी के पत्तों से मिलते हैं। इसकी जड़ में हल्दी जैसी गाँठ में रहती है। कपूरकचरी और कचूर ये दोनों एक जैसी हैं, अत: इनमें धोखा हो जाता है।

गुण—शोधक, इसका रस कड़वा, तीखा और गरम है। यह अग्नि-दीपक और रुचिकर है। त्रिदोष-ज्वर में पाचन करने के लिये तथा त्वक-दोष-

हर कार्यों में इसका उपयोग होता है। सुगन्धित द्रव्यों में इसकी गिनती है, इसलिये सुगन्धित तेलों में इसका व्यवहार होता है। बनावट—शट्यादि-क्वाथ।

४४. कूठ—इसका वर्णन प्रथम (३६ में) आ चुका है। कुछ लोग "पुष्कर-मूल" को कूठ मानते हैं। उनकी दृष्टि में पुष्कर-मूल जो साधारणत: "पोहकर-मूल" के नाम से बाजार में मिलता है, एक श्वेत, अँगूठे के समान लकड़ी है। इसका गुण श्वास-कासहर है। कफ-ज्वर में या कफ के विकारों में इसका उपयोग किया जाता है।

४५. कड़वी तोरी - यह वृ[illegible] जंगल में चढ़ती है। इसके बीज तरबूज जैसे काले होते हैं। इसके सम्पूर्ण अंग दवा के लिये काम आते हैं। इसके फल का छिलका उतारकर इसको पाँव आदि धोने के काम में लाते हैं।

गुण—ज्वरघ्न, रेचक तथा उल्टीकारक है। कफ तथा पित्त-नाशक है। शक्तिदायक तथा मूत्रल है। मलेरिया ज्वर में तथा जलंधर एवं प्लीहा-रोग में बरती जाती है। पत्तों का रस, शोथ तथा विष-जन्य व्रणों पर लगाये जाते हैं। इसका बीज रेचक है, वामक है। शुष्क तोरी का चूर्ण कामला-रोग में नस्य के रूप में नाक में दिया जाता है। इसका फल रेचक और वामक है, इसीसे विष गिना जाता है।

४६. कड़वी तुम्बी—जिसको तैरना सीखने के काम लाते हैं, जिससे सितार आदि बनते हैं और जिसको साधु लोग पानी के लिये बरतते हैं, यह तुम्बी भी औषधिरूप में काम आती है। इसका दूसरा भेद घिया कद्दू है, जिसकी हम भत्र भाजी बनाकर खाते हैं।

गुण—रेचक, कान्तिकारक तथा रज:प्रवर्त्तक है। इसका बीज पौष्टिक और मूत्रल है। पत्तों का काढ़ा करके पीने से कामला में रेचन होता है। मूल अथवा पत्ते पानी में पीने से उल्टी होकर जहर होता है। कड़वी तुम्बी के बीज और लोध्र पानी में पीसकर योनि में लेप करने से संकोचन होता है। इसका शुष्क चूर्ण नाक में सूँघने से पानी झरकर शिर-दर्द कम हो जाता है।

४७. कडुनाही—नाही की बेलें पंजाब, सिंध, गुजरात और दक्खिन में होती है। यह दो प्रकार की होती है—मीठी और कड़वी। यह बाँझ करेले की जड़ से बहुत मिलती है। नाही—कड़वी, कषैली, वामक, रेचक और उष्ण

है। रुधिर को शुद्ध करने और उपदंश को मिटाने के लिये इसका व्यवहार होता है। वायविडंग और इसके चूर्ण की फक्की देने से पेट के कीड़े मरते हैं। वैद्यक-ग्रन्थों में इसका वर्णन कहीं नहीं आता।

गुण—पौष्टिक, शोथघ्न है। इसकी गाँठ घिसकर पिलाने से मन्द ज्वर उतरता है।

४८. कुटज—"कूड़े की छाल" करके जो छाल बाजार में मिलती है, वह इसी वृक्ष की छाल है। इसकी छाल मोटी और वजन में हल्की होती है। स्वाद में बहुत कड़वी होती है।

गुण—स्तम्भक, रक्तशोधक, ज्वरघ्न, पित्त-शामक तथा दीपक है। अतिसार एवं रक्तातिसार में भिन्न-भिन्न रूप से दी जाती है। प्रवाहिका और रक्तातिसार में बहुत लाभ करता है। आर्य-शास्त्र में यह दवाई अतिसार के लिये, विशेषतः रक्तातिसार में बहुत लाभदायक है। रक्तार्श के ऊपर भी इसका असर बहुत क़ीमती होता है। विषम ज्वर तथा आंत्र-ज्वर में इसकी छाल लगभग क्वीनीन का काम करती है। बनावट—१. कुटजारिष्ट। २. कुटजावलेह।

४९. कुटकी—यह एक मोटी मूलवाली गाँठ है। इसके वृक्ष के पत्ते अंडे के आकार के होते हैं। इसकी पतली लकड़ी पंसारी के यहाँ मिलती है। ये लकड़ियाँ स्वाद में कड़वी, रंग में काली होती हैं। स्वाद में बहुत कड़वी होने से इसे "तिक्ता" कहते हैं।

गुण—सारक, भेदक, पाचक और ज्वरघ्न है। कुटकी अग्निदीपक, पाचक तथा तिक्त होने से ज्वर में लाभ करती है।

वीर्य में शीत है, पाचन में हल्की है। पित्त-शोधक एवं पित्त-शामक होने से इसका काढ़ा कामला में बहुत लाभ करता है। क्लोम में रुके हुये पित्त को अपने तिक्त और सारक गुण के कारण बाहर करती है। बालकों के लिये सारक और प्रभावशाली औषधि है। बनावट—तिक्तादि-काढ़ा, कुटकी-पाचन, कुटकी-चूर्ण और कद्रूभर्जित

५०. करवीर—हिन्दी और मराठी में इसे कनेर कहते हैं। इसका फूल श्वेत, लाल, पीला और गुलाबी चार प्रकार का होता है। औषधि के काम में प्रायः इसका मूल व्यवहृत होता है।

गुण—तीक्ष्ण, उष्ण तथा संग्राही है। प्रमेह, कुष्ठ तथा अर्श में काम आता है। यह विषैला वृक्ष है। इसका मूल घिसकर सर्प-दंश और वृश्चिक-विष पर लगाया जाता है। मूल को पेड़ू या भग पर लेप करने से प्रसव शीघ्र हो जाता है। इसके पत्ते काँजी में पीसकर दाद आदि चर्म-रोगों पर लगाये जाते हैं। बनावट—करवीरादि तेल।

५१. काम्पील्ल—इसको कमीला कहते हैं। यह एक वृक्ष के ऊपर लगता है, उसके फल में से निकलता है। इसके वृक्ष के ऊपर गाँठें होती हैं। इसका रंग लाल होता है।

गुण—कृमिघ्न, रेचक तथा रोपण है। काम्पील्ल का मरहम घाव, विस्फोटक और व्रण पर लगाया जाता है। कृमिघ्न होने से गुड़ अथवा छाछ के साथ लेने से पेट के कृमि निकल जाते हैं। काम्पील्ल रेचक है, परन्तु अधिक मात्रा में लेने से दर्द करता है।

५२. कपूर—यह एक प्रकार के वृक्ष से उत्पन्न होता है। कपूर का उपयोग प्राचीन ग्रन्थों में औषधि-रूप में कम मिलता है, परन्तु शरीर वास के लिये इसका उपयोग किया जाता था। राज-निघन्टु के अनुसार यह तीन प्रकार का है—१—भीमसेनी कपूर, २—पत्री, ३—चीनी। मलाया, सुमात्रा, चीन, जापान में इसके वृक्ष होते हैं। वहाँ से इसके वृक्ष भारत में आये हैं। कपूर के वृक्ष से तेल निकलता है। यह वृक्ष में से निकलता है। जब वृक्ष आठ वर्ष का हो जाता है, तो उसको काटकर टुकड़े-टुकड़े कर दिये जाते हैं। इन टुकड़ों की छाल के नीचे छोटे-छोटे श्वेत कण होते हैं, यह कच्चा कपूर है। पत्री कपूर वृक्ष के पत्तों से बनाया जाता है। इस प्रकार के पेड़ चीन, टेनासरीम और कर्मोन पर्वत पर होते हैं। टुकड़ों से बने हुये कपूर से यह कपूर हल्का रहता है।

गुण—उष्ण, स्वेदल, बलकारक, वीर्यस्त्रावावरोधक, मूत्राघात में व्यवहार किया जाता है। ताप तथा अन्य मूर्च्छा में देने से शरीर को चेतन करता है। प्रसूता के ज्वर में कपूर शीघ्र प्रभाव करता है। कुचले के विष का प्रति विष है। आक्षेप, उन्माद, भ्रम आदि में कपूर उत्तम लाभ करता है। कपूर की मात्रा थोड़ा-थोड़ा करके देनी चाहिये। एक बार बड़ी मात्रा देने से नुक़सान

करता है। कॉलरा की बेभान अवस्था में कपूर गरमी देता है। जिस समय नाड़ी धीमी पड़ रही हो, उस समय उत्तेजना देने के लिये इसका इंजैक्शन दिया जाता है। मधुमेह-जन्य "कौमा" रोग में अफीम और कपूर की गोली मूँग जितनी देनी चाहिये। अधिक मात्रा में यह हृदय की गति को अनियमित करके मृत्यु का कारण बन जाता है। कपूर का बाह्य उपयोग बहुत अधिक होता है। मोड़ चसका, कटिशूल आदि में कपूर को तिल-तैल में मिलाकर मालिश किया जाता है। कपूर दुर्गन्ध एवं कृमिनाशक है, इसलिये विषर्प, दाद आदि रोगों के मरहम में काम आता है। सुगन्धित पदार्थ होने से शरीर के अङ्गरोगों में, मंजन में पड़ता है। दाँत-दर्द में कपूर लाभ करता है। बड़ के दूध में कपूर घिसकर अंजन करने से आँख का फूला मिटता है। कपूर को पीसकर बत्ती बनाकर मूत्र-मार्ग में प्रविष्ठ करने से मूत्राघात अच्छा होता है। बनावट—कर्पूर-रस, कृमि-कुठार, कर्पूरासव, भीमसेनी कपूर

५३. **कपूरकचरी**—एक प्रकार के वृक्ष की जड़ है। इसका गोल टुकड़ा, जो कचूर से मिलता-जुलता है, बाजार में मिलता है। हिन्दी में इसको "गन्धपलाशी" कहते हैं।

गुण—शीतल, मुख्य उपयोग बाहर लगाने में किया जाता है। सुगन्धित तेलों में इसका उपयोग होता है। दाह में इसका लेप करना चहिये।

५४. **कपूरमधुरी**—यह वृक्ष एक से दो हाथ भर ऊँचा होता है। पत्ते तुलसी जैसे परन्तु श्वेत होते हैं। इसके ऊपर तुलसी जैसी मंजरी लगती है। कई लोग कपूरमधुरी और सारिवा को एक मानते हैं; परन्तु यह बात अशुद्ध है। इसका उपयोग सुगन्धित द्रव्यों में आता है।

गुण—तीखी, कड़वी, शीतल और बलकारक है। इसका उपयोग प्रमेह, ज्वर, रक्त-दोष में किया जाता है।

५५. **कमल**—कमल की उत्पत्ति तालाब में होती है। कमलनाल के ऊपर एक चौड़ा फूल होता है। पत्ता बहुत चौड़ा होता है। इसके कई भेद हैं। यथा—श्वेत कमल, लाल, नीला, गुलाबी। प्रत्येक का नाम भी भिन्न-भिन्न रक्खा हुआ है। यथा—श्वेत कमल का पुंडरीक, लाल

कमल का कोकनद, नीले कमल का इन्दीवर । इसके फल को कमल गट्टा कहते हैं। कच्चा होने पर इसे खाते हैं। यह पौष्टिक है, इसलिये खीर बनाकर खाई जाती है।

गुण—शीतल, तृप्तिकारक, वर्णकारक और तापहर है। रक्त-पित्त, तृषा, दाह, रक्त-दोष, विषर्प, विष आदि रोगों में विशेष लाभ करता है। गुदभ्रंश रोग में कमल के कोमल पत्ते को शक्कर के साथ खाना चाहिये। कमल और केले के पत्तों की शय्या बनाकर सोने से शरीर का दाह शान्त होता है। श्वेत कमल की कलियाँ, मुलहट्टी और शर्करा का काढ़ा या शर्बत पीने से पित्त की गरमी शान्त होती है। फूल संग्राही है, और इसलिये अर्श-रोग में रक्त बन्द करता है।

५६. करञ्ज—करञ्ज का वृक्ष मोटा और बड़ा होता है। इसका फल बादाम जैसा होता है। उसपर काँटे होते हैं। इसके अन्दर से बीज निकलते हैं। जो ऊपर से भूरे नीले से होते हैं। इससे तेल बनता है। दवाई के रूप में इसकी छाल, मूल, फल काम में आते हैं।

गुण—वातहर, ज्वरहर, कुष्ठहर, प्रमेहहर, शुक्रदोषहर एवं उष्ण है। विशेष करके इसका उपयोग बाहर लगाने में किया जाता है। इसके बीज का काढ़ा देने से बहुत जोर का पसीना आता है और ज्वर उतर जाता है। यह एक उत्तम स्वेदक है। इसके पत्ते काँजी में पीसकर लेप करने से चर्म-रोग अच्छे होते हैं। इसका तेल व्रणों का शोधक और रोपक है। कड़ुवा होने से कृमिनाशक है। दुष्ट व्रणों पर इसके पत्तों की पुल्टिस बाँधनी चाहिये। त्वचा के रोगों के लिये, सिर में पड़ी जू आदि को मारने के लिये यह एक उत्तम औषधि है। बनावट—करञ्जादि तैल।

५७. किरातक (चिरायता)—यह औषधि आर्य-चिकित्सा-शास्त्र में बहुत काम आती है। ज्वर एवं पित्तहर तथा रक्त-शुद्धि के लिये इसका उपयोग प्रायः होता है। इसका वृक्ष एक से दो हाथ ऊँचा होता है। पत्ते नीम के पत्ते की भाँति होते हैं। नीम के समान कड़ुवा होने से इसको "भूनिम्ब" कहते हैं। इसका सम्पूर्ण वृक्ष काम में आता है। हिमालय और कश्मीर में बहुतायत से होता है।

गुण—ज्वरघ्न, सारक, कृमिघ्न, पित्त-नाशक, है। ज्वर के सब पाचनों में प्रायः इसका उपयोग होता है। बनावट—भूनिम्बादि काढ़ा (किरातादि पाचन), महासुदर्शन-चूर्ण, लघुसुदर्शन चूर्ण।

५८. **कालीजीरी**—यह जीरे का भेद है। इसमें जीरे की गन्ध रहती है। इसका स्वाद कडुवा और तीखा होता है।

गुण—उष्ण है। कफ, वायु, शूल और अफारे को दूर करता है। यह उद्गार को मिटाता है।

५९. **कलंभ**—कलभ के टुकड़े पंसारियों के यहाँ ½ इञ्च से २ इञ्च तक घेरेवाले बीच से पीले रङ्ग के मिलते हैं। इनके बीच में चक्र होते हैं। यह दवाई सम्भवतः कोलम्बो, लङ्का से आई है, इसलिये इसको अनार्य-भाषा में "कोलम्बीया" कहते है।

गुण—कटु, पौष्टिक, पाचक तथा भेदक है। ज्वर में, अजीर्ण में, ज्वर की निर्बलता में, गर्भवती स्त्री के वमन में इसका उपयोग होता है। आर्य-वैद्य इसका उपयोग मन्दाग्नि और ज्वर में करते हैं।

६०. **करौंदा**—करौंदे का वृक्ष जङ्गल में बहुत होता है। इसका फूल जूही के समान श्वेत, ख़ुशबूदार होता है। इसका फल छोटा बेर के समान होता है। जब फल पकता है, तो जामुन के रङ्ग का हो जाता है। स्वाद में खट्टा और मीठा होता है।

गुण—शीतल है, त्रिदोष, विष, यकृत-शोथ, और कृमि को नष्ट करता है और दस्त साफ़ लाता है।

६१. **कसौंदी**—यह प्रायः बरसात में बहुत होती है। इसका पौधा एक या दो हाथ ऊँचा होता है। इसके पत्ते तक्र के साथ पीसकर लगाने से दाद मिटती है। कुष्ठ एवं त्वचा के कण्डू-युक्त रोगों के लिये यह अमोघ दवाई है।

६२. **कुलत्थी**—यह वस्तु खेतों में उत्पन्न होती है। इसके दो भेद हैं, श्वेत और लाल। साधारणतः इसका उपयोग दाल के रूप में किया जाता है—इसका दाना अलसी के साथ बहुत कुछ मिलता है। धातुओं के शोधन में इसका काढ़ा काम में आता है।

गुण—उष्ण, मूत्रल, स्वेदहर तथा अश्मरीघ्न है। वायु के रोग से मूत्र

रुका हुआ हो, या पथरी से मूत्र रुक जाय, तो इसके काढ़े के साथ योग्य मूत्रल दवा देने से मूत्र आजाता है। शरीर में शीत लगने पर शरीर को गरम बनाने के लिये कुलथी का चूर्ण शरीर पर रगड़ा जाता है। स्त्रियों के रजो-दोष में तथा प्रसूता के गर्भाशय की शुद्धि के लिये इसका काढ़ा बहुत दिनों तक दिया जाता है।

६३. कठ करञ्जवा—इसको नाटा करञ्ज भी कहते हैं। इसका वृक्ष बड़ा होता है। इसमें काँटे बहुत होते हैं। इसके पत्ते इमली के पत्तों से मिलते हैं। फल के ऊपर भी काँटे होते हैं। इसके बीज, पत्ते और मूल काम में आते हैं।

गुण—कृमिघ्न, पौष्टिक, ज्वरघ्न, पाचक और स्वेद लानेवाला है। मलेरिया के ऊपर इसका असर अच्छा है, परन्तु किनीन से कम। स्वाद में कड़ुवा होता है। जिनको किनीन माफिक न आती हो, उनके लिये इसका उपयोग उत्तम है। इसके पत्तों का रस दूध के साथ लेने से और सम्पूर्ण दिनभर दूध के ऊपर रहने से संग्रहणी में लाभ होता है। इसके पत्ते या मूल का काढ़ा पेट के कृमि पर दिया जाता है। पशुओं के लिये भी इसका काढ़ा या चूर्ण लाभदायक है। इससे उल्टी, हिचकी, कफ, शोष, प्लीहा आदि मिटते हैं।

६४. काकड़ा-शृङ्गी—काकड़ा-शृङ्गी हिमालय में होती है। इस वृक्ष की डालियों पर कीड़े रहते हैं, उन्हींसे इसके फल भर जाते हैं। काकड़ा-शृङ्गी दो इञ्च लम्बी, एक इञ्च चौड़ी और सिरे पर नोकदार होती है। काकड़ा-शृङ्गी को काम में लाने से पूर्व इसको तोड़कर इसके अन्दर से कीड़े आदि निकाल देने चाहियें। जो काकड़ा-शृङ्गी भारी है, वह बरतने में अच्छी होती है।

गुण—कफघ्न। यह दवाई बालकों के लिये अमृत है। खाँसी में मधु के साथ या दूध में उबालकर, फेफड़ों के रोगों में तथा ज्वर में इसका उपयोग चूर्ण या काढ़े के रूप में करना चाहिये। दम भरने में भी इसका उपयोग होता है। बनावट—शृंग्यादि-चूर्ण।

६५. ककड़ी—यह सर्वत्र प्रसिद्ध है। साधारणत: खाने में और शाक बनाने में इसका उपयोग होता है। वर्षा-ऋतु में खाने के योग्य चीज नहीं है।

गुण—मूत्रल, ठण्डी, प्यास कम करनेवाली। इसके बीजों को घोटकर बादाम आदि के साथ पीने से शरीर में ठण्डक होती है। शक्कर तथा जीरे के साथ लेने से मूत्राघात मिटता है। ककड़ी के बीज और कबूतर की बीट इन दोनों को मिलाकर चावल के धोवन के साथ देने पर मूत्रमार्ग की शर्करा साफ़ हो जाती है। ककड़ी के बीज एक तोला, श्वेत कमल की कलियाँ या कमलगट्टा पीसकर उसमें जीरा और शर्करा मिलाकर देने से स्त्रियों का श्वेत-प्रदर अच्छा होता है। दूध में पानी मिलाकर ककड़ी के बीजों के चूर्ण में जौखार मिलाकर लेने से मूत्र-विरेचक प्रभाव होता है।

६६. **कचनार**—इसका वृक्ष ३०-४० फीट ऊँचा होता है। इसपर लाल, गुलाबी रंग का सुन्दर फूल आता है। औषधि के काम में इसकी छाल बरती जाती है।

गुण—शोधक, पौष्टिक, रोपण, व्रणनाशक तथा कफहर है। जिन रोगियों को थोड़ा-थोड़ा ज्वर बना रहता है, शरीर पर गाँठें उभर आती हैं, उनके लिये यह वृक्ष बहुत लाभदायक है। इसके फूलों का रायता बनाकर खाया जाता है। गले में जब ग्रन्थियाँ पक जाती हैं, या उठ जाती हैं अथवा फूटकर व्रण का रूप ले लेती हैं, या कोई व्रण भरता न हो, या अस्थि गलने लगे, उस समय इसकी छाल का काढ़ा अथवा इसकी छाल के चूर्ण को गुग्गुल आदि औषधियों के साथ मिलाकर देने से बहुत लाभ होता है। इसके सेवन से व्रण बहुत जल्दी भरता है। जिन बच्चों में बचपन से रक्तस्राव होता है, उनमें यह और शाल्मली बहुत उत्तम प्रभाव करते हैं। बनावट—कचनार गुग्गुल।

६७. **कुरण्ड**—इस फूल का झाड़ तीन-चार हाथ ऊँचा होता है। इसमें काँटा होता है। इसमें पीले रंग का फूल होता है, जिसमें से सुगन्ध आती है। इसके सब स्थानों पर लम्बे काँटे होते हैं।

गुण—उष्ण, कफघ्न, स्वेदल, वातहर, शोधक, रोपण। बालकों के दम चढ़ने पर इसके पत्तों का रस शहद के साथ दिया जाता है। इसके पत्तों की राख घी में मिलाकर लगाने से जख्म भर जाते हैं। इसके पत्तों के चबाने से दन्त-शूल मिटता है।

६८. **कत्था**—यह खैर के वृक्ष से निकलता है। यह वृक्ष अपनी

पक्की लकड़ी के लिये प्रसिद्ध है। आर्य-चिकित्सा में इसका उपयोग दो बातों में विशेषरूप से किया जाता है। एक तो कुष्ठ आदि रक्त-विकारों में—इसके लिये इसका काढ़ा या घृत अथवा अरिष्ठ बनता है। दूसरा शरीर को दृढ़ करने के लिये इसके लिये। खैर से "अयस्कृति" बनाई जाती है। अर्थात खदिर की जड़ में गड्ढा करके उस वृक्ष के प्रकाण्ड से एक लोहे का बर्त्तन रख दिया जाता है। इस बर्त्तन में खदिर का सार इकट्ठा होता रहता है। दोनों ही बातों में यह अमूल्य औषधि है। सुश्रुत के अनुसार भयंकर से भयंकर कुष्ठ-रोग भी इस खदिर के उपयोग से अच्छा हो जाता है।

गुण—ग्राही, शीतल, रोपण है। कत्था—इसके छाल का घन रसक्रिया द्वारा तैयार किया जाता है। अतिसार और रक्त-स्राव में तथा मुख शोधन में इसका उपयोग प्रायः होता है। इसके खाने से स्वर-भंग, खाँसी अच्छी होती है। मुँह के व्रणों पर इसका लेप करना उत्तम है। पान में मुख-रोग के लिये इसका उपयोग किया जाता है। पुराने अतिसार में अफीम के साथ देने से लाभ करता है। बनावट—खदिरारिष्ठ, खदिरादिवटी

६९. **कायफल**—कायफल के वृक्ष हिमालय में, समशीतोष्ण कटिबन्ध में, मलाया और सिंगापुर में होते हैं। इसके पत्ते लम्बे होते हैं। इसका फल जायफल जैसा लम्बा गोल होता है। इसकी छाल बहुत मोटी होती है। काम में इसकी छाल आती है। इसीको कायफल कहकर पहचानते हैं। जो छाल वजन में भारी, मोटी तथा ख़ुशबूदार हो, उसको बरतने के योग्य समझना चाहिये।

गुण—उष्ण, कफघ्न तथा वातहर है। इसका रस कषैला और कड़ुवा होता है। वायु तथा कफ से उत्पन्न रोग मे इसका उपयोग करना अच्छा है। प्रतिश्याय में इसकी छाल का नस्य दिया जाता है। कॉलरा-रोग में इसका चूर्ण मधु के साथ जीभ पर मलने से गरमी आती है। कायफल, काकड़ा-शृङ्गी और अतीस इनको परस्पर मिलाकर देने से बालकों की खाँसी में बहुत लाभ होता है। बनावट—कट्फलादि चूर्ण, कट्फलादि-क्वाथ, अष्टांगावलेहिका।

७०. **काला जीरा**—यह प्रायः काश्मीर में होता है। इसके अन्दर बहुत तीव्र ख़ुशबू होती है।

गुण—शोधक, त्वक्दोषहर, कृमिघ्न, भूख लगानेवाला है। चमड़ी के पुराने रोगों में जैसे विचर्चिका, कुष्ठ, दाद आदि में बहुत लाभ करती है। ज्वर में भी इसको दिया जाता है। उदर-शूल, अफरा, अजीर्ण में भी इसका उपयोग होता है। काले जीरे को कपड़े में रखने से कृमि नहीं लगते। काले जीरे को नीबू के रस में पीसकर शिर पर लगाने से शिर की जूँ मर जाती है। काला जीरा, कुचला और आँवले का चूर्ण मिलाकर लेप करने से विष-जन्य शोथ मिटता है।

७१. कालीपाठ (पाठा)—पाठा क्या वस्तु है, इसमें अभी बहुत भेद है। कोई तो बेल के रूप में प्रसिद्ध लता विशेष को पाठा मानते हैं। दूसरे इसको वृक्ष मानते हैं। चूँकि यह बृहत्पंचमूल में गिना हुआ है, जिसमें विशेष चार महावृक्ष हैं, अतः इसको वृक्षरूप से प्रसिद्ध वृक्ष ही जानना उचित है। वृक्ष ही की छाल को ग्रहण किया जाता है।

गुण—शोधक, ज्वरघ्न, कफघ्न, ग्राही, शोथहर है। अतिसार और प्रमेह में इसका उपयोग ग्राही होने से किया जाता है। इसके लिये चूर्ण या काढ़ा देते हैं। कुष्ठ में इसका उपयोग रक्त-शोधक गुण के लिये होता है। ज्वर और कास में इसका उपयोग अन्य औषधियों के साथ में होता है।

७२. कीटमारी—इसकी लता होती है। इसके पत्ते गोल, काले धुएँ के रंग के होते हैं। फूल क्रिमजी रंग का तथा कालिमावाला होता है। इसकी गन्ध बहुत बुरी होती है। इसका सारा वृक्ष औषधि के रूप में काम आता है।

गुण—उष्ण, वातहर, कफघ्न, ज्वरघ्न, कृमिनाशक तथा शोथनाशक है। इसका स्वाद कड़ुवा तथा वीर्य में गरम है। इसका उपयोग मुख्यतः ज्वर और कृमि-रोग में होता है। शोथ के ऊपर इसके पत्ते बाँधे जाते हैं। ज्वर में शरीर के ऊपर बाँधने से पसीना आकर ज्वर उतर जाता है। दुष्ट व्रण को साफ़ करने के लिये इसके पत्तों की पुलटिस बाँधनी चाहिये। इन्द्रजौ, वायविडंग, कीटमारी, कालीजीरी आदि वस्तुयें प्रत्येक घर में रहनी चाहियें। बालकों के लिये यह वस्तुयें अधिक उपयोगी हैं।

७३. कुकड़बेल (देवदाली)— इसका फल ककोड़ा जैसा होता है। इसके बीज काले होते हैं। कुछ लोग इसको और कड़ुवी तुम्बी को एक

मानते हैं। परन्तु यह ठीक नहीं; क्योंकि देवदाली के ऊपर काँटे होते हैं। इसलिये इसका दूसरा नाम "कण्टकफला" है, परन्तु तुम्बी की बेल पर काँटे नहीं होते। इसके पत्तों में पाँच खाँचे होते हैं। इसका फल रेचक तथा वामक है।

गुण—रेचक, वामक, छींक लानेवाला और विषनाशक है। अति-तीक्ष्ण और उष्ण है। रेचक और तीक्ष्ण गुण के कारण सर्पदंश और पागल कुत्ते के काटने पर काम आती है। साधारण विरेचन के लिये इसका उपयोग नहीं करना चाहिये; यदि कभी हो जाय, तो घी पीना चाहिये। इसके नस्य से कामला-रोग अच्छा होता है। उल्टी कराने से कफ मिटता है। अर्श में भी इसके फल का उपयोग होता है।

७४. द्रोणपुष्पी (गोमा)—वर्षा-ऋतु में यह विशेषतः उत्पन्न होती है। इसमें फूल गुच्छे के रूप में निकलता है। इसका फूल श्वेत होता है। पत्ता छोटा और लम्बा होता है।

गुण—स्वाद में कड़वी, कषैली और गरम है। वातहर, कफघ्न तथा स्वेदल है। रुचिकर, तीक्ष्ण, भेदक एवं सारक है। इसका उपयोग वात, कफ, अग्निमान्द्य, छाती के कफ, आम-शोथ, कामला, कृमि और शूल में होता है। इसका काढ़ा या स्वरस विषम ज्वर में दिया जाता है। बालकों की खाँसी तथा कफ में इसका स्वरस, टंकण और मधु के साथ मिलाकर देना चाहिये। इसके तथा नीम के पत्तों को पानी में उबालकर शोथ-युक्त स्थान पर बाँधना चाहिये।

७५. कुलिंजन—कुलिंजन का पौधा आमाहल्दी-जैसा होता है। देखने में अंगूर की बेल की भाँति लगता है। इसके पत्ते में मीठी गन्ध आती है। इसकी जड़ की गाँठें सुखाकर बाजार में कुलिञ्जन के नाम से बिकती हैं। इसका रंग भूरा और स्वाद तीखा होता है। स्वाद में और सुगन्ध में कुष्ठ से मिलता है, इसलिये इसको कुष्ठ-कुलञ्जन कहते हैं।

गुण—दीपन, पाचन, वातहर है। कुलिंजन का रस उष्ण और तीक्ष्ण है। इसके द्वारा मुँह और कण्ठ की शुद्धि होती है। इसका चूर्ण सूँघने से शिर-दर्द उतरता है। इसको मुँह में रखकर इसका रस चूसने से स्वर-भंग अच्छा होता है। इसका चूर्ण दन्तमञ्जन के रूप में या और मञ्जनों के साथ मिलाकर काम में लाया जा सकता है। इससे दाँत का दर्द भी दूर

होता है। मधु-प्रमेह में कुलिञ्जन देने से मूत्र की उत्पत्ति कम होती है। जो बालक तुतलाकर बोलते हों, या देर में बोलने लगें, उनके लिये इसकी लकड़ी का चूर्ण या अकरकरा-चूर्ण शहद के साथ देना उत्तम है।

७६. **चक्रमर्द**—इसका झाड़ चौमासा में उगता है। इसके पत्ते गोल तथा एक डण्डी पर पाँच-पाँच होते हैं। इसमें पीला फूल और फलियाँ लगती हैं। इन फलियों में से निकलनेवाले बीजों में "क्राइसोफैनिक एसिड" का मुख्य भाग रहता है। इस एसिड को अनार्य-चिकित्सक प्रायः दाद में बरतते हैं। इससे दाद नष्ट होती है। दवाई के काम में इसके पत्ते और बीज व्यवहार में लाये जाते हैं। इसके पत्तों को नीबू के रस में या तक्र में पीसकर लगाने से दाद मिटती है।

७७. **कुमारी**—इसको घीकार भी कहते हैं। यह प्रायः सर्वत्र होती है। इसकी दो जात हैं—एक कड़वी और दूसरी मीठी। कड़वी जात के घीक्वार का पाठा बहुत मोटा, रसदार और गर्भ से भरा होता है। इसका गुदा बहुत कड़ुवा होता है। एलुवा इसी गर्भ में से निकलता है। मीठे कुँवार के गूदे की भाजी तथा आचार बनता है, जो बहुत रुचिकर होता है।

गुण—रेचक, शोधक, पित्तशामक। कुँवार शीतल, कड़वी, अग्नि-वर्धक, रसायन, भेदक, मधुर, पुष्टिकारक तथा बलकारक है। कफ, पित्त, दम, श्वास, कास, प्लीहा, गुल्म, गाँठ, त्वचा के रोग, विस्फोटक आदि रोगों में फायदा करता है। १—मूत्राश्मरी में या मूत्र-शर्करा में इसके रस के अन्दर हल्दी मिलाकर पीना चाहिये। २—खाँसी में पत्ते को जरा गरम करके इसका रस निकाल लेना चाहिये। इसमें मधु और छोटी पिप्पली और लवंग का चूर्ण मिलाकर देना चाहिये। ३—कफ में इसी गूदे को शहद, सैंधानमक डालकर पीना चाहिये। ४—दुखती आँख पर कुँवार के रस में फुलाई हुई फिटकिरी और अफीम मिलाकर लेप करना चाहिये। ५—प्रमेह में, जलन में और अंगदाह में कुँवार के रस में जीरा तथा कालीमिर्च मिलाकर देना चाहिये। ६—जलने से बने घाव पर इसका गूदा बाँधना चाहिये। ७—कुँवार के पट्ठों को गरम करके पेट के ऊपर बाँधने से यकृत की शोथ, पेट की गाँठ और मल का जमाव टूटता है। विषम ज्वर के पित्त को कम करता है। इसका आसव यकृत तथा प्लीहोदर में लाभ देता है। कामले में भी कुँवार लाभ करता है। कुमारिकासव से मस्तिष्क की गरमी दूर होती है,

चक्कर हटता है। आँखों में तेज आता है। कुँवार का आसव स्त्रियों के रजोदोष को ठीक करता है। बनावट—कुमारिकासव।

७८. करीर—इसके वृक्ष प्रायः सर्वत्र मिलते हैं। मारवाड़ में विशेषतः पैदा होता है। इसके वृक्ष में कभी पत्ते नहीं होते, यहाँ तक कि बसन्त-ऋतु में भी इसमें पत्ता नहीं आते। इसमें फल आता है। इसको केरा कहते हैं। इसके फल का अचार बहुत उत्तम बनता है। फूलों का भी शाक बनता है।

गुण—उष्ण दवा के रूप में इसकी मूल बरता जाता है। मूल को चबाकर खाने से दाँत का दर्द मिटता है। व्रण, शोथ, अर्श, कफ, आम, विष, अरुचि, दमा, शूल, कृमि के रोगों में इसका मूल घिसकर पिलाने से फायदा होता है।

७९. केसर—इसको अरबी में "जाफरान" कहते हैं। यह एक प्रकार के पौधे का फूल होता है। इसका पौधा प्रायः स्पेन में और काश्मीर में होता है। केसर के नाम से इस पौधे की जड़, पतली शाखायें आदि सब बिकती हैं, इतना ही नहीं, परन्तु सन इत्यादि के धागे काटकर उनको रङ्गकर भी इसमें मिलाकर बेचते हैं।

गुण—गरम, स्तम्भन, वाजीकर तथा पौष्टिक है। केसर का मुख्य उपयोग शरीर में गर्मी देने के लिये, वाजीकर गुण के लिये किया जाता है। इसको पाकों में, रसों में, मिठाइयों में डाला जाता है। स्तम्भन गुण के कारण अतिसार में या स्वप्नदोष में अफीम के साथ देते हैं। हृदय को उत्ते-जित करता है। नाक में से रक्त गिरता हो, तो उसको बकरी के दूध में घोल-कर नस्य लेने से या माथे पर लगाने से रक्त बन्द हो जाता है। अर्धसीसी में या सिरदर्द में इसको घी में भूनकर नस्य लेने से लाभ होता है। गर्भिणी का रक्तस्राव बन्द करने के लिये इसको मक्खन में देना चाहिये। मात्रा १ से २ रत्ती। बनावट—कुमकुम वटी।

८०. कोकम (वृक्षाम्ल)—जिस प्रकार उत्तरीय भारत में अरहर या अन्य दाल आदि में खटास पैदा करने के लिये अमचूर का उपयोग होता है, उसी प्रकार दक्षिण भारत में कोकम का उपयोग होता है। यह प्रायः भारत के पश्चिमी समुद्र तट पर कोंकण, गोवा आदि प्रदेशों में होता है। यह वृक्ष बहुत ही सुन्दर होता है। इसमें नारङ्गी जैसा लाल फल होता है। इसके फल के अन्दर की गिरी और अन्दर जो पानी होता है, वह पीने

के काम में आता है। फल के ऊपर की छाल सुखा दी जाती है, इससे "कोकम" बनता है। कोकम के अन्दर बीज होते हैं। इसमें से तेल निकलता है, जो घी की तरह होता है, इसको "कोकोजम" कहते हैं। यही कोकोजम आज-कल घी के धोखे में बाजार में काम लाया जाता है। यह कोकोजम हाथ-पाँव फटने में लगाया जाता है।

गुण—ग्राही, मधुर तथा रुचिकर एवं अग्निदीपक। इसमें पौष्टिक अंश कुछ भी नहीं।

८१. **कैथ**—कैथ का वृक्ष प्रायः पहाड़ों पर होता है। इसका वृक्ष बहुत ऊँचा नहीं होता। कैथबिल के समान कठिन और धूसर रङ्ग का फल होता है। इसके फल के छिलके का और इसके गूदे का उपयोग दवाई के रूप में तथा चटनी के लिये किया जाता है।

गुण—शीतल, संग्राही, अम्ल और शोधक है। इसके गुण प्रायः बिल्व फल से मिलते हैं। संग्राही गुण होने के कारण अतिसार में बरता जाता है। इसका विशेष उपयोग पित्त-जन्य अतिसार में करना चाहिये। बनावट—कपित्थाष्टक चूर्ण।

८२. **कुष्माण्ड**—इसकी बेलें होती हैं। इसमें बहुत बड़ा फल लगता है। इसका छिलका श्वेत, हरा होता है। इसका शाक प्रायः कम बनता है, परन्तु मिठाई के काम में प्रायः इसका उपयोग होता है। अन्दर से श्वेत निकलता है। दवाई में यही काम आता है।

गुण—पित्तशामक, पौष्टिक, बलकारक, मेधावर्धक, ग्राही। नाक में से रक्त निकलने पर या अन्य रक्त-पित्त में यथा उरःक्षत में इसका स्वरस चीनी के साथ काम में लाने से रक्त बन्द हो जाता है। शिर की गरमी एवं अपस्मार, उन्माद, अनिद्रा आदि मस्तिष्क विकारों में इसका स्वरस, मुरब्बा, मिठाई बहुत लाभकारी है। ब्राह्मी घृत यदि इसके स्वरस में बनाया जाय, इसी प्रकार भृंगराज तैल यदि इसके साथ तैयार किया जाय, तो विशेष गुणकारी होते हैं। गर्भाशय की शुद्धि में इसका उपयोग होता है। धातुपौष्टिक होने से बहुत-से पाकों में पड़ता है। बनावट—कुष्माण्डावलेह, कुष्माण्डपाक, खण्ड-कुष्माण्ड, कुष्माण्ड का मुरब्बा।

८३. **कौंच**—कौंच की बेल बाड़ों पर होती है। इसमें फलियाँ आती हैं। इन फलियों के ऊपर रोवें होते हैं। इन फलियों में से दाने निकलते

हैं। यदि यह फली शरीर पर लग जाय अथवा कपड़े पर लगा दी जाय, तो बेहद खुजली होती है। इन बीजों में खुजली नहीं होती। चिकित्सा में यही बीज या इसकी जड़ काम में आती है। कौंच के दाने निकालने की रीति यह है कि इसकी फलियों के नीचे आग जला देनी चाहिये, जिससे रोयें जल जायँ, तब इसको हाथ लगाना चाहिये।

गुण—धातु-पौष्टिक, उष्ण, बाजीकरण, शुक्रल है। इसकी फलियाँ कृमिघ्न हैं। इसके काँटों को छुरी से छीलकर, इनको दही या गुड़ में एक दो दिवस तक देने से पेट के कृमि मर जाते हैं। पीछे विरेचन से इनको निकाल देना चाहिये। कौंच के पाक बनते हैं, जो पुष्टि के काम आते हैं। बनावट—आत्मगुप्तादि चूर्ण, बानरी गुटिका, कौंचपाक।

८४. **कंकोल**—इसकी पैदाइश चीन में होती है। हिमालय में भी होती है। इसकी बेल होती है। इसको शीतलचोनी से अलग समझना चाहिये। इसका दाना शीतलचीनी से बड़ा होता है।

गुण—शीतल, रोपक और सुगन्धित द्रव्य है। गनोरिया में इसको विशेषत: अनार्य-चिकित्सा में बरता जाता है। इसका तेल निकलता है। इसको बताशे या मिश्री के साथ दिया जाता है। सुगन्धित तेलों में इसको भी मिलाया जाता है।

८५. **खेतपापड़ा**—इसको संस्कृत में पर्पटक या पित्तपापड़ा कहते हैं। यह प्राय: खेतों में होता है, इसलिये इसको खेतपापड़ा कहते हैं। यह जवासे के पौधे से मिलता-जुलता है, परन्तु होता है बहुत छोटा। इसके ऊपर मंजरी होती है। इसके दो रूप हैं—एक लाल फूल का और दूसरा नीले फूल का। इसमें लाल फूल का उत्तम है। यह वर्षा-ऋतु में बहुतायत से होता है।

गुण—ज्वरघ्न और पित्त-शामक। यह शीतल है, इसलिये पित्त-ज्वर में दाह, प्यास, उल्टी, भ्रम आदि रोगों में दिया जाता है। वात, पित्त-ज्वर में इसको सोंठ या कालीमिर्च और पिप्पली के साथ देते हैं। पित्तपापड़े के हिम कषाय में शर्बत डालने से एक उत्तम पित्त-शामक शर्बत बनता है। बनावट—पर्पटादि काथ

८६. **खसखस के बीज**—इसको साधारण भाषा में पोस्त के डोडे कहते हैं। अंग्रेजी में इन डोडों को पोपी कहते हैं।

गुण—पीड़ाशामक, ग्राही, पौष्टिक, वातहर और वाजीकरण है। पीड़ाशामक गुण के लिये इन डोडों को पानी में उबालते हैं। उस पानी का स्वेद शोथ एवं पीड़ा-युक्त स्थान पर किया जाता है। संग्राही गुण के कारण अतिसार और स्वप्न-दोष में काम लाते हैं। इन डोडों को दूध में उबालकर और दूध को कढ़ाकर पीने से शरीर में पुष्टि और वाजीकरण होता है। इसको कई पाकों में मिलाकर वाजीकरण पाक तैयार करते हैं। अफीम भी इसीसे निकलती है। अफीम जितना गुण यद्यपि इसमें नहीं, परन्तु यह शरीर के लिये विशेषत: वाजीकरण प्रभाव के लिये तथा रेत-स्तम्भन के लिये अधिक श्रेष्ठ है।

८७. ढाक—यह एक मशहूर पेड़ है। यह दो प्रकार का होता है, एक लाल या पीला और दूसरा श्वेत फूल का। इनमें पहिले प्रकार का ढाक साधारण है। ढाक की प्रत्येक अनुशाखा में तीन पत्ते इकट्ठे होते हैं। इसलिये यह कहावत प्रसिद्ध है कि "वही ढाक के तीन पात"। इसके फूल बहुत सुन्दर होते हैं; परन्तु उनमें गन्ध नहीं होती। इसके फूलों से केसरिया पीला रङ्ग बनता है। इसमें लाल रङ्ग की लम्बी फलियाँ लगती हैं। इनके अन्दर से पापड़ा निकलता है। इनको ढाक-पापड़ा कहते हैं। इन पापड़ों का चूर्ण कृमियों के मारने के, विशेषत: पेट के कीड़ों को मारने के, काम आता है।

गुण—मूत्रल, कृमिनाशक, चक्षुष्य और संग्राही है। रक्त-शुद्धि में भी इसका काढ़ा बरता जाता है। इसके फूल ठण्डे हैं। मूत्रा-घात में पेडू पर इसके फूल पीसकर लेप करने से या उनकी भाप देने से मूत्र आता है। आर्य-चिकित्सा-शास्त्र में लिखा है कि यदि ऋतुमती स्त्री ढाक के पत्ते को पीसकर दूध के साथ ले ले, तो जिस स्त्री को गर्भ-धारण न होता हो, उसको भी हो जाता है। इसका काढ़ा अथवा फूलों का हिम कषाय शर्करा और जौखार के साथ पीने से मूत्राघात और प्रमेह में लाभ होता है। यज्ञ के लिये इसकी लकड़ी निर्दोष मानी गई है। स्त्रियों के योनिकन्द के ऊपर इसकी पुलटिस बाँधने से योनिकन्द गिर पड़ते हैं। सर्पदंश की अवस्था में इसकी छाल का स्वरस अथवा पानी में इसकी मूल घिसकर पिलानी चाहिये। ढाक के गूदे में अनार्य-चिकित्सा के "काइनो" जैसे गुण हैं। पलाश की जड़ में से पाताल यंत्र की विधि से तेल निकालकर उसका अंजन करने से आँखों की ज्योति ठीक होती है। बनावट—पलाशांजन।

८८. **खदिरसार**— विशेष वर्णन के लिये कत्था देखिये।

८९. **खुरासानी अजवायन**—इसमें और खेत में होनेवाली अजवायन में बहुत अन्तर है। संस्कृत का "यवानी" शब्द इसके लिये है और अजमोदा शब्द उस अजवायन के लिये। क्योंकि यह अजवायन खुरासान या 'पारस' (फारस) में होती थी, इसलिये इसको "पारसीक यवानी" कहते हैं। इसके खाने से नशा होता है। साधारणरूप में इसका व्यवहार खाने में नहीं होता। इसमें एक विषैला पदार्थ होता है, जिसका नाम "हाईसोमीन" है, यह $\frac{1}{2}$ सैकड़ा होता है। यह पीड़ाशामक, आक्षेप-निवारक, वायु और कृमिनाशक है। उन्माद में, प्रलाप में, हिस्टीरिया में, वात-विकारों में, पेट-दर्द में इसका उपयोग बड़ा चमत्कारिक प्रभाव रखता है। इससे उत्तेजित स्नायु ढीले पड़ जाते हैं। अधिक मात्रा में खाने से नशा चढ़ता है। इसके सत्त्व "हाई सोमीन" के अधिक मात्रा में शरीर के अन्दर जाने से भ्रम, आँखों में अँधेरा, पलकों में जड़त्व, एक वस्तु के दो दीखना आदि लक्षण होते हैं। प्राचीन रोम-राज्य में जिनको प्राण दण्ड दिया जाता था, उनको इसका रस पिलाया जाता था। साधारणत: इसका मुख्य उपयोग अजीर्ण और कृमिरोग में किया जाता है। मात्रा १ से २ बाल।

९०. **गोकर्णी (मूर्वा)**—इसकी बेलें हिन्दुस्तान के पूर्वीय किनारे पर ऊपर बङ्गाल से मद्रास तक होती हैं। फूल के अनुसार इसके दो भेद हैं—लाल और काला। इसका फूल गाय के कान के आकार का होता है। इससे सम्भवत: यह नाम इसको दिया गया है। इसमें लम्बी फलियाँ होती हैं। इनमें दाना होता है। ओषधि के रूप में इसका बीज, पत्ता और मूल सब बरते जाते हैं। इसका बीज रेचक है।

गुण—रेचक, मूत्रल, भेदनीय और संशोधक है। इसके बीज को घी में भूनकर उनकी कॉफी बनाकर देने से निशोथ जैसा विरेचन लगता है। सोंठ, सैंधानमक और गोकर्णी का बीज इनको चूर्ण के रूप में लेने से उत्तम विरेचन होता है। हरताल या संखिया विष के ऊपर इसका रस पिलाना चाहिये। कफ के संचय को तोड़ने के लिये इसका १ से २ तोला रस गाय के दूध में मिलाकर देना चाहिये। गर्भपात को रोकने के लिये इसकी जड़ को दूध में घिसकर पिलानी चाहिये।

९१. गरमाला (अमलतास)—इसका वृक्ष साधारण ऊँचा होता है। यह प्राय: जङ्गल में उगता है। इसका फूल सुनहले रंग का होता है, इसलिये इसको "हेमपुष्पी या स्वर्णपुष्पी" कहते हैं। इसमें हरी-हरी लम्बी-लम्बी फलियाँ लगती हैं, जो पकने पर काली हो जाती हैं। इन फलियों के अन्दर काला गूदा होता है। साधारणत: इसी गूदे का उपयोग किया जाता है। यह गूदा सुख विरेचक है। यूनानी-चिकित्सा में इसका प्राय: उपयोग रेचन के लिये किया जाता है। परन्तु आर्य-चिकित्सा में इसके पत्तों का उपयोग कुष्ठ के लिये तथा इसकी छाल या फलियों का उपयोग प्रमेह के लिये किया जाता है।

गुण—रेचक, कुष्ठघ्न है। इसका विरेचन सुरक्षित है। स्वाद में मीठा है। इसको बच्चों के लिये भी भली प्रकार दे सकते हैं। इसको विरेचन के लिये पानी में या अन्य काढ़ा में घोलकर फिर छानकर उसमें शर्बत या चीनी मिलाकर देना चाहिये। इसको आग पर गरम करने की जरूरत नहीं। मृदु विरेचन के लिये इसकी मात्रा ३ आना और रेचन के लिये १ तोला है। इसके अतिरिक्त गण्डमाला आदि गाँठों पर भी इसका लेप किया जाता है। इसके पत्ते जन्तु-नाशक हैं। दद्रु, कुष्ठ, खस आदि चर्म-विकारों में इसके पत्ते पीसकर नीबू के रस में या सरसों के तेल में अथवा तक्र में लगाने चाहियें। बालक के जन्म के पीछे जब शरीर पर शीत-पित्त या कोठ निकलें, उस समय इसके पत्तों को गाय के दूध में पीसकर लगाना चाहिये।

९२ गोभी (गोजिह्वा)—गोभी की जड़ का काढ़ा पिलाने से मूत्राघात मिटता है। इसके पत्तों को पीसकर टिकिया बना कर बाँधने से अक्षि-रोग मिटते हैं। इसके शाक के खाने से अर्श मिटता है। पत्तों की लुपरी गुदा पर बाँधने से गुदा का दाह कम होता है। सूखी खाँसी में हकीम इसकी चटनी देते हैं।

गुण—ठण्डी, पित्त-शामक, रोपण और ग्राही है।

९३. नील—इसका झाड़ १-२ हाथ ऊँचा होता है। इसका फूल गुलाबी रंग का और पत्ते शंखपुष्पी के आकार के होते हैं। इसमें टेढ़ी और गोल फलियाँ होती हैं।

गुण—शोधक, रोपण तथा रेचक एवं स्वाद में कड़वी होती है। इससे नीला रंग बनता है। बाजार में शुद्ध नील नहीं मिलता। जब से

विदेश से रंग आने लगा है, तबसे इसकी खेती भारत में मारी गई। इसका उपयोग आर्य-चिकित्सा में भृंगराज तैल के अन्दर मिलता है। इससे बाल काले हो जाते हैं। इस नील को धोये हुये घी में मिलाकर लगाने से दुष्ट व्रण अच्छा होता है।

९४. गिलोय(अमृता)—गिलोय की बेल होती है। बेल जिस वृक्ष या झाड़ का आश्रय लेकर फैलती है, उसका गुण, दोष बेल में आजाता है। इसलिये यदि गिलोय नीम के ऊपर फैली हो, तो उसका गुण अधिक होता है। गिलोय की बेल जितनी पुरानी होगी, इसकी शाखायें जितनी मोटी होंगी, उतनी अधिक यह गुणकारी होगी। कच्ची बेलवाली गिलोय अपक्व रस होने से बिलकुल गुणकारी नहीं होती।

गुण—ज्वरघ्न, शोधक, मूत्रल, रक्त-पित्तहर एवं वृष्य तथा प्रमेह-नाशक है। कटु होने से पित्त-शामक है। १. गिलोय वात, पित्त और कफ तीनों दोषों को शान्त करती है। गिलोय के रस में मधु डालकर पीने से कफ का; शर्करा डालकर पीने से पित्त का और घी डालकर पीने से वायु का शमन होता है। ३. वात-रक्त तथा अन्य त्वचा के रोगों के लिये गिलोय अमृत-स्वरूप है। ४. गिलोय के काढ़ा में गुग्गुल या एरण्ड-तैल मिलाकर पीने से कफ रक्त-दोष हटता है, वायु-रोग नष्ट होते हैं। ५. गिलोय, अमलतास और वासा इनके काढ़ा में एरण्ड-तैल डालकर पीने से वात-रक्त नष्ट होता है। इसके हिम कषाय में या स्वरस में शहद डालकर पीने से प्रमेह और उल्टी बन्द होती है। गिलोय के काढ़े में पिपली चूर्ण मिलाकर पीने से जीर्ण ज्वर नष्ट होता है। गिलोय से इसका सत्त्व निकाला जाता है, जो देखने में श्वेत होता है और स्वाद में फीका होता है। बाजार के सत्त्व में प्रायः मिलावट रहती है। गिलोय के रस की या हिम कषाय की घन रस-क्रिया बहुत अधिक गुणकारी होती है। गिलोय को सदा हरा ही काम में लाना चाहिये। केवल चूर्ण करने के लिये इसको शुष्क लेना चाहिये। गिलोय की जड़ को कूटकर १५ से २० ग्रेन की मात्रा में बीस-बीस मिनट बाद देने वमन होकर साँप का विष उतर जाता है। जीर्ण-ज्वर, विषम-ज्वर, प्रमेह, वात-रक्त में विशेष उपयोगी है। बनावट—अमृता-स्वरस, गुडूच्यादि क्वाथ, रसायन-चूर्ण, अमृतामोदक, अमृताघृत, अमृतारिष्ठ, संशमनी।

९५. गुग्गुल—गुग्गुल एक प्रकार की गोंद है। इसके वृक्ष सिंगा-

पुर, सिन्ध और मारवाड़ में होते हैं । गर्मियों के दिनों में इस वृक्ष में से रस चूता है। वह गिरकर जम जाता है। सूखने पर इसको उठा लाते हैं। इसको गुग्गुल कहते हैं। गुग्गुल की कई जातियाँ हैं; परन्तु जो गुग्गुल स्वर्ण के समान पीला, लालिमा लिये हुये, पारदर्शक और बड़ा होता है, उसको महिसाक्ष गुग्गुल कहते हैं। यह गुग्गुल सर्वोत्तम है । इस गुग्गुल में मिट्टी, पत्थरों के टुकड़े, पत्ते आदि पदार्थ मिले रहते हैं, अतः काम में लाने से पूर्व इसका शोधन कर लेना चाहिये ।

गुण— वात-नाशक, रक्त-शोधक, सारक, रोपण और पौष्टिक है। जन्तुघ्न होने से इसका धुवाँ दिया जाता है, इसका धुवाँ सुगन्धि युक्त होता है। गुग्गुल का उपयोग स्नायु-संधि तथा वात रोगों में विशेषतः किया जाता है। नर्वस के कारण उत्पन्न वात रोगों में यथा आक्षेप या पक्षाघात आदि रोगों में इसका उपयोग कम होता है; परन्तु मांसपेशी सम्बन्धी रोगों में जैसे—अंग का गति न करना, संधि की सूजन आदि में इसका विशेष उपयोग होता है। गुग्गुल के मूत्रल और शोधक गुण के कारण वात-रक्त और मूत्राशय के रोगों में भी उपयोग होता है। अस्थिगत व्रण तथा गम्भीर व्रणों में इसका अन्तः उपयोग शीघ्र लाभदायक है। स्त्रियों के रजोदोष और पुरुषों के रजोदोष को अच्छा करता है। इसका बाह्य उपयोग भी संधिवात, पार्श्व-शूल आदि में होता है । अनार्य-चिकित्सा की "एन्टीफूलोजैस्टीन" से इसका असर कम नहीं। गुग्गुल को घी से बहुत स्नेह है, इसलिये अन्तः उपयोग के तथा कृमिनाशक गुण के लिये धुवाँ देने में इसके अन्दर घी की मात्रा अधिक से अधिक डालना चाहिये। गुग्गुल में जितना घी डाला जायगा, उतना ही यह अधिक गुणकारी होगा । गुग्गुल की बनावट बहुत हैं। यहाँ पर मुख्य-मुख्य बनावटें नीचे दी जाती हैं। बनावट—अमृता गुग्गुल, कांचनार गुग्गुल, केशोर गुग्गुल, योगराज गुग्गुल, गोक्षुरादि गुग्गुल, त्रयोदशांग गुग्गुल, त्रिफला गुग्गुल, पथ्यादि गुग्गुल, सिंहनादि गुग्गुल, रास्ना गुग्गुल।

९६. गोंद—भिन्न-भिन्न वृक्षों में से जो रस झरकर निकलता है, उसे गोंद कहते हैं। कीकर, सिम्बल, बबूल, नीम आदि कई वृक्षों से गोंद निकाला जाता है। खाने के काम में बबूल, कीकर, सिम्बल का गोंद आता है। इसके अतिरिक्त तैल-युक्त दवाइयों में इनका मेल करने से उनका सफेद "एम्लसन" बन जाता है, इससे पीने में बुरी नहीं लगती ।

गुण—पौष्टिक, चिकना करनेवाली है। पौष्टिक गुण के कारण कई प्रकार के पाकों में, लड्डुवों में पड़ती है। चिकना होने से पुरुष और स्त्री के वीर्य और रज के ऊपर भी प्रभाव करती है। गोंद के उपयोग से स्त्रियों के श्वेत प्रदर में लाभ होता है। इससे कमर का दर्द भी दूर होता है।

९७. **गुलाब के फूल**—गुलाब का फूल सर्वत्र प्रसिद्ध है। इसकी अधिक उत्पत्ति तुर्किस्तान में होती है। वहाँ इसके बन के बन होते हैं। इसके दो भेद हैं, मौसमी और बरसाती। फूलों की भिन्नता के कारण इसके बहुत से भेद हैं। इसकी महक के कारण शौकीन लोग इसपर मुग्ध हैं। कई प्रकार की वस्तुएँ जैसे, गुलाब का अर्क, इसका इत्र आदि बाजार में बिकते हैं।

गुण—शीतल, सारक और सुगन्धि-दायक एवं पौष्टिक है। शीतल होने से इसका शर्बत गर्मियों में पिया जाता है। इसका अर्क कपड़ों पर, धनी लोग पड़दों पर छिड़कते हैं। आर्य-चिकित्सा में पित्त-ज्वर तथा रक्त-पित्त में इसका उपयोग किया जाता है। सारक गुण के लिये इसके पत्तों से गुलकन्द बनाया जाता है। पत्तों को शक्कर के साथ खाने से या अन्य चीजों में मिलाकर देने से एक मृदुरेच लगता है। बच्चों को जुलाब देने के लिये उत्तम है। ठण्डा होने से आँख में डालनेवाली औषधियाँ इसमें बनाई जाती हैं। गुलाब का अर्क प्रवाल आदि की पुष्टि में काम आता है। बनावट—गुलकन्द, गुलाब का शर्बत।

९८. **गुलबाँस**—इसके अन्दर सायंकाल फूल आता है, इसलिये इसको "सायंकली" भी कहते हैं। इसका पौधा होता है। इसमें कई प्रकार के फूल उगते हैं, जैसे, लाल, पीला, श्वेत और पँचरङ्गी। इनमें श्वेत फूल का गुलबाँस सबसे अच्छा होता है। इसका फूल, पत्ता और मूल दवाई के रूप में बरती जाती हैं। पत्तों को गरम करके चोट-युक्त स्थान पर बाँध देने से लाभ होता है। इसकी जड़ में जो गाँठ होती है, वह चोपचीनी से मिलती-जुलती है। इस जड़ के चूर्ण को गाय के दूध के साथ देने से शरीर में शक्ति आती है और धातु की पुष्टि होती है।

९९. **गोखरू**—इसके दो भेद हैं, छोटे और बड़े। छोटे गोखरू जमीन पर फैले रहते हैं और बड़े गोखरू का पेड़ खड़ा रहता है। बड़े में

पाँच और छोटे में तीन काँटे होते हैं। दवाई में इसके सब अंग काम में आते हैं। वैद्य लोग बड़े गोखरू को अधिक पसन्द करते हैं।

गुण—पौष्टिक, उष्ण, मूत्रल, शीतल होने से एवं मूत्र-मार्ग के लिये अधिक उपयोगी होने से इसका उपयोग मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी और प्रमेह में किया जाता है। वातहर होने से मूत्राशय की वायु को नष्ट करता है। धातु की पुष्टि करता है, वीर्यस्राव को रोककर कमकूवत और नपुंसकत्व को दूर करता है। हस्त-दोषी मनुष्य के लिये गोखरू का चूर्ण, तिल-चूर्ण या अश्वगन्धा-चूर्ण के साथ लेकर ऊपर से दूध पीना चाहिये। गोखरू के हरे पत्तों के लुवाब में शक्कर डालकर पीने से प्रमेह की जलन कम होती है। बनावट—गोक्षुरादि क्वाथ, गोक्षुरादि अवलेह, गोक्षुरादि चूर्ण।

१००. गोरख मुण्डी—इसका पौधा हाथभर ऊँचा होता है। इसका पत्ता पतला परन्तु लम्बा, फूल आसमानी रङ्ग का तथा इसकी गन्ध तेज होती है। यह अधिकतर गीली भूमि में उगती है। इसका पञ्चांग काम में आता है।

गुण—कृमिघ्न, पाचक, बलवर्द्धक, रसायन और रक्त-शोधक है। गोरखमुण्डी का मूल कड़ुवा और रुचिकर होता है, इसीसे चिरायते की तरह भूख लगानेवाला है। इसका अर्क या स्वरस शहद के साथ रक्त-शुद्धि के लिये दिया जाता है। जख्म के ऊपर इसका रस लगाने से व्रण भर जाता है।

१०१. गुड़मार—यह एक प्रकार की बूटी है, जो मध्यभारत में अधिक होती है। इसको खा लेने पर किसी भी मीठी वस्तु का मिठास नहीं लगता। इसीसे इसको गुड़मार कहते हैं। लोगों का विचार है कि इससे "मधुमेह" पेशाब में जानेवाली शर्करा रुक जाती है। परन्तु अभी तक किसीको पूर्ण आराम होने की खबर मालूम नहीं हुई।

१०२. गोवाधारी लकड़ी—इस नाम की लकड़ी के टुकड़े पंसारियों के यहाँ मिलते हैं। यह लकड़ी विषैली नहीं है।

गुण—कटु पौष्टिक, कृमि तथा उदर-शूल में घिसकर पिलाई जाती है। इसी प्रकार शोथ, मचकोड़ आदि में दरियाई नारियल के साथ घिसकर लगाई जाती है और पीने को भी देते हैं। शोथ के ऊपर इसका लेप किया जाता है। आंत्रज्वर में बहुत लाभ करती है।

१०३. चन्दन—चन्दन के वृक्ष मैसूर, ट्रावनकोर और मलाबार में बहुत होते हैं। इसके पत्ते नीम जैसे और सुगन्धि-युक्त होते हैं। इसका फल बारीक काले रङ्ग का होता है। चन्दन के वृक्ष की लकड़ी काटकर उसको कुछ समय तक भूमि में दबाकर रखना चाहिये और फिर कुछ समय पश्चात् उसको निकालकर बरतना चाहिये। चन्दन के बहुत भेद हैं, जैसे श्वेतचन्दन पीलाचन्दन, बर्बर, हरिचन्दन, शङ्खचन्दन, लालचन्दन, पर्लंग, कालीयक आदि। चन्दन में से तेल निकलता है।

गुण—चन्दन स्वाद में जरा कड़वा, वीर्य में ठण्डा होता है। शीतल, पित्तशामक है, इसीलिये लेपों में पड़ता है। इसका लेप बहुत ठण्डक देता है। सुगन्धि गुण के लिये इसको स्नानरज चूर्ण में डाला जाता है। लू से बचाने के लिये इसका लेप माथे या शरीर पर किया जाता है। चन्दन, गुलाबजल और कपूर का लेप दाह की शान्ति करता है। चन्दन ज्वर की गरमी को कम करता है। खुजली के ऊपर चन्दन का तेल नीबू का रस मिलाकर लगाना चाहिये। गरमी, प्यास, दाह तथा रक्तातिसार में चन्दन को चावलों के धोवन में घिसकर शहद और शर्करा के साथ पीने से लाभ होता है। चन्दन का कल्क करके पीने से पूययुक्त प्रमेह मिटता है। अनार्य-चिकित्सक और यूनानी हकीम इस रोग में चन्दन का तेल देते हैं। प्रमेह तथा प्रदर के स्राव के लिये वंशलोचन, इलायची एक-एक तोला लेकर चन्दन के तेल से गोली बना लेनी चाहिये। इसको शर्बत के साथ पीना चाहिये। बनावट—चन्दन-चूर्ण, चन्दनादि-चूर्ण, चन्दनादि-तैल।

१०४. चणोठी (गुञ्जा)—इसकी बेल होती है। इसका पत्ता इमली के पत्ते से कुछ मिलता है। इस बेल में श्वेत और लाल दो प्रकार की रत्ती लगती हैं। इसकी जड़ मुलहट्ठी से बिलकुल मिलती है। इसके गुण मुलहट्ठी से मिलते हैं। यह भी बलकारक और कफनाशक है। दवाई रूप में इसकी जड़, पत्ते तथा फल काम में आते हैं। दवाई में श्वेत रत्ती बरतनी चाहिये।

गुण—उष्ण, वातहर, रोपण, पौष्टिक है। रत्ती के ऊपर की छाल विषैली होती है। खाँसी में रत्ती का पत्ता सेंककर बाँधना चाहिये। त्वचा के कई रोगों में, जैसे श्वित्र में—चीतामूल के साथ, बाल उड़ जा

५०

पर दाल की अवस्था में—इसका चूर्ण, हाथी-दाँत और रसौंत के साथ मिलाकर लगाते हैं। अधिक खाने से उल्टी होती है। पौष्टिक होने से इसका अन्त: उपयोग किया जाता है।

१०५. चमार दुधेली (कण्टकफला)—इसकी बहुत बड़ी बेल होती है। इसका फूल श्वेत होता है। इसका फूल आक के फूल की भाँति युग्म होता है। इसके ऊपर काँटे होते हैं। इसके तोड़ने से दूध निकलता है।

गुण—उष्ण, कफनाशक, शोथघ्न तथा कान्तिकारक। इसके पत्तों का शाक खाने से शोथ, कृमि, कोढ़, अर्श मिटता है। इसका फल गरम होता है।

१०६. चांगेरी—इसका पत्ता खट्टा-मीठा होता है। यह बागों में जहाँ पानी बहुत होता है और छाया होती है, वहाँ उगती है। इसमें तीन पत्ते होते हैं।

गुण—शीतल, पाचक, स्तम्भन। इसका स्वरस रक्तार्श में या रक्तातिसार में अथवा पित्तातिसार में, गुद-भ्रंश में दिया जाता है। इसके स्वरस में घी बनता है, जिसको चांगेरी-घृत कहते हैं। यह गुद-भ्रंश में या गर्भाशय-च्युति में दिया जाता है।

१०७. चित्रक (चीतामूल)—चीता का झाड़ दो-तीन हाथ ऊँचा होता है। इसकी डालियाँ पतली और गाँठवाली होती हैं। इसका फूल श्वेत होता है। परन्तु एक लाल फूल का भी चित्रक होता है। यह झाड़ गीली भूमि पर होता है। इसमें फूल वसन्त-ऋतु में निकलता है।

गुण—दीपन, पाचन तथा दम्भक है। चित्रक की मूल की [illegible] गरम है। त्वचा पर कूटकर बाँधने से छाला उत्पन्न हो जाता है [illegible] के [illegible] मूल से भी [illegible] में और गय [illegible], अग्निमान्द्य में विशेषत: काम आता। इसका अलग उपयोग कम है; परन्तु और दवाइयों के योग में बहुत ही प्रभाव करता है। संग्रहणी में भी इसका उपयोग अच्छे गुण के लिये जाता है। बनावट—चित्रक हरीतकी।

१०८. चोपचीनी—यह एक प्रकार के बेल की गाँठ है। इसका भावप्रकाश में देखने में आता है। यह चीन से आती है, इसलिये

इसका नाम चोपचीनी रक्खा गया है। चोपचीनी दो प्रकार की बाजार में मिलती है, एक तो भूरी या कुछ लाल लकड़ी जो तोल में भारी होती है, और दूसरी छिलकेदार पतले-पतले वर्कों में।

गुण—शोधक, उपदंशहर और पौष्टिक है। इसके सेवन से मूत्र-मार्ग का शोधन होता है। यह व्रण का रोपण करनेवाली है। इसलिये इसका उपयोग फिरंग-रोग में विशेषतः किया जाता है। इसके सेवन से अफीम की नशा छूट जाती है। इससे जहर की शान्ति होती है। पुरुषत्व को बढ़ाती है। अनार्य-चिकित्सक भी इसके पौष्टिक गुण को मानते है। बनावट—चोपचीनी-चूर्ण, चोपचीन्यादि-चूर्ण, चोपचीनी-पाक।

१०९. जटामांसी—जटामासी की जड़ें बिल्ली के रूँवटे की भाँति होती है। यह पानीवाले प्रदेशों में होती है। इसकी जड़ में से अलग-अलग [illegible] गुच्छे निकलते हैं। इसके पत्ते श्वेत होते हैं।

[illegible] गुण—वात, कफहर, वर्ण-प्रसादन, कण्डु-कुष्ठनाशक, पीड़ाशामक तथा [illegible] नाशक है। इसका उपयोग उन्माद, अपस्मार, अपतंत्रक में किया जाता है। अनार्य-चिकित्सा की "वैलरीयन" नामक औषधि का गुण इसमें मिलता है। इसका काढ़ा करके दिया जाता है। हिस्टीरिया-रोग में इसका प्रभाव अच्छा होता है।

११०. जौखार—जौ से इसको बनाया जाता है। इसमें पोटाश का भाग होता है। बाजार में जो जौखार मिलता है, वह शुद्ध नहीं होता। उसमें सर्जखार का मेल किया जाता है।

गुण—ठंडा, मूत्रल, रुक्ष, सारक, अग्निवर्द्धक तथा लेखन है। मेद, तृषा, पित्त, वायु, रक्तदोष, श्वास, कास, प्रमेह, पीनस में लाभ करता है। जौ का आटा तथा शर्करा समभाग खाने से बार-बार होता हुआ गर्भपात रुकता है। कफ तथा खाँसी में लाभ करता है। मकल्ल-शूल में प्रसव के पश्चात् की वेदनाओं में या प्रसवकालीन वेदनाओं में विशेष लाभ करता है। बालकों के भरणी रोग में, साँस चढ़ने में, जौखार को पिप्पल्ली और मधु के साथ चटाने से फायदा होता है। जौ का उपयोग शरीर को पुष्टि देता है। अँग्रेजी में "मल्टाईन कॉड लीवर" नामक जो औषधि आती है, उससे अधिक गुण इस जौ में रहते हैं। इसका दलिया विशेषतः लाभदायक है। विद्यार्थियों को चाहिये कि इसका उपयोग बढ़ायें। बनावट—यवक्षार।

१११. जवास—यह प्रायः धमासा के गुणों में, पत्तों में और काँटे में मिलता है। अन्तर केवल यह है कि यह धमासे से अधिक मोटा और बड़ा होता है। इसमें पतला लाल फूल आता है। गर्मियों में अधिक खिलता है। इसमें गोंद-जैसा रस दाने के आकार में जमता है। इसको "यवास-शर्करा" कहते हैं।

गुण—सारक एवं वात-पित्त नाशक है। इसके बहुत-से गुण मुलहट्ठी से मिलते हैं। इसके पञ्चांग को काढ़ा करके घन बनाने पर इसका स्वाद कड़ुवा एवं मुलहट्ठी के सत की भाँति लगता है। यह शीतल तथा पित्तशामक है। इससे प्यास एवं पित्त का ज्वर मिटता है। इसके पत्तों की बीड़ी पीने से खाँसी मिटती है। इसके काढ़े या स्वरस से हलका विष उतरता है।

११२. जामुन—यह प्रसिद्ध वृक्ष है। इसके पके हुए फल प्रायः खाने में आते हैं। औषधियों में इसके पत्ते, छाल, गुठली और फल काम में आते हैं।

गुण—ग्राही तथा शीतल। फलों की गुठली तथा इसका स्वरस अथवा पत्तों का पुटपाक स्वरस रक्तातिसार में, पित्तातिसार में लाभ करता है। इसकी गुठलियों का चूर्ण अथवा फल मधुमेह में शर्करा को कम करता है। इसकी छाल का काढ़ा संकोचक है, इसलिये गुदभ्रंश में, गर्भाशय-भ्रंश में अथवा योनि-संकोचन के लिये लाभकारी है। फलों का सिरका बनता है। यदि प्लीहा बढ़ी हो, तो लाभ करता है। जामुन के स्वरस में लोह मारने का गुण होता है। बनावट—जम्बादि स्वरस, जम्बूस्वरस।

११३. जायफल— जायफल का वृक्ष सुमात्रा। मलाया में होता है। यह इस वृक्ष का फल है। जायफल के ऊपर नारियल जैसा पर्त चढ़ा होता है। इसको जावित्री कहते हैं।

गुण—उष्ण, ग्राही है। जायफल मल को रोकता है, इसलिये अतिसार की दवाइयों में पड़ता है। जायफल से तेल निकलता है। यह गरम और उत्तेजक है, इसलिये तेल के रूप में अन्य औषधियों के साथ मिलाकर शिश्न पर लगाया जाता है। शिर-दर्द में जायफल घिसकर लगाया जाता है। अनिद्रा रोग में जायफल घी में घिसकर आँखों पर लगाना चाहिये। जलाकर इसकी राख दन्तमंजनों में मिलाने से उनमें उत्कृष्टता आती है। इसका

राख व्रणों पर लगाने से वह भर जाते हैं। सरदी, प्रतिश्याय और अतिसार में इसका उपयोग उत्तम है। मुख में निकलती हुई कीलों पर जायफल दूध में घिसकर लगाना चाहिये। बनावट—जातिफलादि चूर्ण।

११४. जावित्री—जायफल का सुपारी जैसा डोड़ा होता है। इसमें फूल-जैसी कली निकलती है। इसको जावित्री कहते हैं। इस कली के अन्दर जायफल रहता है। जायफल के ऊपर कौंच-जैसी सख्त छाल होती है। इसके ऊपर जावित्री लगी रहती है।

गुण—गरम है। स्वाद में तीखी, जरा कड़वी और मीठी है। कफ, अरुचि, मन्दाग्नि, कास, कृमि तथा विष को मिटाती है। कॉलरा में २ माशा जावित्री पीने से शरीर में गरमी आती है। आमातिसार और अतिसार के ऊपर जावित्री का अढ़ाई माशा चूर्ण गाय के दही में या छाछ में दिया जाता है।

११५. जीरा—[illegible] होता है। [illegible] में जो [illegible] बरता जाता है, वह सफेद जीरा है। [illegible] जीरा और प्रकार का होता है। उसका आकार काला रहता है। गन्ध उग्र और तेज [illegible] है।

गुण—दीपन, वातहर, कृमिनाशक है। जीर्ण ज्वर में एक-एक पैसा भर फंकी पुराने गुड़ के साथ लेनी चाहिये। प्रदर में जीरा तथा शर्करा को चावलों के धोवन में लेना चाहिये। ग्रहणी रोग में जीरा पर्पटियों के अनुपान के साथ दिया जाता है। खाने के दो-तीन घन्टे पीछे जो शूल होती है, उसमें जीरे को सैन्धानमक और हींग के साथ गरम पानी या घी में लेना चाहिये। हरताल के विष में जीरा तथा शक्कर सात दिन तक पीनी चाहिये। दूध बढ़ाने के लिये जीरा माताओं को दिया जाता है। जीरा हिक्का, आध्मान, शूल आदि को मिटाता है। बनावट—जीरा पाक।

११६. जुही (जाती)—इसका पौधा होता है। इसमें श्वेत फूल होता है। इसके दो भेद हैं, एक छोटे फूलवाली और दूसरी बड़े फूलवाली। छोटे फूलवाली को "चमेली" कहते हैं। दवाई में फूल तथा पत्ते सब काम में आते हैं। मोगरा और माध्वी भी जुही की जाति हैं।

गुण—रोपण। जुही में रोपण गुण होने से त्वचा के रोगों में, व्रणों में, घावों में लाभ करती है। जुही के पत्ते चबाने से मुँह की गरमी मिटती

है। जूही के पत्ते, दारुहल्दी तथा त्रिफला के मसाले करने से तीव्र मुखपाक मिटता है। बनावट—जात्यादि घृत और जात्यादि तैल।

११७ जेठीमधु (मुलहठी)—इसकी बेल होती है। पानीवाली एवं सूखी जमीन में उगती है। इसका पत्ता बहुत कुछ जवास के पत्ते से मिलता है। जेठीमधु का मूल पंसारियों के यहाँ मिलता है। यह खाने मे मीठी होती है, परन्तु इसका सत काले रङ्ग का और कुछ कड़ुवा होता है।

गुण—शीतल, कफघ्न, पौष्टिक और बलकारक है। दाहवाले ज्वरों में, खाँसी में, विशेषत: स्वरभंग-युक्त में इसका उपयोग होता है। वृष्य गुण के लिये इसका चूर्ण काम में आता है। नेत्र-रोग के लिये इसका चूर्ण तथा शिर में लगाने के तेलों में इसका दरकच चूर्ण डाला जाता है। नेत्र-रोगों मे शहद के साथ खाना चाहिये। पित्त, वात-रक्त, रक्तपित्त, क्षय, शोथ, विष, उल्टी मे दी जाती है। औषधियों का स्वाद ठीक करने के लिये इसको मिलाया जाता है। उबालकर काढ़ा करने से मुँह की गरमी मिटती है। यदि गर्भवती स्त्री का गर्भ अपूर्ण अवस्था में गिर जाय, तो उस स्त्री को मुलहठी दूध के साथ देनी चाहिये। स्त्रियों के रक्त-प्रदर में इसका चूर्ण ½ तोला शक्कर के साथ तथा तण्डुलोदक के साथ देना चाहिये। बनावट—यष्टिमधुकादि चूर्ण।

११८. ज़हरकुचला—यह गरम प्रदेशों में यथा मद्रास मे बहुत होता है। इसका फल नारङ्गी जैसा गोल और सुन्दर होता है। इसको 'रम्यफल' कहते हैं। इसके अन्दर जो चपटा गोल बीज होता है, उसका नाम ज़हरकुचला है। इसके ऊपर मखमल जैसा पड़ होता है। ज़हरकुचला स्वाद में बहुत कड़वा और विषैला है।

गुण—पौष्टिक और वातहर है। इसका प्रभाव विषैला होता है, इसलिये सम्भवत: प्राचीन आर्य-चिकित्सकों ने इसको महत्व नहीं दिया। परन्तु युक्ति एवं योग्य उपाय से इसका प्रभाव चमत्कारिक होता है। अनार्य-चिकित्सा में इसको एक मुख्य स्थान दिया गया है। ज्ञान तन्तुओं पर इसका बहुत असर होता है, इसलिये इनके प्राय: सब विकारों में इसका उपयोग किया गया है। इसके उपयोग से ढीले पड़े हुए निर्बल तन्तु सशक्त बनते हैं, इसलिये निर्बल एवं वृद्ध पुरुषों के लिये इसका उपयोग किया जाता है। इसके अधिक उपयोग से या देर तक लगातार सेवन करने से हाथ एवं पाँव के स्नायु तन जाते हैं।

चौड़ा और ५-६ इञ्च लम्बा होता है। इसका गुण तज से मिलता है। दीपन, पाचन, एवं सुगन्धित द्रव्य है। त्रिजातक में पड़ता है। गरम कफ वा अर्शनाशक, हिक्का, अरुचि, प्रतिश्याय, विष, वस्ति-रोग, त्रिदोष आदि में लाभ करता है। सुगन्धित मसालों में भी पड़ता है।

१२३. **तिल**—तिल का झाड़ सर्वत्र प्रसिद्ध है। इसमें से तेल निकलता है। यह तेल खाने के एवं बालों पर लगाने के काम आता है। तिल काले और श्वेत होते हैं। खाने में सफेद तिल्ली का तेल काम में आता है और काले तिल का तेल दवाई के काम में अच्छा है। इसमें से खली निकलती है। यह खली बैलों और भैंसों को दी जाती है। इसका भी उपयोग अर्श में तथा अन्य कई रोगों में होता है।

गुण—पौष्टिक, स्निग्ध, मूत्रल, ऋतु-प्रवर्त्तक तथा सारक है। तिल को मक्खन के साथ, या नागकेसर और मक्खन के साथ खाने से अर्श में लाभ करता है। इसकी लुपरी बाँधने से व्रण शीघ्र भर आता है। स्त्रियों को यदि ऋतु न आती हो, तो इसका काढ़ा पिलाना चाहिये। एक तोले काले तिल को २० तोले पानी में उबालकर पीछे जब पाँच तोला रह जाय, तब इसमें गुड़ डालकर पीने से ऋतु आती है। इसमें गाजर के बीज डालकर काढ़ा करके पिलाने से गर्भपात होता है। इसी प्रकार खली को पीसकर पेडू पर बाँधना चाहिये। मूत्रकृच्छ्र-रोग में या मूत्राघात में तिल या खली का लेप पेडू पर करना चाहिये। तारुण्य-पिटिका के ऊपर पुरानी खली को दूध या गोमूत्र में पीसकर लेप करना चाहिये। बालकों के रक्तातिसार में तिल तथा शर्करा का चूर्ण मधु में चाटना चाहिये। स्त्रियों के रक्त-गुल्म में तिल का काढ़ा, त्रिकटु, सेंकी हुई हींग, इसकी फाँको पीनी चाहिये।

तेल—मुँह के दर्द में तिल का तेल सेंधानमक के साथ लगाना चाहिये। धतूरे के विष में तिल का तेल और गरम पानी पीना चाहिये। तिल और गोखरू को दूध में उबालकर पीने से धातुस्राव बन्द होता है, नपुंसकता दूर होती है। ज्वर में विशेषतः जीर्ण ज्वर में, प्रमेह में तथा नित्य-प्रति तेल के मलने से शरीर कोमल, चिकना रहता है। बालों पर लगाने से उसमें चमक आती है।

१२४. **तवाशीर (तुगाक्षीरी)**—यह स्टार्चवाले पदार्थों की जड़

में से या उनसे उत्पन्न होता है। विशेषत: अरारोट की जड़ से बनाया जाता है। अब भी महाबालेश्वर की पहाड़ी पर हल्दी की जाति का एक कन्द होता है। उससे भी तवाखीरी बनाई जाती है। बाजार में जो तवाखीर बिकता है, उसमें कई वस्तुओं का सार मिला रहता है। तुगाक्षीरी को चरक सुश्रुत में जीवनीय और बृंहणी कहा गया है। सम्भवत: हिमालय में जो कन्द मिलता होगा, उससे निकली हुई तवाशीर में ये गुण हों। तवाखीर की कांजी बनती है। पंसारी गिलोय-सत्त्व में तवाखीर मिला देते हैं। बालकों के मुँह में यदि व्रण हो जाय, तो इसको लगाना चाहिये। इसकी रबड़ी पौष्टिक है।

१२५. **त्रायमाण**—यह पथरीली जमीन में होती है। हिमालय और उत्तर प्रदेश में पकता है। इसकी जड़ पंसारियों के यहाँ मिलती है। यह ईरान से आती है।

गुण—कटु और सारक है।

१२६. **तालीसपत्र**—इसका पौधा हिमालय में होता है। बाजार में तालीसपत्र के नाम से लकड़ी या डंठल मिलते हैं।

गुण—वातहर, दीपन, पाचन, कफघ्न, ग्राही और कासनाशक है। क्षय-रोग में और कास में इसका उपयोग विशेषत: होता है। उर:क्षत-रोग में बाँस के पत्र-स्वरस में इसको मधु के साथ देना चाहिये। सुगन्धित द्रव्य होने से तेल में पड़ता है। धातु को चेतन करने के लिये धातु-पौष्टिक औषधियों में पड़ता है। यह मल को बाँधता है। बनावट—तालीसादि-चूर्ण।

१२७. **तुलसी**—यह एक सुगन्धित मंजरीवाला पवित्र वृक्ष है। इसीसे मन्दिरों में लगाया जाता है। लोग इसे देवताओं पर चढ़ाते हैं। इसकी मंजरियों में 'तकमरीया' से छोटा काला बीज निकलता है। तुलसी की दो जाते हैं—काली तुलसी और श्वेत या रामतुलसी। गुण में दोनों समान हैं।

गुण—उष्ण, तीक्ष्ण तथा अग्निदीपक है। वायु, श्वास, कास, हिचकी, उल्टी, कृमि, विष तथा भूतज्वर, ताव, आक्षेप के ऊपर काम में लाई जाती है। इसके पत्तों की चाय बहुत बढ़िया बनती है। लगभग १ तोले पत्तों को २० तोले पानी में उबालना चाहिये। जब आधा या चौथाई रह जाय, तो इसमें दूध मिलाकर पीना चाहिये। इसमें सोंठ, कालीमिर्च, दालचीनी डाल

दी जाय, तो और भी बढ़िया स्वाद बन जाता है। इसके पीने से ताव, सुस्ती, अरुचि, दाह, वायु एवं पित्त शान्त होते हैं। तुलसी के वृक्ष के पास मच्छर, साँप, बिच्छू नहीं आते। मलेरिया के ज्वर में तुलसी बहुत उपयोगी है। इसके तथा बेल के पत्तों के काढ़ा से मलेरिया के ज्वर को आराम होता है। इसका धुवाँ तथा वृक्ष मच्छर के लिये अच्छा है। बनावट—तुलसी-स्वरस।

१२८. थोर—इसके कई भेद हैं। साधारणतः दो प्रकार के थोर काम में आते हैं, एक डण्डा थोर और दूसरा दूधिया थोर। एक थोर में दूध होता है और दूसरे में बड़े-बड़े पत्ते होते हैं। गुण—लगभग समान है।

गुण—उष्ण, शोधक तथा विरेचक है। इसका दूध लगाने से शरीर पर फोला उठ जाता है। दुखती हुआ संधि में लोग इसको बाँधते हैं। पुलटिस के रूप में व्रण पकाने के लिये इसका उपयोग होता है। कई वायुहर चूर्णों को इसके दूध की भावना देने से गुण बढ़ता है। जलोदर आदि रोगों में जब तीव्र विरेचन की आवश्यकता होती है, उस समय इसका उपयोग करना अच्छा है। इसको जलाकर राख बनाकर उसमें तेल मिलाकर लगाने से त्वचा की खुजली मिटती है। इस राख को अरडूसे के रस में या शहद में देने से छाती का कफ मिटता है। गाँठ के ऊपर दण्डाथोर का लेप होता है। दमे के ऊपर आक का फूल अपामार्ग की मूल इनको थोर के दूध में लगाना चाहिये। सूखी खाज के ऊपर थोर का दूध लगाने से प्रथम पकाता है और फिर मिटता है।

१२९. दन्ती संस्कृत नाम जयपाल और हिन्दी में जमालगोटा कहते हैं। इसका झाड़ होता है। इसको दन्ती कहते हैं और इसके फल को जमालगोटा कहते हैं। पंसारियों के यहाँ इसकी मूल नहीं मिलती; परन्तु फल या बीज मिलता है। दन्ती की दो जातें हैं, एक छोटी (लघु) दन्ती और दूसरी बड़ी (बृहद्) दन्ती। इसका बीज भी छोटा और बड़ा होता है। इसकी जड़ रेचक है, फल तीव्र विरेचक है।

गुण—तीक्ष्ण, विरेचक और शोथ उत्पन्न करनेवाला गरम है। इसका उपयोग शुद्ध करके करना चाहिये। भली प्रकार शुद्ध किया हुआ दन्ती गोमूत्र के साथ पीसकर आँखों में अञ्जन करने से भ्रम, मूर्च्छा आदि रोग नष्ट होते हैं। अशुद्ध या अपूर्ण शोधित दन्ती शरीर को बहुत हानि पहुँचाता है। इससे तीव्र विरेचन लगता है। शरीर में दाह उत्पन्न करता है।

डाक्टरी में इसका तेल बरता जाता है। यह बन्धकोष को तोड़ने में काम आता है। इस तेल की मात्रा ½ से २ बूँद है । इसको बताशे या 'कैपसूल' में रखकर देना चाहिये, जिससे मुँह की श्लेष्म कला को न लगे। जिस समय विरेचन बहुत लगा हो, उस समय दूध या घी पीना चाहिये। इसकी अधिक मात्रा से विरेचन होने के साथ वमन भी होता है। वृद्ध अथवा दुर्बल व्यक्ति को दन्ती का विरेचन नहीं देना चाहिये। शोथ में, जलन्धर में, अफारे में, यकृत तथा प्लीहा की शोथ में इससे अथवा मूल की छाल से विरेचन दिया जाता है। बनावट—इच्छाभेदी रस, दन्तहरीतकी।

१३०. दर्भ—दर्भ जंगलों में घास के साथ उगती है। प्रायः नदी के किनारे उगती है।

गुण—शीतल, स्वाद में मीठी तथा कषैली है । दर्भ का मूल बहुत ठण्डा होता है। यह स्त्रियों के रजोदोष और पुरुषों के वीर्यदोष को ठीक करता है। कफ, रक्तपित्त, दम, प्यास, मूत्रकृच्छ्र, वस्तिरोग, कामला, विषर्प, उल्टी, पथरी, रक्तविकार, ज्वर तथा पित्त को मिटाती है। इसकी मूल गर्भ को स्थापित करने की शक्ति रखती है। श्राद्ध, पूजा आदि देव-कार्यों में इसका आसन बनता है। इसको मूत्रकृच्छ्र में पंचतृण मूल के साथ देते हैं।

१३१. दशमूल—में पाँच-पाँच मूल होती हैं। लघुपंचमूल और बृहत्पंचमूल के मिलने से दशमूल बनता है।

(१) शालपर्णी—इसका पत्ता घोड़े के कान जैसे आकार के होते हैं। इसका वृक्ष २—४ फीट ऊँचा होता है।

(२) पृश्निपर्णी—(पीठवन) इसकी झाड़ २ से ३ फीट ऊँची होती है।

(३) बड़ी कटेरी—इसका वृक्ष ४ से ६ फीट ऊँचा होता है।

(४) कटेरी छोटी—यह प्रसिद्ध है।

(५) गोखरू

(६) बिल्व—यह प्रसिद्ध है।

(७) अग्निमन्थ—अरणी

(८) श्योनाक—(सोना)—इसमें लम्बी-लम्बी फलियाँ लगती हैं।

(९) काश्मरी (गम्भारी)—इसका झाड़ ५० से ६० फीट ऊँचा होता है। इसका बहुत बड़ा विस्तार होता है। इसके पत्ते सन्मुख में होते हैं। पीपल के पत्ते से बड़े और लम्बी अणीवाले होते हैं। फूल भूरा, पीले रंग का

होता है। इसके ऊपर शहद की मक्खियाँ तथा भ्रमर चक्कर मारते रहते हैं। इसका फल पीले रंग का और अण्डाकृति होता है।

१० पाटला (पाढ़ल)—यह झाड़ ३० से ६० फ़ीट ऊँचा होता है और गीले स्थानों में उगता है। इसका पत्ता लम्बा और आमने-सामने रहता है। फूल लाल रङ्ग का और मीठी गन्धवाला होता है। इसका फल अर्थात् फलियाँ १ से १॥ फ़ुट लम्बी होती हैं। पाढ़ल की दो जात हैं, सफेद और लाल।

गुण—लघुपंचमूल—स्वाद में कषाय और कड़ुवा, पौष्टिक, बलकारक त्रिदोषहर, न बहुत गरम और न बहुत ठंडा होता है। पित्त, श्वास, वायु, कफ, ज्वर, पथरी को नष्ट करता है। बृहद्-पंचमूल—स्वाद में कड़ुवा, कषैला और मीठा। गरम, अग्निदीपक, वातहर, कफहर, त्रिदोषहर, कफ, वायु, श्वास तथा खाँसी को मिटाता है।

दशमूल का गुण—त्रिदोषहर, श्वास, कास, शोथ, प्रसव के पश्चात् के रोगों में, ताव में, पार्श्वशूल में तथा अरुचि में लाभदायक है। बनावट—दशमूलारिष्ठ।

१३२. दाड़िम—इसके पुलिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग भेद से दो भेद हैं। जो पुलिङ्ग होता है, उसका वृक्ष बड़ा होता है। उसमें फल भी बड़ा आता है। दूसरा स्त्रीलिङ्ग, इसका वृक्ष छोटा होता है, फल भी छोटा और अधिक खट्टा होता है। इसको अनार कहते हैं। काबुल की तरफ़ इसकी बहुत अधिक पैदाइश होती है। मस्तक की तरफ़ से जो अनार आता है, वह सबसे अधिक मीठा होता है। अनार के फूल और छाल में से रङ्ग निकलता है।

गुण—पित्तशामक, स्तम्भक तथा कृमिघ्न है। अनार का रस पित्तशामक है। इसलिये उल्टी दब जाती है। इसके लिये इसका रस या थोड़े-थोड़े दाने को मुँह में रखकर चूसने चाहियें। अनार का शर्बत पीने से गरमी तथा प्यास की शान्ति होती है। इसकी छाल में स्तम्भन गुण है। अनार की मूल की छाल इससे अधिक स्तम्भक है। अनार का फल अतिसार आमातिसार और संग्रहणी में बहुत उपयोगी है। नकसीर में इसके फूल का रस डालने से खून बन्द होता है। दाड़िम के छाल का काढ़ा पीने से पेट के कृमि मरते हैं। इस बात को अनार्य-चिकित्सक भी मानते हैं। यूनानी हकीमों का कहना है कि एक सबूत अनार लेकर उसमें गड्ढा करके, उसके अन्दर बादाम या बनफसे का तेल भरकर आग पर धीरे-धीरे गरम करना चाहिये,

ज्यों-ज्यों तेल अन्दर पचता जाय, उसमें थोड़ा-थोड़ा और भी मिलाते जाना चाहिये। जब सब पच जाय, तो इसको चूसने से सूखी खाँसी, छाती के रोग मिटते हैं। अथवा दाड़िम के रस में शर्करा, बबूल का गोंद, बदाम का तेल और गेहूँ का सत्त्व मिलाकर गरम करके पीना चाहिये। बनावट—दाड़िम पुटपाक, दाड़िमाष्टक चूर्ण, दाड़िम चतुःसम।

१३३. द्राक्षा—अंगूर की बेल होती है। अपने देश में बगीचों में भी इसको लगाते हैं; परन्तु इसकी अधिक पैदाइश काबुल, क्वेटा आदि में होती है। इसका फूल गुच्छे के रूप में होता है। इसमें द्राक्षा गुच्छे के आकार में लगती है। इसकी तीन-चार जाते हैं। औषधि के काम में "मुनक्का" (बड़ी द्राक्षा) उत्तम गिनी जाती है। इसको अंगूर भी कहते हैं। यह रंग में लाल तथा बड़ी होती है। एक काले रंग की द्राक्षा होती है और दूसरी श्वेत-हरे रङ्ग की। इन दोनों में बीज नहीं होता।

गुण—पित्तशामक तथा सारक। किशमिश का गुण साधारणतः सब जानते हैं। यह एक उत्तम पौष्टिक मेवा है। ज्वर में, दाह में, खाँसी में, क्षय में इसका उपयोग होता है। अम्लपित्त रोग में या रूक्ष पित्त-जन्य अतिसार में या पित्त-जन्य वमन में इसका उपयोग होता है। बनावट—द्राक्षारिष्ठ, द्राक्षासव, द्राक्षाक्षीर पाक।

१३४. दारुहरिद्रा—इसकी बेल होती है। दारुहल्दी इसी बेल की लकड़ी होती है। इसका रंग पीला-सा होता है। इसमें से रसवन्ती (रसाञ्जन) बनती है। इसको बनाने की विधि यह है कि दारुहल्दी को कूटकर इसके चूर्ण को पानी में भिगो देना चाहिये। इस पानी को उबालना चाहिये और उबल आने पर इसमें इसके बराबर गाय या बकरी का दूध मिलाना चाहिये। और जबतक घना न बने, तबतक उबालते रहना चाहिये। यह रसाञ्जन आँख में अंजन के तरीके काम में आता है। इसको शरीर के अन्दर देने से अतिसार, रक्तातिसार, प्रदर तथा अत्यार्त्तव नष्ट होता है। मात्रा १ से २ वाल।

गुण—शीतल, ग्राही, पित्तशामक है। चरक में इसे मूल व्याधि (अर्श) नाशक एवं कण्डूनाशक कहा है। सुश्रुत इसको मेहहर, मेदहर, स्तन्य-शोधक, दाहनाशक, स्तम्भक संग्राही एवं कृमिहर लिखता है। कइयों का विचार है कि दारुहल्दी के छिलके में लकड़ी से अधिक गुण होते हैं।

हल्दी तथा दारुहल्दी में गुण समान हैं। पित्त-शामक होने से पित्त-ज्वर में दी जाती है। प्रमेह में भी इसका उपयोग होता है। रसाञ्जन को पानी में घोलकर शर्करा के साथ देने से अतिसार, रक्तातिसार, प्रदर, आर्त्तव में लाभ होता है। दारुहरिद्रा के काढ़े में मधु डालकर पीने से कामला, प्रमेह मिटते हैं। बालकों के मुख-पाक में रसाञ्जन का लेप किया जाता है। दुष्ट व्रण इसके काढ़े से धोने पर शीघ्र भरता है। चावलों के धोवन में रसौंत के पीने से स्त्रियों का प्रदर बन्द होता है। आँख के दुखने पर इसका लेप आँख के चारोंओर किया जाता है। रसौंत से पीव जल्दी बन्द होती है। दारुहरिद्रा शीत-ज्वर में लाभदायक है। इसमें से "बैरबेरीन" नामक तत्त्व निकलता है। बनावट—रसाञ्जनादिवटी, दार्व्यादि काढ़ा

१३५. देवदारु—देवदारु के पेड़ काश्मीर, शिमला, ब्रह्मदेश में होते हैं। यह पेड़ बहुत ऊँचा है। देवदारु में से तेल निकलता है। यह बहुत ही अच्छा कृमिनाशक, शोथघ्न है।

गुण—स्वेदल, मूत्रल, कफघ्न, तथा दीपन, पाचन है। इसका अधिक उपयोग प्राय: काढ़ों में होता है। ज्वर के साथ यदि किसी मर्म स्थान पर शोथ हो, तो इस अवस्था में देवदारु अपने मूत्रल और स्वेदक प्रभाव के कारण अधिक उपयोगी होता है। प्रसूत ज्वर में इसका उपयोग होता है। बनावट—देवदार्व्यादि काढ़ा।

१३६. धतूर—यह दो हाथ ऊँचा झाड़ होता है। यह दो प्रकार का होता है, काला और श्वेत। इनमें काला धतूरा अच्छा है। धतूरे के फल में गोल ढोंढ़ लगता है। इसमें बीज रहते हैं। इस फल के ऊपर काँटे होते हैं। दवाई के रूप में धतूरा श्वास-रोग में पिया जाता है। इसको सिगरैट के रूप में या चिलम में रखकर खींचते हैं। इसके पीने से दमे का वेग घट जाता है। शीत-ज्वर में धतूरे का रस या बीज दिये जाते हैं। शिर की जूँ या अन्य कृमि मारने के लिये इसका स्वरस बरता जाता है। आंत्र-ज्वर में इसके पत्तों का रस पाँच बूँद मिर्च के चूर्ण या दही के साथ देना चाहिये। उन्माद में धतूरे के तीन-चार बीज पाँच रुपये भर घी के साथ खिलाने चाहिये। शोथ के ऊपर इसके पत्तों का रस लगाना चाहिये। स्तन-रोग में या बच्चा मर जाने पर जब स्तनों का दूध सुखाना होता है, उस समय इसके पत्ते बाँधने से दूध सूख जाता है। योनिशूल में (जख्म न हो, तो) धतूरे के दो-तीन पत्ते

पीसकर उनमें सेंधानमक और घी मिलाकर इनको पोटली योनि मे रखनी चाहिये। पागल कुत्ते के काटने पर इसका रस ज़ख़म पर लगाना चाहिये और इसीका रस पीने के लिये देना चाहिये। दन्तशूल में धतूरे के बीज की गोली दाँत के खोखल में रखने से दन्तशूल नष्ट हो जाती है। बनावट—कनकसुन्दर रस, स्वल्प ज्वरांकुश, कनकासव।

१३७. धमासा—धमासे का झाड़ एक हाथ भर ऊँचा होता है। यह जवासे की जात है। इसकी पतली डालियाँ होती है और सम्पूर्ण वृक्ष काँटों से भरपूर होता है।

गुण—शीतल, अन्दर एवं बाहर के दाह के लिये इसका उपयोग होता है। धमासे का काढ़ा घी डालकर पीने से मूर्च्छा तथा भ्रम को मिटाता है। इसकी मूल के कल्क में चावलों का धोवन मिलाकर पीने से रक्तातिसार मिटता है। इसके काढ़े में गलाले करने से मुखपाक मिटता है।

१३८. धनिया—यह रोज के खाने की मसाले की वस्तु है। इसको सब पहचानते हैं। दवाई में धनिये का उपयोग होता है। बहुत-से पित्तशामक काढ़ों में इसका उपयोग होता है। इसकी दाल मुखवास के रूप में बरती जाती है। अँग्रेज़ी वैद्यक में धनिये से निकाला हुआ तेल काम में आता है। इसको वातहर गिनते हैं। वह तेल गरमी से उड़ जाता है।

गुण—दीपन, पित्तशामक, उल्टी, प्यास और दाह के ऊपर बरता जाता है। प्यास को मारने के लिये उत्तम है। पित्त-ज्वर में धनिया और द्राक्षा का पानी बहुत लाभ करता है। धनिया तथा शर्करा पीने से पेट की जलन शान्त होती है। बनावट—धान्यपंचक क्वाथ।

१३९. धातकी—इसका पौधा चार-पाँच हाथ ऊँचा होता है। इसमें बहुत-सी शाखायें होती हैं। इसके पत्ते लम्बे होते हैं। इसमें लाल लवंग जैसे फूल आते हैं। इसके फूल तथा पत्ते रंग के काम में आते हैं। दवाई में इसके फूल बरते जाते हैं। धातकी के फूलों का अधिक उपयोग आसवों में होता है। यह बात प्रसिद्ध है कि इसके डालने से "फर्मेन्टेशन" सड़ने की क्रिया बन्द होती है।

गुण—धातकी के फूल स्तम्भक होते हैं, इसीलिये अतिसार के अन्दर दिये जाते हैं। इसी गुण के कारण रक्तातिसार में, संग्रहणी में, बालकों के

अतिसार में, वमन में इनका उपयोग होता है। बनावट—धातक्यादि क्वाथ, धातक्यादि चूर्ण।

१४०. दूर्वा—यह एक प्रकार का तृण है, जिसको साधारण भाषा में दूबड़ा कहते हैं। घोड़े का और गधे का बहुत बढ़िया चारा है। पूजा में पवित्रता के लिये इसका उपयोग होता है। इसकी दो जात हैं, श्वेत और लाल।

गुण—शीतल, रक्तस्तम्भक, पित्तघ्न और संग्राही है। शीतल होने से प्रमेह में विशेषतः शुक्रमेह में दी जाती है। रक्तस्तम्भक होने से चोट पर कूटकर बाँधी जाती है। नाक से निकलते हुए रक्त को इसका नस्य बन्द कर देता है। इसके रस में चावलों का पानी मिलाकर पीने से पित्त की उल्टी बन्द होती है। शिर-दर्द में इसके रस से घी बनाया जाता है। यह घृत रक्त-पित्त, रक्त-प्रदर, क्षय में जब रक्तस्राव होता है, तब उपयोगी होता है। चूहे के विष में इसके रस में चावल पीसकर लेप करना चाहिये। रक्तार्श में इसके रस में साठी के चावलों का कल्क बनाकर बाँधना चाहिये।

१४१. निर्गुन्डी (सम्भालु)— इसका झाड़ ५ ६ हाथ ऊँचा होता है। इसमें पाँच-पाँच पत्तों को पखंड़ियाँ होती हैं। पत्ता अरहर के पत्ते के समान लम्बा, तंग कम चौड़ा और नोकीला होता है। इसमें आसमानी, काला-सा फूल आता है। इसका फल आम के बौर की भाँति निकलता है। इसको रेणुका बीज़ कहते हैं। सम्भालु की एक दूसरी जात है, जिसमें श्वेत फूल आता है।

गुण—वातहर, वायु की शोथ, ग्रन्थि, गलगण्ड आदि रोगों में इसका पत्ता बाँधा जाता है। ज्वर में इसके पत्ते भापकर शिरदर्द की अवस्था में बाँधे जाते हैं। संधिवात में इसके पत्ते और सोभाञ्जन की छाल पीसकर बाँधी जाती है। इसके पत्ते व्रण के जीवों को मार देते हैं। पित्त-ज्वर में इसका उपयोग होता है। दुष्ट व्रण तथा भगन्दर में इसके पत्तों से बना तेल काम में आता है।

१४२. निशोथ (त्रिवृत्त)—इसकी बेल होती है। इसकी दो-तीन जाते हैं, श्वेत, काली और लाल। प्रायः सफेद निशोथ मिलती है। निशोथ, भारी, बिना घुन से खाई हुई, पानी में डूबनेवाली अच्छी होती है। इसके दो-दो इञ्च के टुकड़े पंसारियों के यहाँ मिलते हैं।

गुण—रेचक । आर्य-वैद्यक में इसका रेचन सबसे अच्छा गिना जाता है। निशोथ के चूर्ण को ६ माशे की मात्रा में दूध या शक्कर के साथ लेने से तीन-चार दस्त होते हैं। पित्त निकालने के लिये यह एक उत्तम विरेचन है। यदि इसके पीने से पेट में शूल होने का भय हो, तो सेंधानमक तथा कालेनमक के साथ देना चाहिये। बनावट—त्रिवृत्तादि चूर्ण

१४३. **निर्वीषी**—यह विषैली नहीं होती। इसको "निर्वीषी" नाम शायद इसलिये दिया गया है कि यह वछनाग की जाति में है। वह विषैला है। एक यही बिना विष की है और इस जात की अन्य सब वनस्पतियाँ विषैली होती हैं।

गुण—पौष्टिक, शोधक और विषनाशक है। गरमी, संधि-वात, गुमचोट, मोचक तथा अस्थिभ्रंश आदि लेपों में काम आता है। यह वछनाग के साथ ही में उगता है और उसके विष को दूर करता है।

१४४. **नागकेशर**—पुन्नाग नाम के वृक्ष से नागकेशर निकलता है। पंसारियों के यहाँ नागकेशर के नाम से जो गोल दाना मिलता है, वह असली नागकेशर नहीं। असली नागकेशर बद्रीनारायण, अलमोड़ा तथा कूचबिहार से आता है। यह असली केशर पराग होता है। इसकी गन्ध बहुत ही उग्र होती है। बहुत गरम और वाजीकरण तथा स्तम्भक है।

गुण—शीतल है। अर्श में विशेषतः रक्तार्श में इसको मक्खन के साथ खाने से रक्त बन्द हो जाता है। इससे रक्त-प्रदर, शरीर का दाह, प्यास तथा उल्टी शान्त होती है।

१४५. **नागरमोथा**—यह एक प्रकार का मोथा (जड़ोंवाला घास) है, जो पानीवाले आर्द्र-प्रदेश में होता है। इसकी जड़ों को मोथा या नागरमोथा कहते हैं। मोथा का रंग काला-सा होता है। उसपर रेशे होते हैं। नागरमोथा लम्बा होता है। इसका असर पित्त शान्त करने में, प्यास कम करने के लिये तथा पाचन-क्रिया को बढ़ाने में किया जाता है।

गुण—चरक कहता है कि नागरमोथा लेखनीय, भूख लगानेवाला, पाचक, कण्डूनाशक, दूध को बढ़ानेवाला तथा प्यास को कम करता है। सुश्रुत के अनुसार—शोधक, दीपक, पकानेवाला और आमातिसार को शान्त

करता है। यूनानी हकीम इसको लेखन, स्वेदक और मूत्र-दोषनाशक कहते हैं। बच के स्थान में नागरमोथे का उपयोग हो सकता है। स्वेदल तथा ग्राही भी है। आमाशय तथा आंत्र-शोथ को कम करता है। इसके काढ़े से प्यास, ज्वर, रक्तस्राव बन्द होता है। बनावट—मुस्तादि-क्वाथ।

१४६. **नारंगी**—इसका झाड़ सर्वत्र प्रसिद्ध है। मोझाम्बी से जो नारंगी आती है, उसको साधारणत: "मोसम्बी" कहते हैं। इसका छिलका पीला, पतला होता है। और दूसरी नारंगी का छिलका मोटा होता है। इसके छिलके में से एक प्रकार का तेल निकलता है, जो बहुत सुगन्धित होता है। दवाई में इसका शरबत मिलाने से सुगन्धि होती है। इसका रस रुचिकर, शर्बत गरमी कम करनेवाला, पित्तशामक है। दांत के मसूड़ों में से रक्त निकलता हो, तो नारंगी के चूसने से या उसके छिलके का चूर्ण मिलाने से रक्त बन्द होता है।

१४७. **नारियल**—नारियल के फल को भी नारियल कहते हैं। इसमें से तेल निकलता है। नारियल का वृक्ष बहुत ऊँचा होता है। यह प्राय: समुद्र के किनारे उगता है। इस तेल की सहायता से साबुन बनता है। भिलावा खाने से जब शरीर फूटने लगे, उस समय इसका पानी पीने से या तेल लगाने से लाभ होता है। इसका पानी ठण्डा, पित्तशामक, वमन को बन्द करनेवाला है। गरमियों में प्यास को बुझाने के लिये उत्तम है। इसके पानी में फिटकिरी भरकर कीचड़ में रखने से फिर निकालकर पीने से मूत्राघात अच्छा होता है। बालों को चमक देता है। दाद, पुराना कुष्ठ, छाजन आदि पर नारियल के छिलके का तेल निकालकर लगाते हैं। बनावट—नारिकेलक्षार।

१४८. **नीम**—नीम का झाड़ सर्वत्र प्रसिद्ध है। यह कड़ुवा होता है, परन्तु एक और प्रकार की मीठी नीम होती है। इसका पत्ता मीठा और रुचिकर होता है। यह पत्ता शाक-भाजी में पड़ता है। एक और नीम का भेद है, जिसको बकायन (महानीम) कहकर पहचानते हैं। औषधि के रूप में नीम के पत्ते, इसकी अन्त: छाल, फल, गोंद और नीम के अन्दर का तेल काम में आते हैं। नीम जब बहुत पुराना हो जाता है, तब उसमें से चन्दन जैसी सुगन्धि आती है। नीम की छाया शीतल और नीरोगी होती है। इसलिये चौराहों पर, बगीचों में एवं आँगन में लगाया जाता है।

गुण—शोधक, ज्वरघ्न, कृमिघ्न, कुष्ठघ्न तथा शामक है। व्रण, शोथ, कृमि, उल्टी, पित्त, विष, दाह, कोढ़, तृषा, रक्त, रक्तदोष, ज्वर, प्रमेह आदि रोगों में हितकारक है। पित्त के ज्वर में नीम की छाल का बहुत उपयोग होता है। जब कीनीन की गरमी हो, तो इसका शीत कषाय बहुत लाभ करता है। मलेरिया, या शीत ज्वर में कीनीन वेग उतरने के पीछे दी जाती है, परन्तु इसका शीत कषाय चढ़े हुये ज्वर में भी दिया जा सकता है। चेचक, खसरा, मसूरिका आदि में नीम या गिलोय बहुत लाभ करती है। गरमी के ऊपर नीम के पत्तों का रस शर्करा डालकर सात दिन पीना चाहिये।

विषम ज्वर—कड़ुवे नीम की छाल के काढ़े में धनिया और सोंठ डालकर पीना चाहिये। नीम की कच्ची निम्बोली खाने से अर्श, प्रमेह, कृमिरोग में अच्छा लाभ होता है। कृमि-रोग में इसके पत्तों का रस मिर्च के चूर्ण के साथ खाना चाहिये। संखिये के विष के ऊपर भी इसका रस पीना चाहिये। शीत पित्त या दर्द में इसके पत्ते पीसकर घी के साथ चाटना चाहिये या अन्तः छाल का काढ़ा पीना चाहिये। सर्प-विष के ऊपर कड़ुवे नीम के पत्ते चबाने चाहिये। यदि सर्प ने काटा होगा, तो पत्ते कड़ुवे नहीं लगेंगे। इसके पत्तों का स्वरस या अन्तःछाल का काढ़ा बराबर पिलाते जाना चाहिये, जबतक रोगी को कड़ुवा न लगने लगे। रक्त-प्रदर में अन्तः छाल का काढ़ा जीरे के साथ लेना चाहिये।

प्रमेह में विशेषतः शर्करा मेह या शुक्रमेह में इसका स्वरस या अन्तः छाल का काढ़ा पीना चाहिये। कॉलरा, मृगी आदि रोगों में रोगी को आक्रमणों से बचाने के लिये उसको नीम के पत्ते, कपूर और हींग की गोली खानी चाहिये। अर्श-रोग में पकी हुई निम्बोली की गिरी ३ माशे और गुड़ ६ माशे रोज सायंकाल या प्रातः खानी चाहिये। उपदंश-प्रमेह आदि में इसका फांट प्रातः पीना चाहिये, और खाने में घी शक्कर का उपयोग करना चाहिये। दुष्ट, पीव-युक्त व्रणों के ऊपर इसके पत्तों को पीसकर उनमें शहद मिलाकर लगाना चाहिये। खुजली के ऊपर पत्तों को अन्तर्धूम विधि से जलाकर उस भस्म को करञ्जादि तैल में मिलाकर लगाना चाहिये। रक्त-पित्त तथा कुष्ठ रोगियों को चाहिये कि इसके काढ़ा से स्नान करें। इसके स्वरस को गाय के दूध में मिलाकर पियें, नीम की छाया में सोयें-बैठें। दाह-युक्त शोथ के ऊपर नीम के पत्तों को पीसकर लगाना चाहिये। यदि ज्वर में बहुत दाह प्रतीत हो, तो नीम के पत्तों से

झाग बनाकर शरीर पर लगाना चाहिये। सूतिका-रोग में स्त्री को पुराने नीम की अन्तः छाल के काढ़ा से स्नान कराना चाहिये अथवा इसके काढ़े की देकची या चारपाई के नीचे (शिर, कमर और पाँव के नीचे) रखनी चाहिये, जिससे भाप लगकर पसीना आये। योनि, कण्डु-रोग में नीम और एरण्ड के बीजों की गिरी को नीम के रस में घोंटकर योनि में रखनी चाहिये। व्रणों पर इनको शहद में मिलाकर लगाना चाहिये। अथवा इसके कषाय से धोना चाहिये। व्रण पर नीम के पत्ते, मुलहट्टी, दारुहल्दी इनके चूर्ण को घी तथा शहद में मिलाकर लगाना चाहिये।

नीम के पके हुये पत्ते तथा हरड़ अथवा आँवले के साथ नित्यप्रति दो मास तक खाने से और पथ्य के पालन करने से त्वचा के रोग और कण्डू, कुष्ठ आदि विकार दूर हो जाते हैं। नीम के पत्तों की सेंधानमक के साथ बनी पुलटिस या लुगदी आँख पर बाँधने से अथवा इसके कषाय से आँखों को धोने से या इसकी छाया में सोने से आँख की शोथ को, उसकी लालिमा को लाभ होता है। निम्बोली, हरड़ तथा शर्करा इनकी फंकी खाने से प्रमेह नष्ट होता है। नीम के पंचांग का चूर्ण सेवन करने से कुष्ठ मिटता है। यह शीत ज्वर में लाभ करता है। नीम के तेल का या निम्बोलियों का उपयोग आज-कल साबुन बनानेवाले करने लगे हैं। कारबोलिक तेल के स्थान में निम्बोलियों का तेल व्यवहार में लाया जा सकता है। इसके पत्तों का सेक भी शोथ को कम करता है। इसके लिये पत्तों को तेल में गरम करके बाँधना चाहिये। बनावट—निम्बादि-चूर्ण, निम्बपत्रादि-चूर्ण, पंचनिम्ब-चूर्ण।

१४९ **निर्मली**—इसका वृक्ष होता है। इसका बीज बटन के आकार का गोल होता है। इसके बीज के ऊपर कोमल रेशम जैसे बाल होते हैं। इसके द्वारा पानी निर्मल हो जाता है, इसीलिये इसका नाम निर्मली है। सुश्रुत में पानी को साफ करने की एक वस्तु कतकबीज (निर्मली) कही है। मूत्रल, कान्तिकारक, स्वाद में कड़ुवा होता है। इसका बीज जहरकुचले के बीज से मिलता है। निर्मली के बीज को पानी या गुलाबजल में घिसकर लगाने से लाभ होता है। आँख के लिये हितकर एवं शीतल है। प्रमेह, मधुमेह, मूत्रकृच्छ्र आदि रोगों में इसका उपयोग होता है। इसका पका हुआ फल गरम तथा वमनकारक होता है। इसलिये शोथ, पाण्डु, विष, सरदी आदि रोगों में लाभदायक है। मूत्रल गुण के लिये २ वाल, उल्टी के लिये ६ वाल हैं।

१५०. **नीबू** – नीबू का वृत्त सर्वत्र प्रसिद्ध है। इसका पत्ता गोल होता है, इसमें नीबू जैसी गन्ध आती है । नीबू पकने पर ऊपर से पीला और अन्दर से खट्टा-मीठा हो जाता है।

गुण—कागज़ी नीबू खट्टा और ठण्डा होता है। पेट की वायु, अफारा शूल, कास, आम, कृमि, अरुचि, मुँह की खराब बास को दूर करता है। जठराग्नि को बढ़ाता है। अन्न में रुचि पैदा करता है। नीबू में सड़ांद दूर करने का गुण रहता है। नीबू का शरबत पित्तशामक है। नित्यप्रति खाने से पेट के कृमि नष्ट होते हैं। रक्त को शुद्ध करता है । दाँतों से रक्त और पीव आती हो, तो इसको खूब चूसना चाहिये। इससे पीव कम हो जाती है। अफीम तथा फिटकिरी भुरककर नीबू को दुखती आँख पर रखने से, आँख में जमा हुआ रक्त पीछे वापिस हो जाता है। अजीर्ण और अरुचि-वाले को नित्यप्रति नीबू, आर्द्रक, सैन्धानमक भोजन से पूर्व खाना चाहिये। कॉलरे के दिनों में नित्यप्रति नीबू का रस दाल, शाक में खाना चाहिये। अथवा नीबू के रस और प्याज के रस में शक्कर डालकर पीना चाहिये। पके हुए फल की छाल में से तेल निकलता है। यह तेल सुगन्धित मच्छरों को भगानेवाला होता है। इस तेल को "कॉलन वाटर" के बनाने के काम में लाते हैं। छाल का अर्क और शरबत बनता है। बनावट—नीबू का शरबत।

१५१. **पटोल**—इसकी दो जात हैं, कड़वी और मीठी। यह फल टोडाणा जैसा होता है। पकने पर लाल हो जाता है। उस समय इसका रङ्ग बिम्बी फल से मिलता है।

गुण—रेचक, शोधक तथा ज्वरनाशक। पाचन करनेवाला, अग्नि-दीपक है। पित्त, कफ, रक्तविकार, ज्वर, दाह, कृमि, मूत्रकृच्छ्र, तृष्णा आदि को मिटाता है। इसके मूल में रेचक गुण रहता है। पत्ते गरमी को शान्त करते हैं। और फल त्रिदोषहर है। यह अनेक काढ़ों में पड़ता है। बनावट—पटोलादि क्वाथ।

१५२. **पाषाणभेद**—यह तुलसी की श्रेणी की सुगन्धित वन-स्पति है। यह पथरीली भूमि में कुल्लु आदि पहाड़ी प्रदेशों में होती है। इस-लिये इसे पाषाणभेदी कहते हैं। दूसरा कारण यह है कि इस वनस्पति का काढ़ा मूत्राश्मरी को या मूत्र-शर्करा को तोड़ता है। बाज़ार में पंसारियों के

यहाँ इसका १॥ इञ्च का टुकड़ा बिकता है। इसका आकार भूरा एवं चोपचीनी से मिलता है।

गुण—मूत्रल, अश्मरीनाशक है। इस गुण के कारण पेशाब की जलन में व्यवहार आता है। बनावट—पाषाणभेदी-चूर्ण।

१५३. पिलखन—यह पीपल के समान बड़ा मोटा वृत्त होता है। इसका पत्ता बड़ा और अधिक गहरा हरा होता है। फल पीपली जैसा होता है। इसकी छाल और पत्ते का उपयोग होता है। छाल का उपयोग व्रणों के धोने तथा स्तम्भक गुण के लिये किया जाता है। फल का उपयोग प्रमेह में होता है। "पंचवल्कल क्वाथ" में इसका उपयोग किया जाता है।

१५४. पिप्पली—इसकी बेल होती है। इसके पत्ते पान जैसे होते हैं। इसके फल का नाम पिप्पली है। हिन्दुस्तान में यह आसाम, बंगाल और दक्षिण में होती है। इसका आकार चूहे की मींगनी जैसा होता है। इस लिये इसको लींड़ीपीपल कहते हैं। यह चूँकि मगध में होती है, इसलिये-इसको 'मागधी' कहते हैं। एक दूसरी छोटी पीपली अफ्रीका के सुवाल प्रान्त से आती है, इसलिये इसको सुवाली पिप्पली कहते हैं। यह पिप्पली बहुत हल्की होती है।

गुण—उष्ण, दीपन, पाचन, वातहर। पिप्पली अग्निमान्द्य तथा कफ-वात को दूर करती है। दमा, खाँसी, ज्वर विशेषत: जीर्ण ज्वर में, अर्श में, प्लीहा में अधिक उपयोगी है। इसको बहुत काल तक सेवन नहीं करना चाहिये। पिप्पली के चूर्ण को दुगुने गुड़ के साथ लेने से श्वास, खाँसी, अरुचि, जीर्ण ज्वर मिटता है। मेद, कफ श्वास, पाण्डु, प्लीहा रोगों में शहद के साथ चाटनी चाहिये। दूध बढ़ाने के लिये गरम दूध के साथ पीना चाहिये। पीपल और हरड़ की फंकी गरम पानी के साथ पीने से आमातिसार का शूल मिटता है। हिचकी में पिप्पली तथा मोर की पिच्छा (पंखों) की भस्म शहद में चाटनी चाहिये। रतौंधी में इसको गोमूत्र में घिसकर अंजन करना चाहिये और आस्तीया के पत्तों का शाक खाना चाहिये। उदर के रोगों में पिप्पली का चूर्ण गोमूत्र के अन्दर कई दिनों तक पीना चाहिये। गुल्म में पिप्पली और जौखार शहद तथा आर्द्रक के रस में चाटनी चाहिये। कफ में पिप्पली का चूर्ण घी और शहद में खाना चाहिये। हृदय-रोग, क्षय, खाँसी तथा ज्वर में गाय का दूध

ढाई सेर, इसको उबालना चाहिये। जब दूध आधा रह जाय, तब इसमें दो-दो तोला घी, शहद, शक्कर डालना चाहिये और उसमें १ तोला पिप्पली का चूर्ण डालकर पीना चाहिये। अथवा दूध तथा पिप्पली को शक्ति के अनुसार पीना चाहिये। यदि बालक के शरीर में वृद्धि न हो या गर्भिणी माता बच्चे को दूध पिलाती हो, तब पिप्पली का चूर्ण शहद में चाटना चाहिये।

परिणाम शूल में पिप्पली का चूर्ण ४ तोला, गुड़ ६ तोला, गाय का घी ६४ तोला, दूध २५६ तोला यह सब परिपक्व करके इसमें से ४ तोले सवार में खाना चाहिये। विषम ज्वर, हृदय-रोग, खाँसी, दमा तथा क्षयवाली स्थिति में शहद, घी, दूध, शक्कर तथा पिप्पली सम भाग लेकर चाटनी चाहिये। धातुक्षय, धातुगत ज्वर, खाँसी, दम तथा मन्दाग्निवाली स्थिति में शहद १ तोला, घी २ तोला, पिप्पली ४ तोला, शक्कर ८ तोला, दूध ३२ तोला और चतुर्जात १६ तोला, इन सबको मिलाकर इसमें से एक-एक या दो-दो तोला भर खाना चाहिये। अजीर्ण या अरुचि में पिप्पली को नीबू के रस में तथा सेंधानमक में दो-चार भिगोकर पीछे सुखाकर दो-चार पिप्पली खानी चाहिये। अपस्मार में नीम के रस में पिप्पली का चूर्ण उबालकर पीना चाहिये।

१५५. पिप्पली (वर्द्धमान)—इसका अभिप्राय यह है कि पिप्पली को बढ़ा-बढ़ाकर सेवन किया जाय। अर्थात् यदि आज तीन पिप्पली खाई है, तो इसको उत्तरोत्तर बढ़ाते जाने चाहिये और फिर एक नियत समय पश्चात् इसको क्रमशः पूर्व की भाँति घटाते जाना चाहिये। (१) प्रथम दिन ३ पिप्पली दूध में उबालकर पीनी चाहिये। और दूसरे दिन ६ पिप्पली, तीसरे दिन ९ इस प्रकार प्रतिदिन तीन-तीन पिप्पली बढ़ाकर १० वें दिन ३० पिप्पली खानी चाहिये। इसके पीछे ग्यारहवें दिन ३ पिप्पली कम करनी चाहिये। अर्थात् २७ पिप्पली लेनी चाहिये, इस प्रकार प्रतिदिन तीन-तीन पिप्पली घटाते जाना चाहिये। यहाँ तक कि बीसवें दिन ३ पिप्पली रह जाय। (२) दूसरी विधि यह है कि प्रतिदिन एक-एक पिप्पली बढ़ाई जाय। इस प्रकार २१ दिन तक बढ़ाकर फिर घटाना आरम्भ करना चाहिये। यहाँ पर भी एक-एक पिप्पली घटानी चाहिये। पिप्पली के साथ दूध पर्याप्त पीना चाहिये।

गुण—जीर्णज्वर, पाण्डु, कास, श्वास, कफ, पीनस, अग्निमान्द्य

आदि रोगों में इससे लाभ होता है। विद्वान वैद्यों की सलाह से यह प्रयोग करना चाहिये और जबतक यह प्रयोग करते रहें, तबतक सात्विक प्रयोग करना चाहिये। कोई भी गरम खुराक नहीं खानी चाहिये। बनावट—पंच-कोल, पिप्पली-क्वाथ, पिप्पली-चूर्ण, पिप्पल्यादि-चूर्ण, पिप्पल्यासव।

१५६. **प्याज़**—यह दो प्रकार का होता है, लाल और श्वेत। यह दवाई के काम आता है।

गुण—वातहर, गरम, वाजीकर, शुक्रल। वात-व्याधि में विशेषतः पेट के अफारे में इसका उपयोग होता है। विसूचिका की अवस्था में इसका रस पिलाना चाहिये। मूर्च्छा आने पर इसको काटकर सूँघना चाहिये। लू लगने पर या गरमी से माथा दुखने पर इसको सूँघना चाहिये। यह लोकोक्ति है कि इसको पास में रखने से लू नहीं लगती। नकसीर में इसका रस सूँघना चाहिये। तम्बाकू के विष में इसका रस देना चाहिये। छोटे-छोटे मस्सों को नष्ट करने के लिये इसको कूटकर बाँधना चाहिये। पुरुषत्व के लिये भी इसका उपयोग होता है। कान के दर्द में इसका रस गरम करके डालना चाहिये। बनावट—रसोनपिण्ड, कन्दर्पपाक

१५७. **पिप्पलीमूल**—लींढ़ी पिप्पली के वृक्ष की जड़ को पिप्पली मूल कहते हैं। इसमें गाँठें होने से इसको "ग्रन्थि" कहते हैं।

गुण—उष्ण, दीपन, पाचन, उदर-रोग, अफारे, अग्निमान्द्य, कृमि, गुल्म, श्वास आदि रोगों में लाभ करता है। भूख के लिये, पेट की वायु को दूर करने के लिये, प्रसव होने के पीछे इसकी वायु मिटाने के लिये, गर्भाशय को संकुचित करने के लिये पिप्पलीमूल दी जाती है। जीर्णज्वर, अजीर्ण या वायु में पिप्पलीमूल का काढ़ा या चूर्ण लाभ करता है। पार्श्वशूल में एवं वायु के कारण यदि अनिद्रा-रोग हो, तो पिप्पलीमूल गुड़ के साथ खाने से लाभ होता है। बनावट—ग्रन्थादि क्वाथ।

१५८. **पीपल**—इसका वृक्ष प्रसिद्ध है। भारत में यह वृक्ष पूजा की दृष्टि से देखा जाता है।

गुण—शीतल, पित्तशामक, रक्तशोधक, योनि-दोषहर, व्रणशोधक।

रक्त-पित्त में—पीपल के पत्तों का स्वरस १ भाग, हीराबोल ६ भाग और दुगुना शहद इनको मिलाकर खाने से छाती में से पड़ता रक्त रुकता है।

प्रदर—पीपल की लाख एक-एक तोला छाछ में डालकर पीने से श्वेत

प्रदर बन्द होता है। दमा और खाँसी में पिप्पली का चूर्ण घी और शर्करा में चाटना चाहिये। उरःक्षत, क्षय में पिप्पली का चूर्ण, शहद और घी डालकर पीना चाहिये। व्रणों को भरने के लिये या जले हुये व्रणों पर पिप्पली का चूर्ण घी में या वैजलीन में मिलाकर लगाना चाहिये। पुंसवन के लिये इसके चूर्ण का या काढ़े का उपयोग होता है। अफीम के विष में पीपल की छाल का काढ़ा देना चाहिये।

बालकों के मुखपाक—पिप्पल का ताजा पत्ता तथा छाल पीसकर शहद के साथ चाटना चाहिये। बच्चों के तोतलेपन के लिये—पीपल का पका हुआ फल खाने से बच्चा बोलना सीखता है।

उपदंश—सूखी छाल की राख बुरकनी चाहिये। पीपल का फल पौष्टिक होने से शक्ति देता है। बनावट--पंचवल्कल क्वाथ।

१५९. पीलुड़ी (काकमाची)—हिन्दी में इसे मकोय कहते हैं। इसका पतला फूल होता है। पत्तों की जड़ में फल लगता है। यह फल रत्तियों की भाँति गुच्छे के आकार में लगता है। पकने पर नीला काला हो जाता है, स्वाद में मीठा होता है।

गुण--शोथघ्न, कफघ्न है। यह शोथ, शूल, कफ, अर्श, हिचकी तथा दमे को मिटाता है। इसका पत्ता पीसकर शोथ के ऊपर लागाया जाता है।

१६०. पपीता—इसका वृक्ष ५-६ हाथ ऊँचा होता है। इसमें नीले रङ्ग का फूल आता है। इसका फल नारियल के समान वृक्ष के साथ गुच्छों में लगता है। पत्ते की डंडियाँ लम्बी और खोखली होती हैं। कच्चे पपीते की भाजी बनती है। पक्का पपीता खाने में मीठा होता है।

गुण—गरम, पौष्टिक है। पपीते के तोड़ने से जो दूध निकलता है, उसको कृमिघ्न कहते हैं। इसको खाज में भी बरता जाता है। पपीते के वृक्ष में से एक प्रकार का सत निकाला गया है। इसको "पैपीन" कहते हैं। यह औषधि प्राणी-वर्ग से बनाई जानेवाली 'पैप्सोन" के स्थान पर बरती जा सकती है। पपीता, प्लीहा एवं यकृत-रोग में लाभ करता है। पपीते के बीजों का चूर्ण रज की कृच्छ्रता को दूर करता है। इसे यदि गर्भिणी को दिया जाय, तो गर्भपात का भय रहता है। इसके फल का उपयोग तथा दूध शरीर की निर्बलता को दूर करने की एक उत्तम ख़ूराक है। कच्चे पपीते का रस अर्श के मस्सों पर लगाने से वे जल जाते हैं। गर्भिणी स्त्री के मल को साफ़ करने के लिये पक्का पपीता देना चाहिये।

१६१. **पुनर्नवा** —यह ज़मीन पर फैलती है। इसकी बेल होती है। बरसात में पुष्कल होती है। इसके दो भेद हैं। एक रक्त-पुनर्नवा, जिसकी डंडी लाल रंग की होती है, और दूसरी सफेद पुनर्नवा, इसका डण्ठल श्वेत होता है। इन दोनों के गुण प्राय: समान होते हैं। परन्तु श्वेत पुनर्नवा अधिक मूत्रल है।

गुण—शोथघ्न, शोधक, सारक तथा मूत्रल है। शोथनाशक होने से बहुत-से कषायों में पड़ती है। शोथघ्न और मूत्रल गुण के कारण जलोदर में, मूत्राशय के दर्दों में तथा मूतिका-रोग में पड़ती है। आँख के श्वेत फूली में इसकी जड़ घिसकर अंजन करना चाहिये। आँख से पानी गिरता हो, तो श्वेत पुनर्नवा के मूल का रस शहद तथा भाँगरे के रस में घिसकर अंजन करना चाहिये। परवालों के लिये इसको मूल घिसकर अंजन करना चाहिये। रतौंधी में इसकी जड़ छाछ या कांजी में घिसकर अञ्जन करना चाहिये। रक्तार्श में पुनर्नवा के मूल का चूर्ण हल्दी के काढ़े के साथ लेना चाहिये। गुल्म में पुनर्नवा के पञ्चांग का चूर्ण गोमूत्र तथा सैन्धानमक के साथ लेना चाहिये। अन्तर्विद्रधि के ऊपर पुनर्नवा और वरुण का काढ़ा पीना चाहिये। चतुर्थक ज्वर में इसकी मूल को दूध में पीना चाहिये। शोथ के ऊपर इसको देवदारु, अमलतास, सोंठ तथा उशीर के साथ पीना चाहिये। कुत्तों के विष के ऊपर पुनर्नवा का रस पिलाना चाहिये। बनावट—पुनर्नवाष्टकक्वाथ, पुनर्नवादि-क्वाथ।

१६२. **पुदीना** —इसका बहुत छोटा पौधा होता है। इसे चटनी बनाने के काम में लाते हैं। इसमें एक प्रकार की सुन्दर गन्ध आती है।

गुण—शीतल, दीपन तथा पाचन है। इसके काढ़े को देने से प्यास कम होती है। पुदीना और तुलसी का काढ़ा पीने से प्रतिदिन आनेवाला ज्वर मिटता है। पुदीने का रस, आर्द्रक का रस, सैन्धानमक इनको पीने से पेट की शूल नष्ट होती है। इसकी चटनी ख़ुराक में रुचि करती है।

१६३. **पान**—इसकी बेल सर्वत्र प्रसिद्ध है। इसका पत्ता मुखवास के लिये सब स्थानों पर काम में आता है। यह कामोद्दीपक, रुचिकर और कान्तिकारक गिना जाता है। पान में एक सुगन्धित तेल होता है, जिससे मुँह में गन्ध आती है। चबाने से पाचक रस अधिक निकलता है। पाचन-

क्रिया को उत्तेजना मिलती है। आर्य-चिकित्सा के अनुसार प्रत्येक मनुष्य को पान खाना चाहिये। पान के अतियोग से दाँत खराब होते हैं, बल का क्षय, नेत्र-रोग तथा पित्त बढ़ता है। गर्भिणी और बालक को पान नहीं खाना चाहिये। पान के रस से पारद का निवारण होता है।

१६४. बादाम-- यह सर्वत्र प्रसिद्ध है। इसका झाड़ ऊँचा होता है। इसकी दो जातें हैं, मीठी और कड़वी। कड़ुवे बादाम से जो तेल निकलता है, वह विशेष काम में नहीं आता। इस कड़ुवे बादाम में एक प्रकार का विष होता है, जिसे "एसिड हाइड्रोसैनिक" कहते हैं।

गुण—पौष्टिक, गरम है। वात और पित्त रोगों में दिया जाता है। बादाम को घी में खाने से शरीर के अन्दर पुष्टि आती है। आँखों की ज्योति के लिये अच्छा है। बादाम से जो तेल निकलता है, वह सारक है। क्षय-रोग में, खाँसी में तथा शरीर की कमजोरी में यह तेल शरीर पर चुपड़ा या मला जाता है। खुश्की हटाने के लिये इससे अच्छा साधन और कुछ नहीं है। कड़ुवे बादाम का तेल गुर्दे की पथरी को नष्ट करता है, ऐसा बहुत-से लोगों का कहना है। जिन रोगों में कॉड लिवर ऑयल शरीर पर मला जाता है, उन सबमें बादाम खुशी से बरता जा सकता है। बनावट—बादाम-पाक।

१६५. बलादाना (बला-खरैटी)—वैद्यक ग्रन्थों में चार प्रकार की बला का वर्णन आता है। यथा—बला, अतिबला, महाबला और नागबला। यद्यपि इन चारों के पौदों की ऊँचाई में अन्तर होता है, तथापि यह चारों एक ही श्रेणी की वनस्पति हैं। नागबला को साधारण लोग "कंघी" घास करके पहचानते हैं। बला का पौधा एक फीट तक ऊँचा होता है। पत्ता गोल और छोटा किनारों पर कटा हुआ-सा। अतिबला का पौधा २-३ फीट ऊँचा और पत्ता बला से कम चौड़ा होता है। इसका पत्ता अलग-अलग तथा शाखा में थोड़े होते हैं। महाबला का वृक्ष होता है और पत्ते चौड़े होते हैं। और नागबला प्रायः देखने में नहीं आती। इसलिये इसके स्थान में गंगेरन बरती जाती है। नागबला के गुण इसमें होते हैं।

गुण—पौष्टिक तथा मूत्रल है। बाजार में केवल खरैटी के बीज मिलते हैं। बला के बीज धातु-पुष्टि के लिये दिये जाते हैं। पानी में इनको भिगो रखने से एक प्रकार का चिकना लुआब उठता है। इसमें शक्कर या मिश्री डालकर पीने से पुष्टि होती है। इसका तेल वात, व्याधि, पक्षाघात आदि में

काम आता है। बला के बीजों में मूत्रल गुण है, परन्तु इनसे अधिक मूत्रल गुण बला की छाल में है। मात्रा १ तोला। बनावट—क्षीरबला-घृत।

१६६. **बावची**—बावची का वृक्ष लगभग दो हाथ ऊँचा होता है। इसमें छोटे, काले बीज निकलते हैं। बावची और आवची बावची दोनों भिन्न वस्तुयें हैं। गुण में भी भिन्न हैं। इनमें से तेल निकलता है।

गुण—शोधक और कुष्ठघ्न। इसका धुवाँ जन्तुनाशक है। शोधक तथा जन्तुघ्न प्रभाव के कारण त्वचा के रोगों में गुणकारी है। इसका अन्तः और बाह्य दोनों प्रकार का उपयोग होता है। कुष्ठ के लिये यह एक कीमती औषधि गिनी जाती है। इसका उपयोग बहुत दिनों तक करना चाहिये। प्रथम इससे छाले निकल आते हैं और फिर रंग बदल जाता है। जब इससे छाले उठ जाँय, तब इसका लेप बन्द कर देना चाहिये। हरताल ¼ तोला, आँवला २ तोले और बावची ८ तोला, इनको गोमूत्र में पीसकर लगाना चाहिये।

१६७. **बबूल**—बबूल का वृक्ष सब स्थानों पर प्रसिद्ध है। औषधि में इसकी छाल, पत्ते और गोंद काम में आते हैं।

गुण—संग्राही, शीतल, पौष्टिक है। अतिसार में बबूल की छाल का रस दही डालकर पीना चाहिये। आँख में से पानी गिरता हो, तो बबूल के पत्तों के रस में या काढ़ा के रस में शहद डालकर अंजन करना चाहिये। मुँह के पाक में बबूल तथा जामुन की छाल के काढ़े में फिटकिरी डालकर काढ़ा करना चाहिये। प्रमेह, दाह के ऊपर बबूल के पत्ते प्रातः सायं एक-एक तोला शर्करा के साथ खाना चाहिये। पुष्टि के लिये गेहूँ का दाना और बबूल का गोंद घी में सेंककर, शर्करा की चाशनी में पाक करके खाना चाहिये। आँख उठी हो, तो बबूल के पत्तों की पुलटिस बाँधनी चाहिये। इसके पत्तों का रस आँख में लगाना चाहिये। व्रण को इसकी छाल के काढ़े से धोना चाहिये। इसीकी छाल जलाकर व्रण पर लगानी चाहिये।

१६८. **ब्राह्मी**– यह पानी के किनारे, छाया-युक्त स्थान पर होती है। इसका पौधा होता है। इसके पत्ते १॥ इञ्च चौड़े और २ इञ्च लम्बे होते हैं। इन पत्तों के दूसरी ओर रोयें होते हैं। यह देहरादून, ऋषिकेश की तरफ बहुत होती है।

गुण—शोधक तथा पौष्टिक है। बुद्धि बढ़ाने के लिये या उन्माद रोग में अथवा मस्तिष्क को शक्ति देने के लिये इसका उपयोग प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त यह रक्त-संचार को बढ़ाती है। त्वचा के दोषों को सुधारती है। उपदंश के प्रारम्भ में यह लाभ करती है। ब्राह्मी को धूप में सुखाकर नहीं रखना चाहिये। इससे इसका प्रभाव जाता रहता है। ब्राह्मी के पत्तों को बादाम, खीरे के बीज आदि वस्तुओं के साथ घोटकर सरदाई के रूप में पीते हैं। ब्राह्मी का घी बनता है। यह त्वचा के रोगों में लगाया जाता है। मन के उदासीपन में भी ब्राह्मी लाभ करती है। मस्तिष्क के रोगों में ब्राह्मी का रस उसका घी अथवा चूर्ण लाभ करता है। बुद्धि बढ़ाने के लिये इसे शंखपुष्पी के साथ लेना चाहिये। बनावट—ब्राह्मीस्वरस, सारस्वत-चूर्ण, ब्राह्मीघृत।

१६९. **बिजौरा (मातुलुंग)**—नीबू की अपेक्षा बिजौरा दुगुना, तिगुना बड़ा होता है। इसकी छाल बहुत मोटी होती है और खड़खड़ीया होती है।

गुण—आम्ल, पित्तशामक, दीपन, रुचिकर, अजीर्णनाशक है। इसका उपयोग अजीर्ण में चूर्णों के रूप में या गोलियों के रूप में होता है। यह गुल्म, अफारा और पेट-शूल में तथा प्लीहा में लाभ करता है। शूल में बिजौरे का रस मधु तथा जौखार के साथ खाना चाहिये। अरुचि में बिजौरे की कलियों को शहद के साथ चाटना चाहिये। हिचकी में बिजौरे का रस शहद तथा संचल नमक डालकर पीना चाहिये। बनावट—बिजौरे का मुरब्बा।

१७०. **बेल**—बेलपत्र भगवान पर चढ़ाया जाता है। इसका काँटा मजबूत और लम्बा होता है। पत्ते हरे और एक-एक के साथ तीन-तीन होते हैं। इसका फूल नीला-सा श्वेत रंग का तथा मोठी गन्धवाला होता है। इसमें कैथ जैसा फल होता है। कच्चे फल का शाक, अचार और मुरब्बा होता है। इसकी जड़ दशमूल में बरती जाती है। बेल का कच्चा फल ग्राही होता है। इसका मुरब्बा अतिसार बन्द करने के काम आता है। पका फल सारक है। बाज़ार में पंसारियों के यहाँ जो गूदा मिलता है, वह कच्चे फल को धूप में सुखाकर तैयार किया जाता है। पुराने अतिसार में बेल बहुत लाभ करता है। पका फल शीतल होता है। इसका शर्बत भी बनता है। गरमियों में लू के समय इसका शर्बत प्रातः पीने से लू का भय नहीं रहता। प्यास कम लगती है। शहद के साथ खाना चाहिये।

आम संग्रहणी में—कच्चा सूखा हुआ बेल, सोंठ और सौंफ का काढ़ा पीना चाहिये। सब प्रकार के अतिसारों में बेल का गूदा, आम की गुठली, इनका काढ़ा उबालकर उसमें शक्कर और शहद डालकर पीना चाहिये। लोह या आमयुक्त अतिसार में बेल के गूदे को घी में सेककर उसका चूर्ण करके उसमें गुड़ मिला देना चाहिये। शीत ज्वर तथा मलेरिया में बेल तथा तुलसी की चाय पीनी चाहिये। गर्भिणी के उल्टी में सूखा हुआ कच्चा बेल तथा सोंठ का काढ़ा जौ के साथ पीना चाहिये।

त्रिदोष-जन्य वमन में--बेल के काढ़े में शहद डालकर पीना चाहिये। जीर्ण ज्वर में बेल के मूल का काढ़ा दूध में उबालकर पीना चाहिये। कॉलरे में बिल. सोंठ तथा कायफल का काढ़ा पीना चाहिये।

बाधिर्य-रोग में—बेल को गोमूत्र में पीसकर उसको तेल में पकाकर कान में डालना चाहिये। बनावट—बिल्वादि-चूर्ण, बेल का मुरब्बा।

१७१. **बहेड़ा**—बहेड़ा का वृक्ष बहुत ऊँचा और मोटा होता है। इसका पत्ता बेल के पत्तों से मिलता है। बहेड़ा का फल सुपारी जैसा गोल होता है। सूखने पर इसका फल पीला-सा होता है। इसके टूटने से अन्दर पीला रंग निकलता है। फूल के अन्दर कलियाँ तथा उसके अन्दर श्वेत बीज होता है। इसकी छाल रँगने में तथा दवाइयों के काम बरती जाती है। बहेड़े की मींगी जहरीली होती है।

गुण—स्वाद में कषाय तथा मधुर है, कफ-पित्तनाशक है। छाल को पुटपाक रीति से बनाकर मुँह में रखने से स्वर-भंग और खाँसी मिटती है। बहेड़ा आँख का तेज बढ़ाता है। बहेड़े की मींग कुकर खाँसी के काम आती है। त्रिफला में यह भी पड़ता है। बनावट—कास-कंडनावलेह, विभीतक पुटपाक।

१७२. **भाँग**—भाँग का वृक्ष ३-४ हाथ ऊँचा होता है। गाँजा भी भाँग से बनाया जाता है। इसका पत्ता लम्बा, कम चौड़ा और नोकदार होता है। इसका फल, बीज बहुत ही छोटा दाना होता है। चरस, गाँजा, माजूम आदि चीजें इसीसे बनाई जाती हैं। आर्य-चिकित्सा में इसके बीज व्यवहार में आते हैं।

गुण—भाँग स्वाद में कड़वी, कषैली, गरम, वात और कफ को नष्ट करनेवाली, संग्राही, बलकारक, मेधा करनेवाली है। भाँग मादक है, अधिक लेनें से पागलपन उत्पन्न करती है। भाँग के सेवन करने पर मन एक विषय में तल्लीन हो जाता है, इससे कोई-कोई लेखक या कवि इसके उपासक हो जाते हैं। इसकी सरदाई गर्मियों में लू से बचाती है। इसके फूल में से निकला हुआ सत्त्व (चरस) स्नायुवों को जड़ बनाता है। इस गुण के कारण आक्षेप आदि वात-रोगों में स्नायुवों की उत्तेजकता को कम करने के लिये इसका उपयोग होता है। इस लाभ के लिये इसे तम्बाकू के साथ रखकर चिलम में पीना चाहिये। धनुर्वात एवं आक्षेप के रोगियों को लाभ होता है। भाँग संग्राही होने से इसके बीज अतिसार, संग्रहणी आदि रोगों की दवाइयों में पड़ते हैं। भाँग में वाजीकरण असर भी है। इसलिये तथा स्तम्भक गुण होने के कारण लोग इसको पाकों के लिये व्यवहार करते हैं। यूनानी लोग इसको प्रमेह और अंत्रवृद्धि रोगों में बरतते हैं। भाँग को दूध में पीसकर अर्श के मस्सों पर लगाने से आराम होता है। निद्रा लाने के लिये घी में सिकी हुई भाँग का उपयोग करने के लिये कितने कहते हैं।

१७३. भाँगरा—यह पानी के किनारे गीली भूमि में बरसात के समय बहुत होता है। इसका पौधा बहुत ऊँचा नहीं होता। इसके दो भेद हैं. एक सफेद फूल का और दूसरा काले फूल का। भाँगरे का रस निकालने से या हाथ पर लगने से हाथ काला हो जाता है। इस गुण के कारण शायद इसको काला भाँगरा कहते हैं; चूँकि यह काला करने का गुण रखता है, इसीलिये बालों के लिये उपयोगी है। इससे इसको "केशराज" भी कहते हैं। इसका गुण अनार्य-चिकित्सा की दवाई से बहुत कुछ मिलता है। यकृत के ऊपर इसका प्रभाव अच्छा होता है।

गुण—उष्ण, कफघ्न, वातहर, कृमिघ्न तथा रसायन। भाँगरे का स्वाद कड़ुवा होता है। यह कफ, दमा, खाँसी, शोथ, पाण्डु, कोढ़, आँख, छाती और शिर के रोगों को नष्ट करता है।

भाँगरा स्थावर—पारद आदि के विष के लिये तथा जंगम विष कुत्ते आदि के काटने पर लगाने से लाभ करता है। गरमी के व्रण को भाँगरे के रस से धोना चाहिये। गले से ऊपर के सब रोगों में, जैसे—आँख, कान, नाक, दाँत, शिर-दर्द आदि में भाँगरे का रस काम में आता है। पारा शरीर में

शोरा मिलाकर छाछ के साथ पीने से पारा शरीर से बाहर हो जाता है। भृङ्गराज का स्वरस रसायन के लिये बरता जाता है। बनावट—भृङ्गराज-स्वरस, भृङ्गराज तैल, षड्‌बिन्दु तैल।

१७४. भारङ्गी—भारंगी का वृक्ष बहुत बड़ा और सुन्दर होता है। इसके ऊपर भ्रमर बहुत उड़ता है। इसका फूल श्वेत और फल आसमानी रंग का होता है। इसका पत्ता महुवे के पत्ते जैसा होता है। दवाई में इसका मूल बरता जाता है। इसको भारंगी-मूल कहते हैं।

गुण—उष्ण, कफघ्न, दीपन, पाचन, ज्वरघ्न है। कफ-ज्वर में भारंगी का बहुत उपयोग होता है। इससे कफ, तन्द्रा आदि रोग दूर होते हैं। बनावट—भारंग्यादि-काथ।

१७५. भिलावा—भिलावे का वृक्ष बड़ा होता है। इसमें काले-काले बीज लगते हैं।

गुण—उष्ण, वातहर, पाचन। भिलावे में एक प्रकार का तेल होता है, जो शरीर पर लगाने से या अन्दर जाने से दाह उत्पन्न करता है। इसके लगाने से फफोले उठ आते हैं। भिलावे में कई चमत्कारिक गुण हैं, इसलिये इसका उपयोग किया जाता है। परन्तु कई बार यह मनुष्यों की प्रकृति के अनुकूल नहीं आता। इसलिये इसे बहुत सँभालकर व्यवहार करना चाहिये। भिलावा वात और कफ-प्रकृतिवालों के बहुत अनुकूल रहता है, और पित्तवालों के लिये इतना उपयोगी नहीं। इसके खाने से शरीर पर जब खाज होने लगे, उस समय इसको बन्द करके घी खिलाना चाहिये। शरीर पर चूने का पानी या नारियल का तेल लगाना चाहिये। शीत उपचार करना अच्छा है। भिलावे के खानेवाले व्यक्ति को पित्तकारक औषधियों से बचना चाहिये। गरम पानी में स्नान, धूप में बैठना आदि काम नहीं करने चाहियें। भिलावा अर्श-रोग की एक उत्तम और क़ीमती दवाई है। पुराने संधि-वात आदि वात-व्याधि में भी भिलावा फ़ायदा करता है। सन्धि के ऊपर भिलावा लगाने से सन्धि की शोथ कम पड़ती है। वातोदर में एवं जलोदर में भिलावे का गुण अच्छा होता है। यदि सूतिका-रोग पुराना हो, उसमें ज्वर न हो, तो इसका उपयोग करना अच्छा है। भिलावे का प्रभाव उसको खा चुकने के बाद होता है, उपयोग करते समय इसका लाभ नहीं होता। भिलावे के टुकड़े करके घी में तलकर बरतना चाहिये। इसका शोधन करके

योग्य वैद्य की देख-रेख ही में इसका उपयोग करना उत्तम है, यह रसायन है, वाजिकरण है, कल्प है। बनावट-नागसिंह चूर्ण, अमृतभल्लातक।

१७६ बोरेंगिणी (कटेरी)—कटेरी दो प्रकार की होती है, एक छोटी और दूसरी बड़ी। इसकी डाली और पत्तों पर काँटे होते हैं। फल कच्चा रहने पर हरा और पकने पर पीला हो जाता है। बड़ी भारंगी का फल कैथ जितना कड़ा होता है। इसका पत्ता, पौधा और फल का आकार रेंगिणी जैसा होता है। फूल नारंगी रङ्ग का होता है। इसकी जड़ के खाने से ऋतुमती स्त्री गर्भ धारण करती है। दोनों कटेरियों का पंचांग दशमूल में पड़ता है।

गुण—कफघ्न, ज्वरघ्न, दमा, खाँसी, में लाभ करती है। इसके बीजों का धुवाँ दाँत में लेने से दन्त-शूल मिटता है।।बनावट—कण्टकारी स्वरस, कण्टकारी-पुटपाक, कण्टकारी अवलेह।

१७७ मजीठ—इसकी बेल होती है। मजीठ की जड़ गोल, पतली, लाल रङ्ग की होती है।

गुण—शोधक, शीतल और पित्तशामक है। सब प्रकार के त्वचा के रोगों में और वात-रक्त में मजीठ को व्यवहार में लाया जाता है। विस्फोट आदि रोगों में, मुँहासे पर मजीठ का बहुत उपयोग होता है। यह रक्त के अन्दर की गरमी को शान्त करता है। साधारणतः मजीठ रक्त-शोधक है। बनावट मंजीष्ठादि-क्वाथ, लघुमंजीष्ठादि-काथ।

१७८ मरोड़फली—इसकी बेल होती है। इसका फल मरोड़े खाये हुये होता है। इसलिये अनार्य-भाषा में इसे "स्क्रू ट्री" कहते हैं, और आर्य-भाषा में इसको अजश्रृंगी या मेढ़-श्रृंगी कहते हैं।

गुण—स्वाद में कड़ुई तथा कषैली होती है। पेट-पीड़ा, अतिसार, मरोड़ा, कास, कफ और दमे आदि में लाभ करती है।

१७९ मिर्च (कालीमिर्च)—हिन्दुस्तान में मलावार के किनारे इसकी बहुत अधिक पैदाइश होती है। इसके पत्ते पान की बेल के समान होते हैं। इसके फल झुमके के रूप में होते हैं। इसके फूल को मिर्च कहते हैं। आर्य-चिकित्सा में 'मिर्च' शब्द का उपयोग कालीमिर्च के लिये ही आता है।

गुण—उष्ण, वातहर, दीपन, पाचन, सारक। मिर्च मन्दाग्नि में बहुत अच्छा प्रभाव करती है। इससे कफ और वात को लाभ होता है, उष्ण होने पर पित्त को नहीं बढ़ाती। तिक्त को, ज्वर को शान्त करती है। शीत ज्वर में कालीमिर्च की चाय बनाकर पीने का साधारण रिवाज है। शर्करा तथा मिर्च की चाय धीरे-धीरे ज्वर दूर करती है। ज्वर का पाचन करके मल को लाती है। बेशुद्धि, तन्द्रा, सन्निपात में मिर्च का काढ़ा सुस्ती को दूर करता है। इसका अंजन संज्ञानाश को हटाता है। मिर्च, घी तथा शर्करा को मिलाकर खाने से शिर के चक्कर, भ्रम आदि दूर होकर ठंडक होती है (उल्टी आदि में मिर्च को चबाने को चाल है) दूध को पचाने के लिये मिर्च को दूध में उबालकर पीना चाहिये, इससे जठराग्नि बढ़ती है। शिर के ऊपर जहाँ से बाल उड़ गये हों, उस स्थान पर या श्वित्र के स्थान पर मिर्च का चूर्ण रगड़ने से लाभ होता है। मिर्च का चूर्ण घी में चाटने से बलगम, नजले को लाभ होता है। तुलसी के पत्तों का रस, मिर्च मधु इनको पिप्पली के साथ पीने से विषम ज्वर दूर होता है। मिर्च, चित्रक-मूल और काला नमक इनको संग्रहणी में छाछ के साथ देना चाहिये। प्लीहा और अर्श में इसको चित्रक के साथ सेवन करने से बहुत लाभ होता है। इसके उपयोग से आँतों को जोर मिलता है, विष को दूर करती है, लीहा के लिये उपकारी है। मिर्च के रासायनिक-द्रव्य को "पैपरीन" कहते हैं। बनावट—श्वासकुठाररस, मरीच्यादि-चूर्ण, मरिच-चूर्ण, प्राणदा गुटिका।

१८०. **माजूफल**—इसका वृक्ष बहुत बड़ा होता है। इसके फल के ऊपर काँटे होते हैं। इसका फल और छाल बहुत अधिक संग्राही होता है। इसका चूर्ण और राख दाँतों के लिये मंजनों में पड़ती है। यह बहुत संग्राही होता है, इसलिये अतिसार में योनि के संकोचन में काम आता है। अफीम का योग देने से इसका प्रभाव बहुत अच्छा होता है। फिटकिरी और इसकी छाल का क्वाथ करने से मुँह की गरमी अच्छी होती है। माजूफल में से "गैलिक एसिड" निकलता है। खून स्रावी अर्श में इसका प्रलेप एवं अन्तः-उपयोग बहुत लाभ करता है। इसमें से "टैनिक" ५० प्रतिशत निकलती है।

१८१. **मालकंगनी (ज्योतिष्मती)**—इसकी बेल होती है। इसके फल गुच्छे के आकार में लगते हैं। पकने पर लाल हो जाते हैं। इसके बीज

के ऊपर पड़ होता है। उसको उतार देने पर अन्दर से चपटा, पीला। बीज निकलता है। इन बीजों में से पीले रंग का तेल निकलता है। औषधि के काम में पत्ते, फल, मूल और तेल व्यवहार में आते हैं।

गुण—गरम, स्वेदक, स्मरण-शक्ति बढ़ानेवाली है। चरक में शिरोविरेचन के लिये सुश्रुत ने व्रण-शोधन, कुष्ठघ्न तथा संशोधक कहा है। उन्माद में, भ्रम में, संज्ञानाश में इसके बीजों का चूर्ण मिर्च के चूर्ण के साथ देना चाहिये। इसका तेल शरीर के ऊपर लगाने से वायु के दर्द मिटते हैं। कई डाक्टरों का अनुभव है कि इसका तेल मूत्रल और स्वेदल है।

१८२. **मैनफल**—इसका वृक्ष बड़ा होता है। इसका फल बड़ी सुपारी-जैसा तथा अखरोट के फल के समान होता है।

गुण—कान्तिकारक, ग्राही है। वमन कराने के लिये इसका विशेषतः उपयोग किया जाता है। इसके बीज का गर्भ १ से २ माशा मात्रा में पानी के साथ देने से वमन होता है। साधारण प्रभाव में कफघ्न और संग्राही है। खील, बाल-तोड़ आदि अन्तः-विद्रधि को फोड़ने के लिये गुड़ और मैनफल को पीसकर लेप करना चाहिये। मात्रा उल्टी के लिये ६ से ८ बाल, विरेचन के लिये ४ से ६ बाल।

१८३. **मूसली**—मूसली पंसारियों के यहाँ मिलती है। इसकी दो जाति हैं, काली और श्वेत।

गुण—धातु-पौष्टिक, वीर्य को गाढ़ा करनेवाली है। धातुपौष्टिक पाकों में मूसली का उपयोग होता है। बनावट—मूशल्यादि-चूर्ण।

१८४. **मेथी**—मेथी के पत्तों की भाजी बनती है। पकने पर इसमें बीज, दाने लगते हैं, जो छोटे और पीले रंग के होते हैं। इन बीजों का उपयोग दवाई के लिये किया जाता है।

गुण—वातहर, पौष्टिक। संधिवात, कमर के दुखाव में, वातव्याधि में मेथी के बीजों का उपयोग बहुत अच्छी प्रकार से किया जाता है। स्त्रियाँ मेथी का उपयोग बहुत करती हैं। इनसे निर्बलता दूर होकर शक्ति आती है। जठराग्नि बढ़ती है, प्रसव के पीछे गर्भाशय को शोधन करने के लिये, एवं संकुचित करने के उद्देश्य से मेथी के बीज, गाजर के बीज, सुवा के बीज तथा मालकंगनी के बीज—इनको गरम काढ़ा बनाकर, गुड़ डालकर

देते हैं। यही औषधि गर्भपात के लिये काम में आती है। प्लीहा, गुल्म तथा पेट के अन्य वात-सम्बन्धी विकारों में मेथी के लड्डू या मेथी का पाक लाभ करता है। बनावट—मेथीपाक।

१८५. **मेंहदी**—मेंहदी का पौधा होता है, बाग-बगीचों में बोई जाती है। इसके पत्ते छोटे-छोटे होते हैं। इन पत्तों को पीसकर हाथ, पाँव, बाल रँगे जाते हैं।

गुण—पौष्टिक, ग्राही और शोथघ्न है। हाथ-पाँव की जलन, उनमें से खाज निकलना आदि शिकायतें इससे दूर होती हैं। इसके फूलों का इत्र खिँचता है। इसके रस में शक्कर मिलाकर पीने से क्षय में लाभ होता है। यह गरमी के रोगों का नाश करती है। कर्ण-पाक में इसके पत्तों का रस डालना चाहिये। विसर्प, विस्फोट तथा गरमी के व्रणों पर इसके पत्तों का लेप उत्तम है।

१८६. **मेदा लकड़ी**—मेदा लकड़ी का झाड़ बड़ा होता है। इसकी छाल भूरे रङ्ग की होती है। यह छाल पंसारियों के यहाँ मिलती है। कइयों का विचार यह है कि जीवनीय गण की जो "मेदा" वनस्पति है, वह यही है। गुम चोट के ऊपर इसको हालों लकड़ी के साथ पीसकर अथवा सर्जक्षार और आम्बाहल्दी के साथ मिलाकर लेप करना चाहिये। मेदा लकड़ी पित्तशामक है, इसलिये ठण्डे पानी में पीसकर या हिम क्वाथ करके पीने से प्रमेह और दाह शान्त होता है। इसी प्रकार अतिसार और मरोड़ा भी मिटता है।

१८७. **मोचरस**—यह सिम्भावल के वृक्ष का गोंद है।

गुण—शीतल, ग्राही, वृष्य है। बनावट-लघुगंगाधर-चूर्ण, वृद्ध-गंगाधर-चूर्ण।

१८८. **मार्कण्डी**—इसको सनाय भी कहते हैं।

गुण—रेचक, शोधक तथा कृमिघ्न है। स्वाद में कषैली और कड़वी-सी है। सोनामक्खी का जुलाब धीमा और मृदु लगता है, इसलिये बिना भय के दे सकते हैं। त्वचा के जीर्ण विकारों में इसका शोधक असर होता है। वात-रक्त अथवा कब्ज में इसको निम्न प्रकार से देना चाहिये: स्वर्ण-मुखी, सौंफ, मुनक्का, उन्नाव, अंजीर, रेशाखतमी, मुलहट्ठी आदि चीजों को

उचित मात्रा में लेकर चाय बनाकर देना चाहिये। इसके लेने से किसी प्रकार की शूल नहीं होती। इसके विरेचन में खासियत यह है कि पीछे से कब्ज नहीं होती। बनावट-पवित्र चूर्ण।

१८९. **रोहितक**—इसको भाषा में रोहेड़ा कहते हैं। दवाई में इसकी छाल बरती जाती है। इसकी छाल रक्त-शोधक है। यकृत और प्लीहा आदि में पेट की गाठें तोड़ने के लिये लाल रोहेड़े की छाल काम में आती है। श्वेत प्रदर में इसकी मूल का कल्क शहद में देना चाहिये। चोट के कारण जमे हुये रक्त को हटाने के लिये इसका चूर्ण घी में चाटना चाहिये या पानी में लेप करना चाहिये।

१९०. **रतवेलीया (जलपिप्पली)**—इसको बंगाली में मेघनाद कहते हैं। यह नदी के किनारे या पानीवाले स्थान में अधिक होता है। इसका पत्ता बड़ी लोणी के समान किनारों पर कटा हुआ होता है।

गुण—दाह-शामक। जलपिप्पली स्वाद में कषैली और ठंडी होती है। विषर्प रोग पर इसको पीसकर लगाते हैं। इसलिये बालकों को विषर्प, गरमी तथा यकृत के रोग में देते हैं। इससे रक्तातिसार, अतिसार, दाह, भ्रम, ज्वर, विष, प्यास तथा श्वास में लाभ होता है। गुमड़े के ऊपर भी लगाते हैं।

१९१. **रक्तचन्दन**—श्वेत चन्दन के समान लाल चन्दन भी मलाबार के किनारे, मैसूर में, ट्रावनकोर आदि प्रान्तों में होता है। इसकी लाल लकड़ियाँ पंसारियों के यहाँ मिलती हैं। यह चन्दन अन्तः-उपयोग में काम आता है और श्वेत चन्दन बाहर लगाने के।

गुण—शीतल, पित्तशामक, वृष्य, प्यास को दूर करता है। इन सब गुणों के कारण इसका उपयोग ज्वर में होता है। दवाइयों का रङ्ग बदलने के लिये भी इसका उपयोग होता है। उल्टी, प्यास, ज्वर, रक्त-विकार वात, पित्त आदि में इसका उपयोग होता है।

१९२. **रसवन्ती**—इसको रसाञ्जन भी कहते हैं। यह दारुहल्दी से बनता है। बनावट-रसांजनादिवटी।

१९३. **राई**—इसका पौधा हाथ भर ऊँचा होता है। इसके पत्तों का शाक बनाया जाता है। इसकी भाजी गरम, पित्तकारक और वातहर होती है। राई के पौधे में फलियाँ होती हैं। इनमें से राई निकलती है। अचार में,

शाक-भाजी में, रायते में इसका प्रतिदिन उपयोग होता है। दवाई के लिये राई का उपयोग बाह्य-उपचार में किया जाता है। बंगाल में राई का तेल खाने के काम आता है।

गुण—उष्ण, क्षोभक और कांतिकारक। राई को पिलाने से उल्टी होती है। जिस समय किसीने ज़हर पी लिया हो, उस समय इसको पानी में घोलकर देना चाहिये। इससे वमन हो जाता है। जिस समय पेट की दवाई टिकती न हो, उस समय इसका लेप पेट (कौड़ी-प्रदेश) पर करना चाहिये। पन्द्रह मिनट के पीछे इसको उतार देना चाहिये। पार्श्व-शूल तथा अन्य दर्दों में भी इसका लेप किया जाता है। जिस स्त्री को ऋतु कठिनता से आती हो, उसे इसके पानी में (इसकी १ औन्स की मात्रा ४ गैलन पानी में घोलकर) बिठाना चाहिये। जिस समय शिर में रक्त का संचार बढ़ गया हो, उस समय राई के पानी में रोगी को घुटने तक पाँव डालकर बैठाना चाहिये और शिर पर ठंडा पानी रखना चाहिये। राई को त्वचा के ऊपर १०-१५ मिनट से अधिक नहीं लगाना चाहिये। ऊपर से घी का लेप कर देना चाहिये। मात्रा—वमन के लिये आधा तोला।

१९४. **रास्ना**—रास्ना क्या वस्तु है, यह बात अभी तक निश्चित नहीं हुई। कहीं तो इसके पत्ते व्यवहार में आते हैं और कहीं पर इसकी जड़ें या लकड़ी काम में आती हैं। कोई इसको बेल मानता है और कोई इसका पेड़ मानता है।

गुण—उष्ण, वातहर। वात-व्याधि के लिये यह एक सर्वोत्तम दवा है। अस्सी प्रकार के वात-रोगों में रास्ना सबसे अच्छी है। बनावट—रास्ना-पंचकक्वाथ, महारास्नादि क्वाथ, रास्नादि क्वाथ।

१९५ **राल**—यह शाल के वृक्ष में से गोंद के रूप में निकलती है।

गुण—ग्राही, रक्त-विकार में, कण्डू में इसका उपयोग होता है। बालकों के अतिसार में, रक्तातिसार में राल शर्करा के साथ दी जाती है। व्रण के ऊपर राल का चूर्ण देने से रक्त बन्द होता है। राल का प्रलेप बनता है। इसको जलाने से हवा शुद्ध होती है। रोपक होने से गनोरिया में दी जाती है। इसका प्रलेप बिवाई या जले हुये घावों पर लगता है।

१९६. **खेतचीनी**—इसका वृक्ष हिमालय में, मलाबार के किनारे, चीन में होता है। इसका वृक्ष लगभग ६-७ हाथ ऊँचा होता है। प्राचीन ग्रन्थों में इसको 'क्षीरीणी' या 'काञ्चनक्षीरी' नाम से कहा है। चरक ने इसको

शोधनीय गुणों में गिना है। खेतचीनी की मुख्य पैदाइश चीन में होती है और वहीं से अधिक मात्रा में आती है।

गुण—रेचक, कृमिघ्न है। अनार्य-चिकित्सक रुवर्ब का उपयोग अतिसार में तथा मलबन्ध में करते हैं। इस दवाई के अन्दर दोनों विरोधी गुण रहते हैं। प्रथम यह विरेचन असर करती है और फिर यही संग्राही प्रभाव भी करती है। इस गुण के कारण यह बच्चों के लिये विशेष उपकारी है। यदि इससे पेट में मरोड़ या दर्द मालूम पड़े, तो इसमें सोंठ मिलाकर बरतना चाहिये। खेतचीनी, चणकत्राव, सुराखार तथा इलायची समान भाग लेकर इसका चूर्ण करके, इसकी ६ माशा मात्रा २६ टंक पानी और दो छटाँक दूध के साथ मिलाकर पीने से मूत्र का रेचन होता है। खेतचीनी शोधक होने से इसको पीसकर व्रण पर लगाने से लाभ होता है।

१९७. **लवंग**—इसका वृक्ष मलाया, जंजीवार और मलावार में होता है। लवङ्ग—यह झाड़ की कलियाँ हैं। जिस लौंग में तीव्र गन्ध हो, स्वाद में तीखा हो और नख से दबाने पर अन्दर से तेल निकले, उसको अच्छा लवङ्ग जानना चाहिये।

गुण—उष्ण, कफघ्न, दीपन तथा आमनाशक है। लवंग का विशेष उपयोग मुखवास में, मसाले में, प्यास रोकने में, ज्वर में, शूल में काम आता है। अफारा, शूल, खाँसी, श्वास, हिचकी तथा क्षय में भी इसका उपयोग होता है। लौंग को पीसकर माथे पर लगाने से शिर-दर्द मिटता है। सरदी के ऊपर लौंग का काढ़ा देना चाहिये।

रतौंधी में—इसको बकरी के मूत्र में घिसकर अंजन करना चाहिये। दाँत के दुखाव में लौंग के तेल का फाहा रखना चाहिये। अजीर्ण, अग्निमान्द्य तथा हैजे में लवंग का काढ़ा देना चाहिये। दाँत के मञ्जनों में भी लौंग का उपयोग होता है। बनावट—लवंगादि चूर्ण, लवंगादि-वटी।

१९८. **लहसुन**—लहसुन सर्वत्र प्रसिद्ध है। इसमें कन्द लगता है, जो जमीन के अन्दर होता है। यही कन्द काम में आता है।

गुण—उष्ण, वातहर। वायु के ऊपर लहसुन का उपयोग बहुत प्रसिद्ध है। लहसुन की कलियाँ घी में तलकर खाने से टूटी हुई अस्थियाँ जुड़ती हैं। इससे शरीर को पुष्टि मिलती है। वात-प्रकृतिवालों को विशेषत: उपयोगी होता है। पित्त-प्रकृतिवालों के लिये लहसुन बहुत गरम पड़ता है।

कच्चे आम के दोष को पकाने के लिये लहसुन में सोंठ-जैसा गुण होता है। इसलिये लहसुन अजीर्ण की एक उत्तम औषधि है। बालकों के अतिसार में लाभदायक है। वात-रोग में लहसुन को उड़द के साथ तिल-तैल में तलकर, या उड़द के साथ पकाकर खाना चाहिये।

आमवात—संधिवात में लहसुन को घी में तलकर प्रतिदिन भोजन से पूर्व खाना चाहिये। शूल के ऊपर लहसुन घी में खाना चाहिये। विसूचिका में लहसुन का स्वरस पिलाने से अवश्य लाभ होता है।

उदर-रोग में—लहसुन १ भाग, सेंधानमक आधा भाग और घी में भुनी हुई हींग चौथाई, सबके बराबर आर्द्रक का रस—इन सबको घोंटकर चार-चार रत्ती की गोली बनाकर सेवन करना चाहिये। व्रण में कृमि पड़े हों, तो इसका रस लगाना चाहिये। वात-रोग में इसे हींग के साथ देना उत्तम है।

कान के अन्दर यदि झनझन होती हो, तो इसको तेल में पकाकर कान में डालना चाहिये। सेंकी हुई हींग, जीरा, सेंधानमक, सोंचल, सोंठ, मिर्च, पिप्पली, प्रत्येक एक-एक माशा, इनके चूर्ण के बराबर लहसुन मिलाकर चार-चार आने भर की गोली बना लेनी चाहिये। इन गोलियों को खाकर ऊपर से एरण्ड-मूल का काढ़ा पीना चाहिये। इससे पक्षाघात, उरुस्तम्भ, कटिशूल, पार्श्वशूल, पेट के कृमि, पेट की वायु तथा सब अंगों की वायु मिटती है। पागल कुत्ते के काटने पर लहसुन का लेप करना चाहिये। लहसुन उबालकर पीना चाहिये, खूराक में भी लहसुन का उपयोग करना चाहिये। क्षय-रोग में लहसुन प्रभाव करता है। बनावट—लहसुनादि-चूर्ण।

१९९. **लोध्र**—लोध्र का वृक्ष मध्यम ऊँचाई, मध्यम मोटाई का होता है। यह हिमालय या विन्ध्याचल के पहाड़ों पर मिलता है। दवाई के काम में इसकी छाल बरती जाती है। इसकी दो जातियाँ हैं—श्वेत और पतली छाल; दूसरी लाल और मोटी छाल। दूसरी प्रकार की छाल को पठानी लोध्र कहते हैं।

गुण—शीतल तथा संग्राही। इसका लेप या चूर्ण अंगराग के लिये अथवा शरीर-शुद्धि के लिये मला जाता है।

युवान-पिटिका—मुँहासों में इसको धनिया या मजीठ के साथ मिलाकर शहद के साथ लगाते हैं। संग्राही होने से दाँतों के मंजनों में, अतिसार

की दवाइयों में डाला जाता है। लोध्र की गरम पुल्टिस आँख पर बाँधने से दुखती आँख को आराम मिलता है। लोध्र, मुलहट्ठी, फिटकिरी इनको गुलाब-जल में घिसकर आँख पर लगाने से दुखती आँख अच्छी हो जाती है।

२००. **लोहबान**—यह एक प्रकार के वृक्ष का रस है। बाजार में जो 'कौड़िया लोहबान' के नाम से बिकता है, वह सच्चा है। इसके अन्दर मिलावट बहुत होती है।

गुण—कफघ्न, जन्तुघ्न और रोपण। लोहबान खाँसी में, दमे में, क्षय में, क्षय के जीर्णरूप में लाभ करता है। दुष्ट व्रण को भरता है। इसका धुआँ सुगन्ध-युक्त होता है। लोहबान को उड़ाकर इससे फूल बनाये जाते हैं, यह उल्टी को, कुक्कुर खाँसी को कम करता है।

२०१. **वत्सनाभ**—यह हिमालय, सतपुड़ा और खानदेश के जंगलों में बहुत होता है। दवाई के काम में इसका मूल बरता जाता है। यह मूल ४-५ अंगुल लम्बा, रङ्ग में काला, बहुत कठोर, ऊपर से खुरदरा तथा मोटा, नीचे से पतला होता है। यह विषैली वनस्पति है। भावप्रकाश में वत्सनाभ की नौ जातियाँ लिखी हैं। चरक ने इसके १३ भेद किये हैं। वत्सनाभ का उपयोग विशेषत: भावमिश्र के समय से आरम्भ हुआ है। औषधि में व्यवहार करने से पूर्व इसकी तीक्ष्णता कम करने के लिये इसका शोधन करना आवश्यक है।

गुण—ज्वरहर, वातहर है। वत्सनाभ स्वेदल एवं मूत्रल है। लोगों का विचार है कि यह हृदय को कमजोर करता है; परन्तु आर्य-चिकित्सा के ज्वर की ९५ प्रतिशतक औषधियों में इसका उपयोग होता है। चढ़े हुये ज्वर को उतारने में या ज्वर के वेग को रोकने में यह सबसे उत्तम औषधि है। इसको हिंगुल या रससिन्दूर के साथ तथा अन्य खनिज भस्मों के साथ मिलाकर व्यवहार में लाते हैं। वातज्वर में या कफज्वर में विशेषत: उपयोगी है। इसके अतिरिक्त संधिवात, चसका आदि में इसका तेल बाह्य उपचार के काम आता है। इससे पाताल-यन्त्र-विधि द्वारा तैल निकालकर शरीर पर मलते हैं। अनार्य-चिकित्सा में इसका उपयोग 'लिनीमेंट' के रूप में होता है। बछनाग अजीर्ण में लाभ करता है, एक प्रकार से नाड़ियों को शक्ति प्रदान करता है, इसलिये इसका उपयोग रामबाण-रस या अजीर्ण-कण्टकरस में किया जाता है। वत्सनाभ तन्द्रा, आलस्य, जड़ता को दूर करता है। प्लेग की

गाँठ, कर्ण-शोथ, बद, गण्डमाला आदि कठोर शोथ के ऊपर इसको गोमूत्र या नीबू के रस में पीसकर लगाते हैं। वत्सनाभ मधुमेह (शर्करामेह) में विशेष प्रभाव रखता है। इसके सेवन से प्रथम दिन ही में प्रभाव स्पष्ट हो जाता है। मूत्र की राशि घट जाती है, शर्करा कम हो जाती है। मूत्र यदि रुकता न हो, तो इसको उचितरूप में सेवन करने से मूत्राशय को शक्ति मिलती है और मूत्र रुकने लगता है। अनार्य-चिकित्सा में इसका उपयोग टिन्चर, लिनीमेंट और एक्सट्रैक्ट के रूप में होता है। यह आर्य-चिकित्सा की बहुत-सी औषधियों में बरता जाता है। जैसे—भैरव-रस, आनन्दभैरव-रस, महा-ज्वरांकुश, अजीर्ण कण्टक-रस, रामबाण, हिंगुलेश्वर, चण्डेश्वर, ज्वर-मुरारी आदि। मात्रा—शुद्ध वत्सनाभ ½ रत्ती से १ रत्ती। बनावट—अमृतादि वटी, मृत्युञ्जय रस।

२०२. वच—वच का पौधा पानीवाली ज़मीन में या भीगी ज़मीन में होता है। मणीपुर की तरफ़ विशेष होता है। बाज़ार में इसकी जड़ के गाँठोंवाले टुकड़े मिलते हैं। इनमें से उग्र गन्ध आती है। इस गन्ध के कारण साँप भी भाग जाते हैं। इस वच को घोड़ावच भी कहते हैं। ईरान से एक प्रकार की श्वेत वच आती है। दवाई में घोड़ावच ही काम आती है।

गुण—स्वाद में कड़वी और तीखी होती है। वातघ्न, कफनाशक, और कान्तिकारक है। वच दीपन, कण्ठ-मल-मूत्र का शोधन करनेवाली, बुद्धिवर्द्धक गिनी जाती है। अपस्मार, अतिसार, शूल, अफारे को नष्ट करती है। बड़ी मात्रा में (३० ग्रेन ६ बाल) लेने से वमन कराती है और छोटी मात्रा में (१० से २० ग्रेन) लेने से दम मिटता है। प्रथम १५ से २० ग्रेन वजन से आरम्भ करके पीछे प्रत्येक दो-तीन घण्टे के पश्चात् १० ग्रेन की मात्रा में शहद के साथ लेना चाहिये। स्वर-भंग के लिये इसको गरम दूध के साथ खाना चाहिये। कफ के लिये इसका कटका मुँह में रखकर चूसना चाहिये। ग्राही होने से अतिसार को बन्द करती है। वच की पोटली सूँघने से सरदी, शिर-दर्द, प्रतिश्याय मिटता है। अपस्मार और उन्माद में वच का चूर्ण दूध या घी के साथ अथवा इसमें कूट का चूर्ण मिलाकर शहद के साथ देना चाहिये। बालक का तलुवा गिरने पर वच तथा जायफल को दूध या घी में घिसकर तालुओं पर लगाना चाहिये। खाने की मात्रा २ बाल, उल्टी के लिये ६ बाल।

२०३. वट — बरगद का वृक्ष प्रसिद्ध है। औषधि में इसकी छाल, फल और दूध काम में आता है। छाल और फल ग्राही और कफ-शामक हैं। वट का दूध धातु-पौष्टिक, धातु का स्तम्भन करनेवाला है। वट के शुङ्ग कई भस्मों के बनाने में काम आते हैं। वट का दूध और कपूर का अञ्जन करने से आँख की फूली कटती है। पंचवल्कल क्वाथ में इसकी छाल पड़ती है। यह क्वाथ व्रणों को धोने के लिये, योनि को धोने के लिये, रक्त या श्वेत-प्रदर में काम आता है। इसका फल प्रमेह में काम आता है। बनावट न्यग्रोधादि चूर्ण।

२०४. वरुण (वरण)—इसका झाड़ बहुत बड़ा होता है। इसके पत्ते बेल की भाँति तीन-तीन होते हैं, फल सुपारी जैसे होते हैं। पकने पर यह फल लाल हो जाते हैं। इसके पत्तों की एरण्ड के पत्तों की भाँति लम्बी डंठलियाँ होती हैं। दवाई के काम में इसकी छाल बरती जाती है।

गुण—इसका रस कड़वा, कपैला, कुछ मीठा और गरम होता है। छाल मूत्रल है। सुश्रुत में इसको कफमेद-नाशक, शिरः-शूलहर तथा वात-संशमन कहा है। वायु, कफ, मूत्रकृच्छ्र, वातरक्त, गुल्म, रक्त-विकार, कृमि, योनि-शूल, मस्तिष्क-शूल आदि रोगों को नाश करता है। अश्मरी, मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र आदि रोगों में वरुण की छाल, गोखरू तथा सोंठ का काढ़ा गुड़ एवं जौखार में डालकर पीना चाहिये। मुँहासों को इसके काढ़े से धोना चाहिये। गण्डमाला रोग के ऊपर वरण या कचनार की छाल का काढ़ा शहद डालकर सेवन करना चाहिये। वरुण के अन्दर पथरी के गलाने की शक्ति रहती है। बनावट—वरुण-क्वाथ।

२०५. विधारा— इसकी बेल होती है। समुद्रशोष की जड़ को विधारा कहते हैं। इसकी दो जातियाँ हैं। इसमें बड़े विधारे को समुद्रशोष की जड़ मानते हैं, और छोटे विधारे को फांग की बेल मानते हैं। औषधि के काम में विधारे की जड़ बरती जाती है।

गुण—स्वाद में कड़ुवी, कषैली और गरम होती है। पौष्टिक और वातहर है। आम, शोथ, रक्त-विकार तथा वायु के रोगों को दूर करती है। यह रसायन है। इसके सेवन से शुष्क गर्भ का पोषण हो जाता है। अर्श में भी लाभ करता है। इसके पत्ते विद्रधि के ऊपर बाँधे जाते हैं। बनावट—वृद्धदारक चूर्ण।

२०६. **वाराहीकन्द**—इस कन्द की बेलें पहाड़ पर होती हैं। कोंकण के प्रान्त में यह बहुत होता है। इस कन्द के दो-तीन भेद हैं। उत्तरीय भारत में यह गोल निकलता है, और दक्षिण भारत में लम्बूतरा रहता है। इसके ऊपर सुअर के बाल जैसे लम्बे, मोटे और विरले-विरले रेशे (बाल) होते हैं, इसीसे इसको वाराहीकन्द कहते हैं। इसका पत्ता पान के पत्ते से मिलता है।

गुण—स्वाद में मीठा तथा कड़ुवा-सा लगता है। पौष्टिक, उष्ण और रसायन है। कुष्ठ, प्रमेह, त्रिदोष, कृमि, मूत्रकृच्छ्र आदि रोगों में लाभ करता है।

२०७. **वायविडंग**— बाजार में वायविडंग नाम से एक काला दाना, मिर्च जैसा मिलता है। यही विडंग है, इस बात का अभी तक कोई पूर्ण निश्चय नहीं हुआ। विडंग को सुश्रुत में कृमिघ्न एवं रसायन लिखा है। बाजार में मिलनेवाले विडंग में इस प्रकार का कोई गुण देखने में नहीं आता। बाजार में आनेवाला वायविडंग सिंगापुर, वर्मा से आता है।

गुण—स्वाद में तीखा और जरा कड़ुवा होता है। कृमिघ्न, वातहर और शोधक है। दवाइयों में कृमिघ्न गुण के लिये व्यवहार में आती है। इससे आँतों की सड़ांद दूर होती है। वायविडंग दीपन और पाचन भी है। पेट की शूल, वमन, आक्षेप, अफारे को दूर कर देती है। वायविडंग को इन्द्रजौ के साथ देने से पेट के कृमि मर जाते हैं, पीछे से एरण्ड-तैल की मात्रा देनी चाहिये।

२०८. **वंशपत्री**— यह वृक्ष होता है। फूल श्वेत होता है। यह वृक्ष की गोंद है।

गुण—कृमिघ्न, वातहर, गुल्महर। कृमि तथा कब्जीयत की अवस्था में बच्चों को दी जाती है। ६ से १० वर्ष के बालकों को ३ रत्ती देने से पेट के कृमि मर जाते हैं। पेट के कृमि के लिये घर की बुड्ढी माताएँ इसका उपयोग भली प्रकार जानती हैं।

२०९. **वंशलोचन**—बाँस में से निकलने के कारण इसको 'वंशकर्पूर' कहते हैं।

गुण—शीतल, कफशामक, पौष्टिक, रक्त-स्तम्भक है। यह एक प्रकार से खटिक (कैलसीयम) ही है। इसलिये क्षय, कास, ज्वर, पित्त, रक्त-

विकार, अरुचि आदि रोगों में काम आता है। बिना कफ की खाँसी में बहुत लाभ करता है। इसलिये क्षय के प्रारम्भ में सितोपलादि चूर्ण के रूप में दिया हुआ वंशलोचन बहुत लाभ करता है। क्षय के प्रारम्भ में सितोपलादि चूर्ण खाँसी को नष्ट करता है। इतना ही नहीं, परन्तु क्षय के ज्वर को, रक्त के वमन को तथा शरीर की क्षीणता को दूर करता है। बनावट—सितोपलादि चूर्ण।

२१०. विदारीकन्द—इसकी बेल होती है। इसका कन्द भूमि में रहता है। इसका आकार 'कूष्माण्ड' से बहुत बड़ा होता है, इसीलिये इसको 'भूमि-कूष्माण्ड' भी नाम दिया गया है। इसकी बेलें ऊपर से छोटी होती हैं। खोदने पर कन्द मिलता है, जो ऊपर से भूरा, अन्दर से श्वेत, स्वाद में मीठा निकलता है। पंसारियों के यहाँ जो विदारीकन्द के टुकड़े मिलते हैं, वे सुखाये हुये होते हैं।

गुण—धातुपौष्टिक, मूत्रल और वृष्य है। इसका विशेष उपयोग धातुपौष्टिक प्रभाव के लिये होता है। जीवनीयगण की औषधियों के अभाव में इसीसे काम लिया जाता है। निर्बलता, नामर्दी को दूर करता है। स्त्रियों में दूध को बढ़ाता है। इसके चूर्ण की मात्रा चौथाई तोला है। बनावट—विदारीकन्द के धातुपौष्टिक प्रयोग।

२११. शङ्खपुष्पी—इसका पौधा कुछ पथरीली, कंकड़वाली भूमि पर होता है। इसका पत्ता बारीक और पुष्प शंख के समान होता है, इसीलिये इसको शंखपुष्पी कहते हैं। कई लोगों का विचार है कि जिस शंखपुष्पी का फूल काला होता है, उसे विष्णुकान्ता कहते हैं।

गुण—स्वाद में कषैली है। यह बुद्धि को स्थिर करती है, विक्षिप्त मन को शान्त करती है। शीतल तथा पित्तशामक है। उन्माद तथा अपस्मार रोग में शंखावली का रस, कूठ का चूर्ण तथा शहद डालकर पीना चाहिये। इससे कृमि, कुष्ठ और विष मिटता है।

२१२. शतावरी—यूनानी में इसको 'शकाकुल मिस्री' कहते हैं। शतावरी का पौधा होता है। इसकी जड़ें बहुत होती हैं, इसलिये इनको शतमूली कहते हैं। जो लोग इसको बेल मानते हैं, वे भ्रम करते हैं। इसकी जड़ें दो-चार हाथ लम्बी होती हैं। इसकी जड़ें अँगूठे से भी अधिक मोटी होती हैं।

गुण—शीतल, धातुपौष्टिक, संग्राही है। शतावरी का रस लगातार खाने से आँखों की रतौंधी दूर होती है। धातु-पौष्टिक दवाई के लिये इसका उपयोग प्रसिद्ध है। इसका चूर्ण दूध में डालकर या दूध के साथ पीते हैं। पुरुष की धातु और स्त्री के दूध को बढ़ाती है। स्त्रियों के श्वेत-प्रदर के लिये यह उत्तम दवाई है। संग्राही एवं पौष्टिक है। शतावरी वायु के लिये भी उत्तम है, इसका रस वातहर तैलों में पड़ता है। स्त्रियों के गर्भाशय को शक्ति मिलती है। इसलिये इसे फलघृत में डालते हैं। बनावट—फलघृत, नारायण तैल।

२१३. शरपुङ्खा—शरपुङ्खा के पत्तों को बीच में से यदि तोड़ा जाय तो वह सीधा नहीं फटता, अर्थात टूटते हुये वह तिरछा टूटता है।

गुण—शरपुङ्खा स्वाद में कड़वा और कषैला होता है। मूत्रल, कफघ्न, पौष्टिक और उष्ण है। प्रमेह में इसके पत्ते मिर्च के साथ दिये जाते हैं। इसका क्षार बनाया जाता है। प्लीहा में इसका मूल छाछ में पीसकर दिया जाता है। इसकी जड़ की बीड़ी पीने से कास तथा दम मिटता है। शरपुङ्खा गर्भाशय को सुधारती है। इसको देर तक सेवन करने से बन्ध्यत्व मिटता है।

२१४. शिरीष— संस्कृत-साहित्य में इसकी उपमा कोमलता से दी जाती है। हाथी को यह वृक्ष बहुत प्यारा होता है। इसका पत्ता आमने-सामने होता है। इसमें श्वेत खुशबूदार फूल होता है, जो बाल के समान बारीक, रेशम के समान रेशों से भरपूर होता है। दवाई के काम में इसकी छाल बहुत काम आती है। आर्य-चिकित्सा में इसको विषहर मानते हैं।

गुण—शीतल, दाह-शामक, शोथघ्न और विषहर है। दुष्ट व्रण, गर्मियों की शोथ, विस्फोटक की शोथ और जहरीले डंक की शोथ पर इसकी छाल का लेप करने से विष उतर जाता है। विषर्प तथा मूसिका आदि के काटने से उत्पन्न शोथ पर या दाह पर इसका लेप उत्तम है, इससे विष शीघ्र दूर हो जाता है। शिरीष के बीजों से तेल निकलता है। इसका अंजन करने से आँख के रोग मिटते हैं। बनावट—दशांगलेप।

२१५. शिवलिङ्गी—इसकी बेल होती है, जो बाड़ों पर फैली रहती है। इसके बीजों के ऊपर श्वेत चिह्न बना रहता है, इसपर शिव की मूर्त्ति का आकार बना रहता है। प्रत्येक ढोढ़े में से ३ या ४ बीज निकलते हैं।

गुण—शोधक, सारक और पौष्टिक है। इसके पत्तों को तेल में बनाकर १०-१५ दिन तक खाने से विरेचन होता है। कुष्ठ, आम, विष रक्त-दोष, शोथ, उदर-रोग को भी नष्ट करती है। इसके पत्तों का रस शोथ के ऊपर लगाया जाता है। इसके बीजों का चूर्ण खाने से या पंचांग का काढ़ा पीने से गर्भाशय की शुद्धि होती है और गर्भाशय बीज ग्रहण करने के लिये उत्तम क्षेत्र बन जाता है। लोगों का विचार है कि इससे गर्भ-धृति भी होती है; पुत्रदा है।

२१६. **शीतलचीनी**—यह अपने देश की उत्पत्ति नहीं है। आजकल यह सिंगापुर से आती है। यह बहुत कुछ आकार में गोलमिर्च से मिलती है। ऊपर से चिकनी होती है।

गुण—दीपन, पाचन, मूत्रल और मूत्र-मार्ग-शोधक है। इसका मुख्य उपयोग मूत्रमार्ग के रोग में किया जाता है। कहा जाता है कि मूत्र-मार्ग में रहनेवाले आगन्तुज कृमियों को नष्ट करती है। इस गुण के कारण तथा शोधक होने से इसका तेल गनोरिया में बरता जाता है। इस तेल को चन्दन के तेल या चूने के पानी में अथवा गोंद के साथ लेने से विशेष प्रभाव होता है। इससे पेशाब की जलन कम हो जाती है। इसका चूर्ण मक्खन या शक्कर के साथ लेने से अर्श के मस्से गिरते हैं। मुख-पाक में इसके चूर्ण को कत्था, इलायची के साथ मक्खन में मिलाकर लगाना चाहिये।

२१७. **सहदेवी**—इसका पौधा हाथ भर ऊँचा होता है। चौमासे में यह बहुत होती है। इसके ऊपर श्वेत, काला और जामुनी रंग का फूल आता है। इसका पत्ता राम-तुलसी से मिलता है। दवाई में सहदेवी का पंचांग बरता जाता है। आर्य-चिकित्सा शास्त्र में लिखा है कि "सहदेवी की जटा बाँधने से ज्वर उतर जाता है।" जो सहदेवी मिलती है, उसके अन्दर यह गुण है, या नहीं, इसका अभी निर्णय नहीं हुआ। इसका पचांग ज्वर रोगी को भी दिया जाता है। इसके अतिरिक्त अनिद्रा-रोग में भी इसका व्यवहार किया जाता है।

२१८. **गन्ना**—गन्ना सर्वत्र प्रसिद्ध है। इसके कई भेद हैं। जिन गन्नों को बोते समय रासायनिक प्रकार के क्षार बहुत अधिक दिये जाते हैं, उनका रस मीठा होने पर क्षारीय रहता है। उनमें से शक्कर अधिक मात्रा में बनती है, परन्तु पुरुषत्व या वीर्य को हानि करनेवाला होता

है। क्षार शुक्र के लिये खराब होता है। दवाइयों में मूल, रस बरता जाता है।

गुण—पित्तशामक और पौष्टिक है। इसका रस और मूल मूत्रल है। इसका रस ठण्डा होने से प्यास को कम करता है। बनावट—तृण-पंचमूल।

२१९. सोभाञ्जन—यह वृक्ष १०-१२ फ़ीट ऊँचा होता है। इसके पत्ते शिरीष या अगस्त से मिलते हैं। जब यह फूलता है, तो बहुत ही फूलता है। उसका परिणाम यह होता है कि फूलों के बोझ से पत्ते और डालियाँ टूटकर गिर जाती हैं। इसमें फलियाँ आती हैं, जिसको शाक-भाजी में बरता जाता है। इसके अतिरिक्त एक और किस्म होती है। वह कड़ुवी होती है।

गुण—वातहर, उष्ण, ग्राही तथा दम्भक है। शिग्रू के मूल की छाल में राई के जैसी गन्ध आती है। इसकी छाल का काढ़ा लेने से पेट के अन्दर की गाँठ, विद्रधि, प्लीहा और यकृत की शोथ मिटती है। इसके पत्तों का रस कान में टपकाने से कान के अन्दर का कीड़ा मरता है। इसकी छाल के काढ़े में हींग मिलाकर पीने से शूल मिटती है। इसकी मूल की छाल को पीसकर मोटा लेप करने से शोथ उतरता है। जलोदर में छाल का काढ़ा, चित्रक-मूल का चूर्ण, संधानमक और पिप्पली इनको मिलाकर लेने से लाभ होता है। इसकी छाल का लेप, सन्धिवात, गाँठ तथा शोथ को कम करता है। शिग्रू के मूल की तीखी छाल, चित्रक-मूल और कुत्ते की विष्ठा इन तीनों को कूटकर लेप करने से नहरुवा कृमि मरता है। बनावट—शिग्रु का काढ़ा, शिग्र्वादि क्वाथ, दोषघ्नलेप।

२२०. सेमर—सेमर का वृक्ष बहुत ऊँचा होता है। यह प्रायः भारत के सब प्रदेशों में मिलता है। छोटे वृक्ष में बहुत-से काँटे होते हैं, परन्तु ज्यों-ज्यों बड़ा होता जाता है, त्यों-त्यों काँटों का लोप हो जाता है। इसका फूल बहुत बड़ा, लाल रङ्ग का होता है। इसका फल लम्बा, ककड़ी के आकार का होता है। गर्मियों में जब यह फल फटता है, तो इसमें से रुई निकलकर उड़ती है। यह रुई बहुत गरम होती है। यह तकिया, बिस्तरे आदि में भरी जाती है। इस वृक्ष से जो गोंद निकलता है, उसको 'मोचरस' कहते हैं। दवाई के काम में इसका मूल और गोंद बरता जाता है। इसके

काँटों को गाय के दूध में घिसकर मुँहासों (युवानपिडिका) पर लगाने से उनके दाग नष्ट हो जाते हैं। शीत ऋतु में इसके पत्ते झड़ने लगते हैं और शिशिर में कोरा नङ्गा हो जाता है, इसमें केवल फूल ही फूल रह जाते हैं।

गुण—शोधक, शीतल, धातुपौष्टिक। इसका मूल शीतल और संग्राही होने से रक्तातिसार और स्त्रियों के अति आर्त्तव-दोष में बरता जाता है। प्रदर-प्रमेह में भी लाभ करता है। इसके मूल का चिकना लुवाब होता है। उसमें शर्करा मिलाकर पीने से पेशाब की जलन कम होती है। इसके मूल का चूर्ण पुरुषत्व के लिये बरता जाता है।

२२१. **सरसों**—सरसों का पौदा राई जैसा होता है। इसमें फलियाँ लगती हैं। इन फलियों में राई जैसे बीज रहते हैं। परन्तु ये राई से मोटे होते हैं। सरसों पीली और काली दो प्रकार की होती है। गुजरात में पीली सरसों बहुत होती है। इसमें से तेल निकलता है। यह तेल गरम होता है। आँखों में या त्वचा पर लगाने से चिरचिराता है, इसीलिये इसको कडुवा तैल कहते हैं। पूर्व में इस तैल को विशेषत: खाने में बरतते हैं।

गुण—वातहर, उष्ण, शोथनाशक। सरसों का स्वाद राई की अपेक्षा जरा तीखा होता है। दवाई में इसका बीज और तेल बरता जाता है। सरसों वातघ्न होने से शोथ और गाँठों के लेप में पड़ती है। कर्णनाद, कर्ण-शूल तथा बहरेपन में इसका तेल कान में डालना चाहिये। श्वास-रोग में सरसों का तेल पुराने गुड़ के साथ मिलाकर खाना चाहिये। 'अपची' नामक गाँठ के ऊपर सरसों, नीम के पत्ते तथा भिलावे की राख सबको मिलाकर गोमूत्र में पीसकर गरम-गरम लेप करना चाहिये।

२२२. **साबूदाना**—यह सुमात्रा, जावा की तरफ से आता है। चावलों से सर्वथा भिन्न है। पचने में हलका तथा नीरोगी है। इसलिये बालकों तथा अशक्त पुरुषों के लिये बरता जाता है।

२२३. **सालममिश्री**—सालम एक प्रकार की वनस्पति है, जो तुर्किस्तान, काबुल, गान्धार की ओर विशेषरूप में होती है। इसमें कंद लगता है, उसीको सालममिश्री के नाम से कहते हैं।

गुण—पौष्टिक, धातुस्तम्भक, वीर्य-स्राव को रोकनेवाली, प्रदर एवं

धातु-विकार में लाभदायक है। सालममिश्री को मूसली के साथ लेने से विशेष लाभ होता है। बनावट सालम-पाक।

२२४. सौंफ—इसका पौधा 'सुवा' जैसा होता है।

गुण—स्वाद में मधुर और कुछ कड़वी-सी लगती है। यह दीपन और वातहर है। तृषा, वमन, पेट की शूल, अफारा आदि लक्षणों को शान्त करती है। मुखवास के लिये इसे भोजन के पश्चात् खाते हैं। सौंफ स्त्रियों के दूध को बढ़ाने के काम आती है। गर्भाशय को शुद्ध करती है। रोगी व्यक्ति को इसका अर्क या पानी देना लाभदायक है।

२२५. सोंठ—यह आर्द्रक की सूखी हुई गाँठ है।

गुण—उष्ण, दीपन, पाचन, वातहर है। सोंठ का मुख्य उपयोग शरीर में गरमी लाने के लिये होता है। वायु, कफ को दूर करने के लिये एवं दीपन और पाचन गुण के लिये इसे व्यवहार में लाते हैं। आमवात, शीत-ज्वर में सोंठ अच्छा प्रभाव करती है। सोंठ को पीसकर, जरा गरम करके रोगी के माथे पर लगाकर और गरम कपड़ों में सुलाने से पसीना आता है। प्रसूता स्त्री के पेट में यदि वायु जोर करे, तो सोंठ को घी और शर्करा के साथ पकाकर खिलाना चाहिये। अरुचि होने पर सौभाग्य सुण्ठी-पाक खिलाना चाहिये। बरसात में अधिक पानी में रहने से जब सरदी लग जाती है, उस समय इसको गुड़ और घी के साथ मिलाकर खाना चाहिये। आक्षेप में या पेट की शूल में इसको घी में भूनकर एरण्ड के तैल के साथ देना चाहिये। सोंठ, सेंधानमक और राई को तेल में गरम करके उस तैल की मालिश से संधिवात, आमवात आदि वायु-रोग शान्त होते हैं। शीतांग में सोंठ का चूर्ण शरीर पर मलना चाहिये। बनावट—सुण्ठीपुट-पाक, नागरादि क्वाथ, नागरादि पाचन, शुण्ठ्यादि चूर्ण, समशर्कर चूर्ण, प्राणदा गुटी, सुण्ठी क्वाथ, सौभाग्य शुण्ठीपाक।

२२६. स्वर्णक्षीरी—इसका वृक्ष एक या दो हाथ ऊँचा होता है। इसकी डण्ठलियों से पीला, चिकना रस निकलता है। इसलिये इसको स्वर्णक्षीरी कहते हैं। इसके फल से काला बीज निकलता है।

गुण—रेचक तथा शोधक। सुश्रुत में इसे व्रण-रोपक, गुल्म-नाशक कहा है। इसका रस आँख की कनीनिका पर उत्पन्न हुई 'ओपसीटी'

(अपार दर्शकता)पर लगाने से आराम होता है। इसके बीजों में से पीला तेल निकलता है। इस तेल को १ से आधा तोला तक दूध के साथ देने पर २-३ बार विरेचन होता है। इससे बनाया हुआ घी व्रण पर लगाने से वह भरता है। इसके रस के पीने से और लगाने से विस्फोटक नष्ट होता है।

२२७. **सूरन**—यह एक प्रकार का कन्द है, जो जमीन में होता है। इसमें बहुत ही तीक्ष्णता होती है। इसलिये यह ताम्र आदि को भस्म करने के लिये अथवा बवासोर में मस्सों का लेखन करने के लिये काम आता है। इसका शाक बनता है। इसको जीभ पर रखने से बहुत ही चिरपराहट, जलन होती है। मीठा सूरन-कन्द दवाई में विशेष उपयोगी नहीं होता। चूँकि यह अर्श की विशेष दवाई है, इसलिये इसको अर्शघ्न कहते हैं। नाक या शिश्न के अर्श पर इसके पत्ते बाँधने से वे नष्ट हो जाते हैं। अर्श के रोगियों को चाहिये कि वे इसका उपयोग विशेषरूप में किया करें। बनावट—सूरण-वटक।

२२८. **सुवा**— यह प्राय: सब रूपों में सौंफ से मिलता है। स्वाद में कुछ चिरपरा, कड़ुवा होता है। इसकी भाजी भी बनती है।

गुण—वातघ्न, पाचक, मूत्रल और योनि-दोषहर है। सुवा का पानी बच्चों को दिया जाता है। कफ, कृमि, वमन, शूल आदि में बरता जाता है। इसकी पोटली योनि में रखने से योनि-शूल मिटती है। इसका काढ़ा रज की कृच्छ्रता को दूर करता है। इसके काढ़े से गर्भपात भी हो जाता है। इसलिये गर्भिणी को नहीं देना चाहिये।

२२९. **हरीतकी (हरड़)**- हरड़ का वृक्ष बहुत बड़ा होता है। यह हिमालय, देहरादून, कमाऊँ, बंगाल में बहुत होता है। आर्य-चिकित्सा-शास्त्र में इसके कई भेद लिखे हैं। जैसे, विजया, रोहिणी, पूतना, अमृता, अभया, जीवन्ती, चेतकी। इनमें से चेतकी के अन्दर यह गुण लिखा है कि इसका फल हाथ में लेने से विरेचन लगता है। संस्कृत में इसके इक्कीस नाम हैं, जो इसके भिन्न-भिन्न गुणों का दिग्दर्शन कराते हैं। हरड़ के अन्दर पाँचों रस माने जाते हैं, इसलिये यह तीन दोषों का शमन करती है। इसमें एक लवण रस नहीं है। जो हरड़ पानी में डूब जाय, कठिन, तोड़ने से जल्दी न टूटे, मोटी और लम्बी हो, उसको बढ़िया हरड़ कहते हैं। यही काम में लानी

चाहिये। काबुली या पंजाबी हरड़ जो बाज़ार में आती हैं, वे बढ़िया समझी जाती हैं।

गुण--हरड़ स्वाद में कषैली और जीर्ण होने पर मधुर है। सारक, शोधक, रसायन है। हरड़ जहाँ सारक गुण रखती है, वहाँ इसमें स्तम्भक गुण भी हैं। थोड़ी (४ माशे की) मात्रा में देने से स्तम्भक गुण होता है। आर्य-चिकित्सा-शास्त्र में इसको रसायन अर्थात बुढ़ापे को और व्याधि को दूर करनेवाली कहा है। इसीलिये व्यापक रोगों के फैलने के समय इस हरीतकी को सेवन करने का आदेश चरक में किया है। यह शुक्र-दोषहर, संशोधक, मेदनाशक, अर्शोघ्न तथा ज्वरहर है। त्रिफला चूर्ण में पड़ती है। छः ऋतुओं में इसको भिन्न-भिन्न अनुपानों के साथ सेवन करना चाहिये। जैसे, बसन्त में मधु के साथ, ग्रीष्म में पुराने गुड़ के साथ, वर्षा में सेंधानमक के साथ, शरद् ऋतु में शर्करा के साथ, हेमन्त में सोंठ के साथ तथा शिशिर में पिप्पली के साथ सेवन करना उत्तम है। घी के साथ खाने से वायु को, गुड़ के साथ खाने से विबन्ध को, शर्करा के साथ खाने से पित्त को और शहद के साथ खाने से कफ को शमन करती है। गर्भवती स्त्री को, रास्ते की मुसाफिरी से थके हुये मनुष्य को, दुर्बल व्यक्ति को, उपवास के कारण क्षीण हुये, एवं पित्तप्रधान मनुष्य को हरीतकी का सेवन नहीं करना चाहिये। हरीतकी के सेवन से हृदय, आमाशय और आँत्रों के तथा यकृत, प्लीहा के रोग मिटते हैं। वात-रक्त में इसको गुड़ के साथ खाकर गिलोय का स्वरस पीना चाहिये।

आर्य-चिकित्सा में सब रोगों के अन्दर इसका उपयोग होता है। इसीसे किसी ने वैद्यों पर चुटकी देते हुये लिख दिया कि जिस प्रकार कष्ट के समय माता का स्मरण आता है, उस समय यदि माता न हो, तो हरीतकी का स्मरण करना चाहिये। इसका सेवन करना चाहिये। यह अवश्य माता की भाँति दुःख से बचायेगी। हरड़ और सोंठ का कल्क पानी के साथ लेने से दम और हिचकी मिटती है। अम्लपित्त रोग में द्राक्षा और शर्करा के साथ लेनी चाहिये। गोमूत्र के साथ हरड़ को लेने से कमल, पाण्डु, शोथ, जलोदर-रोग मिटते हैं। अंडवृद्धि या श्लीपद रोग में इसको एरण्ड-तैल के साथ लेना चाहिये। प्रमेह में हरीतकी को हल्दी के साथ सेवन करना चाहिये। आम-वात में हरड़ एरण्ड के तैल के साथ खानी चाहिये। बालकों

के बन्धकोश में इसको घिसकर देना चाहिये। आँख के रोगों में त्रिफले को पानी में भिगोकर प्रातः आँखों को धोना चाहिये।

एक छोटी हरड़ होती है, जो बहुत हाजिम मानी जाती है। इसको घी में भूनकर चूर्ण करके बरतना चाहिये। बालकों के लिये इसे घिसकर काम में लाते हैं। यह बहुत ही मृदु विरेचक है। इसमें संग्राही गुण विशेष रहता है। गरमी आदि के व्रणों में इस छोटी हरड़ की भस्म या त्रिफले की भस्म बहुत उत्तम होती है। इसको घी में मिलाकर लगाना चाहिये। बनावट—त्रिफला, अभयादि क्वाथ, पथ्यादि क्वाथ, त्रिफला पिप्पली, हरीतक्यादि चूर्ण, पथ्यादि गुटी, पथ्यादि गुग्गुल, अभयारिष्ठ, अमृत हरीतकी, मधुपक्व हरीतकी, हरीतकी अवलेह।

२३०. **हल्दी**—हल्दी नित्यप्रति बरतने की चीज़ है। परन्तु इसके गुणों से बहुत कम व्यक्ति परिचित हैं। साधारण लोग इसको मसाले की चीज़ समझकर रंग लाने के लिये शाक-भाजी में इसका उपयोग करते हैं।

गुण—हल्दी स्वाद में ज़रा कड़ुवी, तुरस होती है। यह कफघ्न, रक्त-शोधक, रोपण, कुष्ठघ्न एवं प्रमेहनाशक है। रक्तशोधक गुण के कारण कंडु, कुष्ठ, विसर्प, पांडु, विष में भी उत्तम लाभ करती है। हल्दी का उपयोग प्रायः हड्डी के टूटने पर किया जाता है अथवा किसी प्रकार के तीव्र आघात पर इसको दूध में घोलकर पिलाते हैं। व्रणों के विष के लिये इसे घी में पकाकर बाँधते हैं। श्लीपद में हल्दी और गुड़ को गोमूत्र के साथ पीना चाहिये। स्वर-भंग के लिये हल्दी को गरम दूध के साथ खाना चाहिये। प्रमेह के लिये कच्ची हल्दी का स्वरस मधु के साथ बरतना चाहिये।

हल्दी को वशीकरण तथा सौन्दर्य के योगों में भी व्यवहार करते हैं। इसके लिये इसे गोरोचन से मिलाकर काम में लाते हैं। दक्षिण या महाराष्ट्र में स्त्रियाँ सौन्दर्य के लिये हल्दी का लेप मुँह पर करती हैं।

स्तन-रोग के ऊपर हल्दी को घीकार के पट्टे पर लेप करना चाहिये। मुंठमार चोट पर हल्दी को नमक के साथ पीसकर और तेल या घी में पकाकर बाँधना चाहिये। बनावट—हरिद्रादि गुटी।

२३१. **हींग**—यह भारत में उत्पन्न होनेवाली वस्तु नहीं है। यह ईरान, अफ़गानिस्तान से आती है। हींग जो खाने के काम आती है, यह

हींग नामक वृक्ष का गोंद है। इसके अन्दर बहुत मिलावट की जाती है। शुद्ध हींग की गन्ध बहुत उग्र होती है।

गुण—गरम, वातहर, कृमिनाशक तथा स्नायुओं को शिथिल करनेवाली है। स्वाद में बहुत तीक्ष्ण तथा गरम होती है। कृमिघ्न तथा वातहर होने से पेट के दर्द में, अफारे में कृमि-जन्य शूल में इसका उपयोग होता है। स्नायुओं में जब अकड़ांद या खींचतान हो रही हो, उस समय इसका उपयोग लाभदायक होता है। इसीलिये आक्षेप, हिस्टीरिया आदि रोगों में इसका जटामासी के साथ उपयोग बहुत गुणकारी होता है। अजीर्ण में इसकी चने जितनी गोली लाभदायक होती है।

परिणाम-शूल में—हींग, सैन्धव, जीरा इनकी फाकी घी और शहद में लेना चाहिये। अपस्मार में हींग, संचानमक और घी इनको गोमूत्र में पकाकर देना चाहिये। कॉलरे में हींग, अफीम, कपूर, लाल मिर्च के दाने इनको बराबर लेकर पानी के साथ एक रत्ती के बराबर गोली बना लेनी चाहिये। व्रण के कीड़ों के लिये नीम के पत्ते और हींग को पीसकर लेप करना चाहिये। प्रसूता या सूतिका-रोग में हींग को घी में भूनकर चाटना चाहिये। दन्त-शूल में हींग को दाँतों के नीचे दबाना चाहिये। वत्सनाभ विष में हींग को १ बाल मात्रा में गाय के घी के साथ चटाना चाहिये। अफीम का जहर उतरवाने के लिये हींग को छाछ के साथ पीना चाहिये। हिचकी को रोकने के लिये इसका धुआँ लेना चाहिये। बनावट—हींग्वाष्टक-चूर्ण। इसके अतिरिक्त अनार्य-चिकित्सा में इसका उपयोग कई प्रकार से होता है।

२३२. हीराबोल—यह गुग्गुल जैसी एक प्रकार की गोंद है।

गुण—कफघ्न, उष्ण, ऋतु लानेवाला और जन्तुघ्न है। जन्तुघ्न गुण के कारण दाँतों के मंजनों में, नासूर, भगन्दर आदि दुष्ट व्रणों में मलहम के रूप में बरतते हैं। स्तम्भन गुण के कारण बहते हुये रक्त को रोकता है। स्त्रियों के रक्त-प्रदर में और पुरुषों के रक्त-प्रमेह में हीराबोल अच्छा लाभ करता है। हीराबोल पुरानी खाँसी में, क्षय में लाभदायक है। इसका विशेष गुण रज की कठिनता को दूर करना है।

खनिज तथा प्राणी-वर्ग की औषधियाँ

चिकित्सा या उपचार की वस्तुओं में वनस्पतियों के अतिरिक्त और भी वस्तुयें हैं। अनार्य-चिकित्सा के प्राचीन ग्रन्थों में (चरक सुश्रुत में) विशेष महत्व काष्ठौषधियों ही को दिया गया है। उनके अन्दर खनिज तथा प्राणी-वर्ग की औषधियाँ इतनी ही हैं कि हम उनको अँगुलियों पर गिन सकते हैं। इसके पश्चात् चिकित्सा के मध्य-काल में खनिज-वर्ग की विशेष उन्नति हुई है। इस उन्नति के कुछ कारण हैं जैसे—

(१) वनस्पति-वर्ग की औषधियाँ देर तक बनी नहीं रह सकती थीं, इनकी मात्रा बहुत बड़ी होती थी। और सब समय प्राप्त नहीं हो सकती थीं। प्रत्येक रोग के लिये भिन्न-भिन्न दवाइयों की आवश्यकता होती थी। देर में असर करती थी।

(२) इसके दूसरी तरफ खनिज औषधियों की मात्रा थोड़ी, शीघ्र प्रभाव करनेवाली, चिरस्थायी और एक औषधि कई रोगों में प्रभावशाली हो सकती थी।

जिस प्रकार अनार्य-चिकित्सा के वर्त्तमान-युग में "इन्जेक्शन" की विशेष उन्नति हो रही है, उसी प्रकार मध्यकाल में विशेषतः बौद्धकाल में इस शास्त्र की उन्नति हुई है। इसके रसों के सेवन करनेवाले के लिये आवश्यक है कि वह पथ्य का पालन पूर्ण रीति से करे। खनिज वनस्पतियाँ अधिक जोखिमवाली हैं।

खनिज-वर्ग की औषधियों में भी वनस्पति-वर्ग की औषधियों ही से गुण धान किया जाता है। इनके द्वारा खनिज-वर्ग की औषधियों का संस्कार किया जाता है। वनस्पति-वर्ग की सहायता ही से इनके गुण बढ़ाये जाते हैं।

इन दोनों के अतिरिक्त कुछ औषधियाँ प्राणियों से भी प्राप्त होती हैं। इनका समावेश प्राणी-वर्ग की औषधियों में होता है। ये वस्तुयें थोड़ी हैं, इसीसे खनिज-वर्ग के साथ जोड़ दी हैं।

१. **अभ्रक**—चार प्रकार की होती है, श्वेत, पीली, काली और लाल। इसमें काली अभ्रक रोगों को नाश करनेवाली है। यह काली अभ्रक भी चार प्रकार की है। जैसे—वज्राभ्रक, पिनाक, नाग और मण्डूक। इनमें वज्राभ्रक सबसे श्रेष्ठ है। वज्राभ्रक नीले अञ्जन के समान स्निग्ध,

भारपूर्ण, बड़ा भारी उज्ज्वल हो, जिसके पत्ते सुगमता से तोड़े जा सकें, कोमल हो, वह वज्राभ्रक सबसे श्रेष्ठ है।

गुण—पौष्टिक, शोधक, शीतल, आयुवर्द्धक, केश्य, बलकारक, बुद्धिवर्द्धक, स्तन (दूध) को बढ़ानेवाली, गर्भाशय को शुद्ध करनेवाली, शुक्रवर्द्धक, पुत्रोत्पादक, पुन्स्त्वदायक है। स्वाद में मधुर तथा शीतल है; अभ्रक की कच्ची भस्म कुष्ठ, क्षय, पाण्डु, शोथ, हृदय के रोगों को और ज्वर को उत्पन्न करती है। जिस अभ्रक में चन्द्रिका दिखाई दे, उसे अपूर्ण समझना चाहिये। कच्ची भस्म से उत्पन्न विकारों की शान्ति के लिये आँवले को पानी में पीसकर पीना चाहिये। अभ्रक-भस्म तीक्ष्ण रोगों में लाभ नहीं करती, परन्तु जीर्ण और पुराने रोगों में विशेष लाभ करती है। जैसे—प्रमेह के प्रारम्भ में या नव-ज्वर में अभ्रक बिलकुल प्रभाव नहीं करती, परन्तु इन्हीं पुराने रोगों में बंगेश्वर और जयमंगलरस अच्छा लाभ करते हैं। बनावट—अभ्रक-भस्म।

२. अम्बर—यह समुद्र में मिलता है। क्या वस्तु है, इसका अभी तक कोई निश्चय नहीं है। कोई तो इसको मछली की विष्ठा मानते हैं और कोई जलीय घोड़े की फेन मानते हैं, तीसरे इसको मछली के मुँह की झाग मानते हैं। इसके अन्दर एक गुणविशेष होता है कि यह रगड़ने से तिनकों को या छोटे-छोटे काग़ज़ों को ऊपर खींच लेता है। यह लाल समुद्र और अफ्रीका के पास से तथा ब्रह्मा से आता है। कई बार एक टुकड़ा ७५० पौण्ड का भी मिलता हुआ देखा गया है। इसमें कोई स्वाद या रस नहीं होता; गरम पानी या गरम शराब में घुल जाता है। बाज़ार में जो अम्बर मिलता है, वह बहुत कुछ बनावटी होता है। सच्चा अम्बर बहुत गरम होता है। अम्बर का रंग धूसरा, भूरा होता है। इसके ऊपर श्वेत रेखायें तथा चित्तियाँ होती हैं। इसमें उष्णता, उत्तेजकता आदि गुण होने से इसको आक्षेप-जन्य विकारों में बरता जाता है। अशक्ति में अम्बर होशियारी लाता है, धातु तथा दिमाग़ को उद्दीप्त करता है। श्रीमन्त लोग कस्तूरी के साथ मिलाकर इसको खाते हैं। यह बहुत महँगा बिकता है। बनावट—अम्बर याकूती।

३. अर्कीक—यह एक पत्थर है, जो हरा-सा होता है। इसकी भस्म बनाई जाती है।

गुण—शीत, रुक्ष, रक्त-स्तम्भक, संग्राही, दाँतों को मजबूत करनेवाला, स्वर्ण के साथ देने से अति बलकारक होता है। अर्कीक जितना चिकना होगा, उतना ही उत्तम समझना चाहिये।

४. कलई (बंग)—चाँदी के समान श्वेत और नरम वस्तु है। कलई में प्राय: सीसे का मेल किया जाता है, इससे यह काली तथा और भी नरम बन जाती है। जो कलई श्वेत और कठिन हो, उसे अच्छी समझनी चाहिए। कलई की भस्म को बंग-भस्म कहते हैं।

गुण—शुद्ध बंग-भस्म हल्की तथा सारक है। शोधक, मूत्रल और पौष्टिक है। कोढ़, कृमि, कफ, पाण्डु, श्वास, प्रमेह, मेदोरोग को नष्ट करती है। आँखों के लिये हितकर, बुद्धि बढ़ानेवाली, क्षयहर, शुक्रवर्द्धक, श्वेत-प्रदर सोमरोग-नाशक, काम को बढ़ानेवाला, स्वप्नमेह-नाशक, कास-श्वास को नाश करती है। यह कहावत प्रसिद्ध है—घोड़े को तङ्ग और मनुष्य को बंग चाहिये। अनीति से उत्पन्न औपसर्गिक प्रमेह (गनेरिया) में बंग कुछ लाभ नहीं करती। इस समय चन्दन का तेल या कवाबचीनी लाभ करती है। परन्तु इसी रोग के पुराने रूप में बंग-भस्म अभ्रक के साथ देने पर विशेष प्रभाव करती है। मधु-प्रमेह में बंगेश्वर को गूलर-फल के साथ देने से बहुत लाभ होता है। पेशाब में जो श्वेत पदार्थ जाता है और जम जाता है, उसमें भी बंग-भस्म गुण करती है। पुरानी खाँसी, क्षय तथा उरःक्षत में बंग-भस्म गुण करती है। श्वास-रोग में बंग-भस्म को पिप्पली और मधु के साथ देना चाहिये। अशुद्ध बंग-भस्म गुल्म, कुष्ठ, शूल, पाण्डु, क्षय, शोथ, मूत्रकृच्छ्र, विद्रधि आदि रोग उत्पन्न करती है। बनावट—बंग-भस्म।

५. कस्तूरी—यह सुगन्धिदायक, मृग से उत्पन्न होनेवाली वस्तु है, इसलिये इसको मृगमद कहते हैं। मृग की नाभि से उत्पन्न होने के कारण मृगनाभि कहते हैं। बङ्गाल, नैपाल और काश्मीर इन स्थानों में विशेषत: होती है। इनमें बङ्गाल की कस्तूरी काले रंग की और सबसे अधिक प्रशस्त मानी जाती है। काश्मीर की कस्तूरी कुछ पीलापन लिये होती है। नैपाल की भूरी होती है।

कस्तूरी क्या है? इस बात का कोई निश्चित उत्तर नहीं मिला। लोगों का विचार है कि मृग की नाभि में जमा हुआ रक्त ही कस्तूरी बन

जाता है। यह सब मृगों में नहीं निकलती। कस्तूरी गरम होती है, इसीकी गरमी से मृग बर्फीले पहाड़ों में अपना जीवन काट सकता है।

गुण—वातहर, वाजीकरण, कफनाशक, विषनाशक, शीतनाशक, वमननाशक है। शीतांग सन्निपात में, जब शरीर बहुत ठण्डा पड़ गया हो अथवा हृदय की निर्बलता हो, उस समय इसका उपयोग विशेष गुणकारी होता है। वृद्ध मनुष्यों के ज्वर में जब फेफड़ों में सूजन हो जाय, श्वास-काठिन्य हो रहा हो, उस समय कस्तूरी विशेष लाभदायक है। कॉलरा तथा क्षय में शक्ति बहुत कम हो जाती है। उस समय कस्तूरी देनी चाहिये। कस्तूरी पुरुषत्व देनेवाली है, इसलिये पौष्टिक दवाइयों में या पाकों में मिलाते हैं। बनावट—कस्तूर्यादि गुटिका।

६. **कलई चूना**—यह पत्थरों के जलाने से बनता है। इसलिये शंख, कौड़ी, मूँगा, द्वीप आदि की श्रेणी ही का है। इसके गुण प्रायः इससे मिलते हैं। परन्तु यह अधिक तेज बनता है। इसको सब पहचानते हैं। मकानों में इसका उपयोग होता है, पान में इसको खाते हैं। यह जंतुघ्न तथा दुर्गन्धनाशक है। इसके अधिक खाने से मुँह में व्रण हो जाते हैं। औषधि के काम में इसका नितरा हुआ पानी बरता जाता है। इसके बनाने की विधि यह है कि चूने को पानी में भिगोकर रख दें। जब चूना नीचे बैठ जाय और पानी नितर जाय, तब इसको छान लें और बोतल में भरकर रख लें। इस पानी के देने से बालकों को यदि दूध पचता न हो, तो वह पच जाता है, अतिसार रुक जाता है। कलई चूना और शहद मिलाकर लगाने से अनपकी विद्रधि पक जाती है, पकी हुई विद्रधि फूट जाती है। कलई चूना और हरताल को मिलाकर लगाने से बाल गिर जाते हैं; नहरुवा निकल आता है।

७. **कौड़ी**—कौड़ियों को कौन नहीं जानता? चौपड़ खेलने के लिये-बच्चों के खिलौने तथा प्राचीन आर्य-सभ्यता में विनिमय का साधन था। परन्तु इसके गुणों से बहुत ही कम आदमी परिचित होते हैं। कौड़ी छोटी से छोटी और बड़ी से बड़ी मिलती है। कौड़ी लाल, पीली श्वेत और चितकबरी होती है। पीली और पीठ पर गाँठवाली कौड़ी भस्म बनाने के लिये उत्तम होती है। जितनी बड़ी कौड़ी होगी, उतनी ही व्यवहार में अच्छी है।

गुण—तीक्ष्ण, उष्ण, अग्निदीपक, नेत्ररोग-नाशक, शूल, गुल्म,

कर्ण के स्राव को बन्द करनेवाली, परिणाम-शूलनाशक तथा क्षय में गुणकारी होती है। कौड़ी को घिसकर आँख पर लगाने से फूली मिटती है। शूल-रोग में इसकी भस्म गरम पानी के साथ लेनी चाहिये और श्वास, कास में मधु के साथ लेनी चाहिये। प्रमेह में, प्रदर में घी तथा शर्करा के साथ चाटनी चाहिये। बनावट—कपर्दिका-भस्म।

८. **खड़िया**—खड़िया गुण में ठंडी होती है; जलन, रक्त-विकार तथा शोथ को मिटाती है।

गुण—ठंडो, तिक्त, मधुर, शोथ का नाश करनेवाली, पित्त को शमन करनेवाली, व्रण को भरनेवाली, कफ, दाह, रक्त को नाश करनेवाली, नेत्रों के दोषों को हटानेवाली, पीले अतिसार में उपयोगी, स्वेद के अधिक स्राव को रोकनेवाली है।

९. **खपरिया**—खपरिया क्या वस्तु है? इसका निश्चय अभी तक नहीं हुआ है। कोई इसको तुत्थ का भेद मानते हैं, कोई जस्ते का भेद मानते हैं। बाजार में ईंट जैसे रंग का तथा भूरे काले रंग का मिलता है।

गुण—शीत, कफ, पित्तनाशक आँखों के लिये हितकर सब प्रकार के प्रमेहों को दूर करनेवाला, रक्त-प्रदरनाशक है। रक्त-पित्त, पथरी, श्वास, गुदा के रोग, अर्श को नष्ट करनेवाला है। जीर्ण ज्वरनाशक, अतिसारनाशक, त्रिदोषनाशक, विषनाशक, विचर्चिका-नाशक है। इससे बल, वीर्य, बुद्धि आदि बढ़ती है। खपरिया का उपयोग करने से पूर्व इसको शुद्ध करना चाहिये। सात दिनों तक इसको दोलायन्त्र विधि से गोमूत्र में शोधन करना चाहिये। अथवा ७ बार बिजौरे के नीबू के रस में रगड़ना चाहिये। बनावट—मालिनी-बसन्त, खर्पर-वटी, खर्परांजन।

१०. **गन्धक**—गन्धक खनिज पदार्थ है। यह चार प्रकार की होती है, जैसे लाल, पीली, श्वेत और काली। साधारणतः बाजार में दो प्रकार की गन्धक मिलती है। एक आँवलासार और दूसरी लकाड़ीया अर्थात दण्डाकार। आँवलासार गन्धक खाने के काम आती है, और लकाड़ीया गंधक बाहर लगाने के काम आती है। लाल गन्धक स्वर्ण बनाने के काम में आती है। आँवलासार गन्धक को शुद्ध करके काम में लाना चाहिये।

गुण—पारद के साथ इसका उपयोग प्रायः सब रोगों में होता है। यह उष्ण, अग्निदीपक, आम का शोषण करनेवाली, पारे को बाँधनेवाली, कुष्ठ-रोग, कृमि-रोग, क्षय, प्लीहा, कफ तथा वायु के रोग को नाश करती

है। अशुद्ध गन्धक कोढ़, पित्त, भ्रम, वीर्य को नाश करनेवाली तथा रूप को नाश करनेवाली है। अशुद्ध गन्धक खाने से उत्पन्न विकारों की शान्ति के लिये गाय के दूध में घी मिलाकर पीना चाहिये। गन्धक के खाने से अर्श-रोग मिटता है, लगाने से खाल जाती रहती है। गन्धक पारे के मारने में काम आती है। शुद्ध गन्धक की मात्रा २ से ४ बाल, बनावट—गन्धक-रसायन, गन्धक-वटी, गन्धकादि-तैल।

११. गोपीचन्दन (सौराष्ट्री)—द्वारका की ओर से पीली मिट्टी आती है। यह ठंडी होती है; इसलिये विसर्प, गरमी तथा रक्त-विकार के ऊपर लगाई जाती है। गर्भपात हो रहा हो, तो इसको पेड़ू और पेट पर लगाने से रुक जाता है। गोपीचन्दन और शर्करा का पानी पीने से प्रदर मिटता है। गोपीचन्दन १ माशा, फिटकिरी ३ माशे इनको खरल करके भट्टी में पकाकर एक-एक रत्ती मधु में खाने से प्रदर मिटता है। मुँह की गरमी में दूध के साथ घिसकर लगाना चाहिये।

१२. गोमूत्र—गुण—उष्ण, पाचन, कफघ्न, वातहर, मूत्रल, सारक और कुष्ठहर है। धातु तथा कई प्रकार के विषयों को शोधन करने के लिये इसका उपयोग होता है। त्वचा के रोग, कोढ़, शूल, गुल्म, शोथ, खाँसी, कृमि, प्लीहा आदि रोगों में लाभ करता है। इसका उपयोग कुष्ठहर लेपों में होता है। कई प्रकार के क्वाढ़ों में मंडूर-भस्म के साथ दिया जाता है। गोमूत्र में जो गुण होता है, वह इसके अन्दर के क्षार का है। पांडु तथा प्लीहा में इसका अच्छा असर होता है। गोमूत्र को गरम करने से जो सत्त्व रहता है, उसे क्षार कहते हैं। गोमूत्र से स्नान करने पर श्वास, कंडू, फोड़े, फुन्सी आदि अच्छे होते हैं। गोमूत्र पुराने मलबन्ध को तोड़ता है। जलोदर या पानी निकालने पर इसका उपयोग अवश्य करना चाहिये। स्वर्णमुखी को यदि गोमूत्र की भावना देकर बरतें, तो वह शोधक और सरल प्रभाव करती है। गोमूत्र की गैरहाजरी में बकरी का मूत्र बरता जा सकता है।

१३. गोरोचन— गाय या बैल के पित्ताशय (क्लोम) में पित्त जम जाता है, वही गोरोचन कहा जाता है। यह गोरोचन सब बैलों में नहीं होता। इसका रंग जायफल जैसा होता है। तोड़ने पर इससे परत-परत उतरते हैं।

गुण—सारक, शीतल, आक्षेप-नाशक, गुह-पीड़ा, पिशाच-बाधा, उन्माद, कृमि आदि रोगों में फायदा करतो है। इसलिये बालकों के

जन्तु-जन्य रोगों में तथा आक्षेप आदि रोगों में, स्नायुवों के अकड़ाव में लाभ करती है। भरणी आदि बालकों के फेफड़ों के रोगों में गोरोचन तथा हल्दी के रस को देना चाहिये। शीतल होने से ठण्डे लेप में लगाया जाता है।

१४. **सीप** – सीप के गुण मोती के समान हैं। बनावट—शुक्ति-भस्म।

गुण—शूलनाशक, हृद्-रोगनाशक, अग्निवर्द्धक, विपाक में मधुर, लाल प्रमेह को दूर करती है, प्लीहानाशक है।

१५. **यशद** – जस्ता ब्रह्मा में अशुद्धरूप में निकलता है। जस्ते और ताम्बे के मिलाने से पीतल बनता है। जस्ते को जलाकर फूल बनाते हैं। यह फूल शुद्ध यशद से बनता है। इन फूलों को आँखों में लगाया जाता है, इसको पुष्पाञ्जन कहते हैं। इस अञ्जन से उठी हुई आँख अच्छी हो जाती है। घरों में मातायें बच्चों की आँख के लिये इसका व्यवहार करती हैं।

गुण—रोपण तथा शीतल है। स्वाद में कषैला, कड़ुवा और शीतल है। पित्त, कफ, प्रमेह, प्रदर, कामला, श्वास, कास आदि रोगों में लाभ करता है। शरीर के किसी भी भाग में विद्रधि या व्रण होने के कारण यदि ज्वर आता हो, तो इसका उपयोग करना उत्तम है। इसी कारण से यह क्षय में लाभ करती है, पसीने को रोकती है। यशद का अपस्मार और हिस्टीरिया रोग पर अच्छा प्रभाव होता है, इसलिये वातारिरस में इसका उपयोग किया जाता है। व्रणों के ऊपर या ज़ख़्मों पर ख़ून बन्द करने के लिये अथवा व्रण का रोहण करने के लिये इसका लेप (घी के साथ) अथवा इसके चूर्ण का प्रतिसारण करते हैं। जिन स्थानों पर बहुत पसीना आता हो, अथवा गले, जंघाओं में जहाँ चीरा पड़ जाते हों, त्वचा लाल हो जाती हो, वहाँ पर चन्दन के साथ मिलाकर लेप करना चाहिये। यशद-भस्म की मात्रा १ से २ रत्ती। बनावट—यशद-भस्म, वातारि-रस।

१६. **टंकणक्षार**—इसको सुहागा कहते हैं।

गुण—मूत्रल, ऋतु लानेवाला, प्रसव-कालीन पीड़ाओं को उत्पन्न करनेवाला तथा रोपण है। टंकण स्वाद में खारा तथा ज़रा कड़ुवा होता है। खाने के लिये इसको तवे पर गरम करके फुलाकर बरतना चाहिये। टंकण बलगम को तोड़ता है, गर्भाशय के रक्त-स्राव को बन्द करता है, ऋतु लाता है।

टंकण, हलुआ और मण्डूर-भस्म देने से ऋतु का शोधन होता है। एक रत्ती अफीम के साथ देने से पीड़ा के साथ होनेवाला ऋतु-स्राव तथा कमर का दर्द अच्छा होता है। टंकण का फाहा रखने से फटी हुई त्वचा ठीक हो जाती है। योनि के प्रक्षालन के लिये टंकण का उपयोग होता है, इससे शूल, दुर्गन्धित स्राव रुक जाता है। टंकण मूत्रल है, इसलिये मूत्रकृच्छ्र रोग में, अश्मरी में, शर्करा में इसका उपयोग होता है। टंकण के गलाले करने से मुँह के व्रण अच्छे होते हैं। बालकों के मुँह में व्रण होने पर इसको शहद में मिलाकर लगाते हैं। खाज, दाद आदि रोगों में प्रलेप के रूप में बरता जाता है। मात्रा २ से ४ रत्ती।

१७. ताम्बा—ताम्बा खानों में से निकलता है। ताम्बे में प्रायः मिलावट रहती है। ताम्बे के पत्ते बनते हैं। शुद्ध ताँबे की भस्म स्वाद में कषैली और मधुर होती है।

गुण—पौष्टिक, शोधक है। ताँबे की भस्म के विषय में बहुत कुछ मिथ्या विश्वास बैठा हुआ है। वह वाजीकरण प्रभाव के लिये प्रयोग की जाती है। ताम्र विष है और बहुत सख्त विष है। ताम्र के खाने से प्रायः शरीर में व्रण हो जाते हैं। कई बार ताम्र के साथ सोमल-संखिया आदि का भी मेल कर दिया जाता है, इससे यह अधिक विष-युक्त और गरम हो जाता है। इसके खाने से घी या दूध की मात्रा अधिक मात्रा से पच जाती है। परन्तु पीछे से यही ताम्र नुकसान देता है। ताम्र-भस्म कफ, पित्त, शूल, गुल्म, पाण्डु, उदर-रोग, अफारा, शोथ, कुष्ठ, अर्श, श्वास, कास, ज्वर, प्लेग में विशेष गुणकारी है। कच्ची भस्म या अशुद्ध भस्म खाने से भ्रम, मूर्च्छा, अरुचि, क्लेद, विरेचन, उल्टी, दाह स्वेद आदि रोग होते हैं। हरताल से उतरकर ताँबे की भस्म शीत ज्वर में, प्लेग में, आंत्र-ज्वर में लाभ करती है। ज्वर के बहुत-से रसों में ताम्र भस्म पड़ती है, जैसे चण्डेश्वर में। उदर के रोगों में, गुल्म के रोगों में पड़ती है, जैसे गुल्म कालानल। श्वास-रोग में यह विशेषतः उपयोगी है, इसीसे सूर्यावर्त्त रस में मिलाते हैं। त्वचा के रोगों में भी इसका उपयोग होता है यथा ताम्रेश्वर। ताम्रभस्म के सेवन करने के साथ पथ्य को पालना चाहिये। मात्रा १ से २ रत्ती। दूध और घी का उपयोग विशेषरूप से करना चाहिये।

१८. **नौसादर**--साधारणत: नौसादर मूत्र में निकलता है। इसको अनार्य भाषा में 'एमोनियम क्लोराईड' कहते हैं।

गुण—अति तीक्ष्ण है। सारक, पित्त को निकालनेवाला तथा ऋतु-प्रवर्त्तक है। इसके घोले में भिगोया हुआ पिचु जमे हुये रक्त को तोड़ता है। प्रसूता स्त्री के स्तनों में यदि दूध किसी कारण से रुक जाय और वे पकने लगें, तो इसका पिचु स्तनों पर रखने से लाभ होता है। वृषणों में आँत उतरने पर या वृषण शोथ पर इसका फाहा रखने से आँतें वापिस चली जाती हैं, वृषण सिकुड़ जाती हैं। यकृत की शोथ को, इसके अन्दर रुके हुये पित्त को बहाता है, शोथ को कम करता है। नवसार और कली चूने के मिलाने से 'अमोनिया' बनता है, जो शिर-दर्द आदि रोगों में सूँघी जाती है। नवसार मूत्रल तथा स्वेदक है। बुखार को कम करता है, कफ का लेखन करता है। ज्वर में इसके घोल के अन्दर गीला कपड़ा शिर पर रखते हैं। हरताल और नवसार इन दोनों को समान भाग मिलाकर पानी के साथ पीसकर बिच्छू के दंश पर लगाने से लाभ होता है। अधिक मात्रा में लेने से वमन होता है। मात्रा—१ ग्रेन (१ बाल) ३० ग्रेन से अधिक देने पर वमन होता है।

१९. **प्रवाल (मूँगा)**—यह समुद्र में से निकलता है। इसका रंग लाल होता है। बाजार में दो प्रकार का बिकता है, एक मूँगे की शाखायें जो अलग-अलग होती हैं; दूसरी मूँगे की जड़ यह जत्था-बन्द मिलती हैं। दवाई के काम में इसको शोधन करके बरतते हैं। कच्चे मूँगों को गुलाब के अर्क के साथ पीसकर और नित्यप्रति शुक्ल पक्ष में रात्रि के समय (विशेषत: शरत् या हेमन्त ऋतु में) बाहर चाँदनी में रखने से जो पिष्टि बनती है, वह बहुत ही शीतल होती है। इसको भस्म के रूप में भी व्यवहार करते हैं। इसकी भस्म श्वेत बनती है।

गुण—पौष्टिक, शोधक, कफघ्न। प्रवाल में मोती के समान गुण हैं। प्रवाल पतले लोहू को गाढ़ा करता है। इसमें 'कैलसीयम' के गुण होते हैं। इस गुण के कारण क्षय तथा रक्त-पित्त में बरता जाता है। बनावट—प्रवाल-भस्म.

२० **पारद**--पारा दो प्रकार से प्राप्त होता है। एक पारा पारे के

रूप में और दूसरा शिंगरफ के रूप में। शिंगरफ से जो पारा निकलता है, वह शुद्ध होता है। पारा जो द्रव के रूप में मिलता है, उसको शुद्ध करके बरतना चाहिये। पारे को शुद्ध करके भी यदि खुली वायु में रहने दें, तो वह भी काला हो जाता है। "रस" इसका दूसरा नाम है, क्योंकि यह सब धातुओं को ग्रहण कर लेता है। रोगरूपी समुद्र में डूबे हुये मनुष्य को पार लगाता है, इसलिये इसे 'पारा' कहते हैं। पारा अग्नि पर स्थिर नहीं रह सकता, वह उड़ जाता है, इसलिये इसको गन्धक, फिटकिरी आदि धातुओं के साथ मूर्च्छित करते हैं। पारे को मूर्च्छित करने से हिंगुल-रसकपूर आदि बनाते हैं। पारा बहुत बड़ी रसायन है। इसके साथ मिलने से जो औषधियाँ बनती हैं, उन सबको रस कहते हैं। चरक सुश्रुत में इसका उपयोग बहुत कम होता है। बौद्ध-काल में इस शास्त्र की विशेष उन्नति हुई है। बच्चे से लेकर बुड्ढे तक और ज्वर से लेकर वाजीकरण तक सब रोगों में इसका उपयोग होता है। पारे में सीसा, वंग, विष आदि का दोष मिला रहता है, जिससे व्रण, कुष्ठ, जड़ता, मृत्यु आदि उपद्रव होते हैं। इसलिये इसको शुद्ध करके बरतना चाहिये।

पारे को शुद्ध करने की कई विधियाँ हैं, परन्तु बड़े झंझट की हैं। दूसरी सरल रीति यह है कि शिंगरफ या हिंगुल को नीबू के रस में मर्दन करके डमरूयंत्र से उड़वाकर निकाल लेना चाहिये। इस रीति से निकाला हुआ पारा बहुत शुद्ध होता है। जिस स्थान पर पारद-भस्म लिखी हो, वहाँ पर पारद और गन्धक की बनी हुई कज्जली बरतनी चाहिये। पारद और गन्धक को खरल में रगड़ने से जो कज्जल-सा रंग बनता है, उसे कज्जली कहते हैं। शुद्ध पारे में जितने गुण हैं, उतने ही दोष अशुद्ध पारे में हैं।

अशुद्ध पारे से उत्पन्न दोषों की शान्ति के लिये—१—भाँगरे का स्वरस पीना चाहिये। २—गन्धक खानी चाहिये। ३—पान का रस, बकरी का दूध, तुलसी के पत्तों का रस खाना चाहिये। ४—पारद के पुराने विष में गन्धक और त्रिफला को तीन माशा खाना चाहिये। बनावट—पारदादि-लेप, पारदादि मलहम। इसके सिवा पारद के कुछ सरल प्रयोग भी रस-प्रकरण में दिये गये हैं।

२१. फिटकिरी—कच्छ और सौराष्ट्र में इसकी बहुत पैदाइश होती है, इसीसे इसको सौराष्ट्री भी कहते हैं। साधारणतः बाजार में फिटकिरी दो

५८

प्रकार की मिलती है, एक श्वेत और दूसरी लाल। फिटकिरी स्वाद में खट्टी, ज़रा कड़ुवी और कषैली होती है। खाने की औषधियों में फिटकिरी फुलाकर बरती जाती है। फुलाने के बाद फिटकिरी को मिट्टी या लोहे के बर्तन में रखकर ताप देना चाहिये। इससे प्रथम फिटकिरी पिघलकर द्रव बन जायगी और फिर अधिक ताप देने से सफेद भस्म बन जायगी।

गुण—ग्राही, स्तम्भन तथा रक्तावरोधक, कोठ, विसर्प, मूत्रकृच्छ्, वमन, ताव, आँख के रोगों में तथा रक्त-पित्त में लाभदायक है। छाती या फेफड़ों में से यदि रक्त निकलता हो, तो इसको योग्य दवा के साथ देने से लाभ होता है। यदि फिटकिरी बहुत अधिक मात्रा में दी जाय, तो वमन होकर कफ निकल जाता है। सब प्रकार के रक्त-स्राव को रोकती है। मुँह में व्रण हो जायँ, तो इसको पानी में घोलकर गलाले करना चाहिये, और फिर इसको शहद के साथ मिलाकर लगाने से थूक निकलता है। प्रमेह में और प्रदर में फिर विशेष लाभकारी है। प्रदर में इसके द्वारा योनि-प्रक्षालन करने से स्राव रुक जाता है। नाक से खून बहता हो, तो इसकी पिचकारी नाक में लगानी चाहिये। कहींसे भी स्राव होता हो, जैसे कान में या स्त्रियों के गुह्य-भाग से, तो इसके घोल से धोने पर लाभ होता है।

प्रसव के पीछे यदि रक्त-स्राव गर्भाशय से बन्द न हो, तो इसको पिचकारी से धोना चाहिये अथवा इसके घोल का पिचु रखना चाहिये। योनि को धोने से संकोच होता है। फिटकिरी को फुलाते समय उसमें नीबू का रस मिला देना चाहिये। इससे यह फिटकिरी दाद और दूसरे चर्म-रोगों के लिये तथा उल्टी के लिये अच्छी गिनी जाती है। खाज बहुत होती हो, तो इसके पानी का पिचु रखना चाहिये। तुरन्त जन्मे हुये बालक की आँखें किसी विष के कारण पक जायें, पलकें भारी हो जायँ, तो गरम पानी से धोकर फिटकिरी को गुलाबजल में घोलकर तीन-चार बूँदें प्रत्येक आँख में गिरानी चाहियें। गनेरिया के विष के कारण जब आँखें सूज जाती हैं, तब भी फिटकिरी का घोल आँखों के लिये हितकर होता है। शीत ज्वर में फिटकिरी को अकेली, या हरताल और शिंगरफ के साथ देते हैं। जिस समय इसको गोदन्ती हरताल तथा शुद्ध शिंगरफ से मिलाकर देते हैं, उस समय इसका रङ्ग गुलाबी होता है। फिटकिरी की मात्रा १ से २ वाल। वाह्य-प्रक्षालन के लिये आध सेर पानी में चौथाई तोले से आधे तोले तक डालनी चाहिये।

२२. मुर्दाशङ्ख—यह सीसे की बनावट है। जिस प्रकार लोहार की भट्टी में लोहा तपाने से मण्डूर इकट्ठा हो जाता है, उसी प्रकार यह भी वहाँ पड़ा रहता है।

गुण—रेचक तथा रोपण है। मुर्दाशंख, संगजराहत, सिन्दूर इन सबको बारीक पीसकर घी में लगाने से उपदंश का व्रण तथा बहुत पीवस्रावी व्रण भी अच्छा हो जाता है। विरेचन के लिये इसका उपयोग नहीं करना चाहिये। मुर्दाशङ्ख ठण्डा, केशों के लिये हितकर, त्वचा के कण्डु आदि रोगों को दूर करनेवाला, संकोचक है।

२३. मण्डूर—यह लोहे का मल है। ६० या १०० वर्ष का पुराना मण्डूर औषधि के काम में लाना चाहिये। मण्डूर लोहे के समान काले रङ्ग का, भारी होता है। भूमि में से कई स्थानों पर खुदकर मिल जाता है। मण्डूर को शोधन करके उसकी भस्म बनानी चाहिये।

गुण—बहुत कुछ लोहे की भाँति। मण्डूर—रक्तवर्द्धक, पांडु और कामला के लिये, शोष के लिये, शोथ के लिये लोहे से अधिक गुणकारी है। लोहे की अपेक्षा मण्डूर पचने में हलका होने से शीघ्र प्रभाव करता है। बालकों के लिये लोहे से अधिक उपकारी है। कृमि-रोग में मण्डूर-भस्म वायविडंग और शहद के साथ देनी चाहिये। जीर्ण ज्वर में शहद और पिप्पली के साथ; पाण्डु-रोग में मंडूर-भस्म छाछ में; शोथ में पुनर्नवादि काढ़े के साथ; बालकों के मिट्टी खाने से उत्पन्न उपद्रवों में मंडूर-भस्म या मण्डूर-वटी देनी चाहिये। बनावट—मण्डूर-भस्म, मण्डूर-वटी।

२४. मधु—शुद्ध मधु मधुमक्खियों के द्वारा फूलों से इकट्ठा किया जाता है। मक्खियाँ छोटी और बड़ी दो प्रकार की होती हैं। भिन्न-भिन्न फूलों के रस से यह इकट्ठा होता है, इसलिये इसमें सबका गुण मिला रहता है। बसन्त-ऋतु में फूल निकलते हैं। इस ऋतु में संचय किया हुआ शहद बहुत अधिक गुणकारी होता है। बाजार में जो शहद मिलता है, उसके अन्दर खजूर या खाँड़ की चासनी मिलाई होती है। मधु दो प्रकार की होती है। एक लाल रंग की और दूसरी श्वेत, पीली, रवेदार। यह दूसरे प्रकार की शहद शीतऋतु में जम जाती है। शुद्ध शहद को कुत्ता नहीं खाता।

गुण—कफ, पित्त का नाश करनेवाली, रोपण तथा योगवाही है। जिस दवाई को बहुत दिनों तक सुरक्षित रखना हो, उसमें मधु को मिला देते हैं।

मधु कृमिनाशक है। मधु कफ के रोगों के लिये उत्तम अनुपान है। इसमें इतना गुण है कि इसको थोड़ा-थोड़ा पानी के साथ पीने से मेदोरोग तथा मोटापन भी कम हो जाता है। मधु को पानी के साथ मिलाकर कुल्ला करने से मुँह के घाव भर जाते हैं। मीठा होने से कई दवाइयों के स्वाद को ठीक बनाता है।

२५. **मनःशिला**—मनसिल यह हरताल का एक भेद है। इसके लाल रंग के वजनदार टुकड़े आते हैं। मनसिल गन्धक और संखिया के योग से बनी हुई है।

गुण—ज्वरघ्न, कफघ्न तथा शोधक है। हरताल की भाँति इसका उपयोग भी आंत्र-ज्वर में (रस-माणिक्य के रूप में) होता है। श्वास-कुठार-रस आदि प्रयोगों में मनसिल पड़ती है। मनसिल के चूर्ण को बच तथा लहसुन के रस में पीसकर सूँघने से अचेतनता दूर होती है। श्वास-कुठार के खाने से या मनःशिला के बहुत ही हल्के घोल में भिगोकर बीड़ी पीने से श्वास जाता रहता है। मनसिल, धतूरे के टुकड़े और त्रिकटु, इन तीनों के समान भाग कूटकर, बीड़ी बनाकर पीने से दमा बैठ जाता है। त्वचा के रोगों में, कुष्ठ में यह काम आती है।

२६. **मोम**—मधु के साथ छत्ते में से मोम भी मिलती है। मक्खियों के छत्ते में से शहद छानने के पीछे मोम बच जाती है। मोम स्वाद मे मधुर तथा चिकनी होती है।

गुण—रोपण। प्रलेपों को बनाने के लिये मोम का उपयोग होता है। मोम से तैल भी निकालते हैं। यह तैल वातरोग के लिये उत्तम है। अण्डवृद्धि पर मोम की रोटी बाँधने से लाभ होता है। मोम दो प्रकार का बाजार में बिकता है, एक श्वेत और दूसरा पीला। आयुर्वेद में पीला मोम उत्तम गिना जाता है।

बनावट—मोम का मलहम—मोम एक भाग, तैल १॥ भाग दोनों को मीठी आँच से गरम करके मिला देना चाहिये।

२७. **मोती**—समुद्र में सीप के अन्दर से मोती निकलता है। मोती की बहुत-सी जातियाँ हैं। दवाई के काम में बिना बिँधा हुआ मोती काम में आता है। मोती की भस्म करके अथवा गुलाब के जल में पिष्ठि बनवाकर

इसको काम मे लाते हैं। स्वर्ण-वसन्तमालती में तथा सुरमों के अन्दर मोती डाला जाता है। मोती के अभाव में मोती का छीप, जिसमें मोती रहता है, काम में लाना चाहिये। इसके अन्दर भी मोती के समान गुण रहता है। भस्म करने से पूर्व मोती को शुद्ध करना चाहिये।

गुण—धातुपौष्टिक, पित्तशामक तथा शीतल है। मोती—बलकारक, आयु-वर्द्धक, मधुर, दाहशामक, पुराने ज्वर के लिये हितकर, हृदय के लिये और प्रमेह के लिये उपयोगी, श्वास, कास, क्षय को नाश करनेवाला, अस्थि-शोष-नाशक, विषहर है। मस्तिष्क को पुष्टि देता है। मोती रक्त को गाढ़ा बनाता है। इसलिये क्षय तथा अन्य रक्त-स्रावों में लाभदायक है।

२८. तुत्थ—यह ताम्र का एक समास है। इसलिये आर्य-चिकित्सा में इसको ताम्र का उपधातु मानते हैं। इसका रंग आसमानी रंग का है। दवाई के काम में मोरतुत्थ को शुद्ध करके बरतते हैं। इसका अन्तः-उपयोग कम होता है; परन्तु वाह्य-उपयोग बहुत अधिक होता है। "ग्रहणीकपाटरस" आदि कई रसों में इसका उपयोग होता है।

गुण—रोपण, स्तम्भक, पौष्टिक। तुत्थ स्वाद में कषैला, जरा कड़वा और खारा है। साधारणतः तुत्थ विष है। तुत्थ कृमि, खाज तथा विष का नाश करता है। आँख की खील में प्रभावशाली है। स्तम्भन-गुण के कारण संग्रहणी, अतिसार तथा कम्पवात में लाभदायक है। प्रमेह में तुत्थ की पिचकारी मारने से लाभ होता है। सड़े हुये या पुराने मांस को काटने के लिये तुत्थ का लेप किया जाता है। तुत्थ के अन्दर जलाने का गुण है। आर्य-शास्त्र में इस क्रिया को 'लेखन' शब्द से कहते हैं। आँखों के अन्दर जो खीलें हो जाती हैं, परवाल हो जाते हैं, तो उनको जलाने या काटने के लिये तुत्थ का लेप सबसे उत्तम है। इसके द्वारा रोहें जल जाते हैं। रतनजोत की सलाइयों में तुत्थ पड़ता है। उनको दिन में दो-तीन बार फेरने से आँख को लाभ होता है। आँखों के कोने की तरफ जो मांस बढ़ जाता है, उसको जलाने के लिये भी यही उत्तम है। बिच्छू के डङ्क के ऊपर तुत्थ को दही में घिसकर लगाना चाहिये। दुष्ट व्रणों को तुत्थ के पानी से धोने से लाभ होता है। उपदंश-जन्य व्रणों के ऊपर तुत्थ एक भाग और गेरू या गोपीचन्दन दो भाग मिलाकर व्रण पर बुरकी देनी चाहिये। क्षय की

असाध्यावस्था में, अतिसार में लाभ करता है। विष के पीने में तुत्थ को घोलकर वमन के लिये देना चाहिये।

मात्रा—खाने के लिये शुद्ध तुत्थ की मात्रा ¼ ग्रेन से १ ग्रेन तक। उल्टी के लिये १ वाल; आँख में गेरने के लिये १ रत्ती ३ तोले पानी में घोलकर बरतनो चाहिये। तुत्थ दाहक है, इसलिये व्रणों को इससे धोकर शुद्ध पानी से अच्छी प्रकार धो देना चाहिये, जिससे उसका विष न रहे। मोरतुत्थ के अधिक खाने से यदि विष हो जाय, तो घी पीना चाहिये। बनावट—रतनजोत की सलिया।

२०. रसकपूर—बाजार में जो रसकपूर बिकता है, वह पारे और लवणाम्ल के संयोग से बना होता है। पारे से रसकपूर बनाने की सरल विधि यह है कि शुद्ध पारा, गेरू, ईंट, खड़िया, फिटकिरी, सेंधानमक, ग्वार ये प्रत्येक पाँच-पाँच तोला लेकर, पारे को छोड़कर सब चीजों को कपड़छान कर लेना चाहिये। फिर उनमें पारा मिलाकर एक पहर तक खरल करना चाहिये। पीछे से इसको एक हाँड़ी में रखकर उसके ऊपर दूसरी हाँड़ी रख देनी चाहिये। फिर इस डमरूयंत्र को चूल्हे पर चढ़ाकर मीठी आँच से चार दिन-रात तक गरम करना चाहिये। पाँचवें दिन स्वाँग-शीत होने पर ऊपर की हाँड़ी में लगे हुये पुष्प उतार लेने चाहिये। यह रसकपूर शुद्ध होती है। बाजार में रसकपूर अशुद्ध मिलता है। रसकपूर विष है, अतः बहुत होशियारी के साथ इसको बरतना चाहिये।

गुण—शोधक। उपदंश में इसका विशेष प्रभाव है। उपदंश या उपदंश से उत्पन्न संधिवात में केशरादि गोलियाँ विशेष लाभ करती हैं। जीर्ण या पुराने अतिसार में रसकपूर भी लाभ करता है। रोग के प्रारम्भ में या तीक्ष्ण रूप में रसकपूर नहीं बरतना चाहिये। एक भाग रसकपूर और चवन्नी भर नौसादर और हजार भाग पानी मिलाकर प्रतिदिन दो-दो आने की मात्रा पीने से शरीर के ऊपर फूटी हुई गरमी शान्त होती है। रसकपूर की बनावट-वाली कोई भी औषधि यदि बरतनी हो, तो उसे लम्बे समय तक बरतना चाहिये। जिस समय मुँह में थूक बढ़ने लगे, उस समय इसको बन्द कर देना चाहिये। उत्तम यह है कि बीच-बीच में छोड़कर दिया जाय। रसकपूर के सेवन के समय सदैव पथ्य पालना चाहिये। रसकपूर शरीर में एकत्रित न होने पाये, इसलिये समय-समय पर हरड़ का विरेचन देते रहना चाहिये।

रसकपूर का उपयोग व्रणों के धोने के लिये भी किया जाता है। इसमें १ भाग रसकपूर और १००० से २००० भाग पानी मिलाना चाहिये। रसकपूर (१० ग्रेन) चूने का पानी (१० औन्स) इन दोनों को मिलाने से पानी का रङ्ग पीला हो जाता है। इसके धोने से उपदंश, अन्य व्रण, धनुष-वात आदि के व्रण धोये जायँ, तो बाहर के जन्तु नष्ट होते हैं और व्रण जल्दी भर जाते हैं। परन्तु इन सब कार्य के लिये बाजार का रसकपूर नहीं बरतना चाहिये। इसके लिये सबसे उत्तम अनार्य-चिकित्सा की "परक्लोराईड ऑफ़ मर्करी" बरतना चाहिये। रसकपूर के अधिक खाने से यदि विष चढ़ा हो, तो तक-मरीयाँ या इसबगोल का लुवाब देना चाहिये। वमन तथा जुलाब देना चाहिये। घी आदि चिकने पदार्थ देने चाहियें। शुद्ध रसकपूर की मात्रा $\frac{1}{16}$ से $\frac{1}{8}$ ग्रेन है। बनावट—केशरादि-गुटिका।

३० रौप्य—चाँदी की धातु प्रसिद्ध है। शुद्ध चाँदी की भस्म करके उसे औषधि के काम में बरतना चाहिये। इसके वर्क भी दवाई में काम आते हैं।

गुण—पौष्टिक तथा वातहर। चाँदी की भस्म तथा वर्क पुष्टि के पाक में पड़ता है। इसका खास गुण वात-व्याधि के लिये है, इसलिये वात गजांकुश तथा महायोगराज में पड़ती है। मस्तिष्क के रोगों में यथा हिस्टी-रिया, अपस्मार आदि रोगों में लाभ करती है। रौप्य शीत गुणवाली है, इसलिये पित्त के कोप को शान्त करती है। बनावट—रौप्य-भस्म।

३१. लवण—नमक शब्द से जो व्यवहार किया जाता है, वह समुद्र के पानी से बना नमक होता है। कहीं-कहीं लाहोरिया या सेंधानमक को भी नमक समझा जाता है। आर्य-चिकित्सा-शास्त्र में नमक पाँच प्रकार का है। जैसे काच-लवण, २. सैन्धव, ३. सामुद्रिक-लवण, ४. सोंचल और ५ बिड़-लवण या कालानमक। इनमें से सामुद्रिक लवण को उत्तरीय भारत में साम्भर नमक भी कहते हैं, चूँकि यह साम्भर से पैदा होता है। कालानमक बनाने के लिये साम्भरनमक को आँवले के पानी में उबालते हैं, इससे वह काला बन जाता है।

गुण—पाँचों नमकों के गुण - दीपन, पाचन, सारक तथा वातहर है। खूराक के साथ खाने के काम में (सेंधा या साम्भर) अधिक बरता

जाता है। चिकित्सा-शास्त्र में सब नमकों में श्रेष्ठ सेन्धानमक है। आँखों के लिये अन्य सब नमक हानिकारक हैं, केवल यही एक सेन्धानमक उपयोगी है। सेंधानमक सौम्य है। नमक भोजन में रुचि पैदा करता है, मल साफ लाता है, प्लीहा को कम करने के लिये या किसी स्थान पर जमे हुये रक्त को कम करने के लिये त्तारों का उपयोग किया जाता है। इसके अधिक खाने से शरीर में खाज आरम्भ हो जाती है, रक्त बिगड़ जाता है, बाल श्वेत हो जाते हैं। नमक रक्त-स्राव को बन्द करता है, सूजन को कम करता है, विष-नाशक है; इन सब कारणों के कारण नमक की पट्टी रक्त निकलने पर बाँधी जाती है। अजीर्ण या कॉलरा की अवस्था में लवणभास्कर-चूर्ण देने से अति-सार बन्द होता है। सेंधानमक तथा कड़ुवे तेल के गरोर करने से या दाँतों पर मलने से मुँह तथा दाँतों पर के सब रोग मिटते हैं। व्रण अथवा किसी स्थान पर शल्य-कर्म करने के पश्चात अथवा वायु के कारण जब नसों या नाड़ियों में स्तब्धता आजाय, उस समय नमक को बाँधना या उसका सेंक बड़ा लाभदायक होता है। गाँठ के ऊपर नमक की खीर चुपड़ने से लाभ होता है। पचके हुई गालों पर दूध में नमक पकाकर लगाने से बहुत लाभ होता है। बनावट—पवित्र चूर्ण।

३२. लोहा—लोहा प्रसिद्ध वस्तु है। यह तीन प्रकार का होता है। १. जिस लोहे के ढालकर बर्त्तन बनाये जाते हैं; २. जिसकी तारें खिँचती हैं, या बढ़िया वस्तु जैसे इंजन का धुरा बनता है; ३. जिसके हथियार बनते हैं, जैसे तलवार आदि। इनसे भिन्न दूसरी किस्म का एक लोहा होता है, जिसको अयस्कान्त कहते हैं। इनमें अयस्कान्त लोह कठिनता से मिलता है। इसके स्थान पर चुम्बक को बरतते हैं। इनमें अयस्कान्त और इस्पात, जिसकी तलवार आदि बनाये जाते हैं, सबसे उत्तम हैं और तारों का लोहा दूसरे नम्बर का है। परन्तु जिस लोहे को ढालकर बर्त्तन बनाते हैं, वह तीसरी श्रेणी का लोहा है। इन सबकी भस्में बनाई जाती हैं। परन्तु सबसे उत्तम भस्म अयस्कान्त की है।

गुण—रक्त-शोधक तथा पौष्टिक है। लोहे में पौष्टिक गुण है। लोहे में लाल रजकणों को बढ़ाने की शक्ति बहुत अधिक होती है। कमजोरी या पाण्डु-रोग में इसका उपयोग बहुत अच्छा रहता है। किसी भी रोग में

अन्य वस्तुओं के साथ में लोहे का उपयोग भली प्रकार किया जा सकता है। लोह को दूसरी औषधियों के साथ मिलाकर खाना अच्छा है। क्योंकि प्राय: यह मलबन्ध करता है। इसलिये त्रिफला आदि सारक वस्तुओं के साथ मिलाकर प्रयोग करना चाहिये। लोह-भस्म भी बहुत रोगों में बरती जा सकती है। यह कमला, पाण्डु, शोथ, संग्रहणी, कफ, पित्त, वात, क्षय, प्लीहा, यकृत, वात-रक्त, कुष्ठ, कृमि आदि रोगों में दी जाती है। इसमें बल, बुद्धि तथा कान्ति बढ़ती है। अत्यन्त विषय-सेवन से या अनियमित वीर्य-नाश से उत्पन्न दोष के लिये लोह-भस्म का सेवन और ब्रह्मचर्य्य का पालन, शरीर को पुन: स्वस्थ और सुन्दर बना देता है। स्त्रियों के ऋतु-दोष में, प्रदर-रोग में लोह बहुत लाभ करता है। जिन स्त्रियों में गर्भ-च्युति बार-बार होती है, उनके गर्भाशय को ताकत देने के लिये लोह-भस्म का उपयोग करना चाहिये। मूत्रकृच्छ्र-रोग में लोह-भस्म विशेष उपकारी होता है। अर्श, संग्रहणी, रक्तातिसार तथा प्रसवकालीन अति रक्त-स्राव में, जब कि चेहरे पर फीकापन आजाय, उस समय लोह-भस्म का उपयोग विशेष लाभदायक होता है। शोथ में, जलोदर में लोह को दीपन-पाचन औषधियों के साथ देना चाहिये। इन रोगों में चूँकि यकृत का विकार होता है, इसलिये लोह को त्रिफला के साथ मिलाकर त्रिफला या गो-मूत्र के योग से जारित देना चाहिये। तीव्र रक्त-स्राव में लोह-भस्म को अफीम के साथ देना चाहिये। बनावट—लोह-भस्म, प्रदरारि लोह, लोहासव।

३३. शङ्ख—शङ्ख समुद्र में बहुत उत्पन्न होता है। इसका निर्माण शूक नामक कृमि से होता है, जो समुद्र के पानी और कीचड़ में रहता है। जो शंख चन्द्रकान्त के समान होता है, वह अच्छा होता है। शङ्ख की भस्म बनती है। भस्म करने से पूर्व इसका शोधन करना आवश्यक है।

गुण—पाचक, रोपण, स्तम्भक, वातहर है। शङ्ख, प्रवाल आदि समुद्र में उत्पन्न होनेवाली सब वस्तुयें अनार्य-रसायन-शास्त्र के मतानुसार 'कैलसियम' के समास हैं। परन्तु इन दोनों के गुणों में बहुत भेद है। शङ्ख का गुण पाचन-शक्ति के ऊपर ख्यात है, पचने में अधिक हलका और अधिक गुणवाला है। शूल-रोग में शङ्ख-भस्म बहुत लाभ करता है। अजीर्ण-रोग में जब खट्टे डकार आते हों, पेट में दहन होती हो, उस समय शङ्खवटी देने

से विशेष लाभ होता है। पेट में खटास या अम्लता हो रही हो, उस समय क्षार जैसे, चूना या शङ्ख-भस्म देने से लाभ होता है।

शूल-रोग में—शङ्ख भस्म दो रत्ती और घी में भूनी हुई हींग एक रत्ती, इन दोनों को आधे तोले घी में चाटना चाहिये अथवा शङ्ख-भस्म को गरम पानी के साथ देना चाहिये।

अजीर्ण-रोग में—नीबू की सिकञ्जबीन के साथ शङ्ख-भस्म को देना चाहिये।

प्लीहा में-नीबू के रस के साथ शङ्ख-भस्म देनी चाहिये। शङ्ख-भस्म को सर्जक्षार या मूली के क्षार में मिलाकर लगाने से छोटे-छोटे मस्से गिर पड़ते हैं, बड़ी-बड़ी गाँठें नर्म पड़ जाती हैं। शङ्ख-भस्म और हरताल को मिलाकर लगाने से बाल गिर जाते हैं; परन्तु इससे बाल जल जाते हैं। मात्रा १ रत्ती। बनावट—शङ्ख-भस्म, शङ्खवटी, चन्द्रोदयवर्त्ति।

३४. **शङ्खजीरक**—यह साबुन के समान चिकना और बहुत सफेद होता है। स्वाद में कषाय और ठण्डा होता है। गरमी (उपदंश) के व्रणों पर लेप करने से फायदा करता है; इसीलिये इसको मलहम में डालते हैं। इमारती कामों में चिकना करने के लिये शङ्खजीरक बरता जाता है। शङ्ख-जीरक और कत्थे को मिलाकर उपदंश के व्रणों पर बुरकी देने से वे भर जाते हैं। मसोड़े में यह असरकारक है।

३५. **सिन्दूर**—सिन्दूर सीसे से बनाया जाता है। सिन्दूर में तीन भाग सीसे के और चार भाग ओषजन के हैं। सिन्दूर खाने के काम में नहीं आता। इसका मुख्य उपयोग बाह्य होता है।

गुण—व्रण-शोधक तथा रोपण है। इसीसे यह व्रण, कण्डू, दाद आदि प्रलेपों में काम आता है। सिन्दूर और मिर्च को मिलाकर लगाने से कंडू, खाज शान्त होती है। सिन्दूर को घी में मिलाकर लगाने से आँखों की खुजली, परवाल अच्छे होते हैं।

३६. **सीसक**—सीसक काले रंग की वज़नदार धातु है। इसका रंग काला होता है, इसीसे शायद इसका नाम संस्कृत में 'नाग' रक्खा गया है। सिन्दूर-सफेदा जिससे बरतन या छत पर टाँका लगाते हैं और मुर्दाशङ्ख ये तीनों सीसक ही के समास हैं। बन्दूक की गोली इसीसे बनती है। सीसक को शुद्ध करके उससे भस्म बनाई जाती है।

गुण—पौष्टिक, श्वास-नाशक। वीर्यवर्द्धक होने से पुराने प्रमेह में तथा वीर्यस्राव के रोगों में लाभ करता है। अन्यान्य जन्य औपसर्गिक प्रमेह में नाग-भस्म विशेष उपयोगी है। नाग-भस्म को घी के साथ लेने से वायु, शूल तथा मन्दाग्नि में लाभ होता है। अशुद्ध सीसक का उपयोग हानि करता है। कच्ची भस्म से गुल्म, कुष्ठ तथा रक्त-विकार मिटते हैं। बनावट—नाग-भस्म।

३७. शिलाजीत—शास्त्र में लिखा है कि स्वर्ण, चाँदी आदि धातुयें ग्रीष्म-ऋतु में तपकर अपना मद (रस) छोड़ती हैं, वही रस शिलाजीत के नाम से पहचाना जाता है। यह रस भिन्न-भिन्न धातु से निकलने के कारण भिन्न २ प्रभाव रखता है। इनमें लोहे से उत्पन्न शिलाजीत अधिक उत्कृष्ट माना जाता है। शिलाजीत के पत्थर बद्रीनाथ, काश्मीर से आते हैं। इनमें काश्मीर की शिलाजीत अधिक उत्तम है। शिलाजीत को गोमूत्र,त्रिफला-काढ़ा और दूध के अन्दर शोधन करते हैं। इनको घोलकर ऊपर से मलाई उतारते जाते हैं। जिस शिलाजीत में गोमूत्र की गन्ध आती है, और जो शिलाजीत पानी में डालने से धागे की भाँति रेशा छोड़ती है और आग पर रखने से लिंगाकार हो जाती है, उससे किसी प्रकार का धुवाँ नहीं आता, तो वह शिलाजीत सबसे अच्छी होती है। शास्त्र में लिखा गया है कि ऐसा कोई रोग नहीं है, जो शिलाजीत के खाने से अच्छा नहीं हो सकता। सुश्रुत में लिखा है कि तुला-परिणाम शिलाजीत खाने से असाध्य प्रमेह भी अच्छा हो जाता है, जिस प्रकार के रस-शास्त्र में अभ्रक के सत्त्व की प्रशंसा की गई है, उसी प्रकार काम-चिकित्सा में इस सत्त्व की प्रशंसा है। एक प्रकार से यह भी धातुओं का सत्त्व ही है।

गुण—मूत्रल, शोधक और पौष्टिक है। पेशाब के रोगों में शिलाजीत का उपयोग बहुत प्रसिद्ध है। अन्याय जन्य औपसर्गिक प्रमेह में, जब मूत्राशय के अन्दर मूत्र को रोकने की शक्ति नहीं रहती, उस समय शिलाजीत का उपयोग बहुत उत्तम है। प्रमेह, मूत्रजलन, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात आदि में दिया जाता है। वीर्यस्राव तथा वीर्य-सम्बन्धी निर्बलता के लिये इसको दूध के साथ देते हैं। चन्द्रप्रभा नामकी गुटिका में शिलाजीत पड़ती है। बनावट—चन्द्रप्रभा।

३८. सोंचल—संयुक्तप्रान्त या अन्य प्रान्तों में इसको कालानमक कहते हैं। इसका स्वाद खारा तथा कड़वा होता है।

गुण—वातहर, सारक रुचिकर, उद्गार को साफ करता है। अपान वायु को साफ करता है। जठराग्नि को बढ़ाता है। गुल्म, अफारा, शूल, कृमि, आम आदि को दूर करता है। सोंचल नमक, साँभर और सर्जिक्षार के योग से बनता है।

३९. समुद्रफेन—समुद्रफेन के नाम से बाजार में एक सफेद, हल्की-सी, मछली के आकार की चीज मिलती है। यह क्या वस्तु है? इसका अभीतक पता नहीं चला। रासायनिक दृष्टि से यह कैलसियम का समास है। साधारणत: लोगों का विचार है कि समुद्र के पृष्ठ पर जाती हुई फेन ही इस रूप में बदल जाती है। समुद्रफेन को आग के ऊपर गरम करने से इसका बुरादा बन जाता है।

गुण—स्तम्भन, शीतल और लेखन है। यह आँखों के रोगन में लाभ करती है। आँख मे अंजन करने से परवल कटता है, फूली कटती है। आँखों का तेज बढ़ता है। कान के अन्दर बुरकने से कान की पीव सूख जाती है।

४०. सर्जिक्षार—साधारण भाषा में इसको सज्जी कहते हैं। भिन्न-भिन्न प्रकार के वृक्षों को एक गड्ढे में रखकर जलाने से और फिर उस गढ़े में कुछ दिन पड़े रहने पर सर्जिक्षार बन जाता है। बाजार में सर्जिक्षार के नाम से काला ढेला मिलता है। सर्जिक्षार स्वाद में कषैला, खारा तथा कड़ुवा होता है। अन्य क्षारों की भाँति यह भी गुल्म, शूल, वात, उदर-विकार, कृमि, कफ आदि को नष्ट करता है। इसको धोकर इसमें से सफेद सोडा बनाते हैं। यदि आर्य-चिकित्सा का सर्जिक्षार शुद्ध बना हो, तो यह अनार्य-चिकित्सा के सोडे से पाचन-गुण अधिक रखता है। कई चिकित्सक सर्जिक्षार के स्थान में सोडा बरतते हैं, परन्तु वह इसका सच्चा प्रतिनिधि नहीं होता। क्योंकि 'सोडा' एक रासायनिक तत्व के संयोग से बना है।

४१. साबर शृङ्ग—हिरण का सींग भी चिकित्सा में बहुत काम की वस्तु है। जो शृङ्ग ठोस, वजन से भारी और कृमियों से नहीं खाया हुआ है, वह सींग सबसे उत्तम है। पार्श्व-शूल के लिये और श्वास तथा खाँसी में बरता जाता है। दवाई के काम में इसको घिसकर या इसकी भस्म बनाकर बरती जाती है। खुली हवा में जलाने से इसकी सफेद भस्म बनती है। आक के दूध में भस्म करने से यह बलगम या कफ को नष्ट करता है।

गुण—कफघ्न तथा पौष्टिक। साबरशृंग की भस्म शहद में चाटने से

कास, कफ, क्षय तथा हृदय के रोगों को लाभ होता है। बनावट—सावर-शृंगार-भस्म।

सुरमा—अनार्य-रसायन-शास्त्र में प्रसिद्ध एन्टमनी धातु का यह समास है। भूमि में से यह सुरमा काले रंग के पत्थर की भाँति कठोर निकलता है। काले सुरमे को सौवीराञ्जन कहते हैं और लाल सुरमे को स्रोताञ्जन कहते हैं। गुणों में काला सुरमा उत्कृष्ट है। सुरमे का उपयोग आँख के अंजन के लिये होता है। इसको शुद्ध करने के लिये इसे त्रिफला के काढ़े की सात भावनायें अथवा नीबू के अर्क में रगड़कर एक दिन पश्चात् काम में लाना चाहिये। आँखों के लिये यह ठण्डा है, इसलिये इसमें मोती आदि वस्तुयें मिलाकर सुरमे बनाते हैं। इसको मुक्तादि अंजन (मोतियों का सुरमा) कहते हैं। बनावट—सौवराञ्जन, नयनामृत।

४२. सुराक्षार (शोरा)—मूत्रल और स्वेदक है। इन्हीं दो कारणों से ज्वर में इसका उपयोग किया जाता है। मूत्रकृच्छ्र,अश्मरी, मूत्र की जलन आदि रोगों मे इसका उपयोग पृथक् रूप में या फिटकिरी के साथ पर्पटी बनाकर किया जाता है। निर्बल मनुष्यों को सुराक्षार नहीं देना चाहिये;क्योंकि यह हृदय को कमजोर करता है। सुराक्षार को पिघलाकर पर्पटी का रूप देकर, इसको यवक्षार के नाम से बाजार में बेचते हैं।

४३. स्वर्णमाक्षिक—यह गन्धक और लोहे का समास है। इसमें सोना एक रत्ती भी नहीं होता, किन्तु सोने का रंग अवश्य पाया जाता है। इसीसे इसको स्वर्णमाक्षिक नाम दिया गया है। इसी प्रकार चाँदी के समान होने से रौप्यमाक्षिक कहते हैं। ये दोनों वस्तुयें सोने और चाँदी के कानों के पास से निकलती हैं। इनके गुण भी सोना या चाँदी से सर्वथा भिन्न हैं।

गुण—शोधक तथा पौष्टिक, स्वर्णमाक्षिक की भस्म कषैली और कटु स्वादवाली होती है। यह छाती के रोगों में, गले के रोगों में, पाण्डु-रोग में, प्रमेह, विष, उदर-रोग, अर्श, शोथ, क्षय, कास आदि में लाभ करती है। इसकी भस्म के गुण लोह-भस्म से मिलते हैं। लोह-भस्म की अपेक्षा स्वर्ण-माक्षिक भस्म पचने में लघु और शीत-वीर्य है। गर्भपात, गर्भस्राव या असामयिक प्रसव में अथवा अन्य प्रकार के रक्तस्रावों में माक्षिक-भस्म अकेली या गर्भ-विनोदरस के रूप में दी जाती है। धातुक्षीणता, स्वप्न-दोष, प्रदर, जीर्ण-प्रमेह तथा क्षय की दूसरी, तीसरी स्थिति में स्वर्णमाक्षिक की भस्म का बहुत

अच्छा प्रभाव होता है। शहद में मिलाकर आँख में अंजन करने से आँख की फूली कट जाती है। बनावट—स्वर्ण-माक्षिक भस्म।

४४. **स्वर्णगैरिक**—फ़ारसी में इसे गीले सुर्ख कहते हैं। गेरू, सोनागेरू और हड़मची ये तीनों वस्तुयें प्राय: एक समान हैं। गेरू को सब पहचानते हैं, इससे कपड़े रँगे जाते हैं। सोनागेरू—अधिक लाल रंग का और वजन में भारी पत्थर की भाँति होता है।

गुण—शीतल, रोपण तथा स्तम्भक। सोनागेरू स्वाद में कषैला तथा मधुर है। दाह, पित्त, रक्त-विकार, कफ, हिचकी, विष, उल्टी, ज्वर आदि में बरता जाता है। बर्र, ततैया आदि के काटने पर घिसकर लगाते हैं। व्रणों पर लगाया जाता है। स्वर्णगेरू में लोह का अंश होता है, इसलिये पाण्डु, कामला आदि रोगों में बरता जा सकता है। बनावट—स्वर्णगैरिक का लेप।

४५. **स्वर्ण**—खानों में सोना मैला, धूल या कणों के रूप में बाहर निकलता है। औषधियों के काम में इसकी भस्म या वरकें काम आते हैं।

गुण—पौष्टिक, आयु-वर्द्धक, बल, बुद्धि, स्मृति बढ़ानेवाला है। क्षय, जीर्ण, कास आदि छाती के रोगों में स्वर्ण के वरक या स्वर्ण की भस्म का उपयोग खुली रीति से किया जाता है। क्षयरोगी के लिये यदि कोई सहारा हो, तो केवल, स्वर्ण-भस्म है। मस्तिष्क के तन्तुओं के ऊपर सोने का विशेष प्रभाव होता है। उन्माद, अपस्मार, त्रिदोष-जन्य मूर्च्छा आदि रोगों में स्वर्ण से बनी उत्कृष्ट औषधियाँ दी जाती हैं। बेशुद्धि के लिये हिरण्य गर्भ पोटली का व्यवहार किया जाता है, उसमें भी स्वर्ण का योग होता है। संग्रहणी में स्वर्ण का उपयोग स्वर्ण पर्पटी के रूप में किया जाता है। सारांश यह है कि किसी भी प्रकार की क्षीणता आने पर स्वर्ण का उपयोग किसी न किसी रूप में आर्य-चिकित्सा के अन्दर किया जाता है। विष-दोष, गर-दोष (संयोग-जन्य विष का नाम गर है) में स्वर्ण अमोघ माना जाता है। नपुंसकत्व, जीर्ण-प्रमेह तथा हस्त-दोष आदि कारणों से उत्पन्न कम क़ूवत में सोना अच्छा लाभ करता है। इसको चन्द्रोदय के रूप में बरतते हैं। बनावट—स्वर्णबसन्तमालती, स्वर्ण-भस्म।

४६. **संखिया**—संखिया बहुत ज़हरीली वस्तु है। इसमें किसी प्रकार का स्वाद नहीं होता, इसलिये दुष्ट लोग इसको खाने की वस्तुओं में

मिलाकर देते हैं। इसके जहर के और हैजे (कॉलरा) के लक्षण प्रायः आपस में बहुत कुछ मिलते हैं। वमन और विरेचन दोनों ही के अन्दर होता है। संखिया आर्य एवं अनार्य-चिकित्सा दोनों ही में अमृत के समान है। इसका उपयोग करने के लिये बहुत ही सावधानी करनी चाहिये।

गुण—शोधक, ज्वरनाशक तथा पौष्टिक। विषम ज्वर में एवं शीत या आंत्र-ज्वर में संखिया को आर्य-चिकित्सक ज्वरांकुश के रूप में बरतते हैं। ज्वर में संखिया तत्काल असर करती है। अनार्य-चिकित्सक आजकल संखिये के नये-नये आविष्कार कर रहे हैं। कई रोगों के लिये यह अमोघ औषधि गिनी जाती है। संखिया का शोधन करना आवश्यक है। वात-रक्त और त्वचा के तीव्र रोगों में शोधक गुण के कारण सब व्यवहार में लाते हैं। शक्ति या पुष्टि के लिये संखिया या इसके बने हुये समास बरते जाते हैं। इसके खाने से गरमी बहुत होती है, इसलिये दूध, गेहूँ की रोटी खानी चाहिये। संखिया खानेवाले को नमक यथासम्भव कम खाना चाहिये। संखिया के साथ घी का उपयोग भी यथेच्छ करना चाहिये। मात्रा शुद्ध संखिया की १ रत्ती का सोलहवाँ भाग।

४७. **हरताल**—हरताल खनिज पदार्थ है। रासायनिक दृष्टि से यह संखिये का गन्धित है। इसमें संखिया दो भाग और गन्धक तीन भाग है। संखिया होने से हरताल में भी विषैला असर रहता है। बाजार में हरताल दो प्रकार की मिलती है। एक पत्र हरताल और दूसरी तबगी हरताल। पत्र हरताल में से अभ्रक की भाँति पत्ते उतरते हैं। इसका रंग सोने जैसा पीला होता है। दगड़ी अथवा पिण्ड हरताल निस्तेज और पीली होती है, यह रंग के काम में आती है।

गुण—शोधक तथा ज्वरघ्न। ज्वरघ्न रूप में हरताल संखिया की भाँति बरती जाती है। हरताल को बरतने में भी सावधानी रखनी चाहिये। पुरानी वात-व्याधियों में जैसे, पक्षाघात, गृध्रसी आदि रोगों में हरताल धीमे-धीमे प्रभाव करती है।

शरीर पर सिध्म कुष्ठ—त्वचा पर धब्बे पड़ जाने पर हरताल संखिया से अच्छा असर करती है। हरताल शीतज्वर में भी लाभ करती है। हरताल के सेवन में भी पथ्य पालना चाहिये। हरताल की मात्रा १ रत्ती है।

ऊपर लिखे दोनों भेदों के सिवा एक श्वेत हरताल मिलती है, जिसको गोदन्ती हरताल कहते हैं। इसको भस्म बनाकर ज्वर आदि रोगों में बरता जाता है। भस्म बनाने के लिये घीकार के रस में घोंटकर भस्म बनाते हैं। भस्म श्वेत बनती है।

४८. हिंगुल -- रासायनिक दृष्टि से यह पारा और गन्धक का समास है। यह खनिज रूप में भी मिलता है परन्तु बहुत कम। बाज़ार में जो बिकता है, वह सूरत आदि देशों में बना हुआ है, जो पारे और गन्धक के योग से बना होता है। इस बाज़ारू हिंगुल को काम में लाने से पूर्व नीबू के रस में, आर्द्रक के रस में सात दिन तक घोंटकर बरतना चाहिये।

गुण—पौष्टिक, शोधक, रसायन और योगवाही है। जिन स्थानों में कज्जली, रससिन्दूर आदि का उपयोग होता है, उन सब स्थानों पर इसका उपयोग होता है। प्याज या लहसुन के रस की एक-एक बूँद गिराकर बनाई हुई हिंगुल भस्म नपुंसकता, लिंग-शिथिलता के लिये विशेषत: व्यवहार में लाई जाती है। इसके प्रलेप बनाये जाते हैं। एक भाग हिंगुल ४ भाग, कत्था. इन दोनों का चूर्ण बनाकर व्रण पर बुरकी देने से व्रण भरता है। मात्रा शुद्ध हिंगुल १ रत्ती, बनावट—हिंगुलेश्वर रस।

४९. हीराकसीस—यह लोहे का गन्धित है। इसका रंग नीला होता है। खुला वायु में पड़ा रहने से सफेद चूर्ण बन जाता है। स्वाद से कषैला, खट्टा होता है।

गुण—स्तम्भक, रक्तवर्द्धक और रज:प्रवर्त्तक। इसमें लोहे के सब गुण हैं। आर्य-चिकित्सा में इसका अन्त:-उपयोग कम होता है। क्षार गुण के कारण इसका बाह्य-उपयोग अर्श आदि रोगों में होता है। अनार्य-चिकित्सा में इसका उपयोग प्लीहा, वृद्धि, रक्त-शून्यता, पाण्डु आदि रोगों में होता है। गुद-भ्रन्श में इसको पानी में घोलकर लगाने से गुद-भ्रन्श ठीक हो जाता है। मात्रा १ से ३ रत्ती। बनावट—कसीसादि तैल।

परिभाषा-प्रकरण

यहाँ पर कुछ आवश्यक पारिभाषिक शब्दों का विवेचन किया गया है, जिनका आगे विशेषतः उपयोग होगा। जैसे—कोई औषधि 'दीपन' है, इसका अर्थ है कि वह अग्निवर्द्धक है। इसी प्रकार अन्य 'पारिभाषिक शब्दों का' विवेचन यहाँ पर कर दिया है।

गुणों के अनुसार औषधियों का वर्गीकरण

१. **अम्ल दवाइयाँ**—इस शीर्षक में खट्टी दवाइयों का समावेश होता है। प्रायः करके खट्टी दवाइयाँ शीतल और कुछ दीपन होती हैं। इस वर्ग की ओषधियाँ पित्त को शान्त करती हैं, परन्तु कफ को बढ़ाती हैं।

दीपन, पाचन, अम्ल—इमली, चने का खार, नारंगी, बिजौरा नीबू।

दूसरी अम्ल दवाइयाँ—आँवला, आम, जामुन, अनार, द्राक्षा।

सामान्य उपयोग—इस वर्ग की दवाइयों के खाने से, चूसने से या शर्बत करके पीने से पित्त की उल्टी, दाह, दाँतों से बहता हुआ रक्तस्राव बन्द होता है। दीपन-पाचन दवाइयाँ जठराग्नि को बढ़ाती हैं, इसलिये दाल, शाक आदि मसाले के रूप में इनका प्रयोग होता है। परन्तु ये औषधियाँ कफकारक हैं, इसलिये रोगी की प्रकृति, शरीर की स्थिति तथा स्वभाव को देखकर इनका उपयोग करना चाहिये।

अम्ल-विरुद्ध औषधियाँ—इस वर्ग की औषधियों में मुख्य समावेश क्षारों (खारों) का होता है। जैसे—सर्जक्षार, यवक्षार, सैंधव, सोंचल, साँभर, अपामार्ग क्षार आदि शङ्ख-भस्म भी अम्लता को दूर करनेवाली है।

सामान्य उपाय—आमाशय में अम्लता की अधिकता हो, जिह्वा या दाँतों पर खटास रहती हो, खट्टे डकार आते हों, दाँत जकड़ जायँ, तब इन सब अवस्थाओं में पाचन-क्रिया के पूर्ण होने पर (अर्थात् भोजन खाने के ४ घंटे पीछे) क्षारों का उपयोग करना उत्तम है। और यदि भूख न लगती हो, तो भोजन से २० या १५ मिनट पूर्व अम्ल-वर्ग की दीपन-पाचन औषधियों को

देना चाहिये। खाने के तुरंत पीछे क्षार-पदार्थों का उपयोग नहीं करना चाहिये; क्योंकि इससे अम्लरस नष्ट हो जायगा, जिससे भोजन का पाचन नहीं होगा। इसलिये साधारण नियम है कि भोजन खाने के आध घन्टे या दो घन्टे पीछे फलों के खाने का रिवाज है। इनके खाने से पाचन-क्रिया में से बचा हुआ अम्लरस नष्ट हो जाता है और खट्टे डकार या परिणाम-शूल आदि लक्षण शान्त हो जाते हैं। क्षारों का अधिक उपयोग शरीर के तन्तुओं को गला देता है। शरीर निर्बल, पिलपिला हो जाता है, रक्त और शुक्र में विकार आजाता है, मस्तिष्क के तन्तु कमजोर हो जाते हैं, पुन्सत्व घट जाता है, इसलिये इनके अधिक उपयोग से बचना चाहिये।

२. **शीतल दवाइयाँ**— जिन दवाइयों के खाने से या शरीर पर लगाने से शरीर पर शीतल प्रभाव होता है, उन सबका समावेश इस शीर्षक में आता है। इनके स्वभाव तथा गुणों की भिन्नता के कारण इनके नीचे लिखे भेद किये जा सकते हैं। जैसे—

(क) शीतल पौष्टिक—आँवला, गोखरू, मुलहठी, रत्ती, वंशलोचन, शतावरी।

(ख) शीतल रोपण—कत्था, खदिरसार, सोनागेरू, मेंहदी, हीरादखण।

(ग) शीतल पित्तशामक—आँवला, कुटज-छाल, गोजिह्वा, गिलोय, गोखरू, चन्दन, चौलाई, त्रिफला, दारुहल्दी, धमासा, पित्तपापड़ा, धनिया, नारंगी, मजीठ, नीबू, अनार, फालसा, आलूबुखारा।

(घ) शीतल मूत्रल—जौखार, कबाबचीनी, शीतलचीनी, चंदन, गोजिह्वा, नारियल का पानी।

(ङ) शीतल-स्तम्भन—ईसबगोल, कुटज-छाल, कत्था, केसर, जामुन, मोचरस।

(च) शीतल सारक—आँवला, गुलाब के फूल, हरड़ अमलतास।

(छ) शीतल दाहशामक—इलायची, केसर, चन्दन, त्रिफला, बहेड़ा।

सामान्य उपयोग—शरीर के अन्दर जब साधारण गरमी बनी हो, उस समय शीतल दवाइयों का उपयोग करना उत्तम है। शरीर की दाह, आँख की जलन, मस्तिष्क की गरमी और निर्बलता में शीतल पौष्टिक

दवाइयों का उपयोग उत्तम है। त्वचा के रोगों में शीतल-सारक और शीतल-दाहशामक वस्तुयें अच्छी हैं। गरमी के व्रणों में शीतल रोपण दवाइयाँ रोहण करती हैं। शरीरस्थ दाह को शान्त करने के लिये, मूत्र की जलन को कम करने के लिये शीतल पित्तशामक या शीतल मूत्रल औषधियाँ अच्छी हैं। शरीर के पृष्ठ की जलन को शान्त करने के लिये शीतल पानी का परिषेक सबसे उत्तम है।

३. **दाहशामक दवाइयाँ**—इस वर्ग की शीतल दवाइयों के खाने से शरीर के अन्दर की गरमी और बाहर लगाने से त्वचा का दाह शान्त होता है। इलायची, चन्दन (श्वेत चन्दन बाहर लगाने के लिये और लाल चन्दन अन्तः-उपयोग के लिये), शिरीष, सारिवा, गिलोय, केसर, त्रिफला, बहेड़ा, आँवला, धनिया, मजीठ, नेत्रबाला, कमल, चौलाई, दारुहल्दी, घी, मक्खन आदि हैं।

सामान्य उपयोग—इन दवाइयों का उपयोग दाह-शमन के लिये हिम, शरबत, लेप, पिचु, घी, परिषेक, प्रक्षालन आदि रूपों में किया जाता है। पेशाब की जलन, प्रमेह का दाह, तथा आमाशय में दाह होता हो या उल्टी हो रही हो, तो इस वर्ग की औषधियों का हिम, पाचक या शरबत बनाकर दिया जाता है। विसर्प, गरमी का व्रण, आँख के दाह में इस वर्ग की औषधियों का पानी धोने के काम में आता है और घी लगाने के काम आता है।

४. **पित्तशामक औषधियाँ** —जो औषधि शरीर में बढ़े हुये पित्त को शान्त करे अथवा मल के मार्ग से पित्त को बाहर कर दे, उन सब औषधियों का समावेश इस शीर्षक में होता है। प्रायः सब दाह-शामक औषधियाँ पित्तशामक होती हैं। इस वर्ग की औषधियों का भी निम्न प्रकार से वर्गीकरण किया जा सकता है।

(क) खास पित्तशामक—पेठा कद्दू, गोजिह्वा, गिलोय, चन्दन, धनिया, नारंगी भाँगरा, बहेड़ा, मजीठ, नीबू, घी नेत्रबाला, मक्खन आदि।

(ख) सारक पित्तशामक—नौसादर, इमली, आँवला, इन्द्रायन, कौंवार, चौलाई, त्रिफला, किशमिश आदि।

(ग) स्तम्भक पित्तशामक—बिल्व, दारुहल्दी, अनार, कुड़ा छाल आम

सामान्य उपयोग—पित्त की विकृति में तथा पित्त, प्रकृतिवालों को

इस वर्ग की औषधियाँ बहुत माफिक आती हैं। ज्वर की तृषा, वमन, दाह, लू लगने पर, रक्त-विकार में भी ये दवाइयाँ गुणकारी हैं। विकृत या बढ़े हुये पित्त को निकालने के लिये सारक पित्तशामक औषधियाँ उत्तम हैं। जिस समय क्लोम में पित्त रुक जाता है, अर्थात आँतों में नहीं बहता, उस समय यह पित्त आँख आदि स्थानों में पहुँचकर पीलापन उत्पन्न करता है, उसको कामला कहते हैं। इस अवस्था में पित्त-सारक औषधियों को देना उत्तम है। इनके देने से रुका हुआ पित्त बहने लगता है।

५. **उष्ण दवाइयाँ**—शरीर के अन्दर जागृति, चेतन तथा गरमी देनेवाली औषधियों को गरम दवाइयाँ कहते हैं। इन दवाइयों के दो मुख्य विभाग हैं।

(क) सम्पूर्ण शरीर में उष्णता पैदा करनेवाली, जैसे—अजवायन, सोंठ, लौंग, अम्बर, कस्तूरी, प्याज, पीपल, भिलावा, आक, जहरकुचला आदि।

(ख) शरीर के अमुक भाग को उष्णिमा पहुँचानेवाली दवाइयाँ—हींग, लहसुन, मालकंगनी, अकरकरा, समुद्रफेन, हीराबोल, जावित्री, जायफल, जौखार, पुष्करमूल, कूठ।

सामान्य उपयोग—इन उष्ण दवाइयों के उपयोग से मस्तिष्क के अन्दर उष्णिमा पहुँचती है, मस्तिष्क-तन्तु क्रिया-शील बनते हैं। उनके क्रिया-शील बनने से रक्त-संचार बढ़ जाता है, रक्त-संचार में तेज़ी आने से शरीर के अन्दर उष्णिमा भी बढ़ जाती है, अचेतनता दूर हो जाती है। शक्ति क्षीण होगई हो, मर्म-स्थान मन्द पड़े हों, शरीर एकदम अशक्त बन गया हो, शरीर ठण्ठा पड़ा हो, तो इस वर्ग की औषधियों के सेवन से शरीर में शक्ति आजाती है, सरदी हट जाती है।

६. **दीपन-पाचन औषधियाँ**—जिन दवाइयों से शरीरस्थ आम-रस का पाचन हो, जठराग्नि प्रदीप्त हो, उनका नाम 'दीपन' है, और जिन औषधियों के द्वारा अनपच भोजन का पाचन हो, उनको पाचन औषधियाँ कहते हैं। कुछ औषधियाँ दीपन गुणवाली हैं, कुछ पाचन गुणवाली हैं और कुछ दीपन एवं पाचन दोनों गुणोंवाली हैं।

(क) दीपन औषधियाँ—सौंफ, बिजौरा, नारंगी, पिप्पलीमूल, धनिया, दालचीनी, जावित्री, जौखार, अजवायन, नमक, जीरा, सुवा आदि।

(ख) पाचन औषधियाँ—भिलावा, कूठ, ज़हरकुचला आदि कड़ुवे पदार्थ ।

(ग) दीपन-पाचन औषधियाँ—सोंठ, आर्द्रक, पिप्पली, जावित्री, चित्रकमूल, इन्द्रजौ आदि ।

सामान्य उपयोग—अजीर्ण-रोग में पाचन और दीपन औषधियों का उपयोग होता है । "भुक्ता-जीर्ण" रोग में 'रस-शेष' रोग में पाचन औषधियों का और अरुचि तथा भूख न लगने पर दीपन औषधियों का उपयोग करना चाहिये । दीपन दवाइयों से उदर-शूल, वायु, अफारा आदि उपद्रव भी शान्त हो जाते हैं ।

७. **वातहर औषधियाँ**—वायु को नष्ट करनेवाली औषधियों को वातहर, वातघ्न या वायुशामक अथवा वातनाशक नाम से कहते हैं । इस वर्ग का विभाग निम्न प्रकार से किया जाता है—

(क) उदरस्थ वायु पर प्रभाव करनेवाली औषधियाँ—हींग, लहसुन, क्षार, लवण, सोंठ, चित्रकमूल आदि ।

(ख) शूल तथा अंग की पीड़ा को दूर करनेवाली—अलसी, राई, आक, एरण्ड, कपूर, कायफल, रत्ती, प्याज, वत्सनाभ, अफीम, चित्रकमूल, अजमोदा आदि ।

(ग) मस्तिष्क-सम्बन्धी वात-व्याधियों पर प्रभाव करनेवाली—गुग्गुल, भिलावा, एरण्ड, दशमूल, वच, स्वर्ण, कौंच, ब्राह्मी, जटामांसी, हींग, शंखावली आदि ।

८. **कफघ्न औषधियाँ**—कफ की चिकनाहट को कम करनेवाली अथवा कफ को टुकड़े-टुकड़े करके बाहर निकालनेवाली औषधियों को 'कफघ्न' औषधियाँ कहते हैं, जैसे अपामार्ग, अरणी, पुष्करमूल, कूठ, कायफल, पिप्पली, आक, जौखार, देवदारु, कटेरी, पान, बच, नौसादर, क्षार आदि । इस वर्ग की प्राय: सब औषधियाँ उष्णवीर्य अर्थात् गरम स्वभाव की होती हैं । इनमें से कुछ थोड़ी औषधियाँ, जैसे मुलहठी, 'होराबोल' आदि शीत-वीर्य हैं ।

सामान्य उपयोग—छाती में से कफ निकालने के लिये इन औषधियों का उपयोग विशेषरूप से किया जाता है, जैसे श्वास-रोग । मैं यहाँ पर यह

बात स्मरण रखनी चाहिये कि अफीम, धतूरा आदि औषधियाँ कफ निकालने के पीछे देनी चाहियें।

९. **कफनाशक दवाइयाँ**—जिस समय छाती में थोड़ा कफ रुका होता है, उस समय कफशामक अर्थात् बढ़े हुये कफ को शान्त करनेवाली औषधियाँ दी जाती हैं। इस प्रकार की औषधियाँ कास और दमे को भी शान्त कर देती हैं। कत्था, बाँस, कपूर, अफीम, लोहबान, तम्बाकू, मैनसिल, धतूरा, संखिये के समीर्न आदि इस वर्ग के कुछ उदाहरण हैं।

१०. **ग्राही दवाइयाँ**—जो औषधियाँ शरीर के प्रवाही पदार्थों को शोषण करके सख्त बना देती हैं, उनको चिकित्सा-शास्त्र में ग्राही या संग्राही औषधियाँ कहते हैं। उदाहरण के लिये जो औषधियाँ पानी की भाँति पतले मल (अतिसार) को रोककर उसे कड़ा (ठोस) बनाती हैं, वे संग्राही औषधियाँ हैं। इस वर्ग के अन्दर की मुख्य औषधियों में वासा, आम की गुठली, इन्द्रजौ, जामुन की गुठली, ईषबगोल, कुटजछाल, कत्था, जवास, अनार, कैथा, जायफल, धातकी फूल, लोध, बेल, नागकेशर, माजूफल, मोचरस, लोध्र, हीराबोल आदि एवं कषाय-युक्त पदार्थ मुख्य हैं।

११. **स्तम्भन औषधियाँ**—जिन औषधियों के प्रभाव से शरीर के स्राव (स्वाभाविक या अस्वाभाविक दोनों ही) कम होते हैं। उनको स्तम्भन कहते हैं। प्रायः सब स्तम्भन औषधियों में ग्राही गुण थोड़ा बहुत होता है। परन्तु विशेष स्तम्भक गुणवाली औषधियाँ अफीम, मोचरस, नीलातुल्य, जायफल, लोहभस्म, कसीस, बबूल की छाल आदि हैं।

१२. **रक्त-स्तम्भक औषधियाँ**—जो औषधियाँ रक्त के प्रवाह अथवा स्राव को रोकती हैं, उनको 'रक्त-स्तम्भक' कहते हैं। रक्त-स्तम्भक औषधियाँ दो प्रकार की हैं (१) स्थानिक और (२) व्यापक। स्थानिक औषधियाँ वे हैं, जो स्थान पर लगाने से प्रभाव करती हैं। जैसे यदि किसी कारण से रक्त निकल रहा हो, तो दूर्वा का रस शहद के साथ लगाने से, या शीत जल का भिगोया हुआ वस्त्र अथवा अच्छा गरम पानी रक्त को एकदम रोक देता है। दूसरे प्रकार की व्यापक औषधियाँ वे हैं, जिनके शरीर में अन्तः-उपयोग करने पर रक्त-स्राव बन्द हो जाता है। जैसे बवासीर में बहता हुआ रक्त अथवा स्त्रियों के प्रदर में बहता हुआ रक्त अथवा नकसीर

(नाक से बहता हुआ रक्त) में लोहे के समासों के उपयोग से, वासा से, अशोक की छाल से, चूने के क्षार से, प्रवाल, मुक्त, सीप आदि के उपयोग से बन्द हो जाता है। इन व्यापक दवाइयों में वाहिनियों को संकोच करने का गुण होता है। उसके कारण ये औषधियाँ रक्त-स्राव करनेवाली वाहिनियों का संकोच कर देती हैं।

स्तम्भक और ग्राही दोनों दो प्रकार की औषधियाँ प्रायः एक ही श्रेणी में आती हैं। परन्तु इन दोनों में कुछ थोड़ा-सा भेद है। उसी भेद के कारण इनका विभाग किया हुआ है। संग्राही दवाइयाँ रक्त को गाढ़ा कर सकती हैं; परन्तु इनका प्रभाव वाहिनियों पर विशेष नहीं होता। इसी प्रकार स्तम्भक औषधियाँ मल को गाढ़ा बना सकती हैं; परन्तु इसके साथ ही इनके द्वारा पेट की वायु का नाश नहीं होता।

१३. शोधक औषधियाँ—जिन औषधियों के द्वारा शरीर का शोधन होता है, उनको शोधक औषधियाँ कहते हैं। शोधक औषधियाँ शरीर के दोषों का, वात, पित्त, कफ आदि का शोधन करती हैं और शामक औषधियाँ इन दोषों को शान्त करती हैं। शोधक औषधियों के कई विभाग किये जा सकते हैं, जैसे—

(क) जीर्ण-पित्त को शामक करनेवाली पौष्टिक शोधक—आँवला, गिलोय, गुग्गुल आदि।

(ख) रक्त को पुष्टि देनेवाली—पौष्टिक शोधक—लोह, शिलाजीत माक्षिक आदि.

(ग) उष्णवीर्य—पौष्टिक शोधक—संखिया, हरताल, हिंगुल, पारा, सोना आदि।

(घ) सारक शोधक—गन्धक, माजूफल, हरड़, पारा, आँवला, असगन्ध एरण्डमूल, अंकोल, कुँवार, त्रिफला, पुनर्नवा, गुग्गुल।

(च) खास रक्त-शोधक—अनन्तमूल, रक्त-रोहितक, मजीठ, चोपचीनी आदि।

(छ) खास उपदंश-शोधक—रसकपूर, पारा।

(ज) खास पित्त-शोधक—नौसादर, कडू।

१४. स्वेदल औषधियाँ—पसीना लानेवाली औषधियों को स्वेदल

औषधियाँ कहते हैं। क्षार, करञ्ज, अनन्तमूल, अङ्कोल, मोथा, माल-कंगनी, चाय, तुलसी, गरम पानी ये सब औषधियाँ पसीना लानेवाली हैं।

सामान्य-उपयोग—स्वेदल औषधियों का उपयोग प्रायः शरीर की गरमी को कम करने के लिये किया जाता है। जैसे ज्वर में, मर्म स्थानों की अन्तः-शोथ में, संधिवात में, जलोदर में, त्वचा के रूक्ष रहने में, इन औष-धियों के उपयोग में शरीर को शान्ति मिलती है।

१५. **शोथघ्न औषधियाँ**—खाने से अथवा बाहर लगाने से जिस दवाई के कारण शरीर की शोथ मिटती है, उसको 'शोथघ्न औषधियाँ' कहते हैं। अरसी, आँवला, क्विनीन, पाटला, कोड़ामारी, दशमूल, पुनर्नवा, शिरीष आदि।

सामान्य उपयोग—शोथ दो प्रकार से कम होती है—एक तो शरीर के अन्दर से दोषों को निकालने पर जैसे रेचक या मूत्रल औषधियों के खाने से। दूसरा वात-शोथ पर वातहर, पित्तशोथ पर पित्तहर औषधियों के लेप से शोथ कम हो जाती है। निर्बलता जन्य-शोथ हृदय-रक्त पाँव गालों पर असर करता है, यह शोथ औषधियों के अन्तः उपयोग से शान्त होता है।

१६. **मूत्रल औषधियाँ**—जो पदार्थ मूत्रपिण्ड के ऊपर प्रभाव करके मूत्र को अधिक मात्रा में प्रवाहण कराता है, उसको 'मूत्रल' कहते हैं। मूत्रल औषधियों के दो विभाग किये हुये हैं, एक मूत्रल और दूसरा मूत्रल और पौष्टिक।

(क) मूत्रल औषधियाँ—सब प्रकार के क्षार, अपामार्ग, कमलगट्टा, गरणी, पुनर्नवा, देवदारु, मोथा, नारियल, शीतलचीनी, तृणपंचमूत्र, पाषाण-भेद, दूध और पानी, चावल, ऊंटनी का दूध आदि।

(ख) पौष्टिक मूत्रल औषधियाँ—शिलाजीत, अपामार्ग, गोखरू, विदारीकन्द, शतावरी आदि।

सामान्य उपयोग—मूत्रल औषधियों के उप-योग से मूत्र विशेष रूप में आता है, इसलिये रोग के तीक्ष्ण रूप में अधिक उपयोगी हैं। पौष्टिक मूत्रल औषधियाँ जीर्ण व्याधि के ऊपर अधिक लाभ पहुँचाती हैं, वीर्य के दोषों को सुधारती हैं, शरीर में शक्ति पहुंचाती हैं। मूत्र के दाह एवं ज्वर में मूत्रल औषधियों का उपयोग विशेषतः किया जाता है।

कामलारोग में जिस प्रकार सारक औषधियों की जरूरत है, उसी प्रकार मूत्रल दवाइयों की भी आवश्यकता रहती है। इन दोनों प्रकार की औषधियों के एक साथ उपयोग करने से रक्त में बढ़ा हुआ पित्त शीघ्रता से शान्त हो जाता है। मूत्रल दवाइयों के उपयोग से जलोदर, शोथ आदि विकार शान्त हो जाते हैं।

१७. रेचक औषधियाँ—जो औषधियाँ मल को विशेष रूप में अधिक बार प्रवाहण करती है, उनको रेचक औषधियाँ कहते हैं। इस प्रकार की औषधियों के बहुत प्रकार हैं। कुछ औषधियाँ मल को पचाकर उसे बँधे हुये रूप में बाहर करती हैं, जैसे हरड़, छोटी हरड़, त्रिफला। कई दवाइयाँ कच्चे-पक्के मल को नीचे खींचकर दस्त कराती हैं। जैसे—अमलतास। कई औषधियाँ बँधे एवं सूखे हुये मल को बाहर करती हैं। जैसे—कुटु, दन्ती। कई औषधियाँ अधपके हुये या कच्चे सब प्रकार के मल को पानी के रूप में बाहर निकाल देती हैं, जैसे—निशोथ, इन्द्रायण, एरण्ड आदि। साधारणत: अन्तिम प्रकार की औषधियों को रेचक कहते हैं। रेचक औषधियाँ दो प्रकार की हैं; १—जिनके सेवन के पीछे मलबन्ध की शिकायत हो जाती है। इस प्रकार की औषधियाँ प्राय: तीक्ष्ण रेचक होती हैं। २—दूसरे प्रकार की औषधियाँ वे हैं, जिनके सेवन से पीछे मलबन्ध की शिकायत नहीं होती। जैसे—निशोथ और सनाय। साधारणत: विरेचक द्रव्यों में सबसे उत्तम और बिना किसी प्रकार के भय के बरतने योग्य विरेचन हरड़ है। हरड़ से उतरकर दूसरा नम्बर एरण्डतैल का है। गरम औषधियाँ जैसे—जायफल, इन्द्रायण आदि औषधियों को बहुत सँभलकर बरतना चाहिये।

१८. वामक औषधियाँ—आमाशय में स्थित पदार्थ को ऊर्ध्व मार्ग से बाहर करनेवाली औषधि को वामक औषधि कहते हैं। जैसे—मैनफल, नमक, राई, आक, अरीठे का पानी, नीला तुत्थ।

ये सब औषधियाँ वामक हैं।

सामान्य उपयोग—खाये हुये विष को, कफ को, अजीर्ण-रोग में मात्रा से अधिक खाये हुये एवं अनपच भोजन को बाहर करने के लिये वमन का उपयोग होता है। इनमें कुछ दवाइयाँ आमाशय में पहुँचते ही वमन करा देती हैं और कुछ शरीरस्थ रक्त में मिलने के पीछे प्रभाव करके वमन कराती हैं।

१९. कृमिघ्न औषधियाँ—इन दवाइयों के सेवन से या बाहर लगाने से शरीर के अन्दर के या बाहर के कृमि नष्ट होते हैं। कुछ औषधियाँ इस प्रकार की हैं, जिनके सेवन करने से आंत्रों के कृमि मर जाते हैं। कुछ इस प्रकार की हैं, जिनके बाहर लगाने से व्रण के, त्वचा के, बालों के कृमि मर जाते हैं और कुछ इस प्रकार की हैं, जिनके सेवन करने से शरीर में कृमि उत्पन्न हो नहीं होते। इन सबका विभाग इस प्रकार से है—

(क) पेट के कृमियों को मारनेवाली—कौंच, देवदाली, अजवाइन, ढाक, अनार के मूल की छाल, बायविडङ्ग, कालीजीरी, आखुपर्णी, ढाकपापड़ा।

(ख) कृमिघ्न और रेचक औषधियाँ—इन्द्रवारुण, कम्पिल्ल, रेवतचीनी।

(ग) कृमियों को रोकनेवाली औषधियाँ—इन्द्रजौ, चिरायता, नीम, हींग, बच, डेकामाली, अतीस और कड़वे पदार्थ।

(घ) व्रण में पड़े हुये कृमियों को मारनेवाली औषधियाँ—कपूर, गन्धक, नीम, पारा, हींग, पान।

सामान्य उपयोग—कृमिनाशक दवाइयों का अन्तः-उपयोग करने के साथ विरेचन का भी उपयोग करना चाहिये। कृमिघ्न दवाई लेकर अगले दिन अवश्य विरेचन औषधि लेनी चाहिये। कृमियों के अनेक भेद हैं। बालकों के अन्दर धागे की भाँति श्वेत। पतले कृमि होते हैं, बालकों में गोल कृमि होते हैं, इनके लिये अनार्य-चिकित्सा की 'सैन्टोनीन' दवाई अधिक उत्तम है। आर्य-चिकित्सा में इसके समान गुणवाली औषधि ढाकपापड़ा और कौंच का काँटा है।

२०. ऋतु लानेवाली औषधियाँ—कुछ औषधियाँ स्त्रियों के रुके हुये ऋतु को प्रवृत्त करती हैं। इनका असर गर्भाशय पर होता है। जैसे—सुहागा, नवसार, एलुवा, हीराबोल, आँवला, लोह, कुँवार, कपास का मूल।

२१. छींक लानेवाली औषधियाँ—नकछींकनी, तमाखू, नौसादर, तथा कलीचुना को मिलाकर सूँघना आदि। ये औषधियाँ नाक के अन्दर की श्लेष्म झिल्ली पर जाकर इनमें से रस का स्रावण करती हैं। इस रस के क्षरण से शिर का दर्द कम पड़ जाता है।

२२. स्नायु शैथिल्य-कृत दवाइयाँ—जो दवाइयाँ शरीर के अन्दर की खिँची हुई नसों को और संकुचित अवयवों को ढीला करती हैं, उन औषधियों का इस वर्ग में समावेश होता है, जैसे अफीम, .खुरासानी, अजवायन, भाँग, ताम्र-भस्म, तमाखू, धतूरा, हींग कस्तूरी, सोंठ, मिर्च, पिप्पली, दालचीनी, इलायची आदि वातहर औषधियाँ उन्माद, अपस्मार, हिस्टीरिया, आंचको, धनुर्वात, दमा तथा मस्तिष्क के रोगों में बरती जाती हैं।

२३. निद्रा लानेवाली दवाइयाँ—अफीम, भाँग आदि दवाइयाँ रोगी की पीड़ा को शान्त करने के साथ-साथ नींद भी लाती हैं। इन औषधियों के सेवन करने से मस्तिष्क के ज्ञान-तन्तु शान्त हो जाते हैं। उनकी संज्ञा थोड़े समय के लिये नष्ट हो जाती है। भाँग के देने से शान्ति की नींद नहीं आती, परन्तु रोगी भ्रम में पड़ जाता है। इन औषधियों का प्रभाव जबतक रोगी के मस्तिष्क पर बना रहता है, वह नींद या भ्रम में पड़ा रहता है।

इनके अतिरिक्त 'छोटा चान्दा' आदि; इस प्रकार की औषधियाँ भी है, जो अनिद्रा-रोग में विशेष बरती जाती हैं।

२४. कटु पौष्टिक औषधियाँ—कड़ुवी और पौष्टिक होने के कारण इनको कटु पौष्टिक कहते हैं। इस वर्ग की औषधियाँ अतीस, वासा, चिरायता, कौंच, पाटला आदि हैं।

सामान्य उपयोग—शरीर के अन्दर थोड़ा-थोड़ा ज्वर रहता हो, पुराना ज्वर हो, निर्बलता हो, तो इस वर्ग की दवाइयाँ लाभ करती हैं। साधारण ज्वर की निर्बलता को दूर करके शरीर को शक्ति देती हैं, जठराग्नि को प्रदीप्त करती हैं।

२५. पौष्टिक औषधियाँ—जो औषधियाँ शरीर के अन्दर के धातुओं का पोषण करके शरीर को पुष्ट तथा शक्तिशाली बनाती हैं, उनका इन शीर्षक में समावेश किया जाता है। इस शीर्षक के विभाग निम्न प्रकार से किये गये हैं—

(क) मस्तिष्क को पुष्ट करनेवाली—ब्राह्मी, शङ्खावली, पेठा, शतावरी, विदारी, वंशलोचन, दूध, बादाम, बलदाना, असन्ध, सोना, मोती, अभ्रक-भस्म।

(ख) रक्त को पुष्ट करनेवाली—आँवला, लोह, गिलोय, हीरा-कसीस, स्वर्णमाक्षिक-भस्म, मोती, सीप, प्रवाल।

(ग) जठराग्नि को पुष्टि देनेवाली औषधियाँ—कटु-पौष्टिक औषधियाँ, जैसे चिरायता, नीम, कुचला, अतीस, गिलोय आदि।

२६. रसायन औषधियाँ—जिन औषधियों के सेवन से रोगों से बचने की प्रतिशक्ति और बुढ़ापे को दूर रखने की सामर्थ्य प्राप्त होती है, उन सबका समावेश इस शीर्षक के नीचे किया जाता है। जैसे—मोटी हरड़, आँवला, गुग्गुल, गिलोय, त्रिफला, चित्रकमूल, नीम, शिलाजीत आदि।

सामान्य उपयोग—इन औषधियों के उचित उपयोग से शरीर नीरोगी बनता है, आयुष्य बढ़ती है, बल, मेधा, कान्ति प्रदीप्त होती हैं। आर्य-चिकित्सा में अभयाम्लिक अवलेह, च्यवन-प्राश, योगराज गुग्गुल, चन्द्रप्रभा, आरोग्य-वर्धनी, ज्वरहर रसायन, बाल-गुटिका, पारद-भस्म आदि औषधियाँ इस वर्ग की दवाइयाँ हैं। इन औषधियों का उपयोग कोई भी व्यक्ति सुगमता से कर सकता है।

२७. धातु-वर्द्धक औषधियाँ—जो औषधियाँ वीर्य की वृद्धि करती हैं, वीर्य को गाढ़ा बनाती हैं, उनको धातु-वर्द्धक या वीर्य-वर्द्धक औषधियाँ कहते हैं। शतावरी, असगन्ध, बलदाना, गोखरू, गिलोय, उर्द की दाल के लड्डू, कौंच, दूध, शर्करा, घी, शहद आदि इस वर्ग के उदाहरण हैं।

सामान्य उपयोग—इन औषधियों को दूध तथा शर्करा के साथ उबालकर अथवा इसका पाक करके पीने से लाभ होता है। ये वस्तुयें गरम होती हैं, इसलिये इनका उपयोग शीत ऋतु में करना चाहिये।

२८. वाजीकरण औषधियाँ—वाजी शब्द का अर्थ घोड़ा है। इन औषधियों के सेवन से निर्बल मनुष्य भी स्त्री-सहयोग में घोड़े की भाँति शक्तिशाली बन जाता है, इसलिये इनको वाजीकरण कहते हैं। इस वर्ग में कौंच, असगन्ध, सालमपाक, माषादि मोदक, सोना या पारे के समास हैं।

सामान्य उपयोग—काम-शक्ति की वृद्धि की इच्छा रखनेवाले मनुष्यों को ये औषधियाँ पाक के रूप में खाना चाहिये। कई आदमी अफीम आदि का उपयोग करते हैं। ये वस्तुयें शरीर को विशेषतः हानि पहुँचाती हैं।

सिद्धान्त-वर्ग

लड्डू— नारियों के ओठ के समान मीठे, उठे हुये स्तनों के समान गोल, मित्रों के चरित्र के समान स्नेह से भरे हुये लड्डू आँखों को अच्छे लगते हैं।

कलाकंद—दूध को उबालकर खोवा बनाना चाहिये। फिर निर्मल खाँड़ की चासनी में मिलाकर जब वह जमने योग्य हो जाय, तो परात में लेकर जमा लेना चाहिये। इसका नाम है 'कलाकन्द'।

दुग्धपाक—जिसके आगे सब प्रकार के भोजन मिट्टी के समान हैं, जो भाग्य बिना नहीं मिलता और जो चाँदनी के साथ भी सफेदी से तुलना करता है, उस दुग्धपाक को खाना चाहिये।

जलेबी—जलेबियाँ बढ़े हुये पित्त को, वायु को नष्ट करती हैं, दिल को प्रसन्न करती हैं। ये रस में मधुर होती हैं, अरुचि को नष्ट करती हैं।

वासोदिका—जिसके खाने पर और भी खाने की चाह बनी रहती है, स्त्रियों की आँख के समान जिसको लोग चाहते हैं, जिसमें से नवीन गन्ध आती है, इस प्रकार की 'वासौदिका' किसको अच्छी नहीं लगती ?

बड़े—हींग, जीरा, आद्रक, लौंग, दालचीनी आदि से बनाकर छाछ में डुबोकर खाने से बड़े-बड़े स्वाद लगते हैं, इनको देखकर देवताओं के भी मुँह से लार गिर पड़ती है।

पापड़—नमक, मिर्च, हल्दी, हींग, धनिया, जीरा, इनको बेसन के साथ पानी में घोलकर पकाना चाहिये। फिर घी से चिकनी की हुई थाली में जमाना चाहिये। इनको दही में मिलाकर खाने से पित्त का नाश होता है।

भस्म-वर्ग

धातु-उपधातु, रत्न,आदि को आग में जलाकर भस्म बनाई जाती है। रासायनिक दृष्टि से यह "औक्साइड" बनते हैं। रासायनिक विज्ञान इस भस्म-वर्ग में सफल नहीं होता। उदाहरण के लिये— कज्जली, पर्पटी,रस-सिन्दूर और मकरध्वज, शिंगरफ ये सब वस्तुयें पारद गन्धित हैं। परन्तु क्रियाओं में इनके भेद हैं। इसी प्रकार प्रवाल, मुक्ता, सीप आदि सब वस्तुयें खटिक के समास हैं। परन्तु इनके गुणों में भेद है। इसलिये रासायनिक विज्ञान इसमें काम नहीं देता।

अभ्रक-भस्म—काले, भारवाले तथा सुख-निर्मोच्य पत्रोंवाले अभ्रक को लेकर अग्नि में तपाये। जब वह लाल हो जाय, तब उसको दूध या गोमूत्र में बुझाता जाय। इस प्रकार बार-बार करके अभ्रक के सब पत्ते टुकड़े-टुकड़े हो जायँगे। इनको पुनः एक दिन-रात तक किसी अम्ल में वस्तु जैसे काञ्जी या बिजौरे नीबू के रस में घोटकर रखना चाहिये। इसके पश्चात् अभ्रक से चतुर्थांश शालि-धान्य लेकर दोनों कम्बल में बाँधकर पानी के अन्दर भिगो देना चाहिये। तीन दिन के पश्चात् इनको हाथों से रगड़ना चाहिये। इससे कम्बल में से छानकर रेत के समान बारीक अभ्रक-चूर्ण निकल आयेगा। कोई-कोई चिकित्सक पानी के स्थान में भी कांजी का उपयोग करते हैं। इस प्रक्रिया को 'धान्याभ्रक विधि' कहते हैं।

जिस वस्तु का जितना बारीक चूर्ण होगा, उतनी ही उसके मारण में सुगमता रहती है। इसीसे अभ्रक जैसे कठोर पत्थर को उपरोक्त विधि से बारीक चूर्ण बना लेते हैं। इस चूर्ण को भिन्न २ वस्तुओं के साथ रगड़कर टिकिया बनाकर शराव-सम्पुट में रखकर भस्म किया जाता है। अभ्रक को भस्म बना लेने के लिये धान्याभ्रक को गोमूत्र, कसौंदी, और आकड़े का दूध, घीक्वार, नागरमोथा और बड़ की जटायें इनसे सात-सात भावनायें देकर ४० पुटों में उत्तम भस्म बन जाती है। इस भस्म का रंग पके हुये घड़े के समान लाल होता है।

अभ्रक-भस्म को और अधिक उत्कृष्ट बनाने के लिये इसका 'अमृतीकरण' किया जाता है। अर्थात्—त्रिफला का काढ़ा १६ तोले, गौ का घृत ८ तोले, अभ्रक-भस्म १० तोले; इन सबको लोहे के पात्र में रखकर धीमी

आँच पर पकाते हैं। जब पाक समाप्त हो जाता है, तब अभ्रक का चूर्ण करके सब रोगों में बरता जाता है। अभ्रक-भस्म के अन्दर चन्द्रिका नहीं रहनी चाहिये। इस चन्द्रिका को नष्ट करने के लिये लोग शोरे का पुट देते हैं। शोरे के पुट से अभ्रक की चन्द्रिका का नाश तो अवश्य हो जाता है, साथ ही औषधि हीन-वीर्य बन जाती है। मात्रा १ से ३ रत्ती।

कौड़ी की भस्म—बढ़िया, भारवाली, पीली कौड़ियों को लेकर इनको किसी अम्ल वस्तु में दोलायंत्र-विधि से शुद्ध करना चाहिये। पीछे से इनको शराव-सम्पुट में रखकर भस्म बना लेनी चाहिये। दो-तीन पुटों में चन्द्रिका के समान श्वेत भस्म बन जाती है। मात्रा १ से २ वाल

यशद-भस्म—यशद को कड़छी में पिघलाकर, इसको गाय के दूध में सात बार अथवा चूने के पानी में दस बार बुझा लेना चाहिये। प्रत्येक बार दूध या चूने का पानी नया काम में लाना चाहिये। इसकी भस्म बनाने के लिये शुद्ध यशद को लोहे की कड़ाही में चढ़ाकर तीव्र अग्नि से पिघलाना चाहिये। साथ में नीम की डण्डी से चलाते जाना चाहिये। जब सम्पूर्ण राख बन जाय, तो इस राख से चौथाई हरताल मिलाकर घीक्वार, त्रिफला-क्वाथ, भाँगरे के काढ़े का सात-सात भावनायें देकर गजपुट देते जाना चाहिये। अन्त में पंचामृत (गाय का दूध, दधि, घृत, शहद और शर्करा) की भावना देकर गजपुट की आँच देनी चाहिये। मात्रा १ से २ रत्ती।

ताम्र-भस्म—ताँबे के बारीक चूर्ण करके अथवा इसके पतले पत्रों को गरम करके चांगेरी के स्वरस में सात बार बुझाये। अथवा निर्गुण्डी के स्वरस में एक दिन-रात गरम करता रहे। इससे ताम्र का शोधन हो जाता है। इस शुद्ध ताम्र की भस्म बनाने के लिये पारद और गन्धक की कज्जली बनाकर इसको नीबू के रस से रगड़कर ताम्र-पत्रों पर लपेट देना चाहिये। पीछे से इन ताम्र-पत्रों को गजपुट में रखकर भस्म करना चाहिये। इस प्रकार ७ बार कज्जली लगाकर, शराव-सम्पुट में रखकर पुट देने से काले रंग की भस्म बन जाती है। कज्जली के अभाव में हिंगुल से भी काम लिया जा सकता है। इस भस्म की परीक्षा करने के लिये भस्म को दही में डालकर रख देना चाहिये। यदि भस्म अपूर्ण (कच्ची) होगी या इसमें ताम्र का कुछ भाग बचा होगा, तो दही में नीला या हरा रंग आ जायगा। अशुद्ध भस्म विष के समान है।

ताम्र-भस्म की दूसरी विधि यह है कि शुद्ध ताम्र को नीबू के रस में घोंटकर साफ कर लेना चाहिये। और फिर धोकर इसमें से अम्लता का अंश निकाल देना चाहिये। पीछे से इन पत्रों में चौथाई भाग शुद्ध पारा मिलाकर रगड़ना चाहिये, फिर दोनों के वज़न से दुगुनी गन्धक मिलाकर नीबू के रस के साथ गोला बनाना चाहिये। इस गोले के ऊपर लाल कनेर की मूल अथवा चांगेरी या पुनर्नवा-मूल का कल्क पानी के साथ मिलाकर एक अंगुल मोटा लगा देना चाहिये। इस गोले को चौड़ी मुँहवाली हाँड़ी में रखकर चारोंओर रेत भर देनी चाहिये। हाँड़ी के मुख को शराव से बन्द करके नमक के योग से बनी कपड़-मिट्टी से दोनों की सन्धि को जोड़ देना चाहिये। पीछे से इस हाँड़ी को चूल्हे पर चढ़ाकर मृदु, मध्यम और तीक्ष्ण अग्नि क्रम से बारह घंटे तक देनी चाहिये। अग्नि देने के पीछे हाँड़ी को चूल्हे पर ठण्डी होने देना चाहिये। इस गोले को हाँड़ी में से निकालकर सूरन के रस में घोटकर सात बार पुट देना चाहिये। इस प्रकार पुट देने से ताम्र की उत्तम भस्म तैयार हो जाती है। इस भस्म को अमृतीकरण करने के लिये अम्ल रस से एक दिन तक रगड़कर सूरनकन्द के अन्दर गोला बनाकर रख देनी चाहिये। कन्द पर कपड़-मिट्टी करके इसे धूप में सुखाना चाहिये। पीछे से गजपुट की एक आँच देने से यह उत्तम भस्म बन जायगी। इसमें किसी प्रकार के वमन, भ्रम, विरेचन आदि नहीं होते। मात्रा आधा से १ रत्ती।

नाग-भस्म—सीसक को पिघलाकर होशियारी के साथ सिन्दुवार के काढ़े में सात बार बुझाना चाहिये। सीसक और वङ्ग पानी आदि द्रव पदार्थ में छोड़ने से उछलकर ऊपर आते हैं। इसके लिये एक दृढ़ लोहे के वर्त्तन में काढ़े को रखकर उसका मुख चक्की के पाट आदि से ढाँप देना चाहिये। इससे सीसा उछलकर बाहर नहीं आयेगा। इस प्रकार से शुद्ध सीसक की भस्म करने के लिये सीसक को लोहे की कड़ाही में पिघला-कर उसमें पिप्पल की छाल का चूर्ण मिलाते जाना चाहिये। साथ-साथ लोहे की कड़छी से चलाते जाना चाहिये। जब सबकी राख बन जाय, तब इसको एक शरावे से ढाँपकर तीक्ष्ण अग्नि देनी चाहिये। इससे भस्म का रङ्ग लाल हो जायगा। इसके पश्चात् ठंडी करके पानी से अच्छी प्रकार धोना चाहिये। इससे भस्म में से क्षार का अंश निकल जायगा। इस भस्म के समान शुद्ध

मनःसिल मिलाकर नीबू के पानी से रगड़ते जाना चाहिये। फिर सुखाकर गजपुट देना चाहिये। इस प्रकार तीन-चार पुट देने से काले रंग की भस्म बन जाती है। प्रत्येक पुट देते समय भस्म के बराबर मनःसिल मिलानी चाहिये।

दूसरी विधि यह है कि सीसक (शुद्ध) को कड़ाही में पिघलाकर सीसक के समान शुद्ध मनःसिल मिला देना चाहिये। जब सारी भस्म हो जाय, तब उतारकर भस्म के समान शुद्ध गन्धक मिलाकर नीबू के पानी से खरल करके तीन-चार पुट देवे।

तीसरी विधि यह है कि शुद्ध सीसक को पिघलाकर उसमें यवक्षार मिलाता जाय और जबतक सबकी भस्म न हो, उसमें बार-बार यवक्षार मिलाता जाय। जब आग देते हुये भस्म का रंग लाल हो जाय, तब भस्म को ठंडा होने देना चाहिये। पोछे से पानी से धोकर क्षार का सब भाग निकाल देना चाहिये। फिर कड़ाही में डालकर मीठी आँच से गरम करना चाहिये। इस प्रकार करने से सीसक की पीतवर्ण भस्म बनती है। मात्रा-१से ३ रत्ती।

वंग-भस्म—वंग के शोधन करने के लिये इसे पिघलाकर चूने के पानी में या हल्दी मिले हुये निर्गुण्डी-काथ में सात बार बुझानी चाहिये। वंग भी सीसक की तरह उछलता है, अतः सावधानी रखनी चाहिये। इस प्रकार से शुद्ध वंग की भस्म बनाने के लिये वंग को कड़ाही में पिघलाकर उसमें हल्दी का चूर्ण, अजवायन का चूर्ण, जीरा, इमली की छाल, अपामार्ग और पीपल की छाल का चूर्ण मिलाते जाना चाहिये। इस प्रकार मिलाने से पारे की भस्म बन जायगी। जब सबकी भस्म हो जाय, तब तीव्र आँच देनी चाहिये, इससे भस्म का रंग श्वेत हो जायगा।

दूसरी विधि यह है कि वङ्ग को पिघलाकर इसमें वङ्ग से चौथाई पारा मिलाना चाहिये। फिर इसमें थोड़ी-थोड़ी हरताल मिलाते जाना चाहिये। साथ में जंगली कपास के डण्डे से चलाते जाना चाहिये। जबतक भस्म न बने, तबतक हरताल मिलाते जाना चाहिये। भस्म होने पर शरावे से ढाँपकर तीव्र अग्नि देनी चाहिये।

तीसरी विधि यह है कि वंग को पिघलाकर इसमें चौथाई पारा मिला देना चाहिये। इसमें वंग से आधा हरताल मिलाकर खरल में पीसना

चाहिये। जब बारीक चूर्ण बन जाय, तब उसमें आक का दूध डालकर रगड़े। इसको एकत्रित कर पिप्पल की छाल से बने क्षार के मध्य में रखकर छोटा-सा पुट देना चाहिये। इस प्रकार से दो-तीन पुट देने पर उत्तम भस्म बन जाती है। मात्रा १ से ३ रत्ती।

प्रवाल-भस्म—प्रवाल को शुद्ध करने के लिये जयन्ती या सर्जिकाक्षार युक्त जल में अथवा चौलाई के जल में दोलायंत्र-विधि से पाक करना चाहिये। शुद्ध प्रवाल की भस्म करने के लिये, प्रवाल का चूर्ण करके, आक के दूध से या गाय के दूध से अथवा घीकार के रस से रगड़कर तीन-चार पुट देने पर श्वेत भस्म बनती है। इसकी पिष्टि बनाने के लिये इसको गुलाबजल में घोटकर पिष्टि बना लेते हैं। मात्रा १ से ६ रत्ती।

मण्डूर-भस्म—सौ वर्ष के पुराने मण्डूर को लेकर बहेड़े के कोयलों में (अभाव में पत्थरों के कोयलों में) तपाकर सात बार गोमूत्र में भिगोना चाहिये। इस प्रकार से शोधित मण्डूर का चूर्ण बनाकर इसको गोमूत्र या त्रिफला-क्वाथ के साथ रगड़कर तीस पुट देने से उत्तम लाल रंग की भस्म बनती है। मात्रा १ से २ रत्ती।

चाँदी की भस्म—चाँदी को पिघलाकर इसको तीन बार अगस्त के रस में बुझाना चाहिये। इस प्रकार करने से चाँदी का शोधन हो जाता है। इसकी भस्म बनाने के लिये चाँदी के बराबर शुद्ध पारा लेकर खरल में मर्दन करना चाहिये। जब पिष्टि बन जाय, तब नीबू के रस में रगड़कर एक दिन के पीछे पानी से भली प्रकार धो देना चाहिये, जिससे अम्ल का भाग जाता रहे। इसके पीछे इसमें चाँदी के समान गन्धक और हरताल मिलाकर खूब बारीक बना ले। इसको शराव सम्पुट में रखकर छोटा पुट देना चाहिये। इस प्रकार दो-तीन पुट देने से उत्तम काले रंग की भस्म बनती है। २—पारा, गन्धक तथा इन दोनों के बराबर हरताल लेकर इनकी घीक्वार के रस में पिष्टि बना लेनी चाहिये। जब पिष्टि तैयार हो जाय, तब इसको चाँदी के वरकों पर लपेटकर शराव सम्पुट में रखकर भस्म बनानी चाहिये। इस प्रकार दो-तीन पुट देने से उत्तम भस्म तैयार हो जाती है। ३—चाँदी के वरकों को कैंची से काटकर इनके बराबर पारा और गन्धक मिला देना चाहिये। पीछे कुमारी

के स्वरस से घोटकर पिष्टि बनाकर शराव सम्पुट में रखकर भस्म बना लेनी चाहिये। ४—चाँदी के वरकों से आधी स्वर्णमाक्षिक भस्म लेकर आक के दूध में पीसकर बारीक चूर्ण बना लेना चाहिये। इसको धूप में सुखाकर पीछे से शराव सम्पुट में रखकर पुट देना चाहिये। एक पुट के अतिरिक्त किसी भी अगले पुट में स्वर्णमाक्षिक का योग नहीं करना चाहिये—यह यहाँ पर रहस्य है। कोई-कोई चिकित्सक माक्षिक भस्म के साथ हिंगुल को मिलाकर पुट देते हैं। मात्रा—१ से ३ रत्ती।

लोहा-भस्म—तीक्ष्ण लोह के चूर्ण को अग्नि में तपाकर त्रिफला के काढ़े में, या केले की जड़ के स्वरस में या गोमूत्र में सात बार बुझाने से शोधन हो जाता है। लोहे की भस्म बनाने के लिये शुद्ध लोह के समान हिंगुल लेकर कुंवार के रस के साथ मर्दन करना चाहिये। धूप में सुखाकर गजपुट देना चाहिये। इस प्रकार ७-८ पुट देने में उत्तम भस्म बन जाती है। प्रत्येक बार नया हिंगुल मिलाना चाहिये। हिंगुल की मात्रा लोह से चतुर्थांश होनी चाहिये। २—लोह-चूर्ण को नीबू के स्वरस से रगड़कर चक्रिका बना लेनी चाहिये। इनको शराव सम्पुट में रखकर पुट देना चाहिये। इस प्रकार ५० पुट देने से लोहे की उत्तम भस्म बन जाती है। ३—शुद्ध लोह-चूर्ण को लोहे के सुदृढ़ खरल में पीसकर इसके समान शुद्ध मनःसिल मिलानी चाहिये। इनको सिम्बल की जड़ के रस से रगड़कर बारीक चूर्ण बना लेना चाहिये। इस चूर्ण को धूप में सुखाकर शराव सम्पुट में रखकर भस्म बना लें। जबतक भस्म सूक्ष्म न हो, तबतक मनःसिल का योग करते जाना चाहिये। ४—शुद्ध लोह को गोमूत्र या त्रिफला के काढ़े के साथ रगड़कर ५० पुट देने से उत्तम भस्म बन जाती है। ५—शुद्ध लोह के चतुर्थांश माक्षिक-भस्म मिलाकर नीबू के स्वरस से रगड़कर सूक्ष्म चूर्ण करना चाहिये। इसके पीछे इस चूर्ण को गजपुट में रखकर भस्म करनी चाहिये। प्रत्येक पुट में स्वर्णमाक्षिक-भस्म का योग करते जाना चाहिये।

इस लोहे को निरुत्थीकरण करने के लिये मृत लोह, गोघृत, शुद्ध-गन्धक इनको घी-कार के रस में पीसकर शुष्क चूर्ण करना चाहिये। इसके पीछे गजपुट में भस्म करने से लोह की निरुत्थी-भस्म बन जाती है। मात्रा १ से ३ रत्ती।

शङ्ख-भस्म—शङ्ख के टुकड़ों का शोधन करने के लिये इनको

दोलायंत्र-विधि से जम्बीर-रस में या जयन्ती के स्वरस में अथवा चौलाई के द्रव के साथ या काञ्जी में पकाना चाहिये। पीछे से गरम पानी द्वारा भली प्रकार धो देना चाहिये। इसकी भस्म बनाने के लिये शोधित शंख को शराव सम्पुट में रखकर गजपुट देना चाहिये। इस प्रकार एक-दो पुट देने में उत्तम भस्म बन जाती है।

शृङ्गभस्म—सावरशृंग के छोटे-छोटे टुकड़े करके इसको तीन रात्रि तक गोमूत्र में भिगोकर रखना चाहिये। पीछे से इसको कोयलों के अन्दर खुला जलाने से श्वेत भस्म बन जाती है। इसकी भस्म आक के दूध के सहयोग से भी बनाते हैं। यह भस्म श्वास या पार्श्व-शूल में बहुत लाभदायक है।

शुक्ति-भस्म—शुक्तियों को (जिनमें मोती रहता है) जयन्ती के स्वरस में या किसी अम्ल में दोलायन्त्र-विधि से परिपाक करके शोधन कर लेना चाहिये। पीछे से शराव सम्पुट में रखकर भस्म बना लेनी चाहिये। मात्रा १ रत्ती।

सुवर्ण-भस्म—स्वर्ण के वर्क बनाकर इनको आग में तपाकर कचनार की छाल के स्वरस में या काढ़े में ३ बार बुझाने से स्वर्ण का शोधन होता है। साधारणतः बाजार में जो नैशनल बैङ्क का सोना मिलता है, उसको पत्र बनाकर काम में लाये जा सकते हैं।

मारण—स्वर्ण के समान पारा लेकर इनको नीबू के रस में रगड़कर गोला बना लेना चाहिये। इस गोले के बराबर शुद्ध गन्धक लेकर आधी गन्धक नीचे रखकर उसमें गोला रख देना चाहिये, और आधी गन्धक ऊपर रखकर शराव सम्पुट में पुट देना चाहिये। इस प्रकार १४ पुट देने में भस्म बन जाती है। २—स्वर्ण-पत्रों पर कबूतर या कुक्कुट की विष्टा का लेप करके (एक अंगुल मोटा) इन पत्रों के समान गन्धक लेकर उसके बीच में इन पत्रों को रखकर शराव सम्पुट विधि से ३० गोठों की आँच में भस्म बनानी चाहिये। इस प्रकार दस पुट आने पर एक महापुट देना चाहिये। ३—स्वर्ण को पिघलाकर उसमें स्वर्ण का सोलहवाँ भाग सीसा मिलाकर नीबू के स्वरस से भावना देकर उपरोक्त विधि से गन्धक में रखकर पुट देना चाहिये। ४—स्वर्ण-पत्रों के समान शुद्ध पारद लेकर नीबू के स्वरस से रगड़ना चाहिये। पीछे से पानी द्वारा धोकर सब अम्ल भाग निकाल देना चाहिये। पीछे स्वर्ण से हिंगुल, गन्धक, मनःसिल और नौसादर प्रत्येक स्वर्ण से चौथाई मिलाकर

नीबू के रस से मर्दन करना चाहिये। इस पिष्ठि को पुट देने से सुगमता से भस्म बन जाती है। मात्रा १ से २ रत्ती।

स्वर्णमाक्षिक-भस्म—माक्षिक का शोधन करने के लिये इसको कूटकर बारीक चूर्ण बना लेना चाहिये। इस चूर्ण को कड़ाही में रखकर नीबू का स्वरस डालकर करछी से चलाते जाना चाहिये। जब इसका रंग लाल हो जाय, तब समझना चाहिये कि शुद्ध होगई। अथवा गरम करके त्रिफला-क्वाथ में बुझाना चाहिये। इसको भस्म बनाने के लिये शोधित माक्षिक को नीबू के रस से रगड़कर पुट देना चाहिये। इससे दस-बारह पुटों में उत्तम भस्म बन जाता है। २—शुद्ध माक्षिक के समान गन्धक मिलाकर इसको नीबू के रस में रगड़कर शराव-सम्पुट में रखकर भस्म करनी चाहिये। इस प्रकार ५ पुट देने से उत्तम भस्म बन जाती है। ३—शोधित माक्षिक से आठवाँ हिस्सा हिंगुल मिलाकर नीबू के स्वरस से भावना देकर पुट देना चाहिये। इस प्रकार आठ पुटों में उत्तम भस्म बन जाता है। ४- स्वर्ण-माक्षिक तीन भाग और सेंधानमक एक भाग इनको लोहे की करछी में नीबू के स्वरस में मिलाकर आग पर गरम करना चाहिये। इस प्रकार गरम करने से इसका रंग लाल हो जायगा। इसको कुलत्थी कषाय से, एरण्ड तैल से तक्र से या बकरी के मूत्र से रगड़कर पुट देने से भस्म बन जाती है। कोई-कोई विद्वान् पुट न देकर कड़ाही में रखकर गरम कर लेते हैं। स्वर्ण-माक्षिक की भस्म लाल रंग की बनती है। ५—स्वर्ण-भस्म ४ भाग और गन्धक एक भाग इन दोनों को एरण्ड के तैल में घोटकर शराव-सम्पुट में रखकर पुट देने से सिन्दूर के रंग की भस्म बनती है। मात्रा १ से ३ रत्ती।

हरताल-भस्म—पीली तवकी हरताल को नीबू के स्वरस में या कूष्मांड के पानी में दोलायंत्र-विधि से पाक करना चाहिये। इसकी भस्म बनाने के लिये पुनर्नवा के रस से रगड़कर इसका गोला बना लेना चाहिये। इस गोले को पुनर्नवा के क्षार के बीच में रखकर भस्मयंत्र-विधि से पाक करना चाहिये। इसी प्रकार पिप्पल की छाल के कषाय से इक्कीस बार भावना देना चाहिये। इसको पिप्पल की छाल की राख में रखकर भस्मयन्त्र-विधि से भस्म बनानी चाहिये। २—शुद्ध हरताल के बराबर शुक्ति की भस्म लेकर कुमारी स्वरस में रगड़ना चाहिये। इसकी चक्रिका बनाकर धूप मे सुखा लेना चाहिये।

इसको शराव-सम्पुट में रखकर गजपुट की आँच देनी चाहिये। इस प्रकार से इसकी उत्तम भस्म बन जाती है। हरताल, संखिया, मनःशिल आदि के भस्म या अन्य दवाई बनाते समय आँख, मुँह आदि को धुँयें से बचाना चाहिये। मात्रा आधी रत्ती से १ रत्ती।

रत्न—नौ रत्न हैं। जैसे—हीरा, माणिक्य, मौक्तिक, पुष्पराज, नील, तार्क्ष्य, वैडूर्य, गोमेद और प्रवाल। ज्योतिष-शास्त्र में नौ ग्रह हैं। प्रत्येक ग्रह किसी न किसी रत्न से सम्बन्ध रखता है। जैसे शनि ग्रह का सम्बन्ध नील के साथ है।

हीरा—इसका शोधन करने के लिये कुलत्थी के काढ़े में अथवा आक के दूध में दोलायन्त्र से पाक करे। अथवा हीरे को अग्नि में तपाकर शुद्ध पारे में १०० बार बुझाना चाहिये। इस प्रकार करने से हीरे का चूर्ण सुगमता से हो जाता है। इसकी भस्म बनाने के लिये शुद्ध हीरे के बराबर शुद्ध पारा लेकर उसमें मनःसिल, गन्धक इनको बराबर मिलाकर शराव-सम्पुट के अन्दर गजपुट देना चाहिये। इस प्रकार पुट देते रहना चाहिये, जबतक भस्म न बन जाय। दूसरे पुटों में पारा नहीं मिलाना चाहिये। साधारणतः चौदह पुटों में भस्म बन जाती है।

माणिक्य—नीबू स्वरस में दोलायन्त्र-विधि से पाक करने पर माणिक्य का शोधन हो जाता है। इसकी भस्म बनाने के लिये लकुच के पानी से पीसकर पुट देने से भस्म हो जाती है।

मुक्ता—जयन्ती के स्वरस में दोलायन्त्र विधि से पाक करने पर शुद्ध हो जाता है। इसकी भस्म करने के लिये गाय के दूध से अथवा गुलाबजल से रगड़कर पुट देनी चाहिये। इस प्रकार तीन पुटों में उत्तम भस्म बन जाती है।

पुष्पराज—कुलत्थी के काढ़े में, काँजी में दोलायन्त्र-विधि से पाक करने पर शुद्ध होता है। इसकी भस्म माणिक्य की भाँति बनानी चाहिये।

नील—नीली के स्वरस में दोलायन्त्र-विधि से शोधन करना चाहिये। और इसकी भस्म-माणिक्य के समान बनानी चाहिये।

मरकत—गोमूत्र में दोलायन्त्र-विधि से शुद्ध करके माणिक्य-भस्म की भाँति इसकी भी भस्म करनी चाहिये।

रस

अन्त्र-शोषान्तकरस—शिला के योग से मारी हुई सीसक-भस्म ७ तोला, कान्तपाषाण-भस्म २ तोला, स्वर्ण, यशद, अभ्र, ताम्र प्रत्येक एक-एक तोला, सबकी आधी गन्धक मिलाकर घीक्वार के रस से मर्दन करना चाहिये। फिर तीन वराहपुट में पकाना चाहिये।

उपयोग—ग्रहणी-रोग, यक्ष्मा, अतिसार में उपयोगी है।

अग्नि-रस—शुद्ध पारा १ भाग, गन्धक २ भाग, पिप्पली ३ भाग, हरड़ ४ भाग, बहेड़ा ५ भाग और बाँस के पत्ते ६ भाग। पारा और गन्धक की कज्जली बनाकर शेष वस्तुओं का चूर्ण इसमें मिलाकर २१ दिन तक बबूल की छाल के काढ़े की भावना देनी चाहिये।

उपयोग—कास, क्षय, श्वास, कफ आदि में। अनुपान—शहद।

अग्निकुमार-रस— शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, टंकण, कौड़ी, सर्जक्षार, पिप्पली, सोंठ प्रत्येक एक-एक तोला, वत्सनाभ ३ तोला, मिर्च ८ तोला—इन सबका चूर्ण करके एक दिन तक नीबू के स्वरस में मर्दन करके रत्ती-रत्ती की गोली बना लेनी चाहिये।

उपयोग—कॉलरा-जन्य-शूल, अजीर्ण, अग्निमान्द्य, उदरशूल, पेट की वायु आदि में उपयोगी है।

अग्नितुण्डी—पारा, गन्धक, विष, अजवाइन, हरीतकी, आमलकी, बहेड़ा, सर्जक्षार, यवक्षार, चित्रकमूल, सैन्धव नमक, विडंग, काच लवण, सोहागे के खील, प्रत्येक समभाग, इन सबके बराबर शुद्ध कुचला। इनको नीबू के रस से मर्दन करके मिर्च के समान गोली बनानी चाहिये।

उपयोग—अजीर्ण, ग्रहणी, अम्लपित्त, शूल, मुख की विरसता में उपयोगी है।

अनुपान—मोथे का रस, शीतल जल, कर्पूर जल, कोष्ठ-बद्ध की अवस्था में त्रिफला जल के साथ। यह औषधि बच्चों के लिये उपयोगी नहीं है।

अभयनृसिंह-रस—हिंगुल, विष, त्रिकटु, जीरा, सोहागा, गन्धक, अभ्रक और पारद प्रत्येक समभाग और सबके बराबर अफ़ीम। इनको नीबू के रस में मर्दन करके एक रत्ती प्रमाण की गोली बनानी चाहिये।

उपयोग--अतिसार-रोग में श्रेष्ठ-धारक है, प्रवाहिका आदि रोगों में यह चमत्कारिक प्रभाव रखता है।

अनुपान—अतिसार में बेल का काढ़ा, मेथी का रस और शहद; रक्तातिसार में कूड़े की छाल का काढ़ा या इन्द्रजौ का काढ़ा, ज्वरातिसार में कपूर-जल।

अगस्त-सूतराज— शुद्ध पारा १ भाग, गन्धक १ भाग, हिंगुल २ भाग, शुद्ध धतूरबीज ४ भाग, अफीम ४ भाग—इन सबको चूर्ण करके भाँगरे के रस में पीसकर रत्ती बराबर गोली बनानी चाहिये। मात्रा १ से २ गोली।

अनुपान—ग्रहणी में पानी के साथ, शूल, कफ, वायु, अग्निमान्द्य, तन्द्रा में त्रिकटु और शहद के साथ, अतिसार में घी के साथ, सब प्रकार के अतिसारों में जीरा और जायफल के साथ।

अमृत-कलानिधि-रस—वत्सनाभ दो भाग, कौड़ी की भस्म ५ भाग, मिर्च ९ भाग—सबको पानी में पीसकर मूँग के बराबर गोली बनानी चाहिये। अनुपान—आर्द्रक का रस या सोंठ का पानी।

उपयोग—पित्त-ज्वर में।

अश्वचोली— पारा १ भाग, वत्सनाभ एक भाग, गन्धक एक भाग, हरताल एक भाग, त्रिकटु प्रत्येक एक भाग, त्रिफला प्रत्येक एक भाग, टंकण-क्षार एक भाग, शुद्ध दन्ती-बीज एक भाग—इन सबको चूर्ण बनाकर २१ दिन तक भाँगरे के रस में खरल करके दो-दो रत्ती की गोली बनानी चाहिये।

आनन्दभैरव-रस—हिंगुल, मिर्च, सोहागे की खील, विष और पिप्पली, प्रत्येक वस्तु समान भाग लेकर पानी के साथ इनकी आध रत्ती के समान गोली बनानी चाहिये। यह प्रवाहिका, पूयमेह, ज्वरातिसार में लाभ करती है।

इच्छाभेदी-रस—सुहागा, मिर्च, पारा, गन्धक, सोंठ, प्रत्येक एक-एक तोला, शुद्ध जयपाल ३ तोला, इन सबको पानी के साथ पीसकर गोली बनानी चाहिये। मात्रा १ रत्ती।

अनुपान-ठंडा पानी या शरबत।

उपयोग—कोष्ठबद्धता-रोग में या उदर-रोग में।

कनकसुन्दर रस—हिंगुल, मिर्च, गन्धक, पिप्पली, सोहागे की खील, विष, धतूरे के बीज सबके बराबर इनको भाँग के पत्तों के स्वरस से मर्दन करके चने के बराबर गोली बनानी चाहिये। मात्रा १ से २ गोली।

अनुपान-पानी।

उपयोग—संग्रहणी, अतिसार, ज्वर में उपयोग की जाती है।

कफकेतु—सोहागे की खील, सोंठ, मिर्च, पिप्पली, शङ्ख-भस्म ये सब द्रव्य प्रत्येक १ भाग और विष ५ भाग चूर्ण करके आर्द्रक के रस की ३ भावना देकर एक रत्ती के समान गोली बना लेनी चाहिये।

उपयोग—ज्वरयुक्त नूतनकास, श्लेष्म ज्वर, सर्दी में।

अनुपान-आर्द्रक रस, या पान का रस।

कफ चिंतामणि—हिंगुल, इन्द्रजौ, सोहागे की खील, भाँग के बीज, मिर्च प्रत्येक १ भाग, रससिन्दूर ३ भाग; इनको एक प्रहर तक आर्द्रक के रस में मर्दन करके चने के बराबर गोली बना लेनी चाहिये।

उपयोग—सर्दी, प्रतिश्याय में।

कर्पूररस—हिंगुल, अफीम, नागरमोथा, इन्द्रजौ, जायफल और कर्पूर इन सबको जल के साथ पीसकर २ रत्ती की गोली बनानी चाहिये। इसमें १ भाग सोहागे की खील मिलाने से विशेष गुण होता है।

उपयोग—अतिसार में, विसूचिका में।

इसी कर्पूर रस में कुछ अन्य औषधियों के मिलाने से 'कर्पूरेश्वर-रस' तैयार हो जाता है। जैसे हिंगुल १ भाग, अफीम २ भाग, नागरमोथा १, इन्द्रजौ १ जायफल १, मीठा विष ½, सोहागे की खील १ भाग, कर्पूर १, फिटकरी ½ भाग इनको पाठे की जड़ के रस से मर्दन करके १½ या २ रत्ती की गोली बनानी चाहिये।

उपयोग-अतिसार, रक्तातिसार, ग्रहणी, शूल आदि रोग इसके [illegible] शीघ्र शान्त [illegible]

[illegible] लाल, [illegible] मृगनाभि, [illegible] भाग [illegible] दन्तीमूल [illegible] भाग लेकर [illegible] के रस [illegible] देकर दो रत्ती की गोली बनानी चाहिये।

उपयोग-कास, श्लेष्म ज्वर, वात, श्लेष्म ज्वर, ग्रन्थि-वेदना में।

अनुपान-सर्दी रोग में पान के अन्दर खाने से, कास-रोग में पिप्पली चूर्ण और मधु के साथ; श्लेष्म ज्वर में आर्द्रक-रस या मधु के साथ; शूल में वंशलोचन और शहद में देना चाहिये।

कस्तूरी भैरव (स्वल्प)—शिंगरफ, विष, सोहागे की खील, जावित्री, जायफल, मिर्च, पिप्पली और कस्तूरी सम भाग लेकर पानी के साथ मिलाकर २ रत्ती की गोली बना लेनी चाहिये।

उपयोग-प्रचण्ड और नवज्वर में, वात श्लेष्म-ज्वर में प्रसिद्ध है।

क्रव्यादि रस—शुद्ध पारा ४ तोला, शुद्ध गन्धक ८ तोला, ताम्र-भस्म २ तोला, लोह-भस्म २ तोला, इन सबको मिलाकर लोहे की कड़ाही में डालकर मीठी-मीठी आँच से पकाना चाहिये। गन्धक के पिघलने पर इसको पर्पटी की भाँति पकाकर इसके चूर्ण में नीबू के रस तथा पंचकोल के काढ़े की भावना देनी चाहिये। पीछे से इसमें टंकणक्षार, विड्लवण, मिर्च प्रत्येक एक-एक तोला मिलाकर अन्त में चणक क्षार की सात भावना देकर दो-दो माशे की गोली बनानी चाहिये। मात्रा २ मासा।

अनुपान-छाछ तथा सेंधा नमक।

उपयोग—अजीर्ण, उल्टी, शूल, गुल्म, अग्निमान्द्य में, उदर-रोग मे।

केशरादि—केसर, रस-कपूर, शर्करा, चन्दन, लवङ्ग, जावित्री ये सब बराबर भाग लेकर मूँग जैसी गोली बनानी चाहिये। मात्रा १ से २ गोली।

अनुपान--शर्करा और घी।

उपयोग—उपदंश, व्रण, फिरंग, रक्त-पित्त, कुष्ठ-रोग।

कृमिकुठार-रस—कपूर ८ तोला, कूड़ा छाल, इन्द्रायण, अजवायन, वायविडङ्ग, हिंगुल, केसर। वत्सनाभ, पित्तपापड़ा प्रत्येक एक तोला। इन सबका चूर्ण करके भाँगरे, ब्राह्मी और आखुकर्णी के रस की भावना देनी [illegible]

अनुपान--शहद।

उपयोग—सब प्रकार के कृमि-रोग में।

कृमि-मुद्गर-रस—पारा १ तोला, गन्धक २ तोला, खुरासानी अजवाइन ३, विडंग ४, कुचला ५, ढाक के बीज ६ तोला; इन सबका चूर्ण करके १ माशे की मात्रा में मधु के साथ खाना चाहिये। इस औषधि के खाने के पीछे मोथे का काढ़ा पीना चाहिये।

गदमुरारि-रस--शुद्ध हिंगुल, शुद्ध वत्सनाभ, सोंठ, मिर्च, पिप्पली,

सोहागा, मोथा, हरड़ और शुद्ध दन्तीबीज, ये सब समान भाग लेकर पानी में पीसकर एक रत्ती परिमाण की गोली बनानी चाहिये । मात्रा १ से ६ बाल ।

अनुपान—पानी ।

उपयोग—नवीन ज्वर तथा पित्त-ज्वर में ।

गर्भपाल-रस—सोंठ १ तोला, मिर्च १ तोला, पिप्पली १ तोला, दालचीनी १ तोला, तमालपत्र १ तोला, इलायची १ तोला, धनिया १ तोला, काला जीरा १ तोला, चविका १ तोला, द्राक्षा १ तोला, देवदारु १ तोला, सीसे की भस्म १ तोला, बंग-भस्म १ तोला, शुद्ध हिंगुल ½ तोला, लोह-भस्म ½ तोला इन सब औषधियों को बारीक पीसकर श्वेत मूसली के रस से सात दिन तक रगड़कर शीशी में भरकर रखनी चाहिये । मात्रा १ से २ रत्ती ।

अनुपान—काली किसमिस का पानी । गर्भिणी स्त्री को प्रथम मास से नौ मास तक दे सकते हैं. इससे गर्भिणी की गरमी शान्त होती है, गर्भ का पोषण होता है । जिन स्त्रियों में गर्भपात या गर्भ-स्राव होता हो, उनके लिये यह उत्तम है ।

गन्धक-रसायन—शुद्ध गन्धक को नीचे लिखी वस्तुओं की एक-एक (किसी ग्रन्थ में आठ-आठ) भावना देनी चाहिये । गाय का दूध, दालचीनी का काढ़ा, इलायची का काढ़ा, तमालपत्र का काढ़ा, नागकेसर का काढ़ा, गिलोय का रस, हरड़ का काढ़ा, बहेड़े का काढ़ा, आँवले का काढ़ा, सोंठ का काढ़ा, भाँगरे का रस तथा आर्द्रक का रस । अन्तिम भावना देने के पश्चात् धूप में सुखाकर एक माशे की गोली बनाकर इसके समान भाग शर्करा मिलाकर देनी चाहिये । मात्रा २ माशे ।

[illegible]गा—मन्दाग्नि, कण्डू, विष[illegible], पाण्डु, जीर्ण-ज्वर, [illegible], प्रमेह, धातुक्षय, शूल, [illegible] [illegible]-रोग [illegible]यादि में लाभ करती है । पथ्य—मिर्च और तेल का निषेध ।

ग्रहणी-कपाट-रस—सोंठ, मिर्च, पिप्पली, सुहागा, पारा, कपर्दिका-भस्म, वत्सनाभ, प्रत्येक समभाग । इनको नीम के रस में पीसकर उड़द के समान गोली बना लेनी चाहिये । मात्रा १ गोली

अनुपान—मिर्च, शर्करा [illegible]ी में मिलाकर चटाना चाहिये ।

ग्रहणी-गजकेसरी—पारा, गन्धक, अभ्रक, लोह, हिंगुल, बिल का

गर्भ, वत्सनाभ, सोंठ, मिर्च, पिप्पली, भाँग, नागरमोथा, अनार की छाल, इन्द्रजौ, जायफल, मोचरस, अतीस, धाय के फूल, अजवाइन, चित्रक, सुहागा, कांकच या कागिरी, अफीम सब समान भाग; सबको कूट-छानकर धतूरे के पत्तों के रस में घोटकर मिर्च के समान गोली बना लेनी चाहिये। मात्रा—१ गोली अथवा उमर तथा शक्ति के अनुसार देना चाहिये।

अनुपान—छाछ अथवा दही का मट्ठा।

प्रयोग—संग्रहणी, अतिसार, शूल, अग्निमान्द्य, पाण्डु।

ग्रहणी कपाट (२)—हिंगुल, गन्धक, अफीम, जायफल, लवंग, प्रत्येक आधा तोला। कच्चे अनार के रस में भावना देकर १ रत्ती परिमाण की गोली बनानी चाहिये।

गुल्म कालानल—अभ्रक, लोह, पारद, गन्धक, सोहागा, कुटकी, वच, यवक्षार, सर्जक्षार, सैन्धव, कूठ, त्रिकटु, देवदार, तेजपत्र, इलायची, दालचीनी, नागकेसर प्रत्येक सम भाग लेकर, जयन्ति, चित्रक और धतूर के रस से भावना देकर ४ रत्ती के बराबर गोली बना लेनी चाहिये। उपयोग—वायुनाशक, अग्निकारक।

अनुपान—त्रिफला जल या हरीतकी सिद्ध जल।

गुञ्जाजीवन-रस—रत्तीबीज शुद्ध १½ तोला, रस-सिन्दूर १½ तोला, शुद्ध भाँग ३ तोला इनको पानी के साथ पीसकर दो रत्ती की गोली बनानी चाहिये। इसका उपयोग कामोद्दीप्ति के लिये किया जाता है।

चन्द्रकला रस—शुद्ध पारा १ तोला, गन्धक २ तोला, [illegible] १ तोला, अभ्रक-भस्म १ तोला। इन सबकी कज्जली बनाकर निम्न-वस्तुओं की भावना देनी चाहिये। १ नागरमोथे का काढ़ा, अनार का रस, दूध, सहदेवी का रस, गन्ने का रस, घीक्वार [illegible] के स्वरस की भावना देकर पीछे से कुठ, गिलोय सत्व, पित्तपापड़ा, चन्दन, माधवी [illegible], सारिवा प्रत्येक एक एक तोला मिलाकर [illegible] भावना देकर शुष्क कर लेना चाहिये। मात्रा १ से २ रत्ती।

अनुपान—जीरा, शर्करा, दूध।

उपयोग—ज्वर, दाह, विषमज्वर, प्रदर, प्रमेह, रक्तपित्त आदि में।

चन्द्रोदय रस—[illegible] पीना चाहिये। [illegible] १ तोला, गन्धक १६ तोला और शुद्ध पारा ८ तोला इन सबको [illegible] वन-कार्पास पुष्प के रस से तथा घीक्वारी के रस की सात-सात भावना देकर काच की कुप्पी में रखकर बालुका-

यंत्र में मृदु-मध्य और तीक्ष्णाग्नि से पाक करे। पाक समाप्त होने पर शीशी के गले में लगा हुआ लाल रंग का रस कूपी तोड़कर लेना चाहिये। पीछे से चन्द्रोदय ४ तोला, कपूर जायफल, सोंठ, मिर्च, पिप्पली, लौंग प्रत्येक एक-एक तोला और कस्तूरी ½ तोला मिलाकर पान के रस में उड़द जितनी गोली बनानी चाहिये। इस गोली को पान के के साथ खाना चाहिये। यह रसायन है, वाजीकरण है।

चण्डेश्वररस—पारा, गन्धक, विष, ताम्र प्रत्येक समभाग लेकर आर्द्रक के रस से सात बार भावना देनी चाहिये। इसी प्रकार निर्गुण्डी-पत्र स्वरस से भी सात भावना देकर १ रत्ती की गोली बनानी चाहिये।

अनुपान—अर्द्रक-रस।

उपयोग—प्लेग में, ज्वर में।

चतुर्मुख (कृष्ण)—पारा, गन्धक, लोह, अभ्रक प्रत्येक १ तोला, स्वर्ण चौथाई तोला इनको घीक्वारी के रस में मर्दन करके एरण्ड-पत्र द्वारा लपेटकर धान्य-राशि के अन्दर तीन दिन रख देना चाहिये। मात्रा २ रत्ती।

उपयोग—उन्माद, मूर्छा, मृगी, मस्तिष्क-रोग।

अनुपान—मूसली-रस, मधु, त्रिफला-जल और मधु।

इस औषध में १ रत्ती वंग-भस्म मिलाने से 'सोमनाथ रस' के समान उपयोगी बन जाती है।

चतुर्मुख(लाल)—कृष्ण चतुर्मुख में पारद और गन्धक के स्थान में दो भाग स्वर्ण-सिन्दूर मिलाने से लाभ करता है।

चन्दनादि लोह—लाल चन्दन, नेत्रवाला, पाठा, उशीर, हरीतकी, सोंठ, कमलगट्टा, आँवला, नागरमोथा, चीतामूल, बिडङ्ग प्रत्येक १० माशे लोह डेढ़ तोला। पानी के साथ मिलाकर २ रत्ती की गोली बना लेनी चाहिये।

उपयोग—जीर्ण-ज्वर, मेहज्वर, प्रदरज्वर, हाथ-पाँव की ज्वाला में लाभदायक है। अनुपान—आर्द्रक, शेफालिका रस और मधु।

चन्दनादि वटिका—लाल चन्दन, त्रिकुट, सिता, केशर, रस पुष्प, लवंग प्रत्येक एक-एक तोला इनको मिलाकर एक-एक रत्ती मात्रा में मक्खन के साथ खाने से लाभ होता है।

उपयोग—फिरंग रोग में। ...गाली। ...ी में मिल...

चन्द्रामृत रस—त्रिकुट, त्रिफला, चव्य, धनियाँ, जीरा, सैन्धव प्रत्येक एक-एक तोला, पारा, गन्धक और लोह प्रत्येक दो तोला, सोहागे की खली ८

तोला, मिर्च ४ तोला, इन सबको बकरी के दूध के साथ पीसकर ९ रत्ती परिमाण की गोली बनानी चाहिये।

उपयोग—कास-रोग में, श्वास में, यक्ष्मा जन्य-कास में लाभ होता है।

अनुपान—मधुपिप्पली चूर्ण और मधु, कपूर और मधु।

चिन्तामणि—रससिन्दूर, अभ्रक, लोह प्रत्येक एक-एक तोला, स्वर्ण आधा तोला, इनको घीकार के रस में मर्दन करके एक रत्ती की गोली बना लेनी चाहिये। वायु-रोग की यह प्रसिद्ध औषधि है।

चिन्तामणि रस (२)—पारद, विष, गन्धक, सुहागे की खील, ताम्र, यवक्षार, सोंठ, पिप्पली, मिर्च, हरताल, बहेड़ा, हरीतकी, आमलकी इनको एक सौ बार मधु के साथ रगड़कर १ रत्ती की गोली बना लेनी चाहिये।

अनुपान—शुण्ठी-चूर्ण और नारियल का जल।

उपयोग—सन्निपात ज्वर में।

चिन्तामणि चतुर्मुख—रससिन्दूर २ तोला, लोह १, अभ्र १, स्वर्ण १॥ तोला, इनको घीकांरी के रस से मर्दन करके एरण्ड पत्रों में लपेटकर धान्य-राशि के अन्दर रखना चाहिये। तीन दिन के पीछे निकालकर दो रत्ती खाना चाहिये।

अनुपान—मधु और त्रिफला जल।

उपयोग—उन्माद, वात-रोग आदि में।

ज्वरांकुश—शुद्ध पारा, गन्धक, वत्सनाभ प्रत्येक समान भाग लेकर, सबके बराबर शुद्ध धतूर-बीज मिलाकर, सोंठ, मिर्च, पिप्पली इनका चूर्ण सबसे दुगुना मिलाना चाहिये। इन सबको नीबू तथा आर्द्रक के रस के साथ घोंटकर दो-दो रत्ती की गोली बना लेनी चाहिये। मात्रा २ से ४ रत्ती।

उपयोग—ज्वर में।

जलोदरारि रस—ताम्र-भस्म, लोह-भस्म, पिप्पली, पारा, गन्धक, मिर्च, हल्दी का चूर्ण प्रत्येक १ तोला, शुद्ध जैपाल दो तोला इनको तीन बार निशोथ के काढ़े से भावना देनी चाहिये। मात्रा ½ १ रत्ती।

ज्वरारि रस—हिंगुल, पिप्पली, सोंठ, मिर्च, टंकण, अमृत-

विष, आँवला प्रत्येक एक-एक तोला, जायफल ४ तोला, इनको आर्द्रक रस में पीसकर १ रत्ती की गोली बनानी चाहिये।

जयमङ्गल रस— पारा, गन्धक, सोहागा, ताम्र, बंग, स्वर्ण-माक्षिक, लोह, रौप्य, सैन्धव और मिर्च प्रत्येक आधा तोला, स्वर्ण १ तोला। दशमूल-क्वाथ, धतूरपत्र-रस, चित्रक-क्वाथ से क्रमशः तीन-तीन भावना देनी चाहिये।

अनुपान—गिलोय, पित्तपापड़े का स्वरस, आर्द्रक और शेफालिका-पत्र-स्वरस।

उपयोग—पुरातन ज्वर, वात श्लेष्मा, प्लीहा और यकृत-विकार में।

जातिफल-रस —पारा, अभ्र, रससिन्दूर, गन्धक, जायफल, इन्द्र-यव, धतूरे का बीज, सुहागे की खील, त्रिकटु, मोथा, हरीतकी, आमलकी, बेल, आम की गुठली, शाल का बीज, अनार का छिलका इन सबको खरल में डालकर भाँग के पत्तों के रस से मर्दन करना चाहिये। मात्रा १रत्ती।

अनुपान—कूड़े की छाल का काढ़ा।

उपयोग—आमातिसार-नाशक, रक्तातिसार में उपयोगी।

तारकेश्वर—रससिन्दूर, अभ्र, लोह, बङ्ग प्रत्येक समभाग; इसको मधु के साथ पीसकर गोली बना लेनी चाहिये।

अनुपान—आमलकी-चूर्ण और शहद।

उपयोग—पुरातन मेहरोग, बहुमूत्र, शुक्र-रोग तथा श्वेत प्रदर में उपयोगी है।

तारकेश्वर (२)— पारा, गन्धक, लोह, वंग, अभ्र, दुरालभा, यव-क्षार, गोक्षुरू-बीज, हरीतकी समभाग इसको कुष्माण्ड रस, तृणपञ्चमूल (कुश, कास, शर, दर्भ, ईक्षु) काढ़ा तथा गोक्षुर रस के साथ भावना देकर २ रत्ती की गोली बनाकर रखनी चाहिये। यह मूत्रकृच्छ्र, गनोरिया-रोग में विशेष लाभकारक है।

त्रैलोक्य-विजया वटी—भाँग शुद्ध की हुई एक भाग और तुगा-क्षीरी का चूर्ण तीन भाग इनको पानी के साथ पीसकर एक रत्ती परिमाण की गोली बनानी चाहिये।

उपयोग—प्रलाप, उन्माद, वृक्कशूल, अतिसार, स्वप्नदोष में हितकारक है।

त्रैलोक्य संमोहन रस—शुद्ध विजया ४ तोला, हिंगुल, रससिन्दूर, नौसादर, लौंग, अभ्रक, शङ्ख-भस्म प्रत्येक एक-एक तोला गोखरू, बानरीबीज, काकड़ाशृङ्गी प्रत्येक का चूर्ण दो तोले; सबको भाँग और शतावरी के रस से मर्दन करके तीन रत्ती की गोली बना लेनी चाहिये।

उपयोग—कामोत्तेजक, शुक्रस्तम्भक।

त्रैलोक्य चिंतामणि-रस—स्वर्ण ३ भाग, रौप्य २ भाग, अभ्र २ भाग, लोह ५ भाग, प्रवाल ३ भाग, मुक्ता ३ भाग और रससिन्दूर ७ भाग। इन सबको चीकार रस से मर्दन करके १ रत्ती परिमाण की गोली बना लेनी चाहिये।

अनुपान—बकरी का दूध।

उपयोग—क्षय-रोग, कास, प्रमेह, जीर्ण-ज्वर में उपशमित होते हैं।

त्रिविक्रम-रस—ताम्र-भस्म तथा बकरी का दूध समान भाग लेकर इनको कड़ाही में डालकर खोवा बनाना चाहिये। पीछे से इनके बराबर पारा और गन्धक मिलाकर निर्गुण्डी के रस की एक भावना देकर गोली बना लेनी चाहिये। इस गोली को बालुका-यंत्र में रखकर एक पहर तक पकाना चाहिये। पीछे से निकालकर चूर्ण बना लेना चाहिये। मात्रा २ रत्ती।

उपयोग—अश्मरी-रोग में हितकारी है।

त्रैहिकारि—पारा, गन्धक, मनःशिला और हरताल प्रत्येक १ भाग, अतीस ४ भाग, लोह २ भाग और रौप्य ½ भाग इनको नीम की छाल के काढ़े या स्वरस से मर्दन करके ३ रत्ती की गोली बनानी चाहिये।

उपयोग—यह शीत-ज्वर, कम्प-ज्वर में लाभदायक है।

अनुपान—शहद और परोल-पत्र रस।

दिनेश भैरव-रस—जावित्री, दालचीनी, लौंग, अकरकरा, पिप्पली, सोंठ, शुद्ध हिंगुल तथा शुद्ध वत्सनाभ प्रत्येक समभाग इनका चूर्ण करके पान के रस में २४ घंटे खरल करके और एक दिन तक आर्द्रक-रस में पीसकर १ रत्ती परिमाण की गोली बनानी चाहिये।

उपयोग—अतिसार में।

धात्री लोह—यव का काढ़ा (जौ ½ सेर जल ७ सेर, पाक शेष ½ सेर), शतावरी-रस २ सेर, आमलकी रस २ सेर, दही आध सेर, दूध

आध सेर, विदारीकन्द-रस ३ सेर, शर्करा ३ सेर, घृत आधा सेर, शोधित मंडूर, ४८ तोला; ये सब द्रव्य एक साथ पाक कर लेना चाहिये। जब पाक समीप में हो, तो जीरा, धनिया, दालचीनी, इलायची, तेजपत्र, गजपिप्पली, मोथा, हरीतकी, अभ्र, लोह, सोंठ, पिप्पली, मिर्च, रेणुका, आमलकी, बहेड़ा, तालीशपत्र और नागेश्वर प्रत्येक का चूर्ण २ तोला इसमें मिलाकर यथाविधि पाक कर लेना चाहिये।

उपयोग—अम्लपित्त, परिणाम-शूल और वात-शूल में हितकारी है।

नवायस लोह—त्रिफला, त्रिकटु, नागरमोथा, चीतामूल, विडङ्ग प्रत्येक एक-एक तोला और लोह-भस्म ९ तोला इनको जल के साथ पीसकर गोली बनानी चाहिये।

उपयोग—यकृत-दोष, प्लीहा-दोष, जीर्ण-ज्वर, वातरक्त और प्रमेह-नाशक।

नवजीवन-रस—शुद्ध कुचला दो तोला, लोह-भस्म दो तोला, रस-सिन्दूर २ तोला, त्रिकटु दो तोला इन सबको आर्द्रक-रस में पीसकर १ रत्ती परिमाण की गोली बनानी चाहिये।

उपयोग—कामोत्तेजक, नाड़ी में बल देनेवाला, अंत्र-शूलहर है।

निद्रोदय-रस—अहिफेन ६ माशे, वंशलोचन ६ माशे, रससिन्दूर ६ माशे, आँवले का चूर्ण १ तोला इनको भाँग के रस में घोटकर २ रत्ती की गोली बनानी चाहिये।

उपयोग—नींद लाने के लिये।

नित्यानन्द-रस—पारद, गन्धक, ताम्र, कांसा, बङ्ग, हरताल, तुत्थ, शङ्ख-भस्म, कौड़ी की भस्म, त्रिकटु, त्रिफला, लोह, विडङ्ग, पञ्चलवण, चविका, पिप्पली-मूल, हपुषा, वच, शठी, पाठा, देवदारु, इलायची, निशोथ, चीतामूल, दन्तीमूल प्रत्येक वस्तु समान भाग लेकर हरीतकी के काढ़े के साथ पीसकर १० रत्ती की परिमाण की गोली बनानी चाहिये।

उपयोग—अंड-वृद्धि, गंडमाला में होता है।

नृपवल्लभ—पारा, गन्धक, लोह, अभ्र, सीसा, चीतामूल, मोथा, सोहागे की खील, जायफल, हींग, दालचीनी, इलायची, वंग, तेजपत्र, काला जीरा, अजवायन, सोंठ, सैन्धव, मिर्च और ताम्र प्रत्येक एक-एक

तोला एवं स्वर्ण आधा तोला इन सबको मिलाकर आर्द्रक के रस, आँवले के रस से भावना देकर चने के समान गोली बनानी चाहिये।

उपयोग—अग्निमान्द्य, ग्रहणी, अतिसार, शूल, आमातिसार में उपयोगी है।

पञ्चानन-रस—विष २ तोला, मिर्च ४ तोला, गन्धक ३ तोला, हिंगुल १ तोला, ताम्र २ तोला, आक के मूल के रस में पीसकर १ रत्ती परिमाण की गोली बनानी चाहिये।

उपयोग—प्रबल ज्वर में, वात-ज्वर में।

अनुपान—मधु, आर्द्रक-रस और मधु, कर्पूर जल।

पंचवक्त्र-रस—शुद्ध पारा १ भाग, गन्धक १ भाग, वत्सनाभ १ भाग मिर्च १ भाग, टंकण १ भाग इन सबके चूर्ण को धतूरे के पत्तों के रस में दिन भर पीसकर २ रत्ती परिमाण की गोली बनानी चाहिये। मात्रा १ गोली।

अनुपान—आक के मूल की छाल का काढ़ा।

पथ्य—मूँग की दाल का पानी।

उपयोग—सन्निपात ज्वर में।

पंचामृत-पर्पटी—गन्धक ८ तोला, पारा ४ तोला, लोह-भस्म २ तोला, अभ्रक-भस्म १ तोला, ताम्र-भस्म आधा तोला इन पाँचों वस्तुओं को लोहे की कढ़ाई में खरल करके एक लोहे के बर्तन में पिघलाकर केले के पत्तों के ऊपर डाल देना चाहिये। केले के पत्तों के नीचे गोबर बिछा देना चाहिये। पर्पटी के ऊपर केले का दूसरा पत्ता रखकर दबा देना चाहिये। मात्रा २ से १० रत्ती।

उपयोग—संग्रहणी, अरुचि, उल्टी, पुराना अतिसार, अर्श, ज्वर, रक्त-पित्त, क्षय, मन्दाग्नि, नेत्र-रोग।

प्रदरारि-रस—शुद्ध पारा, गन्धक, सीसक-भस्म प्रत्येक एक भाग, रसौत ३ भाग, लोध्र ६ भाग इन सबको एकत्र करके बाँसे के रस में एक दिन तक पीसना चाहिये। मात्रा—२ रत्ती।

अनुपान—शहद।

उपयोग—असाध्य प्रदर-रक्तातिसार।

प्रदरारि-लोह—कूड़े की छाल ४०० तोला, १०२४ तोले पानी में काढ़ा करके आठवाँ भाग शेष बचा लेना चाहिये। इस पानी को छानकर आग पर चढ़ाना चाहिये। जब गाढ़ा होने लगे, तब इसमें मोचरस, मजीठ, पाठा, बेल, नागरमोथा, धाय के फूल, अतीस, अभ्रक-भस्म, लोह-भस्म प्रत्येक ४ तोला मिलाना चाहिये। मात्रा चौथाई से आधा तोला।

अनुपान--दर्भ के रस के साथ।

उपयोग—प्रदर, गर्भाशय से पानी का स्राव होता हो, उसमें; कटी-शूल, मस्तक-शूल में।

प्रदरान्तक-लोह—लोह-भस्म २ तोला, वंग १ तोला, स्वर्णगैरिक (गोघृत में पकाया हुआ) राल दो कर्ष ४ तोला, मोचरस १ तोला इन सबको मिलाकर चूर्ण करके शीशी में रख लेना चाहिये।

अनुपान—लालचन्दन, अशोक की छाल।

उपयोग—प्रदर-रोग में।

प्रलापान्तक-रस--शुद्ध धतूर-बीज नौ माशे, पारा ६ माशे, गन्धक ६ माशे, त्रिकटु, सुहागा, दोनों एक-एक तोला इन सबको नीबू के पानी के साथ पीसकर एक-एक रत्ती की गोली बनानी चाहिये।

उपयोग—रोग-जन्य प्रलाप में, अग्निमान्द्य में।

पीयूषवल्ली-रस—पारद, गन्धक, अभ्रक, रौप्य, लोह, सोहागा, रसांजन, स्वर्ण-माक्षिक, लौंग, लालचन्दन, मोथा, पाठ, जीरा, धनिया, वराह-क्रान्ता, अतीस, लोध्र, कूड़े की छाल, इन्द्रजौ, दालचीनी, सोंठ, जायफल, बेल, धतूर-बीज, अनार की छाल, मजीठ, धाय के फूल, कूठ प्रत्येक आधा तोला; इन सबको भाँगरे के रस में भावित करके चने के समान गोली बना लेनी चाहिये।

अनुपान—बेलपत्र-रस और गुड़।

उपयोग—रक्तातिसार, ग्रहणी, रक्त-प्रदर।

पुनर्नवा-मण्डूर—शोधित मण्डूर ४० तोला, पाकार्थ गोमूत्र ५ सेर। जब पाक समीप हो, तो उसमें पुनर्नवा, निशोथ-मूल, सोंठ, पिप्पली, मिर्च, विडङ्ग, देवदारु, चीतामूल, हरड़, बहेड़ा, आँवला, हल्दी, दारुहल्दी, दन्तीमूल, चविका, इन्द्रजौ, पिप्पलीमूल, मोथा, प्रत्येक १ तोला मिलाकर पाकशेष कर लेना चाहिये।

उपयोग—यकृत-दोष-जनित शोथ, हरिद्रवर्ण मूत्र, कामला, पाण्डु-रोग।

अनुपान गरम जल।

पूर्णचन्द्र (वृहत्)—पारा ४ तोला, गन्धक ४ तोला, लोह ८ तोला, अभ्रक ८ तोला, रौप्य २ तोला, वङ्ग ४ तोला, स्वर्ण, ताम्र और काँसा प्रत्येक एक-एक तोला, जायफल, लौंग, इलायची, दालचीनी, जीरा, कपूर, प्रियंगु, मोथा प्रत्येक दो तोला; इनको घीकार और त्रिफला-क्वाथ तथा एरण्ड-रस से मर्दन करके, एरण्ड-पत्र ही से वेष्ठन करके तीन दिन तक धान्य-राशि में रख देना चाहिये। पीछे से चने के बराबर की गोली बनानी चाहिये।

उपयोग—क्षय-रोग में, बहुमूत्र, मेह आदि रोगों में।

अनुपान—गूलर और मधु, त्रिफला-चूर्ण और मधु।

प्लीहान्तक-रस—ताम्र, रौप्य, अभ्रक, लोह, मुक्ता, शिंगरफ, रसौत, पारा गन्धक, गुग्गुल, त्रिकटु, रास्ना, जयपाल बीज, त्रिफला, कुटकी, दन्तीमूल, कडुवी तुम्बी की जड़, सैन्धव नमक, शोथ, यवक्षार इन सबको एरण्ड-तैल से मर्दन करके एक रत्ती की गोली बनानी चाहिये।

उपयोग—पाण्डु, उदर-रोग, प्लीहा में।

भस्मेश्वर-रस—उपलों की राख ४ तोला, मिर्च ९ माशे शुद्ध वत्सनाभ ४ माशे। मात्रा ५ रत्ती।

उपयोग—सन्निपात-ज्वर में। अनुपान—आर्द्रक-रस।

भुवनेश्वर—त्रिफला, सैन्धव लवण, अजवायन, बेलचूर्ण, गृह-धूम इनको समभाग लेकर बेर की गुठली के समान गोली बना लेनी चाहिये।

उपयोग—अजीर्ण-रोग, अतिसार।

अनुपान—गरम जल।

वंगेश्वर—रससिन्दूर, वंगभस्म, समभाग लेकर ४ आने भर बटी करनी चाहिये।

वंगेश्वर (वृहत्)—वंग, पारा, गन्धक, रौप्य, कपूर, अभ्रक प्रत्येक २ तोला, स्वर्ण-मुक्ता प्रत्येक आध आना। इनको किंशुक और भाँगरे के रस से भावना देकर २ रत्ती की गोली बना लेनी चाहिये।

उपयोग—गनोरिया के प्रारम्भ में, बहुमूत्र-रोग में।

अनुपान—हल्दी का रस, श्वेत चन्दन और चीनी।

कुसुमाकर—प्रवाल, रससिन्दूर, मुक्ता, अभ्रक प्रत्येक ४ तोला, प्रत्येक १ तोला, लोह, सीसा, और वंग प्रत्येक ३ तोला। इनको वासक, हल्दी, ईक्षु, कमल, मालती पुष्प, केले की मूल का रस, श्वेत चन्दन और मृगनाभि काढ़ा एवं दूध से ७ बार भावना देकर २ रत्ती की गोली बनानी चाहिये।

उपयोग—रसायन है, प्रमेह, बहुमूत्र मे उपयोगी है।

अनुपान—मक्खन, मिश्री, धारोष्ण दूध।

बसन्ततिलक—स्वर्ण १ तोला, अभ्र २ तोला, लोह ३ तोला, पारद ४, गन्धक ४, वंग २, मुक्ता ४ और प्रवाल ५ तोला इकट्ठा करके गोक्षुर वासक और गन्ने के रस मे मर्दन करके भूसे के अन्दर रखकर बालुका-यंत्र के अन्दर पाक करना चाहिये। इसमें से निकालकर कस्तूरी ४ तोला, कपूर ४ तोला मिलाना चाहिये।

उपयोग—ज्वर, नाड़ी की शिथिलता, दौर्बल्ययुक्त यक्ष्मा-रोग में।

वात गजांकुश—मनःसिल आधा, मीठा विष १, ताम्र १, शोधित हिंगुल १, समुद्रफेन १, सैन्धव १, सोहागे की खील १, इनको जयन्तीपत्र-रस से मर्दन करके चने के समान गोली बनानी चाहिये।

उपयोग—वात-रोग।

वात-गजेन्द्रसिंह—अभ्रक, लोह, पारद, गन्धक, ताम्र, सीसा, सोहागा, विष, सैन्धव लवण, हींग और जायफल प्रत्येक १ तोला; दाल-चीनी, तेजपात, इलायची, त्रिफला, जीरा, प्रत्येक आधा तोला, इनको घीकुमारी के रस में मर्दन करके ३ रत्ती की गोली बनानी चाहिये।

उपयोग—पक्षाघात में, वात-रोग मे।

अनुपान—रास्नापञ्चक या रास्नासप्तक।

वात-चिन्तामणि (बृहत्)—स्वर्ण ३ तोला, रौप्य २ तोला, अभ्रक २ तोला, लोह ५ तोला, प्रवाल ३ तोला, मोती ३ तोला, रससिन्दूर ७ तोला इनको घीकुमारी-रस के साथ मर्दन करके २ रत्ती परिमाण की गोली बनानी चाहिये।

उपयोग—वात-व्याधिनाशक।

अनुपान—मक्खन और मिश्री, पक्षाघात में माषबलादि पाचन।

विषम ज्वरान्तक (पुटपाक)—पारा १ तोला, गन्धक एक तोला, इनकी कज्जली करके पर्पटी बनानी चाहिये। फिर इसमें स्वर्ण ४ आना,

लोह, ताम्र, अभ्रक प्रत्येक २ तोला, बंग और स्वर्ण गैरिक प्रत्येक आधा तोला, मुक्ता, शङ्ख, शुक्ति-भस्म चार आना इनको जल के साथ पीसकर सीप के अन्दर रखकर पुटपाक करके निकाल लेना चाहिये।

उपयोग—पुरातन ज्वर में, रक्तहीनता में, उपयोगी है।

बृहत् चिन्तामणि—शङ्ख-भस्म, मकरध्वज, स्वर्ण गैरिक इनको सम-भाग लेकर जल के साथ पीसकर १ रत्ती की गोली बनानी चाहिये।

उपयोग—वायु, पित्त रोग में लाभदायक है।

मदन कामेश्वर रस—पारा, गन्धक, और अफीम सब समान भाग लेकर पान के पत्ते के रस में एक-एक रत्ती की गोली बनानी चाहिये। मात्रा १ गोली।

अनुपान—शर्करा।

उपयोग—कामोत्तेजक।

मालिनी बसन्त—खपरिया २ तोला, कालीमिर्च १ तोला इन दोनों का चूर्ण करके, मक्खन मिलाकर एक दिन तक घोंटना चाहिये। पीछे नीबू के पानी से कई दिन तक रगड़ना चाहिये जिससे मक्खन की चिकनाहट निकल जाय। मात्रा १ से ४ रत्ती।

अनुपान—मधु, पिप्पली।

उपयोग—ज्वर, जीर्ण-ज्वर, अतिसार, प्रदर, अर्श, नेत्र-रोग, हाथ-पाँव के ज्वलन में, दाह में उपयोगी है।

मन्मथाभ्र-रस—पारा, गन्धक, अभ्रक प्रत्येक ४ तोला, कपूर, बङ्ग प्रत्येक १ तोला, ताम्र आधा तोला, लोहा २ तोला, जीरा, बिदारी, शतावरी, विधारा, अतिबला, इलायची, शंखपुष्पी इनको जल से पीसकर १ रत्ती की गोली बनानी चाहिये।

उपयोग—शुक्रमेह-जनित, शिश्न-शैथिल्य में, शुक्रधारक, बलकारक।

महागन्धक—कज्जली ४ तोला; इसको पानी में मिलाकर लोहापात्र में पिघालकर, इसमें जायफल, जावित्री, निर्गुण्डी, लौंग, नीम-पत्र प्रत्येक का चूर्ण २ तोला मिलाकर पीसना चाहिये। इस औषधि को सीप के अन्दर रखकर उसपर कीचड़ का लेप करके पुटपाक देना चाहिये। लाल होने पर इसको निकालकर दो रत्ती की गोली बनानी चाहिये। यदि पुट न दिया जाय, तो इसका नाम 'सर्वांग सुन्दर' होता है।

उपयोग—शिशुओं के तथा स्त्रियों के अजीर्ण में यह औषधि उत्तम है। अतिसार-रोग में लाभ करती है।

महालक्ष्मी विलास—अभ्रक ८ तोला, गन्धक ४ तोला, वंग २ तोला, रौप्य १ तोला, स्वर्णमाक्षिक १ तोला, ताम्र आधा तोला, कर्पूर ४ तोला, जावित्री, जायफल, विधारा, धतूरे का बीज प्रत्येक २ तोला, स्वर्ण १ तोला इनको पान के रस में पीसकर २ रत्ती की गोली बनानी चाहिये।

उपयोग—कास, वात, पक्षाघात, शूल, मेदो-रोग, यक्ष्मा-ज्वर, प्रतिश्याय में।

महाशङ्खवटी—शंख-भस्म, पंचलवण, इमली का क्षार, त्रिकटु, हींग, विष, गन्धक, पारद प्रत्येक वस्तु समभाग लेकर अपामार्ग, चित्रकमूल-क्वाथ, नीबू का रस तथा अम्ल वर्ग की भावना देकर दो रत्ती परिमाण की गोली बनानी चाहिये। इस औषधि के साथ लोह और वंग मिला दिया जाय, तो 'महाशंखवटी' बन जाती है।

अनुपान—गरम जल।

उपयोग—अग्निमान्द्य, अजीर्ण, ज्वर, गुल्म, पाण्डु, कुष्ठ, शूल, प्रमेह, वातरक्त में उपयोगी है।

मृगांक—पारा १ तोला, गन्धक २ तोला, स्वर्ण-भस्म १ तोला, मुक्ता-भस्म १ तोला, सोहागा ½ तोला इन सबको कांजी के साथ पेषण करके सुखा लेना चाहिये। इसको मुषा के मध्य में रखकर लवण-यंत्र के अन्दर पकाना चाहिये।

उपयोग—रक्तपित्त, यक्ष्मा-रोग।

अनुपान—पिप्पली चूर्ण और मधु, वासकपत्र।

मृत्युञ्जय—विष, मिर्च, पिप्पली, गन्धक, सोहागे की खील प्रत्येक १ भाग, हिंगुल २ भाग सबको आर्द्रक-रस के साथ पीसकर मूँग के बराबर गोली बना लेनी चाहिये।

उपयोग—नव-ज्वर में।

मृतसंजीवन-रस—कृष्ण सर्प-विष, विष, चाँदी की भस्म, सुहागा, हिंगुल, पारा, गन्धक, हरताल प्रत्येक एक माशा इनको बकरी, मोर, सुअर और मछली के पित्त मे भावना देनी चाहिये। गोली सरसों के समान बनानी चाहिये।

उपयोग—श्वास में, प्रलाप में, बधिरता में, मूकता में, शीतांग सन्निपात में।

रसेन्द्रवटी—लोह-भस्म, अभ्रक-भस्म प्रत्येक एक-एक तोला, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक आधा-आधा तोला, प्रवाल ½ तोला, खपरिया ½ तोला, इन सबको कटेरी, ब्राह्मी और बाँसे के पत्रों की रस की भावना पृथक् २ तीन-तीन देकर दो रत्ती की गोली बनानी चाहिये।

उपयोग—स्वर-भङ्ग में, कास-श्वास में, बहुमूत्रता में उपयोगी है।

रसपर्पटी—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक इन दोनों की कज्जली करके, इसको लोहे की कड़छी में पिघलाकर पंचामृत पर्पटी बना लेनी चाहिये।

अनुपान—रोगानुसार साधारणतः जीरा और हींग। मात्रा १ से १० रत्ती।

उपयोग—संग्रहणी, अर्श, अतिसार, शूल, कामला, पांडु, प्लीहा, गुल्म, जलोदर, शोथ में।

रससिन्दूर—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक क्रमशः १० तोला और २० तोला, नवसार १ तोला, फिटकिरी एक तोला इन सबको घीकार के रस में घोंटकर आतशी शीशी के अन्दर भरकर बालुका-यंत्र में पाक करना चाहिये। परिपाक होने पर गले में लगा हुआ लाल रंग का सिन्दूर प्राप्त करना चाहिये। मात्रा—१ से २ रत्ती।

अनुपान—रोगानुसार।

उपयोग—योगवाही होने से सब रोगों में बरता जाता है।

रसराज—रससिन्दूर ८ तोला, २ तोला इनको घीक्वार रस से मर्दन करके लोह, रौप्य, वंग, अश्वगन्धा, लवंग, जावित्री प्रत्येक आधा तोला मिलाकर काकमाची के रस में मर्दन करके ५ रत्ती परिमाण की गोली बनानी चाहिये।

उपयोग—वात-रोग की उत्कृष्ट औषधि है।

अनुपान—धारोष्ण दूध, त्रिफला जल, घृत-मधु वा मक्खन।

राज मृगाङ्क—पारा ३ तोला, स्वर्ण १ तोला, ताम्र १ तोला, मनःशिला १ तोला, हरताल २ तोला, गन्धक २ तोला इनको पीसकर कौड़ियों के अन्दर भरकर कौड़ियों का मुख बकरी के दूध में पीसे हुये सुहागों से बंद

कर देना चाहिये। इन कौड़ियों को भस्म करनी चाहिये। मात्रा २ से ४ रत्ती।

उपयोग—मृगांक की भाँति।

रामबाण-रस—पारा, विष, लौंग, गन्धक प्रत्येक १ तोला, मिर्च २ तोला, जायफल आधा तोला सबका चूर्ण करके कच्ची इमली के रस मे भावना देकर चने जितनी गोली बनानी चाहिये।

उपयोग—मन्दाग्नि आमवात, संग्रहणी, उल्टी, कास आदि में।

लघु क्रव्यादि रस—गन्धक २ तोला, पारा १ तोला, लोह-भस्म आधा तोला, संचल लवण १ तोला, टंकण २ तोला, मिर्च २ तोला, पिप्पली-मूल आधा तोला, चित्रकमूल आधा तोला, सोंठ आधा तोला, पिप्लव आधा तोला, लवंग आधा तोला इन सबका चूर्ण करके नीबू के रस की सात भावना देकर रख लेना चाहिये। मात्रा १ से ४ बाल।

अनुपान—पानी अथवा छाछ अथवा सेंधानमक, सिका हुआ जीरा और हींग।

उपयोग—कॉलरा, अजीर्ण, अतिसार, मन्दाग्नि, अरुचि।

लघुलाई-चूर्ण—पारा, गन्धक, त्रिकटु, अजवायन, श्वेत जीरा काला जीरा, सेंधानमक बिड्‌लवण, संचल नमक, हींग प्रत्येक वस्तु समान भाग और सबके बराबर कुड़े की छाल का चूर्ण। प्रथम गन्धक और पारद की कज्जली बनाकर बाकी वस्तुओं को इसमें पीसकर मिलाना चाहिये।

उपयोग—अतिसार में, संग्रहणी में, आनाह में।

लक्ष्मीविलास-रस—शुद्ध कुचला ६ तोला, सुहागे की खील ६ तोला, मिर्च ६ तोला, लोह-भस्म १ तोला, गन्धक २ तोला, पारा १ तोला; इन सबको मिलाकर आर्द्रक रस से भावना देनी चाहिये। इसी प्रकार शतावरी, आँवला और भाँग के रस मे भावना देनी चाहिये। मात्रा १ रत्ती।

उपयोग—शरीर की पुष्टि करनेवाला, वीर्य-वर्द्धक, अग्नि-वर्द्धक।

लोकनाथ-रस—पारा १ तोला, गन्धक १ तोला, अभ्रक १ तोला, लोह २ तोला, ताम्र २ तोला, कौड़ी-भस्म ४ तोला, पान के रस में एक पहर तक रगड़कर लघुपुट देकर पाक करना चाहिये। मात्रा २ रत्ती।

उपयोग—प्लीहा और यकृत-रोग में उत्कृष्ट औषधि है।

वात-गजांकुश पारा २ भाग, गंधक ८, शुद्ध कुचला ८ भाग, त्रिकटु १२ भाग इन सबको पीसकर चूर्ण बनाकर एरण्ड-काढ़े की भावना देनी चाहिये। मात्रा १ रत्ती।

उपयोग— सब प्रकार के वात रोगों में।

वातारि-रस—शुद्ध अफीम, शुद्ध कुचला, मिर्च प्रत्येक समभाग; इनका चूर्ण करके पानी में पीसकर रत्ती-रत्ती की गोली बनानी चाहिये। मात्रा १ गोली।

अनुपान—पानी के साथ।

उपयोग—कुब्जत्व, गृध्रसी वायु, आमवात, शूल, कम्पवायु, अरुचि, ग्रहणी।

वातारि-रस (२)—यशद-भस्म ५ बाल, चाँदी की भस्म १ रत्ती, गिलोय का सत्त्व १० बाल, तीनों को मिलाकर आधी रत्ती की गोली बनानी चाहिये। मात्रा १ गोली।

उपयोग—अपस्मार, वात-व्याधि में।

विसूची-विध्वंसन-रस—कृष्ण सर्प-विष, शुद्ध विष, पारा, गन्धक, सुहागा, सोंठ, स्वर्ण-माक्षिक प्रत्येक १ माशा सबके बराबर शुद्ध हिंगुल इनको नीबू के स्वरस में मर्दन करके सरसों क बराबर गोली बनानी चाहिये।

उपयोग—शीतांग सन्निपात में, कॉलरा में।

वीरभद्र-रस—शुद्ध पारा १ भाग, अभ्रक-भस्म १ भाग, गन्धक १ भाग, सोंठ १ भाग, मिर्च १ भाग, पिप्पली १ भाग पंचलवण ५ भाग, सौंफ १ भाग, जीरा १ भाग, काला जीरा १ भाग, इन सबको पीसकर आर्द्रक के रस में घोंटकर उड़द जितनी गोली बनानी चाहिये। मात्रा १ गोली।

अनुपान—चित्रकमूल, सैन्धानमक तथा आर्द्रक।

वेदनान्तक-रस—शुद्ध अफीम ३ माशा, नौसादर ३ माशा, खुरासानी अजवायन ३ माशा, रससिन्दूर ६ माशा इनको भाँग के रस में पीसकर दो रत्ती की गोली बनानी चाहिये।

उपयोग—वेदना-नाशक।

शृङ्गाराभ्र—अभ्रक १६ तोला, कपूर, जावित्री, नेत्रबाला, गजपिप्पली, तेजपत्र, लौंग, जटामांसी, तालीश-पत्र, दालचीनी, नागकेशर, कूठ,

धाय के फूल प्रत्येक आधा तोला, हरीतकी, आमलकी, बहेड़ा, सोंठ पिप्पल मिर्च प्रत्येक चार आना, इलायची और जायफल प्रत्येक १ तोला, गन्धक १ तोला, पारा आधा तोला, जल के साथ पीसकर चने के बराबर गोली बनानी चाहिये।

उपयोग—कास-रोग में।

शोणितालि—लोह-भस्म ½, अभ्र ½, रसौत १, फिटकरी ¼, लाल चन्दन १, स्वर्ण गैरिक १, रस-सिन्दूर १, लाक्षा ½ भाग, बबूल-पत्र रस के साथ पीसकर २ रत्ती की गोली बनानी चाहिये।

उपयोग—रक्तातिसार में, रक्तार्श में, रक्त-पित्त में, रक्त-प्रदर में।

श्वासारि-लेह—लोह ४ तोला, अभ्र १ तोला, शर्करा ४ तोला, मधु ४ तोला, त्रिफला, मुलहठी, द्राक्षा, पिप्पली, बेर की गुठली, वंशलोचन, तालीश-पत्र, बिडंग इलायची, कूठ और नागकेसर प्रत्येक १ तोला इनको लोहे की खरल में २ प्रहर तक मर्दन करना चाहिये। मात्रा १ आने से चार आने तक।

उपयोग—श्वास-रोग में।

शिरोवज्र-रस—पारा, गन्धक, लोह, निशोथ प्रत्येक ८ तोला, गुग्गुल ३२ तोला, त्रिफला चूर्ण १६ तोला, कूठ, मुलहठी, पिप्पली, सोंठ, गोखरू, दशमूल, विडंग प्रत्येक १ तोला इनको दशमूल-काथ से भावना देकर घी के साथ मर्दन करना चाहिये।

उपयोग—श्लेष्म और वात-श्लेष्म-जनित शिरो-रोग में विशेष उपकारी है।

शीतारि-रस—शुद्ध पारा १ भाग, सुहागा १ भाग, गन्धक १ भाग, दन्तीबीज २ भाग, सेंधानमक १ भाग, मिर्च १ भाग, इमली के चोंचों की राख १ भाग, शर्करा १ भाग सबको पीसकर नीबू के रस में एक दिन तक घोंटकर दो-दो रत्ती की गोली बनानी चाहिये। मात्रा—१ गोली।

अनुपान—गरम पानी।

श्वासकुठार-रस—पारा, वत्सनाभ, गन्धक, सुहागा और शुद्ध मनःसिला प्रत्येक एक-एक तोला, मिर्च ८ तोला सबका चूर्ण करके इसमें सोंठ २ तोला, मिर्च २ तोला, पिप्पली २ तोला प्रत्येक वस्तु मिलानी चाहिये। मात्रा १ रत्ती।

अनुपान—पान का पत्ता।

उपयोग—श्वास, कास, मन्दाग्नि मे।

शङ्ख-विषोदय-रस—शुद्ध शंख विष १ रत्ती, मिर्च, रससिन्दूर प्रत्येक ३ माशे, धतूरे का बीज, पिप्पली, सोंठ प्रत्येक दो-दो माशे, सबको नीबू के स्वरस मे पीसकर १ रत्ती की गोली बनानी चाहिये। एक-एक गोली दिन में दो बार देनी चाहिये।

उपयोग—भूतज्वरहर, सन्निपात-नाशक।

शिवताण्डव-रस—विष १ तोला, रससिन्दूर १ तोला, हरताल, पारा, गंधक प्रत्येक एक-एक तोला, मिर्च-चूर्ण ४ तोला, इनको आर्द्रक रस मे पीसकर १ रत्ती की गोली बनानी चाहिये।

उपयोग—सन्निपात-नाशक।

सप्तामृत लोह—हरड़, बहेड़ा, आँवला, मुलहठी और लोह-भस्म, प्रत्येक १ तोला इनको मिलाकर शीशी में रखना चाहिये। मात्रा २ से ४ रत्ती।

अनुपान—घी तथा शहद।

उपयोग—अक्षि-रोग में, मस्तिष्क-विकार में।

स्वल्प-ज्वरांकुश—पारा, गंधक, वत्सनाभ, प्रत्येक १ तोला, धतूराबीरा ३ तोला, सोंठ, मिर्च और पिप्पली प्रत्येक चार तोला इनको प्रथम नीबू के रस की और फिर आर्द्रक के रस की भावना देकर रत्ती जितनी गोली बनानी चाहिये। मात्रा २ गोली।

अनुपान—आर्द्रक का रस और शहद।

उपयोग—ज्वर में।

स्वर्ण वसन्तमालती—स्वर्ण-भस्म १ तोला, मुक्ता-भस्म २ तोला, हिंगुल ३ तोला, मिर्च ४ तोला, खपरिया ८ तोला इनको मक्खन और नीबू के रस में क्रमशः मर्दन करना चाहिये। मात्रा १ से २ रत्ती।

उपयोग—क्षय, जीर्ण ज्वर, कास, श्वास, वायु, धातु-ज्वर, रक्त-विकार कृशत्व, में।

सर्व-ज्वरहर लोह—चित्रक-मूल, हरीतकी, आमलकी, बहेड़ा, त्रिकटु, विडंग, मोथा, गज पिप्पली, उशीर, नेत्रवाला, पिप्पली-मूल देवदारु,

चिरायता, कुटकी, कन्टकारी, सहिजन बीज, मुलहठी और इन्द्रजौ प्रत्येक दो-दो आना, लोह ढाई तोला इनकी जल के साथ १ रत्ती परिमाण की गोली बनानी चाहिये।

उपयोग—पुरातन ज्वर में।

सर्वतो भद्ररस—रससिन्दूर, अभ्रक, रौप्य, स्वर्ण, मनःशिला प्रत्येक एक-एक तोला, वंशलोचन २ तोला, गुग्गुल ७ तोला जल के साथ दो आना वजन की गोली बनानी चाहिये।

उपयोग—ज्वर में, अग्निमान्द्य में, कास-रोग में, मूत्रकृच्छ्र में।

सर्वाङ्ग सुन्दर—पारा १ तोला, गन्धक १ तोला, सोहागे की खील २ तोला, मुक्ता, प्रवाल, और शङ्ख प्रत्येक दो-दो तोला, स्वर्ण आधा तोला इनको नीम की छाल के रस में पीसकर गोली बनानी चाहिये। फिर मूषा के अन्दर पाक करके, इसमें लोह आधा तोला, हिंगुल ४ आना मिलाना चाहिये। मात्रा २ रत्ती।

स्वर्ण वङ्ग—शोधित वंग को कड़ाही में पिघलाकर इसमें वंग के बराबर शुद्ध पारा मिलाकर पिष्टि बना लेनी चाहिये। फिर इस पिष्टि को भली प्रकार धोकर काला पानी निकाल देना चाहिये। पीछे से पारे से दुगुनी गन्धक और गन्धक के समान नौसादर मिलाकर कज्जली बना लेनी चाहिये। इस कज्जली को आतशी शीशी में रखकर बालुका-यंत्र पाक करना चाहिये। पाक करने पर लगा हुआ स्वर्ण के समान पीला चूर्ण प्राप्त करना चाहिये।

उपयोग—मेह-रोगनाशक, शुक्र-गाढ़कारक।

स्वर्ण सत्त्व—शुद्ध तप की हुई हरताल को अभ्रक के पत्रों के बीच में बारीक बिछाकर शराब सम्पुट को सन्धि को बेर के पत्तों के कल्क से बन्द करके मृदु अग्नि से पाक करना चाहिये। ३ घन्टे पीछे आग को समाप्त करके स्वांग शीतल होने पर पत्रों के बीच से अति सुन्दर लाल-उज्वल रंग की औषध प्राप्त करनी चाहिये। यह औषधि ज्वर के विच्छेद समय में देनी चाहिये।

सिद्ध मकरध्वज—स्वर्ण ४ तोला, गन्धक १६ तोला, पारा ८ तोला इनको चन्द्रोदय की विधि से पाक करना चाहिये।

सिन्दूरभूषण-रस—अफीम ६ माशे, स्वर्ण ६ माशे, नौसादर ६ माशे, रस-सिन्दूर दो तोला, इलायची, वंशलोचन प्रत्येक १ तोला इनको

नागर मोथे के काढ़े से पीसकर दो रत्ती की गोली बनानी चाहिये ।

उपयोग—अतिसार-रोग में ।

हिंगुलेश्वर-रस—पिप्पली, हिंगुल और विष समभाग लेकर जल के साथ आधी रत्ती की गोली बनानी चाहिये ।

उपयोग—नव-ज्वर में ।

अनुपान—आर्द्रक-रस और मधु । सायंकाल तुलसीपत्र-रस ।

हेमनाथ-रस—पारा, गन्धक, स्वर्ण, स्वर्णमाक्षिक प्रत्येक १ तोला, लोहा, कपूर, प्रवाल और बंग प्रत्येक आधा तोला इनको मोचरस, गूलर-रस से ७ भावना देकर दो रत्ती की गोली बनानी चाहिये ।

उपयोग—जीर्ण-प्रमेह, बहुमूत्र, सोमरोग की प्रसिद्ध औषधि है ।

हृदयांबि-रस—कज्जली १ भाग, ताम्र-भस्म २ भाग; इनको त्रिफला और मकोय के रस से पीसकर १ रत्ती की गोली बनानी चाहिये ।

उपयोग—हृदय-रोग-नाशक ।

रस-सम्बन्धी सामान्य सूचनायें

१. शास्त्र में एक नाम से कई रस दिये गये हैं। उदाहरण के लिये अग्निकुमार रस ही सात आठ-तरह का है। यह भेद कहीं तो ग्रन्थों में पाठ-भेद के कारण हुआ है और कहीं अधिकार-भेद से अर्थात् रोग-भेद से । जैसे—(१) अग्निकुमार-रस रत्नावलि ग्रन्थ में ज्वराधिकार में मीठा विष डालकर बनाया है ।

(२) इसी ग्रन्थ में ग्रहणी अधिकार में अफीम डालकर बनाया है ।

(३) रसेन्द्रसार-संग्रह में यही रस इन्हीं उपकरणों के साथ भाँग के बीज से बनाया है ।

(४) रसेन्द्रसार में यही रस अजीर्ण अधिकार में निम्न प्रकार से दिया है—कज्जली दो भाग, सोहागा १, अमृत ३, कौड़ी-भस्म ३, शंख-भस्म ३ और कालीमिर्च ८ भाग ।

(५) रसेन्द्रसार में अजीर्ण अधिकार में एक और अग्निकुमार रस दिया है, जैसे कज्जली, सोहागा, त्रिफला, त्रिकटु, यवक्षार और पंचलवण इनको आर्द्रक रस की सात भावना देकर वटी करनी चाहिये ।

(६) इसी ग्रन्थ में इसी अधिकार में दूसरे अग्निकुमार में अभ्रक, लोह और ताम्र डालकर बनाया है। इस प्रकार के नाम से प्रायः भ्रम पड़ जाता है। इस पुस्तक में जो भी पाठ दिया गया है, वह प्रसिद्ध पाठ समझकर दिया गया है।

२. एक रस में थोड़ा-सा परिवर्त्तन करके शास्त्र में दूसरे नाम से रस का पाठ भी दिया गया है। जैसे बृहत वंगेश्वर में थोड़ा-सा परिवर्त्तन करके प्रमेह चिन्तामणि नाम दिया गया है। ये दोनों ही नाम प्रसिद्ध हैं। इस ग्रन्थ में इस प्रकार के स्थानों में उसी सदृश फल दिखानेवाले एक या दो रस रख दिये गये हैं, जो अधिकतर व्यवहार में लाये जाते हैं।

३. इस स्थान पर 'पारा','गन्धक' आदि नामों से यह अभिप्रेत है कि इनको सदा शुद्ध करके व्यवहार में लाना चाहिये। अशुद्ध वस्तु का उपयोग सर्वथा त्याज्य है। यही बात विष—अमृत- मीठातेलिया आदि के विषय में समझना चाहिये।

४. यदि किसी रस में सोंठ लिखकर फिर त्रिकटु या सोंठ लिखी गई है, तो इसका अभिप्राय यह है कि वह दुगुनो चाहिये।

स्वरस और पुटपाक

रसों का या गोली का अथवा अन्य किसी औषधि के गुण में वृद्धि करने के लिये उसी प्रकार का अनुपान दिया जाता है। यह अनुपान या तो स्वरस के रूप में, या पुटपाक के अथवा काढ़े अथवा चूर्ण के रूप में होता है। उदाहरण के लिये—

(१) प्रमेह में—प्रमेह की औषधि के साथ गिलोय का स्वरस या चूर्ण, हल्दी का स्वरस अथवा आमलकी का चूर्ण या स्वरस मिलाकर दिया जाता है।

(२) कास या श्वास में—आर्द्रक या कंटकारी का स्वरस।

(३) ज्वर में—पान का रस, गिलोय या तुलसी का स्वरस।

इसी प्रकार सब स्थानों में सोचकर स्वरस की योजना की जाती है।

पुटपाक— पुटपाक की विधि प्रथम दी जा चुकी है। जिस समय स्वरस की प्राप्ति नहीं होती, या स्वरस से अधिक तीक्ष्ण उपयोग लेने की

आवश्यकता हो, उस समय पुटपाक की विधि से रस निकालकर काम में लाया जाता है। उदाहरण के लिये—

जामुन, आम, अनार आदि के पत्तों से पुटपाक विधि द्वारा निकाला हुआ स्वरस अतिसार में लाभ करता है; छोटी कटेरी के पुटपाक से बनाया रस इन्फ्लुयञ्जा में लाभ करता है।

जो वस्तुयें बिल्कुल शुष्क होती हैं, जैसे सोंठ, उनको कूटकर, उनमें घी मिलाकर पुटपाक किया जाता है।

प्रयोजक को चाहिये कि जिस प्रभाव के लिये वह स्वरस या पुटपाक बनाना चाहे, वह उसी प्रकार की औषधि लेकर स्वरस या पुटपाक बना ले।

इन सब बातों के लिये औषधियों का गुण-धर्म भली प्रकार स्मरण होना आवश्यक है।

यहाँ पर कुछ पुटपाक के उदाहरण दिये जाते हैं—

१. जामुन के पत्तों का पुटपाक	...	अतिसार-रोग में
२. विभीतक पुटपाक	...	कास, श्वास में।
३. दाड़िम पुटपाक	..	अतिसार, रक्त-स्राव में।
४. कण्टकारि पुटपाक	...	कास, श्वास में।
५. सूरन पुटपाक	...	अर्श में।
६. वासा पुटपाक	...	रक्त-पित्त, क्षय, कास।

क्वाथ

एक से अधिक औषधियों को चौगुने या छःगुने अथवा आठगुने या सोलहगुने पानी में पकाकर और चतुर्थांश पानी शेष रखकर कपड़े में से छानकर रोगी को औषधि के साथ या स्वतन्त्र दिया जाता है। इसका नाम क्वाथ है। कोई-कोई क्वाथ दीपन और पाचन हैं।

साधारणतः नव-ज्वर में औषधि देना निषिद्ध है। इसलिये क्वाथ, कषाय आदि भी 'भेषज' या औषधि शब्द से कहे जाते हैं, उनका भी निषेध समझा गया है। परन्तु इस स्थान पर यह स्मरण रखना चाहिये कि जो कषाय कषाय-रस हो अथवा ज्वर को उतारनेवाला हो, उसका नव-ज्वर में निषेध है। अन्य रसवाला क्वाथ या दीपन-पाचन क्वाथ दिया जा सकता है।

इन क्वाथों में इस बात का स्मरण रखना चाहिये कि यदि कोई औषधि रोगी की प्रकृति के अनुकूल नहीं है, तो उसको निकाल दें अथवा उसके स्थान पर दूसरी अनुकूल औषधि मिला दें। उदाहरण के लिये—

यदि क्वाथ में विरेचन औषधि नहीं है और रोगी को देना अभीष्ट है, तो उसमें मिला देनी चाहिये।

अग्निमन्थ-क्वाथ—अरणी के मूल की छाल ढाई तोला सोलह-गुना पानी में क्वाथ करके चतुर्थांश शेष रखना चाहिये। मात्रा २ से ५ तोला।

उपयोग—वसामेह में।

अर्कादि-क्वाथ (१)—अर्क-मूल, जीरा, सोंठ, मिर्च, पिप्पली, भाँगरे का मूल, कण्टकारि, काकड़ाशृङ्गी और पुष्करमूल इनका क्वाथ गोमूत्र से सिद्ध करके पीने से शीतांग सन्निपात, ज्वर, दाह, श्वास, कफ नष्ट होता है।

अर्कादि-क्वाथ (२)—अर्कमूल, धमासा, चिरायता, देवदारु, रास्ना, बच, सम्भालु, अरणी, सुहांजना, पिप्पलीमूल, पीपल, चव्य, चीता, सोंठ, अतीस, भाँगरा इन सोलह औषधियों का क्वाथ सन्निपात-ज्वर, धनुर्वात, शीत, श्वास, कास, मूर्छा, वात-रोग को नष्ट करता है।

अतिविषादि-क्वाथ—अतीस, उशीर, बेल, इन्द्रजौ, नागरमोथा, धनिया, सोंठ इनका काढ़ा सब प्रकार के अतिसार को नष्ट करता है और मल-शुद्धि करता है।

अभयादि-क्वाथ—अभया, हरड़, नागरमोथा, धनिया, रक्तचन्दन, पद्माख, वासकपत्र, इन्द्रजौ, नेत्रवाला, गिलोय, अमलतास का गूदा, पान, सोंठ, कूठा।

अनुपान—पिप्पली-चूर्ण।

उपयोग—त्रिदोष-ज्वर, दाह, कास, दमा, तन्द्रा को नाश करता है, दीपन और पाचन है, मल-मूत्र, वायु, कब्जीयत, उल्टी, विरसास्यता, मुँह का सूखना तथा अरुचि को नष्ट करता है। सब प्रकार के ज्वर में उपयोगी है।

अमृतादि-क्वाथ (१)—गिलोय और त्रिफला का काढ़ा।

अनुपान—पिप्पली-चूर्ण और मधु।

उपयोग—सब रोगों में।

अमृतादि-क्वाथ (२)—गिलोय, सोंठ, आँवला, अश्वगन्धा और गोखरू इनका काढ़ा मधु के साथ पीने से मूत्रकृच्छ्र-रोग नष्ट होता है।

अमृतादि-क्वाथ (२)—गिलोय, एरण्ड-मूल और बाँस का पत्ता; इनका काढ़ा एरण्ड का तेल डालकर पीने से वात-रक्त नष्ट होता है।

अमृताष्टक—गिलोय, नीबू की अन्तःछाल, कूड़ा, इन्द्रजौ, नागरमोथा, सोंठ, परवल, रक्ताञ्जली (लालचन्दन) इनका क्वाथ पिप्पली-चूर्ण के साथ पीने से पित्त, कफ, ज्वर, वमन, अरुचि, दाह, प्यास आदि को नष्ट करता है।

अवल्गुजादि-क्वाथ—आँवला, खैरसार इन दोनों का काढ़ा करके, बावची का चूर्ण डालकर पीना चाहिये। पथ्य—सात्त्विक खूराक, श्वित्र, कोढ़ के लिये उपयोगी है।

अश्वत्थादि क्वाथ—पीपल की छाल, पाठा, बेल की छाल; इनके काढ़े मे मधु डालकर पीने से पित्त-मेह शान्त होता है।

आरग्वधादि क्वाथ—आरग्वध, पिप्पली-मूल, नागरमोथा, कुटज, हरड़; इनका काढ़ा वात-ज्वर, आम-शूल तथा मल-बन्ध को नष्ट करके दीपन, पाचन करता है।

इन्द्रयवादि-क्वाथ—इन्द्रजौ, धनिया, पटोल, इनका काढ़ा मधु तथा शर्करा मिलाकर पीने से सब प्रकार के अतिसार नष्ट होते हैं।

एरण्ड-क्वाथ—एरण्ड-मूल ८ तोला आठगुने पानी में पकाकर जब अष्ठमांश शेष रहे, तब इसमें जौखार ६ माशा मिलाकर पीना चाहिये।

उपयोग पार्श्वशूल, हृदयशूल और कफशूल मे।

एलादि-क्वाथ—इलायची, मुलहट्टी, गोखरू, रेणुकाबीज, एरण्ड का मूल, वासापत्र, पीपल और पाषाण-भेद—इस काढ़े में शिलाजीत मिलाकर पीना चाहिये। इससे शर्करा, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी रोग में लाभ होता है।

कंटकारी-क्वाथ—कण्टकारी का काढ़ा पिप्पली का चूर्ण डालकर पीने से कास और श्वास में लाभ करता है।

कंटकार्यादि पाचन—दोनों प्रकार की कटेरी, सोंठ, देवदारु, धनिया। यह काढ़ा पाचन होने से सब ज्वरों में बरता जाता है।

कटफलादि-क्वाथ—कायफल, मोथा, भारंगी-मूल, धनिया, खेतपापड़ा, वच, हरड़, काकड़ाशृङ्गी, सोंठ, देवदारु, काला जीरा, चिरायता, पिप्पली,

कुटकी, इन्द्रयव; इनके काढ़े में हींग और आर्द्रक-रस मिलाकर प्रक्षेप करने से वात-ज्वर, कफोल्बन सन्निपात नष्ट होता है।

कटफलादि-क्वाथ २.—कायफल, इन्द्रजौ, पाठा, कुटज, नागरमोथा इनका काढ़ा तीव्र पित्त-ज्वर के प्रारम्भ में दस दिन तक पीना चाहिये।

कुटजाष्टक-क्वाथ—कुटज, अतिविष, पाठा, धाय के फूल, लोध्र, नागरमोथा, उशीर, अनार की छाल, इनका काढ़ा मधु और मोचरस के प्रक्षेप के साथ लेना चाहिये।

उपयोग—अतिसार में, दाह, आम और रक्त-युक्त अतिसार में।

खदिरादि-क्वाथ—खैर की छाल, त्रिफला इन चारों का काढ़ा करके भैंस का घी तथा वायविडङ्ग डालकर पीना चाहिये।

उपयोग—भगन्दर-रोग में।

खाँसी का क्वाथ—सौंफ, काला हंसराज, कमल-फूल, वासक-पत्र, अमलतास, काली किशमिश, मुलहट्टी।

अनुपान—शीतल होने पर मधु डालकर पीना चाहिये।

उपयोग—सब प्रकार के कास में।

गुडूच्यादि-क्वाथ (१)—गिलोय, धनिया, नेत्रवाला, सोंठ, उशीर, पित्तपापड़ा, बेल, अतीस, पाठा, लालचन्दन, कूड़ा-छाल, चिरायता, नागरमोथा, इन्द्रजौ।

अनुपान—क्वाथ करके इसमें शहद डालकर पीना चाहिये। ज्वरातिसार, रक्तपित्त में उपयोगी है।

गुडूच्यादि-क्वाथ (२)—गिलोय, धनिया, नागरमोथा, लालचंदन, नेत्रवाला, सोंठ।

अनुपान—मधु तथा शर्करा।

उपयोग—ज्वर, पिपासा, दाह में।

गुडूच्यादि-क्वाथ (३)—गिलोय का क्वाथ करके इसमें पिप्पली का चूर्ण मिलाकर पीना चाहिये। जीर्ण ज्वर में उपयोगी है।

गुडूच्यादि-क्वाथ (४)—गिलोय, धनिया, नीम की अन्तः-छाल, लालचन्दन, पद्माख।

उपयोग—सर्व ज्वर, दाह, तृषा, वमन, अरुचि, मन्दाग्नि में।

गुडूच्यादि पाचन—गिलोय, पिप्पली-मूल, सोंठ, वात-ज्वर के संपूर्ण लक्षण मालूम होने पर ज्वर के सातवें दिन यह काढ़ा देना चाहिये।

उपयोग—वात-ज्वर में।

ग्रन्थ्यादि-क्वाथ—पिप्पली-मूल इन्द्रजौ, देवदारु, गुग्गुल, वायविडङ्ग, भारंगी-मूल, भाँगरा, सोंठ, मिर्च, पिप्पली, चित्रकमूल, कायफल, कूठ, रास्ना, हरड़, दोनों कटेरी, अजवायन, चिरायता, बच, चविका, पाठा। सन्निपात ज्वर में उपयोगी है।

गोक्षुरादि-क्वाथ—गोखरू के पञ्चाङ्ग का क्वाथ करके इसमें शर्करा और मधु मिलाकर पीने से प्रमेह मिटता है, और जौखार मिलाकर पीने से मूत्रकृच्छ्र मिटता है।

चातुर्भद्रादि-क्वाथ—गिलोय, अतीस, सोंठ, मोथा।

उपयोग—आम-सहित संग्रहणी में, मल को दृढ़ करता है, दीपन-पाचन है।

जलदादि-क्वाथ—मोथा, पद्माख, पित्तपापड़ा, चन्दन, जई, शतावरी, मुलहठी, नीम की अन्तःछाल, उशीर, चित्रक और लालचन्दन, इनका काढ़ा रक्तष्ठीवी, सन्निपात-ज्वर में, मधु डालकर पीना चाहिये।

जलधरादि-क्वाथ—मोथा, लालचन्दन, सोंठ, नेत्रबाला, उशीर, पित्तपापड़ा; इनका क्वाथ सन्निपात-ज्वर में लाभदायक है।

तिक्तादि-क्वाथ—कुटकी, मोथा, इन्द्रजौ, पाठा, कायफल।

अनुपान—शर्करा।

उपयोग—पित्त-ज्वर में।

त्रिफलादि-क्वाथ (१)—त्रिफला का काढ़ा गोमूत्र डालकर पीना चाहिये।

उपयोग—वृषण शोथ में।

त्रिफलादि-क्वाथ (२)—त्रिफला के काढ़े में मधु डालकर पीने से मेद-वृद्धि कम होती है।

त्रिफलादि-क्वाथ (३)—त्रिफला-क्वाथ में गुग्गुल मिलाकर पीने से व्रण अच्छे होते हैं।

त्रिफलादि-क्वाथ (४)—हरड़, बहेड़ा, आँवला, देवदारु, नागर-

मोथा आखुकर्णी तथा शिरीष की मूल की छाल, इनके क्वाथ में पीपल, वाय-विडंग-चूर्ण मिलाकर पीना चाहिये।

उपयोग—कृमि-रोग में।

त्रिफलादि-क्वाथ (५)—त्रिफला, गिलोय, कुटकी, नीम की अन्तः-छाल, चिरायता, वासकपत्र इन आठ चीजों के काढ़े में मधु मिलाकर पीने से कामला तथा पाण्डु-रोग नष्ट होते हैं।

त्रिफलादि-क्वाथ (६)—त्रिफला, दारुहल्दी, इन्द्रायण, नागरमोथा, देवदारु।

अनुपान—मधु और हल्दी।

उपयोग—प्रमेह में।

त्रिफलादि-क्वाथ (७)—त्रिफला, आरग्वधका गोंद इसके काढ़े में शर्करा या मधु मिलाकर पीने से रक्तपित्त, लालामेह, दाह, पित्तशूल मिटता है।

दशमूलादि-क्वाथ—बिल्व-मूल, अग्निमन्थ-मूलछाल, काश्मरी-मूल छाल, पाढल, दोनों (छोटी-बड़ी) कटेरी, गोखरू, शालपर्णी, पृश्निपर्णी।

अनुपान—पिप्पली-चूर्ण।

उपयोग—वात-कफ-ज्वर, सन्निपात-ज्वर, प्रसूता के सब विकारों में, शोथ, शीतता, अति स्वेद, श्रम, खाँसी, दमा, तन्द्रा, मस्तक-शूल वगैरः में लाभदायक है।

दशमूल-क्वाथ—दशमूल के काढ़े में जौखार तथा सेंधानमक मिलाकर देने से हृदय का रोग, गुल्म, शूल, कास, श्वास मिटता है।

द्राक्षादि-क्वाथ—द्राक्षा, छोटी हरड़, नागरमोथा, कुटकी, अमल-तास, पित्तपापड़ा। ज्वर के साथ प्यास, मूर्च्छा, दाह, रक्त-पित्त में लाभ करता है।

दार्व्यादि-क्वाथ—दारुहल्दी, रसौंत, नागरमोथा, भिलावा, बेल, बाँसे का पत्ता, चिरायता इनका काढ़ा ठण्डा करके, शहद डालकर पीने से स्त्रियों का शूल, प्रदर-रोग मिटता है।

दार्व्यादि-क्वाथ—दारुहल्दी, पटोल, मोथा, कण्टकारी, कटुकी, हल्दी, कड़ुवानीम, हरड़, बहेड़ा, आँवला इनका काढ़ा भुग्ननेत्र सन्निपात-ज्वर में देना चाहिये।

द्वात्रिंशांग-क्वाथ—भारंग-मूल, चिरायता, नीम की छाल, मोथा, कुटकी, वच, सोंठ, पिप्पली, मिर्च, अडूसा, वासा, इन्द्रायण, रास्ना, धमासा, पटोल, देवदारु, हल्दी, पाठा, जहरकुचला, ब्राह्मी, दारुहल्दी, गिलोय, निशोथ, अतीश, पुष्करमूल, त्रायमाणा, बड़ी कटेरी, छोटी कटेरी, हरड़, बहेड़ा, आँवला, इन्द्रजौ, कचूर, इन ३२ चीजों को क्वाथ करके पीने से सब प्रकार का सन्निपात, शूल, कास, दमा, उरुस्तम्भ, कफ आदि भयंकर रोगों को नष्ट करता है।

दाड़िमादि-क्वाथ--दाड़िम, (अनार) की छाल तथा कुटज-छाल; इनका क्वाथ शहद डालकर पीने से रक्तातिसार नष्ट होता है।

देवदार्व्यादि-क्वाथ (१)—देवदारु, अतीस, पान, वायविडंग, मोथा, मिर्च, कुडा-छाल। अतिसार-रोग में दिया जाता है।

देवदार्व्यादि-क्वाथ (२)—देवदारु, वच, सोंठ, कूठ, पिप्पली, कायफल, मोथा, चिरायता, कुटकी, धनिया, छोटी हरड़, गजपिप्पली, छोटी कटेरी, गोखरू, धमासा, बड़ी कटेरी, अतीस, गिलोय, काकड़ाश्रृंगी, काला जीरा।

प्रसूता के सब रोगों में—उदरशूल, कास, ज्वर, श्वास, मूर्च्छा, मस्तक-शूल, कम्प वायु, आक्षेप आदि में उपयोगी है।

देवदार्व्यादि-क्वाथ (३)—देवदारु, हरड़, बाँस के पत्ते, संचल लवण, सोंठ, आँवला इनके क्वाथ को ठण्डा करके शहद डालकर पीने से चातुर्थिक ज्वर नष्ट होता है।

धातक्यादि-क्वाथ--धाय के फूल, बेल, लोध्र, नेत्रबाला, गजपिप्पली इनके काढ़े में शहद मिलाकर पीना चाहिये। बालकों के सब प्रकार के अतिसार को मिटाता है।

धान्यादि-क्वाथ (१)—धनिया, नेत्रबाला, बेल, मोथा। पित्तातिसार में लाभ करता है।

धान्यादि-क्वाथ (२)—धनिया, सोंठ इनका काढ़ा दीपन और पाचन है। इनमें एरण्डमूल मिलाकर पीने से आमवात की पीड़ा मिटती है।

धान्यपञ्चक—धनिया, नेत्रबाला, बेल, नागरमोथा, सोंठ इनका क्वाथ आम शूल में, मरोड़े में, अतिसार में, अपक्व मल की अवस्था में लाभ करता है।

नागरादि-क्वाथ (१)—सोंठ, कूडाछाल, नागरमोथा, गिलोय, अतीस, ज्वरातिसार में, ज्वर में, अतिसार में लाभदायक है।

नागरादि-क्वाथ (२)—सोंठ, एरंड-मूल इनके काढ़े में सिकी हुई हींग तथा संचल नमक मिलाकर पीने से या इन्द्रजौ के काढ़े में ये चीजें मिलाकर पीने से वायु-शूल मिटता है।

नागरादि-पाचन—सोंठ, देवदारु, धनिया, दोनों कटेरी इनको क्वाथ करके नवज्वर में देने से लाभ होता है।

निदिग्धकादि-क्वाथ—छोटी कटेरी, गिलोय, सोंठ।

अनुपान—पिप्पली चूर्ण। श्वास, कास के सहित ज्वर में, सर्दी में, शूल में, स्वर-भङ्ग में, जीर्ण-ज्वर में दिया जाता है।

नीम-क्वाथ—नीम की अन्तः-छाल को आठगुने पानी में पकाकर काढ़ा करके देने से ज्वर रुकता है।

पटोलादि-क्वाथ (१)—परवल, त्रिफला, कटुकी, कचूर, गिलोय, वासक-पत्र।

अनुपान—मधु। कफ-ज्वर में लाभ करता है।

पटोलादि-क्वाथ (२)—परवल, लालचन्दन, कटुकी, मोरबेल, पाठा, गिलोय।

उपयोग—पित्त-कफ-ज्वर में, वमन, दाह, कंडू, विष में।

पटोलादि-क्वाथ (३)—परवल, हरड़, बहेड़ा, आँवला, कड़वे नीम की अन्तःछाल, द्राक्षा, अमलतास का गूदा, वासकपत्र।

अनुपान—शर्करा और मधु। प्रतिदिन के शीत ज्वर में उत्तम है।

पटोलादि-क्वाथ (४)—परवल, इन्द्रजौ, देवदारु, त्रिफला, नागरमोथा, अंगूर, मुलहठी, गिलोय, वासकपत्र।

अनुपान—शहद।

उपयोग—सतत, संतत, ऐकाहिक ज्वर, चातुर्थिक ज्वर, शीत ज्वर में लाभ करता है।

पटोलादि-क्वाथ (५)—परवल, त्रिफला, कटुकी, गिलोय, शतावरी इन सात चीजों का काढ़ा दाह-युक्त वात-रक्त में लाभदायक है।

पटोलादि-क्वाथ (६)—परवल की बेल, त्रिफला, नीम की अन्तः-छाल, चिरायता, कत्था।

अनुपान—गुग्गुल अथवा त्रिफला। सब प्रकार के उपदंश रोगों में गरमी के रोग में लाभदायक है।

पथ्यादि-क्वाथ (१)—त्रिफला, चिरायता, हल्दी, नीम की अन्तःछाल, गिलोय।

अनुपान—पुराना गुड़।

उपयोग—मस्तिष्क-शूल, आँख तथा कान का शूल, आधाशीशी, सूर्य्यावर्त्त, शङ्खक-रोग, दन्तपात, दन्त-शूल, रतौंधी, आँख के परवाल, आँख की पीड़ा में लाभदायक है।

पथ्यादि-क्वाथ (२)—हरड़, वासा, फालसा, देवदारु, कटुकी, रास्ना, गिलोय और कुलींजन का काढ़ा अंतः-सन्निपात-ज्वर में लाभदायक है।

पथ्यादि-क्वाथ (३)—हरड़, रक्त-रोहितक इनके काढ़े में जौखार तथा पिप्पली का चूर्ण मिलाकर पीने से यकृत, प्लीहा, गुल्म और ज्वर-रोग नष्ट होता है।

पर्पटादि-क्वाथ (१)—पित्तपापड़ा, वासकपत्र, कटुकी, चिरायता, धमासा, प्रियंगु इनके काढ़े में शर्करा मिलाकर पीने से पित्तज्वर, प्यास, दाह, रक्त-पित्त शान्त होता है।

पर्पटादि-क्वाथ (२)—पित्तपापड़ा, नागरमोथा, गिलोय, सोंठ, चिरायता इनके काढ़े को 'पञ्चभद्र' कहा जाता है।

उपयोग—वात-पित्त-ज्वर में।

पर्पटादि-क्वाथ (३)—पित्तपापड़े का काढ़ा पिप्पली-चूर्ण मिलाकर पीने से पित्त-ज्वर शान्त होता है।

पर्पटादि-क्वाथ (४)—पित्तपापड़ा, चन्दन लाल, नेत्रवाला, नागर-मोथे का काढ़ा पित्त-ज्वर में उपयोगी है।

पिप्पली-क्वाथ—पिप्पली १ तोला आठगुने पानी में उबालकर चतुर्थांश बचने पर पीने से अग्निदीपन होता है, ज्वर, कफ, वात तथा प्लीहा-रोगों में लाभ होता है।

पुनर्नवादि-क्वाथ (१)—पुनर्नवा, हरड़, नीम की अन्तःछाल, दारुहल्दी, कुठ, परवल, गिलोय, सोंठ।

अनुपान—गोमूत्र। शोथ-युक्त पाण्डु-रोग, ज्वर-रोग, दमा, शूल में लाभदायक है।

पुनर्नवादि-क्वाथ (२)—पुनर्नवा, वरणा के मूल की छाल इनका काढ़ा अन्तर्विद्रधि, उदर के अन्दर के व्रण को, शोथ को अच्छा करता है।

पुनर्नवादि-क्वाथ (३)—पुनर्नवा, दारुहल्दी, हल्दी, सोंठ, छोटी हरड़, गिलोय, चित्रकमूल, भारंगमूल, देवदारु इनका काढ़ा हाथ, पाँव, पेट, मुँह के ऊपर की शोथ को कम करता है।

फलत्रिकादि-क्वाथ—त्रिफला, देवदारु, नागरमोथा, दारुहल्दी तथा इन्द्रवारुणी का मूल इनके काढ़े में हल्दी का चूर्ण और शहद मिलाकर पीने से सब प्रकार के प्रमेह मिटते हैं। इसको त्रिफलादि-क्वाथ भी कहते हैं।

बृहत्मंजिष्ठादि-क्वाथ—मजीठ, नागरमोथा, कुडाछाल, गिलोय, कूठ, सोंठ, भारंगी, कटेरी छोटी, वच, नीबू की छाल, हल्दी, दारुहल्दी, त्रिफला, पटोल, कटुकी, मोरबेल, वायविडंग, चित्रकमूल, शतावरी, इन्द्रायण, पिप्पली, इन्द्रजौ, वासक के पत्ते, भाँगरा, देवदारु, पान, कत्था, लालचन्दन, निशोथ, वरणा, चिरायता, बावची, अमलतास का गूदा, शिग्रु की छाल, बकायन की छाल, करंज की छाल, अतीस, नेत्रवाला, इन्द्रायण की जड़, धमासा, अनन्तमूल, पित्तपापड़ा इन ४५ चीजों का काढ़ा, पिप्पली का चूर्ण और गुग्गुल के साथ लेने से १८ प्रकार का कुष्ठ, वातरक्त, अर्दित, उपदंश, श्लीपद, शून्यवात, पक्षाघात, मेद तथा नेत्र-रोग अच्छे होते हैं।

ब्राह्म्यादि-क्वाथ—ब्राह्मी, वच, शतावरी, त्रिफला, कटुकी, नेत्रवाला, अमलतास का गूदा, चिरायता, नीम, पटोल, द्राक्षा, दशमूल इनका काढ़ा चित्त-विभ्रम-सन्निपात में उपयोगी है।

भारंग्यादि-क्वाथ—भारंगीमूल, गिलोय, मोथा, कटेरी, हरड़, पुष्करमूल, सोंठ इनका काढ़ा तीन दिन तक पीने से तान्द्रिक सन्निपात-ज्वर अच्छा होता है।

भूनिम्बादि-क्वाथ—चिरायता, नीम की छाल, पिप्पली, कचूर, सोंठ, शतावरी, गिलोय, कटेरी। कफ-ज्वर में उपयोगी है।

महारास्नादि-क्वाथ—रास्ना, धमासा, नेत्रवाला, एरण्ड की मूल, देवदारु, कचूर, वच, वासक-पत्र, सोंठ, हरड़, चवक, नागरमोथा, पुनर्नवा, गिलोय, विधारा, सौंफ, गोखरू, असगन्ध, अतीस, अमलतास का गूदा, शतावरी, पिप्पली, धनिया, दोनों कटेरी, रास्ना।

अनुपान—सोंठ का चूर्ण या पिप्पली का चूर्ण या योगराज गुग्गुल अथवा अजमोदादि चूर्ण अथवा एरण्ड-तैल।

उपयोग—सर्वांग कम्पवायु, अर्धांग, कब्जत्व, अपबाहुक, गृध्रसी, आमवात, श्लीपद-रोग, अपतानक, आंत्रवृद्धि, अफारा, जंघा तथा घुटने की वायु, वीर्य में रहनेवाली वायु, मूत्राशय की वायु, वन्ध्या-दोष, योनि-दोष में उपकारी है।

मुस्तादि-क्वाथ (१)—मोथा, नेत्रबाला, दशमूल, सोंठ, पित्तपापड़ा, लालचन्दन, धाय के फूल, बासा और इसका काढ़ा पीने से प्रलापक, सन्निपात ज्वर को आराम होता है।

मुस्तादि-क्वाथ (२)—नागरमोथा, कटेरी, गिलोय, सोंठ, आँवला।

अनुपान—मधु तथा पिप्पली-चूर्ण।

उपयोग—विषम ज्वर में।

रास्नादि-क्वाथ—रास्ना, गिलोय, बला, मुलहट्ठी, गोखरू, एरण्ड-मूल इनका काढ़ा एरण्ड-तैल के साथ पीने से आंत्र-वृद्धि रोग शान्त होता है।

रास्नापंचक-क्वाथ—रास्ना, गिलोय, देवदारु, सोंठ, एरण्ड-मूल इनके काढ़े को पिप्पली-चूर्ण के साथ या सेंधानमक के साथ लेने से सातों धातु के अन्दर की वायु तथा सर्वाङ्ग वायु नष्ट होती है। इसी काढ़े में पुनर्नवा और अमलतास का गूदा मिलाकर देने से यह रास्नासप्तक बन जाता है।

रास्नादि-क्वाथ (१)—रास्ना, सोंठ, गिलोय, कुरण्डक, मोथा, शतावरी, हरड़, देवदारु, कटुकी, कचूर, वासा, एरण्ड-मूल, और दशमूल इनका काढ़ा सन्धिक सन्निपात को आराम करता है।

रास्नादि-क्वाथ (२)—रास्ना, असगन्ध, मोथा, कटेरी, भारंगी-मूल, वच, पुष्करमूल, कुटकी, काकड़ाशृङ्गी, हरड़ इनका काढ़ा कर्णिक सन्निपात ज्वर में विशेष उपयोगी है।

रिंगण्यादि-क्वाथ—कटेरी, भारंगीमूल, पुष्करमूल, कचूर, कर्कटक-शृङ्गी, धमासा इनका काढ़ा अभिन्यास तथा सन्निपात-ज्वर में उपयोगी है।

लघुमंजिष्ठादि-क्वाथ—मजीठ, त्रिफला, कटुकी, वच, दारुहल्दी, गिलोय, नीम की अन्तःछाल इन नौ चीजों का काढ़ा करके पीने से वात-रक्त, कण्डु, कापालिक-कुष्ठ, मण्डल-कुष्ठ मिटता है।

लघुक्षुद्रादि-क्वाथ—कटेरी, सोंठ, गिलोय, पोखरमूल इनका काढ़ा कफ-युक्त ज्वर में दिया जाता है। इसी प्रकार त्रिदोष-ज्वर, कास, श्वास, शूल, अरुचि को नष्ट करता है।

वत्सकादि-क्वाथ (१)—कुटज-छाल, त्रिफला, दारुहल्दी, मोथा, बेल का गूदा इन सात चीजों का काढ़ा शहद के साथ लेने से प्रमेह मिटता है।

वत्सकादि-क्वाथ (२)—कुटज-छाल, अतीस, बेल, नागरमोथा, नेत्रबाला, यह काढ़ा आम-युक्त अतिसार में, शूल-युक्त रक्तातिसार में उपयोगी है।

वरुण-क्वाथ—वरुण के मूल की छाल का काढ़ा वरुण के चूर्ण के साथ लेने से पथरी, शर्करा नष्ट होती है। इसमें शहद मिलाकर पीने से गण्डमाला नष्ट होती है।

वासादि-क्वाथ (१)—वासे का पत्ता, सोंठ, गिलोय, देवदारु, लाल-चन्दन, चित्रक, चिरायता, नीम की छाल, कुटकी, पटोल की बेल, त्रिफला, नागरमोथा, जौ, इन्द्रजौ, कुटज-छाल; इन १७ चीजों का काढ़ा आँख के सब प्रकार के रोगों को तथा स्वर-भंग को, प्रतिश्याय को, श्वास एवं उरःक्षत को नष्ट करता है।

वासादि-क्वाथ (२)—वासक-पत्र, द्राक्षा, हरड़; इनका काढ़ा मधु तथा शर्करा के साथ पीने से रक्तपित्त, श्वास और कास अच्छे होते हैं।

वासादि-क्वाथ (३)—वासक-पत्र का काढ़ा करके इसमें मधु मिलाकर पीने से रक्तपित्त, क्षय-कास और कफ, पित्त-ज्वर शान्त होते हैं।

वासादि-क्वाथ (४)—वासकपत्र, कटेरी, गिलोय इनका काढ़ा मधु के साथ पीने से ज्वर, कास नष्ट होते हैं।

शक्राह्वादि-क्वाथ—इन्द्रजौ, कवडिया का मूल, अतीस, गिलोय, निर्गुण्डीमूल, भाँगरा, सोंठ, कटेरी, अजवायन इनका काढ़ा शीत-ज्वर में उपयोगी है।

शुण्ठ्यादि-क्वाथ—कचूर, पित्तपापड़ा, सोंठ, देवदारु, धमासा, मोथा, कुटकी, कटेरी, चिरायता।

अनुपान—पिप्पली और मधु।

उपयोग—विषम ज्वर, त्रिदोष-ज्वर में, सब प्रकार के ज्वरों में।

शाखोटक-क्वाथ—शिग्रु की छाल का काढ़ा गोमूत्र के साथ पीने से पाँव का हाथी जैसा हो जाना अच्छा हो जाता है।

शिग्र्वादि-क्वाथ—शिग्रु की छाल, वरणा की छाल, पिप्पली की छाल, अजवायन, हल्दी तथा आमाहल्दी इनका काढ़ा।

अनुपान—हीराबोल का चूर्ण १० माशे।

उपयोग—अन्तर्विद्रधि में।

शिग्रु-क्वाथ—शिग्रु की छाल का काढ़ा घी में भूनी हींग, सैन्धव, पानी में पीसकर पीने से विद्रधि शान्त होती है।

शुण्ठ्यादि-क्वाथ—सोंठ तथा भारंगीमूल का काढ़ा श्वास-रोग को आराम करता है।

शुण्ठि-क्वाथ—सोंठ १ तोला, इसको १६ गुना पानी में काढ़ा करना चाहिये।

अनुपान—घी में भुनी हुई हींग ३ रत्ती, सोंचल लवण १ माशा, सोंठ का चूर्ण २ माशा। कफ, वात, अजीर्ण, शूल में उपयोगी है। सोंठ के काढ़े में शहद मिलाकर पीने से प्रतिश्याय, श्वास, कास, उदर-विकार तथा खराब पानी के रोग मिटते हैं।

शृङ्ग्यादि-क्वाथ—काकड़ाशृङ्गी, कुड़ाछाल, हरड़, मोथा, कचूर, चिरायता, भारंगी, मूल, हल्दी, कटुकी, पुष्करमूल, चित्रक, कटेरी, वासा, आँवला, देवदारु, बहेड़ा, चवक, सोंठ, पिप्पली और कायफल इनका काढ़ा कण्ठ, कुब्ज, सन्निपात-ज्वर को नष्ट करता है।

षडंग-क्वाथ—उशीर, नागरमोथा, पित्तपापड़ा, लालचन्दन, नेत्रबाला और सोंठ इनका काढ़ा ठण्डा करके देने से प्यास, दाह तथा दाह-ज्वर मिटता है।

समंगादि-क्वाथ—रीसामणिका मूल, धातकी फूल, अनन्तमूल, लोध्र इनका काढ़ा मधु के साथ लेने से बालकों का अतिसार मिटता है।

सारिवादि-क्वाथ—सारिवा, पाठा, देवदारु, चिरायता, मोरवेल, कटुकी, गिलोय, सोंठ, मोथा, इन्द्रजौ इनका काढ़ा स्त्रियों के विकृत दूध को शुद्ध करता है।

सिंहादि-क्काथ—कटेरी, सोंठ, पुष्करमूल, कुटकी, रास्ना, गिलोय, भारंगीमूल, काकड़ाशृङ्गी, कचूर, मोथा, ब्राह्मी, वच, चिरायता इनका काढ़ा जिह्वक सन्निपात में लाभदायक है।

हरीतक्यादि-क्वाथ—छोटी हरड़, धमासा, अमलतास का गूदा, गोखरू, पाषाणभेद इनका काढ़ा मूत्रकृच्छ्र, मूत्रदाह तथा पीड़ा को शान्त करता है।

ह्रीबेरादि-क्वाथ—हऊबेर, धातकी फूल, पाठा, लोध, लज्जालु, कुडाछाल, धनिया, अतीस, नागरमोथा, गिलोय, बेल, सोंठ इनका काढ़ा पुराने अतिसार, आमशूल, रक्तातिसार, ज्वर को दूर करके पाचन करता है।

क्षुद्रादि-क्वाथ (१)—कटेरी, कुलथी, वासकपत्र, सोंठ के काढ़ा में पुष्करमूल का चूर्ण मिलाकर पीने से श्वास-युक्त कास मिटता है।

क्षुद्रादि-क्वाथ (२)—कटेरी, चिरायता, कटुकी, सोंठ, गिलोय, नागरमोथा पुष्करमूल, यह काढ़ा आठों प्रकार के ज्वर के लिये उपयोगी है।

क्षुद्रादि-क्वाथ (३)—कटेरी, धनिया, सोंठ, गिलोय, नागरमोथा, पद्माख, लज्जालु, चिरायता, परवल, वासकपत्र, पुष्करमूल, कटुकी, इन्द्रजौ, कड़वे नीम की छाल, भारंगी-मूल, पित्तपापड़ा इनका काढ़ा प्रातःकाल पीने से सब प्रकार का शीत ज्वर शान्त होता है।

क्षुद्रादि-क्वाथ (४)—कटेरी, गिलोय, सोंठ और कड़ुवो कूठ इनका काढ़ा पीने ज्वर, श्वास, कास, अरुचि, पार्श्व-शूल नष्ट होते हैं।

चूर्ण

चूर्णों को बनाने के लिये यह उत्तम विधि है कि प्रयोग की वस्तुओं को पृथक्-पृथक् कूट-छानकर फिर मिलाया जाय। चूर्ण मैदे जितना बारीक करना भी अच्छा नहीं। यदि थोड़ा दानेदार रहे, तो अच्छा। चूर्ण के रखने चाहियें जितने कि बरसात से पहले समाप्त होजायँ।

अग्निमुख-चूर्ण—हींग १ भाग, वच २, पि
अजवायन ५, हरड़ ६, चित्रक ७ भाग, कूठ ८ भाग
दही, छाछ या गरम पानी के साथ सेवन करने

उदर-रोग, मलविरोध, शूल, गुल्म, कास, दमा आदि नष्ट होते हैं; जठराग्नि प्रदीप्त होती है; पाचन-क्रिया में बहुत उपयोगी है। मात्रा ¼ से ½ तोला।

अजमोदादि-चूर्ण १.—अजवायन, वायबिडङ्ग, सेन्धानमक, देवदारु, चित्रक, पिप्पली-मूल, सौंफ, पिप्पली, मिर्च, प्रत्येक १ तोला, हरीतकी छाल ५ तोला, विधारा १० तोला, सोंठ १० तोला इन सबका चूर्ण गरम पानी के साथ सेवन करने से आमवात, शोथ, सन्धिवात, गृध्रसी वायु तथा पार्श्व-शूल, वात-विकार, वात-शूल नष्ट होते हैं। मात्रा ½ तोला। चूर्ण के बराबर गुड़ मिलाकर गोली भी ले सकते हैं।

अजमोदादि-चूर्ण (२)—अजवायन, मोचरस, सोंठ, धातकी फूल, इनका चूर्ण गाय की छाछ के साथ लेने से अतिसार-रोग में लाभ करता है। मात्रा दो आने भर से ४ आने तक।

अतिविष-चूर्ण—अतीस का चूर्ण मात्रा १ रत्ती से दो रत्ती।

अनुपान—शहद। बालकों के ज्वर, कास, कृमि, वमन, अतिसार में लाभदायक है।

अश्वगन्धादि-चूर्ण—असगन्ध ४० तोला, विधारा ४०, इनका चूर्ण घी से लिप्त पात्र में रखकर खाना चाहिये।

अनुपान—गाय का दूध; मात्रा १ तोला।

उपयोग—पुष्टि के लिये।

आकारकरभादि-चूर्ण—अकरकरा, सोंठ, कंकोल, केसर, पिप्पली, जायफल, लवंग, चन्दन प्रत्येक एक-एक तोला, अफीम ४ तोला, इनका चूर्ण।

अनुपान—मधु। मात्रा १ माशा।

उपयोग—वीर्य-स्तम्भन, वीर्य-स्राव को बन्द करती है।

आत्मगुप्तादि-चूर्ण—कौंच तथा तालमखाना इन दोनों का समान भाग चूर्ण करके, इस चूर्ण के बराबर शर्करा मिलानी चाहिये। मात्रा ½ [illegible] २ तोला।

[illegible]पान—गाय का धारोष्ण दूध। धातु-पुष्टि, शुक्र-वृद्धि के लिये

[illegible]—इलायची, लौंग, नागकेसर, बेर की छाल, ताजा [illegible] पिप्पली इनका चूर्ण शहद और शर्करा के साथ [illegible] मात्रा ½ तोले से ½ तोला।

कट्फलादि-चूर्ण (१)—कायफल, नागरमोथा, कटुकी, सोंठ, काकड़ाशृङ्गी, पोहकर-मूल इनका चूर्ण मधु तथा आर्द्रक के रस के साथ देने से ज्वर, श्वास, अरुचि, वायु-शूल, वमन नष्ट होता है। मात्रा दो आने से चार आने तक।

कट्फलादि-चूर्ण (२)—कायफल, पुष्करमूल, काकड़ाशृङ्गी, नागरमोथा, सोंठ, मिर्च, पिप्पली, कचूर।

अनुपान—आर्द्रक-रस और शहद।

उपयोग—कफ-जन्यशूल, अरुचि, कास, श्वास में; मात्रा २ से ४ बाल।

कट्फलादि-चूर्ण (३)—कायफल, पुष्करमूल, पिप्पली, काकड़ाशृङ्गी।

अनुपान—मधु। मात्रा २ से ५ बाल।

उपयोग—कास, श्वास तथा कफ-रोग में।

कटुकी-चूर्ण—कटु, वच, हरड़, चित्रक-मूल।

अनुपान—गोमूत्र। मात्रा ¼ तोला।

उपयोग—पेट के अफारे में, शूल, मलावरोध में।

कटुकीपाचन—कटु, मुलहट्टी, द्राक्षा, नीम की छाल, समभाग प्रत्येक आधा तोला लेकर ३२ तोले पानी में काढ़ा करके पीने से ज्वर में पाचन होता है, मलावरोध हटता है और ज्वर उतरता है।

कटुभर्जित-चूर्ण—कटुकी को कढ़ाई पर भूनकर चूर्ण करना चाहिये।

अनुपान—गरम पानी। मात्रा १ से ८ बाल।

उपयोग—ज्वर में, यकृत के भारीपन में।

कपित्थाष्टक-चूर्ण—कैथ ८ भाग, शर्करा ६, अनार, आँवला, बेल-फल, धाय के फूल, अजवायन, पिप्पली प्रत्येक ३ भाग, मिर्च, जीरा, धनिया, पिप्पली-मूल, उशीर, सैंधव, दालचीनी, तमालपत्र, इलायची, नागकेशर, चित्रक, सोंठ प्रत्येक वस्तु १ भाग; इन सबके चूर्ण की मात्रा ४ से ८ बाल।

उपयोग—ग्रहणी, अतिसार और सब प्रकार के उदर-रोगों में।

कृष्णादि-चूर्ण—पिप्पली, अतिविषा, नागरमोथा, काकड़ाशृङ्गी इनका चूर्ण १ से ३ रत्ती मात्रा में मधु के साथ देने से बालकों का ज्वर, अतिसार, दमा, कास, वमन शान्त होता है।

गोक्षुरादि-चूर्ण—गोखरन, गिलोय, त्रिफला इनको समान भाग लेकर गोक्षुर के रस से भावना देकर शुष्क कर लेना चाहिये। यह चूर्ण प्रमेह के लिये उपयोगी है।

चन्दन-चूर्ण—चन्दन को चावलों के धोवन में घिसकर तैयार किया हुआ लेप १ तोला अथवा चन्दन का चूर्ण, चावलों के धोवन में मिलाकर शहद और शर्करा के साथ लेने से स्त्रियों का प्रदर, दाह, तृषा, औपसर्गिक मेह (गनोरिया) मिटता है।

चन्दनादि-चूर्ण—चन्दन, कूठ, नागरमोथा, आँवला, कुलींजन, नेत्रबाला, कमल, मुलहठी, महुए का फूल, द्राक्षा, खजूर प्रत्येक एक-एक भाग; इसका चूर्ण करके शर्करा के साथ ४ बाल की मात्रा में लेने से पित्त, दाह, मूत्रकृच्छ्र-रोग मिटता है।

चित्रकादि-चूर्ण (१)—चित्रक, सोंठ, हींग, पिप्पली, पिप्पली-मूल, चविका, अजवायन, मिर्च प्रत्येक एक-एक तोला, सर्जक्षार, यवक्षार, सेंधानमक, संचल, विड़लवण, सामुद्रिक नमक, कालानमक ये सात क्षार प्रत्येक ½ तोला, सबका चूर्ण करना चाहिये। इसको बिजौरे या अनार के रस की भावना देकर धूप में सुखाना चाहिये।

अनुपान—पानी। मात्रा २ से ८ बाल।

उपयोग—गुल्म, संग्रहणी, आम-सम्बन्धी पीड़ा में इसके खाने से अग्नि प्रदीप्त होती है, भोजन में रुचि होती है और कफ का नाश होता है।

चित्रकादि-चूर्ण (२)—चित्रकमूल, चविका, कच्चा बेल, सोंठ इनका चूर्ण: मात्रा ¼ से ½ तोला।

अनुपान—छाछ।

उपयोग—संग्रहणी में।

चोपचीनी-चूर्ण (१)—चोपचीनी १० तोला, शर्करा ४ तोला, पिप्पली, पिप्पली-मूल, मिर्च, लौंग, अकरकरा, खुरासानी अजवायन, सोंठ, बायबिडङ्ग, दालचीनी प्रत्येक १ तोला, इसका चूर्ण ३ माशे की मात्रा में गरम पानी के

साथ लेने से प्रमेह, उपदंश, क्षीणता तथा गरमी-जन्य संधिवात मिटता है।

चोपचीनी-चूर्ण (२)—चोपचीनी १६ तोला, शर्करा ४ तोला, पिप्पली, पिप्पली-मूल, मिर्च, लौंग, अकरकरा, वङ्ग-भस्म, सोंठ, वायविडङ्ग, त्रिफला प्रत्येक ½ तोला। इनका चूर्ण ६ माशे की मात्रा में मधु और घी के साथ लेने से बीस प्रकार के प्रमेह, सब प्रकार के उपदंश, व्रण, वात-कुष्ठ आदि शान्त हो जाते हैं।

जातिफलादि-चूर्ण (१)—जायफल, सोंठ, अफीम सब समान भाग। इन सबके बराबर राख; इनका चूर्ण दुअन्नी भर मात्रा में, चावलों के धोवन (½ तोला) के साथ मिलाकर लेने से रक्त एवं आम-युक्त अतिसार, आक्षेप, बारबार वेग के साथ आनेवाला मरोड़ा और अतिसार मिटता है।

जातिफलादि-चूर्ण (२)—जायफल, विडङ्ग, चीतामूल, तगर, काले तिल, तालीशपत्र, लालचन्दन, सोंठ, लौंग, काला जीरा, कपूर, हरीतकी आमलकी, मिर्च, पिप्पली, वंशलोचन, दालचीनी, तेजपत्र, इलायची, नागकेशर प्रत्येक २ तोला, भाँग का बीज-चूर्ण २८ तोला, शर्करा सबके बराबर। मात्रा २ माशा।

उपयोग—क्षय, कास, ग्रहणी, अतिसार में।

तालीशादि-चूर्ण—तालीशपत्र १ तोला, मिर्च २ तोला, सोंठ ३ तोला, पिप्पली ४, वंशकपूर ५, दालचीनी ½ तोला, इलायची ½ तोला, वंग-भस्म ८ तोला, शर्करा ३२ तोला इनका चूर्ण अथवा शर्करा की चासनी में गोली बनानी चाहिये। मात्रा २ से ६ माशे।

उपयोग—अरुचि, श्वास, वमन, हृदय-रोग और पार्श्व-शूल में तथा कास में होता है।

त्रिफला-पिप्पली-चूर्ण—हरड़, बहेड़ा, आँवला, पिप्पली।

अनुपान—शहद। मात्रा दो आने से चार आने तक।

उपयोग—कास, श्वास, ज्वर, मलबन्ध में, इससे अग्नि बढ़ती है।

त्रिवृतादि-चूर्ण—निशोथ ४ तोला, पिप्पली १ तोला, शर्करा ४ तोला इनका चूर्ण।

अनुपान—मधु या शर्करा का शरबत; मात्रा ½ से १ तोला।

उपयोग—अफारे में, मलबन्ध में, उदर-रोग में, कफ और पित्त-शूल में।

दाड़िमाष्टक-चूर्ण—दाड़िम की छाल ८ तोला, शर्करा ३२, इलायची, दालचीनी, तमालपत्र तीनों मिलाकर चार तोला, सोंठ, मिर्च, पिप्पली प्रत्येक ४ तोला सबका समान चूर्ण।

अनुपान—मधु अथवा पानी। मात्रा दो आने से ¼ तोला तक।

उपयोग—अरुचि, मन्दाग्नि में, अतिसार में, कास और ज्वर में।

दीप्यादि-चूर्ण—अजवायन, हरड़, हींग, चित्रक, सोंठ, जौखार, सज्जीखार, जीरा, काला जीरा, पिप्पली, त्रिफला, संचल और सैंधव इनका चूर्ण ¼ तोला मात्रा में गरम पानी के साथ लेने से विषम ज्वर को नष्ट करता है।

धातकी-चूर्ण—धातकी के फूलों का चूर्ण दही के साथ २ से ६ माशा मात्रा में लेने से अतिसार, प्रवाहिका नष्ट होती है।

नारसिंह-चूर्ण—भिलावा, सोंठ, मिर्च, हरड़, बहेड़ा, आँवला, तिल, तथा शर्करा।

अनुपान—घी और शहद। मात्रा २ से ८ बाल। मन्दाग्नि, पेट की वायु, वातोदर तथा जलोदर के लिये उपयोगी है। पथ्य—दूध और भात।

नाराच-चूर्ण—पिप्पली १ तोला, निशोथ १ तोला, खाँड़ ४ तोला, मात्रा १ तोला।

अनुपान—मधु। पेट चढ़ने में, बन्ध-कोष्ठ, उदर-रोग में, कफ तथा पित्त-शूल में उपयोग होता है।

नारायण-चूर्ण—चित्रकमूल, हरड़, बहेड़ा, आँवला, त्रिकटु, जीरा, वच, अजवायन, पिप्पलीमूल, सोंठ, अजवायन, कचूर, धनिया, वायविडंग, कालाजीरा, दारूड़ी की मूल, पुष्करमूल, सज्जीखार, जौखार, सेंधानमक, संचल, साँभर, काला, उद्भिद्, कूठ ये सब एक-एक भाग तथा इन्द्रवारुणी का मूल २ भाग, निशोथ ३ भाग, दन्तीमूल ३ भाग, थोर का मूल ४ भाग इन सबका बारीक चूर्ण करना चाहिये। मात्रा आधे तोला से १ तोला।

अनुपान—पानी।

उपयोग—उदर-रोग, पाण्डु, श्वास, कास, भगन्दर, मन्दाग्नि, कुष्ठ, ग्रहणी, गलमुह, गुल्म आदि रोगों में व्यवहृत होता है।

निम्बादि-चूर्ण—नीम के सूखे हुये ताजे पत्ते १० तोला, सोंठ १

तोला, मिर्च, पिप्पली, हरड़, बहेड़ा, आँवला प्रत्येक एक-एक तोला, अजवायन ५ तोला, सेंधा, सोंचल, उद्भिद् प्रत्येक एक-एक तोला, शक्कर-चूर्ण ¼ से आधा तोले पानी के साथ लेने से आन्तरिया ज्वर (जो ज्वर अन्दर से आता है) को नष्ट करता है।

निम्बपत्रादि-चूर्ण—नीम के सूखे हुये पत्ते ४ तोला, हरड़ और आँवला प्रत्येक छः माशे, हल्दी ¼ तोला।

अनुपान—पानी। मात्रा ½ तोला। उपदंश-रोग के अन्दर और बाहर व्यवहार होता है।

पञ्चनिम्ब-चूर्ण—कड़वे नीम का फूल, पत्ते, फल, और छाल; इन सबका चूर्ण समभाग में ६० तोला करके लोह-भस्म, भिलावा, वायविडंग शर्करा, आँवला, हल्दी, पिप्पली, मिर्च, सोंठ, बावची, अमलतास, गोखरू प्रत्येक ४ तोला। इन दोनों प्रकार के चूर्ण को मिलाकर पीछे से भाँगरे के रस की खुरासानी अजवायन के काढ़े को, बबूल के काढ़े को प्रत्येक को एक-एक दिन भावना देकर सुखाना चाहिये।

अनुपान—खैर की छाल के काढ़े में या बबूल की छाल के काढ़े में या दूध में। मात्रा १ तोला। एक मास तक सेवन करने से सब प्रकार के कुष्ठ-रोग, त्वचा के रोग नष्ट हो जाते हैं।

पंचसम-चूर्ण—सोंठ, हरड़, पिप्पली, निशोथ, संचल इनका चूर्ण।

अनुपान—पानी; मात्रा दो आना।

उपयोग—शूल, अफारा, उदर-रोग अर्श तथा आमवात में।

पवित्र चूर्ण (१)—पंचलवण तोला २½ त्रिकटु, त्रिफला, अजवायन, चित्रक-मूल प्रत्येक वस्तु २½ तोला, शुद्ध गन्धक १८ तोला. हरड़ १० तोला, सेंधानमक २० तोला, सोंठ ४० तोला। प्रथम पाँचो नमक को इन्द्रवारुणी के फल के अन्दर भरकर इसे कपड़मिट्टी करके गोहे के आँच में पकाना चाहिये। पीछे से कपड़मिट्टी उतारकर अन्दर से पंचलवण निकालकर इसमें शेष वस्तुयें मिलाकर नीबू के रस में एक दिन रगड़कर व्यवहार में लाना चाहिये।

उपयोग—प्लीहा, उदर-शोथ, जलोदर उदर-रोग में मात्रा में ¼ से ½ तोला।

अनुपान—पानी ।

पवित्र चूर्ण (२)—स्वर्णमुखी के पत्तों को मिट्टी के कोरे बर्त्तन के अन्दर रखकर उसमें गोमूत्र डालना चाहिये । प्रातः गोमूत्र को फेंककर पत्तों को धूप में सुखाना चाहिये । रात्रि में पत्तों को फिर से घड़े में रखकर गोमूत्र डाल देना चाहिये और अगले दिन फिर से सुखाना चाहिये । इस प्रकार दस दिन तक करके, इन पत्तों का चूर्ण कर लेना चाहिये । मात्रा १ तोला ।

अनुपान—गरम पानी ।

उपयोग—मल को साफ लाता है, त्वचा के विकारों को नष्ट करता है ।

पाचक चूर्ण—चित्रक-मूल १ भाग, हींग ½ भाग, पिप्पली-मूल १ भाग, अजवायन १ भाग, सज्जीक्षार ½ भाग, सेंधानमक ½ भाग, साँभर १ भाग, सोंठ १ भाग, पिप्पली १ भाग, मिर्च १ भाग, चविका १ भाग, जौखार १ भाग संचल ¼ भाग, इनका चूर्ण करके प्रथम नीबू के रस की भावना देकर, पीछे से अनार के रस की भावना देकर सुखा देना चाहिये ।

उपयोग—अजीर्ण और अग्निमान्द्य में । मात्रा दो आने से चार आने तक ।

अनुपान—पानी ।

पाषाणभेदादि-चूर्ण—पाषाण भेद, शिलाजीत, इलायची, पिप्पली, इनका चूर्ण समभाग ।

अनुपान—चावलों का धोवन; मात्रा ¼ से ½ तोला ।

उपयोग—प्रमेह में ।

पिप्पल्यादि-चूर्ण—पिप्पली, पिप्पली-मूल, बहेड़े की छाल, सोंठ, इनका चूर्ण करना चाहिये । मात्रा ½ तोला ।

अनुपान—मधु ।

उपयोग—श्वास तथा कास-रोग में ।

बिल्व-चूर्ण—बेल का चूर्ण १ तोला, गिलोय १ तोला, दोनों को मिलाकर खाने से पार्श्वशूल, आमशूल और रक्तातिसार नष्ट होता है ।

बिल्वादि-चूर्ण—बेल का गर्भ, मोथा, धातकी के फूल, पाठा, मोचरस ।

अनुपान—गुड़ और छाछ।

उपयोग—अतिसार में।

मरिच्यादि-चूर्ण—मिर्च, चित्रक तथा संचल।

अनुपान—छाछ; मात्रा २ से ८ बाल।

उपयोग—संग्रहणी, उदर, प्लीहा, गुल्म, अर्श तथा अग्निमान्द्य में।

महासुदर्शन-चूर्ण—त्रिफला, दोनों हल्दी, दोनों कटेरी, पित्त-पापड़ा, मोथा, इन्द्रायण, नेत्रबाला, नीम की छाल, पुष्कर-मूल, मुलहट्टी, कुड़ाछाल, अजवायन, इन्द्रजौ, भारंगी-मूल, शिरीष का बीज, फिटकिरी, वच, दालचीनी, पद्माख, उशीर, चन्दन, अतीस, बला, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, बायबिडंग, तगर, चित्रक, देवदारु, चव्य, पटोल, जीवक, ऋषभक, लौंग, वंशकपूर, श्वेत कमल, काकोली, तमालपत्र, जावित्री, तालीशपत्र, सोंठ, मिर्च, पिप्पली, पिप्पली-मूल मोरबेल, गिलोय, धमासा, कटुकी, कचूर इन सबके तोल का आधा चिरायता। इन सब का बारीक चूर्ण करके ½ तोले मात्रा में ठण्डे पानी के साथ लेने से तीनों दोष, सब प्रकार के ज्वर नष्ट होते हैं।

मलशुद्धि-चूर्ण— हरड़ की छाल २ तोला, रेवतचीनी आधा तोला, मिर्च आधा तोला, सोंठ १ तोला, सञ्चल आधा तोला, सैन्धव १ तोला, इनका चूर्ण रात्रि में गरम पानी के साथ लेने से सहज विरेचन होता है। मात्रा ३ से ४ माशे।

मुस्तादि-चूर्ण—मोथ, सोंठ, हरड़ इनका चूर्ण करके, सबका दुगुना गुड़ मिलाना चाहिये। मात्रा आधा से १ तोला। श्वास तथा कास-रोग में व्यवहार होता है।

मुसल्यादि-चूर्ण—श्वेत मूसली, गिलोय का सत्त्व, कौंच, गोखरू, सिम्भल के मूल की छाल, शर्करा, आँवला इन सबका चूर्ण।

अनुपान—गाय का दूध तथा घी। मात्रा १ तोला, वीर्य-वृद्धि और कामेच्छा के लिये।

यवक्षारादि-चूर्ण—जौखार, अतीस, काकड़ाशृङ्गी, पिप्पली, पुष्करमूल।

अनुपान—मधु। मात्रा १ से २ रत्ती, बालकों के सब प्रकार की खाँसी में लाभ करता है।

यवानीखांडव-चूर्ण (१)—अजवायन, अनार की छाल, सोंठ, इमली, अम्लवेतस, खट्टे बेर की छाल प्रत्येक १ तोला, मिर्च १० दाना, पिप्पली २॥ तोला, दालचीनी, सञ्चल, धनिया, जीरा प्रत्येक आधा तोला, शर्करा १६ तोला इन सबका चूर्ण करना चाहिये। मात्रा ½ तोला। अरुचि, खाँसी, श्वास, संग्रहणी, वमन, अतिसार, कण्ठ-रोग, हृदय-रोग में व्यवहार होता है।

यवानीखांडव-चूर्ण (२)—अजवायन, कोकम, सोंठ, अम्लवेतस, अनारदाना, खट्टे बेर की छाल प्रत्येक वस्तु १ तोला, धनिया, सञ्चल, जीरा, दालचीनी ये प्रत्येक आधा तोला, छोटी पिप्पली नग १००, मिर्च २००, शर्करा १६ तोला इन सबको कपड़े में छानकर चूर्ण करना चाहिये। मात्रा ½ से १ तोला। इस चूर्ण को मुख में रखकर धीरे-धीरे गले में उतारना चाहिये। इससे जठराग्नि बढ़ती है। कास, श्वास तथा हृदय के रोगों में हितकर है।

जेठीमधुकादि-चूर्ण—मुलहट्टी, पिप्पली, मुनक्का, काकड़ाश्रृङ्गी, शतावरी सब एक-एक तोला, बाँसकपूर २ तोला, शर्करा ४ तोला सबका चूर्ण। मात्रा—२ से ८ माशा।

अनुपान—मधु तथा घी। उरःक्षत तथा कास-रोग में हितकर है।

रसायन-चूर्ण—गिलोय, गोखरू और आँवले का समभाग चूर्ण घी तथा शर्करा के साथ लेने से धातु-स्राव, स्वप्न-दोष, हस्त-दोष, मस्तिष्क की निर्बलता दूर होती है। मात्रा ½ से ¾ तोला।

लघुगङ्गाधर-चूर्ण—नागरमोथा, इन्द्रजौ, बेल, लोध्र, मोचरस, धातकी के फूल।

अनुपान—छाछ तथा गुड़। मात्रा ½ तोला। सब प्रकार के अतिसार तथा प्रवाहिका में लाभकारी है।

लघुसुदर्शन-चूर्ण—गिलोय, पिप्पली, पिप्पली-मूल, कटुकी, हरड़, सोंठ, लवंग, नीम की अन्तःछाल, दालचीनी, चन्दन इन सबके चूर्ण से आधा चिरायता।

उपयोग—सब प्रकार के ज्वरों में।

लवङ्गादि-चूर्ण—लवंग, कपूर, इलायची, दालचीनी, नागकेशर, जायफल, नेत्रवाला, सोंठ, काला जीरा, काला अगरु, बाँसकपूर, कमल, पिप्पली, चन्दन, तगर, उशीर, कंकोल, सबका चूर्ण और सबसे आधी

शर्करा मिलाकर सेवन करने से क्षय, हृदय-रोग, कण्ठ-रोग, कास, हिक्का, पीनस, श्वास, अतिसार, उरःक्षत, प्रमेह, अरुचि, गुल्म, संग्रहणी आदि नष्ट होती है।

अनुपान—पानी या शहद। मात्रा २ से ८ बाल।

लशुनादि-चूर्ण—लहसुन, जीरा, गन्धक, सेन्धानमक, त्रिकटु, हींग समभाग। मात्रा २ से ८ बाल।

अनुपान—नीबू का रस या पानी।

उपयोग—कॉलरा, अजीर्ण, उदर-शूल तथा वातगुल्म में।

वज्रक्षार-चूर्ण—पञ्चलवण, टंकण, सर्जक्षार सबको एक दिन तक मदार के दूध में तर करके अगले दिन धूप में सुखाकर पीछे से आक के पत्तों में लपेटकर दो बड़े बड़े सम्पुटों में गजपुट के अन्दर पाक करना चाहिये। पीछे से हल्दी, त्रिकटु, त्रिफला, अजवायन, जीरा, चित्रक-मूल इनका चूर्ण क्षार से आधा मिलाना चाहिये। मात्रा ¼ तोला।

अनुपान—गरम पानी या गोमूत्र।

उपयोग—गुल्म, शूल, अजीर्ण, शोथ, उदर, मन्दाग्नि, अफरा में।

बड़वानल-चूर्ण—सेंधानमक १ भाग, पिप्पली २ भाग, पिप्पली ३ भाग, चविका ४ भाग, चित्रकमूल ५ भाग, सोंठ ६ भाग, हरड़ ७ भाग इस प्रमाण से चूर्ण करना चाहिये।

अनुपान—पानी। मात्रा २ से ८ बाल। मन्दाग्नि के लिये उपयोगी है।

विदारीकन्द-चूर्ण—विदारीकन्द-चूर्ण, बाँसकपूर, मुलहठी, पिप्पली समभाग चूर्ण करना चाहिये। मात्रा आधा से १ तोला।

अनुपान—दूध तथा शर्करा।

उपयोग—कूवत के लिये, नपुंसकत्व तथा क्षीणता के लिये।

विशाला-चूर्ण—इन्द्रवारुणी का चूर्ण।

अनुपान—गोमूत्र। मात्रा—२ से ४ माशे। सब प्रकार के उदर-रोगों में तथा स्त्रियों के मूढ़ गर्भ में लाभ करता है।

वृद्धदंड-चूर्ण—कौंच, गोखरू, श्वेत मूसली, सिम्बल के मूल की छाल, आँवला तथा गिलोय सत्त्व, सब वस्तुयें समान भाग लेकर सबके बराबर शर्करा मिलानी चाहिये। मात्रा—½ से एक तोला।

अनुपान—दूध अथवा घी और शहद।

उपयोग—धातु-दोष, कमर के दर्द, वीर्य की जलन को नष्ट करता है।

वृद्धदारु-चूर्ण—विधारा के चूर्ण को शतावरी के रस की ७ भावना देकर इस चूर्ण को ¼ से आधा तोला तक मात्रा में दूध के साथ लेने से शरीर की शक्ति तथा मस्तिष्क की पुष्टि होती है। थकान उतरती है। दम चढ़ने आदि में लाभ होता है।

शतावर्यादि-चूर्ण—शतावरी, गोखरू, कौंच, नागबला, बला, तालमखाना। मात्रा—½ से १ तोला।

अनुपान—गाय का दूध। वाजीकरण है।

शुण्ठ्यादि-चूर्ण—सोंठ, अतीस, हींग, मोथा, कुड़ाछाल, चित्रकमूल।

अनुपान—गरम पानी। मात्रा—२ से ४ बाल।

उपयोग—आमातिसार में।

शृंग्यादि-चूर्ण—काकड़ाशृङ्गी, अतीस, पिप्पली।

अनुपान—मधु। मात्रा १ से २ रत्ती।

उपयोग—बालकों की खाँसी, ज्वर तथा उल्टी में लाभ होता है।

समशर्करा-चूर्ण—सोंठ ७ तोला, पिप्पली ६ तोला, मिर्च ५ तोला, नागकेसर ४ तोला, तमालपत्र ३ तोला, दालचीनी २ तोला, इलायची १ तोला इनके चूर्ण के बराबर शर्करा। मात्रा ½ से १ तोला।

उपयोग—अग्निमांद्य, अर्श, अरुचि, गुल्म, श्वास, कण्ठरोग तथा हृदय रोग में।

सारस्वत-चूर्ण—कूठ, असगन्ध, सेंधानमक, अजवायन, दोनों जीरे, सोंठ, मिर्च, पिप्पली, पाठा, शङ्खावली, सबका समभाग। इन सबके बराबर वच का चूर्ण। इस चूर्ण को ब्राह्मी रस की तीन भावनायें देकर काम में लाना चाहिये। मात्रा—१ तोला।

अनुपान—मधु तथा घी।

उपयोग— उन्माद, अपस्मार आदि विकारों को मिटाता है। धारणा-शक्ति, बुद्धि, धैर्य्य, स्मरण-शक्ति को बढ़ाती है।

सीतोपलादि-चूर्ण—मिश्री १६ तोला, बाँसकपूर ८ तोला, पिप्पली ४ तोला, इलायची २ तोला, दालचीनी १ तोला।

अनुपान—मधु तथा घी। मात्रा—½ तोला।

उपयोग—श्वास, कास, क्षय, हाथ-पाँव की जलन, अग्निमान्द्य, जीभ की जड़ता, पार्श्वशूल, अरुचि, जीर्णता व नाक तथा मुँह का रक्तपित्त अच्छा होता है।

हरीतक्यादि-चूर्ण—हरड़, अतीस, सेंधानमक, संचल, बच, हींग।

अनुपान—गरम पानी। मात्रा ७ से ४ बाल। आमातिसार में।

हिंग्वाष्टक—हींग ८ भाग, त्रिकटु, अजवायन, दोनों जीरे, सेंधानमक, प्रत्येक एक-एक भाग।

अनुपान—घी। मात्रा—½ तोला।

उपयोगी—मन्दाग्नि, वायु, शूल में लाभ दायक है।

अग्निमुख-लवण—चित्रक, हरीतकी, आमलकी, बहेड़ा, दन्तीमूल निशोथमूल, कूठ प्रत्येक का चूर्ण समभाग। सबके बराबर सेंधा नमक मिलाकर मदार के दूध की भावना देनी चाहिये। इसको मदार के अन्दर भरकर ऊपर से कीचड़ द्वारा लेप करके पुटपाक करना चाहिये। पीछे से चूर्ण करके रखना चाहिये। मात्रा—२ रत्ती।

उपयोग—वाताजीर्ण, शूल, आम्लपित्त, अजीर्ण, उदराध्मान में।

पुष्यानुग-चूर्ण—पाठा, जामुन की गुठली, आम की गुठली, पाषाण भेदी, रसौत, अम्बष्ठिका, मोचरस, बराहक्रान्ता, पद्मकेशर, कुमकुम, अतीस, मोथा, बिल्व, लोध्र, गेरू, कटफल, मिर्च, सोंठ, द्राक्षा, लालचन्दन, श्योनाक-छाल, इन्द्रयव, अनन्तमूल, धातकी फूल, मुलहठी और अर्जुनछाल इन सबका चूर्ण लेना चाहिये।

उपयोग—रक्तप्रदर, श्वेतप्रदर और योनि-क्षत-जनित स्राव में, रक्तातिसार में। आवष्ठिका के अभाव में अशोक छाल बरत सकते हैं।

भास्कर-लवण—पिप्पली, पिप्पलीमूल, धनिया, कालाजीरा, सेंधा नमक, विट्लवण, तेजपत्र, तालीशपत्र और नागकेशर प्रत्येक १६ तोला; संचल ४० तोला, मिर्च, जीरा और सोंठ प्रत्येक ८ तोला, दालचीनी, इलायची प्रत्येक ४ तोला, काच लवण १ सेर। अनारदाना आधा सेर, आम्लवेतस १६ तोला। सबका चूर्ण मिलाकर काम में लाना चाहिये।

उपयोग—अम्लपित्त, अजीर्ण, शूल रोग में।

गुटिका

अभयादि मोदक—हरड़, पिप्पलीमूल, मिर्च, सोंठ, दालचीनी, तमालपत्र, पिप्पली, मोथा, वायविडङ्ग, आँवला प्रत्येक एक-एक तोला, दन्तीमूल २ तोला, निशोथ ८ तोला, शर्करा ६ तोला। इसकी गोली शहद में बनानी चाहिये। मात्रा ½ तोला से १ तोला।

अनुपान—ठण्ढा पानी।

उपयोग—बद्धकोष्ट, पाण्डु, विषमज्वर, अग्निमान्द्य, शूल, शोथ, गुल्म, उदर, विदाह और मूत्रकृच्छ्र रोग में हितकारी है।

अमृतादि वटी—शुद्ध वत्सनाभ २ तोला, कौड़ी की भस्म ५ तोला, मिर्च ९ तोला इन तीनों को पानी में पीसकर मूँग जितनी गोली बनानी चाहिये। मात्रा—१ तोला।

अनुपान—आर्द्रक का रस या पानी।

उपयोग—कफ, ज्वर और अग्निमान्द्य।

अमृता-मोदक—गिलोय का चूर्ण १ तोला। इसमें एक-एक तोला शहद, पुराना गुड़ और घी मिलाकर एक-एक तोला की गोली बनानी चाहिये।

अनुपान—दूध।

उपयोग—विषम ज्वर, जीर्णधातु गत ज्वर में।

अमर सुन्दर वटी—सोंठ, मिर्च, पिप्पली, आँवला, हरड़, बहेड़ा, पिप्पलीमूल, रेणुका बीज, निर्गुण्डी का बीज, चित्रक, लोहभस्म, दालचीनी, तमालपत्र, इलायची, नागकेशर, शुद्धपारा, गन्धक, वत्सनाभ, वायविडंग, अकरकरा, मोथा इनके चूर्ण दुगने गुड़ में मिलाकर चने जितनी गोली बनानी चाहिये। मात्रा—१ से २।

उपयोग—अपस्मार, सन्निपात, कास, श्वास, मूल व्याधि सब प्रकार के वातरोग में।

अर्क अहिफेनादि गुटिका—मदार की सूखी कलियाँ २ तोला, सेंधानमक २ तोला, अफीम आधा तोला तीनों को पानी में पीसकर बाल-बाल की गोली बनानी चाहिये। मात्रा—१ गोली।

उपयोग—उरःक्षत और कास-रोग में।

अर्शोहर वटी—हरड़, तिल, भिलाँवाँ सब समान भाग लेकर चूर्ण करना चाहिये। भिलाँवा को शुद्ध करके तिलों के साथ कूट लेना चाहिये।

पीछे से हरड़ का चूर्ण मिलाना चाहिये। तीनों से दुगना गुड़ मिलाकर ½ तोला की गोली बनानी चाहिये। मात्रा— १ से ४ गोली।

उपयोग—अर्श, पाण्डु, कोठ, कास, श्वास में बरती जाती है।

अहिफेनादि गुटिका— अफीम ४ तोला, जावित्री ४ तोला, कस्तूरी १ तोला, कपूर १ तोला इनकी एक-एक रत्ती की गोली करनी चाहिये। मधु-प्रमेह में व्यवहृत होती है।

अकरकरादि वटी—अकरकरा, सैन्धव, चित्रक, सोंठ, आँवला, पिप्पली, मिर्च, अजवायन और हरड़ इन सबका चूर्ण करके बिजौरे के रस में गोली करनी चाहिये। मात्रा—२ से ४ वाल।

उपयोग—गले की व्याधि, श्वास और प्रतिश्याय में।

एलादि गुटिका—इलायची, तेजपत्र, दालचीनी प्रत्येक तीन-तीन तोला, पिप्पली ४ तोला, चीनी, मुलहठी, पिण्ड खजुर और द्राक्षा प्रत्येक ८ तोला। मधु परिमाण युक्त। रक्त-पित्त रोग की उत्कृष्ट औषधि है। इस औषधि में एक भाग बंशलोचन देकर बनाने से और अधिक लाभ होता है।

अनुपान—गूलर और मधु।

कन्या लोहादि गुटिका—एलुवा १० तोला, हीराकसीस ७॥ तोला, दालचीनी ५ तोला, सोंठ ५ तोला, इलायची ४ तोला, गुलकन्द २० तोला। मात्रा—२ गोली।

उपयोग—अत्यार्त्तव, अनियमित ऋतु में, ऋतु न आती हो तो।

कृमिघ्न गुटिका— जहर कुचला ५ तोला, वायविडंग १ तोला, अजवायन १ तोला, अतीस १ तोला, पिप्पली १ तोला, इन्द्रजौ १ तोला, इन सबको कूटकर घीकुँआर के रस में गोली बनानी चाहिये। मात्रा—१ से २ गोली।

उपयोग— कृमिरोग में।

कुमकुम वटी—केसर तथा अफीम समभाग। मधु मिलाकर १ चावल की गोली बनानी चाहिये। मात्रा—१ से ३ गोली।

उपयोग—अतिसार में।

कस्तूयादि गुटिका—कस्तूरी तथा कपूर प्रत्येक एक-एक भाग, लवंग २ भाग, मिर्च, पिप्पली, बहेड़ा तथा कुठ प्रत्येक आधा भाग, अनार की छाल ४ भाग सबका चूर्ण करके कत्थे के पानी के साथ पीसकर मूँग जितनी गोली बनानी चाहिये।

कांकायन गुटिका—शठी, कुठ, दन्तीमूल, चितामूल, सांठ, वच, निशोथ मूल प्रत्येक ८ तोला, हींग २४ तोला, यवक्षार १६ तोला, अम्लवेतस १६ तोला, यवानी, जीरा, मिर्च, धनिया प्रत्येक २ तोला, कृष्ण जीरा और खुरासानी अजवायन ८ तोला, सब के चूर्ण को बिजौरे नींबू के रस में पीसकर आधे तोले की गोली बनानी चाहिये।

उपयोग—गुल्म-रोग, ऋतु-दोष में। गुल्म-रोग में कांजी।

अनुपान—आर्द्रक-रस दूध के साथ देनी चाहिये।

कासारि गुटिका—त्रिकटु, काला जीरा, काकड़ाशृङ्गी, धमासा, कायफल, पुष्कर-मूल (कुठ) इनको मधु के साथ चाटने से लाभ होता है। या मधु मिलाकर गोली बना लेनी चाहिये। इसको 'अष्ठांगावलेहिका' भी कहते हैं।

गन्धक वटी—लहसुन, जोरा, गन्धक, सेंधा नमक, त्रिकटु, हींग, इनका चूर्ण करके नींबु के रस में पीसकर गोली बनानी चाहिये।

उपयोग—विसूचिका में।

गुड़ादि वटिका—सोंठ, हरड़, नागरमोथा, इनके चूर्ण से दुगुना गुड़ मिलाकर गोली बनानी चाहिये।

उपयोग—श्वास-कास रोग में।

गुड़ादि वटी—गुड़ १२ तोला, सांठ १२ तोला, पिप्पली १२ तोला, मण्डूर ४ तोला, तिल ४ तोला, इनकी गोली करनी चाहिये। मात्रा ¼ से ½ तोला।

उपयोग—सब प्रकार के शोथ में।

गुड़ पिप्पली—विडङ्ग, सोंठ, पिप्पली, मिर्च, कुठ, हींग, सेंधा नमक, विडलवण, सामुद्र लवण, उद्भिद् लवण, संचल लवण, यवक्षार, सर्जक्षार, सुहागा, समुद्रफेन, चीतामूल, गज पिप्पली, कृष्ण जीरा, ताल, जटा-भस्म, अपामार्ग-भस्म, इमली-भस्म, प्रत्येक सम भाग, इन सब के बराबर पिप्पली चूर्ण और सबसे दुगुना पुराना गुड़ मिलाकर गोली बनानी चाहिये।

उपयोग—प्लीहा और यकृत-रोग में प्रसिद्ध है।

अनुपान—उष्ण जल।

चन्द्रप्रभा गुटिका—कचूर, वच, मोथा, चिरायता, गिलोय, देवदारु,

हल्दी, अतीस, दारु हल्दी, पिप्पली-मूल, चित्रक-मूल, धनिया, हरड़, बहेड़ा, आँवला, चविका, वायविडंग, गज-पिप्पली, त्रिकटु, स्वर्णमाक्षिक, यवक्षार, सर्जक्षार, सैन्धा नमक, संचल, विडलवण, प्रत्येक ½ तोला, निशोथ, दन्तीमूल, तमालपत्र, दालचीनी, इलायची, बाँसकपूर प्रत्येक एक तोला, लोह-भस्म २ तोला, शर्करा ४ तोला, शिलाजीत ८ तोला, गुग्गुल ८ तोला, सबका चूर्ण करके घी में गोली बनानी चाहिये। मात्रा ½ तोला।

अनुपान—पानी अथवा रोगानुसार।

उपयोग—सब प्रकार के प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, पाण्डु, पत्थरी, प्रमेह, पिटिका, कामला, अंडवृद्धि, दाह, नेत्र-रोग, स्त्रियों के रज-दोष, पुरुषों के धातु-दोष में काम आती है।

द्राक्षादि गुटिका—मुनक्का २० तोला, सोनामक्खी ४ तोला, हरड़ ४ तोला, शर्करा ४ तोला, जावित्री ६ मासा, केसर ३ मासा, इन सब का चूर्ण किशमिश में गोली बनानी चाहिये। मात्रा—एक तोला। मलशुद्धि होती है।

उपयोग—अम्लपित्त को, वायु को नष्ट करता है।

दाड़िम-चतुःसम—जायफल, लौंग, जीरा, सुहागे की खील इनको समभाग लेकर अनार के अन्दर भरकर पुटपाक रीति से पाक करना चाहिये। पीछे से बकरी के दूध के साथ पीस लेना चाहिये। मात्रा ½ रत्ती।

उपयोग—अजीर्ण, आमाशय-रोग, अतिसार में उपयोगी है।

नारिकेल-खण्ड—सूखा नारियल फल ½ सेर इसको ८ तोला घी में भूनकर आध सेर चीनी और ४ सेर नारियल जल में मिलाकर पाक करना चाहिये। पाक हो चुकने पर धनिया, पिप्पली, मोथा, वंशलोचन, जीरा, काला जीरा प्रत्येक आठ आना एवं दालचीनी, इलायची, तेजपत्र और नागकेसर मिलित आठ आना मिलाकर पाक समाप्त कर लेना चाहिये।

उपयोग—अम्लपित्त, परिणाम-शूल में।

मात्रा चार आने से आधा तोला।

अनुपान—कुछ गरम पानी।

पथ्यादि-गुटिका—हरड़ तोला ३०, दन्तीमूल ४ तोला, निशोथ १ तोला, चित्रकमूल ४ तोला, पिप्पली १ तोला, गुड़ ३२ तोला इनकी आध तोले की गोली बनानी चाहिये। मात्रा १ गोली।

उपयोग—पाण्डु, कण्डु, संग्रहणी में।

प्राणदा-गुटिका—सोंठ २४ तोला, पिप्पली १६ तोला, पिप्पलीमूल १६ तोला, मिर्च ८ तोला, चविका ८ तोला, तालीशपत्र ८ तोला, नागकेसर ४ तोला, इलायची तथा उशीर दोनों दो-दो तोला, दालचीनी तथा तमालपत्र एक-एक तोला, पुराना गुड़ ४०। मात्रा आधा तोला।

उपयोग—अर्श, मन्दाग्नि, पीनस में उपयोग होता है। यदि गरम रहे, तो सोंठ के स्थान पर हरड़ डालनी चाहिये।

पुनर्नवा-मण्डूर—मन्डूर ४० तोला, पाकार्थ गोमूत्र ५ सेर। पाक के नज़दीक होने पर पुनर्नवा, निशोथमूल, सोंठ, पिप्पली, मिर्च, विडंग, देवदारु, चीतामूल, त्रिफला, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, दन्तीमूल, चव्य, इन्द्रयव, कटुकी, पिप्पलीमूल और मोथा प्रत्येक १ तोला।

उपयोग—यकृत-दोष में; कामला, पान्डु-रोग में।

बृहत्सूरण-वटक—सूरण १६ भाग, विधारा १६ भाग, मूसली ८ भाग, चित्रक ८ भाग, त्रिफला, वायविडङ्ग, सोंठ, पिप्पली, भिलावा, पिप्पली-मूल, तालीशपत्र ये नौ वस्तुयें चार-चार भाग, इलायची, मिर्च, दालचीनी ये दो-दो भाग सबका चूर्ण करके दुगुने गुड़ में गोली बनानी चाहिये।

उपयोग—अर्श, संग्रहणी, श्वास, कास, क्षय, प्लीहा, श्लीपद, शोथ हिचकी, प्रमेह, भगन्दर, पलित-रोग में।

मन्डूर-वटी—देवदारु, मोथा, दारुहल्दी, त्रिकटु, चविका, चित्रकमूल पिप्पलीमूल, दालचीनी, वायविडङ्ग, त्रिफला तथा स्वर्णमाक्षिक-भस्म, सब वस्तुयें समान भाग, मन्डूर-भस्म सबसे दुगुना, गोमूत्र सबसे आठ गुना। इस गोमूत्र में पाक करके गोली वटक जैसी बना लेनी चाहिये। मात्रा १ से ४ गोली।

अनुपान—छाछ, कामला, पान्डु, अर्श, प्रमेह, शोथ, कफ, कुष्ठ-रोग, उरु-स्तम्भ, प्लीहा और अजीर्ण में उपयोग होता है।

महाशंख-वटी—शंखभस्म, पंचलवण, इमलीक्षार, त्रिकटु, हींग, विष, पारा, गन्धक, लोह, वंग समभाग मिलाकर अपामार्ग, चित्रकमूल-क्वाथ, नीबू का रस, अम्लबेतस द्वारा भावना देकर २ रत्ती की गोली बनानी चाहिये। लोह आधा भाग और वंग-भस्म के स्थान पर सुहागे की खील देने से विशेष लाभ होता है।

उपयोग—अजीर्ण, अतिसार, उदर-शूल में।

मरिचयादि गुटिका—मिर्च १ तोला, पिप्पली १ तोला, जौखार आधा तोला, अनार की छाल २ तोला इन सबका चूर्ण आठ तोला गुड़ में घोटकर ¼ तोले की गोली बनानी चाहिये।

उपयोग—कास-रोग में।

मुस्तादि वटी—मोथा, मोचरस, लोध्र, धातकी का फूल, बेल का फल, इन्द्रजौ, अफीम, शुद्ध पारा और गन्धक सबको पीसकर गोली बनानी चाहिये।

अनुपान—गुड़ और छाछ। मात्रा १ से २ रत्ती।

उपयोग—अतिसार और संग्रहणी में।

रतिवर्धक मोदक—गोखरू, तालमखाना, असगन्ध, शतावरी, मुशली, कौंच, मुलहट्ठी, गँगेरन, बलदाना इन सबका चूर्ण करके आठ गुने दूध में पकाना चाहिये। पीछे चूर्ण के बराबर गाय का घी मिलाकर खोआ भून लेना चाहिये। इस सबसे दुगुनी शर्करा लेकर उसकी चासनी तैयार करके इसमें यह चूर्ण मिलाकर दो-दो तोले के मोदक तैयार कर लेने चाहियें।

लवंगादि वटिका—लौंग, बहेड़ा, मिर्च, खैरसार इनका चूर्ण करके बबूल की छाल के काढ़े में गोली बनानी चाहिये। मात्रा २ से ४ गोली।

उपयोग—श्वास और कास में।

वानरी वटिका—कौंच १६ तोला, गाय का दूध ६४ तोला दोनों उबालकर गाढ़ा कर लेना चाहिये। पीछे से कौंच का छिलका उतारकर, पीसकर मैदा बना लेना चाहिये। इसकी गोलियाँ बना लेनी चाहिये। इन गोलियों को घी में भूनकर दुगुनी शर्करा की चासनी में भिगोना चाहिये। इस चासनी में से निकालकर शहद के अन्दर डुबोकर रख देना चाहिये। मात्रा चौथाई से आधा तोला।

उपयोग—वीर्यस्राव को रोककर शक्ति देती है।

व्याघ्रादि गुटिका—छोटी कटेरी, जीरा, आँवला चूर्ण करके मधु में गोली बनानी चाहिये।

उपयोग—ऊर्ध्ववायु, श्वास में।

विषमुष्टि वटिका—पारा, गन्धक, विष, खुरासानी अजवायन, त्रिफला, सर्जक्षार, यवक्षार, चित्रकमूल, सेंधानमक, विडङ्ग, कालानमक,

सुहागे की खील प्रत्येक समभाग सबके बराबर शोधित अहरकुचला। इनको बिजौरे नीबू के रस में पीसकर मिर्च के बराबर गोली बनानी चाहिये।

उपयोग—अजीर्ण, ग्रहणी, अम्लपित्त और शूल में उपकारी है।

अनुपान—मोथे का रस या शीतल जल, कपूर जल।

व्योषादि गुटिका—सोंठ, मिर्च, पिप्पली, अम्लवेतस, चविका, तालीशपत्र, चित्रक, जीरा और इमली प्रत्येक १ तोला, दालचीनी, तमालपत्र, इलायची प्रत्येक चौथाई तोला, गुड़ २० तोला, मात्रा आधा से १ तोला।

उपयोग—पीनस, दमे, कास में।

वज्रक्षार—शोधित सर्जक्षार आधा तोला, संचललवण आधा तोला, यवक्षार ४ तोला। लोहपात्र में मृदु अग्नि से पिघलाकर फिर मिट्टी के बर्तन में गिराकर वटी करनी चाहिये। साधारणतः ४ भाग शोरा और १ भाग फिटकिरी मिलाकर दोनों को पिघलाकर वटी कर लेते हैं।

उपयोग—उदरशूल, पेट में ज्वाला, वमन, अजीर्ण, मूत्रकृच्छ्र मे, हिचकी में।

शंखवटी—इमली का क्षार ८ तोला, पंचलवण ४ तोला, इनको नीबू के रस में भिगोकर, पीछे शंख के टुकड़े ४ तोला तपा-तपाकर बार-बार उस रस में इतना बुझाना चाहिये, जिससे राख हो जाय। इसमें त्रिकटु ४ तोला, वच २ तोला, हींग २ तोला, शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारा, वत्सनाभ तीनों मिलाकर १ तोला, नीबू के रस में पीसकर चने जितनी गोली बनानी चाहिये। मात्रा १ से २ गोली।

उपयोग—उदर-रोग में, अजीर्ण में, शूल में, कॉलरा में, अग्निमान्द्य में, गुल्म में।

संजीवनी—वायविडङ्ग, सोंठ, पिप्पली, त्रिफला, वच, गिलोय, भिलावा, शुद्ध वत्सनाभ इन दस वस्तुओं का चूर्ण करके, गोमूत्र में घोटकर रत्ती-रत्ती की गोली बनानी चाहिये।

अनुपान—आर्द्रक रस, अजीर्ण, गुल्म में १ गोली।

हरीतकी खण्ड—त्रिफला, मोथा, दालचीनी, तेजपत्र, इलायची, नागकेसर, अजवायन, त्रिकटु, धनिया, मोरी, सौंफ, लौंग प्रत्येक २ तोला, निशोथ और सोनमुखी प्रत्येक १६ तोला, हरीतकी-चूर्ण १६ सेर, शर्करा ४ सेर। यथाविधि पाक कर लेना चाहिये। मात्रा १ तोला।

उपयोग—शूल, अम्लपित्त, अर्श, कोष्ठ-बद्धता में।

क्षुधावती गुटिका—पारा, गन्धक, लोह, अभ्र, त्रिकटु, त्रिफला, वच, अजवायन, सौंफ, चव्य, जीरा और काला जीरा प्रत्येक ८ तोला, इक्ष्वाकुमूल रस, पुनर्नवा, मान, पिप्पलीमूल, इन्द्रयव, पद्मगुलञ्ज, निशोथ-मूल, दन्तीमूल, रक्तचन्दन, भृङ्गराज, अपांगमूल, परवल प्रत्येक ४ तोला, आर्द्रक-रस मे पीसकर बेर की गुठली के समान गोली बनानी चाहिये।

अनुपान—कांजी।

उपयोग—अजीर्ण में, अग्निमान्द्य मे, अरुचि में।

गुग्गुल

पाक-विधि—गुग्गुल और गुड़ का पाक प्रायः एक समान है। गुग्गुल को शुद्ध करके उसको पानी मे डालकर आग पर चढ़ा देना चाहिये। गुग्गुल एक प्रकार की गोंद है, यह पानी में घुलता जायगा। जब सब घुल जाय, तो इसको गाढ़ा बनने देना चाहिये। इसके पाक की समाप्ति की पहचान यह है कि जब कड़छी की तली के साथ चिपटने लगे, तब समझना चाहिये कि पाक होगया।

अमृतागुग्गुल—गिलोय ६४ तोला, गुग्गुल ३२ तोला, त्रिफला प्रत्येक ६४ तोला इनको कूटकर काढ़ा करना चाहिये। जब चतुर्थांश रहे, तब उसको छानकर फिर से अग्नि पर पकाना चाहिये। जब गाढ़ा बन जाय, तब उसमें शुद्ध दन्तीबीज, त्रिकटु, वायविडंग, त्रिफला, गिलोय, दालचीनी प्रत्येक २ तोला, निशोथ एक तोला चूर्ण करके मिलानी चाहिये। जब पाक शेष रह जाय, तब चार आने भर की गोली।बना लेनी चाहिये। मात्रा—आधा से एक तोला।

अनुपान—रोगानुसार।

उपयोग—वातरक्त, अर्श, कुष्ठ, दुष्टव्रण, आमवात, भगन्दर, नाड़ी-व्रण, उरुस्तम्भ।

कचनार गुग्गुल—कचनार का छाल ४० तोला, त्रिफला २४ तोला, त्रिकटु १२ तोला, वरुणा की छाल ४ तोला, इलायची, दालचीनी, तमालपत्र

प्रत्येक एक-एक तोला सबके चूर्ण के बराबर शुद्ध गुग्गुल मिलाकर चार आने भर की गोली बना लेनी चाहिये। मात्रा चौथाई तोला से १ तोला।

उपयोग—गण्डमाला, अपच, अर्बुद, ग्रन्थि, व्रण, गुल्म, कुष्ठ, भगन्दर आदि रक्त-विकार में।

अनुपान—पानी या कचनार की छाल का काढ़ा।

किशोर गुग्गुल—त्रिफला तथा गिलोय प्रत्येक ६४ तोला। इनको कूटकर लोहे की कढ़ाई में १५३६ तोले पानी में उबालकर आधा पानी रहने पर छान लेना चाहिये। इस पानी में शुद्ध गुग्गुल ६४ तोला मिलाकर मीठी आँच पर गुड़पाक-विधि से पाक करना चाहिये। पाक समाप्त होने से ठीक पूर्व निम्न वस्तुओं का बारीक चूर्ण इसमें मिला देना चाहिये। त्रिफला प्रत्येक २ तोला, गिलोय ४ तोला, त्रिकटु और वायविडंग प्रत्येक दो तोला, दन्तीमूल १ तोला, निशोथ १ तोला इन सबका चूर्ण मिलाकर चौथाई तोले की गोली बना लेनी चाहिये।

अनुपान—जरा गरम पानी या दूध अथवा मंजिष्ठादि-क्वाथ। मात्रा चौथाई तोला से १ तोला।

उपयोग—वात-रक्त, कुष्ठ, व्रण, प्रमेह-पिटिका, प्रमेह, उदर, अग्निमान्द्य, कास, शोथ, पाण्डु में।

गोक्षुरादि गुग्गुल—गोखरू (बड़ी दक्खिनी) ११२ तोला इनको छः गुने पानी में उबालकर जब पानी आधा रह जाय, तब उसमें शुद्ध गुग्गुल २८ तोला मिलाकर घोंटना चाहिये। साथ में नीचे की वस्तुयें मिला देनी चाहियें। त्रिकटु, त्रिफला और मोथा ये सात वस्तुयें प्रत्येक चार-चार तोला मिलाकर चौथाई तोले की गोली बना लेनी चाहिये।

अनुपान—पानी अथवा रोगानुसार। प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, प्रदर, मूत्राघात, वात-रक्त, पथरी, शुक्र-रोग में लाभदायक है।

त्रयोदशांग गुग्गुल—गुग्गुल, बबूल, आसौंद, पलाँसी, गिलोय, शतावरी, गोखरू, रास्ना, निशोथ, सुवा, कचूर, अजवायन, सोंठ, समभाग चूर्ण करके इस चूर्ण के बराबर गुग्गुल और गुग्गुल से आधा घी मिलाकर आधे तोले की गोली करनी चाहिये।

अनुपान—मधु, दूध अथवा गरम पानी।

उपयोग—वायु तथा संधिवात को मिटाता है।

त्रिफला गुग्गुल—त्रिफला और पिप्पली प्रत्येक ४ तोला, शुद्ध गुग्गुल २० तोला, इनको घी में चूर्ण करके सबको पानी में गोली बनानी चाहिये। अथवा पानी में चासनी करके इसमें चूर्ण मिलाकर गोली बनानी चाहिये। मात्रा—चौथाई से १ तोला।

अनुपान—पानी या रोगानुसार।

उपयोग—भगन्दर, नाड़ी-व्रण, गुल्म, शोथ और अर्श-रोग में उपयोगी है।

पथ्यादि गुग्गुल—हरड़ १००, बहेड़ा १००, आँवला ४००, (प्रत्येक की छाल समान वजन में लेने से भी काम हो सकता है।) इन सबको अधिक चूरा करके एक रात १०२४ तोला पानी में भिगोकर दूसरे दिन क्वाथ करें। जब आधा पानी शेष रहे, तब छानकर फिर से आग पर रखकर अवलेह की भाँति गाढ़ा बनाना चाहिये। इसमें शुद्ध गुग्गुल ६४ तोला. वायविडंग, दन्तीमूल, त्रिफला, गिलोय. पिप्पली. निशोथ, सोंठ, मिर्च प्रत्येक दो-दो तोला मिलाकर गोलियाँ बना लेनी चाहिये। मात्रा— ¼ से १ तोला।

उपयोग—गृध्रसी, खञ्जता, प्लीहा और पाण्डु-रोग में उपयोगी है।

योगराज गुग्गुल— सोंठ, पिप्पली-मूल, पिप्पली, चविका, चित्रक-मूल, भूनी हुई हींग, अजवायन, श्वेत सरसों, जीरा, काला जीरा, निर्गुण्डी के बीज, इन्द्रजौ, पाठा, वायविडंग, गज-पिप्पली, कटुकी. अतीस, भारंगीमूल. वच, मोरबेल प्रत्येक ½ तोला, सबसे दुगुना (१० तोला) त्रिफला सबका चूर्ण करना चाहिये। सबके बराबर (१५ तोला) शुद्ध गुग्गुल; गुग्गुल को घी में खूब नरम करके इसमें चूर्ण मिलाना चाहिये। मात्रा ¼ से १ तोला। इसमें बंग-भस्म, लोह, रौप्य, नाग, अभ्रक, मण्डूर तथा रस-सिन्दूर आदि प्रत्येक ४ तोला मिलाने से महा योगराज गुग्गुल बनता है।

उपयोग—वात-व्याधि में।

सिंहनाद गुग्गुल—त्रिफला प्रत्येक १२ तोला, (कुल ३६ तोला) इसका काढ़ा करके छान लेना चाहिये। इसमें शुद्ध गन्धक ४ तोला, गुग्गुल १२ तोला, एरण्ड १६ तोला मिलाकर लोहे के बर्तन में पाक करना चाहिये। मात्रा ¼ से आधा तोला।

उपयोग—सब प्रकार के वायु-रोग में, आमवात, उदर-रोग, गुल्म और शूल में उपयोगी है।

आसव और अरिष्ट

निर्माण-विधि—साधारणतः सब आसव और अरिष्ट एक मास तक बन्द बर्त्तन में रक्खे जाते हैं। यह बर्त्तन प्रायः मिट्टी का होता है। आसव और अरिष्ट के बनाने का समय प्रायः ग्रीष्म-ऋतु उत्तम है। सर्दियों में पर्याप्त गरमी न मिलने से प्रायः खट्टे हो जाते हैं। जिस आसव या अरिष्ट में अम्लता उत्पन्न हो जाती है, वह स्वाद और गुण में उतर जाता है। आसव या अरिष्ट को यथासम्भव इस अम्लता से बचाना चाहिये।

अभयारिष्ट—हरड़ ४०० तोला, द्राक्षा २०० तोला, वायविडंग ४० तोला, महुआ के फूल ४० तोला, पानी ४०९६ तोले में काढ़ा करके चतुर्थांश शेष रहे, तब उतारकर उसमें गुड़ ४०० तोला, गोखरू, निशोथ, धनिया, धातकी के फूल, इन्द्रायण, चविका, सौंफ, सोंठ, दन्तीमूल, मोचरस प्रत्येक ८ तोला लेकर चूर्ण करके मिलाना चाहिये। इसको अरिष्ट-विधि से बन्द करके एक मास के पीछे निकालकर व्यवहार में लाना चाहिये।

उपयोग—अर्श, उदर-रोग, संग्रहणी, पाण्डु, हृदय-रोग, प्लीहा, गुल्म, शोथ आदि में।

अशोकारिष्ट—अशोक की छाल ४०० तोला, पानी ४०९६ तोले में पकाकर चतुर्थांश शेष रखना चाहिये। पीछे से इसमें गुड़ ४०० तोला, धातकी के फूल ६४ तोला, कालाजीरा, मोथा, सोंठ, दारुहल्दी, कमल, आँवला, हरड़, बहेड़ा, आम की गुठली, जीरा, अडूसे की छाल, चन्दन ये सब वस्तु प्रत्येक ४ तोला करके मिलानी चाहिये। इसको आसव-विधि से एक मास तक मिट्टी के घड़े में भरकर रखना चाहिये। मात्रा १ से ३ तोला।

उपयोग—श्वेत प्रदर, ज्वर, रक्त-पित्त, अर्श, मन्दाग्नि, अरुचि, प्रमेह, शोथ आदि में तथा स्त्रियों के तमाम रोगों में।

अश्वगन्धारिष्ट—असगन्ध २०० तोला, श्वेत मूसली ८० तोला, मजीठ, हरड़, दोनों हल्दी, मुलहट्ठी, रास्ना, विदारीकन्द, अर्जुनवृक्ष, मोथा, निशोथ, ये सब प्रत्येक ४० तोला, अनन्तमूल, श्यामलता, चन्दन, रक्तांजली वच, चित्रकमूल प्रत्येक ३२ तोला, इन सबका ८१९२ तोले पानी में काढ़ा करके अष्ठमांश शेष रखकर (१०२४ तोला) इसमें धातकी के फूल ६४ तोला; शहद ८०० तोला, त्रिकटु ८ तोला, त्रिजातक १६ तोला, नागकेसर ८ तोले

डालकर कपड़-मिट्टी करके दो महीने तक रख देना चाहिये। मात्रा २ तोला।

उपयोग—मूर्च्छा, अपस्मार, शोष, दाह, उन्माद, कृशता, वात-व्याधि में उपयोगी है।

एलाद्यरिष्ट—बड़ी इलायची २०० तोला, अड़ूसे की छाल ८० तोला, मजीठ, कुटज की छाल, दन्तीमूल, गिलोय, दोनों हल्दी, रास्ना, उशीर, मुलहठी, शिरीष, खैरसार, अर्जुनवृक्ष की छाल, चिरायता, नीम, कूठ, चित्रक और सौंफ प्रत्येक ४० तोला लेकर ८१९२ तोले पानी में काढ़ा करके १०२४ तोला शेष रहने पर धातकी के फूल ६४ तोला, शहद १२०० तोला, चतुर्जात, त्रिकटु, चन्दन, लाल चन्दन, जटामांसी, मोरबेल, मोथा, श्यामलता, श्वेत सारिवा प्रत्येक ४ तोला मिलाकर एक मास तक घड़े में भर करके रख देना चाहिये। मात्रा २ से ४ तोला।

उपयोग—विसर्प, मसूरिका, खसरा, विषम ज्वर आदि में।

कुटजारिष्ट—कुटज की छाल ४०० तोला, किसमिस २०० तोला, महुवा ४० तोला, खंभारी का मूल ४० तोला, सबको ४०९६ तोले पानी में काढ़ा करके चतुर्थांश (१०२४ तोले) पानी शेष रखकर इसे छान लेना चाहिये। फिर इसमें धातकी का फूल ८० तोला, गुड़ ४०० तोला मिलाकर आसव-विधि से बन्द कर देना चाहिये। मात्रा १ से ४ तोला।

उपयोग—सब प्रकार के ज्वर, अग्निमान्द्य, संग्रहणी, रक्तातिसार में उपयोगी है।

दशमूलारिष्ट—दशमूल प्रत्येक २० तोला, चित्रकमूल १०० तोला, पुष्करमूल १०० तोला, लोध्र ८० तोला, गिलोय ८० तोला, आँवला ६४ तोला, धमासा ४८ तोला, खैर की छाल ३२ तोला, बेल की छाल ३२ तोला, कूठ, मजीठ, देवदारु, वायविडङ्ग, मुलहठी, भारंगीमूल, बहेड़ा, पुनर्नवामूल, चविका, जटामांसी, प्रियंगु, अनन्तमूल, जीरा, निशोथ, रेणुका, रास्ना, पिप्पली, सुपारी, कचूर, हल्दी, सौंफ, पद्माख, नागकेसर, मोथा, इन्द्रजौ, काकड़ाशृङ्गी, जीवक, ऋषभक (अभाव में विदारीकन्द), मेद-महामेदा (अभाव में शतावरी), क्षीर काकोली (अभाव में असगन्ध), ऋद्धि-वृद्धि (अभाव में वराहीकन्द) प्रत्येक ८ तोला लेकर कूटकर सबसे आठ गुने पानी में उबालना चाहिये। पीछे जब चतुर्थांश बाकी रहे, तब इसको छानकर, मटके में भरकर रख देना चाहिये। किसमिस २५६ तोला लेकर चारगुने

पानी में उबालना चाहिये। जब ¼ भाग जल जाय, तब छानकर पहले मटके में भर देना चाहिये। इसमें शहद १२८ तोला, गुड़ १६०० तोला, धातकी के फूल १२० तोला, कंकोल, नेत्रबाला, चन्दन, जायफल, लौंग, दालचीनी, इलायची, तमालपत्र, नागकेसर, पिप्पली प्रत्येक ८ तोला लेकर सबका चूर्ण पहले मटके में मिला देना चाहिये। कस्तूरी १ शाण (¼ तोला) भी मिलाकर कपड़मिट्टी कर देनी चाहिये। जब भली प्रकार रस बन जाय, तब उसमें निर्मली के बीज मिला देने चाहिये, जिससे पानी साफ़ हो जाय। मात्रा—१ से २½ तोला।

उपयोग—संग्रहणी, अरुचि, श्वास-कास, गुल्म, भगन्दर, वात-रोग, क्षय, वमन, पाण्डु, कामला, अर्श, प्रमेह, उदर-रोग, धातुक्षय, गरमी आदि रोग शान्त होते हैं। स्त्रियों के बन्ध्या-दोष को नष्ट करता है। दुर्बल मनुष्यों को सशक्त बनाता है। शरीर में वीर्य और बुद्धि को बढ़ाता है।

द्राक्षारिष्ट—द्राक्षा २०० तोला, २०८ तोले पानी में उबालकर, चतुर्थांश बाकी रहने पर छान लेना चाहिये। इसमें गुड़ ८०० तोला, दालचीनी, तमालपत्र, इलायची, नागकेसर, प्रियंगु, मिर्च, पिप्पली, वायविडङ्ग प्रत्येक चार तोला चूर्ण करके इसको मिट्टी के बर्त्तन में एक मास तक रखना चाहिये। मात्रा १ से ४ तोला।

उपयोग—उरःक्षत, कास, क्षय, श्वास, स्वर-भंग आदि में उपयोगी है, शक्ति बढ़ाता है।

अहिफेनासव—महुवा की दारू ४०० तोला, अफीम १६ तोला, मोथा, जायफल, इन्द्रजौ, इलायची प्रत्येक चार तोला इन सबको कूटकर मिट्टी के, बर्त्तन में भरकर रखना चाहिये। मात्रा ५ से १० बूँद।

उपयोग—अतिसार, कॉलरा, संग्रहणी आदि रोगों में हितकर है।

उशीरासव—उशीर, नेत्रबाला, लाल कमल, सिम्बल का जल, कमल, प्रियंगु, पद्माख, लोध्र, मजीठ, धमासा, पान, चिरायता, कटुकी, बड़ की छाल, उदुम्बर की छाल, कचूर, पित्तपापड़ा, सफेद कमल, पटोल, कचनार की छाल, जामुन की छाल, मोचरस प्रत्येक ४ तोला चूर्ण, द्राक्षा ८० तोला, धाय के फूल ६४ तोला, पानी २०४८ तोले, शर्करा ४०० तोला, मधु ४०० तोला इन सबको मिट्टी के बर्त्तन में भरकर रखना चाहिये। मात्रा १ से ४ तोला।

उपयोग—रक्तपित्त, पाण्डु, कुष्ठ, प्रमेह, कृमि, रक्त-विकार में।

कनकासव—धतूरे का पञ्चाङ्ग १६ तोला, अडूसे के मूल के छाल, मुलहट्ठी, पिप्पली, कटेरी, कंसर, सोंठ, भारंगी, तालीशपत्र ये सब मिलाकर ८ तोला, धाय के फूल ६४ तोला, द्राक्षा ८० तोला, पानी २०४८ तोला, शर्करा ४०० तोला, मधु २०० तोला इन सबको मिलाकर मिट्टी के बर्त्तन में एक मास तक रखना चाहिये। मात्रा १ से २ तोला।

उपयोग—सब प्रकार के श्वास, कास, क्षय, उरःक्षत, जीर्ण-ज्वर, रक्त-पित्त आदि में।

कर्पूरासव—महुवा की शराब इसके अभाव में सिरका ४०० तोला, कपूर ३२ तोला, इलायची, दालचीनी, सोंठ, अजवायन, मिर्च प्रत्येक ४ तोला लेकर सबको कूटकर एक मास तक मिट्टी के बर्त्तन में रखना चाहिये। मात्रा—१० से २० बूँद।

उपयोग—शूल, कौलरा, अजीर्ण आदि रोग में।

कुमारिकासव—कुँवार का गूदा १०२४ तोला, गुड़ ४०० तोला, हरड़ १०० तोला, पानी १०२४ तोला, इन सबका काढ़ा करके चतुर्थांश पानी रहने पर छान लेना चाहिये। मधु २५६ तोला, धातकी का फूल ६४, जायफल, लौंग, मिर्च, कंकोल, शीतलचीनी, जटामांसी, चविका, चित्रक, जावित्री, काकड़ा-शृंगी, बहेड़ा, पुष्करमूल प्रत्येक का चार तोला चूर्ण, ताम्र-भस्म २ तोला, लोह-भस्म २ तोला मिलाकर मिट्टी के पात्र में एक मास तक रखकर उपयोग करने से स्त्रियों के रक्त-गुल्म, पाँच प्रकार की कास, श्वास, क्षय, उदर-रोग, अर्श, वात-व्याधि, अपस्मार, मन्दाग्नि उदर-शूल, गुल्म, प्लीहा को नष्ट करती है। मात्रा २ से ४ तोला।

द्राक्षासव—द्राक्षा ४०० तोला, ८१९२ तोले पानी में काढ़ा करके चतुर्थांश पानी रहने पर छान लेना चाहिये। इसमें मधु १०० तोला, मिश्री १०० तोला, धातकी के फूल ६० तोला, कंकोल, लौंग, जायफल, मिर्च, दालचीनी, इलायची, तमालपत्र, नागकेशर, पिप्पली, चविका, चित्रक, पिप्पली-मूल, पित्तपापड़ा प्रत्येक ४ तोला मिलाकर कपूर और धूप से सुगन्धित किये हुये मिट्टी के बर्तन में भरकर दो मास तक रखना चाहिये। मात्रा १ से ४ तोला।

उपयोग—कास, श्वास, उरःक्षत, मन्दाग्नि, संग्रहणी अर्श, गुल्म, उदर, कुष्ठ-रोग, व्रण, नेत्र-रोग में।

धात्र्यासव—पका हुआ आँवला २००० नग, इनका रस निकालकर, इसमें १/८ मधु, शर्करा २०० तोला, पिप्पली-चूर्ण ८ तोला इन सबको घी के बर्त्तन में भरकर अनाज के ढेर में पन्द्रह दिन तक दबाकर रखना चाहिये। मात्रा २ से ४ तोला।

उपयोग—कामला, पाण्डु, हृदय-रोग, वातरक्त, विषम ज्वर, श्वास, अरुचि में।

पतंगासव—पतंग, कत्था, सिम्बल का फूल, बलबीज, भिलावा, श्वेत सारिवा, काला सारिवा, जासुदी के फूल, आम की गुठली, दारुहल्दी, चिरायता, पांखने का डोडा, जीरा, लोह, रसवन्ती, बेल का फल, भाँगरा, दालचीनी, केशर, लौंग प्रत्येक ४ तोला लेकर चूर्ण करना चाहिये। किसमिस ८० तोला, धातकी के फूल ६४ तोला, पानी २०४८ तोला, शर्करा ४०० तोला, मधु २०० तोला, सबको एकत्रित करके मिट्टी के बर्त्तन में भरकर एक मास तक रखना चाहिये। मात्रा २ से ४ तोला।

उपयोग—प्रदर, श्वेत प्रदर, कष्ठार्त्तव, ज्वर, पाण्डु, शोथ, मन्दाग्नि, अरुचि आदि में।

पिप्पल्यासव—पिप्पली, मिर्च, चव्य, हरिद्रा, चित्रक, नागरमोथा, वायविडंग, सुपारी, लोध्र, पाठा, आँवला, शीतलचीनी, चन्दन, कूठ, लौंग, तगर, जटामांसी, दालचीनी, इलायची, तमालपत्र, प्रियंगु, नागकेशर प्रत्येक ४ तोला लेकर पानी २०४८ तोला, गुड़ १२०० तोला मिलाना चाहिये। धातकी के फूल ४० तोला, किसमिस २४० तोला, दोनों को बारीक पीसकर मिलाना चाहिये। पीछे से इसको मिट्टी के बर्त्तन में भरकर १ मास तक रखना चाहिये। मात्रा २ से ४ तोला।

उपयोग—क्षय, गुल्म, उदर-रोग, कृशता, संग्रहणी, पाण्डु, अर्श आदि रोग में।

लोहासव—लोह-भस्म, त्रिकटु, त्रिफला, अजवायन, वायविडंग, मोथा, चित्रकमूल प्रत्येक १६ तोला, धातकी के फूल ८० तोला, मधु २५६ तोला, गुड़ ४०० तोला, पानी २०४८ तोला, इन सबको मिट्टी के बर्त्तन में एक मास तक भरकर रखना चाहिये। मात्रा २ से ४ तोला।

उपयोग—मन्दाग्नि, पाण्डु, शोथ, उदर-रोग, अर्श, कुष्ठ-रोग, श्वास, हृदय-रोग में।

वासासव—अडूसे के ताजे पत्ते २०० तोला, इसको जरा कूटकर, ४० सेर पानी में काढ़ा करके चतुर्थांश शेष रखना चाहिये। इसमें १० सेर गुड़, धातकी के फूल ३२ तोला, इलायची, तमालपत्र, नागकेशर, शीतलचीनी, मिर्च, बाला प्रत्येक ४ तोला लेकर मिट्टी के बर्त्तन में भरकर रखना चाहिये। मात्रा—१ से ४ तोला।

उपयोग—कास, क्षय, उरःक्षत, जीर्ण-ज्वर, शोथ में।

अवलेह

अवलेह को बनाने में इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिये कि यह पतला या शुष्क न हो जाय। इतना होना चाहिये कि चाटकर खाया जा सके। पाक करते समय इस बात का भी ध्यान रखना चाहिये कि सुगन्धित प्रक्षेप द्रव्य डालने के पश्चात् आग पर रखने की जरूरत न पड़े। इनमें मिलाया हुआ शहद इनको देर तक सुरक्षित रखता है।

अमृत हरीतकी—शतावरी, भाँगरा, पुनर्नवा, काँटाशेरी प्रत्येक २८ तोला, चार गुना पानी में काढ़ा करना चाहिये। चतुर्थांश बाकी रहने पर छान लेना चाहिये। इसमें हरड़ १४०० तोला, दूध १६० तोला डालकर पकाना चाहिये। पीछे से हरड़ें चीरकर उनमें से गुठली निकाल देनी चाहिये। पारा २४ तोला, गन्धक २४ तोला इनको एक लोहे के बर्त्तन में पिघलाकर कज्जली बनानी चाहिये। इस कज्जली में २८ तोला गिलोय-सत्व मिलाकर मधु में गोलियाँ बनानी चाहिये। ये गोलियाँ एक-एक हरड़ में भरनी चाहिये। पीछे से इन हरड़ों को धागे से बाँधकर इन हरड़ों को शहद में भिगोकर रखना चाहिये। मात्रा—१ हरड़।

उपयोग—शुष्क पाण्डु को मिटाती है।

आर्द्रकावलेह(१)—पांच सेर आर्द्रक को छीलकर इसके पतले पत्ते बनाने चाहियें। पीछे से धनिया, अजवायन, लोह-भस्म, जीरा, दालचीनी, तमालपत्र, इलायची, कुटकी प्रत्येक दो-दो तोला, इनका चूर्ण करना चाहिये। पीछे से पाँच सेर गुड़ को पाक करके इसमें आर्द्रक का चूरा तथा चूर्ण मिलाकर अवलेह बनाना चाहिये। मात्रा २ से ४ तोला।

उपयोग--कास, पीनस-रोग, प्रतिश्याय, अर्श, गुल्म, शोथ, क्षय में।

आर्द्रकावलेह (२)—आर्द्रक का रस ४० तोला, पानी १० तोला, शर्करा २० तोला इनको घी में ताप से पाक करना चाहिये। इसमें केशर, इलायची, जायफल, जावित्री, लौंग प्रत्येक एक-एक तोले का बारीक चूर्ण मिलाना चाहिये। मात्रा ½ से १ तोला।

उपयोग—मन्दाग्नि, कास, श्वास और अरुचि में।

कन्टकारि अवलेह—छोटी कटेरी का पंचाङ्ग सूखा हुआ १० सेर, अधकचरी खाँड २६ सेर पानी में उबालना चाहिये। जब पानी चतुर्थांश बाकी रहे, तब इसको छानकर इसमें शर्करा २ सेर, घी ३२ तोला, तेल ३२ तोला, गिलोय, चविका, चित्रक, मोथा, काकड़ाशृङ्गी, त्रिकटु, धमासा, कटेरी-मूल, रास्ना, कचूर इन सब वस्तुओं में प्रत्येक का चूर्ण ४ तोला मिलाकर उबालना चाहिये। जब अवलेह जैसा पाक हो जाय, तब उतारकर इसको ठण्डा होने देना चाहिये। तब इसमें मधु ३२ तोला, बाँसकपूर १६ तोला, पिप्पली-चूर्ण १६ तोला मिलाकर मिट्टी के बर्त्तन में रखना चाहिये। मात्रा १ से २ तोला।

उपयोग—हिचकी, दमा, कास, श्वास में उपयोगी होता है।

कासकन्डनावलेह—बकरी का मूत्र ४०० तोला, इसको उबालकर गाढ़ा बनाना चाहिये। पीछे से इसमें बहेड़ा ८ तोला, पिप्पली ४ तोला, लोह-भस्म ४ तोला, कटेरी का फल ८ तोला, इन सबको बारीक चूर्ण करके कच्चे पानी में भरकर रखना चाहिये। मात्रा— २ से ४ माशा।

अनुपान—केले का पानी अथवा मधु।

उपयोग—असाध्य खाँसी में।

कुटजावलेह—कुटज-छाल १० सेर, ७० सेर पानी में काढ़ा करके चतुर्थांश शेष रखना चाहिये। पीछे से इसको छानकर इसमें गुड़ ३ सेर मिलाकर पाक करना चाहिये। इसमें रसौंत, मोचरस, त्रिकटु, आँवला, गोसामणी, चित्रक, पहाड़मूल, बेल-फल, इन्द्रजौ, बच, भिलाँवा, अतीस, वायविडङ्ग, नेत्रवाला प्रत्येक ४ तोले का चूर्ण तथा घी १६ तोला मिलाकर नीचे उतार लेना चाहिये। ठण्डा होने पर इसमें ३२ तोला शहद मिलाना चाहिये। मात्रा—१ से २ तोला।

अनुपान—छाछ, दूध, दही, घी, पानी।

उपयोग—अतिसार, अर्श, संग्रहणी, पाण्डु, रक्तपित्त।

कुष्माण्डावलेह—उत्तम प्रकार से पीसा हुआ भूरा कुम्हड़ा १२½ सेर, ४ सेर घी में भूनकर, कुष्माण्ड-स्वरस १६ सेर और शर्करा १२½ सेर मिलाकर पाक करना चाहिये। पाक समाप्त होने से पहले पिप्पली, सोंठ, जीरा प्रत्येक १६ तोला, दालचीनी, इलायची, तेजपत्र, मिर्च, धनिया प्रत्येक ४ तोला मिलाकर पाक समाप्त कर लेना चाहिये। शीतल होने पर मधु मिलाकर घी के पात्र में रखना चाहिये। रक्तपित्त रोग की उत्कृष्ट औषधि है।

कुशावलेह—कुश, कास, उशीर, गन्ना, दाभड़ा इनके मूल प्रत्येक ८० तोला, जल ६४ सेर, शेष ८ सेर। इस काढ़े में दो सेर चीनी मिलाकर पुनः पाक करना चाहिये। लेह की भाँति होने पर मुलहट्ठी, कुष्माण्ड-बीज, वंशलोचन, आमलकी, तेजपात, दालचीनी, इलायची, नागकेशर, वरुण-छाल, गिलोय, प्रियंगु इनमें प्रत्येक का चूर्ण २ तोला मिलाकर उत्तमरूप से मिलाकर पाक समाप्त कर लेना चाहिये।

उपयोग—मूत्रकृच्छ्र-रोग में, मूत्रदाह, गनोरिया की प्रथमावस्था में विशेष उपकारी है।

अनुपान—नारियल का पानी, शीतल जल।

खण्डकाद्यवलेह—शतावरी, गिलोय, वासक-छाल, मुण्डी, बला, तालमूली, खैर, भारंगी, त्रिफला, पुष्कर-मूल प्रत्येक ५० तोला, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर। इस काढ़े में मनःशिला या स्वर्णमाक्षिक के साथ लोह-भस्म ९६ तोला, खाँड़ गुड़ २ सेर, घृत २ सेर मिलाकर ताँबे के बर्तन में गुड़पाक-विधि से पाक करना चाहिये। पाक समाप्त होने के समीप हो, उस समय वंशलोचन, शिलाजीत, दालचीनी, काकड़ाश्रृङ्गी, विडङ्ग, पिप्पली, सोंठ, जीरा प्रत्येक ८ तोला, त्रिफला, तेजपात, मिर्च, नागकेशर प्रत्येक २ तोला मिलाकर पाक समाप्त कर लेना चाहिये। शीतल होने पर २ सेर मधु मिलाकर घृतादि से स्निग्ध पात्र में रखना चाहिये।

उपयोग—रक्तपित्त में।

अनुपान—बकरी का दूध या वासकपत्र-रस।

गोखरू का अवलेह—गोखरू का पंचांग ४०० तोला, अश्वकचरा

करके १६ गुने पानी मे काढ़ा करके, चतुर्थांश शेष रखना चाहिये। इसमें शर्करा २०० तोला मिलाकर अवलेह की चासनी बना लेनी चाहिये। जब अवलेह बनने के करीब हो, तो उसमें सोंठ, पिप्पली, इलायची, जौखार, नागकेशर, जावित्री, अर्जुनवृक्ष, कमलकाकड़ी, बाँसकपूर प्रत्येक ३२ तोला मिलाकर मिट्टी के बर्त्तन में भरकर रखना चाहिये। मात्रा १ से २ तोला।

उपयोग— मूत्रकृच्छ्र-रोग में, अश्मरी में, प्रमेह में, रक्त-प्रमेह में।

च्यवनप्राशावलेह—दशमूल, पिप्पली, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, द्राक्षा, जीवन्ती, पुष्करमूल, अगर, हरीतकी, गिलोय, जीवनीय गण इनके अभाव में शतावरी, विदारी, अश्वगन्धा और वाराहीकन्द, शठी, मोथा, पुनर्नवा, छोटी इलायची, उत्पल, लालचन्दन, अड़ूसा प्रत्येक ८ तोला, बड़े-बड़े आँवले ५००, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर। पीछे से आँवलों के अन्दर से गुठली निकालकर खूब बारीक पीस लेना चाहिये तिल-तैल और घृत समभाग लेकर १॥ सेर आँवलों की पिष्ठि को इसमें भून लेना चाहिये। पूर्वोक्त काढ़े में मिश्री ६¼ सेर मिलाकर इसमें आँवले डालकर लेह के समान पाक कर लेना चाहिये। लेह के समान पाक होने पर वंशलोचन ½ सेर, पिप्पली चूर्ण १६ तोला, दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर प्रत्येक ८ तोला मिलाकर मीठी आँच पर घन बनाना चाहिये। शीतल होने पर इसमें मधु उचित मात्रा में मिलाकर पाक शेष कर लेना चाहिये।

अनुपान—मधु या दूध।

उपयोग—शुष्क कास में, वायु-जनित श्वास-रोग में, रक्तपित्त में, यक्ष्मा में श्रेष्ठ रसायन है।

द्राक्षावलेह—काली द्राक्षा को दूध में उबालकर घी में तलना चाहिये। पीछे मे शर्करा की चासनी करके उसमें मिलाकर नीचे की वस्तुयें भी मिला देनी चाहिये। बादाम घी में भूनकर, कूटकर चूर्ण बना लेना चाहिये। खोये को घी में भूनकर इसमें मिलाना चाहिये। जायफल, जावित्री, लौंग, इलायची, बाँसकपूर, दालचीनी, तमालपत्र, नागकेशर, कमलगट्टा इन सब वस्तुओं का बारीक चूर्ण, चासनी में मिलाकर पाक बना लेना चाहिये। मात्रा १ से ४ तोला।

उपयोग—अम्लपित्त, रक्तपित्त, क्षय, पाण्डु, कामला-रोग में।

दन्तीहरीतकी—बड़ी हरड़ २५ लेकर एक कपड़े में पोटली बाँधकर दन्ती-मूल २०० तोला, निशोथ २०० तोला, पानी ४०९६ तोले में काढ़ा करना चाहिये। जब पानी अष्टमांश अर्थात् ५१२ तोला शेष रह जाय, तब इसमें हरड़ की पोटली निकालकर ३२ तोले तिल-तैल में तलनी चाहिये। पीछे से गुड़ २०० तोला मिलाकर चासनी बनानी चाहिये। इस चासनी में निशोथ ३२ तोला, पिप्पली ८ तोला, सोंठ ८ तोला मिलाकर पाक-शेष करना चाहिये। ठण्डा होने पर मधु ३६ तोला, चतुर्जात ३६ तोला मिलाकर रखना चाहिये। इसमें हरड़ों को डुबोकर रख देना चाहिये। इनमें से एक-एक हरड़ रोज खानी चाहिये।

गुण—मलावरोध, उदर-रोग, प्लीहा, यकृत-शोथ आदि रोग में यह प्रयोग तीन मास तक प्रचलित रखना चाहिये।

विभीतकावलेह—बहेड़ा-फल १०० या इसकी छाल, बकरी का दूध १० सेर में जोश देकर इसका अवलेह बनाना चाहिये। इसमें दुगुना मधु मिलाना चाहिये। मात्रा १ से २ तोला।

उपयोग—कास, कास-श्वास में।

मधुपक्वहरीतकी—कदम्ब, कड़वानीम, इमली इन तीनों की छाल ६४ तोला, बकरी, गाय, भैंस का मूत्र १००० तोला, इसमें छालों को उबालकर जब चतुर्थ भाग मूत्र बचा रहे, तब बाकी रहे मूत्र में हरड़ १०० नग मिलाकर फिर से उबालना चाहिये। जब हरड़ें नर्म पड़ जायँ, तब उनमें से गुठलियाँ निकालकर और पाँच तोला सज्जीखार तथा पाँच रुपया भर भाँग का चूर्ण हरड़ों के अन्दर भरकर, ऊपर धागे से बाँधकर, हरड़ों को मधु के अन्दर डुबोकर रखना चाहिये।

उपयोग—अर्श, गुल्म, यकृतोदर, उदर-शूल तथा पुराने रोगों में।

वासावलेह—वासक-पत्र ४०० तोला, पानी ३२०० तोला काढ़ा करके चतुर्थांश शेष रहने पर इसमें हरड़ का चूर्ण २५६ तोला मिलाकर गाढ़ा बनानी चाहिये। पीछे इसमें मधु ३२ तोला, बाँसकपूर ८ तोला, पिप्पली २ तोला, चतुर्जात ४ तोला मिलाकर मिट्टी के पात्र में भरकर रखना चाहिये। मात्रा २ से ४ तोला, श्वास-कास, क्षय, रक्त, पित्त, कफ, हृदय-रोग, विद्रधि, उरःक्षत, रक्त की वमन में लाभ करता है।

अडूसे का अवलेह—वासकपत्र को पीसकर स्वरस अथवा पुटपाक द्वारा रस निकाल लेना चाहिये। इसमें शर्करा मिलाकर धीमे-धीमे ताप से गरम करके शहद जैसा अवलेह बनाना चाहिये। चटनी के प्रमाण में बहेड़ा तथा हल्दी का चूर्ण मिलाना चाहिये।

उपयोग—कास, कफ, श्वास, क्षय और रक्तपित्त में।

हरीतकी अवलेह—जौ २५६ तोला, दशमूल ८० तोला, हरड़ नग १००, चित्रकमूल, पिप्पलीमूल, अपामार्ग, कचूर, कौंच, शङ्खावली, भारंगीमूल, गजपिप्पली, पुष्करमूल प्रत्येक ८ तोला और सबके वजन से आठ गुना पानी में उबालना चाहिये और जब चौथा भाग पानी शेष रहे, तब छान लेना चाहिये। हरड़ों को कपड़े में से छानकर इसका खोवा काढ़ना चाहिये। पीछे से इस क्वाथ को आंच पर चढ़ाना चाहिये। इसमें गुड़ १६ सेर, घी तोला ३२, तिल तेल ३२ तोला और हरड़ का खोवा मिलाकर पाक करना चाहिये। जब पाक गाढ़ा हो जाये तब इसमें मधु १६ तोला, पिप्पली १६ तोला मिलाकर पाक समाप्त कर देना चाहिये। मात्रा १ से ४ तोला।

उपयोग—क्षय, कास, ताप, दमा, हिचकी, अर्श, अरुचि, पीनस-रोग, संग्रहणी। इसका नाम **अगस्त्य हरीतकी अवलेह** भी है।

पाक

पाक बनाने की विधि नीचे लिखे पाकों से समझ में आ सकती है। यहाँ पर पाकों के कुछ नमूने हैं। इनके आधार पर विदारी, बिनौले आदि वस्तुओं का भी पाक बनाया जा सकता है। पौष्टिक वस्तुओं का चूर्ण करके, उनको घी में भूनकर साथ में खोवे को भी घी में भूनकर, खाँड़ की चासनी में मिलाकर, परात या चौड़े बर्त्तन में कलाकन्द की भाँति जमाने से पाक बन जाता है।

असगन्ध पाक—असगन्ध ४६ तोला, सोंठ २६ तोला, पिप्पली १६ तोला, मिर्च ४ तोला, इनका चूर्ण गाय का दूध ५ सेर में उबालकर मावा करना चाहिये। पीछे से इसमें ५ सेर घी मिलाना चाहिये। और इसको घी में भूनकर दाना बना लेना चाहिये। शर्करा ८ से १२ लेकर इसकी चासनी बनानी चाहिये। चासनी बनने पर इसमें उपरोक्त खोवा तथा नीचे की वस्तुओं

का बारीक चूर्ण मिलाना चाहिये। दालचीनी ४ तोला, तमालपत्र ४ तोला, इलायची ४ तोला, पिप्पलीमूल, जीरा, लौंग, अगर, नेत्रबाला, चित्रकमूल, चन्दन, नारियल, कमल, रूमीमस्तकी, बांसकपूर, आँवला, कत्था, कपूर, धमासा, पुनर्नवा, असगन्ध, शतावरी, भाँग प्रत्येक ½ तोला इनको परात में गिराकर पाक बनाना चाहिये। मात्रा २½ से ५ तोला।

उपयोग—मन्दाग्नि को दूर करती है, पुष्टि देती है।

लहसुन पाक—प्याज २० तोला, दूध २ सेर, घी ¼ सेर, मधु ९ तोला, शर्करा २ सेर, दालचीनी तथा जायफल प्रत्येक १ तोला, लौंग, केसर, जावित्री, आधा तोला (प्रत्येक) शुद्ध ताम्र-भस्म आधा तोला, कौंच-बीज ४½ तोला, खोवा ९ तोला इन सबका पाक करना चाहिये। मात्रा २½ तोला। नपुन्सकता को दूर करके पुरुषत्व देता है।

कामवर्द्धक (मोदक)—तालमखाना, गोखरू, बलदाना, श्वेत मुसली, कौंच, असगन्ध, मुलहठी, शतावरी, ये सब समभाग मिलाकर २ सेर, इनके चूर्ण को आठ गुने दूध में उबालकर खोवा करना चाहिये। खोवा तैयार हो, तो इसमें घी २ सेर मिलाना चाहिये। खोवे से दुगुनी या सवाई या १½ सेर शर्करा की चासनी बनानी चाहिये। पीछे से इसमें खोवा मिलाकर पाँच-पाँच रुपया भर परिमाण के लड्डू बना लेना चाहिये। यदि इच्छा हो, तो इसमें दालचीनी, तमालपत्र, इलायची, नागकेशर, बादाम, चारौली थोड़ी-थोड़ी मिला सकते हैं। मात्रा—५ से १० तोला, वीर्य की वृद्धि करके शरीर में शक्ति देता है।

कामेश्वर (मोदक)—अभ्र, कट्फल, कुटज, अश्वगन्धा, गिलोय, मेथी, मोचरस, विदारी, तालमूली, गोखरूबीज, कुलत्थी के बीज, कलारमूल, शतावरी, लोहबान, जटामांसी, पोस्ते का डोड़ा, तिल, धनिया, शठी, नागबला, गन्धतृण, मैनफल, जायफल, सैन्धव, भारंगी, काकड़ाश्रृङ्गी, सोंठ, पिप्पली, मिर्च, जीरा, कालाजीरा, चीतामूल, दालचीनी, तेजपत्र, इलायची, नागकेशर, पुनर्नवा, गजपिप्पली, द्राक्षा, बाला, सिम्बल-मूल और कौंच के बीज प्रत्येक १ तोला। सिद्ध बीज ४२ तोला, चीनी १९६ तोला। यथाविधि पाक करना चाहिये। शीतल होने पर घी और मधु मिलाकर पाक समाप्त करना चाहिये।

उपयोग—संग्रहणी और रति-शक्तिवर्द्धक में।

अनुपान—दूध ।

कौंच पाक—कौंच को पानी या दूध में काढ़ा करके, ऊपर का छिलका उतारकर मींग को पीस लेना चाहिये । यह मींग १२८ तोला, दूध २५६ तोले में उबालकर खोवा कर लेना चाहिये । इस खोवे को ३-४ सेर घी में भूनकर दुगुना खाँड़ की चासनी में नीचे की वस्तुओं के साथ मिलाकर पाक बना लेना चाहिये । केसर, दालचीनी, तमालपत्र, इलायची, पिप्पली, सोंठ, लौंग, अनार, जावित्री, जायफल, अकरकरा, कंकोल, विधारा के बीज, अजवायन, मुसली, हरड़ प्रत्येक दो-दो तोला और कपूर १½ तोला, रससिन्दूर, नाग-भस्म आदि ऊँची दवाइयाँ इसमें इच्छा हो, तो मिला देना चाहिये । मात्रा—१ से २½ तोला ।

उपयोग—कामेच्छा, धातु, बल, बुद्धि को बढ़ाता है, वाजीकरण है ।

बादाम-पाक—बदाम को मींग २० तोला, खोवा १० तोला, मुगलाई बेदाना ४ तोला, लौंग, जायफल, जावित्री, केसर, बाँसकपूर, कमलगट्टा, प्रत्येक ½ तोला, इलायची, दालचीनी, तमालपत्र, नागकेसर प्रत्येक १ तोला, शर्करा २½ सेर, घी २० तोला, बादाम का चूर्ण तथा खोवा घी में सेंकना चाहिये । फिर शर्करा की चासनी करके इसमें ऊपर की सब वस्तुएँ मिलाकर तथा अभ्रक-भस्म ½ तोला, बङ्ग-भस्म ¼ तोला, स्वर्णमाक्षिक-भस्म ¼ तोला, प्रवाल-भस्म ¼ तोला इन सब भस्मों को शक्ति के अनुसार मिलाना चाहिये । मात्रा—१ से २½ तोला ।

उपयोग—वीर्य-वृद्धि, पुष्टि तथा ज्वर-जन्य निर्बलता के लिये उपयोगी है ।

माषादि-मोदक— उड़द की साफ की हुई दाल का लोट, गेहूँ का दाना, साफ किया हुआ जौ का आटा, चावल का आटा, पिप्पली का चूर्ण प्रत्येक चार तोला, इन सबमें घी ¼ सेर मिलाकर भूनना चाहिये । पीछे सबके बराबर शर्करा से दुगुना पानी लेकर हल्की आँच से चासनी बनानी चाहिये । पीछे से चार-चार तोले के लड्डू बनाना चाहिये । इसमें से एक लड्डू रोज खाना चाहिये ।

सालम-पाक—सालम २० तोला, इसके चूर्ण को १२८० तोला दूध में उबालकर पर्याप्त घी में भून लेना चाहिये । इस भूने हुये पदार्थ के बराबर शर्करा अथवा थोड़ा शर्करा की चासनी करके इस खोवे का पाक करना

चाहिये। ऊपर से भी शर्करा बिछाना चाहिये। पीछे मर्त्तबान का मुँह बन्द करके कपड़मिट्टी से लेप करके दो-तीन मास तक रख देना चाहिये। इतने में पत्तियाँ घुलकर एक रस बन जायँगी। इसमें सुगन्धित वस्तुयें भी मिला सकते हैं।

शर्बत

शर्बत बनाने की विधि यह है कि एक सेर पानी में ½ सेर खाँड़ डालकर एक तार की चासनी कर लेना चाहिये और फिर ठण्डी होने पर निर्जल परन्तु शुद्ध बोतलों में भरकर रख देना चाहिये। ऊपर से ढक्कन या डाट लगाकर रख देना चाहिये।

जिस स्थान पर किसी वनस्पति का शर्बत बनाना होता है, उस स्थान पर वनस्पति के पत्तों का स्वरस या फल का रस अथवा मूल अथवा पंचांग का काढ़ा करके उसमें ऊपर के परिमाण में खाँड़ मिलाकर चासनी पका लेनी चाहिये।

इस विधि से ब्राह्मी के पत्तों का स्वरस निकालकर, उसमें शर्करा मिलाकर ब्राह्मी का शर्बत बनाया जाता है। अनार के फलों का रस निकालकर, उसमें खाँड़ मिलाकर शर्बत बनाते हैं।

परन्तु बाजार में एक और विधि शर्बत बनाने की प्रचलित है। इसमें खाँड़ का शर्बत बनाकर एसेन्स या उसका अर्क मिला दिया जाता है। उदाहरण के लिये—गुलाब या केवड़े का शर्बत बनाना हो, तो उसमें गुलाब का एसेन्स या उसका अर्क मिला दिया जाता है। प्राय: यह सब शर्बत इसी विधि से बनाये जाते हैं। लोग तकलीफ नहीं करते कि स्वरस या काढ़ा करें, फलों का रस महँगा पड़ता है। इसलिये ऊपर की विधि बरती जाती है।

क्षार

क्षारों की विधि यह है कि जिस वस्तु का क्षार बनाना हो, उसको जलाकर दो या तीन बार पानी में धो देना चाहिये। पीछे से इस पानी को गरम करना चाहिये। उबालते-उबालते पानी उड़ा देना चाहिये। नीचे से सफेद क्षार ले लिया जाता है।

अपामार्ग-क्षार—अपामार्ग के पंचांग को छाया में जलाकर इसकी राख करके क्षार निकाल लेना चाहिये। मात्रा १ से ४ बाल।

गुण—उष्ण, भेदन, कफघ्न तथा गुल्मघ्न, मूत्रल।

नारिकेल-क्षार—पानीवाले हरे नारियल में छेद करके, उसमें नमक भरकर, कपड़मिट्टी करके धूप में सुखाना चाहिये। फिर अग्नि की आँच में पकाना चाहिये। पीछे से इस नारियल को पीसकर, शीशी में भरकर रखना चाहिये। मात्रा ½ से ½ तोला। पिप्पली-चूर्ण के साथ खाने से सब प्रकार की शूल मिटती है।

यव-क्षार—जौ के पंचांग को लेकर इसको छाया में सुखा देना चाहिये। पीछे क्षार-विधि से क्षार बनाना चाहिये। मात्रा—१ से ३ बाल।

गुण—कफघ्न और मूत्रल।

वज्र-क्षार—संचल, जौखार, साम्भर, काँच, सैन्धव, टंकण, सर्जक्षार इन सबको बराबर भाग में लेकर आक के दूध तथा थोर के दूध में तीन दिन तक भावना देनी चाहिये। पीछे धूप में सुखाकर इनको आक के पान में लपेटकर, शराव में भरकर शराव सम्पुटों को आग में गजपुट में फूँक देना चाहिये। स्वांग शीतल होने पर इसमें सोंठ, मिर्च, पिप्पली, त्रिफला, जीरा, अजवायन, चित्रक ये सब समभाग लेकर चूर्ण करके मिला देना चाहिये। इसका नाम वज्रक्षार है। मात्रा—८ माशा।

अनुपान—जठराग्नि बढ़ाने के लिये छाछ में देना चाहिये।

उपयोग—उदर-रोग, शोथ, गुल्म, अग्निमान्द्य, अरुचि, प्लीहा, यकृत आदि के रोगों में।

घृत

घृतपाक की परीक्षा यह है कि जब घृत का रङ्ग निर्मल हो जाय, सारा कल्क नीचे बैठ जाय, घृत नितर आये और कल्क हाथ पर लगाने से चिपके नहीं, नांही बिखर जांय, बल्कि बत्ती बन सके, तब समझना चाहिये कि पाक होगया है। शास्त्र में लिखा है कि जब घी की झाग मर जाय, तब समझना चाहिये कि पाक होगया है।

अमृताघृत—अधकचरी गिलोय १६ तोला, पानी ६४ तोले इनका काढ़ा करना चाहिये। जब चतुर्थांश बाकी रहे, तब कपड़े में से छान करके इसमें घी ५ तोले, गिलोय का कल्क १॥ तोला और दूध २० तोला मिलाकर पीछे से मीठी आँच पर पकाना चाहिये। जब घी बाकी रहे, तब छानकर उतार लेना चाहिये। मात्रा २ से ४ तोला।

उपयोग—वातरक्त, कुष्ठ आदि रोग में।

त्रिफलाघृत—हरड़, बहेड़ा और आँवला प्रत्येक का रस; यदि हरड़ न मिले, तब सूखी हुई वस्तुयें लेकर प्रत्येक का काढ़ा ६४ तोला, बासक-रस ६४ तोला, भाँगरे का रस ६४ तोला, बकरी का दूध ६४ तोला, गाय का घी ६४ तोला तैयार रखना चाहिये। पीछे से त्रिफला, पिप्पली, द्राक्षा, चन्दन, सेंधा नमक, बलामूल, काकोली, क्षीर काकोली, (अभाव में असगन्ध) शतावरी, सोंठ, शर्करा, सफेद कमल, लाल कमल, पुनर्नवा, हल्दी, दारुहल्दी, मुलहट्ठी, इन सब वस्तुओं को एक-एक तोला लेकर इनका कल्क, मिलाकर मीठी आँच पर घृत पकाना चाहिये। जब रंगत में पीलापन आ जाय, तब छानकर बरणी में भरकर रखना चाहिये। मात्रा २ से ४ तोला।

उपयोग—आँख के रोगों में, रतौंधीपन में, कामला में।

अमृतप्राशघृत— घृत ४ सेर, बकरी का मांस १२॥ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर; अश्वगन्धा १२॥ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर, बकरी का दूध ९६ सेर। मूर्च्छार्थ—केसर ४ तोला। कल्क द्रव्य—बला, गेहूँ, अश्वगन्धा, गिलोय, गोखरू, त्रिकटु, धनिया, त्रिफला, कस्तूरी, कौंच-बीज, मेदा, महामेदा, कुटज, जीवक, ऋषभक, शठी, दारुहरिद्रा, प्रियंगु, मजीठ, तगर पादुका, तालीश, इलायची, तेजपत्र, दालचीनी, नागकेशर, जायफल, रेणुका, सरल जावित्री, छोटी इलायची, कमल, अनन्तमूल,

जीवन्ती, ऋद्धि, वृद्धि, गूलर प्रत्येक दो तोला। पाक शेष होने पर जब घृत बन जाय, तब उसमें शर्करा १ सेर मिला लेनी चाहिये।

उपयोग—स्नायविक, बलकारक, मस्तिष्क-पोषक, शुक्रजनक, पुष्टि-कारक, क्षयनाशक, नष्ट-शुक्र की उत्कृष्ट औषधि है।

अनुपान—ईषदुष्णादधि वा अल्प परिमान मधु।

अशोक घृत—घृत ४ सेर। क्वाथार्थ—अशोक की छाल ५ सेर, जल १६ सेर, शेष ८ सेर, जीरा २ सेर, जल १६ सेर। तण्डुलोदक ४ सेर, बकरी का दूध ४ सेर, किंशुक रस ४ सेर। कल्कार्थ—जीवक, ऋषभक, मेद, महामेद, काकोली, क्षीर काकोली, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, जीवन्ती, मुल-हट्टी, पियाल, कार्पसा, रसौत, अशोकमूल, शतावरी, द्राक्षा प्रत्येक ४ तोला। पाक शेष होने पर चीनी १ सेर मिलाकर पाक करना चाहिये।

अश्वगन्धा घृत—घृत ४ सेर। क्वाथार्थ—अश्वगन्धा साढ़े बारह सेर, जल १६ सेर, छाग-मांस २५ सेर, जल १२८ सेर, शेष ३२ सेर। कल्कार्थ—काकोली, क्षीर काकोली, ऋद्धि, वृद्धि, मेदा, महामेदा, जीवक, ऋषभक, कौंच, इलायची, मुलहठी, द्राक्षा, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, जीवन्ती, पिप्पली, बला, शतावरी, विदारी, मिलित १ सेर। पाक-शेष होने पर चीनी आध सेर मिलाकर पाक करना चाहिये।

उपयोग—धातु-दौर्बल्य, पुरुषत्व-हानि, बल-वीर्य-मेधा-पुष्टिकारक।

चैतस घृत—घृत ४ सेर। क्वाथार्थ—शनबीज, निशोथ, एरण्ड-मूल, दशमूल, रासना, पिप्पली, सहिजनमूल प्रत्येक १६ तोला, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर। कल्क—विदारी, मुलहठी, मेदा, महामेदा, काकोली, चीनी, खजूर, द्राक्षा, शतावरी, गोखरू, रास्नालशारा, त्रिफला, बहेड़ा रेणुका, देवदारु, एलुवा शालपर्णी, तगर, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, दोनों शारिवा, प्रियंगु, नीलोत्पल, इला-इची, मजीठ, दन्ती-मूल, अनार, नागकेसर, तालीसपत्र, मालती फूल, विडङ्ग पृश्नपर्णी, कूठ, चन्दन, पद्माख।

उपयोग—अपस्मार-रोग में, हिस्टीरिया में, मूर्छा वायु में, उन्माद और मृगी रोग में।

छागलाद्य घृत— घृत १६ सेर; क्वाथार्थ—नपुंसक छाग-मांस १२॥ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर। दशमूल प्रत्येक सवा सेर, जल ६४ सेर,

शेष १६ सेर। अश्वगन्धा साढ़े बारह सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर। बला १२½ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर। शतावरी रस १६ सेर, दूध १६ सेर। कल्कार्थ—जीवन्ती, मुलहठी, द्राक्षा, काकोली, क्षीर काकोली, कमल, मोथा, लाल चन्दन, रास्ना, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, अनन्तमूल, श्यामा, मेदा, महामेदा, कुटकी, जीवक, ऋषभक, शठी, दारुहरिद्रा, प्रियंगु, त्रिफला, तगर, तालीश, इलायची, देवदारु, पद्माख, रेणुका, विडङ्ग, जीरा प्रत्येक ४ तोला। ताम्रपात्र में पाक करना चाहिये। पाकशेष होने पर २ सेर शर्करा मिलाना चाहिये।

उपयोग—वात-व्याधि में, स्नायविक निर्बलता में, उन्माद में, मृगी में।

धात्री घृत—घृत ४ सेर, आमलकी रस ४ सेर, विदारी रस ४ सेर, शतावरी रस ४ सेर, दूध ४ सेर, तृणपंचमूल, काढ़ा ४ सेर। कल्क—इलायची, लौंग, त्रिफला, बला, सरल, देवदारु, जटामांसी प्रत्येक ६ तोला। पाक के समाप्त होने पर इसमें मुलहठी, निशोथ, यवक्षार और वृद्धदारक-मूल प्रत्येक ८ तोला और शर्करा १ सेर मिलाकर रख ले। ठण्डा होने पर १ सेर शहद भी मिला देना चाहिये।

उपयोग—पुरातन प्रमेह, श्वेत प्रदर, बहुमूत्र आदि रोगों में उत्कृष्ट-औषधि है।

पंचतिक्त घृत—घृत ४ सेर; काढ़ार्थ—नीमछाल, कण्टकारी, पटोल-पत्र, गिलोय, वासक-छाल प्रत्येक ८० तोला, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर। काढ़ार्थ—त्रिफलामिलित १ सेर।

उपयोग—वात-रक्त, गण्डमाला में।

फलकल्याण घृत—घृत ४ सेर। शतावरी रस ४ सेर, दूध १६ सेर। कल्क—मजीठ, मुलहठी, कूठ, त्रिफला, चीनी, बलामूल, मेदा, क्षीर विदारी, अश्वगन्धा, अजवायन, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, हींग, कुटकी, नीलोत्पल, कुमुद, द्राक्षा, काकोली, श्वेत चन्दन, लाल चन्दन प्रत्येक २ तोला।

उपयोग—वन्ध्या-रोग में, जरायु-विकृति में, पुत्रोत्पादन न होता हो, उस अवस्था में। इस घृत में श्वेत वर्ण गाय का दूध मिलाना चाहिये, जिसका बछड़ा कभी मरा न हो।

फल घृत—त्रिफला, मुलहठी, कूठ, हल्दी, दारुहल्दी, कुटकी, वाय-विडङ्ग, पिप्पली, मोथा, इन्द्रायण-मूल, कायफल, वच, शतावरी, असगन्ध,

अनन्तमूल, श्यामलता, प्रियंगु, सुवा, हींग, रास्ना, चन्दन, लाल चन्दन, जूही का फूल, वंशलोचन, शर्करा, अजवायन, दन्तीमूल इनमें प्रत्येक १ तोला लेकर, इसको पानी के साथ पीसकर कल्क बना लेना चाहिये। एक वर्ण गाय का घी ६४ तोला, घी से चार गुना दूध और दूध के बराबर पानी मिलाकर घृतपाक-विधि से घी बना लेना चाहिये। मात्रा २ से ४ तोला।

उपयोग—बन्ध्या-रोग में, निर्बलता में, जिनके पुत्र मर जाते हैं, उन औरतों के लिये उपयोगी है।

ब्राह्मी घृत—घृत ४ सेर। ब्राह्मी स्वरस १६ सेर। कल्क—हरिद्रा मालती-पुष्प, कूठ, निशोथ, हरीतकी प्रत्येक ८ तोला, प्रियंगु, वच, सैन्धव, त्रिकटु, शर्करा प्रत्येक १ तोला। मात्रा १ तोला।

उपयोग—मेधावर्धक, उन्माद-रोग में।

क्षीर घृत—पिप्पली, पिप्पलीमूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, सैन्धव इन छः वस्तुओं को चार-चार तोला लेकर पानी के साथ पीसकर चटनी बना लेनी चाहिये। गाय का घी ६४ तोला, दूध घी से चार गुना और दूध के बराबर पानी मिलाकर घृतपाक कर लेना चाहिये। मात्रा २ से ४ तोला।

उपयोग—प्लीहा-रोग में, मन्दाग्नि में। इसको "पिप्पल्यादि क्षीरघृत" भी कहते हैं।

तैल-पाक

तैल-पाक की विधि घृत के समान है। कोई भी तैल या घृत तीन-चार दिन तक कषाय और कल्क में मिलाकर रखना चाहिये। फिर पाक करना चाहिये। इससे तैल और घी में संस्कार-औषधियों का गुण भली प्रकार आजाता है।

अर्क-तैल—सरसों का तेल १ सेर, आक का दूध ४ सेर, हल्दी ½ सेर, मनःसिल ½ सेर, हल्दी और मनःसिल को आक के दूध में मिलाकर तेल पकाना चाहिये। इस तेल से खुजली मिटती है।

आर्गवादि-तैल— कृष्णागरु, कूठ, तगर, उशीर, तेजपत्र, शैलेयक, गन्धतृण, रेणुका, हरिद्रा, इलायची, प्रियंगु, गुग्गुल, तमालपत्र, अजवायन, सरल काष्ठ, शिलारस, देवदारु, दशमूल, पुनर्नवा, एरण्डमूल, कूठ,

बिजौरा, लाल चन्दन, कौंच, धनिया, करञ्ज, छोटी इलायची, खुरासानी अजवायन, तुलसी, मरुवा, सोंठ, पिप्पली, अश्वगन्धा, रास्ना, बला, अतिबला, गिलोय, सौंफ, मालकङ्गनी, तिल, कुलत्थी इनमें से प्राप्य वस्तुओं का कषाय और कल्क करके सुरा, कांजी, मद्य, तक्र इनके साथ मिलाकर तैल-पाक कर लेना चाहिये।

उपयोग—यह तैल ज्वर में उपयोगी है।

कन्दर्पसार-तैल—सरसों का तेल ४ सेर। क्वाथार्थ—सप्तपर्ण, करवीर, गिलोय, नीम-छाल, शिरीष, बकायन, जयन्तीपत्र, बला, हरिद्रा प्रत्येक ८० तोला, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर। गोमूत्र १६ सेर, अमलतास का रस, भाँगरे का तेल, जयन्ती पत्र-रस, धतूरे के पत्ते का रस, हरिद्रा-रस, भाँग का रस, चीते के रस, खजूर के पत्तों का रस, गोमय रस, आक के पत्तों का रस प्रत्येक ४ सेर। कल्कार्थ—वच, ब्राह्मी, चीतामूल, घृतकुमारी, कुचिला, पटोल-पत्र, हरिद्रा, मोथा, पिप्पली-मूल, अमलतास का गूदा, आक का दूध, ईक्षुमूल, मजीठ, करञ्जमूल, हारफारेवड़ी, सप्तपर्ण-छाल, शिरीष-छाल, कुटज-छाल, नीम-छाल, बकायन-छाल, गिलोय, सोमराजी-बीज (२ भाग), धनिया, भाँगरा, मुलहठी, कटुकी, शठी, दारुहल्दी, निशोथ-मूल, पद्माख, जटामांसी, मुरामांसी, इलायची, वासा छाल, उशीर-मूल प्रत्येक २ तोला।

उपयोग—कुष्ठ-रोग में, वात-रक्त में, धवल में, भगन्दर में।

करंजादि-तैल—करञ्ज की छाल, चित्रक-मूल, जई का पत्ता, कनेर का मूल इनका कल्क करना चाहिये। कल्क से चार गुना तेल (तिल का) तेल से चार गुना पानी लेकर पाक करना चाहिये।

उपयोग—यह तैल इन्द्रलुप्त तथा दाद को नष्ट करता है।

करवीरादि-तैल—कनेर का मूल, दन्तीमूल, निशोथ, कड़वी तुम्बी का फल, इसका कल्क करके चार गुने तेल में मिलाना चाहिये। तेल से चार गुना केले के क्षार का पानी मिलाकर तैल पकाना चाहिये। यह तैल लोम शातन विधि में बाल नष्ट करने के काम आता है।

कासीसादि-तैल—हीराकसीस, दूधिया बछनाग, कूठ, सोंठ, पिप्पली, सैंधा नमक, मनःसिल, कनेर का मूल, वायविडंग, चित्रकमूल, अडूसा, दन्तीमूल, कड़वी नाई का बीज, हरताल प्रत्येक एक-एक तोला लेकर आमी में पीसकर कल्क करना चाहिये। इसमें तेल ६४ तोला, थोर का दूध

८ तोला, आक का दूध ८ तोला, तेल से चार गुना गोमूत्र। इन सबको मिलाकर पाक करना चाहिये।

उपयोग—यह तैल अर्श के मस्से पर लगाना चाहिये।

किरातादि-तैल—सरसों का तेल ४ सेर। दधिमस्तु ४ सेर, कांजी ४ सेर, चिरायते का काढ़ा ४ सेर। कल्क—दूर्वामूल, लाक्षा, हरिद्रा, दारु-हरिद्रा, मजीठ, बला, कुटज, रास्ना, गजपिप्पली, त्रिकटु, पाठा, इन्द्रजौ, सैंधव, संचल लवण, विडलवण, वासाछाल, श्वेत आक के मूल की छाल, शारिवा, देवदारु सब मिलकर १ सेर।

उपयोग—पुरातन जीर्ण-ज्वर में मालिश करने के योग्य है।

गन्धक-तैल—धतूरे का डोडा चीरकर, इसके अन्दर गन्धक, नीला थोथा, मैनसिल भरकर इसके ऊपर कपड़मिट्टी करके धूप में सुखाकर आग में पकाना चाहिये। जब पक जाय, तब कपड़मिट्टी को उतारकर इसको धूपेल तैल में मिलाकर पीस लेना चाहिये। इसके लगाने से सब प्रकार के त्वक् दोष अच्छे हो जाते हैं।

गृहधूमादि-तैल—घर का धुवां, पिप्पली, देवदारु, जौखार, करञ्ज का बीज, सेंधालवण, अपामार्ग का बीज समान भाग लेकर कल्क करना चाहिये। इस कल्क से चार गुना तेल, तेल से चार गुना पानी मिलाकर पाक करना चाहिये। यह तैल नाक के मस्सों को मिटाता है।

गुडूच्यादि-तैल—तिल-तैल ४ सेर। क्वाथार्थ—गिलोय १२॥ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर। पिसा हुआ गिलोय कल्क १ सेर, दूध ४ सेर पाक करना चाहिये। यह तैल पित्त-रोग में काम आता है। इस तैल में धनिये का काढ़ा मिलाकर पाक करने से और अधिक उपकार होता है।

चन्दनादि-तैल—तिल-तैल १६ सेर। क्वाथ—लालचन्दन, शालपर्णी, पृश्नपर्णी, कण्टकारी, बृहती, गोखरू, मुद्गपर्णी, विदारी, अश्वगन्धा, माषपर्णी, आँवला, शिरीष-छाल, पद्माख, नेत्रबाला, सरल, नागकेसर, गन्धक तृण, दूर्वा, प्रियंगु, कमल, बाला, बला, अतिबला, मृणाल, पद्माख-मिलित सवा छः सेर, श्वेत बला ६३ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर। बकरी का दूध, शतावरी रस, लाक्षारस, कांजी, दधिमस्तु प्रत्येक १६ सेर, हरिण का मांस ८ सेर, शेष १६ सेर, बकरी का मांस ८ सेर, जल ६६ सेर, शेष १६ सेर। शशक का मांस ८ सेर, जल ६४ सेर, शेष ८ सेर। क्वाथार्थ—श्वेत चन्दन, कृष्ण-

चन्दन, कंकोल, नखी, शैलज, नागकेसर, तेजपत्र, दालचीनी, मृणाल, दारु-हरिद्रा, हरिद्रा, श्यामलता, अनन्तमूल, रक्तोत्पल, तगर, त्रिफला, देवदारु सरल, पद्माख, उशीर, धाय के फूल, बिल्व, रसौत, मोथा, शिलारस, मजीठ, लोध्र, जीवन्ती, प्रियंगु, शठी, इलायची, कुमकुम, रास्ना, जावित्री, सोंठ, धनिया प्रत्येक ४ तोला।

उपयोग—कास और यक्ष्मा-रोग में मालिश के लिये उपयोगी है। कृशता, दौर्बल्य आदि में उपयोगी है।

जात्यादि तैल—जुही, कड़ुवा नीम, परवल, करंज प्रत्येक के पत्ते २ तोला, करञ्ज का बीज, मुलहठी, मोम, कूठ, हल्दी, दारुहल्दी, कुटकी, मजीठ, पद्माख, लोध्र, हरड़, कमल, नीलाथोथा, अनन्तमूल प्रत्येक २ तोला इनकी चटनी करके, चटनी से चार गुना तेल, तेल से चार गुना पानी मिलाकर पाक सिद्ध कर लें। यह तैल कान या नाक के दुखाव में काम आता है। व्रण भर जाते हैं।

नारायण तैल (मध्यम)—तिल-तैल १६ सेर। दशमूल, अश्वगन्धा, बला, अतिबला, पुनर्नवा प्रत्येक ८० तोला, जल २५६ सेर, शेष ६४ सेर। कल्क-सौंफ, देवदारु, जटामांसी, शैलज, वच, लालचन्दन, तारकूठ, इलायची, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, रास्ना, अश्वगन्धा, सैन्धव, पुनर्नवा प्रत्येक १६ तोला. शतावरी रस १६ सेर. गव्य या छाग का दुग्ध ६४ सेर।

उपयोग—वात-रोग की प्रसिद्ध औषध है। उन्माद, अपस्मार, मूर्च्छा आदि रोगों में बरता जाता है।

पुष्पराजप्रसारिणी तैल—तिल-तैल ४ सेर। क्वाथार्थ—गन्धबाला १२॥ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर। अश्वगन्धा ६¼ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर। गव्य या महिष दूध १६ सेर, पत्ररस ४ सेर, शतावरी रस ८ सेर। कल्कार्थ—सौंफ, पिप्पली, इलायची, कूठ, कटेरी, सोंठ, मुलहठी, देवदारु, शालपर्णी, पुनर्नवा, मजीठ, तेजपत्र, रास्ना, वच, अजवायन, गन्धतृण, जटामांसी, निसिन्दा, निर्गुण्डी, बला, चित्रामूल, गोखरू, मृणाल, शतावरी प्रत्येक २ तोला।

उपयोग—वात-व्याधि में तथा स्नायु-रोग-जन्य निर्बलता की उपयोगी औषधि है।

प्रमेह मिहिर तैल—तिल तैल ४ सेर। क्वाथार्थ—लाक्षा ८ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर। शतावरी रस ४ सेर, दूध ४ सेर, दधिमस्तु १६ सेर। कल्कार्थ—सौंफ, देवदारु, मोथा, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, दुर्वामूल, कुटज, अश्वगन्धा, चन्दन, लालचन्दन, रेणुका, कटुकी, मुलहठी, रास्ना, दालचीनी, इलायची, भांर्गी, चनिका, धनिया, इन्द्रयव, करञ्जबीज, अगर, तेजपत्र, त्रिफला, नालुका, मजीठ, सरल, पद्माख, लोध्र, वच, जीरा, उशीर, जायफल, वासाछाल, तगर प्रत्येक २ तोला। मेह रोग में पेट के ऊपर मालिश करनी चाहिये। हाथ-पाँव पर मालिश करने मे बहुमूत्र रोग में पिपासा कम होती है।

वासाचन्दनादि तैल—तिल तैल १६ सेर। क्वाथार्थ—वासक छाल १२॥ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर। लाक्षा ८ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर। लालचन्दन, गिलोय, भांर्गी, मिलित दशमूल, कन्टकारी प्रत्येक २॥ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर, दधिमस्तु १६ सेर। कल्कार्थ—लाल चन्दन, रेणुका, अश्वगन्धा, गन्धतृण, दालचीनी, इलायची, तेजपत्र, पिप्पली, नागकेशर, मेदा, महामेदा, त्रिकटु, रास्ना, मुलहठी, शठी, शिलारस, देवदारु, कूठ, प्रियंगु और बहेड़ा प्रत्येक ८ तोला। कास, श्वास, यक्ष्मा-रोग में छाती पर मर्दन करने से लाभ होता है।

विष्णु तैल—तिल तैल ४ सेर। काढ़ार्थ—शतावरी, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, शठी, बला, एरण्डमूल, बृहतीमूल, कण्टकारी मूल, बलामूल, प्रत्येक १६ तोला, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर। कल्कार्थ—पुनर्नवा, वच, देवदारु, सौंफ, लाल चन्दन, अगरु, शैलज, तगर, कूठ, इलायची, जटामांसी, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, अश्वगन्धा, सैन्धव लवण, रास्ना प्रत्येक ४ तोला, गव्य दुग्ध ८ सेर, बकरी का दूध ८ सेर, शतावरी का रस ८ सेर।

उपयोग—मस्तिष्क, स्निग्धकारक, ज्योतिवर्धक, शैत्यकारक है।

भृंगराज तैल—तिल तैल ४ सेर। भँगरे का रस ४ सेर। कल्कार्थ—मुलहठी ८ तोला।

उपयोग—केशोत्पादक, पलितरोग-नाशक है।

मरिचादि तैल—सरसों का तेल १६ सेर, गोमूत्र ६४ सेर। कल्क—मरिच, निशोथमूल, दन्तीमूल, आक का दूध, गोमय रस, देवदारु, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, जटामांसी, कूठ, लाल चन्दन, इन्द्रवारुणी मूल, करवीर मूल,

हरताल, मैनसिल, चीतामूल, लांगलीमूल, विडंग, शिरीष-छाल, कुटज-छाल, नीम-छाल, सप्तपर्ण-छाल, गिलोय, अमलतास के पत्र, हरकरञ्ज बीज, मोथा, खैरसार, पिप्पली, बच, लताकस्तुरी प्रत्येक ८ तोला, विष १६ तोला।

उपयोग—वातरक्त और कुष्ठ-रोग में प्रसिद्ध औषध है। खस, कण्डु, त्वचा के रोगों में उपयोगी है।

महादशमूल तैल—सरसों का तेल १६ सेर। कल्कार्थ—दशमूल १२½ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर। बिजौरे नीबू का रस १६ सेर, आर्द्रकरस १६ सेर, धतूरे के पत्तों का रस १६ सेर। कल्कार्थ—पिप्पली, गिलोय, दारुहरिद्रा, सौंफ, पुनर्नवा, सँहजन-छाल, कुटकी, करञ्जबीज, काला जीरा, श्वेत सरसों, बच, सोंठ, चीतामूल, देवदारु, बला, रास्ना, कट्फल, निर्गुण्डी का पत्ता, चव्य, गेरू, पिप्पलीमूल, अजवायन, जीरा, कूठ, खुरासानी अजवायन प्रत्येक ८ तोला।

उपयोग—शिरो-रोग में, श्वास-रोग में उपयोगी है।

माष तैल—तिल तैल ४ सेर। क्वाथार्थ—पोटली में बंधा हुआ माष ४ सेर, दशमूल ६¼ सेर, पोटली में बँधा छाग, माष ३¼ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर, दूध १६ सेर। कल्क—कौंच, एरण्डमूल, सौंफ, सैन्धव लवण, विड्लवण, संचल लवण, जीवनीय गण, मजीठ, चव्य, चित्रक, कट्फल, त्रिकटु, पिप्पलीमूल, रास्ना, मुलहट्ठी, सैन्धव, देवदारु, गिलोय, कूठ, अश्वगन्धा, बच, शठी प्रत्येक दो तोला।

उपयोग—वात-व्याधि-रोग में, पक्षाघात में।

लाक्षादि तैल—ढाक या पीपल की लाख २५६ तोला, चार गुने पानी में पाक करके ¼ पानी बचाना चाहिये। इसमें निम्न वस्तुयें मिला देनी चाहियें। तिल तैल ६४ तोला, गाय के दधि की छाछ २५६ तोला, सौंफ, असगन्ध, हल्दी, देवदारु, कटुकी, निर्गुण्डीबीज, तज, कूठ, मुलहठी, चन्दन, नागरमोथा, रास्ना प्रत्येक १ तोला इनका चूर्ण मिलाकर मन्द आग मे पकाना चाहिये।

उपयोग—इस तैल के मर्दन करने से सब विषम ज्वर, श्वास, कास, प्रतिश्याय, पीठ की शूल, उन्माद, जय आदि रोग नष्ट होते हैं।

शूलगजेन्द्र तैल—तिल्ली का तेल ८ सेर। क्वाथार्थ—एरण्डमूल, दशमूल प्रत्येक ४० तोला, जल ५२ सेर, शेष १३६ सेर। जौ ८ सेर, जल

६४ सेर, शेष १६ सेर, दूध १६ सेर। कल्क—जीरा, सोंठ, अजवायन, धनिया, पिप्पली, वच, सैन्धव, बेर के पत्ते प्रत्येक १६ तोला।

उपयोग—शूल रोग में मालिश करने से लाभ होता है।

वज्र तैल—ठण्डा थोर का दूध, आकड़े का दूध, धतूरे का रस, चित्रकमूल का रस अथवा काढ़ा, महिष गोमय रस प्रत्येक १३ तोला, तिल्ली का तेल ६४ सेर, गोमूत्र २५६ तोला इनको तेल में पकाना चाहिये। इसमें गन्धक चित्रक, मनःसिला, हरताल, वायविडंग, अतीस, वत्सनाभ, कड़वी तुम्बी का कूठ, वच, त्रिकटु, जटामांसी, दारुहल्दी, मुलहठी, सर्जक्षार, जीरा, देवदारु प्रत्येक १ तोला। इस तैल के लगाने से त्वचा के सब रोग शान्त होते हैं।

षट्बिन्दु तैल—तिल्ली का तेल ४ सेर। बकरी का दूध १६ सेर, भृंगराज रस १६ सेर। कल्कार्थ—एरण्डमूल, तगर, सौंफ, जीवन्ती, रास्ना, सैन्धव, दालचीनी, विडंग, मुलहठी और सोंठ मिलित १ सेर।

उपयोग—मस्तिष्क रोगों में, दन्तशूल में।

सैन्धवाद्य तैल—एरण्ड तेल ४ सेर, सौंफ का काढ़ा ४ सेर, कांजी ८ सेर, दधिमस्तु ८ सेर। कल्कार्थ-सैन्धव, गज-पिप्पली, रास्ना, सौंफ, संचल, विट्, वच, अजवायन, मुलहठी, जीरा, पिप्पली ४ तोला।

उपयोग—शोथ दीन परन्तु व्यथा-युक्तवात-रोग की उत्कृष्ट औषधि है।

हिमसागर तैल—तिल्ली का तेल ४ सेर। शतावरी रस ४ सेर, कुष्माण्ड-रस ४ सेर, आमलकी रस ४ सेर, सिम्बल का रस ४ सेर, गोक्षरू रस ४ सेर, नारियल का पानी ४ सेर, केले का पानी ४ सेर, दूध १६ सेर। कल्क—लालचन्दन, तगर, कूठ, मजीठ, सरल, अगरु, जटामांसी, मुरामांसी, शैलज, मुलहठी, देवदारु, नखी, हरीतकी, कुन्दन, नालुका, शतावरी, लोध, त्रिजातक, नागकेसर, लौंग, जावित्री, लालचन्दन, कपूर प्रत्येक २ तोला।

उपयोग—विक्षिप्त वायु को सहसा शान्त करनेवाली प्रसिद्ध औषधि है। शरीर में शीतलता उत्पन्न करता है।

क्षार तैल—तिल्ली का तेल ४ सेर। मूली का क्षार, सर्जक्षार, यवक्षार, सेंधानमक, संचल, विडलवण, समुद्र-लवण, काच-लवण, हींग,

शिरीष की छाल, सोंठ, देवदारु, वच, कूठ, सुवा, रसवन्ती, पिप्पली मूल, मोथ, ये सब वस्तु प्रत्येक १ तोला, तिल्ली का तेल ६४ तोला, केले का रस, मधुशुक्त प्रत्येक २५६ तोला। इनमें तेल बना लेना चाहिये।

उपयोग—कर्ण-रोग में, कर्णनाद में, दाद, खाज आदि में उपयोगी है।

लेप

लेप के ऊपर लेप नहीं करना चाहिये। रात्रि का लेप प्रातः और प्रातः का लेप सायंकाल उतार देना चाहिये। लेप करने पर अंगों को आराम देना चाहिये। जबतक आवश्यक न हो, उसे बाँधना नहीं चाहिये।

अस्थिसंधानक लेप—एलुवा, गुग्गुल, गुंजर, मेदा लकड़ी, सज्जीखार, मायुसरस, हीराबोल, ईशश, श्वेतचीनी का मीरा, आम्बाहल्दी, लोध्र प्रत्येक १ तोला, सब वस्तुओं का चूर्ण करके आवश्यकता पड़ने पर पानी में गरम पीसकर मुढमार चोट, शोथ, अस्थि-भंग आदि स्थानों पर लगाना चाहिये। इस प्रकार के दो-चार लेप से आराम हो जाता है।

रसाञ्जनादि लेप—रसौंत और त्रिकटु समभाग लेकर पानी में पीसकर गोली करनी चाहिये। यह गोली पानी में घिसकर लेप करना चाहिये।

इन्द्रलुप्त का लेप—(१) पटोल पत्र के पत्तों का रस ३ दिन चुपड़ना चाहिये। (२) कटेरी का रस शहद में मिलाकर लगाना चाहिये। रत्ती का मूल तथा रत्ती पीसकर शहद में मिलाकर लगाना चाहिये। हाथी दाँत का चूरा और रसौंत मिलाकर लगाना चाहिये। चूने की राख करके बकरी के दूध में मिलाकर लगाना चाहिये। चतुष्पादवाले पशुओं बकरी, हरिण, भेड़ आदि के चमड़े को, बाल, नख, सींग अस्थि आदि को जलाकर, राख बनाकर तिल्ली के तेल में मिलाकर लेप करना चाहिये।

कृमिघ्न लेप—करंज, कड़वा नीम, निर्गुण्डी, इन सबके पत्ते पीसकर व्रण में रखने से जीव मरते हैं। लहसुन को पीसकर लेप करने से, हींग को कड़वे नीम के पत्तों में पीसकर लेप करने से लाभ होता है।

बाल बढ़ाने का लेप—गोखरू, आँवला, तिल्ली के फूल इनको पीसकर लेप करना चाहिये।

कुष्ठहर लेप—(१) हरड़, करञ्ज के बीज, सरसों, हल्दी, रत्ती, सेंधानमक, वायविडङ्ग इन सबको समान भाग लेकर लस्सी अथवा कांजी में पीसकर कुष्ठ-रोग पर लगाने से लाभ होता है।

कुष्ठहर लेप—(२) पारा और गन्धक की कजली करके इनको सरसों के तेल में मिलाकर लगाने से सब प्रकार के कुष्ठ अच्छे होते हैं।

खुजली का लेप—(१) वायविडंग, हिंगुल, गंधक, कूट, सिंदूर, कुवड़िया का बीज इन सबको समान भाग चूर्ण करके धतूरे के रस में मिलाकर लगाने से खुजली नष्ट होती है।

खुजली का लेप (२)—तेल, गन्धक, पारा, इनमें पारे और गन्धक की कज्जली करके धतूरे के रस में घोटकर तेल पकाना चाहिये। इस तेल के लगाने से खुजली, दाद, बिवाई आदि फटती है।

खुजली का लेप (३)—तेजपत्र २½ तोले, मैनसिल १० तोले, गन्धक दण्डा १० तोले इसको कड़वे तेल से मिलाकर लगाने से खुजली आराम होती है।

गण्डमाला का लेप—भिलावा, हरीतकी, चित्रकमूल, दन्तीमूल, इनका बारीक चूर्ण करके गुड़, आक के दूध तथा थोर के दूध में मिलाकर लगाने से गण्डमाला-रोग शान्त होता है।

गर्मी का लेप—शिरीष की छाल, मुलहठी, तगर, लालचन्दन, जटामांसी, हल्दी, दारुहल्दी, कूट, नेत्रवाला, इलायची इन दसों वस्तुओं को समान भाग लेकर उनका चूर्ण करके घी में थोड़ा-सा सेंककर पानी अथवा गुलाब जल में पीसकर लेप करने से सब प्रकार के गर्मी के कोढ़, शोथ, दाह, विसर्प तथा अन्य सब प्रकार के जहर जैसे चूहे का विष, ततइये का डङ्क अथवा भिलावे या जमालगोटे आदि के जहर को आराम होता है।

ग्रन्थी का लेप—शिग्रु के मूल की छाल, सोंठ, सरसों, पुनर्नवा का मूल और देवदारु इनका समान भाग लेकर उसके चूर्ण को खट्टी छाल अथवा कांजी में मिलाकर संधियों पर और वायु तथा कफ के रोगों पर लेप करने से शोथ को आराम होता है।

चाँदी का लेप—रसौत, सरसों, हरड़ इनका बारीक चूर्ण करके मधु के साथ मिलाकर लगाने से सब प्रकार के उपदंश और उपदंश-जन्य व्रण नष्ट होते हैं।

श्वित्र का लेप—(१) लालचन्दन, मजीठ, लोद, कूट, प्रियंगु, बड़ की कोपल तथा मसूर की दाल ये सब समान भाग लेकर पानी में पीसकर लगाने से सफ़ेद कोढ़ का आराम होता है।

श्वित्र का लेप—(२) अर्जुन की छाल और मजीठ को शहद में मिलाकर लेप करना चाहिए।

श्वित्र का लेप—(३) सफ़ेद घोड़े के नख की राख को मक्खन में मिलाकर लेप करना चाहिये।

तारुण्य पिटिका के लेप—

(१) लोध्र, धनिया तथा बच इनके समान भाग लेकर पानी में पीसकर मुँह पर लगाने से मुँह के मुहासों का आराम होता है।

(२) बिजौरे का मूल, मन्सिल, घी तथा गोमय रस इनका लेप मुँह की कांति को बढ़ाता है।

(३) गोरोचन और गोलमिर्च को पानी में पीसकर लेप करना चाहिये।

(४) श्वेत सरसों, वच, लोध्र और सेंधानमक इनको पानी में पीसकर लेप करना चाहिए।

(५) बड़ के पीले पत्ते, जूही के पत्ते, लालचन्दन, कूट, दारु-हल्दी, लोध्र इनको मुँह पर लगाने से मुँह का रङ्ग साफ होता है और मुँह के मुहासे तथा झाँई दूर होती है।

दाह के लिये लेप—(१) चन्दन, कपूर, नेत्रबाला इनका लेप शरीर पर करना चाहिये।

दाह के लिये लेप—(२) हजार बार ठंडे पानी से धोया हुआ घी शरीर पर लगाने से दाह का आराम होता है।

कोढ़ के लिये लेप—(१) पीले फूलवाली कनेर, हीराकसीस, वाय-बिडङ्ग, मन्सिल, गोरोचन, सेंधानमक इनको गोमूत्र में मिलाकर लेप करने से सफ़ेद कोढ़ का आराम होता है।

कोढ़ के लिये लेप—(२) कालीजीरी ४ भाग, हरताल १ भाग, त्रिफला ६ भाग इनको गोमूत्र में मिलाकर लेप करना चाहिये।

नेत्र-रोग का लेप—हरड़, सेंधानमक, रसौत, सोनागेरू इन सबको समान भाग लेकर बकरी के दूध या गुलाबजल में मिलाकर लगाने से सब प्रकार के नेत्र-रोग शांत होते हैं।

विसर्प का लेप—सोनागेरू, रसौत, मजीठ, मुलहठी, नेत्रबाला, लाल चन्दन और पद्माख इनको कूटकर गुलाबजल में मिलाकर लेप करने से विसर्प, गर्मी की शोथ, दाह, शान्त होती है।

आग से जलने के लिये लेप (१)—चंदन, गेरू, वंशलोचन और बिलखन की छाल मिलाकर घी के साथ लगाने से आराम होता है।

आग से जलने के लिये लेप (२)—चूने के पानी को तिल के तेल में मिलाकर लगाने से जलने का दाह और व्रण शान्त होते हैं।

अंडघ्न का लेप—जीरा, पलाश, कूट, एरंडमूल इनको समान भाग लेकर कांजी में पीसकर लगाने से अण्ड की कठिन शोथ को आराम होता है।

बाल काले करने का लेप—

(१)- इन्द्रायण के बीजों का तेल पाताल-यन्त्र-विधि से निकालकर लगाने से बाल काले होते हैं।

(२)—लोहे का चूर्ण, त्रिफला, भाँगरा और कालीमिट्टी इनको एक मास तक गन्ने के रस में डालकर रखने से पीछे लगाने पर बाल काले हो जाते हैं।

(३)—आँवला २ भाग, बहेड़ा १ भाग, हरड़ २ भाग, आम की गुठली की गिरी ५ भाग, लोहे का चूर्ण १ तोला इन सबको लोहे की कढ़ाई में एक रात तक खूब घोटकर उसीमें छोड़ देना चाहिये और अगले दिन सबेरे बालों पर लगाने से आराम होता है।

(४)- त्रिफला, लोहे का चूर्ण, भाँगरा, नील (पत्ता) इनको समान भाग लेकर बकरी के मूत्र में पीसकर लगाने से आराम होता है।

विषघ्न लेप- -बकरी के दूध मे तिल पीसकर, मक्खन में मिलाकर लगाने से बिलाव का जहर शान्त होता है।

शिरीष का लेप—श्वेत सरसों, हल्दी, कूठ, शिरीष और तिल ये समान भाग लेकर सरसों के तेल में मिलाकर लगाने से शीत, पित्त, छपाकी, उदर्द शान्त होता है।

अजितादि—विडङ्ग, त्रिफला, अजवायन, हींग, तगर, त्रिकटु, पाँचो नमक, चित्रकमूल इनको शहद में मिलाकर लगाने से सब प्रकार के साँपों का विष आराम होता है।

उदर-शूल—जौखार, बकरी की मींगणी, तिल, सैन्धव, अलसी इनको गरम पानी में मिलाकर लेप करने से शूल, मूत्र का रुकना आराम होता है।

मलहम

जात्यादि घृत—जूही का पत्ता, कड़वे नीम का पत्ता, परवल, हल्दी, दारुहल्दी, कुटकी, मजीठ, मुलहठी, मोम, करञ्ज का बीज, कूठ, नीला थोथा इन सबकी लुगदी करके इनसे चारगुना घी लेकर ताँबे के बर्त्तन में पकाना चाहिये। औषधियों से जब घी अलग होकर तैरने लगे, तब उसको नितार लेना। इस घी के लगाने से नाड़ी-व्रण तथा गम्भीर व्रण एवं दुष्ट व्रण आराम होते हैं।

बिवाई का प्रलेप—राल, सेन्धा नमक, गुड़, मोम, मधु, गुग्गुल इनको क्रम से अग्नि के ऊपर मिलाकर शेष वस्तुओं का चूर्ण इसमें मिला देना चाहिये।

उपयोग—पाँव की बिवाई पर लगाना चाहिये।

पारदादि प्रलेप—पारा, जीरा, काला जीरा, हल्दी, आम्बाहल्दी, मिर्च, सिन्दूर, गन्धक तथा मैनसिल इनका बारीक चूर्ण करके घी में मिलाकर लगाने से कण्डु, खरजवाँ, गडगुमड़ तथा सिर में पड़ी हुई जूँ आदि मरते हैं।

गरमी की चाँदी का लेप

(१)—हीरा दखण, इलायची, कत्था प्रत्येक १ तोला और कपूर ' तोला इनको बारीक करके घी में प्रलेप करके लगाने से पीव-युक्त व्रण अच्छे हो जाते हैं।

(२)—बोदार, राल प्रत्येक २० तोला, कपूर और मोम प्रत्येक १० तोला, घी १० तोला इनमें मोम तथा घी को अग्नि पर पिघलाकर शेष वस्तुओं का बारीक चूर्ण इसमें मिला देना चाहिये।

(३)—बोदार तोला ५, राल ५ तोला, कपूर २॥ तोला इनको घी तथा मोम में मिलाकर प्रलेप करना चाहिये।

अर्श का प्रलेप—अफीम २ तोला, माजूफल का चूर्ण ५ तोला, सादा मलहम ३० तोला इनका प्रलेप करके रक्त तथा पीड़ा-युक्त मस्सों पर लगाना चाहिये।

अंजन

अंजन-गुटी—त्रिफला, त्रिकटु, सैंधव, रसौंत, मुलहठा, नीला तुत्थ, श्वेत कमल, बायविडङ्ग, लोध्र, ताम्र-भस्म इन चौदह वस्तुओं का बारीक चूर्ण करके बरसात के या निर्मल पानी में पीसकर बत्ती बनाना चाहिये। इसको औरत के दूध में घिसकर अंजन करने से आँख के अन्दर की झाँख तथा परवल आदि मिटते हैं। किंशुक के रस में घिसकर अंजन करने से फूली, रताश आदि मिटते हैं, और लोध्र के पानी में घिसकर अंजन करने से प्रारम्भ का तिमिर-रोग मिटता है। इस बत्ती को नागार्जुनांजन भी कहते हैं।

कनकांजन—निर्मली का बीज, शंख, सेंधा नमक, त्रिकटु, साकर, समुद्रफेन, रसौंत, मधु, बायविडंग तथा मैनसिल ये समान भाग लेकर इनका चूर्ण करके स्त्री के दूध में या बकरी के दूध में पीसकर अंजन करना चाहिये। तिमिर, परवल, मोतिया, पलकों का रोग, फूली आदि रोग मिटते हैं।

कणादि अंजन—पिप्पली, त्रिफला (तीनों की छाल), लाख, लोध्र, सेंधा नमक समान भाग इनको भाँगरे के रस में घिसकर गोली बनानी चाहिये। पानी में घिसकर अंजन करने से तिमिर, मोतिया, फूली, पलक के रोग अच्छे होते हैं।

खर्पर-वटी—शुद्ध खपरिया, सेंधानमक, फूला हुआ मोरतुत्थ, टंकण, सोंठ, पिप्पली इन सबका बारीक चूर्ण करके नीबू के रस में पीसकर गोली करनी चाहिये। इसको छाया में सुखाकर पानी के साथ अंजन करने से आँख के रोग मिटते हैं।

खर्पराञ्जन—शुद्ध खपरिया को पानी के साथ खूब खरल करना चाहिये, जिससे खपरिया पानी में घुल जाय फिर पानी को नितारकर आग

पर ताम्बे के पात्र में गरम करना चाहिये। जो वस्तु ताँबे के पात्र में रह जाय, उसको त्रिफला क्वाथ की तीन भावना देकर छाया में सुखाकर चूर्ण करके रख लेना चाहिये। इस चूर्ण में दसवाँ भाग कपूर मिलाकर आँख के रोगों में बरतना चाहिये।

चन्द्रोदय वर्त्ति—हरड़, वच, कूठ, पिप्पली, मिर्च, बहेड़े की मींग, शङ्ख की नाभि, मैनसिल इन सब वस्तुओं का समान भाग लेकर बकरी के दूध में पीसकर वर्त्ति बना लेनी चाहिये। इस वर्त्ति के अंजन से तीन साल की फूली भी मिट जाती है।

तुत्थांजन—नीला तुत्थ, सोनामुखी, सेंधा नमक, शर्करा, शंख, मैनसिल, सोनागेरू, समुद्रफेन, मिर्च समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करके मधु में पीसकर आँख में अंजन करना चाहिये। यह पलकों के सब रोग खाल, मोतिया, फूली आदि रोगों में उत्तम है।

नयनशाणाञ्जन—पिप्पली, सेंधानमक, मिर्च, रसौत, सुरमा, समुद्रफेन, शर्करा, श्वेत पुनर्नवा, हल्दी, लाल चन्दन, मुलहठी, हरड़, मैनसिल, नीम के पत्ते, लोध्र, फिटकरी, शङ्खनाभि, भीमसेन कपूर, ये सब समान भाग चूर्ण करके मोटे कपड़े में से छान लेना चाहिये। इसमें मधु मिलाकर लोह के पात्र में रखकर ताँबे के पात्र से रगड़ना चाहिये। इस अंजन के लगाने से तिमिर, परवाल तथा फूली मिटती है।

नयनामृत—सीसक को पिघलाकर नीचे की वस्तुओं में सात-सात बार बुझाना चाहिये। जैसे—त्रिफला का काढ़ा, भाँगरे का रस, सोंठ का काढ़ा, घी, गोमूत्र, मधु, बकरी का दूध। पीछे से इस सीसक के बराबर पारा मिलाना चाहिये। दोनों वस्तुओं के बराबर शुद्ध सुरमा मिलाकर बारीक चूर्ण करके रख लेना चाहिये। इस चूर्ण से दसवाँ भाग भीमसेनी कपूर मिलाना चाहिये। यह सुरमा आँख के लिये अधिक उपयोगी है।

पलाशाञ्जन—लाल चन्दन १ भाग, सैंधव २ भाग, हरड़ ३ भाग, पलाश का गोंद ४ भाग इसका बारीक चूर्ण करना चाहिये। कृष्ण मण्डल के फूली पर लाभ करता है।

भीमसेनी कपूर—कपूर के टुकड़ों को जरा पानी जैसा गीला द्रव करना चाहिये। शीतल चीनी, इलायची, मोथा, छोटी हरड़, घी इन पाँच

वस्तुओं का बारीक चूर्ण करके ताँबे की कटोरी में बिछाकर इसके ऊपर कपूर के टुकड़े रखने चाहिये। पीछे से इनके ऊपर बराबर ठीक आजाये, इस प्रकार का पीतल का कटोरा ढाँप देना चाहिये। इन दोनों के सन्धि-स्थान को चिकनी मिट्टी या आटे के साथ लेप देना चाहिये। पीछे से इसको दिये पर धीरे-धीरे गरम करना चाहिये, जिससे बर्त्तन बहुत गरम न होजाय। जब गरम होने लगे, तब ऊपर के बर्त्तन को ठंडा रखना चाहिये। इस प्रकार ८ से १० घंटे के अंदर कपूर उड़कर ऊपर लग जायगा। पीछे से ऊपर के बर्त्तन पर से कपूर उतारकर एक शीशी में बन्द करके रख लेना चाहिये। इसको भीमसेनी कपूर कहते हैं। इसे आँख में लगाने से आँख में ठंडक होती है।

मुक्तादि महांजन—मोती, कपूर, काचलवण, अगरु, मिर्च, पिप्पली, सैन्धव, एलावालुक, सोंठ, कंकोल, कास्य-भस्म, वंग-भस्म, हरिद्रा, मनःशिला, शंखनाभि, अभ्रक, नीला तुत्थ, वृत्त बत्तख के अंडे का छिलका, बहेड़ा, केशर, हरीतकी, मुलहठी, लाजवर्द, जावित्री, तुलसी का नया फूल और बीज, करञ्ज, नीम, अर्जुनछाल, नागरमोथा, ताम्र, रसाञ्जन, लोह प्रत्येक १ माशा, लेकर उत्तम प्रकार से मधु के साथ पीसकर अञ्जन करने से सब प्रकार के आंख-रोग शान्त होते हैं।

रतनजोत की सलाइयाँ—नीला तुत्थ २ भाग, फिटकिरी १ भाग, सुराखार १ भाग, इन तीन चीजों को इकट्ठा करके आग के सहारे एक रस बनाकर इसमें ३२ वाँ भाग कपूर मिलाना चाहिये। इसको प्रतिदिन दो-तीन बार करने से आँख से पानी गिरना, आँख का दुखना आदि रोग मिटते हैं।

रसांजनादि वटी—रसौत, हल्दी, दारु हल्दी, मालती के पत्ते तथा नीम के पत्ते इन सबको गोमय रस में पीसकर गोली करनी चाहिये। इन गोलियों में से एक वाल मात्रा पानी के साथ घिसकर अञ्जन करने से रतौंधी मिटती है।

स्नेहवर्त्ति—हरड़, बहेड़ा, आँवला, इनकी मींग क्रमशः ३, २, १ के अनुपात से लेकर पानी में पीसकर लम्बी-लम्बी शलाकावर्त्ति बनाना चाहिये। इनको पानी में घिसकर लगाने से आँख के अन्दर से निकलनेवाला पानी तथा वातरक्त की पीड़ा शान्त होती है।

सौवीराञ्जन—सुरमे के पत्थर को अग्नि के ऊपर गरम करके त्रिफला क्वाथ में सात बार, स्त्री के दूध में [अभाव में बकरी के दूध में] भाँगरे के रस में बुझाकर अंजन करने से आँख के सब रोग मिटते हैं।

हरिद्रादि गुटिकाञ्जन—हल्दी, नीम के पत्ते, पिप्पली, मिर्च, वाय-विडङ्ग, मोथा, सोंठ, इन सबको गाय के मूत्र में पीसकर चने के बराबर गोली बनाकर छाया में सुखा लेना चाहिये। इसको पानी में घिसकर अंजन करने से तिमिर, मधु में अंजन करने से परवाल, सैंधव के साथ लगाने से कण्डु, स्त्रियों के दूध में लगाने से दुःस्राव, बकरी के दूध में लगाने से नेत्र-प्रकोप शान्त होता है।

वाजीकरण तथा धातुपौष्टिक औषधियाँ

वाजीकरण-प्रयोगों को यथासम्भव सर्दियों में सेवन करना चाहिये। जिस प्रकार प्रत्येक पशु और वनस्पति के लिये वर्ष भर में एक समय आता है, जब वह अपनी शक्ति को नये सिरे से प्राप्त करके, साल भर के लिये शक्तिमान हो जाता है, उसी प्रकार सर्दियों की ऋतु पुरुषों के लिये है। इसमें भारी आहार-विहार खाने से लाभ होता है।

माषादि-मोदक—उड़द की कूटी हुई दाल का आटा, गेहूँ का दाना, छड़े हुये जौ का आटा, चावल का आटा, पिप्पली का चूर्ण प्रत्येक ४ तोला, घी ½ सेर कढ़ाई में डालकर सबको भून लेना चाहिये। पीछे सबके बराबर शर्करा और शर्करा से दुगुना पानी लेकर अग्नि से पाक कर लेना चाहिये। पीछे से चार-चार तोले के लड्डू बनाने चाहियें। इनमें से एक-एक लड्डू प्रातः खाना चाहिये।

उड़द का पाक—उड़द का आटा २½ सेर, गोंद १½ सेर, खोवा २॥ सेर, बादाम की मींगी १½ सेर, द्राक्षा ½ सेर, चारोली ½ सेर, शर्करा, ८ सेर, घी ४ सेर। उड़द के आटे में १ सेर घी मिलाकर १ सेर दूध में खोवा बना लेना चाहिये। खोवे को घी में भूनना चाहिये, गोंद को घी में तलना चाहिये, पीछे से चासनी करके इसमें ऊपर की चीजें मिलाकर नीचे की चीजें मिला देनी चाहियें। श्वेत मूसली, काली मूसली, बहुफली, बलदाना, गोखरू, मुगलाई बेदाना, कौंच, तालमखाना, बिदारी, बराही, अकरकरा,

दालचीनी, तमालपत्र, इलायची, नागकेसर, जायफल, भीमसेनी कपूर, सोंठ, मिर्च, पिप्पलीमूल प्रत्येक दो-दो तोला लेकर चूर्ण करना चाहिये। इसमें केसर १ तोला मिलाकर हलुवा-सा तैयार करना चाहिये। मात्रा—२½ तोला से ४ तोला। कमर के दुःस्राव में, निर्बलता में, स्त्रियों के तमाम रोगों में लाभदायक है।

आत्म-गुप्तादि चूर्ण—कौंच तथा तालमखाना समान भाग लेकर इनके बराबर शर्करा मिलानी चाहिये। मात्रा—½ से १ तोला।

अनुपान—धारोष्ण दुग्ध।

उपयोग—धातु-पुष्टि, शुक्र की वृद्धि में उपयोगी है।

आँवले के प्रयोग (१)—शुष्क आँवले के चूर्ण को भीगे आँवले के रस की सात दिन तक भावना देकर रखना चाहिये। मात्रा ½ से १ तोला।

अनुपान—गाय का दूध तथा शर्करा।

(२)—शुष्क आँवलों का चूर्ण २५६ तोला, गीले १००० आँवलों के रस की भावना देकर, पीछे से इसको घीवाले बर्त्तन में भरकर, इसमें २४ तोला शहद, २५६ तोला घी, ३२ तोला पिप्पली-चूर्ण, ६४ तोला शर्करा भरकर चौमासे में रखना चाहिये। सर्दियों में खाने से स्मरण-शक्ति बढ़ती है, सम्भोग की शक्ति बढ़ती है।

(३)—आँवले का रस, मधु, शर्करा और घी सबको मिलाकर प्रतिदिन २½ तोला खाने से गरमी तथा आँख के रोग अच्छे होते हैं।

(४)—आँवला, गोखरू, गिलोय इन तीनों को समान भाग लेकर ¼ से ½ तोला घी तथा शर्करा के साथ खाने से ऊपर से दूध पीना चाहिये। वीर्य-दोष को दूर करता है।

एरण्ड-बीज का प्रयोग—एरण्ड के बीज ४० तोला, गाय के दूध का खोवा ४० तोला, दोनों को अलग-अलग घी में सेककर दाना बनाना चाहिये। गेहूँ का दाना ४० तोला इसको गाय के दूध में दो-तीन घन्टे दबाकर घी में सेककर दाना बनाना चाहिये। पीछे तीनों को इकट्ठा करके इसमें इलायचीदाना ३ तोला, श्वेत मिर्च ६ माशे, दूधी का मगज १० तोला, बादाम का मगज १० तोला, सबको कूटकर मिलाना चाहिये। पीछे सबके बराबर शर्करा की चासनी करके इसमें सब चूर्ण मिला देना चाहिये। मात्रा—२½ से ५ तोला।

उपयोग—शिर की उष्णता, आँख की गरमी को मिटाता है, पित्त को निकालता है।

वृद्धदण्ड चूर्ण—कौंच, गोखरू, श्वेत मूसली, सिम्बल की जड़, आँवला, गिलोय-सत्त्व सब समान भाग लेकर चूर्ण करना चाहिये। सबके बराबर शर्करा। मात्रा ½ से १ तोला।

अनुपान—दूध अथवा घी तथा शहद।

उपयोग—धातु-पुष्टि, कमर के दुखाव में उपयोगी है।

कौंच का प्रयोग—कौंच की गिरी, काली द्राक्षा, पिप्पली, तालमखाना, शर्करा सब समान भाग। मात्रा—½ से १ तोला।

अनुपान—घी, मधु और दूध।

उपयोग—शुक्र-क्षय के रोगों में उपयोगी है।

गोखरू का प्रयोग—(१) गोखरू का फल, तालमखाना, मुलहठी, गंगेरन, बलदाना सबका चूर्ण बनाकर आठ गुने दूध में पकाकर चूर्ण के बराबर गाय के घी में सेंककर, सबसे दुगुनी शर्करा मिलाकर इसके २ तोले का लड्डू बना लेना चाहिये। इससे वीर्य-वृद्धि तथा पुष्टि होती है।

गोखरू का प्रयोग—(२) गोखरू, शतावरी तालमखाना, बलदाना इसको चूर्ण करके रात्रि में खाना चाहिये। मात्रा ½ तोला।

अनुपान—दूध-पुष्टि देता है।

वाजीकरण घृत—श्वेत कनेर की मूल १ सेर आठ सेर पानी में उबालकर चतुर्थांश पानी बचा रहना चाहिये, दूध २ सेर मिलाना चाहिये। शुद्ध संखिया १ तोला, जायफल १ तोला, जावित्री १ तोला, केसर १ तोला, लवंग १ तोला, समुद्रफल १ तोला इन सबको दूध में उबालकर दही जमाना चाहिये। दही का घी बनाकर उसमें से एक बूँद पान के पत्ते में लगाकर खाना चाहिये।

वीर्य को उत्तेजित करता है, वीर्य का स्तम्भन होता है।

अश्वगन्धा-चूर्ण—अश्वगन्धा ५ तोला, विधारा ३ तोला, शर्करा ८ तोला, तालमखाना ५ तोला मिलाकर चूर्ण कर लेना चाहिये। इसको दूध के साथ खाने से वीर्य-वृद्धि होती है।

विदारीकन्द का प्रयोग—विदारीकन्द का चूर्ण, बाँसकपूर, मुलहठी, पिप्पली समान भाग लेकर चूर्ण करना चाहिये। मात्रा ½ से १ तोला।

अनुपान—दूध तथा शर्करा।

उपयोग—क्षीणता, नपुंसकत्व में।

(२) विदारीकन्द के चूर्ण को विदारीकन्द के रस की भावना (४०) देकर चूर्ण करना चाहिये। मात्रा ¼ से ½ तोला।

उपयोग—धातुस्राव में, स्त्रियों के दुग्ध की कमी में।

अनुपान—घी तथा शर्करा।

शतावरी-प्रयोग—शतावरी, गोखरू, कौंच, नागबला, बलदाना, तालमखाना।

अनुपान—गाय का दूध। मात्रा ½ से १ तोला। यह चूर्ण रात्रि में पीने से कामेच्छा बढ़ती है।

(२) शतावरी, बलदाना, कौंच, गोखरू, तिल, उड़द समान भाग चूर्ण करके, उबले हुये गाय के दूध में शर्करा मिलाकर पीना चाहिये। मात्रा १ तोला। धातु-पुष्टि करता है।

शाल्मली-प्रयोग—मोचरस का चूर्ण ½ तोला, शर्करा ४ तोला, गाय का दूध २० तोला। इस अनुपान से कई दिनों तक लगातार खाने से धातु-पुष्टि होती है।

कामेश्वर-मोदक (महा)—अभ्रक, कायफल, कूठ, अश्वगन्धा, गिलोय, मेथी, मोचरस, विदारी, लाल मूली, गोक्षुर, शतावरी, अजवायन जटामांसी, पोस्ते का डोडा, तिल, धनिया, शठी, गन्धतृण, बला, मदनफल, जायफल, सैन्धव, भारंगी, काकड़ाशृंगी, पिप्पली, सोंठ, मिर्च, जीरा, काला जीरा, चीतामूल, दालचीनी, तेजपत्र, इलायची, नागकेसर, पुनर्नवा, गज-पिप्पली, द्राक्षा, शठी, हऊबेर, शाल्मलीमूल, कौंच के बीज प्रत्येक १ तोला, भाँग का चूर्ण ४२ तोला, शर्करा १६८ तोले। यथाविधि पाक कर लेना चाहिये। शीतल होने पर घृत और मधु मिलाकर मोदक बना लेना चाहिये। वाजीकरण है।

मदन-मोदक—शुद्ध की हुई भाँग बीज-सहित घी में भूनकर २१ तोला चूर्ण कर लेना चाहिये। त्रिकटु, त्रिफला, काकड़ाशृंगी, कूठ,

धनिया, सैन्धव, शठी, तालीशपत्र, तेजपत्र, कायफल, नागकेसर, अजवायन, खुरासानी अजवायन, मुलहठी, मेथी, जीरा, काला जीरा प्रत्येक का चूर्ण १ तोला, शर्करा ६४ तोला पाक-योग्य जल मिलाकर पाक करना चाहिये। पाक-शेष होने के क़रीब हो, तो इसमें दालचीनी, तेजपत्र, इलायची-चूर्ण और थोड़ा-सा कपूर-चूर्ण मिलाकर १ तोला परिमाण का मोदक बना लेना चाहिये।

मदनानन्द-मोदक— पारद, गन्धक, लोह प्रत्येक एक तोला, अभ्रक ३ तोला, कपूर, सैन्धव, जटामांसी, आमलकी, इलायची, सोंठ, पिप्पली, मिर्च, जावित्री, जायफल, तेजपत्र, लौंग, जीरा, काला जीरा, बच, मुलहठी, कूठ, हरिद्रा, देवदारु, हिंजल-बीज, सुहागा, भारंगी, नागकेसर, काकड़ाशृंगी, तालीशपत्र, द्राक्षा, चीतामूल, दन्तीबीज, बला, अतिबला, दालचीनी, धनिया, गजपिप्पली, शठी, हऊबेर, मोथा, विदारी, शतावरी, पाठा, कौंच के बीज, गोखरू, विधाराबीज, भाँग के बीज प्रत्येक १ तोला इनको शतावरी-रस से भावना देकर चूर्ण कर लेना चाहिये और सब चूर्ण का चौथाई भाग सिम्बल का चूर्ण मिला देना चाहिये। इस सारे चूर्ण का आधा भाग भाँग का चूर्ण मिलाकर बकरी के दूध के साथ पीसना चाहिये। सबसे दुगुनी शर्करा बकरी के दूध में मिलाकर पाक करना चाहिये। जब पाक समीप हो, तो ऊपर की सब औषधियाँ मिला देनी चाहिये। पीछे से दालचीनी, तेजपत्र, इलायची, नागकेसर, कपूर, सैन्धव, त्रिकटु मिलाकर पाक समाप्त कर लेना चाहिये। पीछे से घृत और मधु भी आवश्यकतानुसार मिलाकर समाप्त कर लेना चाहिये।

उपयोग—शुक्र की तरलता में, शिश्न-शैथिल्य में। मात्रा ½ से ¾ तोला।

अनुपान—गरम दूध।

मन्मथाभ्र-रस—पारा, गन्धक, अभ्र प्रत्येक ४ तोला, कपूर और बंग प्रत्येक १ तोला, ताम्र ½ तोला, लोह २ तोला, विधारा का बीज, जीरा, विदारी, शतावरी, बला, कौंच के बीज, अतीस, जावित्री, जायफल, लौंग, सिद्धि बीज, राल, अजवायन प्रत्येक ½ तोला जल मिलाकर दो रत्ती की गोली बनानी चाहिये।

उपयोग—शुक्रमेह-जनित शिश्न-शैथिल्य में उपकारी है। शुक्र को गाढ़ा करनेवाला, शुक्रधारक, बलकारक और उत्तेजक है।

वाजीकरण प्रयोगों को सेवन करनेवालों के लिये आवश्यक बातें

जो पुरुष बहुत सम्भोग करता है और वाजीकरण औषधियां का सेवन नहीं करता, उसको शुक्र-क्षय के कारण ध्वज-भङ्ग रोग हो जाता है।

निम्नकारणों से शुक्र का क्षय होता है—चिन्ता से, बुढ़ापे से, रोगों से, स्त्रियों के अतिसहवास से।

अतिसहयोग के कारण—ग्लानि, कम्प, कृशता, इन्द्रियों में क्षीणता, शोष, श्वास, उपदंश, ज्वर, अर्श, सब धातुओं की क्षीणता, वायु के रोग, नपुंसकता, ध्वज-भङ्ग, आदि रोग होते हैं। विशेषतः जो वाजी-कर्म नहीं करते।

नाना प्रकार के भोजन, पान, सुन्दर-मनोहर गाने, वाणीयां, स्पर्श तथा नवयुवती, तिलकवाली कामिनी सब मनुष्य में कामदेव को जागृत करनेवाली है।

जो कुछ मधुर स्निग्ध, जीवनीय, बृंहण, गुरु और मन को प्रसन्न करनेवाला है, वह सब बलकारक है।

अति उष्ण, कटु, तिक्त, कषाय, खट्टे पदार्थ, शाक, (सरसों आदि पत्तों के) क्षार और लवण ये वस्तुयें अतिसहवास करनेवाले पुरुष को नहीं खाना चाहिये।

यूनानी औषधि

अनुशदारु—गुलाब के फूल १८ माशा, नागरमोथा १५ माशा, लौंग, मस्तकी, जटामांसी, तगर, तज, तालीशपत्र, केशर प्रत्येक ९ माशा, आँवला ६ सेर इनको इमली के ३॥ सेर पानी में उबालना चाहिये। जब १॥ सेर पानी शेष रहे, तब इमली का पानी तथा आँवले का खोवा इन सबको एकत्रित करके पाक करना चाहिये। इस पाक में ऊपर की चीजें मिला देनी चाहियें। मात्रा—१ तोला।

गुण—उन्माद को नष्ट कर पुरुषत्व बढ़ाना है।

अनुशदारूलोलवी—अनबिंधे मोती १ तोला, सांगयब १ तोला इन दोनों को ३ दिन तक गुलाब और केवड़े के अर्क में पीसना चाहिये। पीछे से अगर, बाँसकपूर, जटामांसी प्रत्येक का २ तोला चूर्ण, कच्चा रेशम ३ तोला, सबसे दुगुना आँवला, इसको भापकर खोवा करना चाहिये। फिर सबसे तिगुनी शर्करा लेकर चासनी करनी चाहिये। फिर सब चीजों को इस चासनी में गेरकर पाक करना चाहिये। मात्रा—१ तोला।

गुण—दिल को ताकत देता है, खुश रखना है, उन्माद-रोग नष्ट होता है।

जवारीस कमुनी—काला जीरा ७ तोला, इसको सिरके में भिगोकर सुखा देना चाहिये। इस प्रकार तीन बार करना चाहिये। पीछे कपड़े में से छान लेना चाहिये। इसमें सोंठ, मिर्च, पोदीना, पिप्पलीमूल, सुदाब, बड़ी हरड़, संचल प्रत्येक ३ तोला चूर्ण मिला देना चाहिये। इन सबको तिगुने शहद में मिलाना चाहिये।

गुण—भूख लगाता है, रुचि पैदा करता है, भोजन को हज्म करता है, पेट की गाँठ को गलाता है, औरतों में ऋतु-धर्म को ठीक करता है।

जवारीस मस्तगी—मस्तगी रूमी १ तोला, शर्करा १६ तोला, इसकी गुलाबजल में चासनी करनी चाहिये। जब चासनी तैयार हो जाय, तब इसमें खरल में पीसी हुई मस्तगी मिला देनी चाहिये।

गुण—यकृत तथा आमाशय में सरदी मिटाती है, मुँह में से लार टपकती हो, उसको बन्द करती है, पाचक होने से पेट की ताक़त बढ़ाती है। मात्रा—½ से १ तोला।

जवारीश उदतशुर—कौड़िया लोहबान ५ तोला, लवङ्ग २ तोला, जटामांसी १ तोला, जरिश्क (छोटी खट्टी द्राक्षा) १ तोला, सबको चूर्ण करके तैयार रखना चाहिये। नीबू का रस ७ तोला, शर्करा २० तोला, इसकी चासनी करके ऊपर की चीजें मिला देनी चाहियें।

गुण—आमाशय को शक्ति देती है।

अर्क मुक़व्वी—जासुदी का फूल २० तोला, द्राक्षा २० तोला, शर्करा २० तोला, लौंग, जायफल, सालम, शक़ाकुल, पिस्ता, चिलगोजा के मग़ज़, यह प्रत्येक २ तोला, इन सबको ६ सेर पानी में भिगोकर आठ दिन तक रखना चाहिये। पीछे इसको कपड़े में से छानकर बोतल में भरकर रखना चाहिये। मात्रा—४ से ६ तोला।

उपयोग—बहुत शक्ति देता है, पुरुषत्व की शक्ति बढ़ाता है।

इतरफल कशनीजी—चारों प्रकार की हरड़ प्रत्येक एक तोला—इनको पीछे से कूट-छानकर इसमें बादाम का तेल मिला देना चाहिये। इसमें धनिया एक तोला कूटकर मिलाना चाहिये। पीछे से इसमें सबसे तीन गुना मधु मिलाकर मिट्टी के बर्तन में भरकर पीछे से जौ की कोठी में तीन मास तक भरकर रखना चाहिये।

गुण—आँख की बीमारी, सिर की बीमारी, अर्श को मिटाता है। मात्रा—½ से १ तोला।

इतरीफल उस्तखद्दूसी—हरड़ का छिलका एक तोला, आँवला एक तोला, उस्तखद्दूस २ तोला, बनफशा का फूल २ तोला, अमरबेल ½ तोला, अनीरचून ½, बाँदरजबोया ½ तोला, चित्रकमूल की छाल ½ इन सब चीजों को कूटकर कपड़छान करके चूर्ण से तिगुने शहद में मिलाना चाहिये। मात्रा एक से दो तोले।

गुण—मस्तिष्क की बीमारियों में तथा रक्त-विकार के सब रोगों में लाभ करता है।

बरशाशा—मिर्च ४ तोला, सफेद मिर्च ४ तोला, भाँग के बीज ४ तोला, अफीम एक तोला, केसर एक तोला, जटामांसी ½ तोला, अकरकरा

½ तोला, फरडीयुन ½ तोला सबको जुदा-जुदा चूर्ण करके तोलना चाहिये। सबसे तिगुना शहद मिलाकर इसको बरणी जौ के कोठे में तीन मास तक रख देनी चाहिये। मात्रा—½ से १ तोला।

गुण—प्रतिश्याय, ज्वर, कास, श्वास, गले के अन्दर की शोथ, लकवा, पक्षाघात, पार्श्वशूल, अतिसार, संग्रहणी, पेट का दर्द, उन्माद, बाई इत्यादि के रोगों में लाभ करता है।

माजूनेलबूब—बादाम, चिलगोजा, कुसुम्भ की मींग, फिन्दक, पिस्ता, हब्बुल, किलकिल खसखस, तोदरी पीली, तोदरी लाल, तोदरी सफेद, तिल सफेद, टेंटी के बीज का मगज, प्याज का बीज, सलगम का बीज, गाजर के बीज, सफेद बेमन, बेमन सुर्ख, सोंठ, काली मिर्च, कबाबचीनी, दालचीनी, शकाकुल मिस्री, हलीऊन का बीज तथा कुलिञ्जन सब समान भाग और सबसे तिगुना मधु। सबको मिलाकर माजून अर्थात् चटनी बनानी चाहिये। सम्भोग के समय शक्ति देती है।

माजूने लबूबेकबीर—बेमन सफेद, बेमन सुर्ख, तोदरी जर्द, तोदरी सफेद, शकाकुल मिस्री, सालममिस्री, गाजर के बीज, शलगम के बीज, हलीयून के बीज, प्याज के बीज, गदना के बीज, इन्द्रजौ, नागरमोथा, शीतलचीनी, कुलींजन, बोजीदान, सुरंजान शीरीन, पोदीना, दरूनज अकरबी, प्रत्येक वस्तु १ तोला, खसखस, पिस्ता, बादाम, चिलगोजा, फिन्दक, अखरोट, तिल श्वेत, नारियल, कपास के बीज प्रत्येक २ तोला, सोंठ, लौंग जायफल, इलायचीदाना प्रत्येक ½ तोला; सब के वजन की दुगुनी खाँड़; खाँड़ की चाशनी करके इसमें दवाइयों का बारीक चूर्ण करके शेष वस्तुयें मिलाना चाहिये। मात्रा—१ से २ तोला।

गुण—दिल, मस्तिष्क, गुर्दे को ताकत देती है। सम्भोग-शक्ति को बढ़ाती है।

माजूनेकुतन—कपास के बीज ६ तोला, दालचीनी ४-४½ तोला, उटङ्गण के बीज ४-४½ तोला, लौंग ४-४½ तोला, चिलगोजे का गिरी ४½ तोला, कायफल २ तोला, शकाकुल मिस्री ३ तोला, सोंठ ३ तोला, कुठ १४ माशा, सेंकी हुई अलसी के बीज १४ माशा, रूमी मस्तगी १४ माशा; सबको कूटकर तिगुने शहद में मिलाकर माजून बनाना चाहिये। मात्रा—४ माशा। निर्बलता को दूर करता है, कास और श्वास को नष्ट करता है।

माजूनेमिकल—हरड़ का छिलका ९ माशा, बहेड़े का छिलका ९ माशा, आँवला ९ माशा, कहरुवा १॥ तोला, प्रवाल के जड़ की भस्म १॥ तोला, फिटकड़ी ९ माशा, अजवायन ९ माशा, गुग्गुल ७ तोला, गुग्गुल के सिवा सब चीजों का चूर्ण करके, गुग्गुल को पानी में घोलकर, छानकर इस पानी में सब चूर्ण मिलाकर धूप में सुखा देना चाहिये। जब पानी सूख जाय और चूर्ण रह जाय, तब इसमें २६ तोला शहद मिलाना चाहिये। मात्रा—आधे से १ तोला।

गुण—अर्श के लिये अकसीर है।

माजूनेफलासफा—त्रिकटु, दालचीनी, आँवला, बहेड़े का छिलका, चीतामूल की छाल, जरावर्द मदेहर्ज, सालम, मगज, चिलगोजा, बाबूना के मूलिया, जटामांसी प्रत्येक ६ माशा, बाबूना के बीज १५ माशा, द्राक्षा ३ तोला; इनमें द्राक्षा को छोड़कर शेष सब वस्तुओं का चूर्ण बनाकर चूर्ण से दुगुना या तिगुना मधु लेकर उसमें द्राक्षा तथा चूर्ण मिला देना चाहिये। मात्रा—१ से २ तोला।

गुण—भूख लगाता है, धातु बढ़ाता है, स्मरण-शक्ति बढ़ाता है, बहुत पेशाब को रोकता है, कमर के दुखाव, गुरदे के दर्द को नष्ट करता है।

माजूनेउशबा—सौंफ, चन्दन, गिलोय, अमरबेल, हरड़ का छिलका, बहेड़े का छिलका, हरड़ छोटी, पित्तपापड़ा, कस्तूरी प्रत्येक १ तोला, मीठा सोनामक्खी ४ तोला, उशबा मगरबी १२ तोला, चोबचीनी ८ तोला, शर्करा सफेद १८० तोला इसकी चाशनी करके और इसमें सब वस्तुओं का चूर्ण मिलाकर माजून बना लेना चाहिये। मात्रा—१ तोला; यह माजून विस्फोटक, व्रण, रक्त-विकार तथा गरमी के रोगों में लाभदायक है।

खमीरे गावजुबाँ—गावजुबाँ १० तोला, बादरंजबोया ५ तोला, जटामांसी १ तोला, गुलाब के फूल १ तोला, चन्दन-चूर्ण १ तोला सब औषधियों से तिगुना पानी और दुगुना गुलाबजल। प्रथम दवाइयों को कूटकर गुलाबजल में भिगोकर रखना चाहिये। पीछे से पानी में मिलाकर काढ़ा करना चाहिये। जब चतुर्थांश काढ़ा रहे, तब छानकर इसमें ६ गुना शर्करा मिलाकर गुलकन्द-जैसा पाक कर लेना चाहिये। इसमें १ तोला केसर मिला देना चाहिए।

गुण—दिल तथा मस्तिष्क को ताकत देता है। उन्माद-रोग तथा मूर्च्छा में लाभदायक है।

खमीरे सन्दल—चन्दन का बुरादा ५ तोला, इसको २० तोला गुलाबजल में २४ घंटे तक भिगोकर रखना चाहिये। पीछे धीमे-धीमे ताप से गरम करना चाहिये। जब गाढ़ा हो जाय, तब इसमें शर्करा ½ सेर मिलानी चाहिये। चन्दन के बुरादे को गुलाबजल में पत्थर पर घिसकर, गरम करके इसमें शर्करा मिलाने से बहुत अधिक बारीक बनता है।

उपयोग—पित्तविकार में, मस्तिष्क की गरमी में लाभदायक है।

शरबते बनफशा—बनफशा १० तोला, ½ सेर पानी में क्वाथ करके ½ सेर बचाना चाहिये। इस पानी में २० तोला शर्करा मिलाकर चाशनी बना लेनी चाहिये।

उपयोग—ज्वर, आँख की गरमी, मस्तिष्क के रोग में। नींद आती है, मल खुलकर आता है, पित्त का रेच होता है।

शरबते उन्नाब—बनावट—बनफशा शर्बत के समान।

गुण—रक्तशोधक, ज्वर उतारता है, छाती के रोग को मिटाता है।

शरबते नीलोफर—बनावट—बनफशा के समान।

उपयोग—नींद अधिक लाता है, उन्माद-रोग में उपयोगी है।

शरबते दीनार—तुख्म कासनी, गुलाब के फूल, नीलोफर के फूल, गावजुबाँ, सौंफ, उस्तखदूस प्रत्येक एक-एक तोला, कासनी की जड़ की छाल, सौंफ की जड़ की छाल प्रत्येक दो-दो तोला, कुसुम के बीज और रेवतचीनी ये दोनों प्रत्येक ९ माशा, सबको पोटली बाँधकर पानी में उबालकर शर्बत तैयार करना चाहिये।

गुण—रेचक, मूत्रल, मलेरिया, पाण्डु-रोग, जलन्धर, पेट के दूसरे रोगों में एवं स्त्रियों के गुप्त रोगों में तथा पुरुषों के मूत्र-सम्बन्धी रोगों में, पार्श्वशूल में, आँत्र-शोथ में लाभदायक है।

शरबते फरियादरस—गावजुबाँ, चन्दन श्वेत, हंसराज, खसखस, पोस्ते का डोडा प्रत्येक २ तोला, मुलहठी का शीरा, सौंफ, तुख्म खतमी, गुलाब के फूल, सेवती गुलाब के फूल प्रत्येक १ तोला, मुनक्का सबका आधा और शर्करा सबकी छः गुनी, सबका चौगुना पानी डालकर शर्करा के

सिवा सब चीजों को उबालकर, आधा पानी रहने पर, छानकर, शर्करा मिलाकर चाशनी बनानी चाहिये।

गुण—पुराने ज्वर मे, कास मे तथा नजले मे उपयोगी है।

शरबते वर्द मुकर्रर—गुलाब के नोले फूल ४० तोला, पानी ३ सेर इनको उबालना चाहिये। जब १/२ सेर पानी जल जाय, फिर इसमे १/२ सेर गुलाब के फूल मिलाना चाहिये। अन्त मे जब एक सेर पानी रह जाय, तब इसमे १॥ सेर शर्करा मिलाकर चाशनी कर लेनी चाहिये। मात्रा—४ तोला।

अनुपान—बरफ मे मिलाकर पीने से विरेचन होता है। ठण्डा पानी जितना अधिक पिया जायगा, उतने ही अधिक विरेचन होगे।

शरबते एजाज—उनाब ३० दाना, बटगुदा ६० दाना, मुलहठी २ तोला, तुख्म खुबाजी २ तोला, तुख्म खतमी २ तोला, नीलोफर २ तोला, बनफशे का फूल २ तोला, बबूल का गोंद, कतीरा गोंद, मुगलाई बेदाना प्रत्येक एक-एक तोला, गोंद के अतिरिक्त की वस्तुओं को चार गुना पानी मे उबालकर जब आधा पानी शेष रहे, तब छान लेना चाहिये। इसमे पीसकर गोंद मिला देना चाहिये तथा आवश्यकतानुसार शर्करा मिलाकर शरबत बना लेना चाहिये।

गुण—कास, गरमी के ज्वर मे, क्षय-रोग मे।

शरबते बजूरी—सौंफ ९ माशा, अजवायन, ६ माशा, कासनी ९ माशा, गोखरू १५ माशा, सकरटेटी के बीज की मीग १५ माशा, खीरा के बीज की मगज ३० माशा, कासनी की जड़ २१ माशा, सौंफ की जड़ की छाल २१ माशा, सबको कूटकर अधकचरा करके, रात्रि में छः गुना पानी मे भिगोकर रखना चाहिये। प्रातः काढ़ा करके दवा के वजन से दुगुना पानी बाकी रहे, तब छान लेना चाहिये। इस पानी मे पानी के बराबर शर्करा मिलाकर शरबत बना लेना चाहिये। ताप को उतारता है, पेशाब को लाता है।

शरबते बिजूरी—तुख्म कासनी २ तोला, सौंफ २ तोला, खरबूज का मगज २ तोला, दूधी का मगज कुसुम के बीज १ तोला, गुले गाफीस १ तोला, खतमा १ तोला, मुलहठी १ तोला, जटामांसी १ तोला, गुलबनफशा १ तोला, गावजबाँ १ तोला, काली द्राक्षा ६ तोला; इन सबको अधकचरा करके रात्रि

को १॥ सेर पानी में भिगोकर रखना चाहिये । प्रातः इसका काढ़ा करना चाहिये । जब आधा पानी रहे, तब छानकर इसमें ½ सेर शर्करा मिलाकर शहद जैसी चाशनी बनानी चाहिये । मात्रा—२ तोला । दिन में दोनों समय लेनी चाहिये । इसमें सौंफ का अर्क भी २ तोले मिलाना चाहिये ।

उपयोग—क्षय में, जीर्ण-ज्वर में ।

सिकंजबीन असली—पाणकन्द इसको कूटकर पानी में जोश देना चाहिये । पीछे हाथ से मसलकर पानी को कपड़े से छान लेना चाहिये । इस पानी से दुगुना सिरका और तिगुनी लाल खाँड़ मिलाकर शरबत बनाना चाहिये ।

गुण—यकृत तथा प्लीहा की वृद्धि को, कास तथा श्वास को मिटाता है ।

सिकंजबीन बीजूरी बारीद कासनी की जड़ की छाल ७ तोला, आरीया तथा कासनी का बीज प्रत्येक ५ तोला इन तीनों को कूटकर आठ गुने पानी मे उबालना चाहिये । चार गुना पानी रहने पर कपड़े में से छानकर, इसमें दवाइओं से चार गुना सिरका और सिरके से दुगुनी शर्करा मिलाकर चासनी तैयार करनी चाहिये ।

गुण—यकृत शोथ, जलन्धर और मूत्राघात को आराम करती है ।

सिकञ्जबीन सादा—सिरका ½ सेर, गुलाबजल ½ सेर शर्करा ½ सेर इनकी चाशनी बनानी चाहिये ।

गुण—ताव, पित्तकामला, उल्टी आदि में उपयोगी है ।

दबीदुल वर्द— जटामांसी, रूमीमस्तगी, बाँसकपूर, दालचीनी, इजरख की जड़, सुगन्धबाला, अगर, तगर, कूठ, तुख्म कसूस, तुख्म अजमोदा, रेवन्दी, इलायचीदाना प्रत्येक १ तोला; सबके बराबर गुलाब के फूल, सबको कूट छानकर चूर्ण बनाकर तिगुने शहद में मिला देना चाहिये ।

गुण—आमाशय तथा कलेजे के दर्द को ताकत देता है ।

हब्बेतकार—फूला हुआ सुहागा २ तोला, काली मिर्च ८ तोला, अजवायन १० तोला, इलायची १२ तोला, सबको घीकुँआर के रस में घोटकर मिर्च के बराबर गोली बनानी चाहिये ।

गुण—प्लीहा, जलन्धर, उदर-रोग आदि में काम करती है। दीपन, पाचन तथा मल साफ लाता है।

हब्बेमुमसिक—अफीम, जायफल, कस्तूरी, कपूर, चारों समान भाग लेकर कूट-छानकर पान के पत्तों के रस में वाले, बाल की गोली बनानी चाहिये।

उपयोग—धातु-वीर्य-स्तम्भन करती है।

हब्बेशफा—धतूरे के बीज ३ तोला, रेवतचीनी २ तोला, सोंठ १ तोला, इनको कूट छानकर बबूल की गोंद के पानी के साथ गोली बनानी चाहिये। ज्वर चढ़ने से एक घण्टा पहले यह गोली खाने से बुखार चढ़ने से रुकता है।

यूनानी विधि से धातुओं का जारण-मारण

अभ्रक-भस्म—उत्तम कृष्णाभ्रक लेकर, इसको कूटकर एक मोटे कपड़े की थैली में कुछ कौड़ियों तथा खजूर की गुठलियों के साथ डालकर थैली का मुँह बन्द कर देना चाहिये। इस थैली को गरम पानी में रखकर मसलना चाहिये। इससे अभ्रक के कण पानी में आजायँगे। इस अभ्रक को १२ घण्टे तक आक के दूध में घोटकर टिकिया बना ले। फिर ऊपर-नीचे आक के पत्ते रखकर शराव-सम्पुट में आँच देनी चाहिये। इस प्रकार ७ पुट देना चाहिये। इसी प्रकार वटांकुरों से सात पुट देने चाहिये। प्रत्येक बार आँच कम करते जाना चाहिये। यहाँ तक कि अन्तिम बार तीन उपलों की आँच रह जाय। अब अभ्रक के बराबर गाय का घी मिलाकर लोहे की कड़ाही में डालकर आग पर रक्खें, जब सब घी सूख जाय, तब उतारकर शीशी में रख लें।

सफेद अभ्रक-भस्म—सफेद अभ्रक को आग पर खूब तपाकर उसपर पानी छिड़कें और फिर उसे इमामदस्ते में कूटकर महीन करें। १२ घंटे तक नीबू के अर्क में घोटकर टिकिया बना लें, और फिर शराव-सम्पुट में रखकर गजपुट की आँच देनी चाहिये। इसके बाद भाँगरे के रस में घोटकर पुट दे दे और फिर धतूरे के अर्क में घोटकर फूँकें। जबतक चमक रहे, तबतक इसी तरह पुट देते रहें।

दूसरी विधि—सफेद अभ्रक के बारीक-बारीक ५ तोले चप्पे लेकर आग पर लाल करें और दूध में बुझावें। फिर घीक्वार के रस में घोंटकर १० उपलों की आँच में फूँक देना चाहिये। यदि कुछ कमी रह जाय, तो एक पुट और लगा दें।

फौलाद-भस्म—फौलाद के बुरादे को ३ दिन तक कागजी नीबू के अर्क में खरल करके टिकिया बना लें। इस टिकिया को एक मोटी-सी मूली में छेद करके रख दें, और इस छेद को मूली के गूदे से बन्द कर देना चाहिये। इस मूली को शराव-सम्पुट में रखकर १५ सेर उपलों की आँच देनी चाहिये। इस तरह ४० पुट लगावें। मात्रा—१ रत्ती।

दूसरी विधि—एक छटाँक फौलाद के बुरादे को कागजी नीबू के अर्क में अच्छी तरह धोयें। फिर उसपर जामुन का सिरका इतना डालें कि बुरादे से २-३ अंगुल ऊपर रहे। जब सिरका सूख जाय, तब बुरादे को खरल करके बारीक करें। फिर घीक्वार के रस में घोटकर १५ सेर उपलों की आग में फूँक देना चाहिये। फिर बुरादा निकालकर इसमें ५ माशे गन्धक मिलाकर घीक्वार के रस में घोंटकर १ सेर उपलों की पुट देनी चाहिये।

फौलाद-भस्म सर्द—६ तोला फौलाद को जामुन के सिर्के में उस वक्त तक घोटें, जबतक सब दो सेर सिरका न सूखे। बस भस्म तैयार होगई।

मण्डूर-भस्म—मण्डूर को आग में सुर्ख करके कई बार गोमूत्र में बुझावें। बारीक होने पर आठ घन्टे तक आक के दूध में घोटे और टिकिया बनाकर शराव-सम्पुट में रखकर गजपुट देना चाहिये। इसी तरह २० पुट आक के दूध में और एक पुट घीक्वार के रस में दे। जब पानी पर तैरने लगे, तो भस्म तैयार हो जायगी।

सोने की भस्म—१ तोले सोने को वन-तुलसी के रस में इतना खरल करे कि एक पाव रस सूख जाय, फिर टिकिया बनाकर सुखा लें और शराव-सम्पुट करके ७ सेर उपलों में फूँक देना चाहिये।

चाँदी की भस्म—चाँदी के बुरादे को या वर्कों को ३ घन्टे तक आक के दूध में खरल करके टिकिया बनावें और एक छटाँक आक की नरम कोंपलों की लुगदी के बीच में रखकर शराव-सम्पुट करके ५ सेर उपलों की

आग में फूँक दें। इस तरह दो पुट देने चाहिये। उत्तम भस्म तैयार हो जायगी।

सीसा-भस्म—सीसे के बारीक बुरादे को गुले अब्बासी (गुलाबाँस) के अर्क में खूब खरल करके सुखा लें। फिर पोस्ते के डोडे के पानी में दो पहर तक खरल करके यथा विधि टिकिया बनाकर ५ सेर उपलों की आँच में फूँकें। फिर आक के दूध में और घीकार के रस में एक-एक पुट ३ सेर उपलों का दें। उत्तम भस्म बनेगी।

राँग-भस्म—राँग के वर्कों को कैंची से काटकर, बारीक-बारीक टुकड़े करके एक बड़े से उपले पर १ छटाँक भाँग फैलाकर उसपर रख दें। उसके ऊपर १ छटाँक भाँग फैलाकर दूसरे उपले से ढाँपकर गढ़े में रखकर १० सेर उपलों की आँच दे दें। बस, उत्तम भस्म बन जायगी।

मोती-भस्म—१ तोले अनबिंधे मोती को गाय के दूध में खरल करके गुलगावजबाँ की लुगदी में (१० तोले) रखकर ७ सेर उपलों की आँच में पुट दें; इस प्रकार के तीन पुटों में उत्तम भस्म बन जायगी।

मूँगा-भस्म—एक मिट्टी के प्याले में मूँगा की शाखें रखकर उस पर घीकार का रस इतना डालें कि वह रस में डूब जाय। फिर शराव को २० सेर उपलों की आँच में फूँक देना चाहिये। इसके बाद गुलाब के अर्क में १२ घंटे खरल करके २० सेर उपलों में फूँक देना चाहिये।

दूसरी विधि—मूँगा ५ तोले, जमुर्रद १ तोला, चाँदी के वर्क १ तोला. सबको नीबू या हरी गिलोय या घीकार के अर्क में खरल करके टिकिया बनावें। सूखने पर गजपुट में फूँकें।

मूँगा-भस्म जवाहरवाली—मूँगा १ तोला, चाँदी के वर्क ३ माशे याकूत ३ माशे, अम्बर १ माशा, सोने का वर्क १ माशा, जमुर्रद को ५ माशे। सबको अर्क केवड़े में घोटकर यथा विधि १० सेर उपलों में पुट दें।

जमुर्रद-भस्म—जुमुर्रद को गुलाब के अर्क में अच्छी तरह खरल करके घीकार के गूदे में रखकर शराव सम्पुट में करके १० सेर उपलों में पुट दें।

उपयोग—जिगर और दिल की कमजोरी में।

अकीक-भस्म—२ तोला लाल अकीक को की करके पत्तों की डेढ़

पाव लुगदी में रखकर शराव-सम्पुट में १० सेर उपलों में फूँक देना चाहिये।

याकूत भस्म जवाहरवाली—याकूत सुर्ख ६ माशे, मूँगे की जड़ ३ माशे, मूँगे की राख ३ माशे, अनविधे मोती १॥ माशा, सोने का वर्क १॥ माशा; सबको संग सिमाक के खरल में गुलाब के अर्क के साथ एक सप्ताह तक खरल करें। भस्म बन जायगी।

दूसरी विधि—उपरोक्त वस्तुओं को गुलाब और ब्राण्डी में खरल करके २० सेर उपलों की आँच में फूँक देना चाहिये। इस तरह दस पुट देने से उत्तम भस्म बन जायगी।

हजरूल यहूद-भस्म—हजरूल यहूद और संग सरमाही को मूली के हरे पत्तों के रस में अच्छी तरह खरल करके शराव-सम्पुट में रखकर पुट दें। पथरी के लिये उपयोगी है।

गोदन्ती-भस्म (खास)—गोदन्ती हरताल को मिट्टी के एक कोरे थाले में आक के दूध में भिगो दें और दस दिन तक रक्खें। फिर १४ दिन तक घीकार के रस में भिगो रक्खें। इसके बाद २५ सेर उपलों की आँच में फूँक दें। दमे और खाँसी के लिये उपयोगी है।

मुर्गी के अंडों के छिलकों की भस्म—शुद्ध छिलकों को १२ घंटे तक आक के दूध में घोटकर यथाविधि शराव-सम्पुट करके १५ सेर उपलों में पुट दें। ९ पुट देने से उत्तम भस्म बन जायगी।

कुश्ता मुसल्लस—राँग, जस्त, सीसा प्रत्येक १ तोला लेकर लोहे की कढ़ाई में पिघलाकर गाय के घी में बुझावें। इसी तरह ७ बुझावे दें। फिर उसे लोहे की एक कड़छी में डालकर पिघलायें। उसमें थोड़ा-थोड़ा पोस्ते के डोडे का चूर्ण डालकर लोहे की सीख से चलाते जायँ। जब २० तोला चूर्ण समाप्त हो जाय तो ४ घन्टे तक खट्टे दही में घोंटकर टिकिया बनाकर १५ सेर उपलों में फूँक देना। इसी तरह खट्टे दही में खरल करके ५ पुट दें।

रोगों के लिये कुछ आवश्यक नुस्खे

ज्वर—छोटी पिप्पली २ तोला, जीरा २½ तोला, कांकच के मगज ४ तोला, बबूल का पत्ता १½ तोला, इनको पानी में पीसकर गोली बनानी

चाहिये। दिन में तीन बार दो-दो गोली देने से किसी भी प्रकार का ज्वर हट जाता है।

जीर्ण ज्वर—वंशलोचन ४ तोला, प्रवालपिष्टि ३ तोला, इलायची २ तोला, गिलोय-सत्त्व ३ तोला, खूबकला ३ तोला, सबका बारीक चूर्ण करके दिन में तीन बार दो-दो रत्ती खाना चाहिये।

सन्निपात ज्वर—कासनी २ तोला, कुलफा का बीज खोखला किया हुआ २ तोला, आलूबुखारा २० दाना, इन तीनों दवाइयों को ½ सेर पानी में दो घन्टे तक भिगोकर रखना चाहिये। पीछे से पानी नितारकर इसमें शर्करा २ से ३ तोला मिलाकर तीन-तीन घन्टे पर पीना चाहिये।

तीक्ष्ण संधिवात (१)—अकलील मुल्क, बाबूना, गुलेबनफ्शा, जव और खुब्बाजी प्रत्येक १ तोला, पानी में पीसकर संधियों के ऊपर लगा देना चाहिये।

तीक्ष्ण संधिवात (२)—हरड़ का छिलका ½ तोला, निशोथ ½ तोला, बिस्फायज ¾ तोला, शाहतरा ½ तोला, सुरंजन ½ तोला, कासनी १ तोला, गुलाब का फूल १ तोला, इन सबको अधकचरा कूटकर १॥ सेर पानी में उबालना चाहिये। आधा पानी शेष रहे, तब छानकर दिन में तीन समय पीना चाहिये। यदि दस्त अधिक हो, तो प्रथम दो औषधियाँ निकाल देनी चाहियें।

तीक्ष्ण संधिवात(३)—सिपस्तान ७ दाना, उन्नाब १० दाना, कासनी १ तोला, बनफसा ½ तोला, इनको अधकचरा करके ½ सेर पानी में २ घंटे तक भिगोकर रखना चाहिये, पीछे नितारकर ३ भाग करके तीन बार पीना चाहिये। पेट में कब्ज हो, तो इसमें तुरञ्जबीन १ तोला, अमलतास १ तोला मिलाना चाहिये।

लकवा (१)—जहरकुचला २ तोला, गुले गावजबाँ, नरकचूर, उस्त-खुद्दूस, लोहबान, सकाकुल प्रत्येक १ तोला, चन्दन का बूरा ½ तोला, लौंग ½ तोला, शुष्क आँवला १¾ तोला, खोपड़ा तथा चिलगोजा के मगज एक-एक तोला इन सबको बारीक चूर्ण करके पीछे से ४० तोले शहद में एक सेर पानी मिलाकर मीठी आँच से शरबत बनाना चाहिये। इसमें ऊपर का चूर्ण मिलाकर चटनी बनानी चाहिये। मात्रा—½ से एक ड्राम।

लकवा (२)—नरकचूर, दरूनज अकरबी, बहमन सुर्ख, बहमन सफेद, जटामासी, इलायची, लौंग, तमालपत्र प्रत्येक ½ तोला, जुन्दबेदस्तर, पिप्पली,

सोंठ, कस्तूरी प्रत्येक ¼ तोला सबका बारीक चूर्ण करना चाहिये। मधु १'२ तोला, प्रथम मधु को ½ सेर पानी में मीठी आँच से मिलाकर शरबत बनाना चाहिये। पीछे इसमें ऊपर के चूर्ण मिलाकर चटनी तैयार कर लेनी चाहिये। मात्रा—एक से १½ ड्राम।

लकवा (१)— एलीया १२ ग्रेन, इन्द्रवारुणी २४ ग्रेन, फरफयून ३ ग्रेन, गुग्गुल २४ ग्रेन इन सबको मिलाकर १२ गोली बनानी चाहिये। मात्रा १ से २ गोली।

लकवा (२)—अनीसून ½ तोला, अजवायन, कीर्दमान, तुख्मकरफस, सौंफ, अजखर, मुलहठी, बेबेकेबर प्रत्येक ¼ तोला। इन सब चीजों को ½ सेर पानी में उबालकर आधा पानी रखना चाहिये। इस पानी को छानकर इसमें १ तोला गुलकन्द मिलाकर सब पानी सबेरे पीना चाहिये। इस प्रकार प्रति दिन ताजी दवा बनाकर पीना चाहिये।

लकवा (३)—कासनी ¼ तोला, काली द्राक्षा ¼ तोला, बनफसा, उन्नाव, गुलाब के फूल प्रत्येक ½ तोला इन सब चीजों को ¼ सेर गरम उबलते पानी में भिगोकर पीछे से इसमें शर्करा मिलाकर दो बार पीने से दस्त साफ आता है। इसमें कभी-कभी सोनामखी आधा तोला, अमलतास का गूदा १ तोला, शीरखिस्त १ तोला मिलाना चाहिये।

अर्धाङ्ग-वायु—कासनी आधा तोला, उन्नाव ७ दाना; इन दोनों चीजों को अधकचरी करके एक पाव उबलते पानी में आधे घन्टे तक भिगोकर रखे। दिन में तीन बार पीना चाहिये।

अपस्मार—उस्तखद्दूस, अफतीमून (अकशवेल), सौंफ, अनीसून, बनफसा, बिस्फायंज, गुलाब के फूल, हरड़ का छिलका प्रत्येक आधा तोला, निशोथ ¼ तोला इन सबको कूटकर एक पात्र में रखकर इसके ऊपर उबलता पानी डेढ़पाव डालना चाहिये। आध घन्टे के पीछे पानी को छानकर इसके दो भाग करने चाहिये। प्रातः-सायं दोनों समय थोड़ी शक्कर मिलाकर पीना चाहिये। यदि दस्त अधिक हो, तो पिछली चार चीजें कम कर लेनी चाहिये या निकाल देनी चाहिये।

शिरो-रोग (पित्त-रोग का)—हरड़ ½ तोला, हरड़ का छिलका ½ तोला, आलू बुखारा १० दाना, उन्नाव १२ दाना, सिपस्तान ७ दाना सबको अधकचरा करके ¼ सेर पानी में मीठी आँच से उबालना चाहिये। जब पानी ½ शेष रहे,

तब इस पानी को छानकर दो समय थोड़ी-थोड़ी शर्करा मिलाकर पीना चाहिये ।

प्रतिश्याय (आरम्भ का)—उन्नाव ७ दाना, सिपस्तान ७ दाना, बनफसा ¾ तोला, खसखस ½ तोला इन सबको एक पात्र में रखकर इसके ऊपर उबलता पानी ½ सेर मिलाकर थोड़ी देर के पीछे पानी छान लेना चाहिये । इसके दो भाग करके प्रातः-सायं थोड़ी शर्करा मिलानी चाहिये । दो-चार दिन नित्य-प्रति ताजी दवा तैयार करके पोना चाहिये । दस्त साफ़ लाने के लिये इसमें शीरखिस्त या तुरञ्जबीन १ तोला मिलाकर पीना चाहिये ।

कास (सूखी)—बनफसा ½ तोला, मुलहठी ½ तोला, तुख्मखतमी ½ तोला, उन्नाव ५ दाना, दूधी का मगज ¼ तोला इन सब चीजों को ½ सेर पानी में उबालकर जब पानी आधा रहे, तब इसमें शर्करा मिलाकर पीना चाहिये । सायंकाल फोक भी इसी प्रकार पीना चाहिये ।

कास (सूखी)—शरबते जूफा १ तोला प्रातः-सायं पीना चाहिये अथवा मीठे बादाम का तेल या दूधी के बीजों का तेल छोटा चम्मच भर प्रतिदिन दो-तीन बार पीना चाहिये । गले में खरखराहट हो और गला शुष्क रहे, तब तेल देते समय मुलहठी का शीरा ½ तोला पानी में पीसकर मिला देना चाहिये ।

कास (कफ की खाँसी)—शिलारस १५ ग्रेन, शहरी लोहबान १५ ग्रेन, हीराबोल १२ ग्रेन, अफीम २ ग्रेन सबको बारीक पीसकर गोंद के पानी में १२ गोली बनानी चाहिये ।

कास (सब प्रकार की) मुलहठी का शीरा १ तोला, मुलहठी १ तोला, बबूल का गोंद १ तोला, खसखस ½ तोला, काकड़ाशृंगी ½ तोला, मिर्च ¼ तोला और शक्कर तीगाल ½ तोला; इन सबका बारीक चूर्ण करके पानी में पीसकर चने के समान गोली बनानी चाहिये । दिन में चार गोली मुँह में रखकर चूसना चाहिये ।

क्षय—गुलाब के फूल की सूखी कलियाँ १½ तोला, बबूल का गोंद १½ तोला निशास्ता ½ तोला, मुलहठी का शीरा ¼ तोला, गोंद ¾ तोला, काली और सफेद खसखस एक-एक तोला, वंशलोचन १। तोला, केसर ½ तोला; सबको अलग-अलग कूट-छानकर फिर एकत्र करके पानी के साथ ६ मासे की गोलियाँ बनानी चाहियें—मात्रा एक-एक गोली प्रातः-सायं खानी चाहिये ।

अनुपान—खसखस का शरबत ।

श्वास—मुलहठी १० तोला, हंसराज ३॥ तोला, खसखस ३॥ तोला, जूफा, तुख्मे खतमी, सौंफ, अनीसून प्रत्येक १ तोला, उन्नाब ५० दाना, सीपस्तान ५० दाना इन सबको रात्रि में १॥ सेर पानी में भिगोकर प्रातः धीमी आँच से काढ़ा करना चाहिये, जब पानी आधा शेष रह जाय, तब छान लेना चाहिये। इसमें ½ सेर शर्करा मिलाकर मधु-जैसा पतला शरबत तैयार कर लेना चाहिये। मात्रा १ से ३ तोला—दिन में तीन बार पीना चाहिये।

श्वास (दम चढ़ना)—अंजीर सूखी २ तोला, मेथी, सौंफ, असारून (तगर), जूफा प्रत्येक १ तोला इन सबको रात्रि में तीन पाव पानी में भिगोकर रखना चाहिये। प्रातः धीमी आँच से उबालकर आधा पानी रहने पर छान लेना चाहिये। इसमें १५ तोले शहद मिलाकर शरबत बनावें। इसमें पानकन्दा की भूकी ३० ग्रेन तथा केसर ५ ग्रेन मिलाकर एक चिकने बर्त्तन में भरकर रखना चाहिये। प्रातः सायं दो बार एक-एक तोला चाटना चाहिये।

श्वास—साबर शींग के टुकड़े तथा इसके आधे वजन से नमक, इन दोनों को आक के दूध में भिगोकर रखना चाहिये। दूध एक अंगुल ऊपर तैरता रहना चाहिये। दूध सूख जाय तो फिर से आक का दूध मिला देना चाहिये। इस प्रकार २-३ बार भिगोकर शराव सम्पुट में रखकर भस्म बनानी चाहिये। मात्रा १ से २ बाल।

हृदय रोग (१)—गुल गावजुबाँ, गिले अरमनी प्रत्येक २ तोला, वंशलोचन, धनिये का मगज, गुलाब का शुष्क फूल, शर्करा प्रत्येक १ तोला, सब को कूट छानकर प्रातः सायं फंकी लेना चाहिये। मात्रा ½ से ½ तोला।

हृदय रोग (२)—दरूनज अकरबी, नरकचूर, बहेमन सफेद, बहेमन सुर्ख प्रत्येक १ तोला, लौंग जटामांसी, मस्तगी, तमालपत्र प्रत्येक ½ तोला। मात्रा २ आना।

शूल—अमलतास का गूदा पानी में पीसकर पार्श्वशूल (पसलियों के दर्द) पर लेप करने से आराम होता है।

मरोड़ा—बेल का गूर्भ २ तोला, हबलुलास २ तोला, मोचरस २ तोला, माया बड़ा १ तोला, माया छोटा १ तोला, अनार का फूल १ तोला, आम की गुठली १ तोला, तुख्म हीमाज १ तोला, जुफते बलोन १ तोला,

इन सबको चूर्ण करके । मात्रा —एक आना भर दिन में तीन बार ।

अनुपान—दही ।

मरोड़ा--(पखवाला)—ईषबगोल, तुख्मेरेहां, हबलुलास, तुख्मेबारतंग, प्रत्येक एक-एक तोला, सबको कूट छानकर फांकी कर लेनी चाहिये । मात्रा ½ तोला प्रत्येक चार घन्टे के अन्तर से ।

चूक-शूल—सकमोनिया १ तोला, काली मिर्च १ तोला, सोंठ १ तोला, सताब सुक्का ½ तोला, टंकणक्षार ½ तोला, कुलफा ½ तोला, पान की जड़ ½ तोला, इन सब को बारीक चूर्ण करके २ से ३ बाल मधु में खाना चाहिये ।

पेट का दुःखाव—रूमी मस्तगी का चूर्ण एक आना भर और शर्करा एक आना भर इन दोनों को साथ मिलाकर गरम पानी के साथ लेने से पेट का दुःखाव मिटता है । दस्त साफ आता है ।

कॉलरा—जहरमोहरा पत्थर एक बाल, दरियाई नारियल १ बाल, पपीता ½ बाल तीनों को गुलाबजल में घिसकर दो-दो घन्टे से देना चाहिये ।

बच्चों के दस्त—जहरमोहरा, दरियाई नारियल, छुहारा इनको पानी में घिसकर देने से लाभ होता है ।

उल्टी— जहरमोहरे को गुलाबजल में घिसकर पिलाने से उल्टी बन्द होती है ।

अर्श (खूनी)—बकायन की मींग १ तोला, नीम की मींग १ तोला, गुलाबजल में पिसा हुआ कहरुवा आधा तोला, रसौत ४ तोला, इनको गुलाबजल से चने के बराबर गोली बनाकर प्रातः सायं ठण्डे पानी के साथ लेने से खून का जाना बन्द हो जाता है ।

प्लीहा (तिल्ली)—छोटी हरड़, शाहतरा, अजवायन, बेर्बोकबर प्रत्येक ½ तोला, सौंफ १ तोला, अनीसुन १ तोला, ईजखर ½ तोला, इन सबको दरकच करके १ सेर पानी में उबालना चाहिये, जब पानी आधा रहे, तब छानकर १ तोला शर्करा मिलाकर पीना चाहिये । फोक को सायंकाल पीना चाहिये ।

कामला—कासनी, सौंफ, पिचोरा की बीज प्रत्येक ½ तोला इनको ½ सेर पानी में भिगोकर रखना चाहिये । पीछे से पानी निथारकर

इसमें अनार का रस, या सिकंजबीन अथवा शर्करा मिलाकर पीना चाहिये।

जलोदर (यकृत-जन्य)—गोल जरावन्द १० ग्रेन, अनीसुन १० ग्रेन, श्वेतचीनी ३० ग्रेन, गुग्गुल १५ ग्रेन, गारीकुन ३० ग्रेन, निशोथ ३० ग्रेन, उठीनगण १ ड्राम, इन सबको ½ घण्टे तक ½ सेर पानी में भिगोकर रखना चाहिये। पीछे से पानी छानकर प्रातः सायं पीना चाहिये।

जशोदर (यकृत-जन्य)—हरड़ का छिलका, शाहतरा, अफसन तीन, गुले गाफस प्रत्येक ½ तोला, कासनी ¼ तोला और जटामांसी ¼ तोला इन सबको अधकचरा करके ½ सेर पानी में उबालकर छान लेना चाहिये। यह पानी प्रातः-सायं पीना चाहिये।

जलोदर (हृदय का)—अनीसुन, सौंफ प्रत्येक ½ तोला इसको दरकच करके इसमें उबलता हुआ गरम पानी ½ से ¼ के लगभग डालकर चाय बनानी चाहिये। इसमें शोरा २ ड्राम मिलाकर रखना चाहिये। मात्रा—२ औंस, प्रातः-सायं पीना चाहिये।

मूत्राशय का तीक्ष्ण वरम (१)—उन्नाव १० दाना, सीपस्तान ७ दाना, आलूबखारा १०, बनफसा ½ तोला, कासनी ½ तोला, पिचौरा का बीज ½ तोला, हरड़ ½ तोला इन सबको दरकच करके ½ सेर पानी में उबालना चाहिये। जब पानी आधा रहे, तब इसको छानकर प्रातःसायं पीना चाहिये या अकेला बनफसे का शरबत दो-दो तोला प्रातःसायं पीना चाहियें।

मूत्राशय का तीक्ष्ण वरम (२)—मुगलई बेदाना ¼ तोला, तुख्म खतमी ½ तोला, ईसबगोल ¼ तोला इनको थोड़े-से पानी में कुछ देर भिगोकर पोने से मूत्राशय की सूजन, दाह, मूत्राघात को आराम होता है।

प्रमेह—माजु २ तोला, शीतलचीनी २ तोला, राँगे की भस्म १ तोला, फुलाई हुई फिटकरी १ तोला, इलायची १ तोला सबके बराबर खाण्ड।

मात्रा २ पैसा भर।

अनुपान—दूध।

प्रमेह—शीतलचीनी ५ तोला, गोखरू २ तोला, बंशलोचन, काकनज, इलायची, पाषाण-भेद प्रत्येक १ तोला सबका चूर्ण करके। मात्रा—दो आना दिन में दो बार।

अनुपान—मुगलई बेदाने का लुवाब।

प्रमेह—रसौत १ तोला, कत्था सफेद ६ माशा, अफीम १ माशा; सबको ६ घण्टे तक ½ सेर पानी में भिगोकर पानी को छान लेना चाहिये। इसमें कपूर १ माशा, रसकपूर १ माशा, फिटकरी फूली हुई १ माशा, नीला तुत्थ सिंका हुआ १ माशा इन चारों वस्तुओं को ऊपर के पानी में मिला देनी चाहिये। दिन में तीन बार इस पानी से धोने पर शान्ति होती है।

रक्त-दोष—उशबा मगरबी, उशबा हिन्दी, नीम की छाल, बबूल की छाल, शाहतरा, गोरखमुण्डी, कमल का फूल, अफतीमून प्रत्येक दो-दो तोला, चोबचीनी ४ तोला इन सबको अधकचरा करके इसमें १॥ सेर पानी डालकर रात में भिगोकर रखना चाहिये। प्रातः मीठी आँच से गर्म करना चाहिये। जब पानी आधा बाक़ी रहे, तब छानकर इसमें ½ सेर शर्करा मिलाकर पतली चाशनी बना लेनी चाहिये। मात्रा—२ तोला।

उपयोग—वातरक्त, कुष्ठ, उपदंश-रोग में।

खुजली—उन्नाव ७ दाना, सीपस्तान ७ दाना, शाहतरा ½ तोला, हंसराज ½ तोला इन सबको आध सेर पानी में उबालकर, स्वच्छ पानी नितारकर इसमें शर्करा मिलाकर पीना चाहिये।

ढीली नसों के लिये—सरसों, अकरकरा, राई, दालचीनी, कबाबचीनी, श्वेत कनेर के मूल की छाल, कूठ सब समान भाग लेकर इनका चूर्ण करना चाहिये। इसमें महुवे की दारू या भेड़ का दूध अथवा कोई शराब मिलाकर थोड़ा गरम करना चाहिये। पीछे से इसको दो पोटली में बाँधकर बारी-बारी से अंगारों पर गरम करके शिश्नेन्द्रिय पर सेक करना चाहिये। इससे लिङ्ग वृद्धि होती है।

ढीली नस—श्वेत कनेर के मूल की छाल, नरगिस की गाँठ, तुम्बी की मींग तीनों को समान भाग लेकर चार भाग भेड़ का दूध। इस दूध में तीनों दवाइयों को उबालना चाहिये। जब चौथा भाग दूध बच जाय, तब इसका लेप शिश्नेन्द्रिय पर करना चाहिये।

धातु-स्तम्भन—अफीम, जायफल, कस्तूरी, कपूर चारो समान भाग लेकर पान के रस में गोली बनानी चाहिये। मात्रा १ बाल। रात्रि को सोते समय।

धातु-स्तम्भन—तुख्म रीहान का बारीक चूर्ण करके इसमें समान

भाग गुड़ मिलाकर एक-एक पैसा भर की गोली बनानी चाहिये। यह गोली रोज एक-एक खाने से बदन मोटा होता है।

ऋतुशूल—अजखर ½ तोला इसको १० तोला पानी में उबालकर जब पानी आधा शेष रहे, तब छानकर इसमें गुड़ १ तोला मिलाकर पीने से स्त्रियों को ऋतु खुलकर आती है।

कष्टार्त्तव—अजखर, अजवायन, खसखस का डोडा प्रत्येक आधा तोला, अनीसून १ तोला सबको डेढ़ पौंड पानी में मिलाकर धीमी आँच से गरम करना चाहिये। जब आधा पानी बचे, तब छानकर इसमें थोड़ी शर्करा मिलाकर दिन में तीन बार शूल के समय पीना चाहिये।

हिस्टीरिया (१)—जटामांसी १ तोला, जुन्दबेदस्तर ½ तोला इनका चूर्ण गोंद के पानी में मिलाकर २४ गोलियाँ करना चाहिये। मात्रा २ गोली।

हिस्टीरिया (२)—हींग ९ ग्रेन, हीराबोल १० ग्रेन, गन्दाबिरोजा १२ ग्रेन इनको गोंद या गुड़ के पानी में मिलाकर १२ गोलियाँ बनानी चाहियें। मात्रा १ गोली।

रक्तप्रदर—अकीक और कहरवा प्रत्येक गुलाब जल में पीसे हुये एक-एक तोला, हीरादखण २ तोला, रसौत ३ तोला, इनको बेर के समान गोली बनाना चाहिये।

अनुपान—तण्डुलोदक। दिन मे दो बार लेना चाहिये।

कृमि-रोग—कासनी १५ ग्रेन, कुलफा के बीज १० ग्रेन, अनार की छाल ५ ग्रेन, धनिया १५ ग्रेन इनको ढाई तोले ठण्डे पानी में पीसकर इनका पानी छान लेना चाहिये। मात्रा—दो चम्मच तीन-तीन घन्टे पर।

कृमि-रोग—वायविडंग १० ग्रेन, निशोथ का चूर्ण ४ ग्रेन, कमिला ५ ग्रेन इनको उबलते पानी में ५ मिनट तक भिगोकर फिर पानी नितारकर काम में लाना चाहिये।

व्रण का मलहम—मोम ४ तोला, तेल २ तोला, गन्दाबिरोजा ३ तोला, राल १ तोला, फिटकिरी १ तोला, रसौंत १ तोला, हीराबोल १ तोला, सबको मिलाकर बहुत धीमी आँच से मलहम बना लेना चाहिये। इससे घाव आदि को आराम होता है।

दद्रु तथा छाजन—नारियल के ऊपर के छिलके का पाताल यंत्र से तेल* निकाल करके इसमें गन्धक, नीला थोथा तथा टंकणक्षार प्रत्येक १ तोला मिलाकर लगाना चाहिये।

व्रण के लिये प्रतिसारण—गोली कौड़ी जली हुई ४, सुपारी जली हुई ४, शङ्ख जीरा ६ माशा, सफेदा ६ माशा, मुर्दाशङ्ख ३ माशा, सफेद कत्था १ तोला, कपूर १ वाल, सबको मिलाकर बारीक चूर्ण करना चाहिये। घाव के ऊपर प्रथम घी लगाकर यह चूर्ण छिड़कना चाहिये।

बधरावल (लेप)—तम्बाकू १ तोला, कसुम्बा की लुगदी १ तोला, केसुड़ाँ १ तोला, सोंठ १ तोला, शेष गुन्दर १ तोला, एलुवा १ तोला, आम्बाहल्दी १ तोला, मस्तकी १ तोला, घोड़ावच १ तोला, वछनाग १ तोला, खसखस का डोडा १ तोला सबको कूटकर पानी में अथवा पिलुड़ी के रस में गोली बाँधकर रखना चाहिये। इस गोली को घिसकर अण्ड-कोष के ऊपर लेप करके कंडे से सेकना चाहिये।

दन्तमंजन—हुबुलाश, अगर, गिलेअरमानी, हीराबोल, समुद्रफेन प्रत्येक १ तोला, इनका मञ्जन बनाना चाहिये।

---

*एक मिटी के बर्त्तन में अंगुली जितना छेद करके उसमें जाली या तारों की गुच्छी लगा देनी चाहिये। इस बर्त्तन में नारियल के छिलके रखकर ऊपर से मुँह बन्द कर देना चाहिये। फिर एक गड्ढा खोदकर उसमें गिलास रख देना चाहिये। गिलास के मुँह पर हाँडी की पेंदी तथा छेदवाला भाग रखकर, सन्धि-स्थान को जोड़ देना चाहिये। और फिर आँच देनी चाहिये। तेल गिलास में आ जायेगा।

अँग्रेज़ी औषधियाँ

बनस्पति-वर्ग की औषधियाँ

अर्गट—गुण—रक्तस्तम्भक, ग्राही, स्नायु-संकोचक, आकुंचन पैदा करनेवाली, ऋतुस्रावक और पीड़ाशामक है। अर्गट के अन्दर दो विरोधी गुण रहते हैं। यह गर्भपात करनेवाली है परन्तु साथ में रक्तस्तम्भक भी है। इसका असर गर्भकालीन गर्भाशय पर बहुत होता है और गर्भ रहित गर्भाशय पर बहुत कम होता है। प्रसव के समय जब अपर्याप्त आकुञ्चनों के कारण प्रसव न होरहा हो, उस समय थोड़ी मात्रा में (५ से १५ बूँद) देने से लाभ होता है। प्रसव के समय अर्गट देते समय इस बात का निश्चय कर लेना चाहिये कि प्रसवमार्ग स्वस्थरूप में है और शिशु की स्थिति ठीक है। प्रसव-कालीन रक्तस्राव को बन्द करने के लिये इसको बड़ी मात्रा में देना चाहिये। यदि रक्तस्राव बहुत तीव्र हो, तो ताजा काढ़ा बनाकर देना चाहिये। गर्भपात को रोकने के लिये इसका व्यवहार न करना चाहिये। इसको देने से गर्भपात होने की अधिक सम्भावना होजाती है। कपास के मूल में ·
समान गुण हैं।

बनावट—एक्सट्रैक्ट अर्ग—
एक्सट्रैक्ट अर्गट लिक्विड १०
६० बूँद। इनफ्युजन अ

इपीकोकक

इसकी बड़ी मात्रा
और पित्त विरेच
ग्रहणी, यकृत के
खाँसी में—जहाँ
क्योंकि इसके दे
गम निकालने के।
हिक्का में १० से

बनावट—वाइनएपेकोकक्वेना—बलगम निकालने के लिये। मात्रा १० से ३० बूँद; वमन कराने के लिये ४ से ६ ड्राम। (२) पल्व एपिकाक को (डोवर्स पाउडर)—मात्रा ५ से १५ ग्रेन।

गुण—ज्वर, कास, प्रवाहिका में उपयोगी है। मलेरिया में इसको क्विनीन के साथ दे सकते हैं, विशेषत: जहाँ आँत्र रुग्ण हो।

(३) एक्सट्रैक्ट एपिकोकक्वेना लिक्विड—कास में ½ से २ बूँद। वमन के लिये १५ से २० बूँद। छोटे बच्चे के कास में, फुफ्फुस शोथ में, उल्टी लाने के लिये इसका उपयोग होता है।

इलेटीरियम—यह कड़वी नाई का सत्त्व है, इलेट्रियम का एक तत्त्व होता है, जिसको 'इलेट्रिन' कहते हैं। यह उग्र विरेचक है। इससे पानीवाला अतिसार आता है। बड़ी मात्रा में विक्षोभक विष है। यह प्राय: जलोदर में बरती जाती है। परन्तु चूँकि इसके देने के पीछे रोगी को भी देखना चाहिये, इसलिये कम उपयोग करते हैं। इलेट्रियम के दूध में ४० गुनी शर्करा मिलाकर इसमें से [illegible] से ५ ग्रेन की गोली बनाकर रोगी को शक्ति के अनुसार देना चाहिये। इसके देने से वमन और विरेचन होता है। इसलिये निर्बल स्त्री-पुरुषों को, या बालकों को यह दवा कभी नहीं देनी चाहिये। इलैट्रियम की मात्रा [illegible] से [illegible] ग्रेन; इलैट्रिनियम [illegible] से [illegible] पल्वस इलैट्रिनी कम्पाउन्ड

[illegible] का गोंद)—गुण-ग्राही, ठण्डा, पौष्टिक

[illegible] मुख के अन्दर की श्लेष्म-

[illegible] टिकिया या गोली बनाने

[illegible] था रैजीन आदि को

कैशिया गम का चार

[illegible] है। प्रमेह, गरम

हृदय तथा रक्त-

करता है। लोहू

शान्त करता है।

[illegible] शोथों में इसका

हृदय की गति को

मन्द करता है। निर्बल हृदय को हानि पहुँचाता है। इसलिये साधारणतः इसके टिंचर का उपयोग ज्वर उतारने में कम करते हैं। बछनाभ की मात्रा बहुत छोटी है। इसके टिंचर की एक या दो बूँद साधारण सर्दी को, टौंसिलाइटिस को, गनोरिया को (प्रारम्भ में) लाभ करता है। बार-बार छोटी-छोटी मात्रा में अधिक लाभ होता है, अपेक्षा इसके कि एक बार बड़ी मात्रा दे दी जाय। इसका उपयोग बाह्यरूप में भी होता है। सब प्रकार की पृष्ठवर्त्ती दर्द को, नाड़ी-जन्य दर्द को, आमवात को आराम करता है।

बनावट—टिंचर एकोनाइट ५ से १५ बूँद, यदि बारबार देना हो, तो १ से ३ बूँद; २४ घंटे में ३० बूँद से अधिक नहीं देना चाहिये। बाह्य उपयोग के लिये लिनीमैन्ट एकोनाइट बरता जाता है।

एनीथी (सुवा)—गुण—वात-हर, दीपन, पाचन। इसका तेल (एक से तीन बूँद) पानी में मिलाकर अन्य वातहर या पेट की शूल, अफारा आदि को कम करनेवाली औषधियों के साथ दिया जाता है। इसका अर्क (पानी) बनाकर (कूटा हुआ सुवा १ पौंड और पानी २ गैलन) बच्चों को पिलाया जाता है। मात्रा १ से २ औंस। इसमें थोड़ी चिरचिराहट होती है।

एनैसी—वातहर, शूलहर, भूख लगानेवाली है। यह दवाइयों में ख़ुशबू पैदा करने के लिये भी बरती जाती है। आयल एनैसी मात्रा १ से ३ बूँद। एक्वा एनैसी (एनैसी १ पौंड, पानी २ गैलन) ½ से १ औंस, ऐसेन्स ऑफ़ एनैसी या स्प्रिट एनैसी (एनैसी १ औंस, स्प्रिट रैक्टीफ़ाइड ४ औंस) १० से २० बूँद।

एपोसाइनम—यह वामक, मूत्रल, पसीना लानेवाली और विरेचक है। जब श्वयथु रोग हो और हृदय की गति मन्द हो, उस समय भी इसके द्वारा उत्तम लाभ मिल सकता है। विशेषतः जब नाड़ी मन्द या तेज़ हो।

बनावट—टिंचर एपोसाइनम। मात्रा—१० से ६० बूँद।

एमैगडीला—यह दो प्रकार का है। कड़वे बादाम का तेल (एमैगडीला एमैरा) और दूसरे मीठे बादाम का तेल (एमैगडिला डूलसिस) है। कड़वे बादाम में चूँकि प्रूसिक एसिड होता है, जो तीव्र विष है, इसलिये इसका उपयोग नहीं करना चाहिये। मीठे बादाम का तेल मृदु विरेचक है। तरी पहुँचाने के लिये यूनानी चिकित्सा में मशहूर है।

एलसटोनिया—इसको फीवरबार्क भी कहते हैं। पूर्व के देशों में इसका उपयोग शक्ति के लिये, मलेरिया के लिये तथा प्रवाहिका के लिये किया जाता है। इसकी दो बनावटें हैं—एक इन्फुयुजन एलिस्टोनिया ½ से १ औंस, टिंचर एलिसटौनिया ½ से १ ड्राम मात्रा में है।

एलोज़—पूर्ण मात्रा में यह विरेचक और यकृत को उत्तेजित करनेवाला है। थोड़ी मात्रा में भूख लगानेवाला और टॉनिक है। गुदा से देने पर कीड़ों को मारनेवाला है। मलबन्ध, अपचन, नष्टार्त्तव में, यकृत-शोथ में, आध्मान में उपयोगी है। अकेला एलोज पेट में दर्द पैदा करता है, इसलिये इसको लौंग या दालचीनी के तेल के साथ देना चाहिये। यदि साबुन या अन्य क्षार के साथ मिलाकर दिया जाय, तो इसकी क्रिया शीघ्र होती है और गुदा का क्षोभ कम होजाता है। गर्भावस्था में इसको देना नहीं चाहिये। इसका निरन्तर उपयोग अर्श को उत्पन्न कर देता है।

बनावट—(१) पाउडर्ड एलोज—२ से ५ ग्रेन। (२) टिंचर एलोज ½ से २ ड्राम। (३) एक्सट्रैक्ट एलोज—१ से ४ ग्रेन। (४) डिकॉकशन एलोज कम्पाउन्ड ½ से २ ड्राम। इसमें से एक वस्तु अलग निकाली जाती है, जिसका नाम 'एलोइन' है। इसका रंग पीला और तीव्र विरेचक है। मात्रा—½ से २ ग्रेन।

एसैफिटेडा—यह एक प्रकार की गोंद है। साधारण भाषा में इसको हींग कहा जाता है।

गुण—वातहर, शूलहर तथा आकुञ्चनों को कम करनेवाली, मृदु विरेचक है। हिस्टीरिया या वातिक प्रभाव के लिये इसका विशेषतः प्रयोग किया जाता है।

ओपियम—(अफीम)—गुण—पीड़ाशामक, शूलहर, वातहर, ग्राही, निद्रा लानेवाला, नशा करनेवाला और स्वेदल है। मस्तिष्क के रोगों में, प्रसूत में, उन्माद में, धनुर्वात में, आक्षेप में, कास में, श्वास में, अतिसार में, विसूचिका में, उलटी में, रक्त-स्राव में, संधिवात में, अनिद्रा में इसका व्यवहार होता है। यदि रोगी को दर्द के कारण नींद न आती हो तो इसका व्यवहार करना चाहिये। मधुप्रमेह में इसका व्यवहार किया जाता है, इससे मूत्र की राशि कम हो जाती है। थोड़ी मात्रा में देने से निद्रा सी आती है, और थोड़ा बहुत पसीना आता है। उठने पर शिर में दर्द, बेचैनी और कुछ

कब्जियत सी हो जाती है। सब प्रकार के दर्दों को कम करने के लिये इसका व्यवहार किया जाता है। मूत्राशय के विक्षोभ में, मूत्राघात में, अण्डशोथ में, मूत्राश्मरी में, पित्ताशय रोग में, आर्त्तव के अवरोध में, पीड़ितार्त्तव में, नाड़ियों के दर्द में, गर्भपात में, रक्त-स्राव में, उपयोग किया जाता है। हृदय के रोगों में, मस्तिष्क के शोथ में, फुस्फुस के विकृत होने पर, दुर्गन्धियुक्त बलगम के निःस्राव पर इसका व्यवहार नहीं करना चाहिये। बच्चों पर इसका प्रभाव बहुत शीघ्र होता है, इसलिये सोचकर देना चाहिये। जिन लोगों को अफीम की आदत हो, इनको उसकी बड़ी मात्रा दी जा सकती है। अफीम की आदत छुटाने के लिये स्पारटीन सल्फेट १ ग्रेन कपूर के साथ दिन में चार बार देनी चाहिये। इसके समास—(१) टिंचर ओपयाई—(लाडेनेम) ५ से १५ बूंद (२) लाईकर ओपयाई सैडेटिव—५ से २० बूँद (३) एक्स्ट्रेक्ट ओपयाई ¼ से १ ग्रेन (४) पल्व एपिकाक कम सिला मात्रा ४ से ८ ग्रेन (५) पल्वक्रीटाएरोमैटिकम ओपयाई—१० से ४० ग्रेन (६) पल्वक्रीटा एरोमैटिकम ओपयाई—१० से ४० ग्रेन (७) टिंचर कैंफर कम्पाउन्ड (पैरेगोरिक)—३० से ६० बूँद—यह कफ, ससनी, कुक्कर कास में उपयोगी है। (८) ऑंजमैन्टम गैलिकम ओपयाई—बवासीर के मस्सों के लिये उपयोगी है—(९) लाईकर मॉर्फिया हाईड्रा-क्लोरेट—१० से ६० बूंद। (१०) टिंचर क्लोरोफार्म एट मॉर्फिया कम्पाउन्ड—५ से १५ बूंद। यह उन सब अवस्थाओं में उपयोगी है, जिनमें क्लोरोडीन है।

ऑरेंज—(नारङ्गी)—गुण—दीपन, पाचन, रुचिकर है। इसका उपयोग इन्फ्युजन, टिंचर या सीरप के रूप में होता है। मात्रा—इन्फ्युजन की मात्रा १ से २ औन्स, टिंचर को १ से २ ड्राम, शरबत की १ ड्राम है। अजीर्ण में, अरुचि में तथा क्युनीन आदि कटु मिश्रणों में इसका शरबत मिलाया जाता है।

ओलीव ऑयल—गुण—पौष्टिक, स्निग्ध, जन्तुघ्न है। थोड़ी मात्रा में यह मृदु विरेचक है। गरम करके लगाने से यह छिलकों को, एकज़िमा को अच्छा करता है। इसकी मात्रा आधा से १ औन्स है। मलबन्ध के लिये १ से २ औन्स, पित्ताश्मरी के लिये २ से ८ औन्स दिन में देना चाहिये।

गुदा की बस्ति के लिये २ से ५ औन्स है। इसमें कॉडलिवर जैसा उपयोगी गुण है।

बनावट—ओलियम ससमी—इसको ऑलीव ऑयल के स्थान पर बरत सकते हैं। (२) अरचिस ऑयल।

क्वीनीन—(सलफेर ऑफ क्वीनीन)—गुण—ज्वरघ्न, कटु पौष्टिक, जन्तुघ्न, है। बनावट—सल्फेर ऑफ क्वीनीन मात्रा १ से १० ग्रेन (२) टिंचर क्वीनीन एमोनेटा आधा से १ ड्राम (३) वाईन ऑफ क्वीनीन आधा से १ औन्स (४) टिंचर क्वीनीन मात्रा आधा से १ ड्राम (५) क्युनीन हाइड्रो ब्रोमाईडएसिड १ से ३ ग्रेन (६) क्युनीन हाइड्रोक्लोराईड १ से १० ग्रेन। क्युनीन पानी में बिलकुल घुलती नहीं, इसलिये इसको सल्फ्युरिक एसिड १० बूँद और क्युनीन १० ग्रेन इस मात्रा में घोलनी चाहिये। क्युनीन की उपयोग मलेरिया फीवर में विशेषतः होता है। क्युनीन सिनकोना बार्क से निकाली जाती है। मलेरिया के ज्वर में लालकण घट जाते हैं और श्वेताणु बढ़ जाते हैं, इनको मारने के लिये क्युनीन सबसे उत्तम वस्तु है। क्युनीन विषैले जन्तुओं को मार देती है। क्युनीन देने के लिये दो तीन नियम हैं, उनका ध्यान रखकर यदि क्युनीन का उपयोग किया जाय तो विशेष लाभ होता है। यथा—

(१) क्युनीन को साईट्रिक एसिड के साथ दिया जाय तो इसका लाभ विशेष होता है। क्योंकि साईट्रिक एसिड अम्ल होने पर भी अन्दर जाने पर क्षार के रूप में बदल जाती है। इसलिये खून का माध्यम बदलता नहीं। कीटाणुओं के कारण रक्त की अम्लता होजाती है। साईट्रिक एसिड से वह कम हो जाती है।

(२) ज्वर जब चढ़ रहा हो तो उस समय क्युनीन देना अच्छा नहीं।

(३) जब पसीना आरहा हो तो उस समय क्युनीन को देना उत्तम है। इस समय देने से कीटाणु विशेषतः मर जाते हैं।

(४) क्युनीन को यथा सम्भव बड़ी मात्रा में देना चाहिये, बार-बार थोड़ी-थोड़ी मात्रा में देना अच्छा नहीं, क्योंकि इसकी मात्रा को रोगी सहने लगता है।

(५) क्युनीन को देने से पहले विरेचन देना चाहिये। इसके देने से शरीर की गरमी कम हो जाती है।

(६) नाड़ी जब जोर में हो, बुखार के साथ सिर में दर्द हो, त्वचा खुश्क हो, तब क्युनीन को नहीं लेना चाहिये।

(७) कइयों को थोड़ी मात्रा में क्युनीन असर कर जाती है। और कइयों को बहुत थोड़ी मात्रा भी सिर में चक्कर, कान में झनझनाहट पैदा कर देती है। कभी-कभी एक ग्रेन से भी यह प्रभाव हो जाता है।

(८) क्युनीन के साथ नींबू का रस, दूध, घी विशेष रूप में खाना चाहिये।

(९) साधारणतः, गोली या पिल्स की अपेक्षा मिश्रण अधिक लाभ करता है। परन्तु जिनको इसका पाचन न हो सके, उनको गोली आदि नींबू के रस के साथ देनी चाहिये।

(१०) मलेरिया आदि से बचने के लिये इसकी मात्रा का उपयोग करना चाहिये।

कार्डियम—(इलायची)—इसका टिंचर दीपन, पाचन, वातहर, रुचिकारक और पौष्टिक है। अतिसार में, प्रवाहिका में, पेट की वायु में इससे लाभ होता है। प्रवाही पदार्थों में सुगन्ध उत्पन्न करता है। मिश्रण को रङ्गीन बना देता है। कलंम्बा (कलम), जैन्शन, जिंजर आदि के साथ देने में अधिक गुण करता है।

कायनो—गुण-ग्राही, रक्तस्तम्भक, शीतल है। इसका उपयोग टिंचर या चूर्ण के रूप में किया जाता है। मरोड़ा, अतिसार, संग्रहणी, रक्तातिसार आदि रोगों में स्तम्भक रूप से बरता जाता है। मुँह के प्रक्षालन के लिये इसके काढ़े का उपयोग होता है। नाजुक शरीरवाली स्त्रियों के अतिसार में इसका उपयोग विशेषतः किया जाता है। टिंचर की मात्रा ½ से १ ड्राम है। (२) कम्पाउन्ड पल्वीस कायनो (हीराद्खण) ३½ औंस, अफीम ½ औंस, दालचीनी का चूर्ण १ औंस, इसकी मात्रा ५ से २० ग्रेन है।

काइसो फैनिक एसिड—इसका उपयोग प्रायः त्वचा के रोगों में

बाहर लगाने के लिये किया जाता है। यह विक्षोभ उत्पन्न करनेवाला और जन्तु-नाशक है। इसलिए दाद में, विसर्प में, पामा में, मुहासों में इसका उपयोग किया जाता है। त्वचा पर के या वस्त्र पर के दाग को ब्लीचिंग पाउडर के हल्के रस से साफ कर सकते हैं। यह पानी में नहीं घुलता।

क्लोरोडीन—गुण—ग्राही, पीड़ाशामक, दीपन, पाचन है। यह कई वस्तुओं का मिश्रण है। मौर्फीया, क्लोरोफार्म, इण्डियन हैम्प, हाइड्रोसैनिक एसिड, पिपरमिन्ट तथा शराब के मिश्रण से यह बनती है। इसकी वस्तुयें प्रायः विषैली हैं, इसलिये सावधानी से बरतना चाहिये। यह पेट के दर्द में, मरोड़े में, शूल में, अतिसार में, कॉलरा में, कास में, श्वास में बरती जाती है। इसे पीड़ा शान्त करने के लिए ५ से १० बूँद, खाँसी आदि के लिये ५-१५ बूँद, कॉलरा, अतिसार, मरोड़ा आदि में १० से २० बूँद की मात्रा में देना चाहिये।

अनुपान—शरबत, अलसी की चाय।

काजपुटी ऑयल—गुण—वातहर, स्वेदल। उदरशूल तथा अजीर्ण में बरता जाता है। मात्रा—१ से २ बूँद। वात, फुफ्फुस की शोथ, कास के कारण छाती में दर्द हो, तो मलना चाहिये। यह उत्तेजक सुगन्धित है। मात्रा ½ से २ बूँद।

क्युबेब—(हरिवालक) मूत्रल और शीतल है। इसका उपयोग विशेषत: प्रमेह गनोरिया की जीर्णावस्था में किया जाता है। यह तैल, चूर्ण अथवा अर्क के रूप में बरती जाती है। मात्रा—पल्वीस क्युबेब की ३० ग्रेन से १ ड्राम, दूध अथवा पानी में। तेल की मात्रा ५ से २० बूँद, टिंचर की मात्रा ½ से १ ड्राम है। क्युबेब चूर्ण ½ तोला, आग पर गरम की हुई फिटकिरी २ रत्ती, कत्था २ रत्ती, इस मात्रा में दिन में तीन बार लेने से प्रमेह और प्रदर के स्राव को आराम होता है। यह श्वासनलिका के शोथ से उत्पन्न प्रतिश्याय में बरता जाता है। प्रमेह में टिंचर बक्कु और चन्दन के तेल के साथ देने से विशेष लाभ होता है।

कैटेच्यु (कत्था)—यह तीव्र संकोचक और स्तम्भक है। इसका उपयोग अतिसार में, रक्तस्राव में, अर्श में होता है। गले का शोथ कम करने के लिये इसके कुल्ले कराये जाते हैं।

बनावट—टिंचर कैटेच्यु ½ से १ ड्राम, (२) पल्वीस कैटेच्यु ५ से २० ग्रेन, (३) पल्वीस कैटेच्यु कम्पाउन्ड १० से ४० ग्रेन ।

कैनेबिस इन्डिका (गाँजा)—मादक, पीड़ाशामक, अग्निवर्धक, निद्राकारक, पौष्टिक ।

बनावट—एक्सट्रैक्ट कैनबिस इन्डिका ½ से १ ग्रेन, (२) टिंचर कैनबिस इन्डिका ५ से १५ बूँद, (३) पाउडर ४ से १० ग्रेन । इसका उपयोग नींद न आने में, कण्ठात्तेप में, शिर-दर्द में (विशेषतः आधासीसी में) दर्द युक्त नाड़ियों के शोथ में या आमवात शोथ में, गर्भाशय के रक्तस्राव में किया जाता है ।

कैप्सीकम (लालमिर्च)—वातहर, मूत्रल, अग्निवर्धक है । इस दवाई का टिंचर बरता जाता है । मात्रा ५ से १५ बूँद । यह पाचक रस और मुख की लाली को बढ़ाता है । शूल, अतिसार, कॉलरा, मरोड़ा, वायु तथा अजीर्ण आदि रोगों में लाभ करता है । भूख को बढ़ाता है । अधिक मात्रा में आंतों के ऊपर शोथ उत्पन्न करता है । इसके टिंचर को पानी में मिलाकर कुल्ले करने से गले की तथा मुँह की शोथ को आराम होता है ।

कैम्फर (कपूर)—जन्तुनाशक, स्वेदल, कफघ्न, ज्वरनाशक, मूत्रल, वातहर, पाचन क्रिया में सहायता करनेवाला, काम को उद्दीप्त करनेवाला (थोड़ी मात्रा में) और बड़ी मात्रा में काम को शान्त करनेवाला, स्वप्न-दोष नाशक है । बड़ी मात्रा में रक्त के वेग को नरम करके शूल तथा आक्षेप को घटाता है । विसूचिका में इसका मुख्य लाभ होता है । शरीर में गरमी लाकर अतिसार को बन्द करता है । कपूर दाह को शान्त करके नींद लाता है । छाती के रोगों में और कास में इसका उपयोग होता है ।

बनावट—(१) स्प्रिट कैम्फर १ औंस, रैक्टीफाईड स्प्रिट में १ ड्राम कपूर मिलाना चाहिये । इसकी मात्रा ५ से २० बूँद है । (२) टिंचर कैम्फर को ३० से ६० बूँद कास में विशेष लाभदायक है । इसको वाइनम एपिकोक कैना और वाइनम एन्टिमोनियल के साथ देने से विशेष लाभ होता है । बालकों के लिये ज्वर के साथ कास होने पर इसको दिया जा

सकता है। (३) एका कैम्फ़र—½ औंस कैम्फ़र को कपड़े में बाँधकर १ गैलन पानी में रखने से लाभ होता है। मात्रा १ से २ औंस। (४) इसको बाहर लगाने के लिये लिनिमेंट कैम्फ़र के रूप में बरतते हैं। (५) कपूर को रैक्टीफ़ाइड स्प्रिट में अच्छी तरह घोलकर ३ से ४ बूँद की मात्रा में बरतने से ज़ुकाम अच्छा होता है। (६) इसको जैतून (ऑलिव ऑयल) के तेल में घोलकर शिशुओं की छाती पर मलने से लाभ होता है।

कलम्बा— दीपन, पाचन, कटु, पौष्टिक। मन्दाग्नि, निर्बलता, वमन, अजीर्ण आदि रोगों में बरता जाता है। आमाशय शोथ, गर्भिणी के वमन रोग में, लाभ करता है। इसको लोहे के साथ, चिरायता या जैन्शन के साथ देने से विशेष लाभ होता है।

बनावट—टिंचर की मात्रा ½ से १ ड्राम है, इन्फ्युज़न की ½ से १ औंस है।

कास्केरा सेग्रेडा—यह एक उत्तम मृदु विरेचक है। यकृत और आंतों के लिये शक्ति-वर्धक है। चिरकालीन मलबन्ध के लिये इसका उपयोग करना उत्तम है। इसके खाने से किसी भी प्रकार का मरोड़ा आंतों में नहीं होता। दूसरे और विरेचनों की तरह लगातार व्यवहार करने पर भी इसकी मात्रा बढ़ाने की कोई आवश्यकता नहीं होती। इसकी सबसे अच्छी बनावट 'लिक्विड एक्सट्रैक्ट' है। जिसका स्वाद कड़वा और बेचैनी पैदा करनेवाला है। इसके लिये कोई सुगन्धित वस्तु मिलानी चाहिये। यह कास्करा एरैमैटिक, पिल्स आदि के रूप में बाज़ार में बिकता है।

बनावट—एक्सट्रैक्ट कास्केरा २ से ८ ग्रेन, एक्सट्रैक्ट कास्करा लिक्विड ½ से १ ड्राम, सीरप कास्करा एरोमैटिक ½ से २ ड्राम।

कैस्टर ऑयल—एरण्डी के तेल का जुलाब प्रसिद्ध है। ताजा एरण्डी का तेल लेने से पेट में शूल या जलन किसी भी प्रकार की नहीं होती। इसका विरेचन शान्त रूप से होता है। मुँह में नींबू का रस निचोड़कर ऊपर से तेल पीने पर इसकी गन्ध मालूम नहीं पड़ती। अथवा पीपरमेंट, लौंग का या दालचीनी के अर्क के साथ लेने से इसकी गन्ध नष्ट हो जाती है। छोटे बच्चों के लिये इसका विरेचन विशेष उपकारी है। मात्रा ४ से ८ ड्राम, बच्चों के लिये १ से ४ ड्राम है।

कैशिया (आरग्वध)—गुण—दीपन, पाचन, कृमि-नाशक है। इसका टिंचर या काढ़ा बरता जाता है। अजीर्ण में, मन्दाग्नि में इसका टिंचर बरता जाता है। कृमि मारने के लिये इसका काढ़ा दिया जाता है। इसके हिम कषाय की वस्ति देने से गुदा के कृमि नष्ट हो जाते हैं। क्युनीन के साथ ज्वर में, कलम्बा के साथ भूख लगाने के लिये दिया जाता है।

कोकेन—उष्ण, मादक, अग्निवर्धक है। इसका स्वाद कड़ुवा होता है, खाने से मुँह में गुदगुदी और अचेतनता का भान होता है। त्वचा पर लगाने से या इंजेक्शन करने से संज्ञानाश उत्पन्न करता है। दाँत उखाड़ने के लिये १० प्रतिशत घोल में रुई को भिगोकर मसूड़ों के चारोंओर पाँच मिनिट तक रख देना चाहिये। आँख की चिकित्सा में २ प्रतिशत घोल पर्याप्त है।

बनावट—हाइड्रोक्लोराइट ऑफ कोकेन (मात्रा $\frac{1}{40}$ से $\frac{1}{4}$ ग्रेन), लिक्विड एक्सट्रैक्ट ऑफ कोका ($\frac{1}{2}$ से २ ड्राम), टिंचर कोका $\frac{1}{2}$ से १ ड्राम। कोकेन एक मादक और उत्तेजक वस्तु है, इसके निरन्तर उपयोग से कोकेनोमिनिया—कोकेन की आदत पड़ जाती है। नोवेकेन और स्टोवेकेन ये दो वस्तुयें स्थानिक संज्ञानाश के लिये उत्तम हैं।

क्रोटन ऑयल—गुण—उग्र रेचक, दाहक और तीक्ष्ण है। बाहर लगाने पर त्वचा को लाल कर देता है, छाला डाल देता है। इसका उपयोग करना तभी उत्तम है जब कि मल की दृढ़ता के कारण या किसी अन्य अवरोध के कारण मल न आता हो। शोथ, पक्षाघात आदि में बरता जा सकता है। जब कि रोगी कोई और विरेचन न ले सकता हो इसके एक या हद दो बूँदों को बादाम के तेल की ३-४ बूँदों में मिलाकर रोगी के गले में रख देना चाहिये, इसका उपयोग बहुत कम होता है।

बनावट—क्रोटन ऑयल आधा से १ बूंद। इसको शर्करा की डली पर रखकर गले में उतार देना चाहिये।

कोपायवा—(बाल्सम कोपायवा) अथवा ऑयल ऑफ कोपायवा

गुण—मूत्रल, वस्ति शोधक है। इसमें से तेल निकलता है। इसका उपयोग गनोरिया में, मूत्राशय के रोग में, ब्राइट्स डिजीज में विशेषतः होता है। गनोरिया की तीव्र जलन में इसका उपयोग नहीं करना चाहिये। इसका

उपयोग काम में भी किया जाता है । इसका स्वाद बुरा होता है । ऑयल कोपयवा ५ से २० बूँद, टिंचर कोपायवा ½ से २ ड्राम । इसको क्युबेब, चन्दन के तेल आदि के साथ गनोरिया में देते हैं ।

कोलचीकम—वातहर, पित्त को निकालनेवाली, पीड़ाशामक, मूत्रल, स्वेदक और रेचक है । यह हृदय की गति को मन्द करती है, बढ़े हुये यूरिक एसिड को घटाती है, रक्त की गति को शान्त करती है, प्रत्येक प्रकार की सन्धिवात में, कटिशूल में देने से लाभ करती है । मूत्रमार्ग में विक्षोभ उत्पन्न करती है । बड़ी मात्र में विरेचक और वामक है ।

बनावट—वाइनम कौलचीशी १० से ३० बूँद, एक्सट्रैक्ट कौलचीशी आधा से १ ग्रेन ।

कोलोसिन्थ (इन्द्रवारुणी)—गुण—रेचक । इससे पानी की भाँति का विरेचन होता है, पित्त-स्रावक है । जलोदर, मलावरोध, अजीर्ण मे बरती जाती है । इसके देने से पेट में मरोड़ा मारकर मल बाहर आता है । इसलिये इसमें वातहर औषधियाँ मिला दी जाती हैं । उपदंश रोग में या अन्य विस्फोटक रोगों में पारा के साथ मिलाकर बरता जाता है ।

बनावट—'एक्सट्रैक्ट कोलोसिन्थ कम्पाउण्ड' २ से ८ ग्रेन, 'पिल कोलोसिन्थ कम्पाउण्ड' ४ से ८ ग्रेन, 'पिल कोलोसिन्थ एट हाईसोमिया' ४ से ८ ग्रेन ।

गायाकम—गुण—उष्ण, स्वेदल और रक्त-शोधक है । यह एक प्रकार का गोंद है और मृदु विरेचक प्रभाव रखता है । आमवात के लिये विशेष उपयोगी माना जाता है । इसकी टिकिया उपदंश-जन्य गले के शोथ में काम आती है । गन्धक की थोड़ी मात्रा के साथ देने से गठिया में लाभ करता है । स्त्रियों के कष्टार्त्तव में या ऋतु न आने में इसको अकेला या एपियोल क्रिस्टल २ ग्रेन, पलव गायाकम १५ ग्रेन की मात्रा में ऋतु आने से ठीक पूर्व देना चाहिये ।

बनावट—गायाकम रेज़ीनी ५ से १५ ग्रेन ।

गिलसरीन— गिलसरीन और शहद रसायनिक दृष्टि से बहुत कुछ मिलते जुलते हैं । परन्तु दोनों के गुणों में पर्याप्त भेद है । गिलसरीन बाहर लगाने में चिकनी है । इसलिये बहुत से रोगों में स्वतन्त्ररूप में या अन्य

औषधियों के साथ काम में आती है। प्रायः शहद के अभाव में सर्वत्र काम आजाती है। आँख में, मुँह में, चोट पर, व्रण पर लगाई जाती है। फिटकिरी सुहागा, कार्बोलिक एसिड आदि वस्तुओं के घोलने में काम आती है। बहुत सी दवाइयों को मीठा करने के लिये या मधुमेह के रोगी को शर्करा के स्थान में देने के लिये इसका उपयोग होता है। इसके अतिरिक्त यह मृदु विरेचक भी है इसीलिये इसे मिश्रणों में मिलाते हैं। इसकी बत्ती गुदा में रखने से सुगमता से विरेचन करा देती है। इसकी पिचकारी गुदा में लगाने से दूरवर्त्ती क्रिया से मल का जमाव टूट जाता है। प्रायः सब बाह्य-द्रव-प्रलेप इसके साथ मिलाकर तैयार किये जाते हैं। मात्रा १ से २ ड्राम, वस्ति के लिये २ से ४ ड्राम।

गॉल्स (माजूफल)—गुण—स्तम्भक और संकोचक है। माजूफल में से टॉनिक एसिड और गैलिक एसिड नाम के दो पदार्थ निकलते हैं। गैलिक एसिड से टिंचर बनता है। इसकी मात्रा आधा से १ ड्राम है। इन दोनों एसिडों में से प्लेग और पैसरियाँ बनती हैं। कुल्ले करने के लिये इनका लोशन (२० औंस पानी, २ ड्राम गैलिक एसिड) बरता जाता है। प्रदर और अर्श में इसका उपयोग होता है। अर्श के लिये कोकीन ५ ग्रेन, मौर्फिया ५ ग्रेन, एसिड ऑलिक १ ड्राम, मलहम गैलिक १ औंस उत्तम है। प्रदर के लिये टैनिक एसिड ३ ग्रेन और कोकम का तेल १२ ग्रेन; इनकी बत्ती बनाकर पानी में रखनी चाहिये।

चिरैटा—कटु, पौष्टिक, ज्वरघ्न, पाचन है। इसका उपयोग टिंचर और इन्फ्युज़न के रूप में होता है। इसके काढ़े में पोटैशियम आयोडाईड लेने से उपदंश रोग में विशेष लाभ होता है।

बनावट- इन्फ्युज़न चिरैटा १ से २ औंस, टिंचर चिरैटा ½ से १ ड्राम।

जैन्शन—ज्वरघ्न, रक्त-शोधक, पौष्टिक। बुखार, अजीर्ण, निर्बलता, मन्दाग्नि में उपयोगी है। निर्बलता के कारण जब भूख नहीं लगती, उस समय इसका उपयोग लाभ देता है। यह शक्तिवर्द्धक है।

बनावट- एक्सट्रैक्ट जैन्शन २ से ८ ग्रेन। प्रायः गोलियाँ इसके ही

अनुपान से बनाई जाती हैं। (२) इन्फ्युज़न ½ से १ औंस। (३) टिंचर जैन्शन कम्पाउण्ड ½ से १ ड्राम।

जैलप — तीव्र रेचक है। इसके देने से पेट में मरोड़ा मारकर पानी जैसा विरेचन होता है। आँतों में यदि किसी प्रकार की शोथ हो, तो इसका उपयोग नहीं करना चाहिये। मात्रा ५ से २० ग्रेन।

बनावट—कम्पाउण्ड पाउडर आफ़ जैलप २० से ६० ग्रेन, (२) टिंचर जैलप ½ से १ ड्राम।

जिञ्जर—गुण—उष्ण, दीपन, पाचन, उत्तेजक, वातहर है। सीरप ऑफ़ जिंजर ½ से १ ड्राम। यह मिश्रण को मीठा, सुगन्धित करने के लिये बरता जाता है। टिंचर जिंजर ३० से ६० बूँद। इसे पाचन के लिये तथा शूलहर उपयोग के लिये मिश्रणों में मिलाते हैं। यह साथ में दी हुई और वातहर औषधियों के गुणों को बढ़ा देता है।

टरपेन्टाइन—यह गरम, कृमिघ्न, मूत्रल, रेचक, पीड़ाशामक और श्लेष्मा को निकालनेवाली है। इसका अन्तः और बाह्य दोनों प्रकार से उपयोग होता है। इसको पानी में डालकर दर्दयुक्त प्रदेश पर सेंक किया जाता है। इसका भपारा लेने से बलगम पतली होकर बाहर आजाती है। छाती पर इसकी मालिश की जाती है। कास (पुरातन) में, शीतऋतु की खाँसी में तथा कभी-कभी मूत्र मार्ग को उत्तेजित करने के लिये इसका अन्तः उपयोग होता है। बड़ी मात्रा में यह पेट के कृमियों को मारने के लिये बरती जाती है और बिना वस्ति दिये यह गुदा के थ्रेडवर्म को नष्ट नहीं करती। कीड़े मारने के लिये मात्रा २ से ४ ड्राम। इसमें ४ ड्राम कैस्टर ऑयल मिलाकर देना चाहिये, जिससे कि विरेचन शीघ्र हो। टरपेन्टाइन का उपयोग रक्तस्राव के लिये भी किया जाता है। उदाहरण के लिये—ऑयल टरबैन्थि (रैक्टीफाइड) १० बूँद, एक्सट्रैक्ट हैमेमैलिड लिक्विड १ ड्राम, पोटोशियम क्लोरेट ५ ग्रेन, एक्वाक्लोरोफार्म १ औंस। इस प्रकार दिन में चार बार लेने से फुफ्फुस का रक्त-स्राव कम होता है।

ट्रैक्सीसाई—रेचक और आमाशय को उत्तेजित करनेवाली है। रक्तशोधक और पित्तशामक गुण के कारण यकृत शोथ में, कामला में इसका उपयोग किया जाता है।

बनावट—एक्सट्रैक्ट ट्रैक्सीसाई ५ से १५ ग्रेन, एक्सट्रैक्ट ट्रैक्सीसाई लिक्विड ½ से २ ड्राम है। (३) सक्कस ट्रैक्सीसाई १ से २ ड्राम।

टोलु (वालसम टोलु)—गुण—शीतल और कफघ्न है। मात्रा ५ से १५ ग्रेन। (१) शरबत टोलु की मात्रा ½ से १ ड्राम है और टिंचर टोलु की मात्रा ३० से ५० बूँद है। वालसम ठण्डा होने से कटी हुई त्वचा पर लगाया जाता है।

डिजीटेलिस—इसका मुख्य उपयोग हृदय को शक्ति देने के लिये किया जाता है। परन्तु सब प्रकार की हृदय की निर्बलता में इसका उपयोग करना ठीक नहीं है। इसको वहीं पर बरतना चाहिये, जहाँ नाड़ी निर्बल, तेज और जल्दी गिर जानेवाली (बन्द होनेवाली) हो, और साथ में श्वास-काठिन्य या शोथ हो। इसको या तो अलग देना चाहिये अथवा नाईट्रोग्लैसरीन के साथ देना चाहिये। मूत्रपिण्ड में रक्त-संचय होने पर यह बहुत अच्छा मूत्रल असर करता है। जहाँ पर धमनियों में दबाव बढ़ाने की इच्छा न हो (यथा—एन्युरीज़म, फैटीडिजैनरेशन ऑफ़ हार्ट, एपोपैल्क्सी आदि में) वहाँ पर इसका उपयोग नहीं करना चाहिये। यह स्मरण रखना चाहिये कि डिजीटेलिस सुगमता से शरीर से बाहर नहीं निकलता, इसलिये इसका देर तक किया गया उपयोग कई बार (थोड़ी मात्रा में भी) विष के लक्षण उत्पन्न कर देता है।

बनावट—पल्विस डिजीटेलिस ½ से २ ग्रेन, इन्फ्युज़न डिजीटेलिस १ से ४ ड्राम, टिंचर डिजीटेलिस ५ से १५ बूँद। बाज़ार में जो समास मिलते हैं, वे प्रायः विश्वसनीय नहीं होते।

थाईमोल (अजवायन का फूल)—यह कार्बोलिक एसिड से अधिक कृमिघ्न गुण रखती है। यद्यपि यह दाहक नहीं, तथापि विक्षोभक गुण रखती है। ½ प्रतिशतक घोल में (रैक्टीफाईड ५० भाग और पानी ५० भाग) यह मुँह के प्रक्षालन के लिये और १ से १२०० के घोल में कार्बोलिक के स्थान में कृमिघ्न गुण के लिये और १ से ४ प्रतिशतक में बने प्रलेपों में काम आती है। बड़ी मात्रा में यह एसकैरीज़, टीनिया आदि को मारती है। गलगण्ड-रोग में यह १० से ३० ग्रेन बरती जा सकती है। मात्रा—½ से २ ग्रेन। आंत्र, आमाशय में कृमि-नाशक गुण के लिये। १० से ३० ग्रेन

की मात्रा में कीड़े मारने के लिये। पीछे से विरेचन देना चाहिये।

नैक्सवोमिका (विषतिंदुक)—वातहर, पौष्टिक, कृमिघ्न है।

बनावट—एक्सट्रैक्ट नैक्सवोमिका ¼ से १ ग्रेन (२) टिंचर मात्रा—५ से १५ बूँद। इसके अतिरिक्त नैक्सवोमिका से सत्त्व निकलता है, जिसको स्ट्रिकनाइन कहते हैं। यह मस्तिष्क के पुराने रोगों में, पक्षाघात में, हिस्टोरिया में, निर्बलता में, अग्निमान्द्य में, नपुंसकता में, नसों की निर्बलता में उपयोगी है। यह दवा नसों को दृढ़ करती है, अधिक मात्रा में खेंचतान आदि उपद्रव करता है। हृदय और श्वास की क्रिया को उत्तेजित करता है। तीव्र रोगों में इसे नहीं बरतना चाहिये। स्ट्रिकनोन बहुत ही कड़ुवा और शक्तिवर्धक एवं भूख लगानेवाला है। आँतों की गति को बढ़ाता है।

बनावट—पल्व नैक्सवोमिका १ से ४ ग्रेन, लाइकर स्ट्रिकनिया हाइड्रोक्लोर २ से ८ बूँद।

पीपरमेन्ट—पेट की वायु, आक्षेप तथा शूल को शान्त करता है। मात्रा १ से ३ बूँद।

बनावट—स्प्रिट पिंपरमेन्ट १० से २० बूँद, (२) एक्वा मैन्था पिपरैटा १ से २ औंस (१॥ ड्राम पिपरमेन्ट का तेल और २० औंस पानी) यह जन्तुनाशक, दुर्गन्धनाशक, उत्तेजक और वायुनाशक है। इसका उपयोग बाह्य उपचार में होता है। त्वचा पर लगाने से शीत और स्थानिक संज्ञानाश का अनुभव होता है। इस लाभ के कारण शिरदर्द में, आमवात में, नर्व-शोथ में (जहाँ रक्त-संचय हो) उपयोगी है। जब यह कपूर, क्लोरल, फिनॉल के साथ मिलाया जाता है तो द्रव बन जाता है।

पोडो फ़ीलीन—यह विरेचक, पित्तस्रावक है। अधिक मात्रा में आमाशय और आंत को विक्षोभित करता है। यकृत-रोग की विकृति में विशेषतः उपयोगी है। कामला, गठिया, संधिवात, उपदंश में उपयोगी है।

बनावट—टिंचरपोडोफ़ाई ५ से १५ बूँद, (२) पोडो फ़िलियम ¼ से १ ग्रेन है। इसको वैलेडोना के साथ लेने से पेट में आक्षेप या मरोड़ा नहीं होता।

बक—गुण—शीतल और मूत्रल है। इसका उपयोग टिंचर तथा इन्फ्युजन के रूप में होता है। मूत्राशय के रोगों में, गनोरिया में इसका उपयोग

होता है। मूत्रल और संकोचक होने से मूत्र-मार्ग के रोगों में बड़ा उपयोगी है। इन्फ्युजन की मात्रा १ से २ औंस, टिंचर की मात्रा ½ से १ ड्राम है।

बैनेज़ोइन (लोबान)—इसका बाह्य उपयोग जन्तुनाशक और रक्त-स्तम्भक गुण के लिये किया जाता है। इसका धुआँ रोगी के घर को स्वच्छ करता है, दुर्गन्धिनाशक है। इसका धुआँ कास और स्वर-भंग (घरघराहटवाली आवाज़ को) आराम करता है। एक चम्मच टिंचर को गरम पानी में घोलने से दूध-जैसा बन जाता है। इसका उपयोग त्वचा की फुन्सियों के लिये उपयोगी है। यह ईथर, क्लोरोफ़ार्म और मद्य में सुगमता से घुल जाता है।

बनावट—एसिड बैनजोइन ५ से १५ ग्रेन, (२) टिंचर बैनज़ोइन कम्पाउन्ड ½ से १ ड्राम (इसको फ़्रायर बालसम भी कहते हैं)। इसको कपड़े पर लगाकर व्रण आदि पर लगाने से ज़ख्म शीघ्र भर जाते हैं।

बैलेडोना—बैलेडोना धतूर के वृक्ष की भाँति होता है।

गुण—पीड़ाशामक, उष्ण। निद्रा लाता है, आँख की पुतली को चौड़ा करता है। इसमें से एट्रोपीन निकलता है। यह दर्दशामक है। बैलेडोना मूत्रल और आक्षेपों को दूर करनेवाला है। यह हृदय की धड़कन को, कष्ठार्त्तव को, मलयन्त्र को, श्वास-नलिका के ऊपर के भाग में होनेवाले आक्षेपों को, यक्ष्मा को, रात्रि में होनेवाले पसीने को, रात्रि में होनेवाले मूत्रस्राव या स्वप्न-दोष को, मूत्राशय-शोथ को, दमे को, कुक्कुर-कास को आराम करता है। नाड़ियों के विकार में यह अन्तः और बाह्य दोनों रूप में बरता जाता है। कई मनुष्य इसको छोटी-सी मात्रा को भी सहन नहीं कर सकते। दुग्ध-स्राव को रोकने के लिये, शरीर के आक्षेपों को दूर करने के लिये, इसका उपयोग होता है।

बनावट—एक्सट्रैक्ट बैलोडोना ¼ से १ ग्रेन, (२) टिंचर बैलोडोना ५ से १५ बूँद। (३) एट्रोपीन १/२०० से १/१०० ग्रेन। आँख में डालने के लिये १ ग्रेन १ औंस पानी में। बैलेडोना प्लास्टर छाती की शूल, कास का दर्द, गर्भाशय का दर्द, मस्तक-शूल आदि में उपयोगी है। बैलेडोना ऑयन्टमेन्ट, लिनामेन्ट बैलोडोना वातिक-शूल के लिये उत्तम है।

मस्टर्ड—(सिनीपस-राई) गुण—उष्ण, दाहक, वामक है। राई

का उपयोग बाह्योपचार में होता है। फुफ्फुस शोथ में, तीव्र कास में, छाती के दर्द में ऊपर राई का पुल्टिस या लेप किया जाता है। कॉलरे के शूल में, वमन में, आक्षेप में राई को पीसकर लगाना चाहिये। संधिवात, शोथ आदि में राई का प्लास्टर लगाना चाहिये। गरम पानी में राई घोलकर इसमें पाँव रखने से रात्रि को नींद आती है, कष्टार्त्तव में इसका उपयोग करना चाहिये। राई का तेल या लिनिमैन्ट सिनीपस का लेप पीड़ा-शामक गुण के लिये बरता जाता है। इसमें कपूर आदि मिलाने से इसका गुण बढ़ जाता है।

मर्ह—गुण—उष्ण, कफघ्न, ऋतु लानेवाला, कास एवं गले के रोगों में बरता जाता है। स्तम्भक गुण के कारण स्पंजीगम्स में (जब मसूड़ों से खून चलता है) कुल्ला करने के लिये ४ औन्स पानी में २ ड्राम टिंचर मर्ह या आयोडीन टिंचर (रैक्टीफाईड) के साथ मिलाकर लगाते हैं। यह उत्तेजक शक्ति बर्धक है, वातहर और आँतों की गति को बढ़ानेवाला है। कई बार श्लेष्मा को निकालने के लिये इसका व्यवहार किया जाता है। कष्टार्त्तव में यह विशेष उपयोगी है, जब कि इसको लोह के साथ मिलाकर दिया जाता है।

बनावट—(१) पल्व मर्ह १० से ३० ग्रेन (२) टिंचर मर्ह ½ से १ ड्राम (३) पिल एलोज् एट मर्ह ४ से ८ ग्रेन।

मैन्थाल—कृमिनाशक, वातहर, भूख लगानेवाला, उत्तेजक तथा मुँह में शीतलता उत्पन्न करता है। अजीर्ण में, सिरदर्द में, दवाई के बुरे स्वाद को छिपाने में, यह बहुत काम आती है। नस के दर्द में इसका लगाना अच्छा है।

यूक्लिप्टस—कफघ्न, कृमिनाशक, दुर्गन्धिनाशक है। दवाइयों में इसका तेल बरता जाता है। मात्रा—१ से ३ बूँद, यह तेल जन्तुनाशक रूप में क्षय-रोग में बरता जाता है। प्रतिश्याय आदि रोगों में यह सूँघा जाता है। इस तेल में आयडोफार्म, क्रियोजोट मिलाकर गोंद के पानी में गोली बनाकर क्षय आदि रोगों में बरती जाती है। इसका उपयोग पिपरमेन्ट क्लोरोफार्म के साथ बरता जाता है। मात्रा १ से ३ बूँद, इसका बाह्य उपयोग थोड़ा विक्षोभ उत्पन्न करता है। त्वचा को लाल करता है। ऑयल

यूक्लिप्टस ५ बूँद, ऑयल सिनीमाई ५ बूँद, मैन्थाल १० ग्रेन, मिथाईल सैलिसिलेट ५ बूँद, एटोलीन १ औन्स ,इसका स्प्रे नाक में बारबार करना चाहिये।

रूवर्ब—गुण—ग्राही एवं रेचक है। यह छोटी मात्रा में संग्राही और बड़ी मात्रा में रेचक है। साथ में अग्निवर्धक भी है। अजीर्ण के अतिसार में, मरोड़े में यह अधिक लाभ करता है। रक्त-शोधक है इसलिये बालकों के कण्ठमाला तथा उपदंश में लाभ करता है। बच्चों के अतिसार में या मलबन्ध में इसका उपयोग होता है।

बनावट—पल्व रिहाई कम्पाउन्ड (ग्रेगरिज पाऊडर) ३० से ६० ग्रेन, सिरप रिहाई ½ से २ ड्राम, टिंचर रिहाई कम्पाउन्ड ½ से १ ड्राम, एक्सट्रैक्ट रिहाई २ से ८ ग्रेन।

लिक्विरस—गुण—ज्वरघ्न, कफघ्न, शीतल, पौष्टिक है। यह मृदु विरेचक और चिकना करनेवाला है। इसके द्वारा बहुत सी दवाइयों का स्वाद छिपाया जा सकता है। इसके द्वारा श्लेष्मकला और मूत्रमार्ग के शोथ में लाभ होता है।

बनावट—एक्सट्रैक्ट ग्लिसराइज लिक्विड—मात्रा ½ से १ ड्राम। (२) पल्विस ग्लिसराइज कम्पाउन्ड मात्रा ६० से १२० ग्रेन है; (३) एक्सट्रैक्ट ग्लिसराइज ५ से १० ग्रेन।

लिन्सीड—मूत्रल और स्निग्ध है। अलसी के तेल और गोंद जैसा गुण होने के कारण तथा मूत्रल गुण के कारण प्रमेह तथा सूजाक में इसकी चाय बरती जाती है। वाह्योपचार में गुमड़ा, फुंसी, फोड़े आदि पर इसकी पुल्टिस बाँधी जाती है। इससे या तो फुंसी बैठ जाती है अथवा पक जाती है। श्वासनाली में, फुफ्फुस की शोथ में पुल्टिस बहुत लाभ करती है।

लेमन—अनार्य चिकित्सा में इसका टिंचर या शरबत बरता जाता है। मसूड़ों से रक्त आने पर इसका रस विशेष उपयोगी है। इसका शरबत (मात्रा १ से २ ड्राम) मिश्रणों को सुगन्धित करने के काम आता है, इसके तेल से प्रलेपों को सुगन्धित किया जाता है।

वेलेरियन—गुण—वातहर, पौष्टिक, उष्ण तथा कृमिघ्न है। इस दवाई की बहुतसी बनावटें हैं। मुख्य बनावट—इन्फ्युजन वेलेरियन (मात्रा १ औन्स), टिंचर वेलेरियन (मात्रा १ से २ ड्राम) टिंचर वेलेरियन

एमोनेटा (मात्रा ½ से १ ड्राम), ज़िंक वेलेरियन (मात्रा १ से ३ ग्रेन) है। इस दवाई का मुख्य असर मस्तिष्क से सम्बन्ध रखनेवाले रोगों के साथ है, यथा—उन्माद, हिस्टीरिया, आक्षेप आदि रोगों में लाभ करती है। इसे अन्य वातहर उष्ण औषधियों के साथ में मिलाकर देते हैं।

सारसापरिला—रक्तशोधक, पाचक, पौष्टिक, स्वेदल, मूत्रल है। इसकी जड़ें काम में आती हैं। इसकी बहुत-सी बनावटें हैं। सारसापरिला का चूर्ण मात्रा ३० से ६० ग्रेन, (२) क्वाथ—२॥ औंस सारसापरिला और ३० औंस उबलता हुआ पानी, मात्रा २ से १० औंस। (३) लिक्विड एक्सट्रैक्ट ऑफ़ सारसापरिला मात्रा २ से ४ ड्राम। यह सब बनावटें उपदंश, संधिवात, त्वचा के रोगों में, कण्ठमाला में, निर्बलता में, प्रमेह में बरती जाती हैं।

सिन्कोना—ज्वरघ्न, कटु पौष्टिक। सिन्कोना के प्रायः सब गुण क्युनीन से मिलते हैं।

बनावट—एक्सट्रैक्ट सिन्कोना लिक्विड ५ से १५ बूँद, इन्फ्युज़न सिन्कोना एसिडम ½ से १ औंस, टिंचर सिन्कोना ½ से १ ड्राम, टिंचर सिन्कोना कम्पाउन्ड ½ से १ ड्राम, डिकॉक्शन सिन्कोना १ से २ ड्राम। सिन्कोना भूख लगाता है, संकोचक है, शक्तिवर्द्धक है, वात, नाड़ियों के दर्द को कम करता है, ज्वर को रोकनेवाला है।

सिनेमन (दालचीनी)—उष्ण, वातहर, दीपन, पाचन और संग्राही है।

बनावट—ऑयल ऑफ सिनेमन १ से ३ बूँद, टिंचर सिनेमन ½ से १ ड्राम, पल्व सिनेमन कम्पाउण्ड १० से ६० ग्रेन। दालचीनी की यह सब बनावटें अजीर्ण, अग्निमान्द्य, प्रवाहिका, उदरशूल, वमन, अतिसार, रक्तस्राव आदि रोगों में बरती जाती हैं। ऋतुस्राव सम्बन्धी रोगों में तथा गर्भाशय में गरमी लाने के लिये भी इसका उपयोग होता है।

सिला (स्क्विइल)—उष्ण, मूत्रल, वामक, रेचक, कफघ्न है। (१) सीरप स्क्विइल मात्रा ½ से १ ड्राम, (२) टिंचर सिल्ला ५ से १५ बूँद, (३) ऑक्सीमल सिल्ला मात्रा ½ से १ ड्राम। यह सब बनावटें श्वास, दमा, कास, सरदी तथा क्षय में उपयोगी हैं। अधिक मात्रा में लेने से वमन, आवरण शोथ, अतिसार आदि उपद्रव होजाते हैं।

सैन्डल आयल—(चन्दन का तेल) गुण—मूत्रल, ग्राही है। इसका उपयोग प्रमेह, सूजाक में होता है। मात्रा १० से ३० बूँद। त्वचा के व्रणों पर, खाज पर, कण्डू के ऊपर लगाया जाता है। डॉक्टर लोग इसका उपयोग कोपाइवा और बक के साथ करते हैं।

स्कैमोनी—रेचक तथा कृमिघ्न है। यह दवाई गोली, चूर्ण तथा मुरब्बे आदि के रूप में बरती जाती है। इससे सख्त तीव्र विरेचन होता है और शूल पैदा करता है। इसके साथ वायुहर गरम दवाई लेने की आवश्यकता होती है। आँतों के बन्धकोश में, मस्तिष्क में रक्त-सञ्चार के बढ़ने में, बालकों के कृमि-रोग में इसका व्यवहार किया जाता है। मात्रा—पल्विस की ५ से १० ग्रेन, कम्पाउन्ड स्कैमोनी पिल्स ५ से १५ ग्रेन, कम्पाउन्ड स्कैमोनी पाउडर १० से २० ग्रेन है।

सैकेरीन—यह बहुत मिष्ठ वस्तु है। शर्करा की अपेक्षा यह दस-गुणी मीठो है। सैकेरीन की टिकिया आती है। इनमें प्रत्येक में ½ ग्रेन सैकेरीन होतो है। मधु-प्रमेह के रोगी को जहाँ पर शर्करा का उपयोग हानिकारक है, वहाँ पर इसका व्यवहार किया जाता है।

सैना—गुण—रेचक और शोधक है। अँग्रेजी में इसका मुरब्बा इन्फ्युजन, सीरप, टिंचर आदि बरता जाता है। टिंचर की मात्रा ½ से १ ड्राम है। इस से पानी-जैसा पतला दस्त आता है। इससे पेट में शूल, वायु आक्षेप आदि कुछ नहीं होता। यह दवाई ठण्डी है, इसलिये गरम दवाइयों के साथ इसका व्यवहार करना चाहिये।

सैन्टोनाईन—कृमिघ्न है। पेट के कृमियों को मारने के लिये यह दवाई प्रसिद्ध है। मात्रा बच्चों के लिये, १ से ३ ग्रेन। बड़े आदमियों के लिये ३ से ६ ग्रेन। बाज़ार में इसकी टिकिया मिलती हैं। इसका प्रभाव टेपवार्म और थ्रेडवार्म पर बिलकुल नहीं होता। सैन्टोनाईन को लेने के पीछे कोई विरेचक औषधि अवश्य लेनी चाहिये, जिससे मरे हुये कृमि निकल जाते हैं। सैन्टोनाईन के साथ शर्करा, सोडाबाइकार्ब और कैलोमल दो-दो ग्रेन मिलाकर देना चाहिये।

स्ट्रैमोनियम—गुण—स्नायुशैथिल्यकृत-पीड़ाशामक, ज्वरघ्न, मादक है।

बनावट—(१) इक्सट्रैक्ट $\frac{1}{8}$ से $\frac{1}{2}$ ग्रेन, (२) टिंचर ५ से १५ बूँद। इसके पत्तों की बीड़ी करके पी जाती है, इससे दमा, फुफ्फुस का शोथ, वरम, शोथ, तथा आक्षेप आदि रोगों मे लाभ होता है। अधिक खाने से बेहोशी होती है।

स्ट्रोफेन्थस—गुण—मूत्रल, रक्तशोधक तथा हृदय के लिये हितकारक है।

बनावट—(१) एक्सट्रैक्ट $\frac{1}{8}$ से १ ग्रेन (२) टिंचर २ से ५ बूँद। इसमें से स्ट्रोफेन्थीन नामक तत्त्व निकलता है जो कि इंजक्शन करने के लिये $\frac{1}{300}$ से $\frac{1}{200}$ ग्रेन तक काम में आतो है। यह हृदय को शक्ति देता है, डिजैटेलिस की भाँति उपयोगी है। मूत्रल गुण के कारण शोथ में, जलोदर में, मूत्र-प्रवाह को बढ़ाने के लिये इसका उपयोग होता है।

हायोस्यामी—गुण—पीड़ाशामक, मादक और कफघ्न है।

बनावट—(१) एक्सट्रैक्ट हाईस्यामी २ से ८ ग्रेन है। (२) टिंचर की मात्रा $\frac{1}{2}$ से १ ड्राम है। इस दवाई के गुण वैलोडोना और स्ट्रेमोनियम की भाँति हैं। यह दवाई थके हुये और श्रमित मस्तिष्क को शान्ति देती है। नींद न आने में, शिर दर्द मे, दमे में, खाँसी में, संधिवात में, हृदय के रोगों में, उन्माद रोग में, मूत्राशय के रोगों में बरता जाता है। मरोड़ों को कम करने के लिये इसका उपयोग किया जाता है।

हैज़ेलीन—रक्तस्तम्भक और संग्राही है। शरीर के किसी भी भाग में से होनेवाले रक्तस्राव को यह रोकती है। यह पीने के और बाहर लगाने के काम में आती है। पीने की मात्रा ५ से १५ बूँद है। फुफ्फुस, आमाशय, आंत्र, मूत्राशय, मलाशय, और गर्भाशय से होनेवाले रक्तस्राव को बन्द करता है। मुँह से यदि रक्त आता हो तो इसको पानी में मिलाकर कुल्ले करना चाहिये। अर्श रोग में हैज़ेलीन और गरम पानी की पिचकारी मारने से रक्तस्राव रुक जाता है। रक्तातिसार, ऋतुस्राव, और बाहर के जख्म के रक्तस्राव को बन्द करने के लिये रोज एक या दो बार एक-एक ड्राम की मात्रा में पीने से रक्त बन्द हो जाता है।

हैमेमेलीस—गुण—ग्राही, स्तम्भक है, छाती में से, गुदामार्ग में से, मूत्रमार्ग से, स्त्रियों के गर्भाशय में से जब रक्तस्राव जाता हो, उसको बंद

करता है । मरोड़े में, क्षय में, अर्श में, अत्यार्त्तव में लाभ करता है । हैमेमे-लिस में से हैजेलीन बनती है ।

बनावट—(१) एक्सट्रैक्ट हैमेमैलिस १ से ५ ग्रेन, (२) एक्सट्रैक्ट हैमेमैलिस लिक्विड ५ से १५ बूँद (३) टिंचर हैमेमैलिस ३० से ६० बूँद ।

खनिज वर्ग की औषधियाँ

(१) **अमोनिया**—इसकी दो मुख्य बनावटें हैं, एक अमोनिया और दूसरी स्ट्रॉंग सल्युशन ऑफ अमोनिया ।

अमोनिया के गुण—आक्षेपों को कम करनेवाली, पेशाब लानेवाली, स्वेदक, कष्ठार्त्तव में उपयोगी, श्लेष्मा निकालनेवाली और उत्तेजक है । इसका वाह्य उपयोग दूषित व्रणों पर किया जाता है ।

लाइकर अमोनिया—उत्तेजक, श्लेष्मा को निकालनेवाला, क्षार-आक्षेपों को कम करनेवाला, त्वचा पर लगाने से त्वचा को लाल कर देता है । अजीर्ण और कास में उपयोगी है । सन्धि के दर्द और कठोरता को कम करने के लिये इसका उपयोग होता है । मूर्च्छावस्था में, वातिक सिर दर्द में, निर्बलता में, इसके वाष्प सुँघाये जाते हैं । इसकी मात्रा ५ से २० बूँद है । साँप के काटने पर इसकी १० से १५ बूँद लेकर समान मात्रा में पानी से हल्की करके त्वचा के नीचे इंजेक्शन करने से कुछ लाभ होता है । (२) स्प्रिट अमोनिया एरोमैटिक—(सैलवोल टाइल)—अमोनिया के समासों में यह एक मुख्य वस्तु है, यह हृदय के लिये उत्तेजक है, बलगम को निकालनेवाला है और क्षार है । मूर्च्छा, कास और अजीर्ण में उपयोग किया जाता है । मात्रा २० से ४० बूँद । परन्तु एक खुराक के लिये ९० बूँद भी दे सकते हैं । (३) लाइकर अमोनिया एसिटेड—यह स्वेदक और मूत्रल है । अमोनिया कार्ब २५ ड्राम, ऐसिटिक एसिड १० औन्स, पानी ५० औन्स मिलाने से बनता है । यह कटे हुये या शोथ-युक्त स्थानों पर लगाया जाता है । मात्रा—२ से ६ ड्राम । (४) अमोनियम ब्रोमाइड—इसका गुण पोटाशियम ब्रोमाइड से मिलता है, परन्तु हृदय की गति को मन्द करता है । मात्रा—५ से २० ग्रेन । इससे मस्तिष्क में शान्ति आती है, नींद आती है, अपस्मार, आक्षेप आदि रोगों में उपयोगी है । (५) अमोनिया कार्ब—बड़ी मात्रा में (१५ से ३० ग्रेन) वामक है; कफघ्न के लिये ३-१० ग्रेन है । थोड़ी मात्रा में आमाशय और हृदय के

लिये शक्तिवर्धक है, उत्तेजक है, बलगम निकालनेवाला है, निमोनिया, कास, दमे में उपयोगी है। (६) अमोनियम क्लोराइड—यह यकृत रोग के लिये उपयोगी है, क्योंकि पित्त को थोड़ी मात्रा में निकालता है। स्वेदक, मूत्रल और आमाशय को उत्तेजक है। यह श्वास-मार्ग, फुप्फुस आदि की श्लेष्म कला को उत्तेजित करता है। मात्रा—५ से २० ग्रेन है। कामला रोग में, ऋतु लाने में, कष्टार्त्तव में, कास में, फुप्फुस के शोथ में उपयोगी है। (७) लाइकर अमोनिया साइट्रेट—यह मूत्रल और स्वेद लानेवाला है। इसके गुण बहुत कुछ लाइकर अमोनिया ऐसिटेट से मिलता है, परन्तु यह इसकी अपेक्षा ज्वर के लिये अधिक उपयोगी है।

आयडोफार्म—रोपण और दुर्गन्धि-नाशक है। दुर्गन्धि को दूर करने में बहुत उपयोगी है। उपदंश-जन्य बदबू को दूर करता है। इसको बोरिक एसिड के साथ मिलाकर बरता जाता है, जिससे दुर्गन्धि कम हो जाती है। शस्त्रक्रिया के पीछे व्रण को भरने के लिये इसकी वर्त्ति व्रण में भरकर रक्खी जाती है। जब कि स्राव में बहुत बदबू होती है इसका पिचु योनि में रक्खा जाता है। यह यक्ष्मा और उपदंश-जन्य व्रण में अधिक उपयोगी है। अन्त: उपयोग—उपदंश की तृतीयावस्था में और यकृत रोग में होता है। मात्रा—½ से ३ ग्रेन। इसके उपयोग में इसकी गन्ध बहुत बाधक है। कान में से पीप आती हो तो इसको बोरिक एसिड, या स्टार्च के साथ मिलाकर कान में फूंकने से आराम होता है।

आयोडीन— रक्तशोधक, शोथहर, पौष्टिक, दाहक है। यह तीव्र कृमिनाशक, स्वच्छ करनेवाली और जन्तु-नाशक है। इसका वाह्य उपयोग विक्षोभक, उष्णिमा एवं दर्द को उत्पन्न करता है। परन्तु यदि बहुत तेज लगा दिया जाये तो त्वचा पर छाला और शोथ उत्पन्न कर देता है। इसका वाह्य उपयोग गांठ, शोथ, सन्धिवात, शूल, चसका आदि में होता है। शल्यकर्म करने से पूर्व त्वचा को टिंचर के द्वारा स्वच्छ बनाया जाता है। व्रण को टिंचर के साथ और गॉज के साथ भर देना चाहिये। इसको रैक्टीफाइड स्प्रिट में बनाकर वमन को रोकने के लिये बरता जाता है।

बनावट—(१) टिंचर आयोडीन (मैथिलीयेटेड स्प्रिट में बना हुआ) (२) लिनीमेंट आयोडीन (३) टिंचर आयोडीन मिट्स २ से ५ बूँद (रैक्टीफाइड

स्प्रिट में) । (४) मलहम । (५) आयोडोक्स (६) आयोडीपीन-मात्रा १ से २ ड्राम, कैप्सुल में रखकर देना चाहिये । उपदंश और गण्डमाला में उपयोगी है ।

आर्सेनिक—गुण—रक्तशोधक, ज्वर-नाशक, शक्तिवर्धक है । बाह्य उपयोग—यह दाहक है, इसको चारकोल और स्टार्च के साथ मिलाकर लगाते हैं । मस्सों को तथा अन्य मांस वृद्धि इसके लगाने से जलाये जा सकते हैं । अन्तः उपयोग—त्वचा के पुराने रोगों में, जबकि त्वचा खुश्क हो, तारुण्य पिटिका हों, उनमें लाभदायक है । मलेरिया ज्वर में, जब कि क्युनीन से लाभ न हो, उस समय इसका उपयोग किया जाता है । परनीशोयस एनीमिया में इसके समान कोई भी उत्तम औषधि नहीं है । इसके देने से रक्ताणु बढ़ जाते हैं और श्वेताणु कम होते हैं । शक्तिवर्धक औषधियों में, आमवात के कारण सन्धिशोथ में, निर्बलता में आर्सेनिक मुख्य औषधि है । आर्सेनिक समास सदा भोजन के तत्क्षण पश्चात लेने चाहिये । इसको बहुत ही थोड़ी मात्रा में आरम्भ करना चाहिये और लगातार तीन सप्ताह से अधिक नहीं देना चाहिये । एक सप्ताह तक बन्द करके फिर चालू करना चाहिये । समास—(१) एसिड आर्सेनिक-मात्रा $\frac{१}{६०}$ से $\frac{१}{१६}$ ग्रेन (२) लाइकर आर्सेनिककेलिस-मात्रा २ से ८ बूँद, (३) लाइकर आर्सेनिक हाइड्रोक्लोरेट-२ से ८ बूँद (४) लाइकर आर्सेनिक एट हाइड्राजराई (डोनवन सल्युशन) ५ से २० बूँद (४) फैराई आरसीनास $\frac{१}{१६}$ से $\frac{१}{४}$ ग्रेन ।

ईथर—यह अति उत्तेजक गुणवाला, आक्षेपों को कम करनेवाला, वातहर, और संज्ञानाश करनेवाला है । थोड़ी मात्रा में सूँघने से दमे के दौरे को कम करता है । मात्रा—१० से ३० बूँद बार बार देने के लिये । एक बार देने के लिये ६० बूँद दी जा सकती है । (२) स्प्रिट ईथरीस—मात्रा ३० से ९० बूँद (३) स्प्रिट-ईथरीस कम्पाउण्ड—२० से ४० बूँद है (४) स्प्रिट ईथर नाइट्रोसाई—मात्रा १५ से ६० बूँद । उष्ण, स्वेदक, मूत्रल तथा कफघ्न है । यह दवा सब प्रकार के ज्वर में, कास में, श्वास में बरती जाती है । स्वेदक और मूत्रल होने से ज्वर को कम करती है ।

ऐन्टीपाईरीन—ज्वरहर और स्वेदक है । यह बढ़े हुये ताप परिमाण को नीचे उतार देती है, शरीर की गरमी को कम करती है, हृदय को मन्द

करती है। जो वैद्य इसके बुरे परिणामों से परिचित नहीं होते, वे इससे कई बार धोखा उठा जाते हैं। फिनस्टीन की भाँति दर्द को कम करनेवाली और ज्वर को उतारनेवाली है। इसलिये शिरदर्द में, सन्धिवात में, आधा सीसी के दर्द मे इसका उपयोग होता है। मात्रा ५ से १० ग्रेन। इसको क्युनीन के साथ देने में इन्फ्लुएञ्जा तथा अन्य ज्वरों में लाभ होता है।

एन्टीफेब्रिन—दर्दनाशक, ज्वरनाशक और आमवात में उपयोगी है। इसको बहुत ही सावधानी से बरतना चाहिये, क्योंकि थोड़ी मात्रा से भी विष के लक्षण उत्पन्न होजाते हैं। यह प्राय: तीव्र शिरदर्द में दी जाती है। शिरदर्द के लिये जो औषधियाँ बनती हैं, प्राय: उन सब में यह पड़ती है। मात्रा—१ से ३ ग्रेन।

एन्टीमनी—स्वेदल, कफघ्न, रक्त-शोधक है।

बनावट—टार्टार एमैटिक—यह दवाई काले ज्वर के लिये खास मानी जाती है। इसको 'एण्टोमनी टार्टार' भी कहते हैं। यह वामक और हृदय की गति को बहुत मन्द करनेवाली है। ब्रोंकल निमोनिया की प्रथमावस्था में लाभदायक है। परन्तु जब म्युकस-श्लेष्मा निकलने लगे, उस समय बन्द कर देना चाहिये। इसको 'एपिकाकक्कैना' के स्थान पर भी बरतते हैं। ज्वर के लिये मात्रा १/२४ से १/६ ग्रेन। प्राय: इन्जेक्शन दिया जाता है। वमन के लिये १ से २ ग्रेन है। (२) पल्विस एन्टीमोनियल—मात्रा ३ से ६ ग्रेन, (३) वाइनम एन्टीमोनियल—वमन के लिये मात्रा २ से ४ ड्राम। ज्वर उतारने के लिये १० से ३० बूँद। ज्वर में, कास में, दमे में यह बहुत लाभदायक है। इसका उपयोग जहाँ पर श्वास-नलिका का औंकाई भाग आक्रान्त हो, वहाँ पर अच्छा प्रभाव करता है। इस बात में यह एपिकॉक से अच्छा गुणकारी है।

ऐसिटिक एसिड—गुण—शीतल, आम्ल। यह टाल (जहाँ से बाल गिर जाते हैं), दद्रु, मस्सा आदि के ऊपर लगाया जाता है। इसको पानी में मिलाकर इसका कपड़ा शिर दर्द में या ज्वर पर लगाया जाता है। मात्रा—एसिड १ भाग और पानी ७ भाग। यह लोशन बहुत ही ठण्डा है। क्षार से उत्पन्न विषों का यह उत्तम प्रतिविष है।

कार्बोलिक एसिड—गुण—दाहक, रोपण, जन्तुघ्न तथा दुर्गन्धिनाशक

है। इसका उपयोग प्रायः बाह्योपचार में होता है। यह रोगी के कमरों को, उसके बर्तनों को और नालियों को साफ करने के लिये बरता जाता है। बिना हल्का किये यह दाहक है। यदि इसके लगाने से जल जाय तो मैथिलियेटेड स्प्रिट से धोकर बोरिक प्रलेप लगाना चाहिये। इसके दो प्रतिशत का घोल कण्डू को नष्ट करता है। हाथ धोने के लिये, औज़ार धोने के लिये, व्रणों को धोने के लिये २½ प्रतिशतक से अधिक तीक्ष्ण घोल नहीं बनाना चाहिये। हृदय की जलन या दर्दयुक्त अजीर्ण में, जब कि आध्मान भी हो उस समय, और थोड़ी मात्रा में अतिसार बन्द करने के लिये बरता जाता है। मात्रा—१ से ५ ग्रेन। यथा—एसिड कार्बोलिक १ ग्रेन, पल्वरिहाई कम्पाउन्ड २ ग्रेन, १ गोली बनाकर भोजन के पीछे लेना चाहिये। (२) एसिड कार्बोलिक ½ ग्रेन, एक्सट्रैक्ट ओपयाई ½ ग्रेन, बिस्म्युथ सैलिसिलेट ३ ग्रेन। इसकी एक गोली बनाकर दिन में तीन बार लेनी चाहिये। यह गरमियों के अतिसार के लिये उपयोगी है। कार्बोलिक एसिड को तेल में मिलाकर (एक भाग एसिड और २० भाग तेल मीठा) बरतना चाहिये। कार्बोलिक लोशन (१ भाग एसिड ४० भाग पानी), प्लेग में इसका उपयोग थोड़ी मात्रा में आधा से १ बूँद किया जाता है। इसके लिये 'साईलीन' भी उपयोगी है।

क्रीओज़ोट—जन्तुघ्न, रोपण, दाहक, स्तम्भक तथा दुर्गन्धि-नाशक है। यह उल्टी तथा अतिसार को बन्द करता है, यक्ष्मा के कृमियों को मारने के लिये इसका उपयोग १ से २ बूँद मात्रा में सितोपलादि चूर्ण के साथ किया जाता है। बाह्य उपचार में दाँत के दर्द को दूर करने के लिये इसका फाया दाँत में रखते हैं। मात्रा १ से ५ बूंद। बनावट—क्रीओजुटोल—मात्रा ५ से २० बूँद। यह यक्ष्मा के लिये अधिक उपयोगी है। ग्वायकोल—मात्रा १ से ५ ग्रेन। इसका उपयोग क्षय में होता है, क्योंकि इसके कारण अजीर्ण नहीं होता। ग्वायकोल कार्बोनेट—मात्रा ३ से १० ग्रेन। छाती के दर्द में, फुफ्फुस और आँतों के यक्ष्मा रोगों में, गलगण्ड में, अतिसार में, ज्वर में, निर्बलता में उपयोग होता है। इसमें क्षय के जन्तुओं को नाश करने की शक्ति है।

क्रीटा—(चॉक)—बनावट—चॉक मिक्श्चर आधा से १ औंस (२) पल्वक्रीटा ऐरोमैटिक—मात्रा १० से ६० ग्रेन (३) पल्वक्रीटा ऐरोमैटिक

कम ओवयाई-१० से ३० ग्रेन । गुण—ग्राही, अम्ल विरोधी, वातहर । अजीर्ण अतिसार, अम्लपित्त, आंतों के व्रणों में यह दवाई उपयोगी है । चॉक सब दन्त-मञ्जनों में बरता जाता है ।

कैलसियम क्लोराइड—रक्तशोधक, रक्त को गाढ़ा करनेवाला, जन्तुघ्न है। मात्रा ५ से १५ ग्रेन । इसके ८८ ग्रेन में १ औन्स पानी मिलाने से लाइकर कैलसो बनता है । यह प्रवाही वमन को बन्द करता है, इसलिये छोटे बच्चों को वमन में देते हैं । मात्रा १५ से ३० बूँद । इसकी बहुतसी बनावटे हैं । यथा—कैलसियाई लैक्टेड, कैलसियाई हाईपोस्फेट, कैलेक्स सल्फ्युरेटा, कैलसियाई परमैंगनेट, कैलसियाई कार्बोनास, आदि हैं । इनमें सीरप हाइपोकैल्फ़िट ऑफ् लाइम की बनावट इस प्रकार है—हाई पौस्फेट ऑफ लाइम १६० ग्रेन, सफेद बूरा १६ औंस, एसिड हाइपोफौस्फेरिस २० बूँद, पानी ९ औंस । प्रथम हाइपौस्फेट ऑफ़ लाइम को पानी में मिलाकर छान लेना चाहिये । इसमें शर्करा मिलाकर शरबत बनाना चाहिये । जब शरबत ठण्डा हो जाये, तब इसमें एसिड मिला देना चाहिये । मात्रा—१ से ४ ड्राम । क्षय, कास, गलगण्ड, अस्थि रोगों में उपयोगी है । कैलसियम क्लोराइड का अधिक उपयोग रक्तस्राव में या छपाकी-पित्त उछल आने में किया जाता है । कैलसियाई परमैंगनेट हैज़े के लिये उत्तम है । चूँकि कैलसियम में गुण है कि वह रक्त की सान्द्रता को बढ़ाता है, इसलिये कैलेक्स सल्फ़ाइड रक्त की शुद्धि के काम आता है ।

कैलोमल— रक्त-शोधक, रेचक, पित्तस्रावक है । मात्रा—आधा से १ ग्रेन है । रेचक गुण के लिये २ से ५ ग्रेन है । इसको बहुत दिनों तक लगातार नहीं देना चाहिये । बालकों के कृमिरोगों में इसको सैन्टोनाइन के साथ देना चाहिये । कैलोमल से नीला, हरा अतिसार होता है । यह पित्त के ज्वर में पित्त निकालने के लिये उत्तम है । उपदंश, विस्फोटक, त्वचा के रोगों में बरता जाता है । साधारणतः इसको $\frac{1}{8}$ ग्रेन की मात्रा में दिन में १-२ घंटे के अन्तर से ८ पुड़ियां देनी चाहिये । उपदंश आदि में व्रणों को धोने के लिये ब्लैकवाश (कैलोमल ३० ग्रेन, चूने का पानी १० औंस, इससे काला पानी बन जाता है) बनता है । जब भूख कम हो, शिरदर्द हो, जिह्वा मैली हो, अजीर्ण हो, शरीर में भारीपन हो, उस समय रात्रि को यह देकर प्रातः सैलाइन देना चाहिये ।

क्लोरल हाइड्रेट—नींद लानेवाला, आक्षेपों को कम करनेवाला और साधारण मन्द करनेवाला है। इसको मैन्थॉल, कैम्फर, कोकोन आदि के साथ मिलाकर लगाने से स्थानिक दर्द को, वात नाड़ी को आराम होता है। नींद न आने में, मस्तिष्क में रक्ताधिक्य होने पर, पागलपन में इसका उपयोग होता है। यह धनुर्वात और कुचले के विष में बहुत उपयोगी है। मात्रा—५ से २० ग्रेन। सीरप क्लोरल आधा से १ ड्राम है। बनावट—क्लोरेटोन मात्रा—२ से १० ग्रेन। यह वमन में, शिरदर्द में उपयोगी है। जहाज में चलते हुये जिन लोगों को चक्कर और वमन आते हैं, उनके लिये यह विशेष उपयोगी है। कास में भी लाभदायक है।

क्लोरोफार्म—गुण—मादक, शामक, आक्षेपों को बन्द करनेवाला, निद्रालु है। आदमी को बेहोश बनाने के लिये इसका उपयोग प्रसिद्ध है। कॉलरा, अतिसार, शूल आदि में इसका उपयोग 'स्प्रिट क्लोरोफार्म' या एक्वा-क्लोरोफार्म के रूप में किया जाता है। कुचला के विष में, टैटिनस रोग में और आक्षेपों में इसको १५-२० बूँद रूमाल पर गिराकर रोगी को सुँघाते हैं। इस समय रोगी की नाड़ी और हृदय का ध्यान रखना चाहिये। क्लोरोफार्म का बाह्य-उपयोग भी दर्द कम करने के लिये किया जाता है। लिनिमेन्ट कैम्फर या लिनिमेन्ट कैम्फर एमोनेटा की दो-तीन बूँद बिच्छू आदि विषैले जानवरों के दंश पर लगाने से तुरन्त आराम होजाता है। लिनिमेन्ट क्लोरोफार्म, लीनिमेन्ट वैलेडोना और लिनिमेन्ट एकोनाइट; इन तीनों को समान मात्रा में मिलाकर लगाने से तीव्र शूल भी शान्त होजाते हैं। दाँत के दर्द में स्प्रिट क्लोरोफार्म लगाने से आराम हो जाता है। मुँह में जो सफ़ेद दाग़ (मुख-पाक) मुँह की अस्वच्छता के कारण गालों में होजाते हैं, उन पर डॉ० राधाकृष्णजी स्प्रिट क्लोरोफार्म को लगाया करते थे। इससे जलन तो होती है, परन्तु पानी निकलकर दाह शान्त हो जाती है। अजीर्ण में, मूर्च्छा में इसका अन्त: उपयोग होता है। इसकी मात्रा १ से ५ बूँद। केवल उल्टी रोकने के लिये—स्प्रिट क्लोरोफार्म ५ से २० बूँद।

बनावट—टिंचर क्लोरोफार्म ऐटमॉर्फिया—इसकी मात्रा ५ से १५ बूँद है। यह क्लोरोडीन से बहुत मिलता है।

ज़िंक (जस्ता)—बनावट—(१) ज़िंक ऑक्साइड—मात्रा ३ से

१० ग्रेन, (२) जिंक क्लोराइड, (३) जिंक सल्फेट-मात्रा—उल्टी के लिये १० से ३० ग्रेन। संग्राही गुण के लिये १ से २ ग्रेन। (४) जिंकवेलीरीनेट १ से ३ ग्रेन। जिंक ऑक्साइड का प्रलेप बनता है, जो रोपण और दुर्गन्धि-नाशक है। जिंक क्लोराइड में भी यही गुण है। विषों में उल्टी कराने के लिये जिंक सल्फेट का उपयोग होता है। इसके संग्राही गुण के कारण आँख में बरतने के लिये इसको गुलाबजल में घोलकर काम में लाते हैं। हिस्टीरिया, मृगी, कोरिया आदि वातिक रोगों के लिये जिंक वैलोरीनेट का उपयोग गोली के रूप में हींग के साथ किया जाता है। प्रदर, गनोरिया आदि में इसका प्रयोग किया जाता है, गनोरिया के लिये जिंक परमैंगनेट १ भाग, पानी ४००० भाग और प्रदर के लिये जिंक सल्फेट २ भाग, टिंचर लैवन्डर १५ भाग और पानी ५०० भाग तक उत्तम लोशन है। इसको 'रेड लोशन' करके पहिचाना जाता है।

टार्टरिक एसिड—अम्ल, शीतल, तृषाशामक है। यह दवाई क्रीम ऑफ टार्टार के रूप में या सोडावाटर के रूप में बरती जाती है। इसका गुण साइट्रिक एसिड से बहुत मिलता है। इसका उपयोग प्रायः झागदार मिश्रण बनाने में आता है, जो ज्वर में उपयोगी है। यथा—पोटैशियम बाई कार्ब १२ ग्रेन, अमोनिया कार्ब २ ग्रेन, सीरप जिंजीबर ३० बूँद, पानी १ औन्स; यह एक गिलास में, दूसरे गिलास में १० ग्रेन एसिड टार्टरिक घोलकर पीते समय में दोनों को मिलाकर पीना चाहिये।

नाइट्रिक एसिड—दाहक है। इसका उपयोग मुहाँसे जलाने में, व्रणों के दूषित पृष्ठ को साफ करने के लिये, तिलों को नष्ट करने के लिये किया जाता है। इसका हल्का रूप अस्थि के सड़ने में त्वचा के मस्सों या शोथ में काम आता है। इसको शीशे की शलाखा से लगाना चाहिये। लगाने से पूर्व चारोंओर की त्वचा को पैरोफीन के मरहम से सुरक्षित कर लेना चाहिये। हल्का नाइट्रिक एसिड शक्तिवर्धक, ताजा करनेवाला; जन्तुघ्न और पित्त निकालनेवाला है। यह पुरातन यकृत शोथ में, अजीर्ण में विशेषतः जब कि मूत्र में यूरेट या फौस्फेट आते हैं, उपयोग किया जाता है।

बनावट—डाइल्युट नाइट्रिक एसिड (१ नाइट्रिक एसिड और ४ भाग पानी)। मात्रा—५ से २० बूँद। (२) एसिड नाइट्रोम्युरेटिक (नाइट्रिक

एसिड ३ औन्स, हाइड्रोक्लोरिक एसिड ४ औन्स, पानी १५ औन्स, मात्रा ५ से १० बूंद है।

नाइट्रेट ऑफ सिल्वर—(अर्जैंटी नाईट्रास) इसकी श्वेत शलाकाएं बाजार में बिकती हैं, जो धूप में रखने से काली पड़ जाती हैं। इसका बाह्य उपयोग प्रायः दाहक गुण के लिये होता है। आँख के अन्दर के कुकरे जलाने के लिये, विषैले जन्तुओं के दंश के लिये, मस्से आदि को नष्ट करने के लिये इसका उपयोग किया जाता है। इसका दूसरा गुण है संकोचक। इसके लिये अतिसार आदि में, प्रदर में, सुजाक में, रक्तातिसार में, प्रवाहिका में इसकी वस्ति का उपयोग किया जाता है। इसका तीसरा उपयोग खिजाब में होता है। आँखों के लिये अरजैंटी नाइट्रेट २ ग्रेन, पानी एक औन्स। अन्दर लेने के लिये इसकी मात्रा ¼ से ½ ग्रेन है। यह आँतों के क्षत में, कॉलरा, रक्तस्राव में, प्रवाहिका में अन्तः उपयोग में लाया जाता है।

प्लम्बाई ऑक्साइड—(मुर्दाशङ्ख)—रोपण है।

बनावट—लेड प्लास्टर, (२) लम्बाई एसिटेट ऑफ लेड। गुण—शोधक और ग्राही है। (३) पिल लम्बाई कम ओपियाई—मात्रा २ से ४ ग्रेन, (४) सपोजैटरी लम्बाई कम ओपियाई (५) लेड लोशन १ औन्स पानी, और ५ ग्रेन शुगर ऑफ लेड।

उपयोग—खाज, कण्डू, व्रण, शोथ, रक्त संचय आदि में, सुजाक में और प्रदर में इसका लोशन बरता जाता है।

पोटाशियम—इसकी भिन्न भिन्न बनावटें निम्न प्रकार से हैं—

(१) लाइकर पोटाशियम—मात्रा १० से ३० बूँद। अम्ल विरोधी, मूत्रल, रक्तशोधक, संधिवात, आमवात, मंदवृद्धि, जलोदर, दाह आदि रोगों में उपयोगी है।

(२) कास्टिक पोटाश—दाहक, सड़े हुये व्रणों में मस्से आदि पर जलाने के लिये लगाते हैं।

कारबोनेट ऑफ पोटाश—मात्रा ५ से २० ग्रेन लाइकर पोटाश की भाँति रक्तशोधक और अम्लविरोधी।

(४) बाई कारबोनेट ऑफ पोटाश—मात्रा ५ से ३० ग्रेन। मूत्रल ज्वर में और संधिवात में उपयोगी।

(५) **एसिटेट ऑफ़ पोटाश**— मात्रा १५ से ६० ग्रेन। स्वेदक, मूत्रल और कफघ्न।

(६) **साइट्रेट ऑफ़ पोटाश**—मात्रा १५ से ६० ग्रेन। शोधक, मूत्रल, शीतल और अम्लविरोधी।

(७) **टार्टार ऑफ़ पोटाश**—मात्रा आधा से १ ड्राम। मूत्रल तथा रेचक। म्वेन की मात्रा आधा से ४ ड्राम।

(८) **एसिड टार्टार आफ़ पोटाश**—मात्रा ५ से २० ग्रेन। मूत्रल तथा रेचक है।

(९) **नाइट्रेट ऑफ़ पोटाश**—मात्रा १५ से ४५ ग्रेन। मूत्रल, स्वेदक तथा शीतल है।

(१०) **सल्फेट ऑफ़ पोटाश**—मात्रा १५ से ४५ ग्रेन। रेचक तथा शोधक है।

(११) **क्लोरेट ऑफ़ पोटाश**—मात्रा ५ से १५ ग्रेन। गुण, शीतल शोधक, मूत्रल और कफघ्न है।

(१२) **ब्रोमाइड ऑफ़ पोटाशियम**—५ से २० ग्रेन। गुण—निद्रा-लानेवाला, शीतल, कफघ्न।

(१३) **आयोडाइड ऑफ़ पोटाशियम**—मात्रा ५ से २० ग्रेन। रक्तशोधक और कफघ्न।

(१४) **परमैंगनेट ऑफ पोटाशियम**—मात्रा १ से ५ ग्रेन। रक्त-शोधक, जन्तुघ्न, दुर्गन्ध नाशक और विषघ्न।

फिनस्टीन—गुण—ज्वरघ्न, कफघ्न, शामक, निद्रा लानेवाली है। इसका असर हृदय पर बहुत ख़राब होता है। इसको देते समय रोगी की शक्ति का विचार करना चाहिये। इसका उपयोग प्रायः दर्द कम करने के लिये किया जाता है। मात्रा ५ से १५ ग्रेन। यह दवाई ऐंटीफ़ैब्रीन या ऐंटीपाईरीन की अपेक्षा हृदय को कम निर्बल करती है।

फ़ैरम (लोह)—गुण—रक्तशोधक, पौष्टिक, रक्त स्तम्भक, ग्राही, ऋतु लानेवाला है। लोह की मुख्य बनावटें नीचे दी जाती हैं—

(१) वाईनमफैरी—मात्रा १ से ४ ड्राम।

(२) टिं० फेराई परक्लोराइड मात्रा ५ से १५ बूँद।

(३) लाइकर फेराई परक्लो-राइड—मात्रा ५ से १५ बूँद।

(४) फेराई सल्फास—मात्रा १ से ५ ग्रेन।

(५) फेराई रिडैक्टम (लोह-भस्म) मात्रा—१ से ५ ग्रेन।

(६) फॉस्फेट ऑफ आयर्न—मात्रा ५ से १० ग्रेन।

(७) सिरप फैराई फॉस्फेट—मात्रा आधा से १ ड्राम।

(८) सिरप फैराई आयो-डाइड—मात्रा आधे से एक ड्राम।

(९) फैराई आयोडाइड—मात्रा १ से ५ ग्रेन।

(१०) फ़ैरी एट एमोनियम साइट्रेट—मात्रा ५ से १० ग्रेन।

(११) फ़ैरी एट क्युनीन साइट्रेट—मात्रा ५ से १० ग्रेन।

फॉस्फोरस—पौष्टिक। नपुंसकता रोग में उपयोगी है। यह हवा में रखने से जलने लगती है, इसलिये इसको पानी में रखते हैं। दियासलाई बनाने के काम आती है। फॉस्फोरस का उपयोग मस्तिष्क की और उत्पादक अंगों की निर्बलता में किया जाता है।

बनावट—(१) एसिड फ़ास्फोरिक डाइल्यूट—मात्रा ५ से २० बूँद। (२) सिरप हाइपो फ़ॉस्फेट कम्पाउण्ड है। मात्रा आधा से २ ड्राम। (३) फॉस्फोरस की गोलियाँ (४) ओलियम फॉस्फेरी, मात्रा १ से ५ बूँद। ४ औंस बादाम के तेल को गरम करके ठण्डा कर लेना चाहिये। इसमें १६ ग्रेन फॉस्फोरस मिलाकर बोतल को गरम पानी में रखना चाहिये। इसको हिलाते जाना चाहिये। मधु-प्रमेह में भी इसका उपयोग होता है। इससे प्यास कम होती है।

एसिड फॉस्फोरिक डाइल्युट १५ बूँद एक्सट्रैक्ट डैमियाना लिक्विड ३० बूँद, लाइकर स्ट्रिकनीन ५ बूँद, सीरप ऑरेन्साई ३० बूँद, वाइनम औरन्साई ४ ड्राम, पानी १ औंस, क्लीवता के लिये उपयोगी है।

बिस्मथ—गुण-ग्राही और शीतल है। शीतल गुण के कारण वमन को और ग्राही के लिये अजीर्ण, अतिसार, रक्तपित्त, अम्लपित्त में बरतते हैं। यह आमाशय और आँतों को श्लेष्मकला को शान्ति देता है। आमा-शय के विक्षोभ में, वमन में, अजीर्ण में उपयोगी है।

बनावट—बिस्मथ सब नाईट्रास—५ से २० ग्रेन, (२) बिस्मथ अमो-

नियम साइट्रेट (लाइकर) ३० से ६० बूंद, (३) कारबोनेट आफ़ बिस्मथ, मात्रा ५ से २० ग्रेन । (४) बिस्मथ सैलिसिलेट—मात्रा ५ से २० ग्रेन । बिस्मथ सबगॉल—जन्तुघ्न है । मात्रा ४ से ८ ग्रेन ।

बोरिक एसिड—गुण—रोपण है । व्रणों पर इसका उपयोग प्रसिद्ध है । इसको आयडोफार्म के साथ मिलाकर काम में लाते हैं । आँख के रोगों में इसका लोशन काम में आता है ।

बोरैक्स—मूत्रल, शीतल तथा ऋतु-स्रावक है । बोरेक्स—(२) ऋतु लाता है, अधिक मात्रा में लेने से गर्भपात करता है । मूत्र की वृद्धि करता है । मुँह और गले के रोगों में गरारे किये जाते हैं । मुख पाक में इसको शहद में मिलाकर लगाते हैं ।

बनावट—(१) मल बोरोसिस—टंकण ६० ग्रेन, ग्लीसरीन ½ ड्राम और मधु १ औन्स (२) ग्लीसरीन ऑफ़ बोरैक्स—टंकण १ औन्स, ग्लीसरीन ४ औंस, पानी २ औंस, मुखपाक आदि में उपयोगी है ।

मैगनेसियम एप्सम सॉल्ट—गुण—रेचक, मूत्रल और अम्ल-विरोधी है । ज्वर के प्रारम्भ में पेट साफ़ करने के लिये इसका उपयोग किया जाता है । पेट की खटाई को कम करता है । इसका विरेचन ठण्डा और हल्का है । इस दवाई के स्वाद के लिये पीपरमेंट, डाईल्यूट सल्फ्युरिक एसिड के थोड़े बूँदों को मिला देने से स्वाद अच्छा हो जाता है । मात्रा २ से ४ ड्राम । मूत्रल विधि में २० से ६० ग्रेन ।

लैक्टिक एसिड—मूत्र पिण्ड के रोगों में बरता जाता है । डिप्थीरिया आदि रोगों में भी बरता जाता है । इसको आठ गुणा पानी में मिलाकर गले में लगाने से लाभ होता है । मात्रा—डाइल्युट लैक्टिक एसिड—१५ से ३० बूँद ।

लीथिया—गुण—मूत्रल, अश्मरी दर, शीतल है ।

बनावट—(१) कारबोनेट ऑफ लीथिया । मात्रा—२ से ५ ग्रेन, (२) साइट्रेट ऑफ लीथिया ५ से १० ग्रेन, (३) साइट्रेट ऑफ लिथिया एफरवैसन्स ६० से १२० ग्रेन । इसका उपयोग शर्करा निकालने के काम आता है ।

सल्फर—गुण—शोधक, कृमिघ्न, जन्तुघ्न, कफघ्न और रेचक है ।

बनावट—सल्फ़र सब्लाइम । मात्रा—२० से ६० ग्रेन । (२) कनफैक्शन

ऑफ सल्फर, ६० से १२० ग्रेन । (३) गन्धक का मलहम, अन्दर लेने के लिये गन्धक की मात्रा ३० से ६० ग्रेन ।

सल्फ्युरिक एसिड—गुण—दीपन, पाचन, ग्राही, पौष्टिक, तृषा, शामक, (१) एसिड सल्फ्युरिक एरोमैटिक। मात्रा ५ से २० बूँद (२) डाईल्यूट सल्फ्युरिक एसिड, ५ से २० बूँद ।

उपयोग—ज्वरघ्न, तृषा-शामक है ।

सल्फोनल—स्नायु शैथिल्यकृत, पीड़ाशामक, निद्राकारक है । यह अनिद्रा-रोग में, जब पीड़ा हो रही हो, मस्तिष्क के रोग में, मधु-प्रमेह में, उन्माद में बरता जाता है । मात्रा—१० से ३० ग्रेन, सल्फोनल शान्ति-पूर्वक नींद लाता है; अफीम बेचैनी उत्पन्न करती है, क्लोरल हाईड्रास हृदय की गति को बन्द करता है ।

स्पिट वाइनम गैलीसाई—गुण—उष्ण, उत्तेजक, पाष्टिक, मादक है । ब्राण्डी उत्तेजक, मादक और बड़ी मात्रा में विषैली है । रोगी यदि ठण्डा हो रहा हो, हृदय-गति निर्बल हो, उस समय इसका उपयोग करना चाहिये । अनार्य चिकित्सा की यह औषधि 'हिरण्यगर्भ' की मात्रा है । प्रसव के पीछे जब शरीर निर्बल हो जाय तब इसका उपयोग करना उत्तम है । इसका बाह्य उपयोग भी होता है । यथा—गिर पड़ने पर इसका उपयोग करना उत्तम है । पीने को मात्रा—आधा से २ औन्स ।

सैलसीन—स्वेदक, मूत्रल, जन्तुघ्न, रोपण है ।

बनावट—सैलिसिलिक एसिड ५ से २० ग्रेन । (२) सोडियम सैलिसिलेट १० से ३० ग्रेन । यह दवा रक्त के अन्दर की अम्लता को कम करती है । ज्वर, संधिवात, गठिया, आदि रोगों में विशेष रूप से बरता जाता है । सैलिसिलिक एसिड का लोशन और प्रलेप बनता है । पुराने त्वचा-रोगों में विशेष उपयोगी है । इसको रिसोरसीन, नैपथोल और बीटा आदि कृमिघ्न वस्तुओं के साथ मिलाकर बरतना चाहिये ।

सैलोल—दुर्गन्धनाशक और शामक है ।। इसको जन्तुनाशक और दुर्गन्धनाशक गुण के लिये बरता जाता है । इसलिये अतिसार, टाईफाईड, मरोड़ा, प्रवाहिका, आमाशय क्षत में उपयोगी है । मात्रा ५ से १५ ग्रेन ।

सोडियम—इसकी बनावटें निम्न प्रकार हैं—

(१) लाइकर सोडियम—१० से २० बूँद । गुण—शोधक, मूत्रल

और अम्लविरोधी है। (२) कास्टिक सोडा—दाहक होने से व्रणों में और मस्सों पर उपयोगी होता है। (३) कार्बोनेट आफ सोडियम—मात्रा ५ से ३० ग्रेन। रक्तशोधक और अम्लविरोधी है। (४) बाई कार्बोनेट आफ सोडियम—मात्रा ५ से ३० ग्रेन। शोधक दीपन, पाचन और वातहर है। (५) सल्फेट आफ सोडियम—२ से ४ ड्राम। शोधक, मूत्रल, रेचक और अम्लविरोधी। (६) फास्फेट आफ सोडियम—२ से ४ ड्राम। रेचक, यकृत के लिये उपयोगी, मूत्रल। (७) सोडियम हाईपोफास्फेट—३ से १० ग्रेन रक्तशोधक पौष्टिक। (८) सोडियम क्लोराइड—रक्तशोधक, उष्ण, अग्निवर्धक, वामक। (९) सोडियम ब्रोमाइड—५ से २० ग्रेन। रक्तशोधक, कफघ्न, निद्राकारक। (१०) आयोडाइट आफ सोडियम—५ से २० ग्रेन। पोटाश आयोडाइड के समान कफघ्न, रक्तशोधक।

हाईड्रार्जराई (पारा-मर्करी)—गुण—रक्तशोधक, रेचक, रक्त की गाँठों को साफ करनेवाला, पित्तस्रावक है।

बनावट—(१) पिल हाईड्रार्जराई (ब्ल्युपिल) पारा २ औंस, गुलकन्द ३ औंस, मुलहठी १ औंस, मात्रा ४ से ८ ग्रेन (२) हाईड्रार्जराई कम क्रीटा (ग्रे पाउडर) मात्रा १ से ५ ग्रेन (३) परक्लोराईड आफ मर्करी—मात्रा १/३२ से १/१६ ग्रेन। (४) इसका प्रवाही लाइकर हाइड्रार्जराई पर क्लोराइड—आधा से १ ड्राम। इसका प्राय: लोशन बरता जाता है, जो (१ : १००० या २००० अथवा ५००) भिन्न-भिन्न ताकत का बनाकर भिन्न-भिन्न कामों में आता है। इसके क्षार से व्रण धोये जाते हैं।

हाइड्रोक्लोरिक एसिड (म्युरेटिक एसिड)—रक्तशोधक, पौष्टिक, भूख लगानेवाला, अजीर्ण में उपयोगी है। इसके ८ भाग में १८½ भाग पानी मिलाने से डाइल्युट होजाता है। इसकी मात्रा ५ से २० बूँद है। भूख न लगने पर भोजन से १५-२० मिनट पूर्व देना चाहिये।

हाइड्रोस्यनिक एसिड—गुण—पीड़ाशामक और कृमिघ्न है। यह तीव्र विष है। इसका डाईल्युट रूप अजीर्ण, वमन, आमाशय-विक्षोभ और त्वचा के विक्षोभ में काम आता है। जहाँ पर त्वचा फटी हो वहाँ पर इसका उपयोग नहीं करना चाहिये। इसकी ४० बूँद आदमी को तुरन्त मार सकती है। डाइल्युट हाईड्रोस्यिनिक एसिड की मात्रा २ से ५ बूँद है। इसकी बनावट एक्वा ल्युरोसी है।

प्राणी-वर्ग की औषधियाँ

कैन्थरेडिस—(विषैली मक्षिका)—गुण—मूत्रल, दाहक, उष्ण, कामोत्तेजक।

बनावट—(१) ओलियम कैन्थरेडिस (२) टिंचर कैन्थरेडिस (३) एम्पलास्ट्रम कैन्थरेडिस। इसका उपयोग स्थानिक रक्त-संचार बढ़ाने में होता है। जैसे बालों की उत्पादन-शक्ति को बढ़ाने के लिये, शिश्न पर लगाने के लिये अथवा छाला उठाने में इसका उपयोग होता है।

ऑग्ज़ीमल—गुण—शीतल और कफघ्न है।

बनावट—शहद ८ औंस, एसिड ऐसेटिक १ औंस, पानी १ औंस। मात्रा १ से २ ड्राम। कास में उपयोगी है। यह यूनानी शिकंजबीन से मिलती है।

कॉड लिवर ऑयल—"कॉड" नाम की मछली में से यह तेल निकलता है।

गुण—पौष्टिक, क्षय तथा अन्य निर्बलताओं में बरता जाता है। इसका अन्तः और बाहर दोनों प्रकार से उपयोग होता है। यह पचने में भारी है। इसका स्वाद खराब होता है। बाज़ार में एमलशन के रूप में भी मिलता है।

पैंपसीन—दीपन, पाचन, अग्निवर्धक है। मात्रा २ से ५ ग्रेन। इससे पैप्सीन वाइन बनती है। मात्रा १ से २ ड्राम। आमाशय या यकृत की निर्बलता में इसका उपयोग होता है। भोजन लेने के पीछे वाइनम का लेना अच्छा है। निरामिष भोजियों के लिये इसका स्थानापन्न "पैपीन" है। इसका भी वही गुण है।

मलहम (आयंटमैण्ट)

अगैंटम सिम्पल—श्वेत मोम २ औंस, चरबी ३ औंस, बादाम का तेल ३ औंस। इनको गरम पानी में रखकर मिलाना चाहिये। इनके पात्र को गरम पानी की पतीली में रखना चाहिये। सीधा आग पर रखकर गरम नहीं करना चाहिये।

अगैंटम आयोडीन--आयोडीन ३२ ग्रेन, पोटैशियम आयोडाईड ३२ ग्रेन, ग्लैसरीन १ औंस, प्रिपेयर्ड लार्ड २ औंस।

अं० आयडोफार्म--आयडोफार्म १ औंस, बैंज़ोयेटिड लॉर्ड ९ औंस।

अं० एसिड कार्बोलिक--कार्बोलिक एसिड ६० ग्रेन, नरम पैराफीन ७२० ग्रेन, हार्ड पैराफीन ३६० ग्रेन।

अं० कैन्थेरेडिस---कैन्थेरेडिस १ औंस, पीला मोम १ औंस, ऑलिव ऑयल ६ औंस।

अं० क्रियोज़ोट- क्रियोज़ोट १ ड्राम, सादा मलहम १ औंस।

अं० गैलिक--गॉल का चूर्ण ८० ग्रेन, बैंज़ोयेटिड लॉर्ड १ औंस।

अं० गॉल एण्ड ओपियम--अं० गैलिक १ औंस, अफीम ३२ ग्रेन।

उपयोग—अर्श रोग में।

अं० प्लम्बाई एसिटास--श्युगर लेड १२ ग्रेन, बैंज़ोएटिड लॉर्ड १ औंस।

अं० पीसीस--पीसीस ५ औंस, पीला मोम २ औंस।

अं० रेड आयोडाईड ऑफ मर्करी--रेड आयोडाईड ऑफ मर्करी १६ ग्रेन, सादा मलहम १ औंस।

अं० रेड ऑक्साइड ऑफ़ मर्करी—रेड ऑक्साइड ऑफ़ मर्करी ६२ ग्रेन, हार्ड पैराफ़ीन २ ड्राम, सॉफ्ट पैराफीन ६ औंस।

अं० रैज़ीनी (राल का मलहम)—राल ८ औंस, पीला मोम ४ औंस, सादा मलहम १६ औंस, बादाम का तेल २ औंस।

अं० बैलेडोना—अल्कोहलिक एक्सट्रैक्ट ऑफ बैलेडोना ५० ग्रेन, बैंज़ोइटेड लॉर्ड १ औंस।

अं० सल्फ्यूरस (गन्धक का मलहम)—गन्धक १ औंस, बैंज़ोइटेड लॉर्ड ४ औंस।

अं० सैलिसिलिक एसिड—सैलिसिलिक एसिड ६० ग्रेन, सॉफ्ट पैराफीन १०८० ग्रेन, हार्ड पैराफीन ५४० ।

अं० यूक्लिप्टी—यूक्लिप्टस ऑयल १ औंस, सॉफ्ट पैराफीन २ औंस, हार्ड पैराफीन २ औंस।

अं० हाइड्रार्जराई (ब्लु आइंटमैण्ट)—पारा १ पौंड, प्रिपेर्ड लॉर्ड १ पौंड, प्रिपेर्ड स्वेट १ औंस। जब तक पारे की चमक नष्ट न हो, तब तक रगड़ते रहना चाहिये।

अं० हाइड्रार्जराई कम्पाउण्ड—पारा का मलहम ६ औंस, पीला मोम ३ औंस, ऑलिव ऑयल ३ औंस, कपूर १॥ औंस। मोम को गरम करके इसमें ऑलिव ऑयल मिलाना चाहिये। पीछे पारे का मलहम और कपूर मिलाना चाहिये।

अं० टैरिबिन्थिनी (टरपैण्टाइन का मलहम)—टरपैण्टाइन १ औंस, गल ५४ ग्रेन, पीलामोम ½ औंस, प्रीपेर्ड लॉर्ड ½ औंस।

अं० ज़िङ्की (जस्त का मलहम)—जिङ्क ऑक्साइड ८० ग्रेन, बैंज़ोएटिड लॉर्ड १ औंस।

लिनीमैण्ट—मालिश का तेल

लिनीमैण्ट एकोनाइट—बछनाग का चूर्ण १७ औंस, कपूर १ औंस, रैक्टीफाइड स्प्रिट २० औंस। सबको मिलाकर ७ दिन तक रखना चाहिये। पीछे से छान लेना चाहिये।

लि० एमोनिया—लाइकर एमोनिया १ औंस, ऑलिव ऑयल या अलसी का तेल ३ औंस।

ली० ओपिआई—टिंचर ओपिआई २ औंस, लिनीमैण्ट ऑफ सोप २ औंस।

लि० आयोडाइड—पोटाशियम आयोडाइड ४ ड्राम, आयोडीन १। औंस, ग्लैसरीन २ ड्राम, रैक्टीफाईड स्प्रिट १० औंस।

लि० कैल्सिस (चूने का लिनीमेंट)—लाइम वाटर दो औंस, ऑलिव ऑयल २ औंस।

लि० कैम्फ़र—कपूर १ औंस, ओलिव ऑयल ४ औंस।

लि० कैम्फ़र कम्पाउण्ड—कपूर २॥ औंस, लैवण्डर तेल १ ड्राम, स्ट्राँग लाइकर अमोनिया ५ औंस और रैक्टीफाइड स्प्रिट १५ औंस।

लि० कैरोन—चूने का पानी ५ औंस, अलसी का तेल ५ औंस।

लि० क्लोरोफ़ार्म—क्लोरोफ़ार्म २ औन्स, लिनिमैण्ट कैम्फ़र २ औंस।

लि० क्रोटोनीस—जमालगोटे का तेल १ औन्स, कैजुपुटी ऑयल ३॥ औन्स, रैक्टीफ़ाइड स्प्रिट ३॥ औन्स।

लि० टेरीबेन्थीन—कम्पाउण्ड टरपैण्टाइन ४ औन्स, एसिड एसिटिक १ औन्स, लिनीमैण्ट कैम्फर ४ औन्स।

लि० बेलेडोना—बैलेडोना की जड़ २० औन्स, कपूर १ औन्स, रैक्टीफ़ाइड स्प्रिट इतनी कि मिलकर ३० औन्स हो जाये।

लि० हाइड्राजराई—पारे का मलहम १ औन्स, लाइकर एमोनिया १ औन्स, लीनीमैण्ट कैम्फर १ औन्स।

लि० सैपोनिस—साबुन २ औन्स, कपूर १ औन्स, राजमरी का तेल ३ ड्राम, रैक्टीफ़ाइड स्प्रिट १६ औन्स।

प्लास्टर—लेप

एम्प्लास्ट्रम हाइड्राजराई एमोनैटा—अमोनिया १२* औन्स, मर्करी ३ औन्स, अलसी का तेल १ ड्राम, गन्धक ८ ग्रेन।

ए० ओपियम—अफ़ीम का चूर्ण १ औन्स, राल का प्लास्टर ९ औन्स गरम पानी में मिलाना चाहिये।

ए० कैन्थरिडस—कैन्थरिडस का चूर्ण १० औन्स, पीला मोम ७॥ औन्स, चरबी का चूर्ण ७॥ औन्स, राल का चूर्ण ३ औन्स, प्रिपैर्ड लॉर्ड ६ औन्स।

ए० प्लम्बाइ आयोडाइड—प्लम्बाई आयोडाइड २ औन्स, लेड प्लास्टर १ पौंड, राल २ औन्स।

ए० रैज़ीन—राल का चूर्ण ४ औंस, लेड प्लास्टर २ पौंड, कार्ड सोप २ औंस।

ए० बैलेडोना—अल्कोहलिक एक्सट्रैक्ट ऑफ बैलेडोना ४ औंस, रैज़ीन प्लास्टर ८ औंस, सोप प्लास्टर ८० औंस। गुमडों को पकाने के लिये या बैठाने के लिये प्राय: बरता जाता है।

ए० सोप—कार्ड सोप ६ औंस, लेड प्लास्टर २। पौंड, राल १ औंस।

ए० हाइड्रार्जराई—पारा ३ औंस, ऑलिव ऑयल ५६ ग्रेन, गन्धक ८ ग्रेन, लेड प्लास्टर ६ औंस।

ए० मस्टर्ड—राई २½ औंस, अलसी २½ औंस, पानी ८ औंस, ठंडा पानी २ औंस। प्रथम अलसी को गरम पानी में और राई को ठंडे पानी में मिलाकर दोनों को मिलाना चाहिये।

लोशन—धोने का पानी

फिटकरी का लोशन—फिटकरी २० ग्रेन, डिस्टिल्ड वाटर ८ औंस। आँख, कान, मूत्र-मार्ग को धोने के लिये उपयोगी है। सूज़ाक में भी उपयोगी है।

ज़िंक लोशन—सल्फेट ऑफ जिंक ८ ग्रेन, पानी ८ औंस। आँख दुखने मे और सूज़ाक में बरता जाता है।

बाई कार्बोनेट ऑफ सोडा—१ ड्राम, पानी ८ औंस। खाज, कण्डु तथा अन्य चमड़े के रोगों में उपयोगी है।

कार्बोलिक लोशन—कार्बोलिक एसिड १ औंस, पानी ४० औंस। व्रणों के धोने के लिये उपयोगी है।

परक्लोराईड ऑफ मर्करी—रसकपूर १८ ग्रेन, लाइम वाटर १० औन्स या १ भाग रसकपूर, १००० से २००० भाग पानी।

हाइड्रार्जराई नीग्रा (ब्लैक वाश)—कैलोमल ३० ग्रेन, लाइम वाटर १० औंस—उपदंश के रोगों में उपयोगी है।

बोरेक्स लोशन—टंकण १ से २ ड्राम, ग्लैसरीन १० ड्राम, कपूर का पानी ८ औंस—खाज को धोने के लिए।

जिंक तथा एलम लोशन—सल्फेट ऑफ जिंक २० ग्रेन, एलम ४० ग्रेन, ग्लैसरीन १ ड्राम, गुलाब का जल ८ औंस। खाज, दाह, जलन में उपयोगी है।

हाईपोसल्फ़ेट ऑफ़ सोडा—हाइड्रार्जराई सल्फेट ऑफ़ सोडा २ से ४ ड्राम, ग्लैसरीन २ ड्राम, पानी ८ औन्स। कण्डू आदि के लिये उपयोगी है।

सल्फ़र लोशन—गन्धक २ ड्राम से ४ ड्राम, रैक्टीफाइड स्प्रिट २ ड्राम, ग्लैसरीन १ ड्राम, लाइम वाटर २ औन्स, गुलाबजल ८ औन्स। खाज के ऊपर रात्रि में लगाकर प्रातः धोना चाहिये।

अँग्रेज़ी दवाइयों के साधारण गुण

Alteratives	रक्तशोधक दवाइयाँ	Disinfectants	दुर्गन्धनाशक
Anodyne	पीड़ाशामक	Emetics	वामक
Antacids	अम्लविरोधी	Emmenagogues	ऋतु लानेवाली
Anthelmintics	कृमिघ्न दवाइयाँ	Emmollients	त्वचा को नर्म करनेवाली
Antiseptics	जन्तुनाशक दवाइयाँ	Expectorants	कफघ्न
Anti-spsmodics	स्नायुशैथिल्य कृत	Hemostatics	रक्तस्तम्भक
Antiperiodics	बारी के ज्वर को रोकनेवाली	Irritants	जलन पैदा करनेवाली
Antipyretics	ज्वरहर औषधियाँ	Laxatives	सारक, दस्त को साफ़ करनेवाली
Aphrodisiacs	कामोत्तेजक	Narcotics	निद्राकारक
Astringents	संग्राही दवाइयाँ	Refrigerants	ठंडक करनेवाली
Chalogogue	पित्तसारक	Rubefacients	त्वचा को लाल करनेवाली
Carminatives	वातहर	Sedatives	शामक
Cathartics	रेचक	Sudorific	पसीना लानेवाली
Caustics	दाहक	Sialagogue	लार लानेवाली
Diaphoratics	स्वेदक	Stimulents	उत्तेजक
Diuretiets	मूत्रल दवाइयाँ	Stomachics	भूख लगानेवाली

अँग्रेज़ी नुस्खे

सारक तथा रेचक नुस्ख़े

Aperients & Purgatives

(१) पोडोफ़िलीन रेज़ीन ½ ग्रेन, कम्पाउण्ड रूबर्ब पिल २½ ग्रेन, एक्सट्रैक्ट ऑफ़ हाईसॉमस १½ ग्रेन मिलाकर एक गोली बनानी चाहिये। यह गोली रात्रि को लेनी चाहिये। यदि इसका प्रभाव भली प्रकार न हो तो प्रातःकाल साईट्रेट मैगनेशिया या एपैण्टा वाटर, अथवा सिडलिट्ज़ पाउडर प्रातःकाल लेना चाहिये। यह गोलियाँ प्रायः सब को अनुकूल होती हैं।

(२) सोडा सल्फ़ेट ४ ड्राम, टिंचर जिंजर १२ बूँद, पानी २ औन्स मिलाकर पीने से दस्त होता है।

(३) सोडा सल्फ़ेट ६ ड्राम, क्युनीन २० ग्रेन, सल्फ़ेट ऑफ़ आयर्न १५ ग्रेन, पानी ८ औन्स मिलाकर दो चाय के चम्मच प्रत्येक चार घण्टे के अन्तर से लेने चाहिये। प्लीहा, नष्टार्त्तव में और केंचुवे के लिये हितकर है।

(४) सोडियम सल्फ़ेट ६ ड्राम, सल्फ़्युरिक एसिड डाईल्यूट १ ड्राम, गुलाब के फूल की चाय ८ औन्स मिलाकर एक-एक औन्स की मात्रा में लेना चाहिये। गर्भपात, रक्तप्रदर, नकसीर, रक्तस्राव में उपयोगी है।

(५) मेगनेशियम सल्फ़ेट ६ ड्राम, टिंचर डिजीटेलिस ८ बूँद, कैम्फ़र मिक्सचर दो औन्स मलबन्ध के साथ यदि दमे का आ मण हो तो उसमें उपयोगी है।

(६) मैगनेशियम बाई कार्ब १० ग्रेन, सोडियम बाई कार्ब ८ ग्रेन, इन्फ्यूज़न सेना १ औन्स। अम्लपित्त में उपयोगी है, यकृत के लिये भी अच्छा है।

(७) इयोनीमन १२ ग्रेन, एक्सट्रैक्ट हाईसैामिया १८ ग्रेन, एक्सट्रैक्ट जैन्शन १८ ग्रेन, एक्सट्रैक्ट बैलेडोना ३ ग्रेन मिलाकर १२ गोली बनानी चाहिये। यकृत के लिये उत्तम विरेचक है।

(८) ब्ल्यूपिल ५ ग्रेन, कैलोमल ५ ग्रेन मिलाकर दो गोली बनानी चाहिये। यह एक तीव्र विरेचक है।

(९) ब्ल्यूपिल ५ ग्रेन, एक्सट्रैक्ट कोलोसिन्थ कम्पाउण्ड ५ ग्रेन मिलाकर दो गोली बनानी चाहिये। यह साधारण विरेचक है।

(१०) एक्सट्रैक्ट कोलोसिन्थ कम्पाउण्ड ५ ग्रेन, कम्पाउण्ड रूबर्ब पिल ५ ग्रेन मिलाकर दो गोली बनानी चाहिये। साधारण विरेचक है।

(११) कैलोमल ५ ग्रेन, पल्व जैलपको १ ड्राम, एक तीव्र विरेचक है। जलोदर रोग में उपयोगी है।

(१२) पोडोफिलीन रेजीन १½ ग्रेन, एक्सट्रैक्ट कोलोसिन्थ कम्पाउण्ड ३० ग्रेन, पल्व एपिकाक ४ ग्रेन, थोड़ा-सा गोंद का पानी मिलाकर १२ गोली बनानी चाहिये। एक-एक गोली दिन में दो बार, कलेजे के दर्द में, मलबंध में उपयोगी है।

(१३) पिल एलोज एट मर ३ ग्रेन, ब्लूपिल १ ग्रेन, एक्सट्रैक्ट ट्रैक्सीसाई २ ग्रेन, एक्सट्रैक्ट स्टमोनियम ½ ग्रेन, मिलाकर दो गोली बनानी चाहिये। श्वास में उपयोगी।

(१४) सल्फेट ऑफ आयर्न २० ग्रेन, एक्सट्रैक्ट एलोज १५ ग्रेन, पल्व रूबर्ब २० ग्रेन, मिलाकर १२ गोली बनानी चाहिये। मलबन्ध के लिये और देर में ऋतु आने के लिये उपयोगी है।

(१५) रूबर्ब पाउडर १ औंस, जिंजर पाउडर ½ औंस, मैगनेशियम कार्बोनेट ३ औंस, इसको 'पल्व ग्रिहाई कम्पाउण्ड' भी कहते हैं। मात्रा ½ से १ ड्राम। अजीर्ण, खट्टी डकारों में पिपरमेंट के पानी के साथ बच्चों को देना चाहिये। मात्रा १० ग्रेन देने से जुलाब होता है।

रक्तशोधक

(Alteratives)

ये वे औषधियाँ हैं, जो रक्त की अवस्था को बदल देती हैं, अथवा मूत्रपिण्ड, यकृत और आँतों के स्राव में परिवर्त्तन कर देती हैं।

(१६) डोवर्स पाउडर १० ग्रेन, क्युनीन ३ ग्रेन, पल्व एपिकाक १ ग्रेन, मिलाकर पाउडर बनाना चाहिये। प्रवाहिका और अतिसार में उपयोगी है। रात्रि के समय लेना चाहिये।

(१७) पोटाशियम ब्रोमाइड १ ड्राम, पानी डिस्टिल्ड ६ औंस, इसका एक-एक औंस, वात-जन्य रोगों में दिन में तीन बार लेना चाहिये।

(१८) डोवर्स पाउडर २ ग्रेन, क्युनीन १ ग्रेन, २ साल के बच्चे के

लिये एक पुड़िया प्रातः और १ पुड़िया शाम को देनी चाहिये। एक साल के बच्चे के लिये १/२ मात्रा और ६ महीने के लिये १/४ मात्रा है।

(१९) पोटाशियम ब्रोमाइड १/२ ड्राम, स्प्रिट ईथर नाइट्रोसाई १/२ ड्राम, श्वेत शर्करा १ ड्राम, पानी १ १/२ औंस, मिलाकर मिश्रण बनाना चाहिये। बच्चों के आक्षेपों में और वातजन्य दर्दों में उपयोगी है। एक या दो साल के बच्चे के लिये एक छोटा चम्मच प्रत्येक दूसरे घंटे में देना चाहिये।

(२०) पोटाशियम आयोडाइड १ ड्राम, पानी ८ औंस, एक औंस की मात्रा दिन में तीन बार लेनी चाहिये। उपदंश जन्य रोगों के लिये उपयोगी है।

(२१) मैगनेशिया बाई कार्ब १५ ग्रेन, ऑयल ऑफ एनेसी २ बूँद, पानी १ १/२ औंस, पेट में वायु भरा हो, तो इसके लिये उपयोगी है। गर्भावस्था में भी उपयोगी है।

(२२) कैलोमल २ ग्रेन, एक्सट्रैक्ट अफीम १/४ ग्रेन, एक गोली बनानी चाहिये। शरीर में जब पारा की क्रिया अभीष्ठ हो, उस समय देनी चाहिये।

(२३) ब्लू पिल २ ग्रेन, एक्सट्रैक्ट ओपियाई १/४ ग्रेन, पल्व एपिकाक १/४ ग्रेन, प्रवाहिका और अतिसार में उपयोगी है।

(२४) पाउडर रुबर्ब २० ग्रेन, सोडा सल्फेट २० ग्रेन, स्प्रिट एमोनिया एरोमैटिक ३० बूँद, ऑयल ऑफ पिपरमेंट १ बूँद, पानी २ औंस, अम्ल-पित्त और गर्भावस्था की बेचैनी में उत्तम है।

(२५) लाईकर पोटाश १ ड्राम, पानी छः औंस तथा—टिंचर हाईसोमस ६ औंस, टिंचर सिंकोना २ ड्राम, इनफ्यूजन बकु ६ औंस, इन दोनों को अलग-अलग बनाकर पीने के समय मिलाना चाहिये। मूत्राशय के विक्षोभ के लिये उत्तम है। साधारणतः हाईसोमस और अफीम आदि क्षार से नहीं मिलाये जाते।

(२६) सोडा बाई कार्ब १ ड्राम, पानी ६ औंस तथा टिंचर हाईसोमस २ ड्राम, ऐकोनाइट का काढ़ा ६ औंस, दोनों अलग-अलग घोलकर पीने के समय मिलाना चाहिये। मूत्राशय के पुरातन रोग में लाभदायक है।

(२७) सोडा बाई कार्बोनेट २ ड्राम, वाइनम कोलचीकम २ ड्राम, स्प्रिट ईथर नाइट्रोसाई २ ड्राम और पानी ८ औंस। संधिवात और आम-वात के लिये उपयोगी।

(२८) एसिड बैंजोइक १ ड्राम, एमोनिया कार्ब १ ड्राम, पानी ८ औंस, एक-एक औंस की मात्रा, दिन में तीन बार पीनी चाहिये। पुरातन मूत्राशय शोथ, मूत्रमार्ग के रोगों में उपयोगी है।

(२९) एक्सट्रैक्ट ट्रैक्सीसाई २ ड्राम, एसिड हाइड्रोक्लोरिक डिल १ ड्राम, इन्फ्यूजन जैंशन ८ औंस, १ औंस की मात्रा दिन में तीन बार लेनी चाहिये। कामला और यकृत रोग में उपयोगी है।

(३०) सोडा बाई कार्ब २ ड्राम, टिंचर रुबर्ब ½ औन्स, टिंचर जिंजर १ ड्राम, स्प्रिट क्लोरोफार्म १ ड्राम, पानी ६ औन्स। १ औन्स की मात्रा दिन में तीन बार। कामला में उपयोगी है।

(३१) एसिड नाइट्रिक डिल १ ड्राम, एसिड हाइड्रोक्लोरिक डिल १ ड्राम, टिंचर जिंजर १ ड्राम, पानी ८ औंस, मात्रा १ औन्स। दिन में तीन बार। यकृत रोग, अजीर्ण और प्रवाहिका में उपयोगी है।

(३२) पोटाशियम बाई कार्बोनेट १॥ ड्राम, पानी ८ औंस ज्वर में और मूत्र रोग में उपयोगी है। त्वचा के बाह्य रोगों में इसका लोशन बरता जाता है। मात्रा १ औंस।

(३३) झागदार दवाइयाँ—

(क) २० ग्रेन पोटाशियमबाईकार्ब को २ औंस पानी में घोलकर पीते समय इसमें १४ ग्रेन साइट्रिक एसिड मिलाना चाहिये।

(ख) १७ ग्रेन सोडा बाई कार्ब २ औन्स पानी में घोलकर १० ग्रेन साइट्रिक एसिड पीते समय मिलाना चाहिये।

उपयोग—अम्लपित्त में।

(ग) २ ड्राम सोडा बाई कार्ब, आठ औंस पानी में घोलकर रखना चाहिये। दूसरे गिलास में १ ड्राम टार्टरिक एसिड चार औंस पानी में मिलाकर रखना चाहिये। पीते समय प्रथम गिलास में से चार ड्राम लेकर मिलाकर पीना चाहिये। यह ज्वर में और गर्भावस्था के रोगों में उपयोगी है।

(घ) ग वाले मिश्रणों में २० बूँद स्प्रिट क्लोरोफार्म मिलाकर पीते समय हिलाकर लेना चाहिये। गर्भावस्था-कालीन रोगों में उपयोगी है।

(३४) पोटाश बाई कार्ब २ ड्राम, पोटाशियम नाइट्रेट ३० ग्रेन, टिंचर जिंजर १ ड्राम, पानी ८ औंस, १ औंस की मात्रा में लेना चाहिये।

अजीर्ण या आमवात में जब मूत्र गँदला और गहरा पीला आता है।

सूचना—एसिडवाली दवाइयाँ लेने के पीछे मुँह को अच्छी तरह साफ कर लेना चाहिये।

स्नायु शैथिल्यकृत और शामक

(३५) टिंचर जिंजर स्ट्रॉग १ ड्राम। स्प्रिट एमोनिया एरोमैटिक १ ड्राम, स्प्रिट ईथर नाइट्रोसाई १ ड्राम, ब्रांडी १ औन्स। १ ड्राम की मात्रा को एक गिलास पानी में मिलाकर प्रत्येक घंटे के अन्तर से देना चाहिये। ६ महीने के बच्चे के लिये ३ या ४ बूँद। यह दवा मजबूत काग लगाकर रखनी चाहिये।

उपयोग—अतिसार और हैजे में।

(३६) स्प्रिट क्लोरोफार्म १ ड्राम, स्प्रिट एमोनिया एरोमैटिक १ ड्राम, क्लोरोडीन १ ड्राम, ब्रांडी १ औन्स नम्बर ३५ की भाँति व्यवहार करना चाहिये।

(३७) क्रीटा प्रिपरेटा १ ड्राम, स्प्रिट एमोनिया एरोमैटिक २ ड्राम, टिंचर ओपियाई ४० बूँद, कैम्फर मिक्सचर ८ औंस। मात्रा—१ औन्स। अतिसार और अजीर्ण के लिये उपयोगी है।

(३८) एक्सट्रैक्ट कोनायम ३ ग्रेन, एक्सट्रैक्ट इण्डियन हैम्प ½ ग्रेन, कैम्फर १ ग्रेन। एक गोली बनानी चाहिये। श्वास-रोग में उपयोगी है।

संकोचक

Astringents

ये औषधियाँ स्रावों को कम करती हैं, और बाहर त्वचा पर लगाने से रक्तवाहिनियों के मुखों को बन्द कर देती हैं।

(३९) फिटकरी का चूर्ण १ ड्राम, पानी ८ औन्स। १ औन्स की मात्रा। गर्भपात, रक्तप्रदर प्रवाहिका में उपयोगी है। बाहर भी लगा सकते हैं।

(४०) एसिड सल्फ्यूरिक डाईल्यूट २ ड्राम, टिंचर जिंजर १ ड्राम, पानी ८ औंस। मात्रा—१ औंस। प्रत्येक ४ घन्टे के अन्तर से। गर्भपात या फुप्फुस से होनेवाले रक्तस्राव में, अजीर्ण में उपयोगी है।

(४१) लेड एसिटेट ३ ग्रेन, टिंचर ओपियाई ५ बूँद। पानी १॥ औंस। आंत या फेफड़ों से होनेवाले रक्तस्राव के लिये उत्तम है। मात्रा—१ औंस। प्रत्येक ३ या ४ घंटे के अन्तर से लेना चाहिये।

(४२) सल्फ्युरिक एसिड डाईल्युट २५ बूँद, टिंचर ओपियाई ८ बूँद, पानी १ औन्स। रक्तस्राव के लिये, अतिसार या प्रवाहिका में उपयोगी है। ६ महीने के बच्चे के लिये ३० बूँद और १ साल के बच्चे के लिये ६० बूँद मात्रा है।

(४३) गैलिक एसिड ५ ग्रेन, पानी २ औन्स। दिन में तीन बार लेना चाहिये। फेफड़े और आमाशय से होनेवाले रक्तस्राव में उपयोगी है। प्रवाहिका और अतिसार में भी व्यवहार कर सकते हैं।

(४४) लेड एसिटेट ३ ग्रेन, एक्सट्रैक्ट ओपियम $\frac{1}{4}$ ग्रेन। एक गोली बनानी चाहिये। रक्तस्राव, प्रवाहिका और अतिसार में उपयोगी है।

(४५) पल्व क्रीटा एरोमैटिक कम ओपयाई ५ ग्रेन, सोडा बाई कार्ब १ ग्रेन, फिटकरी का चूर्ण १ ग्रेन। इसकी एक पुड़िया रात्रि को सोते समय और एक प्रातःकाल भी लेनी चाहिये। प्रवाहिका और अतिसार में उपयोगी है।

(४६) एसिड सल्फ्युरिक डाईल्युट २० बूँद, टिंचर केटेच्यु ४० बूँद, सीरप जिंजर २ ड्राम, पानी १० ड्राम। ६ महीने के बच्चे के लिये ३० बूँद मात्रा पर्याप्त है। ६० बूँद १ साल के बच्चे के लिये और २ ड्राम १॥ साल के लिये उपयोगी है। अतिसार और प्रवाहिका में।

स्वेदक और मूत्रल

जो औषधियाँ वृक्कों पर और मूत्रमार्ग पर प्रभाव करके मूत्र की राशि को बढ़ाती हैं, उनको मूत्रल कहते हैं; और जो दवाई त्वचा पर प्रभाव करके पसीना लाती हैं उनको स्वेदक कहते हैं। ये दवाइयाँ ज्वर उतारने के लिये प्रायः बरती जाती हैं।

(४७) पोटाशियम नाईट्रेट १ ड्राम, स्प्रिट ईथर नाईट्रोसाई ३ ड्राम, पानी ८ औन्स।

उच्च ताप परिमाण में प्रत्येक मात्रा और ५ ग्रेन एंटीपाइरीन को १ ड्राम ब्रांडी में घोलकर और पानी १ औन्स मिलाकर प्रत्येक ३ घंटे के अन्तर से देना चाहिये। जिस प्रकार ताप परिमाण घटे, उसी प्रकार मिश्रण की मात्रा भी कम कर देनी चाहिये।

उपयोग—ज्वर में, आमवात में और मूत्र बढ़ाने में ।

(४८) स्प्रिट ईथर नाइट्रोसाई १ ड्राम, स्प्रिट एमोनिया एरोमैटिक आधा ड्राम, वाइनम एपिकाक २० बूँद, पानी १।। औन्स। ६ महीने के बच्चे के लिये प्रत्येक ३ घंटे के अन्तर से ६० बूँद देना चाहिये । ज्वर में विशेषत: जब त्वचा ख़ुश्क हो, यदि आमाशय में विक्षोभ हो तो वाइनम एपिकॉक को हटा देना चाहिये ।

(४९) पोटाशियम नाईट्रेट ४० ग्रेन, स्प्रिट ईथर नाइट्रोसाई २ ड्राम, टिंचर कैन्थरेडिस २ ड्राम, पानी ८ औन्स । मात्रा—१ औंस । प्रत्येक ३ घंटे के अन्तर से देना चाहिये । विसूचिका (हैज़े) में जब मूत्र सर्वथा न आता हो ।

(५०) पोटाशियम नाइट्रेट ४० ग्रेन, स्प्रिट ईथर नाइट्रोसाई २ ड्राम, वाइनम कौलचीकम २ ड्राम और पानी ८ औन्स । १ औन्स की मात्रा ३ घंटे के अन्तर से आमवात में देनी चाहिये ।

वमन लानेवाली

Emetics

क़ै लानेवाली औषधियाँ वे हैं, जो आमाशय को संकुचित करके उसके अन्दर की वस्तु को अन्न-प्रणाली तथा मुखमार्ग से बाहर कर देती हैं । प्राय: जो वस्तुयें काम में आती हैं वे ये हैं—मस्टर्ड (राई), नमक, टार्टार एमिटिक, वाइनम एपिकाक, जिंक सल्फेट । इनमें वाइनम एपिकाक सब से उत्तम वामक है । इसको बच्चों में भी बरत सकते हैं ।

(५१) राई का चूर्ण चार ड्राम, नमक सेंधा ६० ग्रेन और पानी गरम १० से १२ औंस । रोगी को सब पिला देना चाहिये । यह दवाई ५ से ८ मिनट में प्रभाव करेगी । बच्चों के लिये ६० ग्रेन राई और १५ ग्रेन नमक तथा एक गिलास गरम पानी पर्याप्त है । वामक औषधि के साथ गरम पानी पर्याप्त मात्रा में बार-बार देना चाहिये । नमक के स्थान पर जिंक सल्फेट १० से ३० ग्रेन या कॉपर सल्फेट ५ से १० ग्रेन भी बरत सकते हैं ।

श्लेष्मा-निःसारक

Expectorants

कफघ्न औषधियाँ वे हैं, जो श्वास-प्रणाली की श्लेष्म कला पर और कुछ अंशों में सारे शरीर पर प्रभाव करके श्लेष्मा को निकालने में सहायता करती हैं।

(५२) स्प्रिट एमोनिया एरोमैटिक २ ड्राम, स्प्रिट ईथर नाइट्रोसाई ४ ड्राम, टिंचर जिंजर १ ड्राम और पानी ५½ औंस। मात्रा १ औन्स। प्रत्येक २ या ३ घन्टे के अन्तर से देना चाहिये। श्वास-मार्ग के आक्रमण और पुरातन-कास के लिये उत्तम है।

(५३) टिंचर कैम्फ़र को ३ ड्राम, स्प्रिट एमोनिया एरोमैटिक २ ड्राम, पानी ८ औन्स। नम्बर (५२) की तरह उपयोगी है।

(५४) टिंचर कैम्फर को ३ ड्राम, वाइनम एपिकाक १ ड्राम, स्प्रिट ईथर नाईट्रोसाई ३ ड्राम और पानी ७ औंस। १ औन्स की मात्रा प्रत्येक ३ या ४ घंटे के अन्तर से सर्दी, प्रतिश्याय, फेफड़ों के आक्रान्त होने में और कास-रोग में उपयोगी है। बच्चों के लिये भी उपयोगी है। १ साल के बच्चे के लिये मात्रा १ ड्राम है।

(५५) कपूर (कैम्फ़र) १ ग्रेन, पल्व एपिकाक ३ ग्रेन, थोड़ी-सी गोंद के पानी के साथ एक गोली बनानी चाहिये। दमे के लिये प्रत्येक दो घन्टे के अन्तर से लेना चाहिये।

(५६) टार्टार एमेटिक १ ग्रेन, टिंचर कैम्फर को २ ड्राम, पानी गरम उबलता हुआ १२ औन्स। मिश्रण को ठण्डा होने देना चाहिये। १ औंस की मात्रा २ या ३ घण्टे के अन्तर से देनी चाहिये। कास, पार्श्वशूल, निमोनिया में उपयोगी है।

(५७) टिंचर कैम्फ़र को ३ ड्राम, वाइनम एपिकाक २ ड्राम, टिंचर सिल्ला १ ड्राम, पानी ८ औंस। मिश्रण बनाना चाहिये। मात्रा १ औंस। कास रोग में उपयोगी है। यदि अम्लपित्त और अजीर्ण के लक्षण हों तो ८ औंस पानी में ४० ग्रेन सोडा बाइ कार्ब घोलकर अलग रखना चाहिये। मात्रा १ औंस। इसको भी अन्तर से देना चाहिये। बच्चों के कास के लिये उत्तम है। १ साल के बच्चे के लिये ६० बूँद की मात्रा है।

(५८) मैगनेशियम कार्बोनेट २५ ग्रेन, पिपरमेंट आयल २ बूँद और पानी १ औंस। १ या २ साल के बच्चे के लिये ६० बूँद, दिन में ३ या चार बार देना चाहिये। पिलाने से पूर्व बोतल को भली प्रकार हिला लेना चाहिये।

(५९) जिंक सल्फेट २ ग्रेन, टिंचर कैम्फर को ६० बूँद, पानी १॥ औन्स १ साल के बच्चे के लिये ६० बूँद मात्रा है। कुक्कर खाँसी (हुपिंग कफ) में उपयोगी है।

(६०) एक्सट्रैक्ट कोनियम ३ ग्रेन और पानी १॥ औंस। १ साल के बच्चे के लिये ६० बूँद मात्रा है। हुपिंग कफ में उपयोगी है। पिलाने से पूर्व बोतल हिला लेनी चाहिये।

निद्रा लानेवाली

जो दवाइयाँ दर्द को कम करके निद्रा लाती हैं, उनको 'निद्रालु' कहते हैं। इनमें मुख्य औषधियाँ अफीम, क्लोरल, मॉरफिया, पोटैशियम ब्रोमाइड हैं। बड़ी मात्रा में ये औषधियाँ विष हैं, इसलिये इनका उपयोग सावधानी से करना चाहिये।

(६१) क्लोरलहाइड्रेट २० ग्रेन और पानी १॥ औन्स। इसकी एक खुराक बनानी चाहिये।

(६३) मॉर्फिया हाईड्रोक्लोरेट ½ ग्रेन, रैक्टीफाइड स्प्रिट १० बूँद और पानी १ औंस। जिस समय तेज निद्राकारक औषधि की आवश्यकता हो उस समय इसको बरतना चाहिये। क्योंकि यह आँतों को बन्द करता है। टैटनस रोग में उपयोगी है।

शक्ति-वर्धक

ये औषधियाँ शरीर की निर्बलता में और रोग-जन्य कमजोरी में बरती जाती हैं। इनसे शरीर के अन्दर किसी भी प्रकार की उत्तेजना नहीं होती।

(६४) क्युनीन सल्फेट २० ग्रेन, शियरी वाईन २ औंस। पानी ८ औंस। मात्रा—१ औंस, दिन में ३ बार।

(६५) क्युनीन २४ ग्रेन, लैमन ज्यूस २ ड्राम और पानी ८ औन्स। मात्रा १ औन्स।

(६६) क्युनीन २० ग्रेन, डाइल्यूट सल्फ्युरिक एसिड १ ड्राम। टिंचर जिंजर २ ड्राम और पानी ८ औन्स। मात्रा—१ औन्स।

(६७) साईट्रेट आफ़ आयर्न एण्ड क्युनीन ४० ग्रेन और पानी ८ औन्स। १ औन्स की मात्रा प्रत्येक ३ या ४ घन्टे के अन्तर से लेनी चाहिये। एक साल के बच्चे के लिये २ ड्राम की मात्रा है। लोह युक्त औषधियाँ मल को काला कर देती हैं।

(६८) टिंचर ऑफ़ स्टील २ ड्राम और पानी ८ औन्स। मात्रा १ औन्स। दिन में तीन बार देना चाहिये। पाण्डु और निर्बलता के लिये उपयोगी है। जिन रोगियों का स्वभाव इस टिंचर ऑफ स्टील लेने का न हो, उनको "डाइल्युज्ड आयर्नकर" घोलकर देना चाहिये। अथवा कार्बोनेट ऑफ़ आयर्न को ५ से १० ग्रेन की मात्रा में पानी या पाउडर के रूप में खाना चाहिये।

(६९) सल्फेट ऑफ़ आयर्न १२ ग्रेन, डाइल्यूट सल्फ्युरिक एसिड एसिड १ ड्राम और पानी ६ औन्स। पाण्डु और निर्बलता के लिये उपयोगी है। मात्रा १ औन्स है।

(७०) आयर्न सल्फ़ेट ९ ग्रेन, क्युनीन सल्फेट १२ ग्रेन, डाइल्यूट सल्फ्यूरिक एसिड १ ड्राम, सोडा सल्फ़ेट १ औन्स, शरबत २ ड्राम, पानी १२ औन्स, कष्टार्त्तव में और मलबन्ध में उपयोगी है। मात्रा १ औन्स है। यकृत और प्लीहा के रोगों में उपयोगी है।

(७१) सीरप फ़ैराई आयोडाइड विद स्ट्रिकनीन १ औन्स। इसके ३० बूँद दो औंस पानी में मिलाकर देना चाहिये।

(७२) लाइकर आर्सैनिकैलिस ४० बूँद और पानी ८ औंस। भोजन के पीछे १ औंस मात्रा में लेना चाहिये।

(७३) क्युनीन सल्फ़ेट २४ ग्रेन, एसिड आर्सनिक $\frac{1}{4}$ ग्रेन, कारबोलिक एसिड १$\frac{1}{2}$ ग्रेन, कर्पूर १$\frac{1}{2}$ ग्रेन, पाउडर कैप्सीयम ५ ग्रेन, गोंद के पानी के साथ १२ गोली बनानी चाहिये। एक गोली प्रातः और सायं लेनी चाहिये। प्रत्येक ३ या ४ घंटे के अन्तर से।

गरम उपचार

चोकर की पुल्टिस—सन या फलालेन की एक थैली आवश्यकतानुसार आकार की बनाकर उसको चोकर से भर देना चाहिये। उसपर गरम उबलता पानी गिराना चाहिये जिससे वह गीली हो जाये। इसको एक अंगोछे में रखकर थोड़ा-सा दबा देना चाहिये, जिससे अधिक गीलापन सूख जाये, फिर आवश्यक स्थान पर रखकर शुष्क वस्त्र से ढकदेना चाहिये। चोकर को थैली में ढीला भरना चाहिये।

रोटी के आटे की पुल्टिस—एक बर्त्तन में २० तोला उबलता हुआ पानी लेकर उसमें रोटी के टुकड़े इतने डाल देने चाहिये कि पानी की तह ढप जाये। फिर ५ मिनट तक इसी प्रकार रखकर पीछे से पानी को निकाल देना चाहिये। इन टुकड़ों को आवश्यक स्थान पर कपड़ा फैलाकर रख देना चाहिये। भारतवर्ष में आटे की पुल्टिस जो बनाई जाती है, वह भी यही काम देती है। नीम के पत्तों को उबालकर एक उत्तम पुल्टिस बनाई जा सकती है।

अलसी की पुल्टिस—अलसी की पुल्टिस आटे की भाँति बनती है। अलसी को कूटकर गरम पानी में मिलाकर हलवे जैसी होने पर पतले कपड़े पर बिछाकर लगानी चाहिये।

चारकोल की पुलटिस—सड़नेवाले व्रणों पर काम आती है। कोयले को बारीक पीसकर आटे या अलसी के साथ मिलाकर पुल्टिस बनाई जाती है।

पुल्टिस लगाने से पूर्व स्थान पर प्रलेप या तेल लगा लेना चाहिये, जिससे पुल्टिस त्वचा के साथ चिपटे नहीं। ठण्डी होने के पीछे इसको अवश्य उतार लेना चाहिये, क्योंकि तब यह हानिकारक हो जाती है।

सेक (गीला वाष्प स्वेद)—आवश्यक स्थान के आकार के फलालेन के दो चौहरे टुकड़े गरम पानी के अन्दर (जितने गरम पानी को रोगी सह सके) रखने चाहिये। रोगी के रुग्ण स्थान पर मोमजामा या अंगोछा रखकर फलालेन के एक टुकड़े को निकाल कर निचोड़ना चाहिये। और इसको उस स्थान पर रखकर ऊपर से अंगोछा ढाँप देना चाहिये। यह कपड़ा ठण्डा हो, इससे पूर्व दूसरा कपड़ा निचोड़कर रखना चाहिये। कपड़े को पानी में

गेरकर दूसरे को इस स्थान पर रख देना चाहिये। सेक के पीछे रोगी के रुग्ण प्रदेश को पूर्ण शुष्क कर देना चाहिये। कई बार सेक और पुलटिस के स्थान पर गरम पानी में भीगी हुई स्पंज को निचोड़कर रखना ही लाभदायक और उत्तम होता है।

पोस्त के डोंड का स्वेद—पोस्त के आधे दर्जन डोडों को दरकच करके बीजों समेत उबलते हुये पानी में डाल देना चाहिये। आधे घण्टे के पीछे इनको हिला देना चाहिये। यह पानी दर्द कम करने के लिये स्वेद या पुलटिस में साधारण पानी के स्थान में काम आता है।

शुष्क स्वेद—फलालैन की थैली या पोटली को रेत, चोकर, भूसी, नमक आदि से भरकर तवे पर गरम करके रुग्ण स्थान पर सेक करने से लाभ होता है।

ईंट या पत्थर का सेक—ईंट या पत्थर को आग में गरम करके उसके ऊपर पानी के छींटे देने चाहियें। जिससे इसके ऊपर की गरमी कम हो जाये। जब पानी गेरने से आवाज़ आनी बन्द हो जाये, तब इसको कपड़ों में लपेटकर रुग्ण स्थान पर रखना चाहिये। यह सेक गम्भीर शोथ में गम्भीर दर्द में काम आता है। यथा नितम्ब के दर्द में।

शीतोपचार

उष्ण उपचार के द्वारा हम स्थानिक रक्त संचार को बढ़ाते हैं, और शीत उपचार की सहायता से हम स्थानिक रक्त-संचार को घटाते हैं। इसलिये चोटों में शीत उपचार तात्कालिक चिकित्सा है। इसके द्वारा रक्तस्राव कम हो जाता है, पीड़ा शान्त हो जाती है, बढ़ा हुआ रक्त-संचार घट जाता है। इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि यदि शीत उपचार से रोगी सर्दी, कँपकपी या दर्द मालूम करे तो सावधानी से शीत उपचार गरम उपचार में बदल देना चाहिये। शीत उपचार के साधन निम्न हैं—

नाइट्रेट आफ पोटाश $\frac{1}{2}$ औंस, हाइड्रोक्लोरेट ऑफ अमोनिया $\frac{1}{2}$ औंस, पानी १२ औंस। इस मिश्रण में एक सूती कपड़े को भिगोकर रुग्ण स्थान पर रख देना चाहिये। इसको किसी भी वस्त्र से नहीं ढांकना चाहिये। शीतलता उत्पन्न करने के और वाष्प बनाने के लिये वायु की आवश्यकता है।

कपड़े को बार बार तर करते रहना चाहिये, अथवा स्पंज से पानी डालते रहना चाहिये। यदि घोल न मिले तो बर्फ के पानी से काम निकाल लेना चाहिये। अथवा दो औन्स सिरका और २ औन्स स्प्रिट ऑफ वाईन २० औन्स पानी में मिलाकर काम कर लेना चाहिये।

रबर की थैली में या ब्लेडर में बर्फ भरकर बर्फ को कूटकर रबर की थैली में भर देना चाहिये और इस थैली को रुग्ण स्थान पर रखना चाहिये। यदि केवल बर्फ ही मिले तो इसको समान भाग नमक मिलाकर रखना चाहिये। बर्फ की पुल्टिस बनाने के लिये अलसी के आटे की एक मोटी तह पर बर्फ के टुकड़े रखकर ऊपर से अलसी का आटा छिड़क देना चाहिये। इसको एक वस्त्र में लपेटकर (चारों ओर, जिससे आटा गिरे नहीं) मोटी तह की तरफ से रुग्ण भाग पर रखना चाहिये। वायु के न लगने से बर्फ शीघ्र पिघलेगी नहीं और आटे की तह अधिक शीतलता को रोकेगी।

७४—पोटाशियम नाइट्रेट $\frac{1}{2}$ औन्स, अमोनियम हाइड्रोक्लोरेट $\frac{1}{2}$ औन्स, नमक $\frac{1}{2}$ औन्स, पानी १२ औन्स शीतोत्पादक घोल है। ये चीजें बाजार में शोरा और नौसादर के नाम से मिल जाती हैं। इनको बर्फ के साथ रबर की थैली में या ब्लाडर में भी भरकर बरत सकते हैं। बर्फ नहीं मिले तो भी ये चारों वस्तुयें काम दे सकती हैं।

७५—लेड एसिटेट १ ड्राम, रैक्टीफाईड स्प्रिट ऑफ वाईन १ औन्स, पानी १२ औंस।

यह भी उत्तम वाष्प स्वेद की शीतल विधिकर घोल है।

शान्तिदायक उपचार

पानी की पट्टी—लिएट और किसी सूती कपड़े की तीन-चार तहें करके उसको ठण्डे पानी में भिगोकर रुग्ण स्थान पर रखना चाहिये। उसके ऊपर गट्टा पारचा या रेशम का कपड़ा ढाँप देना चाहिये, जिससे वाष्प बनकर उड़ न जाये। पानी गरम या ठण्डा बरता जा सकता है और जब आवश्यक्ता हो, तो पट्टी बदल देनी चाहिये। यह उत्तम है कि पानी के स्थान पर कार्बोलिक लोशन बरता जाये। सिम्पल ऑयण्टमेण्ट (सादा प्रलेप) घर में वैसलीन या लैनोलीन तैयार रखनी चाहिये। लैनोलीन त्वचा के अंदर बहुत शीघ्र घुस जाती है।

कैरन ऑयल—अलसी का तेल और चूने का पानी समान भाग में मिलाकर जले हुये स्थान पर लगाना चाहिये।

७६—ब्लैकवाश—कैलोमल ३० ग्रेन, लाइम वाटर १० औन्स, औपसर्गिक रोगों में उपयोगी है। इसका रङ्ग काला होता है।

७७—टिंचर ओपयाई १ ड्राम, टिंचर एकोनाइट १ ड्राम, क्लोरोफार्म १ ड्राम, सोप लिनीमैण्ट १½ औंस इसको स्पंज या वस्त्र के टुकड़े के साथ दर्द की जगह पर लगाना चाहिये।

७८—टिंचर ओपयाई १ ड्राम, टिंचर एकोनाइट १ ड्राम, क्लोरोफार्म १ ड्राम यह नं० ७७ से अधिक उपयोगी है। त्वचा के फटने पर इसका उपयोग नहीं करना चाहिये।

७९—एक बोतल में ¾ भाग कपूर भरकर उसके ऊपर ¼ भाग रैक्टीफाईड स्प्रिट या सल्फ्यूरिक ईथर भर देना चाहिये। इसके लगाने से थोड़ी देर में स्थान बे भान होजाता है, दर्द चला जाता है। परन्तु इसका प्रभाव स्थिर नहीं होता।

वस्तियों के कुछ नमूने

८०—स्टार्च—निशास्ता या साबुन २ ड्राम, पानी १० औन्स।

८१—टिंचर एसेफटीडा १ ड्राम, सोप १ ड्राम, कैस्टर ऑयल १ औंस, गरम पानी ८ औन्स। उत्तेजक वस्ति है।

८२—कैस्टर ऑयल ½ औन्स, स्प्रिट टरपैण्टाइन ½ औन्स, क्रोटन ऑयल ४ बूँद, साबुन ३० ग्रेन, गरम पानी ८ औन्स। सन्यास, मूर्च्छा-रोग में रेचक वस्ति है।

८३—जिंक सल्फेट २० ग्रेन, टिंचर ओपयाई ३० बूँद, गरम पानी ८ औन्स, श्वेत प्रदर और गर्भाशय-रोग में उपयोगी है।

छाला उठाने और त्वचा को लाल करनेवाली औषधियाँ

जब किसी स्थान पर रक्त-संचार मन्द पड़ गया हो, या रक्त एकत्रित हो गया हो अथवा रक्त-संचार बढ़ा हुआ हो उस समय इन औषधियों का उपयोग होता है।

टरपैण्टाइन स्टुप्स—फलालैन या किसी कपड़े की मोटी तह करके उसको स्प्रिट आफ़ टरपैण्टाइन से भली प्रकार गीला करके रुग्ण स्थान पर रख देना चाहिये। इसको खुश्क वस्त्र या रेशम से ढाँप देना चाहिये। इसको १ घण्टे तक, या जब तक बहुत दर्द मालूम न हो, वहाँ लगे रहने देना चाहिये। इससे त्वचा लाल हो जायगी, परन्तु छाला नहीं पड़ेगा।

मस्टर्ड पुल्टिस—मस्टर्ड (राई) के चूर्ण को गरम पानी में लेई-सी बनाकर किसी कपड़े या काग़ज़ पर लगाकर रुग्ण प्रदेश पर लगा देना चाहिये। लगाने से पूर्व स्थान पर घी या वैसलीन का हाथ फेर देना चाहिये। प्राय: २० मिनट में इसकी गरमी असह्य होजाती है। उस समय इसको उतारकर गरम पानी से त्वचा को साफ़ करके रुई रख देनी चाहिये। बच्चों के लिये राई के चूर्ण में आटा मिला लेना चाहिये, जिससे इसकी तीव्रता कम होजाय। देर तक लगे रहने देने से छाला उठ आता है।

ब्लिस्टर—छाला उठाने के लिये प्राय: 'कैन्थरेडिस' काम में आता है। जिस स्थान पर छाला उठाना हो उस आकार का कपड़ा काटकर उस पर एम्पलास्टम कैन्थरेडिस या लाईकर एपिस्टैक्सीस पतला लगाकर स्थान पर रख देना चाहिये। दो घंटे में छाला उठने लगेगा। ६ से ८ घंटे के पीछे कपड़े के फाये को उतार देना चाहिये। छाला उठने पर चाकू या कैंची से उसमें छेद करके सब पानी बाहर कर देना चाहिये। ऊपर से सादा मरहम या वैसलीन का फाया रख देना चाहिये। ६ घंटे के पीछे इसको उतारकर देखना चाहिये। यदि और कोई छाला बना हो, तो उसको भी फोड़कर पानी बहा देना चाहिये। फिर सादा मरहम लगाना चाहिये। बच्चों में छाला नहीं उठाना चाहिये।

आयोडीन पेण्ट—राई या छाले के स्थान में प्राय: कई बार लिनीमैण्ट आयोडीन बरता जाता है। इसको एक बार गाढ़ा लगाकर दो-तीन दिन तक नहीं लगाना चाहिये। कई बार के लगाने से ऊपर की त्वचा उतर जायगी। बहुत तेज़ लगाने से छाला उठ जाता है। प्राय: एक या दो बार लगाने से खुजली और सुई चुभाने का अनुभव होने लगता है। उस समय इसको बन्द कर देना चाहिये और फिर लगाना चाहिये।

आघातों के लिये उपाय

स्टार्च बैंडेज—निशास्ता या मैदे को पानी में घोलकर पतली लेई-सी बना लेनी चाहिये। इसमें पट्टी को भिगोकर रुग्ण प्रदेश पर बाँधना चाहिये। बाँधते समय थोड़ा-थोड़ा घोल पट्टी पर छोड़ते जाना चाहिये। खुश्क होने पर यही सख्त हो जायगा, जिससे अङ्ग को आराम मिलेगा। यह पट्टी अस्थि-भंग आदि में उपयोगी है।

प्लास्टर आफ़ पेरिस—यह एक प्रकार का श्वेत पाउडर-सा होता है। इसको पानी में घोलकर लेई-सी बनाकर निशास्ते की पट्टी की तरह अस्थि-भंग आदि में बरतते हैं। पट्टी न बहुत ढीली और न बहुत कसकर बाँधनी चाहिये।

सिंगी लगाने की क्रिया

भारत में सिंगी लगाने की क्रिया बहुत समय से प्रचलित है। आज कल सिंगी का कार्य शीशे के गिलासों से किया जाता है। ये भिन्न-भिन्न आकार के बने होते हैं। इनमें रुई से थोड़ी शराब लगाकर आग लगा देते हैं। जिससे शराब के जलने से गिलास के अन्दर का वायु निकल जाता है। वायु निकलने से स्थान रिक्त होजाता है। यह रिक्त स्थान दूसरी वायु से भरे, इससे पूर्व इस प्याले को रुग्ण प्रदेश पर लगा देते हैं। जिससे त्वचा का मांस गिलास में ऊपर को खिंच आता है। इससे स्थानिक रक्त-संचार बढ़ जाता है, दर्द कम होजाता है। जब इसको अलग करना हो, तो नाखूनों से मांस को नीचे दबाकर गिलास और त्वचा के बीच में थोड़ा-सा स्थान कर देना चाहिये। इस स्थान से वायु घुसकर गिलास को ढीला कर देगा। इस स्थान पर कुछ और वस्तु लगाने की आवश्यकता नहीं है। इस विधि को ड्राई कपिंग कहते हैं।

एक दूसरी विधि है जिसको "वेट कपिंग" कहते हैं। इसमें रुग्ण प्रदेश पर प्रच्छन्नों से लेखन करके जिससे थोड़ा-थोड़ा रक्त दीखने लगे पूर्व विधि से 'कपिंग' किया जाता है। इस विधि में प्याला रक्त से भर जाता है। यह विधि दूषित रक्त को निकालने में काम आती है। आज कल भी

गाँवों में यह काम प्रायः सींगी लगानेवाले किया करते हैं। इस विधि में पीछे से नमक या हल्दी उस स्थान पर लगा देनी चाहिये।

दोनों विधियों में इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि प्याले में शराब न बच जाय, या अधिक लग जाय, जिससे त्वचा जल जाय।

जोंक—दूषित रक्त को निकालने के लिये (विशेषतः बच्चों में) जोंक का लगाना बहुत सरल और उत्तम उपाय है। जोंक के तीन दाँत होते हैं, इसलिये इसके काटने से त्रिभुजाकार व्रण बनता है। जोंक को लगाने से पूर्व स्थान को दूध या शर्बत से धो देना चाहिये। इससे जोंक स्थान पर शीघ्र लग जायगी। यदि अब भी न लगे, तो थोड़ा-सा रक्त सुई या चाकू से निकाल देना चाहिये। "सुश्रुत" में लिखा है कि जिस प्रकार हंस दूध और पानी में दूध का ग्रहण करता है, उसी प्रकार जोंक भी अशुद्ध रक्त का ग्रहण करती है और शुद्ध रक्त को छोड़ देती है। यदि एक जोंक न लगे तो दूसरी बरतनी चाहिये। जिस समय वह रक्त ले चुकेगी, तो स्वयं गिर जायगी। रक्त लेती हुई जोंक को बलपूर्वक नहीं छुटाना चाहिये, इससे उसका दाँत टूट जाता है और पक जाता है। उसको गीले कपड़े से ढाँक देना चाहिये, जिससे शान्ति से वह रक्त ग्रहण कर सके। बच्चों में एक बड़ी जोंक की अपेक्षा दो छोटी जोंक लगाना उत्तम है। क्योंकि बड़ी के काटने से दर्द होगा। जिस समय जोंक को अलग करना हो, तो उसके ऊपर नमक या नमक का गरम पानी गिराना चाहिये। इसको पूँछ की ओर से पकड़कर उतारना चाहिये। जोंक के स्थान पर साधारणतः कुछ लगाने की आवश्यकता नहीं होती। स्थान को गरम पानी से धोकर देख लेना चाहिये। यदि रक्तस्राव न हो, तो रुई रख देनी चाहिये। यदि रक्तस्राव होरहा हो, तो ठण्डे पानी से धोकर फिटकरी का चूर्ण छिड़क देना चाहिये।

मसाज़—यह एक और प्रक्रिया है, जिसकी सहायता से किसी स्थान के रक्त-संचय को कम किया जाता है, या बढ़ाया जाता है। भारतवर्ष में यह काम प्रायः नाई अब भी करते हैं। मांसपेशियों को, त्वचा को, पृष्ठ-वर्त्ति रक्त-वाहिनियों को मसाज़ के द्वारा उत्तेजना मिलती है। इससे रक्त-लिम्फ़ आदि वेग से गति करने लगती हैं और निःसारक शक्ति की भूख बढ़ जाती है।

वस्ति

गुदा में वस्ति—वस्ति के उपकरण बाजार में मुख्य रूप से दो प्रकार के मिलते हैं। एक तो "डूश" है, जो कि ऊँचाई से लिया जाता है। दूसरा इस प्रकार का होता है कि रोगी बीच में लगी रबर को स्वयं दबाता जाता है, जिसकी सहायता से पानी गुदा में चला जाता है। इसमें नली का एक मुख पानी के बर्तन में होता है और दूसरा मुख गुदा में। बीच में रबर का पम्प लगा होता है, जिसको रोगी दबाता है। पानी का बर्तन अपनी स्थिति के बराबर या ज़रा ऊँचा रखना होता है। रबर के बल्ब को दबाने से नली का वायु निकल जाता है और पानी गुदा में चला जाता है. इस प्रकार बार-बार दबाने से पानी गुदा में लिया जाता है।

"डूश" में पानीवाले बर्तन को दिवार से टाँग दिया जाता है और नलिका गुदा में प्रविष्ठ की जाती है। यह बर्तन रोगी से ३ फीट ऊँचा रहता है। सारा पानी नहीं प्रविष्ठ करना चाहिये, नहीं तो पीछे से वायु आँतों में चला जायगा।

वस्ति लेने के लिये रोगी को वाम पार्श्व को लेटकर दक्षिण जंघा को कोष्ठ पर मोड़ना चाहिये, और वाम टाँग को आधा संकुचित रखना चाहिये, जिससे पेट की मांसपेशियाँ ढीली होजायँ। पानी लेने के पीछे यथासम्भव उसे रोकना चाहिये, इसका कोई नियम नहीं है। साधारणतः जितना रोगी सुगमता से ले सके उतना देना चाहिये। १ साल के छोटे बच्चे में २ ड्राम से १ औंस पानी पर्याप्त होता है।

स्त्रियों के उत्पादक अङ्गों में उत्तर वस्ति—इस वस्ति के लिये 'फीमेल सीरीञ्ज' (जिसकी लम्बाई ६ या ७ इञ्च होती है, और अगले भाग पर ६ या ७ छिद्र होते हैं) का उपयोग करना चाहिये। रुग्णा को पीठ के भार लेटाकर उसके नितम्ब के नीचे तकिया रख देना चाहिये और टाँगों को कोष्ठ पर मोड़ देना चाहिये। नीचे कोई खुश्क अँगौछा या टब रख देना चाहिये। पिचकारी करने से पूर्व भग और योनि को किसी जन्तुघ्न घोल से या पानी से धो डालना चाहिये और यदि पिचकारी से पारे का समास बरता गया हो, तो पीछे से भी इन अङ्गों को स्वच्छ पानी से धोना चाहिये। पानी शनैः-शनैः छोड़ना चाहिये।

पुरुषों के उत्पादक अङ्ग में उत्तर वस्ति—वस्ति देने से पूर्व रोगी को पेशाब करा देना चाहिये। शिश्न की वस्ति के लिये साधारणतः ४ या ५ औंस की शीशी की पिचकारी बरती जाती है। इसकी नॉज़ल का मुख गोल, चिकना और ½ इञ्च लम्बा होता है। यदि (Y) वाई के आकार की नली मिल सके, तो सबसे अच्छा। इसमें यह लाभ है कि एक तरफ़ से पानी आता है, दूसरी तरफ़ से शिश्न में जाता है, और तीसरी तरफ़ से शिश्न में से बाहर भी होता रहता है। इससे मूत्र-मार्ग भली प्रकार धुल जाता है। शिश्न को बायें हाथ से सीधा पकड़कर दक्षिण हाथ से नॉज़ल को शिश्न-मुख में रखकर अँगुली से बस्टन को दबाना चाहिये। शिश्न में द्रव पहुँचने पर प्रत्येक बार इसको दो मिनट तक रोकना चाहिये। इस प्रकार ६ से ८ बार धोना चाहिये।

स्नान

कई रोगों में गरम पानी का स्नान लाभदायक होता है। विशेषतः जब हम मूत्र-संस्थान या त्वचा को उत्तेजित करना चाहते हैं। गरम स्नान से पृष्ठ-वर्त्ती रक्त-वाहिनियों में रक्त-सञ्चार बढ़ जाता है, जिससे पसीना आता है। पसीने के आने से बहुत से मल बाहर होजाते हैं, और रक्त का बढ़ा हुआ दबाव भी घट जाता है। गरम स्नान से हृदय की शक्ति कम होजाती है, मांस पेशियाँ ढीली होजाती हैं, इससे मूर्च्छा का होना भी सम्भव है। हृदय के निर्बल पुरुषों में यह भय और भी बढ़ जाता है। इसलिये गरम पानी का स्नान देते समय रोगी का विशेष ध्यान रखना चाहिये। रोगी को कितनी देर तक स्नान दिया जाय, यह उसकी अवस्था देखकर निश्चित किया जा सकता है। मूर्च्छा होने पर रोगी को ख़ुश्क करके लिटा देना चाहिये।

पानी का ताप-परिमाण—६० से ७५	फैरनहीट	ताप	का पानी	शीत-स्नान के लिये
८५ से ९२	,,	,,	,,	टैपिड-स्नान के लिये
९२ से ९८	,,	,,	,,	गरम स्नान के लिये
९८ से ११५	,,	,,	,,	उष्ण-स्नान के लिये

बच्चों के पानी का ताप-परिमाण कभी भी ९६ से ९८ फैरनहीट से अधिक नहीं रखना चाहिये।

गरम स्नान किन अवस्थाओं में उपयोगी है?—जिन अवस्थाओं में तीव्र और दर्दयुक्त आकुञ्चन वेगपूर्वक होते रहते हैं, उनमें गरम स्नान उपयोगी है। यथा—मूत्राश्मरी, मूत्र-शर्करा, हर्निया, मूत्राघात, आंत्र में मलावरोध, आमवात। बच्चों में जब आक्षेप, कास, आँतों में दर्द, दन्तोद्गम के कारण बेचैनी या आध्मान हो रहा हो, उस समय गरम स्नान उपयोगी है।

गरम स्नान की एक दूसरी विधि यह है कि एक कम्बल को गरम पानी में भिगोकर उसे निचोड़ देना चाहिये। रोगी को इस कम्बल में लपेटकर ऊपर से शुष्क गरम कम्बलों से ढाप देना चाहिये। इससे बहुत पसीना होगा। पसीने को ख़ुश्क अँगौछे से साफ़ करते रहना चाहिये। २० मिनट के पीछे रोगी को ख़ुश्क करके कपड़े पहना देना चाहिये।

गरम पानी में औषधियाँ मिलाकर भी स्नान कराये जाते हैं। इस उपाय से औषधि त्वचा के छिद्रों से शरीर में घुस जाती है। ये औषधियाँ नमक, अम्ल, गन्धक, सोडा आदि हैं।

नाइट्रोम्युरेटिक एसिडबाथ—म्युरेटिक एसिड ३ भाग, नाइट्रिक एसिड २ भाग—इन दोनों एसिड को शनैः-शनैः मिलाकर ५ भाग पानी मिलाना चाहिये। जबतक शीशी में गरमी रहे, इसको अलग रहने देना चाहिये। मिट्टी या लकड़ी का बर्तन लेकर (धातु का बर्तन हानिकारक है) उसमें अम्ल (१ औंस—१ गैलन पानी में) मिलाना चाहिये। पानी का ताप परिमाण ९८° फैरनहीट रखना चाहिये। रोगी को इस पानी में १५ मिनट बैठना चाहिये। स्नान से बाहर आकर त्वचा को ख़ुश्क कर देना चाहिये। उत्तम है कि खद्दर का अँगोछा बरता जाय। यह स्नान यकृत और प्लीहा के रोगों में उपयोगी है। बच्चों के लिये आधा औंस १ गैलन पानी में मिलाना चाहिये।

गन्दगी को दूर करनेवाली वस्तुयें

कूड़े-करकट से, प्राणियों या वनस्पतियों के सड़ने से दुर्गन्ध उत्पन्न होती है। यह दुर्गन्ध दूषित परमाणुओं के कारण होती है। ये परमाणु वायु में रहते हैं और यह वायु हमारे श्वास या त्वचा के मार्ग से शरीर के अन्दर

पहुँचती रहती है। इस वायु के शरीर में पहुँचने से शरीर भी दूषित या रुग्ण हो जाता है। अतः आवश्यक है कि इस दुर्गन्ध को दूर किया जाय।

दूध से दही बनाते हैं। जबतक दूध में जामन नहीं रक्खा जाता, दही नहीं बनता। दही में वह दूध की मधुरता नहीं रहती, अपितु खट्टापन आजाता है। यदि दही को तीन-चार दिन रख दिया जाय, तो और भी अम्लता बढ़ जाती है। तब यह खाने के योग्य नहीं रहता। इस दही को थोड़े दिन और रहने दिया जाय, तो इसमें से एक विशेष प्रकार की गंध आने लगती है। यह गन्ध सहन नहीं की जा सकती और अन्त में खाने के अयोग्य समझकर दही को फेंक देते हैं।

इस दुर्गन्ध और अम्लता का कारण एक प्रकार के कृमि हैं। पहले दिन जो अम्लता आई थी, वह भी इन्हीं कृमियों के कारण थी। परन्तु उस समय ये इतने तीव्र नहीं थे। पीछे से जब ये तीव्र होगये, तो अम्लता भी बढ़ गई।

एक दूसरी बात—एक सड़ा हुआ या किसी पक्षी का खाया हुआ आम लेकर दूसरे अच्छे आमों में मिलाकर रख देना चाहिये। दूसरे दिन उस आम से मिले हुये आम का छिलका भी सड़ने लगता है और फिर यह सड़ांद धीरे-धीरे आगे बढ़ती जाती है, जिससे जो-जो आम इसके साथ स्पर्श करता है, वह भी खराब हो जाता है। इससे स्पष्ट है कि सड़ना दूसरों को भी सड़ा देता है। इस सड़ांद के कारण भी कृमि हैं, जो इतने सूक्ष्म हैं कि आँख से नहीं दिखाई देते।

इससे स्पष्ट है यदि एक मनुष्य किसी संक्रामक रोग से यथा चेचक, टाइफाइड आदि से रोगी होगा—विशेषतः उन रोगों से, जिन रोगों के कारण कृमि या कीटाणु हैं, तो वह दूसरे लोगों को भी रोगी बना सकता है, यदि वे इसके संसर्ग में आयेंगे। यह संसर्ग चाहे तो सीधा रोगी के साथ हो, या उससे उत्पन्न स्रावों के साथ या उससे दूषित पात्र, वस्त्र, वायु, भोजन, जल के द्वारा हो। अतः यह आवश्यक है कि इस संक्रमण से यथासम्भव बचा जाय। परन्तु दूर भागना सम्भव नहीं; क्योंकि रोगी की परिचर्य्या भी करनी है, इसीसे कुछ उपाय विज्ञान ने ढूँढ़ निकाले हैं, जिनसे रोगी के पास रहते हुये भी इस संक्रमण से बचा जा सकता है।

इस उपाय को 'डिसइनफैक्शन' कहते हैं। 'डिसइनफैक्शन' के दो

विभाग किये जाते हैं। एक वह, जिसमें सड़ांद या दुर्गन्ध ही को दूर किया जाता है। इस काम के लिये जो औषधियाँ बरती जाती हैं, उनको 'डिओडोरेंट' दुर्गन्ध-नाशक कहते हैं। इन औषधियों में इतनी शक्ति नहीं होती कि क्रिमियों को मार दें। ये अपनी गंध से उनकी दुर्गन्ध को दबा लेती हैं। ये वस्तुयें निम्न हैं—सिरका, एसिटिक एसिड, अमोनिया, गुलाब के पत्तों की चाय आदि।

दूसरा विभाग वह है, जिसमें सड़ांद उत्पन्न करनेवाले कृमि ही मारे जाते हैं। ये औषधियाँ दुर्गन्ध को इतना नष्ट नहीं करतीं। ये औषधियाँ तीव्र होती हैं। यथा—अग्नि, चारकोल, क्लोरीन, ब्लीचींग पाउडर, चूना, कार्बोलिक एसिड, सल्फ्यूरिक एसिड, नाइट्रिक एसिड, पोटाशियम परमैंगनेट, क्लोरोफार्म, हीराकसीस आदि। साथ ही इनमें कुछ दवाइयाँ इस प्रकार की भी हैं, जो दोनों प्रकार का कार्य सिद्ध करती हैं। जो दुर्गन्ध-नाशक होने के साथ कृमि-नाशक भी हैं। यथा—पोटाशियम परमैंगनेट, कार्बोलिक-एसिड, क्लोरीन गैस, नौसादर, आइजोल, फिनाइल आदि।

दुर्गन्धनाशक और कृमिनाशक किसी भी प्रकार की दवाई तबतक प्रभाव नहीं कर सकती, जबतक धूल और राख को दूर करके स्वच्छ वायु का प्रवाह बहने न दिया जाय। इसलिये राख और धूल को दूर करके स्वच्छ वायु आने देनी चाहिये।

डिसइन्फैक्शन (स्वच्छीकरण) की कुछ विधियाँ

१. कॅंडेज़ फ्ल्यूड—यह पोटाशियम परमैंगनेट का घोल है। इसका रंग जामुनी-सा होता है। पीने के पानी में इसको मिला देने से हैजे या टाईफाईड के कीटाणुओं से बचा जा सकता है। हाथ धोने, कपड़े, बर्तन, फरनीचर आदि धोने के काम में बरता जा सकता है। इससे कपड़ा धोकर फिर स्वच्छ पानी से धो लेना चाहिये। क्योंकि इसमें दुर्गन्ध नहीं होती। इसलिये बहुत-से आदमी इसको कार्बोलिक एसिड से अधिक पसंद करते हैं। परन्तु यह उतना शक्तिशाली नहीं है। १ ग्रेन २ औंस पानी में घोलने से उत्तम घोल बन जाता है। बाज़ार में पोटाशियम परमैंगनेट की टिकड़ियाँ मिलती हैं।

२. **कार्बोलिक एसिड**--कीड़ों को मारने के लिये एक निश्चित उपाय है। शस्त्र-कर्म से पूर्व हाथ और औजार धोने के लिये बरता जाता है। साधारणत: इसका घोल १ औंस कार्बोलिक एसिड और ४० औन्स सहज गरम पानी में बनाकर बरता जाता है। यदि इसको तेज बनाना हो, तो पानी २० औन्स रख लेना चाहिये। इससे हाथ, वस्त्र, बर्तन आदि धोये जा सकते हैं। स्रावों को नष्ट करने से पूर्व उनमें इसका घोल मिला देना चाहिये। या जिन बर्त्तनों मे स्राव रक्खे जायँ, उनमें इसे रख देना चाहिये।

फिनाइल या आईजोल भी इसी रूप में है। स्राव तथा अन्य घर के सामान को, घर को धोने के लिये फिनाइल उत्तम है। यह सस्ती है। इसको लेकर पानी में मिलाना चाहिये, जिससे रङ्ग दूधिया हो जाय। टट्टी, मूत्र-स्थान आदि धोने के लिये उत्तम है।

३. **क्लोरीन गैस**—स्वच्छीकरण का यह सबसे उत्तम साधन है। परन्तु इसमें एक हानि है कि इसकी उग्रता आँख, फेफड़ों तथा श्वास-नलिका को हानि पहुँचाती है। इसको तैयार करने के लिये क्लोराइड ऑफ लाइम (ब्लीचींग पाउडर—रङ्ग उड़ाने का चूर्ण) के ऊपर पानी के छींटे दे देने चाहिये। यदि जल्दी असर करना हो, तो इसपर डाईल्यूट सल्फ्यूरिक एसिड डालना चाहिये। अथवा कौंडिस फ्ल्यूड के ऊपर डाईल्यूट हाईड्रोक्लोरिक एसिड डालने से भी यह गैस बन सकती है। पिछले दोनों रोगी-गृहों को स्वच्छ करने के लिये उत्तम है। यदि बड़ी मात्रा में बनानी हो, तो नमक ४ औन्स, मैंगनीज बिनो औक्साईड १ औन्स, सल्फ्यूरिक एसिड १ औन्स, पानी २ औन्स। प्रथम दोनों चीजों को मिलाना चाहिये और एसिड को पानी में मिलाना चाहिये। फिर इस एसिड को चूर्ण के ऊपर धीरे-धीरे गिराना चाहिये। इस गैस के बनने पर घर की सब खिड़की आदि बन्द कर देनी चाहिये, कोई आदमी अन्दर नहीं रखना चाहिये।

४. **घर की वायु का स्वच्छीकरण**—घर की स्वच्छता के लिये पहले वायु के आने और जाने के मार्गों को सबसे प्रथम खोल देना चाहिये। कोयलों से भरा हुआ टोकरा यदि घर में रख दिया जाय, तो यह अपने गुण के कारण सब प्रकार की दुर्गन्ध को, सल्फ्यूरेटिड हाईड्रोजन (एक प्रकार की दूषित वायु) को अपने में लीन कर लेगा। चूना कार्बोनिक

एसिड को अपने में घोल लेता है। या ऊपर की विधि द्वारा क्लोरीन से घर साफ किया जा सकता है। दरवाजे पर कार्बोलिक एसिड या कैंडेस फ्लूड में भीगी हुई चिक या कपड़े का परदा लटका देना चाहिये। कार्बोलिक एसिड और कैंडेस फ्ल्यूड को कभी भी एक साथ नहीं बरतना चाहिये।

५ वस्त्रों और बिस्तर का स्वच्छीकरण—जो वस्त्र जलाये जा सकें, वे तुरन्त जला देने चाहिये। और शेष रहे वस्त्रों को कोरोसिव सब्लिमेट (१ : २०००) या कार्बोलिक लोशन में भिगोया जाना चाहिये। यह कार्य यथासम्भव शीघ्र करना चाहिये। तीन घण्टे तक घोल में भीगे रहने के पीछे स्वच्छ पानी से आध घण्टे तक उबालना चाहिये। फिर साबुन से धोकर धूप और वायु में सुखा देना चाहिये। यदि घोल न मिले, तो उबालने का समय दुगुना कर देना चाहिये और फिर गन्धक का धुवाँ देना चाहिये। २४० से २५० फैरनहीट की गरमी पर एक घण्टे तक कपड़ों को रखने से भी वे स्वच्छ हो जाते हैं। स्रावों के धब्बों पर ब्लीचिंग पाउडर या चूना मल देना चाहिये। रोगी के कपड़ों को और वस्त्रों से पृथक् धुलाना चाहिये।

६. बर्त्तनों का स्वच्छीकरण - रोगी के व्यवहार में आये हुए प्याले, चम्मच, थाली आदि कैंडेस फ्ल्यूड या कार्बोलिक एसिड के घोल से धो देना चाहिये।

७. परिचारक के हाथों का स्वच्छीकरण—इसके लिये प्रथम कैंडेस फ्ल्यूड या कार्बोलिक लोशन में हाथों को धोकर स्वच्छ पानी में धोना चाहिये। रक्त आदि के धब्बे को रेत या साबुन से साफ करके फिर लोशन मे धोना चाहिये। नखों को भी भली प्रकार साफ करना चाहिये।

८. रोगी के शरीर का स्वच्छीकरण--रोगी के शरीर को स्वच्छ करने के लिये पानी में कार्बोलिक लोशन या कैंडेस फ्लूड मिला लेना चाहिये। अथवा औषधियों से मिश्रित पानी में स्नान कराना चाहिये।

९. रोगी के स्रावों का स्वच्छीकरण--स्राव पोंछने के लिये वे चिथड़े बरतने चाहिये, जिनको सुगमता से जलाया जा सके। मल, मूत्र, थूक, वमन आदि उन बर्तनों में इकट्ठा करना चाहिये, जिनमें कृमि-नाशक घोल पड़ा हो। इसके लिये कार्बोलिक लोशन, फिनाइल, हीराकसीस का घोल उत्तम

है। स्रावों को जल्दी से जल्दी दूर करके खुश्क भूमि में ३ फीट गहरा गाड़ना चाहिये। गाड़ते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि पास में जलाशय, कुआं आदि न हों, नहीं तो उनके संक्रमित होने का भय है। सबसे उत्तम यह है कि स्रावों को जला दिया जाय। रोगी के बिस्तर के नीचे तथा चारोंओर राख या चूना बिछा देना चाहिये, जिससे स्राव सूखते जाँय।

१०. **टट्टी आदि का स्वच्छीकरण**—साधारणतः खुश्क मिट्टी को मल के ऊपर डाल देने से उसकी दुर्गन्ध से बचा जा सकता है। पीछे से इसको खाद के काम में लाया जाना उत्तम है। चूना या राख का उपयोग करना भी उत्तम है। विशेषतः गांवों में संक्रामक रोगों की अवस्था में चूना और राख सबसे उत्तम साधन है। जहाँ पर सुगमता हो, वहाँ पर ब्लीचिंग-पाउडर से या कारबोलिक लोशन, फिनाइल आदि से टट्टियों को साफ करवाना चाहिये। यदि मल का फेंकना सम्भव न हो, तो उसे या तो ३ फीट गहरा गड़वा देना चाहिये, अथवा जला देना चाहिये।

११. **रोगी को हटाने के पीछे घर का स्वच्छीकरण** – क्लोरीन से घरको स्वच्छ करना उत्तम है। यदि यह सम्भव न हो, तो १०० घनफिट घर के लिये चार औंस गन्धक जलाना चाहिये। इसके लिये एक लोहे के टुकड़े पर गन्धक रखकर कोयलों की अँगीठी या लैम्प पर रख देना चाहिये। जिस समय इसको जलाये, उस समय दरवाजा, खिड़की चिमनी आदि सब बन्द कर लेना चाहिये। चार घंटे तक कमरे को बन्द रखना चाहिये। पीछे से उसे खोलकर सब फरनीचर फर्श आदि को कार्बोलिक लोशन से या कैंडेस फ्लूड से धोना चाहिये। घर को दो-तीन दिन के लिये बिलकुल खोल देना चाहिये।

१२. **शव का स्वच्छीकरण**—संक्रामक रोग से मरे हुये मनुष्य के शव को कार्बोलिक लोशन (एक भाग एसिड और १५ भाग पानी) से यथासम्भव जल्दी से जल्दी कफन में लपेट देना चाहिये। कफन को कोयले से भर देना चाहिये। कमरे को क्लोरीन गैस से साफ करना चाहिये।

लेखक के रोज़नामचे में से कुछ उपयोगी नुस्खे

कमज़ोरी के लिये--हिंगुल को सेहुँड़ के दूध में ३ बार भावना देकर मुर्गी के अण्डे में बन्द करके, उसे कपड़-मिट्टी करके १० उपलों की आग में फूँकना चाहिये। फिर गुलाबी रङ्ग की भस्म बनेगी।

अर्क ताऊन—नीम के फूल, गावजबाँ, सन्दल सफेद, सन्दल सुर्ख, कासनी, खयारैन के बीज, शाहतरा, चिरायता, गुल नीलोफर प्रत्येक ५ तोला; नीम की हरी छाल, गुल गावजबाँ, तुख्मखुरफा, जदवार खताई, मेंहदी के फूल प्रत्येक ३ तोला; आलूबुखारा ‌॥, अगर, जहरमोहरा, वंशलोचन, गिले अरमानी, दरूनज अकरबी प्रत्येक २ तोला; गुल सुर्ख, गुल सेवती प्रत्येक ४ तोला; मीठे अनार का रस, मीठे सेब का रस, नारङ्गी का रस, अमरूद का रस, अर्क केवड़ा, अर्क बेदमुश्क प्रत्येक १ सेर; दरिया का पानी ८ सेर। जाफ़रान व कपूर प्रत्येक २ तोले की पोटली भपके के मुँह पर रखकर यथाविधि अर्क खींचे।

ताऊन के लिये गोली--मोती, सोने के वर्क़, चाँदी के वर्क़ प्रत्येक ३ माशे; अकीक सुर्ख, मूँगा, जहरमोहरा, याकूत, काफूर, दरूनज अकरबी, जदवार प्रत्येक १ तोला, गुलाब के अर्क में पीसकर रत्ती-रत्ती की गोली बना ले।

अनुपान—अर्क-गुलाब या केवड़े का अर्क।

ताऊन की गिल्टी पर--कुचला (मीठा तेलिया अभाव में) २ नग नीम के पत्ते, काली मिर्च ३ माशे, जदवार, दारूनज अकरबी प्रत्येक ६ माशे। नीम के रस में पीसकर गिल्टी पर लेप करे।

अर्क मुसफ़ी खून--नीम के पत्ते-छाल, बकायन के पत्ते-छाल, कचनार की छाल, मौलसिरी की छाल, छोटी दूधी, काले भाँगरे के पत्ते, जवासा, गूलर की छाल, मेंहदी के पत्ते, मुण्डी, शाहतरा, शरफोंका धमाशा, विजयसार की लकड़ी, नीलोफर, गुल सुर्ख, धनिया, सन्दल सफेद, कासनी, कासनी की जड़, मजीठ, वर्ग बेद सादाह शीशम का बुरादा प्रत्येक १० तोला, आकाश बेल, गिलोय, उन्नाव, खस, चिरायता, निबौली प्रत्येक १० तोला, मिलाकर २४ सेर पानी में २४ घण्टे भिगोकर अर्क निकाले। मात्रा ५ से १० तोले।

हब्बं बनफसा—गुल बनफसा, निशोथ, सत मुलहठी, वर्क चाँदी गुल सुर्ख प्रत्येक ४ माशे, गारीकून सिकमोनिया प्रत्येक २ माशे ताजे पानी में गोलियाँ बनाये।

गुण—छाती के बलगम को साफ करती है। रात को एक गोली खाकर प्रातः यह नुस्खा पिये।

गुल बनफसा ७ माशे, कासनी की जड़ ७ माशे, मुनक्का ९ दाने, सौंफ ७ माशे, गौजबाँ ५ माशे, उस्तखदूस ५ माशे, रात को गरम पानी में भिगोकर प्रातः छान ले, फिर गुलकन्द, खमीरा बनफसा, शकर सुर्ख प्रत्येक ४ तोले मिलाकर दोबारा छाने और ७ माशे सनाय में पीसकर मिलाकर पी ले।

माजूनकलाँ—गुल सुर्ख, सन्दल सफेद, सन्दल सुर्ख, लौंग, दारूनज अकरबी, बहमन सफेद, बहमन सुर्ख, नरकचूर, आमला, गिले अरमानी, फादज हर हवैनी, मुश्क ९ माशे, याकूत सुर्ख, याकूत नीला, याकूत जर्द, लाल अकीक यमनी, मूँगे की जड़, कहरुवा, यशव, तेजपात, गुल गावजबाँ, वंशलोचन, जदवार, खताई, पिस्ते का बाहरी छिलका, नीबू का छिलका, तुख्म कासनी, तुख्म खुरफा, सोने के वर्क, चाँदी के वर्क प्रत्येक १ तोला १॥ माशा, जुन्दबेदस्तर १॥ तोला, अम्बर १॥ तोला, मोती, दालचीनी, मस्तगी १ तोला १०॥ माशा, जाफरान ५ तोले ७॥ माशे, अफीम १ तोले १॥ माशा, शहद सबके बराबर, मिश्री सबसे दुगुनी, गुलाब का अर्क १ सेर यथाविधि माजून बनावे।

गुण—स्त्री-पुरुषों के जरयान, स्त्रियों के प्रदर-रोग, गर्भाशय की सूजन आदि के लिये अधिक लाभदायक है। काम-शक्ति को बढ़ाती है। मात्रा ५ माशे। अर्क गावजबाँ के साथ।

माजून हमल अम्बरी—अम्बर अशहब ७॥ रत्ती मोती, कहरुवा सन्दल सफेद, सन्दल सुर्ख, वंशलोचन, माजू, दारूनज अकरबी, फदसलीब आब रेशम, बेख अञ्जबर गिलेअरमानी प्रत्येक ९ माशा तरबूज की मींगी १ तोला ५॥ मासा तुख्म खुरफा १ तोला ५॥ माशा, सोने के वर्क २० नग शहद १८। तोला शरबत जोश २८ तोला १॥ माशा मिश्री ५६। तोला। यथाविधि माजून बनावे।

गुण—गर्भ की रक्षा के लिये अत्यन्त उपयोगी है। गर्भपात को रोकता है। मात्रा ५ माशे, अर्क गावजबाँ के साथ।

कष्ट-प्रसव—मुर्गी के अंडों के छिलके २ नग मजीठ ६ माशे कूट-छानकर चूर्ण बनावे। मात्रा ६ माशा पानी के साथ।

तिला—(१)—कुचला १ तोला—इसके छोटे-छोटे टुकड़े करके शराब में ३ दिन तक भिगो रखें, फिर बीरबहूटी २ तोला, अफीम ६ माशे, असगंध २ तोला, संखिया ६ माशे अकरकरा ६ माशे—इनको एक दिन शराब में भिगोकर पीसकर पिघली हुई मोम में मिलाकर लेप करे।*

(२) केंचुवा, बीरबहूटी, रेगमाही मच्छी, जुन्दबेदस्ता, बन्दर की इन्द्रिय इनको मुर्गी के अंडे में मिलाकर लेप करना चाहिये।

(३) एक सेर रत्ती को १६ सेर बकरी के दूध में खूब महीन खरल करके उसमें दालचीनी, लौंग, जायफल, जावित्री, अकरकरा प्रत्येक ५ तोले मिलाकर घी बना ले। इस घी की २ बूँद लगाने के लिये और २ बूँद खाने के लिये देना चाहिये।

जौहरकर्जों—रसकपूर, संखिया, पारा, सिंगरफ प्रत्येक १ तोला शराब और गुलाब के अर्क में घोटकर जौहर उड़ावे।

गुण—आतशक और वायु के रोगों में अत्यन्त लाभदायक है। मात्रा दो चावल। दवा पेड़े में रखकर निगल जाय। दवा दाँतों में न लगे।

पथ्य—दूध चावल।

जौहर मुनक्का—संखिया, रसकपूर, दारचिकना प्रत्येक १ तोला इनको किस्म अव्वल बरन्डी में खरल करके जौहर उड़ावे।

उपयोग—आतशक और गठिया में।

मात्रा—दो चावल; दवा मुनक्के में रखकर देना चाहिये।

---

*तिला के सेवन करने के नियम—शिश्न को प्रथम धोकर शुष्क कर देना चाहिये। धोने के लिये गरम पानी और साबुन बरतना चाहिये। पीछे से तिले की दो-तीन बूँद लेकर मलनी चाहिये। मलते समय शिश्न के अग्रमुंड को बचाना चाहिये। उसके ऊपर तिले का स्पर्श नहीं होना चाहिये। नहीं तो सूज जायगा। पीछे से पान का पत्ता बाँध देना चाहिये। ३ या ४ घण्टे पीछे खोल देना चाहिये। प्रातः पानी से धो देना चाहिये।

हब्बे सुज़ाक—बंशलोचन २ तोला, गेरू १॥ तोला, शोराकलमा, संगजराहत, कहरुवा, बड़ी इलायची के दाने, हजरुल यहूद प्रत्येक ९ माशे, गिले अरमानी, कीकर का गोंद प्रत्येक ७ माशे, क़न्दर, समुद्र झाग ५-५ माशे, चन्दन का तेल २॥ तोले। सबको पीसकर में चन्दन के तेल में खरल करके गोलियाँ बनावे।

गुण—नये-पुराने हर तरह के सूजाक के लिये लाभदायक है। पेशाब की जलन और पीब को शीघ्र बन्द करती है। मात्रा १ गोली। दिन में तीन बार। २ तोले शरबत बजूरी के साथ देवे।

हब्बे निशात—चाँदी की भस्म ४॥ माशे, जावित्री, केसर, रेगमाही प्रत्येक १॥ तोला, जायफल ९ माशा, समुद्र-सोख ९ माशे, जहर मोहरा १। माशा, मुश्क १॥ माशा, जाफरान, चाँदी की भस्म को गुलाब के अर्क में खरल करे और बाकी दवाइयां को महीन करके मिलावे। फिर पान के रस में जङ्गली बेर के समान गोली बनावे।

जहरमोहरा—जहरमोहरा, खताई १॥ तोला, मोती, मूंगे की जड़, कहरुवा, लाजवर्द, याकूत नीला, याकूत अफसर, यशभ-सब्ज, जमुर्रद, अकीक, चाँदी के वर्क, मस्तगी प्रत्येक ७ माशे, सोने के वर्क, जदवार खताई, नारियल दरियाई, मुश्क, मोमयाई प्रत्येक ३॥ माशे। दो सप्ताह तक अर्क-गुलाब में रक्खे।

गुण—दिल और दिमाग को ताकत देता है। मात्रा २ चावल।

अनुपान—खमीरा,गावजबाँ, अम्बरी जवाहर वाला ५ माशे के साथ।

माजून नुकरा—मुश्क १ माशा, अम्बर १ माशा, कहरुवा, मूंगे की जड़, यशद, मोती, बंशलोचन, चांदी के वर्क प्रत्येक ६ माशे, आबरेशम १ तोला, विलायती सेव का रस १० तोले, मिश्री २० तोले, गुलाब का अर्क ४० तोला, मुर्गी के अण्डे ४ नग। जवाहरात को अर्क-गुलाब में खरल करना चाहिये और आबरेशम को बारीक कपड़े से छान लेना चाहिये। फिर गुलाब का अर्क, सेव का रस और मिश्री की चाशनी बनाकर उसमें अम्बर, चाँदी के वर्क, जवाहरात, मुश्क, आबरेशम और अण्डों की सफेदी क्रमशः मिलावे। मात्रा ५ माशे।

अनुपान—अर्क गावजबाँ दिल की ताकत के लिये।

तिलाये मुहासा— नीम के पत्ते, पोस्त, करंजस, बेख करफस, मग़ज़ घूँघची, नमक लाहौरी, प्रत्येक १ तोला, सबको कूट-छानकर रक्खें।

गुण—मुहासों को दूर करती है। रात को सोते समय गरम पानी में मिलाकर लेप करे।

दन्तमंजन—तम्बाकू खुश्क, अकरकरा, स्याह मिर्च, नमक लाहौरी प्रत्येक ६ माशे।

हब्बे अम्बर मोमयाई—मोमयाई, मस्तगी, मोती, बंशलोचन, लौंग, जावित्री, जायफल, बहमन सुर्ख, बहमन सफेद, दालचीनी शकाकुल मिश्री, सोंठ, दारूनज अकरबी, अगर, ऊदसलीब, सालम मिश्री, जदवार खताई प्रत्येक ६ रत्ती; अम्बर ६ माशे, मुश्क १ माशा, सोने के वर्क ५ नग। मोती, अम्बर और मुश्क का अर्क बेदमुश्क में खरल करें और मोमयाई को गरम किये हुए रोगन पिस्ते में मिलाएँ। बाकी औषधियों के रोगन पिस्ते में मिला दें।

गुण—काम-शक्ति को बढ़ाती है, कमजोरी नहीं होने देती।

अर्क हराभरा— सन्दल सफेद, संदल सुर्ख, खस, पद्माख, नागरमोथा, गिलोय, शाहतरा, नीलोफर, गुल, नीम की छाल, कासनी, कद्दू की मींग, सौंफ, नेत्रवाला, धनिया, तुलसी के बीज, बहेड़े की जड़, गन्ने की जड़, जवासे की जड़, कासनी की जड़, धमासा, मुण्डी, मुलेठी छोटी, इलायची, पोस्त का डोडा, प्रत्येक १ तोला, इससे दस बोतल अर्क निकालें।

उपयोग—यक्ष्मा, खफकान, सूजाक, मूत्रदाह को दूर करता है। मात्रा ६ तोले।

अनुपान—४ तोला शरबत बनफसा या शरबत बज़ूरी डालकर पीना चाहिये।

काली खाँसी की दवा—जौखार १ तोला, काली मिर्च २ तोला, पिपली ४ तोला, अनारदाना ८ तोला, पुराना गुड़ १६ तोला। कूट-छानकर गुड़ में मिलाकर गोली बनावे।

खमीरा गाज़बाँ अम्बरी (जवाहरवाला)—गाजबाँ ३ तोले, गुलगाजबाँ, कतरा हुआ आबरेशम, धनिया, सन्दल सफेद, बहमन सफेद, बहमन सुर्ख, बादरजंबोया, उस्तखद्दूस, तुख्म बालंगा, तुख्म फरञ्जमुश्क

तोदरी सुर्ख, तोदरी सफेद, प्रत्येक १ तोला, अम्बर १॥ माशे, चाँदी के वर्क ६ माशे, सोने के वर्क ६ माशे, मोती, याकूत, जमरूद, यशभ, कहरुवा, प्रत्येक ३३/४ माशे। मिश्री १ सेर, शहद १ पाव। यथाविधि खमीरा बनावे।

गुण—नजले में लाभदायक है। दिल और दिमाग के लिये लाभदायक है। मात्रा ५ माशे।

अनुपान—स्वर्ण-भस्म (२ चावल)।

रोगन लकवा—मोम सफेद १ तोला, एरण्डी का तेल ३ तोला, इसमें मोम पिघलाकर करफियून, जुन्दबेदस्तर, मस्तगी, सुरञ्जान तल्ख प्रत्येक ३ माशे कूट-छानकर मिलावे।

मरहम बवासीर— नीम की पुरानी लकड़ी २ तोला, गाय का घी ३ तोला, चोकिया सुहागा २ तोला। तीनों को फूल (काँसे) की थाली में नीम के सोंटे से इतना घोंटे कि काला हो जाय। बवासीर के मस्सों पर लगावे।

हब्बेमुक्लैयन—पीली हरड़ का छिलका, काबुली हरड़ का छिलका, बहेड़ा, आँवला, प्रत्येक ९ माशे, रसौंत, अनीशून हरएक ४॥ माशे, तुख्म गन्दाना १ तोला, गुग्गुल १० तोला, गूदा अमलतास १ तोला, बकाइन, नीम प्रत्येक ९ माशे, निशोथ ७ माशे। हरड़ों को घी में भून ले और गुग्गुल को गन्दाना के पानी में पीसकर सब दवाइयों को मिलाकर चने के बराबर गोली बना लेनी चाहिये।

हब्बे बवासीर दमवी—पीली हरड़, काबुली हरड़, गुग्गुल, गिले अरमानी, गिले फारसी, हीरादोखी, सुन्दरस, निम्बोली की गिरी, कीकर का गोंद, आँवला, छड़ीला, बकायन की मींग, माजू, संगजराहत, प्रत्येक ९ माशे। बारतंग के पानी में चने के बराबर गोली बनावे।

उपयोग—खूनी बवासीर के लिये।

सफूफ नअनआ—पोदीना खुश्क १ तोला, साँभर ६ माशा तन्तड़ीक ६ माशा, कालीमिर्च ६ माशे। कूट-छानकर चूर्ण बनावे।

गुण—जठराग्नि के लिये गुणकारी है।

हब्बे हाजिम पचलोना—शोरा कलमी, नौसादर, प्रत्येक ७ तोले, नमक स्याह, नमक लाहौरी, नमक साँभर, नमक सेंधा, सोंठ, पिप्पली, काली मिर्च, समुद्र झाग, जवाखार प्रत्येक १० तोला, जायफल, जावित्री प्रत्येक

१० माशे। कूट-छानकर अर्क नीबू या आद्रक के अर्क में चने के बराबर गोलियाँ बनावे।

अर्क हाज़िम--कीकर की छाल ५ सेर, किशमिश और मिश्री २॥ सेर, लहसुन (पोटली में बँधा), लौंग प्रत्येक ६ माशे, अगर १ तोला, सफेद चन्दन ११ माशे, बनफसा की जड़ ९ माशे, मोथा ९ माशे, नीबू की छाल २ तोला, बहमन सुर्ख, बहमन सफेद, शकाकुल, मालम मिश्री, तेजपात, दालचीनी, गुलगाजवाँ प्रत्येक १ तोला, खस २ तोला, बड़ी इलायची के बीज २॥ तोले, जायफल, जावित्री प्रत्येक १ तोला जाफरान ६ माशे, अम्बर ३ माशे। जाफरान और अम्बर की पोटली भपके के मुँह पर रखकर १० बोतल अर्क खींचे।

गुण—हाज़िम है, मेदे को बल देता है। बदन में शुद्ध रक्त बढ़ाता है।

चुटकी—सौंफ, काली छोटी हरड़, पोदीना खुश्क, स्याह मिर्च, साम्भर नरकचूर, सुहागे की खील प्रत्येक ३ माशे कूट-छानकर चूर्ण बनावें। मात्रा आधे माशे से ३ माशे। बालकों की बदहज्मी और मेदे के विकारों के लिये अत्यन्त उपकारी है।

लऊक हैजा—जहरमोहरा, वंशलोचन, नीबू का छिलका, अनार दाना भुना हुआ, तन्तड़ीक, पिस्ते का बाहरी छिलका, जरिश्क, सन्दल श्वेत प्रत्येक १ माशा। सबको पीसकर २ तोले शरबत अनार में मिलावें और थोड़ा-थोड़ा चटावें।

गुण—हैजा, कै और बेहोशी को दूर करता है।

हब्बे हैजा—आक की ताजी जड़ १ तोला, कालीमिर्च ६ माशा, दोनों को अदरख के अर्क में घोंटकर चने के बराबर गोली बनानी चाहिये।

उपयोग—दो-दो घंटे बाद गुलाब और सिकन्जबीन के साथ एक-एक गोली खिलावें।

नमक सुलेमानी खास— साम्भर १२ तोले, नमक हिन्दी १८ तोला, नमक इन्द्रानी १८ तोला, नौसादर १८ तोले, तुरुमकरफ्स ५ तोला, इजखर ४ तोला, सफेद मिर्च २१ तोला, अफस्यामून ७॥ तोला, बालछड़ ७॥ तोला, हींग १॥। तोला, जीरा स्याह १॥। तोला, दालचीनी १४ माशे, सोंठ १४ माशा, अनीसून १४ माशे, स्याह मिर्च ५ तोले। कूट-छानकर चूर्ण बनावे।

हब्बे कबिद नौसादरी—नमक लाहौरी, नमक साम्भर, नमक स्याह, सुहागा, नरकचूर, काली हरड़, पीली हरड़, काबुली हरड़, बायबिडङ्ग, स्याह मिर्च, सोंठ प्रत्येक १ तोला, कूट-छानकर चने के बराबर गोली बनावे।

गुण—यकृत की सख्ती, वृद्धि तथा अन्य रोगों को लाभ देता है। मात्रा २ गोली। पानी के साथ।

माजून तलख—गारीकून ११½ तोले, एलुवा ८½ तोले, तगर, तज, सिकमोनिया प्रत्येक ४ तोले, ७ माशे, मुरमकी, कूट मीठा, बालछड़, अफतीयून, दालचीनी प्रत्येक २ तोले ७ माशे, ऊद बलसां, फरफियून, स्याह मिर्च, सफेद मिर्च, पिप्पली, काला दाना, मिरचिया गन्ध, हमामा, प्रत्येक १ तोला २ माशे। रेवत चीनी १ तोला, मस्तगी १¾ तोला, कूट छानकर २ सेर शहद में मिलाकर माजून बनावे।

गुण—मेदे, जिगर के दर्द, फालिज, लकवा, कमर की दर्द, मसाने की पथरी के लिये उपयोगी है। मात्रा १ माशा से ५ माशा। अर्क सौंफ या मकोइ के साथ।

अर्क फौलाद—बुरादा फौलाद, पोदीना, खुश्क अजवायन खुरासानी प्रत्येक दो छटाँक, त्रिफला, गुड़ प्रत्येक २ पाव, लौंग, जावित्री, जायफल २ छटाँक, जाफरान १ तोला। दस सेर गरम पानी में भिगोकर दस दिन तक धूप में रक्खे, फिर ४ सेर अर्क खींचे।

गुण—जिगर की सूजन को दूर करता है। मात्रा ६ तोले तक।

सफूफनौबत—जहरमोहरा, बंशलोचन, सतगिलोय, छोटी इलायची के बीज, धनिया प्रत्येक ६ माशा कूट-छानकर चूर्ण बनावें।

गुण—बारी के बुखारों के लिये लाभदायक है। मात्रा ३ माशा।

कुर्स काफूर—तुख्म काहु ५ तोला १० माशे, तुख्म खुरफा ४ तोला ४½ माशे, बंशलोचन २ तोला ११ माशे, मुलहठी २ तोला ११ माशे, गुलसुर्ख १ तोला ५½ माशे, धनिया खुश्क १ तोला ५½ माशे, अकाकिया ७ माशे, सफेद चन्दन, गिले अरमानी, गुलनार, प्रत्येक ७ माशे, काफूर १¾ माशे। कूट-छानकर टिकिया बनावें। मात्रा—७ माशे।

गुण—तपेदिक, वृक आदि रोगों में।

कुर्स तबाशीर—तुख्म खुर्फा, गुलसुर्ख, गिले अरमानी, गुलनार,

बंशलोचन, तुख्म काहु प्रत्येक १ तोला कूट-छानकर गुलाब के अर्क में टिकिया बनावें।

गुण—तपेदिक में लाभदायक है।

हब्बे बुखार—कुनैन १ माशा, सत गिलोय २ माशे, कीकर का गोंद १ माशा, बंलेशाचन २ माशे। पानी में पीसकर चने के बराबर की गोली बनानी चाहिये। मलेरिया के लिये उपयोगी है।

पेचिश के लिये—खस १ तोला, बेलगिरी १ तोला, धाय के फूल १ तोला, इन्द्रजौ १ तोला, कूट-छानकर चूर्ण बनावें।

गुण—पेचिश और दस्तों के लिये उत्तम है। मात्रा ६ माशे।

अनुपान—रुब जामुन २ तोले और रुब बेहशीरी २ तोले के साथ।

हब्बे पेचिश—काफूर, माजु, हरड़ पोली, आँवला प्रत्येक १ तोला, जाफरान ६ माशे, बरारण्डी या गुलाब में खरल करके चने के बराबर गोली बनानी चाहिये।

गुण—हर तरह की पेचिश को आराम करती है। मात्रा—१ गोली। रात्रि को सोने के समय।

एक छुहारे की गुठली निकालकर उसमें अफीम भर दें। इस छुहारे को गेहूँ के गीले आटे में लपेटकर गरम राख में दबा दें। जब आटा भुन जाय, तो निकालकर चने के बराबर की गोली बनानी चाहिये। मात्रा—१ से ३ गोली, दस्तों को बन्द करती है।

हब्बे काबिज--अफीम, कतीरा, झाऊ का फल (कज माजूज), तुख्म अस्पत, अकाकिया, गुलसुर्ख, मटर, हब्बुलास, प्रत्येक १ तोला, कूट छानकर कीकर के गोंद के लुआब में मूँग के बराबर गोली बनावे। एक घन्टे में दस्त बन्द करती है।

हैजे की गोली—कपूर, अफीम, हींग, लालमिर्च के बीज पानी के साथ पीसकर १ रत्ती की गोली बनानी चाहिये। ½ घन्टे के अन्तर से दी हुई गोली कै और दस्तों को बन्द कर देती है।

— — —

बुखार के नुस्खे.

१—तुख्म खतमी ४ माशे, बनफसा, वर्क गाजबाँ, तुख्म बथुवा प्रत्येक ६ माशे—इनको चार गुने पानी में पकाकर देना चाहिये। यह नुस्खा सर्दी के बुखार के लिये उत्तम है। यदि ज्वर के साथ मलबन्ध हो, तो इसमें शर्बत नीलोफर या गुल नीलोफर भी मिला दें।

२—**यदि ज्वर के प्रारम्भ में शरीर में दर्द हो तो**—खाखसी २ माशा, वर्क गाजबाँ ५ माशे, नबात सफेद ६ माशे इनको काढ़ा करके गरम-गरम पीये, जिससे पसीना आजाय।

३—**श्लैष्मिक ज्वर के लिये**—सौंफ ६ माशे, सौंफ की जड़ ६ माशे, मुनक्का ९ दाना इनके काढ़े में १ तोला बनफशे का शर्बत मिलाकर पीयें।

४—**पैत्तिक ज्वर**—(मुख का स्वाद कड़वा रहे)—आलूबुखारा ४ दाना, गाजबाँ ५ माशे, नीलोफर ५ माशे इन तीन को भिगोयें। प्रातः-काल रात्रि को भिगोकर प्रातः छानकर शरबत नीलोफर दो तोला मिलाकर पीना चाहिये।

५—**ज्वर के साथ खांसी और जुकाम हो, तब**—गुलबनफसा ५ माशे, वर्क गाजबाँ ४ माशे, तुख्म खतमी ४ माशे, लसूड़े (शपिस्ताँ) १० दाने, असल लसूम ४ माशे, सफूफ गन्दम ४ माशे, तुख्म कस्तां ४ माशे, गुल जूफा ४ माशे, नबात ६ माशे, क्वाथ विधि से इनका चतुर्गुण पानी में काढ़ा करके पीना चाहिये।

६—**ज्वर के साथ (प्यास रहे तब)**—गुलबनफसा ५ माशे, तुख्म खुरफा ३ माशे, तुख्म कासनी ३ माशे, सौंफ ६ माशे, वर्क गाजबां ४ माशे क्वाथ विधि से क्वाथ करके पीयें।

७—**ज्वर के साथ कब्जियत हो तब**—वर्क गाजबां ४ माशे, तुख्मखयारीन ४ माशे, तुख्म पालक ४ माशे, गुल-नीलोफर ४ माशे, सनाय १ तोला, क्वाथ विधि से क्वाथ देवें।

८—**जीर्ण ज्वर के लिये**—पित्तपापड़ा ५ माशे, उन्नाब ५ दाना, वर्क बनफशा ५ माशे, खुब्बाजी ४ माशे, मर्ज तुख्म कद्दू ४ माशे, खाखसी

४ माशे, इनमें खाखसी को छोड़कर शेष सब वस्तुओं को अर्क मकोय में भिगोकर हलका जोश देकर छान ले। फिर खाखसी फाँककर दवाई पीनी चाहिये।

९—**शीत-ज्वर**—अफीम २ माशे, मिश्री ६ माशे, चन्दन श्वेत ३ माशे, केसर १ माशे, दालचीनी ३ माशे, काली मिर्च ३ माशे, इस चूर्ण की २ रत्ती मात्रा गरम पानी से लेनी चाहिये।

१०—**राजयक्ष्मा (क्षय) के लिये**—तुख्मखुरफा ४ माशे, मगज बेदाना ४ माशे, तुख्म कासनी ३ माशे, तुख्म रिहा ३ माशे, तुख्म इलायची (खुर्द) ३ माशे, कतीरा १ माशा, कीकर का गोंद ३ माशे, खसखस सफेद १ तोला, नबात सबके बराबर कूट-छानकर चूर्ण बना ले। मात्रा ३ माशे।

अनुपान—अर्क गावजबाँ।

११—**ज्वर और काम के लिये चटनी**—बनफसा २ तोला, मगज बादाम १॥ तोला, मगज कद्दू १॥ तोला, मगज खीरा १॥ तोला, कतीरा १॥ तोला, गुलसुर्ख १॥ तोला, सत मुलहठी ९ माशा, गिले अरमानी ९ माशा, निशास्ता ९ माशा, रूमी मस्तगी २ माशा सबका चूर्ण करके मधु में मिलाकर चटनी कर लेनी चाहिये। मात्रा—९ माशे।

१२—**ज्वर, पिपासा, सरसाम (प्रलाप) में**—मगज ख्यारैन २॥ तोले, मगज कद्दू २॥ तोले, तुख्म काहु २॥ तोले, मुलहठी का सत ९ माशे, निशास्ता ९ माशे, कतीरा ९ माशे, अफीम ९ माशे—कूट-छानकर ईसबगोल के लुआब में लेनी चाहिये। मात्रा—६ माशे

१३—**शिरोरोग (अत्रिफल) में**—पोस्त हलैला, पोस्त हलैला काबुली, हलैला स्याह, बनफसा प्रत्येक दो तोला, तरीदा सफेद, कशनीज खुश्क प्रत्येक १ तोला, पोस्त बलेला, आँवला मकसूर (बीजरहित), गुल सुर्ख, तबाशीर, गुलनीलोफर प्रत्येक १ तोला, सन्दल सफेद ६ माशा, कतीरा ६ माशा, रोगन बादाम ६ तोला, उन्नाब ५० दाने, लसोड़ा ५० दाने, सीरा मुरब्बा हलैला २ छटाँक, शहद १॥ पाव।

विधि—लसोड़े और गुलबनफशा को १॥ सेर पानी में रात्रि को भिगोकर काढ़ा करे। १ पाव रहने पर छान ले। फिर और दवाइयाँ डालकर अवलेह बना ले। मात्रा ६ माशे—रात्रि को सोते समय।

१४—हलुवा रोशने दिमाग़—नारियल की गिरी ताजी आध सेर, खसखस १ सेर, खोया १ सेर, मगज बादाम आध सेर, मगज कद्दू १ पाव, सन्दल सफेद ७ तोला, दोनों इलायची २ तोला, बसमासा १ तोला, जाफरान १ तोला, बेदमुश्क १ बोतल, दालचीनी १ तोला, मधु २ सेर, शक्कर सफेद २ सेर, गोघृत १ सेर।

विधि—प्रथम तीनों चीज़ों को घी में भूनकर शहद और शक्कर की चाशनी में शेष सब वस्तुओं को मिला देना चाहिये। मात्रा—९ माशे।

१५—ग्रीष्म-ऋतु के लिये सरदाई—मगज़ बादाम ५ दाने, मगज ३ माशे, मगज तरबूज ३ माशे, मगज़ खरबूज़ा ३ माशे, मगज खीरा ३ माशे, तुख्म खुरफा ३ मासे, गुल सुर्ख ३ माशे, खसखस ३ माशे, कतीरा १ माशा, लबाब बिहीदाना १ तोला, श्वेत चन्दन ३ माशे, इलायची खुर्द ३ माशे। सरदाई बनाकर पीना चाहिये। मात्रा—९ माशे। आवश्यकतानुसार शर्करा मिला लेनी चाहिये।

१६—मगज आजम (सर्दियों के लिये)—शाहतरा, बादरञ्जबोया, गुल गाज़बाँ प्रत्येक ९ माशे, बहमन सफेद, बहमन सुर्ख प्रत्येक ५ माशे, लाजवर्द, तबाशीर, गुलमखून, जाफरान, दरविञ्ज अकरबी, जलनिम्ब कबाबा, जरनबाद, हलेला काबुली प्रत्येक ३ माशे, आबरेशम; सन्दल सफेद पोस्तबैरूबस्ता, दाना इलायची, याकूत सुर्ख प्रत्येक २ माशे, मरजान, कहरबा प्रत्येक १ माशा, चांदी के वर्क १० नग, शर्करा १ पाव गुलाबजल ३ छटाँक अनार दाना ३ तोला, अर्क निम्बु ३ तोला, जरिश्क ३ तोला।

विधि—कूटनेवाली वस्तुओं को कूटकर, अर्क में चाशनी बनाकर उसमें मिलाकर अवलेह बना लेना चाहिये। मात्रा ९ माशे

१७—गर्मी के कारण सिर-दर्द व जुकाम— खमीरा गावज़बाँ ६ माशे, गुलबनफसा ६ माशे, उन्नाब ५ दाने, लसूड़े ११ दाने, गुल खतमी ४ माशे, शाहतरा ६ माशे, आलूबुखारा ५ दाने, बिहिदाना ३ माशे। रात को भिगोकर प्रातः छानकर इसमें नबात २ तोला मिलाकर खाना चाहिये।

१८—यदि नजला बन्द हो, सिर दर्द हो, ज्वर हो तो— गाज़बाँ ५ माशे, गुलगाज़बाँ ३ माशे, हंसराज ७ माशे, जाफरान ½ माशे

कोकनार सुर्ख ३ माशे, नबात सफेद १ तोला, अर्कमकोय १ पाव क्वाथ करके इसमें खाकसी मिलाकर पीना चाहिये। और शिर पर यह लेप करे—

अफीम, केसर, लौंग, जन्जर्बाल प्रत्येक २ माशे कीकर के गोंद के पानी में पीसकर शंख प्रदेश (कनपटी) पर लगाना चाहिये।

१९—त्रिदोष-जनित प्रतिश्याय—उस्त खद्दूस ७ माशे, गुलगाव-जबाँ १ तोला, तुख्म मरोद १ तोला, तशर्नीश १ तोला, तुख्म कदू २ तोला, कोकनार २॥ तोला, तुख्म खसखस ३ तोला, इनका क्वाथ करके इसमें तीन भाग शर्करा मिलाकर चाशनी बनानी चाहिये। इस चाशनी में कसनीज १ तोला, गुलसुर्ख १ तोला, मुलहठी का सत, निशास्ता, कीकर का गोंद और कतीरा प्रत्येक १ तोला मिलाना चाहिये। मात्रा ६ माशे।

२०—कास-रोग में—पोस्त खसखस १ माशा, बनफसा १ माशा, निशास्ता १ माशा, कतीरा १ माशा, मुलहठी का सत १ माशा, मगज तुख्म कदू २ माशा, तुख्म खसखस २ माशे, मगज बादाम ४ माशे, नबात ९ माशे, इनको कूट-छानकर लुवाब बिहिदाने के साथ गोली बनानी चाहिये।

२१—पेट दर्द के लिये—दरियाई नारियल २ माशे, पपीता ३ माशे, शिकञ्जर्बीन २ तोला, गुलेबनल २ तोला, सिरका या गुलाबजल में दरियाई नारियल मिला करदेना चाहिये।

२२—सूजाक के लिये—छोटी इलायची, तबाशीर संगजराहत प्रत्येक ७ माशे, हजारा अहमद १ तोला।

विधि—चूर्ण बनाकर ७ पुड़िया बना लेनी चाहिये। अनुपान—तण्डुलोदक।

पिचकारी के लिये—रसौंत १ तोला, कत्था सफेद ६ माशे कपूर १ माशा, रसकपूर १ माशा, तुत्थ १ माशा, फिटकरी १ माशा, अफीम १ माशा। इनको कूटकर मिट्टी के बर्तन में भिगो देना चाहिये। पानी १ सेर लेना चाहिये। इससे प्रातः काल धोना चाहिये।

२३—धातु पतली हो तो—तालमखाना ५ तोले, खूबकला ५ तोले साबूदाना १ पाव, ईसबगोल की भुस्सी १ पाव, गाय के दूध में पकाकर पीना चाहिये।

२४—हैजे के लिये—हैजे के लिये जहरमोरा, निर्विषी, दरियाई नारियल, प्रत्येक २ माशा, गुलाबजल में घिसकर पोदीने के अर्क के साथ

देना चाहिये। पीने के लिए अर्क गुलाब, अर्क कासनी, अर्क गाजबाँ देना चाहिये।

२५— माजुने बुकरात—गाजर के बीज २½ तोला, सोया २½ तोला, अकरकरा ½ तोला, रूमीमस्तगी ½ तोला, अनीसुन ढाई तोला, अजवाइन २॥ तोले, लौंग ½ तोला, अगर ½ तोला, गुलाब के फूल की कलियाँ तन्तु तोला ½। सबको बारीक कूटकर इसमें ३५ तोला शहद मिलाना चाहिये। मात्रा—½ से ½ तोला। भोजन के पीछे खाना चाहिये।

उपयोग—लीवर या आमाशय की कमजोरी में।

२६— माजुने नानरवाह—अजवायन, सौंफ, सुवा, गाजर का बीज, गन्धक प्रत्येक ३ तोला, रूमीमस्तगी, लौंग, दालचीनी, अकरकरा, जावित्री प्रत्येक आधा तोला, अगरखान ५ बाल, केसर ६ बाल, कस्तूरी १ बाल और शर्करा ४० तोले। मात्रा ½ से आधा तोला।

उपयोग—मस्तिष्क और आमाशय को शक्ति देता है।

२७—मुसफिया खून—वर्क नीम ३ तोले, शाहतरा ४ तोला, छोटी हड़ ३ तोला, आकाशबेल ४ तोला, अनन्तमूल ५ तोला, चोपचीनी ६ तोला, गुलनीलोफर ७ तोला, गुलाब के फूल ३ तोला, मुण्डी ५ तोला, शरफोंका ४ तोला, लालचन्दन ३ तोला, सफेद चन्दन ३ तोला, इलायची छोटी २ तोला, बिस्फायज ३ तोला, गाजबाँ ७ तोला, त्रिफला ९ तोला, उन्नाब १० दाना इनको ७ सेर पानी में २४ घन्टे भिगोकर तीन बोतल अर्क खींचना चाहिये। यदि जरूरत हो, तो 'पोटासियम आयोडाईड' भी मिला सकते हैं।

आँख के लिये

(१) सिल्वर नाइट्रेट २ ग्रेन, तिर्यक पातित जल १ औन्स, आँख के प्रायः आधे रोगों में उपयोगी है, यथा—कुकरों में पानी निकलने पर उपयोगी है।

(२) प्रोटार गोल १० ग्रेन से २० ग्रेन, तिर्यकपातित जल १ औंस, आँख के लिये उपयोगी है, विशेषतः जब आँख पर जोर पड़ता हो।

(३) येलो ऑक्साईड ऑफ मर्करी २ ग्रेन-४ ग्रेन, सफेद पैराफीन

१ औंस, यह आँख की पलकों में खुजली के लिये, बाल गिरने में उपयोगी है।

कान के लिये

(४) टिंचर ओपयाई २ ड्राम, टिंचर वैलाडोना २ ड्राम, ग्लीसरीन १ औंस, कान के दर्द में उपयोगी है। विशेषतः यदि पोस्त के डोडों को सेंक करके यह डाला जाय।

(५) कार्बोलिक एसिड ६ बूँद, हाईड्रोक्लोराईड ऑफ मॉर्फिया ३ ग्रेन, ग्लीसरीन १ औंस, कान के तीव्र शूल को भी शान्त कर देता है।

(६) बोरिक एसिड १० ग्रेन, रैक्टोफाईड स्प्रिट १ ड्राम, पानी १ औंस तक होजाय इतना। कान में जब सुनाई न दे, तब उत्तम है, या पीब आती हो।

दाढ़ के दर्द के लिये

(७) लौंग का तेल विलायती १ ड्राम, टिंचर ओपयाई २ ड्राम, ईथर १॥ ड्राम ग्लैसरीन २ ड्राम दाँत की गुहा साफ करके इसमें एक दवाई से भीगी हुई रुई उस गुहा में रखनी चाहिये।

(८) थाईमोल १ ड्राम, मैन्थोल १ ड्राम, कपूर २ ड्राम कार्बोलिक एसिड २ बूंद, लौंग का तेल १० बूंद, इलायची का तेल १० बूंद, रुई में लगाकर दाढ़ में लगाना चाहिये।

(९) क्लोरल हाइड्रेट १ ड्राम, कपूर १ ड्राम मैन्थोल १ ड्राम क्लोरोफार्म १० बूंद दांत के दर्द को एक दम से आराम करता है।

(१०) दन्तमञ्जन—फिटकड़ी भूनी हुई ३० ग्रेन सुहागे की खील ६० ग्रेन कत्था २ ड्राम, शीतल चीनी का चूर्ण, १ ड्राम कपूर २० ग्रेन एसिड कार्बोलिक १० बूंद कीओजोट ५ बूंद यूक्लिपटिस का तेल, २० बूंद चॉक का चूर्ण १ औन्स

गले में लगाने की औषधियाँ

११—आयोडीन ६ ग्रेन, पोटासियम आयोडाइड २५ ग्रेन, ऑयल पीपरमेंट १५ बूँद, ग्लीसरीन १ औन्स गले की सूजन पर लगाने की उत्तम दवाई है।

१२—टैनिक एसिड दो ड्राम या टिंचर फैराई परक्लोराईड दो ड्राम, ग्लैसरीन १ औंस टौंसिल गल-ग्रन्थि को आराम देती है।

१३—मैन्थोल १ ड्राम, पैराफीन लिक्विड १ औंस यह भी गले की सूजन को आराम करती है।

१४—मसूड़ों से खून आता हो तो—टिंचर आयोडीन गैलटीफाइड १ ड्राम, टिंचर मर १ ड्राम, ग्लैसरीन मसूड़ों पर लगाना चाहिये।

कुछ उपयोगी मिश्रण—

१५—सोडा बाई कार्ब या सल्फो कार्बनास १० ग्रेन, मैगनेसियम कार्ब २० ग्रेन, मैगनेसियम सल्फास ३ ड्राम, पानी पिपरमैन्ट वासिल १ औंस अपक्व या आमातिसार में उपयोगी है। प्रवाहिका के प्रथम में भी उपयोगी है।

१६—पोटासियम एसिटेट १० ग्रेन, पोटासियम साईट्रेट १० ग्रेन, लाइकर एमोनियम एसिटेट या साईट्रेट १ ड्राम, स्प्रिट ईथर नाइट्रोसी ३० बूँद सोडियम सैलिसिलेट १० ग्रेन, टिंचर सिनकोना कम्पाउन्ड १५ बूँद, पानी कपूर वासित १ औंस इस प्रकार की एक-एक खूराक ३-४ घंटे के अन्तर से देने पर ज्वर उतर जाता है, पसीना आता है।

१७—सोडीयम सैलिसिलेट १० ग्रेन, पोटासियम आयोडाईड ५ ग्रेन, पोटासियम बाई कार्ब १० ग्रेन, टिंचर ग्वाइकोल एमोनेट १५ बूँद, वाइनम कोलचिसाई १० बूँद, टिंचर हाई सोयमस ३० बूँद, सोडियम सल्फस १ ड्राम पानी १ औंस यह दवाई गठिया में विशेष उपयोगी है।

१८—पोटासियम एसिटेट या साईट्रेट १० ग्रेन, यूरोट्रोपीन १० ग्रेन, स्प्रिट ईथर नाइट्रोसी १५ बूँद, लाईकर एमोनियम एसिटेट ३० बूँद, टिंचर हाईसोमस १५ बूँद, टिंचर क्लोरोफार्म कम्पाउन्ड १० बूँद, इन्फ्युजन बक्कु १ औंस, टिंचर नक्सवोमिका ५ बूँद, यह प्रयोग पेशाब लाने के लिये उपयोगी है।

१९—क्युनीन सल्फास या हाइड्रोक्लोरट १ ग्रेन, एस्पायरीन ३ ग्रेन, एक्जालजीन २ ग्रेन, कैफीन साईट्रेट २ ग्रेन, इसको शिर-दर्द के लिये ठण्डे पानी के साथ देना चाहिये।

२०—अमोनियम क्लोराइड ५ ग्रेन, डोवर्स पाउडर ५ ग्रेन, क्युनीन सल्फ २ ग्रेन, प्रतिश्याय के लिये नाक बहती हो, तो उत्तम है।

२१—मैगनेसियम सल्फास १ ड्राम, लाइकर हाईड्राजराई परक्लोराईड १५ बूँद, टिंचर हाई सौमस १५ बूँद, एसिड सल्फ्युरिक डाईल्युट १० बूँद, स्प्रिट क्लोरोफार्म १० बूँद, लाईकर मॉर्फीया हाइड्रो क्लोराईड १२ बूँद, पानी दालचीनी का १ औंस, यह डिसैनरी-प्रवाहिका के लिये उत्तम मिश्रण हैं।

२२—विस्म्युथ सब नाईट्रेट १० ग्रेन, सैलोल ५ ग्रेन, ड्रोवर्स पाउडर १० ग्रेन, सोडा वाईकार्ब १० ग्रेन, दस्तों के लिये प्रवाहिका के लिये उत्तम है। इसको पानी के साथ देना चाहिये।

२३—पोटासियम ब्रोमाईड ५ ग्रेन, कैलसियम क्लोराईड १० ग्रेन, मैगनेसियम सल्फास १ ड्राम, शरबत २ ड्राम, पानी १ औंस शरीर पर खुजली हो, या छपाकी शीत-पित्त उठता हो, तो यह दवाई उत्तम है।

२४—फैराई एट एमोनियम या क्वीनन साईट्रेट ५ ग्रेन, टिंचर कोलम्बिया १५ बूँद, टिंचर नक्सवोमिका ५ बूँद, टिंचर जैन्शन कम्पाउन्ड मैगनेशियम सल्फ १ ड्राम, लाइकर आर्सनिक हाइड्रोक्लोर ३ बूँद, लाईकर स्ट्रिकनीन २ बूँद, पानी तिर्यक पानित १ औंस ज्वर के पोछे की कमजोरी के लिये भोजन के पीछे दोनों समय आध घंटे पीछे लेना चाहिये।

२५—एसिड गैलिक १ ड्राम, गोंद १५ ग्रेन, एक्सट्रेट एरगट लिक्विड १ ड्राम, टिंचर सिन्कोना कम्पाउन्ड १ ड्राम, हैजेलिन ४ ड्राम, टिंचर हैमेमैलिड ३० बूँद, सोडा सल्फ १ ड्राम, स्प्रिट क्लोरोफार्म १ ड्राम, पानी सौंफ वासित ६ औंस यह प्रयोग बवासीर के लिये अति उत्तम है। खून पड़ता हुआ भी इससे रुक जाता है। मस्सों पर डौलिक कम औपग्राई का प्रलेप लगाना चाहिये।

२६—अमोनिया कार्ब ५ ग्रेन, पोटासियम आयोडाइड ४ ग्रेन, स्प्रिट एमोनियम एरोमैटिक ३० बूँद, वाईनयम एपिकाक १० बूँद, टिंचर सिल्ला १५ बूँद, टिंचर डीजीटेलस ५ बूँद, टिंचर नक्सवौमिका ५ बूँद, ब्राण्डी २ ड्राम, पानी १ औंस यह प्रयोग निमोनिया में अच्छा है। इससे

बलगम निकल जाता है, ताकत बनी रहती है। दिन में ३ घन्टे के अन्तर में देना चाहिये।

२७—टिंचर बेलोडोना ५ बूँद, टिंचर कैनबिस इन्डिका ५ बूँद, टिंचर एसफिटेडा ३० बूँद, स्प्रिट क्लोरोफार्म १५ बूँद, पानी १ औंस। इसमें टिंचर नैक्सवोमिका ५ बूँद और टिंचर हाईसोमस ३० बूँद मिला दी जाय, तो पेट के दर्द के लिये बहुत ही उत्तम प्रयोग हो जाता है।

२८—स्प्रिट एमोनिया एरोमैटिक २० बूँद, पोटाशियम ब्रोमाईड ५ ग्रेन, टिंचर वैलेरियन एमोनेटा १५ बूँद, टिंचर एसेफिटेडा १५ बूँद, स्प्रिट क्लोरोफार्म १५ बूँद, पानी १ औन्स, यह प्रयोग हिस्टीरिया या मृगी रोगों के लिये उत्तम है। दिन में दो या तीन बार देना चाहिये।

२९—टिंचर क्युबव २० बूँद, ऑयल कोपायवा २० बूँद, ऑयल सैण्डल १० बूँद, स्प्रिट ईथरनाईट्रोसी २० बूँद, टिंचर हाइसोमस २० बूँद, म्युसीलेज १५ ग्रेन, इन्फ्युजन कवकु ४ ड्राम, पानी १ औन्स, यह प्रयोग गनोरिया के लिये उत्तम है। तीन-चार बार देना चाहिये।

३०—लाईकर एट हाईड्राजराई आयोडाईड ५ बूँद, पोटाशियम आयोडाईड, ५ ग्रेन, लाईकर हाईड्राजराई परक्लोराइड २० बूँद, सार्सापरैला १ ड्राम, पानी १ औन्स, यह प्रयोग सिफलिस उपदंश की पुरानी अवस्था में उपयोगी है। इसमें सीरप ट्रिफोली ४ ड्राम मिला सकते हैं।

३१—पोटाशियम ब्रोमाईड, सोडीयम ब्रोमाईड, अमोनियम ब्रोमाईड, प्रत्येक ५ ग्रेन, पानी १ औन्स, यह प्रयोग स्वप्न-दोष के लिये उत्तम है।

३२—बादाम का तेल १५ बूँद, ऑयल राजमेरी २२ बूँद, स्प्रिट रैक्टोफाईड ८ बूँद, लाइकर एविस्टैक्सीसे २२ बूँद, टिंचर जैबटैन्डि १५ बूँद, ग्लैसरीन दो ड्राम, पानी १ औन्स बालों को गिरने से बचाता है। बाल बढ़ाता है।

३३—पोटाशियम आमोडाईड ५ ग्रेन, स्प्रिट एमोनियम एरोमैटिक २० बूँद, टिंचर लैबेलिया ईथर ५ बूँद, टिंचर स्ट्रमोनसियम ५ बूँद, एड्रनैलिन क्लोराईड सोल्युशन १० बूँद, वाइनम एपिकाक ८ बूँद, टिंचर सिल्ला ८ बूँद, शरबत रोज १ ड्राम, पानी १ औन्स। दमे के लिये अति उपयोगी है। दिन में तीन बार देना चाहिये।

३४—एसिड हाइड्रोसैनिकडाईल्यूट ३ बूँद, टिंचर वैलोडोना ५ बूँद, टिंचर क्लोरोफार्म कम्पाउन्ड ८ बूँद, टिंचर कैन्विसइण्डिका ४ बूँद, टिंचर नैक्सवोमिका ५ बूँद, टिंचर हाईसोमस १५ बूँद, पानी सौंफ का १ औंस।

इस प्रकार की तीन ख़ूराक देने से वमन, दर्द रुक जाता है।

३५—टिंचर वैलोडोना ६ बूँद, स्प्रिट एमोनिया एरोमैटिक ३० बूँद, स्प्रिट ईथर ३० बूँद, एसिड हाइड्रोसैनिक डाइल्यूट ३ बूँद, टिंचर हाइसोमस ३० बूँद, शरबत १ ड्राम, पानी १ औंस।

यह कुकुरखाँसी में लाभदायक है।

३६—क्लोरोफार्म २ बूँद, वाइम एपिकाक १० बूँद, टिंचर वैलोडोना २ बूँद, पानी १ औंस।

इसको चार ख़ूराकों में विभक्त करके ३ घण्टे के अन्तर से देना चाहिये।

३७—टिंचर कैप्सिसाई, ३० बूँद, टिंचर एसेफिरेडा २ ड्राम, टिंचर ओपियाई २० बूँद, स्प्रिट कैम्फर १ ड्राम, स्प्रिट एमोनिया एरोमैटिक १ ड्राम, टिंचर जिंजीबेरिस २ ड्राम, पानी क्लोरोफार्म वासित ३ औंस।

इसमें टिंचर हाइसोमस ३० बूँद, टिंचर वैलोडोना ३ बूँद भी मिला सकते हैं। इससे पेट का दर्द कम होता है। विशेषत: जो नाभि के चारोंओर रहता है।

३८—सोडा सल्फोकार्बनास या बाईकार्ब १० ग्रेन, सोडियम सल्फेट ३० ग्रेन, सोडियम क्लोराइड १० ग्रेन, सोडियम सैलिसलेट ५ ग्रेन, सोडियम वैंज़ोआस ३ ग्रेन।

इसको १ पाव गरम पानी में देने से शूल-ज्वर को आराम होता है।

३९—आमोनियम क्लोराइड ८ से १० ग्रेन, सोडियम वैंजोआस १० ग्रेन, सोडियम सल्फास १ ड्राम, वाइनम एपिकाक १० बूँद, टिंचर योनियम ८ बूँद, एक्सट्रैक्सीसाइ ४० बूँद, टिंचर पोडोफिलाना १० बूँद, पानी १ औंस।

यकृत-शोथ के लिये, कामला के लिये, पित्त-नि:सारक उत्तम है।

४०—फैराई सल्फास २ ग्रेन, क्युनीन सल्फास ५ ग्रेन, मैगनेसियम सल्फास ४ ड्राम, एसिड सल्फ्यूरिक डाइल्युट १० बूँद, टिंचर नैक्स-

वोमिका ५ बूँद, लाइकर आर्सनिक हाइड्रो क्लोराइड ३ बूँद, स्प्रिट क्लोरोफार्म १५ बूँद, पानी १ औन्स।

इस प्रकार की ८ खुराकें बनानी चाहिये। भोजन करने के आध घण्टे पीछे देना चाहिये। दिन में दो बार पीना चाहिये।

४१—एक्सट्रैक्ट अरगट लिक्विड ३० बूँद, एसिड गैलिक ७ ग्रेन, एसिड सल्फ्यूरिक डाइल्यूट १० बूँद, टिंचर ओपयाई (यदि दर्द हो, तो) १० बूँद, पानी १ औंस।

यह प्रयोग गर्भपात में तथा प्रसव के पीछे होनेवाले रक्त-स्राव में उपयोगी है। इसी प्रकार रक्तार्त्तव में भी उपयोगी है।

४२—मैन्थोल १५ ग्रेन, कपूर १५ ग्रेन, एक्सट्रैक्ट बैलोडोना २० ग्रेन, एक्सट्रैक्ट ओपयाई २० ग्रेन, ओयल काजपुटी ४ ड्राम, ओलिव ओयल २ ड्राम।

इसको दर्द के स्थान पर लगाना चाहिये। यह दर्द के लिये उत्तम है।

४३—एसिड सल्फ्यूरिक डाइल्यूट ५ बूँद, टिंचर ओपयाई ५ बूँद, टिंचर काइनो १० बूँद, टिंचर कैटक्यु १० बूँद, पानी क्लोरोफार्म वासित १ औंस।

सब प्रकार के दस्तों के लिये उपयोगी है।

४४—क्युनीन सल्फास ५ ग्रेन, एसिड हाईड्रोक्लोरिक डाइल्यूट ५ बूँद, एक्सट्रैक्ट एरगट लिक्विड ३० बूँद, पानी १ औंस।

यह प्रयोग प्रसूतज्वर में उपयोगी है।

४५—एक्सट्रैक्स एरगट लिक्विड २० बूँद, लाईकर फैराई परक्लोराईड १० बूँद, एसिड साइट्रिक १० ग्रेन, पानी क्लोराफार्म वासित १ औंस।

रक्तस्राव में उपयोगी है।

४६—सोडा बैनजोआस ३ औंस, सोडा बाईकार्ब ४ ड्राम, ग्लैसरिन बोरिक २० ड्राम, मैन्थोल $\frac{1}{2}$ ग्रेन, थाईमोल २ ग्रेन, स्प्रिट रैक्टीफाई ५ ड्राम, टिंचरकोकाई १ ड्राम, पानी २० औंस।

इसमें से १ ड्राम लेकर, १५ औंस पानी में मिलाकर गलाले करने से गले की शोथ कम हो जाती है।

४७—स्प्रिट ईथर ३० बूँद, लौंग का तेल ५ बूँद, ओयल काजपुरी ५ बूँद, ओयल जमुनीपुर ५ बूँद, एसिड सल्फ्यूरिक एरोमैटिक १५ बूँद।

इसके १ ड्राम को आधे औंस पानी में मिलाकर प्रत्येक आधे घन्टे के अन्तर से हैजे में देना चाहिये जबतक कि वमन और दस्त बन्द न हो जाय।

४८—एमोनिया कार्ब ३ ग्रेन, टिंचरसिला १० बूँद, लाइकर एमोनिया एसिटेट १ ड्राम, टिंचर डिजिटेलस ५ बूँद, टिंचर नक्सवोमिका ५ बूँद, स्प्रिट कैम्फर १० बूँद, पानी दालचीनी सुवासित १ औंस।

यह प्रयोग इन्फ्लुयंजा के लिये उत्तम है।

४९—क्युनीन सल्फास ३ ग्रेन, मैगनेसिया सल्फास १ ड्राम, सोडियम सल्फास १ ड्राम, लाईकर एमोनिया एसीटेड १ ड्राम, स्प्रिट ईथर नाईट्रोसो १५ बूँद, पानी १ औंस।

यह मलेरिया के ज्वर में जब १०३ से ऊपर न हो, तो उत्तम है। विशेषतः जब मलबन्ध हो, तो।

५०—कैलशियम सल्फाइड ५ ग्रेन, सोडाबाई कार्ब ८० ग्रेन।

इसकी १२ पुड़िया बनानी चाहिये। दिन में चार पुड़िया पानी के साथ लेना चाहिये। उपयोग—गुमड़ों के लिये।

५१—(१) सोडाबाई कार्ब ६० ग्रेन, सोडासाईट्रीट ४० ग्रेन, टिंचर, कार्डियम १५ बूँद, टिंचर जींजी वेटम १० बूँद, पानी १ औंस। (२) क्युनीन सल्फास १० ग्रेन, एसिड साईट्रिक ३० ग्रेन, मैगनेशिया सल्फ ६० ग्रेन, पानी १ औंस।

प्रथम नम्बर (१) देकर, उसके ३ घन्टे पीछे नम्बर (२) देना चाहिये और फिर ३ घन्टे पीछे नम्बर (१) देना चाहिये। इस प्रकार ३-४ खुराक देने से मलेरिया ज्वर चला जाता है।

५२—हाइड्रोजराई कमक्लोरा २ ग्रेन, सोडाबाई कार्ब १० ग्रेन।

इसकी चार पुड़िया बनानी चाहिये। यह उपदंश के प्रारम्भ में उत्तम है। इसमें डोवर्स पाउडर भी मिला सकते हैं।

५३—जींक ऑक्साईड १ ड्राम, कैलेमीना प्रिपेरेटा १ ड्राम, गन्धक १ ड्राम, एसिड बोरिक १ ड्राम, कपूर २० ग्रेन, इक्थोल २० ग्रेन, डरमेटोल २० ग्रेन, वेसलीन १ औंस।

यह प्रलेप विसर्प के लिये उत्तम है।

५४—इक्थोल १ ड्राम, जिंक ऑक्साईड १५ ग्रेन, एसिड बोरिक २० ग्रेन, रिसौर्सिन १० ग्रेन, गन्धक ५ ग्रेन, वैसलिन १ औंस।

इससे व्रण अच्छे होते हैं।

५५—एसिड कार्बोलिक १० ग्रेन, लाईकरपिक्सजार्नी १५ बूँद, हाइड्रोजराई एमोनेटा २० ग्रेन, गन्धक १० ग्रेन, वैसलिन १ औंस।

इसमें इक्थोल भी मिला सकते हैं। दाद के लिये उत्तम प्रयोग है।

५६—पोटाशियम आयोडाईड ३ ग्रेन, आमोनिया कार्बनास ५ ग्रेन, वाइन एपिकाक ७ बूँद, टिंचर सिल्ला १० बूँद, स्प्रिट क्लोरोफार्म १० बूँद, स्प्रिट ईथर २० बूँद, इन्फ्युजन सैनेगा १ औन्स, बलगम निकालने के लिये उत्तम प्रयोग है, इसमें एमोनियम क्लोराइड ५ ग्रेन मिला दो तो उत्तम है।

५७—टिंचर स्क्विल १० बूँद, टिंचर कैम्फर एमोनेटा ३० बूँद, वाइन एपिकाक १० बूँद, सिरप बालस्म टोलू २० बूँद, म्युसीलिज २ ड्राम, पीपरमेन्ट का पानी १ औंस, यह गले की खारिश, शुष्क खाँसी को आराम करता है।

गोलियाँ

५८—फेराई आर्सेनास १/१० ग्रेन, क्युनीन सल्फास २ ग्रेन, एक्सट्रैक्ट नैक्स वोमिका १/४ ग्रेन, एलोयन १/२ ग्रेन, एक्सट्रैक्ट हाईसोमस १/४ ग्रेन, एक्सट्रैक्ट जैन्शन गोली के लायक। इस प्रकार ३० गोलियाँ बनाकर भोजन के १/२ घन्टे पीछे दोनों समय खानी चाहिये।

५९—पोडो फीलिन रैज़ीना १/४ ग्रेन, एलोयन १/३ ग्रेन, ईरडीन १/४ ग्रेन, एक्सट्रैक्ट नैक्सवोमिका १/४ ग्रेन, एक्सट्रैक्ट बैलोडोना १/८ ग्रेन, इयोनोमिन १/३ ग्रेन, एक्सट्रैक्ट हाईसोमस १/४ ग्रेन, एक्सट्रैक्ट जैन्शन गोली के लायक। यह गोलियाँ जिगर को शक्ति देती हैं, पित्त को निकालती हैं। इसमें 'पल्व एपिकाक' को भी १/८ ग्रेन मिला सकते हैं।

६०—मिट्टी का तेल १ औंस, नारियल का तेल १ औंस, नारंगी का तेल १ औंस, इसको त्वचा पर लगाने से मच्छर नहीं काटते।

६१—नैफ्थैलिन का चूर्ण ९६ भाग, क्रीयेजोट २ भाग, आयडोफार्म २ भाग। कपड़ों पर छिड़कने से खटमल या पिस्सू नहीं लगते।

६२—सोडाबाई कार्ब १० ग्रेन, स्प्रिट एमोनिया एरोमैटिक ३० बूँद, टिंचर कार्डियम को ३० बूँद, टिंचर कार्बनेटिव कम्पाउन्ड २० बूँद, टिंचर

जिंजेबेरिस ३० बूँद, स्प्रिट क्लोरोफार्म २० बूँद, पानी पिपरमेन्ट वासित १ औंस, भोजन पचानेवाला, वायु को साफ करनेवाला, उत्तम मिश्रण है। मलबन्ध हो, तो इसमें "कास्करा सैगरैटा लिक्विड" २ ड्राम या एक्सट्रैक्ट सैनालिक्विड २ ड्राम मिला सकते हैं।

६३—टिंचर कैटेच्यु ३० बूँद, सीरप जींजर ३० बूँद, एरोमैटिक चॉक पाउडर २० ग्रेन, पिपरमेन्ट वाटर १ औन्स। यह दस्तों के लिये उत्तम है। इससे दस्त बन्द हो जाते हैं।

६४—सोडियम फॉस्फेट ३० ग्रेन, टिंचर पोडोफलाई ५ बूँद, स्प्रिट एमोनिया एरोमैटिक १५ बूँद, एक्वाक्लोरोफार्म १ औन्स, यकृत-जन्य अजीर्ण के लिये उत्तम है, दिन में तीन बार लेना चाहिये।

६५—क्लोरोफार्म २ बूँद, सल्फ्युरिक ईथर १० बूँद, आयल कैरोफ्लाई २ बूँद, क्रियेजोट २ बूँद, एसिड हाइड्रोसैनिक डिल ५ बूँद, स्प्रिट एमोनिया एरोमैटिक ३० बूँद, ब्रांडी २ ड्राम, टिंचर ऑफ वेलरीयन ½ ड्राम, पानी १ औंस, यह मिश्रण थोड़ा-थोड़ा दो-दो घन्टे से पीना चाहिये। हिचकी में उपयोगी है।

६६—एसिटेट मिलाहाईड २ ग्रेन, क्युनीन सैलीसिलेट १ ग्रेन, कैफीन सायट्रेट १ ग्रेन इसकी एक पुड़िया बनानी चाहिये। ६ घन्टों के बीच में दो से अधिक नहीं लेना चाहिये। आधीशीशी शिर-दर्द में उपयोगी है।

६७—लाइकर आरसैनिक कैलिस ३ बूँद, पोटाशियम साईट्रेट १५ ग्रेन, वाइनम कोलचिसाई ५ बूँद, टिंचर सोमीसीफ्यूज ८ बूँद, सीरप औरनशाई १॥ ड्राम, एक्वा डिस्टेलेटा १॥ औंस। भोजन के पीछे थोड़ा पानी मिलाकर दिन में तीन बार लेना चाहिये। आमवात-जन्य सन्धि-शोथ में उपयोगी है।

६८—एसिड आर्सैनिका $\frac{1}{30}$ ग्रेन, रिड्यूस्ड आयरन २ ग्रेन, क्युनीन सल्फास १ ग्रेन, एक्सट्रैक्ट जैन्शन पर्याप्त मात्रा में दिन में दो बार भोजन के पीछे पुराने मलेरिया के लिये उपयोगी है।

६९—एसिड बैनजोइक २ ग्रेन, कैम्फर १ ग्रेन, एक्सट्रैक्ट बैलेडोना $\frac{1}{4}$ ग्रेन एक गोली प्रत्येक रात्रि में लेना चाहिये। रात्रि में होनेवाले मूत्रस्राव या स्वप्न-दोष के लिये।

७०—सोडाई बैंजोआस २० ग्रेन, टिंचर बक्कु ३० बूँद, टिंचर

हाईसामस १५ बूँद, स्प्रिट क्लोरोफार्म १० बूँद, डिकोक्शन पैरी १ औंस, जौ के पानी के साथ प्रत्येक चार घन्टे के अन्तर से लेना चाहिये। मूत्राशय के विक्षोभ में उपयोगी है।

७१—ग्लैसरीन एसिड बोरिक १ औन्स, ग्लैसरीन एसिड कार्बोलिक १ ड्राम, ऑयल गैल्युथोरा १५ बूँद, ऑयल मैन्था प्रिपेरेटा १५ बूँद, यूक्लिपटोल १५ बूँद, थाईमोल ३ ग्रेन, स्प्रिट रैक्टीफाई ३ औंस, एक्वा डिस्टीलेटा ८ औंस। यह प्रयोग मुँह के धोने के लिये उत्तम है, यह 'लिस्टरीन' से मिलता है।

७२—ग्लैसरीन एसिड कार्बोलिक २ औंस, ग्लैसरीन एसिड टॉनिक ६ औंस। इनमें से एक छोटा चम्मच लेकर १० औंस पानी में मिलाकर प्रातः-सायं योनि का प्रक्षालन करना चाहिये। यह प्रसवकालीन स्वच्छता के लिये उत्तम है।

७३—एसिड हाइड्रोसैनिक डाइल्यूट ३ बूँद, लाइकर विस्म्युथ ३० बूँद, सोडाबाई कार्ब २० ग्रेन, लाइकर मोर्फीया हाइड्रोक्लर ८ बूँद, स्प्रिट क्लोरोफार्म ८ बूँद, एक्वामैन्था १ औन्स; आमाशय के विक्षोभ के लिये उत्तम है।

७४—कोकीन हाइड्रोक्लोरस ८ ग्रेन, एसिड हाइड्रोसैनिक डाइल्यूट ३० बूँद, ग्लैसरीन ४ ड्राम, कार्बोलिक लोशन (२३ %) ८ औंस, भगप्रदेश की कण्डू के लिये उत्तम घोल है।

७५—एसिड सलफ्युरिक एरोमैटिक १० बूँद, टिंचर ओपयाई ५ बूँद, टिंचर कैप्सीसाई ३ बूँद, टिंचर कार्डम को ३० बूँद, एक्वा सिवनमाई १ औंस। ग्रीष्म कालीन अतिसार के लिये उपयोगी है।

७६—लाइकर एमोनिया एसिटेट २। ड्राम, स्प्रिट ईथर नाइट्रोसाई १५ बूँद, वाइनम एन्टीमोनियल १५ बूँद, सीरप टोलु ३० बूँद, मिक्सचर एमैगडीला २ ड्राम, एक्वा कैम्फर १ औंस। कास के लिये उत्तम है। प्रत्येक चार घन्टे से लेना चाहिये।

७७—कैफिन साइट्रेट ३ ग्रेन, स्प्रिट एमोनिया एरोमैटिक १५ बूँद, टिंचर वैलेरीयन एमोनैटा १५ बूँद, सीरप जींजीबर ३० बूँद, एक्वा सीवनमई १ औंस, वात-जन्य शिर-दर्द के लिये उत्तम है।

७८—अमोनियम क्लोराइड १५ ग्रेन, टिंचर जैल्सीमाई १० बूँद,

टिंचर एकोनाइट २ बूँद, एक्सट्रैक्ट कोला लिक्विड ३० बूँद, एक्सट्रैक्ट आ लिक्विड ३० बूँद, एक्वा क्लोरोफार्म १ औंस; शिर-दर्द के लिये, वात-जन्य पीड़ा के लिये उत्तम है।

७९--अमोनियम क्लोराइड १ ड्राम, स्पिट रैक्टीफाई १ औंस, एक्वा रोज़ (गुलाब का अर्क) ६ औंस; सूजे हुये अण्डकोषों पर उपयोगी है। इसमें भीगा हुआ कपड़ा रखना चाहिये।

८०--एक्सट्रैक्ट अरगट ग्रेन, एपीओल ३ बूँद। एक पुड़िया दिन में तीन बार लेनी चाहिये।

उपयोग--ऋतु न आने में या कष्टार्त्तव में।

८१--टिंचर एपोसाइनम १० बूँद, टिंचर डिजीटेलिस ५ बूँद, टिंचर स्ट्रिकनीन २ बूँद, एक्वा क्लोरोफार्म १ औंस। दिन में तीन बार लेना चाहिये।

उपयोग--'यूरीमिया' रोग में।

८२--बाल्सम टोलु १ ड्राम, ऑयल बीगीला एक औंस, टिंचर कैम्फर को दो ड्राम, सीरप प्रनी करजैनी ४ ड्राम, एक्वा सेन्टीला ८ औंस। एक मात्रा प्रत्येक चार घन्टे के अन्तर से लेनी चाहिये।

उपयोग--कास-रोग में--श्वास-नलिका के विक्षोभ से होनेवाली।

८३--टिंचर बैलाडोना २ बूँद, क्लोरोफार्म २ बूँद, वाइनम एपीकाक ५ बूँद, मिक्श्चर एमैगडीला २ ड्राम, एक्वा एक औंस।

उपयोग--कुक्कुर-कास में उत्तम है।

८४--टिंचर कैम्जोयन कम्पाउन्ड ३० बूँद, वाइनम एपिकाक ८ बूँद, सीरप प्रनी वरजैनी ३० बूँद, म्युसीलेज एकाशिया ३० ग्रेन, एक्वा एनीसाई १ औंस। पुरानी कास के लिये उपयोगी है। दिन में तीन बार लेना चाहिये।

८५--बिस्म्युथ कार्ब २ ग्रेन, सैलोल आधा ग्रेन, पल्व ट्रैगन्थ कम्पाउन्ड ३ ग्रेन, सीरप ऑरन्साई ८ बूँद, एक्वा एनैथी १ औंस। बच्चों के अतिसार के लिये उपयोगी है।

८६--ब्युटाइल क्लोरल हाइड्रेट ३ ग्रेन, फिनेजान ५ ग्रेन, स्प्रिट क्लोरोफार्म १५ बूँद, एक्वा मैन्थाप्रपेरेटा १ औंस।

३ घन्टों में दो से अधिक मात्रा नहीं लेनी चाहिये। फेसियल न्युरैल, जीया के लिये उत्तम है।

८७--पल्व क्रीटा एरोमैटिक कम ओपयाई १५ ग्रेन, टिंचर कैटेक्यु

३० बूँद, स्प्रिट एमोनिया एरोमैटिक १० बूँद, सीरप जिंजीबेरिस एक ड्राम, एक्वा पिपरमेंट एक औंस। प्रत्येक चार घन्टे के अन्तर से लेना चाहिये। अतिसार में उपयोगी है।

८८—टिंचर कैनबिस इंडिका १० ग्रेन, फिनेजोन ८ ग्रेन, गम एकाशिया ३० ग्रेन, एक्वा क्लोरोफार्म १ औंस। गृध्रसी—स्याटिका या वातिक-शूल के लिये उपयोगी है।

८९—एक्सट्रैक्ट कैनबिस इंडिका आधा ग्रेन, पल्व ओपयाई आधा ग्रेन, कैम्फर २ ग्रेन। एक गोली बनानी चाहिये। कष्टार्त्तव में उपयोगी है।

९०—एक्सट्रैक्ट कैनबिस इंडिका आधा ग्रेन, एक्सट्रैक्ट हाइडैस्टिस कैम्फर एक ग्रेन।

९१—टिंचर कैप्सीसाइड ५ बूँद, एसिड सल्फ्युरिक एरोमैटिक १० बूँद, टिंचर ओपयाई ५ बूँद, सीरप औरन्साई आधा ड्राम, एक्वा कैम्फर १ औंस। दिन में तीन बार लेनी चाहिये।

उपयोग—अतिसार में उपयोगी है।

९२—सीरियाई ऑक्सीलास ४ ग्रेन, बिस्म्युथ सैलिसिलास ५ ग्रेन, कोकीन हाइड्रोक्लोरास ½ ग्रेन। गर्भावस्था में होनेवाली वमन के लिये उपयोगी है।

९३—क्लोरल हाइड्रेट १० ग्रेन, पोटाशियम ब्रोमाइड १० ग्रेन, टिंचर हाईसैमस १० बूँद, एक्सट्रैक्ट ग्लिसराइ जा लिक्विड ३० बूँद, एक्वा कैरोड एक औंस। नींद लाने के लिये उत्तम है।

९४—कोकेन २० ग्रेन, एसिड ऑलिक ३० ग्रेन, कैम्फर ३० ग्रेन, स्प्रिट रैक्टीफाई ३० बूँद, लैनोलीन ४ ड्राम, पैराफीन मौली ४ ड्राम। अर्श के लिये उपयोगी है।

९५—सीरप कोडिना ३० बूँद, लाइकर पीसी एरोमैटिक १० बूँद, एलक्जियर हीरोईन टैरीपीन कम्पाउन्ड १ ड्राम। यह मात्रा कई बार चाटनी चाहिये। यक्ष्मा-जन्य-कास के लिये उत्तम है।

९६—एसिड टैनिक १० भाग, एसिड बैंजाइक ५ भाग, बाल्सम पीरन २ भाग, कौलोडियल फ्लैक्स २३ भाग। एक उत्तम रक्त-स्तम्भक है।

९७—टिंचर कौनवेलेरिया ५ बूँद, लाइकर ट्राईनाईट्रीन एक बूँद,

टिंचर नैक्स वोमिका ३ बूँद, स्प्रिट ईथरीस कम्पाउन्ड १५ बूँद, एक्वा डिस्टिल्ड एक औंस।

दिन में तीन बार लेना चाहिये। हृदय के लिये उत्तम शक्तिवर्द्धक है।

९८—टिंचर कोटो २० बूँद, टिंचर बैलोडोना ३ बूँद, टिंचर नैक्स-वोमिका ३ बूँद, टिंचर कारमीगी ३० बूँद, एका १ औंस। पुरानी प्रवाहिका के लिये उत्तम है।

९९—क्रीयेजोट २ बूँद, पैराफीन लिक्विड १ ड्राम, ऑयलमर १ ड्राम, पल्व एकाशिया ३० ग्रेन, सीरप औरन्साई आधा ड्राम, एक्वा सिनैन-माई एक औंस। भोजन के पीछे लेनी चाहिये। यक्ष्मा के लिये उपयोगी है।

१००—ग्वायकोल ३ बूँद, टिंचर बैंजोईनको १५ बूँद, सीरपटोलु ३० बूँद, मिक्सड एमैगडोला ४ ड्राम। थोड़ा पानी मिलाकर दिन में तीन बार लेना चाहिये।

उपयोग—कास के लिये उपयोगी है।

१०१—ग्वायकोल एक ड्राम, कोकोन ५ ग्रेन, पैराफोन मैल ५ ग्रेन डेढ़ औंस। अण्ड-शोथ का उत्तम प्रलेप है। इसको पतला-पतला लगाकर कपड़े से ढाँप देना चाहिये।

१०२—एक्सट्रैक्ट अर्गट एक ग्रेन, एक्सट्रैक्ट गोसीफाई आधा ग्रेन, फैराईसल्फ एक ग्रेन, एक्सट्रैक्ट एलोज़ एक ग्रेन। एक गोली बनानी चाहिये। कष्टार्त्तव में उपयोगी है।

१०३—कोकोन ५ ग्रेन, मॉर्फिया ५ ग्रेन, एसिड ऑलिक १ ड्राम, गॉल ऑन्टमेंट १० ड्राम। बवासीर के मस्सों के लिये उत्तम है। इससे वस्त्र खराब नहीं होता।

१०४—एक्सट्रैक्ट गोसीफाई १५ बूँद, टिंचर सीमीसिफ्यूज १५ बूँद, स्प्रिट क्लोरोफार्म १० बूँद, इन्फ्युजन बैलरियन ४ ड्राम। दिन में तीन बार लेना चाहिये। कष्टार्त्तव में उपयोगी है।

१०५—एक्सट्रैक्टहाईड्रसरिस आधा ग्रेन, एक्सट्रैक्ट हैमेमैलिड १ ग्रेन, एक्सट्रैक्ट अरगट एक ग्रेन, एक्सट्रैक्ट सीमीसीफयुज ½ ग्रेन। एक गोली अत्यार्त्तव, रक्त-प्रदर में उपयोगी है।

१०६—इकथोल एमोनेट २ ड्राम, लाइकर पल्मबाई फोर्ट १ ड्राम, एक्वाल्युरोसी २ ड्राम, एक्वाडिस्टिल्ड ४ औंस। भग-कण्डू के लिये उत्तम है।

१०७—टिंचर आयडीन रैक्टीफाई एक बूँद, ग्लैसरी ३० बूँद, एक्वा १ औंस। प्रत्येक एक घन्टे के अन्तर से देना चाहिये। न रुकनेवाली वमन के लिये उत्तम है।

१०८—टिंचर जैवरैन्डी ३० बूँद, एक्सट्रैक्ट माल्टी लिक्विड ४ ड्राम, स्प्रिट क्लोरोफार्म ८ बूँद, एक्वा सिननमाइ १ औंस। दिन में तीन बार लेना चाहिये। दूध बढ़ाने के लिये उत्तम है।

१०९—एक्सट्रैक्ट जैम्बोला लिक्विड एक ड्राम, कोडीना फॉस्फेर आधा ग्रेन, ग्लैसरीन ग्लीसरो फॉस्फेट कम्पाउन्ड एक ड्राम, इन्फ्युजन जैनशन को एक औंस। दिन में तीन बार लेना चाहिये। मधुमेह के लिये उत्तम है।

११०—कमीला ३० ग्रेन, म्युसीलेजट्रैगेगन्थ ४ ड्राम, सीरप जिंजीबा एक ड्राम, एक्वा कैरोफलाई डेढ़ औंस। यह मात्रा रात्रि को लेना चाहिये। प्रातः विरेचन लेना चाहिये।

उपयोग—टेपवार्म के कीड़े के लिये है।

१११—लीथीयाई साइटेट ५ ग्रेन, पल्व मैगनेसियम बोरो साईट्रेट कम्पाउन्ड ३० ग्रेन, हैक्जेमीन ५ ग्रेन, एक्वाडिस्टील्ड एक औंस। ५ औंस पानी में मिलाकर लेनी चाहिये।

उपयोग—मूत्र-मार्ग की शर्करा के लिये होता है।

११२—मैगनेशिया लीव्स १५ ग्रेन, पल्व रिहाई ५ ग्रेन, सीरप जीजीबर एक ड्राम, एक्वा मैन्थापिपरेटा एक औंस। अजीर्ण और आमाशय की जलन के लिये हितकारी है।

११३—ऑयलमर ४ औंस, पैक्रेटीन ५ ग्रेन, ओलीयम बिटूला एक औंस, पल्वट्रैगेगन्थी ५ ग्रेन, सोडाबाई कार्ब ५ ग्रेन, सीरप औरंशाई ४ ड्राम, इन्फयुजन औरंशाइ ८ औंस तक। निर्बलता के लिये।

११४—मुश्क ५ ग्रेन, गम एकाशिया ३० ग्रेन, स्प्रिट ईथर १५ बूँद एक्वासीननमाइ एक औंस। शीताङ्ग सन्निपात में उपयोगी है।

११५—टिंचर मुश्क १० बूँद, टिंचर सम्बल १० बूँद, टिंचर कैनबिस इण्डिका ५ बूँद, टिंचर वैलरियन एमोनेटा ३० बूँद, गम एकासिया एक ड्राम, एक्वा क्लोरोफार्म एक औंस।

उपयोग—उन्माद में (हाइपोकौन्डरीस) होता है।

११६—पैराफीन लिक्विड ४ औंस, पल्व एकाशिया १ औंस, सोडियम हाईपोफौस्फेर १ ड्राम, सीरप औरनशाई १ औंस, कैलशियम हाइपोफौस्फेर १ ड्राम। एका डिस्टेल ८ औंस। यह कॉडलिवर ऑयल के स्थान पर बरता जा सकता है। निर्बल बच्चों के लिये उत्तम है।

११७—लाइकर कार्ब डिर्जीन १ ड्राम, जिंक ऑक्साइड ४ ड्राम, कैलेमीना प्रिपेरेटा ४ ड्राम, ग्लैमरोन १ ड्राम, लाइकर कैलसिस ८ औंस।

एक्जिमा-विसर्प के लिये उत्तम लोशन है।

११८—लाइकर पलमबाइ फोर्ट ३० बूँद, ऑयल एमैगथिला १ औंस, लाइकर कैलसिस १ औंस. ऑयल कैरोफ्लाई ३ बूँद। शोथ, अग्निदाह और विक्षोभित त्वचा के लिये शान्तिदायक उत्तम लोशन है।

११९—पल्व रिहाई ५ ग्रेन, पोटाशियम टार्टरिक एसिड १० ग्रेन, पल्व सिनमाई कम्पाउन्ड ३ ग्रेन। यह बच्चों के लिये विरेचक है।

१२०—सैजेसोन १० ग्रेन, सोडियम सैलिसिलेट १० ग्रेन, इन्फ्युजन औरनशाई १ औंस। इन्फ्लुयंजा के लिये उपयोगी है। दिन में तीन बार लेना चाहिये।

१२१—टिंचर सिल्ला ५ बूँद, टिंचर सैनेगा १० बूँद, टिंचर बैलेडोना ३ बूँद, टैरबीन २ बूँद, टिंचर कैम्फर को ३० बूँद, मिक्सचर एमैगडीला ४ ड्राम। दिन में दो बार लेना चाहिये; वृद्धों की कास के लिये उत्तम है।

१२२—सोडियम सल्फोकार्बनास ८ ग्रेन, सोडाबाई कार्ब १५ ग्रेन. स्प्रिट एमोनिया एरोमैटिक १५ बूँद, स्प्रिट एरोमैटिक ३० बूँद, इन्फ्युजन कैरोफ्लाई ४ ड्राम। भोजन की विदग्धता से उत्पन्न अतिसार के लिये उत्तम है। इसमें थोड़ा-सा पानी मिलाकर भोजन के एक-एक घन्टे पीछे लेना चाहिये।

१२३—जिंकवैलेरेनेटिस ३ ग्रेन, पिलएसफिटंडा कम्पाउण्ड २ ग्रेन। १ गोली। हिस्टीरिया के लिये उत्तम है।

बत्रीशुं काटलुं—सोंठ ९ तोला, मेथी १ तोला, जावित्री आधा तोला, चीमेद आधा तोला, दालचीनी १ तोला, पिप्पलीमूल आधा तोला, गोंद बबूल २० तोला, जायफल आधा तोला, शतावरी आधा तोला, नागकेसर आधा तोला, खसखस १ तोला, सौंफ १ तोला, तमाल-पत्र आधा तोला, सुवा १ तोला, गोखरून १ तोला, मुसली स्याह १ तोला, बलबीज २ तोला,

धनिया १ तोला, तालमखाना १ तोला, एशरीया १ तोला, बादामबीज ५ तोला, पिप्पली १ तोला, वायविडङ्ग आधा तोला, मुसली सफेद १ तोला, कौंचबीज १ तोला, मिर्च १ तोला, काली जड़ आधा तोला, जीरा आधा तोला, हल्दी आधा तोला, खोपरा (नारियल की गिरी) १० तोला, पिस्ता ५ तोला।

विधि—सब दवाइयों का चूर्ण कर लेना चाहिये। ४ तोले चूर्ण को १० तोले घी में भूनकर इसमें १० तोला गुड़ और ६ तोला घी में भुना गेहूँ का आटा मिलाना चाहिये। इसको प्रातः खाकर ऊपर से दूध पीना चाहिये।

उपयोग—प्रसूता स्त्री के लिये उपयोगी है; पौष्टिक है।

अत्रिफल कसवजी—पीली हरड़ की छाल, काबुली हरड़ का छिलका, छोटी हरड़, बहेड़े की छाल, आँवले का चूर्ण, धनिये का चूर्ण, बादाम का तेल १ तोला, शर्करा २० तोला, मधु ४० तोला। सब दवाइयों का चूर्ण करके इसमें बादाम का तेल मिलाकर, पीछे से शहद मिलाकर चटनी बनाकर रखना चाहिये। मात्रा—आधा से एक तोला।

उपयोग—कब्जियत, नजला, दाह, नेत्ररोग में।

द्राक्षादि अवलेह—काली द्राक्षा, जरदालु, मिर्च, सेंधा नमक, सिकी हुई भाँग, जीरा, सोंठ, संचल, लहसुन, की कलियाँ प्रत्येक १ तोला, खजूर ५ तोला, हींग १ तोला, गुलाब के फूल १० तोला, पिप्पली १ तोला, नींबू का रस २० तोला, गुड़ २० तोला। शुष्क दवाइयों का चूर्ण करके खजूर, जरदालु, द्राक्षा मिलाकर चटनी करके रख लेना चाहिये। मात्रा—आधा से १ तोला। यह चटनी भूख लगाती है; भोजन में रुचि पैदा करती है।

ब्राह्मी वटी—अभ्रक-भस्म १ तोला, स्वर्णमाक्षिक-भस्म १ तोला, शुद्ध शिलाजीत १ तोला, ब्राह्मी-चूर्ण ६ तोला, रससिन्दूर १ तोला, लोह-भस्म १ तोला, वायविडङ्ग १ तोला। मात्रा २ गोली।

उपयोग—मस्तिष्क की निर्बलता में, याद-शक्ति की कमजोरी में, निद्रा-नाश में।

अनुपान—दूध।

सिंहवाहिनी वटी—केशर, जावित्री, यशद-भस्म, माजूफल, रूमी-मस्तकी, शुद्ध जहरकुचला, लवँग, जायफल, अजवायन, बिधारा-बीज, पुष्कर-

मूल, अफीम, शुद्ध बछनाग प्रत्येक ३ माशा, हिंगुल १ तोला, भीमसेनी कपूर ३ माशा, कस्तूरी ४ बाल, अम्बर १ बाल। मात्रा—१ से २ गोली।

अनुपान—केसर से सुवासित दूध।

उपयोग—वीर्य-स्तम्भक, रति-शक्ति-वर्द्धक।

हिस्टीरिया-नाशक वटी—गाँजा १ तोला, कपूर १ तोला, खुरासानी अजवायन ४ तोला। गोली चने के बराबर बनाकर, २ गोली प्रात: और २ गोली सायंकाल--जटामांसी ४ तोला, असगन्ध १ तोला, खुरासानी अजवायन १ तोला—(१ तोला चूर्ण २० तोले मात्रे में काढ़ा करके ५ तोला रहने पर) क्वाथ के साथ लेना चाहिये।

आशौघ्नी वटी—गुलाबजल से पिसा हुआ कहरुवा १ तोला, हीरा दखण २ तोला, रसौंत ३ तोला, नीम के बीज २ तोला, इनको गुलाबजल से गोली बना लेनी चाहिये। मात्रा—२ गोली रात्रि को सोते समय पानी के साथ। अर्श-रोग में उपयोगी है।

गुलाबी चूर्ण—जामुन की गुठली, आम की गुठली, नेत्रबाला प्रत्येक ५ तोला, इनका चूर्ण ३ से ६ माशा मात्रा में लेने से आमातिसार, रक्तातिसार नष्ट होता है।

अनुपान—तण्डुलोदक।

पंचसकार चूर्ण—सोंठ, सौंफ, पोदीना, छोटी हरड़, सैंधव, सनाय, छोटी हरड़ २० तोले, सनाय ४० तोले और सब १० तोले प्रत्येक लेकर चूर्ण कर लेना चाहिये। मात्रा—३ से ६ माशा।

उपयोग—रक्त-विकार में, मल-बद्ध में।

अनुपान—गरम पानी।

शतपथ्यादि-चूर्ण—गुलाब के फूल १६ तोले, शर्करा ३२ तोले, जीरा, वंशलोचन, गिलोय, सत्व, तवाशीर, इलायची, नागरमोथा, उमथाजीरा की लुई (ईसबगोल की भूसी) कपूर, सारिवा, दालचीनी, तमालपत्र, नागकेसर, चन्दन सफेद, रूमीमस्तगी प्रत्येक १ तोला। ऊपर की दवाइयों को बारीक पीसकर कपड़े में छान लेना चाहिये। मात्रा—२ से ४ आने भर।

अनुपान—दूध अथवा पानी के साथ।

उपयोग—वातरक्त में, दाह में, प्यास में, ज्वर में, रक्त-पित्त में।

पौष्टिक माजून-- छोटी इलायची ३ तोला, बड़ी इलायची ५ तोला, दालचीनी डेढ़ तोला, नागकेसर १ तोला, जायफर डेढ़ तोला, जावित्री डेढ़ तोला, कपूर कचरी डेढ़ तोला, रूमी मस्तगी १ तोला, गुलाब के फूल ३ तोला, चांदी के वर्क १ तोला, जटामांसी डेढ़ तोला, नागरमोथा २ तोला, तगर डेढ़ तोला, बहमन सफेद डेढ़ तोला, तालीशपत्र २ तोले, केशर आध तोला, चन्दन सफेद १ तोला, गावजुबाँ १ तोला, वंशलोचन डेढ़ तोला, सोने के वर्क २५ नग, शकरा १ सेर, आँवले का मुरब्बा ४० तोले। मात्रा—१ तोला, प्रातः-सायं दो समय दूध के साथ खाना चाहिये ।

उपयोग—शक्ति बढ़ानेवाला, क्षय और कास में उत्तम है ।

हिक्कानाशक प्रयोग—मयूर पिच्छा भस्म, छोटी पिप्पली, काकड़ा-शृङ्गी इन तीनों को समस्त भाग लेकर २ से ४ रत्ती की मात्रा में शहद के साथ देने से हिचकी बन्द होती है ।

अम्बर विलास गुटिका—अम्बर आधा तोला, सुवर्ण का वर्क १ तोला, शिलाजीत २ तोले, कौंच बीज, शुद्ध बछनाग, अनार, जावित्री, पिप्पली, लौंग, कूठ, शुद्ध अफीम, अभ्रक-भस्म, कस्तूरी, चाँदी के वर्क, सफेद मुसली, गिलोय-सत्व, शुद्ध कनक-बीज, जायफल, दालचीनी, केशर, अकरकरा, भीमसेनी कपूर, बिधारे और चांदी के वर्क मिलाकर भस्म, शिलाजीत मिला देनो चाहिये। सबका चूर्ण मिलाकर खरल में पीसना चाहिये। अफीम का घोल बनाकर उससे घोटना चाहिये। पीछे धतूरे के पत्तों का रस, अद्रक का रस, पान का रस निकालकर प्रत्येक की भावना देकर १-१ रत्ती की गोली बनानी चाहिये। मात्रा—१ से २ गोली। शरीर की कमजोरी को. धातु-क्षीणता को, मस्तिष्क की निर्बलता को दूर करता है।

कस्तूर्यादि वटी—कस्तूरी चौथाई तोला, हींग चौथाई तोला, शुद्ध जहरकुचला चौथाई तोला, भीमसेनी कपूर चौथाई तोला इनको गोंद के पानी के साथ मिलाकर १ रत्ती की गोली बनानी चाहिये ।

अनुपान—दूध या गरम पानी ।

उपयोग—वायु-रोग, पाण्डु, संग्रहणी, श्वास में ।

बालरक्षक सोगठी—वायविडङ्ग, वापुंवा, संचल, इन्द्रजौ, चिरा-

यता, सोंठ, हाड़ छाल, डीकामारी, वच, जायफल, जावित्री, पित्तपापड़ा, कटुकी, काली जीरा, कांकच, कलुंबा, अतीस, एलुवा, रेवतचीनी का सीरा, मरोड़फली ये सब समान भाग लेकर चूर्ण करना चाहिये। इसमें गुलाब का पानी डालकर सुपारी जैसी सोगठी बनानी चाहिये।

उपयोग—छोटे बच्चों के ज्वर, कास, मलबन्ध में इस सोगठी को पत्थर पर पानी के साथ घिसकर एक या दो रत्ती भर दवा देनी चाहिये।

संशमनी—गिलोय का घन १० तोले, अभ्रकभस्म १ तोला, लोह-भस्म १ तोला, स्वर्ण-माक्षिक-भस्म आधा तोला, प्रवाल-भस्म आधा तोला। मात्रा—२ रत्ती।

अनुपान—दूध के साथ।

उपयोग—जीर्ण ज्वर में, क्षय में, निर्बलता, पाण्डु में, कास में, प्रदर में।

अम्बर का चाटन—गाजबाँ का फल, धनिया, बहमन सफेद, अजखर, गावजबाँ, आबरेशम, तुख्मबालंगा, फरीजे चुश्क, प्रत्येक १ तोला, वंशलोचन आधा तोला, केशर १ तोला, गुलाबजल १ सेर, अम्बर चौथाई तोला।

विधि—केसर, वंशलोचन और अम्बर के सिवा सब चीजों को दरकच करके गुलाबजल में १ रात भिगोकर प्रातः इसका काढ़ा करना चाहिये। जब ३० तोला रहे, तब इसको छान लेना चाहिये। इसमें शर्करा २० तोले मिलाकर चासनी कर लेना चाहिये। इसमें केसर अम्बर, वंश-लोचन पृथक्-पृथक् पीसकर मिला देना चाहिये। पीछे से सोने के वर्क चौथाई तोला, चांदी के वर्क आधा तोला, मोती, माणिक्य, जहरमोहरा ख़ताई और जमर्रुद प्रत्येक चौथाई-चौथाई तोला गुलाबजल में अलग-अलग पीसकर मिला देनी चाहिये। पीछे इसको खरल में पीसकर चटनी बना लेना चाहिये। मात्रा—३ माशे से आधा तोला। गरम दूध अथवा द्राक्षासव के साथ।

उपयोग—हृदय की निर्बलता में, मस्तिष्क की कमजोरी में, क्षय-रोग की अवस्था में।

याकूती—भाँग के पत्ते ४० तोले, इसको खूब धोकर ४०० तोले

गाय के दूध में उबालकर घी बना लेना चाहिये। इसमें बादाम ४० तोले, पिस्ता ४० तोले, दूध का खोया २० तोला, किशमिश ४० तोला, चारोली ४० तोले, तिल सफेद ४० तोले, जायफल १ तोला, जावित्री १ तोला, इलायची, सिंघारे का बीज, अफीम, केसर, रूमीमस्तगी, कंकोल, सालम मुसली सफेद, तालमखाना, गोखरू, मुसली काली, शतावरी, कौंच का बीज, अकरकरा, सोंठ, कालीमिर्च, असगन्ध, पिप्पली-मूल प्रत्येक १ तोला।

विधि—भाँग के बने घी में सब दवाइयों का चूर्ण मिला देना चाहिये। इसमें बादाम, पिस्ता आदि चीजों को अलग से मिलाना चाहिये। फिर ५०० तोले शर्करा की चाशनी करके इनको मिलाकर पाक कर लेना चाहिये। मात्रा आधा से १ तोला।

अनुपान दूध के साथ।

उपयोग—निर्बलता को मिटाता है, शक्ति देता है।

योगराज—त्रिफला १२ तोले, त्रिकटु १२ तोले, चित्रक ४ तोले, वायविडंग ४ तोले, शिलाजीत २० तोले, रौप्य माक्षिक-भस्म २० तोले, सुवर्ण माक्षिक-भस्म २० तोले, लोह-भस्म २० तोले, शर्करा ३२ तोले। मात्रा—३ ३ माशे से आधा तोला।

उपयोग—पाण्डु, कामला, निर्बलता में उत्तम है।

लाल गुड़ा—त्रिकटु, कटुकी, नीम की छाल, कुष्ठ, नागरमोथा, सफेद सरसों, टंकण भर इन्द्रजौ, लाल चन्दन, शुद्ध हिंगुल, रससिन्दुर प्रत्येक २-२ तोला लेकर पान के रस में १ रत्ती की गोली बनानी चाहिये। मात्रा—२ गोली।

उपयोग—सामान्य ज्वर में, सरदी में।

अनुपान—तुलसी का रस।

चन्द्रहास अर्क—अजवायन, खुरासानी अजवायन, भाँग, धतूरे का बीज, कपूर खसखस का डोडा, जायफल प्रत्येक चीज चार-चार तोला लेकर इसका मोटा चूर्ण करके एक पात्र में ४०० तोला गाय के दूध में भिगोकर प्रातः नलिका-यंत्र से अर्क निकाल लेना चाहिये।

उपयोग—उत्तेजक, नींद लानेवाला और पीड़ा-शामक है। मात्रा—१ से २ तोला।

स्नानरज-चूर्ण — लोध्र, वच, धनिया, हल्दी, दारुहल्दी, शुद्ध मनसिल, सरसों, मूंग की दाल का आटा। प्रथम ७ वस्तुओं को एक-एक तोला लेकर और ८वीं को ७ तोले लेकर सबका चूर्ण करके मिलाना चाहिये। इस चूर्ण को थाली या दूध में मिलाकर शरीर पर लगाने से शरीर की कान्ति बढ़ती है।

क्षयहर-प्रयोग—गिलोयसत्व आधा तोला, स्वर्णमाक्षिक भस्म ३ माशा, प्रवाल भस्म ३ माशा सब दवाइयों को कूट-छानकर आठ पुड़िया बनाना चाहिये। प्रत्येक पुड़िया मधु के साथ तीन-तीन घन्टे के अन्तर में देना चाहिये।

उपयोग—निर्बलता, क्षय, क्षीणता में।

अविपत्तिकर चूर्ण—त्रिफला, त्रिकटु, मोथा, वायविडंग, इलायची, तमालपत्र प्रत्येक १ तोला, लौंग १० तोला, शर्करा ६० तोला, निशोथ ४० तोले इनका चूर्ण बोतल में भरकर रखना चाहिये। मात्रा—३ माशे से आधा तोला।

उपयोग—नारियल का पानी अथवा ठण्डा पानी।

अम्लपित्त, शूल अर्श में उपयोगी है।

संशमनी— गिलोय को दरकच करके चार गुने पानी में ३ घन्टे तक भिगो रखना चाहिये। पीछे हाथ से खूब मसलकर इसको बाहर निकाल देना चाहिये। फिर वस्त्र से छानकर इसको आग पर चढ़ा देना चाहिये। और जब धीमे-धीमे ताप से पककर घन बन जाय, तब उतार लेना चाहिये। इसमें १० तोला घन लेकर १ तोला लोह-भस्म मिला देना चाहिये। फिर हाथवाला घी लगाकर रत्ती भर की गोली बना लेनी चाहिये। इसमें लोह भस्म के स्थान में स्वर्ण माक्षिक-भस्म भी मिला सकते हैं।

आमराक्षसी-गुटिका—शुद्ध हिंगुल, अफीम, कपूर, जायफल, लौंग प्रत्येक १ तोला। पानी के साथ १ रत्ती की गोली बनानी चाहिये। मात्रा—एक से २ गोली। अतिसार, मरोड़ा, संग्रहणी में उपयोगी है।

दुग्धवटी—वछनाग, अफीम ६ आना भर, लोह-भस्म १० आना भर, अभ्रक-भस्म १॥ तोला। मात्रा—एक रत्ती। गोली दूध के साथ बनानी चाहिये। पथ्य—दूध ही रखना चाहिये।

उपयोग—शोथ, संग्रहणी, मन्दाग्नि में।

कर्पूर-सुन्दरी वटिका—कपूर, जायफल, जावित्री, धतूरे का बीज, बिधारे का बीज, अकरकरा, त्रिकटु, चोबचीनी, भिंका हुआ कांकच के बीज, प्रत्येक एक तोला, भाँग ११ तोला, अफीम ११ तोला, बछनाग ३ माशा। मात्रा—२ से ४ गोली।

अनुपान—पानी या कुड़ाछाल का चूर्ण।

उपयोग—अतिसार, संग्रहणी, अर्श और मन्दाग्नि मे।

गर्भ-विनोद-रस— त्रिकटु, जावित्री, लवङ्ग प्रत्येक ३ तोला, शुद्ध हिंगुल ४ तोला, स्वर्ण-माक्षिक-भस्म २ तोला। इनको कूट-छानकर पानी के साथ चने के आकार की गोली बनानी चाहिये।

उपयोग—गर्भिणी स्त्री के तमाम रोगों में काम में ला सकते हैं।

सुगन्धित पवित्र धूप—नेत्रबाला १ पाव, लोहबान कोड़िया आध सेर, ईसस आध सेर, बच १० तोला, कचूर आध सेर, अगर १ पाव, नीम-पत्र का चूर्ण आध सेर, पानड़ी १ पाव, चन्दन १ पाव, गुग्गुल आध सेर, हरमर आध सेर, कपूरकचरी १ पाव, बावची १० तोला, देवदारु का चूरा आध सेर, मोथा आध सेर, गुलाब के फूल १ पाव। प्रत्येक वस्तु को दरकच करके खाँड़ के साथ मिलाकर रखना चाहिये।

उपयोग करने के लिये इसका चूर्ण जलते हुये कोयलों पर रखना चाहिये।

पंचसम-चूर्ण—हरड़ ५ तोला, मिर्च ५ तोला, पिप्पली ५ तोला, निशोथ ५ तोला, सोंठ ५ तोला। मात्रा—३ माशे से ६ माशा।

उपयोग—अफारे मे, शूल, वायु, मलबन्ध-रोग में।

अनुपान—गरम पानी।

दूध का मसाला—जायफल, जावित्री, दालचीनी, लौंग, इलायची, अकरकरा, सोंठ, केसर, कस्तूरी प्रत्येक वस्तु एक-एक तोला, कस्तूरी ¹ तोला। मात्रा—३ माशा। १ सेर दूध में मिलाकर पीना चाहिये।

उपयोग—बाजीकरण है।

आरोग्य-वर्द्धनी—पारा, गन्धक, लोह-भस्म, अभ्रक-भस्म, ताम्र-भस्म प्रत्येक एक-एक तोला, त्रिफला-चूर्ण १० तोला, गुग्गुल २० तोला,

कुटकी ७० तोला, चित्रक २० तोला, शिलाजीत १५ तोला। मात्रा—दो आने से चार आने तक।

अनुपान—दूध अथवा ताजा पानी।

उपयोग—उदर-रोग में, पुराने ज्वर में, शोथ में, यकृत-शोथ में।

सालम-पाक—अकरकरा, निर्गुण्डी, जावित्री, दालचीनी, मिर्च, लवंग, केसर, तमाल-पत्र, जायफल, बला के बीज, पिप्पली, तालमखाना प्रत्येक २॥ तोला, काली मूसली, श्वेत मूसली, सिंघाड़ा, असगन्ध, इलायची, कंकोल, वंशलोचन, नागकेसर, सोंठ प्रत्येक ५ तोला, सालम १ पाव, कौंच बीज १० तोले, बादाम १ पाव, कस्तूरी १ पाव, घी ८ सेर, भैंस का दूध २० सेर, पिस्ता १ पाव, अम्बर १ पाव, भीमसेनी कपूर १। तोला, शर्करा ८ सेर, उड़द का आटा सवा सेर।

विधि—सालममिश्री के चूर्ण को दूध में मिलाकर खोया बना लेना चाहिये। इसको और उड़द की दाल के आटे को अलग-अलग घी में भूनकर शर्करा की चासनी करके उसमें मिलाकर और सब वस्तुओं का चूर्ण भी मिला देना चाहिये। ऊपर से केसर, बादाम, पिस्ता आदि वस्तुयें मिला देना चाहिये। मात्रा—१० तोला।

अनुपान—दूध।

जन्म घूँटी—सौंफ की जड़, सौंफ, हरड़ छोटी, हरड़ बड़ी, जीरा, गुलाब के फूल, मुनक्का, गुड़, विडङ्ग, अमलतास का गूदा, सनाय, वच, अजवायन, ढाक के बीज, उन्नाब और सुहागा खील किया हुआ—इनको पानी में पीसकर काला नमक डालकर घूँटी बनालें। घिसकर बच्चों को देना चाहिये।

उत्तेजक वटी—अकरकरा ९ तोला, कुचला १ तोला, केसर ६ माशे, जावित्री ६ माशे, जायफल ६ माशे, इलायची १ माशा, कस्तूरी ३ रत्ती, शिलाजीत १ तोला—श्वेत मुसली के रस में ३ भावना देकर गोली बना लेनी चाहिये।

महानीम वटी—बकायन की मींग, नीम की मींग, हरड़, बहेड़ा, आँवला, गुलाब, पिप्पली, नागकेसर, चित्रक, रसौंत, गुग्गुल, मिर्च, प्रत्येक १ तोला लेकर त्रिफला के रस में गोली बनानी चाहिये। यह गोली पानी के साथ लेने से बवासीर में उपयोगी है।

अण्ड-वृद्धि—सोंठ १ तोला, गेरू ६ माशा, अफीम ३ माशे—इनको अदरख के रस में मिलाकर, लेप करके ऊपर से मोम की रोटी बाँधने से अण्ड वृद्धि को आराम होता है। कदम्ब के पत्ते से भी अण्ड-शोथ भी कम हो जाता है।

कष्टार्त्तव में—मुसब्बर, अफीम, कासीस, दालचीनी इनको हुरहुर के रस में गोली बनानी चाहिये। यह गोली ऋतु के समय से ३ दिन प्रथम पुराने गुड़ के शरबत से खिलाना चाहिये।

लहसुन पाक—शुद्ध लहसुन ५ तोले, सोंठ, पिप्पली, अजवायन, त्रिफला, प्रत्येक ३ माशे, नागकेसर ३ माशे, कालीमिर्च ३ माशे, तेजपात २ माशे, दालचीनी डेढ़ माशे, केशर २ माशे, मिश्री १० तोले।

विधि—लहसुन को ७ दिन तक छाछ में रखकर फिर मीठे की चासनी में पकाकर उसमें इनका चूर्ण मिलाकर पाक कर लेना चाहिये। लकवा रोग के लिये उत्तम है।

अष्टपदी—पारद, गन्धक, लोह, यशद, वंग, अभ्र, रौप्य, ताम्र भस्म इनकी समान मात्रा और गन्धक पारे से दुगुनी लेकर केले के रस में त्रिफला के रस में भावना देकर गोली कर लेना चाहिये। मात्रा—१॥ रत्ती।

उपयोग—प्रमेह में, सूजाक में।

अश्म भेदनी वटी—यवक्षार १ तोला, स्वर्ण-माक्षिक भस्म ६ माशे, शोरा ६ माशे, पाषाण भेद ६ माशे, शिलाजीत १ तोला, धनिया ३ माशे। पाषाण भेद और गोखरू के काढ़े से भावना देकर चने के बराबर गोली बनानी चाहिये।

उपयोग—मूत्राश्मरी में।

गर्भपात—मकोय, गाजर के बीज, मूली के बीज, अजवायन, मेथी, पुराना गुड़। प्रथम पाँचों वस्तुयें १ तोला लेकर, १० तोले पानी में क्वाथ करके जब २ तोला रहे, तब इसमें गुड़ मिलाकर देने से गर्भपात हो जाता है।

प्रसूतिका का रक्तस्राव—चारपाई के पुराने बान की राख और पुराना गुड़ समान भाग लेकर सात दिन तक खिलाना चाहिये।

मृदु विरेचक—(१) सनाय को घी में भूनकर खूब कुटवा लेना

चाहिये। इसको बीच की हड्डी निकाल देनी चाहिये। फिर इसको खूब पीस-कर काजल सा बना लेना चाहिये। इसमें धनिया, जीरा, हींग; इनको घी में भूनकर मिला दिया जाय। फिर गुड़ की चाशनी बनाकर इसमें पुरानी इमली, आद्रक का रस और नीबू का सत मिलाकर उपरोक्त सनाय का चूर्ण मिला देना चाहिये। यह चटनी उत्तम विरेचक है।

(२) सौंफ, मुनक्का, सोंठ, अंजीर, सनाय इनका खूब तेज क्वाथ करके इसमें कॉफी मिलाकर छान लेना चाहिये। इसमें दूध मिलाकर पिला देना चाहिये। रोगी को गरम वस्त्र से ढांप देने पर पसीना आता है।

सुरमा—भीमसेनी कपूर, शुद्ध मोती की सीप, समुद्रफेन, निर्मली के बीज, श्वेत मिर्च, सेंधा नमक, पिप्पली, करञ्ज बीज, इनको समान भाग लेकर सौंफ के अर्क में पीसकर लगाना चाहिये।

बवासीर के लिये—नीलकण्ठी, खूबकला प्रत्येक डेढ़ तोला, हंस-राज, जलनिम्ब, बकायन की मींग, नीम की मींग, कुश्तासंग जीरा, बेल की गिरी प्रत्येक वस्तु ५ ५ तोला लेकर खूब खरल करके पानी के साथ खाना चाहिये। दूध नहीं पीना चाहिये।

ब्रह्मास्त्र—पत्रक हरताल, पीली कौड़ी, सीप प्रत्येक १ तोला, शङ्ख ६ तोला, गोदन्ती, हिंगुल प्रत्येक २ तोला, फिटकिरी २२ तोले—गिलोय ७० तोले सबको कूट-छानकर गिलोय के रस में भावना देकर गजपुट देना चाहिये। मात्रा १ से ६ रत्ती ज्वर में गावजवाँ के अर्क के साथ; जरयान में—मक्खन के साथ; निमोनिया में शहद के साथ देना चाहिये।

आर्त्तव के न होने पर आनेवाला हिस्टीरिया—गेरू, तगर, जटामांसी, टङ्कण, मुसब्बर—इनका समान भाग लेकर जटामांसी के रस से ७ भावना देकर चने के बराबर की गोली बनाना चाहिये।

नवापत्ति ज्वरांकुश—रससिंदूर, प्रवाल, स्वर्ण, रौप्य, बङ्ग, लोह, अभ्रक, मुक्ता, ताम्रभस्म प्रत्येक समान भाग लेकर जल के साथ पीसकर २ रत्ती की गोली बनानी चाहिये। सब प्रकार के ज्वरों में उपयोगी है।

अनुपान—पटोलपत्र रस।

कास—पान का पत्ता, आद्रक, तुलसी मंजरी, लौंग १, कपूर थोड़ा-सा—इनको पीसकर लेने से वृद्धों की शुष्क कास को विशेषतः आराम होता है।

चिकित्सा-स्थान

रोगों का विभाग कई प्रकार से किया गया है। जैसे—कुछ चिकित्सक संक्रामक रोगों या ज्वरों का एक विभाग करके पीछे से आशयों के अनुसार विभाग करते हैं। और कोई प्रथम ही से आशय-सम्बन्धी विकारों के क्रम से विभाग करते हैं। यहाँ पर निम्न प्रकार से विभाग किया है।

प्रकरण—प्रथम	शरीर के सामान्य रोग
प्रकरण—दूसरा	मस्तिष्क-सम्बन्धी रोग
प्रकरण—तीसरा	श्वासोच्छ्वास क्रिया-सम्बन्धी रोग
प्रकरण—चौथा	रक्ताशय-सम्बन्धी रोग
प्रकरण—पाँचवाँ	पक्वाशय-सम्बन्धी रोग
प्रकरण—छठा	मूत्राशय-सम्बन्धी रोग
प्रकरण—सातवाँ	आँख, कान, नाक, मुख के रोग
प्रकरण—आठवाँ	त्वचा के रोग
प्रकरण—नवाँ	मिश्रित क्षुद्र-रोग
प्रकरण—दसवाँ	स्त्रियों के रोग
प्रकरण—ग्यारहवाँ	बालकों के रोग
प्रकरण—बारहवाँ	विष-रोग
प्रकरण—तेरहवाँ	तात्कालिक चिकित्सा

ज्वर

ज्वर कोई स्वतंत्र रोग नहीं है, अपितु दूसरे रोगों का लक्षण है। जैसा कि कहा है—

पसीने का रुक जाना, शरीर में गरमी, अंगों में अकड़ाव ये तीनों लक्षण जिस रोग में इकट्ठे हो जायँ, उसको 'ज्वर' समझना चाहिये। इस ज्वर का प्रत्येक व्यक्ति को किसी न किसी समय अनुभव हो जाता है

चरक में लिखा है कि जन्म के समय और मृत्यु के समय प्रत्येक व्यक्ति को ज्वर होता है।

'ज्वर' के कई कारण हैं— मुख्यत: मिथ्या आहार-विहार ही इस ज्वर का मुख्य सबब है। अनार्य-चिकित्सा ने ज्वरों के कारण अनेक प्रकार के कृमि माने हैं; इन कृमियों की भिन्नता के कारण ज्वरों के नाम भी पृथक्-पृथक् माने गये हैं।

परन्तु इस बात का स्मरण रखना चाहिये कि कृमि तभी हम पर हावी बन सकते हैं; जब हमारा शरीर उनके लिये योग्य भूमि बना हुआ हो। सींची हुई, कमाई हुई, जोती हुई जमीन ही में बीज भली प्रकार और सुगमता से उगते हैं। इसी प्रकार यदि किन्हीं कारणों से शरीर निर्बल हुआ होगा, तो कृमि रोग को उत्पन्न करने में समर्थ होते हैं, नहीं तो ऊसर भूमि में पड़े हुए बीज की तरह वहीं नष्ट हो जाते हैं।

ज्वर के सामान्य लक्षण—आर्य-वैद्यक में लिखा है कि ज्वर की उत्पत्ति 'क्रोध' से हुई है। इसलिये इस रोग में पित्त के लक्षण विशेषत: प्रधानरूप से होते हैं। साथ ही मिथ्या आहार-विहार के कारण दोष कुपित होकर आमाशयस्थ रसों को कुपित कर देते हैं। इनके कुपित होने से स्वेदवह-स्रोतसों के मुख बन्द हो जाते हैं; जिससे पसीना आना रुक जाता है।

दोषों के कुपित होने के भेद से ज्वरों में भी वात-ज्वर, पित्त-ज्वर, कफ-ज्वर, द्वन्द्वज-ज्वर, सन्निपात-ज्वर और आगन्त-ज्वर इस प्रकार से भेद हो जाते हैं। परन्तु इन रोगों में निम्न लक्षण सामान्य हैं। यथा—बिना परिश्रम के भी थकावट का अनुभव होना चित्त की अस्थिरता, रंग में परिवर्त्तन, मुख के स्वाद का बदल जाना, आँखों से पानी का झरना, थोड़ी देर में शीत की रुचि और थोड़ी ही देर में गरमी की रुचि होती है। जम्भाई बहुत आती है, शरीर का अंग-प्रत्यंग टूटना हुआ प्रतीत होता है, शरीर में भारीपन, रोमाञ्चता, भोजन में अरुचि, आँखों के सामने धुँधलापन, रोगी का दिल गिरा रहता है, शीतता का अनुभव होता है। यदि ज्वर में वायु प्रधान हो, तो रोगी को बहुत जम्भाई आती है, पित्त की प्रबलता में आँखों के अन्दर जलन होती है, और कफ के कारण भोजन में अरुचि विशेषत: होती है।

सामान्य चिकित्सा—ज्वर प्रायः आमाशय का आश्रय करके होता है, इसलिये सबसे प्रथम सामान्य चिकित्सा लंघन या उपवास करना है। लंघन और उपवास से पित्त की उष्णिमा घट जाती है। जो कार्य अनार्य चिकित्सक विवेचन देकर करते हैं, वही कार्य आर्य चिकित्सक लंघन से करते हैं। आर्य-चिकित्सा में दोषों का शमन शरीर स्वयं करता है और चिकित्सक केवल इसमें सहायता करता है। इस लङ्घन से शरीर दोषों का पाचन करता है। इस पाचन के समय में चिकित्सक ज्वर के लिये 'पाचन' बरतते हैं। आर्य-चिकित्सा में उन कषायों का नवीन ज्वर में निषेध किया हुआ है, जिनसे शरीर का संशोधन होता है; क्योंकि चिकित्सा का सिद्धान्त 'रोगी के बल की रक्षा करना' है। इसलिये उपवास में भी इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि रोगी के शारीरिक बल में न्यूनता न आये।

रोगी यदि बलवान हो, तो उसको वमन देना चाहिये। वमन देने से श्लेष्मा बाहर आजाती है। रोगी को शान्त रखना चाहिये, उसको बिस्तर पर लेटाकर रखना चाहिये। कमरे में शुद्ध वायु आनी चाहिये। प्रयत्न ऐसा करना चाहिये कि वायु का प्रवाह रोगी के ऊपर सीधा न आये। जबतक दोषों का परिपाक न होजाय, तबतक शोधन आदि कषाय नहीं देने चाहिये।

पिपासा—ज्वर में रोगी को प्यास बहुत होती है, इसके लिये बर्फ चूसने के लिये दी जाये, तो आराम होजाता है। यदि बर्फ का मिलना सम्भव न हो, तो कपड़े को ताजे पानी में भिगोकर उसे चूसने के लिये देना चाहिये। अथवा मुस्ता, पित्तपापड़ा, उशीर, चन्दन लाल, नेत्रबाला और सोंठ मिलाकर २ तोला—इनको दरकच करके ४ सेर पानी में काढ़ा करना चाहिये। जब दो सेर रह जाय, तब छानकर रोगी को पिलाना चाहिये।

दाह—प्रायः सब ज्वरों में रोगी विशेष दाह प्रतीत होती है। इसके लिये यदि ताप-परिमाण १०५ अंश तक पहुँच रहा हो, तो उसके सिर पर ठण्डे पानी या बर्फ की पट्टी रखनी चाहिये। यदि इससे भी आराम न पड़े, तो कोहनी से लेकर अँगुलियों तक, और घुटने से लेकर पाँव तक दोनों हाथ-पाँव को बर्फ मिले ठण्डे पानी से बार-बार पोंछना चाहिये। इस प्रकार करने से रोगी की गरमी बहुत कुछ शान्त हो जाती है। यदि इससे भी आराम न पहुँचे, तो शीत पानी की बस्ति देनी चाहिये। इससे रोगी की गरमी

बहुत कुछ कम हो जाता है। यदि यह भी उपाय सफल न हो, तो रोगी के सारे शरीर को ठण्डे पानी से स्पंज कर देना चाहिये। १५-२० मिनट तक स्पञ्ज करने पर ताप परिमाण घट जायगा। उस समय उसको शुष्क तौलिये से पोछकर नरम वस्त्र से ढांप देना चाहिये, जिससे पसीना आजाय। यदि सम्भव हो, तो स्वेदक दवाई या गरम चाय या कॉफी-दूध पिला देना चाहिये, जिससे पसीना भली प्रकार हो।

यदि यह उपाय भी सम्भव न हो, तो रोगी को चित पीठ के भार लेटाकर उसकी नाभि पर कांसे का कटोरा रखकर उसमें ऊपर से ठण्डे पानी की धारा गिरानी चाहिये अथवा आँवले को पीसकर उसके द्वारा नाभि के चारों-ओर आलवाल करके उसमें ठण्डा पानी भर देना चाहिये।

वमन—कई ज्वरों में रोगी को वमन बहुत जोर से होता है, यहाँ तक कि कुछ भी औषधि उसके पेट में नहीं टिकती। इस अवस्था में किसी प्रकार की दवाई का देना उत्तम नहीं। रोगी को पूर्णतः लंघन कराना चाहिये। बर्फ चूसने के लिये देना चाहिये। कौड़ी-प्रदेश पर बर्फ या राई का प्लास्टर लगाना चाहिये। यदि संभव हो, तो नारियल का पानी घूँट-घूँटकर पीने को देना चाहिये। नीबू को चूसना चाहिये या नीबू की सकंजबीन को घूँट-घूँटकर पीना चाहिये। कई बार इमली या आलू-बुखारे का हिम-कषाय मीठा मिलाकर पीने से विशेष लाभ देता है। गिलोय के काढ़े में मधु मिलाकर देना चाहिये।

मलबन्ध—यह शिकायत खास ज्वर में पाई जाती है। अनार्य-चिकित्सक पहले ही रात को ब्लुगिल या कैलोमल देकर प्रातः सेलाईन मैगनेशियम सल्फेट देते हैं। परन्तु आर्य-वैद्यक में यह बात नहीं। उनका विचार है कि जबतक रोगी स्वस्थ न हो जाय, या प्रकृति स्वयं इस ओर अभिरुचि न करे, रोगी को दस्त लाने की औषधि नहीं देना चाहिये। साधारणतः नर्म, मृदु रेचक यदि रोगी को दिया जाय (विशेषतः पित्त-ज्वर के लक्षणों में), तो कोई हानि नहीं होती। इसके लिये गुलकन्द सबसे उत्तम है। अथवा गरम या शीत पानी की वस्ति भी देनी उत्तम है। यदि रोगी दवाई ले सके, तो हरीतकी, अमलतास, कुटकी, निशोथ, आँवला इनके काढ़े को पीना चाहिये। यदि रोगी के हो, तो कड़वी तुम्बी और अमलतास बराबर भाग लेकर इनको गुड़ में मिलाकर लम्बी बत्ती बना लेना चाहिये। इस बत्ती को

गुदा में रखने से मल आजाता है। निशोथ का चूर्ण शर्करा के शरबत के साथ देना उत्तम है। तुर्बुद ३ माशे, सोंठ ३ रत्ती, बिस्फाइज १॥। माशे, गुलकन्द ३५ माशे। इनको देने से मलबन्ध हटता है। ज्वर उतरने पर यदि मलबन्ध रहे, तो आकाश-बेल, बिस्फाइज प्रत्येक १०॥ माशे, काबुली हरड़, काली हरड़ प्रत्येक २५॥ माशे, मिलाकर चूर्ण बना लेना चाहिये। मात्रा साढ़े दस माशे बूरे के साथ मिलाकर दें।

अमलतास का माजूम—तुर्बुद सफेद १४० माशे, बनफसा १०५ माशे, नमक हिन्दी, मुलहठी प्रत्येक २४ माशे, सौंफ, रूमी सौंफ प्रत्येक १७ माशे, सकमूनिया ३५ माशे, अमलतास का गूदा ४५० माशे, बादाम का तेल १४० माशे, शर्करा और शहद ४५० माशे मिलाकर माजूम बना लेना चाहिये। दस्तों के लिये यह उत्तम चटनी है। अमलतास, हरीतकी, कुटकी, निशोथ, आमलकी इनका काढ़ा देना भी उत्तम है।

विरेचन—(१) कई बार रोगियों में मलबन्ध न होकर अतिसार हो जाता है। इससे रोगी की शक्ति घट जाती है। इसके लिये रोगी को चूने का निर्मल पानी पीने के लिये देना चाहिये। और पाठा, गिलोय, पित्तपापड़ा, मोथा, अतीस, चिरायता, इन्द्रजौ मिलित २ तोले; इनको ३२ तोले पानी में पकाकर ८ तोले शेष रखकर पान करना चाहिये। (२) गिलोय, कूड़े की छाल, मोथा, चिरायता, नीम की छाल, अतीस और सोंठ अथवा, सोंठ, कूड़ा छाल, गिलोय, मोथा इनका काढ़ा पान करना चाहिये।

कास—(१) पिप्पली, पिप्पलीमूल, बहेड़ा और सोंठ इनके चूर्ण को मधु के साथ अथवा बाँस के रस में मधु मिलाकर पीना चाहिये। (२) बहेड़ा छाल, लवङ्ग, मिर्च, इनके बराबर कत्था; सबको बबूल के काढ़ा की भावना देकर गोली बनानी चाहिये। इस गोली को रोगी अपने मुख में रक्खे रहें।

अरुचि—ज्वर में प्राय: करके भोजन में अरुचि हो जाती है। इसके लिये उसके दाँतों को और जीभ को प्रतिदिन नीम की या अन्य किसी कड़ुवी तिक्त दातून से साफ करवा देना चाहिये। रोगी को सैन्धव नमक और मिर्च के साथ नीबू चूसने के लिये देना चाहिये। जरिश्क का देना भी उत्तम है। अथवा नीबू, बिजौरा, आर्द्रक, पोदीना, अनार का पानी,

शर्करा, जीरा, इलायची, कालीमिर्च इनको मिलाकर चटनी बनानी चाहिये।

बाँसा—बड़ी कटेरी, छोटी कटेरी, धमासा, परवल, काकड़ाशृङ्गी, भारंगी, कुटकी, शठी, इनका काढ़ा अथवा क्षुद्रादि काढ़ा देना चाहिये।

प्रलाप—ज्वर के अधिक होने पर रोगी बेहोश हो जाता है। वह बहुत बकता है। इस अवस्था में उसके सिर पर बर्फ के पानी का या कोलन वाटर की पट्टी रखनी चाहिये। रोगी को गुलाब या केवड़े के जल में तर पङ्खे से हवा करते रहना चाहिये। हाथ और पाँव पर शीत परिसेक करना चाहिये।

दोषानुसार ज्वर की चिकित्सा

वात-ज्वर—जम्भाई विशेष रूप में आती है, ज्वर और दर्द के कारण रोगी को नींद नहीं आती, मुँह सूखा रहता है, छींक नहीं आती, अंग में रूखापन रहता है, अङ्ग-प्रत्यङ्ग टूटते प्रतीत होते हैं, प्रायः मल-बन्ध रहता है।

उपाय—(१) बेल, अरणी, श्योनाक, काश्मरी, पाटला, गिलोय, आमलकी, धनिया सब मिलाकर दो तोले इनका काढ़ा करके पान करना चाहिये। (२) सोंठ, चिरायता, नागरमोथा, गिलोय इनका काढ़ा अथवा धमासा, सोंठ, कुटकी, पाठा, शठी, बाँसा और एरण्डमूल इनका काढ़ा पीना चाहिये। (३) गिलोय, पिप्पली, पिप्पलीमूल, सोंठ, इनका कषाय या (४) सोंठ, धनिया, देवदारु, बड़ी कटेरी इनका काढ़ा पीने से, (५) गिलोय, शतावरी रस में गुड़ मिलाकर पीने से वात-ज्वर शान्त होता है। गुडूच्यादि काढ़ा इस रोग के लिये उत्तम है।

पित्त-ज्वर—(१) किसमिस, सौंफ, खूबकला, मुलहठी, बनफसा, चिरपौटा मकोय, गुलकन्द इनका कषाय मिश्री के साथ पीना चाहिये। (२) मिश्री, सौंफ, मकोय और बनफसा इनका कषाय पीना चाहिये। (३) पित्तपापड़े का क्वाथ अकेला अथवा चन्दन, नेत्रबाला और नागरमोथा के साथ देना चाहिये। (४) नेत्रबाला, लालचन्दन, उशीर, मोथा, पित्तपापड़े का क्वाथ शीतल करके पान करना चाहिये। (५) परवल पत्र, यव, धनिया मुलहठी इनके काढ़े में मधु मिलाकर देना चाहिये। (६) धमासा, पित्तपापड़ा, प्रियंगु,

चिरायता, वासक, कुटकी इनके क्वाथ में शर्करा मिलाकर पीना चाहिये । (७) बेर के या आम के कोमल पत्तों को कांजी में पीसकर शरीर पर मलना चाहिये । अथवा रोगी को कांजी में भिगोई चादर से ढाँप देना चाहिये ।

कफ-ज्वर—इस ज्वर में भोजन के अन्दर अरुचि हो जाती है। अंगों में ढीलापन रहता है, गति मन्द रहती है, रोगी आलसी रहता है, मुँह में फीकापन रहता है। मल-मूत्र में सफेदी रहती है। शरीर में भारीपन रहता है, रोगी को नींद बहुत आती है।

उपाय—बिजौरे की जड़, सोंठ, ब्राह्मी, पिप्पलीमूल, इनके काढ़े में यवक्षार मिलाकर पीना चाहिये। (२) पिप्पली चूर्ण मधु के साथ खाना चाहिये; (३) कायफल, कूठ, पुष्करमूल, काकड़ाशृङ्गी, पिप्पली चूर्ण इनको मधु के साथ खाना चाहिये। (४) अष्टांगावलेहिका—कायफल, कूठ काकड़ाशृङ्गी, अजवायन, कालाजीरा, त्रिकटु, इनके चूर्ण को शहद के साथ खाना चाहिये। (५) कटेरी, गिलोय सोंठ, पिप्पली इनका काढ़ा पीना चाहिये। (६) कटुकी,नीम, अतीस, सोंठ, पिप्पली, मिर्च और इन्द्रजौ इनका काढ़ा पान करना चाहिये। (७) भारङ्गी, कुलिञ्जन, चिरायता, शठी, मिर्च, देवदारु, जीरा, चविका, सोंठ, कूठ, वासा, गिलोय, पुष्कर-मूल, काकड़ाशृङ्गी इनके कषाय में पिप्पली-चूर्ण मिलाकर पीना चाहिये। (८) देवदारु, बड़ी कटेरी, चीता, सोंठ, पोहकर-मूल इनके कषाय को पीना चाहिये।

वात-पित्त-ज्वर में—इस ज्वर में वात और पित्त के लक्षण मिले होते हैं। इसके लिये (१) कटेरी, बला, रास्ना, इन्द्रायण, गिलोय, मसूर की दाल इनका काढ़ा पीना चाहिये। (२) सोंठ, गिलोय, मोथा, चिरायता, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, छोटी और बड़ी कटेरी, गोखरू इनका काढ़ा। (३) गिलोय नीम की छाल, धनिया,पद्माख,लाल चन्दन मिलाकर २ तोला,जल ३२ तोला, पकाकर ८ तोला शेष रखना चाहिये। (४) अमलतास, मोथा, मुलहठी, उशीर, हरीतकी, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, परवल, नीम-छाल, गिलोय, कटुकी, इनके काढ़े को पीना चाहिये। (५) गिलोय, पित्तपापड़ा, नागरमोथा, चिरायता, सोंठ इनका कषाय पीना चाहिये। किरातादि कषाय, मधुकादि कषाय पीना चाहिये।

कफ-पित्त-ज्वर में—(१) पंचतिक्त कषाय—कण्टकारी, गिलोय,

सोंठ, कूठ, चिरायता इनका कषाय पीना चाहिये। (२) चिरायता, सोंठ नागरमोथा, गिलोय इनका काढ़ा अथवा (३) गिलोय, इन्द्रजौ, नीमछाल, परवल, कटुकी, सोंठ, लाल चन्दन, नागरमोथा इनके काढ़े में आधा तोला पिप्पली-चूर्ण मिलाकर पान करना चाहिये। (४) कटुकी-चूर्ण १ तोला, शर्करा १ तोला मिलाकर गरम पानी में मिलाकर पीना चाहिये। (५) अमलतास, हरड़, पिप्पली-मूल, मोथा इनका काढ़ा पीना चाहिये।

कफ वात-ज्वर में—मोथा, सोंठ और चिरायता प्रत्येक २ तोला मात्रा लेकर काढ़ा करके पीना चाहिये। (२) नीम-छाल, गिलोय, सोंठ, देवदारु, कायफल, कटुकी, वच इनका काढ़ा पीना चाहिये। (३) हरीतकी, धनियाँ, मोथा, सोंठ, नेत्रवाला, पित्तपापड़ा, कायफल, वच, भारङ्गी, देवदारु इनके काढ़े में मधु और हींग मिलाकर पान करना चाहिये। यह उत्तम पाचन है। (४) मोथा, सोंठ, चिरायता इनका दो तोला लेकर काढ़ा बनाना चाहिये, यह काढ़ा दीपन, पाचन और आमाशय-दोष को नष्ट करता है।

सन्निपात-ज्वर—आर्य-वैद्यक में सन्निपात-ज्वर १३ प्रकार के बताये गये हैं। यथा—संधिक, अंतक, रुग्दाह, चित्तविभ्रम, शीताङ्ग, तन्द्रिक, कण्ठ-कुब्ज, कर्णिक, भुग्ननेत्र, रक्तष्ठीवी, प्रलापक, जिह्वक और अभिन्यास।

सामान्य चिकित्सा—ज्वरों की सूक्ष्मांश की विवेचना करना प्रत्येक व्यक्ति के लिये सम्भव नहीं, इसलिये सब ज्वरों में उपयोगी एवं निरुपद्रवी चिकित्सा यहाँ लिखी जाती है।

(१) कण्टकारी, बड़ी कटेरी, सोंठ, धनिया, देवदारु इनका काढ़ा देना चाहिये। (२) द्वादशांग—दशमूल के साथ कूठ और पिप्पली मिलाकर इनका या चतुर्दशांग—दशमूल, चिरायता, नागरमोथा, गिलोय, सोंठ अथवा दशमूल, शठी, काकड़ाशृङ्गी, कूठ, धमासा, भारङ्गी, इन्द्रजौ, पटोल, कटुकी, यह अष्टदशांग काढ़ा देना चाहिये। (३) चिरायता, मोथा, गिलोय, सोंठ, पाठा, बला, मृणाल या लाल चन्दन, पद्माख, कटुकी और पृश्निपर्णी इनका हिम कषाय देना चाहिये। (४) चिरायता, सोंठ, मोथा, गिलोय इनका काढ़ा मधु के साथ अथवा सोंठ के स्थान में पित्तपापड़ा और कटुकी मिलाकर इनको देना चाहिये। (५) पित्तपापड़ा, जायफल, कूठ, उशीर, चन्दन लाल, नेत्रवाला, सोंठ, काकड़ाशृङ्गी, पिप्पली इनका काढ़ा उत्तम है। (६) बेर के

पत्तों को पीसकर इनको जल में घोलकर फिर छानना चाहिये । इसमें नमक मिलाकर पीने से पित्त-ज्वर शान्त होता है । (७) मुनक्का, खूबकला, गिलोय इसमें प्रत्येक १-१ तोला लेकर और कासनी ६ माशे मिलाकर काढ़ा करना चाहिये । यह काढ़ा सब ज्वरों में उपयोगी है । (८) धनिये को जल में पीसकर, इसमें शर्करा मिलाकर पीने से पित्त-जन्य दाह शान्त होता है । (९) हाथ और पाँव में बहुत जलन होती हो, तो खारा नमक और गेहूँ के तुष को मिलाकर इनसे रगड़ना चाहिये । (१०) मक्खन में नमक मिलाकर काँस के पात्र से मलना चाहिये । (११) अजवायन एक माशा, पिप्पली १ दाना इनको सायंकाल पानी में भिगो देना चाहिये । प्रातःकाल पिप्पली को निकाल के अजवायन को सौ बार पानी से धोना चाहिये, जिससे वह छिलके-रहित हो जाय । इसमें १ माशा नमक मिलाकर पिप्पली के साथ पीस लेना चाहिये । इसको पीतल के बर्तन में छानकर काढ़ा करना चाहिये । जब दो पल रह जाय, तब छानकर पीना चाहिये । (१२) ब्राह्मी ८ माशा, गावजबाँ ४ माशा, शङ्खपुष्पी ४ माशा, मिर्च ४ माशा, मुनक्का ३६ माशे इनकी १ माशा की गोली बनानी चाहिये । यदि आवश्यकता हो, रोगी को मलबन्ध भी हो, तो इसमें गुलकन्द मिला लेना चाहिये ।

(१३) पित्त ताप शरीर वल्लरी सा सखी 'वद हकोम दवाई' ।
औषधं शृणो मृगाक्षि ..नोक्ष 'जा गुलाब गुलकन्द खशादे' ॥
(१४) ज्वरादि ता या कटुकान्कषायान्नपचेत् किं वद वैद्य देयम् ।
निबोध हंसी मधुर प्रचारे "वहां बनफसा शर्बत पिलावे" ॥

(१५) गुलाब और केवड़े का अर्क मिलाकर १ कुडव, सफेद चन्दन का बारीक चूर्ण १ पल, इनको मिलाकर रात्रि में रख देना चाहिये । प्रातःकाल १ कुडव जल मिलाकर पकने के लिए रखना चाहिये, जब आधा रह जाय, तब छानकर इसमें शर्करा मिलाकर फिर पकाना चाहिये । जब गाढ़ी हो जाय, तब उतारकर इसमें मुलहठी, छोटो इलायची, शीतल मिर्च, गिलोय का सत्त प्रत्येक १ तोला और वंशलोचन ८ माशे और थोड़ा-सा कपूर मिला देना चाहिये । इसके ऊपर चाँदी और सोने के वर्क छिड़क देना चाहिये । इससे पित्त-ज्वर की पीड़ा इस प्रकार से नष्ट होती है, जैसे कि रुक्मिणी कृष्ण की पीड़ा को मिटाती है । (१४) चन्दन के बुरादे से

शरबत बनाकर उसमें केले की फलियों के टुकड़े-टुकड़े करके रख देना चाहिये। इनको खाने से पित्त शान्त होता है। (१५) गोदन्ती भस्म को मक्खन में देना चाहिये। (१६) फिटकिरी को पीसकर इसमें से आधी फिटकिरी को मिट्टी के बर्तन में रखकर बीच में थोड़ा-सा गड्ढा बना देना चाहिये। इसमें थोड़ी संखिया रखकर ऊपर से आधी फिटकिरी डाल देना चाहिये। फिर इसको ढाँप करके सन्धि को बन्द कर देना चाहिये। फिर थोड़े-से उपलों में भस्म करना चाहिये। मात्रा १ रत्ती।

(१७) सोंठ, धमासा, छाल नीम की पोहकर लीजिये,
अरु एरण्ड की पटकचूर अरडूसा तोला।
भाग बराबर ले टका भर औषध सारी,
दीजिये करके काथ वात-ज्वर रहे न प्यारी।
पाँच दिवस तक दे, येही औषध प्यारी,
न जाने कहाँ जाये वात-ज्वर की बीमारी॥

(१८) दोनों कटेरी, नागरमोथा, सोंठ गिलोय,
चिरायता नेत्रबाला आन।
छः-छः मासे तोल बराबर ले आओ,
कर दो भाग, काथ एक पिलाओ॥

(१९) खील धान की ले पानी में डार,
ता में मिश्री डाल पी, पित्त दाह मिट जाये॥

(२०) शंख-भस्म हरताल समान, आठ टंकनु विचार,
नीला तोथा टंक तीन पुट दे तीन कुँवार।
औषधि सम्पुट में धरि गजपुट दे प्रहार चार,
एक रत्ति जो प्रमाण गहि, खांड से दीजिये जासु भार॥

शास्त्रीय औषधि—(ज्वर होने पर) हिंगुलेश्वर, मृत्युञ्जय; ज्वर चूड़ामणि, कस्तूरी भूषण, द्राक्षा काथ, अभयादि काथ, पञ्चानन रस, सौभाग्यवटी, (ज्वर उतरने पर) पंचवक्त्र रस, स्वर्ण सत्त्व, चन्दनादि लोह।

यूनानी औषधि—(१) ककड़ी, खीरे के बीज की मींगी, कद्दू के बीज, खब्बूसुल, मुलमहठी, तुरंजबीन सबको बराबर लेकर कूट छानकर बिहीदाने के या ईसबगोल के लुवाब में गोली बनाकर मुँह में रखना चाहिये;

(२) अथवा खसखस का शर्बत देना चाहिये; अथवा (३) सूखा बनफसा ३५ माशे, तुबुख्म सफेद साढ़े तीन माशे, रब्बूसूस पौने दो माशे, सकमूनिया ६ रत्ती छानकर साढ़े सत्रह माशे लालबूरा मिलाकर गरम पानी के साथ देना चाहिये। ये तीनों वस्तुयें रोगी की प्यास बुझाते हैं। (४) गुलाब के फूल ३५ माशे, बालछड़, साढ़े दस माशे, कासनी के बोज, ककड़ी का गूदा, बादञ्जर बोया प्रत्येक १४ माशे, मुलहठी साढ़े सत्रह माशे, कूट-छानकर टिकिया बनावें। मात्रा साढ़े चार माशे। (५) पीली हरड़, रेवतचीनी, उस्सार योगाफिस, अफसन्तीन का निचुड़ा हुआ पानी गुलाब के फूल प्रत्येक साढ़े तीन माशे, केसर डेढ़ माशे कासनी के पानी में गोली बनाना चाहिये। यह पुराने ज्वरों में उपयोगी है। (६) सुक साढ़े दस माशे, लादन ७ माशे, गुलाब के फूल, चिरायता प्रत्येक साढ़े सत्रह माशे, केसर साढ़े तीन माशे इनको कूट-छानकर तुलसी के रस में मिलाकर आमाशय पर लेप करने से वमन रुक जाता है। (७) सौंफ की जड़, मुलहठी, पीली हरड़ प्रत्येक ३५ माशे, रूमी सौंफ साढ़े दस माशे, मस्तगी ७ माशे, अफसन्तीन, गाफिस, काली हरड़, गन्ध बेल की जड़ प्रत्येक साढ़े चौबीस माशे, ऊंट कटरी १४ माशे, मुनक्का ७० माशे, इनको औटाकर देना चाहिये। इससे प्यास बुझती है। (८) गाफिस साढ़े दस माशे, गुलाब के फूल २२१ माशे, बंशलोचन १४० माशे, इसकी मात्रा ७ माशा है। इसमें बालछड़ और तुरञ्जबीन भो मिलालें तो उत्तम है। इससे मूत्र बहुत आता है। (९) गिले इरमानी, शाहबलूत भुना हुआ, चूका के बोज, गुलाब के फूल प्रत्येक १४ माशे, बंशलोचन कहरवा प्रत्येक साढ़े दस माशे, जरिश्क साफ २१ माशे, इसको सेब के रुब्ब, ईसबगोल का लुआब इसके साथ खाना चाहिये। इससे अतिसार बन्द होता है।

आगन्तुक ज्वर

शस्त्र आदि की चोट से अथवा काम, क्रोध, भय इत्यादि के कारण शरीर के अन्दर ज्वर उत्पन्न हो जाता है। इसको आगन्तुक ज्वर कहते हैं। जो ज्वर शरीर के अन्दर से उत्पन्न होता है, उसमें प्रथम दोषों के अन्दर विकार आता है। परन्तु जो ज्वर बाह्य कारणों से उत्पन्न होता है, उसमें दोषों के अन्दर परिवर्त्तन पीछे आता है। आगन्तुक ज्वर में प्रथम ज्वर उत्पन्न होता है। पीछे दोषों के अन्दर कोप होता है। भूतादि के आवेश से जो ज्वर उत्पन्न होता है, उसमें तीनों दोष कुपित होते हैं।

विषकृत-ज्वर में—मुख का रंग बदल जाता है, रोगी को अतिसार रहता है। भोजन में अरुचि, पिपासा, अङ्गों में सुई चुभने की वेदना और मूर्च्छा होती है।

औषधि के सूँघने के ज्वर में—मूर्च्छा, शिरोवेदना और अन्य लक्षण उत्पन्न होते हैं।

काम ज्वर में— चित्तभ्रंश, तन्द्रा, आलस्य, अरुचि, हृदय-वेदना, गात्र सूख जाता है।

अभिचार और अभिशाप— मोह, तृष्णा, उद्विग्न-चित्तता, रोदन और कम्प रहता है।

चिकित्सा—अभिघात या क्रोध-जन्य ज्वर में पित्त-ज्वर की चिकित्सा करनी चाहिये। औषधि की गन्ध से उत्पन्न ज्वर में पित्त-नाशक क्रिया एवं चतुर्जात, (दालचीनी, इलायची, तेजपात और नागकेसर) कपूर, शीतल चीनी, अगरु, केसर, लौंग का कषाय पीना चाहिये। अभिचार और अभिशाप से उत्पन्न ज्वर में होम, दान आदि करना चाहिये। क्रोधज और काम-जन्य ज्वर में इष्ट वस्तु की प्रतीति तथा स्त्री-सेवा करने से शान्त हो जाता है।

ज्वरातिसार

ज्वर के साथ अतिसार प्रायः रहता है। ज्वर में अपथ्य करने से, पित्त-कारक भोजन करने से, विकृत पानी के पीने से, जल्दी विरेचन लेने से यह रोग हो जाता है। जिस ज्वर में पित्त का प्रकोप होता है, उसमें भी यह रोग हो जाता है। ज्वर की जो दवाइयाँ हैं, वह अतिसार उत्पन्न करती हैं, और अतिसार की दवाइयाँ ज्वर को बढ़ाती हैं। साधारणतः इस ज्वर में औषधि की आवश्यकता नहीं होती। परन्तु जब रोग बढ़ रहा हो या रोगी निर्बल हो जाय, उस समय इस रोग की चिकित्सा करनी पड़ती है।

चिकित्सा—१—रोगी को लंघन करना चाहिये। २—धनिया, सोंठ, प्रत्येक एक-एक तोला इनको ३२ तोला पानी में काढ़ा करके, ८ तोला शेष रखकर दो-तीन बार पीना चाहिये। ३—पृश्नपर्णी, बला, बिल्व, सोंठ, नीला कमल, धनिया इनका काढ़ा पीना चाहिये। ४—धनिया, इन्द्रजौ, मोथा, इनको जल में घोलकर, कपड़े में छानकर दो-तीन बार पीना चाहिये। ५—धतूरे के मूल की छाल १ तोला, शोधित हिंगुल २ तोला, सुहागे की खील १ तोला, इन्द्रजौ १ तोला, सोंठ ½ भाग इनको पान के रस में रखकर मटर के बराबर की गोली बनानी चाहिये। मात्रा—धनिये का भीगा हुआ जल और मधु। ६—उशीरादि पाचन—उशीर, नेत्रबाला, धनिया, सोंठ, वाराहक्रान्ता, धाय के फूल, लोध्र, बिल्व सब मिलाकर दो तोला, जल आध सेर, शेष आध पाव रखकर देना चाहिये। ७—गुडूच्यादि पाचन—गिलोय, अतीस, धनिया, सोंठ, बिल्व, मोथा, नेत्रबाला, पाठा, चिरायता, कूटज छाल, लाल चन्दन, उशीर, पद्माख इनको नं० ६ की भाँति पकाकर देना चाहिये।

शास्त्रीय औषधि—रामबाण, सर्वाङ्ग-सुन्दर ह्रीवेरादि-क्वाथ, कनक-सुन्दर, रस-पर्पटी, आनन्द-भैरव रस, कर्पूर-रस।

पथ्य—अनार का रस, जौ का पानी, भात और लप्सी, गूलर, बकरी का दूध देना चाहिये।

विषम ज्वर

जिस समय कोई भी ज्वर लगातार कई दिन तक रहता है अथवा रुक-रुककर देर तक आता रहता है, उस समय ज्वर किसी धातु का आश्रय कर लेता है। नवज्वर 'रस' धातु का आश्रय करके होता है। पीछे से ज्यों-ज्यों ज्वर पुराना होता जाता है, वह गम्भीर धातु में उतरता जाता है। अर्थात् रस से रक्त में पहुँचता है, रक्त से मांस में, मांस से मेदा में, मेदा से अस्थि में, अस्थि से मज्जा में और मज्जा से शुक्र में आजाता है। शुक्र में पहुँचने पर यह ज्वर असाध्य हो जाता है।

जबतक दोष 'रस' धातु में रहता है, तबतक रोगी को ज्वर प्रतिदिन आता है। इसको 'सन्तत' ज्वर कहते हैं। यह सात, नौ, दस या बारह दिन तक रहता है। जब दोषरक्त धातु का आश्रय कर लेते हैं, तो ज्वर २४ घण्टे में दो बार आता है, अर्थात या तो दिन में एक बार और रात्रि में एक बार आता है अथवा दिन में दो बार या रात्रि में दो बार आता है। इसको 'सतत' कहते हैं। जब दोष 'मांस' का आश्रय लेते हैं, तब इसे 'अन्येद्युष्क' ज्वर कहते हैं। यह ज्वर २४ घण्टे में एक बार आता है। जब ज्वर 'मेद' धातु का आश्रय कर लेता है, तब तीसरे दिन ज्वर होता है। अर्थात् बीच में एक दिन रोगी अच्छा रहता है। जब ज्वर 'मज्जा' धातु का आश्रय कर लेता है, तब इसको 'चतुर्थक' ज्वर कहते हैं। इसमें रोगी दो दिन अच्छा रहता है। चतुर्थक ज्वर दो प्रकार से प्रभाव दिखाता है अर्थात एक तो जंघा से या पाँव से ज्वर चढ़ता है और दूसरा सिर से ज्वर चढ़ता है। कई बार इस प्रकार से भी हो जाता है कि आज ज्वर नहीं आया, फिर दो दिन लगातार आया और फिर एक दिन नहीं आता। यह एक दूसरे प्रकार का विषम ज्वर है।

विषम ज्वर का कारण—ज्वर के अन्दर मिथ्या आहार-विहार करना है। नूतन ज्वर में बल-पूर्वक ज्वर के हटाने के लिये दी गई औषधि अन्य धातुओं को कुपित करके विषम ज्वर को उत्पन्न कर देती है। आम-ज्वर में इसीसे संशोधक या शामक औषधि का देना निषिद्ध है। ज्वर में प्रथम लंघन कराके फिर पाचन देना चाहिये। जिस समय दोषों का पाचन

भली प्रकार हो जाय, उस समय विरेचक औषधि या शामक औषधि (कटु-रस—परवल, चिरायता, गिलोय) देनी चाहिये।

परन्तु अनार्य-चिकित्सा में मलेरिया विषम ज्वर का कारण एक कीटाणु माना जाता है। यह कीटाणु एक विशेष प्रकार के स्त्री-मच्छर के काटने से रक्त में पहुँचता है। कई बार दूषित पानी के (जिसमें कीटाणुओं के अण्डे होते हैं) पीने से भी यह रोग हो जाता है। जिस समय कृमि रक्त में पहुँच जाता है, उस समय रक्ताणु टूटने लगते हैं और श्वेताणु बढ़ जाते हैं। रक्त के साथ फिरते हुए ये कीटाणु प्लीहा में आजाते हैं, और वहाँ एकत्रित रहते हैं। वहीं पर इनकी वृद्धि होती है। जिस समय ये प्लीहा से बाहर आते हैं, उस समय रोगी को ज्वर होता है, और जब फिर रक्त से वापस प्लीहा में आजाते हैं, उस समय ज्वर उतर जाता है। प्लीहा का आश्रय करने से प्लीहा बढ़ जाती है। इसलिये मलेरिया-रोगी की प्लीहा प्राय: बढ़ी होती है।

इन कीटाणुओं के कई भेद हैं। जिनके भेद से ज्वरों के स्वभाव में भी भेद आजाता है। यथा—

१-सतत-ज्वर—इसमें ज्वर प्रतिदिन आता है। प्राय: प्रात: होता है। २-तृतीयक—इसमें ज्वर बीच के दिन में सर्वथा नहीं आता और जब आता है, तो प्राय: दोपहर में आता है। ३-चतुर्थक—इसमें दो दिन बीच में ज्वर नहीं आता, और जब चढ़ता है, तो दोपहर के पीछे चढ़ता है। इन सब में सतत-ज्वर प्राय: करके आता है। इस ज्वर में शीत, उष्ण और स्वेद—ये तीन अवस्थायें, जिनका वर्णन आगे किया जायगा, स्पष्ट नहीं होतीं। सतत ज्वर में ज्वर अनियमित रहता है। परन्तु शेष दोनों ज्वरों में तीनों अवस्थायें बहुत साफ होती हैं।

सतत-ज्वर

इस प्रकार के ज्वर में ज्वर प्रतिदिन प्रात: चढ़ता है और तीसरे पहर के समीप उतर जाता है। ज्वर आने से शरीर में भारीपन, निर्बलता बेचैनी, जम्भाई आना, आमाशय-प्रदेश पर कुछ उद्विग्नता तथा शरीर पर खाज भी प्रतीत होने लगती है। किसी-किसी रोगी में बेचैनी अधिक होत है; साथ ही किसी विशेष अवयव में, यथा—पाँव, टाँगों, कटि में दर्द होता

है और हाथ, पाँव एवं आँखों में जलन होती है। कानों में शब्द का सुनाई देना, झनझनाहट या शिर-दर्द रहता है। रोगी की जीभ प्रायः मैली रहती है। प्रायः बेचैनी रहती है और कभी-कभी वमन भी हो जाता है। रोगी कभी धूप को पसन्द करता है और कभी छाया को। इन लक्षणों के थोड़ी देर पीछे रोगी को कँपकपी और सर्दी लगने लगती है। रोगी का चेहरा उतर जाता है, अँगुलियाँ श्वेत हो जाती हैं, त्वचा शुष्क और खुरदरी प्रतीत होती है।

शीत अवस्था—इस अवस्था के प्रारम्भ होने पर रोगी काँपने लगता है। उसके दाँत चरचराने लगते हैं, जिस प्रकार सरदी के कारण गरीबों के दाँत बजते हैं। कई बार यह अवस्था ऊपर लिखे हुये लक्षणों बिना ही आजाती है। ओंठ, नाक, कान नीले पड़ जाते हैं; श्वास तेज हो जाती है; ताप-परिमाण बढ़ जाता है; रोगी की नाड़ी तेज हो जाती है। जिह्वा श्वेत और शुष्क हो जाती है; रोगी की पीठ, कमर या अङ्गों में तीव्र वेदना होती है; साथही कभी-कभी जी मचलाता और वमन भी होता है। जिस समय अवस्था समाप्त होने लगती है, उस समय शरीर के अन्तःभागों में गरमी का अनुभव होने लगता है। साधारणतः यह अवस्था आधे घण्टे तक रहती है। इस अवस्था में कितने भी गरम कपड़े क्यों न डाले जायँ, रोगी की कम्प कभी बन्द नहीं होती।

गरम अवस्था—शीत अवस्था के बीतने पर रोगी को गरमी प्रतीत होने लगती है। वह अपने ऊपर के वस्त्रों को उतारकर फेंकता है। सबसे प्रथम गरमी का अनुभव ग्रीवा और चेहरे पर होता है। रोगी का चेहरा लाल हो जाता है। फिर धीरे-धीरे सारा शरीर गरम हो जाता है। यहाँ तक कि दूसरे आदमी को रोगी का स्पर्श आग की भाँति गरम प्रतीत होता है। नाड़ी तेज और दृढ़ रहती है; शंख-प्रदेश की धमनियों में धड़कन दिखाई देती है। रोगी प्रायः बेचैन और विक्षुब्ध रहता है। शीत और उष्ण दोनों अवस्थाओं में रोगी को बार-बार मूत्र-त्याग की इच्छा होती है। मूत्र की राशि अधिक रहती है, परन्तु मूत्र गरम, गँदला और गाढ़ा-पीला होता है।

स्वेद अवस्था—इसके पीछे रोगी को पसीना आने लगता है सबसे प्रथम पसीना मुँह और ग्रीवा पर आता है। फिर धीरे-धीरे सारे शरीर पर होने लगता है। इस अवस्था में रोगी के मूत्र-त्याग की प्रवृत्ति

भी कम हो जाती है, प्यास बढ़ जाती है। नाड़ी अपनी वास्तविक स्थिति में लौट आती है। रोगी इस अवस्था में आराम अनुभव करता है। रोगी अपने को पहले की भाँति स्वस्थ समझने लगता है, परन्तु कुछ कमजोरी की शिकायत अनुभव करता है। ये तीनों अवस्थायें साधारणतः छः घण्टों में समाप्त हो जाती है। कभी-कभी इसके पूर्व भी समाप्त हो जाती है और कभी-कभी अधिक समय भी ले लेती है। रोगी का मूत्र गँदला, गाढ़ा-पीला और क्षारीय होता है।

ज्वर के समय रोगी का ताप-परिमाण साधारण ताप से बढ़कर १०५ तक पहुँच जाता है। लक्षणों के प्रारम्भ होने से कई घण्टे पूर्व ही ताप-परिमाण बढ़ना प्रारम्भ हो जाता है। उसके पीछे कँपकपी आरम्भ होती है। जब ज्वर लगातार कई दिनों तक रहने लगता है, तब ताप-परिमाण कुछ कम हो जाता है। परन्तु जबतक कृमि नष्ट नहीं होते, रोगी पूर्णतः स्वस्थ नहीं होता।

कई बार ऐसा भी होता है कि इस अवस्था में शीत अवस्था का अनुभव नहीं होता, या थोड़ा होता है। प्रायः शिर-दर्द रहता है, साथ ही रोगी बेहोश हो जाता है। वह अपने मित्रों को भी पहचान नहीं सकता; व्यर्थ की बकवाद करने लगता है। कई बार आमाशय विक्षुब्ध हो जाता है; रोगी का वमन चालू रहता है। भोजन या औषधि कोई भी रोगी के पेट में नहीं टिकती। इस रोग में यकृत या प्लीहा भी आक्रान्त हो जाते हैं। इन दोनों अवयवों के स्थानों पर रोगी को दर्द रहता है। बहुत कम अवस्थाओं में मूत्र के अन्दर रक्त आता है।

उपाय—चिकित्सा का उद्देश्य यह रखना चाहिये कि शीत और उष्ण अवस्था को जितना छोटा बना सकें, उतना छोटा करें। रोगी को बिस्तर पर लेटा देना चाहिये, उसके ऊपर गरम कम्बल डाल देना चाहिये, पाँव पर पानी से भरकर गरम बोतलें या गरम ईंट रख देना चाहिये। रोगी को गरम चाय या ठण्डा पानी—जो भी पसन्द करे—पीने के लिये अधिक से अधिक मात्रा में देना चाहिये। रोगी को चारपाई के नीचे बर्त्तन में गरम राख भरकर रख देना चाहिए। वमन का देना कई बार बड़ा उपयोगी होता है, परन्तु प्रथम अवस्था में वमन का देना उत्तम नहीं। यदि

रोगी को वमन की इच्छा हो, विशेषतः जब कि भोजन के पीछे आक्रमण हुआ हो, तो वमन दे देना उत्तम है। इसके लिये राई या गरम पानी दे देना चाहिये। परन्तु प्रत्येक रोगी को वमन या विरेचन देना उत्तम नहीं। वमन या विरेचन देने से रोगी के आराम में विघ्न पड़ता है और उसे बेचैनी रहती है; साथ ही शीत लगने का भय भी रहता है। 'एन्टीपाईरीन' का मिश्रण या सुराखार को गरम पानी में मिलाकर देना चाहिये।

द्वितीयावस्था में रोगी को शीत पानी खूब पिलाना चाहिये। इससे पसीना अधिक मात्रा में आयेगा। रोगी के शरीर को ठण्डे पानी से स्पञ्ज कर देना चाहिये और इस पानी में सिरका भी मिला लेना चाहिये। शिर पर बर्फ के पानी की पट्टी रखनी चाहिये। साइट्रेट ऑफ मैगनेशिया की थोड़ी मात्रा देनी चाहिये, इससे पसीना बहुत आयेगा और आमाशय का विक्षोभ भी कम हो जाता है। नीबू की सिकञ्जी, (नीबू का रस पानी में निचोड़कर उसमें नमक या मीठा मिलाकर) देना चाहिये।

जिस समय रोगी को पसीना होने लगे-- यदि पसीना बहुत न आये), तो रोगी को ढककर रखना चाहिये और पीने के लिये चाय और ठण्डा पानी देना चाहिये, जिससे पसीना खुलकर आये। यदि रोगी निर्बल हो, तो थोड़ी-सी शराब भी देना चाहिये, रोगी को जल्दी बैठने न देना चाहिये। इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि रोगी को वस्त्र बदलते हुये सरदी न लग जाय। उसके पसीने को सूखी हुई तौलिया से पोंछ देना चाहिये।

ज्वर के आक्रमणों के बीच में रोग की चिकित्सा करनी चाहिये। यदि आँतें साफ़ न हों, जिह्वा मैली हो और रोगी का यकृत काम न कर रहा हो, तो विरेचन देना चाहिये। इस रोग के लिये 'क्युनीन' उत्तम औषधि है। इसे 'शीयरी' शराब के साथ अथवा पानी में घोलकर नीबू का रस मिलाकर देना चाहिये। इसकी मात्रा ३,४,६,८,१० ग्रेन तक एक बार में रखनी चाहिये और प्रत्येक ३ घंटे के अन्तर से देना चाहिये। क्युनीन यहाँ तक देनी चाहिये कि कानों में बजना या शिर में झनझनाहट आरम्भ हो जाय। जिस समय ये लक्षण आरम्भ होजायें, उस समय क्युनीन देना बन्द कर देना चाहिये। रोगी को दूध में घी डालकर पिलाना चाहिये। ज्वर उतरने के पश्चात् जितनी जल्दी क्युनीन दी जायगी, उतना ही अधिक लाभ निश्चित

है। यदि आँतें साफ़ हों, तो पसीना आने के समय रोगी को क्युनीन दे देना चाहिये। यदि रोगी को वमन हो, तो ज्वर के समय क्युनीन देना निष्फल है। यदि ज़रूरत प्रतीत हो, तो इंजैक्शन द्वारा देना चाहिये। बाजार में फीकी क्युनीन मिलती है, इसको पानी में घोलकर नीबू का रस मिलाकर देना चाहिये। यदि यह चिकित्सा की जायगी, तो दूसरा आक्रमण होगा ही नहीं अथवा धीमे रूप में होगा। जिन लोगों को यह ज्वर बार-बार होता है, वे इसके आने को तुरन्त पहचान लेते हैं। यदि वे ज्वर से पहले क्युनीन की एक मात्रा ले लें और आँतों को साफ़ रक्खें, तो रोगी को आराम हो जाता है। कई बार क्युनीन की बड़ी मात्रा देने की आवश्यकता होती है और कई बार रोगी को थोड़ी ही मात्रा रोगी को हानि करती है। भोजन हल्का और सुपच लेना चाहिये। वायु परिवर्त्तन करना उत्तम है।

इस रोग में यकृत, प्लीहा और फेफड़े भी आक्रान्त हो जाते हैं। इस अवस्था में इनकी चिकित्सा के अन्दर क्युनीन मिलाकर देना चाहिये। इस रोग में साधारणतः कोई विशेष उपद्रव नहीं होता। इसका परिणाम प्रायः पाण्डु-रोग या प्लीहा का बढ़ना है।

यदि क्युनीन से लाभ न हो, तो यह सन्देह हो जाता है कि वास्तव में यही रोग है अथवा और दूसरा। इसके लिये ब्लुपिल देकर प्रातः विरेचन देना चाहिये। जबतक मल का रंग स्वस्थ पुरुष की भाँति न आजाय, इसे देते रहना चाहिये। साथ ही रक्त के अन्दर क्षार बढ़ाने के लिये 'एफर वैसिंग' (झागदार मिश्रण) देना चाहिये। इस चिकित्सा के पीछे फिर एक बार क्युनीन अजमानी चाहिये।

क्युनीन के अतिरिक्त 'आरसनिक' एक दूसरी उत्तम औषधि है, जो ज्वर को रोकती है। क्युनीन से यदि सफलता न मिले, तो 'आरसनिक' देना चाहिये।

जब ज्वर बार-बार प्रतिदिन आता हो, तो टिंचर वार्बर्ग देकर देखना चाहिये। इसमें एलोज, ओपीयम, क्युनीन, रुवर्ब आदि उत्तम औषधियाँ पड़ी हैं। इसको देने से पूर्व कैस्टर ऑयल या अन्य विरेचन से आँतों को साफ़ कर लेना चाहिये। जब ज्वर चढ़ने लगे, उस समय ४ ड्राम मात्रा को बिना पानी मिलाये रोगी को पिला देनी चाहिये और शेष ४ ड्राम मात्रा ३ घन्टे के

पीछे दे देनी चाहिये। प्रथम और दूसरी खूराक के बीच में एवं दूसरी खूराक के एक घन्टे तक रोगी को कोई भोजन, सिवा पानी के नहीं देना चाहिये। खूराक लेने के पीछे रोगी को बिस्तर पर लेट जाना चाहिये। यत्न करना चाहिये कि रोगी को पसीना बहुत आये।

बच्चों की अवस्था में—एक स्वस्थ बच्चा जब अपनी रोज की खूराक में कमी करने लगे, उसको जम्भाई या अकड़ाइयाँ आने लगें और किसी बीमारी की शिकायत न करे, तो ज्वर का सन्देह करना चाहिये; विशेषत: जब कि इसके हाथ और पाँव ठंडे हों और शरीर के अन्दर थर्मामीटर से ज्वर मालूम पड़ता हो। यही लक्षण विद्रधि से भी उत्पन्न हो जाते हैं। बच्चों में ज्वर प्राय: सन्तत होता है। प्राय: ऐसा भी देखा गया है। कि जब गर्भवती स्त्री को मलेरिया होता है, तो गर्भ में बच्चे को भी रोग हो जाता है। इस समय गर्भ की कँपकपी को माता अनुभव करती है। इन बच्चों की चिकित्सा भी उसी प्रकार होती है, जैसे कि युवाओं की। क्युनीन या अन्य औषधियों को अवस्था के साथ देना चाहिये।

सन्तत ज्वर

इस ज्वर को तइया या चौथैइया नाम से प्राय: सब लोग पहचानते हैं। इस ज्वर का आक्रमण ठीक उसी प्रकार, उन्हीं लक्षणों से, होता है, जिस प्रकार सतत ज्वर में होता है। इस ज्वर में उष्ण अवस्था २-३ घण्टों में शान्त न होकर ६-८ घण्टों में समाप्त होती है। नाड़ी अधिक तेज हो जाती है, श्वास भारी हो जाता है, रोगी बहुत बेचैन रहता है, ज्वर जल्दी चढ़ता है और देर में उतरता है, ताप-परिमाण १०६ तक रहता है, नाड़ी १०० से १२० तक (१ मिनिट में) हो जाती है; चेहरा लाल तमतमाता हुआ रहता है और आँखें लाल, रक्त से परिपूर्ण होती हैं। रोगी प्राय: प्रलाप करता है, शरीर पीला हो जाता है, यह पीलापन या तो सहसा होता है, अथवा शनै:-शनै: होता है। रोगी का आमाशय प्राय: विक्षुब्ध रहता है, उसको हिचकियाँ आती हैं, वमन होती है, वमन में हरा-पीला पित्त बाहर आता है। ६ या ८ घण्टे के पीछे रोग घटना प्रारम्भ होता है। कई बार १२ घण्टे तक भी रोग के घटने के कोई लक्षण दिखाई नहीं देते। इस

अवस्था में रोगी को पसीना होने लगता है, ज्वर घट जाता है, नाड़ी नर्म हो जाती है और कभी-कभी रोगी सोने लगता है। कई बार लक्षणों का उतराव बहुत ढोला होता है, यहाँ तक कि कई बार प्रथम शीत अवस्था का पता भी नहीं चलता। साधारणत: लक्षणों का घटाव प्रात:काल आरम्भ होता है और दोपहर तक रोगी स्वस्थ रहता है। तीव्र अवस्था में घटते हुये लक्षणों का पता लगाना सरल नहीं होता; परन्तु लक्षण घटते अवश्य हैं। यदि ज्वर पूर्ण-रूप से कभी न उतरे, तो सन्तत ज्वर का सतत से अथवा टाईफाईड ज्वर से भेद करना कठिन हो जाता है। इसके लिये रोगी को बिस्तर पर लेटाकर ताप-परिमाण देखना चाहिये और केवल द्रव भोजन देना चाहिये। बस, जो कुछ तुम कर सकते थे, तुमने कर दिया; अब चिकित्सक को बुलाकर उससे सहायता लेनी चाहिये।

इस ज्वर का प्रथम आक्रमण प्राय: २४ घन्टे रहता है और दूसरा आक्रमण (यदि उचित उपाय से न रोका जाय, तो) पहिले से अधिक लम्बा होता है। रोग का समय साधारणत: एक सप्ताह से लेकर ३ सप्ताह है, परन्तु यह इससे भी अधिक रह सकता है। सातवां, चौदहवां और २१ वाँ दिन प्राय: खतरनाक होता है। इन दिनों में या तो ज्वर घट जाता है, अथवा दुगुना बढ़ जाता है। अच्छे होनेवाले रोगियों में ताप-परिमाण और नाड़ी घट जाती है और आमाशय-विक्षोभ शान्त हो जाता है। रोगी को पसीना बहुत आता है। बुरे रोगियों में कमज़ोरी बढ़ जाती है, मल और मूत्र में रक्त आने लगता है, ठण्डा पसीना होता है, प्रलाप, बेहोशी रहती है, संक्षेप से, रोगी की अवस्था टाइफाइड जैसी रहती है।

इस ज्वर में प्राय: अन्त: अवयव आक्रान्त हो जाते हैं, आमाशय में विक्षोभ बहुत होता है, जिसके कारण रोगी को वमन बहुत होता है, विशेषत: उष्ण अवस्था में। आमाशय का विक्षोभ ही कई बार इस रोग का मुख्य लक्षण होता है, रोगी भोजन या औषधि किसी भी वस्तु को पसन्द नहीं करता। मस्तिष्क पर प्रभाव होने से कई बार रोगी मूर्च्छित हो जाता है। इसलिये ज्वर उतरने के समय या और समय में भी रोगी को सम्भालकर खड़ा करना चाहिये। मस्तिष्क में विक्षोभ या शोथ होने से खोपड़ी में गरमी, प्रलाप होता है और आँख का श्वेत भाग लाल हो जाता है, रोगी पूर्णरूप

से बेहोश हो जाता है और अन्त में तन्द्रा होजाती है। इस रोग में फेफड़ों के अन्दर भी सूजन हो जाती है।

चिकित्सा—यदि अन्तः अवयव आक्रान्त न हों, तो सबसे प्रथम विरेचन देना चाहिये। विरेचन से इतना हो जाना चाहिये कि रोगी का मल साधारण की भाँति हो जाय। बच्चों के लिये दिन में दो-तीन बार साइट्रेट आफ मेगेनेशिया का देना उत्तम है। शिर-दर्द के लिये शिर पर शीत परिषेक करना चाहिये, कनपटियों पर, कानों के पीछे जौंक लगवानी चाहिये। ज्वर घटने के प्रथम बार जब कि त्वचा गीली हो, तो १५ ग्रेन क्युनीन को १ ड्राम नीबू के रस में और २ औन्स पानी मिलाकर देना चाहिये। इसके पीछे प्रत्येक ३ घण्टे के अन्तर से ६ ग्रेन क्युनीन देते रहना चाहिये, जबतक त्वचा में गरमी और रूक्षता न आये। यदि ज्वर दो दिन तक न आये, तो क्युनीन की मात्रा को धीरे-धीरे घटाते जाना चाहिये। यदि ज्वर एक बार उतरने के पीछे फिर चढ़ जाय, तो विरेचन देकर फिर क्युनीन देनी चाहिये। इस प्रकार दो, तीन, चार बार देने से ज्वर अवश्य रुक जाता है। यदि चिकित्सक की सलाह न मिल सके और आमाशय में विक्षोभ हो, तो जब-तक ज्वर के लक्षण शान्त न हो जायँ, क्युनीन नहीं देनी चाहिये। वमन को रोकने के लिये बर्फ चूसने के लिये देना चाहिये; अथवा ½ ग्रेन पल्व एपिकॉक को प्रत्येक दो घन्टे के अन्तर से पानी के साथ देना चाहिये। आमाशय पर राई का प्लास्टर लगाना चाहिये।

जिस समय मस्तिष्क आक्रान्त हो और तीव्र अतिसार हो रहा हो, उस समय क्युनीन नहीं देना चाहिये। रोगी को पुष्टिकारक भोजन देना चाहिये। इसके लिये लाज, जौ का पानी और दूध उत्तम है। यदि रोगी निर्बल हो जाय अथवा मूर्च्छित हो रहा हो, जिह्वा शुष्क या भूरी हो, नाड़ी निर्बल और तेज हो, रोगी में प्रलाप हो, तो १ ड्राम की मात्रा में ब्रांडी देना चाहिये। यदि रोगी बहुत निर्बल हो, तो उसे उठने नहीं देना चाहिये, यहाँ तक कि बिस्तर पर भी खड़े नहीं होने देना चाहिये।

जब आमाशय में विक्षोभ हो, तो स्वाद-रहित क्युनीन को नाइट्रिक एसिड डाइल्यूट के साथ देना चाहिये या इंजैक्शन द्वारा देना चाहिये। यदि

वमन बहुत हो, तो क्लोरोफार्म में कपड़े को भिगोकर आमाशय पर रखना चाहिये, ऊपर से रेशम या घड़ी के शीशे से ढक देना चाहिये। विरेचन के लिये प्रथम कैलोमल को देना उत्तम है।

आंत्र-ज्वर—टाइफाईड ज्वर में और इस रोग में निम्न प्रकार से भेद कर सकते हैं:—

आंत्रिक

यह धीरे-धीरे चढ़ता है। कँपकपी थोड़ी होती है। प्रथम कुछ दिनों तक ताप-परिमाण नहीं बढ़ता। इस रोग का कारण शारीरिक निर्बलता है। प्राय: पहले ही से अतिसार रहता है, मल का रंग पीला रहता है। आँतों में दर्द और दबाने से पीड़ा होती है। गुलाबी रंग के दाने निकलते हैं, ज्वर का उतराव बहुत धीरे-धीरे होता है, प्राय: प्रात:काल होता है। कामला बहुत कम होता है, आमाशयिक-लक्षण—बेचैनी, जी मचलाना, वमन प्राय: होता है।

सतत-ज्वर

ज्वर एकदम से चढ़ता है। कँपकपी बहुत होती है। ज्वर प्रारम्भ में प्रथम दिन से चढ़ता है। रोग का कारण मलेरिया होता है। प्रथम मलबन्ध अथवा काला-पीला मल आता है। वमन के पीछे आमाशय और प्लीहा पर दर्द होता है। किसी प्रकार के दाने नहीं निकलते। प्रतिदिन घट जाता है. प्राय: प्रात:काल ज्वर चढ़ता है। कामला प्राय: होता है। आमाशयिक लक्षण प्राय: होते हैं।

आर्य-औषधि—१—कालमेघ, तुलसी-पत्र, बिल्व-पत्र इनको कूट करके रस निकाल लेना चाहिये। यह रस दो तोला, हल्दी के पत्रों का चूर्ण १ आना भर, शोरा १ आना भर; इनके साथ देना चाहिये। २—रस-सिन्दूर १ भाग, कुटकी २ भाग, शोरा २ भाग, श्वेत आक की जड़ के रस से पीसकर, ४ रत्ती की गोली बनाकर आर्द्रक-रस के साथ दिन में तीन बार देनी चाहिये। ३—अमलतास का गूदा, पिप्पली, मोथा, कुटकी, हरीतकी प्रत्येक

एक-एक तोला करके काढ़ा करना चाहिये। यह पाचन आँतों को साफ करता है। ४—मुलहठी, लाल चन्दन, मोथा, आँवला, धनिया, उशीर, गिलोय,पटोल-पत्र का काढ़ा मधु और शर्करा मिलाकर देना चाहिये। ५—मोथा, आँवला, गिलोय, सोंठ, कण्टकारी इनके काढ़े में पिप्पली-चूर्ण २ माशा, मधु २ माशा मिलाकर देना चाहिये। ६—उशीर, लाल चन्दन, मोथा, गिलोय, धनिया और सोंठ के काढ़े में शर्करा और मधु मिलाकर देना चाहिये। ७—सोंठ, गिलोय, मोथा, लाल चन्दन, उशीर, धनिया इनके काढ़े में शर्करा और मधु मिलाकर देने से तृतीयक ज्वर शान्त होता है। ८—काला जीरा गुड़ के साथ देना चाहिये। ९—हरड़, शालपर्णी, सोंठ, देवदारु, आँवला, बाँसा इनके काढ़े में शर्करा और मधु मिलाकर देने से चतुर्थक ज्वर नष्ट होता है।

शास्त्रीय-औषधि—ज्वर-चूड़ामणि, हिंगुलेश्वर, मृत्युञ्जय, लक्ष्मी-विलास।

डेंग्यू फीवर

इस ज्वर का प्रथम लक्षण शिर-दर्द, बेचैनी, सर्दी का लगना; पीठ में, हाथ-पाँव में, सन्धियों में और अक्षि-गोलकों में तीव्र दर्द होता है। इसके साथ थोड़ा या बहुत ज्वर भी रहता है। कई बार एक ही सन्धि में तीव्र दर्द होता है, अन्य लक्षण नहीं होते। प्रथम लक्षण बेचैनी के प्रारम्भ होने के १२ घण्टे पीछे चेहरे पर लाल रंग की कोढ़ उत्पन्न होती है, और छाती, हथेली एवं अन्य स्थानों पर ४८ घण्टे के पीछे लाल दाने निकलते हैं। ज्वर का ताप-परिमाण १०३ या १०४ अंश तक बढ़ जाता है और नाड़ी की गति १ मिनट में १२० तक पहुँच जाती है। परन्तु ताप-परिमाण एवं नाड़ी की वृद्धि कुछ समय तक रहती है। साधारणतः यह रोग भयानक नहीं है। ज्यों ही दाने छिपने लगते हैं, ज्वर भी घटने लगता है। दो-तीन दिन में रोगी पूर्णतः अच्छा हो जाता है। उसका ज्वर और दर्द सब शान्त हो जाते हैं। इसके पीछे फिर दूसरी बार ज्वर और दाने निकलते हैं। ये दाने प्रथम हाथों पर निकलते हैं। ये खसरे से मिलते-जुलते हैं। इस बार का आक्रमण रोगी को पहले से अधिक निर्बल बना देता है। संधि-वात की भाँति इसमें भी

सन्धियों में शोथ, कड़ापन और दर्द होता है। कभी-कभी ग्रीवा एवं छाती की ग्रन्थियाँ भी सूज जाती हैं। इसका फिर तीसरा आक्रमण होता है। प्रत्येक आक्रमण में रोगी अधिक ही निर्बल होता जाता है। यह रोग संक्रामक एवं व्यापक रूप से होता है। यह रोग युवाओं, शिशुओं और बच्चों में भी पाया जाता है। इस रोग में अस्थियों के अन्दर बहुत दर्द होता है, इससे इसे हड्डी तोड़ बुखार (Break Bone Fever) भी कहते हैं।

चिकित्सा—आँतों की ओर ध्यान देना चाहिये। यदि मलबन्ध हो, तो विरेचक औषधियाँ देनी चाहियें। यदि ज्वर बहुत हो, तो 'साइट्रेट ऑफ मैगनेशिया' देना चाहिये। यदि रोगी को नींद न आती हो, दर्द बहुत हो, और शिर-दर्द न हो, तो १० से १२ ग्रेन डॉवर्स पाउडर या २० ग्रेन क्लोरल रात्रि में देना चाहिये। सोडियम सैलिसिलेट का देना भी उत्तम है। सैलेसीन १० ग्रेन और सोडियम सैलिसिलेट १० ग्रेन १ औंस पानी में मिलाकर देना चाहियें। यदि इसके आक्रमण हों, तो क्युनीन (क्युनीन सैलीसिलेट उत्तम है) देना चाहियें। गरम पानी में सोडा कार्ब घोलकर, उससे स्नान कराना चाहियें। टिंचर बैलोडोना १० बूँद, १ औंस पानी में मिलाकर दिन में तीन बार देना चाहिये। इससे दर्द कम हो जाता है।

आर्य-औषधि—(१) इन्द्रजौ, परवल, कटुकी या परवल अनन्त-मूल, मोथा, पाठा, कुटकी; अथवा, नीम-छाल, हरड़, आँवला, बहेड़ा, द्राक्षा, मोथा, इन्द्रजौ—इनका काढ़ा देना चाहिये। (२) सोंठ, पिप्पली-मूल, तालमखाना, मार्कण्डिका, अमलतास, नेत्रबाला, हरड़—इनके काढ़े में यवक्षार मिलाकर देना चाहिये। (३) पंचमूल का काढ़ा रोगी को देना चाहिये। (४) भारंगी, मोथा, पित्तपापड़ा, कूठ, सोंठ, हरड़, पिप्पली, बिल्व, श्योनाक, गम्भारी, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, कटेरी, गोखरू—इनका काढ़ा दिलवाना चाहिये।

शास्त्री औषधि—ज्वरांकुश, चण्डेश्वर, पञ्चानन रस, हिंगुलेश्वर, और मृत्युञ्जय-रस देना चाहिये।

सैरिब्रो स्पाइनल फ़ीवर

इस रोग में मस्तिष्क की कलाओं के अन्दर शोथ हो जाती है। रोगी के अन्दर आक्षेप विशेषत: ग्रीवा की मांस-पेशियों में होते हैं। मेरु-दण्ड के साथ-साथ दर्द भी नीचे को जाती है। यह रोग टाइफाईड, टाइफस या रिलैप्सिंग ज्वर में होता है। कई बार ये आक्षेप ही स्वयं मुख्य लक्षण बन जाते हैं। जब यह रोग स्वतन्त्र-रूप से हो, तो इसका कारण कृमि होता है।

चिकित्सा—रोगी के सिर पर नारायण-तैल मलना चाहिये, नासा में डालना चाहिये, कान में डालना चाहिये। खाने को वात चिन्तामणि (बृहत्), चतुर्मुख आदि देने चाहियें।

रिलैप्सिंग फ़ीवर

यह रोग आक्रमण देकर होता है, अर्थात् पाँचवें या सातवें दिन, पीछे होता है। इस रोग का एक कृमि है। यह रोग प्राय: करके दुर्भिक्ष के समय होता है, इसलिये इसको दुर्भिक्ष-जन्य ज्वर भी कहते हैं। यह रोग अन्तर देकर होता है और प्रत्येक अन्तर में पहले से कम तीव्र होता है, साथ ही इसके अन्तरों का समय भी बढ़ता जाता है। इस ज्वर का आरम्भ सर्दी लगने से, मस्तिष्क की शिरो-वेदना से, पीठ, कमर और भुजाओं के दर्द से और शक्ति ह्रास से होता है। ये लक्षण १ घन्टे से लेकर कई घन्टों तक रहते हैं। इसके पीछे त्वचा सहसा गरम और शुष्क हो जाती है। शिर-दर्द, पीठ और भुजाओं का दर्द एवं प्यास बढ़ जाती है। दूसरे या तीसरे दिन पसीना आता है, परन्तु लक्षणों में कोई अन्तर नहीं पड़ता। ज्वर का ताप-परिमाण १०४ से १०८ अंश फार्नेहाइट तक हो जाती है, नाड़ी १ मिनट में ११० से १०० तक पहुँच जाती है। साधारणत: इस ज्वर में किसी प्रकार के दाने नहीं निकलते, परन्तु कभी-कभी गुलाबी रङ्ग के दाने देखने में भी आजाते हैं। 'कामला' इस रोग में मुख्य लक्षण है, यह या तो धीरे-धीरे होता है अथवा सहसा हो जाता है। पहले जिह्वा गीली रहती है, इसका पृष्ठ पीला होता है, परन्तु कुछ समय पीछे बीच में शुष्क और भूरा हो जाता है। रोगी को प्राय: मलबन्ध रहता

है, आँतों में दर्द रहता है, यकृत और प्लीहा बढ़ जाते हैं। शिर एवं भुजाओं में तीव्र दर्द रहता है, परन्तु प्रलाप बहुत कम होता है।

पाँचवें या सातवें दिन सब लक्षण सहसा घट जाते हैं, ज्वर एकदम उतर जाता है, रोगी को बहुत पसीना आता है। रोगी को अतिसार हो जाता है, अथवा नाक एवं आँतों से रक्त-स्राव होने लगता है। ज्वर के सब लक्षण कुछ समय के लिये सर्वथा शान्त हो जाते हैं, जिह्वा साफ हो जाती है, भूख लगने लगती है, रोगी अपने आपको पूर्ण स्वस्थ अनुभव करता है। वह शक्ति प्राप्त करने लगता है, उसे इस रोग का आक्रमण नहीं होता। प्राय: पाँचवें या सातवें दिन पीछे पहलेवाले लक्षण फिर लौट आते हैं। इस बीच में नाड़ी स्वस्थ अवस्था की अपेक्षा कुछ मन्द रहती है। यह आक्रमण ३ से ५ दिन तक रहता है और फिर सहसा लक्षण शान्त हो जाते हैं। कई बार तीसरा आक्रमण भी होता है। प्रत्येक आक्रमण में रोग का वेग घटता जाता है और बीच का अन्तर बढ़ता जाता है।

इस रोग का कृमि रुग्ण व्यक्ति के रक्त में पाया जाता है। यह रोग श्वास के द्वारा एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में पहुँचता है। यह कृमि पतले धागे की भाँति होता है, इसकी गति कॉर्क निकालनेवाले 'स्क्रू' की भाँति बलेटे की खाई हुई होती है।

यह रोग प्राय: दुर्भिक्ष के समय फैलता है। साथ ही अधिक भीड़ में, स्वच्छ वायु के अभाव में यह रोग विशेषत: फैलता है। इस रोग से १८ प्रतिशतक मृत्यु होती है।

चिकित्सा— रोगी को खुली वायु, तम्बू, झोपड़ी में रखना चाहिये उसे दूध, जौ का पानी आदि पोषक भोजन देना चाहिये। स्वच्छता का पूर्ण ध्यान रखना चाहिये। यदि मलबन्ध हो, तो उसकी चिकित्सा करनी चाहिये। रोगी को प्रतिदिन ताजे पानी से स्पञ्ज करना चाहिये। यदि रोगी निर्बल हो रहा हो और नाड़ी क्षीण हो जाय, तो शक्ति-वर्द्धक औषधियाँ देनी चाहिये। आक्रमणों के बीच में क्युनीन देनी चाहिये। ज्वर के बन्द होने पर कुछ दिनों तक रोगी को पोषक और शक्ति-वर्द्धक भोजन देना चाहिये।

टाइफाईड

इस ज्वर को आंत्रिक ज्वर भी कहते हैं; क्योंकि इस रोग में आंतें आक्रान्त होती हैं। यह रोग कई बार पानीवाली टट्टियों के खराब होने से हो जाता है। टट्टियों के खराब होने से दूषित वायु, जो नीचे नालियों मे बहती रहती है, ऊपर आकर घर मे भर जाती है। कई बार यह रोग दूषित पानी के पीने से होता है। दूध के द्वारा भी यह रोग संक्रमित होता है। यह रोग रोगी के सक्रान्त कपड़ों से भी दूसरों मे फैलता है। यह रोग श्वास से या स्पर्श से नहीं फैलता। इस रोग का मुख्य कारण एक कृमि है, जो निगले जाने पर रोग उत्पन्न करता है। यह रोग तीसरे सप्ताह मे विशेषतः फैलता है। यह रोग युवा पुरुषों पर वृद्धों की अपेक्षा अधिक आक्रमण करता है। यह रोग वसन्त-ऋतु मे अधिकतर होता है। रोग के संक्रमण और रोग के बढ़ने के बीच का समय ७ से २१ दिन है; परन्तु प्रायः १० से १४ दिन के बीच मे रोग बढ़ जाता है।

लक्षण—रोग का आक्रमण शनैः-शनैः होता है। रोगी अपने को कुछ अस्वस्थ अनुभव करने लगता है, अगों मे दर्द, शिर-दर्द, भूख का नष्ट होना और सर्दी अनुभव होती है। परन्तु रोगी यह समझता है कि योंही कुछ थोड़ी-सी अस्वस्थता है। वह अपना कार्य करता रहता है। कई बार यह रोग सहसा हो जाता है। प्रायः प्रथम मलबन्ध रहता है, परन्तु कभी-कभी रोगी को पहले ही मे अतिसार रहता है। इसके अतिरिक्त और भी लक्षण होते हैं; जैसे—आमाशय-विकार, बेचैनी, वमन, भोजन को ग्रहण करने की असमर्थता। इन्हीं लक्षणों से कई बार इसको आमाशयिक ज्वर भी कह देते हैं। नाड़ी तेज और भरी हुई, त्वचा गरम और उष्ण, भूख नष्ट हो जाती है, जिह्वा मैली रहती है और रोगी को अतिसार रहता है। ज्वर दोपहर के पीछे बढ़ जाता है और प्रातःकाल थोड़ा घट जाता है, यह अन्तर प्रायः १-२ अंश का होता है। मूत्र गँदला और गहरा-पीला होता है। रात्रि को बेचैनी अधिक बढ़ जाती है; चेहरा पीला, गालों पर लालिमा होती है, आँखें साफ और चमकदार होती हैं।

अतिसार में मल पतला, पीला और विशेष गन्ध-युक्त होता है। यदि रोगी के दक्षिण कोष्ठ पर हाथों से दबाव दिया जाय, तो

उसके चेहरे से पीड़ा का अनुभव होता है। कोष्ठ में कठोरता अनुभव होती है। ज्वर के दसवें या बारहवें दिन छाती और पीठ पर गुलाबी रङ्ग के दाने दिखाई देते हैं, जो दबाने से नष्ट हो जाते हैं और फिर उठ आते हैं। ये दाने चौथे-पाँचवें दिन शान्त हो जाते हैं। अच्छे होनेवाले रोगियों में विशेषतः बच्चों में दाने निकलने के पीछे ज्वर कुछ घट जाता है। ऐसी अवस्था में रोगी तीसरे सप्ताह के प्रारम्भ से अच्छा होने लगता है। अब ज्वर के उतराव में भी स्पष्ट अन्तर दीखता है। अतिसार घट जाता है, जिह्वा साफ हो जाती है, अङ्गों का दर्द शान्त हो जाता है, रोगी रात्रि में सोता भी है, ज्वर का ताप-परिमाण घट जाता है, भूख बढ़ जाती है। प्रायः दूसरे सप्ताह में रोगी में प्रलाप हो जाता है, पहले ही रात्रि में रहता है और पीछे बढ़ जाता है। रोग के बढ़ने पर जिह्वा खुश्क, लाल, चमकदार और फटी हुई होती है; दाँतों पर मैल जम जाती है। ओंठ फट जाते हैं, इसमें रक्त निकलता है। रोगी का मांस और शक्ति क्षीण हो जाती है। वह पड़ा रहता है और प्रायः उसे यह मालूम नहीं होता कि उसके चारोंओर क्या हो रहा है। यदि रोगी के लक्षण बुरे हों, तो वह बिलकुल बेहोश रहता है। उसका ताप-परिमाण बढ़ जाता है, वह कपड़ों को चुनता है, हाथ काँपते हैं। हाथों में कँप-कपी, कपड़ों को चुनना जितना अधिक होगा, उतना ही आंत्रो के अन्दर विकार अधिक समझना चाहिये। पुतली का फैलना, नाक से रक्त-स्राव मूत्र एवं मल से रक्त-स्राव होना, प्रलाप, आक्षेप हों, तो समझना चाहिये कि रोगी की अवस्था बुरी है।

रोगी का ताप-परिमाण बार-बार देखना चाहिये। रोगी का ताप-परिमाण प्रातःकाल १०५ अंश फार्नहाइट पहुँचता है और दिन में किसी समय १०७ अंश तक पहुँच जाता है। भयानक रोगियों में ज्वर १०५ अंश तक प्रथम सप्ताह में पहुँच जाता है, दूसरे सप्ताह में ज्वर सायंकाल १०१ से कुछ बढ़ जाता है और प्रातः १०१ अंश से कुछ घट जाता है। तीसरे सप्ताह में ज्वर प्रातःकाल घट जाता है और चौथे सप्ताह में और भी कम हो जाता है। सहसा अथवा अनियमित रूप से ताप-परिमाण का बढ़ना इस बात का साक्षी है कि स्थानिक उपद्रव, जैसे—आंतों में ताजे व्रणों का होना, व्रण का रक्त के साथ फटना, आध्मान, फेफड़ों में शोथ आदि

लक्षण होते हैं। ताप-परिमाण का सहसा घटना इस बात का द्योतक है कि आँतों से सहसा रक्त-स्राव होने लगता है। इस रोग में नाड़ी की स्पन्दन प्रहेरी रहती है। ज्वर का समय ३ से ४ सप्ताह होता है; परन्तु इसका आक्रमण दूसरा होता है, जो प्रायः १५ प्रतिशतक होता है।

उपद्रव—अतिसार, रक्त-स्राव, आंत्रों में आध्मान, मूर्च्छा, पेरिटोनियम की शोथ, प्लीहा या यकृत का बढ़ना, आमाशय का विक्षोभ रहता है।

चिकित्सा—रोगी को खुले हवादार कमरे में रखना चाहिये। प्रकाश रोगी की आँखों पर पड़ने नहीं देना चाहिये। कमरे में पूर्ण शान्ति रखनी चाहिये। बिस्तर बहुत गुदगुदा नहीं रखना चाहिये, बिस्तर पर रबर का टुकड़ा या मोमजामा बिछा देना चाहिये। रोगी के लिये दो बिस्तर रखने चाहिये ; एक दिन के लिये और दूसरा रात्रि के लिये। रोगी को हिलने-डुलने से मना करना चाहिये, उसे सहायता देकर करवट देना चाहिये और आराम के साथ उठाकर एक बिस्तर से दूसरे पर ले जाना चाहिये। रोगी की स्वच्छता का पूर्ण ध्यान रखना चाहिये। शय्या-व्रण का ध्यान पहले ही से रखना चाहिये। रोग के सारे समय में मुँह और दाँतों को साफ रखना चाहिये। रोगी के शरीर को प्रतिदिन स्पंज करना चाहिये। जिस स्थान को स्पंज करे, उसे साथ-साथ खुश्क करते जाना चाहिये। रोगी को सर्दी से बचाना चाहिये। इससे रोगी का ताप-परिमाण घट जायगा। शिर-दर्द के लिये बालों को छोटा-छोटा कटवाकर उसपर बर्फ का कपड़ा या कोलन वाटर रखना चाहिये। वमन और प्यास के लिये बर्फ चूसने के लिये देनी चाहिये। रोगी को केवल दूध देना चाहिये, वह भी थोड़ा-थोड़ा करके। ३ से ५ सेर तक दूध २४ घण्टे में दे देना चाहिये। रोगी को ६ या ८ सप्ताह तक किसी भी प्रकार का कठिन भोजन नहीं देना चाहिये। नारंगी का पानी या सोडा-वाटर आदि के पीने से पेट में आध्मान हो जाता है। इस रोग में मृत्यु प्रायः अनुचित भोजन देने के कारण होती है। यदि प्रथम सप्ताह के पीछे नाड़ी तेज हो जाय और शक्ति में क्षीण हो जाय, तो उचित मात्रा में (१ से २ ड्राम) ब्रांडी देना चाहिये। यदि इसके देने से जिह्वा गीली हो जाय, ताप-परिमाण गिर जाय, नाड़ी धीमी हो जाय, त्वचा

और अधिक तर हो जाय, प्रलाप में कमी आजाय, तो समझना चाहिए कि उत्तेजक औषधि अच्छा काम कर रही है, एन्टीपाईरीन ५ ग्रेन, पानी १ औन्स और ब्राण्डो १ ड्राम मिलाकर प्रत्येक चार घण्टे के अन्तर से देकर और शिर पर ठण्डा पानी रखकर कभी भी इस ज्वर में ताप-परिणाम को घटा सकते हैं। जबतक २४ घण्टे में ९-१० बार मल-प्रवाहण न हो, अति-सार को नहीं रोकना चाहिये। इसके लिये पल्व एपिकॉक को प्रात: और सायं २ ग्रेन की मात्रा में देना चाहिये, और निशास्ते की वस्ति देनी चाहिये। यदि आँतों से रक्त-स्राव हो, तो १ पाइन्ट पानी में १ ड्राम फिटकिरी का चूर्ण मिलाकर वस्ति देनी चाहिये। और रोगी को कह देना चाहिये कि वह इसको अन्दर रोके। दूध में चूने का पानी मिला कर देना भी उत्तम है। यदि त्वचा गीली हो, रोगी को थोड़ा या सर्वथा दर्द न हो, नींद न आती हो और प्रलाप हो, तो क्लोरल हाइड्रेट देना चाहिये। साधारणत: नींद लाने की कोई भी दवाई अपने आप बिना चिकित्सक की सम्मति के नहीं देना चाहिये। १० ग्रेन डॉवर्स पाउडर दिन में दो बार नींद के लिये दे सकते हैं। यदि रोगी बेहोश हो, तो मूत्राशय को खाली करने का ध्यान रखना चाहिये। इसके लिये केथेटर-शालाका यंत्र डालना चाहिये।

इस रोग में औषधियों से उतना लाभ नहीं होता, जितना परि-चर्य्या से हो जाता है। तोभी दवाइयाँ इसमें सहायता करती हैं। सैलोल या केलोमल को आँतों की रक्षा के लिये देना उत्तम है। इस अवस्था में केलोमल ३ ग्रेन की मात्रा में प्रत्येक दो घण्टे के अन्तर से देना चाहिये। जब ज्वर १०५ से बढ़ जाय, तो शीत पानी का स्नान देना चाहिये। अथवा कोहनी से लेकर हाथों तक के भागों को शीत पानी में भिगोये हुये वस्त्र से लपेट देना चाहिये। रोगी को मलबन्ध हो, तो एरण्ड, तैल या लिक्विड पैराफीन देनी चाहिये। इसकी मात्रा १ से ४ ड्राम है। इस रोग में एनिमा देना भी उत्तम है। प्रयत्न यह करना चाहिये कि आँतें साफ रहें। परन्तु कुछ चिकित्सक मलबन्ध को पसन्द करते हैं, इसलिये वह इस लक्षण को हटाने का यत्न भी नहीं करते।

इस रोग में क्लोरीन मिक्सचर का उपयोग करना चाहिये। इसको बनाने के लिये ३० ग्रेन पोटासियम क्लोरेट को एक बारह औन्स की नीली,

स्टोपर्ट बोतल में डालकर ऊपर से इसमें ४ ड्राम लेज हाइड्रोक्लोरिक एसिड मिला देना चाहिये। बोतल को गरम पानी में रखना चाहिये, जिससे क्लोरिन गैस बन जाय। फिर ३० ग्रेन क्युनोन सल्फेट को १२ औन्स पानी में मिलाकर थोड़ा-थोड़ा करके बोतल में डालते जाना चाहिये। और हिलाते जाना चाहिये। इसको अन्धेरे में रखना चाहिये। यह दवाई प्रत्येक ३ या ४ घन्टे के अन्तर से देनी चाहिये। इससे आंतें साफ हो जाती हैं और रोगी के अन्दर का संक्रमण भी नष्ट हो जाता है।

जीर्ण ज्वर

नूतन ज्वर में मिथ्या आहार-विहार, स्त्री-सेवा करने से या उचित उपाय न करने से यह ज्वर शरीर के अन्दर रह जाता है। इसमें रोगी को अनुभव होता है कि उसके अन्दर ज्वर है। शरीर की त्वचा गरम होती है और अन्दर सरदी रहती है; अथवा बाहर सरदी रहती है और अन्दर गरमी रहती है। यह ज्वर प्रायः यक्ष्मा-रोग के पूर्वरूप में मिलता है। रोगी के हाथ और पाँव से अङ्गारे या आग की चिनगारियाँ निकलती प्रतीत होती हैं। ज्वर का वेग मन्द रहता है, ताप १०० या ९९ हो रहता है, परन्तु नाड़ी संख्या में अधिक बढ़ जाती है।

उपाय—१—नीम के पत्ते, हल्दी का पत्ता, कालमेघ इनका रस मधु के साथ देना चाहिये। २—गिलोय, शेफालिका, पित्तपापड़ा, आर्द्रक इनका रस मधु के साथ देना चाहिये। ३—पिप्पली, परवल, चिरायता, नाटाकरंज, लाल चन्दन, बड़ी हरड़, सहजन की छाल, गोखरू प्रत्येक ४ आना भर, जल आध सेर, शेष आध पाव, इस पाचन को देना चाहिये। ४—इस रोग में गिलोय का रस मधु के साथ या पिप्पली के साथ अथवा बृहत्पंचमूल के काढ़े के साथ पिप्पली का चूर्ण देना चाहिये। ५—कटेरी, गिलोय और सोंठ इनके काढ़े में दो माशा पिप्पली-चूर्ण मिलाकर पान करना चाहिये। ६—शेफालिका के पत्तों के रस में मधु मिलाकर देना चाहिये। रोगी का शरीर यदि ऊपर से ठण्डा हो, तो अगर्वादि तैल ऊपर मलना चाहिये। यदि त्वचा गरम हो, तो

चन्दनादि तैल मलना चाहिये। इसी प्रकार किरातादि तैल या लाक्षादि तैल को भी मलना उत्तम है।

शास्त्रीय औषधि—चन्दनादि लौह, नवायस लौह, सर्वतोभद्र-रस, बसन्त-मालती-रस, पुटपाक-विषम ज्वरान्तक लौह, अमृतारिष्ट, किरातादि तैल, घृत-पान विशेष उत्तम है।

पथ्यापथ्य—पथ्य—लंघन, वमन, पसीना लाना, यवोदक, पाचन, शोधक औषधियाँ पथ्य हैं।

अपथ्य—दिन में सोना, स्नान, तैल मलना, मैथुन, चलना, क्रोध, सीधी वायु का झोंका, व्यायाम ये अपथ्य हैं।

प्लेग (महामारी)

यह एक भयानक रोग है। जिस समय फैलता है, उस समय भयानक और व्यापकरूप में फैलता है।

लक्षण—रोगी की शक्ति गिर जाती है, कँपकँपी होती है, वमन होता है, जिसमें काले रंग का स्राव होता है, आँखें भारी और लाल अंगारे की भाँति होती हैं। रोगी को ज्वर बहुत ऊँचा होता है, कक्षा या वंक्षण में चुभनेवाला दर्द होता है। यहाँ पर ग्रन्थि बढ़कर एक पिंडिका बन जाती है। इसके अतिरिक्त शरीर पर धब्बे निकलते हैं। इन धब्बों में पानी भर जाता है। अच्छे होनेवाले रोगियों में पसीना बहुत आता है; परन्तु बुरे रोगियों में अतिसार, नाक या आँतों से रक्तस्राव और प्रलाप होता है। रोगी को बहुत बेचैनी रहती है, मांस-पेशियों में ऐंठन होती है। बुरे रोगियों में समय २ से ३ दिन होता है और रोगियों में २ से ३ सप्ताह होता है। संक्रमण होने के कुछ ही घन्टों पीछे रोग बढ़ जाता है। इस रोग का कारण एक कृमि है, जो वायु-मण्डल, मक्खियों, कपड़ों तथा रोगी के सम्बन्ध में आये हुये वस्तुओं के स्पर्श से यह रोग होता है अथवा चूहों के या अन्य प्राणियों के मरने से यह रोग फैलता है। जिन अवस्थाओं में प्लेग उत्पन्न होता है, वे अवस्थायें निम्न हैं—गरमी, नमी, पानी या समुद्र के किनारे बस्ती का होना, निचली और पोली जमीन, भीड़वाले और बुरे वायु-मण्डलवाले मकानों में रहना,

प्राणियों एवं बनस्पतियों का सड़ना, अपूर्ण या दूषित भोजन का मिलना है।

इस रोग के कई भेद हैं—

१. ब्युबोनिक प्लेग — इस प्लेग में कच्छा, वंक्षण, गले में ग्रन्थि निकल आती है या ग्रन्थि लिम्फैटिक ग्लैण्ड (लसीका ग्रन्थि) के सूजने से हो जाती है।

२. न्यूमोनिक प्लेग — इस रोग में फेफड़ों के अन्दर शोथ उत्पन्न हो जाती है।

३. सेरीबुल प्लेग—इस रोग में तन्द्रा विशेष होती है। इसके अन्दर मस्तिष्क के अन्दर सूजन हो जाती है।

४. सेप्टीसीमीक प्लेग—इसमें रक्त के अन्दर विष उत्पन्न हो जाता है। ज्वर अधिक होता है।

५. गेस्टोइन्टेसटाईनल प्लेग—इस रोग में वमन, विरेचन अधिक होता है।

इस रोग का संक्रामण मक्खी के काटने से होता है। मक्खी के काटने से त्वचा पर खाज होती है। रोगी उस स्थान को नाखूनों से खुजलाता है, इससे विष रक्त में पहुँच जाता है। ये मक्खियाँ प्रायः चूहों पर आश्रय लेती हैं। जिस समय चूहा मरता है, उस समय मक्खी उड़ती है। यह मक्खी साधारणतः तीन-चार फीट से ऊँची नहीं उड़ सकती। इसलिये यह प्रायः हाथ या टाँगों पर काटती है। इनके काटने से जो ग्रन्थि पास में होती है, वही अधिक सूजेगी। जैसे हाथ में मच्छर काटने से कच्छा की ग्रन्थि सूजेगी। इसके अतिरिक्त जो स्थान नंगे रहते हैं, उनपर ही मच्छर प्रायः काटता है। इसलिये इस रोग के समय हाथों को दस्ताने से ढक कर रखना चाहिये, और पाँव में जुराबें पहनना चाहिये। सोते समय हाथ-पाँव पर तैल मलना चाहिये।

प्लेग से बचने का उपाय—जिस समय चूहे मरने लगें, उस समय उस स्थान को छोड़ देना चाहिये और स्थान-स्थान पर चूना बिछा देना चाहिये। यदि सम्भव हो, तो कार्बोलिक के लोशन से धोना चाहिये। रोग से बचने के लिये ऐन्टीप्लेग वैक्सीन का इन्जैक्शन लगवाना

चाहिये। इसके लगवाने से रोगी के अन्दर कृत्रिम प्रतिशक्ति आजाती है। जिस प्रकार चेचक के टीके के लगाने से चेचक के लिये प्रतिशक्ति आजाती है।

उपाय—इस रोग का कोई निश्चित उपाय नहीं है। इस रोग में रोगी को विशेषरूप से उत्तेजित रखना चाहिये। रोगी को रुग्ण वायुमण्डल से अलग निकालकर स्वच्छ वायुमण्डल में ले जाना चाहिये। कार्बोलिक लोशन में रुई भिगोकर रोगी को सूँघने के लिये देना चाहिये। रोगी को धूप में, खुली वायु में रखना चाहिये। धूप न सही जाय, तो उसको रोगी से बचाना चाहिये, परन्तु प्रकाश में कमी नहीं आने देना चाहिये। रोगी के पास भीड़ नहीं आने देना चाहिये। रोगी के मल-मूत्र को जन्तु-नाशक वस्तुओं से धो देना चाहिये।

रोगी को अभयादि क्वाथ, द्वात्रिंशग क्वाथ, द्राक्षासव, त्रिफला क्वाथ देना चाहिये। इस रोग के लिये सबसे उत्तम उपाय निम्नलिखित है—

रोगी को चण्डेश्वर रस और कस्तूरी भैरव को मकरध्वज के साथ बदल-बदलकर प्रत्येक ३ घण्टे के अन्तर से देना चाहिये। रोगी को द्राक्षासव या अंगूर की शराब अथवा ब्रांडी की मात्रा को थोड़ा पानी के साथ बराबर देते रहना चाहिये। इस रोग में डा० डी० गोपलाचालू के आरोग्याश्रम का बना हुआ 'हेमाद्रि पानकम्' इस रोग की खास एवं अनुभूत दवा है। इसे विशेषरूप में बरतना चाहिये।

अनार्य-उपाय—इस रोग के लिये 'साईलीन' को १ से २ बूँद मात्रा में देना चाहिये। इसके अतिरिक्त। एसिड कार्बोलिक को १ से २ बूँद मात्रा में विशेषतः देना चाहिये। ज्वर के समय सिर पर बर्फ की बोतल या पट्टी रखना चाहिये। टिंचर आयोडीन रैक्टीफाइड स्प्रिट में लगाकर रोगी को २-३ बूँद करके देते रहना चाहिये। ये सब वस्तुयें विष-नाशक हैं। इसके अतिरिक्त हृदय को उत्तेजित रखना चाहिये। इसके अतिरिक्त एडर नैलाना आदि का इंजैक्शन किया जाता है।

गाँठ का उपाय—(१) इस ग्रन्थि को यथाशक्ति बढ़ाने का यत्न करना चाहिये। ग्रन्थि जितनी ही अधिक बढ़ेगी, उतना ही अधिक लाभ होगा। इसको बढ़ाने के लिये प्रथम इसे छेड़ना नहीं चाहिये। पीछे से जोंक लगवा

देना चाहिये। जोंक के लगवाने से रक्त का दबाव कम हो जाता है। ग्रन्थि को पकाने के लिये जमालगोटा, चीतामूल की छाल, आक का दूध, चूना, गुड़, भिलावे का फल शोधन किया हुआ—इनका लेप ग्रन्थि को फोड़ देता है। (२) चूना, शहद और मुर्गी के अण्डे का लेप करना चाहिये। (३) गण्ठे को गरम करके, इसमें हींग भरकर, गाँठ के ऊपर रखनी चाहिये। (४) पोस्त के डोडों का सेंक करना चाहिये। (५) घी के सौ बार मजीठ के कषाय में धोकर लगाना चाहिये। इसमे ठंडक बढ़ती है। (६) अलसी, राई, नमक—इनकी पुल्टिस बाँधनी चाहिये।

यूनानी उपाय—दिल को सर्दी एवं पुष्टिकारक उपायों से बल पहुँचाना चाहिये। इसके लिये शर्बत अनार, शर्बत सेब, शर्बत बिही, खट्टे नीबू का शर्बत, नारंगी का शर्बत देना चाहिये। कपूर और चन्दन छाती पर लेप करे। बनफ्सा, नीलोफर, चन्दन, कपूर इनको गुलाब में पीसकर लेप करना चाहिये। ग्रन्थि पर पछने लगाकर सींगी लगवानी चाहिये। रसौत, गिले अरमानी, मामीसा आदि वस्तुओं का लेप करना चाहिये। खाने के लिये गौ का दूध और चावल देना चाहिये। शहद और सफेद बूरा मिलाकर सूजन पर रखना चाहिये।

चेचक

यह एक संक्रामक रोग है। इसके अन्दर छाले निकलते हैं। इसका आक्रमण एक बार होकर फिर नहीं होता। जबतक छालों में पीव नहीं भर जाती, त्वचा पर से छिलके पूर्णरूप से नहीं उतर जाते, तबतक यह रोग विशेषत: फैलता है। इस ज्वर का प्रथम लक्षण उपस्थित होने पर उसके पीछे दस सप्ताह तक भी इससे संक्रमण फैल सकता है। संक्रमण वायु-मण्डल के अतिरिक्त कपड़ों से, बिस्तर से भी फैल सकता है। संक्रमण लागू होने से लेकर रोगोत्पत्ति होने का समय १२ दिन होता है। इस रोग का प्रथम लक्षण कँपकपी लगाना होता है। इसके पीछे गरमी और फिर सरदी, फिर गरमी इस प्रकार से होता रहता है। रोगी को तन्द्रा, बेचैनी, जी मच-लाना, वमन, शिर-दर्द, पीठ कमर में दर्द तथा प्राय: गले में शोथ रहता है। फिर ज्वर हो जाता है, नाड़ी तेज हो जाती है, त्वचा गरम हो जाती है, ज्वर

१०४-१०५ अंश फार्नहाइट तक बढ़ जाता है। यदि इस बीच में मस्तक पर हाथ फेरें, तो थोड़ी-सी गाँठ दिखाई देती है। ये गाँठें फुन्सी उत्पन्न होने से पूर्व दिखाई पड़ जाती हैं। दो या तीन दिन के पीछे लाल रंग के दाने चेहरे और मुख पर उत्पन्न हो जाते हैं। इनके निकलने पर ज्वर थोड़ा घट जाता है, अर्थात् १०१ से १०२ अंश तक हो जाता है। जितने अधिक दिनों में दाने निकलेंगे, उतना हो रोग कम भयानक होगा। तीसरे चौथे दिन ये दाने सारे शरीर पर फैल जाते हैं, पाँचवें दिन ये दाने छाले का रूप धारण कर लेते हैं, अर्थात् इनमें पानी भर जाता है। इनका आधार गोल हो जाता है और केन्द्र में से दब जाते हैं, एवं किनारा सूजा हुआ होता है। छालों का बीच से दबा होना ही इस रोग का मुख्य चिन्ह है। यही चिन्ह इस रोग का चिकेनपॉक्स से भेद कराता है। अगले तीन दिनों में इन छालों के अन्दर का पानी पीव का रूप धारण कर लेता है और आगे अधिक स्पष्ट हो जाते हैं। जिस समय छालों में पीव भर जाती है, उस समय रोगी के शरीर से एक विशेष प्रकार की गन्ध आती है। यदि रोगी तीव्र हो, तो चेहरा सूज जाता है। इस सूजन के कारण आँखें बन्द रहती हैं। १० वें दिन ये छाले सूखने लगते हैं। प्रथम चेहरे के पीछे से हाथ और पाँव के छाले सूखते हैं। चौदहवें दिन ये छाले सूखकर छिलकों का रूप धारण कर लेते हैं। २० वें या २१ वें दिन ये छिलके गिरने लगते हैं। इनके गिरने पर त्वचा लाल भूरी-सी रह जाती है। छालों के भरने पर त्वचा में 'गड्ढे' रह जाते हैं। जिस समय दाने अपनी पूर्ण अवस्था पर पहुँच जाते हैं, उस समय एक बार फिर ज्वर बढ़ता है। इस बार फिर १०४-१०५ अंश फार्नहाइट तक पहुँच जाता है। इस ज्वर को द्वितीय ज्वर कहते हैं। यह ज्वर प्रायः बारहवें दिन होता है और बुरे रोगियों में यही समय सबसे अधिक खतरनाक होता है। सारी अवस्था में जिह्वा मैली रहती है, कभी-कभी सूज भी जाती है। युवाओं में सारी अवस्था के अन्दर प्रायः कब्ज़ रहती है। बच्चों में रोग की समाप्ति के दिनों में अतिसार हो जाता है।

बुरे रोगियों में छाले मोटे, बड़े या आपस में जुड़े हुये होते हैं। इस अवस्था में ज्वर बहुत तेज़ होता है, रोगी को प्रलाप रहता है, रोगी बेभान अवस्था में मर जाता है। तेज अवस्था में दाने, नाक, जिह्वा और आँख एवं

मुख, गले में भी उत्पन्न हो जाते हैं। मुख से बहुत अधिक लार गिरती है और हाथ-पाँव सूज जाते हैं। बच्चों में यदि इस रोग के समय दाँत भी निकल रहे हों, तो उनमें आक्षेप बहुत होते हैं।

चेचक के पीछे कुछ नियत चिन्ह बाकी रह जाते हैं। यथा—फुन्सियों के चिन्ह, आँख के रोग, कान के रोग, सन्धियों के समीप पीव का एकत्रित हो जाना, रोगी निर्बल रह जाता है।

चिकित्सा—रोगी को यथासम्भव सबसे पृथक् रखना चाहिये। हो सके, तो उसे अलग मकान में बदल देना चाहिये। रोगी में पर्याप्त वायु आने देना चाहिये; परन्तु कमरे को बहुत ठण्डा नहीं होने देना चाहिये। रोग के समय में और पीछे स्वच्छीकरण के सब नियम पालन करने चाहिये। चेचक के जर्म्स कपड़ों में, दीवारों में, कागजों पर बहुत देर तक जीवित रहते हैं। इसलिये स्वच्छता का पूर्ण ध्यान रखना चाहिये। परिचारकों को चाहिये कि वे रोगी के श्वास से बचे रहें। रोगी को एकाध टट्टी रोज करवा देनी चाहिये। इसके लिये साइट्रो मैगनेशिया या सिड्लिटिज पाउडर देना चाहिये। टाँगों और हाथों पर प्रतिदिन ताजे पानी से स्पंज करना चाहिये। आँखों को प्रतिदिन गरम दूध और पानी से धोना चाहिये। यदि आँखें रुग्ण हों, तो फिटकिरी के गरम लोशन से धोकर किनारों पर वैसलीन लगा देना चाहिये। घी का लगाना अच्छा नहीं; क्योंकि इससे मक्खियाँ रोगी के ऊपर आती हैं। भोजन दूध, साफ जौ का पानी और कांजी देना चाहिये। ११ वें या बारहवें दिन जब द्वितीय ज्वर के कारण रोगी की शक्ति घटी हुई प्रतीत हो और नाड़ी निर्बल हो, तो अमोनिया या ब्रांडी देना चाहिये। जिस समय पीव बन जाय, उस समय रोगी को सूखे हुये उपले की राख पर लेटा देना चाहिये। इससे पीव सूख जायगी। जिस समय छाले सूखने लगें, उस समय रोगी के कपड़े बार-बार बदलने चाहियें और रोगी निर्बल न हो, तो प्रतिदिन स्नान करवाना चाहियें। कमजोरी की अवस्था में क्युनीन का देना उत्तम है।

चेचक के निशानों से रोगी को बचाने के लिये बहुत यत्न किया गया है। रोगी की त्वचा को जितना भी अधिक हो, उतना साफ रखना चाहिये। बहुत ही धीरे से सब स्राव को धो देना चाहिये। पीछे से आटा या निशास्ता

सारे शरीर पर, चेहरे पर छिड़क देना चाहिये। इससे खाज कम हो जायगी। जैतून का तेल, कोल्ड क्रीम, हैज़ेलीन आदि शरीर पर मलना चाहिये। १ भाग कार्बोलिक एसिड और १० भाग तेल मिलाकर आधे शरीर पर प्रतिदिन मलना चाहिये। कार्बोलिक एसिड से सब प्रकार की बदबू कम हो जाती है। जब छाले फट जायँ, तो जिंक ऑक्साईड को निशास्ता एवं टॉनिक एसिड में मिलाकर छिड़कना चाहिये। रोगी को खुजलाने से बचाना चाहिये। यदि रोगी बच्चा हो, तो उसके हाथों को बाँध देना चाहिये; क्योंकि खुजलाने से निशान बढ़ जाते हैं।

चेचक का टीका—टीका करवाने से मनुष्य के अन्दर एक प्रकार की कृत्रिम शक्ति आजाती है। इससे किसी प्रकार की हानि नहीं होती। इसके करवाने से रोग नहीं होता; यदि होता भी है, तो तीव्र रूप में नहीं होता। टीका यथासम्भव बचपन में लगवाना चाहिये। और दूसरी बार १७ वर्ष की आयु में लगवाना चाहिये। स्वस्थ शिशुओं में टीका जन्म के तीसरे महीने में करवा देना चाहिये। अथवा दाँत निकलने से पहले अथवा यदि रोग फैला हो, तो और भी जल्दी करवा देना चाहिये। यदि बच्चे को आँतों का या त्वचा का कोई विकार हो, या बच्चा निर्बल हो, तो जबतक उसके दाँत न निकले, तबतक टीका नहीं लगवाना चाहिये। टीके के लिये सबसे उत्तम समय शीत ऋतु है।

टीके के दूसरे दिन पछनों के स्थान पर छोटी-छोटी फुन्सियां निकल आती हैं। पाँचवें दिन गोल मोती के समान दाने बन जाते हैं, जिसमें लसीका भरी होती है। ८ वें दिन ये दाने पूर्णरूप में बढ़ जाते हैं और इनका केन्द्र भाग बीच में दब जाता है। इसके साथ-साथ थोड़ा-थोड़ा ज्वर भी हो जाता है, अथवा भुजा सूज जाती है और कभी-कभी कक्षा की ग्रन्थियाँ भी सूज जाती हैं। ११ वें दिन ये छाले फट जाते हैं, एक छिलका रह जाता है। २० वें दिन ये छिलके भी गिर जाते हैं और इनके स्थान पर एक स्थिर चिन्ह बचा रहता है। यदि इन पछने के कारण फुन्सियों के चारों ओर लाल चक्कर न बने, तो समझना चाहिये कि टीके में कमी रही। इस प्रकार का टीका सफल नहीं हो सकता।

टीके के समय इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि बच्चा इन

फुंसियों को रगड़ या छील न दे। यदि वह ऐसा कर देगा, तो बहुत सूजन हो जायगी। इस अवस्था में पुल्टिस बाँधनी चाहिये, जबतक सूजन साफ और स्वस्थ न हो जाय। इसके पीछे सादा प्रलेप लगाना चाहिये।

आर्य-औषधि—(१) मसूरिका रोग में सबसे प्रथम परवल और नीम के काढ़े में वच, मुलहट्टी, इन्द्रजौ और मैनफल मिलाकर वमन करवाना चाहिये। रोगी के शरीर पर चन्दन को घिसकर उसमें हुरहुर का रस मिलाकर अथवा केवल हालों का रस मधु के साथ या ब्राह्मी रस मधु के साथ पिलाना चाहिये। यदि रोगी बलवान हो, तो विरेचन देना चाहिये और निर्बल हो, तो शामक औषधि देनी चाहिये। इस प्रकार से दोषों का शोधन होने पर मसूरिका का ज्वर कम हो जाता है। बासी पानी में शहद मिलाकर पीने से दाह शान्त होती है। (२) दुरालभा या अनन्तमूल को तण्डुल-जल के साथ पीसकर पीने से बसन्त रोग शान्त होता है। (३) मसूरिका के दानों को पकने के समय गिलोय, मुलहठी, किशमिश, गन्ने की जड़, अनार की छाल इनके काढ़े में गुड़ मिलाकर पीना चाहिये। इससे मसूरिका शीघ्र पक जाती है, वायु कुपित नहीं होती। (४) परवल मूल और गन्ने के स्वरस को पीना चाहिये। (५) नीम, पित्तपापड़ा, पाठा, परोलपत्र, चन्दन, लालचन्दन, नेत्रवाला, कुटकी, आमलकी, वासा, दुरालभा इनके क्वाथ में शर्करा मिलाकर पीना चाहिये। (६) द्राक्षा, गम्भारी, खजूर, परोल, नीम-छाल, वासा, लाजा, आमलकी, धमासा इनका क्वाथ चीनी मिलाकर पिलाना चाहिये। (७) शिरीस, गूलर, पीपल, वट, इनकी छाल का चूर्ण घी में मिलाकर लेप करना चाहिये। (८) बिजौरे के केशर को काँजी में पीसकर लेप करने से दाह शान्त होती है। (९) पीव पर तण्डुलोदक से सेंक करना चाहिये। (१०) बेर के चूर्ण को गुड़ के साथ खाने से मसूरिका शीघ्र पकती है। (११) बेरी के कोमल पत्तों को पीसकर पानी में डालकर मथना चाहिये। इससे जो झाग उत्पन्न हो, उससे रोगी के शरीर पर लेप करना चाहिये। इसी प्रकार नीम के पत्तों की झाग से भी लेप करना चाहिये। (१२) यदि पीव बहुत निकलती हो, तो पंचवल्कल चूर्ण या कपड़े में छने हुये गोमय-भस्म (गोबर की राख) को रोगी के शरीर पर छिड़कना चाहिये। (१३) राल, देवदारु, लोहबान, चन्दन, अगर, गुग्गुल इनका धुवाँ रोगी के पास अवश्य करना चाहिये। इससे वायु

शुद्ध रहती है। (१४) कण्ठ-शुद्धि के लिये पिप्पली, हरड़ का चूर्ण मधु के साथ खाना चाहिये। (१५) चन्दन, वासा, गिलोय, मोथा, द्राक्षा इनका शीत कषाय पिलाना चाहिये। (१६) मोती और स्वर्ण-भस्म को लौंग के चूर्ण एवं ब्राह्मी स्वरस के साथ पोना चाहिये। खाने के लिये बाजरा देना चाहिये; (१७) बबूल के छोटे पेड़ की जड़ को चूमना चाहिये। (१८) गले में शोथ बहुत हो, तो आँवला और महुये के काढ़े में शहद मिलाकर गलाले करवाना चाहिये। (१९) आँखें खिँच गई हों, तो महुए और त्रिफले के काढ़े से आँखों को धोना चाहिये। (२०) आँख में व्रण पड़ा हो, तो एरण्ड के तैल की बूँद गेरनी चाहिये। (२१) कचनार की छाल का काढ़ा अकेला या मैनफल के साथ पिलाने से दाने शीघ्र निकल आते हैं।

यूनानी उपाय— (१) मोती अनविधे इसकी भस्म या गुलाबजल में बनी हुई पिष्ठि को देना चाहिये। (२) उन्नाब को पिलूड़ी और गावजबाँ के अर्क में पीसकर शर्करा मिलाकर खूबकला का काथ देना चाहिये। (३) बाँस की जड़, बाकला का चून, खरबूजे के बीजों की मींग, चावल, मिश्री, बादाम की मींगी जौ का चून सब समान भाग लेकर मुर्गी के अण्डे की सफेदी में मिलाकर लगाने से फफोले के चिन्ह मिटते हैं। (४) जली हुई बकरी की पुरानी मेंगनियाँ, तथा ठीकरा। खरबूजे के बोज, निशास्ता, धोये हुये चावल, चना का चून, प्रत्येक ३५ माशे, बकायन के बीज, कूठ, जरावन्द प्रत्येक १७॥ माशे, बाँस की जड़ ७० माशे इनको कूट-छानकर बाकले के पानी में या जौ के पानी में मिलाकर रात्रि के समय लेप करना चाहिये। इससे मुख के चिन्ह मिट जाते हैं।

खसरा

यह एक संक्रामक रोग है, इसमें ज्वर होता है और एक बार होकर फिर दूसरी बार उसी व्यक्ति को यह रोग नहीं होता। संक्रमण होने के ८वें से १४वें दिन के अन्दर इस रोग के लक्षण उत्पन्न होते हैं। इस रोग का प्रारम्भ सर्दी से, ज्वर से होता है, सिर में ठण्डक प्रतीत होता है। आँखें लाल, सूजी हुई होती हैं, आँखों से पानी झरता है। गले में सूजन हो जाती

है। ठाढ़ी के नीचे की ग्रन्थियाँ सूज जाती हैं। रोगी को छींकें आती हैं, नाक से पानी झरता है, खाँसी और अँगों में दर्द रहती है। जिह्वा श्वेत एवं किनारों पर लाल होती है। तीसरे दिन की समाप्ति में या चौथे दिन के प्रातःकाल मस्तक और चेहरे पर, फिर कोष्ठ, छाती और अन्त में हाथ और पाँव पर छोटे, गोल लाल रंग के दाने होते हैं। ये त्वचा के पृष्ठ से बहुत उठे हुये नहीं होते। ये आगे बैठते हैं और अर्धचन्द्राकार हो जाते हैं। इन दानों का रंग गाढ़ा लाल ईंट की भाँति होता है। इन दानों पर दबाव देने से दाने दब जाते हैं, परन्तु दबाव के हटा लेने पर फिर उठ आते हैं। ज्वर और खाँसी जारी रहती है। परन्तु खाँसी ढीली पड़ जाती है। चार या पाँच दिन पीछे सब दाने सूखने लगते हैं, प्रथम चेहरे के सूखते हैं, फिर अंगों के सूखते हैं। दो दिन के पीछे सब दाने सूख जाते हैं, त्वचा पर बहुत खुजली रहती है। यह खुजली दो समय बहुत होती है, १—जब दाने अपनी पूर्ण प्रौढ़ावस्था पर पहूँचे होते हैं और २—जब ये घटने लगते हैं। इस ज्वर में चेचक की भाँति दाने निकलने पर ज्वर स्थायी रूप में नहीं घटता, अपितु दाने के सूखने तक बना रहता है और सूखने पर घटने लगता है। यह घटाव धीरे-धीरे होता है और उतरकर फिर चढ़ता नहीं। यदि ज्वर १०३ अंश फार्नहाइट तक पहुँच जाय, तो अवस्था को भयानक समझना चाहिये। निर्बलता का अधिक होना, जिह्वा का खुरक एवं भूरा होने पर, जामुनी रंग के दानों का होना भय की अवस्था को बताता है।

खसरे के साथ केवल खाँसी ही नहीं होती, बल्कि निमोनिया भी हो जाता है। कई बार अस्थि-शोथ या कान का रोग हो जाता है। कई अवस्थाओं में खाँसी बहुत दिनों तक बनी रहती है, जिससे छाती निर्बल हो जाती है।

खसरा—इस रोग का प्रारम्भ सर्दी या प्रतिश्याय से होता है, मुँह के अन्दर एक विशेष प्रकार का जामुन के रंग का चिन्ह हो जाता है। दानों का रंग गाढ़ा लाल होता है। ये दाने त्वचा के पृष्ठ से अधिक ऊँचे नहीं उठते।

चेचक—इस रोग में सर्दी या प्रतिश्याय का कोई लक्षण नहीं होता। इस रोग में प्रायः वमन एवं कटि-प्रदेश पर दर्द होता है, जो दाने निकलने से पहले आरम्भ हो जाता है।

चिकित्सा—रोगी को बिस्तर पर लेटाकर रखना चाहिये। इससे ताप-परिमाण बढ़ता नहीं। रोगी को हवा से बचाना चाहिये। इससे श्वास-प्रणाली को कास एवं निमोनिया से बचा सकते हैं। रोगी को सब प्रकार से स्वच्छ रखना चाहिये। रोग का प्रारम्भ होने पर गरम पानी में स्नान कराना चाहिये और त्वचा को खुश्क करके रोगी को बिस्तर पर लेटा देना चाहिये। यदि परिचर्या में सावधानी बरती जाय, तो डरने की कोई बात नहीं। गरम स्नान से दाने शीघ्र बाहर निकल जायँगे। रोगी को ठण्ड से बचाना चाहिये। कमरे में शुद्ध वायु पर्याप्त मात्रा में आने देना चाहिये। कमरे में अन्धकार रखना चाहिये, जिससे आँखों पर चौंध न लगे। त्वचा की रूक्षता या खाज को मिटाने के लिये क्रमशः एक-एक अंग को ताजे पानी से स्पंज करना चाहिये। हाथ और पाँव पर वैसलीन मलनी चाहिये। रोगी को बहुत प्यास लगती है, इसके लिये ताजा पानी, पानी और दूध, लैमोनेट या नीबू की सिकंजबीन अथवा इमली का पानी देना चाहिये। यदि मलबद्ध हो, तो कैस्टर ऑयल या सनाय का चूर्ण (पंचसनार चूर्ण) देना चाहिये। यदि एक बार इससे लाभ हो जाय, तो बार-बार विरेचन नहीं देना चाहिये। यदि रोगी को ज्वर हो, तो साइट्रेट ऑफ मैगनेशिया देना चाहिये। कास के लिये यूक्लिप्टस ऑयल, टिंचर बैंजीयन कम्पाउण्ड का अथवा १ भाग सिरका और ३ भाग गरम पानी—इनका भपारा लेना चाहिये। यदि रोगी का श्वास तेज चलता हो, तो छाती पर राई का प्लास्टर अथवा अलसी का पुल्टिस बाँधनी चाहिये। यदि दानों के छिप जाने के पीछे भी कास रहे, तो उसकी चिकित्सा करनी चाहिये। यदि दाने सहसा निकल जायँ, तो रोगी अधिक गिर जाता है। इसके लिये गरम पानी में स्नान कराना चाहिये।

रोग को फैलने से रोकने का एक यही उपाय है कि रुग्ण व्यक्ति को पृथक कर दिया जाय।

चिकेन पॉक्स (छोटी माता)

यह एक संक्रामक रोग है । प्रायः बच्चों में होता है । इस रोग में दाने निकलते हैं, परन्तु बहुत निर्बल अवस्था में । इस रोग का संक्रमित होने का समय १० से १६ दिन है । संक्रमण होने पर २४ घण्टे के अन्दर थोड़ा-सा ज्वर हो जाता है । इसके साथ सर्दी, लाल दाने निकलते हैं। ये दाने प्रथम पीठ पर, फिर मुख पर और पीछे से और अंगों पर निकल आते हैं । दाने निकलने के साथ रोगी को खाज होती है । कई बार दाने एक ही बार निकलते हैं और कई बार दो-दो, तीन-तीन बार निकलते हैं। दाने निकलने के साथ ज्वर भी बढ़ता जाता है । दानों के छिपने के पीछे ज्वर भी घट जाता है । इन दानों में तीसरे दिन एक प्रकार का स्वच्छ द्रव आजाता है । चौथे दिन छाले फट जाते हैं और पाँचवें या छठे दिन पतले छिलके गिर पड़ते हैं । इनके गिरने के पीछे त्वचा पर किसी प्रकार का कोई चिन्ह नहीं बचता । ये छाले किसी भी समय देखे जा सकते हैं। इनमें कभी भी चेचक की भाँति केन्द्र में गड्ढा नहीं पड़ता । बुरे रोगियों में इन छालों के अन्दर पीव भर जाती है । अच्छे होनेवाले रोगियों में ज्वर बहुत नहीं चढ़ता ।

इस रोग में रोगी को मृदु विरेचन देना चाहिये और उसको आराम से रखना चाहिये । इस रोग में ३ सप्ताह के किसी प्रकार का भय नहीं रहता ।

विसर्प

यह एक त्वचा का संक्रामक रोग है, इसमें त्वचा तथा इसके निचले तन्तुवों में एक प्रकार की सूजन हो जाती है । इस शोथ का कारण एक कृमि है । यह रोग प्रायः उन व्यक्तियों में होता है, जिनका शरीर निर्बल होता है । यह निर्बलता मद्य के कारण, दूषित भोजन के कारण, स्वच्छता के अभाव से, अशुद्ध वायु से, अथवा अन्य किसी भी कारण से हो सकती है । यह रोग प्रायः मुख पर होता है । इसमें चेहरा चमकदार लाल हो जाता है, इसमें सूजन आजाती है, है । यह रक्तिमा दबाने से कुछ सेकंडों के लिये

नष्ट हो जाती है। कई बार यह सूजन इतनी अधिक होती है कि नाक, आँख, गाल एक हो जाते हैं। रक्तिमा प्रारम्भ होने से पूर्व रोगी को सरदी, कँपकँपी, शिर-दर्द, बेचैनी, होती है। इसके पीछे वमन होकर ज्वर चढ़ जाता है। रोगी को प्रायः मलबन्ध रहता है। रक्तिमा का किनारा थोड़ा-बहुत अवश्य स्पष्ट होता है। इसमें बहुत जलन होती है, और कभी-कभी छोटे-छोटे छाले भी उत्पन्न हो जाते हैं। इस रोग के साधारण रूप में बीमारी का समय १० से १४ दिन है। चार दिन तक सूजन बढ़ती है। इसके पीछे यह घटने लगती है। घटते समय छाले बनते हैं, त्वचा पर झुर्रियाँ पड़ जाती हैं और त्वचा पीली, नर्म हो जाती है।

तीव्र रोगों में ज्वर का ताप-परिमाण १०२ अंश से १०४ अंश तक पहुँच जाता है। कभी-कभी प्रलाप भी हो जाता है। त्वचा के निचले तन्तु भी आक्रान्त हो जाते हैं। इनके अन्दर चुभनेवाला तीव्र दर्द होता है। कभी-कभी पीव बनकर विद्रधि या नाड़ी-व्रण का रूप धारण कर लेती है। यदि शोथ मस्तिष्क की तरफ़ चली जाय, तो भयानक सिद्ध होती है।

यह रोग प्रायः घाव पर, अथवा जिस स्थान पर शल्य-कर्म किया गया है, वहाँ पर, अथवा जहाँ पर पछना किया गया है, उस भुजा में यह रोग प्रायः करके होता है। इसके होने पर त्वचा लाल हो जाती है और सूज जाती है। जब यह रोग व्रण पर आक्रमण करता है, तो स्राव बन्द हो जाता है और जब व्रण भर जाता है, तो फिर से खुल जाता है। बच्चे की नाभि से प्रायः संक्रमण उनके शरीर में फैल जाता है।

चिकित्सा—रुग्ण स्थान पर ठण्डे पानी में कपड़ा भिगोकर रख देना चाहिये। ऊपर से रेशम का कपड़ा ढक देना चाहिये। लाल स्थान पर दिन में दो बार लाइकर कैराई परक्लोराईड लगाना चाहिये। यदि इसको या १० ग्रेन सिल्वर नाइट्रेड को १ औन्स पानी में मिलाकर रुग्ण स्थान से दो इञ्च अधिक लगा दिया जाय, तो बीमारी आगे नहीं बढ़ती। रोगी को सोडा सल्फेट या कैस्टर आॅयल पहले देना चाहिये। रोगी की शक्ति को उत्तम भोजनों से स्थिर रखना चाहिये। एन्टीपाइरीन ५ ग्रेन और १५ बूँद टिञ्चर ऑफ आयर्न, इनको १ औन्स पानी में मिलाकर प्रत्येक ४ घन्टे के अन्तर से देना चाहिये, जबतक साधारण न हो जाय। यदि इनमें छाले

पड़ जायँ, तो इनको फोड़ना नहीं चाहिये। सुखाने के लिये 'एरीस्टोल' का चूर्ण छिड़कना चाहिये। यदि पीव बन जाय, तो छेद न करना चाहिये। यदि रोग किसी व्रण पर आक्रमण करे, तो तीव्र जन्तुनाशक औषधि बरतनी चाहिये। पीछे से एरीस्टोल या आयडोफार्म को छिड़कना चाहिये।

इस रोग का पूर्ववर्त्ती कारण वायु की कमी है। इसलिये रोगी को खुली वायु में रखना चाहिये। परन्तु वायु के झोंके से बचाना चाहिये। हर समय पूर्ण स्वच्छता का ध्यान रखना चाहिये। रोगी के बिस्तर की चद्दर प्रतिदिन बदल देनी चाहिये। स्राव से यदि वस्त्र खराब हो जायँ, तो तुरन्त बदल देना चाहिये। रोगी के सब स्रावों को नष्ट कर देना चाहिये। संक्षेप में इस रोग के अन्दर पूर्ण स्वच्छता का ध्यान रखना चाहिये।

आर्य-औषधि—(१) पंच वल्कल काढ़े का उपयोग करना चाहिये। इसके पानी से व्रण धोना चाहिए। (२) पद्माख, शैवाल, इनको पीसकर लेप करना चाहिये। (३) कसेरू, सिंघाड़ा, पद्माख, गिलोय, शैवाल, नीला कमल, कमल का कीचड़ इन वस्तुओं का लेप करना चाहिये। (४) पुण्डरीक, कमल, मजीठ, पद्माख, उशीर, लालचन्दन, मुलहट्टी इनको दूध में पीसकर लेप करना चाहिये। (५) किशमिश, अमलतास, गम्भारी, त्रिफला, एरण्ड बीज, पालूफल, निशोथ, हरीतकी इनका कल्क लेप करना चाहिये। (६) मसूर, मटर, मूँग इनको पीसकर घी में मिलाकर लेप करना चाहिये। (७) खैर की छाल, सप्तपर्ण, मोथा, वासा, अमलतास का पत्र, देवदारु, कसेरू इनका लेप करना चाहिये (८) अमलतास, लमूड़े के पत्तों का या शिरीष और मकोय का लेप करना चाहिये। (९) दशांग लेप या जात्यादि घृत बरतना चाहिये।

विसूचिका (हैजा)

विसूचिका या हैजा दो प्रकार से होता है—

१—यह रोग सहसा उत्पन्न हो जाय, २—धीरे-धीरे उत्पन्न हो। इसमें अतिसार के साथ दर्द बिलकुल नहीं होता। यह रोग ६ से १० दिन तक या इससे भी अधिक रह सकता है। इस रोग का आक्रमण रात्रि में या

उषाकाल में होता है, जब वायु-मण्डल का ताप-परिमाण एवं मनुष्यों का ताप-परिमाण सबसे कम होता है। इस रोग में प्रारम्भ ही से निर्बलता एवं शारीरिक शक्ति का ह्रास हो जाता है। पहले आँतों की मांसपेशियों के अन्दर आक्षेप होते हैं, इनके साथ ही अतिसार प्रारम्भ हो जाता है। आमाशय की पेशियों के आकुञ्चन से वमन प्रारम्भ हो जाता है। प्रथम खाया हुआ भोजन बाहर आता है, उसके पीछे पित्त और फिर पानी बाहर होता है। इन स्रावों में पहले रंग (पीलापन) होता है, परन्तु शीघ्र ही इनका रंग नष्ट हो जाता है, अर्थात स्राव श्वेत या चावलों के धोवन की भाँति हो जाते हैं। इसका कारण पित्ताशय में पित्त का न बनना है। थोड़े ही घण्टों में रोगी १०,१५,२० बार मल-प्रवाहण करता है, जिसका रंग चावलों के धोवन की भाँति ही होता है।

प्रथम दस्त बड़े वेग से आता है। इससे रोगी को कुछ आराम प्रतीत होता है। रोगी को इससे थकावट हो जाती है, आमाशय के कौड़ी-प्रदेश पर बेचैनी रहती है। इस रोग में वमन बार-बार होता है। इसका भी रंग चावलों के धोवन की भाँति होता है। इसी समय तीव्र आक्षेप होते हैं। पाँव के अँगूठे और अँगुलियों में गुदगुदी होती है। यहाँ से आक्षेप जंघा, टाँग आदि की मांस-पेशियों में फैल जाते हैं। पाँव के अँगूठे और अँगुलियाँ नीली एवं झुर्रियोंवाली हो जाती हैं। मूत्र प्रथम गँदला और गहरा पीला होता है और पीछे से सर्वथा आना बन्द हो जाता है। वृक्कों में मूत्र नहीं बनता, मूत्राशय खाली रहता है। आमाशय के कौड़ी-प्रदेश पर जलन और खिंचावट अनुभव होती है और दबाने से रोगी को दर्द का अनुभव होता है। जिह्वा सफेद हो जाती है, मुँह का स्वाद कड़वा रहता है। लार का स्राव थोड़ा या बिलकुल नहीं होता, मुँह खुश्क हो जाता है, रोगी को प्यास बहुत लगती है और वह ठण्डे पानी के लिये बहुत तरसता है। नाड़ी निर्बल रहती है, एवं साधारण अवस्था से अधिक तेज चलती है। इसका स्पन्दन ९८ अंश तक पहुँच जाता है। त्वचा ठण्डी रहती है, किसी प्रकार का ज्वर नहीं रहता। रोग के प्रारम्भ में ताप-परिमाण गिर जाता है। रोगी गरमी एवं नींद आने की शिकायत करता है और बिना किसी कपड़े के ओढ़े नंगा लेटना चाहता है। कानों में झनझनाहट सुनाई देती है। रोगी प्राय: बेचैन रहता है।

प्राय: रोगी बिस्तर की पाँयत पर इकट्ठा हो जाता है। अन्त में रोगी के अन्दर निर्बलता बराबर बढ़ती जाती है। रोगी अब ठण्डा होने लगता है। यदि यह अवस्था रुक जाय, तो नाड़ी तेज हो जाती है; परन्तु मुश्किल से अनुभव होता है। स्राव बन्द हो जाते हैं, इसी प्रकार आकुञ्चन भी बन्द हो जाते हैं। त्वचा ठण्डे पसीने से तर हो जाती है। नाखूनों की एवं ओष्ठ की अवस्था बदल जाती है। सारा शरीर मुरझाया हुआ प्रतीत होता है, शिश्न और अण्ड-कोष भी छोटे हो जाते हैं और अँगुलियों पर झुर्रियाँ पड़ जाती हैं। रोगी की वाणी निर्बल होती जाती है। जिह्वा और श्वास ठण्डे होते हैं। बुद्धि साफ होती है।

मरनेवाले रोगी के चिन्ह—आँखें अन्दर की ओर धँस जाती हैं और इनमें चमक होती है। पुतली का आकार साधारण रहता है, नाक नोकीली दीखती है। गालों में गड्ढे पड़ जाते हैं और जबड़ा नीचे को झुक जाता है। ताप-परिमाण स्वस्थ अवस्था से नीचे गिर जाता है। नाड़ी के धड़कन का अनुभव नहीं होता, रोगी को हिचकियाँ आती हैं। मल बेहोशी में निकल जाता है और सारा शरीर नीला-सा हो जाता है। मृत्यु से एक या दो घण्टे पहले प्राय: शिर, मस्तक और छाती में गरमी अनुभव होने लगती है। यह लक्षण मृत्यु का सूचक है, क्योंकि इसका कारण छोटी रक्त-वाहिनियों का विकसित होना है।

अच्छे होनेवाले रोगियों के लक्षण—धीरे-धीरे दस्तों का और वमन का बन्द होना, त्वचा गरम होने लगती है. नाड़ी भारी चलने लगती है, वाक्-शक्ति में शक्ति आने लगती है, मूत्र आने लगता है एवं दस्तों में रंग भी आने लगता है। कौड़ी-प्रदेश की जलन रुक जाती है और रोगी नींद अनुभव करने लगता है। कई बार आशा-रहित रोगी भी जी उठते हैं। रोगी में वमन करने की सामर्थ्य जबतक बनी रहती है, तबतक रोगी असाध्य नहीं होता। परन्तु जबतक रोगी को मूत्र न आजाय, उसे खतरे से रहित नहीं समझना चाहिये। अच्छे होनेवाले रोगियों में साधारणत: ७२ घण्टे के पीछे तक मूत्र आ सकता है। यदि वृक्क अपना कार्य प्रारम्भ न करें, तो यूरिया या अन्य विष जो मूत्र से निकलते हैं, रक्त में घुलकर विष उत्पन्न करते हैं। रोगी का चेहरा लाल एवं शिर गरम हो जाता है। रोगी को

प्रलाप रहता है । रोगी की मृत्यु "यूरीमिया" से हो जाती है। रोगी का ताप-परिमाण मृत्यु से कुछ पूर्व बढ़ जाता है। यह गरमी मृत्यु के पीछे भी कुछ घन्टों तक रहती है। रोग का समय कई घन्टों से लेकर कई दिनों तक है और यदि रोग-जन्य दूसरे परिणाम भी हो जायँ, तो समय और बढ़ जाता है।

इस रोग के अन्दर कई बार औरतों में योनि-मार्ग से लाल-सा स्राव होता है जो आर्त्तव से मिलता-जुलता है। कई बार यह रोग व्यापकरूप में न होकर वैयक्तिक रूप ही में मिलता है।

कारण—इस रोग के निश्चित कारण का अभी तक कुछ पता नहीं चला। इतना निश्चित है कि इस रोग का कारण 'विष' है। यह विष पुरुषों में सम्भोग से, गन्दगी के नलों से, भोजन से, पानी से, विशेषतः पानी मिलाये हुये दूध से, स्वादु भोजनों के अधिक खाने-पीने से होता है। इस रोग के अन्दर रोगी के आंत्रों में एवं उसके स्रावों में एक कृमि मिलता है। लोगों का यह विचार है कि यह कृमि ही इस रोग का कारण है। परन्तु अभी तक इस बात के लिये कोई प्रमाण नहीं मिले। यह सत्य है कि यदि संक्रमण के सब मार्ग रोक लिये जायँ, तो रोग आगे नहीं फैलता। यह रोग प्रायः पानी के मार्ग से फैलता है। यह रोग तीर्थ-स्थानो में, जैसे—पुरी, मथुरा, हरद्वार, मक्के आदि में प्रायः मिलता है। हरद्वार का कोई कुम्भ और पुरी का रथयात्रा-समारोह कभी भी इस रोग से खाली नहीं जाता। इसलिये यह बात साफ है कि यह रोग पानी के द्वारा अधिक फैलता है। पानी के अन्दर रोग के कीटाणु बहुत शीघ्रता से वृद्धि करते हैं, विशेषतः यदि सूर्य का ताप पानी पर पड़ रहा हो। शुद्ध पानी में कृमि १० दिन में मर जाते हैं। दूध में यदि दूषित पानी मिला दिया जाय, तो वह भी खराब हो जाता है और रोग को फैलाने में सहायक हो जाता है। यदि कीटाणु रोगी के कपड़ों पर सूखने दिये जायँ, या रोगी के स्रावों को खुला छोड़ दिया जाय, तो भी शक्ति पाकर कृमि रोग उत्पन्न कर देते हैं। इस रोग की उत्पत्ति में पूर्ववर्ती कारण भी सहायता करते हैं। ये कारण निम्न हैं:—वात-संस्थान की निर्बलता, तम्बाकू या मद्य का पीना, लम्बी थकानेवाली पैदल-यात्रा, थकावट, भीड़वाले स्थानों में सोना, प्रातःकाल की

सर्दी, ताप-परिमाण का सहसा परिवर्तन, नमी, धूल, दुर्भिक्ष और इस रोग से घबराहट। यह रोग उन व्यक्तियों में अधिक खतरनाक होता है, जो स्वच्छता का ध्यान नहीं रखते, अथवा उन स्थानों में भयङ्कर रूप धारण करता है, जहाँ पर सफाई का प्रबन्ध अच्छा नहीं है। इसलिये इस रोग की उत्पत्ति में तीन बातों की आवश्यकता है। १—रोग का कीटाणु, २—संक्रमण का माध्यम, ३—पूर्ववर्त्ती कारण। इसलिये हैजा एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में स्पष्टरूप से संक्रमित नहीं होता; जैसे चेचक एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में स्पष्ट रूप में चला जाता है। यह संक्रामक रोग है, जैसे टाइफाइड। संक्रामित होने के लिये इसको माध्यम की आवश्यकता रहती है।

चिकित्सा—इस रोग का कोई निश्चित उपाय अभी तक नहीं मिला। तथापि उत्तम परिचर्य्या से, कामला की चिकित्सा से, औषधियों के देने से बहुत-से रोगी बचाये जाते हैं। अतिसार के प्रारम्भ होते ही चिकित्सा करने में सफलता की बहुत आशा रहती है। हैजे की उपस्थिति में यदि अतिसार हो जाय, तो इसकी तुरन्त चिकित्सा प्रारम्भ करनी चाहिये; अन्यथा यह अतिसार हैजे में बदल जायगा।

ज्यों ही रोगी को अतिसार हो, उसी समय क्लोरोडीन ३० बूँद, ४ ड्राम ब्रांडी और ४ ड्राम पानी मिलाकर प्रत्येक २ घन्टे के अन्तर से देना चाहिये। रोगी को आराम देना चाहिये। यदि अतिसार अधिक हो, तो उत्तेजक औषधि देनी चाहिये। यदि कोई भी औषधि न मिले, तो बीस बूँद स्प्रिट कैम्फर को आधे-आधे घण्टे के अन्तर से देना चाहिये। यदि क्लोरोडीन की दो खूराक देने पर या स्प्रिट कैम्फर की आठ खूराक देने पर भी अतिसार बन्द न हो, तो १० ग्रेन डोवर्स पाउडर को प्रत्येक ३ घण्टे के अन्तर से देना चाहिये।

रोगी के मूत्र को प्रवाहित करने के लिये १ ड्राम स्प्रिट ईथर नाईट्रोसाई और २ औन्स पानी मिलाकर प्रत्येक १ घण्टे के अन्तर से देना चाहिये। परन्तु इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि जिस समय डोवर्स पाउडर दे रहे हों, उस समय इसको नहीं देना चाहिये। दस्त बन्द होने पर डोवर्स पाउडर देना बन्द कर देना चाहिये। यदि बेचैनी या

वमन बहुत हो, तो रोगी के कौड़ी-प्रदेश पर राई का लेप करना चाहिये। रोगी को आराम से बिस्तर पर लेटा देना चाहिये। बिस्तर पर मोमजामा बिछा देना चाहिये। जबतक अतिसार बन्द न हो जाय, कुछ भी खाने को नहीं देना चाहिये। पीछे से चाय, सागु, अरारूट देना चाहिये। साथ में पोर्ट वाइन मिलाकर थोड़ा-थोड़ा देना चाहिये। परन्तु प्रायः रोगी भोजन लेना पसन्द नहीं करता, अथवा जो लेता है, वह भी वमन हो जाता है। इस अवस्था में चाय के छोटे चम्मच से आधे-आधे घण्टे बाद खूराक (चाय या जौ का पानी) देना चाहिये। प्यास के लिये बर्फ, ठंडा पानी, सोडावाटर देना चाहिये। चूसने के लिये बर्फ देनी चाहिये। पानी में सिरका या सल्फ्यूरिक एसिड मिलाकर देना चाहिये। अम्लीय माध्यम में कीटाणु जीवित नहीं रहता। पानी से आमाशय के भर जाने पर वमन सुगमता से होता है। जबतक रोगी को मूत्र आता हो, तबतक निराश होने की कोई बात नहीं। मूत्र-प्रवाहण को और भी बढ़ाने के लिये कटि-प्रदेश पर राई का लेप, राई की पुल्टिस बाँधनी चाहिये। जिस समय मूत्र का प्रवाहण शीघ्र बन्द हो जाय, उस समय भी यही उपाय काम में लाना चाहिये। सर्दी और आकुञ्चनों को हटाने के लिये हाथों से रगड़ना चाहिये। भूसी की थैलियों को गरम करके रखना चाहिये। कपड़ों पर गरम तारपीन का तेल डाल देना चाहिये। राई की पुल्टिस बाँधनी चाहिये।

यदि इस चिकित्सा को प्रारम्भ में बरता जाय, तो रोगी के बचने की बहुत कुछ आशा होती है, परन्तु यदि वमन और विरेचन चालू रहें, तो रोगी मूर्च्छित हो जाता है। अब कोई भी दवाई मुँह से नहीं दी जा सकती। मूर्च्छित अवस्था में कोई भी दवाई मुँह से देना व्यर्थ है; क्योंकि आमाशय इसको ग्रहण नहीं करता। आमाशय में एकत्रित होकर ज्वर को उत्पन्न करती है। मूर्च्छा की अवस्था में इस बात का यत्न करना चाहिये कि रोगी की उष्णिमा कम न हो। रोगी को गरम रखने के साथ पर्याप्त वायु पहुँचाना चाहिये। रोगी को शान्त लेटे रहने देना चाहिये, उसे उठने नहीं देना चाहिये। श्वास में काठिन्य हो, तो छाती पर राई की पुल्टिस बाँधनी चाहिये। हाथ-पाँव पर सोंठ की या काँसी के पात्र से, अथवा सूखे कपड़े से, या हाथों से मालिश करना चाहिये। प्यास को रोकने के लिये शराब

६० बूँद की मात्रा में देना चाहिये। और कोई उत्तेजक औषधि नहीं देना चाहिये।

रोगी को सबसे पृथक् कर देना चाहिये। परिचारकों के अतिरिक्त किसी दूसरे व्यक्ति को उनके पास जाने नहीं देना चाहिये। रोगी के स्रावों के कपड़ों के लिये स्वच्छीकरण के नियमों का पालन करना चाहिये।

रोग के पीछे की निर्बलता में भोजन का विशेष ध्यान रखना चाहिये। भोजन द्रव देना चाहिये। इसके लिये सागु, अरारूट, जौ का पानी, चूने का पानी और दूध देना चाहिये।

विसूचिका के पिछले परिणाम—(१) ज्वर—इसमें ताप-परिमाण ऊँचा नहीं चढ़ता और कुछ ही घण्टों में उतर जाता है। त्वचा पर लाल दाने निकल आते हैं। अथवा यही ज्वर तीव्र रूप में भी हो जाता है, ज्वर होने के कुछ घन्टों पीछे जिह्वा श्वेत हो जाती है, फिर जल्दी ही भूरी एवं सूख जाती है। दाँतों पर काले दाग पड़ जाते हैं, आँखें लाल होती हैं, गाल लाल एवं नाड़ी तेज होती है, त्वचा का पृष्ठ गरम होता है। रोगी को प्रलाप रहता है, और पीछे से वह अचेत होजाता है। यह अवस्था ४ से ८ दिन तक रहती है। इस बीच में रोगी या तो अच्छा हो जाता है, या मर जाता है।

(२) सन्यास—इस रोग का आक्रमण या तो ज्वर के साथ होता है, अथवा ज्वर के बिना होता है। साथ ही मूत्र भी बन्द हो जाता है। इस रोग का कारण मूत्र में और पित्त में निकलनेवाली वस्तुओं का रक्त के अंदर घुल जाना है।

(३) जिन रोगियों को पहले अजीर्ण की शिकायत रहती है, उनमें हैजे के पीछे हिचकी रोग हो जाता है। इसके कारण रोगी कोई भी ख़ूराक नहीं ले सकता। रोगी आराम से लेट नहीं सकता और शरीर में बहुत गिर जाता है।

चिकित्सा—रोगी की त्वचा की बढ़ती हुई गरमी को शीतल पानी के स्पंज से रोक सकते हैं और यदि मूत्र पर्य्याप्त मात्रा में न आता हो, तो कटि-प्रदेश पर राई का प्लास्टर लगाना चाहिये अथवा सींगी या 'ड्राईकपिंग' करना चाहिये। पीने के लिये स्प्रिट ईथर नाइट्रोसाई देना चाहिये। यदि

रोगी को वमन हो, तो साइट्रेट ऑफ मैगनेशिया को थोड़ी मात्रा में देना चाहिये। जिस समय जिह्वा भूरी और खुश्क हो, नाड़ी निर्बल हो, रोगी को प्रलाप होता हो, तो पोर्टवाइन ६० बूँद प्रत्येक घन्टे के अन्तर से देना चाहिये। बर्फ का पानी रोगी को पीने के लिये देना चाहिये। दूध बहुत थोड़ी मात्रा में रोगी को देना चाहिये।

जिस समय जिह्वा खुश्क और भूरी हो, उस समय अमोनिया कार्ब २ ड्राम, सल्फ्यूरिक ईथर ४ ड्राम, स्प्रिट ईथर नाइट्रोसाई ४ ड्राम, पानी १२ औंस मिलाकर १ औंस की मात्रा में प्रत्येक ३ घण्टे के अन्तर से देना चाहिये।

जब अचेतनता या सन्यास की अवस्था उत्पन्न हो जाय, उस समय हाथ और पाँव को गरम रखना चाहिये, शिर को ठण्डा रखना चाहिये। वृक्क, यकृत एवं गले के पिछले भाग पर राई का लेप करना चाहिये। रोगी को यदि हिचकियाँ बहुत हो रही हों, तो दूध में एक तिहाई चूने का पानी मिलाकर देना चाहिये। यदि उपरोक्त उपायों से वमन और हिचकियाँ बन्द न हों, तो क्लोरोफॉर्म की दो-तीन बूँद एक गिलास भर पानी में मिलाकर देना चाहिये।

पहचान—हैजे को निम्न रोगों से, निम्न लक्षणों द्वारा पृथक् कर सकते हैं—

अतिसार—अतिसार में आकुञ्चन एवं विसूचिका के प्रारम्भिक लक्षण मिलते हैं। परन्तु मल का रंग चावलों के धोवन की भाँति नहीं होता। मूत्र भी बन्द नहीं होता।

संखिये का विष—इस रोग में दस्त और वमन होते हैं; परन्तु मूत्र का अवरोध नहीं होता। साथ ही मल का रङ्ग भी चावलों के धोवन की भाँति नहीं होता। इसमें श्लेष्मा या रक्त मिला होता है, जैसे प्रवाहिका में होता है।

दूषित पानी—इससे भी वमन, विरेचन, पेट में ऐंठन आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। परन्तु इसमें भी मूत्र का अवरोध नहीं होता और दस्त या वमन का रङ्ग हैजे की भाँति होता है।

उपाय—१—कपूर, अफीम, लाल मिर्च, हींग इनको पानी से पीसकर,

आधी रत्ती की गोली बनाकर आध-आध घंटे के अन्तर से पुदीने के पानी के साथ देना चाहिये। २—प्याज का अर्क इस रोग के लिये उत्तम औषधि है, जितना भी हो सके, उसे देना चाहिये। ३—अपामार्ग की जड़ को पानी में पीसकर पीना चाहिये। ४—करैले के रस में तिल का तैल मिलाकर या कच्ची मूली के रस में पिप्पली-चूर्ण मिलाकर अथवा, ५—बेल, सोंठ इनका काढ़ा अथवा बेल, सोंठ और कायफल का काढ़ा देना चाहिये। ६—प्यास के लिये कपूर से सुगन्धित जल थोड़ा-थोड़ा करके देना चाहिये। ७—कबाबचीनी १ तोला, मुलहठी आधा तोला, कज्जली ४ आना भर; मधु में मिलाकर थोड़ा चटाना चाहिये। इससे वमन रुकता है। ८—हिचकी के लिये—केले के पत्तों का रस नाक में नस्य देना चाहिये अथवा राई को पीसकर ग्रीवा, पृष्ठ-वंश पर मलना चाहिये। ९—मूत्र-प्रवाहण के लिये—गुलाब या कमल के पत्तों के रस को शर्करा के साथ या पाषाण-भेद के काढ़े के साथ यवक्षार को या केवल यवक्षार को पानी से देना चाहिये। १०—अङ्गों के शीतल हो जाने पर मूर्च्छितावस्था में—मृत-संजीवनी-सुरा, मकरध्वज, चन्द्रोदय, कस्तूरी देना चाहिये। ११—उदर में दर्द हो, तो तारपीन के तेल से उष्ण परिषेक करना चाहिये। १२—शरीर में अधिक गरमी हो, तो सिर पर मक्खन मलना चाहिये या प्रवाल-भस्म को मधु के साथ देना चाहिये। रोगी को चेतन करने के लिये हाथ-पाँव को गरम रखना चाहिये। १३—कूठ, सैन्धव और कांजी इनको मिलाकर लेप करने से उदर-वेदना शान्त होती है। १४—लौंग, नागरमोथा, जायफल इनका पानी पीने के लिये देना चाहिये। इससे वमन और प्यास शान्ति होती है। १५—दालचीनी, तेजपात, अगरु, रास्ना, सहजन की छाल, कूठ, वच, सौंफ; इन सबको कांजी में पीसकर उदर पर लेप करने से दर्द शान्त होता है।

शास्त्रीय औषधि—लहसुनादि-वटी, कपूरासव, कपूर-रस, महागन्धक, रामबाण-रस।

यूनानी उपाय—(१) पुदीना, नीम का फूल, इनको प्याज या लहसुन के अर्क में मिलाकर बेर के बराबर गोली बनाकर प्याज के अर्क के साथ देना चाहिये। (२) भीमकपूर, गुलनार, छोटी इलायची, प्रत्येक आधा

टंक, जरिश्क, मुनक्का १ टंक, अनार का शरबत १ तोला, इनको मिला-कर चाटना चाहिये। (३) पपीता, दरियाई नारियल—इनको पानी में घिस-कर पिलाना चाहिये। (४) अदरक पौने दो तोला, काली मिर्च एक तोला, आक के फूल १ तोला—सबको पीसकर, चने के बराबर गोली बनाकर देना चाहिये। (५) आक की जड़ को आद्रक या सोंठ के रस में मिलाकर चने के बराबर गोली बनानी चाहिए। (६) जहरमोहरा खताई गुलाबजल में या पानी में घिसकर देना चाहिये। (७) बाँसकपूर, पपीता, जहरमोहरा—इन तीनों को गुलाबजल में मिलाकर देना चाहिये। (८) सिकंजबीन सादी चटानी चाहिये।

वात-व्याधि

आर्य-वैद्यक-शास्त्र में वात-विकार अस्सी प्रकार के माने गये हैं, जिनका संक्षिप्त विवेचन निदान-प्रकरण में किया जा चुका है। यहाँ पर रोगों के कारणों का प्रथम समूह रूप में निदान और चिकित्सा लिखकर फिर पृथक्-पृथक् मुख्य-मुख्य रोगों की विवेचना की जायगी।

कारण—शीत लगने से, रूक्ष और ठण्डा खाने से, अति स्त्री-सेवा से, अति जागरण से, विषमासन से, मल-मूत्र आदि स्वाभाविक वेगों के रोकने से, अति रक्त-स्राव से, धातुओं के क्षय से, चोट आदि लगने से, चिन्ता, शोक, क्रोध, उपवास आदि से, दुर्बलता के कारण—घोड़ा, साइकिल आदि की सवारी से, पाचन-क्रिया के विकार से शरीर के अन्दर वायु कुपित होती है। यह वायु कुपित होकर सम्पूर्ण शरीर में या किसी एक अवयव में विकार उत्पन्न करती है।

लक्षण—संधियाँ संक्रमित हो जाती हैं; स्थान-स्थान पर दर्द का अनुभव होता है; हाथ, पाँव, सिर सुन्न प्रतीत होते हैं। जिस स्थान पर वायु का कोप अधिक होता है, उसी स्थान के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। अंग हिलाने में दर्द होता है। अंग लाल और सूजा होता है। कभी-कभी इसके साथ ज्वर भी हो जाता है। नाड़ी तेज हो जाती है। रोगी को प्यास लगती है; मलबन्ध रहता है। मूत्र में अम्लता बढ़ जाती है।

पथ्यापथ्य—अरहर, गेहूँ, उड़द, कुलथी, लाल चावल, परवल, शोभाञ्जन, घी, दूध लहसुन, तेल आदि पदार्थ पथ्य हैं। चिन्ता, जागरण, मलबन्ध होना, वमन, उपवास, कसरत, रूक्ष शीत भोजन, क्रोध, शोक, उद्वेग, बेचैनी, मद्य, मैथुन, सवारी आदि वस्तुयें अहितकर हैं।

चिकित्सा—एरण्ड, रास्ना, गुग्गुल, जहरकुचला, वत्सनाग और लहसुन इस रोग के लिये उत्तम औषधि मानी जाती है।

एरण्ड—इस रोग का नाम 'वातारि' है। अर्थात् यह वातरोग का शत्रु है। वातरोग में रूक्षता, शूल और शोथ ये तीनों लक्षण होते हैं। एरण्ड इन तीनों लक्षणों को नष्ट करता है। इस काम के लिये एरण्ड की जड़, पत्ते, बीज और तेल का काम पड़ता है। जकड़े हुए अङ्ग को ढीला करने के लिये इसके पत्ते तेल में गरम करके बाँधे जाते हैं। इसके मूल का काढ़ा जौखार मिलाकर पिलाना चाहिये। सोंठ के काढ़े में एरण्ड-तैल मिलाकर पीने से शोथ-युक्त सन्धि-वात मिटती है। रास्नादि क्वाथ आदि में एरण्ड-तैल मिलाकर पीने से बहुत लाभ होता है।

गुग्गुल—वायु रोगों के लिये गुग्गुल प्रसिद्ध दवाई है। वायु के जीर्ण रोगों में गुग्गुल शोधन तथा मारक गुण के लिये काम आता है। वायु के तीव्र आक्रमण में गुग्गुल का उपयोग करना निरर्थक है। जिस समय तीव्र आक्रमण शान्त हो जाय या वायु-रोग का प्रारम्भ हो, उस समय गुग्गुल को देना उत्तम है। चसका तथा शूलवाले भाग पर गुग्गुल की पट्टी बाँधनी चाहिये। योगराज गुग्गुल इस रोग की मुख्य दवा है। इससे शरीर में शक्ति आती है।

रास्ना—इस रोग के लिये सर्वोत्तम दवाई है। चरक में कहा है कि ८० प्रकार के वात रोगों में रास्ना उत्तम औषधि है। रास्ना पञ्चक, रास्ना सप्तक, महारास्नादि क्वाथ आदि क्वाथों में रास्ना का उपयोग किया जाता है। प्रत्येक औषधि में रास्ना की बड़ी मात्रा डालनी चाहिये।

लहसुन—वायु के रोगों में इसका उपयोग कई प्रकार से किया जाता है। लहसुन की चटनी बनाकर अथवा इसको सेंधा नमक और तिल-तैल के साथ खाना चाहिये। संचल, अजवायन, हींग, सैंधव, सोंठ, मिर्च,

पिप्पली—इनके चूर्ण से पाँचगुना लहसुन और लहसुन का चौथा भाग तैल मिलाकर खाना चाहिये। मात्रा—१ तोला।

अनुपान—एरण्ड-क्वाथ।

वत्सनाग – यह वायु के रोग में बरता जाता है। इसका अन्त: और बाह्य दोनों प्रकार से उपयोग किया जाता है। इसका तैल मलने के काम आता है। तीव्र आक्रमण के समय इसको देना उचित नहीं।

ज़हरकुचला—वायु के रोगों में विशेष उपकारी है। वायु के पुराने रोगों में विशेष लाभदायक है।

मालकंगणी—वात-व्याधि में गरम होने से बरती जाती है, शिरो-रोग में, उन्माद में इसका व्यवहार अधिक होता है। अकरकरा आदि वातहर औषधियों के साथ बरती जाती है।

सामान्य उपाय– (१) चक्रमर्द के पत्तों का शाक या गोली वात-व्याधि को नष्ट करती है, (२) तिल १ प्रस्थ, गुड़ १ प्रस्थ, भिलावा २ पल, इनकी गोली खाने से वात-व्याधि शनैः-शनैः हटती है। (३) रसकपूर, हिंगुल, दालचिकना, चाँदी के वर्क प्रत्येक १-१ कर्ष लेकर, तवे पर नमक से आलवाल बनाकर, बीच में इनको रख दे। ऊपर से चीनी का पात्र ढककर मीठी आँच से पकाना चाहिये। पीछे से ऊपर लगी हुई वस्तु को उतार लेना चाहिये। इसका नाम अमीर रस है। मात्रा १ रत्ती। अनुपान—दूध और चावल। (४) उशबा, चोबचीनी का काढ़ा मधु के साथ लेने से संधिवात को अच्छा करता है, अनुभूत है। (५) संखिया, जायफल, जावित्री, अजवायन, खुरासानी अजवायन, देशी अजवायन, भाँग के बीज, लौंग प्रत्येक तीन अक्ष, मालकंगनी ६ अक्ष, कस्तूरी और केसर थोड़ा-थोड़ा मिलाकर पाताल यंत्र से तैल निकालकर मलना चाहिये। (६) करीर की नई लकड़ी का तेल निकालकर (पाताल-यंत्र विधि से) पाँव पर मलने से पाद-हर्ष रोग शान्त होता है। कड़वे तेल में लाक्षा को मिला-कर आग पर इतना गरम करना चाहिये कि वह इसमें एक रस हो जाय, पीछे से इसको मलना चाहिये। (८) मोर के पंख (मयूर-पिच्छा) की राख तैल में मिलाकर लगाने से 'खल्ली' रोग नष्ट होता है। (९) दूध में एरण्ड

के बीजों को उबालना चाहिये। जब इनका मावा हो जाय, तो हनु पर बाँधने से हनु-ग्रह मिटता है। (१०) जरदे को एरण्ड के स्वरस के साथ रगड़कर गुनगुना लेप करने से वात पीड़ा शान्त होती है। (११) भैंस के मूत्र को कपड़े में छानकर हल्दी के साथ पीने से आमवात रोग शीघ्र शान्त होता है। (१२) बेर, कुलथी, देवदारु एरण्ड पीसकर गरम करके लेप करना चाहिये।

कोष्ठगत वायु की चिकित्सा—जिस समय वायु आमाशय में कुपित होती है, उस समय मल-मूत्र रुक जाता है, हृत्पीड़ा, गुल्म, अर्श और पार्श्व-शूल आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। इस रोग में विशेषतः क्षार (यवक्षार) पीना चाहिये। यदि वायु सारे शरीर में कुपित हो, तो अंग टूटने लगते हैं। इसके लिये तैल से चिकनी वस्तियाँ और स्वेद देना चाहिये। आमाशय में वायु का कोप हो, तो षड्धरण योग गरम पानी के साथ ७ रत्ती की मात्रा में देना चाहिये। पक्काशय में वायु का कोप हो, तो स्निग्ध विरेचन (तैल आदि) देना चाहिये। हृदय में वायु का कोप हो, तो शाल-पर्णी के साथ दूध को पकाकर देना चाहिये। अथवा गिलोय के रस के साथ मिर्च चूर्ण, या पुराना गुड़, अश्वगन्धा, बहेड़ा, या देवदारु और सोंठ इनको जल के साथ पीसकर प्रातःकाल लेना चाहिये।

धातुगत वायु की चिकित्सा—त्वचा में वायु के कुपित होने पर शीतल प्रलेप देना चाहिये। माँस और मेदोगत वायु के होने पर विरेचन और रक्त मोक्षण तथा शामक औषधि देनी चाहिये। शुक्रस्थ वायु यदि कुपित हो जाय, तो स्त्री आदि के आलापादि द्वारा हर्षोत्पादन करना चाहिये, बलकर और शुक्रजनक औषधि देनी चाहिये। यदि शुक्र का मार्ग अवरुद्ध हो, तो विरेचन देना चाहिये। गर्भ शुष्क हो जाय, तो सिता, मुलहठी और काश्मीरी फल इनको दूध के साथ पकाकर देना चाहिये।

अपतंत्रक-चिकित्सा—इस रोग में वायु कुपित होकर हृदय, शङ्ख और मस्तिष्क-प्रदेश को पीड़ित करके शरीर को धनुष की भाँति झुका देती है। इस रोग में रोगी मूर्च्छित हो जाता है। उसकी आँखें बन्द रहती हैं। हरीतकी, बच, रास्ना, सैन्धव, अम्लवेतस, इनका चूर्ण १ तोला, घृत २ तोला मिलाकर खाने से अपतंत्रक रोग नष्ट होता है।

अपतानक लक्षण—वायु कुपित होकर, कफ के साथ मिलकर, शरीर की धमनी का आश्रय लेकर शरीर को दण्डे की भाँति कठोर बना देती है। अर्थात् देह की आकुञ्चन-शक्ति नष्ट हो जाती है। इस रोगी को २ तोला दशमूल आधसेर जल में काढ़ा करके, जब आधा पाव रह जाय, तब इसमें पिप्पली-चूर्ण मिलाकर पीना चाहिये। रोगी के शरीर पर तैल-मर्दन करना चाहिये।

पक्षवध-चिकित्सा (लकवा) १—जिस समय शरीर का एक भाग क्रिया-रहित हो जाता है, उस समय उस पार्श्व के अंगों में स्पर्श और क्रिया-ज्ञान दोनों नष्ट हो जाते हैं। इस अवस्था में तीव्र विरेचन और वस्ति-क्रिया करनी चाहिये। तैल-स्नान उत्तम है। माष, कौंच, एरण्डमूल, बला इनके काढ़े में हींग और सैन्धव प्रत्येक १ माशा मिलाकर पान करना चाहिये। २—पिप्पलीमूल, चीतामूल, पिप्पली, सोंठ, रास्ना और सैन्धव, इनके कल्क-द्वारा माष के काढ़े में तैल पकाकर मर्दन करना चाहिये।

अर्दित—इस रोग में मुँह एक पार्श्व में मुड़ जाता है। रोगी मुँह से सीटी नहीं बजा सकता। इस रोग के लिये लहसुन को तिल के तैल के साथ खाने से लाभ होता है। २—बला और पञ्चमूल (वृहत्) का काढ़ा पीना चाहिये। ३—बला, उड़द, कौंच, एरण्ड-मूल और गन्धतृण का काढ़ा पीना चाहिये; साथ ही विरेचन लेना चाहिये।

हनुग्रह—इस रोग में जबाड़ी खिंची रहती है। यह रोग 'टैटिनस' कीटाणु के कारण अथवा कुचला विष में होता है। कभी-कभी वात के कुपित होने पर मूर्च्छा में भी हो जाता है। इस रोग में स्वेद देना चाहिये।

मन्यास्तम्भ—इस रोग में गर्दन अकड़ी रह जाती है। रोगी गर्दन को दायें-बायें सुगमता से हिला नहीं सकता। इसके लिये (१) मुर्गी के अण्डे के द्रव-भाग में सेन्धा नमक और घी मिलाकर थोड़ा गरम करके ग्रीवा भाग पर मलना चाहिये। (२) सरसों का तेल या असगन्ध की जड़ पीसकर प्रलेप लगाने से विशेष लाभ होता है। (३) दशमूल या पञ्चमूल का काढ़ा इस रोग में पिलाना चाहिये।

जिह्वास्तम्भ—इस रोग में रोगी की जीभ नहीं हिलती। रोगी

जीभ को उठा नहीं सकता अथवा मोड़ नहीं सकता । इसके लिये स्निग्ध पदार्थों के गलाले करवाने चाहिये । कल्याणकावलेह—हल्दी, वच, कूठ, पिप्पली, सोंठ, जीरा, खुरासानी अजवायन, मुलहठी, सेन्धा नमक, घी में इनकी चटनी बनवाकर चाटना चाहिये ।

गृध्रसी—इस रोग में दर्द नितम्ब से आरम्भ होकर जंघा के अन्तः या बाह्य पार्श्व से होता हुआ पाँव की गिट्टे या अँगूठी तक पहुँचता है। इसका कारण 'सियाटिका' नाड़ी में दर्द का होना है । इसीको यूनानी में 'इरकुन्निसा' कहते हैं ।

उपाय—१—त्रिफला-क्वाथ के साथ एरण्ड-तैल १ माशे तक पीना चाहिये । २—निर्गुण्डी के पत्तों का काढ़ा । ३—एरण्ड-मूल, बेल, छोटी और बड़ी कटेरी; इनके काढ़े को संचल नमक के साथ । ४—गो-मूत्र के साथ एरण्ड-तैल पान करने से अथवा इसमें पिप्पली-चूर्ण मिलाकर पीने से। ५—रास्ना ८ तोला, गुग्गुल १० तोला इनको घी के साथ गोली बनाकर एक तोला मात्रा में गरम जल के साथ लेना चाहिये । ६—दूध, चावल और शिला पर पीसे हुये छिलके-रहित २ तोला एरंड के बीज; इनकी खीर बनाकर खाना चाहिये। ७—दशमूल, बला, रास्ना, गिलोय, सोंठ; इनके काढ़े में एरंड का तैल मिलाकर पीना चाहिये । ८—मुण्डी, पाषाण-भेद प्रत्येक ६७॥ माशे, जखन्द मुर्दरिज ३३॥ माशे, तुतली के बीज आध सेर; इनको कूट-छानकर, इसमें १०॥ माशे बूरा मिलाकर सौंफ के अर्क के साथ खाना चाहिये । दर्द के प्रारम्भ ही में किब्न की जड़, अकरकरा, जरांराह, कबूतर की बीट और भिलावा इनको शहद में मिलाकर चूतड़ पर लेप करना चाहिये । तुम्बी खिँचवाना भी उत्तम है । अनार्य-चिकित्सा में अफीम और एकोनाइड का इंजैक्शन देना भी उत्तम है ।

विश्वाची—इस रोग के अन्दर हथेली और अँगुलियों की कण्डरा जो बाहु के पश्चिम भाग से आती है, उसके अन्दर वायु कुपित होकर हाथ की क्रिया आकुञ्चन, प्रसारण आदि को रोक देती है । यदि यह रोग स्कन्ध ही में रुका रहता है, तो इसे अवबाहुक कहते हैं । इस रोग के लिये दशमूल, बला और माष इनके काढ़े में तैल या घी मिलाकर पान करना चाहिये ।

क्रोष्ट्रक-शीर्ष--इस रोग में घुटने के अन्दर शोथ उत्पन्न हो जाती है। इसके अन्दर तीव्र शूल उत्पन्न होती है।

उपाय--गिलोय, आँवला, हरीतकी, बहेड़ा इनके काढ़े में एरण्ड का तैल मिलाकर इसके साथ २ तोला गुग्गुल या २ छटाँक दूध के साथ ४ तोला एरण्ड-तैल अथवा आध सेर गाय के दूध के साथ विधारे का चूर्ण सेवन करने से लाभ होता है।

पाद-दाह--बहुत चलनेवाले व्यक्तियों में यह रोग होता है। पाँव से गरमी निकलती है। इसके लिये उड़दों को शीतल जल के साथ पीसकर पाँव पर लेप करना चाहिये। पाँव पर घी या कद्दू रगड़ना चाहिये, मक्खन का लेप करना चाहिये। फोकी सींगी भी लगवाना उत्तम है।

शिराग्रह—वैरीकोजवेन्स—इस रोग में पिंडली की रगें मोटी हो जाती हैं और इनमें गाँठें पड़ जाती हैं। यह रोग प्रायः चिट्ठीरसों को, या खड़े रहनेवाले नौकरों को, अथवा धोबियों को बहुत होता है।

उपाय—इस रोग में रक्त को निकलवाना, विरेचन देना चाहिये। पाँव को बाँधकर रखना चाहिये। यारजफवकरा, हजरये इरमानी (गिले अरमनी), लाजवर्द, मगसूल और अफसन्तीन का काढ़ा तुर्बद मिलाकर देना चाहिये। प्रातःकाल उन्नाव १० दाने, मकोय १० माशे, सफेद बूरा ३५ माशे, इनको मिलाना चाहिये।

लूनी-प्रलूनी—इन दोनों रोगों में वेदना आंत्रों या मूत्राशय से उत्पन्न होकर क्रमशः गुदा और उपस्थ में निकलती है। यह वेदना तीव्र होती है। यदि वेदना नीचे को जाय, तो 'लूनी' रोग और यदि ऊपर को जाय, तो 'प्रलूनी' रोग समझना चाहिये।

उपाय—पिप्पल्यादि गण का काढ़ा तैल के साथ अथवा नमक को पानी में मिलाकर, या यवक्षार के साथ हींग खाना चाहिये।

आध्मान-प्रत्याध्मान—(१) पेट में वायु के रुकने से उदर में अफारा हो जाता है, पेट फूल जाता है, उदर में गुड़गुड़ ध्वनि होती है। पिप्पली-चूर्ण २ तोला, निशोथमूल-चूर्ण ८ तोला, शर्करा ८ तोला, इनको आधा तोला मात्रा में मधु के साथ खाना चाहिये। (२) देवदारु, वच, कूठ, सौंफ, हींग

और सैंधव इनको कांजी में पीसकर लेप करने से आध्मान-रोग और शूल शान्त होता है।

वस्तिवात—(१) मूत्राशय में वायु कुपित होकर मूत्र का अवरोध कर देती है। इसके लिये यवक्षार का चूर्ण गरम पानी के साथ। (२) कुष्माण्ड का रस, खीरे के बीज पीने चाहिये। (३) आँवला पीसकर वस्ति-प्रदेश पर लगाना चाहिये। (४) कपूर की बत्ती शिश्न में प्रविष्ट करनी चाहिये। यदि वायु के कुपित होने से बार-बार मूत्र आता हो, तो बला, मुर्व्वा और दालचीनी इनके चूर्ण को समान भाग शर्करा के साथ मिलाकर २ तोला मात्रा में आध सेर दूध के साथ खाना चाहिये।

त्रिकशूल—(१) कटि-प्रदेश पर जो शूल होता है, उसको त्रिकशूल कहते हैं, नितम्बास्थियों और मेरुदण्ड की अस्थियों का जहाँ मेल होता है, उस स्थान का नाम 'त्रिक' है। इस स्थान पर जो शूल उत्पन्न होती है, उसको त्रिकशूल कहते हैं। इसके लिये सोंठ या दशमूल-क्वाथ में एरण्ड-तैल मिलाकर देना चाहिये। (२) गोखरू और सोंठ का काढ़ा पीना चाहिये। (३) गुग्गुल घी में खाना चाहिये। (४) लहसुन घी में खाना चाहिये। (५) सिंहनाद गुग्गुल खाना चाहिये।

कटिग्रह—इस रोग में कटि (कमर) अकड़ जाती है। रोगी आगे या पीछे अथवा दायें-बायें कठिनता से मुड़ता है। इसको साधारण बोलचाल में 'चनका' कहते हैं। इसको होशियार आदमी तोड़ते हैं। रोगी को चारपाई पर चित्त लेटाकर उसको दबाना चाहिये। फिर उसे कहना चाहिये कि दक्षिण हाथ से भूमि का स्पर्श वाम पार्श्व में करो। इस बार इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि वाम पार्श्व अपनी असली स्थिति से न हिले। (१) शुद्ध जहरकुचला का उपयोग करना चाहिये। मात्रा—आधा से १ रत्ती। (२) जहरकुचला, अफीम और मिर्च की २ रत्ती की गोली बनाकर देना चाहिये। (३) साबर-शृङ्ग को घिसकर लगाना चाहिये। (४) गोमूत्र के साथ हरड़ बड़ी खानी चाहिये। (५) श्वेत सरसों, मुसब्बर, सहजन छाल मिर्च, हींग, आर्द्रक, विड्लवण, धतूर का रस इनका लेप गरम करके करना चाहिये। (६) लाख, सहजन-छाल, धतूर के पत्ते और सेन्धा नमक इनको पीसकर प्रलेप लगाने से व्यथा नष्ट होती है।

अनिद्रा—नींद न आने के कई कारण हैं। शूल, चिन्ता आदि के कारण नींद नहीं आती। परन्तु उन्माद-रोग के प्रारम्भ में नींद का न आना इस रोग का मुख्य चिन्ह है। १—सबसे प्रथम कारण को दूर करना चाहिये। मस्तिष्क में गरमी हो, तो नींद नहीं आती; इसके लिये शीत उपचार करना चाहिये। कुष्मांड-पाक, दूधी-पाक अथवा हलुवा देना चाहिये। २—रात्रि में सोने समय गरम पानी से नहाना चाहिये; पाँव को गरम पानी में रखना चाहिये; शिर पर ठंडा पानी रखना चाहिये; शीतल तेल लगाना भी उत्तम है। उद्वर्त्तन करना उत्तम है। ३—पिप्पलीमूल का चूर्ण गुड़ के साथ खाना चाहिये। ४—अफीम तथा भाँग आदि कृत्रिम वस्तुओं से बचना चाहिये। ५—नारियल के जल में मिश्री, हरड़, आँवला, बहेड़ा भिगोकर, प्रातः छानकर पीना चाहिये। ६—रास्ना, कच्चा परवल और शतावर का रस मिलाकर इसके साथ मकरध्वज १ रत्ती देना चाहिये।

बेशुद्धि—कारण—मस्तिष्क पर आघात, मस्तिष्क-रोग, मूर्च्छा, सर्प-दंश, अफीम, दारू आदि विष, अति शीत, अति गरमी, भूख, बाई, हिस्टीरिया, आक्षेप आदि कारणों से बेशुद्धि होती है।

उपाय—१—जिन कारणों से बेशुद्धि होती है, उनको हटाना चाहिये। २—आँख और मस्तिष्क के ऊपर ठंडा पानी छिड़कना चाहिये। ३—अकरकरा, कपूर, लहसुन का रस, दालचीनी, नकछींकनी, पिप्पली आदि का नस्य देना चाहिये। ४—चूना और नौसादर-आमोनिया सुँघाना चाहिये। ५—छाती पर राई का लेप करना चाहिये, बस्ति देनी चाहिये, मूत्र निकालना चाहिये।

तन्द्रा—इस रोग के कारण रोगी बेसुध पड़ा रहता है। यह रोग कफ और वायु के कारण होता है।

उपाय—१—जिस रोग में यह लक्षण हो, उसकी चिकित्सा करनी चाहिये। २—रोगी को कस्तूरी, अकरकरा, चन्द्रोदय, बछनाग, पिप्पली, सोंठ, देना चाहिये। ३—अनार्य-चिकित्सा के इंजैक्शन—स्ट्रिकनीन, एडरनैलीन, पिट्रोध्युनी और डिजीपटेलिस आदि का इंजैक्शन देना चाहिये। ४—दाल-चीनी, पिप्पली, त्रिकटु आदि उष्ण दवाइयों का आँख में अंजन करना चाहिये।

चक्कर—रोगी के सामने चक्कर दिखाई देते हैं, अपना सिर और मस्तिष्क घूमता हुआ दिखाई देता है। क्विनीन को अधिक मात्रा में खाने से, तम्बाकू, दारू आदि के खाने से, पाण्डु या रक्तस्राव के कारण शरीर में निर्बलता आने पर, विषैली वस्तुओं के सूंघने से चक्कर आने लगता है। पित्त का कोप इस चक्कर का कारण है। इसलिये पित्त-शामक औषधि देनी चाहिये। १—शतावरी रस का पान करना चाहिये। २—स्वर्ण-भस्म का उपयोग करना चाहिये।

प्रलाप—यह लक्षण प्रायः तीव्र ज्वरों में होता है। रोगी के सिर पर ठण्डे पानी की पट्टी या बर्फ का बैग अथवा कोलन-वाटर रखना चाहिये। हाथ और पाँव को ठण्डे कपड़े से लपेट देना चाहिये। शीत पानी की वस्ति देना उत्तम है। नाभि पर आँवले पीसकर लेप करना चाहिये।

दाह—शरीर के अन्दर बहुत दाह होती है। इस रोग का कारण भी शरीर की गरमी है। १—कांजी या सिरके और पानी में वस्त्र भिगोकर रोगी को ओढ़ा देना चाहिये। उशीर और श्वेत चन्दन को गुलाबजल में पीसकर लेप करना चाहिये। ३—केले या कमल की शय्या बनाकर उनपर लेटाना चाहिये। ४—खस के पंखे को गुलाबजल में भिगोकर उससे हवा करना चाहिये। ५—घी को मजीठ के पानी में सौ बार धोकर शरीर पर लगाना चाहिये। ६—दूध या गन्ने का रस पिलाना चाहिये। ७—चन्दन, पित्तपापड़ा, उशीर, खस, मोथा, पद्माख और आँवला सब मिलाकर २ तोला इनको आध सेर जल में पकाकर १ छटाँक शेष रखना चाहिये। इस काढ़े में मधु मिलाकर देना चाहिये। ८—पित्तपापड़ा, मोथा, उशीर इनके शीतल काढ़े में शर्करा मिलाकर पीना चाहिये।

नींद का बहुत आना—कई बार रोगी को बहुत नींद आती है। इसके लिये तुलसीकास का पानी सिर पर डालना चाहिये। २—बकायन का तेल, कूठ, जुन्दबेदस्तर, जंगली प्याज, मवजीज, अकरकरा सिरके में पीसकर लगवाना चाहिये। खाने के लिये दिवालमुश्क देना चाहिये।

बहुत जागना—कद्दू का तेल, स्त्रियों के दूध में मिलाकर नाक और कान में डालना चाहिये। २—बनफसा, नीलोफर, कद्दू का पानी,

हरा धनिया, खुरासानी अजवायन, पोस्त का छिलका और जौ औटाकर सिर पर डालें। ३—काहू की पत्ती का पानी, तर धनिये का पानी, खसखस का शीरा, नीलोफर के तेल से लखलखा बनाकर सुँघाना चाहिये।

शास्त्रीय औषधि—वात-चिन्तामणि, चिन्तामणि चतुर्मुख, मकरध्वज, नारायण-तैल, हिमसागर-तैल, वात-गजांकुश, योगराज गुग्गुल, सिंहनाद गुग्गुल, रसोन-पिण्ड, रास्नादि-क्वाथ, अमरसुन्दरी वटी, विष-मुष्टिका वटी, त्रयोदशाङ्ग गुग्गुल, वरशाशा, अजमोदिका-चूर्ण।

स्मृति-शक्तिहीनता—१—प्रातःकाल प्रतिदिन शतावरी और ब्राह्मीशाल के पत्तों का रस ६ माशा धारोष्ण दूध के साथ खाना चाहिये। २—मूसली का चूर्ण १ तोला, आँवले का चूर्ण ४ तोला, मुलहठी का चूर्ण ३ तोला, शठी का चूर्ण २ तोला, वंशलोचन और जटामांसी प्रत्येक आधा भाग। इस चूर्ण को ३ आना मात्रा में मक्खन, शहद, शर्करा तथा धारोष्ण दूध के साथ पीना चाहिये।

पथ्य—बादाम, पिस्ता, अखरोट, घी, धारोष्ण दूध, मक्खन, मिश्री।

शास्त्रीय औषधि—कल्याणावलेह, अश्वगन्धारिष्ट, महाब्राह्मी-घृत अश्वगन्धा-घृत, च्यवनप्राश, अमृतप्राश-घृत।

सन्धिवात

इस रोग का आक्रमण दो प्रकार से होता है, एक तीव्र और दूसरा पुरातन। इस रोग की सम्भावना उन पुरुषों में अधिकतः रहती है, जिनके मूत्र में यूरिक एसिड अधिक आता है और यह रोग वृद्धों की अपेक्षा युवकों में अधिक पाया जाता है। इस रोग का तात्कालिक कारण सर्दी या भिनाश का लाना है। जब यह रोग होता है, तो ज्वर, तीव्र नाड़ी, गरम त्वचा, जिह्वा मैली और मूत्र गंदला होता है। इस मूत्र को थोड़ी देर रख लिया जाय, तो मैला निक्षेप तैरता दिखाई देता है। दर्द प्रायः किसी बड़े जोड़ में आरम्भ होता है। वह अंश सूज जाता है, लाल हो जाता है और हिलाया-डुलाया नहीं जा सकता। थोड़ा-सा स्पर्श भी रोगी बरदाश्त

नहीं करता। यह भी सम्भव है कि शोथ बहुत-से या सारे जोड़ों पर आक्रमण करे, परन्तु प्राय: एक दिन में १ या २ ही जोड़ आक्रान्त होते हैं, पीछे से सब आक्रान्त हो जाते हैं। ऐसा भी होता है कि एक पार्श्व में रोग प्रारम्भ होगया और दूसरे पार्श्व का जोड़ स्वस्थ रहा। इसके अतिरिक्त रोगी के पसीने में बहुत खटास होती है, जो रोगी को आराम लेने नहीं देती। इस पसीने के कारण कभी-कभी छोटे-छोटे दाने भी निकल आते हैं। इनका कारण गरमी और नमी है, परन्तु इनमें कोई खतरा नहीं। इस रोग का समय १४ दिन से ३ सप्ताह है, इस बीच में रोगी पूर्णत: शान्त होता है अथवा सन्धियों में कठोरता और दर्द शेष रह जाता है। यदि ताप-परिमाण १०५ फार्नहाइट तक पहुँच जाय, तो समझना चाहिये कि रोगी का हृदय आक्रान्त होगया है।

इस रोग का मुख्य उपद्रव हृदय का आक्रान्त होना है। कई बार इस उपद्रव के कारण हृदय के आक्रान्त होने से मूर्च्छा भी हो जाती है। परन्तु साधारणत: जब हृदय आक्रान्त होता है, उस समय वाम पार्श्व में तीव्र या धीमे से चुभनेवाले दर्द का अनुभव होता है। यह दर्द गहरी साँस लेने से बढ़ जाता है। छाती तंग या खिंची हुई (जकड़ी हुई) प्रतीत होती है, हिचकियाँ भी किसी कदर आती हैं, श्वास में थोड़ी-बहुत कठिनता होती है। हृदय की गति अनियमित हो जाती है, जिसका अनुभव नाड़ी द्वारा हो जाता है, अर्थात नाड़ी अनियमित, मन्द, छोटी तथा एक विशेष प्रकार का धक्का देती है। इसलिये आवश्यक है कि इस रोग में हृदय के आक्रान्त होने की सम्भावना प्रथम दिन से रखनी चाहिये और प्रतिदिन हृदय तथा नाड़ी को देखना चाहिये। यह भी हो सकता है कि इस रोग के कारण हृदय में निक्षेप जमा हो जायँ। इसके अतिरिक्त कपाटियों के रोग भी हो सकते हैं। हृदय के आक्रान्त होने पर श्वयथु का होना बहुत सम्भव है, जिसके कारण कि जल्दी या देर में मृत्यु हो सकती है।

पुरातन संधिवात—यह रोग प्राय: वृद्ध पुरुषों में होता है, विशेषत: उनमें, जिनका पोषण निर्बल होता है। पुरातन संधिवात का एक रूप संधियों की अस्थियों पर आक्रमण करता है, दूसरा रूप मांस-पेशियों पर आक्रमण करता है। इसको 'मस्क्युलर रोमेटिज्म' कहते हैं। इस रोग में दर्द बड़ी सन्धियों

में होता है। कभी-कभी इनमें शोथ भी हो जाता है, परन्तु छोटी सन्धियाँ यथा अंगुलियों के जोड़ प्राय: बच जाते हैं। परन्तु जब बड़ी सन्धियों के साथ छोटी सन्धियाँ भी आक्रान्त हो जाती हैं, तब इसको रोमेटिक गाऊट' कहते हैं। सन्धियों को आक्रान्त हुये यदि बहुत दिन हो जायँ, तो कभी-कभी उनके हिलाने से शब्द भी सुनाई देता है। यह शब्द इस प्रकार का होता है, मानों हड्डियाँ टूट रही हैं। इस रोग में न तो ज्वर होता है और न पसीना होता है। कई बार गरमी से दर्द कम हो जाता है और कई बार गरमी से दर्द बढ़ जाता है।

चिकित्सा—तीव्र आक्रमण मे रोगी को सम्पूर्ण समय बिस्तर पर रखना चाहिये। उसके अंगों को रुई या फलालेन से ढक देना चाहिये। सन्धियों पर क्षारीय लोशन लगाना चाहिये। इसके लिये सोडाबाई कार्ब का पूर्ण घोल (पानी में जितना घुल सके उतना) अथवा इसका गाढ़ा लेप बनाकर प्रलेप करना चाहिये। दर्द बहुत हो, तो पोस्तों के डोडों का सेंक देना उत्तम है। और पोस्तों के डोडों ही के पानी में कपड़ा भिगोकर अङ्ग पर लपेट देना चाहिये। ऊपर से पतला रेशम लपेट देना चाहिये, जिससे वह उड़ न जाय। यदि हिलने-डुलने में दर्द न हो, तो प्रतिदिन ९८ फार्नहाइट गरम पानी में स्नान देना चाहिये। पानी में सोडाबाई कार्ब घोल देना उत्तम है। रोगी की आँतों को स्वच्छ रखने के लिये अवश्य समय-समय पर विरेचन देते रहना चाहिये और सोडियम सैलिसिलेट के मिश्रण को दिन में तीन बार कम से कम देना चाहिये। यदि हृदय-दर्द आरम्भ हो जाय, तो राई का प्लास्टर लगाना चाहिये। छाला उठाना या जौंक का लगवाना भी उत्तम है। दर्द बहुत हो और नींद न आती हो, तो १० से १५ ग्रेन की मात्रा मे डोवर्स पाउडर देना चाहिये।

आर्य-औषधि — (१) लहसुन, सोंठ और निर्गुण्डी इनका काढ़ा पीना चाहिये। (२) दशमूल या सोंठ के काढ़े के साथ एरण्ड-तैल पीना चाहिये। (३) निशोथ १२ माशा, सैन्धव २ माशा, शुण्ठी-चूर्ण २ माशा, इनको मिलाकर कांजी के साथ पीना चाहिये। (४) चीतामूल, कुटकी, पाठा, इन्द्रजौ, अतीस, गिलोय इनका काढ़ा पीना चाहिये। (५) रास्ना, गिलोय, अमलतास, देवदारु, गोखरू, एरण्ड-मूल, पुनर्नवा और सोंठ इनका काढ़ा

पीना उत्तम है। (६) पान या आक के पत्तों को गरम करके सन्धि पर बाँधना चाहिये। सहजन की छाल को पीसकर लेप करना चाहिये। (७) मधु और चूने को मिलाकर दर्दवाले भाग पर लगाना चाहिये। (८) सुवा देवदारु, कूठ और सैन्धा नमक को पीसकर आक के दूध में मिलाकर लेप करना चाहिये। (९) वत्सनाग का तेल मलना भी उत्तम है। (१०) बनफसा, पित्तपापड़ा, इमली, आलूबुखारा, मुनक्का, हरड़ शीरीखिश्त और तुरञ्जबीन इनका काढ़ा करके वंशलोचन के साथ देना चाहिये। (११ अफीम, जङ्गली सेव की जड़ इनको काहू के पानी में मिलाकर लेप करना चाहिये। (१२) बाबूने का तेल मलना भी उत्तम है। (१३) यदि दर्द बहुत हो, तो भाँग के बीज १७॥ माशे और अफीम ३ माशे इनको रत्ती के बराबर गोली बनाकर देना चाहिये।

शास्त्रीय औषधि—रास्ना सप्तक-योगराज गुग्गुलु, चोपचीनी पाक, महारास्नादि क ढ़ा, एरण्ड-पाक, नारायण-तैल, वातगजाङ्कुश, किशोर गुग्गुल उत्तम है।

पथ्य—रोगी को जौ का दलिया, दूध, घी, तेल, गेहूँ, कुलथी, परवल, लहसुन, सहजन तथा गरम एवं स्निग्ध पदार्थ पथ्य हैं। **अपथ्य**—चिन्ता, जागरण, मलमूत्र का रोकना, वमन, मेहनत, लंघन, चना, बाल, पत्तों के शाक, वात उत्पन्न करनेवाले पदार्थ, मद्यपान, स्त्री-सेवन, आदि सब निषिद्ध हैं।

आमवात (गठिया)

इस रोग का कारण शरीर में यूरिक एसिड की अधिकता का होना है। यह एसिड जब तन्तुओं में निक्षिप्त होने लगता है, उस समय इस रोग का प्रारम्भ होता है। यूरिक एसिड कई कारणों से बनता है, परन्तु उन सबका कारण यही है कि जिस समय यकृत रुग्ण होजाता है, उस समय यह अधिक मात्रा में बनता है। जैसे—मद्यपान। कई बार यह रोग वंश-क्रमागत के रूप में आता है, अथवा यकृत और वृक्क के रुग्ण होने से भी यूरिक एसिड शरीर में बढ़ जाता है। गठिया का एक रूप सोसक के

चिरकालीन विष भी उत्पन्न हो जाता है। कुछ बातों में यह रोग संधिवात से मिलता है। परन्तु इस रोग में प्रथम छोटी सन्धियाँ आक्रान्त होती हैं, जैसे पाँव के अँगूठे की या हाथों की अँगुलियों की सन्धियाँ, सन्धिवात रोग में बड़ी सन्धियाँ आक्रान्त होती हैं। गठिया रोग उन लोगों में प्रायः करके होता है, जिनकी जिन्दगी ऐश और आराम में बीतती है, और सन्धिवात उन लोगों में होता है, जिनको पूरे वस्त्र भी शरीर ढकने के लिये नहीं जुड़ते और जिनको पेट भर भोजन भी नसीब नहीं होता। गठिया प्रायः ३०-३५ साल की आयु के पीछे होता है और सन्धिवात १६-१८ वर्ष की आयु में पकड़ लेता है। परन्तु कई बार दोनों रोग साथ में मिलकर रोगी को घेर लेते हैं।

इस रोग का प्रारम्भ या आक्रमण जब होने लगता है, उस समय रोगी का मन विक्षुब्ध हो जाता है, ज्वर, शिर-दर्द तथा अजीर्ण के लक्षण होने लगते हैं। प्रायः करके इसका आक्रमण रात्रि में होता है। आक्रान्त स्थान पर (जो स्थान प्रायः पाँव का अँगूठा होता है) चूर्णित करनेवाला दर्द होता है, प्रातःकाल नष्ट हो जाता है। इस दर्द के कारण अँगूठा लाल, सूजा हुआ और चमकदार होता है, दबाने से दर्द प्रतीत होता है। ये लक्षण प्रातःकाल दर्द के शान्त होने पर भी बने रहते हैं। इस रोग में जो पसीना आता है, उसकी प्रतिक्रिया आम्ल होती है, रोगी का स्वभाव चिड़चिड़ा होता जाता है। प्रथम मूत्र गँदला, गाढ़ा पीला और स्वच्छ होता है, पीछे से राशि में अधिक हो जाता है, और इसमें निक्षेप बैठता है, जो ईंट के चूरे से मिलता है। दर्द रात्रि में बढ़ जाता है और प्रातःकाल कम हो जाता है। इस प्रकार से प्रत्येक रात्रि में जो दर्द होता है, वह पिछली रात्रि की अपेक्षा अधिक होता है। यद्यपि सूजन के बढ़ने के साथ दर्द घट जाता है, परन्तु बहुत थोड़ा। जब दर्द और शोथ शान्त हो जाते हैं, उस समय आक्रान्त स्थान की त्वचा पीली और मुरझाई हुई हो जाती है। रोग शान्त हो जाता है और कई महीनों तक इसका आक्रमण नहीं होता। बार-बार आक्रमण होने से व्रण और पथरी बनने की आशङ्का हो जाती है। इस रोग में अँगुलियाँ भी उपरोक्त लक्षणों के साथ आक्रांत हो सकती हैं। गठिया रोग से आक्रान्त व्यक्ति के नाखून कठोर, टूटनेवाले तथा इनपर रेखायें पड़ जाती हैं। बहुत कम अवस्थाओं में ऐसा होता है कि रोग का

आक्रमण पाँव के अँगूठे से हट कर आमाशय पर हो जाय। जब ऐसा होता है, तो उस समय कौड़ी-प्रदेश पर दर्द, आध्मान, मूर्च्छा, बेचैनी और कमजोर अनियमित नाड़ी रहती है। इस रोग के कारण शरीर के अन्य-अन्य अवयव भी आक्रान्त हो सकते हैं। जिसमें भ्रम, कास, श्वास, त्वचा या आँख अथवा कान, हृदय, मस्तिष्क के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इसका कारण यह है कि इन अवयवों में यूरिक एसिड एकत्रित हो जाता है।

चिकित्सा—सबसे प्रथम रोगी को सोडियम सल्फेट या अन्य औषधियों से विरेचन देना चाहिये। परन्तु विरेचन से रोगी की शक्ति निर्बल नहीं होने देना चाहिये। स्थानिक चिकित्सा को रुई या फलालैन से लपेट देना चाहिये। रुई को सोडा बाईकार्ब के घोल में (४ ड्राम १ औन्स पानी में) तर कर लेना चाहिये, रोगी को पूर्ण विश्राम देना चाहिये। सब अवस्थाओं में रोगी को गरम रखना चाहिये, सर्दी के कारण गठिया अन्तः-अवयवों में चला जाता है। पूर्ण विश्राम देने के साथ रोगी को दूध, जौ का पानी, दलिया, सागू देना चाहिये। इस रोग में नमकीन पानी विशेषतः पीना चाहिये। सोडावाटर इस रोग में उत्तम है। इस रोग में गरम, उत्तेजक औषधियों से, मद्य से यथासम्भव बचना चाहिये।

रोगी को मांस-रहित भोजन खाना चाहिये। शर्करा और घी, मिठाई से भी परहेज रखना चाहिये। रोगी को साइट्रेट आफ मैगनेशिया प्रातःकाल पीना चाहिये, जिससे आँतें खुली रहें।

इस रोग के लिये अनार्य-चिकित्सा में सबसे उत्तम औषधि "कौलचिकम" है। ३० बूँद कौलसीकम वाइन को पोटास बाईकार्ब के साथ प्रत्येक चार घन्टे के अन्तर से लेना चाहिये। इससे २४ घण्टे में दर्द कम हो जाता है। यदि हृदय-रोग की थोड़ी-सा सम्भावना हो, तो इस दवाई को बिना चिकित्सक की सम्मति के नहीं देना चाहिये। दर्द के स्थान पर थोड़ा-सा क्लोरोफार्म रुई के ऊपर रखकर बाँध देना चाहिये। यदि आराम न हो, तो लैड एसिटेट १ ड्राम, मार्फिया एसिटेट ३ ग्रेन, पानी ८ औन्स मिलाकर गरम करके लगाना चाहिये। सोडियम सैलिसिलेट १० ग्रेन देना अच्छा है।

(१) लीथिया साइट्रेट १० ग्रेन, साईट्रिक एसिड ३ ड्राम, सीरप

ऑरेञ्ज २ ड्राम, पानी १६ औन्स। (२) सोडा बाईकार्ब ३ ड्राम, पानी १६ औन्स।

प्रत्येक मिश्रण में से दो-दो औन्स लेकर मिलाकर पीना चाहिये; इससे झाग उत्पन्न होती है।

रोग से बचने के लिये विशीवाटर, कार्लस बैड वाटर, हैरोगेट, लैमिंगटन वाटर पीना चाहिये।

यूनानी उपाय—(१) सनाय, पीली हरड़, उन्नाब, लसोड़ा, इमली, पित्तपापड़ा, कासनी, आलूबुखारा, किशमिश, शीरीखिस्त, तुरञ्जबीन इनका कषाय देना चाहिये। (२) रोटी का गूदा, अण्डे की जर्दी, अफीम, भाँग के बीज, केसर इनका लेप करना चाहिये। (३) बाबूना, सोया, खितमी, सलारस, वूल, एलुवा, जुन्दबेदस्तर, फरफयून, मेथी का लुआब, अलसी के बीज का लुआब लेप करना चाहिये। (४) रसौत, एलुवा, चन्दन, भामीसा की सलाई, केसर प्रत्येक ७ माशे, गिले अरमानी ३॥ माशे, कर्नब जली हुई १४ माशे कूटकर मकोय के पानी में मिलाकर लेप करना चाहिये। (५) पीली हरड़ १७॥ माशे, मुनक्का ३५ माशे, पित्तपापड़ा ३१॥ माशे, बिस्फाइज गारीकून कूटकर, बहेड़ा, आँवला, उस्तखद्दूस, नीबू की जड़ की छाल, हिना के पत्ते प्रत्येक ३॥ माशे, कन्तूरयून १०॥ माशे, सबको १॥ सेर पानी में औटावें। जब आध सेर शेष रहे, तब १०॥ माशे आकाश बेल डालकर और छानकर इसमें से पाव भर लेकर ४॥ माशे तुर्बुद, ३॥ माशे यारजफयकरा और १॥ माशे नमक मिलाकर पीना चाहिये।

आर्य-औषधि—(१) सोंठ तथा गिलोय का काढ़ा पीना चाहिये। (२) सोंठ और गोखरू का काढ़ा पीना चाहिये। (३) रास्ना, देवदारु, भिलावा, सोंठ, मिर्च, पिप्पली, एरण्ड-मूल, पुनर्नवा और गिलोय इनके काढ़े में सोंठ का चूर्ण मिलाकर पीना चाहिये। (४) सोंठ के काढ़े में एरण्ड-तैल मिलाकर पीना चाहिये। (५) पुनर्नवा, हरड़, अजवायन इनका चूर्ण छाछ में पीना चाहिये। (६) हरड़ १२ भाग, सोंठ ४ भाग, अजवायन ३ भाग, खुरासानी अजवायन २ भाग, सेंधानमक २ भाग इनका चूर्ण गरम पानी में पीना चाहिये। (७) खंड-शुण्ठी—सोंठ ३२ तोला, घी ८० तोला, दूध १२८ तोला, खाँड २०० तोला, इनका पाक करके इसमें सोंठ, मिर्च, पिप्पली,

दालचीनी, तमालपत्र, इलायची प्रत्येक चार-चार तोला मिलाकर पाक करना चाहिये। (८) गोमूत्र के साथ गुग्गुल पीना चाहिये। (९) सोंठ, हरड़ और गिलोय के काढ़े में गुग्गुल मिलाकर पीना चाहिये। (१०) देवदारु, वच, मोथा, सोंठ, अतीस, हरड़ इनके चूर्ण को गरम जल के साथ पीना चाहिये (११) पुनर्नवा क्वाथ में सोंठ मिलाकर पीना चाहिये। (१२) एरण्ड-तैल देना चाहिये। (१३) हरीतकी-चूर्ण को एरण्ड-तैल के साथ मिलाकर देना चाहिये।

शास्त्रीय औषधि – रास्ना सप्तक, महारास्नादि क्वाथ, अजमोदादि चूर्ण, शुण्ठी-पुटपाक, अमृता गुग्गुल, योगराज गुग्गुल, मेथीपाक रसोनपिण्ड।

वातरक्त (कुष्ठ)

कुष्ठ—यह एक भयानक रोग है और यह इस प्रकार का रोग है, जो वंश आदि में लगातार उतरता रहता है। शास्त्र में लिखा है कि जिस कुल में यह रोग हो, उसके कुल में विवाह नहीं करना चाहिये। इस रोग का कारण एक कीटाणु माना जाता है, जिसको 'बैसिलस लैप्री' कहते हैं। यह कीटाणु त्वचा, वात-नाड़ियों में, ग्रन्थियों में मिलती है। इस रोग में कान की गुद्दी और माथे की त्वचा बहुत आक्रान्त होती है।

इस रोग के तीन रूप हैं—१—इस रूप में गोल चक्के या धब्बे होते हैं, जिनका आकार अनियमित एवं ताँबे के रंग के होते हैं, जो पीछे से श्वेत हो जाते हैं। रुग्ण त्वचा में स्पर्श-ज्ञान नष्ट हो जाता है। यह अंगुलियों में, पाँव के अँगूठे में अथवा चेहरे पर या शरीर के किसी भाग में हो जाते हैं। इसको वात-नाड़ियों में होनेवाली नर्व या एनैसथैटिक लेप्रोसी कहते हैं। २—इस रूप में धीरे-धीरे उभार उत्पन्न होते हैं, यह उभार ठोस होते हैं, इनका आकार भिन्न होता है। पिन के शिर से लेकर गूलर तक बड़े होजाते हैं। देखने में विचित्र मालूम होते हैं। इस रूप को ऊदुम्बर कुष्ठ कहते हैं। अन्त में इस रुग्ण भाग में व्रण बन जाता है, और यह व्रण आगे बढ़कर त्वचा और अस्थि को खा ले जाता है, इससे पाँव के अँगूठे और अँगुलियाँ नष्ट हो जाती हैं। ३—तीसरा रूप ऊपर के दोनों प्रकार के रूपों का मिश्रण

है। यह रूप पैतृक होता है, परन्तु रुग्ण व्यक्ति के स्राव के लगने से भी उत्पन्न होजाता है। एक प्रकार से संक्रामक रोग है।

इस रोग के लिये कोई इलाज नहीं है, परन्तु उत्तम भोजन, खुली वायु और शक्तिवर्द्धक औषधियाँ इस रोग को बढ़ने से कुछ काल तक रोक सकती हैं।

संखिया इस रोग के लिये उत्तम मानी जाती है। गर्जन ऑयल २ ड्राम और चूने का पानी २ ड्राम मिलाकर पीना चाहिये। १ भाग तेल और ३ भाग चूने का पानी मिलाकर दिन में दो बार दो घन्टे तक त्वचा पर मलना चाहिये। जो व्यक्ति इन रोगियों में रहें, उनको पूर्ण स्वच्छता का ध्यान रखना चाहिये।

वातरक्त

इस रोग में रक्त खराब हो जाता है। एक प्रकार से यह भी कुष्ठ का ही भेद है। इसका कारण भी विरुद्ध आहार (यथा—मछली और दूध) खट्टे, मीठे, नमकीन, क्षार, माँस, तिल, सुरा, आसव आदि पदार्थों को खाने से, क्रोध, दिन में सोना, रात में जगना इत्यादि कारणों से कोमल व्यक्तियों में, विशेषत: स्थूल पुरुषों में यह रोग होता है।

लक्षण—वातरक्त या कुष्ठ होने से पूर्व या तो पसीना सर्वथा नहीं आता, बहुत अधिक मात्रा में आता है, स्थान काला हो जाता है। स्पर्श-शक्ति का लोप हो जाता है। यदि किसी स्थान पर किसी कारण से क्षत हो जाय, तो उसमें बहुत दर्द होता है, सब सन्धियाँ ढीली पड़ जाती हैं, आलस्य, अवसन्नता, पिड़िका की उत्पत्ति, घुटने, कटि, जङ्घा में सुई के समान वेदना होती है, स्पर्श-शक्ति का ह्रास, स्थान के रंग में परिवर्त्तन हो जाता है।

उपाय—यदि रोग त्वचा और मांस में आश्रित हो, तो इसको उत्तान अवस्था कहते हैं और जब रोग मेद आदि धातुओं के अन्दर चला जाय, उस समय इसको गम्भीर अवस्था कहते हैं। वातरक्त रोग में तीव्र उष्ण प्रलेप, उपनाह, विरेचन आदि क्रियायें करनी चाहिये। सींगी या पछने लगवाना उत्तम है। (१) गिलोय के काढ़े में शिलाजीत अथवा गिलोय और त्रिफला-क्वाथ में गुग्गुल मिलाकर पीना चाहिये। (२) देर तक गिलोय का

चूर्ण या इसका स्वरस पान करना चाहिये। (३) गिलोय-क्वाथ को घी के साथ पीने से वात-रोग, गुड़ के साथ पीने से मलावरोध, शर्करा के साथ पीने से पित्त, मधु के साथ पीने से कफ, सोंठ के साथ आमवात तथा एरण्ड-तैल के साथ पीने से वातरक्त शान्त होता है। (४) कटुकी, गिलोय, मुलहठी, सोंठ इनके कल्क को मधु और गोमूत्र के साथ पीने से वात-रक्त शान्त होता है। (५) तीन या पाँच हरड़ गुड़ के साथ खाकर ऊपर से गिलोय का काढ़ा पीने से अवश्य लाभ होता है। (६) वासा, पंचमूल, गिलोय, एरण्ड-मूल, गोखरू इनके काढ़े में एरण्ड तैल, हींग और सैन्धव लवण मिलाकर पान करने से वात-रक्त शान्त होता है। (७) एरण्ड-मूल, वासा, गोखुर, गिलोय, रास्ना, तालमखाना-मूल इनके काढ़े को पीना चाहिये। (८) गुड़ के साथ पिप्पली खाने से या गुड़ के साथ हरड़ खाने से वातरक्त रोग शान्त होता है। (९) रास्ना, गिलोय, मुलहट्ठी, बला इनको दूध के साथ पीसकर लगाने से वात-रक्त शान्त होता है। (१०) गृह-धूम, वच, कूठ, सौंफ, हरिद्रा, दारुहरिद्रा इन सबको जल में पीसकर प्रलेप देने से रोग शान्त होता है। (११) गिलोय, सोंठ, धनिया प्रत्येक २ तोला लेकर काढ़ा करना चाहिये। (१२) वासा, गिलोय और अमलतास इनके काढ़े में एरण्ड-तैल मिलाकर पीने से, (१३) पटोल, कुटकी, शतावरी, त्रिफला, गिलोय काढ़ा का पान करने से वात-रक्त शान्त होता है। (१४) सप्तपर्ण की छाल, कुटकी, अनन्तमूल, स्वर्णमुखी, मजीठ, दारुहरिद्रा, मुलहट्ठी, चोपचीनी, केला प्रत्येक १ तोला ½ सेर जल में पाक करके जब आध पाव रह जाय, तब प्रातःकाल पीना चाहिये। इससे दस्त साफ आती है। (१५) गन्धक २ रत्ती, रक्त-वर्ण गैरिक १ रत्ती, घीकुँवार का रस १ तोला, इनको प्रतिदिन पीना चाहिये। (१६) नीम के फूल शुष्क करके उनका चूर्ण कर लेना चाहिये। इसी प्रकार अमलतास के फूल सुखाकर चूर्ण करना चाहिये। ये दोनों चूर्ण मिलित ४ आना, लोह-भस्म १ रत्ती, कच्ची हल्दी और परवल के रस के साथ खाना चाहिये। (१७) कच्चे प्याज का रस, प्रातःकाल पीने से रक्त-वृद्धि होती है।

शास्त्रीय औषधि—बृहत मंजीष्ठादि क्वाथ, चन्द्रप्रभा गुटिका, किशोर-गुग्गुल, गोक्षुरादि गुग्गुल, त्रिफला गुग्गुल, गुडूच्यादि तैल, सोमराजी तैल, पंचतिक्तघृत, अमृतांगुर लोह।

रक्त-पित्त

इस रोग के कारण शरीर के अन्दर कुछ परिवर्त्तन आजाते हैं। यह रोग या तो स्पष्ट रूप में होता है, अथवा छिपा हुआ होता है। आर्य-वैद्यक में इस रोग के कारण तीक्ष्ण, क्षार, उष्ण, लवण आदि पदार्थों का अति सेवन, एवं अति ताप, कसरत, अति पन्थ, शोक, मैथुन आदि एवं आहार-विहार की अनियमता से पित्त विकृत होकर रक्त को कुपित करता है। पित्त और रक्त की आपस में बहुत समानता है, दोनों की गन्ध एवं वर्ण एक-सा है, दोनों ही उष्ण हैं और दोनों पास-पास रहते हैं। उपरोक्त कारणों से कुपित रक्त धमनियों की दीवारों को विदीर्ण करके बाहर आता है। इसके तीन रास्ते हैं। १—जब यह मुख, नाक, या कान से बाहर आता है, इसको ऊर्ध्वग रक्त-पित्त कहते हैं। २—जब रक्त शिश्न या गुदा अथवा योनि से स्रवित होता है, तब इसको अधोगामि रक्त-पित्त कहते हैं। ३—जब रक्त सारे शरीर से रोम-कूपों से निकले।

अनार्य-चिकित्सा में इस रोग का कारण ताजी वनस्पति, शाक आदि वस्तुओं का भोजन में अभाव है। इसके अतिरिक्त अँधेरे में रहना इस रोग की उत्पत्ति का दूसरा कारण है।

छिपा हुआ रक्त पित्त—इसके कई रूप में हैं; १—रूप में यह बिना किसी लक्षण के बहुत दिनों तक बहुतथोड़ी मात्रा में होता रहता है। २—इसके कारण जो पहला लक्षण मिलता है, वह यह होता है कि रोगी पीला हो जाता है। ३—इस रोग का पता इस प्रकार से चलता है कि थोड़ी-सी धुरूंड व्रण का रूप धारण कर लेता है, अथवा अन्य रोग-जन्य निर्बलता बहुत देर में अच्छी हो; ४—अन्य रोग यथा लौहरी-सार (मुगलीफोड़ा) या देहली सार आदि लक्षणों में भी इस रोग का होना बहुत सम्भव है। ५—कई बार इस रोग के कारण सन्धिवात-जन्य शूल होता है, आँख के नीचे सूजन हो जाती है। मुँह में व्रण हो जाता है, जिह्वा लाल हो जाती है, मसूड़े अच्छे रहते हैं। ६—प्रायः करके यह रोग इस रूप में होता है कि दाँतों के मसूड़े सूज जाते हैं। ७—कई मनुष्यों में इसके कारण और कुछ अपूर्ण पोषण के कारण (भोजन की न्यूनता से) कोष्ठ में श्वयथु

उत्पन्न हो जाता है, जिसके कारण हृदय में बहुत धड़कन होती है। ८—कई बार इसके कारण अतिसार हो जाता है। ९—चिरकालीन अग्नि-शोथ भी इसका रूप है। १०—इसके कारण गठिया रोग भी हो जाता है। ११—यह रोग बेरेबरी (एक प्रकार का रोग, जो अपूर्ण पोषण के कारण होता है) के लक्षण के रूप में हो सकता है। १२—इस रोग के कारण परप्युरा हो सकता है। इस रोग में त्वचा (विशेषतः टाँगों) पर भिन्न-भिन्न आकार के काले धब्बे उत्पन्न हो जाते हैं। इन धब्बों का कारण त्वचा के नीचे रहनेवाली रक्त-वाहिनियों में रक्तस्राव होता है।

स्पष्ट रक्तस्राव—इस रोग में मसूड़े सूज जाते हैं, रोगी का दिल गिर जाता है। अंगों में मीठा दर्द रहता है, हृदय में धड़कन रहती है, श्वास छोटा हो जाता है। जिह्वा मैली और मोटी हो जाती है। चेहरे का रंग गँदला हो जाता है, ओठ नीले या पीले हो जाते हैं। आँखों के चारों ओर काली रेखा आजाती है। मसूड़े सूज जाते हैं, पोले हो जाते हैं। और थोड़ा दबाने से इनमें रक्तस्राव होने लगता है। दाँत प्रायः ढीले होते हैं; श्वास में दुर्गन्धि आती है। रोग के बढ़ने के साथ-साथ शरीर दिखाई देने लगता है। थोड़े से दबाव या आघात से व्रण उत्पन्न हो जाता है। पुराने जख्म ताजे हो जाते हैं, सन्धियाँ सूज जाती हैं। रोगी की नाक या अन्य अवयवों से रक्त-स्राव आने लगता है। हृदय कमजोर हो जाता है।

उपाय—रोगी को ताजी सब्जियाँ खाने को देनी चाहिये। विशेषतः नमक अधिक देना चाहिये। नारियल का पानी या ताजा दूध (डिब्बों का नहीं), नीबू का रस, (अभाव में पोटाशियम साइट्रेट १० ग्रेन) दिन में दो-तीन बार देना चाहिये। सब प्रकार के फल, सिरका गन्ना आदि देना चाहिये। विरेचन के लिये इमली या सोडियम सल्फेट देना चाहिये। दाँतों के लिये अनार की छाल के काढ़े में फिटकरी मिलाकर देना चाहिये। अतिसार के लिये बेल का शर्बत पीना उत्तम है। यदि रोगी में निर्बलता बहुत आजाय, तो उसको लेटाकर रखना चाहिये।

रोग से बचने के लिये ताजी सब्जियाँ, नीबू, प्याज, अमचूर का उपयोग करना चाहिये।

साधारण उपाय—१—इस रोग के लिये वासक एक उत्तम औषधि गिनी जाती है। इसे स्वरस या पुटपाक-विधि से किसी भी प्रकार से देना चाहिये। २—पेठा-कुष्माण्ड—इनका स्वरस या अवलेह उत्तम है। ३—धनिया, आँवला, बाँसा, किशमिश और पित्तपापड़ा; इनका शीत कषाय देना चाहिये। ४—गूलर के रस में मधु मिलाकर। ५—वासक के स्वरस के साथ पिप्पली व हरड़ मधु के साथ। ६—पका हुआ गूलर, खजूर, जम्भारी, हरड़ अथवा अकेली द्राक्षा को पीसकर मधु के साथ खाने से अवश्य लाभ होता है। ७—किशमिश, लाल चन्दन, लोध्र प्रियंगु; इन सब द्रव्यों का चूर्ण वासक के रस में मधु के साथ पीना चाहिये। ८—दूब का रस मधु के साथ पीना चाहिये। ९—पलाश के फूलों को दुगुनी शर्करा में मथकर पानी या दूध के साथ खाना चाहिये।

शास्त्रीय औषधि—वासाघृत, दूर्वाद्य-घृत, वासावलेह, कुष्माण्डावलेह, चन्द्रकला-रस, उशीरासव, च्यवनप्राश, द्राक्षासवलेह।

ऊर्ध्व रक्तपित्त के लिये नकसीर देखिये और अधोगामी रक्त-पित्त के लिये अर्श और योनि-रोग देखिये।

यदि रक्त सम्पूर्ण शरीर से स्रवित हो, तो उस समय रोगी के बल के अनुसार विरेचन देना चाहिये। इस प्रकार की दवा देनी चाहिये, जो रक्त को गाढ़ा करे; जैसे—कैलशियम क्लोराइड या कहरुआ, जरिश्क कासनी, अनारदाने का खिसाड़ा, उन्नाव का शरबत भी उत्तम है। प्रातःकाल प्रतिदिन उन्नाव दस आने पानी में औटाकर छानकर पीना चाहिये।

विशेष सूचना—यदि रोगी बलवान हो, और मूर्च्छा आदि उपद्रव का भय न हो, तो रक्त-स्राव को एकदम बन्द नहीं कर देना चाहिये। वृद्ध या निर्बल मनुष्य के रक्तस्राव को एकदम से रोकना चाहिये।

पथ्य—चावल, बथुवा, गुल्फा, साठी, जौ, मूँग, मोठ, तुवर, परवल, बड़, पीपल, गूलर, घिया, ककड़ी आदि शाक, अनार, आँवला, नारंगी फल उत्तम है।

अपथ्य—व्यायाम, धूप, मल और मूत्र का अवरोध, घोड़े की सवारी, धूम्रपान, गुड़, दही, सुपारी आदि पदार्थ हानिकारक हैं।

एक उत्तम उपाय—१—चार पाँच जपा के फूल तोड़कर इनको दो-तीन नीबुओं के रस में डाल देना चाहिये। पीछे से दो-दो पल गुलाब और केवड़े का अर्क मिला देना चाहिये। इसमें एक अञ्जली भर श्वेत बूरा मिलाकर शीशी के मर्त्तवान में रख देना चाहिये। ऊपर से पानी भर देना चाहिये। तीसरे दिन इनको छानकर एक शीशी में भर लेना चाहिये। उस शीशी को ठण्डे पानी या बर्फ में रखना चाहिये। इसका रंग लाल रक्त के समान होगा। इसकी मात्रा २ तोला है। इसी प्रकार से जामुन और फालसा से भी बनाना चाहिये। २—खजूर को मधु के साथ पीसकर खाने से रक्त-पित्त अवश्य शान्त होता है।

गलगंड (कण्ठमाला)

इस रोग के अन्दर शरीर के ऊपर गाँठें बढ़ जाती हैं। ये गाँठें शरीर के अन्दर की लसीका ग्रन्थियाँ होती हैं। जहाँ पर लसीका ग्रन्थियाँ अधिक होती हैं, वहाँ पर यह रोग स्पष्ट हो जाता है। साथ ही रोग का कारण जिस स्थान पर होगा, उस स्थान के समीपवर्त्ती ग्रन्थियाँ प्रथम आक्रान्त होती हैं। उदाहरण के लिये—यदि रोग का कारण फेफड़ों में है, तो गले की ग्रन्थियाँ आक्रान्त होंगी। यह रोग उन व्यक्तियों में अधिक होता है, जो निर्बल तथा अपूर्ण खुराक पर रहते हैं। इस रोग का कारण रक्त-दोष है। इस रोग का कारण वंश-क्रमागत दोष भी है। यदि पिता बहुत तमाकू पीता हो या माता को गर्भावस्था के समय श्वेतप्रदर हो जाय, तो बच्चे में भी यह रोग हो जाता है।

इसके अतिरिक्त अनार्य-चिकित्सक इस रोग को यक्ष्मा का रूप मानते हैं। उनके विचार से इस रोग का कारण ट्यूबरकल वैसिलाई (यक्ष्मा की कृमि) है। इससे उनका विचार है कि यह रोग उन व्यक्तियों में विशेषतः होता है, जिनके माता-पिता को यक्ष्मा-रोग है। जिन बच्चों में यह रोग होना होता है, उनके बाल काले, ऊपर का ओष्ठ मोटा, नाक के नथने चौड़े, रुग्ण या एक अजीब किस्म का चेहरा या हाथ छोटे, चौड़े नख, जिनपर रेखायें पड़ी होती हैं, बिना अनुपात का शरीर और अङ्ग होते हैं। इस रोग-वाला बच्चा निर्बल होता है। उसकी प्रतिभा मन्द होती है। उसके गले की

ग्रन्थियाँ बड़ी होती हैं, जो पककर विद्रधि बन जाती हैं। टौंसिल बढ़े होते हैं। कान से स्राव होता है, आँखों में शोथ रहता है और त्वचा के रोग भी हो जाते हैं। बच्चा सदा निर्बल बना रहता है। उसके गले की ग्रन्थियाँ बढ़ जाती हैं और सन्धियाँ भी आक्रान्त हो जाती हैं।

इसका एक दूसरा रूप है, जिसमें यह रोग मन्द रूप से होता है। इसमें रोगी का सौन्दर्य बढ़ जाता है। रोगी की त्वचा पतली, चेहरा साफ, ओष्ठ और गाल लाल (गुलाब-जैसे) नीली चमकती हुई आँखें, बड़ी-बड़ी पुतलियाँ, लम्बे पलकों के बाल, रेशम के समान सिर के भूरे बाल, अंडाकृति चेहरा, नाजुक हाव-भाव, छोटी-छोटी अस्थियाँ तथा शिरायें स्पष्ट दिखाई देती हैं। इन व्यक्तियों की प्रतिभा बड़ी तेज़ होती है और बहुत जल्दी जागृत हो जाती है। इन बच्चों में कास, क्षीणता या मस्तिष्क में पानी भरना आदि उपद्रव होते हैं। यह रोग यद्यपि पैतृक होता है, परन्तु ग़रीबी जीवन के कारण, नमी में रहने से भी हो जाता है। शराबियों में या औपसर्गिक प्रमेह से आक्रान्त व्यक्तियों में भी पाया जाता है। इसके साथ ही समीपवर्ती सम्बन्धियों में विवाह करने से भी यह रोग हो जाता है। मुसलमानों में इस रोग का दूसरा किस्म प्रायः देखने में आता है।

उपाय—रोगी को खुली वायु में, उत्तम भोजन पर रखना चाहिये। कॉड लिवर ऑयल या मांस-रस को देना उपयोगी है। अनार्य-औषधि में इस रोग के लिये पोटाशियम आयोडाईड, सीरप फैराई आयोडाईड, हाइपोफॉस्फेट ऑफ लाईम, आर्सेनिक तथा रक्त-शोधक औषधियाँ बरती जाती हैं। बाहर लगाने के लिये टिंचर या लिनिमैन्ट आयोडीन या रेड आयोडाईड ऑफ मर्करी ऑयन्टमेन्ट बरती जाती है।

आर्य-औषधि—१—इस रोग में कांचनार औषधि का उपयोग विशेषतः किया जाता है। इसका चूर्ण या काढ़ा गुग्गुल के साथ दिया जाता है। प्रायः रक्त-शोधक चिकित्सा की जाती है। २—कड़वी तुम्बी के बीच में पानी या शराब ७ दिन तक पीना चाहिये।

शास्त्रीय औषधि—कांचनार गुग्गुल, गन्धक रसायन, मंजीठादि क्वाथ, वरुण क्वाथ, चन्द्रप्रभा, अमृता गुग्गुल, किशोर गुग्गुल, त्रिफला गुग्गुल, दशमूलारिष्ट।

बाहर लगाने के लेप—१—छुछुन्दरी तेल ४ सेर, छुछुन्दरी मांस १ सेर, पानी १६ सेर, इनमें तेल पकाकर लगाना चाहिये। २—हस्तिकर्ण पलाशमूल को तण्डुलोदक के साथ पीसकर लेप करना चाहिये। ३—सरसों, सहजनबीज, सनबीज, अलसी, जौ, मूली के बीज; इनको खट्टी छाछ में मिलाकर लेप करना चाहिये। ४—नीम के रस में बछनाग पीसकर लेप करना चाहिये। ५—चित्रकमूल, भिलावा, हीराकसीस, थोरा का मूल इनको कपास के रस में या चावलों के धोवन में पीसकर लगाना चाहिये। ६—श्वेत एरण्ड के बीजों के चूर्ण को भेड़ के दूध में उबालकर, इस दूध से घी बनाकर जङ्गल (हनीले-हरे रंग का रंगने के काम में आता है) के साथ लगाना चाहिये। ७—मूँग और कपास के बीजों की राख मिलाकर घी के साथ लगानी चाहिये। ८—अजवायन के चूर्ण को कम्पिल्ल में मिलाकर घी के साथ लगाना चाहिये। ९—गाय के घृत में सुहागा मिलाकर लगाना चाहिये।

यूनानी-औषधि—१—राल, जंगली प्याज, गूगल, कर्नब की जड़, कूट-छानकर सिरका, शहद और जैतून के तेल में मिलाकर लेप करते हैं। २—राई, उटङ्गन के बीज, समुद्री भाग, जरावन्द, गुग्गुल, क्षरीला, पुराना जैतून, सफेद मोम इनको मिलाकर लेप करना चाहिये। ३—हकीमों का कहना है कि यदि ताजे सींग के भीतर की चपटी हड्डी की राख प्रातःकाल सात दिन तक ५ माशे की मात्रा में ले ली जाय, तो सब प्रकार की कंठमाला दूर हो जाती है।

पाण्डु

इस रोग में रक्त की न्यूनता हो जाती है। 'रक्त की न्यूनता' से अभिप्राय दो प्रकार है—१—रक्त की राशि न्यून हो जाय, २—रक्त के अन्दर रहनेवाले रक्त-कणों में न्यूनता आजाय। रक्त-कणों की न्यूनता आने से उस अवस्था में भी न्यूनता आजाती है, जिसके कारण वे लाल दिखाई देते हैं। यह लाल रंग हिमोग्लोबीन के कारण है, जो लोह के अंश से बनी है। और ये लोह के अंश ओषजन को ले जाते हैं। इसके अतिरिक्त इस रोग के कारण रक्त में द्रव का भाग बढ़ जाना है।

कारण—इस रोग के बहुत-से कारण हैं। परन्तु मुख्य कारण भोजन की न्यूनता, धूप की कमी, चिरकालीन मलबन्ध, अति परिश्रम और भोजन का अपूर्ण होना; चिन्ता, उद्विग्नता, मलेरिया की भूमि में या नमी में रहना इस रोग के पूर्ववर्त्ती कारण हैं। इसके सिवा कई रोगों के कारण भी यह रोग होता है। यथा—टेप वार्म के कारण, बार-बार गर्भवती होने के कारण, देर तक दूध पिलाने से, अर्श के कारण, प्लीहा के कारण बार-बार मलेरिया ज्वर के आक्रमण से अत्यार्त्तव से, मासिक धर्म के अधिक आने से।

लक्षण—रोगी की त्वचा पीली हो जाती है, चेहरे का रंग काला पड़ जाता है, चेहरा उतर-सा जाता है। आँखें श्वेत हो जाती हैं, आँखों के चारोंओर काली रेखायें पड़ जाती हैं, नाक, ओष्ठ, मुँह के अन्दर की श्लेष्मकला भी रक्तहीन हो जाता है। गालों का रक्त बदल जाता है, लाल गुलाब के स्थान पर श्वेत पड़ जाती हैं। शरीर का भार घट जाता है, मुँह कुछ सूजा हुआ प्रतीत होता है। रोगी का शरीर ठंडा हो जाता है। हाथ और पाँव ठण्डे मालूम होते हैं और इनसे आग निकलती हुई प्रतीत होती है। थोड़ी-सी भी सर्दी से कास, गले में सूजन या अतिसार हो जाता है। रोगी की भूख घट जाती है, मूत्र, प्लीहा और प्राय: मलबन्ध रहता है। रोगी को प्राय: शिर-दर्द रहता है। यह दर्द शङ्ख-प्रदेशों पर या चोटी के स्थान पर होता है। ।ने खया लेटने से शान्त हो जाता है, और खड़ा होने से फिर होने लगता है। अंगों में दर्द का होना प्राय: करके होता है। स्त्रियों में रजोधर्म अनियमित, गंदला, पतला, पानीवाला या दर्द-युक्त होता है। श्वेत-प्रदर इस रोग का उपद्रव है। ज्यों-ज्यों रोग बढ़ता जाता है, श्वास छोटा होता जाता है, विशेषत: पहाड़ पर चढ़ने के समय या सीढ़ियों पर चढ़ते समय श्वास में कठिनता का अनुभव होता है। हृदय में धड़कन, वाम पार्श्व में दर्द, मूर्च्छा की अभिरुचि, कानों में झनझनाहट, आँखों के सामने काले धब्बे दिखाई देना, नाक से रक्तस्राव और गहरी नींद (घुर्राटेवाली) आती है। खट्टे डकारों का आना, अध्मान आदि अजीर्ण के लक्षण होते हैं। स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है, स्मृति घट जाती है और एक बात पर ध्यान नहीं जमता। रोगी निराशावादी या औरत हिस्टीरिया के स्वभाव की हो जाती है। यदि

रंग कुछ समय तक रहे, तो प्लीहा बढ़ जाती है, पाँव पर सूजन आजाती है, जो दिन के समय बढ़ जाती है और रात्रि में सोने से प्रातः घट जाती है।

क्लोरोसिस—यह रोग प्रायः करके औरतों में होता है। त्वचा का रंग हरा-पीला-सा होता है, आँखें अन्दर को घुसी प्रतीत होती हैं। उसके चारोंओर काली रेखायें होती हैं। भूख बिलकुल कम हो जाती है। इस रोग का कारण स्लेट, पेंसिल, मिट्टी, राख आदि का खाना है। रोगी प्रायः शिकायत करता है कि उसके सिर में और वाम पार्श्व में बहुत चुभता हुआ दर्द हो रहा है। मूत्र का रंग पीला और मात्रा में अधिक होता है। साथ में हिस्टीरिया के लक्षण भी उपस्थित होते हैं। रोगी को प्रायः मलबन्ध रहता है। साथ ही मासिक ऋतु के समय पीठ और कटि में तीव्र दर्द होता है, पाँव भी कभी-कभी सूज आते हैं। आर्य-वैद्यक में इस रोग को 'कामला' या कुम्भ-कामला कहते हैं।

चिकित्सा – प्रतिदिन थोड़ा-बहुत व्यायाम करना चाहिये। सोने या काम करने के कमरे में पूर्ण वायु आनी चाहिये। भोजन इस प्रकार का होना चाहिये, जिससे रोगी को पोषण मिले। इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि रोगी को अजीर्ण न हो। शीत या ताजे पानी में स्नान करना चाहिये। इस रोग में लोह विशेष उपयोगी है, इसलिये शक्तिवर्द्धक औषधियों में इस प्रकार की औषधि देनी चाहिये, जिनमें लोह अवश्य हो। इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि लोह से मलबन्ध न पड़ जाय, इसलिये विरेचक औषधि समय-समय पर देते रहना चाहिये। लोहवाले कई उत्तम-उत्तम मिश्रण लिखे गये हैं, जिनमें फेराई एट क्युनीन साइट्रेट, रिडिस्युड आयरन, टिंचर ऑफ स्टील आदि का उपयोग किया गया है।

आर्य-औषधि—१—मिश्री के साथ कटुकी का चूर्ण खाने से, २—द्रोणपुष्पी (गोमा) के रस का अञ्जन करने से, ३—देवदाली (कड़वी तुम्बी) का नस्य लेने से पाण्डु-रोग शान्त होता है। ४—कोमल मूली के स्वरस में शर्करा या नौसादर मिलाकर पीने से लाभ होता है। ५—सनाय १२ माशे, पिण्ड-खजूर १६ माशे, मजीठ ६ माशे इनको एक कुडव जल में सायंकाल भिगोकर प्रातःकाल हाथों से मलकर, फिर छानकर पीने से लाभ

होता है। ६—मण्डूर-भस्म, हरड़, कुटकी इनका चूर्ण गोमूत्र के साथ पीने से, मिट्टी के खाने से उत्पन्न कामला-रोग शान्त होता है। ७—त्रिफला और हल्दी के साथ घृत पकाकर पीना चाहिये। ८—त्रिफला, नीम, गिलोय, बाँसा, कुटकी, चिरायता इनके काढ़े में मधु मिलाकर पीना चाहिये। ९—लोह-भस्म घी और शहद के साथ खाना चाहिये। १०—गिलोय-पत्र के स्वरस में तक्र मिलाकर पीना चाहिये। ११—२ तोला हल्दी और ८ तोला दही खाना चाहिये। १२—पिप्पली-चूर्ण आधा आना भर और कच्ची हल्दी का रस आधी छटांक, परवल का रस आधा छटाँक इसके साथ खाना चाहिये। १३—पुनर्नवाष्टक—पुनर्नवा, नीम-छाल, परवल, सोंठ, कुटकी, गिलोय, दारुहरिद्रा, हरीतकी प्रत्येक चार आना भर लेकर आधा सेर जल में पकाकर चौथाई रहने पर देना चाहिये। यदि विरेचन हो, तो कटुकी के स्थान पर इन्द्रयव और हरीतकी के स्थान पर मोचरस मिलाकर देना चाहिये। १४—हल्दी-चूर्ण ३ रत्ती, कटुकी-चूर्ण २ आना भर, हरीतकी-चूर्ण ४ आना भर इनको आँवले के हिम कषाय के साथ पान करना चाहिये।

शास्त्रीय औषधि—नवायस-लोह, योगराज, आरोग्य-वर्धनी, वर्धमान पिप्पली, त्रिफला घृत, मलने के लिये किरातादि तैल।

यूनानी औषधि—बड़ी हरड़, शाहतरा, अफसन्तीन, आलूबुखारे का काढ़ा इसको देकर विरेचन करवाना चाहिये। विरेचन के पीछे कासनी के बीज, खीरे के बीज, आलुबुखारा, इमली, मीठी घिया के बीज, सादा वेद का अर्क इन सबको मकोय के अर्क में भिगोकर छान लेना चाहिये। फिर इसमें शर्बत नीलोफर या शर्बत बिजूरी मिलाकर पिलाना चाहिये।

पथ्यापथ्य—पुराना जौ, गेहूँ, दूध, खजूर, मूँग, मसूर, परवल, आम, छाछ, गन्ना, लहसुन, आँवला, घी सब पथ्य हैं। मलबन्ध, वमन, मूत्रावरोध, स्नान न करना, स्त्रीसंग, दारू, विदाही अन्न अपथ्य है।

शोथ (श्वयथु)

इसको कोई स्वतंत्र रोग नहीं मानना चाहिये। यह कई रोगों में लक्षण रूप से प्रगट होता है। श्वयथु—इसमें एक प्रकार की शोथ होती है, जिस शोथ का कारण यह होता है कि रक्त का द्रवांश रक्त से पृथक होकर शिथिल तन्तुओं में एकत्रित हो जाता है। यह द्रवांश धमनियों की दीवारों से चू जाता है। यह स्वतंत्ररूप से भी हो जाता है, जब रक्त-संचार में किसी प्रकार की रुकावट आजाय। जिस प्रकार तंग गार्टर पहनने से टाँग में शोथ उत्पन्न हो जाती है। श्वयथु के स्थान प्राय: अधोशाखायें—टाँग और उदर हैं। हृदय या गुर्दे के रोगों में यह चेहरे या शरीर पर भी हो सकता है। इस रोग की पहचान इस प्रकार से हो जाती है। यदि शोथ के स्थान को अँगुली से दबाया जाय, तो इसमें एक गड्ढा पड़ जाता है, जो अँगुली के हटाने पर धीरे-धीरे फिर भर जाता है। जिस प्रकार रबर की गेंद को दबाने से उसमें गड्ढा पड़ जाता है और दबाव हटा लेने पर फिर भर जाता है।

श्वयथु का सम्बन्ध किसी न किसी कारण से अवश्य होता है; जैसे—शीत का लगना, वृक्क के रोग, हृदय और फेफड़ों के रोग, यकृत या प्लीहा के रोग, पाण्डु, कृमि-जन्य अथवा मासिक-धर्म के विकार। कोई न कोई कारण इस लक्षण को उत्पन्न करता है।

शीत के लगने से श्वयथु—१—सर्दी के लगने के पीछे प्राय: एकदम से होती है। रोगी जब नमी या ठण्डी हवा में बैठता है और विशेषत: जब रोगी को पसीना आया हुआ हो, तो यह रोग प्राय: हो जाता है। त्वचा की क्रिया ठण्डी वायु लगने से महसा बन्द हो जाती है और द्रवांश त्वचा के निचले शिथिल तन्तुओं में एकत्रित हो जाता है। इस अवस्था को 'एनासारका' कहते हैं। वृक्कों के रोग के कारण भी यह अवस्था उत्पन्न हो जाती है। इस अवस्था की चिकित्सा के लिए रोगी को गरम रखना चाहिये और विरेचन देना चाहिये, जिससे पानी की भाँति दस्त आए। मूत्र का प्रवाह बढ़ाने के लिये विरेचक औषधियाँ देनी चाहियें। गरम पानी में स्नान कराना भी उत्तम है।

२—वृक्क रोग के कारण जो श्वयथु होती है, उसमें प्रायः पलकों के निचले शिथिल तन्तुओं में द्रवांश एकत्रित हो जाता है। इसके अतिरिक्त गुह्य-मार्गों में, पाँव में तथा टाँगों में भी द्रव भर जाता है।

३—हृदय और फेफड़ों के कारण जो शोथ होती है, वह टाँगों में और हाथों में होती है और फिर सारे शरीर में फैल जाती है। यह रोग पैतृक होता है।

४—यकृत और जिगर के कारण जो श्वयथु होती है, वह प्रथम उदर पर प्रभाव करती है। पैर फूल जाता है। इसमें पानी भर जाता है, जिसको जलोदर या कहते हैं। चिरकालीन मद्यपान, उपदंश, चिरकालीन पर्यावरण शोथ, मलेरिया आदि निर्बल करनेवाले रोग इसके कारण हैं।

५—पांडु-रोग के कारण जो शोथ होती है, वह प्रायः न तो फैलती है और न शरीर के अन्दर पहुँचती है। बशर्ते कि रोग के कारण पेट के कृमि न हों। यह प्रायः पाँव, गिट्टे और भ्रू पर होती है। इस अवस्था में रक्त से द्रवांश के निकलने का कारण रक्त का निर्बल होना या रक्तवाहिनियों का रुग्ण होना होता है।

६—आर्त्तव के विकार से उत्पन्न होनेवाली श्वयथु अन्य प्रकार की शोथ की भाँति भयानक नहीं है। यह प्रायः पाँव में होती है, परन्तु कभी-कभी हाथों में तथा चेहरे पर भी हो जाती है। यह शोथ सायंकाल के समय विशेषतः बढ़ जाती है। यह प्रायः करके पांडु-जन्य शोथ से मिलती है।

उपाय—जिस रोग से श्वयथु का सम्बन्ध हो, उसी रोग की चिकित्सा करनी चाहिये। १—गुड़ के साथ आर्द्रक, या गुड़ के साथ सोंठ, गुड़ के साथ हरड़ या गुड़ के साथ पिप्पली प्रतिदिन २-२ तोला मात्रा बढ़ाकर पीना चाहिये। २—पिप्पली, सोंठ और गुड़ के साथ पीने से शोथ नष्ट होती है। ३—पुनर्नवा, देवदारु, सोंठ अथवा निशोथ, दन्तीमूल, त्रिकटु, चीता इनके द्वारा दूध पकाकर पीना चाहिये। ४—त्रिफला २ तोला, गोमूत्र, आध सेर; इनका क्वाथ करके आध पाव शेष रखकर पीना उत्तम है। ५—पिप्पली, रेत, खल, सहजन-छाल, अलसी; इनको गोमूत्र में पीसकर लेप करना चाहिये। ६—एरण्ड-तैल पीना चाहिये। ७—गोखरन, मुण्डी और नमक; इनका कषाय अथवा मुण्डी कषाय में नौसादर और नमक मिलाकर

पीना चाहिये । ८—अजवायन, जीरा, पुनर्नवा, सौंफ प्रत्येक १ भाग, मकोय दो भाग, इनका अर्क पीना चाहिये ।

शास्त्रीय औषधि—पुनर्नवाष्टक, पथ्यादि क्वाथ, पुनर्नवादि क्वाथ, विरेचक औषधि, दुग्धवटी । पाँव पर या शोथ के स्थान को ऊँचा उठाकर रखना चाहिये । इसपर पट्टी बाँधना अच्छा है । साथ ही मकोय के पत्तों का लेप भी उत्तम है ।

उदर-रोग (प्लीहा-रोग)

साधारणत: प्लीहा सामने में आमाशय से और पीछे से पसलियों से ढकी होती है । स्वस्थ अवस्था में इसका अनुभव नहीं होता । प्लीहा के रोग मलेरिया से सम्बन्धित हैं । यह रोग प्राय: ज्वर के आक्रमणों के बराबर होने का परिणाम है । शीतज्वर की शीतावस्था में रक्त त्वचा के पृष्ठ से खिंचकर प्लीहा में भर जाता है । इससे प्लीहा असाधारण रूप में रक्त से भर जाती है और तन्तु तन जाते हैं । यदि वाम पार्श्व में पसलियों के नीचे दबायें, तो दर्द का अनुभव होता है । कभी-कभी यह दर्द वाम कटि-प्रदेश की ओर या वाम स्कन्ध की ओर बढ़ती है, जिससे रोगी वाम पार्श्व में सुगमता से नहीं लेट सकता । रोगी को बेचैनी रहती है और कभी-कभी वमन भी हो जाता है । वमन में रक्त भी आता है, परन्तु मल में रक्त अधिक आता है । नाक से भी रक्त-स्राव हो जाता है । जब शोथ घट जाती है, उस समय पार्श्व भरा हुआ और फैला हुआ प्रतीत होता है । तीव्र शोथ प्राय: कुछ दिनों में शान्त हो जाती है । इस समय रोगी को पसीना बहुत आता है, अतिसार होता है और मूत्र में गाढ़ा निक्षेप होता है । प्लीहा के अन्दर जो शोथ प्रथम होती है, वह स्वयं शान्त हो जाती है । परन्तु बार-बार आक्रमण होने के कारण तन्तुओं की शक्ति नष्ट हो जाती है । इस कारण अब वह अपनी असली हालत में नहीं आ सकते । साथ ही रक्त के निक्षेप प्लीहा में एकत्रित होते रहते हैं । इन निक्षेपों के कारण और तन्तुओं की शक्ति नष्ट हो जाने से स्थायी प्लीहा-वृद्धि हो जाती है । इस अवस्था में प्लीहा को पसलियों के नीचे वाम पार्श्व में दबाकर अनुभव कर सकते हैं ।

चिरकालीन शोथ—प्लीहा के बढ़ने का मूल कारण तीव्र शोथ का बार-बार आक्रमण होना है। परन्तु कई बार यह वृद्धि इतने शनैः-शनैः होती है कि रोगी को कुछ भी प्रतीत नहीं होता। जब प्लीहा भारी हो जाती है, बढ़ जाती है और वाम-पार्श्व में दर्द होने लगता है, उस समय इस रोग का पता चलता है। प्लीहा के बढ़ने के साथ-साथ बच्चों में मामूली ताप भी रहता है। यदि सायंकाल ताप-परिमाण से ताप देखें, तो वह १०० अंश फार्नहाइट होता है। प्लीहा जब बढ़ जाती है, तो वह कठोर तथा टूटनेवाली तथा सुगमता से फट जाती है।

प्लीहा में रक्त बनता है। जब यह आक्रान्त हो जाती है, उस समय रक्ताणुओं में कमी आ जाती है। रक्ताणुओं के कम होने से रोगी पीला और फीका हो जाता है, जिह्वा पीली, रक्त-शून्य, आँखें श्वेत हो जाती हैं, बार-बार अतिसार के आक्रमण हो जाते हैं। किसी एक हद तक रोगी स्वस्थ हो सकता है। उस अवस्था के पीछे औषधियाँ निष्फल होती हैं। वह अवस्था यह है कि जबतक प्लीहा रक्त को लेती और देती रहती है, तबतक कुछ आशा है। प्लीहा की वृद्धि होने के साथ रोगी निर्बल हो जाता है, पाँव और पेट पर शोथ हो जाती है। अतिसार या प्रवाहिका-रोग स्थिर हो जाता है।

आर्य-औषधि में उदर-रोग आठ प्रकार के गिने हैं; यथा—वातोदर, पित्तोदर, कफोदर, सन्निपातोदर, प्लीहोदर, बद्धगुदोदर, क्षतोदर, दकोदर।

उपाय—जिस समय रोगी के पार्श्व में दर्द आरम्भ हो जाय, उस समय गरम पानी का सेक करना चाहिये। यदि रोगी को अतिसार न हो, तो सोडियम सल्फेट से विरेचन देना चाहिये। इस रोग में क्युनीन और आयर्न देना उत्तम है। दूध पीने के लिये देना चाहिये। पेट पर रेड ऑयन्टमेन्ट ऑफ मर्करी का लेप करना चाहिये।

आर्य-औषधि—१—मुसब्बर १ तोला, हींग २ तोला, बड़ी हरड़ ४ भाग; इनके चूर्ण को गरम पानी के साथ पीना चाहिये। २—गो-मूत्र के साथ एरण्ड का तैल देना चाहिये। ३—चाता-मूल, हरिद्रा और आक का पीला पत्ता; इसको पुराने गुड़ के साथ खाने से प्लीहा शान्त होती है। ४—लहसुन, पिप्पली-मूल, हरड़ इनको गो-मूत्र के साथ खाना चाहिये। ५—तिलक्षार, यवक्षार,

द्रवन्ती-क्षार, शुद्ध भिलावा, पिप्पली प्रत्येक समभाग और सबके बराबर पुराना गुड़ मिलाकर सरफोंका-मूल ४ माशा। इसको तक्र के साथ पीना चाहिये। ६—अमलबेत, सहजन, पिप्पली, मिर्च और सैन्धव इनका काढ़ा पीना चाहिये। ७—तिल, अलसी, एरण्ड का बीज, सरसों; इनका लेप करना चाहिये।

शास्त्रीय औषधि—गुड़-पिप्पली, अर्क-लवण, लोकनाथ-रस, वज्र-क्षार, चित्रक-पिप्पली।

यूनानी औषधि—जरिश्क, खुर्फे के बीज, ककड़ी के बीज, खरबूजे के बीज, घिये के बीज की मींगी प्रत्येक ३ दिरम, गोंद अरबी १ दिरम, गुलाब के फूल २ दिरम, बंशलोचन, चन्दन सफेद प्रत्येक ½ दिरम, कासनी के बीज ४ दिरम।

विधि—१—जरिश्क को सिर्के व गुलाब मे मलकर शेष दवाइयां को कूट छानकर जरिश्क का पानी मिलाकर रक्खें। इसकी सात मात्रायें हैं। इसकी एक मात्रा कासनी के पानी व सिकञ्जबीन के साथ लेना चाहिये।

२—लेप—रसौंत, गिले अरमानी, पीली अंजीर, अमलतास का गूदा, गेहूँ की भूसी, मकोय का अर्क; इनको सिर्के में पीसकर लेप करना चाहिये।

३—विरेचन—बड़ी हरड़, छोटी हरड़, काबुली हरड़ प्रत्येक ३ दिरम; निशोथ, गुलाब के फूल प्रत्येक १ दिरम, कासनी ४ दिरम, कुसुम के बीज, अफसन्तीन, अनीसुन, सौंफ प्रत्येक एक मिस्काल, अफतीमून ७ दिरम, श्वेत चीनी २ मिस्काल, इरमनी का पत्थर १ दिरम इनको कूट-छानकर २ दिरम की मात्रा में शर्बत बिजूरी के साथ देना चाहिये।

४—विरेचक गोलियाँ—नीबू की जड़ की छाल और अफतीमून दोनों को बराबर कूट-छानकर शहद में मिलाकर दो दिरम की मात्रा देनी चाहिये। हकीमों का कहना है कि झाऊ की लकड़ी का प्याला बनाकर उसीमें भोजन करना चाहिये और पानी पीना चाहिये।

५—हंसराज जूफा, संभालू के बीज इन सबको बराबर कूट-छानकर शहद में मिलाकर माजून बनाना चाहिये। मात्रा दो दिरम।

६—अफसन्तीन, बालछड़, करूमानो, अजखर, किबु की जड़, गुलाब के फूल, गूगल इनको झाऊ के पत्तों के पानी में या तुतली मे मिलाकर सिर्का

डालकर लेप करना चाहिये। इससे तिल्ली को ताकत मिलती है। बाजरे की भूसी और नमक का सेक करना चाहिये।

७—सुहागा, पोदीना, तुतली इनको सिर्के और शहद में मिलाकर लेप करना चाहिये।

८—अञ्जीर या मूली को सिरके में मिलाकर खाना चाहिये।

९—जवाखार को तितली के पानी और सिर्के में मिलाकर लेप करना चाहिये।

जलोदर

इस रोग का कारण उदर में पानी का एकत्रित हो जाना है। यह पानी उदर की पर्य्यावरण कला में भर जाता है। इस रोग के कारण वे ही हैं, जो शोथ रोग के कारण हैं।

लक्षण—रोगी को यदि चित्त लेटा दिया जाय, तो उसके पार्श्व बढ़ जाते हैं अर्थात् पार्श्वों का व्यास सामने के व्यास से अधिक होता है। रोगी के पार्श्व में हाथ रखकर दूसरे हाथ से दूसरे पार्श्व में टकोर दें, तो इस हाथ को उसका स्पन्दन अनुभव होता है, जिस प्रकार की मशकों में मालूम होती है। खड़े होने पर दबाव नीचे की ओर बढ़ जाता है।

उपाय—इस रोग का उपाय एकमात्र पानी निकालना है। इसके लिये चिकित्सक की सम्मत्ति लेनी चाहिये। साधारणतः निम्न उपाय लाभदायक हैं, विशेषतः यदि पानी की मात्रा अधिक नहीं हुई।

(१) **दूध**—रोगी को दूध विशेषरूप से देना चाहिये, पानी और सब खूराक बन्द करके दूध ही देना चाहिये। इसको गोमूत्र के साथ या त्रिफला काढ़े के साथ देना चाहिये। (२) भिलावा—नारसिंह-चूर्ण यदि दूध के साथ दिया जाय, तो उत्तम है। (३) दुग्धवटी इसमें उपयोगी है। ऊटनी का दूध इस रोग में उपयोगी है।

यूनानी औषधि—(१) रेवतचीनी आधा दिरम, निशोथ २ दिरम, जरबिन्द गोल २ दोडा, गुग्गुल आधा दिरम, अनीसून १ डोग इ

सबको पीसकर दो गोली बनानी चाहिये । एक गोली खाकर अजवायन और अनीसून का काढ़ा पीना चाहिये ।

(२) पानी सुखानेवाले लेप—मेथी जंगली, कबूतर की बीट, बतम का गोंद, पुरानी चर्बी में मिलाकर लेप करना चाहिये । (३) गौ का गोबर, बकरी की मींगनी, जौखार, अंगूर की लकड़ी की राख, गन्धक इनको सिरके में मिलाकर लेप करना चाहिये। (४) बुरश्रो अरमानी, सौसन की जड़ प्रत्येक ३ दिरम, बकरी की मींगनी ५० दिरम, कर्मकल्ले के बीज ७ दिरम इन सबको पीसकर सौंफ तथा कासनी के पानी में मिलाकर पेट पर लेप करना चाहिये । (५) सनाय ७ दिरम, काबुली हरड़, बहेड़ा, आँवला प्रत्येक ५ दिरम, बनफसा, नीलोफर, कासनी के बीज, प्रत्येक ३ दिरम, बेदाना मुनक्का १५ दिरम, आलुबुखारा, उन्नाव प्रत्येक दस दाना, लसौड़ा २० दिरम, अमलतास का गुदा, तुरञ्जबीन १० दिरम यह देना चाहिये। इस रोग में ऊँट और बकरी का दूध देना उत्तम है ।

मस्तिष्क-सम्बन्धी रोग

मस्तिष्क के साथ सम्बन्ध रखनेवाले रोगों का समावेश इस प्रकरण में किया गया है। लकवा, पक्षाघात, ऊरूस्तम्भ, धनुर्वात, आक्षेप वायु आदि स्पष्ट रूप में वायु से सम्बन्ध रखते हैं, इसीलिये आर्य-वैद्यक में इनको वात-व्याधि के अन्दर समाविष्ट किया गया है। साथ ही उन्माद, अपस्मार या शिरो-रोग आदि रोगों का भी वायु के साथ उसी प्रकार सम्बन्ध है, जिस प्रकार धनुर्वात आदि का है। परन्तु शास्त्र में इनको पृथक् गिना है। इसलिये जिन रोगों में वायु की प्रधानता मिली है, उन सबका (मुख्य २ रोगों को) रोगों का समावेश इस प्रकरण में कर दिया गया है ।

सन्यास

इस रोग के आक्रमण तीन रूप में होते हैं। जैसे—

(१) रोगी भूमि पर गिर पड़ता है, उसकी ज्ञान और क्रिया-शक्तियाँ नष्ट हो जाती हैं। ऐसा मालूम होता है कि रोगी गहरी नींद में सो रहा है। चेहरा तमतमा हुआ और श्वास परिश्रम से आता है, नाड़ी भरी हुई और धीमी होती है। पुतली विकम्पित अथवा एक फैली हुई और दूसरी साधारण होती है। मुँह एक पार्श्व में झुक जाता है। साथ में आक्षेप होते हैं। ये आक्षेप प्राय: शरीर के पार्श्व में रहते हैं। यदि आक्षेप सहसा प्रारम्भ हो जाय, तो वृक्क रोग की आशङ्का करनी चाहिये।

(२) इस रूप में रोग चेतावनी देकर आता है। चेतावनी के लक्षण निम्न हैं—भ्रम, बेचैनी, रुग्णावस्था, मूर्च्छा की प्रतीति, शिर-दर्द, एक प्रकार के दबाव का अनुभव, सर का खिंचा रहना या शिर में गरमी का अनुभव होना, मलबन्ध, गदला मूत्र, विचारों में स्थिरता वाक् शक्ति का ह्रास, चेहरे का लाल होना, नाक से रक्तस्राव, आँखों के सामने प्रकाश कम दिखाई देना एक वस्तु की दो वस्तु प्रतीत होना, कानों में आवाज़ की प्रतीति, भुजाओं में शिथिलता, स्मृति-शक्ति का लोप, तथा रोगी पाण्डु-वर्ण हो जाता है। इस रूप में जब आक्रमण होता है, उस समय के लक्षण प्राय: 'मूर्च्छा' से मिलते हैं; अर्थात नाड़ी मन्द हो जाती है, आता हुआ श्वास, चेहरे का पीला हो जाना, शरीर के पृष्ठ का ठण्डा हो जाना और वमन का यत्न करना।

(३) इस रूप में सहसा एक पार्श्व का पक्षाघात हो जाता है, अथवा केवल एक अंग या हाथ ही का पक्षाघात होता है। इस अवस्था मे रोगी रुग्ण पार्श्व को हिला-डुला नहीं सकता, अथवा अङ्ग को कठिनाई से उठाता है। तीव्र रूप में मुँह एक पार्श्व में मुड़-सा जाता है, इससे रोगी जीभ को सीधा नहीं रख सकता। रोगी की वाक्-शक्ति विकृत हो जाती है, इसलिये वह अपने इशारों से बताता है। प्रतिभा भी नष्ट हो जाती है।

प्रथम दोनों रूपों में इस रोग का आक्रमण चेतावनी देकर होता है। यथा—धीमी शब्दयुक्त और आधाश्वास (रोगी जितना श्वास अन्दर लेता है, उसमें से कुछ श्वास बाह्य श्वास के साथ ही बाहर कर देता है)

मुँह से झागदार लार स्रवित होती है। जबाड़ी बन्द हो जाती है, रोगी किसी वस्तु को निगल नहीं सकता। यदि मुँह में पानी डालें, तो वह ओष्ठों के प्रान्त से बाहर हो जाता है। यदि मुँह के अन्दर भी चला जाय, तो मुश्किल से निगला जाता है। चेहरा लाल या पीला हो जाता है, आँखें मन्द, सुस्त और साफ होती हैं; पुतली संकुचित होती है, मुँह एक पार्श्व में मुड़ा होता है, अंग क्रिया-रहित एवं कठोर हो जाते हैं, परन्तु कभी-कभी आक्षेप भी होते हैं, अथवा आक्षेप एक पार्श्व में होते हैं। रोगी की भुजायें ठण्डी हो जाती हैं और शरीर पसीने से स्नान कर लेता है। या तो मलबन्ध रहता है अथवा बिना इच्छा के मल निकल जाता है, मूत्र भी स्वतन्त्र रूप से निकल आता है, अथवा जबतक मूत्राशय नहीं भरता, तबतक रुका रहता है, पीछे से बूँद-बूँद करके चूता रहता है। नाड़ी प्रथम मन्द होती है, पीछे तेज और भरी हुई होती है। यदि नाड़ी एक मिनट में ६० तक गिर जाय, अथवा ११० तक बढ़ जाय, तो दोनों अवस्थायें रोगी के लिये बुरी हैं। साधारण ताप-परिमाण में थोड़ा-सा भी अन्तर होना रोगी के लिये उत्तम लक्षण है, परन्तु यदि बहुत अन्तर आजाय, तो रोगी के लिये भयानक अवस्था है।

इस रोग के आक्रमण का समय २-३ घण्टे से लेकर कुछ दिनों तक रहता है। जितनी ही देर तक यह रह जाय, उतना ही भयानक है। यह रोग धीरे-धीरे शान्त हो जाता है, अथवा इसमें अपूर्ण स्वस्थता आती है। रोगी का मन स्वस्थ नहीं होता, अथवा शरीर का अङ्ग पैरेलाइज्ड हो जाता है। अथवा रोगी को चेतना नहीं आती। वह और गहरी नींद में आजाती है, अन्त में मृत्यु हो जाती है।

इस रोग के पूर्ववर्त्ती कारण—आयु ५ वर्ष से ऊपर, लिंग—पुरुष स्त्रियों की अपेक्षा अधिक आक्रान्त होते हैं।

शरीर की रचना—मोटी ग्रीवा बड़ी छाती, कफ-प्रकृति का चेहरा, शरीर में दृढ़ता; वंशक्रमागत निर्बलता; अधिक खाना और अधिक पीना; शरीर के अन्दर गठिया-रोग की प्रकृति; लगातार मलबन्ध रहना; पाण्डु-रोग; यकृत के रोग, हृदय और वृक्क के रोग। इस रोग का तात्कालिक कारण मस्तिष्क के अन्दर रक्त का संचय होना, भारी बोझ

उठाना, कोई मानसिक आघात, तीव्र कामेच्छा, अति उष्णिमा आमाशय में अधिक खाना, तंग जुराबें अथवा ग्रीवा के चारोंओर तंग कपड़े पहनना; किसी प्रकार के स्राव का, जो एकत्रित होकर बहता है, सहसा रुक जाना; जैसे—अर्श में।

इस रोग का तात्कालिक आक्रमण साधारणतः रक्तस्राव के होने पर होता है। यह स्राव त्वचा के पृष्ठ पर हो, अथवा मस्तिष्क में हो, अथवा श्लेष्म-कलाओं में हो। इस रोग का कारण रक्तवाहिनियों के फटने का है। रक्तवाहिनियों में रक्त का चक्का बनने से भी रक्तवाहिनियाँ फट जाती हैं। दूसरा कारण मस्तिष्क में पानी भर जाना है।

इस रोग को निम्न रोगों से भेद करना चाहिये—

(१) **मूर्च्छा से**—मूर्च्छा प्रायः युवाओं में, वात-प्रकृतिवाली या हिस्टीरीकल स्त्रियों में होती है और सन्यास-रोग वृद्ध पुरुषों में। मूर्च्छा कुछ मिनटों में अच्छी हो जाती है, नाड़ी बहुत स्पष्ट होती है।

(२) **मद्यजन्य मूर्च्छा से**—रोगी का इतिवृत्त, रोगी के मुँह और नाक से मद्य की गन्ध का आना; मद्य-जन्य दौरे से पुतलियाँ समान होती हैं, जब कि सन्यास में एक पुतली संकुचित और दूसरी विकसित होती है; रोगी को शोर से या ऊँची आवाज से जगा सकते हैं; परन्तु सन्यास-रोग में नहीं। मद्यपान में गति दोनों पार्श्वों में होती है और सन्यास-रोग में एक पार्श्व में होता है।

(३) **अफीम के विष से**—रोगी का इतिवृत्ति, सन्यास का आक्रमण प्रायः भोजन के मध्य में अथवा ठीक भोजन के पीछे होता है; यदि अफीम भोजन में दी जाय, तो लक्षण २० से ३० मिनट के पीछे उत्पन्न होते हैं। अफीम में श्वास के अन्दर और मुख में गन्ध होती है। यदि रोगी को वमन आजाय, तो इसमें भी अफीम की गन्ध मिलती है। अफीम के रोगी को हिला-डुलाकर अथवा जोर से बोलकर या शिर पर पानी की धार गिराने से जगा सकते हैं, परन्तु फिर से वह बेहोश हो जाता है। सन्यास रोगी के पाँव में यदि चींटी भरी जाय, या पिन चुभोयें, तो वह पाँव को पीछे खींच लेता है। परन्तु अफीम के रोगी को चुभाने या गुदगुदाने का कुछ भी अनुभव नहीं होता। अफीम का विष प्रायः युवाओं में विशे-

षतः युवतियों में होता है, जब सन्यास वृद्ध पुरुषों में होता है। सन्यास-रोग प्रायः मोटे या पतले पुरुषों में होता है। सन्यास का आक्रमण सहसा हो जाता है और अफीम का आक्रमण धीरे-धीरे होता है।

(४) **अपस्मार से**—अपस्मार-रोग में श्वास अपूर्ण रहता है। सन्यास में इस प्रकार नहीं होता। अपस्मार-रोग के अन्दर अंगों में आक्षेप होता है। आँखें ऊपर को पलकों के अन्दर चली जाती हैं। इसलिये केवल आँखों का सफेद भाग दिखाई देता है। रोगी जब गिरता है, उसके मुँह से एक आह निकलती है। इस प्रकार का कोई भी लक्षण सन्यास-रोग में नहीं होता।

चिकित्सा—रोगी के गले के कपड़ों को ढीला कर देना चाहिये, सिर को थोड़ा-सा उठा देना चाहिये, रोगी को खूब हवा करनी चाहिये। माथे और शिर पर ठंडा पानी या बर्फ की थैली रखनी चाहिये। पिंडलियों पर और पाँव में राई का प्लास्टर लगाना चाहिये। रोगी को लेटाना चाहिये। रोगी के पाँव को गरम पानी में १० मिनट तक रखना चाहिये। पीछे से इनमें गरम बोतलें रखनी चाहिये। पिण्डलियों पर राई का प्लास्टर १ घंटे तक लगातार रखना चाहिये। यदि राई का प्लास्टर न मिले, तो शुष्क कपड़े से या कांसे के बर्त्तन से अथवा सोंठ को पीसकर उससे मलना चाहिये। शिर और कन्धों को दक्षिण पार्श्व में मोड़ देना चाहिये। घर में पूर्ण शान्ति रखनी चाहिये। मकान में यदि सम्भव हो, तो अन्धेरा रखना चाहिये। रोगी के किनारे १ या दो से अधिक व्यक्ति नहीं रहने चाहिये। जबतक चिकित्सक की सम्मति न हो, तबतक रक्तस्राव बन्द नहीं करना चाहिये। यदि रोगी निगल सके, तो १ औन्स सोडियम सल्फेट को ४ औन्स पानी में घोलकर पिलाना चाहिये। जबतक रोगी निगल न सके, तबतक उसको किसी प्रकार की दवाई या अन्य वस्तु नहीं देना चाहिये। किसी भी अवस्था में उत्तेजक औषधि नहीं देना चाहिये। सब अवस्थाओं में हींग की वस्ति शीघ्र से शीघ्र देना चाहिये। यदि रोगी ६-७ घन्टे तक बेहोश पड़ा रहे और मूत्र-त्याग न करे, तो शलाका-यन्त्र से मूत्र निकाल लेना चाहिये।

यदि मूर्च्छा का आक्रमण भोजन के पीछे हो, तो रोगी वमन का यत्न करेगा। इसके लिये उसके अन्दर पङ्ख से गुदगुदी करना चाहिये। यदि

रोगी वमन का यत्न न करे, तो किसी प्रकार की वामक औषधि नहीं देना चाहिये, क्योंकि वमन की क्रिया के बढ़ने से रक्त शिर की ओर जाकर उपद्रव उत्पन्न करता है। जब आक्षेप बन्द हो जाय, तो मल को निकालने का यत्न करना चाहिये। रोगी को हल्का भोजन देना चाहिये। यदि रोगी की प्रकृति गठियावाली हो, तो शाक-भाजी और दूध देना चाहिये। उत्तेजक औषधियाँ या मानसिक श्रम से रोगी को बचाना चाहिये।

सन्यास से बचाने के लिये—रोगी को विरेचन देना चाहिये और पोटाशियम ब्रोमाइड की बड़ी मात्रा देनी चाहिये।

रोगी के अच्छे होने पर उसे प्रतिदिन अनीसून, सौंफ, गावजबाँ प्रत्येक १॥ माशे और गुलकन्द ३५ माशे मिलाकर जुलाब देना चाहिये। रससिन्दूर, पिप्पली-चूर्ण और मधु को मिलाकर सेवन करना चाहिये।

मूर्च्छा

मूर्च्छा कई कारणों से उत्पन्न होती है। यह रक्त के अधिक मात्रा में निकलने से, डर से या अचानक किसी प्रकार का मानसिक धक्का लगने से होती है। कभी-कभी पेट पर मुक्का आदि मारने से, तीव्र दर्द के कारण अथवा स्त्रियों में मासिक धर्म के विकार से उत्पन्न होती है। आमाशय के विकृत होने से अथवा हृदय के रोग के कारण भी इसका आक्रमण हो जाता है। अधिक गरमी से, भीड़वाले घर में बैठने से, दुर्गन्धि या क्रूर शब्दों के सुनने से भी इसका आक्रमण होता है। यह रोग प्रायः करके युवाओं में या युवतियों में होता है, जिनकी प्रकृति वातिक होती है। इस रोग का सबसे प्रथम लक्षण भ्रम है। रोगी का चेहरा पीला हो जाता है। तीव्र मूर्च्छा का रोगी पीला हो जाता है, बेचैन हो जाता है, नाड़ी धीमी हो जाती है, पुतली फैल जाती है। तेज़, अनियमित तथा कठिनाई से श्वास आता है। ओष्ठ पीले हो जाते हैं, भुजायें ठण्डी हो जाती हैं। रोगी मृतक की भाँति बन जाता है।

रोगी को आराम से लेटा देना चाहिये, शिर को शरीर से थोड़ा नीचे रखना चाहिये। रोगी को खुली वायु में रखना चाहिये। अंगों को मलना

चाहिये। मोर के पंखों को जलाकर उसका धुआँ नाक में डालना चाहिये। यह अमोनिया से भी अच्छी दवा है। यदि पंखों की भस्म न मिले, तो रोगी को स्मेलिंग साल्ट सुँघाना चाहिये। इसके लिये चूना और नौसादर मिलाकर सुँघाना चाहिये। यदि मूर्च्छा देर तक रहे, तो हृदय पर राई की पुल्टिस लगानी चाहिये। रोगी को लेटाकर रखना चाहिये। उसका सिर नीचे रखना चाहिये अथवा टाँगों के बीच में मोड़ देना चाहिये। इस प्रकार के रोगी को बाहर घुमाना चाहिये। शक्ति-वर्द्धक औषधि देना चाहिये। आँतों को साफ़ रखना चाहिये। यदि शिर को नीचा रखा जाय, जिससे शिर में रक्त जाय, तो शीघ्र आराम हो जाता है।

साधारण उपाय—(१) सोंठ, गिलोय, कण्टकारी, कूठ, पिप्पली-मूल; इनका काढ़ा पिप्पली-चूर्ण के साथ पीना चाहिये। (२) ताम्र-भस्म आधी रत्ती, उशीर-मूल आधी रत्ती, नागकेसर आधी रत्ती; इनको शीतल जल के साथ देना चाहिये। (३) मधु के साथ त्रिफला-चूर्ण देना चाहिये। (४) एक मिट्टी के पात्र में राल को पिघलाकर इसमें केशर का चूर्ण मिलाकर चीनी के पात्र में डाल देना चाहिये। (१ पल राल में दो माशे केशर) इसका नाम ममायिका है। मात्रा—१ रत्ती से लेकर २ रत्ती तक। इसको घी और दूध के साथ देना चाहिये। (५) जंगल में पड़े हुये गौ के सूखे हुये गोबर को जलाकर भस्म कर लेना चाहिये। इसको तुल्य के साथ मिलाकर नास लेना चाहिये। (६) दुरालभा के काढ़े में घी मिलाकर देना चाहिये।

यूनानी औषधि—(१) जहरमोहरा, खताई को केवड़े के अर्क में घिसकर चाट लेना चाहिये। फिर सेव का मुरब्बा चाँदी-सोने के वर्क में लपेटकर खाना चाहिये। फिर गावज़बाँ (सेवती के फूल) कच्चा रेशम, प्रत्येक ७ माशे, चन्दन सफेद ३॥ माशे, बिल्लीलोटन के पत्ते ५॥ माशे; इनको बेंत के अर्क में भिगोकर पीना चाहिये। (२) वंशलोचन, गावज़बाँ, कासनी के बीज प्रत्येक १०॥ माशे, आँवला, मुनक्का ५२॥ माशे, चन्दन सफेद, गुलाब के फूल, अनविधे मोती, कहरुवा, प्रवाल-भस्म प्रत्येक १४ माशे, केशर १॥ माशे, चाँदी के वर्क २॥ माशे, शर्बत सेवकन्दी सबसे दुगुना मिलाकर माजून बना लेना चाहिये।

शीत परिसेक, शीत पानी में स्नान करना, मणि और हारों का पहनना, शीत प्रलेप, पंखों की वायु, शीत पानी और केवड़े या गुलाब का पानी सब प्रकार की मूर्च्छाओं में उपयोगी है।

मृगी (अपस्मार)

कारण—यह रोग पैतृक है अथवा पेट में कृमि होने के कारण, दाँतों के निकलने के समय अथवा मानसिक या शारीरिक परिश्रम अधिक करने से या मस्तिष्क-रोग के कारण होता है। जिन व्यक्तियों में इस रोग की प्रवृत्ति होती है, उनमें निर्बलता, भय, कामेच्छा, कृमि, रक्त की अधिकता, अजीर्ण या किसी प्रकार के स्राव का सहसा बन्द हो जाना; जैसे—विसर्प में या स्त्रियों में मासिक-धर्म के सहसा बन्द होजाने से यह रोग हो जाता है। इसके अतिरिक्त दाँतों का सड़ना, शिश्न की अग्र त्वचा का लम्बा होना या हस्त-मैथुनादि दूषित आदतों के कारण भी यह रोग हो जाता है।

इस रोग का हिस्टीरिया से भेद करना चाहिये। रोगी की चेतनता पूर्णत: नष्ट हो जाती है। रोगी का चेहरा बिगड़ जाता है। एकान्त में एक गम्भीर चीख होकर दौरा आता है। रोगी को गहरी नींद आती है, जो मूर्च्छा में समाप्त होती है। हिस्टीरिया में इस प्रकार का कोई लक्षण नहीं होता।

रोगी को दौरा आने से पहले एक चक्कर दिखाई देता है। यह चक्कर अंगों में, सिर में दिखाई देता है। रोगी को भ्रम, बेचैनी, आँखों के सामने काली रेखायें, चक्कर दिखाई देता है। नाक से दुर्गन्ध आती है, कानों में आवाज़ सुनाई देती है, हाथ-पाँव में गुदगुदी या चींटी चलने का अनुभव होता है। यह दौरा शरीर के दोनों पार्श्वों में होता है।

अपस्मार का आक्रमण थोड़ी-सी चेतावनी से होता है। रोगी की चेतनता या क्रिया-शक्ति नष्ट हो जाती है, इसलिये यदि वह खड़ा रहता है, तो गिर जाता है अथवा बिना किसी चेतावनी ही के रोगी गिर जाता है। रोगी एक ज़ोर की चीख़ से गिर जाता है। उसके हाथ और पाँव में आक्षेप हो जाते हैं। आँख और मुख की मांस-पेशियों में आकुञ्चन होते हैं। कई बार प्रथम आकुञ्चन से रोगी का शिर मुड़ जाता है। इससे यह प्रतीत होता

है कि रोगी अपने कन्धे की ओर कुछ देख रहा है। पुतलियाँ आँख को निचली पलकों के नीचे आजाती हैं, इसलिये आँख का श्वेत भाग नजर आजाता है। पुतली फैल जाती है और प्रकाश का सहन नहीं करती। चेहरा प्रथम पीला होता है, और फिर लाल हो जाता है। त्वचा शीत और चिकनी होती है। हाथ तने हुये होते हैं और भुजायें मुड़ जाती हैं। श्वास कठिन और शब्द-युक्त होता है, और ऐसा मालूम होता है कि श्वास रुक रहा है। जवाड़ी खिंची होती है, और मुँह से झाग आती है। यह झाग कभी-कभी रक्त-युक्त भी होती है। मल और मूत्र बिना किसी इच्छा के बाहर आजाते हैं। यदि आक्षेप २ या ५ मिनट तक लगातार जारी रहें, तो रोगी क्रिया-रहित, अचेतन तथा बेहोश हो जाता है।

चिकित्सा—यदि आक्रमण से पहले दौरे का पता चल जाय, तो राई का वमन देना चाहिये। इसके देने से दौरा रुक जाता है। यदि पेट भरा हुआ न हो, तो शीत पानी पिलाना चाहिये। आक्रमण के समय रोगी को पीठ के भार लेटाना चाहिये और शिर को थोड़ा-सा ऊँचा कर देना चाहिये। मुँह पर ठण्डे पानी का छींटा देना चाहिये। पंखे से हवा करना उत्तम है। शीत उपचार के सिवा और कोई उत्तम उपाय नहीं है। ग्रीवा और छाती को नङ्गा कर देना चाहिये, सब तङ्ग कपड़ों को ढीला कर देना चाहिये। रोगी को इस बात से बचाना चाहिये कि वह अपने अंगों को चोट न पहुँचा ले। इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि रोगी को पकड़ते हुये किसी प्रकार की चोट या आघात उसको न पहुँचे, साथ ही अपनी अंगुली को भी बचाना चाहिये कि उसके दाँतों में न आजाय। जीभ को काटने से बचाने के लिये मुँह में चम्मच या कार्क का टुकड़ा दे देना चाहिये। पीने के लिये कुछ भी नहीं देना चाहिये। दौरे के पीछे रोगी को सोने देना चाहिये। यदि रोगी को नींद न आये, तो गरम दूध या पोटाशियम ब्रोमाईड की मात्रा देनी चाहिये। सब प्रकार के मद्य से बचना चाहिये।

दौरा उतर जाने के पीछे व्यायाम तथा किसी पेशे में लग जाना चाहिये। सब प्रकार के मद्य, तम्बाकू, बुरी आदतों से बचना चाहिये। मलबन्ध, कृमि, सड़े हुये दाँतों की चिकित्सा करनी चाहिये। यदि यह रोग औरत में हो, तो उससे मासिक स्राव के विषय में पूछना चाहिये और यदि

विकार हो, तो उसकी चिकित्सा करनी चाहिये। पेटाशियम ब्रोमाईड को थोड़ी मात्रा में देना चाहिये। शक्ति वर्द्धक औषधियों का भी देना उत्तम है। साधारणतः अपस्मार-रोग-ग्रस्त व्यक्ति को मलबन्ध नहीं होने देना चाहिये। उसके शिर को ठण्डा रखना चाहिये, पाँव गरम रखने चाहिये, मन में किसी प्रकार की चिन्ता या उद्विग्नता नहीं रहनी चाहिये, कभी भी तंग वस्त्र नहीं पहनने चाहिये। व्यसनों से बचना चाहिये। जो भोजन अजीर्ण उत्पन्न करें, उनसे बचना चाहिये।

दौरे के समय एमाईल नाईट्रेड या ईथर और क्लोरोफार्म को उचित मात्रा में थोड़ा-थोड़ा सुँघाना चाहिये। दौरे के बीच के समय यह दवाई देना चाहिये—पोटाशियम आयोडाईड १ ड्राम, पोटाशियम ब्रोमाईड १ ड्राम, अमोनियम ब्रोमाईड आधा ड्राम, अमोनिया कार्ब ४० ग्रेन, पानी ८ औन्स। भोजन से पूर्व चाय का एक छोटा चम्मच इस दवाई का पीना चाहिये, और सोते समय १ औन्स मात्रा पीनी चाहिये।

हिस्टोरिया

यह रोग प्रायः स्त्रियों में होता है, विशेषतः उनमें जो आराम की जिन्दगी व्यतीत करती हैं, और जिनको कोई चिन्ता आजाय। इस रोग का आक्रमण दो प्रकार से होता है, १—देर तक वात-नाड़ियों पर प्रभाव रहने से, २—आक्षेप या फिट का दौरा होने से। इनमें रोगी या तो वातिक लक्षणों से आक्रान्त होता है, अथवा उसे दौरा हो जाता है।

वातिक लक्षण मुख्यतः—अध्मान, हिचकी, हृदय की धड़कन, श्वास में काठिन्य, चेहरे का लाल होना, गले में रुकावट का प्रतीत होना, शरीर के अन्य भागों में दर्द होता है। रोगी का वाम पार्श्व, वाम चूचक, सन्धियाँ भी प्रायः आक्रान्त हो जाती हैं। रोगी को यह वहम हो जाता है कि उसके आंतों में, गर्भ में, या उसके गले में कुछ विकार है, जब कि वास्तव में कुछ भी नहीं होता। इसके अतिरिक्त वह मानता है कि उसकी सन्धियाँ स्थिर होगई हैं, उसका मूत्र रुक गया है, वह समझने लगता है कि मुझको कुछ निगला नहीं जा सकता। ज्योंही रोगी की त्वचा स्पर्श की जाती

है, वह चिल्लाता है, परन्तु वास्तव में दबाने से कोई दर्द बढ़ता नहीं। मुँह से या चेहरे से किसी प्रकार की दर्द का पता नहीं चलता। पलकें गिर जाती हैं। रोगी का ताप-परिमाण बढ़ता नहीं। इन रोगियों में हिस्टीरिया का इतिवृत्त रहता है। इस प्रकार के रोगी बहुत बहाने करते हैं। प्रायः करके इन रोगियों में मासिक धर्म की गड़बड़ी रहती है, या कृमि होते हैं।

कई बार इस रोग के दौरे में दूसरे आक्षेप होते हैं। जैसे—हिचकी लेना, जम्भाई आना, गले में किसी प्रकार की रुकावट का अनुभव होना है। इस रोग से ग्रस्त रोगी जब गिरता है, तो किसी आराम-वाले स्थान पर गिरता है, जिससे उसके शरीर को चोट न पहुँचे। रोगी प्रायः चिल्लाता है या हँसता है। आक्रमण के पीछे हल्के पीले रंग का पेशाब बहुत अधिक मात्रा में आता है।

चिकित्सा—रोगी के कपड़े ढीले करके सिरके, गुलाब-जल या कोलन वाटर के छींटे देने चाहिये, पङ्खों से खूब वायु करनी चाहिये। अमो-निया या परों का धुँवा, स्मेलिंग सौल्ट सुँघाना चाहिये। भुजाओं को मलना चाहिये। रोगी के सिर और छाती पर ठण्डे पानी का तरेड़ा देना चाहिये। कई बार यह रोग दूसरे रोगों को धोखा दे देता है। जिससे कई बार चिकित्सा से अवस्था और भयानक बन जाती है। आक्रमणों के अन्तर में उत्तम भोजन, शुद्ध वायु, व्यायाम, मानसिक श्रम, आंत्रों का ध्यान और शीत-स्नान करना चाहिये। मासिक धर्म का विकार हो, तो उसकी चिकित्सा करनी चाहिये।

साधारण उपाय—१—मुलहठी के काढ़े के साथ घीकार का रस मिलाकर, उसमें घी मिलाकर खाना चाहिये। २—विषखपरा के स्वरस का नस्य लेने से अपस्मार रोग शान्त होजाता है। ४—खटमल के रक्त का नस्य लेना भी उत्तम है। ५—हरीतकी २, आमलकी १, विडंग १, जटामांसी १, हल्दी का पत्ता १, हींग आधा, कपूर चौथाई भाग इनका आधा आना परिमाण की गोली करके गरम जल के साथ खाना चाहिये। ६—तेल के साथ लहसुन, दूध के साथ शतावरी, मधु के साथ ब्राह्मी का चूर्ण खाना चाहिये। ७—प्रातःकाल मधु के साथ वच-चूर्ण खाना चाहिये।

८—कुम्हड़े के रस के साथ मुलहठी का चूर्ण खाना चाहिये। ९—जटामांसी का नस्य, या धूम-पान करने से या इसका चूर्ण खाने से विशेष लाभ होता है।

शास्त्रीय औषधि—बृहत चिन्तामणि, अश्वगन्धारिष्ट, योगेन्द्र-रस, छागलाद्य घृत, ब्राह्मी घृत, चैवस घृत।

यूनानी औषधि — १—गुलाब के फूल, मस्तगी, कुन्दरू के छोटे-छोटे टुकड़े, अगर, बालछड़ इनको गुलाब के अर्क में पीसकर लेप करना चाहिये। गर्म जवारिश खाने को देना चाहिये। २—दिमाग की शक्ति को बढ़ाने के लिये अम्बर और गुलाब सूँघना चाहिये। ३—पारवान भेद, हब्वुतगर, मरमकी, जराबन्द तवील इन चारों दवाओं को बराबर लेकर कूट-छानकर शहद में मिलाकर खाना चाहिये। ४—इन्द्रायण का गूदा, करेले का निचोड़ा हुआ पानी, कालीमिर्च, सोंठ जुन्दवेदस्तर इनमें से जो मिल जाय, उसका पानी नाक में छोड़ना चाहिये।

शिर-दर्द

शिर-दर्द — स्वतन्त्र रोग होने की अपेक्षा प्रायः करके यह दूसरे रोगों के लक्षण के रूप में होता है। शिर-दर्द प्रायः करके निम्न रूपों में मिलता है।

(१) अजीर्ण के कारण शिर-दर्द—इस दर्द के कारण, आमाशय, आँत्र या यकृत के विकार होते हैं। जिस समय आमाशय खराब होता है, उस समय जो शिर-दर्द होता है, वह मस्तिष्क में होता है, इसके साथ जी मचलाता है। दर्द का स्वभाव चुभने का होता है। अधिक खाने या पीनेवाले मजबूत व्यक्तियों में दर्द बिना जी मचलाने की शिकायत के हो जाता है। इस प्रकार का दर्द सोडावाटर से या साइट्रेट ऑफ मैगनेशिया को पानी में पीने से आराम हो जाता है। यदि खाना खाने के पीछे दर्द उत्पन्न हो जाय, तो राई को पानी में घोलकर पिलाना चाहिये। वमन के होने से दर्द शान्त हो जाता है। यदि आँतों में या यकृत में विकार हो, तो शिर जकड़ा

हुआ प्रतीत होता है और दर्द का स्वभाव इस प्रकार का होता है, मानो कोई हथौड़े मार रहा है। इस अवस्था में विरेचन देना चाहिये।

(२) वात-जन्य शिर-दर्द—यह रोग उन वात-प्रकृतिवाले पुरुषों में होता है, जो सदा चिन्ताग्रस्त रहते हैं और वात-प्रकृतिवाली स्त्रियों में मासिक-धर्म के समय हो जाता है। जिन पुरुषों में यह रोग होता है, उनके चेहरे पीले, कमजोर और जल्दी से लाल या उत्तेजित हो जाते हैं। किसी भी मानसिक उत्तेजना या तरङ्ग आने पर एकदम से दर्द होने लगता है। यह दर्द एक ही स्थान पर रहता है, या शिर के एक पार्श्व में रहता है, अथवा सारे शिर में मीठा दर्द रहता है। कभी-कभी इस दर्द के कारण आँख की दृष्टि में भी अन्तर आजाता है। आँख के सामने एक छोटा-सा काला बिन्दु दिखाई देता है। फिर वह धीरे-धीरे बड़ा हो जाता है। वात-जन्य शूल, जो स्त्रियों में मासिक-धर्म के समय होती है, उसे साधारणत: मिग्रेन कहते हैं। जिन लड़कियों में हिस्टीरिया का दौरा प्राय: होता रहता है, उनमें यह रोग प्राय: करके होता है। दाँत के खराब होने से जबड़े में वात-जन्य दर्द होने लगता है। जिन व्यक्तियों में वात-जन्य दर्द होने लगता है, उनको प्राय: आक्रमण से पूर्व कुछ शीत लगता है और मन कुछ गिर जाता है। ये व्यक्ति जब प्रात: उठते हैं, तब उनको थोड़ा-सा शिर-दर्द का अनुभव होता है, परन्तु पीछे से शान्त हो जाता है। अथवा तीव्र दर्द के कारण इन व्यक्तियों की नींद खुलती है। ये व्यक्ति किसी भी प्रकार के भोजन को निगल नहीं सकते और अपने को रोगी अनुभव करते हैं। शिर में चुभने की-सी वेदना होती है, क्रियायें दर्द का द्योतन करती रहती हैं। पुतली संकुचित, चेहरा पीला और आँखों के नीचे काली रेखायें दिखाई देती हैं। शिर के अन्दर गरमी मालूम होती है और शीत-परिसेक से कुछ शान्त होती है। रोगी एकान्त में शान्त लेटना चाहता है। यदि रोगी को पूर्ण रूप से वमन हो जाय, तो दर्द शान्त हो जाता है।

वात-जन्य शिर-दर्द आमाशय, यकृत के विकार के बिना भी हो जाता है। इस स्थिति में वमन आदि होकर भी रोग शान्त नहीं होता। कइयों में दर्द इस कारण होता है कि वे व्यापार के आनन्द में फँसे होते हैं और असमय में भोजन कर लेते हैं। ये लोग किसी प्रकार का व्यायाम

नहीं करते और तम्बाकू का अधिक उपयोग करते हैं। वमन, नींद और अमोनिया इस रोग में थोड़े समय के लिये शान्ति दे देती हैं। वात-जन्य शिर-दर्द से बचने के लिये आदतों को बदलना चाहिये। चाय और कॉफी को छोड़कर दूध और सोडावाटर पीने के लिये देना चाहिये। तम्बाकू की आदत कम करनी चाहिये, स्वास्थ्य के नियमों का पालन करना चाहिये। आर्त्तव के समय यदि शिर-दर्द हो, तो पोटाशियम ब्रोमाइड को देना चाहिये।

(३) **ट्राईफेशियल**—इस प्रकार के दर्द में शूल मस्तिष्क से उठकर तीन रेखाओं में बहती है। इनमें से एक रेखा (सुप्रा और बोटल) भ्रू के ऊपर की अस्थि का भेदन करके आती है, दूसरी रेखा गालों की अस्थियों से आती है। यह अस्थियाँ आँखों के नीचे हैं। इसकी तीसरी रेखा निचले हनु के मध्य भाग में दोनों ओर से आकर मिलती हैं। ऊपर की शाखा प्रायः करके आक्रान्त होती है। इसके कारण भ्रू पर बड़ा दर्द होता है। परन्तु कई बार यह दर्द आँख तक ही नियमित रहता है। परन्तु जब इस नर्व की मध्य शाखा आक्रान्त होती है, उस समय ऊर्ध्व हनु या दाँत आक्रान्त होता है, विशेषतः जब कि दाँत सड़े हुये हों। परन्तु जब इसकी तीसरी शाखा आक्रान्त होती है, उस समय दर्द अधो हनु में रहता है। उस समय दाँत या आधी जिह्वा आक्रान्त हो जाती है। जब तीनों शाखायें आक्रान्त होती हैं, उस समय आधा मुख या आधा शिर दर्द-युक्त रहता है। इस दर्द को सूर्य्यावर्त्त भी कहते हैं, क्योंकि जब सूर्य उदय होता है और जबतक रहता है, तबतक दर्द रहता है। सूर्य की गरमी के साथ-साथ दर्द भी बढ़ता जाता है। जब इसके आक्रमण रुक-रुककर होते हैं, उस समय इसको "इन्टर मीटैन्ट हेडेक" कहते हैं।

भ्रुवों पर जो दर्द होता है, वह शीत-ज्वर के कारण भी हो जाता है। कभी-कभी ऐसा होता है कि ज्वर का आक्रमण आज होता है और दर्द अगले दिन होता है। यह दर्द निश्चित समय पर होता है; जैसे— प्रतिदिन या एक दिन छोड़कर होता है। इस दर्द की रेखा 'सुप्रा और बीटल' नर्व के साथ-साथ जाती है और माथे में फैलती है। यदि भौं के मध्य में नाक के पार्श्व में एक तिहाई भाग पर अँगुली रक्खें, तो एक निम्न-प्रदेश दिखाई देता है। इसी निम्न-प्रदेश में यह नर्व गुज़रती है। दर्द बहुत तीव्र होता है। यहाँ

तक कि रोगी किसी काम को नहीं कर सकता। आँख और नाक से पानी निकलता है। साधारणतः यह दिनभर रहता है; परन्तु कभी-कभी दो-तीन घण्टे रहकर शान्त हो जाता है। अजीर्ण के कारण वात-प्रकृतिवालों में यह दर्द बढ़ जाता है। गरमी लगना, थकान, रात तक काम करना, शीत लगना, नमी, डिनर पार्टीज़, सहभोज, आराम न करना आदि कारण इस दर्द को बार-बार उत्पन्न कर देते हैं। जब स्त्री बार-बार गर्भ के धारण करने से, देर तक दूध पिलाने से, अति आर्त्तव-स्राव से कमज़ोर हो जाय, उस समय भी दर्द बार-बार हो जाता है।

चिकित्सा—भारतवर्ष में यह रोग प्रायः मलेरिया के कारण होता है। इसलिये ५-६ ग्रेन किनीन को प्रत्येक ३ घण्टे के अन्तर से देना चाहिये। एक ग्रेन किनीन और तीन ग्रेन निशास्ता मिलाकर सूँघना चाहिये। कई बार विद्युत्-धारा से, दर्द के स्थान पर दबाने से, सिर के बाँधने से, अँधेरे और शान्त कमरे में सोने से भी आराम हो जाता है। हाथों को सिर के ऊपर रखने से भी आराम हो जाता है। इस रोग में शीर्षासन चमत्कारिक प्रभाव करता है अथवा रोगी की पाँयत पर्याप्त ऊँची कर देनी चाहिये। गरम चाय या गरम कॉफी अथवा अमोनिया कई बार रोगी को आराम देती है। दर्द के समय साधारणतः कोई दवा असर नहीं कर सकती। शङ्ख-प्रदेशों पर या माथे पर राई का प्लास्टर या जोंक लगवाना चाहिये। क्लोरल हाईड्रेट और कपूर को समान मात्रा में मिलाकर रुग्ण-प्रदेश पर मलना चाहिये। बर्फ या शीत उपचार से प्रायः आराम हो जाता है; परन्तु कभी-कभी गरम उपचार से भी दर्द घट जाता है। बार-बार आक्रमण होने का कारण मलेरिया के साथ निर्बलता, आमाशय तथा यकृत के रोगों का होना है। इसलिये प्रथम अजीर्ण की चिकित्सा करके, पीछे से किनीन देना चाहिये। बुरे दाँतों की चिकित्सा करनी चाहिये। स्त्री के विषय में मासिक-धर्म की अनियमता के प्रश्न पर भी विचार करना चाहिये।

यदि किनीन से लाभ न हो, तो लोह; यदि लोह से आराम न हो, तो आरसनिक प्रयोग करके देखना चाहिये। प्रत्येक औषधि को कम से कम १४ दिन तक बरतना चाहिये। एण्टीपाइरीन को १०-१५ ग्रेन की मात्रा में २ औंस पानी में घोलकर दिन में तीन बार देना चाहिये। परन्तु दो दिन से

अधिक नहीं देना चाहिये। क्लोरोफार्म को रुई में भिगोकर किसी स्थान पर रख देना चाहिये। ऊपर से घड़ी का शीशा ढक देना चाहिये, जिससे उड़े नहीं।

(४) **मस्तिष्क-जन्य शिर-दर्द**—इस दर्द के भिन्न-भिन्न रूप बड़ी उम्रवाले व्यक्तियों में मिलते हैं। साधारण बोलचाल में कहा जाता है कि मस्तिष्क में रक्त का प्रवाह बढ़ गया है। साधारणतः यह एक चेतावनी का चिन्ह है, जो सन्यास, सनस्ट्रोक, मृगी, बवासीर या अन्य किसी स्राव के सहसा अवरोध को या स्त्रियों में ऋतु बन्द होने को बताता है। इस अवस्था में रोगी के शरीर के अन्दर रक्त की अधिकता रहती है। तीव्र अवस्थाओं में चुभनेवाला दर्द, लाल आँखें, तमतमाता हुआ चेहरा होता है। सिर ऐसा प्रतीत होता है, मानो किसीने इसे बाँध रक्खा है। प्यास और कुछ ज्वर होता है।

यदि दर्द थोड़ा हो, तो विरेचन देना चाहिये। किसी प्रकार की उत्तेजक औषधि नहीं देना चाहिये। भोजन सादा होना चाहिये। धूप से बचना चाहिये। यदि दर्द तीव्र हो, तो कुरसी पर शान्ति से बैठकर सिर पर परिसेक करना चाहिये, बालों को छोटा करा देना चाहिये। कनपटी या शङ्ख-प्रदेश पर ८-१० जलौकायें लगवाना चाहिये।

(५) **गाउटी हेडेक**—सन्धिवात या आमवातके कारण शिर-दर्द कपाल की मांस-पेशियों में होता है। दर्द शिर से पृथक् मालूम होता है। यदि माथे को घिसें, तो दर्द बढ़ जाता है। शरीर के अन्य भागों में भी दर्द होता है; मूत्र में लाल निक्षेप होते हैं। इस रोग की चिकित्सा के लिये क्षार तथा कॉलचिकम देना चाहिये।

सामान्य चिकित्सा—१—केसर और मिश्री इनको मिलाकर थोड़ा गरम करके लेप करने से शिर-दर्द में आराम होता है। २—आधाशीशी-रोग में—जिस पार्श्व में दर्द हो, उससे दूसरे पार्श्व की नाक में नौसादर या नमक या अपामार्ग का चूर्ण पानी में घोलकर एक या दो बूँदें कान, नाक या आँख में डालना चाहिये। ३—खरबूजे के बीजों को घी में भूनकर और शर्करा मिलाकर (हलुवे के रूप में) खाने से आराम होता है। ४—बर्फ या सोंठ, लौंग, कपूर और अर्जुन तथा श्वेत चन्दन इनको घिसकर लेप

करना चाहिये । ५—नौसादर को पानी में घोलकर उसके अन्दर वस्त्र भिगोकर शिर पर रखना चाहिये । ८—दो छोटी इलायची, १ बड़ी इलायची, १ माशा कपूर इनको लेप करना चाहिये ।

९—'लेना दोस्त बदाम पोस्त फलके दाना चिरौंजी तिली,
राई औ पिस्ता खरी वजन में एक पैसा भरी ।
छः माशे पुनि लोहबान कुचिला पोनेंजु तोला सही,
घी माँही करि लूपरी मगज के दर्दी कु काफी वही ॥'

१०—कड़ुवी तुम्बी के बीजों का नस्य लेने से आराम होता है । ११—चार रत्ती पिप्पली, १ रत्ती मैनफल और २ रत्ती अफीम इनके चूर्ण को घी में भूनकर सूँघने से सूर्य्यावर्त्त, अधशीशी नष्ट होती है । १२—तगर, नीलोफर, लालचन्दन और कूठ इनको पीसकर लेप करना चाहिये । १३—शारिवा, कूठ, नीलोफर कूठ इनको कांजी में पीसकर लेप करना चाहिये । १४—सूर्य्यावर्त्त रोग में गुड़ के साथ घी या मालपुये तथा हलुवा खाना चाहिये । १५—४ माशा शर्करा, ४ माशा केसर इनको ८ तोले घी में भूनकर, फिर घी में पीसकर कुछ गरम करके नस्य लेना चाहिये । १६—शर्करा-मिश्रित दूध या नारियल-जल का नस्य लेना चाहिये । १७—चूल्हे की लाल मिट्टी और मिर्च चूर्ण समान भाग में मिलाकर नस्य लेना चाहिये ।

शास्त्रीय औषधि—षड्बिन्दु तैल, मयूराद्य-घृत, महालक्ष्मी-विलास, गोदन्ती-भस्म, दशमूल-तैल, भृङ्गराज-तैल ।

यूनानी औषधि—(आधाशीशी में) १—नीलोफर, बनफसा, खितमी के पत्ते, काहू, गुलाब के फूल पानी में औटाकर दर्द के स्थान पर डालना चाहिये । २—दम्बुल अरबवैन, केसर, सभग अरबी, अफीम इनको अण्डे की सफेदी में मिलाकर शंख-प्रदेशों पर लगाना चाहिये । ३—काहू के बीज, अजवायन खुरासानी कतीरा और अफीम इनको सिर्के में पीसकर लगाना चाहिये । ४—गुलरोगन शिर पर मलना चाहिये । यह सब शिर-दर्दों के लिये उत्तम है । ५—सब प्रकार के शिर-दर्दों में विरेचन देना उत्तम है । इसके

लिये—पीली हर्द, काबुली हर्द, आलूबुखारा, मुनक्का, उन्नाव, मुलहठी, इमली, बनफसा और लिसोड़ा इनका काढ़ा करके इसमें तुरञ्जबीन या शीरीखिस्त और अमलतास मिलाकर रोगी को पिलाना चाहिये। ६—एलुवा, तुर्बुद, अनीसून, रूमी मस्तगी, सकमूनिया, नमक हिन्दी इन सबको कूट-छानकर शहद में मिलाकर चने के बराबर गोलियाँ बनाकर खाना चाहिये, या यलुवा, तुर्बुद, गारीकून, रूमीमस्तगी, नमक हिन्दी इनको शहद के साथ गोली बनाकर (चने के बराबर) रात को देना चाहिये। ७—वात-जन्य शूल के लिये—बिस्फायज, उस्तखद्दूस, मुनक्का, गावजबां, बोदरजवोया, आलूबुखारा, अफतीयून इनके काढ़े में तुरञ्जबीन मिलाकर देना चाहिये। इससे विरेचन होता है।

मदात्यय, पानात्यय

यह रोग शराबियों में पाया जाता है। इस रोग में और अन्य प्रलापों मे भेद होता है। यह रोग देर तक लगातार पान करने से अथवा एक ही बार में बड़ी मात्रा में शराब पीने से हो जाता है। शराबी लोग इस रोग से प्राय: आक्रान्त होते हैं, विशेषत: जब उनको किसी प्रकार का कोई दूसरा रोग हो जाय या चोट लग जाय। रोगी अपने चारोंओर भयानक वस्तुओं को (जैसे—साँप, चूहे या चितकबरे कुत्तों को) देखता है, विशेषत: रात्रि में। उसके हाथ काँपते हैं, उसकी आंखें चारोंओर फिरती है, उसकी पुतली निर्बल होती है, उसकी त्वचा भीनी। उसको न नींद आती है और न भूख रहती है। प्राय: रोगी शान्त होता है और बिना बल प्रयोग किये सुगमता से वश में आजाता है। परन्तु कई बार रोगी चाकू या उस्तरे को छिपाये होता है, उसका ध्यान रखना चाहिये। बुरे रोगियों में अचेतनता हो जाती है। मृत्यु से पूर्व श्वास भारी हो जाता है, अंगों में गुदगुदी होने लगती है, मल और मूत्र बिना इच्छा के बाहर होने लगते हैं। कभी-कभी आक्षेप भी हो जाते हैं।

मानसिक भ्रम इस रोग में विशेष होते हैं। रोगी चिल्लाता है कि उसके बिस्तर के नीचे साँप है। उसे कुर्सी से घड़ी की आवाज़ सुनाई देती

है, कभी अपने को बड़े भारी धन का स्वामी समझता है। कभी सिपाही मानता है, कभी कुछ समझता है।

इस रोग का भेद मस्तिष्क-शोथ से उत्पन्न प्रलाप से करना चाहिये। मस्तिष्क-शोथ के कारण उत्पन्न प्रलाप में ज्वर या धूप का इतिवृत्त होता है, जब कि मद्य-जन्य प्रलाप में मद्य का इतिवृत्त होता है। मद्य-जन्य प्रलाप में शिर-दर्द नहीं होता और प्रकाश भी असह्य नहीं होता। इस रोग में ज्वर के लक्षणों का अभाव होता है, त्वचा भीगी होती है। मस्तिष्क-जन्य प्रलाप में यह लक्षण नहीं होता। मद्य-जन्य प्रलाप में रोगी के श्वास के अन्दर मद्य की गन्ध होती है। यदि प्रलाप का निश्चय न हो, तो मद्य-जन्य प्रलाप ही की चिकित्सा करनी चाहिये।

चिकित्सा—सबसे प्रथम रोगी को नींद लाने का यत्न करना चाहिये। यदि चिकित्सक पास में हो, तो मॉर्फिया का इन्जैक्शन दिलवाना चाहिये। यदि यह सम्भव न हो, तो ३० ग्रेन पोटाशियम ब्रोमाइड और १० ग्रेन क्लोरल १ औंस में मिलाकर प्रत्येक ४ घण्टे के अन्तर से देना चाहिये। रोगी जब उठता है, तो अपने को स्वस्थ पाता है। कई अवस्थाओं में सबसे प्रथम विरेचन देने की आवश्यकता होती है। ये अवस्थायें निम्न हैं—जब चेहरा लाल, तमतमाता हुआ हो, जिह्वा बहुत मैली हो, श्वास में दुर्गन्धि हो, रोगी का इतिवृत्त यह बताता हो कि उसने खाने के साथ शराब पिया है, तो विरेचन देना उत्तम है। रोगी को जौ का पानी पर्याप्त मात्रा में पीने के लिये देना चाहिये।

चिरकालीन मद्यपान—इस रोग के लक्षण निम्न हैं—बेचैनी, नींद का न आना, मानसिक शक्तियों का ह्रास, आत्म-शक्ति की कमी, तमतमाता या लाल धब्बोंवाला चेहरा, आँखें लाल और पानीवाली, गालों और नथनों की रक्त-वाहिनियों में स्पन्दन प्रतीत होता है। हाथों में कम्पन, मैली जिह्वा, श्वासों में दुर्गन्धि, आँतों में अनियमता होती है। यदि मद्यपान की आदत को रोका न जाय, तो यकृत-विकार, आमाशय के चिरकालीन विकार, सनकी, मस्तिष्क का नर्म हो जाना तथा अपूर्ण या पूर्ण पक्षाघात हो जाता है।

इस रोग की चिकित्सा के लिये रोगी को मद्य से सर्वथा पृथक

रखना चाहिये। उसे खाने को दूध तथा अन्य भोजन पर्याप्त मात्रा में देना चाहिये। प्रातःकाल सोडावाटर और दूध मिलाकर देना उत्तम है। मद्य की हविस को मिटाने के लिये टिंचर कैप्सीसाई ३० बूँद या टिंचर जिंजरफोर्ट को २ औन्स पानी में मिलाकर देना चाहिये। सब अवस्थाओं में निम्न मिश्रण उपयोगी है—पोटाशियम ब्रोमाइड १ ड्राम, टिंचर कैप्सीसाई १॥ ड्राम स्प्रिट एमोनिया एरोमैटिक ६ ड्राम, कैम्फर वाटर ६ औंस, १ औंस मात्रा में दिन में तीन बार देनी चाहिये।

आर्य-औषधि—खजूर, किशमिश, फालसा, अनार के रस में शीतल माध्वीय मद्य मिलाना चाहिये। शीतल स्थान में रखना, शीत पानी का स्पर्श, कमल के पत्तों की छाया, मणि और मुक्ता का धारण, चन्दन और खस का लेप करना चाहिये। चव्य, संचल, हींग, सोंठ, अजवायन, इनका चूर्ण मद्य के साथ पीना चाहिये। मद्यपान करके यदि रोगी तत्क्षण घी के साथ मिलाकर खा ले, तो मद्य असर नहीं करता।

उन्माद

यह एक मानसिक रोग है, इस रोग में मन की स्थिति अव्यवस्थित हो जाती है। बुद्धि, स्मृति, प्रतिभा आदि सब नष्ट हो जाती है। इस रोग में रोगी का मन स्थिर हो जाता है।

प्रकार—उन्माद रोग के कई भेद हैं; परन्तु तीन भेद मुख्य हैं:—

(१) चित्तभ्रम—इस रोग में मनुष्य की बुद्धि नष्ट हो जाती है, उसके मन में नाना प्रकार की लहरें उठती हैं, रोगी बकता है, तूफान करता है, रोगी को कुछ होश नहीं रहता, गाता है, रोता है, हँसता है, सोता नहीं, नाचता है, किसीको मारने दौड़ता है।

(२) उदासीनता—इस रोग में मनुष्य पागल नहीं हो जाता, परन्तु उसको चारोंओर निराशा ही दिखाई देती है। यहाँ तक कि वह अपने जीवन से भी निराश हो जाता है।

(३) बुद्धिनाश—इस रोग में मनुष्य की बुद्धि निर्बल हो जाती है। वह कभी शान्त बैठ नहीं सकता। बिना अर्थ के बोलता है, गाता है, चलता है, सभ्यता की मर्यादा का उल्लंघन करके सब कार्य करता है। स्मरण-शक्ति नष्ट हो जाती है।

इसके अतिरिक्त चौर्योन्माद, धार्मिक उन्माद, कामोन्माद आदि अनेक प्रकार के उन्माद हैं।

कारण—उन्माद के बहुत-से कारण हैं—(१) पैतृक क्रमागत, (२) निकट सम्बन्धियों में या सगोत्र में विवाह, (३) अति दारू पीने से, (४) अफीम, तम्बाकू, भाँग, गाँजा आदि व्यसनों से, (५) अति स्त्री-सेवन या हाथ-रस से, (६) मानसिक क्षोभ से, चिन्ता से, धन से, धन आदि के नाश से; (७) सहसा खुशी से, (८) मस्तिष्क के अधिक श्रम से, उन्माद या चित्तभ्रम-रोग होता है।

उपाय—उन्माद रोगी की अवस्था बहुत दयनीय होती है। इस रोग में सबसे प्रथम विरेचन देना उत्तम है। विरेचन देने से रोगी के पेट को नर्म कर लेना चाहिये। पीछे से विरेचन देना चाहिये। आर्य-वैद्यक में इस रोग के लिये निम्न प्रयोग उत्तम गिने हैं—

(१) ब्राह्मी स्वरस ४ तोला, कूठ चूर्ण २ माशा, मधु ८ माशा (२) पुराने कुम्हड़े के बीज ८ माशा, कूठ चूर्ण २ माशा, मधु ८ माशा (३) श्वेत वच चूर्ण ८ माशा, कूठ २ माशा, मधु ८ माशा (४) शङ्खपुष्पी स्वरस ८ तोला, कूठ २ माशा, मधु ८ माशा ये चार योग उन्माद-नाशक हैं। (५) दस साल का घृत देना चाहिये। (६) घृत पुराना ४ आना, बहेड़े के बीजों का चूर्ण ६ आना, उत्कृष्ट मकरध्वज १ रत्ती, मधु ४ आना, मिश्री ८ आना इनको मिलाकर आधा सेर धारोष्ण दूध के साथ देना चाहिये। (७) ब्राह्मी स्वरस आधी छटाँक, कच्ची हल्दी का रस १ छटाँक, शतावरी-रस १ छटाँक, चीनी २ तोला, मक्खन २ तोला इनको मिलाकर ब्रह्मरन्ध्र पर मलना चाहिये।

शास्त्रीय औषधि—चतुर्मुख, योगेन्द्र रस, वात-चिन्तामणि, चिन्तामणि चतुर्मुख, त्रैलोक्य चिन्तामणि, रसराज, अश्वगन्धा घृत, माष तैल, नारायण तैल।

स्मरण-शक्ति बढ़ाने के उपाय—(१) प्रातःकाल शतावरी और ब्राह्मी शाक कूटकर प्रत्येक आधी छटाँक लेकर धारोष्ण दूध के साथ पीना चाहिये (२) कच्ची सिम्बल की मूल का चूर्ण ५, तोला आमलकी चूर्ण ४ तोला, मुलहठी चूर्ण ३ तोला, शठी चूर्ण २ तोला, वंशलोचन और जटामांसी आधा-आधा भाग इनके चूर्ण को ६ आना मात्रा में मक्खन, मधु, शर्करा दूध

के साथ मिलाकर खाना चाहिये। (३) बादाम, पिस्ता, अखरोट खाना चाहिये।

यूनानी औषधि—(१) हरड़ काबुली, उस्तखद्दूस, मुनक्का, प्रत्येक ३५ माशे, शाहतरा, बिसफाईज, सनाय प्रत्येक साढ़े सत्रह माशे, इन दवाइयों को कूटकर डेढ़ सेर पानी में औटाना चाहिये। जब आध सेर पानी बच जाय, तब नीचे उतारकर ३५ माशे अफतीमून डालकर छोड़ दे। जब ठंडा होजाय, तब छानकर उसमें साढ़े तीन माशे गरीकून और ७ माशे एलुवा महीन पीसकर मिलाना चाहिये। इसमें शर्करा मिलाकर पीना चाहिये। (२) पीली हरड़ का छिलका, इमली, पित्तपापड़ा प्रत्येक ६५ माशे, आलू २० दाने, लसोड़ा ५० दाने, गुलाब के फूल, कासनी के बीज प्रत्येक साढ़े सत्रह माशे, कूटकर डेढ़ सेर पानी में औटाना चाहिये। जब आधा सेर रह जाय, तब इसमें ३५ माशे अफतीमून मिलाकर छोड़ देना चाहिये। इसमें १ डांग (चार जौ के बराबर) सकमूनियाँ, निशोथ साढ़े तीन माशे, तुरञ्जबीन ७० माशे और शीरखिस्त मिलाकर पीना चाहिये। इन दोनों औषधियों से विरेचन होता है। (३) दिवाल मुश्क, नरकचूर, दरूनज। अकरबी, अनविधी मोती, कहरवा, मूँगे की जड़, प्रत्येक ३५ माशे, रेशम खांम, वहमन सफेद, वहमन लाल, बालछड़, छोटी इलायची के दाने प्रत्येक साढ़े सत्रह माशे, छरीला, पीपल, सोंठ, प्रत्येक १४ माशे, कस्तूरी ७ माशे, इनको कूटछानकर शहद में मिलाना चाहिये। (४) मुफर्रा नामी नौशदारू—गुलाब के फूल साढ़े उन्नीस माशे, नागरमोथा साढ़े सत्रह माशे, लौंग, रूमीमस्तगी बालछड़, प्रत्येक साढ़े दस माशे, सिरफा, जरनब (ब्राह्मी) केसर प्रत्येक ७; माशे इलायची के दाने, बिवासा, जायफल प्रत्येक साढ़े तीन माशे, आमला आधा सेर इनको साढ़े तीन सेर पानी मे औटाना चाहिये, जब डेढ़ सेर रह जाय, तब मलकर छान लेना चाहिये। इसमें शहद १ पाव मिलाकर औटाना चाहिये, जब गाढ़ा हो जाय, तब और दवायें मिलाकर इनमें थोड़-सा हींग मिला देना चाहिये। इस दवाई को दो महीने पीछे खाना चाहिये।

धनुर्वात (अपतानक)

इस रोग के अन्दर गला और जबाड़ी सख्त बन जाते हैं। रोगी मुँह को खोल भी नहीं सकता। यह अवस्था शीत या आमवात के कारण हो जाती है। इस रोग के अन्दर रोगी को निकालने में कठिनाई होती है, नाक और मुँह से बहुत पानी निकलता है। रोगी की कमर धनुष की भाँति झुक जाती है, अर्थात यदि रोगी पीठ के भार लेटना चाहे, तो उसकी पीठ जमीन से उठी रहती है, पाँव की एड़ी और स्कन्ध ही के ऊपर रोगी तुला हुआ रहता है। कई बार हाथ और प्रकोष्ठ आक्षेपों से बच जाते हैं। रोगी में आक्षेप इतने जोर से होते हैं कि रोगी तनता रह जाता है। मांसपेशियों में कठोरता रहती है। जबतक रोगी सोता नहीं, तबतक पेशियों में कठोरता बनी रहती है। रोगी को श्वास कठिनता से आता है, त्वचा गरम होती है, पसीना आजाता है। रोगी की मृत्यु श्वास के घुटने से होती है। इसका कारण श्वास-प्रणाली के अग्र भाग या छाती के मांसपेशियों का स्थिर हो जाना है।

इस रोग का कारण एक कृमि है, जो घुड़साल में या गोबर में अथवा गन्दे स्थानों में रहता है। किसी प्रकार के छोटे व्रण से यह कृमि शरीर के अन्दर पहुँच जाता है।

इस रोग की चिकित्सा के लिये व्रण को तेज कार्बोलिक एसिड लगाकर बोरिक एसिड लगाना चाहिये। इस रोग के लिये 'एन्टीटैटनिक सीरम' का इंजेक्शन देना उत्तम है। यदि यह न मिले, तो कार्बोलिक लोशन का इन्जैक्शन देना चाहिये। दर्द को कम करने के लिये क्लोरल या क्लोरोडीन देनी चाहिये। मेरुदण्ड पर बर्फ की थैली रखनी चाहिये। यदि इससे आराम न मिले, तो ५ बूँद क्लोराफार्म, २० बूँद टिंचर ओपयाई, चीनी १ औन्स प्रत्येक ४ घण्टे के अन्तर से देना चाहिये।

बच्चों में धनुर्वात—कई बार बच्चों में प्रसव के ३ से १० दिन के पीछे हनुस्तम्भ हो जाता है। बेचैनी, नींद का टूटना, जम्भाई लेना आदि इसके लक्षण होते हैं। इस रोग का कारण नाभिनाल से किसी संक्रमण का शरीर में पहुँच जाना है। बच्चे को माता का दूध देना चाहिये, जबाड़ी को चम्मच की डंडी से सावधानीपूर्वक खोलना चाहिये, दूध का एक तिहाई भाग चूर्णोदक से मिलाकर देना चाहिये। रोगी को अनीमा दूध और चूर्णोदक

से मिलाकर दिन में तीन बार देना चाहिये। दो बार गरम पानी का स्नान देना चाहिये।

यूनानी औषधि—धनुर्वात-रोग में बनफ्सा, खितमी, जौ का आटा, ईसबगोल का लुवाब और कद्दू का तेल मिलाकर लेप करना चाहिये अथवा जुन्दवेदस्तर, फरफयून और अकरकरा इनको चमेली के तेल में मिलाकर लेप करना चाहिये।

आँचकी

मूर्च्छा, अपस्मार, हिस्टीरिया, धनुर्वात आदि रोगों में यह लक्षण विशेषतः पाया जाता है। इस रोग का कारण वात-संस्थान पर विक्षोभ होना है। इस विक्षोभ के कई कारण हैं; जैसे—धनुर्वात रोग का कृमि, अन्य किसी प्रकार का विष, स्त्रियों में गर्भाशय के विक्षोभ से, वृक्क के रोगों से। बच्चों में—दाँत निकलने के कारण, कृमि-रोग से, मलबन्ध से यह रोग उत्पन्न हो जाता है।

लक्षण—जब ज़ोर से न हो, तो बच्चे का अँगूठा पीछे की ओर मुड़ जाता है, अँगुलियाँ तन जाती हैं और पाँव की अँगुलियाँ नीचे को खिंच जाती हैं। मुँह एक पार्श्व में झुक जाता है। बच्चे में जब ये लक्षण दिखाई दें, उस समय उसके भोजन, दाँत और आँतों का ध्यान रखना चाहिये।

कई बार बच्चा रात को अचानक चीख मारकर उठ जाता है। वह डरता है, चिल्लाता है। प्रायः इस अवस्था में वह बेहोश होता है। वह यह नहीं जानता कि उसके चारोंओर क्या हो रहा है। उसे किसी पशु या और किसी वस्तु से भय प्रतीत होता है। इस रोग का मुख्य कारण नाक में किसी प्रकार की रुकावट या टौंसिल का बड़ा होना है। कई बार स्वप्न या अजीर्ण से, मूत्र के कारण बिस्तर के गीले होने से भी बच्चा चिल्ला उठता है। दाँत निकलने से, अजीर्ण के कारण, कृमि के कारण वात-संस्थान पर प्रभाव होता है।

चिकित्सा—गले के चारोंओर के वस्त्र ढीले कर देने चाहियें, खूब हवा करनी चाहिये, चेहरे पर ठण्डे पानी के छींटे देने चाहियें, गुलाब के अर्क से भीगे पंखे से हवा करनी चाहिये, पृष्ठ-वंश पर मालिश करना चाहिये, गरम पानी में कपड़े को निचोड़कर गले पर लगाना चाहिये। यदि भोजन

करने के पीछे दौरा आये, तो वमन कराना चाहिये। इसके लिये बच्चे के गले में अँगुली डालनी चाहिये। यदि मसूड़े कठोर हों, तो उनको चीर देना चाहिये। इस प्रकार से वमन न हो, तो वाइनम एपिकॉक देकर वमन कराना चाहिये। प्रायः इस प्रकार से रोग शान्त हो जाता है। यदि न हो, तो रोगी को गरम पानी में स्नान कराना चाहिये अथवा कम से कम उसके पाँव को राईवाले गरम पानी में रखना चाहिये। कभी-कभी ऐसा भी करना होता है कि बच्चे को शांत और गरम पानी में बारबार क्रमशः ५-१० मिनट तक स्नान देते हैं, इससे वह स्वस्थ हो जाता है।

'पोटाशियम ब्रोमाइड' का देना उत्तम है। कृमि तथा दाँतों की एवं मलबन्ध की चिकित्सा करनी चाहिये। वमन के पीछे रोगी को ब्रांडी और पानी देना चाहिये। इसके पीछे आँतों को खोलने का यत्न करना चाहिये। इसके लिये कैस्टर ऑयल या सोडा सल्फास उचित मात्रा में देना चाहिये। यदि सम्भव हो, तो ग्लैसरीन की बत्ती या पिचकारी से एनिमा देना चाहिये।

यदि बच्चा निर्बल हो और उसको अतिसार हो, तो सैलोल २ ग्रेन को शहद में मिलाकर देना चाहिये। ५ ग्रेन पल्व सिननमाई को ६० बूँद ब्रांडी के साथ १ औंस पानी या दूध में मिलाकर पीना चाहिये।

यूनानी उपाय—१—जैतून के तेल में हींग, अकरकरा और जुन्द-बेदस्तर मिलाकर मलना चाहिये। २—ईसबगोल का लुवाब अण्डे की सफेदी में मिलाकर मलना भी उत्तम है।

अर्दित

कारण—उपदंश की तीसरी अवस्था में जबकि मस्तिष्क आक्रान्त हो जाता है, उस समय यह रोग हो जाता है। इसके अतिरिक्त हँसने से, जम्भाई से या अखरोट, बादाम आदि कठिन वस्तुओं के तोड़ने से वायु कुपित होकर मुँह को एक पार्श्व में मोड़ देती है।

लक्षण—इस रोग के लक्षण स्पष्ट होते हैं। मुँह एक पार्श्व में मुड़ा हुआ होता है; रोगी यदि पानी का कुल्ला करना चाहे, तो वह कुल्ला नहीं कर सकता, मुँह से फूँक या सीटी नहीं मार सकता, हँसने में उसे कठिनता होती है।

इस रोग में फेशियल या त्रिशिरा नाड़ी में विकार आजाता है। उसीसे ये लक्षण उत्पन्न होते हैं।

चिकित्सा—उपदंश रोग हो, तो उसकी चिकित्सा करनी चाहिए। एरण्ड के तैल का जुलाब देना चाहिये। माष तैल के गरारे करने चाहिये, माष तैल मलना चाहिये। शिर के ऊपर ठण्डी हवा लगने नहीं देना चाहिये। उड़द के आटे का हलवा या बड़े खाना चाहिये। दस्त साफ़ रखना चाहिये। पोस्त के डोडों का सेक करना चाहिये।

लकवा

मस्तिष्क तथा मेरुदण्ड की वात-नाड़ियों पर रक्त का या अन्य किसी प्रकार का दबाव पड़ने से, अथवा किसी विष के कारण उनकी शक्तियों के नष्ट होने से यह रोग होता है। इस रोग के अन्दर संज्ञावहा और चेष्टा-वहा नाड़ियों में क्षति आजाती है। इसमें क्षति आने से ये नाड़ियाँ जिस स्थान का पोषण करती हैं, उसके अन्दर भी क्षति आजाती है। इस क्षति का नाम ही पक्षाघात है, यह क्षति दो प्रकार से होती है।

१—शरीर की मध्य रेखा के एक पार्श्व में पक्षाघात हो जाता है, अर्थात् दक्षिण या वाम पार्श्व में शिर से लेकर पाँव तक का भाग 'पैरेलाईज्ड' हो जाता है। इसका नाम 'हमेप्लीजिया' है।

२—दूसरा रूप यह है कि कटि से निचला भाग अर्थात् दोनों टांगें 'पेरेलाइज्ड' हो जाती हैं, इसका नाम उरुस्तम्भ है।

कारण—इस रोग के बहुत-से कारण हैं, परन्तु मुख्य कारण आघात या उपदंश है। मस्तिष्क पर चोट लगने से वात-नाड़ियों की क्षति हो जाती है। इस क्षति के परिणाम-स्वरूप अंग में पक्षाघात रोग उत्पन्न हो जाता है। मद्यपान के कारण भी पक्षाघात उत्पन्न हो जाता है। इसके अतिरिक्त वृद्धा अवस्था में, हिस्टीरीया में, आक्षेप में भी पक्षाघात रोग हो जाता है।

लक्षण—मस्तिष्क में रक्तस्राव होने से पक्षाघात रोग सहसा उत्पन्न होता है, परन्तु आघात आदि के कारण अथवा मस्तिष्क या मेरुदण्ड की चोट से जो पक्षाघात होता है, वह शनैः शनैः-होता है। रोगी सीधा होकर चल नहीं सकता। उसकी टांगें लड़खड़ाती हैं, वह गिरता-पड़ता हुआ चलता है।

रोगी को सबसे प्रथम जो अनुभव होता है, वह यह कि उसकी स्पर्श-शक्ति निर्बल हो रही है। इसकी परीक्षा के लिये यदि रोगी की आँखें बन्द करवाकर उसके रुग्ण अंग पर शनैः-शनैः पर या काग़ज़ फेरें, तो रोगी को उसके स्पर्श तक का पता नहीं होता। जबकि इसी दूसरे पार्श्व के अंग में स्पर्श-ज्ञान भलीभांति होता है। यहाँ तक कि यदि पिन या सुई भी चुभोई जाय, तो भी रोगी को उसका पता नहीं चलता। कई बार इस रोग का कारण रोगी के मूत्राशय का भी पक्षाघात हो जाता है, इससे रोगी स्वयं मूत्र-प्रवाहण नहीं कर सकता।

उपाय—प्रायः यह रोग असाध्य ही है। यदि रोग का कारण उपदंश है, और रक्त में उपदंश के कृमि मिलते हैं, तो उचित चिकित्सा से आराम होने की कुछ आशा है।

साधारणतः सब प्रकार के पक्षाघातों में वातहर क्रिया करनी चाहिये। वायु नष्ट करने के लिये वस्ति-चिकित्सा सबसे उत्तम है। वह भी घृत या तैल से संस्कृत वस्ति। आर्य-वैद्यक में इस कार्य के लिये उत्तम-उत्तम तैल लिखे हैं। जैसे रास्ना तैल, नारायण तैल, प्रसारणी तैल। इन तैलों को खाने में, अभ्यंग वस्ति में प्रयोग करनी चाहिये। तैल के प्रयोग से कड़ा और सूखा बाँस भी झुकाया जा सकता है, फिर इस मानव-शरीर के अंगों की क्या हस्ती ? परन्तु साहस और धैर्य्य की आवश्यकता है।

साधारण उपाय—(१) रसोन कल्क को तिल के तैल के साथ खाना चाहिये। (२) बला और पंचमूल के साथ दूध पकाकर पीना चाहिये। (३) बला, कौंच, माष, गन्धतृण, एरण्ड मूल इनका काढ़ा पीना चाहिये। (४) सैंधवादि तैल मलना चाहिये। (५) कौंच के बीजों का चूर्ण ६ आना, लहसुन रस १ तोला, पुराना घृत ४ आना, मधु १० आना मिलाकर पान करना चाहिये। (६) अश्वगन्धा ४ आना, कौंच-बीज ४ आना, शालपर्णीमूल ४ चीतामूल ४ आना, बलामूल ४, एरण्डमूल ४, अनन्तमूल ४ आना, कुचला ½ आना, पानी आध सेर, शेष ¼ पाव, इस पाचन को सेवन करना चाहिये। (७) भिलावा, पिप्पलीमूल इनको पीसकर मधु में मिलाकर चाटना चाहिये।

शास्त्रीय औषधि—प्रसारणी तैल, माष तैल, बला तैल, महालक्ष्मी

विलास, वात चिन्तामणि, रसराज, छागलाद्य घृत, अश्वगन्धारिष्ठ, सात्वण स्वेद, योगराज गुग्गुल ।

यूनानी औषधि—दोना मरुवा, स-आतरा, अकरकरा, राई, किबु की जड़ की छाल, खट्टा अनारदाना, सोंठ इन दवाइयों को कूटकर काढ़ा करना चाहिये। फिर जंगली प्याज की बनी हुई शिकञ्जबीन में मिलाकर कुल्ला करवाना चाहिये। यह दवाई अर्दित रोग के लिये उत्तम है।

कुचले का उपयोग इस रोग में विशेष किया जाता है। विष-तिन्दु कबटी इस रोग में प्रायः बरती जाती है। इसका तैल भी मलने के काम आता है।

प्रकरण तीसरा

श्वास-संस्थान के रोग

गले में और छाती में श्वासनली, फेफड़े और हृदय आदि आवश्यक प्राणावयव आते हैं। ये सब मार्ग-स्थान हैं। इनका आपस में सम्बन्ध है। श्वास-प्रश्वास की क्रिया और रक्त-संचार दोनों क्रियायें पृथक्-पृथक् हैं। श्वास-प्रश्वास के साथ फेफड़ों का सम्बन्ध है, और रक्त-संचार के साथ हृदय का। इसलिये इस प्रकरण में प्रतिश्याय, शोथ, हिचकी, दमा, कास, उरःक्षत आदि रोगों का वर्णन किया गया है।

हिचकी

कठिन, रूक्ष और मलबन्ध करनेवाले पदार्थों के खाने से, शीत पानी, शीत भोजन, धुवाँ से, अति वायु से, उदर-विकार से इस रोग की उत्पत्ति होती है। इस रोग में अचानक छोटा-सा आक्षेप होता है, जिसमें रोग श्वास को अन्दर लेता है। इसमें एक विशेष प्रकार का शब्द सुनाई देता है। यह शब्द लैरिंक्स से या श्वास-प्रणाली के ऊर्ध्व भाग से उत्पन्न होता है, ग्लोरिस एकदम बन्द हो जाता है, पीछे से बहिःश्वास होता है। इस प्रकार से ये आक्षेप कुछ-कुछ समय बाद चलते रहते हैं। यह रोग या तो कुछ समय में बन्द हो जाता है या कई घंटों तक स्थिर रहता है। यह रोग प्रायः अजीर्ण से उत्पन्न होता है या भोजन को जल्दी-जल्दी निगलने से; परन्तु कई बार यह यकृत और आमाशय के विकारों में लक्षण रूप से उपस्थित होता है। अथवा कॉलरा के पीछे या किसी भयानक बीमारी के लक्षण रूप में हो जाता है। यदि इस रोग का कारण अजीर्ण हो, तो थोड़ा-सा पानी पीने से या सोडाबाई कार्ब को जिंजर के साथ लेने से आराम हो जाता है। कई बार अजीर्ण में वमन भी कराया जाता है। इसके लिये राई से वमन देना चाहिये। स्प्रिट कैम्फर, क्लोरोडीन, सैलवो लेटाइल भी उत्तम औषधि है। बर्फ के टुकड़े का चूसना भी उत्तम है। गहरा अन्तः-श्वास भरकर उसको छाती के अन्दर रोकने से भी आराम हो जाता है, अथवा

कौड़ी-प्रदेश पर गद्दी रखकर पेट के चारोंओर पट्टी कसकर बाँध देनी चाहिये। अथवा गले के पास—कॉलर बोन (अक्षकास्थि) के गर्त में दबाव देने से भी आराम हो जाता है।

साधारण उपाय—१—मोर के पखों की भस्म तथा पिप्पली-चूर्ण मधु में चाटना चाहिये। २—मुलहठी का चूर्ण मधु में चाटना चाहिये। ३—लहसुन घी में खाना चाहिये। ४—भारंगी और सोंठ के चूर्ण को गरम पानी से पीना चाहिये। ५—हींग और उड़द इनका धुआँ या लौंग का धुआँ मुँह में भरकर नाक से निकालना चाहिये। ६—मधु के चाटने से रोग शान्त हो जाता है। ७—शर्करा और मिर्च-चूर्ण मधु के साथ चाटना चाहिये। ८—यवक्षार और मिर्च-चूर्ण पानी के साथ पान करना चाहिये। ९—शुद्ध ताम्र-भस्म को मधु के साथ खाना चाहिये॥ मात्रा—१ रत्ती। अनुपान—शहद। १०—हींग और काली मिर्च घी मे पीसकर इनको काग़ज़ पर लगाकर चुरुट की भाँति पीना चाहिये। ११—छः आने भर कुटकी, ४ आने भर बहेड़ा और ६ आने भर हल्दी का पत्ता इनको रगड़कर पीना चाहिये। १२—नाभि-प्रदेश पर बर्फ या कासी के पात्र मे शीतल जल भरकर रखने से हिचकी रोग शान्त होता है।

शास्त्रीय औषधि—पिप्पल्यादि तैल, शङ्खपर्पटी, यवक्षार, श्वासारि चूर्ण।

जुकाम

सर्दी या प्रतिश्याय रोग दो रूप में मिलता है—१—साधारण सर्दी के रूप में, २—इन्फ्लुयञ्जा-रोग के रूप में। साधारण प्रतिश्याय के लक्षण—नाक से पानी का आना, छींकों का आना, सर्दी या कँपकँपी का अनुभव, पीठ या कमर मे दर्द का अनुभव, गले मे सूजन और शिर तथा आँखों में भारीपन प्रतीत होता है। नाक के बन्द हो जाने से या स्राव के गाढ़ा हो जाने से माथे में दर्द रहता है। श्वास लेने मे कुछ जोर लगाना पड़ता है। थोड़ा-सा ज्वर भी रहता है। रोगी की रुचि बदल जाती है। प्रायः करके ओष्ठ पर छोटी-छोटी फुंसियाँ निकल आती हैं। यदि उचित ध्यान रक्खा जाय, तो तीसरे दिन के पीछे रोग घटने लगता है। इस रोग के तीव्र आक्रमण में लक्षण प्रायः वैसे ही होते है, जैसे इन्फ्लुयञ्जा में होता

है। ज़ुकाम का होना एक साधारण शिकायत है। इसका कारण नासिका की श्लेष्म-कला की शोथ है, जिस शोथ का कारण सर्दी है।

सर्दी या तो ऋतु के परिवर्त्तन से होती है, अथवा वायु-परिवर्त्तन से भी यह रोग हो जाता है। इसके अतिरिक्त शीत वायु, शीत पानी, बर्फ, नया अन्न, ज़मीन पर सोने इत्यादि कारणों से होती है। इसके अतिरिक्त कफवर्द्धक वस्तुओं के सेवन करने से, दिन में सोने से, श्रम न करने से कफ कुपित हो जाता है।

उपाय—(१) सर्दी से बचने के लिये प्रत्येक व्यक्ति को चाहिये कि वह ऋतु-परिवर्त्तन का ध्यान रक्खे, और यथासम्भव बाहर खुली वायु में रहे। लोगों में यह भ्रम है कि ठंडे पानी में स्नान करने से या शीत वायु में बैठने से यह रोग हो जाता है। वास्तव में यह रोग उन व्यक्तियों ही में होता है, जो सहसा परिवर्त्तन को बर्दाश्त नहीं कर सकते। जिस समय शरीर में गरमी आई हुई हो, उस समय वस्त्र उतार देने से बर्फ के पानी से या बिजली के पंखे के नीचे बैठने से अथवा इस प्रकार के अन्य उपाय से, जिससे शरीर सहसा सर्दी अनुभव करने लगे या पसीना सूख जाय, यह रोग हो जाता है। इस अवस्था में सर्दी से अपने शरीर को बचाना चाहिये। इस रोग की साधारण चिकित्सा, हल्का भोजन, उपवास, साधारण ताप-परिमाण पर विश्राम करना चाहिये। क्युनीन और अमोनिया इस रोग की उत्तम औषधि है। इनको पृथक्-पृथक् या टिंचर क्युनीन अमोनिया के रूप में देना चाहिये। रोगी को तीव्र अवस्था में गरम पानी के अन्दर स्नान करना चाहिये। राई के गरम पानी में पाँवों को आधे घंटे तक रखना चाहिये। डोवर्स पाउडर १० ग्रेन की मात्रा में प्रत्येक ४ घंटे के अन्तर से देना चाहिये। कई बार स्प्रिट कैम्फर भी उत्तम प्रभाव दिखाती है, इससे सर्दी रुक जाती है। यह उस समय अधिक उपयोगी है, जबकि रोगी को कँपकँपी अधिक हो। गरम पानी में कपूर पीसकर गेरना चाहिये, उसके वाष्प सूँघने से आराम हो जाता है।

टिंचर एकोनाइड १ ड्राम, पानी ८ औंस मिलाकर १ भाग प्रत्येक चार घंटे के अन्तर से लेना चाहिये। रोगी को बिस्तर पर आराम करना चाहिये। पानी यथेच्छ पीना चाहिये, जिससे खूब पसीना आये। मॉर्फिया हाइड्रोक्लोरेट २ ग्रेन, एकाशिया पाउडर २ ड्राम, विस्मुथ सब-नाइ-

ट्रेट ६ ड्राम इनको मिलाकर सूँघना चाहिये। यूक्लिप्टस ऑयल को लौंग के तेल के साथ मिलाकर सूँघना भी उत्तम है। कार्बोलिक एसिड और लाइकर अमोनिया फोर्ट प्रत्येक ५ ड्राम और रैक्टीफाइड स्प्रिट २ औंस मिलाकर रखना चाहिये। इसकी १०-१५ बूँद स्याहीचूस की चार-पाँच तहें करके उसपर छिड़ककर सूँघना चाहिये। सूँघते समय आँखें बन्द कर लेनी चाहिये।

आर्य-औषधि—१—बिना लगे हुये पान के अन्दर छोटी इलायची, लौंग, कपूर, तुलसी-पत्र और थोड़ा सा आर्द्रक रखकर खाना चाहिये। २—आर्द्रक के बीच से चार टुकड़े इस प्रकार के करने चाहिये कि वह नीचे से जुड़ा रहे। फिर इसमें काला नमक भरकर आग की भूभल में दबा देना चाहिये। जब पक जाय, तब निकालकर खाना चाहिये। ३—दो आने भर चाय, दो आने भर तेजपत्र, दो आने भर अजवायन, १ आना भर लौंग और आधा तोला मिश्री मिलाकर गरम जल में घोलकर रखना चाहिये। पीछे से गरम-गरम पीना उत्तम है।

शास्त्रीय औषधि—कफकेतु, कस्तूरी-भूषण, लक्ष्मी-विलास, कफ-राक्षसी, शितोपलादि चूर्ण, आर्द्रकावलेह, व्योषादि गुटिका।

स्वर-भेद

'लैरिंक्स' श्वास-प्रणाली के ऊपर का भाग है। यह वाक्शक्ति के उत्पन्न करने में भाग लेता है। इस स्थान की सूजन में प्रायः गले की सूजन या सर्दी मिली रहती है। यह रोग सर्दी से या चिल्लाने से, लेक्चर देने से या क्षय से अथवा उपदंश के कारण उत्पन्न होता है। यह इतने सूक्ष्म रूप में भी हो सकता है कि शब्द के अन्दर भारीपन आजाता है, अथवा सर्वथा बोलना बन्द हो जाता है। यह रोग या तो तीव्र होता है या पुराना हो जाता है, यहाँ तक कि कई महीनों तक रहता है। जिस समय यह तीव्र और भयानक रूप में हो, उस समय यह खतरनाक है। इस रोग में ज्वर, दर्द, गले में तंगी, भारी या काँपती हुई आवाज, शुष्क कास होती है। गले के ऊपर का भाग सूजा हुआ और शुष्क होता है, स्राव गाढ़ा और दुर्गन्धयुक्त होता है। बलगम कठिनता से बाहर आता है, गले में आवाज सुनाई देती है, निगलने में कठिनता होती है। नींद का न आना, दम घुटने का आक्रमण, श्वास की भूख और आक्षेप आदि लक्षण होते हैं। गला अन्दर

से लाल और सूजा हुआ होता है। जिह्वा को नीचे दबाकर देखने से श्वास-प्रणाली के ऊपर का भाग सूजा हुआ या एपिग्लौरिस सीधा और सूजा हुआ होता है। यह रोग डिप्थिरीया के कारण भी हो जाता है। इसमें एक प्रकार की कला मुँह में भर जाती है।

चिरकालीन शोथ—यह रोग तीव्र आक्रमणों की उपेक्षा करने से, अथवा उपदंश या कैन्सर रोग के कारण होता है। यह रोग उनमें भी मिलता है, जो बहुत बोलते या पढ़ते हैं। इसलिये इसको "क्लर्जीमैन्स सोरथ्रोट" कहते हैं। रोग दिन पर दिन बढ़ता ही जाता है, अन्त में शल्य-चिकित्सक की सहायता लेनी पड़ती है। इसके लिये आराम, संकोचक औषधियों से गलाले और गले में दवाई का लगाना फोरमेसीन्ट टैबलेट का चूसना उपयोगी है।

चिकित्सा—यदि रोग साधारण हो, अर्थात श्वास में भारीपन हो, जो प्रातःकाल मुख्यतः होती है, तो इसमें सर्दी से बचाना चाहिये; विशेषतः रात्रि में गले के चारोंओर फलालैन का कपड़ा लपेटकर रखना चाहिये। राई के पानी में पाँव रखने चाहिये। रोगी को बलगम निकालने का मिश्रण देना चाहिये। जिस समय रोग बढ़ा हुआ हो, उस समय छाती के ऊपरवाले भाग में जौंक लगवानी चाहिये। यदि रोगी बच्चा हो, तो उसे बिस्तर पर लेटाकर गरम पानी के वाष्पों को सुँघाना चाहिये, गले पर गरम पानी का स्पंज रखना चाहिये। डोवर्स पाउडर ५ ग्रेन, प्रत्येक ४ घण्टे के अन्तर से देना चाहिये। रोगी को औषधियों से विरेचन देना चाहिये। कमरे को शान्त रखना चाहिए, सीधी वायु से रोगी को बचाना उत्तम है। कमरे में गरम पानी उबालने के लिये रख देना चाहिये। इसमें टिंचर बैंजीयन कम्पाउन्ड की १०-१५ बूँदें डाल देनी चाहियें। भोजन दलिया या गरम दूध होना चाहिये।

उपाय—१—कस्तूरी, इलायची, लवँग, बाँसकपूर इनके बारीक चूर्ण को मधु में मिलाकर चाटना चाहिये। २—घी में मिर्च का चूर्ण मिलाकर चाटना चाहिये ३—घी और गुड़ खाकर गरम जल पीना चाहिये। ४—वनजवानी, हल्दी, आँवला, यवक्षार, चीतामूल समभाग लेकर घृत और मधु के साथ चाटना चाहिये। ५—सैन्धवनमक के साथ बेरी के पत्ते पीसकर, घी में भूनकर, उसी घी में मिलाकर चाट लेना चाहिये। ६—गरम-गरम दूध मधु और शर्करा के साथ पीना चाहिये। ७—कस्तूरी, छोटी इलायची, लौंग, वंश-

लोचन इनके चूर्ण को घी और मधु के साथ खाना चाहिये । ८—मिर्च ७ माशे, छोटी इलायची ५ माशे, कुलिंजन १॥ माशे, मुलहट्ठी ३ माशे, सबके बराबर भूस्सी और दो अन्न मिश्री, इनका काढ़ा करके गरम-गरम पीना चाहिये ।

शास्त्रीय औषधि—कल्याणावलेह, कण्टकारी अवलेह ।

सोंठ की चटनी—१—३५० माशे सोंठ को ताज़े दूध में भिगो देना चाहिये । इस दूध को प्रतिदिन बदलते रहना चाहिये । यहाँ तक कि सोंठ नर्म हो जाय । फिर इसको कूटकर नर्म बना लेना चाहिये । इसमें पिप्पली और केशर मिलाकर बारीक पीस लेना चाहिये । इन तीनों के बराबर नशास्ता मिलाकर शहद या मिश्री में मिलाकर गाढ़ा बना लेना चाहिये । २—ईसबगोल, बिहीदाना, उन्नाब, खितमी, सूखी धनिया पानी में औटाकर, छानकर गरारे करना चाहिये । ३—मुलहठी १७॥ माशे, बिहीदाना २४॥ माशे, रात्रि में पानी के अन्दर भिगो देना चाहिये । प्रातःकाल औटाना चाहिये । जब आधा रह जाय, तब छानकर ७७० माशे सफेद बूरा मिलाकर गाढ़ा करना चाहिये । इसमें बिहीदाने की मींगी १०॥ माशे, सभाग अरबी १०॥ माशे, कतीरा १४ माशे, सफेद खसखस १७॥ माशे महीन पीसकर मिलाकर चटनी बनाना चाहिये ।

कफ-कास

इस रोग के अन्दर श्वास-मार्ग के अन्दर की आवरण-कला के अन्दर या फुप्फुसों में पहुँचनेवाली प्रणालिकाओं के अन्दर शोथ होजाता है । यह रोग प्रायः सर्दी से होता है । इसमें सर्दी के लक्षण मिले रहते हैं । प्रथम नाक से पानी बहता है, रोगी को सर्दी का अनुभव होता है, अङ्गों में चुभता हुआ दर्द होता है । थोड़ा-सा ताप-परिमाण बढ़ जाता है, रोगी को प्यास तथा कुछ ज्वर हो जाता है, शिर-दर्द, मैली जिह्वा, भूख का न लगना और बेचैनी होती है । छाती के सामने की अस्थि में कुछ खटाई मालूम होती है, छाती जकड़ी हुई मालूम होती है । पहले सूखी खाँसी होती है, श्वास कुछ दबा हुआ और कठिनता से आती है । बहुत खाँसने पर थोड़ा-सा बल्गम बाहर आता है । ज्वर प्रायः साधारण होता है और नाड़ी का स्पन्दन १२० से अधिक हो जाता है । अच्छे होनेवाले रोगियों में तीन या चार दिन के पीछे

बलगम ढीला पड़ जाता है और वह निकलने लगता है। प्रथम बलगम झागदार आता है, फिर चिकना हो जाता है। कुछ समय पीछे बलगम गाढ़ा हो जाता है। इसका रंग हरा-पीला-सा हो जाता है। छाती का संकोच और अम्लता नष्ट हो जाती है। सारे समय श्वास के साथ घरघराहट की आवाज़ सुनाई देती है और छाती या पीठ पर हाथ रखने से एक स्पन्दन का अनुभव होता है। बलगम के निकल जाने से लक्षण कुछ घट जाते हैं; परन्तु बलगम के फिर एकत्रित होने पर लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। श्वास में शब्द या स्पन्दन का कारण स्राव से श्वास-प्रणालियों का अपूर्ण अवरोध होना है। थकावट और सर्दी ये दोनों बातें श्वास-काठिन्य तथा कास को बढ़ा देती हैं। अच्छे होनेवाले रोगियों में लक्षण आठवें दिन घटने लगते हैं। अर्थात् बलगम सरलता से निकलने लगता है, श्वास की कठिनाई जाती रहती है, ज्वर घट जाता है और बुरे रोगियों में बलगम अधिक चिकना हो जाता है। रोगी की श्वास में कठिनाई बढ़ जाती है; ओष्ठ रक्तहीन बन जाते हैं, कभी-कभी प्रलाप भी हो जाता है, रोगी बलगम निकालने में असमर्थ होता है। श्वास के बन्द होने से या रक्त के अवरोध से मृत्यु होती है।

चिकित्सा—गरम पानी में स्नान करके, ८-१० ग्रेन डोवर्स पाउडर को रात्रि में सोते समय ३० बूँद स्प्रिट ईथर नाइट्रोसाई को २ औंस पानी में मिलाकर प्रत्येक ३ घण्टे के अन्तर से लेना चाहिये। इससे रोगी को बहुत पसीना आता है। रोगी को जौ का पानी, अथवा गरम दूध में जायफल, केसर अथवा दूध का मसाला मिलाकर या शराब मिलाकर देना चाहिये। इससे पसीना खुलकर आता है। रोगी को सर्दी से बचाना चाहिये। कमरे में गरमी बराबर रखनी चाहिये। कमरे के अन्दर भीनी वायु रखनी चाहिये। इसके लिये एक पतीली में पानी गरम होने के लिये रख देना चाहिये। इस पानी में युक्लिप्टस ऑयल डाल देना चाहिये। यत्न ऐसा करना चाहिये कि पानी स्टोव पर गरम किया जाय, चूँकि कोयलों का या लकड़ी का जलाना हानिकारक है। रात्रि में डोवर्स पाउडर १० ग्रेन देना उत्तम है। दाल या रोटी और दूध रोगी को देना चाहिये। बुरे रोगियों में उत्तेजक औषधियाँ मद्य आदि भी देना चाहिये। बिना चिकित्सक की सम्मति के और कोई औषधि बुरे रोगियों में नहीं देना चाहिये।

कई बार वृद्ध व्यक्तियों में शीत ऋतु-जन्य 'कास' मिलता है। यह

रोग गर्मियों में शांत हो जाता है और सर्दियों में पुनः आजाता है। इसके लिये टिंचर कैम्फर कम्पाउण्ड देना चाहिये। यदि रोगी को अजीर्ण हो, तो उसकी चिकित्सा करनी चाहिये।

आद्यर्य-औषधि—(१) छोटी कटेरी, पिस्ता, देवदारु, जूफिका, मिश्री, वासा, पुष्करमूल, कुलिञ्जन, कत्था, इनको काढ़ा करके पीना चाहिये। (२) मुलहठी, कुलिञ्जन, बड़ी कटेरी, देवदारु, मिश्री, वासक इनके काढ़े में मिश्री मिलाकर पीना चाहिये। (३) छोटी इलायची, मिर्च, इनके काढ़े में मिश्री मिलाकर उपयोग करना चाहिये। (४) खसखस एक पल, इसको पानी में मिश्री के साथ पीसकर दूध में उबालना चाहिये। जब दूध नष्ट हो जाय, तो इसको वस्त्र में छानकर, इसमें दो-तीन श्वेत मिर्चें मिलाकर प्रातःकाल पीना चाहिये। इस प्रकार कई दिन पीने से शुष्क कास नष्ट हो जाता है। (५) जूफिका को खूब बारीक पीसकर, वस्त्र में छानकर चाशनी में मिला लेना चाहिये। इसका नाम दयाकुशी है। इससे कास अच्छा होता है। (६) हल्दी के चूर्ण को वासक के स्वरस में मिलाकर मलाई के साथ खाना चाहिये। (७) मिश्री पर दो-तीन बूँद आक का दूध डालकर रख देना चाहिये। सायंकाल इसको खाकर दूध की मलाई, मालपुवे खाने चाहिये। (८) वासक को पुटपाक-विधि से पाक करके उसका स्वरस मधु में मिलाकर खाना चाहिये। (९) मैनफल के अन्दर साम्भर नमक भरकर ऊपर से गेहूँ का आटा लेप करके, गोमय की अग्नि में पकाना चाहिये। फिर इस नमक और बीज को वल्कल से अलग करके पान के पत्ते के साथ खाना चाहिये। (१०) वासक के फूलों को मधु के साथ खाना चाहिये। (११) सोंठ, अतिविषा, नागरमोथा, काकड़ाश्रृङ्गी, सब समान भाग और सबसे आधा या चतुर्थांश क्षार मिलाकर मधु के साथ खाना चाहिये। (१२) धनिया, अनार की छाल, विभीतक, हरीतकी प्रत्येक ३ माशे, इनको मधु में मिलाकर ६ माशे की मात्रा में खाने से आराम होता है। (१३) हिंगुल, विष, नागरमोथा, पिप्पली, मिर्च और लौंग इनके चूर्ण को नीबू के रस में तीन दिन तक पीसकर मूँग के बराबर गोली बनानी चाहिये। इस गोली को प्रातः-सायं खानी चाहिये। (१४) सुहागा १ कर्ष, अफीम १ कर्ष और कत्था ८ कर्ष, इनको मिलाकर पान में खाने से कास अच्छा होता है। (१५) वच, मुलहठी, पिप्पली, कूठ मिलित ६ आने भर इसको

मधु के साथ मिलाकर दो-तीन बार खाना चाहिये। (१६) कच्चा पान, काली तुलसी का पत्ता, आर्द्रक, थोड़ा कपूर, लवँग इन सबको मिलाकर दो-तीन बार दिन में चबाना चाहिये। इससे श्लेष्मा बाहर हो जायगी। (१७) वंशलोचन २ रत्ती, पिप्पली-चूर्ण २ रत्ती, गन्धक-चूर्ण १ रत्ती, सुहागे की खील १ रत्ती, आक के फूल का चूर्ण १ रत्ती, मिलाकर मधु के साथ चाटना चाहिये। (१८) मुलहठी १ छटाँक, कण्टकारी १ छटाँक, पिप्पली आधी छटाँक, तुलसी की मञ्जरी आधी छटाँक, इनको कूटकर १ सेर जल में पकाकर १ पाव शेष रहने पर छान लेना चाहिये। इसमें १ पाव मिश्री और १ तोला बच का चूर्ण मिलाकर गाढ़ा बनाना चाहिये। मात्रा ४ आने से ८ आने। अनुपान गरम जल। (१९) बृहत्पँचमूल के काढ़े में पिप्पली-चूर्ण मिलाकर पीना चाहिये। (२०) बड़ी कटेरी, छोटी कटेरी, किशमिश, वासक, शठी, नेत्रवाला, सोंठ, पिप्पली, इनके काढ़े में मधु मिलाकर पीना चाहिये। (२१) द्राक्षा, आँवला खजूर, पिप्पली, मिर्च इनको घी और मधु के साथ खाना चाहिये। (२२) मधु के साथ आर्द्रक का रस पीना उत्तम है। (२३) पुष्करमूल, कायफल, भाँगी, सोंठ, इनको पिप्पली-काढ़े के साथ पान करना चाहिये। (२४) लवँग २ तोला, जायफल २ तोला, पिप्पली २ तोला, मिर्च ४ तोला, सोंठ ४ तोला, इन सबके बराबर शर्करा मिलाकर खाना चाहिये। (२५) वंगभस्म को मधु के साथ खाना चाहिये।

शास्त्रीय औषधि—शितोपलादि चूर्ण, द्राक्षासव, हरीतकी अवलेह, वासावलेह, अग्निरस, क्षुद्रादि-क्वाथ, कट्फलादि चूर्ण, अग्निरस, चन्द्रामृत, तालीशादि चूर्ण, शृंगाराभ्र, मदनी-विलास, च्यवनप्राश, शृंग्यादि चूर्ण।

यूनानी औषधि—१—उन्नाव, लिसोड़ा, गावजवाँ, बनफशा, खितमी के बीज, अंजीर, इनको पानी में औटाकर, छानकर शर्बत तुरञ्जबीन मिलाकर पीना चाहिये।

शर्बत तुरंजबीन की विधि—बनफशा १ तोला, उन्नाव २० दाने, सपिस्तां के ६ माशे, खितमी ९ माशे, पानी में उबालकर छान लें। इसमें आध पाव तुरंजबीन मिलाना चाहिये।

२—बसाखा, कतीरा, मीठे बादाम की मींगी, बबूल, खसखस के बीज, समनअर्बी, गिलेअरमानी; इनको पीसकर ईसबगोल के लुआब में गोलियाँ बनाकर मुँह में रखना चाहिये। ३—मुलहठी, खुश्क जुफा, बादाम

की मींगी, प्रत्येक १४ माशे, हींग, ऊटंमन के बीज प्रत्येक ३॥ माशे शहद में मिलाकर खाना चाहिये।

४—कफ निकालने के लिये—उन्नाब १० दाने, बनफ्सा ७ माशे, खितमी, खब्बाजी १०½ माशे, सनाय १३½ माशे, अंजीर ५ दाने, मुनक्का बेदाने की २ तोले, औटाकर छान ले, अमलतास ५—२॥ माशे, तुरञ्जबीन ५ तोले, बादाम का तेल ३॥ माशे मिलाकर पीना चाहिये। ५ —छिला हुआ जौ सफेद, खसखस लेकर पानी में पीस लेना चाहिये। इसमें बूरा और बादाम का तेल मिलाकर हरीरा बनाना चाहिये। ६—बनफ्सा, कतीरा, ककड़ी की मींगी, घिया के बीज की मींगी, सफेद खसखस के बीज लेकर, महीन पीस-कर ईसबगोल और बिहीदाने के लुवाब में मिलाकर चाटना चाहिये।

श्वास

इस रोग में श्वास के अन्दर कठिनता होती है। श्वास-प्रणालियों की मांस-पेशियों में आकुञ्चन होता है। इसके साथ कुछ ज्वर भी हो जाता है। यह दो प्रकार का होता है, १—शुष्क और २—तर। इस रोग में बहुत बलगम बाहर नहीं आता। श्वास-प्रणाली छाती के ऊपर के भाग में दो शाखाओं में विभक्त होजाती है और एक-एक शाखा दोनों फेफड़ों में जाती है। ये शाखायें और भी छोटी शाखाओं में विभक्त होकर फेफड़ों में पहुँच जाती हैं। प्रत्येक प्रणाली गोल मांस-पेशियों-द्वारा चारोंओर से घिरी है। इस रोग में जो कठिनाई है, वह यह है कि इस रोग में प्रणाली के चारोंओर की पेशियाँ संकुचित हो जाती हैं, जिसका परिणाम यह होता है कि प्रणाली तङ्ग हो जाती है। यह संकोच सीधे (डायरेक्ट) या दूरवर्त्ती (इनडायरेक्ट) कारणों से होता है।

सीधे कारण—धूल, वानस्पतिक विक्षोभ, जैसे, पुष्पों का पराग, रासायनिक वाष्प, पशुओं के स्राव, वायुमण्डल के कारण, विशेषतः शीघ्रता से ताप-परिमाण का बदलना है।

दूरवर्त्ती कारण—उत्तेजना, जैसे, भय से, क्रोध से, मलबन्ध का होना, रात्रि को भारी भोजन करना, आध्मान, अजीर्ण के अभ्यस्त, वातिक (संधिवात की) प्रकृति, हृदय में वासा का संचय होना, फेफड़ों का अधिक विस्तृत होना और इस रोग की पैतृक अभिरुचि।

कुछ व्यक्ति इस रोग के लिये उपजाऊ भूमि होते हैं। ऐसे व्यक्तियों का चेहरा पतला, गोल स्कन्ध, चेहरे के भाव में बहुत उत्सुकता रहती है। गाल अन्दर को बैठे हुये, स्वरभंग और जन्म ही से थोड़ी-बहुत खाँसी रहती है।

इस रोग का दौरा प्राय: करके रात्रि में होता है। इसका मुख्य कारण यह है कि रक्त-संचार धीमा पड़ जाता है या कुछ रुक जाता है। यह रुकावट या धीमापन नींद के कारण होता है। जिस समय आदमी आराम से लेटा रहता है, उस समय यह रुकावट विक्षोभ उत्पन्न कर देती है। बन्द होने से पूर्व रोगी को आध्मान, शिर-दर्द, आँखों पर भारीपन, मूत्र का पीला होना, आराम का नष्ट हो जाना, बेचैनी, हृदय पर भारीपन का अनुभव होता है।

प्राय: करके इसका आक्रमण अचानक होता है। रोगी अपनी गहरी और आराम की नींद को भुलाकर सहसा खड़ा हो जाता है और श्वास के लिये मेहनत करता है। यदि 'दौरा' खराब हो, तो श्वास लेने में बेहद तकलीफ होती है।। रोगी बैठ जाता है, या कुर्सी अथवा मेज़ को पकड़कर श्वास लेने का यत्न करता है। चेहरा पीला तथा रक्तहीन हो जाता है। आँखें बाहर निकल आती हैं। शरीर पर ठण्डा पसीना आजाता है। श्वास बहुत घुटता है। रोगी खिड़की खोलने का यत्न करता है। इसके लिये चलने में उसकी टाँगें काँपती हैं। यह दौरा कुछ मिनटों से लेकर कई घण्टों तक बना रह सकता है। जब दौरा शान्त होता है, तो बलगम या स्राव निकलता है। अथवा पीले रंग का मूत्र बहुत अधिक मात्रा में आता है।

चिकित्सा—आक्रमण के समय रोगी को बैठा देना चाहिये। यदि आक्रमण जोर का हो, तो रोगी को आराम-कुर्सी पर बैठाकर उसके सामने मेज़ रख देनी चाहिये, और उसपर तकिया रख देना चाहिये। इस तकिये के ऊपर दोनों कोहनियों को रखकर आगे की ओर झुकने से रोगी को आराम मिल जाता है। मेरुदण्ड को शराब और सैलेड ऑयल से या लिमिनैण्ट टरवैन्थी तथा लिमिनैन्ट ओपाई से मलना चाहिये। बड़ी धमनी पर, जो छाती से निकलकर भुजा में जाती है, अँगूठों से दबाव देने पर दौरा घट जाता है।

जिन व्यक्तियों में रक्त का दबाव बढ़ा हो, उनको २० बूँद वाइनम एपिकॉक को पानी में मिलाकर देना चाहिये। निर्बल व्यक्तियों के लिये टिंचर कैम्फर को लाइकर अमोनिया के साथ मिला-

कर देना उत्तम है। यदि आक्रमण भोजन के पीछे हो, तो वमन देना चाहिये। यदि मलबन्ध हो, तो सोडा सल्फेट देना चाहिये। रोगी को गरम पानी में सोडाबाई कार्ब पिलाना चाहिये अथवा गरम कॉफी देना चाहिये। १० ग्रेन फिटकिरी का चूर्ण रोगी के गले में छोड़ना चाहिये। स्प्रिट कैम्फर १० बूँद की मात्रा में प्रत्येक १० मिनट पीछे पीना चाहिये। शोरे में भिगोये हुये स्याही-चूस को धूप में सुखाकर, उनको जलाकर उसका धुँवा सूँघना चाहिये। चिलम में रखकर धतूरें के पत्तों का धुँवा पीना भी उत्तम है।

आक्रमण के समय एमाईल नाईट्रेट या क्लोरोफार्म की कुछ बूँदें रुमाल पर डालकर सुँघाना चाहिये। इससे आक्रमण शीघ्र शान्त हो जाता है। इसमें ईथर भी मिला लेना उत्तम है।

आक्रमण शान्त होने पर रोगी के भोजन पर विशेष ध्यान रखना चाहिये।

आर्य-वैद्यक में श्वास-रोग पाँच प्रकार का माना है। जैसे, क्षुद्रश्वास, तमकश्वास, छिन्नश्वास, ऊर्ध्वश्वास और महाश्वास। इनमें प्रथम दो प्रकार के श्वास आराम हो जाते हैं।

उपाय—१—गुड़ और कड़वा तेल मिलाकर खाना चाहिये। २—हिंगुल को घीकार के रस में पीसकर गोली बना लेनी चाहिये। इसको दो उपलों में रखकर भस्म कर लेना चाहिये। इस भस्म को खाने से श्वास में आराम होता है। ३—संखिया को आक के दूध में पीसकर, शंख के अन्दर भरकर गजपुट में पकाना चाहिये। यह भस्म श्वास-रोग में उत्तम औषधि है। ४—हल्दी को आधा जलाकर, उसके चूर्ण को मधु के साथ चाटना चाहिये। ५—यवक्षार या सज्जिका-क्षार गरम करके पानी में बुझाना चाहिये। इस पानी को पीने से अवश्य लाभ होता है। ६—जरदे के पत्ते को पुराने गुड़ के साथ मिलाकर खाना चाहिये। ७—तम्बाकू के पत्तों के स्वरस में गुड़ मिलाकर चाशनी बनानी चाहिये। इसकी १ तोले की मात्रा खानी चाहिये। ८—शोधित कुचले को लेकर ८ गुने जल में तीन बार पकाना चाहिये। इसकी मात्रा $\frac{1}{2}$ रत्ती है। ९—मूल-सहित वासा को उखाड़कर उसका काढ़ा करना चाहिये। फिर इसमें इलायची, पिप्पली, अतिविषा, वंशलोचन प्रत्येक $\frac{1}{4}$ भाग तथा अहिफेन $\frac{1}{2}$ भाग मिलाकर गोलियाँ (चने के बराबर) बना लेनी चाहिये। १०—गुड़ और कपूर की गोली श्वास-रोग को नष्ट करती

है। ११—कड़वी तुम्बी का रस पीकर वमन करना चाहिये। खाने में घी और दही खाना चाहिये। १२—दिये के ऊपर चलनी, उसके ऊपर पान के पत्ते रखकर, गरम करके, छाती पर बाँधना चाहिये। १३—भारंगी और सोंठ का चूर्ण गरम पानी से पीना चाहिये। १४—शोधित गन्धक-चूर्ण और मिर्च-चूर्ण घी के साथ चाटना चाहिये। १५—सोते समय पिप्पली-चूर्ण १ माशा, सेंधव १ माशा, आर्द्रक-रस के साथ एक सप्ताह तक सेवन कर लेना चाहिये। १६—अकरकरा, कटेरी, बड़ी कटेरी, कबाबचीनी, गिलोय, दुरालभा, तुलसी-मञ्जरी प्रत्येक ४ आने भर, काले धतूरे की जड़ ६ आना, बहेड़ा ८ आना, जल ½ सेर, शेष ½ छटाँक; इसमें १ रत्ती हींग मिलाकर पान करना चाहिये। १७—रस-सिंदूर १, गन्धक १, मयूरपिच्छा-भस्म १, इनको पुराने घी के साथ ४ रत्ती की मात्रा में खाना चाहिये। १८—धतूरे के फल को खोखला करके इसमें अफीम भर देना चाहिये। इस फल के चारोंओर हींग लगाकर ऊपर से जयन्ती का पत्र बाँध देना चाहिये। इसके ऊपर गोबर लगाकर धूप में सुखाना चाहिये। पीछे पुटपाक-रीति से पकाकर अन्दर से भस्म निकाल लेनी चाहिये। मात्रा—१ रत्ती। अनुपान—उष्ण जल। १९—दो तोले गरम पानी में घी, मधु तथा शर्करा एवं थोड़ा-सा सेंधानमक मिलाकर पीना चाहिये। २०—छोटी कटेरी के रस में मधु मिलाकर पीना चाहिये। २१—धतूरे की राख मधु में चाटनी चाहिये, या अपामार्ग-क्षार मधु में खाना चाहिये।

शास्त्रीय औषधि—क्षुद्रादि काढ़ा, भारंगी गुड़, श्वास-चिन्तामणि, श्वासकुठार, कनकारिष्ठ, शृंग्यादि-चूर्ण।

यूनानी-औषधि—१—शर्बत जूफा—सौंफ, अजवायन के बीज प्रत्येक १७॥ माशे, सूखा जूफा २४॥ माशे, अंजीर २० दाने, मुनक्का ३० दाने, उन्नाब, लसोड़ा प्रत्येक २ माशे, मेथी १४ माशे, खितमी के बीज, नीले सौसन के बीज दोनों १०॥ माशे, हंसराज २४॥ माशे, पानी २ सेर; शेष १ सेर रहने पर छान लें। इसमें १ सेर बूरा और ½ सेर गुलकंद मिलाकर गाढ़ा-सा कर लेना चाहिये। २—चटनी, मुनक्का, अंजीर, मुलहठी, बाकला के बीज, खसखस के बीज, मीठे कद्दू के बीज की मींगी, हंसराज, सौंफ, सूखा जूफा, बादाम की मींगी, मेथी, खितमी के बीज, ईरसा शहद में मिलाकर चटनी बना लेनी चाहिये। ३—बनफसा, मुलहठी प्रत्येक ३॥ माशे, गारीकून ९ रत्ती, कतीरा ३ रत्ती कूट-छानकर गोलियाँ बनानी चाहिये। दमे के रोग

में गारीकून और अफतीमून (आकाश बेल) विशेष उपयोगी हैं। ४—यदि रोगी के श्वास में बहुत कठिनाई हो, तो पापड़ी नोन १४ माशे, हालून के बीज ७ माशे दोनों को महीन पीसकर, शहद-मिले पानी में घोलकर दे देना चाहिये।

निमोनिया (फेफड़ों की सूजन)

इस रोग का कारण एक प्रकार का कृमि माना जाता है। परन्तु प्राय: सर्दी के कारण यह रोग होता है। जिस समय इस रोग का कारण कृमि होता है, उस समय यह रोग फैलता है। इस रोग में सर्दी लगती है। रोगी को कँपकँपी होकर जोर का बुखार चढ़ आता है, जो ४-५ दिनों तक नहीं उतरता। प्राय: शुष्क कास रहता है, बलगम गँदला और गाढ़ा होता है। प्रथम यह बलगम श्वेत और झागदार होता है, पीछे से भूरा-सा हो जाता है। साधारणत: इस रोग में कोई तीव्र दर्द नहीं होता। जबतक इसके साथ पार्श्व-शूल (प्ल्युरिसी) न मिली हो। परन्तु प्राय: प्ल्युरिसी इसके साथ मिली ही होती है। चाहे तीव्र दर्द हो या न हो, इस रोग में गहरा, मन्द और चुभनेवाला दर्द छाती में रहता है। रोगी का श्वास तेज हो जाता है, यहाँ तक कि साधारण श्वास से दुगुना (३० तक) या इससे भी अधिक हो जाता है। ताप-परिमाण १०४ या १०५ अंश हो जाता है। अच्छे होनेवाले रोगियों में ७ वें, ९ वें या ११ वें दिन ताप-परिमाण सहसा गिरकर साधारण हो जाता है। दिन में कई बार ताप-परिमाण लेने पर भी ताप-माप १०४ अंश से ऊपर न चढ़े और नाड़ी का स्पन्दन १२० से अधिक न बढ़े तथा श्वास की गति १ मिनट में ३५ से ऊपर न जाय, तो समझना चाहिये कि रोगी स्वस्थ हो जायगा। साधारणत: श्वास की गति और नाड़ी की गति में १ : ४ का अनुपात रहना चाहिये। यदि रोगी को अच्छा नहीं होना होता, तो चौथे या पाँचवें दिन श्वास कठिन हो जाता है, नाड़ी तेज हो जाती है, त्वचा गरम हो जाती है, रोगी को प्रलाप रहता है, रोगी तन्द्रावस्था में पड़ा रहता है और अंत में रोगी की मृत्यु हो जाती है।

यह शोथ दो प्रकार की होती है—१—लोब्युलर निमोनिया—इस अवस्था में शोथ फेफड़े के छोटे टुकड़ों में होती है।

२—लोब्युर निमोनिया—इस रूप में शोथ फेफड़े के एक टुकड़े में होती है। प्रथम रूप को 'ब्रोंको निमोनिया' कहते हैं।

फेफड़ों के अन्दर सूजन चिरकालीन रोगों में भी हो जाती है। इस अवस्था में कोई विशेष लक्षण प्रारम्भ में दिखाई नहीं देते। यह रोग प्राय: करके मद्यपान करनेवाले, या बुड्ढों में अथवा बच्चों में पाया जाता है। यह किसी और रोग की उत्पत्ति में भी हो जाता है।

चिकित्सा—रोगी को बिस्तर पर लेटाकर रखना चाहिये। कमरे के वायुमण्डल को गरम वाष्प से तर रखना चाहिये। रोगी को सीधी वायु से बचाना चाहिये। रोगी को बोलने या हिलने से बचाना चाहिये। छाती पर अलसी की पुल्टिस या एण्टीफ्लोजैस्टीन का लेप करना चाहिये। इस लेप को लगाने के लिये डब्बे को गरम पानी में रखकर १५ मिनट तक उबालना चाहिये। पीछे से इसको चम्मच के साथ एक फलालैन के कपड़े पर ¼ इञ्च मोटा फैलाकर रुग्ण प्रदेश पर लगा देना चाहिये। गरम परिसेक करना भी उत्तम है। ब्राइनम एपिकॉक देना उत्तम है। रोगी का भोजन नर्म, पोषक होना चाहिये। इसके लिये दूध देना चाहिये। यदि रोगी निर्बल होता हुआ प्रतीत हो, तो उसकी शक्ति बनाये रखने के लिये मद्य देना चाहिये। इस रोग में हवा से बचाकर रोगी को स्पंज करना विशेष उत्तम है।

प्राय: यह देखा गया है कि बहुत-से रोगी उत्तम परिचर्या-द्वारा ही बिना औषधि के अच्छे हो जाते हैं। साथ ही कई बार अन्य लक्षणों की भाँति ज्वर की भी चिकित्सा करनी पड़ती है। फेफड़ों के रोगों में बुखार को कम करने के लिये 'फीनस्टीन', 'एण्टीफैब्रीन' आदि कोई भी ऐसी दवाई नहीं देनी चाहिये, जो हृदय को निर्बल करे। छोटे से लेकर बड़े तक प्रत्येक व्यक्ति को उत्तेजक औषधि देनी चाहिये। शराब, लाइकर स्ट्रिकनीन १० बूँद की मात्रा में देना विशेष उपयोगी है। उत्तेजक गरम औषधियों का देना तब विशेष आवश्यक है, जबकि रोगी तन्द्रा में पड़ा रहता हो।

आर्य-औषधि—१—इस रोग में श्लेष्मा को निकालने के लिये कटफलादि कषाय या चतुर्दशांग क्वाथ देना चाहिये। औषधियों में हिंगुलेश्वर का उपयोग कस्तूरी-भूषण के साथ करना चाहिये। २—क्षुद्रादि-क्वाथ, निर्दिग्धादि-क्वाथ का उपयोग करना भी उत्तम है। बलगम को निकालने के लिये 'अष्ठांगावलेहिका' बहुत ही उत्तम चाटन है।

यूनानी औषधि—जुन्दबेदस्तर को शराब में मिलाकर छाती पर मलना चाहिये। अथवा बाबूना के तेल में खितमी, जौ का चून, अकलील-मुल्क मिलाकर इसको मलना चाहिये।

प्लुरिसी (पार्श्वशूल)

इस रोग के अन्दर फेफड़े को ढँकनेवाली कला से अन्दर सूजन हो जाती है। यह सूजन फेफड़े के अन्दर के ऊपरवाले आवरण में या निचले आवरण में होती है। जिससे दोनों अस्तरें पृथक-पृथक हो जाती हैं। स्वस्थ अवस्था में दोनों अस्तरें आपस में मिली रहती हैं। इनको गीला रखने के लिये एक स्राव रहता है, जिससे ये रगड़ से बचे रहते हैं। इस रोग के आक्रमण के कारण सर्दी लगकर ज्वर आता है। रोगी के पार्श्व में चुभता हुआ दर्द होता है। यह दर्द प्रायः करके चूचक के बराबर में और पार्श्व में होता है। इस दर्द का स्वभाव बहुत चीरनेवाला होता है। दर्द पीछे से छाती के सामने, अक्षकास्थि की ओर या कक्षा की ओर जाता है। रोगी को शुष्क कास रहता है, श्वास छोटा होता है, खाँसने से, या गहरी साँस लेने से, या रुग्ण पार्श्व में लेटने से दर्द बढ़ जाता है। नाड़ी तेज और कठोर होती है। इसका स्पर्श कठोर रस्सी की भाँति प्रतीत होता है। जिह्वा मैली और श्वेत होती है, मूत्र गँदला और गहरा पीला होता है, त्वचा गरम होती है, ताप-परिमाण १०० से १०२ फार्नहाइट तक रहता है।

इस रोग का कारण सर्दी या आघात है, और प्रायः बुखार बढ़ने के साथ यह रोग हो जाता है। पसलियों के टूटने से, निमोनिया से, या यक्ष्मा से भी यह शोथ हो जाती है। यदि इसकी चिकित्सा न की जाय, तो फेफड़े और छाती की दीवार में पानी एकत्रित हो जाता है, जिससे छाती में शोथ हो जाती है। अच्छे होनेवाले रोगियों में दर्द और पीड़ा चौथे या पाँचवें दिन घट जाती है। यदि छाती में पानी भर गया होगा, तो श्वास एवं खाँसी में दर्द बढ़ जाता है और रोग अनियमित समय के लिये रहता है।

प्लुरिसी का निमोनिया से निम्न प्रकार से भेद कर सकते हैं–१—प्लुरिसी में दर्द घुसता हुआ होता है, निमोनिया में दर्द मन्द और चुभता हुआ होता है। २—प्लुरिसी में कफ-खाँसी कठोर, शुष्क और छोटी होती है। इसमें बल्गम

नहीं आता। निमोनिया में खाँसी लम्बी होती है, और बलगम झागदार एवं भूरे रंग का होता है। इसमें रक्त भी मिला रहता है। रोग की मन्द अवस्था में इसका भ्रम वातिक शूल (प्लुरोडोना) से हो जाता है। यह रोग प्राय: वाम पार्श्व में होता है। इसके साथ ज्वर नहीं होता।

चिकित्सा—रोगी को बिस्तर पर गरम रखना चाहिये। वायु से उसको बचाना चाहिये। रोगी को बोलने से, हिलने से बचाना चाहिये; क्योंकि इनसे दर्द बढ़ता है। रुग्ण पार्श्व पर जोंक लगवाना चाहिये। एक साल के बच्चे के लिये एक जोंक। इस प्रकार प्रत्येक साल के लिये एक-एक जोंक बढ़ाते जाना चाहिये। यदि यह न मिले, तो पोस्त के डोडों से सेंकना चाहिये, अथवा पोस्त के डोडों की पुल्टिस बाँधनी चाहिये। छाला उठाने से भी रोगी को आराम मिलता है। दर्द के लिये डोवर्स पाउडर तीन-चार ग्रेन की मात्रा में प्रत्येक दो घण्टे के अन्तर से देना चाहिये। कफ के लिये कफ-मिश्रण देना चाहिये। कई बार ड्राई कपिंग या सींगियों के लगाने से विशेष लाभ होता है। राई का भी लेप करना उत्तम है।

यूनानी औषधि—१—सौसन और कूठ के तेल में जुन्दबेदस्तर मिलाकर मलना चाहिये। २—तुलसी, सातर, पोदीना, अफसन्तीन, हींग, जुन्दबेदस्तर इनको महीन पीसकर लेप करना चाहिये। ३—बनफसा, खितमी प्रत्येक १ भाग, सौसन की जड़ दो भाग, जौ का आटा, बाकला का आटा प्रत्येक १॥ भाग, बाबूना १ भाग इन सबको मोम और बनफसे के तेल में मिलाकर लेप करना चाहिये। ४—यदि सर्दी अधिक हो, तो अलसी के बीज, नीलोफर के बीज, सफेद फूल के पत्ते मिलाकर लेप करना चाहिये। ५—बनफसा, गावजबाँ, उन्नाब, सौसन की जड़, लिसोड़ा, मुनक्का, मुलहठी, खितमी, खुब्बाजी, अन्जीर, जूफा, अमलतास का गूदा, शीरीखिश्त, बादाम का तेल इनका खिसाँदा देना चाहिये।

क्षय

यह रोग चिरकाल से चला आता है। इस रोग में फेफड़ों के अन्दर सड़ना प्रारम्भ होता है। फेफड़ों के अन्दर छोटे-छोटे उभार बन जाते हैं। इस रोग का कारण एक कृमि माना जाता है, जिसका आकार रॉड (शलका) की भाँति होता है। यह कृमि रोगी के थूक में (बलगम में) मिलता है। इसलिये यह बात सत्य है कि यह रोग स्थानिक है; परन्तु अवस्थाओं की अनुकूलता मिलने पर यह संक्रामक हो जाता है।

उदाहरण के लिये—यदि रोगी के फेफड़ों के बलगम को बाहर न फेंककर निगल जाय, तो उसके आँत आदि भी आक्रान्त हो जाते हैं। इसी-प्रकार यदि रोगी इस थूक को ज़मीन पर फेंकता है, तो उसके कृमि वायु-द्वारा उड़कर दूसरों को भी आक्रान्त कर सकते हैं।

इस रोग का प्रथम लक्षण शुष्क कास होता है, जो प्रातःकाल उठते समय अधिक कष्टदायक सिद्ध होता है। रोगी जल्दी से थक जाता है। थोड़े-से श्रम से हाँफने लगता है। ऊँचाई पर या सीढ़ी पर चढ़ते समय बहुत कठिनाई होती है। इसके पीछे बलगम निकलना आरम्भ होता है। इस बलगम का रंग चमकता हुआ श्वेत, झागदार तथा रक्त से मिला होता है। बलगम के साथ रक्त का आना ही कई बार सबसे प्रथम इस रोग की ओर ध्यान खींचता है। रोगी की नाड़ी साधारण अवस्था की अपेक्षा अधिक तेज़ होती है। उसका ताप-परिमाण सायंकाल में कुछ बढ़ जाता है। यह अवस्था कई सप्ताह, कई महीनों या कई वर्षों तक बनी रहती है। यदि रोगी प्रथम ही शुष्क वायुमण्डल में चला जाय, तो उसको शीघ्र आराम हो जाता है। इस रोग में यथासम्भव शीघ्र से शीघ्र छाती की परीक्षा करवानी चाहिये।

इस रोग की द्वितीयावस्था में बलगम की अवस्था खराब हो जाती है। बल्गम बहुत द्रव और अधिक आने लगता है। इसका रंग पीला होता है। इसमें गोल-गोल दाने होते हैं। यह बलगम गाढ़ा, गोल होता है, पानी में तैरता है, कई बार रक्त से मिला होता है। रोगी को सायंकाल ज्वर चढ़ जाता है। रात्रि में पसीना बहुत आता है। रोगी की भूख बनी रहती है, मांस और शक्ति घटती जाती है। चर्बीवाले या घी, तैल आदि भोजनों से रोगी की अनिच्छा रहती है। इस अवस्था में तेज, काटता हुआ दर्द पार्श्व में मालूम

पड़ता है। रोगी की वाक्-शक्ति घट जाती है। रोगी को अतिसार हो जाता है। रोग डाले की ओर या आंतों की ओर बढ़ने लगता है। अन्त में थकान से, अथवा किसी बड़ी रक्त-वाहिनी से रक्त निकलकर फेफड़ों-द्वारा मुख से गिरने के कारण रोगी की मृत्यु हो जाती है। रोग की इस अवस्था में रोगी का बचना असम्भव है।

आर्य-वैद्यक में इस रोग का इतिहास देते हुये लिखा है कि यह रोग चन्द्रमा को अपनी स्त्री रोहिणी के साथ अति विषय करने से हुआ था। वास्तव में इस रोग का कारण भी यही है। आजकल जो यह रोग इतना बढ़ा हुआ है, उसका कारण अति विषय-भोग, तथा अन्य कारणों से शरीर का क्षय होना है। यह रोग प्राय: करके युवावस्था में अधिक होता है। इसके कारण स्वर-भेद, वायु के कारण पार्श्व में दर्द, अंश और पार्श्वों में संकोच प्रतीत होता है। ज्वर, दाह, अतिसार तथा रक्तस्राव होता है। रोगी के हाथ-पाँव से गरम चिनगारियाँ निकलती प्रतीत होती हैं। यदि रोगी को कास, श्वास और रक्तस्राव ये तीन लक्षण हों, तो रोगी को असाध्य समझना चाहिये।

उपाय—रोग अच्छा हो, इससे अधिक रोग न हो, इस बात पर ध्यान रखना चाहिये। यह रोग पैतृक होता है, अर्थात् जिन घरों में यह रोग होता है, उनकी संतति में इस रोग की विशेष उत्पत्ति होती है। नवजात शिशु में यह रोग नहीं मिलता; परन्तु उत्पत्ति के पीछे किसी भी समय उसमें हो सकता है। अर्थात् इस रोग के लिये भूमि तैयार होती है। किसी भी समय बीज-कृमि के पहुँचने से रोग उत्पन्न हो जाता है। इस प्रकार के रोगियों को चाहिये कि वे अपना समय अधिकतर सूर्य के प्रकाश में या खुली वायु में बितावें। उनको चाहिये कि रात को जिस घर में सोयें, उसमें भी वायु भली प्रकार आने दें। शरीर को गरम रखना चाहिये। जब रोग होने लगे, उस समय कॉड लिवर ऑयल, लोह आदि शक्तिवर्धक औषधियाँ खानी चाहिये। खाँसी को कम करने के लिये औषधियों को देना चाहिये। इस काम के लिये अफीम, इसके समास बहुत अच्छे हैं। जैसे—सीरप कॉडिना फॉस्फेट या हीरोइन की गोलियाँ रोगी को चूसने के लिये देनी चाहियें।

क्षय-रोगी को चाहिये कि वह अपने बलगम को भी कभी भी निगरण

न करे, अर्थात् पीकदान या किसी चिथड़े में थूकना चाहिये। पीछे से इनको जला देना चाहिये। पीकदान के अन्दर कार्बोलिक लोशन रखना चाहिये। उसीमें थूकना चाहिये। रोगी को पर्याप्त ताजी वायु देनी चाहिये। यह रोग चुम्बन के द्वारा भी फैलता है। बच्चों को प्रारम्भ ही से स्वास्थ्य के नियमों की शिक्षा देनी चाहिये। इसीसे वे क्षय से बच सकते हैं।

रात्रि में पसीना यदि अधिक आता हो, तो जिंक ऑक्साईड और एक्सट्रैक्स बैलोडोना की भेलो देनी चाहिये। यदि सम्भव हो, तो रोगी को धर्मपुर या भुवाली भेज देना चाहिये। वहाँ पर चीर, देवदारु के पहाड़ अधिक हैं। उसकी वायु से रोगी में प्राण आते हैं। परन्तु रोगी को प्रथम या द्वितीयावस्था तक वहाँ भेज देना चाहिये।

१—रोगी को सूर्य के प्रकाश में रखना चाहिये। इसके लिये उसे धूप में बिठाना चाहिये। रोगी निर्बल हो, तो उसको बिस्तर पर लेटाकर धूप में रख देना चाहिये। उसकी पीठ को नंगा कर देना चाहिये। यदि धूप बर्दाश्त न हो, तो छाती और पीठ पर गीला या हरा कपड़ा डाल देना चाहिये। यदि सम्भव हो, तो नीला शीशा सामने रखना चाहिये, जिससे प्रकाश इस शीशे में से होकर जाय।

२—रोगी को पूर्ण विश्राम देना चाहिये। विश्राम देने से रोगी का ताप-परिमाण अवश्य कम हो जाता है। खाँसने के श्रम से भी बचाना चाहिये। इसके लिये अफीम की गोली देना उत्तम है।

३—मल को निकालने के लिये त्वचा को उत्तेजित करना चाहिये। इसके लिये छाती पर कॉडलिवर ऑयल या चन्दनादि तैल मलना चाहिये। यदि रक्तस्राव होता हो, तो चन्दन, लाक्षाबलादि तैल अवश्य मलना चाहिये। इस तैल में लाक्षा होने से रक्त बन्द होगा, बला होने से शरीर को पुष्टि मिलेगी और चन्दन के होने से दाह की शान्ति होगी।

४—रोगी को यथासम्भव २४ घण्टे खुली वायु में रखा जाय। उत्तम है कि रात्रि को भी बाहर ही सुलाया जाय। ऊपर छत डालकर चारोंओर से खुला रखना चाहिये। साथ ही सीधी और ठंडी वायु से रोगी को बचाना चाहिये।

५—रोगी को प्राणायाम करना चाहिये। यह क्रिया लेटे-लेटे भी

उसको कराना चाहिये। साथ ही इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि वह थक न जाय।

६—भोजन में तीन बातें आवश्यक हैं—१—भोजन रोगी की रुचि के अनुसार होना चाहिये। २—रोगी जो खाय, वह पच जाय। ३—भोजन से रोगी की शक्ति बढ़े। साधारणतः दूध का उपयोग उत्तम है। बकरी का दूध सबसे उत्तम है।

आर्य-वैद्यक में इस रोग के लिये बकरी का दूध, उसका घी, उसका मांस सबसे उपयोगी माना है। कहा जाता है कि बकरी को क्षय-रोग नहीं होता। इसके अतिरिक्त खजूर और दूध को खाना भी उत्तम है। मटर की भाजी, दलिया देना भी उत्तम है। ज्यों-ज्यों रोगी की शक्ति बढ़ती जाय, उसी प्रकार भोजन भी बढ़ाते जाना चाहिये।

७—यदि रोगी को मलबन्ध हो, तो उसकी चिकित्सा करनी चाहिये। इसके लिये कास्करा लिक्विड या हरीतकी-खण्ड, गुलकन्द देना चाहिये। यदि अतिसार हो, तो बिल्व, लोध्र, धातकी चूर्ण देना चाहिये।

अन्य उपाय—१—पका गूलर, कण्टकारी का फूल, वासकफूल और वंशलोचन मिलाकर मधु के साथ खाना चाहिये। २—वासक-छाल, मुलहठी, लाल चन्दन, लाक्षा, किशमिश, लोध्र, कटेरी और अर्जुनछाल प्रत्येक चार आना, आध सेर जल में काढ़ा करके जब दो छटाँक रह जाय, इसके साथ दो रत्ती अभ्रक मिलाकर पान करना चाहिये। ३—बहेड़ा-चूर्ण, गिलोय-चूर्ण, मुलहठी-चूर्ण, वंशलोचन, प्रवाल-भस्म, पिप्पली-चूर्ण प्रत्येक वस्तु सम-भाग लेकर मधु के साथ खाना चाहिये। ४—रस-सिन्दूर १, गेरू १, गन्धक २, भोजपत्र २, अनन्तमूल की छाल १, नागकेशर १, मोथा १, वासक-छाल १, पिप्पली १, वंशलोचन १, विडंग १, किशमिश ४, मिश्री ४, मोम २, पिण्ड-खर्जूर २, पुराना घी २, मधु आवश्यक मात्रा में मिलाना चाहिये। मात्रा—४ आना। इसको गरम दूध के साथ सेवन करना चाहिये। ५—मधु के साथ मिश्री और मक्खन मिलाकर खाने से या घी और मधु असमान भाग लेकर चाटना चाहिये, ऊपर से गरम दूध पीना चाहिये। ६—नागबला की जड़ को घी और मधु के साथ मिलाकर खाना चाहिये। ७—लाक्षा-रस २ तोला, मधु ६ माशा मिलाकर पीने से रक्तस्राव शान्त होता है। ८—पिप्पली-चन्द्रिरासव—मोथा, मिर्च, चविका, चित्रक, हल्दी, पिप्पली, विडंग, आँवला,

उशीर, छाड़छड़ीला, सुपारी, लोध्र, तमालपत्र, तेजपत्र, तगर, जटामांसी, देवदारु, दालचीनी, गुर्दा, नागकेसर, कुटकी, चन्दन प्रत्येक ८ माशा, धाय के फूल आध प्रस्थ, किशमिश ३ प्रस्थ, पुराना गुड़ १५ प्रस्थ, पानी २६ प्रस्थ। इनको मिलाकर घी से चिकने हुये मटके में १५ दिन तक रखना चाहिये। पीछे से मलकर छान लेना चाहिये। ९—उन्नाब को चार गुने जल में पकाकर जब आधा पानी रह जाय, तो इसमें छानकर शर्करा मिलाकर पीना चाहिये। इससे कास, क्षय, रक्त-पित्त शान्त हो जाता है। १०—बालक-स्वरस को मधु के साथ अथवा स्वर्ण के वर्क को मधु के साथ तथा मक्खन में मिलाकर खाना चाहिये।

शास्त्रीय औषधि—शितोपलादि चूर्ण, स्वर्ण बसन्तमालती, वासावलेह, वासाखण्ड, सार्वभौम, सर्वाङ्गसुन्दर, च्यवनप्राश, अमृतप्राश घृत, छागलाद्य घृत, रत्नगर्भ पोटली, मुक्ता या प्रवाल-भस्म।

यूनानी उपाय—(१) कहरुवा २१ माशे, गिलेइरमानी, नशास्ता, गुलाब के फूल प्रत्येक १४ माशे, खुर्फा, सफेद चन्दन, घीया के बीज की मींगी, ककड़ी, खीरा के बीज की मींगी प्रत्येक ३५ माशे, गिले मख्तूम साढ़े दस माशे, मूँगा की जड़, कतीरा, वंशलोचन, शादनजू मगसूल प्रत्येक साढ़े सत्तरह माशे, सभगअरबी, मुलहठी प्रत्येक साढ़े चौबीस माशे, कपूर ६ रत्ती, इनको बिहीदाने के लुआब में टिकिया बना लेनी चाहिये। (२) कहरुवे को गुलाबजल में बारीक करके ८ रत्ती की मात्रा मे मक्खन के साथ देने से रक्तस्राव रुक जाता है।

पथ्यापथ्य—मांस, मद्य, मूँग का जूस, जौ, जांगल मांस आदि खाने को देना चाहिये। चरक में इस रोग में मांस के लिये विशेष जोर दिया है। फलों का रस, पुराने चावल, पुराने मूँग की दाल का जूस, जौ देना चाहिये। बकरी या गाय का दूध, गधी का दूध देना चाहिये।

अपथ्य—स्त्री-सेवन, शोक, क्रोध, असूया, निन्दा करना, विरेचन, मलमूत्रादि का अवरोध, परिश्रम, स्वेद, रात्रि जागरण, विषम भोजन, कुलथी, हींग, कषाय द्रवों का सेवन, धूम्रपान, सवारी आदि अपथ्य हैं।

उरःक्षत

मुँह से रक्त कई कारणों से आ सकता है, जैसे—

१—यह रक्त गले या टौंसिल से आ सकता है। इस अवस्था में रक्त की मात्रा थोड़ी होती है। टौंसिल या गले में व्रण दिखाई देता है।

२—मसूड़ों से रक्त आ सकता है। इस रोग का कारण स्कर्वी है।

३—दाँत की जड़ में से रक्त आ सकता है।

४—नाक के पिछले भाग से आ सकता है।

५—फेफड़ों से रक्तस्राव का होना भयानक है। यह प्रायः क्षय-रोग का लक्षण है। झागदार, चमकता हुआ रक्त बलगम के साथ खाँसने से बाहर आता है। छाती में दर्द होता है। शरीर क्षीण हो जाता है। इसके कारण अतिश्रम, स्त्री-सेवन, बहुत बोलना, चिल्लाना, भागना, तैरना, खाँसना आदि हैं।

६—इसके अतिरिक्त आमाशय से भी रक्तस्राव होता है। यह प्रायः तब होता है, जबकि आमाशय में व्रण हो। इसलिये फेफड़ों से होनेवाले रक्त-पित्त में और आमाशय से होनेवाले रक्तस्राव में भेद करना चाहिये।

फेफड़ों से होनेवाला रक्तस्राव	आमाशय से होनेवाला रक्तस्राव
प्रायः श्वास में कठिनाई रहती है।	बेचैनी, जी मचलाना, कौड़ी-प्रदेश पर दर्द होता है, जो दबाने से बढ़ जाता है।
छाती में दर्द होता है।	
मुँह भर-भरकर रक्तस्राव होता है।	रक्त अधिक मात्रा में आता है।
रक्त झागदार होता है।	रक्त में झाग नहीं होती।
रक्त का रङ्ग चमकता हुआ लाल होता है।	रक्त का रङ्ग प्रायः काला-सा होता है।
रक्त लार से मिला होता है।	रक्त भोजन से मिला होता है।
मल के साथ रक्त बाहर नहीं आता।	रक्त प्रायः मल से मिला हुआ होता है।
खाँसी के लक्षण रोगी में होते हैं।	ये लक्षण नहीं होते।

उपाय—(१) बर्फ या नीबू का शर्बत, या चूने का पानी देना चाहिये। (२) वासक के स्वरस को मधु में मिलाकर देना चाहिये। (३) लाक्षारस मधु के साथ मिलाकर देना चाहिये। (४) मुलहठी, लालचन्दन दूध के साथ पीसकर पीना चाहिये। (५) कहरुवे का चूर्ण मक्खन में चाटना

उत्तम है। (६) धनिये के पानी में ईसबगोल का लुवाब मिश्री डालकर खाना चाहिये। (७) मोती-भस्म या प्रवाल-भस्म दोनों को मधु में मिलाकर या गुलकन्द के साथ खाना चाहिये। (८) कुष्माण्डावलेह, द्राक्षायवलेह खाना चाहिये।

शास्त्रीय औषधि—स्वर्णबसन्तमालती, शितोपलादि-चूर्ण, कुष्माण्डावलेह, अर्कहरायण, प्रवाल-पिष्ठि उपयोगी है।

पथ्यापथ्य—शीत भोजन, चावलों की खीर पकाकर खाना चाहिये। परवल का शाक इस रोग में उत्तम है।

प्रकरण चौथा

रक्ताशय-सम्बन्धी रोग

हृद्-रोग

हृद्-रोग—हृद्-रोग में हृदय के शब्द के अन्दर अन्तर आजाता है। इस अन्तर को एक योग्य चिकित्सक का कान ही पहचान सकता है। इसके अतिरिक्त और भी लक्षण उत्पन्न हो जाते है। जैसे—नाड़ी का अनियमित होना, हृदय में धड़कन होना, मूर्च्छा की ओर अभिरुचि होती है। छाती में भारीपन, श्वास में कठिनाई का होना, चेहरे का पीला होना, भुजाओं का ठंडा होना, बाम भुजा में दर्द का होना, टाँगों के ऊपर थोड़ी या बहुत सूजन हो जाती है। इनमें से कुछ लक्षण अजीर्ण के कारण भी हो जाते हैं, इसलिये विशेष योग्यता के बिना लक्षणों की पहचान, रोग का निर्णय भली प्रकार नहीं हो सकता। यदि बाम स्तन में दर्द या बेचैनी हो, (स्पष्टरूप में कोई कारण न प्रतीत हो, तो) बाम भुजा में दर्द हो, साथ ही ऊपर लिखे हुये लक्षण भी मिले हों, पाँव में थोड़ी-बहुत सूजन हो, तो भयानक रोग की आशङ्का करनी चाहिये, विशेषतः जबकि रुग्ण वृद्धा हो।

जिस समय यह लक्षण प्रतीत हो, उस समय निम्न बातों को ध्यान में रखना चाहिये। १—हृदय के कार्य को कम करना चाहिये। रोगी को आराम से बिस्तर पर लेटना चाहिये, उत्तेजक औषधियों से बचना चाहिये, सहसा वायु-परिवर्त्तन से बचना चाहिये। २—हृदय के कार्य को नियमित करना चाहिये, मानसिक-श्रम से, शारीरिक-परिश्रम से बचना चाहिये। अधिक खान और अधिक पान से बचना चाहिये। अजीर्ण और मलबन्ध से बचना चाहिये।

हृदय की धड़कन—यह लक्षण बहुत साधारण है; परन्तु इसपर विशेष ध्यान रखना चाहिये। इस रोग में हृदय का कार्य अनियमित हो जाता है, रोगी को बेचैनी और मूर्च्छा रहती है। साधारणतः यह रोग भया-

नक कारण से नहीं होता। इसका कारण प्रायः अजीर्ण, आध्मान या तम्बाकू है। यह रोग पाण्डु, हिस्टीरिया, नष्टार्त्तव और गर्भकाल में भी हो जाता है। हृदय की धड़कन हृदय के कारण से अथवा अन्य कारणों से भी हो सकता है।

हृदय के कारण होनेवाली हृदय की धड़कन	अन्य कारणों से होनेवाली धड़कन
प्रायः करके पुरुषों में होती है।	प्रायः करके स्त्रियों में होती है।
धीरे-धीरे होती है।	अचानक आक्रमण होता है।
लगातार रहती है, किसी समय अधिक हो जाती है और किसी समय कम।	रुक-रुककर आक्रमण होता है। कुछ समय के लिये बिलकुल अच्छी हो जाती है।
प्रायः इसके साथ बाम स्कन्ध में दर्द रहता है।	प्रायः करके पार्श्व में दर्द रहता है।
गाल और ओष्ठ पीले हो जाते हैं।	चेहरा पीला हो जाता है।
प्रायः ४५ वर्ष के पीछे होता है।	प्रायः करके युवाओं में होता है।
रोगी प्रायः शिकायत नहीं करता।	रोगी प्रायः शिकायत करता है।
हृदय का शब्द बदल जाता है।	हृदय का शब्द स्वस्थ रहता है।
परिश्रम से बढ़ जाता है।	बढ़ता नहीं; परन्तु व्यायाम से घट जाता है।

धड़कन को कम करने के लिये स्प्रिट अमोनिया एरोमैटिक को ६० बूँद पानी के साथ थोड़ी-सी शराब देनी चाहिये। मलबन्ध की चिकित्सा करनी चाहिये। मद्य, तम्बाकू, चाय आदि से बचना चाहिये।

एनजाईना पेक्टोरिस—इस रोग में दर्द दक्षिण स्कन्ध में रहता है। मूर्च्छा, श्वास में काठिन्य और बेचैनी रहती है। यह रोग प्रायः पुरुषों में ४० वर्ष की आयु से कमवाले व्यक्तियों में होता है। यह रोग स्वास्थ्य के नियमों का पालन न करने से, मस्तिष्क से अधिक काम लेने पर, गठिया या मधुमेह के कारण भी हो जाता है। इस रोग का तात्कालिक कारण वात-नाड़ियों की पीड़ा अथवा मुख्य रक्त-वाहिनियों का आकुञ्चन है। यह रोग किसी थकावट के कारण अथवा पहाड़ पर चढ़ने से

या भारी भोजन के कारण (विशेषतः रात्रि में) हो जाता है। इस रोग का आक्रमण रुक-रुककर होता है। यह रोग स्वयं कोई भयानक नहीं, परन्तु जब इस रोग का कारण किसी प्रकार का रचना-सम्बन्धी परिवर्त्तन होता है, तो यह रोग भयानक हो जाता है।

चिकित्सा—आक्रमण के समय रोगी को 'एमाईल नाइट्रेट' की कुछ बूँदें रुमाल पर डालकर सुँघाना चाहिये। साथ ही उत्तेजक, गरम औषधि (ब्रांडी आदि) तत्काल देना चाहिये। पीछे से अजीर्ण की चिकित्सा करनी चाहिये। आक्रमण अच्छा होने पर थकावट और चिंता से बचना चाहिये। भोजन हल्का सुपच करना चाहिये। आक्रमण के समय ब्रांडी या सैलवो लेटाइल पीना उत्तम है। यदि आक्रमण भोजन के पीछे हो, तो वमन देना चाहिये।

अन्य उपाय—(१) जटामांसी ४ आना, अर्जुनछाल ४ आना, अश्वगन्धा ४ आना, जीवन्ती ४ आना, शारिबा ४ आना, शालपर्णी ४ आना, सोंठ ४ आना, रेंड़ी की छाल ४ आना, दूध $\frac{1}{4}$ सेर, जल $\frac{1}{2}$ सेर, इनको पकाकर दूध बचाना चाहिये। इस दूध में ४-५ रत्ती पुराना घी मिलाकर पीना चाहिये। (२) इस पाचन के साथ १ रत्ती अभ्रक-भस्म, २ रत्ती बंशलोचन मिलाकर खाना चाहिये। (३) जटामांसी १ भरी, बला की जड़ $\frac{1}{2}$ भरी, शालपर्णी की जड़ $\frac{1}{2}$ भरी, गाय का दूध $\frac{1}{4}$ सेर, पानी $\frac{1}{2}$ सेर, पकाकर दूध बचा लेना चाहिये। (४) रेंड़ी की छाल ८ आना, गोखरू ४ आना, रास्ना ४ आना, अश्वगन्धा ८ आना, हरड़ ४ आना, जल $\frac{1}{2}$ सेर काढ़ा करके २ छटाँक रखना चाहिये। (५) सोंठ का काढ़ा पीना चाहिये। (६) मृगशृंग को जलाकर गाय के घी के साथ खाना चाहिये। (७) तैल, घृत, गुड़ मिलाकर १ भाग, गेहूँ और अर्जुनछाल का चूर्ण मिलाकर ४ भाग मिलाकर गाढ़ा पाक करके खाना चाहिये। (८) पुष्कर-मूल-चूर्ण को मधु के साथ पान करना चाहिये। (९) वच्य, अम्ल, यवक्षार, हींग, चीतामूल समभाग चूर्ण करके तैल या कांजी के साथ पीना चाहिये। (१०) अर्ज्जुन छाल को घी के साथ चाटना चाहिये। (११) स्वल्प पंच-मूल को बला या मुलहठी के साथ मिलाकर काढ़ा के रूप में पीना चाहिये।

शास्त्रीय औषधि—नागार्जुनाभ, मकरध्वज, च्यवनप्राश, बृहत्-चिन्तामणि, हृदयार्णवरस, शृंग-भस्म, दशमूल-घृत, अर्ज्जुन-घृत, अश्व-गन्धारिष्ठ।

यूनानी औषधि—(१) कहरुवा, जुन्दबेदस्तर, प्रत्येक ३।। माशे, नीबू का छिलका १।। माशे, रामतुलसी के बीज ८।। माशे, सबको महीन पीसकर शहद में मिलाकर देना चाहिये। (२) पोदीना, कहरुवा, नागरमोथा प्रत्येक १०।। माशे, जराबन्द, दरूनज अकरबी, प्रत्येक १।।। माशे, कस्तूरी ६ रत्ती, बालछड़, मोती प्रत्येक ३।। माशे, बूरा ७० माशे मिलाकर १०।। माशे की मात्रा में तुरबुद के काढ़े के साथ देना चाहिये। (३) दिवालमुश्क, एलुवा, जराबन्द, मद हरिंज प्रत्येक ५१ माशे, अजवायन, केशर, अजवायन के बीज, प्रत्येक १४ माशे, बालछड़, तेजपात प्रत्येक ७ माशे, जुन्दबेदस्तर, कस्तूरी प्रत्येक ३।। माशे, सबको कूट-छानकर शहद में मिलाना चाहिये। मात्रा ४।। माशे। इसे गाजबाँ के अर्क के साथ देना चाहिये। (४) मीठी दिवालमुश्क, कचूर, दरूनज प्रत्येक ७ माशे, मोती, कहरुवा, मूँगा की जड़, रेशम कच्चा प्रत्येक ५। माशे, वहमन लाल और सफेद, तेजपात, छोटी इलायची, लौंग, जुन्दबेदस्तर, छरीला प्रत्येक २ माशे, सोंठ, पीपल प्रत्येक १ माशे, कस्तूरी ६ माशे, इन सबको पीसकर शहद में मिला लेना चाहिये। (५) छोटी हरड़, बड़ी हरड़, प्रत्येक ३।। माशे, अफतीयून, लौंग प्रत्येक १।।। माशे, दिवालमुश्क कड़वी १०।।। माशे, इन पाँचों वस्तुओं को मिलाकर तीन दिन तक रखना चाहिये। फिर खाना चाहिये। (६) सफेद चन्दन को गुलाब में घिसकर इसमें कपूर मिलाकर उसमें कपड़ा तर करके धूप में सुखाकर पहनना चाहिये। उसपर गुलाब का जल छिड़क देना चाहिये। अनार का शर्बत विशेषतः पीने को देना चाहिये।

पथ्यापथ्य—हृदय-रोगी को पुष्टिकारक भोजन देना चाहिये।

प्रकरण पाँचवाँ

पाचन-संस्थान-सम्बन्धी रोग

पाचन-संस्थान का प्रारम्भ मुँह से होता है और समाप्ति गुदा के अन्तिम भाग पर होती है। इसलिये मुँख के रोगों का समावेश भी इसी संस्थान में होना उचित है। परन्तु 'मुँह' इस शब्द के अन्दर ओष्ठ, जिह्वा, दाँत, तालु आदि अन्य अवयवों का भी समावेश होता है और इनके रोग भी पृथक्-पृथक् हैं। इस प्रकार से 'मुँह' के स्वयं इतने रोग बन जाते हैं कि उनका पृथक् प्रकरण बनाया जा सकता है। इसलिये मुँख-गुहा के रोगों को आँख, कान, नाक आदि इन्द्रियों के रोगों में समाविष्ट किया है।

मुखगुहा के पीछे अन्न-प्रणाली आती है। इसमें प्राय: बहुत कम रोग होते हैं। किसी वस्तु के अटकने से जो अवस्था उत्पन्न हो जाती है, उसकी चिकित्सा तात्कालिक चिकित्सा अध्याय में लिखी गई है।

अन्य प्रणाली के आगे आमाशय और आँत्र हैं। यकृत और प्लीहा भी पाचन-क्रिया में भाग लेने से वे पाचन-अवयव गिने जाते हैं। इसलिये उनके रोगों का भी इसी प्रकरण में समावेश किया जायगा।

आमाशय-रोग

१. **आमाशय-शोथ**—यह दो प्रकार की होती है, एक तीव्र और दूसरी पुरातन। इनमें तीव्र शोथ का कारण गरम, विदाही पदार्थों का सेवन करना है। जैसे—अधिक मसालों का खाना, मद्यपान, ताड़ी का सेवन, मछली, या विदग्ध सड़े हुये अथवा बासी पदार्थों को सेवन करने से आमाशय में तीव्र शोथ उत्पन्न हो जाता है। कई बार विष आदि के कारण भी आमाशय में दाह और शोथ हो जाती है।

लक्षण—छाती के दोनों किवाड़ जहाँ पर मिलते हैं, उस कौड़ी-प्रदेश पर दाह एवं दर्द प्रतीत होता है। जिह्वा का अग्र भाग लाल रहता है।

किनारे भी लाल हो जाते हैं। गालों पर जख्म हो जाते हैं। नाड़ी छोटी और उतावली चलती है। पेट में कब्जियत रहती है, चेहरा चिन्तातुर रहता है।

चिरकालीन शोथ—इस रोग के कारण वे ही हैं, जो तीव्र शोथ के हैं। यह रोग या तो तीव्र शोथ के पीछे बच जाता है, अथवा शनैः-शनैः उत्पन्न होता है। रोगी प्रथम इसके लक्षणों की उपेक्षा करता रहता है। पीछे से यही लक्षण स्थायी हो जाते हैं। रोगी को भोजन पचता नहीं। उसे बेचैनी रहती है, वमन होता है, कौड़ी के स्थान पर दर्द रहता है। रोगी की प्यास बढ़ जाती है। दबाने से दर्द बहुत होता है।

उपाय—आमाशय को आराम देना चाहिये। इसके लिये रोगी को लंघन कराना चाहिये। पीने के लिये द्रव भोजन देना चाहिये। यह द्रव भोजन शीतल होना चाहिये। जैसे, कासनी, नीलोफर का पानी, बिहीदाने का ईषबगोल का लुवाब देना चाहिये। इसके साथ ही शोथ को कम करने के लिये मृदु, विरेचक और पित्तशामक औषधियाँ देनी चाहिये।

मुष्टियोग—(१)पेट पर राई का लेप करना चाहिये। (२) कबूतर की विष्ठा या बकरी की मींग, शोरा, अलसी की पुल्टिस भी उत्तम है। (३) बर्फ की थैली रखनी चाहिये।

आर्य-चिकित्सा—यवक्षार या सर्जक्षार को गरम पानी के साथ देना चाहिये। एलादि चूर्ण या चन्दनादि चूर्ण देना चाहिये। शिवाक्षार पाचन का उपयोग और रात्रि में पेचसकार का उपयोग करना उत्तम है।

अनार्य-चिकित्सा—इस चिकित्सा में प्रायः 'एलकली' क्षार दिये जाते हैं। जैसे—सोडाबाई कार्ब, टार्टरिक एसिड, इनको पानी में घोलकर अधिक मात्रा में दिया जाता है। विरेचन के लिये सिटलिटिज पाउडर उत्तम औषधि है। साधारणतः साइट्रेट ऑफ मैगनेशिया (विशेषतः झागदार) या मिल्क ऑफ मैगनेशिया का व्यवहार किया जाता है। इनके कारण पित्त की तीक्ष्णता कम हो जाती है। सोडाबाई कार्ब, मैगनेशिया सल्फ इनको मिलाकर देने से अच्छा भी आराम होता है।

यूनानी चिकित्सा—१—कासनी की जड़, सौंफ की जड़, मुलहठी और सौंफ इनका काढ़ा करके उसमें गुलकन्द या अमलतास मिलाकर देना चाहिये। अमलतास पेट को नरम करता है। २—अजवायन के अर्क में ७ दिन तक बादाम का तेल मिलाकर देना चाहिये और पीछे से अकलीलुल-

भलिक का काढ़ा देना चाहिये। इस काढ़े में शर्बत जूफा या शर्बत नीलोफर को मिला लेना भी उत्तम है। पेट पर चन्दन का लेप करना चाहिये।

आमाशय-व्रण—इस रोग के वे ही कारण हैं, जो आमाशय-शोथ के हैं। इस रोग में रोगी का दर्द बढ़ जाता है। उसको वमन विशेष होता है। वमन भोजन खाने के आधा या १ घण्टे के पीछे होता है। इसमें थोड़ा-सा रक्त मिला रहता है। भोजन करने पर कुछ आराम होता है। रोगी को बेचैनी रहती है। दर्द के स्थान पर हाथ लगाने नहीं देता। यह रोग प्रायः स्त्रियों में मिलता है। वह भी ३० साल के पीछे।

उपाय—रोगी को द्रव भोजन देना चाहिये। बर्फ चूसने के लिये देनी चाहिये। पेट पर बर्फ की थैली रखनी चाहिये। रोगी को पूर्ण विश्राम देना चाहिये, अर्थात् लिटाये रखना चाहिये। अलसी की पुल्टिस का कौड़ी-प्रदेश पर बाँधना भी उत्तम है। दर्द बहुत होता हो, तो तारपीन के तेल का सेंक करना चाहिये।

आर्य-चिकित्सा—१—वासा-खण्ड, कुष्माण्डावलेह, अथवा वासा-रस मधु के साथ, अथवा दूर्वा-रस शहद के साथ थोड़ा-थोड़ा करके देना चाहिये। २—लाक्षा का चूर्ण ६ माशे मधु और घी के साथ खाना चाहिये। ३—खजूर, मुनक्का, मुलहठी, फालसा, इनके काढ़े में शर्करा मिलाकर पीना चाहिये। ४—स्त्री वेरादि क्वाथ, धान्यकादि क्वाथ उत्तम है। सुधानिधि रस, समशर्कर लौह, खण्ड-खाद्य लौह भी प्रयोग करने चाहियें।

अनार्य-चिकित्सा—गैलिक एसिड १५ ग्रेन पानी में मिलाकर एक-एक घण्टे के अन्तर से देनी चाहिये। टिंचर ऑफ स्टील या हैजेलिन का उपयोग करना चाहिये। ये वस्तुयें रक्तस्तम्भक हैं।

यूनानी चिकित्सा—१—हीरादूखी गोंद, अनार के फूल, कहरवा, गिलेइरमानी, गुलाब के फूल, इनका चूर्ण देना चाहिये। २—बंशलोचन, गुलाब के फूल, चूका के बीज, इनको काली गाय के मट्ठे के साथ देना चाहिये।

विशेष द्रष्टव्य—आमाशय-शोथ या आमाशय-व्रण के लिये आर्य-चिकित्सा में सबसे उत्तम वस्तु लौह-भस्म है। लोगों का विचार है कि यह भारी है, कब्ज़ियत करती है। परन्तु उत्तम बनी हुई लोह-भस्म इन दोषों से रहित होती है। उत्तम लोह-भस्म पानी पर तैरती है। यदि यह उचित विधि

से दी जाय, तो आमाशय के असाध्य रोगों को भी लाभ करती है। लोह-भस्म को त्रिफला या मधु या मक्खन के साथ देना चाहिये। लौह देने से रोगी की शक्ति बनी रहती है। दूध आदि द्रव पदार्थ देने से जो पोषण में न्यूनता रहती है, वह इसके द्वारा पूरी हो जाती है। दूध और जीवन (च्यवन-प्राश) रोगी को दिया जाय। इसके साथ दूध, त्रिफला या लौह दिया जाय, तो और भी उत्तम है।

पथ्य—जौ का पानी इन दोनों रोगों में उत्तम है। इस पानी से रोगी को अधिक मात्रा में पोषण मिल जाता है। प्यास को कम करने के लिये बर्फ का टुकड़ा या गीला कपड़ा चूसते रहना चाहिये। कांजी, दलिया आदि हल्की खुराक भी रोगी को दी जा सकती है। यदि भूख असह्य हो, तो भुने हुये चावल या कमलकाकड़ी की खीर देनी चाहिये। चूने का पानी सब अवस्थाओं में उत्तम है। मसाला, मद्य, गरिष्ट भोजन, मांस ये सब वस्तुयें इन रोगों में अपथ्य हैं।

मन्दाग्नि—भूख न लगने की शिकायत अमूमन सुनने में आती है। भूख न लगने के कई कारण हैं। परन्तु मुख्य कारण आमाशय-रस का उत्पन्न न होना है। आर्य-चिकित्सा में इस रोग के चार भेद किये हैं—१—कफ के कारण अग्नि-मन्द हो, तो इसको 'मन्दाग्नि' कहते हैं। २—पित्त के कारण जब अग्नि तीव्र होती है, इसको 'तीक्ष्णाग्नि' कहते हैं। ३—वायु के कारण जब अग्नि में विषमता आजाती है, तो 'विषमाग्नि' कहते हैं। ४—और जो अग्नि समान रहती है, उसको 'समाग्नि' कहते हैं।

वास्तव में यह कोई स्वतन्त्र रोग नहीं, अपितु रोगों का लक्षण है। परन्तु चूँकि यह शिकायत अमूमन सुनने में आती है, इसलिये यहाँ पर इसको अलग लिखा गया है।

उपाय—(मुष्टि-योग)—१—हरीतकी को सोंठ और गुड़ अथवा सैन्धव के साथ खाने से अग्नि बढ़ती है। २—प्रातःकाल यवक्षार-चूर्ण, शुंठी चूर्ण अथवा केवल शुण्ठी-चूर्ण घृत के साथ सेवन करने पर और उष्ण जल पीने से क्षुधा बढ़ती है। ३—हींग, सौवर्चल लवण को गरम अन्नमण्ड के साथ पान करने से विषम अग्नि सम होती है और मन्दाग्नि प्रदीप्त होती है। ४—गरम पानी में नीबू का रस पीना उत्तम है। ५—नमक और आर्द्रक

का खाना भी उपयोगी है। ६—कैथ, चोगेरी मिर्च, अजवायन, जीरा, चित्रक इन सबका चूर्ण गरम पानी में लेने पर अग्नि दीप्त होती है।

आर्य चिकित्सा—अग्निकुमार-रस, क्षुधावती-गुटिका, भास्कर-लवण, हिंग्वाष्टक।

अनार्य-चिकित्सा—भूख न लगने पर अम्ल भोजन से पूर्व दिये जाते हैं। इसके लिये हाइड्रोक्लोरिक एसिड डाइल्यूट १० से १५ बूँद भोजन से आध घंटा पहले देना चाहिये। इसके अतिरिक्त टाका डायस्टेज अकेला या पैपीन अथवा पैप्सीन के साथ बरता जाता है। भोजन के पीछे कटु, तिक्त, पाचन, जैसे, कोलम्बा, चिरायता, जैन्शन आदि दिये जाते हैं। साधारणत: ऐसा उपाय करना चाहिये, जिससे आमाशय अपना कार्य आरम्भ कर दे।

यूनानी चिकित्सा—१ सेर बिही का पानी, आधा सेर पुराना सिरका, सोंठ ७० माशे और शहद यथायोग्य मिलाकर शिकञ्जबीन बना लेनी चाहिये। २—काली हरड़ गौ के घी में भुनी हुई ३५ माशे, भूना हुआ हालून १७½ माशे, अजवायन सातों प्रत्येक १०½ माशे, मण्डूर-भस्म ३५ माशे, इनको महीन पीसकर द्राक्षासव के साथ लेना चाहिये। इसको दवाउल जरश्क कहते हैं। मात्रा ७ माशे है। ३—अनार के फूल, मस्तगी प्रत्येक १३½ माशे, अफसन्तीन एलुवा ९ माशे, गुलाब के फूल २२½ माशे, लौंग, नागरमोथा, बालछड़ प्रत्येक ७ माशे, इनको शराब में मिलाकर लेप करे। ४—माजून फलामका—त्रिफला, गुग्गुलु, पिप्पली, तुर्बद, बादाम के तेल में चिकना करके १४ माशे, चीता ४२ माशे इनको मिलाकर बूरा डालकर माजून बना लेना चाहिये।

पथ्य—इस रोग में शारीरिक व्यायाम विशेषत: कोष्ठ के व्यायाम अधिक लाभदायक हैं। गरम पानी का प्रात: पीना उत्तम है। भोजन हल्का, मूँग का पानी और मोटा आटा खाना चाहिये। छानकर उपयोग करना इस रोग में उत्तम है। गरिष्ठ भोजन हानिकारक है। हल्का मद्य, आसव, अरिष्ट इसमें लाभ देते हैं।

भस्मक—यह एक विचित्र प्रकार का लक्षण है। इसमें रोगी की भूख या भोजन की रुचि आवश्यकता से अधिक बढ़ जाती है। वह जो खाता है, मिट्टी हो जाता है। उसका रस उसके शरीर में लाभ नहीं करता। यह

अवस्था प्रायः मधुमेह के रोगी में हो जाती है। उसकी भूख और प्यास बहुत बढ़ जाती है। इस रोग में रोगी खाते हुये भी निर्बल हो जाता है।

उपाय—गरिष्ठ भोजन, जैसे, भेड़ का घी, अपामार्ग के चावलों की खीर, भैंस के दूध में केला मिलाकर खाना उत्तम है। श्वेत कमल, चावल, कमलकाकड़ी इनको भेड़ के दूध में पकाकर खाना चाहिये।

यूनानी उपाय—१—गिलेइरमानी, खुर्फा के बीज, खिया के बीज, ककड़ी के बीज, यवक्षार, सभग अरबी, इनमें से किसीके आधे भाग पिस्ते की मींगी और सबके बराबर तिल मिलाकर भेड़ के घी में टिकिया बनावे। इससे सात दिन तक भूख नहीं लगती। २—बनफसे के तेल में मोम मिलाकर खिलाना भी लाभदायक है। ३—पिस्ता, बादाम इनको तिल्ली के तेल में मिलाकर, उसमें बूरा मिलाकर, हलुवा बनाकर खाना चाहिये।

अजीर्ण

अजीर्ण का रोग बहुत सामान्य है। साथ ही शरीर के बहुत-से रोगों का मूल कारण भी यही रोग है। इसलिये शरीर में किसी प्रकार के अजीर्ण की शिकायत होने पर तुरन्त इसका उपाय करना चाहिये। शरीर की स्थिति आहार के ऊपर है। यदि आहार का पाचन भली प्रकार नहीं होगा, तो शरीर निर्बल रह जाता है।

कारण—अजीर्ण के कारणों से शायद ही कोई आदमी अनभिज्ञ होगा। पाचन-शक्ति को अधिक भोजन लेने पर, बहुत या असमय पर मिष्ठान्न खाने से, पूर्व भोजन के पचे बिना अन्य भोजन करने से, भोजन का अव्यवस्थित समय रखने से, इस रोग की उत्पत्ति होनी प्रारम्भ होती है। इसके अतिरिक्त आधुनिक सभ्यता की वस्तुओं के उपयोग से, जैसे, चाकलेट आदि मिठाई का खाना, बर्फ या सोडावाटर का उपयोग, चाय और बिस्कुट का बारबार खाना तथा अव्यवस्थित जीवन के बिताने से यथा रात्रि में १२—१ बजे सोना और प्रातः ८ या ९ बजे उठना, और उठते ही बिना मुँह साफ़ किये बिस्कुट, चाय का खाना तथा अन्य मानसिक कारणों से इस रोग की उत्पत्ति होती है। दारू, भाँग, गाँजा, तम्बाकू का सेवन, अति वीर्यनाश आदि कारण भी इस रोग की उत्पत्ति में सहायक बनते हैं।

लक्षण—किसीको मलबन्ध रहता है, किसीको अतिसार हो जाता है। मल में अपच पदार्थ बाहर आता है। भूख कम हो जाती है, मुँह में फीकापन या चिकनापन आजाता है, खट्टे डकार आते हैं, छाती में दर्द और दाह होती है, पेट में मीठी-मीठी चिबुक प्रतीत होती है, अपानवायु बन्द रहती है या बहुत दुर्गन्धयुक्त होती है। रोगी को प्रतीत होता है कि उसको बुखार है। किसी काम में रुचि उत्पन्न नहीं होती। निद्रा गम्भीर और शान्त नहीं होती। रोगी बेचैनी अनुभव करता है। रोगी धीरे-धीरे निर्बल होता जाता है। जिह्वा मैली रहती है। शिर में भारीपन या दर्द की शिकायत रोगी किया करता है।

भेद—आर्य-चिकित्सा-शास्त्र में अजीर्ण-रोग के भेद निम्न प्रकार से किये हैं—

१. **आमाजीर्ण**—यह रोग कफ से होता है। इसके कारण अग्नि मन्द रहती है। शरीर में भारीपन, उद्गार, डकारों का आना, आँखों की पलकों के ऊपर शोथ, खाये हुये अन्न की श्वास में गन्ध रहती है।

२. **विदग्धाजीर्ण**—भ्रम, प्यास, मूर्च्छा, संताप, दाह, खट्टे डकार आते हैं। रोगी को पसीना भी अधिक आता है। ये लक्षण पित्त के होते हैं।

३. **विष्टब्धाजीर्ण**—वायु से उत्पन्न होता है। इसमें शूल, अफारा, मल तथा अधोवायु का अवरोध रहता है। शरीर में दर्द होता रहता है।

४. **रस-शेषाजीर्ण**—इसका अभिप्राय यह है कि आमाशय में रस की उत्पत्ति विशेषरूप से अधिक होती है। भोजन के आमाशय से निकल जाने के पीछे भी यह रस आमाशय में बचा रहता है। इसका रंग श्वेत कफ के समान होता है। इसको साधारणतः 'काईल' कहा जाता है। इस अजीर्ण के कारण भोजन में अरुचि या अनिच्छा रहती है।

पीछे जो मन्दाग्नि, तीक्ष्णाग्नि, विषमाग्नि और समाग्नि—ये चार भेद अग्नि के दिखाये गये हैं, इनके भी कारण वात, पित्त और कफ हैं। वायु के कारण अग्नि के अन्दर विषमता आजाती है। अर्थात् किसी समय तक अग्नि भोजन को भली प्रकार जीर्ण करती है और किसी समय जीर्ण नहीं करती। पित्त के कारण अग्नि तीक्ष्ण हो जाती है, अर्थात् मात्रा से अधिक खूराक को पचाती है। इसका परिणाम-स्वरूप 'भस्मक-रोग' उत्पन्न होता है।

कफ के कारण अग्नि मन्द हो जाती है, अर्थात् वह मात्रा से न्यून भोजन का पाक करती है। समाग्नि वह है, जो उचित मात्रा में भुक्त भोजन को उचितरूप में जीर्ण करती है। इसलिये समाग्नि पुरुष सबसे श्रेष्ठ माना जाता है।

उपद्रव—अजीर्ण-रोग के तीन उपद्रव विशेष हैं—१. विसूचिका, २. अलसक और ३. विलम्बिका।

१—विसूचिका-रोग में दोष—मुख और आंत्र दोनों मार्गों से विशेष रूप में बाहर निकलते हैं। इससे रोगी को वमन और अतिसार हो जाता है।

२—अलसक—इस रोग में अपानवायु रुक जाती है। दोष न तो मुख के रास्ते से बाहर निकलते हैं और न आंत्र के रास्ते से। पेट में रुककर आध्मान उत्पन्न कर देते हैं। रोगी के श्वास में काठिन्य उत्पन्न हो जाता है। उदर की मांस-पेशियों के तनने से पेट में दर्द रहता है। पेट फूला हुआ नज़र आता है।

३—विलम्बिका—इसके अन्दर अपानवायु बाहर नहीं आती। पेट पर दबाने से दर्द मालूम होता है।

उपाय—(मुष्टि-योग)—इस रोग में धारक औषधि न देकर पाचक और ईषत-धारक औषधि दोनों गुणयुक्त औषधि देनी चाहिये।

१—आध छटाँक मोरी को १॥ पाव जल में १॥ घण्टे तक भिगोकर मलकर छान लेना चाहिये। इसमें आधा छटाँक चूने का जल और एक काग़ज़ी नीबू का रस मिलाकर दिन में तीन-चार बार पीना चाहिये।

२—मोथा, सैन्धव नमक, आमरूल शाक, इनको आग पर गरम करके ठण्डा होने पर इनका रस निकालकर खाने से लाभ होता है।

३—लवंग, विट्लवण, मोरी, अजवायन इनको समान भाग लेकर नीबू के रस में बेर की गुठली के बराबर गोली बनाना चाहिये। इसके सेवन से लाभ होता है।

४—काग़ज़ी नीबू का रस विट्लवण या सैन्धव लवण के साथ अथवा कौड़ी-भस्म का सेवन करने से यथेष्ट उपकार होता है। काली हरड़, सोंठ, सेंधानमक की फाँकी गरम पानी से लेनी चाहिये।

६—हरड़ को सोंठ और सैंधव के साथ, शीतल जल के साथ खाना चाहिये।

७—सोंठ या जीरे को या हरड़ को गुड़ के साथ खाना चाहिये।

८—पिप्पली, सैंधव, बच इनके चूर्ण को शीतल जल के साथ पान करने से आमाजीर्ण नष्ट होता है।

९—हींग, त्रिकटु और सैंधव इनको पेट पर लेप करने से आराम होता है।

१०—किशमिश, हरीतकी इनको शर्करा और मधु के साथ लेप करने से विदग्धाजीर्ण को आराम होता है।

११—अजवायन तथा संचल नमक की फाँकी अजीर्ण तथा अफारे को मिटाती है।

शास्त्रीय औषधि—बज्रक्षार, अग्निकुमार, लवंगादिवटी, भास्कर-लवण, अग्नितुण्डीवटी, अग्निमुख-चूर्ण, बड़वानल-चूर्ण, अजीर्णकण्टक-रस।

अनार्य-चिकित्सा—भोजन से पूर्व या पीछे (भूख न लगने पर पहले, रस-शेषाजीर्ण में पीछे) एसिड हाइड्रोक्लोरिक डाइल्यूट, सोडाबाई कार्ब या सल्फो कार्ब्बनास का उपयोग करना चाहिये। एसिड नाइट्रोम्युटेरिक, टिंचर जैन्शन या कौलम्बा भी उपयोगी है। कैप्सीसाई, नैक्सवोमिका, पैपीन, स्प्रिट एमोनिया एरोमैटिक, चिरायता, ओयलम कैरोफलाई या मैन्था प्रिपेरेटा उत्तम है। प्रायः कटु तिक्त औषधि भोजन की क्षुधा को बढ़ाती है।

पथ्यापथ्य—सबसे प्रथम रोगी को लंघन कराना चाहिये। लंघन के पीछे गरम पानी या जौ का पानी अथवा सादा पानी विशेषरूप से देना चाहिये। पानी के देने से आमाशय, आंत्र आदि का प्रक्षालन हो जाता है। पीछे से नीबू का रस पानी में मिलाकर पीना चाहिये। रसशेषाजीर्ण में सोना उत्तम है, विष्टब्धाजीर्ण में पेट पर सेंक करना चाहिये। खाने के लिये हलका, सुपच भोजन करना चाहिये, जैसे—मूँग का पानी, कांजी, परवल, वृंताक, करेला, आँवला, पोदीना, सोंठ आदि तिक्त पदार्थ, जिनसे अग्नि प्रदीप्त हो।

यह स्मरण रखना चाहिये कि यह रोग प्रथम सुगमता से आराम हो जाता है; परन्तु पीछे से स्थायी रूप धारण कर लेता है, तब असाध्य या कृच्छ्रसाध्य हो जाता है।

पुरातन अजीर्ण

यह रोग मुख्यत: शारीरिक निर्बलता के कारण होता है, अथवा लगातार बहुत दिनों तक अमीरी और ऐय्याशी जीवन व्यतीत करने से, या लगातार बैठकर काम करने से, जिससे आंतों पर दबाव होता रहता है, यह रोग हो जाता है। व्यायाम का न करना, अपूर्ण या अशुद्ध वातायनवाले या भीड़वाले घरों में सोना, अशुद्ध वायु या अन्य कारण, जिनसे पाचन में विकार आजाय, इस रोग को उत्पन्न करते हैं। मस्तिष्क के ऊपर किसी प्रकार का दबाव, कार्य का अधिक होना भी पुरातन अजीर्ण को उत्पन्न कर देता है। तम्बाकू का अधिक सेवन करना, इस रोग में कारण बनता है। इसी प्रकार दाँतों के रोग, दूषित दाँत, पीव-युक्त मसूड़े भी पाचन-क्रिया को बिगाड़ देते हैं। पेट पर कसकर वस्त्र पहनना, जिससे यकृत, आंत्र या आमाशय पर दबाव रहे, पाचन-क्रिया में बाधा उत्पन्न कर देता है। स्त्रियों में यह रोग अधिकतर गर्भाशय-विकार के परिणाम-स्वरूप होता है। कृमियों के कारण भी रोग का जन्म हो जाता है।

लक्षण—पुरातन अजीर्ण में आमाशय, यकृत और आंत्रों में विकार आजाता है। रोगी का आमाशयिक रस बढ़ जाता है, या घट जाता है, अथवा उसके गुणों में अन्तर आजाता है। रोगी को खट्टे डकार आते रहते हैं। उसको शुष्क कास आता है, जिसका कारण काकवा का बढ़ना होता है। प्रातःकाल मुँह से लार का स्राव होता है अथवा वमन हो जाता है। रोगी को ऐसा प्रतीत होता रहता है कि उसका आमाशय फूल रहा है। लगातार आक्रमणों के कारण आमाशय की नाड़ियाँ भी विक्षुब्ध हो जाती हैं; जिसके कारण रोगी दर्द का अनुभव करता है। यह दर्द चुभता हुआ या दाह-युक्त होता है। भोजन के खाने से कुछ घट जाता है, रोगी को प्यास रहती है। यह इच्छा रोगी को अधिक खाने या पीने की ओर प्रवृत्त करती है। इसका परिणाम यह होता है कि रोगी का रोग बढ़ता जाता है। कौड़ी-प्रदेश पर दबाने से दर्द और चुभती हुई शूल रहती है। कन्धों में, पीठ में दर्द की लहर चलती प्रतीत होती है, विशेषत: जिन व्यक्तियों में यकृत की शिकायत रहती है। छाती में दर्द, हृदय की धड़कन आदि लक्षण हृदय-रोग का भ्रम करा देते हैं। मूत्र गरम, गाढ़ा, गँदला होता है। इसमें कुछ लाल निक्षेप भी

दिखाई देते हैं। ।मांस-पेशियों की क्रिया मंद पड़ जाती है। इससे आमाशय की पेशियों में भी संकोच घट।जाता है। इन सब कारणों से भोजन आमाशय में रुकने लगता है, जिससे इसमें विदाह उत्पन्न होना प्रारम्भ हो जाता है। इस विदग्धता के कारण इसमें से अण्डों के सड़ने की गन्ध आने लगती है। इस अधपचे भोजन का वमन भी हो जाता है। यह विदाध या अनपचा भोजन जब आंतों में पहुँचता है, तो उनमें विदाह उत्पन्न करता है, आंतों को फैला देता है, आंतों में वायु के भर जाने से दर्द उत्पन्न होता है और कभी-कभी अतिसार भी हो जाता है। जिह्वा किनारों पर से लाल और मध्य में मैली होती है।

चिकित्सा—इस रोग की चिकित्सा-औषधियों का मूल्य उतना नहीं है, जितना भोजन और स्वास्थ्य-सम्बन्धी नियमों का है। भोजन की राशि का निश्चय सबसे प्रथम करना चाहिये कि आमाशय कितने भोजन को ले सकता है। रोगी को चाहिये कि भोजन शनैः-शनैः चबाकर खाये और जबतक भोजन जीर्ण न हो जाय, दूसरी बार भोजन न करना चाहिये। दो भोजनों के बीच में कम से कम ६ घंटे का अन्तर होना आवश्यक है। आमाशय को अवश्य विश्राम मिलना चाहिये। भोजन से ठीक पूर्व या पीछे किसी भी प्रकार का शारीरिक या मानसिक श्रम नहीं करना चाहिये। आलू आदि वायुकारक वस्तुओं से तथा गरिष्ठ भोजनों से बचना चाहिये। शर्करा या निशास्ते का उपयोग यथासम्भव कम करना चाहिये। उत्तेजक या गरम वस्तुओं या बर्फ जैसी ठण्डी वस्तुओं से रोगी के आमाशय को बचाना चाहिये। चाय, कॉफी, या मद्य, मसाले ये सब वस्तुयें रोगी के लिये हानिकारक हैं। रोगी के आमाशय को पूर्ण विश्राम देना आवश्यक है, बिना भोजन के २४ घण्टे तक न तो कोई बच्चा ही मरता है, न कोई जवान व्यक्ति ही। रोग के नये आक्रमण में यदि प्रथम वमन दे दिया जाय, तो रोगी को बहुत कुछ आराम हो जाता है। यदि रोग आमाशय से आगे बढ़ गया है, तो विरेचन की आवश्यकता होती है। आमाशय का धोना इस रोग में अत्यन्त हितकर है। इसके लिये रोगी को पानी यथेष्ट मात्रा में पिलाना चाहिये।

स्वास्थ्य-सम्बन्धी चिकित्सा के लिये स्नान, व्यायाम, घूमना, खुला

वायु में जीवन व्यतीत करना उत्तम है। इन रोगियों के लिये चश्मों का पानी भी लाभदायक होता है, जैसे—विशीवाटर, एपैन्टा, स्पा, हैरोगेट आदि।

यूनानी चिकित्सा—१—जवारिश जरिश्क—लौंग, मस्तगी, बालछड़, प्रत्येक १½ माशे, अगर, तेजपात, ब्राह्मी, जनेव, नागरमोथा, दालचीनी प्रत्येक ३॥ माशे, छोटी इलायची के दाने, जरिश्क, गुलाब के फूल, गावजबाँ, प्रत्येक ७॥ माशे, श्वेत बूरा सबसे तिगुना ले चासनी बनाकर जवारिश बना लेना चाहिये। २—चार नीबू का रस, तेजपात, ब्राह्मी, तज, बालछड़, प्रत्येक ३॥ माशे, गुलाब के फूल, छोटी और बड़ी इलायची, प्रत्येक ७ माशे, सबसे तिगुनी शर्करा मिलाकर चटनी बना लेना चाहिये। ३—हरड़ का उपयोग नमक के साथ करना उत्तम है। ४—केसर, सोंठ, पिप्पली, जायफल, प्रत्येक ३॥ माशे; बालछड़, बड़ी इलायची, विषवास, जावित्री प्रत्येक ७ माशे; लौंग, मस्तगी प्रत्येक १०॥ माशे, इनको शहद में मिलाकर जवारिश बनाये। इसको जवारिश ऊद कहते हैं। निर्बल आमाशय को शक्ति देने के लिये एक उत्तम औषधि है। रोगियों के लिये कुछ निर्देश—

(१) गरम चाय या कॉफी अथवा सोडा, लैमन, बिमटो आदि कोल्ड या हॉट ड्रिंक से सर्वथा बचना चाहिये।

(२) बिस्कुट, चाकलेट, मिठाई या अन्य बारीक मैदेवाली वस्तुओं को छोड़ देना चाहिये।

(३) भोजन के साथ पानी या द्रव भोजन सर्वथा नहीं लेना चाहिये।

(४) भोजन का समय निश्चित रखना चाहिये। उत्तम है कि दो समय ही भोजन किया जाय।

(५) भोजन सख्त होना चाहिये, जिसको चबाने की आवश्यकता प्रतीत हो।

(६) तम्बाकू, मद्य आदि वस्तुओं को छोड़ देना चाहिये।

(७) भोजन के पीछे घूमना चाहिये।

(८) प्रातःकाल उठते ही एक गिलास पानी पीना चाहिये। रात्रि का भोजन सोने से ३ या ४ घंटे पहले कर लेना चाहिये।

(९) पानी का उपयोग यथेष्ट करना चाहिये।

मलबंध

आंतों में अवरोध या रुकावट होने की अभिरुचि कई व्यक्तियों में (विशेषत: युवतियों में) होती है। इस अवरोध के कई कारण हैं, जिनका सम्बन्ध यकृत या आंतों के विकार से होता है। साधारणत: २४ घंटे में एक बार मल-त्याग की अभिरुचि होनी आवश्यक है। यदि इस तरह से न हो, तो अस्वास्थ्य के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। मलबन्ध के लिये औषधि-चिकित्सा उपयोगी नहीं होती। इसके लिये व्यायाम, फलों का सेवन, पानी का उपयोग लाभदायक है।

यकृत की खराबी से जब मलबन्ध होता है, तब यकृत की शोथ के थोड़े या बहुत लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। इसकी चिकित्सा भी उसी प्रकार की है।

सूक्ष्मांत्रों के विकार के कारण जब मलबन्ध हो, उस समय 'मल' की राशि साधारण होती है। मल शुष्क, रंग में फीका जबकि यकृत में शोथ हो। शिर के पिछले भाग में मन्द दर्द रहता है। जिह्वा किनारों पर और आगे से लाल दिखाई देती है। मुँह लिसलिसा रहता है, काम करने में अनिच्छा, भोजन में अरुचि, थोड़ा या बहुत आध्मान और प्राय: मीठा दर्द रहता है। यह रूप प्राय: वहाँ मिलती हैं, जहाँ मलेरिया विशेषत: होता है। इन रोगियों को विरेचन अधिक लाभ नहीं करता।

पानी का उपयोग अधिक मात्रा में करना चाहिये। प्रात:काल उठते ही गरम या ठण्डे पानी का एक गिलास पीना लाभदायक है। सेंधा नमक या सोडा सल्फ २ ड्राम पानी में प्रात: पीना भी अच्छा है। एपैन्टा वाटर का उपयोग करना सबसे उत्तम है। फलों का खाना भी उत्तम है। नियमित व्यायाम, घूमना इस रोग को शान्त करते हैं। वायुकारक सब्जियाँ इस रोग में हानिकारक हैं। एरण्ड तैल, सनाय, कास्करा सैगरेटा का उपयोग उत्तम है।

जिस समय वृहदांत्रों में दोष होता है, उस समय जिह्वा मैली, भूरी, श्वास दुर्गन्धि-युक्त, चेहरा कुछ शोथ-युक्त, और कभी-कभी कामला भी होता है। समय-समय पर मीठा दर्द होता है। इन रोगियों में अर्श का होना प्राय:

होता है। जिस समय मल प्रथम काला आता है, उस समय प्रथम भाग बहुत कड़ा होता है और पिछला भाग बहुत नर्म होता है। कई बार कड़े मल के कारण आँतों में विक्षोभ होकर अतिसार आरम्भ हो जाता है, और इस अतिसार का भ्रम हो जाने से स्तम्भक औषधि अधिक विकार उत्पन्न कर देती है।

अन्य कारण—१—मल-मूत्र या अपान वायु के रोकने से यह रोग उत्पन्न होता है।

२—आँतों के किसी भाग में संकोच हो जाने से दस्त साफ़ नहीं आता। यह सङ्कोच स्वयं हो या आँतों के बाहर के दबाव से हो, यथा गर्भाशय में गर्भ के बढ़ने से या प्लीहा के बढ़ने पर मलबन्ध हो जाता है।

३—वृद्धावस्था के कारण या अन्य कारणों से शरीर में निर्बलता आने से आँतों के स्नायु भी शिथिल हो जायँ, जिससे आँतों की जल-तरङ्ग-गति मन्द पड़ जाय। इस गति के मन्द होने से मल की गाँठें वहाँ रुक जाती हैं, अफारा चढ़ जाता है।

४—लगातार एक स्थान पर एक आसन से बैठे रहने से भी मलबन्ध हो जाता है।

५—दारू और तम्बाकू के खाने से मलबन्ध हो जाता है।

उपाय—साधारणतः कभी अचानक मिथ्या आहार-विहार से यदि मलबन्ध हो जाय, तो बादाम के तेल में अमलतास का गूदा मिलाकर, या निशोथ के चूर्ण को शर्करा के शरबत के साथ, या त्रिफला, सनाय, जैलप, विलायती नमक अथवा पञ्चसकार का चूर्ण लेना चाहिये। साधारणतः मलावरोध की चिकित्सा के लिये निम्न विधियाँ उत्तम हैं—

(१) सलमूनिया दो दिरम, बड़ी इलायची, छोटी इलायची, सोंठ, दालचीनी, तज, लौंग, काली मिर्च नागमुश्क, प्रत्येक ५ दिरम, लालखाँड़, निशोथ प्रत्येक १० मिस्काल, शहद आवश्यकतानुसार मिलाना चाहिये।

(२) रेवतचीनी, स्वर्णमुखी, कालादाना, विडङ्ग समभाग लेकर दुगुना गुलकन्द मिलाकर बेर के समान गोली बनाकर खाना चाहिये।

(३) साधारणतः दूध का लगातार अभ्यास और पानी पीकर घूमना या व्यायाम करना; विशेषतः आँतों का व्यायाम करना उत्तम है। बड़ी हरड़, विडलवण, मुसब्बर इनको रात्रि में सेवन करने से मल साफ होता है।

(४) मलावरोध की चिकित्सा में कभी भी तीव्र विरेचक औषधि नहीं देनी चाहिये। गुलाब के फूल, बनफसा, मकोय, नीलोफर, ककड़ी, खीरे के बीज, खतमी के बीज, बाबूना, भूसी, जौ प्रत्येक ७ दिरम; उन्नाब १० दाने लिसोड़ा २० दाने, इन सबको उबालकर छान ले। इसमें अमलतास का गूदा मिलाकर वस्ति देना चाहिये।

(५) रेशाखतमी, शीरेखिस्त, सौंफ, मुनक्का, अञ्जीर, सनाय का उपयोग करना चाहिये।

(६) आर्य-चिकित्सा में—कास्करा सैगरैटा, लिक्विड पैराफीन, (एगोल, पेट्रोगोल, कैलोल आदि पेटेन्ट वस्तुयें) एरण्डतैल का उपयोग सुगमता से किया जा सकता है।

शास्त्रीय औषधियों में—हरीतकी खंड, गुलकन्द त्रिवृतादि अवलेह, इत्रिफल उत्तम है। कालीद्राक्षा और सनाय को पीसकर गोली बना लेनी चाहिये।

एनिमा—लोगों की यह मान्यता है कि मलबन्ध के रोगी में वस्ति का उपयोग सदा ही उत्तम है; परन्तु इसकी आदत पड़ने पर आँतें निर्बल हो जाती हैं। यदि आवश्यक ही हो, तो शीत पानी की वस्ति लेना चाहिये। परन्तु उत्तम यही है कि पानी का उपयोग खुले रूप में करके आँतों को व्यायाम-द्वारा उत्तेजित किया जाय।

पित्त-प्रकृति के व्यक्तियों का कोष्ट बहुत मृदु होता है। उनमें दूध, मुनक्का, एरण्ड-तेल से भी विरेचन हो जाता है। कफ-प्रकृति के व्यक्तियों को निशोथ, अमलतास, सनाय देना चाहिये और वात-प्रकृतिवाले क्रूर-कोष्ठ व्यक्तियों में दन्ती जयफल शुद्ध करके दिया जा सकता है।

पथ्य—इस रोग की चिकित्सा पथ्य पर निर्भर है। छान, फलों का रस, दूध का उपयोग विशेष करना चाहिये। जिन वस्तुओं से आँतों में

विक्षोभ हो, वे वस्तुयें इस रोग में लाभदायक हैं। पानी में खूब भिगोई हुई रेत भी खाने से मलावरोध नष्ट हो जाता है। चाय या कॉफी का उपयोग नहीं करना चाहिये। नियमित रूप में मल-त्याग करने जाना चाहिये। भूसी की रोटी उत्तम है।

आध्मान (अफारा)

यह कोई स्वतन्त्र रोग नहीं, परन्तु आँतों में वायु के रुकने से उत्पन्न हो जाता है। इसके कारण मल और मूत्र दोनों रुक जाते हैं। मल-मूत्र आदि के रुकने से और वायु के कारण पेट के फूल जाने से श्वास में कठिनता हो जाती है। पेट के ऊपर टकोरने से ढोल-जैसी आवाज़ आती है। गड़गड़ाहट की आवाज़ बराबर सुनाई देती है। श्वास में दुर्गंधि होती है, श्वास मैला, दुर्गन्धि-युक्त होता है। पेट में दर्द रहता है। वायु के निकलने पर रोगी को आराम मिलता है।

उपाय—(१) सोरा, आँवला, हल्दी के पत्ते, काले तिल इनको पीसकर नाभि के चारोंओर लेप करना चाहिये।

(२) हींग, सोरा, अम्लवेतस, अजवायन, सैंधव, मोरी इनको पीसकर ४ या ५ रत्ती की गोली बनाकर नीबू के रस के साथ खाना चाहिये।

(३) १ छटाँक जल में १० आना सोरा और १ तोला शुष्क आमलकी १ घण्टे तक भिगोकर पीछे से छानकर पान करने से पेट की वायु शान्ति हो जाती है।

(४) हींग या तारपीन का तेल मलना चाहिये। इनकी वस्ति देनी चाहिये।

(५) मैनफल, पिप्पली, कूट, बच, श्वेत सरसों इन सबकी गुड़ में या दूध में वस्ति बनाकर गुदा में रखनी चाहिये। ग्लिसरीन की पिचकारी भी लाभप्रद है। साबुन की बत्ती भी गुदा में रखने से लाभ होता है।

(६) निशोथ २ भाग, पिप्पली ४ भाग, हरीतकी ५ भाग, गुड़ सबके समान, इनको ५ माशे की मात्रा में सेवन करने से या बच, हरीतकी, चीता,

यवक्षार, पिप्पली, अतीस, कूठ इनके चूर्ण को गरम पानी में सेवन करने से लाभ होता है।

(७) निशोथ, इन्द्रायन, नमक, लाल शक्कर, सुहागा, राई इन सबको समान भाग लेकर, चार अंगुल बत्ती बनाकर गुदा में रखना चाहिये। अथवा सुहागा, गुग्गुल, जावशीर, सोंठ, नमक, तितली, इस्पंज के बीज, एलुवा इनकी बत्ती गुदा में रखनी चाहिये। सोये का तेल या राई का तेल नाभि पर लेप करना चाहिये।

शास्त्रीय औषधि—वज्रक्षार, नाराच चूर्ण, शंखवटी, भास्कर-लवण, इच्छाभेदी, अभयादि मोदक।

अनार्य-चिकित्सा—एलोयन, कोलोसिन्थ, पिल एलोज, एटएसेफिटेडा, स्कैमैनी कालादाना, कन्फैक्शन सलफर, कन्फैक्शन सनाय, कास्करा।

शूल

साधारणत: शूल तीन प्रकार का होता है—१—जिसका सम्बन्ध आँतों मे होता है। २—जिसका सम्बन्ध यकृत से हो। ३—जिसका सम्बन्ध मूत्र-पिण्ड या वृक्कों से हो। यहाँ पर प्रथम प्रकार के शूल से अभिप्रेत है। इस शूल का कारण वात-नाड़ियों का विक्षोभ होना है, जिसके कारण मांस-पेशियों में इतने जोर के आकुञ्चन होने लगते हैं कि रोगी उनको सहन नहीं कर सकता।

कारण—(१) कठिन, पचने में दुस्तर या कच्ची खुराक, फल आदि खाने से, या बीज आदि रुकने से पेट में वायु कुपित होकर शूल उत्पन्न कर देती है। (२) चिरकालीन मलबन्ध। (३) ठण्डी हवा का या ठण्डे पानी का स्पर्श, जिससे वायु कुपित हो जाय। (४) सीसक में काम करनेवाले व्यक्तियों में तथा वात-प्रकृतिवाली स्त्रियों में मिलता है।

लक्षण—शूल का स्थान प्राय: नाभि के चारोंओर होता है। रोगी टाँगों को मोड़कर कोष्ठ पर लाता है, जिससे मांस-पेशियों के ढीला होने से दर्द कम हो जाय। दर्द के स्थान पर दबाने से रोगी को आराम प्रतीत होता है। दर्द रह-रहकर होता है। इससे स्पष्ट है कि जिस समय आँतों में जल-तरंग-गति चलती है, उस समय रोगी को दर्द होता है। यदि अन्य

कारण से यथा आंत्र का व्रण या विद्रधि से शूल होगा, तो दबाने से दर्द बढ़ जाता है। रोगी पेट को दबाकर लेटता है, या हाथों से पकड़े रहता है। इसके साथ हल्का ज्वर रहता है।

आयुर्वेद-शास्त्र में शूल-रोग को कई भागों में विभक्त किया है, जैसे—

१—वात-शूल—इसमें मुख्य दोष वायु का होता है। हृदय, पार्श्व, पीठ, पेड़ू में शूल का वेग होता है, और रुक जाता है; फिर होता है, और फिर रुक जाता है। मल और मूत्र रुक जाते हैं, दर्द का स्वभाव इस प्रकार का होता है, मानों कुछ चुभ रहा है। सेक, दबाना, उष्ण एवं स्निग्ध उपचार से शान्ति हो जाती है।

उपाय—सोंठ और एरण्ड-तेल का काढ़ा हींग और सोंचल नमक के साथ; छोटी हरड़, अतीस, हींग, संचल, बच, इन्द्रजौ इनका चूर्ण पानी में, अजवायन, हींग, सैन्धव लवण, यवक्षार, संचल, हरीतकी इनका चूर्ण सुरामण्ड के साथ पान करना चाहिये।

२—पित्त-शूल—इसका स्थान यकृत-प्रदेश और नाभि है। तृषा, मोह, दाह, पीड़ा, स्वेद, मूर्च्छा, भ्रम होता है। आधीरात में या मध्याह्न में अन्न का विदाह होता है। इसलिये अर्धरात्रि में दर्द बढ़ता है।

उपाय—प्रथम वमन कराके पीछे से विरेचन देना चाहिये। आँवले का चूर्ण शहद में चटाना; हरड़ (छोटी) का चूर्ण घी और गुड़ में; त्रिफला तथा अमलतास का काढ़ा शर्करा तथा मधु के साथ; कुटकी आधे से १ तोला लेकर, इसके काढ़े में मधु मिलाकर, प्रातःकाल मधु के साथ शतावरी रस, आँवला या विदारीकन्द अथवा द्राक्षा-रस में शर्करा मिलाकर पीने से मुलहठी के काढ़े में एरण्ड-तेल मिलाकर पान करने से पित्त-शूल शान्त होता है।

३—**कफ-शूल**—स्थान—आमाशय—कास, ग्लानि, अरुचि, मुँह में लार का भरना, गले में भारीपन, कोष्ठ में स्तब्धता आदि लक्षण होते हैं।

उपाय—लंघन अवश्य करना चाहिये, हरड़ छोटी, चित्रकमूल, कटुकी, बच इनका चूर्ण गोमूत्र में, सेंधानमक, विडलवण, काचलवण, हींग,

पिप्पली, पिप्पलीमूल, चविका, चित्रक और सोंठ का चूर्ण गरम पानी के साथ पंचकोल-सिद्ध यवागू; मोथा, बच, कटुकी, हरीतकी और मुर्वा इनको पीसकर कांजी या गोमूत्र के साथ दशमूल काढ़े को यवक्षार-सहित देने से लाभ होता है।

४—**सन्निपात-शूल**—इसमें तीनों दोषों के लक्षण मिश्रित होते हैं।

उपाय—मण्डूर-भस्म, त्रिफला-चूर्ण समान भाग, इनको घी और शहद के साथ, शंख-भस्म, सेंधव, त्रिकटु, हींग इनको गरम पानी के साथ सेवन करने से सन्निपात-शूल में आराम होता है।

५—**आम-शूल**—गुड़गुड़ शब्द, उल्टी, शरीर में शिथिलता; कार्य करने में अरुचि का होना, पेट का फुलाव तथा कफ के अन्य लक्षण होते हैं।

उपाय—(१)अजवायन, सैंधव, हरड़ छोटी तथा सोंठ का चूर्ण; (२) हींग, सेंधानमक तथा विडलवण; (३) एरण्ड-मूल ६ भाग, लहसुन ८ भाग, हींग १ भाग, सेंधानमक ३ भाग मिलाकर दो-तीन तोला खाना; (४) कफ-दोष की चिकित्सा करनी चाहिये।

६, ७, ८—**द्वन्द्वज-शूल**—दो-दो दोष मिलकर जब शूल उत्पन्न करते हैं, तब उसको द्वन्द्वज-शूल कहते हैं। इसका स्थान, कफवात में पेड़ू, हृदय, कण्ठ और पार्श्व में शूल, कफ, पित्त में कुक्षि, हृदय, नाभि तथा पार्श्व में, वात-पित्त में, दाह तथा सख्त शूल होता है।

उपाय—लहसुन का कल्क प्रातःकाल खाने से वात-कफ-शूल, द्राक्षा और वासा का काढ़ा पीने से कफ-पित्त-शूल, परवल, त्रिफला, नीमछाल इनका काढ़ा; मधु के साथ पीने से पित्त श्लेष्म-जन्य-शूल नष्ट होता है।

९—**परिणाम-शूल**—भुक्त अन्न के पचने के पीछे जो शूल उत्पन्न होता है, उसको परिणाम-शूल कहते हैं। स्थान आंत्र होते हैं।

उपाय १—लंघन, फिर वमन और फिर विरेचन देना चाहिये। २—सोंठ, तिल तथा गुड़ को पीसकर गाय के दूध में ७ दिन तक पीना चाहिये। ३—शंख-भस्म पानी में पीना चाहिये। ४—मैनफल, कटुकी को पानी में

पीसकर नाभि पर लेप करना चाहिये। ५—छोटी पिप्पली की भस्म पानी में पीना चाहिये। ६—पिप्पली के काढ़े में बना हुआ घी खाकर दूध पीना चाहिये। ७—लोह-चूर्ण और त्रिफला-चूर्ण को घी और मधु के साथ। पानी-वाले नारियल में सेंधानमक भरकर, उसका मुँह बन्द करके, ऊपर से मिट्टी का लेप करके अग्नि में पकाना चाहिये। पीछे से नारियल को पिप्पली-चूर्ण में मिलाकर खाने से परिणाम-शूल का अवश्य आराम होता है। ८—पिप्पली, हरीतकी और लोह-चूर्ण या पिप्पली के स्थान पर सोंठ मिलाकर खाने से भी आराम होता है।

१०—**अन्नद्रव-शूल**—१—भुक्त द्रव्य के परिपाक होने पर, या परिपाक होने के समय अथवा अपक्वावस्था में जो दर्द उत्पन्न होता है, उसको अन्न-द्रव-शूल कहते हैं। इसकी शान्ति के लिये रोगी को वमन और विरेचन देना चाहिये। २—आमलकी चूर्ण लोह-भस्म के साथ या मुलहठी के चूर्ण के साथ शहद में चटाना चाहिये। ३—दशमूल-काढ़े के साथ हींग, सोंचल, हरीतकी, विडंग, सेंधव का चूर्ण देना चाहिये। ४—हींग, त्रिकटु, कुष्ठ, जौखार, सेंधव इनका चूर्ण बिजौरे नीबू के रस में मिलाकर पान करने से शूल नष्ट होता है।

सामान्य चिकित्सा—१—सेंक—साधारणत: सब प्रकार के शूल सेंक, उष्ण परिसेक करने से बैठ जाते हैं। इसके लिये गरम पानी का सेंक तारपीन के तेल के साथ करना उत्तम है। २—आँतों को साफ़ करने के लिये तथा अपक्व भोजन को बाहर करने के लिये विरेचन का देना उत्तम है। विरेचन इस प्रकार का होना चाहिये, जो आँतों में तीव्र मरोड़ा उत्पन्न न करे, अपितु वात का शमन करनेवाला हो। इसके लिये एरण्ड-तेल रास्नासप्तक काढ़े के साथ देना सबसे उत्तम है। ३—वातहर लेप नाभि पर तथा उदर के अन्य भागों पर करना चाहिये। अलसी के बीज १०॥ माशे, तरजूफा ७ माशे, इनको मिट्टी के तेल में मिलाकर लेप करना चाहिये। भाँग के बीज की राख, दालचीनी, सोंठ, इनको शहद में मिलाकर, मैनफल को कांजी में पीसकर लेप करने से, देवदारु, श्वेत बच, कुष्ठ, सोया, हींग, सेंधव, इनको कांजी में पीसकर गरम करके लेप करना चाहिये। बिल्वमूल, एरण्ड-मूल, चीतामूल, सोंठ और हींग तथा सेंधव इनका प्रलेप भी उपकारी है।

४—सोंठ और एरण्डमूल के काढ़े में हींग और सोंचल नमक मिलाकर पान करने से; सोंठ, एरण्डमूल और जौ इनके काढ़े में हींग और पुष्करमूल का चूर्ण मिलाकर पान करने से; हींग, अम्लवेतस, सोंठ, पिप्पली, मिर्च अजवायन, सैंधव, संचल और बिड़लवण इनको चूर्ण करके बिजौरे नीबू के रस में गोली बनाकर सेवन करने से; सोंठ-चूर्ण आधा तोला, हींग १ तोला, केशर आधा तोला, जौखार २ तोला, शङ्ख-भस्म ४ तोला, निशोथ-चूर्ण ३ तोला, इनको आधी छटाँक कुचले का हिमकषाय (कुचले को पानी में २४ घंटे भिगोकर रखने से बनता है) मिलाकर ४ रत्ती की गोली बनानी चाहिये। यह गोली गरम पानी से सायं-प्रातः खानी चाहिये। अपामार्ग-क्षार १ तोला, हरिण-शृङ्ग-भस्म १ तोला, हींग-भस्म १ तोला, लोह-भस्म १ तोला, निशोथ-चूर्ण २ तोला, इमली-क्षार १ भाग, इनको ४ आने की मात्रा में करूर-जल के साथ खाना चाहिये। ५—बस्ति का उपयोग करना उत्तम है। तारपीन के तेल को बस्ति भी उत्तम है।

मकोय का अर्क, गुलकन्द के साथ लेना उत्तम है। दर्द बहुत हो, तो गुलकन्द में मस्तगी और अगर आधा माशा मिला लेना चाहिये।

शास्त्रीय औषधि—शंखवटी, धात्री-लौह, नारिकेल-खण्ड, आमलकी खंड और हरीतकी-खंड।

पथ्य—वमन, स्वेद, सेंक, लंघन, निद्रा, रेचन, पाचन उत्तम है। क्षार तथा कटुरस के पदार्थ एवं हींग, नमक, लहसुन, एरंड आदि वस्तुयें पथ्य हैं। रोगी को इस प्रकार का भोजन देना चाहिये, जिससे शरीर में वायु का प्रकोप न हो।

गुल्म

यह कोई स्वतन्त्र रोग नहीं है। इस रोग का कारण वायु का रक्त-कोष्ठ में रुक जाना है। वायु के कोष्ठ में रुक जाने से रोगी को पेट फूलने का आभास होता है। आर्य-चिकित्सा में इस रोग को पृथक् माना गया है। इसके पाँच भेद हैं—यथा वात-गुल्म, पित्त-गुल्म, कफ-गुल्म, त्रिदोषज-गुल्म और रक्त-गुल्म। इनमें पाँचवें प्रकार का रक्त-गुल्म स्त्रियों ही में मिलता

है। जब किसी कारण से आर्त्तव का रक्त रुक जाता है, तब वह गर्भाशय ही में एकत्रित होकर गुल्म-रोग उत्पन्न करता है। इसके अतिरिक्त जो स्त्रियाँ संतान के लिये लालायित रहती हैं, उनमे रक्त रुक जाता है। उनको यह भाव होने लगता है कि उनको गर्भ है। परन्तु यदि इन स्त्रियों को क्लोरोफार्म या अन्य वात-नाशक औषधि सुँघाकर परीक्षा करें, तो सत्यता का स्पष्टीकरण हो जाता है। सब प्रकार के गुल्मों में वायु ही कारण है। और इसी कारण यह रोग वातिक प्रकृति की स्त्रियों में बहुत मिलता है।

कारण—प्राय: वे ही है, जो उदावर्त्त अथवा शूल के हैं। वायु करनेवाली वस्तुओं का खाना, मलबन्ध का रहना तथा आलस्यपन, भोजन का भलीप्रकार जीर्ण न होना इत्यादि इस रोग की उत्पत्ति में मुख्य कारण होते हैं।

लक्षण—खट्टे या खाली उद्गारों का आना, मलबन्ध, आँतों में आवाज़ का होना, पेट का फूलना, आँतों में दर्द, मन्दाग्नि होती है। जिस गुल्म में अरुचि, अशक्ति, हृदय में पीड़ा, कास, ज्वर, श्वास, वमन, तृषा, अतिसार, सरदी, नाभि, हाथ, पाँव के ऊपर शोथ आदि लक्षण हों, वह गुल्म असाध्य माना जाता है।

वात-गुल्म—रुक्ष और विषम अन्नपान, मल का अवरोध, शोक से हृदय पर चोट पहुँचना, विरेचन के कारण शरीर के बल का क्षय, उपवास ये सब कारण वात-गुल्म को उत्पन्न करते हैं।

लक्षण—भिन्न-भिन्न स्थानों पर दर्द, मल और वायु का अवरोध, गले में शोथ, शरीर पर कालापन, शीत-ज्वर, भोजन के पचने के पीछे दर्द का घट जाना, ये सब चिन्ह हैं।

उपाय—१—दूध और हरीतकी के चूर्ण के साथ एरंड-तैल; २—एरंड-तैल को वारुणी-मंड के साथ; ३—सोंठ, तिल, गुड़, इनको पीस-कर दूध के साथ; ४—सर्जक्षार २ माशे, कूठ २ माशे, केतकीक्षार ४ माशे। इनको एरण्ड-तेल के साथ; ५—लहसुनादि-चूर्ण का प्रयोग करना उत्तम है।

पित्त-गुल्म—तीक्ष्ण, कटु, उष्ण, विदाही, रुक्ष भोजन, क्रोध, मद्यपान, धूप-सेवन आदि कारणों से यह रोग उत्पन्न होता है।

लक्षण—प्यास, ज्वर, ग्लानि, शरीर पर लाल-लाल धब्बे, पाचन-क्रिया के समय दर्द का अधिक होना, स्वेद तथा दाह होता है।

उपाय—१—त्रिफला-काढ़े के साथ निशोथ-चूर्ण अथवा द्राक्षा के साथ। २—गुड़ के साथ हरीतकी चूर्ण। ३—आमलकी काढ़े में सिद्ध किया हुआ घी खाने से। ४—कपीला का चूर्ण मधु में खाना चाहिये। ५—पित्त-गुल्म में रेचन और घृतपान करना सर्वोत्तम है।

कफ-गुल्म—शीत, भारी, स्निग्ध अन्नपान, आलस्य, दिन में सोना आदि कफ को बढ़ानेवाले कारणों से कफ-गुल्म होता है। शरीर पर स्निग्धता या चिकनापन रहता है। शीत के साथ ज्वर आता है, ग्लानि, कास, अरुचि, शरीर में भारीपन, अग्नि की मन्दता तथा दर्द थोड़ा होता है।

उपाय—१—वमन, उपवास, स्वेद, सेंक; २—यवक्षार, त्रिकटु, कल्क के साथ घृत-पाक करके; ३—अजवायन, विड्लवण तक्र में पीना चाहिये। ४—तिल, एरण्ड, अलसी के बीज और सरसों को पीसकर उदर पर लेप करना चाहिये। वात-गुल्म के उपाय इस रोग में लाभदायक हैं।

रक्त-गुल्म—यह स्त्रियों ही का रोग है, इसलिये स्त्री-चिकित्सा-प्रकरण में देखना चाहिये।

गुल्म के सामान्य उपाय—१—३ माशे सर्जक्षार और ३ माशे गुड़ मिलाकर खाना चाहिये। २—पलाश, थोर, अपामार्ग, आक, इमली, जौ इन वस्तुओं का क्षार गुल्म-रोग को शान्त करता है। ३—३ माशे सुराक्षार और ३ माशे आर्द्रक मिलाकर खाना चाहिये। ४—घीक्वार के गूदे में सोंठ, मिर्च, पिप्पली, हरड़ और सेंधानमक मिलाकर खाना चाहिये। ५—सीप की भस्म गुड़ के साथ या शङ्ख की भस्म नीबू के रस में, अथवा हींग को घी में भूनकर खाना चाहिये। ६—अजवायन, हींग, सैन्धव, यवक्षार, संचल, हरीतकी इनके चूर्ण को गरम पानी से खाना चाहिये। ७—पिप्पली, पिप्पलीमूल, चित्रक, काला जीरा और सैन्धव इनके चूर्ण को सुरा के साथ पान करना चाहिये।

शास्त्रीय औषधि—हिंग्वादि चूर्ण अभयालवण, काँकायन गुटिका, गुल्म-कालानल।

पथ्य—स्नेह, स्वेद-विरेचन, वस्ति, लहसुन, कच्ची मूली, तक्र, खजूर अनार, आँवला, यवक्षार, त्रिकटु हींग एवं उष्ण-वीर्य, पुष्टिकारक, लघु तथा।

अग्निदीपक पदार्थ पथ्य है। वायुकारक तथा विदाह उत्पन्न करनेवाले, गरिष्ठ भोजन सब अपथ्य हैं।

अतिसार

अतिसार को उत्पन्न करनेवाले बहुत-से कारण हैं। अजीर्ण और अतिसार के कारण प्रायः आपस में बहुत कुछ मिलते हैं। अतिशय और अयोग्य भोजन, कच्चे फल, विदाही पदार्थों का सेवन, दूषित जलवायु, क्रिमियों के कारण, मानसिक उद्विग्नता या विक्षोभ से, अतिशय शीत-क्रिया, ऋतुओं के फेरफार से, अतिसार-रोग की उत्पत्ति होती है।

लक्षण—बार-बार पतला दस्त होता है। मुँह से दुर्गन्धि आती है, भोजन में अरुचि, जीभ के ऊपर सफेद अथवा पीला मैल, पेट में वायु का गड़गड़ाहट होना, शूल, खट्टा या वायु-जन्य उद्‌गार होता है। अतिसार और प्रवाहिका या मरोड़े में बहुत भेद होता है। अतिसार में मल पतला, द्रव पानी की भाँति या अर्ध द्रवयुक्त आता है। मरोड़े में मल साफ़ नहीं आता और साथ में पेट के अन्दर ऐंठन या दर्द का अनुभव होता है। मल के साथ वायु भी निकलती है।

अतिसार के भेद—अनार्य-चिकित्सा में अतिसार का वर्गीकरण चार प्रकार से किया है। जैसे—१—विक्षोभ-जन्य अतिसार। २—वायु या ऋतु-जन्य अतिसार। ३—पार्वतीय अतिसार, जो पहाड़ पर हो जाता है। ४—शिशुओं का अतिसार।

आर्य-चिकित्सा में अतिसार छः प्रकार का गिना गया है। जैसे—वात-जन्य, पित्त-जन्य, कफ-जन्य, रक्त-जन्य, आम-जन्य और शोक-जन्य अतिसार। वायु-जन्य अतिसार में मल का रङ्ग काला, पित्त-जन्य अतिसार में पीला, कफ-जन्य तथा आम-जन्य अतिसार में श्वेत तथा श्लेष्मा-मिश्रित चिकना होता है। रक्तातिसार में रक्त आता है।

अतिसार सामान्यतः दो प्रकार का होता है, १—जिसमें अपक्व मल बाहर आता है। इस प्रकार के अतिसार को प्रकृति स्वयं उत्पन्न करती है। इसका अभिप्राय यह है कि आँतों का मल या विक्षोभक वस्तु

(अनपचा भोजन) आँतों से बाहर हो जाय। इस मल को यदि पानी में डाला जाय, तो वह डूब जाता है। इस अवस्था में अफीम आदि स्तम्भक औषधि दी जाय, तो वह आध्मान या अफारा उत्पन्न कर देती है। स्तम्भक गुण के कारण वह प्रकृति के विरुद्ध कार्य करके वायु को कुपित कर देती है। २—दूसरी प्रकार का अतिसार वह है, जिसमें पका हुआ मल बाहर आता है। अर्थात यह मल पानी में डालने से तैरता है। इस प्रकार के अतिसार को स्तम्भक औषधि से रोकने में कुछ हानि नहीं।

उपाय—अतिसार की सबसे प्रथम चिकित्सा लंघन है। लङ्घन से पाचन-अवयवों का कार्य कम हो जाता है। वह आमाशय और आंत्र के पदार्थ को बाहर करने का यत्न करते हैं। इसके बाहर होने से अतिसार स्वयं शान्त हो जाता है। लङ्घन करने से रोगी को प्यास बहुत लगती है। इसको शान्त करने के लिये धनिया तथा नेत्रवाला का काढ़ा अथवा धान्यपंचक काढ़ा, षडङ्गपानीय काढ़ा पीना चाहिये। लङ्घन के पीछे प्रवाही, हलका भोजन देना चाहिये, और आम को पकाने के लिये दीपन, पाचन तथा स्तम्भन औषधि देनी चाहिये।

वात-जन्य अतिसार में—१—करंज, पिप्पली, सोंठ, सौंफ, धनिया तथा हरीतकी का काढ़ा; २—बच, अतीस, इन्द्रजौ और मोथे का काढ़ा; ३—बृहत या स्वल्प पंचमूल काढ़ा अथवा बला, सोंठ, धनिया, बिल्व और कमल इनका काढ़ा; ४—हरड़, देवदारु, बच, सोंठ, अतिविषा तथा गिलोय का काढ़ा; ५—अफीम और केशर एक-एक चावल शहद में देना चाहिये। पथ्य दही और चावल।

पित्त-जन्य अतिसार—१—बिल्व का गर्भ, इन्द्रजौ, मोथा, उशीर, अतीस इनका काढ़ा। २—अतीस, कुडाछाल, इन्द्र जौ का चूर्ण चावलों के धोवन में शहद के साथ। ३—चिरायता, मोथा, इन्द्रजौ और रसाञ्जन, इनका चूर्ण तण्डुलोदक के साथ। ४—मुलहट्ठी, कायफल, लोध्र अथवा अनार के कच्चे फल और वल्कल का चूर्ण मधु के साथ पान करना चाहिये।

कफ-जन्य अतिसार—१—पाठा, बच, सोंठ, पिप्पली, मिर्च, कूठ, कुटकी, इनका चूर्ण गरम पानी से। २—हरीतकी, पाठा, बच, कूठ, चित्रक, कुटकी, इनका काढ़ा गरम पानी में। ३—हरड़, दारुहल्दी,

बच, मोथा, सोंठ, अतीस, इनका काढ़ा। ४—वायविडंग, बच, बिल्व, पाठा, धनिया, कायफल का काढ़ा। ५—हींग, सौवर्चल नमक, सोंठ, पिप्पली, मिर्च, हरीतकी, अतीस और बच इनके चूर्ण को गरम पानी के साथ पीना चाहिये।

आमातिसार—लंघन करना चाहिये। १—सोंठ, धनिया, मुस्ता, बालक और बिल्व इस धान्य-पंचक को पीना चाहिये। २—एरण्ड-तैल को गोंद के साथ या दूध के साथ। ३—मैगनेशियम सल्फेट को थोड़ी मात्रा में। ४—गरम पानी और घी। ५—सोंठ, सौंफ, खसखस तथा शर्करा का चूर्ण पीना चाहिये।

रक्तातिसार—१—चावलों के धोवन में श्वेत चन्दन घिसकर इसमें मधु और शर्करा मिलाकर पीना चाहिये। २—आम की गुठली छाछ में या चावल के धोवन में घिसकर; ३—जामुन, आम, इमली के पत्तों को पीसकर इनके रस में मधु मिलाकर; ४—मजीठ, अतीस, मोथा, धाय के फूल, सोंठ, बालक और कुटज की छाल तथा फल एवं बिल्व इनका काढ़ा पीने से; ५—गुड़ के साथ बिल्व-फल खाने से, या अनार तथा कुटज की छाल को मधु के साथ खाने से; ६—जल-मिश्रित बकरी के दूध में बिल्व, मोचरस, शर्करा और इन्द्रयव का चूर्ण मिलाकर खाने से; ७—काले तिल के साथ चतुर्थांश चीनी मिलाकर बकरी के दूध के साथ पीने से अतिसार अच्छा होता है।

अतिसार की साधारण चिकित्सा—१—आम की गुठली का गर्भ, बिल्व का गर्भ, इनका चूर्ण अथवा काढ़ा करके, उसमें मधु तथा शर्करा मिलाना चाहिये। २—जायफल, जीरा, हाँड़ी के नीचे लगी हुई काली मिट्टी, बेल, इनमें प्रत्येक का चूर्ण समभाग लेकर चूने के पानी में ६ रत्ती की गोली बनानी चाहिये। इसको तीन-तीन घण्टे के अन्तर से कपूर-जल के साथ सेवन करना चाहिये। ३—सुहागे की खील १, धनिया का चूर्ण १, मोचरस १, मेगी २ भाग, दीवार का पुरातन चूना १ भाग—इनमें से दो या चार आने की मात्रा में शीतल जल के साथ सेवन करने से लाभ होता है। ४—बिल्व-पत्र, कमलगट्टा, भाँग, सोंठ, विड्लवण, जीरा, शंख-भस्म, मोथा, कैथा का पत्ता, इनको जल के साथ बेर के समान गोली बनाकर कपूर के जल या नीबू के रस के साथ देने से अतिसार शान्त होता है।

विक्षोभ-जन्य अतिसार—एरण्ड के तैल की थोड़ी मात्रा बारबार

देनी चाहिये, जिससे आँतें साफ़ हो जायँ। यदि दर्द होता हो, तो एरण्ड के तैल के साथ २० बूँद क्लोरोडीन मिला लेना चाहिये। पल्व रिहाई कम्पाउण्ड या टिंचर रिहाई कम्पाउण्ड का उपयोग भी उत्तम है। ऋतु-जन्य अतिसार में साधारणतः किसी प्रकार की चिकित्सा की आवश्यकता नहीं होती। पेट को गरम रखना चाहिये। पार्वतीय अतिसार के लिये डॉवर्स पाउडर प्रत्येक रात्रि में या क्लोरोडीन देना चाहिये। लाइकर हाइड्रोजराई परक्लोराइड ३० बूँद की मात्रा में दिन में तीन बार देना चाहिये। दालचीनी ४ औंस, जायफल ३ औंस, केसर ३ औंस, लौंग १॥ औंस, इलायची १ औंस, शर्करा २५ औंस, चौक ११ औंस इनके चूर्ण की मात्रा ३० से ६० ग्रेन है।

आँवले की जवारिश—आँवला १५ तोले, गुलाब आध सेर इनको वेदमुश्क के अर्क में रात को भिगोकर प्रातः इनको उबालकर छान लेना चाहिये। इसमें १५ तोले मिश्री और शहद मिलाकर गाढ़ा बना लें। इसमें अनविधे मोती २ तोले, रेशम कच्चा कतरा हुआ, चन्दन सफेद, गुलाब की कली, गावज़बाँ, छोटी इलायची के दाने, पिस्ता के छिलके, मस्तगी, दालचीनी प्रत्येक १ तोला कूटकर अम्बर अशहब, सोने के वर्क़, प्रत्येक २ माशे, चाँदी के वर्क़ ३ माशे मिलाकर चटनी बना लेना चाहिये।

नाभि का हिलना—लोगों की यह धारणा है कि अतिसार में पेट के अन्दर कुछ चला जाता है। इसका अर्थ यह है कि नाभि अपने स्थान से हिल जाती है। इसके लिये लोग रोगी को ज़मीन पर लेटाकर उसकी टाँगों को खींचते हैं, मलते हैं तथा पेट पर भी मालिश करते हैं। पेट में क्या चलता है, सो मालूम नहीं। सम्भवतः आंत्र में किसी प्रकार का बल पड़ जाता होगा। इसके लिये किसी ऊँची लकड़ी को पकड़कर झूलना उत्तम है। झुकने से आराम हो जाता है।

पथ्यापथ्य—अतिसार में भोजन की देख-रेख विशेष रूप से करनी चाहिये। लंघन करने के पीछे हलकी, शीत ख़ूराक देनी चाहिये, जिससे आँतों में विक्षोभ उत्पन्न न हो। जैसे—चावल, साबूदाना, कांजी, मस्तु, छाछ, तण्डुलोदक हैं। बेल का मुरब्बा, अनार, बकरी या गाय का दूध, मूँग या मसूर की दाल उत्तम है।

अपथ्य—स्नान, अभ्यङ्ग, कठिन तथा श्लेष्मकारक भोजन, कसरत, नया अन्न, स्त्री-संग, चिन्ता, जागरण, बीड़ी पीना आदि इस रोग में हानि-कारक हैं।

शास्त्रीय औषधि—भुवनेश्वर, गङ्गाधर-चूर्ण, बिल्वादि-चूर्ण, रामबाण, नृपवल्लभ, सर्वाङ्ग-सुन्दर, प्राणेश्वर, आनन्द-भैरव, कपूर-रस, अभय-नृसिंह-रस, कपूर-सुन्दर वटिका, कपूर, जायफल, जावित्री, कनक-बीज, बिधारे के बीज, अकरकरा, त्रिकटु, चोपचीनी, कौंचिया के बीज प्रत्येक ५ तोला, शुद्ध भाँग ५५ तोला, अफीम ५५ तोला, वत्सनाग २७॥ तोला इनको कूट-छानकर भाँगरे के रस की भावना देकर रत्ती जैसी गोली बनानी चाहिये। मात्रा २ से ४ गोली। इसको कुटज-छाल के चूर्ण और मधु में चाटना चाहिये। कनक-सुन्दर-रस; रस-पर्पटी।

आमातिसार (मरोड़ा)

कारण—अतिसार-रोग में आँतों के अन्दर विक्षोभ उत्पन्न होता है। यह विक्षोभ यदि लगातार चालू रहे, तो आँतों की अन्तः-श्लेष्मकला अथवा गुदा भाग की श्लेष्मकला निर्बल हो जाती है। इस निर्बलता के कारण आँतों से श्लेष्मा का स्राव होता है। अथवा कभी-कभी तीव्र विक्षोभ के कारण अन्तःभित्ति के फटने से रक्त भी आजाता है। यह रक्त या तो मल के साथ मिला आता है अथवा स्वतन्त्र रूप से आता है।

इन सब बातों के अतिरिक्त अनार्य-चिकित्सा में डिसैन्टरी का कारण एक कीटाणु माना जाता है। भारतवर्ष में गर्भवती स्त्रियों के अन्दर यह रोग प्रायः मिलता है। इसका कारण गर्भपात है।

लक्षण—इस रोग का सबसे प्रथम लक्षण पेट के अन्दर ऐंठन या मरोड़ा मारना है, जो नाभि के चारोंओर होता है। रोगी प्रायः बेचैनी की शिकायत करता है, बारबार मल-त्याग की इच्छा, अनियमित पतला मल आता है। उदर में गरमी, मरोड़ा मारकर दर्द होना और गुदा पर दबाव प्रतीत होता है। मल में छिछड़े से आते हैं, कोई कठिन गाँठ या सख्त मल नहीं आता। दिन के समय प्रवाहण की इच्छा बहुत जोर से रहती है। चेहरा लाल, त्वचा खुश्क, कठिन और तेज नाड़ी और जिह्वा मैली होती है। आँतों

पर दबाव देने से दर्द होता है। आँतों में दर्द नहीं, दबाने से किसी प्रकार की पीड़ा न हो, रक्त का मल से पृथक् आना, इस बात का साक्षी है कि आँतों का अन्तिम भाग (गुदा) रुग्ण है। मल का दुर्गन्धित होना, बेचैनी का बढ़ना, धीमी नाड़ी, हिक्का का आना, बेभान अवस्था में मल का निकल जाना इस बात का द्योतक है कि रोगी असाध्य है। डिसैन्टरी में इस बात का भय रहता है कि कहीं यकृत रुग्ण न हो जाय।

उपाय—मृदु विरेचन विशेषत: स्निग्ध विरेचन देना उत्तम है। इसके लिये एरण्ड के तेल को गोंद के साथ मिलाकर देना चाहिये। सोंठ, हरड़ का काढ़ा भी देना उत्तम है। अफीम इस रोग के लिये रामबाण मानी जाती है। १—कुटज, मेथी, दाड़िमफूल, गिरिमाटी (गेरू) इनको समान भाग जल के साथ पीसकर बेर के समान गोली बनाकर बकरी के दूध के साथ देना चाहिये। २—कुटज १ भरी, बकुल छाल और तिन्दुक छाल आधा तोला, इनको आध सेर पानी में पकाकर जब २ छटाँक रह जाय, तो तीन बार सेवन करना चाहिये। ३—बिल्व कच्चा, गुड़, तिल-तेल, पिप्पली, सोंठ इनको मिला-कर; ४—बिल्व, मिर्च, ईक्षु-गुड़ और लोध्र सब समान भाग लेकर तिल-तेल के साथ सेवन करने से लाभ होता है।

डोवर्स पाउडर, क्लोरोडीन का उपयोग करना उत्तम है। कौड़ी-प्रदेश पर राई की पुल्टिस बाँधनी चाहिये। रोगी को पूर्ण विश्राम देना चाहिये। प्यास के लिये बर्फ चूसने के लिये देना चाहिये। एपिकॉक ख्वाना इस रोग के लिये उत्तम समझी जाती है। परन्तु गर्भवती स्त्री को यह नहीं देना चाहिये। यदि डोवर्स पाउडर के साथ क्युनीन या सैलोल दिया जाय, तो उत्तम है। इसके देने से आँतों में विदाह घट जाता है।

यूनानी चिकित्सा में—१—ईसबगोल या ईसबगोल की भूसी उत्तम औषधि है। यह चिकनी और शीतल है। इसके लुआब में मिश्री मिलाकर पीना चाहिये। २—ईसबगोल २० दिरम, रैहान के बीज, कनोचे के बीज, बारतंग, अर्बीगोंद, गिले अरमानी, खसखस के बीज, प्रत्येक १५ दिरम, चूके के बीज, खूफी, निशास्ता प्रत्येक ७ दिरम; इनमें से बीजों को भूनकर सब दवाइयों को कूटकर मिलाना चाहिये। इसको ठण्डे पानी के साथ लेना चाहिये। ३—रेवतचीनी, ईसबगोल, रैहान के बीज प्रत्येक आधा दिरम,

अर्बीगोंद १ दिरम, इनको ठण्डे पानी के साथ देना चाहिये। ४—ईसबगोल गुलाब के जल में मलकर गुलरोगन या खट्टे-मिट्ठे अनार के रस में मिलाकर देना चाहिये। ५—बिहीदाने का लुवाब भी उत्तम है।

शास्त्रीय औषधि—कुटजाष्टक, कुटज-रस-क्रिया, अभयनृसिंह-रस, पीयूषबल्ली-रस, नृपवल्लभ, ग्रहणी-कपाट।

पथ्य—यवोदक को तैयार करते समय बिल्व और जामुन के पत्ते के साथ सिद्ध करके देना चाहिये। बकरी का दूध या बकरी के दूध में बना हुआ बार्ली, साबूदाना, अरारूट उत्तम है।

संग्रहणी

चरक में कहा है कि 'ग्रहणी' का कार्य अन्न का ग्रहण करना है। यह अपक्व अन्न को आमाशय से ग्रहण करती है, और पक्व अन्न को आँतों में छोड़ती है। ग्रहणी में अग्नि का स्थान है। यदि ग्रहणी निर्बल हो जाय, तो अपक्व अन्न आँतों में जाने लगता है, जिससे यह रोग उत्पन्न हो जाता है।

चिकित्सकों की दृष्टि से 'डियोडीनम' को साधारणतः ग्रहणी समझा जाता है। इस स्थान पर पित्ताशय से पित्त-प्रणाली और अग्नाशय से रस-वाहक प्रणाली आकर मिलती है। इन दोनों रसों के तथा आँत्र-रस के मिलने से भोजन का परिपाक हो जाता है। जिस समय किसी कारण से यह स्थान निर्बल हो जाता है, उस समय ये दोनों रस सहसा वली में से बह जाते हैं, जिससे रोगी को दस्त या अतिसार हो जाता है। और जब यह रुके रहते हैं, तो रोगी को मलबन्ध रहता है, या ठीक रहता है। इसका अर्थ यह है कि रस-प्रणालियाँ एकदम से खाली हो जाती हैं और फिर बन्द हो जाती हैं। अर्थात् उनमें से शनैः-शनैः रस का क्षरण नहीं होता है। बस, यही इस रोग का रूप है।

कारण—इस रोग का वास्तविक कारण क्या है, यह अभीतक स्पष्ट नहीं हुआ है। परन्तु इतना स्पष्ट है कि आँतों की निर्बलता इस रोग का कारण है। आर्य-चिकित्सा के अनुसार लगातार अतिसार रहने पर अथवा अतिसार के अच्छा होने पर पथ्य न पालने से, मन्दाग्नि में गरिष्ठ भोजन

करने से ग्रहणी निर्बल हो जाती है, जिसके कारण इस रोग की उत्पत्ति होती है। इस रोग के दो रूप हैं, एक ग्रहणी और दूसरा संग्रहणी।

ग्रहणी-रोग में आम भोजन गुदा के रास्ते बाहर होता रहता है। रोगी को कई बार मल-त्याग करना होता है। संग्रहणी में १०, १२, १५ दिन कोष्ठ-बद्धता रहती है। उसके पीछे सहसा अतिसार आरम्भ हो जाता है। इसको संचित ग्रहणी या संग्रहणी कहते हैं। रोगी के मुँह में छाले पड़ जाते हैं। उसकी प्यास भी बढ़ जाती है, रोगी निर्बल होता जाता है। मल इतने जोर से आता है कि रोगी उसको रोक नहीं सकता। रक्त की न्यूनता से रोगी के शरीर में निर्बलता हो जाती है। इस निर्बलता के कारण हृदय में कमजोरी आजाती है। यही कमजोरी शोथ उत्पन्न कर देती है। बस, यही शोथ रोगी के लिये काल-रूप होती है।

उपाय—संग्रहणी की चिकित्सा विशेषत: खानपान पर निर्भर रहती है। इस चिकित्सा को प्रारम्भ करने से पूर्व यह समझ लेना चाहिये कि रोगी का आमाशय बच्चे के आमाशय के समान कोमल होता है। इसलिये इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि रोगी को इस प्रकार की औषधि दे, जो धारक और पाचन हो। रोगी को हल्का, कोमल पोषण देना चाहिये।

१—**दूध**—सुश्रुत में लिखा है कि अतिसार में दूध अमृत के समान है। वास्तव में दूध की चिकित्सा से असाध्य रोगी भी अच्छे हो जाते हैं। दूध देने से पूर्व इत बात का निश्चय कर लेना चाहिये कि रोगी का आमाशय कितना दूध ग्रहण कर सकता है। दूध को पचाने के लिये इसको चतुर्गुण पानी में पकाकर देना चाहिये। सबसे प्रथम बकरी या गाय का दूध दिया जाय, तो अच्छा। दूध के देने से रोगी को अतिसार होगा, परन्तु इसमें भी दूध को बन्द नहीं करना चाहिये। कोई-कोई चिकित्सक दूध के साथ आम, खजूर अथवा खरबूजा भी खिलाते हैं। पहले-पहल रोगी दूध की मात्रा को पीना पसन्द नहीं करता, परन्तु ज्यों-ज्यों उसके अन्दर शक्ति बढ़ेगी, दूध की राशि भी बढ़ती जायगी।

२—**छाछ**—जिस प्रकार दूध उत्तम माना जाता है, उसी प्रकार हींग, जीरा, सैन्धव के साथ छाछ उपयोग भी किया जाता है। छाछ बनाने के लिये दही की मलाई निकालकर चौथाई पानी मिलाकर छाछ बना लेना चाहिये। छाछ से जठराग्नि बढ़ती है। छाछ का उपयोग अकेला ही करना

चाहिये। दूध या छाछ में से किसी भी एक वस्तु का उपयोग निरन्तर एक या डेढ़ मास बिना किसी व्यवधान के और बिना परिवर्तन के करना चाहिये।

संग्रहणी में मल एकत्रित न हो सके, इसके लिये सप्ताह में एक दिन एरण्ड-तेल की छोटी मात्रा दे देनी चाहिये। इसके कारण दूध या छाछ के कारण किसी भी प्रकार का मल आंत्रों में एकत्रित नहीं होगा। इस प्रकार आंत्र विक्षोभ से बच सकेगी। आंत्रों को विक्षोभ से बचाना ही ग्रहणी की चिकित्सा है।

पानी का उपयोग इस रोग में मना किया है। साधारणत: कोई ऐसा रोग नहीं, जिसमें पानी का निषेध हो; परन्तु संग्रहणी में पानी और भोजन दोनों का स्थान छाछ और दूध ले लेते हैं। प्यास के समय भी छाछ या दूध देना चाहिये। दूध-चिकित्सा में छाछ की चिकित्सा को मिलाकर सङ्कर नहीं कर देना चाहिये।

३-- **दुग्धवटी**--वत्सनाभ तथा अफीम चार-चार वाल, लोह-भस्म ५ रत्ती, अभ्रक-भस्म ६ रत्ती इनको दूध में पीसकर दो-दो रत्ती की गोली बनानी चाहिये। इसके साथ दूध का पथ्य पालना चाहिये। जिस समय शोथ हो जाती है, उस समय यह विशेष उपयोगी है। १—लाही चूर्ण—गंधक २ टंक, पारा २ टंक, सोंठ १० माशे, मिर्च १ टंक, पिप्पली १० माशे, पंचलवण १० माशे, सिकी हुई अजवायन ५ टंक, जीरा ५ टंक, हींग ५ टंक, सुहागा ५ टंक, भाँग ८ तोला इन सबका चूर्ण; मात्रा २ से ४ माशे। अनुपान—छाछ। २—वासक के अन्दर की छाल को ६ गुने छाछ में डालकर, इस छाछ को मिट्टी के बर्त्तन में डालकर, कोठे की छत पर सात दिन तक रख देना चाहिये। पीछे से छानकर ४ तोले की मात्रा में पीने से ग्रहणी रोग नष्ट होता है। ३—जायफल, जौ, मुस्ता, बिल्व इनके चूर्ण को तक्र में डालकर पीने से। ४—लौंग, सिद्धबीज-चूर्ण, सिन्दुवार के पत्तों का चूर्ण, बिल्वपत्र, इनके चूर्ण को ६ आने की मात्रा में जल के साथ सेवन करने से। ५—सोंठ १, धनिया १, अनार के फल का छिलका १, शङ्ख-भस्म १, विड्लवण, मोरी १, हींग $\frac{1}{2}$, भाँग २ भाग इनको आमरूल के रस में पीसकर ५-६ रत्ती की गोली बनानी चाहिये।

अनुपान—कर्पूर-जल।

शास्त्रीय औषधि—हिंग्वाष्टक, प्राणवल्लभ, लवँगादि, पीयूषवल्ली-रस, ह्रीवेरादि काढ़ा, पंचामृत पर्पटी, महागन्धक, जातीफलादि रस, बिल्व-चूर्ण।

पथ्यापथ्य—अतिसार-रोग में छाछ और दही विशेष उपयोगी हैं। संग्रहणी रोगी को चाहिये कि वह स्नान न करे। दिन में जागरण नहीं करना चाहिये, वायु-परिवर्त्तन करना चाहिये। समुद्र की वायु इन रोगियों के लिये अति उपयोगी है। पहाड़ पर जाना भी उपयोगी है।

अरोचक

भोजन में खाने की रुचि का न होना अरोचक कहा जाता है। इसको स्वतन्त्र रोग नहीं गिना जाता। आमाशय के रोगों में, अजीर्ण में, प्रायः करके यह लक्षण उत्पन्न हो जाता है। ज्वर में, अजीर्ण में तथा मानसिक उद्विग्नता के कारण अथवा रुचिकर रूप में सामने न आने पर भोजन में अरुचि हो जाती है। इस रोग में रोगी को भूख की प्रतीति भी विशेष नहीं होती।

उपाय—सबसे प्रथम कारण को हटाना चाहिये। कारण को हटाने के पीछे पित्त और वायुकारक कटु और तिक्त पदार्थ देने चाहिये। १—इमली को पानी में (मिट्टी के बर्त्तन में) भिगोकर, उसमें शर्करा डालकर अथवा आलूबुखारे को पानी में घोलकर देना चाहिये। २—बिजौरे या चकोतरे की फाँकों को नमक के साथ अथवा मुनक्का को गरम करके, उसपर नमक मलकर रोगी को देना चाहिये। ३—द्राक्षावटी—द्राक्षा, अनारदाना, सेंधा नमक पिप्पली, हींग, दालचीनी इनको नीबू के रस में पीसकर देना चाहिये। ४—छाछ—इसमें धुँवा लगाकर अर्थात् एक अँगारे पर हींग, लालमिर्च, जीरा, अजवायन, धनिया और थोड़ा-सा घी या तेल डालकर, इसके धुँयें को एक हाँड़ी में भर लेना चाहिये। इस हाँड़ी में छाछ को डालकर हिला देना चाहिये। अथवा दाल-शाक की भाँति छाछ को बघारकर पीना चाहिये। ५—पोदीना, कालाजीरा, लवण, द्राक्षा, नागकेसर, इलायची, त्रिकटु, अनारदाना, आर्द्रक, हींग, इनको नीबू के रस में पकाकर और कुछ शर्करा मिलाकर खाने से रुचिकर चटनी बनती है। ६—भोजन करने से पूर्व नमक और आर्द्रक को खाना चाहिये। ७—विड्लवण, मधु इनको अनार के रस

में मिलाकर सेवन करना चाहिये। ८—कालाजीरा, जीरा, मिर्च, द्राक्षा, इमली, अनार, सोंचल, गुड़ और मधु इनको मिलाकर खाने से विशेष रुचि होती है। ९—चमेली के फूलों को सूँघना चाहिये। निर्मल शराब, गुलाब सेब या विही का पानी और खट्टे-मीठे अनार का पानी मिलाकर देना चाहिये। गुलाब, बालछड़, मस्तगी, अनार का लेप आमाशय पर करना चाहिये। अर्क-गावजबाँ या अर्क-वेदमुश्क मिलाना चाहिये।

वमन

वमन कई कारणों से होता है। वमन को बन्द करने के उपाय भी भिन्न-भिन्न होते हैं।

कारण—अतिप्रवाही या अति चिकने पदार्थों के पीने से, अप्रिय खान-पान से, अति खाने से, आम से, अजीर्ण से, कृमि से, गर्भ से, विकृत वात-पित्त के कारण, विषैले पदार्थों के सूँघने से, आमाशय के विक्षोभ से वमन होता है। अजीर्ण और पित्त के प्रकोप से बार-बार वमन होता है। इसके अतिरिक्त आंत्र-वृद्धि, आंत्र-शोथ, आमाशय-व्रण, यकृत-रोग से, कॉलरा में वमन होता है।

उपाय—कारण के अनुसार वमन करना चाहिये। कई बार वमन को प्रकृति उत्पन्न करता है। इसके द्वारा वह आमाशय को साफ़ करती है। बहुत खाने से जो वमन होता है, उसके द्वारा अधिक भोजन बाहर हो जाता है। यदि इस प्रकार न हो, तो पेट के अन्य रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

उपाय—१—आँवले का उपयोग वमन को रोकता है। २—कहरवा १॥ माशे गुलाब में पीसकर देना चाहिये। ३—इमली का पानी, आलूबुखारा प्रत्येक ७० माशे, लाख ३॥ माशे, केशर १॥ माशे, यह एक मात्रा है। पित्त का वमन रोकने के लिये बंशलोचन, चूकर के बीज १७॥ माशे गुलाब के फूल १४ माशे, नेशापुरी फूल ३५ माशे, समंग अरबो १०॥ माशे, अकाकिया, सुक प्रत्येक ५॥ माशे, इसकी मात्रा ९ माशा है।

हब्बुलास-चूर्ण की विधि—हब्बुलास ३५ माशे, बंशलोचन ७ माशे, सिमाक, अनार के फूल, अनारदाना, पोदीना, कच्चा अगर, गुलाब के फूल, सफेद चन्दन, प्रत्येक ३॥ माशे, महीन पीसकर मीठे पानी के साथ खाना

चाहिये । ४—जहरमोहरा खतई, बंशलोचन, गोल तुतरुग का फल पिस्ता के छिलके, गुलाब के जीरा महीन पीसकर, पोदीना पड़े हुये शर्बत-अनार में मिलाकर थोड़ा-थोड़ा चाटे । ५—हरड़ के चूर्ण को शहद में मिला-कर चाटना चाहिये । ६—श्वेत चन्दन घिसकर, इसमें पानी में आँवले का चूर्ण तथा मधु मिलाकर पीना चाहिये । ७—नीबू के शरबत में अथवा सोडावाटर के साथ पीना चाहिये । ८—मुलहठी तथा श्वेत चंदन को दूध में पीसकर देने से वमन बन्द हो जाता है । ९—दूध तथा चूने का नितरा हुआ पानी पीने से वमन बन्द हो जाता है । १०—पित्तपापड़ा क्वाथ मधु के साथ पान करने से लाभ होता है । ११—मधु के साथ हरीतकी का चूर्ण मिलाकर सेवन करने से लाभ होता है ।

मोरफिया, बिस्मुथ, हाइड्रो-सैनिक एसिड का मिक्श्चर विशेष उपयोगी है । नारियल का पानी विशेष उपयोगी है । बर्फ चूसने के लिये देनी चाहिये ।

बाह्य उपाय—१—पेट के ऊपर राई का प्लास्टर लेप करना चाहिये । २—बर्फ की बोतल रखनी चाहिये । पंचवल्कल काढ़े में भिगोया हुआ वस्त्र कोष्ठ पर रखना चाहिये ।

अम्लपित्त

कारण—आमाशय में पित्त की अधिकता से यह रोग उत्पन्न होता है । यह एक प्रकार का अजीर्ण है, जिसमें भोजन के खाने से या अधिक मिष्ठ पदार्थों के खाने से, विदाह होने से पित्त कुपित हो जाता है । यदि छाती में पित्त बढ़ जाय, तो खट्टे उद्गार आते हैं । रोगी की भूख अनियमित हो जाती है । शिर दुखता है; हाथ, पाँव में दर्द होता है, अनिद्रा, कोठी-प्रदेश में दाह होता है—

साधारणत: अम्लपित्त के दो विभाग किये जाते हैं ।—

१—अधोगत अम्लपित्त, जिसमें मल का रंग हरा, पीला और दुर्गन्धि-युक्त होता है । इससे तृष्णा, दाह, मूर्च्छा, भ्रम, वमन-वेग, अग्निमान्द्य, रोमाञ्च, पसीने का आना और अंगों में पीतवर्णता होती है ।

२—ऊर्ध्वगत अम्मलपित्त—हरित, पीला, नीला अथवा कृष्ण या रक्त-वर्ण, अम्ल, मांस-जल के समान, अति पिच्छिल या कफ से मिला वमन

होता है। खाया हुआ पदार्थ सड़ जाता है, अथवा अभुक्तावस्था में कड़वा या खट्टा वमन आता है। इससे कण्ठ, हृदय, कुक्षि-प्रदेश में दाह, शिरोवेदना, हाथ-पाँव में ज्वाला, शरीर में उष्णता, अतिशय अरुचि, पित्त-श्लेष्म-ज्वर के लक्षण, शरीर में कण्डू, बहुत-सी पिडिकायें, फुन्सियाँ एवं नाना प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

उपाय— प्रथम वमन कराकर पीछे से विरेचन और वस्ति देनी चाहिये। १—अम्लपित्त-रोग में वमन के लिये पटोल और नीम की छाल के काढ़े में हींग, मधु और सेंधव मिलाकर देना चाहिये। २—यव, पिप्पली, पटोल इनके काढ़े में मधु मिलाकर पीने से; ३—यव, वासक, आमलकी, इनके काढ़े में दालचीनी, इलायची, तेजपात और मधु मिलाकर; ४—त्रिफला, पटोल, कुटकी इनके काढ़े में मुलहठी का चूर्ण और मधु मिलाकर; ५—हरीतकी और भृङ्गराज-चूर्ण को पुराने गुड़ के साथ खाने से; ६—गिलोय, नीम-छाल, पटोल-पत्र, त्रिफला इनके काढ़े में मधु मिलाकर; ७—वासा, गिलोय, कटेरी, इनके काढ़े में मधु मिलाकर अथवा पिप्पली के चूर्ण को मधु के साथ सेवन करने से; ८—हरीतकी, पिप्पली, द्राक्षा, शर्करा, धनिया, धमासा इनको मधु के साथ सेवन करने से; ९—पटोल, यव, धनिया, पिप्पली और आमलकी इनके काढ़े में मधु मिलाकर पीने से अम्लपित्त-रोग में निश्चय आराम होता है। १०—कच्ची हल्दी, परवल, कच्चा आँवला, आर्द्रक इनका रस निकालकर पान करने से; ११—पोदीना, पुरानी इमली, किशमिश, गुड़, मिर्च, इनकी चटनी करके, चावलों के साथ; १२—मिश्री ४, चना ३, आमलकी लौंग १ भाग मिलाकर पानी में भिगो देना चाहिये। इसको प्रातः सायंकाल पीने से अम्लपित्त रोग में लाभ होता है। १३—चूने का पानी, पोटाशियम बाई कार्ब, सोडाबाई कार्ब साइट्रेट मैगनेशिया इस रोग में उपयोगी हैं।

शास्त्रीय औषधि—अम्लपित्तान्तक चूर्ण, वज्रक्षार, धात्री-लौह, शंख-वटी, अविपत्तिकर चूर्ण।

पथ्य—खटास उत्पन्न करनेवाली, निशास्तेवाली खूराक हानिकारक है। पानी, दूध, चूने का पानी उपयोगी है। दूध, बार्ली, सागु इस रोग में लाभकारी हैं। हलकी सुपच खूराक देनी चाहिये।

यकृत के रोग

साधारणत: यकृत मे निम्न-प्रकार के रोग होते हैं—

१. यकृत में रक्त का सञ्चय हो जाना ।

२. यकृत की शोथ ।

३. यकृत-विद्रधि ।

४. यकृत में पित्त का सञ्चय होना ।

५. यकृत का संकुचित हो जाना ।

६. पित्त के कारण अश्मरी का होना ।

७. कामला ।

विवेचन—शरीर में यकृत एक आवश्यक अवयव है। यकृत के साथ ही पित्ताशय लगा हुआ है। पित्ताशय से पित्त बहकर ग्रहणी या आंत्र में पहुँचता है। यकृत का कार्य शरीर से विष को अपने अन्दर लेकर उसे कुछ शोधन करके या अशुद्ध रूप ही में हृदय में पहुँचाना है। इसके अतिरिक्त भोजन के घटकों को बदलने में बहुत काम करता है। शरीर में शर्करा के खर्च को और आय को यही नियमित रखता है। यदि यह क्रिया विकृत हो जाय, तो रोगी को मधु-मेह की शिकायत हो जाती है। खान-पान का प्रभाव आमाशय के ऊपर जिस प्रकार का होता है, उतना या अधिक यकृत के ऊपर होता है। दारू तथा मादक पदार्थों का यकृत के ऊपर विशेष प्रभाव होता है। इसलिये आवश्यक है कि यकृत का काम नियमितरूप से चलता रहे।

कारण—गरम, तिक्त, पित्तवर्द्धक वस्तुओं का खाना, दारू, मद्य या 'कोल्ड-ड्रिङ्क' आदि का पीना, ऐश-आराम की जिन्दगी बसर करना, पारा, ताँबा, शीशा आदि धातुओं का सेवन करना यकृत-रोग की उत्पत्ति के सामान्य कारण हैं।

यकृत में रक्त का सञ्चय—जिस समय किसी कारण से यकृत की शिराओं में रक्त-सञ्चय हो जाता है, उस समय यकृत का रक्त धीरे-धीरे गति करता है। इससे यकृत के अन्दर रक्त का सञ्चय बढ़ जाता है। इस सञ्चय के कारण यकृति का आकार तो इतना अधिक नहीं बढ़ता; परन्तु पित्त-वाहिनियों पर दबाव पड़ता है। जिस प्रकार प्लीहा आदि में वृद्धि होती है, उसी प्रकार

यकृत में वृद्धि नहीं होती। यह अवरोध प्रायः शिराओं ही में होता है। इस अवरोध के बहुत-से कारण हैं। जैसे—

यकृत में किसी प्रकार की गाँठ या विद्रधि का पड़ जाना, यकृत के अन्दर रक्त-सञ्चार का बढ़ जाना, यकृत के बाहर किसी प्रकार के अर्बुद के होने से यकृत पर दबाव होना, पित्ताशय में पित्ताश्मरी के रुक जाने से मद्य या अन्य गरम वस्तुओं के खाने से रक्त के अन्दर उष्णिमा आने से, वसा के शरीर में बढ़ने से अथवा शिराओं के अवरोध से यकृत में रक्त-सञ्चय हो जाता है।

चिन्ह—यकृत का आकार साधारण रूप से कुछ बढ़ जाता है। यदि यकृत के ऊपर हाथ रखकर टकोर की जाय, तो उसकी ध्वनि में मन्दता सुनाई देती है। मुँह से दुर्गन्धि आती है, अजीर्ण या भूख न लगने की शिकायत रोगी करता है, भोजन के पीछे दक्षिण स्कन्ध पर दर्द होता है, पेट भरा हुआ और चढ़ा हुआ, अनियमित या काले रंग का मल, वमन और उद्गार होते हैं।

उपाय—रक्त की अधिकता को घटाने के लिये रोगी को विरेचन देना चाहियें। इस विरेचन में यह गुण होना चाहिये कि वह आँतों से पानी की मात्रा को अधिक निकाले। इस प्रकार पानी की मात्रा नम होने से यकृत का संचय भी कम हो जाता है। साधारणतः एप्सम सॉल्ट या सोडा सल्फेड इस कार्य के लिये व्यवहार किया जाता है। यकृत के ऊपर सेंक तथा उष्ण पुल्टिस का बाँधना अथवा मसाज करना भी उत्तम है। कलई चूना और शहद का लेप तथा कबूतर का विष्ठा, तिल, अलसी, जौखार को गरम पानी में लेप करना भी उत्तम है। टिंचर आयोडीन का उपयोग भी किया जाना है। यदि आवश्यकता हो, तो यकृत पर जोंक लगवानी चाहिये।

रोग के प्रारम्भ में कासनी, हरे धनिये का पानी, घिया, खुर्फे के पत्तों का रस, चन्दन, गुलाब, रोगनगुल, मिलाकर लेप करना चाहिये। केशर, कड़वी कूठ, सम्बुल, मुर, ऊदवलसान, अफीम, सलीखा, तज प्रत्येक १ दिरम, उस्सारे गाफिस २ दिरम, मदक की जड़ ३ दिरम, ये सब दवाइयाँ कूट-छानकर तिगुना शहद मिलाना चाहिये। ऊँटनी का दूध पिलाना उत्तम है।

जिस समय रक्त-संचय अधिक होने लगता है, उस समय यकृत-शोथ के लक्षण भी उत्पन्न हो जाते हैं। इस शोथ के साथ शरीर में ज्वर, स्थानिक उष्णिक तथा दबाने से दर्द आदि लक्षण भी हो जाते हैं। यह रोग पित्त-प्रकृतिवालों में, गरम देशों में, दारू पीनेवालों में, विशेषतः होता है। रोगी के दक्षिण पार्श्व में दर्द होता है, यह दर्द दबाने से, गहरी साँस लेने से, खाँसने से, वाम पार्श्व में लेटने से बढ़ जाता है। रोगी कन्धे में तथा कौड़ी-प्रदेश पर भी दर्द होता है । आँख का श्वेत भाग गँदला या पीला हो जाता है, मूत्र गाढ़ा हो जाता है वमन और जीभ चलाना, मलबन्ध या अतिसार हो जाता है। रोगी को थोड़ा-थोड़ा ज्वर रहता है।

जिस समय दर्द का स्वभाव तीव्र हो और साथ में ज्वर भी हो, उस समय यकृत का आवरण प्रायः करके रुग्ण होता है। जब मूत्राशय में विक्षोभ हो और दर्द कटि की तरफ जाती हो, तो यकृत के निचले भाग आक्रान्त होते हैं। जब वमन हो, साथ में हिचकी भी हो, रोगी कौड़ी-प्रदेश में दर्द की शिकायत करे, तब अवयव के समीपवर्ती यकृत का प्रदेश रुग्ण समझना चाहिये। जब श्वास में कठिनता हो, रोगी गहरा साँस भर न सकता हो, रोगी को खाँसी बहुत हो, तब दक्षिण फुफ्फुस के नीचे रहनेवाला यकृत का भाग रुग्ण समझना चाहिये।

चिकित्सा—प्रत्येक चार घण्टे के अन्तर से विरेचन देना चाहिये, और यदि उपद्रव न हो, तो विरेचन को चालू रखना चाहिये। यदि रोगी को डिसैन्टरी या प्रवाहिका हो, तो इसकी चिकित्सा करनी चाहिये। यदि शोथ अधिक हो, तो जलौका लगवानी चाहिये। सेंक, उपनाह, गरम लेप इस रोग में लाभदायक है। हल्दी, अजवायन, नमक सैन्धव, इनको घी में पकाकर खाना चाहिये। करञ्ज की मज्जा को नमक के साथ खाने से दर्द शान्त होता है।

चिरकालीन यकृत-शोथ—इसका कारण रक्तसंचय या यकृत की शोथ का बार-बार आक्रमण है। रोगी को सबसे प्रथम दक्षिण पार्श्व में भार का अनुभव होता है, भूख कम हो जाती है, चुभता हुआ दर्द, आध्मान होता है। प्रारम्भ में रोगी का यकृत बढ़कर पसलियों के नीचे उरर आता है। यकृत के दबाव के कारण श्वास में कठिनता आजाती है, और कभी-कभी दोनों

कन्धों में दर्द का अनुभव होता है। चिरकालीन शोथ का परिणाम यकृत का संकुचित हो जाना है। और यदि रोगी मद्य पीता है, तो यकृत क्षीण हो जाता है। दोनों अवस्थाओं में रोगी की त्वचा खुश्क एवं रोगी निर्बल तथा निराश हो जाता है। मल प्रायः चिकना, मिट्टी के रंग का पतला होता है, मूत्र गाढ़ा पीला ही होता है। कभी-कभी रोगी को कामला भी हो जाता है। आँतों से या नाक से रक्त-स्राव होने लगता है।

चिकित्सा के लिये रोगी को विरेचन देना चाहिये। नाइट्रोम्युरेटिक एसिड, ट्रैक्सीसाई, पोडोफिलाई, पोटाशियम, आयोडाइड, एलोइन या ईरीडीन इस रोग में उपयोगी है। नाइट्रोम्युरेटिक एसिड का स्नान भी उत्तम है। कटु, तिक्त पदार्थ देने चाहिये।

यकृत-विद्रधि—यकृत की शोथ ही बढ़कर विद्रधि का रूप धारणकर लेती है। विद्रधि वाह्य गाँठ की भाँति या तो स्वयं बैठ जाती है, अथवा पक जाती है और फूट जाती है। यह रोग मद्य पीनेवाले व्यक्तियों में, प्रवाहिका डिसैन्टरी के रोगियों में अथवा ज्वर से निर्बल हुये पुरुषों में होता है। प्रायः यह रोग स्त्रियों में मिलता है।

लक्षण—जिस समय विद्रधि बनती है, उस समय कारण के अनुसार लक्षण का स्वरूप भी भिन्न-भिन्न होता है। जैसे—प्रवाहिका में यदि विद्रधि बनेगी, तो ज्वर पुरातन होगा, जो सायङ्काल बढ़ जाता है। जिह्वा बीच से मैली, आगे से लाल, बेचैनी, पार्श्व में भार, कँपकँपी के साथ मूर्च्छा होती है। विद्रधि जबकि बिना किसी पूर्ववर्त्ती कारण से होती है, उस समय मांस का क्षय, बेचैनी, मन्द दर्द, थोड़ी खाँसी, पार्श्व में भारीपन, कँपकँपी, ठण्डा पसीना, यकृत-प्रदेश पर शोथ होती है। पुरातन शोथ यदि कारण हो, तो रोगी की दशा प्रतिदिन गिरती जाती है, प्रायः उसे सर्दी का अनुभव होता है। सायङ्काल मन्द-मन्द ज्वर, बीच में मैली जीभ और किनारों तथा आगे से लाल; भारीपन, बेचैनी, हाथ और पाँव के तलुवे में रूक्षता। जिस समय शोथ तीव्र हो, उस समय कँपकँपी होती है। इसके पीछे ठण्डा पसीना, मैली जिह्वा, गँदला और गाढ़ा मूत्र, रात्रि के समय ज्वर का बढ़ना, अतिसार आदि लक्षण विद्रधि का सन्देह उत्पन्न कर देते हैं।

विद्रधि होने पर पार्श्व में या कौड़ी-प्रदेश पर शोथ हो जाती है। विद्रधि या तो बाहर की ओर मुख करके फटती है, अथवा अन्त:-आँतों में या आमाशय में विदीर्ण होती है। आमाशय में विदीर्ण होने पर पीव वमन के द्वारा और आँतों में फटने पर मल के मार्ग से बाहर हो जाती है। विद्रधि होने पर अजीर्ण के लक्षण, ज्वर, नाड़ी का तेज चलना, चेहरे का क्षीण होना है।

उपाय—जिस प्रकार वाह्य-विद्रधि की चिकित्सा की जाती है, उसी प्रकार अन्त:-विद्रधि की भी चिकित्सा की जाती है। तीव्र रेचक दवाई इसमें लाभ नहीं करती। जलौका का लगवाना या पीव बनने पर "एस्पारेटरी बीडल' से पीव निकलवाना उत्तम है। रोगी की शक्ति बनाये रखने का यत्न करना चाहिये। यदि विद्रधि के पकने की आशंका हो, तो गरम उपनाह, सेंक करना चाहिये। इस रोग में पारे की दवाई का उपयोग हानिकारक है। मलबन्ध के मृदु रेचक, जैसे, पल्वरिहाई कम्पाउन्ड या पिलरिहाई ५ से ६ ग्रेन देना चाहिये। प्रात:काल सिड्लिटिज़ पाउडर देना उत्तम है। एसिड नाईट्रोम्युरेटिक का लोशन बनाकर, इसमें कपड़ा भिगोकर यकृत-प्रदेश पर लगाना चाहिये। दोषघ्न लेप या नीम की पुल्टिस बाँधना भी उत्तम है।

पित्त की उबकाई—किसी दाह-कारक वस्तु के आमाशय में जाने से अथवा मिथ्या आहार-विहार से, यकृत के अव्यवस्थित होने से पित्त की उबकाई आने लगती है। खट्टा पित्त बाहर आता है, वमन होता है। वमन में प्रथम आमाशय के अन्दर का पदार्थ बाहर आता है, पीछे से खट्टा पित्त बाहर आता है। आंत्र में दर्द होता है।

उपाय—वमन के लिखे गये उपचार करने चाहियें। रोगी को लंघन कराके बर्फ चूसने के लिये देना चाहिये। नारियल का पानी पीना उत्तम है। राई या नमक का गरम पानी पिलाकर रोगी को वमन कराना चाहिये। पीछे से विरेचन देना चाहिये। सोडा-वाटर पीने को देना चाहिये। दर्द बहुत हो, तो राई का लेप कौड़ी-प्रदेश पर करना चाहिये। मलबन्ध हो, तो उसकी चिकित्सा करनी चाहिये।

यकृत का संकोच—कई बार यकृत में वृद्धि होकर पीछे से यकृत संकुचित हो जाता है। इसके कारण यकृत का आकार साधारण आकार से

छोटा हो जाता है। इस रोग के साथ पेट में पानी भर जाता है। जलोदर, पाँव के ऊपर शोथ, कामला, अजीर्ण अथवा अतिसार हो जाता है। इस रोग की चिकित्सा प्रायः असाध्य होती है।

पित्ताश्मरी—पित्ताशय में पित्त एकत्रित होकर अश्मरी का रूप धारण कर लेता है। जिस समय यकृत में रक्त-संचय होने से अथवा यकृत के संकुचित होने से किसी भी कारण से पित्तवाहक-प्रणालियों पर दबाव पड़ता है, उस समय पित्त का स्राव घट जाता है। पित्त का स्राव घटने से वह वहाँ गाढ़ा हो जाता है। इस गाढ़े पित्त की जब अश्मरी बन जाती है, और यह पित्त-प्रणाली में बहने लगती है, तब रोगी को तीव्र दर्द शूल उत्पन्न होता है। इस शूल को पित्ताश्मरी-जन्य शूल कहते हैं। इस दर्द के कारण रोगी बेचैन हो जाता है। जबतक यह अश्मरी बहकर आंत्रों में नहीं आजाती, तबतक रुक-रुककर रोगी को दर्द होता है। यह रोगी मद्य पीनेवाले व्यक्तियों में प्रायः मिलता है। इस पथरी का आकार रत्ती से लेकर अण्डे तक होता है। पित्ताश्मरी के कारण वमन होता है, मलबन्ध रहता है, रोगी को कामला हो जाता है।

उपाय—गरम पानी का सेंक, अलसी की पुल्टिस बाँधनी चाहिये। रोगी को विरेचन देना चाहिये। दर्द के समय अफीम और बैलेडोना का उपयोग करना चाहिये। जैतून के तेल से पित्ताश्मरी नष्ट होती है, ऐसी अनार्य-चिकित्सा की मान्यता है। आक्रमण के समय रोगी को गरम पानी में सोडाबाईकार्ब मिलाकर देना चाहिये। क्लोरल का उपयोग प्रत्येक ३ घण्टे के अन्तर से ५ से १५ ग्रेन तक करना चाहिये। पथरी की परीक्षा करनी चाहिये। यदि पथरी चिकनी और गोल हो, तो समझना चाहिये कि पित्ताशय मे कोई पथरी नहीं बची। पित्ताश्मरी के रोगियों की आँतें सदा स्वच्छ रखनी चाहिये। इसके लिये कार्लसब्रैड या एपैन्टा वाटर पीने को देना चाहिये। सादा जीवन, मोटा खाना, वसा से बचना, शराब आदि से परहेज़ रखना पथरी से बचा सकता है।

कई बार वृक्क की अश्मरी में और पित्त की अश्मरी में धोखा हो जाता है। उसके लिये निम्न तालिका दी जाती है।

वृक्वाश्मरी	पित्ताश्मरी
कटि-प्रदेश में शूल, प्रायः एक पार्श्व में।	नहीं।
दर्द कटि से चलकर वंक्षण और और जङ्घाओं में आती है।	दर्द कौड़ी-प्रदेश मे या दक्षिण पार्श्व में होकर पीछे की ओर जाता है।
प्रायः एक पार्श्व में, बहुत कम दोनों में।	प्रायः दक्षिण प्राश्र्व में होता है।
अण्ड-कोष ऊपर को खिंच आते हैं।	नहीं। नहीं।
बार-बार मूत्र-प्रवाहण की इच्छा होती है।	नहीं। नहीं।
मूत्र-प्रवाहण में दर्द होता है।	मूत्र का रंग नहीं बदलता।
मूत्र गँदला, गाढ़ा या रक्त-मिश्रित होता है।	रोगी में पित्ताश्मरी की, कामला की, और पीले रंग के मल की इतिवृत्ति होती है।
रोगी में आमवात, गठिया या शर्करा की इतिवृत्त होती है।	प्रायः स्त्रियों में होती है।
प्रायः पुरुषों में होती है।	५० वर्ष के वायु के पहले बहुत कम होती है।
मध्य आयु में प्रारम्भ होती है।	

कामला—इस रोग में त्वचा पीली हो जाती है। कामला दो प्रकार का होता है, जिसमें पित्त का प्रवाह किसी बाधा के कारण रुक जाता है। यह बाधा रोग के कारण अथवा मिकैनीकल हो, जिससे पित्त यकृत से बहकर बाहर न आ सके। दूसरी अवस्था वह है, जिसमें पित्त की बढ़ी हुई राशि रक्त में लीन हो जाती है। आँख का श्वेत भाग पीला होजाता है। रोगी को आँख से पीला दिखाई देता है। मलबन्ध रहता है, मल का रंग श्वेत या मिट्टी के रंग का और मूत्र गाढ़ा-पीला होता है। त्वचा पर खुजली होती है, मुख का स्वाद कड़वा रहता है, जीभ मैली, बेचैनी, जी मचलाना विशेषतः प्रातःकाल होता है। इन सब लक्षणों का कारण पित्त का रक्त में मिलना है।

कामला-रोग की यह स्थिति या तो स्थायी होती है अथवा अस्थायी। अस्थायी कामला यकृत में रक्त संचित होने से होता है। अथवा पित्ताश्मरी

के कारण पित्त के रुक जाने से उत्पन्न हो जाता है। कई प्रकार के ज्वरों में भी देखा जाता है। परन्तु प्रायः करके अस्थायी कामला छोटी पित्त-वाहिनियों के अवरोध से उत्पन्न होता है। स्थायी कामला किसी भयानक अथवा यकृत के अवयव-सम्बन्धी विकार के कारण या अन्तः-अवयवों के रोग से उत्पन्न होता है।

उपाय—मल खुलकर आये, इस प्रकार का उपाय करना चाहिये। प्रथम दूध या घी मिलाकर विरेचन देना चाहिये। त्रिफले के काढ़े में या गो-मूत्र में घी अथवा सुराक्षार मिलाकर देना चाहिये। नीम की छाल का काढ़ा मधु मिलाकर अथवा त्रिफला, दारुहल्दी, नीम, गिलोय इनमें किसी वस्तु का स्वरस निकालकर मधु के साथ देना चाहिये। कूठ कड़वी इस रोग की उत्तम दवाई है। इसके काढ़े में नवसार तथा विलायती नमक मिलाकर पीना चाहिये। हल्दी के चूर्ण को दधि के साथ; गव्य दुग्ध को शुण्ठी के साथ; लोह-चूर्ण, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, त्रिफला, कटुकी-चूर्ण इनको घी और मधु के साथ, आमलकी, लोह-चूर्ण, त्रिकटु, हरिद्रा इनको घी, मधु और शर्करा के साथ चाटना चाहिये।

यकृत के सम्पूर्ण रोगों की सामान्य चिकित्सा—१—यकृत के सब रोगों में पित्त रेचक एवं शीत औषधि देनी चाहिये। २—निशोथ को पानी में पीसकर, इसमें एरण्ड-तैल अथवा दूध मिलाकर अथवा निशोथ को पानी में पीसकर, इसमें एरण्ड-तैल दूध में पीना चाहिये। ३—अमलतास के गूदे को दूध में मिलाकर उबालकर पीना चाहिये। ४—कुँवार का रस हल्दी में मिलाकर पीना चाहिये। ५—हल्दी का पत्ता १, श्वेत पुनर्नवा का मूल-चूर्ण १, कटुकी-चूर्ण ३ भाग, इनको मिलाकर ४ से ६ आने की मात्रा में गरम दूध या जल के साथ पीना चाहिये। ५—अजवायन, यवक्षार, विड्लवण, हरीतकी, रेणुका, गोल मिर्च, आमलकी, चिरायता इनको जल के साथ पीसकर दो-तीन आना वजन की गोली बनाकर, यकृत-दोष में बरतनी चाहिये। ७—एक काग़ज़ी नीबू के रस में ६ रत्ती क्षार लवण (रेह जिससे धोबी कपड़ा धोते हैं) मिलाकर पीने से लाभ होता है।

शास्त्रीय औषधि—रोहितक-लौह, योगराज, अग्निकुमार, लोकनाथ-रस, त्रिफला-घृत।

पथ्यापथ्य—खट्टी, चिकनी, भारी खूराक, दारू इस रोग में अपथ्य है। घी का उपयोग इस रोग में उत्तम है। घी शीतल होने से पित्त को शमन करता है और विष को नष्ट करता है। छाछ या दही का उपयोग अधिक लाभदायक है। नारङ्गी उत्तम है।

प्लीहा

प्लीहा सामने आमाशय और पीछे पसलियों से ढँकी रहती है। स्वस्थ अवस्था में इसका अनुभव नहीं होता। प्लीहा के बहुत-से रोग मलेरिया के सबब से होते हैं, और मलेरिया का कारण ज्वर है। मलेरिया-ज्वर या आंत्र-ज्वर के कारण प्लीहा में दो प्रकार की शोथ या वृद्धि होती है—१—तीव्र प्लीहा-वृद्धि और २—पुरातन प्लीहा-वृद्धि।

तीव्र प्लीहा-वृद्धि प्रायः करके सहसा ज्वर के कारण हो जाती है। ज्वर की शीत अवस्था में रक्त त्वचा से खिचकर प्लीहा में एकत्रित हो जाता है। इससे प्लीहा रक्त से भर जाती है, और इसके तन्तु तन जाते हैं। वाम पार्श्व पर दबाने से दर्द और पीड़ा होती है। यह दर्द कभी-कभी वाम स्कन्ध तक या वाम कटि तक पहुँच जाता है। रोगी वाम पार्श्व पर आराम से लेट नहीं सकता। रोगी को बेचैनी और वमन रहता है। वमन से, नाक से या आंत्र से रक्त-स्राव होता है। रोगी की नाड़ी तीव्र रहती है और त्वचा गरम।

पुरातन प्लीहा-वृद्धि का कारण तीव्र प्लीहा-वृद्धि के आक्रमणों का लगातार होना है। परन्तु कई बार यह वृद्धि इतने धीरे-धीरे होती है कि जबतक की यह विशेषतः बढ़ नहीं जाती, भर नहीं जाती, या भारी नहीं हो जाती अथवा इसमें मन्द-मन्द दर्द नहीं होने लगता, तबतक इसका अनुभव नहीं होता। रोगी का ताप-परिमाण १०० अंश फार्नहाइट तक या इससे अधिक रहता है।

प्लीहा के अन्दर रक्त का निर्माण होता है। रोग के कारण जब प्लीहा आक्रान्त हो जाती है, तो इसमें रक्त का बनना कम हो जाता है। रक्त के न बनने से रोगी का चेहरा पीला हो जाता है। जिह्वा पर एक विशेष प्रकार का पीलापन छा जाता है। आँखों का श्वेत भाग मोती के समान या नीबू के रंग का हो जाता है। रोगी को कभी-कभी अतिसार हो जाता है और पांडु स्पष्ट होता है। बढ़ी हुई प्लीहा किसी विशेष अंश तक अच्छी हो सकती है, परन्तु

उस अंश के पार हो जाने पर औषधियाँ निरर्थक हो जाती हैं। प्लीहा के बढ़ने पर रोगी निर्बल हो जाता है। उसका पेट सूज आता है, अतिसार या प्रवाहिका कोई एक रोग स्थिर हो जाता है।

उपाय—जब प्लीहा के स्थान पर सहसा दर्द मालूम पड़े, तब सेंक करना चाहिये। जिन रोगियों में अतिसार न हो, उनको क्युनीन और लोह के साथ मैगनेशियम या अन्य विरेचक औषधि देनी चाहिये। प्लीहा के स्थान में आयोडीन लिनिमैन्ट या आयोडाइड आफ मर्करी का प्रलेप लगाना चाहिये।

सामान्य उपाय—१—बड़ी हरड़ की फाँकी ३ माशे से ६ माशे, इसके बराबर पुराना गुड़ मिलाकर गरम पानी के साथ। २—पिप्पली को गुड़ के साथ। ३—लहसुन, पिप्पली-मूल, हरड़ खाकर ऊपर से गोमूत्र पीना चाहिये। ४—शंख-भस्म या सीप की भस्म नींबू के रस में देना चाहिये। ५—मुसब्बर १, हींग २, यवक्षार ३, बड़ी हरड़ ४ भाग इनका चूर्ण ४ से ८ आने भर गरम पानी से। ६—सैन्धव-लवण, विड्लवण, हीराकसीस, प्रत्येक एक भाग लेकर; आक के पत्तों पर फैलाकर, हाँड़ी में रखकर भस्म बना लेनी चाहिये। इस भस्म की ३ या ४ रत्ती मात्रा पुराने गुड़ और पिप्पली के चूर्ण के साथ प्रात: खाने से अवश्य लाभ होता है। ७—रसौंत, गिलेअरमानी, पीली अञ्जीर, अमलतास का गूदा, गेहूँ की भूसी, मकोय का अर्क, इन सब दवाइयों को सिरके में पीसकर लेप करना चाहिये। ८—गुलाब की जड़, किंबु की जड़, जरावन्द, बालछड़, जरिश्क इन सबको महीन पीसकर झाऊ के पानी में गोली बनाना चाहिये। यह गोली पेट को नरम करने के लिये उत्तम है। ९—अजवायन के बीज, अनीसुन कुसुम के बीज, तितली के बीज, तुलसी, शलगम के बीज, अजवायन की जड़, सौंफ की जड़, सौसन की जड़, प्रत्येक सात दिरम लेकर इनको १०० दिरम सिरके में तथा इतने ही पानी में भिगोकर एक रात रखना चाहिये। पीछे गर्म करें। जब आधा शेष रह जाय, तब छानकर एक सेर मिश्री मिलाकर चाशनी तैयार कर लेनी चाहिये।

शास्त्रीय औषधि—मंडूर-भस्म, लोह-भस्म, मंडूरवटी, अभयारिष्ट, दशमूलारिष्ट, कनकासव, लोहासव, चित्रक, हरीतकी, गुड़ पिप्पली, लोकनाथ।

पथ्यापथ्य—उदर-रोग के समान।

मनुष्य के शरीर में दो प्रकार के कृमि मिलते हैं, एक वे जो त्वचा के ऊपर रहते हैं, जैसे जूँ, लीक आदि। २—वे जो शरीर के अन्दर रहते

हैं। बाह्य-कृमियों का विवेचन त्वचा के रोगों में तथा बालों के रोगों में किया जायगा।

अन्तः-कृमि मुख्यतः तीन प्रकार के होते हैं। जैसे—टेपवर्म्स-फीते की तरह लम्बे। २—रॉउण्ड वर्म्स-गोल कद्दूदाने की भाँति। ३—थ्रेड-वर्म्स-सीने के धागे के समान श्वेत।

टेपवर्म्स—यह प्रायः युवाओं में मिलते हैं। यह छोटी या बड़ी आंत्रों में रहते हैं। इनकी लम्बाई ६ फीट से २० फीट तक होती है। यह चपटे फीते की भाँति का कीड़ा होता है। इसका रंग श्वेत तथा चौड़ाई अधिक से अधिक एक तिहाई से आधी इञ्च तक होती है। इससे सैगमेन्ट निकलते हैं, जो १ इञ्च लम्बे होते हैं।

इस कृमि का कारण संक्रान्त मांस (सुअर या गाय का) का खाना है। यह रोग मछली के खाने से भी हो जाता है।

साधारणतः जबतक कुछ भाग मल के साथ बाहर नहीं निकलता, तबतक रोगी को कृमि होने का सन्देह नहीं होता। कई बार आँतों में बेचैनी या दर्द होता है। आँतों का कार्य अनियमित रहता है। श्वास में दुर्गन्धि, मल में थोड़ा-सा रक्त, मैली जिह्वा, जी मचलाना, भूख की अनियमता, मूत्राशय में विक्षोभ, नाक में खाज होती है। रोगी सोते समय दाँतों को बजाता है। बालक भय से जागकर चिल्लाने लगते हैं। प्रायः शिर-दर्द, भ्रम, शुष्क कास, धड़कन, मूर्च्छा या निराशा रहती है। कृमियों के टुकड़े प्रायः मल में निकलते रहते हैं।

चिकित्सा—इस रोग की चिकित्सा दवाई के देने की विधि पर निर्भर है। यदि औषधि ठीक प्रकार से पहुँच गई, तो उससे कृमि मर जायँगे, अथवा कम से कम बाहर तो अवश्य हो जायँगे। टेपवर्म के अन्दर दवाई उसके सिर पर पहुँचनी चाहिये। यदि इसका सिर वहाँ रह गया, तो फिर नये सिरे से उत्पन्न हो जायगा। रोगी को दवाई देने से ३ दिन पूर्व हल्की खूराक देनी चाहिये। तीसरे दिन केवल पतली चाय देना चाहिये। तीसरे दिन की रात को कोई मृदु, विरेचक, जैसे एरंड-तैल या मैगनेशियम सल्फेट देना चाहिये। अगले दिन प्रातःकाल जब आंत्र साफ हो जाय, तब दवाई देनी चाहिये।

टेप वर्म के लिये उत्तम औषधि अनार की जड़ की छाल है। इसको ३ औन्स लेकर ८० औन्स पानी में काढ़ा करके डेढ़ औन्स की मात्रा में प्रत्येक आधे घण्टे के अन्तर से पीना चाहिये। इस प्रकार से ६ खूराकें देनी चाहिये। यदि रोगी को वमन होता हो, तो पेट पर राई का प्लास्टर लगाना चाहिये। यदि ४ घण्टे तक मल-प्रवाहण न हो, तो एरंड-तैल देना चाहिये। प्रत्येक बार के मल में कृमि का शिर देखना चाहिये। यदि शिर न मिले, तो पुनः इस चिकित्सा को दोहराना चाहिये।

रॉउण्ड वर्म्स (कद्दूदाना)—यह आँतों में और आमाशय में मिलते हैं। कभी-कभी वमन के रास्ते से भी बाहर आजाते हैं। इनके कारण कामला भी हो जाता है। ये कृमि ३ से १० वर्ष के बच्चों में प्रायः मिलते हैं। आकार में ये गिण्डोवे से मिलते हैं। इनका रंग पीला गुलाबी या श्वेत होता है। सिर के पीछे गोल दबाव होता है। इनके कारण जो लक्षण उत्पन्न होते हैं, वे प्रायः टेप वर्म्स से मिलते हैं।

चिकित्सा—सबसे उत्तम औषधि "सैन्टोनीन" मानी जाती है। इसको देने से पूर्व एरण्ड-तैल देकर उस दिन दूध या द्रव भोजन देन चाहिये। रात्रि को फिर एरण्ड-तैल देना चाहिये। अगले दिन प्रातःकाल सैन्टोनीन २ ग्रेन (दो साल के बच्चे के लिये) दिन में तीन बार देना चाहिये। सैन्टोनीन के साथ द्रव भोजन ही देना चाहिये।

सैन्टोनीन के अतिरिक्त थाइमोल, ऑयल ऑफ टरपैन्टाइन, आयल ऑफ मेलफर्न भी उत्तम औषधि हैं।

थ्रेड वर्म्स—ये कृमि १ इञ्च लम्बे, कुछ मुड़े हुये, श्वेत रङ्ग के होते हैं। ये प्रायः आंत्र के निचले भाग पर रहते हैं, जहाँ ये खाज, कण्डु, विक्षोभ उत्पन्न करते हैं। परन्तु इनका मुख्य निवास-स्थान वृहदांत्र का मुख होता है। ये मल के साथ बाहर आजाते हैं। स्त्रियों में ये कृमि उनके गुह्य-भागों में आकर कण्डू और विक्षोभ उत्पन्न कर देते हैं। शिश्न के अग्रवर्ती त्वचा के नीचे भी आजाते हैं और कण्डू उत्पन्न करते हैं। बच्चों में इनकी उपस्थिति कई बार मूत्र के दुधियाला आने से पहचानी जा सकती है। कमजोर, मैले बच्चों में प्रायः मिलते हैं।

चिकित्सा—इनके लिये कड़वी औषधि मुख से तथा वस्ति-मार्ग से देनी चाहिये। क्युनीन का मुख से देना और २० ग्रेन क्युनीन को ८ औंस गरम पानी में घोलकर उसकी वस्ति देना उत्तम है। चिरायता या काशिया की वस्ति देनी भी आवश्यक है। इसके अतिरिक्त रोगी की स्वच्छता का ध्यान विशेष-रूप से रखना चाहिये। बाहर लगाने के लिये २० बूँद कार्बोलिक एसिड को १ औंस वैजलीन में मिलाकर गुदा पर लगानी चाहिये, जिससे गुदा के बालों में लगे हुये अण्डे नष्ट हो जायँ।

आर्य-चिकित्सा में कृमियों की उत्पत्ति कफ, रक्त और विष्ठा से मानी है। कृमियों की संख्या २० मानी है। इनकी चिकित्सा के लिये अजवायन खुरासानी, ढाक की फली, वायविडंग, कीडामारी, इन्द्रजौ, अनार आदि वस्तुएँ मुख्यत: गिनी गई हैं।

१—कटुकी ४ आना, अनार के मूल की छाल आठ आना, विडङ्ग आठ आना, दालचीनी ४ आना, अपामार्ग आधा तोला, इनको आध सेर जल में पाक करके जब १ छटाँक रह जाय, तब छानकर इसमें ४-५ बूँद तारपीन का तेल मिलाकर पीना चाहिये। २—ढाक के बीज, सोमराजी, खुरासानी अजवायन, विड्लवण, विडङ्ग, गन्धक, इन्द्रजौ प्रत्येक समान भाग लेकर, सबके बराबर बड़ी हरड़ मिलाकर इनको ६ से ८ आने की मात्रा में चूने के जल के साथ लेना चाहिये। ३--वायविडङ्ग ८ दिरम, निशोथ बादाम के तेल में चिकना किया हुआ २ दिरम, अखरोट की मींगियाँ, बिना गुठली का छुवारा १० दिरम, इन सब दवाइयों को महीन पीसकर रात के समय खाने को देना चाहिये। ४—दिरमान तुर्की, वायविडंग छिली हुई प्रत्येक १ मिस्काल, नमक हिन्दी डेढ़ दांग, निशोथ १ दिरम, इन्द्रायन का छिलका १ दांग इन सबको महीन पीसकर दूध में मिलाकर देना चाहिये। ५—वाय-विडंग ७ दिरम, निशोथ २ दिरम, मुनक्का ५ दिरम, काला दाना १ दिरम, इन सबको मिलाकर खाने को देना चाहिये।

पथ्यापथ्य—तिल का तेल, तीखे या कड़ुवे पदार्थ, नमक, गोमूत्र, मधु, हींग, अजवायन, नीबू, लहसुन, कफनाशक तथा रक्तशोधक पदार्थ हितकर हैं।

अपथ्य—दूध, मांस, घी, दही, पत्तों के शाक, खट्टे तथा मीठे रस, आटे के पदार्थ, ये सब वस्तुयें कृमि को उत्तेजित करती हैं। कृमि-रोगी के लिये तेल बहुत उपयोगी है।

अर्श (बवासीर)

अर्श या बवासीर को समझने के लिये यह स्मरण कर लेना चाहिये कि धमनियाँ हृदय से रक्त को लेकर शरीर का पोषण करती हैं और शिरा के भाग से यह रक्त पुनः हृदय में वापस आता है। गुदा या आंत्र का अन्तिम भाग ढीले तन्तुओं से बना होता है। इसमें शिरा और धमनियाँ मिलती हैं। यह इस प्रकार का भाग है, जहाँ कि दबाव या भार से रक्त का दबाव बढ़ जाता है। इसलिये यह खास स्थान है, जहाँ रक्तस्राव हो सकता है। यदि किसी कारण से ऊपर के रक्त-संचार में बाधा उत्पन्न हो जाय, जैसा कि यकृत-विकार में या अवरोध-जन्य मल-बन्ध में होता है, तो रक्त-स्राव की अधिक आशङ्का बनी रहती है।

बवासीर या अर्श दो प्रकार के होते हैं। एक बाह्य और दूसरे अन्तः, अथवा कुछ बाह्य और कुछ अन्तः। बाह्यार्श में प्रथम शिराओं के अन्दर दबाव बढ़ता है। इससे वे लम्बी हो जाती हैं, जिससे गुदा के मुख तक पहुँच जाती हैं। वहाँ पर कठोर काले रङ्ग की सूजन के रूप में अनुभव की जा सकती है। कुछ समय पश्चात् इस शोथ का पानी विलीन हो जाता है, जिससे शोथ भी कम हो जाती है। जहाँ पर त्वचा और गुदा-नलिका मिलती है, वहाँ पर मोटा निशान बन जाता है। बाह्यार्श कठोर, दर्द-युक्त तथा गरम होते हैं। मल-त्याग के समय इनसे रक्त बहुत कम स्रवित होता है। अन्तः-अर्श में बढ़ी हुई शिरायें गुदा की श्लेष्म-कला के नीचे रहती हैं। इससे श्लेष्म-कला गुदा की नलिका के ऊपर नासपाती की तरह लटक जाती है। अन्तः-अर्श बड़े नाजुक होते हैं और कभी इनमें से रक्त-स्राव हो जाता है। यही रक्त-स्राव सबसे प्रथम रोगी का ध्यान इस ओर खींचता है। जिस समय अर्श आकार में बढ़ते हैं, उस समय रोगी के गुदा में भार, जलन, मल-त्याग में कींचना, बार-बार मूत्र-प्रवाहण की इच्छा, कमर में दर्द, जो जंघाओं की ओर चलती है, तथा स्त्रियों में श्वेत स्राव होता है। अन्तः-अर्श में जब व्रण हो जाते हैं, तब इनमें प्रवाहिका के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। अन्तः-अर्शों से प्रायः करके थोड़ा या बहुत रक्त-स्राव होता रहता है। साधारणतः अर्श का रक्त मल-त्याग के पीछे आता है, और मल को ढँक लेता है। तीव्र रोग की अवस्था में यह स्वतन्त्र रूप में रोगी के खड़ा होने के समय स्रवित होता है। यदि रक्त-स्राव बहुत न हो और व्यक्ति अच्छा मोटा-ताज़ा

हो, तो इसका कारण यह होता है कि प्रकृति इसके कारण शरीर के अन्य अवयवों को विशेषतः यकृत को आराम देती है, जो रक्त के संचित होने से भारी बना होता है। यदि इसी प्रकार से प्रतिदिन रक्त-स्राव होता रहे, तो रोगी निर्बल हो जाता है और उसमें पांडुपन आजाता है। इसके साथ ही बवासीर का रक्त-स्राव सहसा बन्द हो जाता है। यकृत में शोथ तथा मस्तिष्क-जन्य मूर्च्छा उत्पन्न हो जाती है।

वाह्यार्श और अन्तार्श दोनों एक साथ प्रगट हो सकते हैं। पहले ये थोड़े समय के लिये प्रगट होते हैं, फिर छोटे हो जाते हैं और कई महीनों के लिये बन्द हो जाते हैं। यदि इस बीच में इनकी चिकित्सा न की जाय, तो ये स्थायी हो जाते हैं। यदि इनसे सदा रक्त-स्राव नहीं होता, तो भी इनसे लगातार दर्द और दुःख होता रहता है। दोनों प्रकार के अर्श सूज सकते हैं, व्रण हो सकता है। जब अर्श सूज आते हैं, तब उनमें उष्णिमा, दर्द, शोथ आदि उपद्रव होते हैं।

बवासीर के कारण बहुत-से हैं। मल-बन्ध, मल-त्याग के समय ज़ोर से कींचना, नरम गद्दों पर देर तक बैठे रहना, घोड़े या साइकिल पर देर तक बैठना, तीव्र विरेचन, विशेषतः उत्तेजक विरेचन, जैसे, मुसब्बर आदि का उपयोग अर्शोत्पत्ति में कारण है। यकृत में रक्त का संचय होना अर्श को उत्पन्न करने के लिये पर्य्याप्त साधन है। बवासीर का सम्बन्ध प्रायः करके गुद-चीर के साथ होता है।

चिकित्सा—वाह्यार्श के लिये सेंक, उपनाह और पुल्टिस बाँधनी चाहिये तथा एरंड-तैल या सोडा सल्फेट पीने के लिये देना चाहिये। रोगी को बिस्तर पर आराम देना चाहिये। यदि ज्वर हो, तो साइट्रेट ऑफ मैगनेशिया देना चाहिये। जब सूजन कम हो जाय, उस समय स्थान को ठंडे पानी से या फिटकिरी के पानी से धोना चाहिये और आँतों को खुला रखने का प्रयत्न करना चाहियें। उचित व्यायाम, मृदु विरेचक (हरीतकी खंड या गुलकन्द) अथवा छान की रोटी देनी चाहिये। स्थान की स्वच्छता की ओर विशेषतः ध्यान रखना चाहिये। वाह्यार्श में कार्बोलिक एसिड की एक या दो बूँद प्रविष्ट करनी चाहिये।

अन्तःअर्श के लिये सबसे प्रथम एरण्ड-तैल देना चाहिये, फिर गरम पानी की वस्ति देना उत्तम है। यदि अर्श बाहर निकल आयें, तो ठण्डे

पानी से धोकर इनको पुनः प्रविष्ट कर देना चाहिये। १—जङ्गी हरीतकी, नागकेशर, दूर्वामूल, पिप्पली-मूल समभाग एकत्र करके आमले के हिम कषाय के साथ पीसकर, बेर के बराबर गोली बनाकर, छाछ के साथ खाना चाहिये। २— उशीरमूल-चूर्ण आधा तोला, काला जीरा चौथाई तोला, गन्धक डेढ़ माशे, इनको मक्खन और मिश्री के साथ। ३—१ रत्ती अफीम, ४ रत्ती कपूर और ८ रत्ती सज्जी मिट्टी, इनको घी में मिलाकर लेप देने से अर्श की व्यथा दूर होती है। ४—अँगुली पर रेत लगाकर उससे बाह्यार्श को रगड़ना चाहिये। ५—कुचले को पीसकर इसका लेप अथवा इन्द्रवारुणी फल को पानी में भिगोकर उसके जल से गुदा को धोने पर या अपने मूत्र से अर्श को धोने से, या नौसादर और प्याज के कल्क का लेप करने से आराम हो जाता है। ६—तुत्थ को दही की मलाई में मिलाकर लगाने से नवीन अर्शों को आराम हो जाता है। ७—मुर्दाशंख, पपड़िया कत्था, जस्ता, कज्जल, इलायची तथा चौथाई कपूर, सबसे चौगुना घी मिलाकर पानी में हजार बार धोकर लगाने से अर्श चले जाते हैं। ८—बानर का विष्ठा का धूप देने से अर्श अवश्य चले जाते हैं। ९—नीम, बकायन, गेंदहजारा का चूर्ण पीने से अर्श को आराम होता है। १०—अनार के छिलके, कुन्दरन, जायफल, बबूल की छाल, इन चारों को कूटकर अंगूर के पानी में उबालकर, खरल में पीसकर बवासीर पर लेप करे। ११—करमकल्ले के पत्तों को लेकर इतना उबाले कि गल जायँ और रोगन गुल, अण्डे की सफेदी, थोड़ी अफीम मिलाकर लेप करे। १२—ऊँट के कूबे की चर्बी बवासीर में बहुत उपयोगी है। १३—हरड़ का छिलका, बहेड़े का छिलका, आमला छिला हुआ, प्रत्येक १० दिरम, गुग्गुल को गंदना के पानी में खरल करे और दवाइयों को कूट-छानकर, तिगुने शहद में मिलाकर चाशनी बनानी चाहिये। मात्रा ३ माशे है। १४—छाछ अर्श-रोग के लिये उत्तम गिना जाता है। इसमें नमक सैन्धव मिलाकर पीना चाहिये। १५—सूरन इस रोग के लिये उत्तम औषधि है। १६—भिलावाँ इस रोग के लिये खास दवाई गिनी जाती है। इसका घी या चूर्ण गरम पानी से देना चाहिये। १७—नागकेशर को दही की मलाई के साथ और मिश्री के साथ खाना चाहिये। १८—काले तिलों का उपयोग बवासीर के लिये विशेष उपयोगी है। १९—सल्फर सब लाईम और क्रीम ऑफ टार्टार मिलाकर खाने से अर्श का रक्त बन्द होता है।

शास्त्रीय औषधि—अर्शकुठार, शोणितार्गल, प्राणदा गुटिका, चंद्र-प्रभा, सूरण-मादक, कुटज-रस-क्रिया।

पथ्यापथ्य—सारक द्रव्य, कच्चे पपीते की तरकारी, गूलर, तिल, सूरन, मूँग उत्तम हैं। गरम, दाहकारक भोजन या मल-बद्ध करनेवाली वस्तुयें इस रोग में हानिकारक हैं। मस्से काढ़ने की रीति का उपयोग किसी जानकार वैद्य से करवाना चाहिये। इस काम के लिये प्रायः हरताल, फलद-फीयून, दीक-बरदीक का उपयोग किया जाता है। मस्सा काटते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि सब मस्सों को काट दे, परन्तु एक मस्सा रोक ले। जिससे यदि रोग बढ़े, तो इस मस्से के कारण उसके खराब बुखारात बाहर हो जायँ।

प्रकरण छठा

मूत्र-संस्थान-सम्बन्धी रोग

मूत्र-संस्थान में दो वृक्क या मूत्र-पिण्ड, दो मूत्र-नलिका, बस्ति और शिश्न, इन चार अवयवों का समावेश होता है। प्रायः करके मूत्राशय के रोग शारीरिक हैं; परन्तु कभी-कभी बाहर से भी संक्रमण आकर रोग को उत्पन्न कर देते हैं। शिश्न-सम्बन्धी रोगों का तथा रति-शक्ति-हीनता, या पुरुषों के गुप्त रोगों का भी इसी प्रकरण में समावेश किया गया है।

वृक्क-शोथ

वृक्क या गुरदे की शोथ के शीर्षक के कई अवस्थाओं का समावेश किया जाता है। जैसे—गठिया रोग की अवस्था, सीसक विष, अधिक मद्य-पान या क्षय अथवा निर्बल करनेवाले रोगों में वृक्क के अन्दर शोथ हो जाती है। चाहे कारण कुछ भी हो, वृक्क की रचना के अन्दर परिवर्तन आ जाता है, जिससे कि भिन्न-भिन्न लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। सबसे प्रथम जो लक्षण इस रोग का ध्यान खींचता है, वह मूत्र में एल्ब्युमन का जाना है। साधारणतः आँखों से देखने पर एल्ब्युमन का पता नहीं चलता। परन्तु गरम करके तेज़ नाइट्रिक एसिड डालने से यह मूत्र से अलग होकर श्वेत निक्षेप के रूप में नीचे बैठ जाता है। एल्ब्युमन को देखने ही से इस रोग का निश्चय नहीं कर लेना चाहिये। क्योंकि एल्ब्युमन कई कारणों से (यथा—अजीर्ण के कारण, अण्डे, पनीर आदि खाने से, शीत स्नान के पश्चात् भी) मूत्र में आ जाता है। एल्ब्युमन यकृत-विकार के कारण भी हो जाता है।

यदि एल्ब्युमन के साथ वृक्क-नलिकाओं के छिलके भी मूत्र में मिलें, तो इस रोग का पूर्ण निश्चय कर लेना चाहिये। इसके अतिरिक्त मूत्र की शक्ति का कम हो जाना, रात्रि में मूत्र-प्रवाहण के लिये बार-बार उठना, पीठ के निचले भाग में मन्द बेचैनी, अजीर्ण और बिना किसी स्पष्ट कारण के शरीर में निर्बलता का आजाना। परन्तु कई बार यह रोग इतने शनैः-शनैः आता है कि मूत्र-

परीक्षा ही से पता लगता है। ज्यों-ज्यों रोग बढ़ता जाता है, रोगी का चेहरा पीला होता जाता है। उसकी आँखों के नीचे सूजन आजाती है। तन्द्रा का अनुभव होता है। निर्बलता के साथ सिर-दर्द, श्वास का छोटा हो जाना, बार-बार मूत्र-प्रवाहण की इच्छा (विशेषतः रात्रि में); कभी-कभी बेचैनी और कभी-कभी वमन होता है। अन्तिम अवस्था में हृदय भी आक्रान्त हो जाता है। शोफ प्रायः करके रहता है। वृक्क-शोथ के रोगियों में श्वास-प्रणाली के रोग बहुत शीघ्र अपना स्थान कर लेते हैं।

उपाय—१—इस रोग में वृक्कों को आराम देना चाहिये। उनके कार्य को कम करने के लिये शरीर की त्वचा को उत्तेजित किया जाता है। साथ ही रेचक दवाइयों से रक्त के दबाव को कम करना उत्तम है। पसीने और मल-द्वार से पानी का बहुत-सा हिस्सा बाहर निकलता है, इससे वृक्कों का कार्य घट जाता है।

२—वृक्क के ऊपर जलौका या शुष्क कपिंग करवाना चाहिये। अशक्त रोगी के लिये अलसी की पुलटिस या राई का प्लास्टर लगाना चाहिये। पोस्त के डोडों का गरम पानी की बोतल का सेंक करना चाहिये। कम्पाउण्ड जैलप, स्केमनी या कालादाना, स्वर्णमुखा, अमलतास का गूदा आदि विरेचक औषधि बरतनी चाहिये। यदि ज्वर हो, तो स्वेदक औषधियाँ देनी चाहिये। जौ का आटा, चन्दन, मामीसा, मकोय का पानी, कासनी का पानी, बनफसे का तेल, सबको मिलाकर गुर्दे पर लेप करना चाहिये। अमलतास का गूदा, बादाम का तेल, अथवा खट्टे-मीठे अनार के पानी में शिरीखिस्त या हरड़ के क्वाथ में उन्नाब, लिसोड़ा, आलू, बनफसा, कासनी, मकोय, इनको मिलाकर देना चाहिये। इससे कोष्ठ नरम हो जायगा। सूजन को नम करने के लिये उन्नाब ५० दाने, सफेद खसखस ३० दिरम, सूखा धनिया १० दिरम, मसूर छिली हुई १०० दिरम लेकर उबाले। पीछे से २०० दिरम शर्करा मिलाकर चाशनी पकानी चाहिये। इसकी मात्रा १० दिरम है। इसको खुर्फे या ककड़ी-खीरे के पानी के साथ पिलाना चाहिये। कूठ का तेल, सोये और गर्म पानी से सेंक करना चाहिये। अफतीमून का क्वाथ और अमलतास का गूदा भी देना लाभदायक है।

चन्द्र-प्रभा का उपयोग इस रोग में विशेष उपयोगी है। अलसी की चाय इस रोग में शोथ को कम कर देती है।

भोजन में केवल दूध तथा साबूदाने की कांजी देनी चाहिये। रोगी को बिस्तर पर पूर्ण विश्राम देना चाहिये।

मूत्राश्मरी

यह रोग प्रायः करके वहाँ मिलता है, जहाँ पर पानी में चूने की मात्रा अधिक होती है। अश्मरी का निर्माण शर्करा से होता है। ये मूत्र के नीचे निक्षिप्त हो जाते हैं। साधारणतः दो प्रकार की शर्करा मिलती है—१—लाल और २—श्वेत। लाल शर्करा यूरिक एसिड या यूरो के मिलने से बनती है।

जिस व्यक्ति के मूत्र में लाल शर्करा आती है, उसका मूत्र साफ़, अम्ल, गहरा पीला होता है। जब यह ठण्डा हो जाता है, तो निक्षेप नीचे बैठ जाता है। श्वेत शर्करा प्रायः ऑक्सोलेट, फॉस्फेट आफ लाइम आदि से बनते हैं। मूत्र में प्रवाहण होने से पूर्व ये बन जाते हैं, इसलिये रोगी का मूत्र हल्दी के समान पीले रंग का होता है। लाल शर्करा के कारण रोगी की प्रकृति निर्बल हो जाती है। उसको सर्दी शीघ्र हो जाती है। हल्लास, हृदय की जलन, आमाशय में अम्लता, अजीर्ण, यकृत के रोग होते हैं। लाल शर्करा के साथ आमवात या गठिया का रोग भी मिला रहता है। कई बार लाल शर्करा के बहने के साथ कटि में दर्द होता है, बार-बार मूत्र-प्रवाहण की इच्छा होती है।

जिस समय बड़े-बड़े टुकड़े मूत्र में प्रवाहित होते हैं, उस समय कटि में दर्द होता है, जो वंक्षण, अण्ड-कोष, जंघा की ओर जाता है। रानों में निर्बलता, मूत्र-प्रवाहण की इच्छा तथा मूत्र-प्रवाहण में दर्द होता है। पुरुषों में अण्ड-कोष साधारणतः ऊपर की ओर खिंच आते हैं। इन लक्षणों के साथ रोगी को मूर्च्छा या ज्वर भी हो जाता है। कई रोगियों में बिना किसी प्रकार की चेतावनी के पीठ और कटि में तीव्र दर्द उत्पन्न हो जाता है, जिसके साथ रोगी को वमन भी हो जाता है। मूत्र-प्रवाहण की इच्छा रोगी को बार-बार होती है। मूत्र का रंग गहरापीला या रक्त-मिश्रित और रंग गँदला होता है। वृक से अश्मरी बनकर मूत्र-नलिका में आती है और वहाँ से वस्ति में आजाती है। वस्ति में शर्करा पड़ी रहती है। यहाँ पर आकार में बढ़ती है और अश्मरी बन जाती है और यदि छोटी है, तो मूत्र के साथ बह

जाती है। यदि शर्करा इतनी बड़ी हो जाय कि वृक्क की नलिकाओं से बाहर न आ सके, तो वहाँ शोथ और विद्रधि उत्पन्न कर देती है।

अश्मरी के कारण तीव्र दर्द, बार-बार मूत्र-प्रवाहण की इच्छा, शिश्न के अग्र भाग पर खुजली होती है। इस खुजली को मिटाने के लिये बच्चा त्वचा को बार-बार आगे की ओर खींचता है, जिससे त्वचा लाल होजाती है। कई बार ऐसा होता है कि बहती हुई मूत्र की धारा, पथरी के वस्ति-मुख पर आकर रुक जाती है, जिससे धारा का प्रवाह सहसा बन्द हो जाता है। कई बार मूत्र के साथ रक्त भी मिला रहता है। मल-त्याग के समय बच्चों को बहुत कोंचना पड़ता है।

उपाय—आक्रमण के समय रोगी को गरम स्नान देना चाहिये और पीने के लिये २५ ग्रेन क्लोरल देना चाहिये। प्रत्येक ६ या ८ घण्टे के अन्तर से इस औषधि को पुनः देना चाहिये। कटि-प्रदेश पर उष्ण परिसेक करना चाहिये। यदि मलबन्ध हो, तो विरेचन देना चाहिये। रोगी को यवोदक, अलसी की चाय या मृदु चाय देना चाहिये। रोगी को क्षारीय औषधि देना चाहिये। भोजन के तीन घण्टे पीछे क्षारीय औषधि देना उत्तम है। रोगी को पानी विशेषरूप से पोने के लिये देना चाहिये।

उपाय—१—खुश्क पुदीना, अफसन्तीन, अजमोदा, हिलीयून की जड़, सौंफ, तितली की जड़, ककड़ी के बोज, सरसों का तेल, परसियावसाँ लाभकारक है। इनकी चटनी बनाकर देनो चाहिये। २—सोंठ, उशीर, गोखरू, पाषाण-भेद और ब्राह्मी इनके काढ़े में जौखार पीना चाहिये। ३—गोखरू का चूर्ण मधु में मिलाकर सात दिन तक बकरी के दूध में पीना चाहिये। ४—शोभाञ्जन का काढ़ा गरम-गरम पीना चाहिये। ५—आर्द्रक, जौखार, हरड़, दारुहल्दी का चूर्ण दही में खाना चाहिये। ६—वरुण की छाल की राख ३२ तोला, जौखार १६ तोला, गुड़ आठ तोला मिलाकर १ तोले की मात्रा खाकर ऊपर से वरुण का काढ़ा पीना चाहिये। ७—वरुण की छाल सोंठ, गोखरू इनके काढ़े में यवक्षार २ माशे और पुरातन गुड़ २ माशे मिलाकर देना चाहिये। ८—वरुण-छाल, पाषाण-भेद, सोंठ और गोखरू इनके काढ़े में जौखार देना चाहिये। ९—वरुण-छाल या तृण-पंचमूल के काढ़े में यवक्षार मिलाकर देना चाहिये। १०—एरण्ड, तालमखाना, गोखरू, वृहती और कण्टकारी इनका मल-मिश्रित ४ माशे दूध में पीसकर मीठी दही में

सात दिन तक लेने से अश्मरी-रोग को आराम हो जाता है। १२—गोत्तुर-बीज-चूर्ण को मधु के साथ पीकर ऊपर से भेड़ का दूध पान करने से अश्मरी नष्ट हो जाती है। १२—नारियल का फूल या नारियल का रस यवक्षार के साथ पीने से निश्चय आराम होता है।

शुक्राश्मरी—इस रोग का कारण उत्पन्न हुये शुक्र को शुक्राशय में रोक लेना है। वहाँ पर शुष्क होकर यह अश्मरी का रूप तो धारण नहीं करता; परन्तु सब लक्षण अश्मरी के समान हो जाते हैं। जैसे—मूत्र में दाह, जलन, मूत्र-प्रवाहण की बार-बार इच्छा। इस अवस्था में शीत-मूत्रल उपचार करना चाहिये, और प्रयत्न करना चाहिये कि मूत्र के साथ शुक्र बाहर आजाय।

उत्पन्न होने से पूर्व ही शुक्र का निरोध करना उत्तम है, और उत्पन्न हो जाने पर उसका मूत्र-मार्ग से बाहर हो जाना ही बेहतर है।

शास्त्रीय औषधि—त्रिकण्टक का काढ़ा (गोत्तुर-क्वाथ), त्रिविक्रम-रस।

शुक्रावरोध के कारण जो जलन हो जाती है, उसके लिये ईसबगोल का लुवाब, बिहीदाने का लुवाब, बेदाने का लुवाब, खुरफे का शीरा, काहू का शीरा, शर्बत खसखस, बनफशा, जौ का काढ़ा, कद्दू का तेल देना चाहिये।

मूत्रकृच्छ्र

इस रोग में मूत्र-वस्ति और मूत्र-प्रणाली के कई रोगों का समावेश होता है। मूत्रकृच्छ्र-रोग में मूत्र कठिनता से दर्द के साथ आता है। कई बार मूत्र बूँद-बूँद आता है।

कारण—मूत्रकृच्छ्र का मुख्य कारण औपसर्गिक-प्रमेह है। इस प्रमेह के कारण स्थायी मूत्रकृच्छ्र उत्पन्न हो जाता है। प्रमेह के कारण मूत्र-प्रणाली में व्रण हो जाते हैं। इन व्रणों के रोहण से श्लेष्म-कला का पृष्ठवर्त्ती आवरण संकुचित होता है। इस संकोच के कारण मूत्र-नलिका-छिद्र भी तंग हो जाता है। इसके अतिरिक्त इसी प्रमेह के कारण ग्रन्थि भी बढ़ जाती है। इस ग्रन्थि के बढ़ने से भी मूत्र-मार्ग तंग हो जाता है। यह

ग्रन्थि वृद्धावस्था में भी बढ़ जाती है; उस समय भी मूत्रकृच्छ्र-रोग की अवस्था उत्पन्न हो जाती है। इसके अतिरिक्त पथरी, चोट लगना, वस्ति या मूत्र-प्रणाली के भाग पर विशेष शीत पहुँचना इस रोग का कारण बन सकता है।

लक्षण—रोगी को बार-बार मूत्र प्रवाहण की इच्छा होती है; विशेषत: रात्रि में। मूत्र-प्रवाहण के पीछे थोड़ा-सा मूत्र बूँद-बूँद करके गिरता रहता है, जिससे कपड़े गीले होजाते हैं, मूत्र-प्रवाहण में कष्ट बढ़ता जाता है। धारा का प्रवाह मन्द, छोटा, बँटी हुई रस्सी की भाँति होता है। शिश्न के अग्र भाग पर प्राय: खुजली रहती है और चिकना स्राव होता है।

उपाय—मूत्रकृच्छ्र-रोग का वास्तविक कारण का पता लगाकर चिकित्सा करनी चाहिये। यदि इस रोग का कारण औपसर्गिक-प्रमेह हो, तो मूत्र-नलिका को विस्तृत करना चाहिये। इसके लिये रबड़ की 'बुग्गी' (Rubber Catheter) बनी हुई बाजार में मिलती है। इसके प्रवेश की विधि चिकित्सक से सीख लेनी चाहिये। इसको क्रमश: नम्बरवार प्रवेश करके देखना चाहिये। जो बुग्गी सबसे अन्त में जाय, उसको कुछ देर के लिये वहाँ छोड़ देना चाहिये। इससे मार्ग चौड़ा हो जायगा। इस प्रकार कुछ समय पश्चात् उससे अगला नम्बर प्रविष्ट करना चाहिये। इस प्रकार करने से मूत्र-मार्ग विस्तृत हो जाता है और फिर समय-समय पर मूत्र-मार्ग में शलाका प्रविष्ट करते रहना चाहिये।

इसके अतिरिक्त रोगी को गरम पानी में बिठाना चाहिये। सीवन पर उष्ण सेंक करना चाहिये। रोगी को मृदु, विरेचक, क्षारीय औषधि देनी चाहिये।

औषधि-चिकित्सा—१—इलायची, पाषाणभेद, शिलाजीत, गोखरू, ककड़ी के बीज, सेंधानमक तथा केसर, इनका चूर्ण चावलों के धोवन के साथ। २—ककड़ी के बीज, मुलहठी, दारुहल्दी का चूर्ण तण्डुलोदक के साथ। ३—केले के रस के साथ इलायची का चूर्ण। ४—जौखार ५ माशे शर्करा के साथ। ६—जौखार गोखरू के साथ। ७—कुलथी के क्वाथ में सैंधानमक। ८—हरड़, गोखरू, पाषाणभेद ६ माशा और अमलतास का गुद्दा—इनका क्वाथ मधु के साथ। ९—तृण पंचमूल का काढ़ा। १०—कण्टकारी के रस में शहद मिलाकर ११—सोडा और पोटाशियम बाई

कार्ब का उपयोग करना चाहिये । १२—मूली के रस के साथ यवक्षार और शोरे की मात्रा के पीने से, १३—गन्धक, नौसादर १ कुडव, शोरा १ प्रसृति, यवक्षार १ पल, मूली का क्षार १ पल, कपूर २-३ माशा—इन सबके मिलाकर डमरू-यंत्र में उठाना चाहिये । ऊपर के बर्त्तन में लगे हुये क्षार के उतारकर शीशी में भर लेना चाहिये । प्रयोग के समय इसमें से कुछ लेकर गुलाब के अर्क में मिलाकर वस्ति पर रखना चाहिये । १४—शोरे के पिघलाकर इसमें गन्धक मिला देना चाहिये । इस शीतल पर्पटी के जीरा के साथ देना चाहिये । १५—खुरफे के बीज, कद्दू के बीज, खरबूजे के बीज, कास के बीज, काहू के बीज, ककड़ी-खीरे के बीज, तरबूज के बीज, शरबत, खसखस का पानी लाभदायक है ।

पथ्यापथ्य--प्रवाही और वस्ति-शोधक पदार्थ विशेषरूप से खाने के देना चाहिये । गरम भोजन नहीं करना चाहिये । चावल, जौ, दूध, छाछ, चाय, कॉफी, सोडा-वाटर, लीथिया-वाटर का उपयोग करना चाहिये ।

मूत्राघात

मूत्रकृच्छ्र के कारण अथवा पथरी के अवरोध के कारण पेशाब बन्द हो जाता है । मूत्र का अवरोध दो प्रकार से होता है । एक तो मूत्र की उत्पत्ति वृक्कों ही में न हो । इस अवस्था के 'सप्रेशन ऑफ यूरिन' कहते हैं । यह अवस्था विसूचिका में होती है, जब रक्त से पानी का भाग बहुत अधिक मात्रा में निकल जाता है, और रक्त गाढ़ा हो जाता है । दूसरे प्रकार की अवस्था वह है, जब वृक्कों से मूत्र बनकर वस्ति में आजाय, परन्तु वस्ति से मूत्र का प्रवाहण न हो । जैसे, मूत्राशय की अश्मरी में अथवा मूत्राशय के विक्षोभ के कारण या शोथ के कारण जबकि मूत्राशय संकुचित नहीं हो सकता ।

मूत्राघात के कारण रोगी के बेचैनी रहती है, पेडू पर दर्द, प्यास, तथा मूत्राशय पर दबाव देने से दर्द होता है । बहुत कींचने पर थोड़ा-सा मूत्र आता है, जो कि बहुत दर्द और जलन से आता है । मूत्राघात की अवस्था कई बार प्रसव के लम्बे होने से भी हो जाती है ; विशेषतः जबकि प्रसव से पूर्व मूत्राशय साफ़ न किया जाय ।

उपाय—१—गरम पानी में बैठना, गरम पानी में पोस्त के डोडे उबालकर उनका नाभि पर सेंक करना चाहिये। २—सोडा बाई कार्ब, पोटाशियम बाई कार्ब, सुराखार, जौ का पानी इनमें से कोई भी मूत्रल पदार्थ पानी के साथ देना चाहिये। ३—त्रिफला, सेंधा नमक, ककड़ी के बीज, इनको गरम पानी में पीसकर लेप करना चाहिये। ४—१० से १५ ग्रेन डोवर्स पाउडर का देना भी उत्तम है। ५—गोखरू, कवावचीनी, नेत्रवाला, मुलहट्ठी, हरीतकी, धमासा, कुशमूल, पलाश-बीज प्रत्येक १० आना, इनको आध सेर जल में भिगोकर चातुर्थांशिक काढ़ा शेष रखना चाहिये। ६—कुलथी, बरुणछाल, गोखरू, पुनर्नवा, प्रत्येक आधा तोला इनको आध सेर जल में भिगोकर जब चौथाई शेष रहे, तब इस पाचन के साथ यवक्षार मिलाकर देना चाहिये। ७—अश्वगन्धा का काढ़ा पिलाने से लाभ होता है। ८—बकरी के मूत्र और विष्ठा में तर मिट्टी को शोरे के साथ मिलाकर नाभि के नीचे लगाने से मूत्राघात बन्द हो जाता है। ९—तमाखू और पलाश के फूल का स्वेद मूत्राघात में उत्तम है। १०—कूठ के तेल में या सौसन के तेल में जुन्दबेदस्तर या फरफयून मिलाकर लेप करना चाहिये। ११—सोंठ, काली मिर्च, पिप्पली, दालचीनी, आँवला, जिराबन्द गोल, चिलगोजे की मींग, बाबूने की जड़, ताजा नारियल प्रत्येक १० दिरम, बाबूना ५ दिरम, मग़ज मुनक्का ३० दिरम, शहद दुगुना-तिगुना मिलाकर माजून बनाना चाहिये। अलसी के बीज, मेथी, करमकल्ले के पत्ते, खत्मी उबालकर, उसके पानी में रोगी को बिठाना चाहिये। १२—चमेली के तेल में कस्तूरी या जुन्दबेदस्तर मिलाकर मूत्र-मार्ग में टपकाना चाहिये।

पथ्यापथ्य—दारू, श्रम, मैथुन, घोड़े की सवारी, विरुद्ध अन्न-पान, उड़द, मूत्र के वेग को रोकना, अम्लता, उष्णता, तीखा, दाहकारक पदार्थों को छोड़ना चाहिये।

पथ्य—पुरातन धान्य, मीठा छाछ, गाय का दूध, मूँग की दाल का पानी, शर्करा, पुराना पेठा, परवल, गोखरू, , नारियल का पानी, इलायची तथा ठण्डे पदार्थों का सेवन उत्तम है।

शास्त्रीय औषधि—कुशावलेह, तृणपंचमूल-क्वाथ।

शय्या-मूत्र

यह रोग बच्चों में होता है। इसका कारण यह है कि मूत्र को नियमित करनेवाला केन्द्र बच्चों में अपना कार्य नहीं करता। जबतक यह केन्द्र अपना कार्य नहीं करता, तबतक बच्चा बेखबरी से मूत्र-प्रवाहण करता रहता है।

इसके अतिरिक्त जब किसी और कारण से भी इस केन्द्र का कार्य बन्द हो जाता है, उस समय मनुष्य इच्छा से बाहर हो जाते हैं। इसके लिये सरल विधि यह है कि बच्चे को सोते समय तथा उसको उठाकर आधी रात में पेशाब करवा देना चाहिये। भोजन सोने से ३-४ घण्टे पहले करा देना चाहिये। पीने के लिये रात्रि में पानी नहीं देना चाहिये। १—सौसन के तेल में फरफयून मिलाकर लेप करना चाहिये। शहद और गुलकन्द खिलाना चाहिये। जीरा, कुन्दरन, हब्बुलआस प्रत्येक ५ तोला, ४० तोला शहद में मिलाकर देना चाहिये। २—गुलनार, वंशलोचन, गिले अरमानी, खुरफे के बीज, काहू के बीज इनकी गोली देनी चाहिये। ३—शिशु के चारपाई के नीचे की मिट्टी उठाकर इसको भूनकर घी और शहद के साथ चटाना चाहिये।

प्रमेह

आयुर्वेद मे बीस प्रकार के प्रमेह गिने गये हैं। इनमें १० प्रमेह कफ-जन्य, ६ पित्त-जन्य और ४ वात-जन्य हैं। वात-जन्य प्रमेह असाध्य है। प्रमेह का सम्बन्ध पाचन-क्रिया के साथ है। इनके कारण वे ही हैं, जो अजीर्ण के कारण हैं, जैसे—बैठे रहना, आलसीपन, दही-मीठा आदि कफ-कारक गरिष्ठ भोजनों का सेवन करना, प्राणियों का मांस, नया अन्न, पानी, गुड़ इत्यादि पदार्थों का सेवन करना है।

प्रमेह के कारण रोगी को प्यास बहुत लगती है। दाँतों के अन्दर मैल भर जाती है, मुँह से दुर्गन्धि आती है, बार-बार मूत्र-प्रवाहण की इच्छा बनी रहती है, शरीर पर चिकनाहट रहती है। इस रोग में श्वेत निर्मल मूत्र का बहुत आना मुख्य लक्षण है।

मिथ्या आहार-विहार से दोष, वात, पित्त, कफ कुपित होकर सम-

धातुओं को भी कुपित कर देते हैं। उनके विकार से शरीर के अन्दर नाना प्रकार के प्रमेह उत्पन्न हो जाते हैं। जैसे—

१—उदकमेह—इसमें मूत्र निर्मल, बहुत, ठण्डे पानी के समान, बिना गन्ध के तथा बिना स्नेह भाग के होता है।

२—ईक्षुमेह—गन्ने के रस के समान मीठा और अधिक मात्रा में मूत्र आता है।

३—सान्द्रमेह—यदि रात के समय मूत्र को एक बर्त्तन में रख दिया जाय, तो प्रातः सान्द्र (गाढ़ा) हो जाता है।

४—सुरामेह—मूत्र का रंग और वर्ण सुरा के समान होता है। ऊपर से निर्मल, नीचे से गाढ़ा होता है।

५—पिष्टमेह—मूत्र का रंग पीठी (उड़द को या चावलों को पीसकर जो पीठी बनती है) के समान श्वेत, पीला तथा मूत्र-प्रवाहण के समय रोगी का शरीर रोमाञ्चित हो जाता है।

६—शुक्रमेह—वीर्य का या वीर्य-जैसा स्राव, जो कूपरस ग्लैण्ड या प्रोस्टेट ग्लैण्ड से होता है, मूत्र के साथ स्रवित होता है। इसको 'स्पर्मैटोरिया' समझा जा सकता है।

७—सिकतामेह—रेत के समान छोटे-छोटे कण मूत्र में आयें।

८—शीतमेह—बार-बार ठण्डा पेशाब आये।

९—शनैःमेह—धीरे-धीरे मन्द वेग से पेशाब आये।

१०—लालामेह—लाला (लार) के समान तारवाला और चिकना मूत्र आता है।

११—क्षारमेह—खार के समान गन्ध, वर्ण, रस और स्पर्शवाला मूत्र आये।

१२—नीलमेह—नीले रंग के समान मूत्र आये। यह मूत्र 'मैथेलीन ब्ल्यू' के देने से भी आ सकता है, जो गनोरिया में बरती जाती है।

१३—कालमेह—काजल के समान काला मूत्र आये।

१४—हारिद्रमेह—इस मेह में मूत्र का रंग हल्दी के समान पीला होता है। यह मूत्र 'ट्राइफ्लो फ्लैवरीन' के इंजेक्शन देने से भी हो जाता है।

१५—मांजिष्ठमेह—कच्चे पदार्थ की गन्धवाला और मजीठ के रंग का मूत्र आता है।

१६—रक्तमेह—कच्चे पदार्थ की गन्धवाला गरम, लवण-स्वाद-युक्त और रक्त वर्ण होता है।

१७—वसामेह—चरबी के समान रंगवाला और चरबी से मिला हुआ मूत्र आये। इसको अनार्य-चिकित्सा का एल्ब्युमन माना जाय, तो ठीक है।

१८—मज्जामेह—मज्जा-युक्त मूत्र प्रवाहित हो।

१९—हस्तिमेह—हाथी के मद के समान गन्धवाला, वेग-रहित मूत्र आता है।

२०—क्षौद्रमेह—मीठा और रूक्ष मूत्र आता है। चरक में इसीको मधुमेह के नाम से कहा है। अनार्य-चिकित्सा में इसीको 'डायबिटीज़' कहा जाता है।

इनमें प्रथम दस मेह कफ-जन्य, अगले छः पित्त-जन्य और पिछले चार वात-जन्य हैं।

उपद्रव—कफ-जन्य प्रमेह के कारण भोजन का परिपाक नहीं होता। भोजन में अरुचि, निद्राधिक्य, खाँसी कफ-मिश्रित और पीनस होता है। पित्त-जन्य प्रमेहों में लिंग और वस्ति में सुई के चुभने के समान दर्द, अण्ड-कोषों में शूल, ज्वर, दाह, अम्लपित्त, खट्टे डकार, मूर्च्छा होती है। वात-जन्य प्रमेह में उदावर्त्त, कम्प, हृदय-वेदना, सब प्रकार के आहारों के खाने की इच्छा, शूल, अनिद्रा, शोथ, कास और श्वास-रोग होते हैं।

इसके अतिरिक्त पीडिका उपद्रव इस रोग में प्रायः होता है।

उपाय—प्रमेह रोगी साधारणतः दो प्रकार के होते हैं, एक स्थूल और बलवान्, और दूसरे कृश तथा निर्बल। इनमें प्रथम प्रकार के रोगी का संशोधन करना चाहिये, और दूसरे प्रकार के रोगी का संशमन और संतर्पण करना उचित है। चिकित्सा को प्रारम्भ करने से पूर्व रोगी के संशोधन करना आवश्यक है। उसके पीछे चिकित्सा प्रारम्भ करनी चाहिये।

कफ-प्रमेह—हरीतकी, कायफल, लोध्र, मुस्ता, पाठा, बिडंग, अर्जुन, धमासा; हल्दी, दारुहल्दी, तगर, बिडङ्ग; कदम्ब, शाल, अर्जुन, अजवायन,

दारुहल्दी, बिडङ्ग और खदिर; देवदारु, कूठ, अर्जुन, चन्दन; दारुहरिद्रा, अग्निमन्थ, त्रिफला, पाठा; अजवायन, उशीर, हरीतकी, गुडुची; जामुन, हरीतकी, चित्रक, सप्तपर्ण; पाठा, मुर्व्वा, गोखरू, इन दस कषायों के देने से कफ-जन्य दशों प्रमेह अच्छे होते हैं। इन कषायों में मधु मिलाकर देना चाहिये। उदक-मेही रोगी को पारिजात कषाय; ईक्षुमेही को जयन्ती क्वाथ; सुरामेही को नीम का कषाय; सिकतामेही को चीते का क्वाथ; शनैःमेही को खदिर का क्वाथ; लवणमेही को पाठा और अगर का क्वाथ; पिष्ठमेही को हरिद्रा और दारुहरिद्रा का क्वाथ; साधुमेही को सप्तपर्ण क्वाथ; शनैःमेही को त्रिफला-गुडूची कषाय; सान्द्रमेही को त्रिफला-आरग्वध कषाय; शुक्रमेही को दूर्वा, शैवाल, करञ्ज, कशेरुन, प्लवक, इनका अथवा अर्जुन और चन्दन का कषाय; शीतमेही को पाठा और गोक्षुर का क्वाथ; ईक्षुमेही को नीम का कषाय और सुरामेही को सिम्बल का कषाय पिलाना चाहिये।

पित्त-प्रमेह—उशीर, लोध्र, अर्जुन, लाल चन्दन, मोथा, आँवला, हरड़, पटोल, आँवला और गिलोय; मुस्ता, हरड़, पद्माख, कुडा; लोध्र, मुस्ता, दारुहरिद्रा, धाय के फूल, नीम, अर्जुन, आम की छाल, हरिद्रा और नील कमल, इनके कषाय मे क्रमशः मजीठ, हरिद्रा, नील, कृष्णा, क्षार तथा रक्त-मेह अच्छे हो जाते हैं। पीपल, अमलतास, न्यग्रोधादि गण, त्रिफला, एवं मजीठ और लाल चन्दन-काढ़ा इन पाँच प्रकार के काढ़े में मधु मिलाकर पान करने से नील-मेह हरिद्रा-मेह, शुक्र-मेह और क्षार-मेह तथा मजीठ-मेह आराम होते हैं। खजूर, गम्भारी, गिलोय इनका काढ़ा शीतल करके मधु के साथ पान करने से आराम होता है। पाठा, कुटज, हींग, कुटकी और कूठ इनके चूर्ण को गिलोय और चित्रक के काढ़े में मिलाकर पान करने से सर्पि-मेह शान्त होता है। पाठा, शिरीष, धमासा, मुर्व्वा, केसु, तिन्दुक और कैथ का काढ़ा हस्ति-मेह में; सुपाड़ी का काढ़ा मधु के साथ क्षौद्र-मेह में; अग्निमन्थ या शीशम के कषाय को मधु के साथ वसामेही रोगी को देना चाहिये।

कमीला, सप्तपर्ण, शाल, बहेड़ा, रोहितक, कुडा, कैथ इनके कषाय को मधु के साथ, कफ-पित्त रोगी को; हरड़, मोथा, लोध्र, चन्दन लाल, उशीर इनके काढ़े में मधु मिलाकर पीने से; वात-श्लेष्म रोगी को; विडंग, अर्जुन, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, उशीर, सुपारी इनके काढ़ा को पीने से वात-पित्त रोगी को आराम होता है।

सब प्रकार के प्रमेहों में उपयोगी चिकित्सा—१—मधु और हरिद्रा चूर्ण के साथ आँवले का रस अथवा त्रिफला, देवदारु और मोथा इनका काढ़ा पीना चाहिये। २—गिलोय के स्वरस में मधु मिलाकर पीने से; ३—त्रिफला, दारुहरिद्रा, लांगली और मोथा इनके काढ़े में हल्दी और शहद मिलाकर; ४—त्रिफला, लोह, शिलाजीत; अथवा हरीतकी-चूर्ण मधु के साथ सेवन करने से; ५—नारियल के पानी में फिटकिरी का चूर्ण मिलाकर नारियल के पानी में दबा देना चाहिये। २४ घण्टे के पीछे निकालकर इस पानी को पीने से सब प्रकार के प्रमेह आराम होते हैं। ६—दूध के साथ शतावरी का रस; ७—कच्चे दूध के साथ पानी मिलाकर प्रातःकाल पीने से; ८—टेशु १ तोला, शर्करा आधा तोला मिलाकर शीतल जल के साथ पान करने से आराम होता है। ९—कच्ची हल्दी, गिलोय, आँवला और कच्चे गूलर इनको कूटकर रस निकालकर, पानी मिलाकर दूध के साथ पान करने से मूत्र-नाली की ज्वाला और स्राव नष्ट होता है। १०—कच्ची हल्दी का रस, श्वेत चन्दन, अरबी गोंद, इनको घिसकर १ रत्ती मात्रा वंगभस्म मिलाकर पान करने से शीघ्र आरोग्य होता है। ११—शिलाजीत, इलायची, वंगभस्म इनको मधु के साथ मिलाकर देने से; १२—चला, कपिकच्छु, उटींगण और इनके बराबर शर्करा मिलाकर दूध के साथ पान करने से; १३—पलाश का गोंद, पाषाण-भेद, समुद्र-शोष, दालचीनी, इनका चूर्ण दूध के साथ लेने से शुक्र-दोष आराम होता है। १४—बबूल की गोंद उसके फूल को खाँड़ के साथ मिलाकर शुक्र-मेह में देना चाहिये। १५—१ तोला फिटकिरी, २ भाग इलायची और ४ भाग शर्करा इनको मिलाकर तीन पुड़िया बनानी चाहिये। इसको मूत्र जलन में देना चाहिये। १६—बहुमूत्र रोग में काले तिल बड़े उपयोगी हैं।

शास्त्रीय औषधि—प्रमेह-चिन्तामणि, बंगेश्वर, तारकेश्वर, स्वर्ण-वंग, वसन्तकुसुमाकर।

पथ्यापथ्य—लंघन, वमन, विरेचन, पुराने चावल, जौ, त्रिफला, कुलथी, चना, मूँग, स्नान, व्यायाम, मधु, परवल, ककड़ी, पक्का केला, जामुन, खजूर उपयोगी हैं। मूत्र का रोकना, मद्य या तमाखू पीना, दिन में सोना, नया अन्न, दही, बरसात का पानी, मिष्ठान्न, मैथुन, मद्य, गुड़, घी आदि पदार्थ अपथ्य हैं।

आर्य-चिकित्सा में लिखा है कि स्त्रियों को प्रमेह-रोग नहीं होता;

क्योंकि रज के द्वारा उनका शोधन प्रतिमास होता रहता है। परन्तु अनार्य-चिकित्सा के अनुसार तथा प्रत्यक्ष दृष्टि से स्त्रियों में भी प्रमेह-रोग मिलते हैं।

प्रमेह से स्वस्थ होने का लक्षण—प्रमेह-रोगी का मूत्र जिस समय गँदला न रहे, स्वच्छ हो जाय; चिकना न रहे, स्वाद में तिक्त और कटु हो, उस समय समझना चाहिये कि रोगी स्वस्थ होगया।

प्रमेह-पीडिका के लिये—गूलर के दूध का अथवा बावची का लेप करना चाहिये और अनन्तमूल, काली शारिवा, द्राक्षा, त्रिवृत्त, स्वर्णमुखा, कटुकी, हरीतकी, वासक-छाल, नीम-छाल, हरिद्रा, दारुहरिद्रा और गोखरू-बीज इनका काढ़ा पान करने से रोगी की पीड़िका को आराम होता है।

मधु-मेह

विवेचन—इस रोग में पेशाब बहुत आता है, और उसमें शर्करा होती है। इस शर्करा के कारण पेशाब पर चींटियाँ आती हैं। रोगी को प्यास बहुत लगती है। रोगी का शरीर कुछ मोटा हो जाता है। शरीर के रक्त के अन्दर जिस प्रकार नमक रहते हैं, उसी प्रकार शर्करा का भी कुछ भाग रक्त में रहता है। परन्तु जिस समय यह राशि रक्त में बढ़ जाती है, उस समय यह शर्करा वृक्कों-द्वारा नमक की भाँति मूत्र के रास्ते से बाहर आती है। रक्त में शर्करा बढ़ने के कई कारण हैं—

१—शर्करा का नियन्त्रण यकृत के अधीन है। जिस समय यकृत विकृत हो जाता है, अथवा यकृत के ऊपर कार्य-भार अधिक पड़ जाता है, उस समय यकृत शर्करा को नियन्त्रित नहीं कर सकता। इस नियन्त्रण के रहने से शर्करा रक्त में पहुँच जाती है।

२—क्लोम (पैंक्रियास) को निकाल देने से मनुष्य में मधु-मेह के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। इस प्रकार का विचार आधुनिक वैज्ञानिकों का है। इस नियम से जिस समय मनुष्य का क्लोम भली प्रकार कार्य नहीं करता, उस समय भी शर्करा मूत्र में आने लगती है।

३—शर्करा या घी आदि को अधिक मात्रा में सेवन करने से रक्त के अन्दर और मांस-पेशियों में शर्करा का संचय होने लगता है। इस प्रकार के

व्यक्ति शरीर में मोटे होते हैं। प्रथम वसा पेट में, नितम्ब में, बाजुओं में एकत्रित होती है, पीछे से रक्त में आजाती है।

आर्य-चिकित्सा में लिखा है कि सब प्रकार के प्रमेह मधुमेह में परिवर्तित हो जाते हैं। यदि इनकी चिकित्सा भली प्रकार न की जाय, तो इसके अतिरिक्त मधुमेह-रोग वंश-क्रमागत भी होता है।

लक्षण—इस रोग का प्रारम्भ साधारणत: पता नहीं चलता। कई में यह रोग शनै:-शनै: प्रारम्भ होता है, और कइयों में सहसा प्रारम्भ होता है। सबसे प्रथम जो शिकायत रोगी को होती है, वह मूत्र का बारबार और अधिक मात्रा में आना है। यह मूत्र रात्रि में विशेषत: आता है। इसकी राशि २४ घण्टे में १० से ३० पौंड होती है। दूसरा लक्षण यह है कि रोगी को प्यास बहुत लगती है। उसके ओष्ठ शुष्क रहते हैं; परन्तु त्वचा तथा गालों पर स्निग्धता झलकती रहती है। मूत्र का रंग फीका, श्वेत, पानी-जैसा होता है, पेशाब में झाग होती है। मूत्र-त्याग के स्थान पर चींटियाँ आती हैं। मूत्र का आपेक्षिक गुरुत्व बढ़ जाता है, यहाँ तक कि कभी २१०४५ तक पहुँच जाता है। रोगी की भूख बढ़ जाती है। उसे सब प्रकार के रसों को खाने की अभिरुचि होती है। दाँत मैले रहते हैं। प्रात: उठने के समय इनसे दुर्गन्धि आती है। इसके अतिरिक्त रक्त के अन्दर शक्ति कम हो जाती है, इस कारण से थोड़ा-सा क्षत शीघ्र नहीं भरता। कई बार इस रोग की ओर चिकित्सक ध्यान खींचता है। रोगी यद्यपि शरीर में मोटा दिखाई देता है, परन्तु उसकी शारीरिक शक्ति निर्बल हो जाती है। पीछे से उसे अजीर्ण, अनिद्रा, कास, क्षय आदि उपद्रव घेर लेते हैं।

उपाय—अनार्य-चिकित्सा में इस रोग के लिये कोई उत्तम चिकित्सा नहीं मिली। इसके अतिरिक्त ट्रिप्सोजोनी या इसी प्रकार की अन्य औषधि क्रीम से बनाई गई है। इसके खाने से मूत्र की शर्करा स्थायीरूप से घट जाती है। अफीम या कोडिना की गोलियाँ इस रोग में लाभ करती हैं। परन्तु वे भी कोई उत्तम सन्तोषकारक नहीं हैं।

आर्य-चिकित्सा में इस रोग के लिये शिलाजीत, लोह-भस्म तथा न्यग्रोधादि-गण की औषधियाँ उत्तम समझी गई हैं। यह कहा जाता है कि ५० तोले शिलाजीत का उपयोग करने से असाध्य प्रमेह भी अच्छा हो जाता है।

न्यग्रोधादिगण—इसमें बड़, पीपल, गूलर, पिलखन और जामुन हैं। इनमें जामुन की गुठलियों का चूर्ण या इनका छिलका कषाय के रूप में बरता जाता है। इसके उपयोग से लाभ होता है। गूलर की घन रस-क्रिया बनाकर अथवा गूलर के फल का चूर्ण इस रोग में चमत्कारिक असर करता है। रोगी को गूलर के पत्तों या फल की भाजी खानी चाहिये। चम्पारन के एक वैद्य गूलर के द्वारा असाध्य रोगियों की चिकित्सा करते हैं—ऐसा समाचार-पत्रों ने तथा कई रोगियों ने प्रकाशित किया है। पाठा, वायविडङ्ग, अरणी का काढ़ा, लोध्र, इन्द्रजौ और त्रिफला का कषाय मधुमेही के लिये उत्तम है। रोगी की प्यास को कम करने के लिये चूने का पानी दूध में मिलाकर देना चाहिये। रोगी को बर्फ चूसने के लिये देना चाहिये। गरम कपड़ा पहनाना चाहिये।

पथ्यापथ्य—इस रोग का सर्वोत्तम उपाय लंघन है। रोगी को शनैः-शनैः भोजन में से कार्बोहाइड, शर्करा आदि वस्तुओं को हटाते जाना चाहिये। मूत्र में से शर्करा जब बिलकुल कम हो जाय, तब भोजन को शनैः-शनैः बढ़ाना चाहिये। साथ ही इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि मूत्र में शर्करा न आये। यदि मूत्र में शर्करा फिर आजाय, तो फिर से लंघन करवा देना चाहिये। रोगी को आटे की भूसी, जौ, पत्तों के शाक, कमल-काकड़ी आदि पदार्थ खाने चाहियें।

अपथ्य—शर्करा, गुड़, गेहूँ, नये चावल, आलू, गोभी, बरुणा, फलिया तथा स्टार्चवाले पदार्थ खाने के लिये नहीं देना चाहिये। शर्करा के स्थान पर 'सैकेरीन' का उपयोग कर सकते हैं। इसका उपयोग स्वाद में मधुरता दे देता है।

निश्चित चिकित्सा—रोगी को चाहिये कि वह अकेला बिना छाते और बिना जूते के दिनभर कम से कम ३०-३५ मील (प्रारम्भ में जितना अधिक से अधिक चल सके, उतना चले। फिर दिन प्रति दिन बढ़ाता जाय।) चले, और माँगकर रोटी खाय। एक स्थान पर एक रात से अधिक विश्राम नहीं करना चाहिये। सोने के लिये भूमि या काष्ठ-शय्या उत्तम है। इस प्रकार परिश्रम करने से, और रूखा-सूखा खाने से मनुष्य का प्रमेह (मधु-मेह) अवश्य अच्छा हो जाता है।

औपसर्गिक प्रमेह

यह एक संक्रमण-जन्य रोग है, जो रुग्ण व्यक्ति से स्वस्थ व्यक्ति में संक्रमित हो जाता है। संक्रमण रुग्ण व्यक्ति के वस्त्रों से, उसके पात्रों से तथा उसके संसर्ग से होता है। आर्य-शास्त्र के बीस प्रमेह इस संक्रमण-जन्य रोग से सर्वथा भिन्न हैं।

इस रोग का कारण दुष्ट स्त्री के साथ संसर्ग करना है, या रुग्ण व्यक्ति के वस्त्रों का, पात्रों का स्पर्श करना है। इसके अतिरिक्त यह रोग पैतृक वंश-क्रमागत भी होता है।

लक्षण—संसर्ग के ३ या ४ दिन बाद इसके लक्षण प्रारम्भ होते हैं। सबसे पहले पेशाब करने के समय तीव्र दाह और जलन होती है। रोगी को बार-बार पेशाब जाना होता है। पेशाब करते समय पीव आती है। शिश्न को दबाने से पीव बाहर निकल आती है। रोगी अपने को अस्वस्थ अनुभव करता है। उसकी शक्ति प्रति दिन घटती जाती है। उसको हल्का-सा ज्वर अनुभव होता है। प्रथम कुछ दिनों तक पतला पीव-युक्त स्राव रहता है, जो कि मूत्र के प्रारम्भ में आता है। पीछे से यह स्राव गाढ़ा हो जाता है। इसका रंग भी सफेदी से पीलेपन पर आजाता है। मूत्र-मार्ग में दर्द भी होता है। मूत्र-नलिका में शोथ आजाती है। इसके कुछ दिनों पश्चात् शोथ और दाह नर्म पड़ता है। रोगी अपने को स्वस्थ अनुभव करने लगता है, केवल मूत्र में पीव या दूषित स्राव आता रहता है। पीछे से इसी तरह पुराना हो जाता है। सब लक्षण शान्त हो जाते हैं, केवल मूत्र में धागे के रेशों की भाँति तार आते हैं, और उपद्रव आरम्भ हो जाते हैं।

गनोरिया के कृमि होते हैं। ये प्रायः युगल रहते हैं। ये मूत्र-मार्ग की श्लेष्म-कला को आक्रान्त करके रोग उत्पन्न करते हैं। श्लेष्म-कला के अन्दर व्रण हो जाते हैं। ये कृमि पृष्ठ पर न रहकर अन्दर चले जाते हैं। जिस प्रकार कृमि दूरी पर होंगे, वैसे ही पीव अधिक मात्रा में आयेगी। प्रारम्भ में अग्रभाग पर खाज होती है। मूत्र-नलिका का मुख आगे से लाल और शोथ-युक्त रहता है, और आगे से खुला रहता है। इस भाग को दबाने से पीव निकलती है। मूत्र की धारा पतली होती है, और पेशाब करते समय रोगी को तीव्र वेदना होती है। इस वेदना से रोगी कँहरता है। यदि इस समय शिश्न

में उत्तेजना आजाय, तो बहुत दर्द होता है। यदि रोगी इस रोग की चिकित्सा न करे, तो रोग पुरातन होकर मूत्रकृच्छ्र, अष्ठीला-वृद्धि आदि उपद्रव होते हैं।

उपाय—सबसे पहले को रोगी सोडा वाटर और दूध मिलाकर देना चाहिये। सल्फेट ऑफ सोडा या साईट्रेट ऑफ मैगनेशिया का देना उत्तम है। जितना सम्भव हो, उतना अधिक क्षार देना चाहिये। रोगी को गरम पानी में बैठाकर 'हिप बाथ' देना चाहिये, क्लोरल और क्लोरोडीन को देना चाहिये। यदि शिश्न के अन्दर कड़ापन हो, तो शिश्न को ठण्डे पानी में रखना चाहिये। पानी में स्प्रिट ऑफ कैम्फर की ३० बूँद मिला देनी चाहिये। सब अवस्थाओं में रोगी को बिस्तर पर पूर्ण विश्राम देना चाहिये। पीने के लिये जौ का पानी या सोडा का पानी देना चाहिये। मद्य, मसाले, कॉफी आदि से बचना चाहिये।

यदि रोग का प्रारम्भ ही में पता लग जाय, जबकि कण्डू या पानी-जैसा स्राव हो, तभी सिल्वर नाईट्रेट को २ ग्रेन ८ औंस पानी में घोलकर प्रत्येक घण्टे के अन्तर से दिन में ६ या ८ बार शिश्न में पिचकारी करनी चाहिये। पिचकारी करने से पूर्व मूत्र-त्याग कर लेना चाहिये। रोगी को विरेचन देकर टिंचर नैक्स वौमिका की १ बूँद प्रत्येक १ घण्टे के अन्तर से लेना चाहिये। रोगी को यथासम्भव बिस्तर पर लेटे रहना चाहिये। कुछ चिकित्सक दिन में १० या १२ बार पोटाशियम परमैगनेट के घोल से (२ ग्रेन १ पाइन्ट में) धोते हैं। जब ज्वर के लक्षण हट जायँ, तब रोगी को कोपाइया या चन्दन का तेल लेना चाहिये और बार-बार मूत्र-प्रवाहण करना चाहिये।

स्त्रियों में गनोरिया—इस रोग के लक्षण स्त्रियों में उसी प्रकार के होते हैं, जिस प्रकार के लक्षण पुरुषों में मिलते हैं। परन्तु अन्तर इतना ही है कि इनमें मूत्र-मार्ग आक्रान्त नहीं होता। उस स्थान पर उष्णिमा, दर्द और शोथ होती है, मूत्र-प्रवाहण और चलने में कठिनता का अनुभव होता है। प्रथम कुछ दिनों तक पोस्त के डोडों की गरम उत्तर बस्ति योनि-द्वार में पिचकारी से देनी चाहिये। इसके पीछे पोटाशियम परमैगनेट से योनि-मार्ग को धोना चाहिये।

सरल उपाय—गोखरू, ईसबगोल, तुख्मरिहा, बहुफली, मुगलई बेदाना

आदि दवाइयों का लुवाब मिश्री डालकर पीना चाहिये। फलत्रिकादि-क्वाथ में हल्दी का चूर्ण मिलाकर देना चाहिये। पाषाण-भेद, धनिया, धमासा, गोखरू, अमलतास प्रत्येक ६ माशे लेकर, आध सेर पानी में रात्रि में भिगोकर, प्रातः इस पानी को दो-तीन बार करके पीना चाहिये। काहू का शीरा, खसखस का शर्बत जलन और दर्द को कम करता है। सियाफे अबियज औरतों के दूध में घोलकर, बादाम का तेल या गुलरोगन मिलाकर मूत्र-मार्ग के छिद्र में टपकाना चाहिये। यदि दर्द की अधिकता हो, तो थोड़ी-सी अफीम, भाँग के बीज आदि दे सकते हैं। गुलाब के अर्क में कहरुवे की बनी पिष्ठि विशेष उपयोगी है। ककड़ी-खीरे की मींग १० दिरम, काकनज के बीज ३ दिरम, अजवायन के बीज, सहदाना, गिले अरमानी, दम्मुल अखवैन, अर्बी गोंद, भाँग के बीज, प्रत्येक २ दिरम, अफीम १ दिरम। इनको कूट-छानकर टिकिया बनाकर शर्बत खसखस के साथ देना चाहिये। मात्रा—१ दिरम से १ मिश्काल।

भिंडी के बीजों का लुवाब पीना अथवा जासुदी के पत्तों का शर्बत पीना इस रोग में विशेष लाभकारी है। १२ भाग कौड़िया लोहबान और ४ भाग राल, इनको चन्दन के तेल में मिलाकर १५ गोली बनानी चाहिये। इसको अनार के शर्बत में खाना चाहिये। माजूफल, छोटी, इलायची, कत्था, वंशलोचन, चन्दन के तेल में गोली बनाकर शर्बत के साथ पीना चाहिये। दो पैसे का तालमखाना, एक पैसे की मेदा लकड़ी, एक पैसे की दालचीनी। और चार पैसे की शीतल-चीनी, इन सबका चूर्ण प्रातः-सायं दूध के साथ १४ दिन तक खाने से सूजाक अच्छा हो जाता है। शोरा और श्वेत फिटकिरी को समान भाग लेकर बराहपुट के अन्दर पकाना चाहिये। प्रातः इसको निकालकर इसमें छोटी इलायची का चूर्ण मिलाना चाहिये। इसको प्रातः खाना चाहिये। नमक के पानी से हंस के अण्डे के छिलके को ढीला करना चाहिये। अण्डे को प्रथम नीबू के रस में रखना चाहिये। इसकी पुटपाक करके मक्खन के साथ खाने से उपदंश-रोग शान्त होता है। सफेद सुरमे को दुगुने कन्या-रस से मर्दन करके दस उपलों की आँच से पुटपाक करके, मस्तु के साथ पीसकर एक रत्ती की मात्रा में मक्खन के साथ चाटने से सूजाक अच्छा हो जाता है। खाने में घी के साथ दूध खाना चाहिये। आग पर भूनी हुई फिटकिरी, इसके समान खाँड़ मिलाकर दूध की कच्ची लस्सी से

पीना चाहिये। हंसराज-तृण, केशर, जातिपत्री, (जाविञी) इनको पानी के साथ पीसकर बटी बना लेना चाहिये।

धोने के लिये—नियम यह है कि अनार्य-चिकित्सक रोग के प्रारम्भ ही से मूत्र-नलिका का प्रक्षालन करते हैं। इस प्रक्षालन के लिये साधारणत: निम्न वस्तुयें बरती जाती हैं। जैसे—

त्रिफला या पंचत्वक्-क्वाथ, जिंक सल्फेट १ से २ ग्रेन, पलमबाई एसीटेट १ से ४ ग्रेन, जस्त का फूल १ से ४ ग्रेन, फिटकिरी १ से ४ ग्रेन, नीला तुत्थ १ से ३ ग्रेन, सिल्वर नाइट्रेट $\frac{1}{2}$ से १ ग्रेन; इनमें से किसी एक दवाई को १ औंस पानी में घोलकर बनाना चाहिये। परमैगनेट ऑफ पोटाश १ भाग, पानी ४००० भाग, जिंक परमैगनेट १ भाग, पानी ४००० भाग; अथवा जिंक सल्फेट ३ ग्रेन, शुगरलेड २ ग्रेन, ऐक्सट्रैक्ट ओपयाई लिक्विड १ ड्राम, पानी २ औंस का उपयोग करना चाहिये। आजकल एक्रीफ्लैवरीन का उपयोग प्रक्षालन के लिये किया जाता है।

अनुभव—उत्तम यह है कि पहले प्रक्षालन नहीं करना चाहिये। आनन्द-भैरव-रस और जौखार देना चाहिये। जिस समय ज्वर के लक्षण और दाह तथा जलन शान्त हो जाय, उस समय शिश्न पर रस्सी बाँधकर शुगरलेड से धोना चाहिये। इस बात का स्मरण रखना चाहिये कि थोड़ी-सी गलती से रोग पश्चिमीय मूत्र-मार्ग में पहुँच जाता है।

शास्त्रीय औषधि—वंग-भस्म, प्रवाल-पिष्ठि, मुक्ता-भस्म, चन्द्रप्रभा, बृहत् बंगेश्वर, कुशावलेह, प्रमेह-चिन्तामणि, स्वर्ण-वंग, पूर्णचन्द्र, बसन्त-कुसुमाकर।

अनुपान—हल्दी का रस एवं शुक्रमेह-रोग का काढ़ा पीना चाहिये।

पथ्यापथ्य—इस रोग के रोगी को आहार-विहार की ओर विशेष ध्यान रखना चाहिये। प्रमेह (गनोरिया) एक शिक्षा है। इसके पश्चात मनुष्य को चाहिये कि वह कुमार्ग से बचे। गनोरिया के कारण अपनी स्त्री की, अपनी भावी संतति की तथा अपनी जिन्दगी खराब हो जाती है। पुरुष को सम्भोग से दूर रहना चाहिये। पीछे से स्वच्छता, पथ्य और सदाचार के नियमों का पालन करने से रोग दब सकता है।

उपद्रव—मूत्रकृच्छ्र, मूत्राशय-शोथ, रक्तस्राव, वृषण-वृद्धि, आँख का दुखना, संधिवात, बद आदि उपद्रव हैं।

उपदंश (गरमी)

इस रोग का मूत्र-मार्ग के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है; परन्तु यह रोग प्राय: करके सम्भोग के कारण होता है। इसका प्रभाव सम्पूर्ण शरीर के ऊपर होता है। यह रोग संक्रमण-जन्य है। एक बार शरीर में इसका विष प्रविष्ट होने पर कठिनता से बाहर निकलता है। इसके अतिरिक्त भावी संतति में अपने चिन्ह छोड़ देता है।

कारण—इस रोग का कारण संक्रान्त व्यक्ति से सम्भोग, चुम्बन आदि करना है। स्त्री की गरमी पुरुष को और पुरुष की गरमी स्त्री को लग जाती है। इसके अतिरिक्त रजस्वला स्त्री के साथ सम्भोग करने से भी यह रोग लागू हो जाता है। यह रोग माता-पिता से उनकी संतति में भी उतरता है।

लक्षण—संक्रमण के दस दिन पीछे एक प्रकार का छोटा-सा मूँग का दाना शिश्न के अग्रभाग पर त्वचा के नीचे दिखाई देता है। परन्तु यह दाना कभी-कभी महीनों पीछे भी निकल सकता है। दाने निकलने के चौथे दिन पीछे इसमें पानी भर जाता है, और इसकी जड़ सूज जाती है। फिर यह पानी पीव बन जाता है, और बह जाता है। इसके स्थान पर दर्द-शून्य सूजन या व्रण बन जाता है, जिसके किनारे उठे हुये कठोर होते हैं; परन्तु बीच से दबा होता है। दूसरी प्रकार का दाना संक्रमण के ४ या ५ दिन पीछे शिश्न के अनुमान पर उत्पन्न होता है। इसमें प्रथम दिन ही से पीव होती है। यह कठोर नहीं होता, परन्तु पहले से अधिक दर्द-युक्त होता है। इसमें उपदंश के लक्षण उत्पन्न नहीं होते।

अगले १५ या ३० दिनों के पीछे जबकि सूजन शान्त हो जाती है, या व्रण भर जाता है, तब वंक्षण की ग्रन्थियाँ सूज जाती हैं, कठोर हो जाती है, और इनमें दर्द होता है। यह ग्रन्थि या तो स्वयं शान्त हो जाती है, अथवा विद्रधि की भाँति मुख करके फूटती है, अथवा चिकित्सक का चाकू विदीर्ण कर देता है। शिश्न-भाग पर शोथ और वंक्षण में सूजन होने से प्रथम अवस्था के लक्षण समाप्त हो जाते हैं।

परन्तु इससे रोगी रोग से मुक्त नहीं होता। सप्ताह, महीनों या वर्षों के पीछे द्वितीय लक्षण उत्पन्न होते हैं। परन्तु साधारणत: ६ सप्ताह के पीछे

लक्षण उत्पन्न होते हैं । रोगी निराश हो जाता है । उसे आमवात का दर्द होता है, विशेषत: जंघास्थियों में, एड़ियों में । रोगी भूख न लगने की शिकायत करता है । उसे नींद नहीं आती । इसके पीछे त्वचा के रोग, गल-शोथ, जिह्वा या मुख में व्रण हो जाते हैं । रोग की अवस्था भद्र हो, तो मुँह के अन्दर की त्वचा लाल, शोथ-युक्त तथा व्रण-युक्त हो जाती है । रोगी की आवाज़ भारी रहती है, तथा रोगी कान में दर्द की शिकायत करता है । जिस समय मुँह में शोथ होती है, उसी समय त्वचा पर छाले उत्पन्न हो जाते हैं । त्वचा पर जो छाले उत्पन्न होते हैं, वे प्राय: छिलकों के समान होते हैं । ये प्राय: हथेली पर से उतरते हैं । रोगी के नाखून भी आक्रान्त हो जाते हैं । वे जड़ों से ढीले पड़ जाते हैं । इनपर तिरछी धारियाँ पड़ जाती हैं, अथवा इनमें अण्डाकृति चिन्ह हो जाते हैं । इस रोग के कारण नाक की अस्थि अथवा जंघास्थि भी आक्रान्त होती हैं । श्वास-प्रणाली भी अक्रान्त हो जाती है । इससे वाक्-शक्ति में न्यूनता आजाती है । अन्त:-अवयव—मस्तिष्क, मेरुदण्ड और यकृत भी आक्रान्त हो जाते हैं । इस रोग के कारण स्त्रियों में गर्भपात प्राय: करके होता है । रुग्ण व्यक्तियों के बच्चे भी रुग्ण होते हैं । इन बच्चों के गुह्य-भागों पर ताम्बे के रंग के धब्बे होते हैं ।

उपाय—रोगी के गुह्य-भागों को पूर्णत: साफ़ रखना चाहिये । कार्बोलिक लोशन का घोल व्रण पर लगाना चाहिये । रोगी को विरेचन देना चाहिये । इस रोग के लिये साधारणत: निम्न उपाय करना चाहिये ।

धोने के लिये—१—पंचत्वक् का काढ़ा बनाकर उसके पानी से व्रणों को धोना चाहिये । २—त्रिफले का काढ़ा करके उससे अथवा भाँगरे के रस से धोना चाहिये । ३—रस-कपूर १ भाग, पानी २००० भाग । ४—ब्लैक-वाश में कपड़ा भिगोकर फुंसी पर रखना चाहिये । ५—मर्करी साइनाइड का घोल १ ग्रेन और गुलाब का अर्क १६ औंस अथवा इसी अनुपात में हाइड्रो-जराई एटजिंकीसाइनाइड के घोल से व्रणों को धोना चाहिये ।

प्रलेप—१—मर्करी एटजिंकीसाइनाइड ५ ग्रेन, लैनोलीन का प्रलेप १ औंस मिलाकर लेप करना चाहिये । २—गोपीचन्दन तथा नीला तुत्थ पानी में पीसकर, कपड़े पर लगाकर पट्टी बाँधनी चाहिये । ३—रस-कपूर, श्वेत कत्था, मुर्दाशंख, शंखजीरा, माजूफल, सुपारी की राख अथवा त्रिफला की राख; इन सब वस्तुओं को घी में खरल करके प्रलेप बनाना चाहिये ।

४—बावची १ भाग, गन्दा बिरोजा १ भाग, गुग्गुल १ भाग, राल १ भाग, नीला तुत्थ १ भाग, हिंगुल १ भाग, पारा १ भाग, घी ९ भाग, तिल का तेल ९ भाग; इन सब चीजों को खरल में रखकर नीम की लकड़ी से २४ घण्टे तक रगड़ना चाहिये। ५—फिटकिरी, सोनागेरू, मोर तुत्थ, हीराकसीस, सेंधानमक, लोध्र, रसौंत, हरताल, मैनसिल और इलायची इनका बारीक चूर्ण शहद में मिलाकर प्रलेप बनाना चाहिये। ६—त्रिफले की राख बनाकर इसको नमक के साथ शहद में लगाना चाहिये। ७—दशांग-लेप पानी या घी में मिलाकर लगाना चाहिये। ८—हिंगुल, नीला तुत्थ, गुग्गुल एक-एक तोला, बावची तथा मस्तकी दो-दो तोला, राल ४ तोला, तेल ७ तोला; इनका मरहम बनाना चाहिये। ९—मोरतुत्थ चूर्ण करके कत्थे के साथ इसकी बुकनी देनी चाहिये। १०—कॉस्टिक सिल्वर नाइट्रेट या नाइट्रिक एसिड से सावधानी-पूर्वक स्थान को जला देना चाहिये।

अन्य औषधियाँ—१—पारा इस रोग की सर्वोत्तम औषधि है। इसको कई प्रकार से दिया जाता है। जैसे, रस-सिन्दूर, चन्द्रोदय अथवा अमीर-रस के रूप में। अमीर-रस को बनाने के लिये हिंगुल, दालचिकना, रस-कपूर और चाँदी के तार बारीक कटे हुये; प्रत्येक एक-एक कर्ष लेकर इनको तवे पर बिछा देना चाहिये। बिछाने से पहले तवे पर नमक के साथ आलबाल बना लेना चाहिये। ऊपर से चीनी का पात्र ढँक देना चाहिये। इसके नीचे आग जला देनी चाहिये, पीछे से ऊपर के बर्त्तन में लगी हुई औषधि को उतार लेना चाहिये। इस दवा को १ या २ रत्ती की मात्रा में मुनक्के के अन्दर रखकर इस प्रकार से खिलाना चाहिये कि दाँतों को न लगे। खाने के लिये गाय का दूध, गेहूँ की रोटी देनी चाहिये। नमक सर्वथा नहीं देना चाहिये। इस दवा को सात या नौ दिन तक खिलाना चाहिये। २—जायफल, जावित्री, कत्था, तुत्थ, केशर, लौंग प्रत्येक १ शाण, हिंगुल १ तोला, कस्तूरी ४ रत्ती, दो सुपारियों की राख, इनको नीबू के रस से लोहे के खरल में रगड़ना चाहिये। इनकी गोली बनाकर एक-एक गोली प्रातः-सायं पानी के साथ खाना चाहिये। ३—कस्तूरी १ रत्ती, इलायची १ माशा, वंशलोचन ६ माशे, इनको चन्दन के तेल के साथ पीसकर तीन गोलियाँ बनानी चाहिये। इन गोलियों को एक ही दिन में तीनों सन्ध्याओं में (प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल) निगलकर ऊपर से ठण्डा पानी पीना चाहिये। दूध, मधु, तैल, लवण आदि को छोड़

देना चाहिये। ४—२४ माशे चन्दन का चूर्ण, मायाफल और कत्था, प्रत्येक ६ माशे, इनके चूर्ण को एक तोला चन्दन के तेल में मिलाकर शर्करा के शर्बत के साथ ९ दिन तक सेवन करने से विशेष लाभ होता है। ५—कुटज की छाल और मिश्री प्रत्येक १ कर्ष इनको पानी के साथ सात दिन तक पीना चाहिये। ६—बेरी की जड़ की छाल १ प्रस्थ, इसको दो आढ़क पानी में धीरे-धीरे पकाना चाहिये। जब आधा काढ़ा रह जाय, तब इससे व्रणों को धोना चाहिये। ७—कासगरी सफेदा १ कर्ष, हिंगुल ५ माशे, कपूर १ शाण, इनको पानी में धोये हुये घी में मिलाकर लगाने से व्रण और दाह शान्त होते हैं। ८—मुर्दाशंख, राल, तुत्थ इनको तैल और पानी में मिलाकर लगाना चाहिये।

वृहतमंजीष्ठादि-क्वाथ के साथ गुग्गुल के बनावटवाली कोई औषधि, चोपचीनी-क्वाथ अथवा इसका चूर्ण बरतना चाहिये। केशरादि-वटी, गुग्गुल, गिलोय आदि वस्तुयें रक्त-शोधक हैं।

आजकल अनार्य-चिकित्सा में इस रोग के लिये ७०७—साल्वरशन, न्यूसार-बलशन अथवा सल्फआरसनोल आदि इंजेक्शन बरते जाते हैं, और इनसे उत्तम लाभ भी होता है। इनको किसी योग्य चिकित्सक की सलाह से उपयोग करना चाहिये।

पारे के समास प्रथम दो अवस्थाओं में अधिक उपयोगी हैं, और पोटाशियम आयोडाइड रोग की तीसरी स्थिति में उपयोगी है।

पथ्यापथ्य—उपदंश या गनोरिया रोग की चिकित्सा में आहार-विहार का नियन्त्रण विशेष उपयोगी है। इस रोग में तेल, नमक आदि का उपयोग सर्वथा नहीं करना चाहिये। दूध, दूध-रोटी, शर्करा, मीठी वस्तुयें उत्तम हैं। इस रोग की दवाइयों को लम्बे समय तक चालू रखना चाहिये।

वद का उपाय—१—नीम के पत्ते थोड़े-से पानी में पीसकर, इनमें हल्दी और घी मिलाकर; २—अथवा भिलावाँ और शिग्रु की छाल को पानी में पीसकर लगाने से; ३—पारे का प्रलेप ब्ल्यु ऑयन्टमेन्ट लगाने से, या जलौका लगाने से अथवा सेंक तथा गरम-गरम पुल्टिस लगाने से यह रोग शान्त होता है।

पुरुषों के रोग

काम-शक्ति का निर्बल हो जाना—इस रोग के कई कारण हैं और रूप दो हैं, यथा—पहला काम-शक्ति का निर्बल हो जाना और दूसरा शिश्न का निर्बल हो जाना। काम-शक्ति के निर्बल होने के कई कारण हैं, जैसे—भोजन की कमी; इसके कारण देह में निर्बलता आजाती है, शक्ति में निर्बलता, रंग का पीलापन और भोजन की कमी है। दूसरा कारण वीर्य की कमी है। जिस समय वीर्य कम हो जाता है, उस समय संभोगेच्छा कम हो जाती है। वीर्य की कमी वीर्य के गाढ़ा होने से, बँधा होने से, भूखे रहने से, बीच में रोकने से काम-शक्ति घट जाती है। कई बार ऐसा होता है कि किसी-किसी मनुष्य को एक ही स्त्री के साथ सहवास करने का स्वभाव होता है। जब दूसरी औरत से काम पड़ता है, तो इच्छा नहीं होती। अधिक परिश्रम करने के कारण या बहुत समय तक बीमार रहने से, हृदय के निर्बल होने से कामोत्पादक शक्ति उत्पन्न न होगी। आमाशय या यकृत के निर्बल होने से, मस्तिष्क के निर्बल होने से, वीर्याशय के निर्बल होने से काम-शक्ति निर्बल पड़ जाती है।

उपाय—१—सोंठ, सकाकुल, कुलींजन, इंजर के बीज, जरजीर के बीज, गाजर के बीज, हिलीयून के बीज, सब औषधियों को बराबर-बराबर लेकर कूट ले। प्याज के पानी और शहद में मिलाकर औटाये। जब पानी सूख जाय, तब औषधियों को शहद में मिला देना चाहिये। २—मीठे बादाम की मींगी, सनोवर की मींगी, जलन की मींगी, फन्दक की मींगी, पिस्ते की मींगी, ताजे नारियल का गूदा, खसखस सफेद, तोदरी सुर्ख, सफेद तिल, बहमन सुर्ख और सफेद, सोंठ, मिर्च, पिप्पली, खुर्फा, दालचीनी, हिलयून के बीज, कुलींजन, ये सब औषधियाँ तिगुने शहद में मिलाकर माजून बनावे। ३—दालचीनी, कबाबा, कूठ, अकरकरा, सफेद कनेर की जड़, प्रत्येक १ दाम, इन सबको अधकुट करके २४ घण्टे तक पानी में भिगोकर औटाना चाहिये। जब पानी ३ भाग जल जाय, १ भाग रह जाय, तब इसमें आध पाव मीठा तेल मिलाकर औटाये। जब पानी जल जाय, तेल शेष रहे, तब ठण्डा होने पर इसकी मालिश करनी चाहिये। ४—फरफयून, मुश्क, अकरकरा, प्रत्येक १ माशा, जम्बक का तेल या चमेली

का तेल मिलाकर लेप करना चाहिये। इससे इन्द्रिय दृढ़ होती है। ५—नर्गिस की जड़ एक रात-दिन तक दूध में भिगोकर, अकरकरा, मर्वाजज प्रत्येक ३ दिरम मिलाकर शराब में सानकर लेप करना चाहिये। ६—मस्तगी ३ दिरम, बैंगन के बीज १ दिरम, महीन करके अगर के चोये में मिलाकर काली मिर्च के बराबर गोली बनाकर, सम्भोग के पीछे दो से चार गोली खानी चाहिये। ७—अकरकरा १ दिरम, रेहान के बीज ८ दिरम, कन्द सफेद ९ दिरम, महीन पीसकर गोली बनानी चाहिये। यह वीर्य-स्तम्भक है। ८—सौ चींटे कूटकर, ५ दाम रोगन बलसान, रोगन सौसान ८ दाम मिलाकर, एक शीशी में भरकर गर्मी की ऋतु में ८ दिन तक धूप में रखना चाहिये। आवश्यकता के समय पाँव के तलुओं पर और अँगुली पर लेप करना चाहिये।

मूत्रवाही नली को बढ़ाना—यह काम युवावस्था तक ही हो सकता है। इसके लिये जैतून का तेल, बकरी का घी, जोंक या सूखे केचुये को सौसन के तेल में पीसकर अथवा किरफे के पानी में कई बार धोना या मलना चाहिये। सात चींटे लेकर, नरगिस के तेल में डालकर शीशी में रखना चाहिये। इस शीशी को बकरी की मींगनी में २४ घण्टे तक दबा रखना चाहिये। इसके मलने से लम्बाई बढ़ती है।

सम्भोग के लिये बसन्त-ऋतु सबसे उत्तम है। सोमवार, बृहस्पति की रात, शुक्रवार की रात सबसे उत्तम है। जब आमाशय खाली हो, उस समय सम्भोग करना चाहिये। सम्भोग के पीछे ठंडा पानी या शर्बत नहीं पीना चाहिये। इससे मूत्रेन्द्रिय में शिथिलता आजाती है। सम्भोग के पीछे मीठी और चिकनी वस्तु अथवा सोंठ डालकर औटाया हुआ अथवा ताज़ा धारोष्ण दूध पीना चाहिये।

माजुने मुकरात—देशी अजवायन १ सेर, गाजर के बीज १ दिरम, लौंग १ दिरम, फिटकिरी आधा दिरम, कबाऊद १ दिरम, विषखासा, सहदाना, प्रत्येक २ दिरम, सबको पीसकर ३ गुने शहद में मिलाकर माजून बनाना चाहिये। कबाबा, दालचीनी, अकरकरा, लाल मुनक्का, इनको शहद में पीसकर संगम से एक घण्टा पहले लेप करना चाहिये और संगम के समय वस्त्र से साफ कर देना चाहिये।

वीर्य के जल्दी निकल जाने का वर्णन—इसके कई कारण हैं। जैसे, निःस्सारक-शक्ति निर्बल हो। इस अवस्था में वीर्य श्वेत और पतला होता

है। पित्त के लक्षण नहीं होते। इसके लिये कच्चे अंगूर का पानी ६ रतल, गुलनार, गुलाब के फूल, कुन्दरू, सूखा धनिया, सातर-साद प्रत्येक १० दिरम, मुई फिटकिरी १ दिरम, शोधित लोहे का मैल ३० मिस्काल, इनको कूट-छानकर, अङ्गूर के पानी में उबालकर, जब पानी तिहाई रह जाय, तब छानकर रख ले। इससे शरीर में रक्त और वीर्य की अधिकता होती है। इसके लिये खट्टे-मीठे अनार का पानी, अंगूर का शर्बत, नारङ्गी का शर्बत पिलाना चाहिये। शर्बत खसखस, चूके के बीजों का शीरा उत्तम है। वीर्य को पुष्ट करने के लिये इमली के चीओं को उपलों की आँच में भूनकर छील लेना चाहिये। महीन पीसकर, इसमें बराबर मिश्री मिलाकर सात दिन तक प्रतिदिन फाँकना चाहिये। नया कायफल भैंस के दूध में घोलकर लेप करे और सुबह-शाम गर्म पानी से धोवे। काकुल २ तोले, अरबी ऊँट का दूध फटा हुआ, बहमन सफेद २॥ तोला, इन औषधियों को महीन पीसकर शहद में २१ गोली बनानी चाहिये। इससे वीर्य गाढ़ा होता है।

सहवास की अधिकता का वर्णन—शरीर का मोटा होना और देह में रुधिर और वीर्य की अधिकता का होना इसका कारण है। इसके लिये अंगूर का पानी, उन्नाब का पानी, सिरका, काहू के बीज, नीलोफर, खुरफे के बीज आदि देने चाहिये। अकाकिया, गिले अरमानी, तारम्सीस, गुलनार, इनको पानी में मिलाकर कटि-प्रदेश पर लेप करना चाहिये। शिश्न को ठंडे पानी में रखना चाहिये।

वीर्य, मजी और वदी के निकलने का वर्णन—मजी उस मल का नाम है, जो कामेच्छा के समय मूत्रवाही नली के मुख पर वीर्य से पूर्व निकल आता है। यह चिकना और पतला होता है। यह मल इन्द्रिय में दृढ़ता आने से पूर्व ही आ जाता है। वदी भी मल है, जो मूत्र के साथ पहले अथवा पीछे निकलता है। १—इसके लिये शर्बत नीलोफर, शर्बत बनफशा, ईसबगोल, कासनी के बीज देने चाहिये। काहू के बीज, कासनी के बीज, भाँग के बीज, सूखा धनिया, नीलोफर के फूल, कूट-पीसकर ईसबगोल में मिलाकर काम में लाना चाहिये। २—तितली के बीज, अनीसून, प्रत्येक १ दिरम, गोखरू, जुन्दबेदस्तर, भाँग के बीज, दम्बुल अखवैन, वंशलोचन, प्रत्येक दो दिरम, गुलनार, गुलाब के फूल ३ दिरम, महीन पीसकर ठण्डे पानी के साथ काम में लाना चाहिये। ३—सहदाना भुना हुआ शहद में मिलाकर

देना चाहिये। ४—तितली के बीज ३ दिरम, फत्रबिस्त के बीज, सौसवन की जड़, प्रत्येक दो दिरम, गुलनार (गुलाब) के पत्ते, प्रत्येक १॥ दिरम, कूट-छान-कर दो दिरम खट्टे दही में, अंगूर के खट्टे पानी में मिलाकर पीना चाहिये।

स्वप्न में वीर्य निकल जाने का वर्णन—१—रोगी की पीठ पर सीसे का टुकड़ा बाँधना चाहिये। अलसी, वेद, सम्हालू के बिछाने पर दक्षिण करवट सोना चाहिये। चित्त कभी भी नहीं सोना चाहिये। दूर्वा, बकुल, आमलकी और कपूर समान भाग लेकर पुराने गुड़ के सहित पीसकर छोटी बेर के समान गोली बनानी चाहिये। इसको नारियल के पानी के साथ रात्रि में सोते समय सेवन कर लेना चाहिये। २—मूसली का चूर्ण, वंगभस्म, कवाबचीनी, गिलोय इनको ६ आने की मात्रा में प्रातः-काल और रात्रि में आँवले के हिम कषाय के साथ पान करना चाहिये। ३—बकरी के दूध के साथ शोरा और माजूफल पीसकर नाभि के चारोंओर लेप देने से स्वप्न-दोष मिटता है।

फ्रैसमूस—इसका अर्थ यह है कि शिश्न के अन्दर हमेशा कामेच्छा बनी रहती है। प्रतिदिन मूत्र-नली का विस्तार बढ़ता जाता है। इसके लिये रक्त-स्राव, जोंक लगाना, भोजन में न्यूनता तथा वात-नाशक तेल पीठ पर मलना चाहिये।

अजीता का वर्णन—संभोग के पीछे वीर्य के निकलने के समय विष्ठा का भी निकलना होता है। यह रोग उन पुरुषों को होता है, जो संगम में बहुत मजा उठाते हैं। इन पुरुषों की संतान मन्द और मूर्ख होती है। इसके लिये संगम से बचना चाहिये। सम्भोग से पूर्व मल-त्याग करना चाहिये। सम्भोग के समय नाशपाती, नारदीन का तेल गुदा पर मलना चाहिये। जिस स्त्री का गर्भ-स्थान ठण्डा हो, उससे संगम करना चाहिये। अमल, अखरोट, वेद के पत्ते, अकरकरा, मरजे जोश, इकलील, करूमना, इजखर, सलीरवा, सब समान भाग लेकर पानी में उबाल लेना चाहिये। जब पानी आधा रह जाय, तब छानकर तितली का तेल चौथाई मिलाकर तेल में पकाना चाहिये। पीछे से इसमें जुन्दवेदस्तर मिलाकर मरहम बना लेना चाहिये।

उबना का वर्णन—यह रोग वृद्धों में होता है। इस रोग के कारण पुरुष गुदा में सम्भोग करने की इच्छा करता है। इसके कई कारण हैं—नपुंसक के पास रहना, पुरुष में स्त्री की प्रकृति का होना है। स्त्री-प्रकृति-

वाले पुरुष का मूत्र-वाही नल अन्दर को झुका होता है, और इसके मूत्र-वाही नल तथा अण्ड-कोष छोटे होते हैं। जो पुरुष अपनी स्त्री से गुद-मैथुन करते हैं, उनकी संतान भी ऐसी ही उत्पन्न होती है। इसके लिये बनफसे का तेल और लुआबदार वस्तु की वस्ति देनी चाहिये।

अण्ड-कोषों की शोथ—इसके कई कारण हैं। जैसे, चोट का लगना, गनोरिया का विष तथा मम्पस के कारण अण्डों में शोथ उत्पन्न हो जाती है। अण्ड-कोष लाल, सूजे हुये, गरम, दबाने या छूने से बहुत दर्द-वाले होते हैं। कभी-कभी दोनों अण्ड-कोष सूज जाते हैं; परन्तु प्रायः दक्षिण अण्ड-कोष सूजता है।

चिकित्सा—यदि गनोरिया में उत्तर-वस्ति दी जाती है, तो उसको बन्द कर देना चाहिये। रोगी को बिस्तर पर पूर्ण विश्राम करना चाहिये। अंड-कोषों के नीचे तकिया रख देना चाहिये। पोस्त के डोडों से सेंक करना चाहिये। यदि दर्द बहुत होता हो, तो अंड-कोषों को बचाकर वीर्यवाही-नलिका पर लगाना चाहिये। ज्वर कम करने के लिये मैगनेशिया देना चाहिये। शोथ कम होने के दस दिन बाद तक भी रोगी को बिस्तर पर रखना चाहिये। रोगी को लँगोट बाँधकर रहना चाहिये। १—बाबूना, इकलील, ज़ीरा, गुलरोगन और अण्डे की जर्दी का लेप करना चाहिये। २—अलसी के बीजों का लुआब, करमकल्ले के पत्ते, मेथी, शहद में मिलाकर लेप करना चाहिये। ४—चोट के कारण यदि शोथ हो, तो शीत परिसेंक करना चाहिये। ५—ढाक के फूलों के काढ़े से सेंक करना भी उत्तम है, और फोक को गरम करके गोलियों पर बाँधना चाहिये। ६—धनिये का पानी, कद्दू का पानी, कासनी और मकोय का पानी मिलाकर इनसे परिसेंक करना चाहिये। यदि दर्द बहुत हो, तो इसमें अफीम मिला लेना चाहिये।

गोलियों का ऊपर चढ़ जाना—इस रोग का कारण सर्दी है। इसकी चिकित्सा कठिन है। बाबूने और अलसी के बीज के काढ़े में रोगी को बिठाना चाहिये। फरफयून का तेल, हींग, कलील, बाबूना शहद में मिलाकर लेप करना चाहिये।

अण्ड-कोषों की खाल का ढीला पड़ जाना—इसके लिये माजू-आस, गुलाब के फूल, गुलनार, बलूत की छाल और कजमाजू का लेप करना चाहिये।

अण्ड-कोष की खुजली का वर्णन—हरड़ और शाहतरा का काढ़ा पीने को देना चाहिये। गुलरोगन, मामीसा, अजवायन का ताजा पानी, सिरका मिलाकर लेप करना चाहिये। गरम पानी से धोना चाहिये।

मूत्रवाही-नल का टेढ़ा हो जाना—यह दोष प्रायः हस्त-दोष से होता है। इसके लिये सौसन का तेल, नर्गिस का तेल मलना चाहिये।

अण्ड-वृद्धि—इसके कई कारण हैं। जैसे—आँतों का उतर आना, पेट की भीतरी झिल्ली के उतर आने से, हवा भर जाने से, पानी भर जाने से, रक्त भर जाने से अण्ड-कोष आकार में बढ़ जाते हैं।

आंत्र के उतरने से—कई पुरुषों में आंत्र उसी छिद्र से अंड-कोषों में उतर आती है, जिस छिद्र से अण्ड आठवें मास में उदर में से उतरकर अण्ड-कोषों में आता है। यह छिद्र उरर में वंक्षण-प्रदेश में होता है। साधारणतः यह छिद्र बन्द हो जाता है; परन्तु यदि बन्द न हो, तो रोगी के खाँसने या झटके लगने के कारण आंत्र नीचे उतर आती है, और अण्ड-कोष में पहुँच जाती है। इसके लिये रोगी को लेटाकर धीरे से आंत्र को दबाकर पीछे पहुँचा देना चाहिये। यदि इस प्रकार से सहायता न मिले, तो गर्म पानी का सेंक करना चाहिये। गर्म पानी में बैठाना चाहिये। बाबूने का तैल गर्म करके मलना चाहिये। जब आंत्र अपनी जगह पर आ जाय, तब मस्तगी, अंजरूत, कुन्दुरू, सर्रू का फल, सर्व का पत्ता, अकाकिया, अनार के फल, हीराबोल, बूल, फिटकिरी, देवदारु, रसौत प्रत्येक बराबर लेकर मकोय के पानी में लेप बनाकर लगाना चाहिये। खाने के लिये द्रव भोजन देना चाहिये। वायुकारक वस्तुओं को छोड़ देना चाहिये। २—कुन्दुरू, एलुवा, बूल, देवदारु प्रत्येक ३॥ माशे, कूटकर २४ घण्टे सिरके में भिगोकर लेप करना चाहिये। यह लेप पेट की झिल्ली के उतरने में भी लाभदायक है।

जीरे की जवारिश—जीरा किरमानी सुधा हुआ १७५ माशे, सफेद मिर्च, कालीमिर्च, प्रत्येक २४॥ माशे, तुतली ५२॥ माशे, दालचीनी, पापड़ी नमक, प्रत्येक १७॥ माशे, सोंठ का मुरब्बा १४० माशे, मुरब्बों की हरड़ २१० माशे, गुलकन्द, ३५० माशे मिला देना चाहिये। इससे वायु नहीं बढ़ती। इसको जवारिश कम्मूनी अकबर भी कहते हैं।

अण्ड-कोषों में पानी भरना—सबसे प्रथम पानी अण्ड-कोषों की तलैटी में भरना प्रारम्भ होता है। फिर धीरे-धीरे नारंगी के आकार में बढ़

जाती है। इसकी पीठ चिकनी होती है, स्पर्श करने में मुलायम दर्द-रहित होती है। परन्तु भार के कारण बेचैनी उत्पन्न करती है। यह आघात के कारण, बिना किसी कारण अथवा उत्पत्ति के समय ही से होती है। इसके लिये अनार्य-चिकित्सा में विधान है।

१—कर्नब की लकड़ी की राख, बलूत की राख, जैतून के तेल में मिलाकर लेप करना चाहिये। २—नागरमोथा, जौ का चून, गौ का गोबर; मिर्च, हब्बुलगार, पापड़ी नोन; जीरा इनको जैतून के तेल में अथवा शराब में; जौ का चून, नागरमोथा, गिले इरमानी, जीरा, सरू के पत्ते, मौलसिरी के पत्ते, बकरी की पुरानी मींगनी, सब बराबर लेकर, गोबर में मिलाकर लेप करना चाहिये। ये सब दवाइयाँ वहीं उपयोगी हैं, जहाँ पानी अधिक एकत्रित न हुआ हो।

हवा के कारण जो वृद्धि होती है—१—१६ तोले गोमूत्र में एरण्ड-तैल में पिसा हुआ गोमूत्र ८ माशे मिलाकर अथवा २ तोला एरण्ड-तैल मिलाकर पान करने से वात-वृद्धि नष्ट होती है। २—आर्द्रक-रस के साथ, मधु के साथ पीने से और चन्दन, मुलहठी, पद्माख, उशीर, नीलकमल, इन सब वस्तुओं को दूध में पीसकर लगाने से पित्तज-वृद्धि शान्त होती है। ३—हरीतकी गोमूत्र में पकाकर एरण्ड-तैल, नमक और गोमूत्र के साथ प्रतिदिन खाना चाहिये। ४—एरण्ड-तैल दूध के साथ पान करने से। ५—दक्षिण वृषण-वृद्धि में वामकर्ण और वाम वृषण-वृद्धि में दक्षिण कर्ण-बन्ध करने से वृद्धि-रोग शान्त हो जाता है। ६—हरीतकी कल्क को एरण्ड-तैल में भूनकर पिप्पली और सैन्धव-चूर्ण के साथ खाने से बद गाँठ को आराम होता है।

आंत्र-वृद्धि के पट्टे का उपयोग करना चाहिये।

प्रकरण सातवाँ

आँख, कान, नाक, मुख और दाँत के रोग

आँख, कान, नाक, मुख ये अवयव बहुत बारीक रचनावाले हैं। इनमें बहुत प्रकार के रोग होते हैं। इसलिये योग्य चिकित्सक से इस काम में सलाह लेनी चाहिये। यहाँ पर मुख्य-मुख्य रोगों का वर्णन किया जाता है।

आँख के रोग

आँख का दुखना (अभिष्यन्द)--आँख के अन्दर की श्लेष्मिक कला में किसी प्रकार का विक्षोभ होने से आँख लाल हो जाती है। इसमें दाह, वेदना और स्राव होता है। आँख का श्वेत भाग भी लाल हो जाता है। यह विक्षोभ धुआँ लगने से, वायु लगने से, शीत-क्रिया से, आँख में कुछ गिर जाने से, गरम वस्तुओं के खाने से, दुःखित आँखों के स्राव के लगने से होता है। यदि आक्रमण जोर का हो, तो अन्दर से पीव निकलती है। यदि तुरन्त उपाय नहीं किया जायगा, तो इसमें फूली पड़ जाती है। इससे आँख की कनीनिका को भी नुकसान पहुँच जाता है।

उपाय—१—आँख के ऊपर गुलाबजल का, दूध का, हल्दी के पानी का कपड़ा रखना चाहिये। इसके अतिरिक्त आँख के अन्दर निम्न वस्तुओं की बूँदें डालनी चाहिये। इससे शोथ और लाली कटती है। २—त्रिफले के क्वाथ की या स्त्री के दूध की बूँदें डालना चाहिये। ३—जिंक सल्फर ४ ग्रेन, पानी १ औंस; नीलातुत्थ २ ग्रेन, गुलाबजल १ औंस; टॉनिक एसिड २० ग्रेन, ग्लैसरीन २ ड्राम, पानी ६ ड्राम; फिटकिरी ३ ग्रेन, पानी १ औंस; कार्बालिक १ ग्रेन, गुलाबजल १ औंस; दो-चार बार आँख में डालना चाहिये। मधु या ग्लैसरीन की बूँद आँख में डालनी चाहिये।

सेंक—यदि आँख में दर्द बहुत हो, तो मृदु सेंक करना चाहिये। दर्द को कम करने के लिये पोस्त के डोडों का सेंक करना चाहिये। पीछे से सिल्वर नाइट्रेट का घोल (१ से ३ ग्रेन, पानी १ औंस) डालना चाहिये।

आँखों को बोरिक लोशन या नीम के पानी से दिन में चार-पाँच बार धोना चाहिये।

कुकरे—आँख की पलकों के अन्दर साबूदाने के समान छोटे-छोटे लाल दाने हो जाते हैं। इनको देखने के लिये पलक को उलटा करना पड़ता है। ये लाल दाने सच्चे कुकरे नहीं हैं। सच्चे कुकरे सफ़ेद होते हैं, जो इन लाल दानों के बीच में दिखाई देते हैं।

लक्षण—आँख लाल हो जाती है। आँख में खुजली मालूम पड़ती है। आँख में शोथ हो जाती है; पानी बहता है; उजाला सहन नहीं हो सकता। आँख में कुछ रड़कता-सा प्रतीत होता है। ये कुकरे यदि पुराने हो जाते हैं, तो स्थायी बन जाते हैं और बार-बार आँख दुखने लगती है। आँख का डेला कुछ मैला हो जाता है। दृष्टि मन्द पड़ जाती है; पलकें अन्दर की तरफ़ झुक जाती हैं। उजियाले में आँख टिक नहीं सकती।

उपाय—आँख दुखने के सब उपाय इस रोग में बरते जा सकते हैं। पलकें उलटा करके कास्टिक लोशन (२० ग्रेन, १ औंस पानी में) लगाकर नमक के पानी से धोना चाहिये। टॉनिक एसिड ग्लीसरीन का लगाना भी उत्तम है। प्रोटार गोल २० ग्रेन, ग्लैसरीन ३० बूँद, पानी १ औंस आँख में डालना चाहिये। रोगी को अँधेरे कमरे में रखना चाहिये, और अच्छा होने पर चश्मे का उपयोग करना चाहिये।

आँख का व्रण—आँख के काले डेले में शोथ होने से श्वेत या पीला चिन्ह पड़ जाता है। काले डेले का व्रण होने पर दाग़ रह जाता है। इस व्रण को फूली कहते हैं। इसका कारण अक्षि-शोथ या चेचक अथवा चोट होती है।

उपाय—१—व्रण पड़ने पर गरम पानी का सेंक करना चाहिये। आँख पर पट्टी बाँधकर रखनी चाहिये। एट्रोपीन १ से ४ ग्रेन १ औंस पानी में मिलाकर प्रयोग करना चाहिये। २—कैलोमल, आयडोफार्म, बोरिक एसिड, इनका चूर्ण आँख में डालना चाहिये अथवा इनके प्रत्येक ३० ग्रेन चूर्ण को १ औंस वैजलीन में मिलाकर प्रलेप बनाना चाहिये।

शुक्र—यदि यह ताजा हो, तो मिट जाता है। इसके लिये निम्न उपाय बरतना चाहिये—

१—कैलोमल ३० ग्रेन अथवा ५ ग्रेन यलो ऑक्साइड ऑफ मर्करी को एक औंस श्वेत वैजलीन में मिलाकर अञ्जन करना चाहिये। मोरतुत्थ २ ग्रेन, पानी एक औंस का उपयोग करना चाहिये।

मोतिया—यह रोग वृद्धावस्था में प्रायः होता है। इस रोग के कारण आँख के अन्दर का स्वच्छ लैन्स अपार-दर्शक बन जाता है। जिस समय इस रोग का प्रारम्भ होता है, उस समय आँख के सामने धुँधलापन नजर आता है। सम्पूर्ण मोतिया उतरने में कई वर्ष या मास लग जाते हैं। पक जाने पर इसको चाकू से निकलवा देना चाहिये। निर्बलता भी इस रोग का कारण है।

कामरवा—यह बहुत कष्टदायक रोग है। इस रोग के कारण सिर में पीड़ा होती है, इसलिये कई बार इसको शिरोरोग समझा जाता है। यह रोग प्रायः बड़ी आयु में होता है। इस रोग का आक्रमण दो प्रकार से होता है—एक तो आँख में सख्त शोथ होती है, और दूसरे रूप में रोग का आक्रमण शनैः-शनैः होता है। इसमें कोई भी स्पष्ट लक्षण दिखाई नहीं देता। इस दूसरे प्रकार में आँख की दृष्टि धीरे-धीरे कम हो जाती है। इस रोग में अनार्य-चिकित्सा की 'एसेरीन सल्फेट' उत्तम औषधि है। इसके कारण आँख की पुतली संकुचित हो जाती है। यदि शोथ तीव्र हो, तो रक्त का दबाव कम रखना चाहिये। इसके लिये आँखों के बराबर छाला उठाना चाहिये, जलौका लगाना चाहिये, विरेचन देना चाहिये। खाने के लिये एक्सालजोन ५ ग्रेन की मात्रा में या फीनेजोन १० ग्रेन की मात्रा में देना चाहिये। रोगी को नींद लानेवाली औषधि देनी चाहिये।

परवाल—पलकों के अन्दर मुड़ जाने से बाल आँखों में चुभते हैं। अथवा पलकों के किनारों पर नये बाल उत्पन्न होकर आँख के अन्दर के भाग की तरफ मुड़कर आँख को नुक़सान पहुँचाते हैं, और कई बार काले ढेले पर घिसने से फूली की भाँति झाईं दिखाई देती है। परवाल होने से आँख में खुजली होती है, बालों की जड़ें सूजी हुई, आँख लाल तथा किनारे मोटी होती है।

उपाय—१—अन्दर की तरफ मुड़े हुये बालों को संदंश से निकालकर कॉस्टिक से जला देना चाहिये; परन्तु फिर भी आना सम्भव है। २—यलो ऑक्साइड ऑफ मर्करी का प्रलेप लगाना उत्तम है।

अञ्जन-नामिका—पलकों की जड़ में छोटी फुंसी हो जाती है, इसको अञ्जली कहते हैं। जब यह पकती है, तो इसमें से पीव निकलती है। यह रोग अस्वच्छता से होता है। यह रोग प्रायः बालकों में होता है, और कई बार एक के पीछे दूसरी, इस प्रकार से लगातार कई निकलती हैं।

उपाय—१—गरम पानी से बारबार सेंक करना चाहिये। फिटकिरी मिलाकर गरम पानी से धोना चाहिये। कास्टिक से जला देना चाहिये। लौंग घिसकर लगाना उत्तम है। पीने के लिये टिंचर बैलोडोना १ बूँद १ औंस पानी में, प्रत्येक एक घण्टे के अन्तर से देना चाहिये।

आँख के रोगों के लिये सामान्य उपाय—१—आँवले का रस अथवा शोभाञ्जन के पत्तों के रस में १ माशा मधु और २ रत्ती सैंधव मिलाकर आँख में डालना चाहिये। २—दारुहरिद्रा के काढ़े में रसौत और स्तन्य-दुग्ध मिलाकर आँख में डालने से अभिष्यन्द-रोग को आराम होता है। ३—सैन्धव, रसौंत, दारुहरिद्रा, स्वर्ण-गैरिक, हरीतकी इनका लेप आँखों के बाहर करना चाहिये। ४—हरीतकी का बीज १ भाग, बहेड़े का बीज २ भाग, आमलकी-बीज ३ भाग जल में पीसकर; बत्ती बनाकर अञ्जन करना चाहिये। ५—शतावरी का रस पीना अथवा रसौंत, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, मालती-पत्र, नीम-पत्र इन सबको गोमय-रस में घिसकर अञ्जन करना चाहिये। इससे रतौंधी दूर होती है। ६—निर्मली-फल को मधु के साथ घिसकर इसमें थोड़ा-सा कपूर मिलाकर अञ्जन करने से आँख निर्मल होती है। ७—सौवीराञ्जन सात बार त्रिफला के काढ़े में, सात बार स्तन्य-दूध में बुझाकर अञ्जन करना चाहिये। इससे सब प्रकार के अक्षि-रोग दूर होते हैं। ८—निर्मली-फल, शंखनाभि, तिन्दुक और चाँदी इनको स्तन्य-दुग्ध के साथ काँसी के बर्त्तन में घिसकर अञ्जन करने से व्रण-शुक्र-रोग अच्छा होता है। ९—समुद्रफेन, मुर्गे के अण्डे का छिलका, सैन्धव नमक, मधु (किसीके मत में स्वर्णमाक्षिक) और सहजन के बीज इन सब वस्तुओं को सहजन के रस में पीसकर बत्ती बनानी चाहिये। यह बत्ती शुक्र-रोग में लाभकारी है। १०—मुर्गे के अण्डे का छिलका, मनःशिला, शंखनाभि, काचलवण, चन्दन,

गेरू इनको समान भाग लेकर अंजन करने से अर्म्य-रोग अच्छा होता है। ११—करञ्ज-बीज के चूर्ण को एक सप्ताह तक ढाक के फूल के स्वरस में भिगोकर बत्ती बनाकर अथवा सैन्धव-चूर्ण को मधु के साथ लगाने से कुसुम और अर्म्य-रोग नष्ट होते हैं। १२—सूक्ष्म कपूर के चूर्ण को बट के दूध में मिलाकर अञ्जन करने से उन्नत शुक्र-रोग शान्त होता है। १३—त्रिफले की मज्जा, गोरोचन, जेठी मधु और लाल चन्दन, इनको मधु के साथ पीसकर अञ्जन करने से क्षत, व्रण, शुक्र और अश्रु-स्राव नष्ट होता है। १४—दुर्व्वा, यव, गेरू, अनन्तमूल, इन सब वस्तुओं को घी के साथ पीसकर प्रलेप देने से चक्षुः-शूल, आँख की लालिमा शान्त होती है। १५—मधु के साथ शङ्खनाभि, सैंधव के साथ निर्मली-फल, अथवा चीनी के साथ समुद्रफेन पीसकर अर्जुन रोग में अञ्जन करना चाहिये। १६—जस्ते का सफेदा, सभगे अरबी, कतीरा इनको ईषबगोल के लुआब में या अण्डे की सफेदी में बत्ती बनाकर आँख में अञ्जन करने से आँख का दर्द शान्त होता है। १७—एलुवा, रसौंत, बूल, अकाकिया, केसर गुलाब में पीसकर माथे और पलकों पर लेप करना चाहिये। यह पित्त-जन्य शोथ में उत्तम है। १८—सफेदा, चाँदी का मैल प्रत्येक ३५ माशे, अफीम आधा माशा, कतीरा ५ माशे, नशास्ता ३॥ माशे, कूट-छानकर बत्ती बनानी चाहिये, यह वात-जन्य शोथ में उपयोगी है।

खाने के उपाय—आँख के रोगों के लिये आर्य-चिकित्सा-शास्त्र में खाने की औषधि लिखी हैं। वे कई बार बहुत उपयोगी हैं।

१—नेत्रबाला ४ तोले, पानी २० तोले काढ़ा करके इसमें पिप्पली २ माशे, सैंधव २ माशे, मधु १० माशे, घी १ तोला वर्षा तथा ठण्डी ऋतु में खाना चाहिये। २—त्रिफला ४ तोले, पानी ४० तोले, अष्ठमांश शेष रखकर इसमें इतना ही घी मिलाकर पाक करना चाहिये। मात्रा ४ तोले। ३—भाँगरे का रस ६४ तोले, तेल १६ तोले, मुलहट्टी १६ तोले, दूध ६४ तोले, इनको तैल-पाक-विधि से पाक करना चाहिये। इसकी मात्रा ६ माशे है। ४—त्रिफला क्वाथ, भाँगरे का रस, वासा के स्वरस, शतावरी का स्वरस, बकरी का दूध, गिलोय का काढ़ा, घी, प्रत्येक ६ तोले; पिप्पली, शर्करा, द्राक्षा, त्रिफला, नील कमल, मुलहट्टी, लक्ष्मणा, कटेरी, प्रत्येक १० तोले लेकर चटनी करके घृत-पाक-विधि से पकाना चाहिये। मात्रा २ तोला। ५—मुलहट्टी, त्रिफला, इनका चूर्ण ३ माशे, लोह-भस्म १ रत्ती मधु और घी में चाटकर दूध पीना चाहिये।

मस्तिष्क की शक्ति बढ़ाने के उपाय—इससे आँखों को पोषण मिलता है। १—बादाम की मींगी १ तोला, इलायची ३ माशे, शर्करा १ तोला, गाय का ताजा घी २ तोला, इन सबको कलई के पात्र में रखकर प्रातः-सायं खाना चाहिये। २—प्रवाल या मुक्ता-पिष्ठि मक्खन के साथ खाना चाहिये। ३—अश्वगन्धा, शतावरी, विदारी, तालमखाने का चूर्ण, मुलहट्ठी, गाय का दूध सब प्रकार की शीतल वीर्य-वर्धक औषधियाँ इस रोग में उपयोगी हैं।

एक आवश्यक बात—आँखों का सम्बन्ध वीर्य के साथ है। शरीर के अन्दर आँख ही सूर्य या तेज का प्रतिनिधि है। वीर्य को उपनिषदों में तेज कहा है। इसलिये तेज की वृद्धि की कामना करनेवाले के लिये शुक्र की रक्षा करनी चाहिये। जिन पुरुषों में शुक्र के अन्दर दोष आ जाता है, अथवा शुक्र की न्यूनता हो जाती है, उनके आँखों में भी निर्बलता आ जाती है।

एक दूसरी बात यह है कि जो जातियाँ निकट में विवाह करती हैं, उनके अन्दर आँख के रोग विशेष रूप से पाये जाते हैं, जैसे मुसलमानों में। इसलिये निकट सम्बन्ध से अवश्य बचना चाहिये।

कान के रोग

कान की रचना बड़ी टेढ़ी है, और इसमें रोग भी नाना प्रकार के होते हैं। क्योंकि कान का सम्बन्ध नाक और गले से है। इसलिये नाक या गले के रोगों के कारण भी कान आक्रान्त हो जाते हैं। यही कारण है कि सर्दी लगने से यदि प्रतिश्याय हो जाय, तो कान में भी भारीपन आ जाता है।

कान की शोथ—कई बार कर्ण की नलिका में अथवा परदे पर सूजन आजाती है। इस पीड़ा के कारण शोथ, ज्वर-रक्तिमा, बेचैनी आदि लक्षण होते हैं। इस शोथ के कारण शिर में दर्द हो जाता है, कान में चस्का, ज्वर, अतिसार, मलबन्ध, तेज नाड़ी आदि उपद्रव होते हैं। सूजन के पकने से कान से पीब आती है।

कारण—ठण्डी वायु के लगने से, गरम दवा के डालने से, कान को कुरेदने से, मैल के इकट्ठा हो जाने से, अथवा कान पर थप्पड़ आदि लगने से शोथ उत्पन्न हो जाती है।

उपाय—१—बिना कारण को समझे कभी भी पिचकारी का उपयोग नहीं करना चाहिये। कान में दर्द मालूम पड़ने पर गरम पानी अथवा पोस्त के डोडों का सेंक करना चाहिये। २—हल्का जुलाब देना चाहिये। ३—जलौका लगाकर अथवा कान के पीछे छाला उठाना चाहिये। ४—टिंचर-बैलोडोना, टिंचर ओपयाई को ग्लैसरीन में मिलाकर कान में डालना चाहिये। रोगी को शान्त पड़े रहने देना चाहिये। खाने के लिये द्रव भोजन देना चाहिये। अशक्ति हो, तो शक्ति की दवा देनी चाहिये।

कान में मैल—कई बार कान के अन्दर मैल सूख जाती है, अथवा वहाँ बहुत मैल इकट्ठी हो जाती है, उस समय कान के अन्दर बहुत दर्द होता है। कान का रास्ता भर जाने से भली प्रकार सुनाई नहीं देता। कान के अन्दर कुछ आवाज़-सी स्वयं होती रहती है। कान को देखने से अन्दर मैल दिखाई देती है। कइयों के कान में निरन्तर मैल जमा ही रहती है।

उपाय—मैल निकालने के लिये प्रथम रात्रि को सोते समय ग्लैसरीन, सरसों या बादाम के तेल की २-३ बूँद कान में डाल देनी चाहिये। अगले दिन प्रातःकाल गरम पानी से पिचकारी मारनी चाहिये। पिचकारी मारते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि पानी की धार कर्ण-गुट्टा की पश्चिम भित्ति के साथ छूकर जाय और धारा एक समान जानी चाहिये। पानी साधारण गर्म होना चाहिये। इस पानी में यदि सोडाबाईकार्ब मिला लिया जाय, तो अच्छा है। कान के अन्दर कोई जीव या जन्तु पड़ जाय, तो उस समय गरम तेल का उपयोग सबसे उत्तम है। लौडेनम की ४-५ बूँद डालने से जन्तु मर जाता है।

कान का पाक--कान का अगला अथवा अन्दर का भाग जब पक जाता है, तब इसमें से रस, पानी अथवा कठिन पीव निकलती है। कान के अन्दर की अस्थि सड़ने लगे, तो पीव के साथ रक्त भी आ जाता है। प्रारम्भ में कान के अन्दर विद्रधि के सब लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। रोगी को ज्वर हो जाता है, पीछे रोग नर्म पड़ जाता है।

कारण—यह रोग कर्ण-शोथ के कारणों ही से उत्पन्न होता है। निर्बल और गलगंड-रोग से ग्रस्त बालकों में यह रोग बार-बार होता है। तन्दुरुस्ती अच्छी होने से रोग मिट जाता है। कान की नाड़ी पक जाय, तो नाड़ी-व्रण हो जाता है।

उपाय—फलालैन या पोस्त के डोडों का गरम परिसेंक करना चाहिये। प्रारम्भ में पीव बन्द करने का उपाय नहीं करना चाहिये। बिना वास्तविक स्थिति को समझे कान में पिचकारी कभी भी नहीं मारनी चाहिये। कान को धोने के लिये हाइड्रोजन पर ऑक्साइड का उपयोग करना चाहिये। इससे कान को दो-तीन बार धोकर इसीको कान में छोड़ देना चाहिये। यह दवा जन्तुघ्न है। आयडोफार्म और बोरिक एसिड को मिलाकर उसकी बुरकी फूँक से कान के अन्दर डालनी चाहिये। अथवा इनको ग्लैस-रीन मे मिलाकर डालना चाहिये। १—नदी या समुद्र में जो शङ्ख या सीप मिलते हैं, उनके अन्दर शम्बूक नाम का कीड़ा होता है। उसको तेल में पका-कर कान में डालना चाहिये। २—आम, जामुन, महुआ, बड़ इनके कोमल पत्तों को तेल में पकाकर, इनका तेल कान में डालना चाहिये। जात्यादि-तैल इस रोग के लिये उत्तम है।

बहरापन—कान में शोथ होने से, कान के पकने से, कान में मैल इकट्ठा होने से, गले में टौंसिल के बढ़ने से कान के अन्दर बहरापन आ जाता है। कान के खुरेदने से या थप्पड़ आदि के आघात से, जब कान का परदा फट जाता है, तब सुनाई देना बन्द हो जाता है। इसके अतिरिक्त कई बार बहरापन कान की नाड़ी के कारण भी होता है।

उपाय—१—कारण ढूँढकर उसकी चिकित्सा करनी चाहिये। कान के पीछे टिंचर आयोडीन अथवा जौंक या छाला उठाना चाहिये। निर्बलता के कारण यदि बहरापन हो, तो शक्तिवर्धक औषधियाँ देनी चाहिये। २—बोरिक एसिड को रैक्टीफाई स्प्रिट में मिलाकर एक या दो बूँद कान के अन्दर डालनी चाहिये। ३—अपामार्ग की राख का नितरा पानी २० तोला, तेल ५ तोला, अपामार्ग-क्षार डेढ़ तोला, इनको तैल-विधि से पकाकर कान में डालना चाहिये।

कर्ण-शूल—यह रोग कान के वातिक विकार से, कान में किसी वस्तु के पड़ जाने से अथवा कर्ण-शोथ से उत्पन्न होता है। वातिक कारणों में ठंडी वायु का लगना या ठंडे पानी में स्नान करना है। परन्तु कई बार दाँत उखाड़ने से अथवा बच्चों के दाँत निकलते समय भी यह रोग हो जाता है। रोगी को तीव्र दर्द होता है, जो शिर और मुख की तरफ जाता है।

उपाय—१—बिना कारण को समझे कभी भी पिचकारी का उपयोग नहीं करना चाहिये। कान में दर्द मालूम पड़ने पर गरम पानी अथवा पोस्त के डोडों का सेंक करना चाहिये। २—हल्का जुलाब देना चाहिये। ३—जलौका लगाकर अथवा कान के पीछे छाला उठाना चाहिये। ४—टिंचर-बैलोडोना, टिंचर ओपयाई को ग्लैसरीन में मिलाकर कान में डालना चाहिये। रोगी को शान्त पड़े रहने देना चाहिये। खाने के लिये द्रव भोजन देना चाहिये। अशक्ति हो, तो शक्ति की दवा देनी चाहिये।

कान में मैल—कई बार कान के अन्दर मैल सूख जाती है, अथवा वहाँ बहुत मैल इकट्ठी हो जाती है, उस समय कान के अन्दर बहुत दर्द होता है। कान का रास्ता भर जाने से भली प्रकार सुनाई नहीं देता। कान के अन्दर कुछ आवाज़-सी स्वयं होती रहती है। कान को देखने से अन्दर मैल दिखाई देती है। कइयों के कान में निरन्तर मैल जमा ही रहती है।

उपाय—मैल निकालने के लिये प्रथम रात्रि को सोते समय ग्लैसरीन, सरसों या बादाम के तेल की २-३ बूँद कान में डाल देनी चाहिये। अगले दिन प्रातःकाल गरम पानी से पिचकारी मारनी चाहिये। पिचकारी मारते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि पानी की धार कर्ण-गुहा की पश्चिम भित्ति के साथ छूकर जाय और धारा एक समान जानी चाहिये। पानी साधारण गर्म होना चाहिये। इस पानी में यदि सोडाबाईकार्ब मिला लिया जाय, तो अच्छा है। कान के अन्दर कोई जीव या जन्तु पड़ जाय, तो उस समय गरम तेल का उपयोग सबसे उत्तम है। लौडेनम की ४-५ बूँद डालने से जन्तु मर जाता है।

कान का पाक—कान का अगला अथवा अन्दर का भाग जब पक जाता है, तब इसमें से रस, पानी अथवा कठिन पीव निकलती है। कान के अन्दर की अस्थि सड़ने लगे, तो पीव के साथ रक्त भी आ जाता है। प्रारम्भ में कान के अन्दर विद्रधि के सब लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। रोगी को ज्वर हो जाता है, पीछे रोग नर्म पड़ जाता है।

कारण—यह रोग कर्ण-शोथ के कारणों ही से उत्पन्न होता है। निर्बल और गलगंड-रोग से ग्रस्त बालकों में यह रोग बार-बार होता है। तन्दुरुस्ती अच्छी होने से रोग मिट जाता है। कान की नाड़ी पक जाय, तो नाड़ी-व्रण हो जाता है।

उपाय—फलालैन या पोस्त के डोडों का गरम परिसेंक करना चाहिये। प्रारम्भ में पीव बन्द करने का उपाय नहीं करना चाहिये। बिना वास्तविक स्थिति को समझे कान में पिचकारी कभी भी नहीं मारनी चाहिये। कान को धोने के लिये हाइड्रोजन पर ऑक्साइड का उपयोग करना चाहिये। इससे कान को दो-तीन बार धोकर इसीको कान में छोड़ देना चाहिये। यह दवा जन्तुघ्न है। आयडोफार्म और बोरिक एसिड को मिलाकर उसकी बुरकी फूँक से कान के अन्दर डालनी चाहिये। अथवा इनको ग्लैसरीन में मिलाकर डालना चाहिये। १—नदी या समुद्र में जो शङ्ख या सीप मिलते हैं, उनके अन्दर शम्बूक नाम का कीड़ा होता है। उसको तेल में पकाकर कान में डालना चाहिये। २—आम, जामुन, महुआ, बड़ इनके कोमल पत्तों को तेल में पकाकर, इनका तेल कान में डालना चाहिये। जात्यादि-तैल इस रोग के लिये उत्तम है।

बहरापन—कान में शोथ होने से, कान के पकने से, कान में मैल इकट्ठा होने से, गले में टौंसिल के बढ़ने से कान के अन्दर बहरापन आ जाता है। कान के खुरदने से या थप्पड़ आदि के आघात से, जब कान का परदा फट जाता है, तब सुनाई देना बन्द हो जाता है। इसके अतिरिक्त कई बार बहरापन कान की नाड़ी के कारण भी होता है।

उपाय—१—कारण ढूँढकर उसकी चिकित्सा करनी चाहिये। कान के पीछे टिंचर आयोडीन अथवा जौंक या छाला उठाना चाहिये। निर्बलता के कारण यदि बहरापन हो, तो शक्तिवर्धक औषधियाँ देनी चाहिये। २—बोरिक एसिड को रैक्टीफाई स्प्रिट में मिलाकर एक या दो बूँद कान के अन्दर डालनी चाहिये। ३—अपामार्ग की राख का नितरा पानी २० तोला, तेल ५ तोला, अपामार्ग-क्षार डेढ़ तोला, इनको तैल-विधि से पकाकर कान में डालना चाहिये।

कर्ण-शूल—यह रोग कान के वातिक विकार से, कान में किसी वस्तु के पड़ जाने से अथवा कर्ण-शोथ से उत्पन्न होता है। वातिक कारणों में ठंडी वायु का लगना या ठंडे पानी में स्नान करना है। परन्तु कई बार दाँत उखाड़ने से अथवा बच्चों के दाँत निकलते समय भी यह रोग हो जाता है। रोगी को तीव्र दर्द होता है, जो शिर और मुख की तरफ जाता है।

रोगी को मुँह खोलने में, चबाने में तकलीफ होती है। इस रोग में ज्वर और स्राव नहीं होता।

उपाय—१—रोगी को विरेचन देकर थोड़ी-सी क्युनीन देनी चाहिये। कान के रोगों में क्युनीन का देना खतरनाक है। इसलिये बहुत ही थोड़ी मात्रा में देना चाहिये। कान के ऊपर अलसी की पुल्टिस बाँधना चाहिये। कान के पीछे राई की पुल्टिस भी बाँधना उत्तम है। कान पर नमक या चोकर की थैली से सेंक करना चाहिये, पोस्त के डोडों का सेंक भी उत्तम है। प्याज के मध्य भाग को घी में तलकर, इसको कपड़े में बन्द करके कान पर गरम-गरम रखना चाहिये (जितना गरम कि रोगी सह सके)। शीत परिसेंक से बचना चाहिये। टिंचर ओपयाई १५ बूँद, टिंचर बैलाडोना १० बूँद, टिंचर कैनबिस इंडिका १० बूँद, इनको १ औंस ग्लैसरीन में मिलाकर अथवा कार्बोलिक एसिड १ बूँद, ग्लैसरीन ४० बूँद, इसको कान में डालने से तुरन्त आराम हो जाता है।

सामान्य उपाय—१—आर्द्रक-रस ४ माशे, मधु २ माशे, सैन्धव १ रत्ती, तिल-तैल २ माशे, इन सबको मिलाकर, थोड़ा गरम करके कान में डालने से कर्ण-शूल, बहरापन नष्ट हो जाता है। २—तैल से कान को चिकना करके, समुद्रफेन का चूर्ण कान में डालना चाहिये। ३—सहजन का रस तिल-तैल में पकाकर थोड़ा गरम करके कान में डालने से कर्ण-शूल नष्ट होता है। ४—आक के पीले पत्तों पर घी लगाकर अग्नि पर गरम करके इनका रस निकाल लेना चाहिये और उसको कान में डालना चाहिये। ५—कड़ुआ तैल को कान में डालने से आराम होता है। ६—निर्गुण्डी-पत्र-रस, तैल, सैन्धव, पुराना गुड़, गृह-धूम, इनको मधु के साथ मिलाकर कान में डालने से कान की पीव नष्ट होती है। ७—पानी के साथ बच को घिसकर नीबू के पानी से गीला करके, इसको थोड़ा गरम करके, कान में डालने से शूल अच्छा होता है। ८—मुर्गे के अण्डे के छिलके के चूर्ण को नीबू के स्वरस में मिलाकर डालने से कान की पीव अच्छी हो जाती है।

नाक के रोग

नाक में बहुत प्रकार के रोग होते हैं। जैसे—गन्ध परखने की शक्ति का नाश, खराब बास, नाक का पकना, नाक से पीव-मिश्रित रक्त-स्राव, छींक आना, जलन, नाक का सूखना, श्वास का अवरोध, प्रतिश्याय, पीनस, नकसीर आदि हैं। नाक के बहुत-से रोगों का सम्बन्ध मस्तिष्क के साथ है।

नाक के अन्दर कीड़े—यह प्रायः गन्दे रहनेवाले घरों में मिलता है। मक्खी नाक में जाकर वहाँ अण्डे दे देती है, जिससे यह रोग उत्पन्न होता है। विशेषतः जब किसी प्रकार का स्राव होता रहता है, उस समय मक्खियाँ इसकी ओर खिंचकर आती हैं, और नाक के अन्दर पहुँच जाती हैं। कई बार सोते समय या निर्बलता के कारण मक्खियाँ नाक के अन्दर घुसकर अण्डे दे देती हैं। यह मक्खियाँ नाक के अन्दर के भाग ही को नहीं खातीं, बल्कि नाक की त्वचा से मुख में भी रास्ता बना लेती हैं।

उपाय—इसके लिये चूने के पानी या कांडेज फ्लूड की पिचकारी नाक में मारना चाहिये। यदि अण्डे दिखाई देते हों, तो उनको संदंश से पकड़कर निकाल लेना चाहिये।

प्रतिश्याय—सर्दी लगने से अथवा कोष्ठ के रोग के कारण नाक की श्लैष्मिक कला उत्तेजित हो जाती है। इससे रोगी को छींकें आती हैं, और नाक से पतला स्राव आता है। यह स्राव एक या दो दिन तक रहता है, फिर गाढ़ा हो जाता है। इसका रंग भी पीला हो जाता है। पीछे से नाक बन्द हो जाती है। श्वास में कठिनता होने लगती है।

उपाय—१—अजवायन या काले जीरे को पोटली में बाँधकर, थोड़ा गरम करके सुँघाना चाहिये। २—जायफल, जावित्री, सोंठ, कस्तूरी, इनकी पोटली बनाकर सूँघने से प्रतिश्याय के कारण होनेवाला शिर-दर्द अच्छा होता है। ३—नकछींकनी और कायफल इनका चूर्ण छींक को उत्पन्न करता है। ४—शुष्क वनोपत्र को जलाकर आक के दूध में भिगोना चाहिये। फिर इसको सूँघने से छींक आती है। ५—मिर्च, दही और गुड़ खाने से नाक के रोगों में लाभदायक है। ६—कायफल, पुष्करमूल, काकड़ाश्रृङ्गी, त्रिकटु, धमासा और अजवायन, इनके चूर्ण में अथवा इनके क्वाथ में आर्द्रक-रस मिलाकर पीने से पीनस, कफ, श्वास को आराम होता है।

७—भाँग या जयन्ती-पत्र को पुटपाक करके सैंधवनमक या तेल के साथ मिलाकर सेवन करने से प्रतिश्याय रोग शान्त होता है। ८—नये प्रतिश्याय में, इमली के पत्तों के काढ़े में हींग और मिर्च-चूर्ण मिलाकर पान करने से लाभ होता है। ९—पिप्पली, सहजन-बीज, बिडंग और मिर्च का चूर्ण नस्य लेने से प्रतिश्याय रोग शान्त होता है।

पीनस—जिस समय प्रतिश्याय पुराना हो जाता है, उस समय यह पीनस रोग में बदल जाता है। नाक से बहुत दुर्गन्धि आती है। नाक के अन्दर से पीव की भाँति का स्राव होता है। इसके अतिरिक्त नाक के अन्दर मस्सा होने से, नासास्थि के सड़ने से, उपदंश रोग के कारण नाक के सड़ जाने से पीनस रोग हो जाता है। १—मस्सा हो, तो उसको काट डालना चाहिये। २—पिचकारी से प्रतिदिन नाक साफ़ रखनी चाहिये। ३—कार्बोलिक लोशन से धोना उत्तम है। ४—जात्यादि-तेल का नस्य लेना चाहिये। ५—बालछड़, नागरमोथा या शराब रिहानी को सुँघावे।

शराब रिहानी की विधि—लौंग, जायफल, जावित्री, दालचीनी, अगर, बारतंग, बाँदरजवोया, इन सबको थैली में भरकर अंगूर के शीरे के मटके में डाल देना चाहिये, जिसमें सुगन्धित हो जाय।

नाक से गन्ध का न आना—यदि यह रोग नया हो, तो सुगमता से अच्छा हो जाता है। इसके लिये कोई तीक्ष्ण वस्तु, जैसे, कस्तूरी, केशर, यूक्लिप्टस, मैन्थोल आदि तीव्र वस्तुयें सूँघनी चाहिये, जिसकी तीव्र गन्ध से नाक की नाड़ियाँ उत्तेजित हो जायँ। जंगार, उशना, कसारैन और मुर्र तीनों को बराबर लेकर मरहम बना लेना चाहिये। इसकी बत्ती नाक में रखनी चाहिये। इस प्रलेप से नाक के अन्दर का पोलीपस, मांस का लोथड़ा अच्छा हो जाता है।

नाक से रक्त-स्राव १—नाक और माथे पर ठण्डा पानी गेरना चाहिये। शीत परिसेक करना चाहिये। २—टिंचर ऑफ स्टील में रुई भिगोकर नाक में रखना चाहिये। ३—सिम्बल के फूल को; दूर्वा को बकरी के दूध में पीसकर सूँघना चाहिये। ४—लाक्षाजल में फिटकिरी का चूर्ण मिलाकर नास लेने से रक्त बन्द हो जाता है। ५—अनार के फूल का नास नकसीर को बन्द कर देता है। ६—बकरी के दूध के साथ शुष्क आँवला और शर्करा पीसकर मस्तिष्क पर लेप करने से नकसीर बन्द हो जाती है।

शास्त्रीय औषधि—चित्रक, हरीतिकी, दूर्वाद्य-तैल, महादशमूल-तैल, षड्बिन्दु-तैल।

मुख-रोग

नवीन सभ्यता के कारण जहाँ और वस्तुओं ने उन्नति की है, वहाँ पर दाँत के रोगों ने भी उन्नति की है। इसके लिये दन्त-चिकित्सा का अलग विषय बन गया है।

दाँत के सब प्रकार के रोगों का कारण मुख की अस्वच्छता तथा आमाशय का विकार है।

सामान्य उपाय १—दाँत के दर्द की चिबुक मालूम पड़ने पर पेट साफ़ करने का उपाय करना चाहिये। २—यदि दर्द बहुत हो और मसूड़ा सूज जाय, तो गरम वस्त्र तथा पोस्त के डोडे के काढ़े का सेवन करना चाहिये। हल्की और शीघ्र पचनेवाली खूराक खानी चाहिये। ३—दाँत का मसूड़ा सूज जाय और ज्वर आ जाय, तो ज्वर उतरने पर जलौका लगानी चाहिये, अथवा नश्तर लगाकर पीब निकाल देना चाहिये।

दाँत का सड़ना—दाँत दो प्रकार से सड़ता है—१—दाँत के आसपास की जड़ में कीड़ा लगना प्रारम्भ होता है, अथवा जहाँ दाँत आपस में मिलते हैं, वहाँ से या दाँत के ऊपर के भाग में से सड़ना प्रारम्भ होता है। इससे दाँत में पीड़ा बहुत होता है। दाँत चलाने या खाते समय अथवा ठण्डा पानी पीने के समय दर्द होता है। सम्पूर्ण जबड़े मे दर्द होता है, नींद जाती रहती है। यह पीड़ा इतनी अधिक होती है कि रोगी मृत्यु के समान दुःख का अनुभव करता है।

दाँत को साफ न रखने से, मुँह में अन्न के कण रह जाने से अथवा दूध पीने के बाद मुँह को न धोने से कीड़ा लगना प्रारम्भ होता है। पेट की विदग्धता भी दाँत के सड़ने का कारण है। अधिक खटास खाने से दाँत बिगड़ जाते हैं। अधिक गरम या अधिक शीत वस्तु के खाने या पीने से दाँत निर्बल हो जाता है।

दाँतों के ऊपर एक प्रकार का श्वेत कोटिंग या प्लास्टर है, जो गरम या ठण्डे पानी से दन्त-नाड़ी की रक्षा करता है। खुरचने से या गरम अथवा

शीत वस्तु के उपयोग से यह निर्बल हो जाता है। इसमें कृमि लग जाता है। यह कृमि दन्त-नाड़ी तक पहुँच जाता है। साथ ही जो व्यक्ति नर्म खूराक खाते हैं, उनके दाँत निर्बल हो जाते हैं। इसलिये आवश्यक है कि कठोर भोजन खाना चाहिये।

उपाय—१—लौंग पीसकर इसका पानी अथवा लौंग का तैल दाँत के ऊपर लगाना चाहिये। २—अफीम तथा कपूर की गोली बनाकर सड़े हुये दाँत में भरना चाहिये। ३—क्रियोजोट एक या दो बूँद दाँत में रखना चाहिये। ४—क्लोरोफार्म अथवा सल्फ्युरिक ईथर में रुई भिगोकर दाँत में रखना चाहिये।

दाँत की गुहा भरने का उपाय—१—रूमी मस्तगी को सल्फ्युरिक ईथर में अथवा अलकोहल में मिलाकर नर्म करके लुगदी करनी चाहिये। इस लुगदी को दाँत की गुहा में रख देना चाहिये गटापरचे को स्प्रिट लैम्प पर अथवा दूसरी गरमी से नरम करके दाँत की गुहा भर देना चाहिये।

कुछ उपाय—१—पोदीना, सातर और अकरकरा सिरके में औटाकर कुल्ला करना चाहिये। २—अकरकरा, अफीम, कुन्दरू गोंद बारीक पीसकर स्त्रियों के दूध या गौ के दूध में मिलाकर रखना चाहिये। ३—जली हुई मसूर, वंशलोचन, कीकर और माजू इन दवाइओं को महीन पीसकर मसूड़ों पर मले। ४—फिटकिरी भूनकर सिरके में बुझाई हुई १ भाग, नमक २ भाग, लाल फिटकिरी १॥ भाग; इनको महीन पीसकर मसूड़ों पर छिड़के। इससे रक्त बन्द हो जाता है।

जिह्वा भारी होने का वर्णन—इस रोग में बोलचाल में अन्तर आजाता है। अच्छी तरह से शब्दों का उच्चारण नहीं हो सकता। सोये का तैल और बाबूने के तैल से कुल्ला करे। काली मिर्च, नौसादर, राई, अकरकरा, सातरकरमे, इरमानी और नमक जीभ पर मलना चाहिये।

अदलाउललिसान (जीभ का बड़ा होना)—खट्टा नीबू या खट्टा दही अथवा खट्टा अनार मलना चाहिये। नमक, सिरका, सोंठ अथवा नौसादर मलना चाहिये। जीभ के छाला होने पर राई तथा शहद से कुल्ला करना चाहिये।

जीभ के फट जाने का वर्णन—ईसबगोल को थोड़े-से बूरे के साथ मिलाकर मुख में रक्खे, जौ का पानी पीए। ककड़ी की झाग मुख पर

मलना चाहिये। खीरे को काटकर उन दोनों टुकड़ों के रगड़ने से जो झाग उत्पन्न होती है, उसको मलना चाहिये।

जीभ के शुष्क हो जाने का वर्णन—बिहीदाने का लुवाब, नीलोफर का पानी बूरे में मिलाकर मलना चाहिये। इसमें लौकी के बीज की मींगी का शीरा या खुरफे का शीरा मिला लेना चाहिये। तरबूज के पानी से कुल्ला करना चाहिये।

जीभ में जलन—खुरफे का शीरा, हरी धनिया, ईषबगोल, बिहीदाने का लुवाब मुख में रखकर उनको रौंदते रहना चाहिये। ककड़ी, खीरे, लौकी, बादाम, खरबूजे की मींगी को जीभ पर मलना चाहिये।

जीभ में खुजली—गरम पानी से कुल्ला करना चाहिये। पीछे से दूध में बूरा मिलाकर कुल्ला करना चाहिये। सिरका और गुलरोगन से कुल्ला करना भी उत्तम है। हरड़ को चबाना और जीभ पर मलना चाहिये।

जीभ से खाल उतरना—इसके लिये हरड़ का काढ़ा पिलाना चाहिये। अनार के फूल और गुलाब के पत्ते सिरके में औटाकर उस पानी से कुल्ला करना चाहिये।

मुँह आने का वर्णन—हरड़ और पित्तपापड़े के काढ़े से कोष्ठ को नर्म करना चाहिये। गुलाब के फूल, धनिया, सिमाक, वंशलोचन, अनार के फूल, मसूर और कपूर इनको बुरक देना चाहिये। सिरके से कुल्ला करना चाहिये। स्प्रिट क्लोरोफार्म का लगा देना उत्तम है। आकाश-बेल का काढ़ा पिलाना चाहिये। खट्टे अनार का छिलका, मीठे अनार का छिलका, प्रत्येक १०५ माशे, माजू, अनार के फूल, फिटकिरी, जला हुआ कागज, अकरकरा, मिश्री, प्रत्येक ३५ माशे, सिमाक ५२॥ माशे, नमक हिन्दी, नौसादर, प्रत्येक १७॥ माशे, इनको कूट-छानकर हब्बुलास के सिरके में गूँदकर टिकिया बना लेनी चाहिये। इसको घिसकर लगाना चाहिये। यह दवाई मुँह के दुर्गन्धित गहरे घाव को आराम करती है।

मुँह से अधिक लार आना—यह रोग अजीर्ण या गर्भावस्था में बहुत होता है। इसके लिये थोड़ी-सी ताजी हरी कासनी अधकुचली हुई नमक के साथ खाने को देना चाहिये। जवारीस कम्मूनी खाने को देना चाहिये।

मुँह से दुर्गन्धि आने का वर्णन—पीले आलू का काढ़ा

प्रतिदिन प्रातः देना चाहिये। जौ का सत्तू बर्फ डालकर खाना चाहिये। एलुवा की गोली देनी चाहिये। इतरीफल, सहातरा, शहद का बना हुआ गुलकन्द, शहद की बनी शिकंजबीन, सोंठ का मुरब्बा खाना चाहिये।

होंठों की खुश्की, खाल उतरना—चिकनी लुवाबदार वस्तुओं का उपयोग करना चाहिये। बिहीदाना, खितमी और अलसी का लुवाब होंठों पर मलना चाहिये। होंठों को हवा से बचाना चाहिये। बनफसे का तेल नाभि और गुदा पर लगाना चाहिये।

होंठों की सूजन का वर्णन—होंठों को गरम पानी से बहुत धोना चाहिये। रसौत, बाबूना, जौ का आटा, गुलाब, उसारे गाफिय, मकोय और बादाम का तेल मोम से मरहम बनाकर लगाना चाहिये। मोया, बाबूना और अकलील उलमलिक का लेप करना चाहिये।

होंठों के घावों का वर्णन—माजू और मुर्दाशंख पीसकर मोम और आलू का तेल मिलाकर लगाना चाहिये, अथवा सफेदे का मरहम लगाना चाहिये।

दाँतों के सुस्त और सुन्न होने का वर्णन—मवाद का रुकना अथवा कषैली और अधिक खट्टी वस्तु का खाना इस रोग का कारण समझना चाहिये।

उपाय—खुर्फे की पत्ती और तुलसी चबाना चाहिये। छुवारे का शीरा और कच्चे जैतून के तेल से कुल्ला करना चाहिये। अखरोट की मींगी, कड़वे बदाम की मींगी, गर्म करके दाँतों पर मलना चाहिये। शहद और नमक को दाँतों पर मलना चाहिये।

दाँतों की चमक का नष्ट हो जाना—हबुलगार, फिटकिरी और जरावन्द तवील इनको महीन पीसकर दाँतों की जड़ में मलना चाहिये। गुलरोगन में कपूर और चन्दन मिलाकर दाँतों पर मलना चाहिये।

दाँत के पीले हो जाने का वर्णन—रसौत, नारदेन, नागरमोथा, माजू और अकरकरा दाँतों पर मलना चाहिये। दाँतों की जो जगह गली हुई और घुनी हुई हो, उसमें सुकमस्तगी और थोड़ा-सा कपूर महीन पीसकर देना चाहिये। अण्डे की सफेदी, ईषबगोल का लुवाब, गधो का दूध और बनफसे का तेल दाँतों पर मलना चाहिये।

दाँतों की मैल को चाकू से छीलकर, उनपर नमक, समुद्र की झाग, सीपी की राख, घिसा हुआ या जला हुआ सीसक और पहाड़ी गौ की जली हुई सींग, इनसे मञ्जन करना चाहिये।

दाँतों का हिलना—इस रोग में दाँत निर्बल हो जाते हैं। इनके मसूड़े ढोले पड़ जाते हैं। अकरकरा किवु की जड़ की छाल, मेंहदी, नागर-मोथा, भुनी हुई फिटकिरी, गुलाब के फूल, बालछड़, इन दवाइयों को पीसकर मसूड़ों और दाँतों पर बुरकना चाहिये। वंशलोचन, पीली हरड़ का छिलका, अनार के फूल समान भाग, इनको मसूड़ों पर मलना चाहिये। हरी बारतंग और हरे खुर्फे के पानी से कुल्ला करना चाहिये।

बच्चों के दाँतों का उपाय—मसूड़ों पर तेल, मक्खन और चर्बी मलने से बच्चों के दाँत सुगमता से निकल आते हैं। कुतिया का दूध इस समय पिलाना उत्तम है। जब दाँत निकलने के बीच में दर्द हो, उस समय हरी मकोइया का पानी और गुलरोगन मिलाकर इसको गुनगुना करके मसूड़ों पर मलना चाहिये। कान में तेल डालना चाहिये।

दाँतों की खुजली का वर्णन—आकाश-बेल का काढ़ा पिलाना चाहिये। खट्टी वस्तुओं को खाना चाहिये, प्याज की शिकंजबीन से अथवा चूका की जड़ को सिरके में औटाकर उससे कुल्ला करना चाहिये।

नींद में दाँत कटकटाना—कूठ का तेल या केशर का तेल गर्दन पर मलना चाहिये। वास्तविक कारण की चिकित्सा करनी चाहिये।

काग की सूजन का वर्णन—इसका कारण रक्त की अधिकता है। कौआ लाल हो जाता है, और फूल जाता है, जलन तथा थोड़ा-सा दर्द प्रतीत होता है। इसमें दर्द कम होता है। सिंके गुलाब से कुल्ला करना चाहिये। गुलाब के फूल, चन्दन और अनार के फूल तथा कपूर मिलाकर कौवे पर लगाना चाहिये। रोगी को शिकंजबीन या अमलतास के काढ़े में तुरञ्जबीन मिलाकर दस्त देना चाहिये। माजू, नौसादर, नमक, फिटकिरी को पीसकर कौवे पर लगाना भी उत्तम है।

कौवे के गिर जाने का वर्णन—इस रोग में कौआ नीचे की ओर लटक जाता है। रोगी को ऐसा प्रतीत होता है कि कोई वस्तु गले में पड़ी हुई है। बच्चों में कौआ प्रायः नीचे लटक जाता है। इसके लिये माजू को सिरके

में पीसकर तालू पर लगाना चाहिये। जली हुई मुलतानी मिट्टी सिरके में मिलाकर लगाना भी उत्तम है। मकोय और धनिये के पानी से या माजू से गलाले करना चाहिये।

गल-शोथ—दूषित वायु या मुँह से श्वास लेने के कारण गले में शोथ हो जाती है। गले के पार्श्व में दो ग्रन्थियाँ हैं, जो साधारणतः अन्तः और बाह्य पिलर के बीच में रहती हैं। परन्तु बढ़ने पर बाहर आजाती हैं। इनके लिये संकोचक लेप यथा टॉनिक एसिड ग्लैसरीन, आयर्न ग्लैसरीन अथवा मैन्डल सोल्युशन या शुद्ध लौंग का तेल लगाना चाहिये। यदि बहुत बढ़ गये हों, तो सेंक करना चाहिये। विरेचन देना उत्तम है। खुर्फे के बीज, नशास्ता, वंशलोचन, समाक, कतीरा प्रत्येक साढ़े तीन माशे, कपूर ६ रत्ती, इन सबको महीन पीसकर ईषबगोल के लुवाब में मिलाकर गोली बनानी चाहिये। इन गोलियों को मुख में रखना भी उत्तम है। बाजार में पोटाशियम क्लोरेट, बोरैक्स तथा कोकीन की बनी गोलियाँ मिलती हैं, उनको चूसना भी उत्तम है। फोर्मेमेन्ट की टिकरी का चूसना उत्तम है।

गले का बैठ जाना—१—यह रोग नज़ले के कारण या अधिक बोलने से होता है। इसके लिये जौ का पानी, उन्नाब, खितमी, लिसोड़ा इनको कूटकर क्वाथ करके मिश्री मिलाकर पीना चाहिये। मुलहठी १७॥ माशे, बिहीदाना २४॥ माशे रात्रि में भिगोकर प्रातः काल औटाना चाहिये। जब आधा रह जाय, तब छानकर ७७० माशे सफेद बूरा मिलाकर गाढ़ा कर लेना चाहिये। पीछे से बिहीदाने की मींगी १०॥ माशे, समनअरबी १० माशे, कतीरा १४ माशे, सफेद खसखस, काला खसखस १७॥ माशे मिलाकर चटनी बना लेना चाहिये। २—ककड़ी के बीज, बादाम की मींगी, खितमी के बीज, कतीरा, बिहीदाने की मींगी बारीक पीसकर ईषबगोल के लुवाब में गोली बनानी चाहिये।

मुख के रोगों की सामान्य चिकित्सा—१—दाँत या मसूड़ों से खून निकलता हो, तो कूठ, दारुहरिद्रा, लोध्र, मुस्ता, मजीठ, पाठा, चव्य और हरिद्रा, इनका चूर्ण दाँतों में घर्षण करना चाहिये। २—पंच लवण, जौखार मधु में मिलाकर लगाने से मसूड़ों का रक्त-स्राव हटता है। ३—बकुल, मौलसिरी की छाल का काढ़ा करने से दन्त-शूल नष्ट होता है। ४—पाठा, सर्जक्षार, यवक्षार, इनके चूर्ण को मधु के साथ प्रयोग करने से अधिमांस रोग

अच्छा हो जाता है। ५—दाँत में कृमि लगने पर तेल का फाहा रखना चाहिये। ६—हींग गरम करके कृमि-दन्त में रखना चाहिये। ७—नील, काक-जङ्घा, रतुट्टी, वट, इनके मूल को चर्वण करके कृमि-दन्त में रखना चाहिये। ८—जावित्री, पुनर्नवा, तिल, पिप्पली, कुरुन्ट, मुस्ता, बच, सोंठ, अजवायन, हरीतकी ये समभाग लेकर, घृत में मिलाकर, मुख में धारण करने से कृमि, कण्डु, शूल, दुर्गन्धि नष्ट होती है। ९—सोंठ, हरीतकी, मोथा, खदिर, कपूर, सुपारी-भस्म, मिर्च, लौंग, दालचीनी प्रत्येक समभाग लेकर, चौक सबके बराबर मिलाकर दाँतों पर मंजन करना चाहिये। १०—वट, गूलर, पीपल, पिलखन और अम्लतेतस, इनकी छाल के काढ़े में या त्रिफला-क्वाथ में मधु मिलाकर मुख-धावन करने से मुख-पाक अच्छा होता है। १२—दारु-हरिद्रा का स्वरस अथवा काढ़ा घना करके मधु के साथ चाटने से अवलेहन या लेपन करना चाहिये। १३—नीबू का चूसना और आयोडीन ग्लैसरीन के लेप अथवा हाइड्रोजन पर ऑक्साइड के गलाले करने से मसूड़ों का रक्त रुक जाता है।

दाँत के रोगों से बचने के उपाय—१—दाँत को ब्रश से या दातून से रोज धीरे-धीरे घिसना चाहिये। कोयले का चूर्ण, नमक, चौक और कपूर आदि चीजों का मंजन करके बरतना चाहिये। २—दाँत के अन्दर यदि कोई चीज, अनाज का कण फँस जाय, तो इसको गलाले से निकाल देना चाहिये। अन्दर रहने से बहुत नुक़सान होता है। यदि दाँत में किसी प्रकार का छिद्र हो, तो उसको भरवा देना चाहिये। रात्रि के समय दाँतों को साफ़ करके सोना चाहिये। लोगों में यह वहम है कि दूध पीने के पीछे दाँतों को साफ़ नहीं करना चाहिए। इसके न करने से प्रायः दाँत ख़राब हो जाते हैं। ३—बहुत नरम या खट्टे पदार्थों को नहीं खाना चाहिये। पान, सुपारी दाँत को बिगाड़ती है। सुपारी की राख दाँतों पर घिसना चाहिये। तमाखू दाँत पर मलने से दाँत साफ़ हो जाते हैं। तमाखू को जलाकर उसका उपयोग करना चाहिये। तमाखू का पीना नुक़सान-कारक है। मलबन्ध को चिकित्सा करनी चाहिये।

प्रकरण आठवाँ

त्वचा के रोग

साधारणतः त्वचा के रोगों को ५ भागों में बाँट लिया गया है। जैसे—

१—**कोढ़**—त्वचा के पृष्ठ की अवस्था तथा रङ्ग बदल जाता है। ये प्रायः लाल होते हैं। इनमें किसी प्रकार का द्रव या पानी नहीं आता।

२—**छाला**—यह एक छोटी-सी फुंसी होती है। इसमें थोड़ा-सा पानी भरा हुआ होता है।

३—**पीव-युक्त फुंसी**—इसका भी प्रारम्भ छोटी-सी फुंसी से होता है, परन्तु इसमें पीव आ जाती है।

४—**छिलके उतारना**—त्वचा पर से छिलके उतरते हैं।

ट्युबरक्लस—त्वचा के अन्दर या त्वचा के नीचे छोटी-छोटी गाँठें पड़ जाती हैं, जो प्रायः व्रण का रूप धारण कर लेती हैं।

कोढ़—निम्नलिखित कोढ़ मुख्य हैं—

फ्रैकल्स—ये हल्के रंग के धब्बे होते हैं, जो प्रायः मुख पर होते हैं; विशेषतः उनके चेहरे पर, जिनका रंग अधिक साफ होता है। इनमें न किसी प्रकार का दर्द होता है और न किसी प्रकार की हानि ही इससे होती है। धूप, वायु और धूल से बचाये रहने पर अपने आप अच्छे हो जाते हैं। शीत ऋतु में ये फुंसियाँ अपने आप अच्छी हो जाती हैं।

उपाय—२० मीठे बादामों को लेकर खरल में पीस लेना चाहिये। इनमें २० औंस पानी मिलाकर धोना चाहिये, अथवा चूने का पानी और दूध समान भाग मिलाकर उनसे धोना चाहिये। २ औंस नीबू का रस, ३० ग्रेन सुहागा और १ ड्राम श्वेत शर्करा, इनको मिलाकर लगाना चाहिये।

चकावा—हल्के लाल रंग के धब्बे, भिन्न-भिन्न आकार के शरीर के भिन्न-भिन्न भागों पर हो जाते हैं, जो ३ या ७ दिन में स्वयं अच्छे हो जाते

हैं। इनमें पर्याप्त कण्डू या गुदगुदी होती है। ये प्रायः लड़कियों की टाँगों में मासिक धर्म के पूर्व हो जाते हैं। यदि शरीर गरम हो, उस समय ठण्डा पानी पी लिया जाय, तो भी उत्पन्न हो जाते हैं। बच्चों में दाँत निकलने के समय उनकी जङ्घाओं और शिश्न पर हो जाते हैं। ये कोई भयानक नहीं होते। इनके साथ ज्वर नहीं होता। इसके लिये रोगी को मृदु विरेचन दे देना चाहिये। रोगी के भोजन का ध्यान रखना चाहिये। शीत उपचार करना चाहिये। कैरन-ऑयल, गुलाबजल और ग्लैसरीन मिलाकर लगाना चाहिये। दशाङ्ग-लेप, जस्ते का प्रलेप लगाना चाहिये। मंजीष्ठादि-क्वाथ पीने को देना चाहिये।

अरटी केरिया—एक प्रकार के उभार, जो मीठा दर्द उत्पन्न करते हैं, त्वचा के ऊपर उठ आते हैं। कई बार सफेद छाले दिखाई देते हैं, और इनके किनारे पर एक लाल रेखा होती है, मानो किसीने बेंत से मारा है। ये धब्बे अचानक उत्पन्न होते हैं और कुछ समय ही में शान्त हो जाते हैं। ये दिन में शान्त हो जाते हैं और रात में निकल आते हैं। इनमें खाज और गुदगुदी बहुत होती है। इसके लिये सैलवैलोटाईल १ भाग और पानी २ भाग मिलाकर लगाना चाहिये। कई बार यह अचानक उत्पन्न होती है। इसके आने से पेश्तर वमन और ज्वर भी होता है। यह रोग भयानक नहीं है, प्रायः मिथ्या आहार से उत्पन्न होता है। कई पुरुषों में मछली, स्टोबरी, कुकुम्बर खाने से भी यह रोग उत्पन्न हो जाता है। इसी प्रकार के लक्षण कोपाइबा, एण्टीपाइरीन आदि के खाने से भी उत्पन्न हो जाते हैं। इसके लिये रोगी को विरेचन देना चाहिये और पोटाशियम ब्रोमाइड, कैलीशियम क्लोराइड के साथ देना चाहिये।

ल्युको डरमा—शरीर के किसी भाग पर श्वेत धब्बे या छाले-से उत्पन्न होते हैं। इनमें असली रंग की कमी आजाती है। इस रोग का साधारणतः कोई उपाय नहीं है। आर्य-चिकित्सा-शास्त्र के अनुसार यह एक प्रकार का कोढ़ है; परन्तु अनार्य-चिकित्सा के अनुसार यह साधारण रोग है। यह कोई संक्रामक रोग नहीं है। साधारणतः इस रोग पर बावची का लेप लगाना चाहिये। बहेड़े की छाल और काकोडुम्बरिका-क्वाथ के साथ गुड़ मिलाकर बावची का चूर्ण पीना चाहिये। स्थान पर छन्ने लगाने चाहियें।

सींगी या जलौका लगाना चाहिये। रत्तियों का लेप भी उत्तम है। प्रयत्न ऐसा करना चाहिये कि स्थान पर रक्त आ जाय।

वैसीकल्स—मुख्य-मुख्य छाले निम्न प्रकार के हैं—

दाद—यह एक संक्रामक रोग है, जो प्रायः बच्चों के सिर पर आक्रान्त होता है; परन्तु साधारणतः मुख, शरीर, अंगों पर, ठोड़ी पर तथा नखों की जड़ में होता है। इस रोग के कारण एक तरह के कृमि हैं। ये कृमि कई प्रकार के होते हैं, जिनमें से कई कीटाणु बालों की जड़ों में आक्रमण करते हैं। इसलिये सिर, भ्रू, दाढ़ी तथा गुह्य-भागों के बालों की जड़ों में पाये जाते हैं। दूसरे प्रकार के कीटाणु त्वचा और नखों पर आक्रमण करते हैं। श्लेष्म-कला में भी कृमि उत्पन्न हो जाते हैं।

शिर की दाद—यह रोग प्रायः बच्चों के शिर में होता है। युवाओं के शिर में बहुत कम होता है। यह रोग उन लोगों के नखों के अग्रभाग में हो जाता है, जो इस दाद की चिकित्सा करते हैं।

इसका एक और भेद है, जिसको 'धोबीइच' कहते हैं। यह रोग त्वचा पर, विशेषतः कोष्ठ और टाँगों की त्वचा पर आक्रमण करता है, जहाँ पर तहें होती हैं; जैसे, जंघा और अण्ड-कोष जहाँ मिलते हैं, वहाँ पर प्रायः होता है।

शिर की दाद का सबसे प्रथम लक्षण त्वचा पर थोड़ी-सी रक्तिमा का होना, कुछ खाज होती है। इसके एक या दो दिन पीछे त्वचा पर लाल छाले-से बन जाते हैं। ये फट जाते हैं और इनके स्राव से पतला छिलका बन जाता है। ताजे छाले बाहर की तरफ बढ़कर बहुत-से छाले उत्पन्न कर लेते हैं। ये छाले सदा बाहर की ओर से फैलते हैं। रोग स्राव से फैलता है, इससे छोटी-छोटी फुंसियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। इनमें बहुत खाज और कण्डू होती है, इससे बड़े और मोटे छिलके बनते हैं। यदि इसकी उपेक्षा की जाय, तो यह सारे शिर पर फैल जाती है। इसके अतिरिक्त बालों की अवस्था भी बदल जाती है। रुग्ण स्थान के बाल टूटने-वाले और मसले हुये होते हैं। देखने में रूखे, चमक-रहित, मुड़े हुये या बटे हुये होते हैं। ये बाल मर जाते हैं। जिस समय इनको खींचने का यत्न किया जाय, उस समय टूट जाते हैं।

उपाय—रोगी के सिर को दिन में दो बार कार्बोलिक लोशन और

कार्बोलिक साबुन से धोना चाहिये। यदि इस प्रकार से रुग्ण भाग को आराम न पहुँचे, तो उस स्थान के बालों को साफ कर देना चाहिये। इस पर रेड ऑक्साइड ऑफ मर्करी का प्रलेप मलना चाहिये। तेज़ सिरका या फिटकिरी के तीक्ष्ण घोल से सिर को धोना चाहिये। रोगी को विरेचन देना चाहिये।

दाद बहुत फैलनेवाला और संक्रामक रोग है। दूसरे बच्चों को रुग्ण बच्चों से दूर रखना चाहिये। उनके कंघी, ब्रश, अँगौछा, साबुन, वस्त्र आदि सब वस्तुयें पृथक् रखनी चाहिये।

गोआ पाउडर को सिरके में अथवा नींबू के रस में मिलाकर लगाना चाहिये। क्राइसेरोबीन को प्रलेप या सोल्युशन के रूप में लगाना चाहिये। इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि इस दवाई की अँगुली आँख पर नहीं लगाना चाहिये। आयोडीनलिनिमेन्ट का लगाना उत्तम है। गुरुकुल की दाद की दवा भी उत्तम है।

शरीर की दाद—इसके कारण शरीर पर धब्बे पड़ जाते हैं। यह धब्बे प्राय: कटि-प्रदेश पर और जंघाओं के समीप होते हैं। परन्तु कई बार मुख पर भी हो जाते हैं। यह दाद रात्रि में विशेष कण्डू उत्पन्न करती है। इससे रोगी को नींद उचट जाती है। उसका स्वास्थ्य गिर जाता है। इस रोग की चिकित्सा के लिये वोटा नैपथोल, पल्मबाई एसिटेड, अथवा लाइकर कार्ब डिटर्जिन या ऑयलकेड इनका प्रलेप लगाना चाहिये। स्थान को जमीडाईल साबुन या कार्बोलिक साबुन से धोना चाहिये। स्थान को बाई कार्बनेट सोडा २ ड्राम और ८ औन्स पानी में मिलाकर उससे धोना चाहिये। इसके पीछे लेड आयोडाईड १ ड्राम और लैनोलीन १ औंस मिलाकर लगाना चाहिये। दद्रुगज केसरी भी उत्तम दवा है।

कण्डू—ये बहुत ही छोटे छोटे होते हैं। इनका आकार पिन के शरीर से भी छोटा होता है। ये प्राय: अँगुलियों के बीच में होते हैं, और फिर फैलते जाते हैं। इनके कारण एक प्रकार के कृमि हैं, जो त्वचा के नीचे रहते हैं। इनके कारण जो कण्डू उत्पन्न होती है, वह प्राय: असह्य होती है। यह प्राय: रात्रि में होती है। स्थान को गरम पानी और साबुन से धोना चाहिये। इसके पीछे सल्फर ऑयन्टमेन्ट लगाना चाहिये। रोगी की अंगुलियाँ पुराने कपड़े में लपेट देना चाहिये। इसके तीन दिन पीछे गरम पानी और कार्बोलिक साबुन

से स्नान करना चाहिये। गन्धक इस रोग की उत्तम दवाई है, इसको छिद्रों में गाड़कर प्रविष्ट कर देना चाहिये।

प्रिक्ली हीट—यह रोग भारतवासियों में बहुत कम मिलता है, परन्तु विदेश से आनेवालों में बहुत मिलता है। इस रोग के लक्षण खाज, गुदगुदी, चींटी के चलने की प्रतीति और स्वेद होता है। कभी-कभी छाले भी हो जाते हैं, जिनमें पानी भर जाता है। व्यायाम या शराब पीने से कोढ़ भी निकल आती है। इसके लिये सिरके को पानी में मिलाकर या स्क्रुस एमोनिया को पानी में मिलाकर उससे स्नान करना चाहिये। शरीर को खुरदरे अँगौछे से रगड़ने पर खुजली शान्त हो जाती है। हलके कपड़े पहनने चाहिये। हलका भोजन करना चाहिये। बराबर विरेचन लेना उत्तम है। फलालैन को पहनना उत्तम नहीं। यदि प्यास और ज्वर हो, तो साइट्रेट ऑफ मैगनेशिया देना चाहिये। २० ग्रेन तुत्थ को १ औंस पानी में मिलाकर उसके अन्दर वस्त्र भिगोकर बदन पर रखना चाहिये। दो ड्राम पोटास बाई कार्ब को पानी में भिगोकर इसी प्रकार बरतना चाहिये।

फूराइगो—यह खाज रात को विशेष रूप में होती है। यह प्रायः पीठ पर, गुह्य-प्रदेश में, कक्षा में होती है। प्रथम स्थान पर छोटी-छोटी फुंसियाँ या छाले उत्पन्न होते हैं, जो लाल एवं त्वचा से उठे हुये होते हैं। यह प्रायः करके पुरुषों में, विशेषतः मधु-मेह रोगी में होती है। गर्भवती स्त्रियों में भी यह रोग हो जाता है। खुजलाने से शोथ उत्पन्न हो जाती है।

लगाने के लिये मर्करी ऑयन्टमेन्ट अथवा नैपथोल वीटा, रीसॉरवीन या सैलसिलिक एसिड का प्रलेप लगाना चाहिये। इससे खुजली बहुत जल्दी शान्त हो जाती है। गुदा के पास कण्डू "थ्रेड वर्म्स" के कारण भी हो जाती है। स्थान की स्वच्छता विशेष-रूप से रखनी चाहिये।

हर्पिज़—यह रोग प्रायः होंठों पर ज्वर के समय उत्पन्न हो जाता है। कई बार साधारण प्रतिश्याय के कारण ५-६ फुंसियाँ निकल आती हैं। इनका आधार सूजा हुआ रहता है, और इनमें छिलके उत्पन्न हो जाते हैं। कई बार यह रोग शिश्न के अग्रभाग पर या कन्याओं के भगोष्ठों में भी हो जाता है। वहाँ पर १०-१२ फुंसियाँ निकल आती हैं। इनमें बहुत खाज होती है। छाले फट जाते हैं। इनके ऊपर छिलके जम जाते हैं। इस रोग का कारण प्रायः करके अजीर्ण है। रोगी को विरेचन देना चाहिये। भोजन निय-

मित करना चाहिये और फिटकिरी के घोल से धोना उत्तम है। यदि दर्द बहुत हो, तो पोस्त के डोडों के काढ़े में कपड़ा भिगोकर रखना चाहिये। यदि ज्वर हो, तो एन्टीपाइरीन देना चाहिये। गेरू का लेप, दशांग-लेप, शुगरलेड का प्रलेप, लेड लोशन, जस्त का प्रलेप, टॅनिक एसिड ग्लैसरीन लगाना चाहिये।

एक्ज़िमा (विसर्प)—यह एक बहुत व्यापक रोग है। इस रोग में छोटे-से छाले होते हैं, जो समूह के रूप में अनियमित होते हैं। इनकी त्वचा चमकती हुई लाल होती है। इनमें बहुत खाज, गुदगुदी और चुभता हुआ दर्द होता है। यह रोग प्रायः वहाँ होता है, जहाँ पसीना बहुत आता है, या स्थान मैला रहता है। छालों के अन्दर का पानी दूध के समान श्वेत और पीला होता है। चार-पाँच दिन में छाले फट जाते हैं, पानी बह जाता है, और इनपर पतला, पीला हरा-सा छिलका जम जाता है। इस रोग का समय कुछ सप्ताहों से लेकर महीनों तक है। लम्बे रोगियों में छिलके जुड़ जाते हैं, एक खुरदरी पीठ बची रहती है। अथवा ये छिलके फूट जाते हैं। इनमें से द्रव निकल आता है। जब यह स्राव पीव-युक्त हो जाता है, तब इसको विस्फोट कहते हैं। बच्चों में यह रोग दाँत निकलने के समय होता है, उस समय कान के पीछे निकलता है। स्त्रियों में कष्टार्त्तव या अनियमित सुख के कारण होता है। अथवा कभी-कभी दूध पिलानेवाली औरतों में उनके स्तनों पर हो जाता है।

उपाय—सबसे पहले पुल्टिस (आटे की या बोरिक एसिड की) बाँधकर अथवा लोशनों से शोथ, दर्द आदि लक्षण कम करने चाहिये। पुल्टिस से छिलकों को उतारकर चिकित्सा करनी चाहिये। यदि रोग भयानक न हो, तो शुष्क पट्टी बाँधकर वायु के विक्षोभ से बचाना चाहिये। साधारणतः चिकनी औषधियाँ इस रूप में उपयोगी नहीं हैं। ५ ग्रेन बोरिक एसिड, ५ ग्रेन जिंक ऑक्साइड, ५ ग्रेन एरिस्टोल, इनको १ औंस वैजलीन में मिलाकर लगाने से शुष्क और फटनेवाले एक्ज़िमा में लाभ होता है। पानीवाले स्राव के लिये जिंग ऑक्साइड या एरिस्टोल को मोटा-मोटा व्रण पर छिड़कना चाहिये। इसके ऊपर रुई या लिन्ट रखकर पट्टी बाँध देना चाहिये। यदि पट्टी लगाने से पूर्व स्थान को साफ़ कर दिया गया है, तो इस पट्टी को कई दिनों तक (सात दिन तक) सुरक्षित रखना चाहिये। यदि पानी निकलता हो, तो इस पट्टी को फिर बदल देना चाहिये। जब ड्रेसिंग सूखने लगे, तब समझना

चाहिये कि रोग अच्छा होने लगा। सब अवस्थाओं में पेट को साफ रखना चाहिये। भोजन द्रव देना चाहिये।

पैम्फिग्स—यह रोग प्राय: बच्चों में उनके पेट, पीठ, नितम्ब और भुजाओं पर होता है। इसमें लाल गोल छाले होते हैं, जिनमें खुजली और जलन होती है। कुछ ही घण्टों में छाले के मध्य भाग में पारदर्शक द्रव भर जाता है, जो शीघ्र ही बढ़कर सारे लाल धब्बे में भर जाता है, केवल थोड़ा-सा किनारा बच जाता है। ये धब्बे समूह के रूप में उत्पन्न होते हैं। इनका आकार गोल या अण्डाकृति हो जाता है। द्रव प्रथम पारदर्शक होता है, फिर पीला और फिर दो-चार दिन पीछे ये फट जाते हैं। इनमें छिलके उत्पन्न हो जाते हैं। इसके नीचे त्वचा रोहण करने लगती है।

यह रोग प्राय: अजीर्ण के कारण होता है। इसकी चिकित्सा करनी चाहिये। इस रोग में आरसैनिक पीने के लिये देना चाहिये। लगाने के लिये शुष्क ड्रेसिंग करना चाहिये।

पैस्चुलस—मुख्य-मुख्य पैस्चुलस निम्न हैं:—

विस्फोट—यह एक संक्रामक रोग है, जो पीव के कीटाणुओं के कारण फैलता है। पहले इसमें थोड़ी-सी खुजली होती है, और लाल रङ्ग के धब्बे उठ आते हैं, जिनको हाथ से स्पर्श किया जा सकता है। ये धब्बे गोल नहीं होते। १२ घण्टे के पीछे इन धब्बों के बीच में पीला, पानी जैसा द्रव भर जाता है। यह धीरे-धीरे गाढ़ा होने लगता है, और फिर शहद की भाँति का हो जाता है। कइयों में केन्द्र बीच से दब जाता है, और कइयों में केन्द्र ऊपर से उठ जाता है। इनके ऊपर फिर छिलका जमता है, जो बालों से मिला रहता है। यह छिलका अधिक कठोर होता है।

उपाय—यदि छिलका कड़ा न हुआ हो, तो दाद की चिकित्सा करनी चाहिये। यदि छिलका कड़ा होगया हो, तो इसपर पुल्टिस बाँधनी चाहिये, अथवा गरम पानी से उष्ण परिसेंक करना चाहिये, जिससे पीव दूर हो जाय और पृष्ठ साफ हो जाय। बालों को बारीक काटना चाहिये। जैतून का तेल या ग्लैसरीन लगाना चाहिये। सिर पर कसकर पट्टी बाँध देनी चाहिये।

पीड़िका—यह एक अकेली फुंसी नाक के अग्रभाग पर, पीठ पर,

गालों पर, माथे या छाती पर निकलती है। इसका आधार कठोर और लाल होता है। इसके अन्दर त्वचा के नीचे की ग्रन्थि आक्रान्त होती है। कई बार इसका सिर बहुत लम्बा होता है। इस रोग का कारण अजीर्ण, अधिक खाना, अधिक पीना, मद्यपान और स्त्रियों में गर्भाशय-विकार के कारण अथवा ऋतु-स्राव प्रारम्भ होने पर या बन्द होने पर होता है। इस रोग की चिकित्सा में कारण को मुख्यतः हटाना चाहिये। व्यायाम, शीत स्नान, खुरदरे अँगौछे से बदन को मलना, पूर्ण स्वच्छता बरतना चाहिये।

छिलके उतरना—प्रथम छोटा-सा गोल, चमकता हुआ, कण्डू-युक्त धब्बा होता है, जो शीघ्र ही पतले श्वेत छिलके से छिर जाता है। इसके गिरने पर त्वचा थोड़ी कठोर और लाल हो जाती है। धब्बे आकार में बढ़ने लगते हैं; परन्तु अपनी गोलाई को नहीं छोड़ते, यहाँ तक कि कई इञ्चों तक बढ़ जाते हैं। अब ये फटकर अनियमित छिलकेवाले धब्बे बन जाते हैं। कभी-कभी इस रोग में अनियमित छिलकों के धब्बे बनते हैं। यह रोग प्रायः अङ्गों के अन्त-पृष्ठ में, जंघाओं में, कक्षाओं में और हथेली में, नाखूनों में होता है। रोग की चिकित्सा के लिये आँतों को स्वच्छ रखना चाहिये। खाने को पचनेवाला भोजन देना चाहिये। सिरका या स्प्रिट आफ वाइन को पानीमें मिलाकर लगाना चाहिये।

ट्युबरकल—साधारणतः यह रोग गलित कुष्ठ, फाबुईब्रोमा या ल्युपस रोग के प्रारम्भ में होता है। इस रोग में त्वचा के नीचे अर्बुद बन जाते हैं। इनमें किसी प्रकार का दर्द नहीं होता, इनके कारण कृमि होते हैं। इनको जला देना ही उत्तम है। आजकल विद्युत-धारा, सूर्य की धूप आदि उत्तम उपाय है।

कौन्डी लोमा—पुरुषों में या स्त्रियों में उपदंश रोग के कारण गुह्य-स्थान पर छोटी-छोटी फुंसियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। इनमें पस भी होती है। इसके लिये खाने के वास्ते कैलशियम सल्फाइड ५ ग्रेन और सोडाबाई कार्ब २० ग्रेन मिलाकर ५ पुड़िया बनानी चाहिये। इनको पानी के साथ पीने को देना चाहिये। लगाने के लिये ब्ल्यू ऑयन्टमेन्ट रगड़ना चाहिये, अथवा कास्टिक-द्वारा जला देना चाहिये।

साधारण उपाय—बाहर लगाने के—१—चक्रमर्द के बीज, जीरा, इनको जल में पीसकर लेप करने से दद्रु-रोग शान्त होता है। २—चक्रमर्द-

बीज, कूठ, सैन्धव, सौ बीराञ्जन, श्वेत सरसों, विडंग, इनको कांजी या गोमूत्र में पीसकर लेप करने से दाद नष्ट होती है। ३—कसौंदी को कांजी या लस्सी में पीसकर लगाने से दाद शान्त होती है। ४—मूली के बीज, अपामार्ग-रस में या केले के रस में अथवा केले के क्षार को हल्दी के चूर्ण के साथ मिलाकर लगाने से यह रोग शान्त होता है। ५—अमचुर को सेन्धा नमक के साथ ताम्र-पत्र में घिसकर लगाने से छिलके उतरने का रोग शान्त होता है। ६—शुष्क आमली-चूर्ण को जल में मिलाकर लेप करने से छिलके उतरना रुकता है। ७—मजीठ, त्रिफला, लाक्षा, हरिद्रा और गन्धक के लगाने से, या ८—सैन्धव, चक्रमर्द, श्वेत सरसों, पिप्पली, इनको कांजी में पीसकर लगाने से पामा और कण्डू रोग नष्ट होते हैं। ९—४ तोला गन्धक-चूर्ण लेकर, इसको सरसों के तेल में मिलाकर, धूप में गरम करके रखना चाहिये। तीन दिन पीछे त्वचा पर लगाने और खाने से कण्डू, पामा-रोग शान्त होता है। १०—सिन्दूर और मिर्च-चूर्ण को भैंस के मक्खन में मिलाकर लगाने से पामा, विसर्प नष्ट होता है। ११—कोमल वासक-पत्र को हल्दी के साथ गोमूत्र में मिलाकर लगाने से कच्छू रोग नष्ट होता है। १२—दण्डा-थोर के टुकड़े में गृह-धूम और सैंधानमक भरकर, इसको हाँड़ी में बन्द करके जला लेना चाहिये। इस राख को तेल में मिलाकर लगाने से विचर्चिका-रोग नष्ट होता है। १३—बालमुँगरे का तेल लगाने से कुष्ठ, श्वित्र नष्ट हो जाता है। १४—मकोय, चक्रमर्द, कूठ, पिप्पली, इनको बकरी के मूत्र में पीसकर लगाने से श्वित्र रोग; १५—नाटा करञ्ज, थोर, आक और अमलतास, इन वृक्षों के पत्तों को और जावित्री, इन सबको गोमूत्र में पीसकर लगाने से श्वित्र, दद्रु और कण्डु नष्ट होते हैं। १६—बाकुची-बीज ४ पल, हरताल १ पल गोमूत्र में मिलाकर लगाने से श्वित्र रोग को निश्चय आराम होता है। १७—हाथी, चीता (लेपर्ड), शेर, इनकी खाल की राख को तेल में मिलाकर लगाने से श्वित्र को आराम होता है। १८—रत्ती और चीतामूल-चूर्ण, इन दोनों को मिलाकर लगाने से, अथवा मनःशिला और अपामार्ग-क्षार को लगाने से धवल श्वित्र रोग नष्ट होता है। १९—दूर्वा और हरिद्रा इनको मिलाकर लेप करने से कण्डु, पामा, शीत पित्त-रोग शान्त होते हैं। २०—यवक्षार, सैन्धवनमक, इनको कड़वे तैल में मिलाकर मलने से शीत पित्त-रोग शान्त होता है। २१—मसूर, मूँग, मटर अथवा चावलों के

घी में पीसकर लेप करने से विसर्प-रोग शान्त होता है। २२—पंचवल्कल-क्वाथ से, अथवा पद्माख, उशीर, जेठीमधु, मुलहठी और लाल चन्दन, इनका लेप करने से विसर्प रोग शान्त होता है। २३—गेरू को घी के साथ लगाने से पित्त-जन्य सब त्वक्-रोग शान्त हो जाते हैं। २४—अमलतास के पत्ते, लसोड़े की छाल, शिरीष के फूल और मकोय, इनको घी में मिलाने से लाभ होता है। २५—दशांग-लेप सब प्रकार के विसर्प में उपयोगी है। २६—लाल चन्दन, नागकेशर, अनन्तमूल, नाटा करञ्ज, शिरीष-छाल और जातीफल, इनका लेप, अथवा २७—शिरीष-छाल, गूलर, जामुन की छाल, इनका लेप विस्फोट-रोग में उपयोगी है। २८—किबु की जड़, अकरकरा, चीता, प्रत्येक ७ माशे, इनको कूट-छानकर सिरके और शहद में मिलाकर लगाने से श्वित्र-रोग शान्त होता है। २९—गिले अरमानी, चन्दन, इनको गुलाब में पीसकर लगाने से पित्त-जन्य त्वक्-रोग, विसर्प, विस्फोट, पामा आदि शान्त होते हैं। ३०—मुर्दाशङ्ख, काशगरी सफेदा, गुलरोगन, हल्दी, सफेद मोम, अण्डे की सफेदी, इनका प्रलेप दर्द को रोकता है। शीतल है और छिली या फटी जगह को जोड़ता है। ३१—गुलरोगन लगाकर, जूते के पुराने तलुवे की राख ऊपर छिड़क देने से स्राव रुक जाता है। ३२—मनःशिला, हरताल, मिर्च, इनको सरसों के तेल और आक के दूध में लगाना उत्तम है। श्वित्र रोग में उपयोगी है।

खाने की दवाइयाँ—१—सनाय १४ माशे, पित्तपापड़ा १० माशे, इमली २० माशे, हरड़ का छिलका, किबु की जड़, प्रत्येक ३॥ माशे, उन्नाब और लसोड़ा प्रत्येक १५ दाने, मकोय और कासनी के बीज; अधकुचले गुलाब के फूल, खितमी के बीज, प्रत्येक ५॥ माशे, इन सबका क्वाथ-विधि से क्वाथ करके, इसमें शीरीखिस्त मिलाकर गरम दूध के साथ पीना चाहिये। त्वचा के सब रोगों में विशेष उपयोगी है। कई बार वृद्ध गुरुजनों ने अनुभव कर रक्खा है। २—मोथा, नीम-छाल और पटोल, या ३—गोमूत्र में हरड़ पकाकर खाने से रक्त-दोष, विसर्प नष्ट होता है। ४—हरीतकी, नीम-पत्र, आमलकी, इनके कषाय या गिलोय का रस घी के साथ पीने से लाभ होता है। ५—एक साल तक खदिर का कषाय या पञ्चगव्य अथवा सोमराजी बावची को काले तिल के साथ खाने से त्वक्-रोग शान्त हो जाते हैं।

शास्त्रीय औषधि—पञ्चतिक्त-घृत, गुडूच्यादि-तैल, हरिद्रादि-तैल, अमृतगुग्गुल।

प्रकरण नवाँ

मिश्रित क्षुद्र-रोग

आर्य-चिकित्सा में क्षुद्र-रोग का एक प्रकरण पृथक् है। उसीके आधार पर तथा अन्य छोटे-छोटे रोगों को मिलाकर यह प्रकरण तैयार किया गया है।

बालों का गिरना—इस रोग में सिर के, दाढ़ी और मूछों के बाल गिरने लगते हैं। इसका कारण यह है कि जब शरीरस्थ पित्त कुपित होकर वायु को मूर्च्छित कर देता है, तब रोम-कूपों से बाल गिरने लगते हैं। यदि श्लेष्मा बालों की जड़ों को भर ले, तो अन्य बालों का उगना असम्भव हो जाता है। दूसरा कारण ज्वर आदि रोग, भोजन की न्यूनता है। फेफड़े के घाववाले यक्ष्मा-रोगियों में, ज्वर-रोगियों में जब यह रोग मिलता है, तब उनका शरीर खुश्क और दुबला होता है। दूसरा कारण है सिर की खाल का नर्म होना, जिससे बाल गिर जाते हैं।

उपाय—१—हीराकसीस, प्याज, भृङ्गराज और जवाफूल की कली पीसकर प्रलेप लगाने से बाल निकल आते हैं। २—मनःशिला, हीराकसीस और तुत्थ इनका लेप करना चाहिये। ३—लेखन (स्कैरीफिकेशन) द्वारा रक्त निकालकर रत्तियों का चूर्ण मलना चाहिये। ४—हाथी-दाँत की राख और रसौत मिलाकर लेप करना चाहिये। ५—बड़ी कटेरी के फल के रस में रत्तियों का चूर्ण मलना चाहिये। चूर्ण मलने से पहले धतूरे के फल से इस स्थान को घिसना चाहिये। ६—खुरदरे पत्तों के साथ घर्षण करने के पश्चात् मिर्च का चूर्ण मलना चाहिये। ७—सिर को बारबार मुड़ाना चाहिये। आँवले का तेल, बाबूना का तेल मलना चाहिये। ८—शीह इरमानी, कड़वे बादाम और गन्दना जलाकर, जैतून के तेल में मिलाकर लेप करना चाहिये। ९—पछने लगाकर तुलसी का गोंद, राई, फरफयून, अकरकरा, बेल के पत्ते और लहसुन कूटकर लेप करना चाहिये। १०—कैंथरी डस का उपयोग भी उत्तम है।

यह रोग मस्तिष्क के काम करनेवालों में भी हो जाता है। इसके लिये शीर्षासन उत्तम है। उत्तम और पौष्टिक भोजन खाना चाहिये।

दारुणक—इस रोग में बालों की त्वचा कठिन, रूक्ष हो जाती है, बाल भी खुरदरे हो जाते हैं। इस रोग का कारण कृमि है। इसको कार्बोलिक लोशन से धोना चाहिये। १—आम की गुठली, हरड़ इनको दूध के साथ पीसकर लेप करना चाहिये। २—पियाल-बीज, मुलहठी, कूठ, सेंधा-नमक और उड़द इनको मधु के साथ मिलाकर लेप करना चाहिये। ३—चीतामूल, दन्तीमूल, कड़वी तुम्बी, इनको पीसकर, इनके साथ तेल पकाकर लगाने से, अथवा ४—तिल का तैल ४ सेर, भाँग का रस १६ सेर और रत्तियों का कल्क १ सेर, इनका तेल लगाने से लाभ होता है।

सिर के ऊपर छोटी-छोटी फुन्सियों का बालों की जड़ में निकलना (अरूँषिका)—१—मुर्गी की बीट गो-मूत्र में पीसकर लेप करने से, २—नीले कमल का केशर, आमलकी और मुलहठी, इनका प्रलेप करने से अरूँषिका-रोग में लाभ होता है।

पलित (बालों का सफेद हो जाना)—यह रोग वीर्य की निर्बलता, गरम पानी से स्नान करने से, बनावटी बाजारू तेल लगाने से प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। इसके लिये १—त्रिफला, नील के पत्ते, लोह और भाँगरे का चूर्ण समान भाग लेकर मेढ़े के मूत्र की भावना देकर केश पर मलने से केश काले हो जाते हैं। २—लोहमल, आँवला और जवापुष्प इनको पीसकर लगाने से, ३—नीम के बीजों को भाँगरा और असन वृक्ष के रस की सात-सात भावनायें देकर तेल निकालना चाहिये। इस तेल का नास लेने से और दुग्ध पीने से बाल काले होते हैं। ४—काली हर्र ३५ माशे, बहेड़ा, कुन्दरू, गोंद, प्रत्येक १७॥ माशे, मिर्च ८॥ माशे, सोंठ, गुलाब के फूल, बच, प्रत्येक सवा पाँच माशे, सफेद चन्दन, कासनी के बीज, प्रत्येक १० माशे, इन सबको कूट-छानकर काबुली हरड़ के मुरब्बे में मिलाकर १०॥ माशे की मात्रा में खाना चाहिये। ५—अखरोट के पेड़ की कली कूटकर, उसमें बूल मिलाकर लगाना चाहिये।

लोमशातन (बालों को उड़ाने की विधि)—(१) हरताल और चूने को बराबर मिलाकर, गरम जल में घोलकर लगाने से, (२) शंख-भस्म और हरताल के केले के रस में मिलाकर लगाने से, (३) पलाशछाल-भस्म और

हरताल को केले की जड़ के रस में मिलाकर, ४—हरताल १ भाग, शंख-भस्म ५ भाग, ढाक की छाल ५ भाग, इनको ७ दिन तक केले के रस में भिगोकर लगाने से, ५—कपूर, शङ्ख-चूर्ण, यवक्षार मनःशिला, हरताल, भिलावे का चूर्ण इनके साथ तैल सिद्ध करके लगाने से बाल उड़ जाते हैं।

बालों के न निकलने का वर्णन—कई बार स्त्रियों के मुँह पर बाल निकल आते हैं। उस समय इसकी चिकित्सा की आवश्यकता होती है। बालों को उखाड़कर भाँग, अफीम खाने को देना चाहिये, और उस स्थान को विद्युत्-धारा से जला देना चाहिये।

बालों को जमानेवाली दवाई—१—पुराने जैतून, गन्दना की राख और समुद्र-झाग मिलाकर लगाना उत्तम है। २—जरारीह लेकर उनके हाथ-पाँव तोड़कर १०॥ माशे, बकायन का तेल ३३। माशे मिलाकर आग पर रखना चाहिये, जिससे तेल गाढ़ा हो जाय। पीछे से कस्तूरी और अम्बर थोड़ा-थोड़ा मिलाना चाहिये। ३—कालादाना कूटकर जैतून के तेल में मिलाकर लगाना चाहिये।

बालों के रंग बदलने का वर्णन (लाल बनाने के लिये)—मेंहदी, गुलाब की शराब या फिटकिरी और हरताल या केवल केशर लगाना चाहिये। सफ़ेद करने के लिये चमगादड़ की बीट, खसखस की छाल, सेब, कपूर, मूली के बीज, गूगर्द, इनको बेल के पत्तों में मिलाकर लगाना चाहिये।

बालों को घुँघरीला करने के लिये बेर, माजूफल, झाऊ, आमला, सरू का पत्ता, इनका लेप किया जाता है, और बालों को पतला करने के लिये खरबूजे के बीज या सरसों को मलना चाहिये।

नाखूनों के रोगों का वर्णन

नखों पर सफ़ेदी हो जाना—इसका कारण निकम्पी गाढ़ी तरी है। १—हरताल, तुतली का गोंद, जरारीह, किशमिश की दलिया सिरके में मिलाकर, २—मेथी के बीज, अलसी के बीज कूटकर, शहद में मिलाकर नखों पर रखना चाहिये।

कुनख—इस रोग में नख मोटे हो जाते हैं और जल्दी-जल्दी

टूटने लगते हैं। इसके लिये आकाश-बेल का काढ़ा देना चाहिये। मोम का तेल या गूजे की माद लगानी चाहिये।

नखों के फटने का वर्णन—नाखून को सदा सिरके और नमक के गरम पानी से धोना चाहिये।

चिप्य—इस रोग में नख पक जाता है। १—गरम पानी से धोकर सुहागा और हरपाखेड़ी की जड़ को पीसकर लेप करना चाहिये।

नख को उखाड़ना हो, तो—प्रथम हरताल, जावशीर और कड़ुवे बादाम का लेप करना चाहिये, या राल, गन्धक और हरताल का लेप करना चाहिये।

पसीने का आना—साधारणतः पसीना सब व्यक्तियों को आता है; परन्तु कई व्यक्तियों में बहुत पसीना आता है। उनके पसीने में बदबू होती है। यदि पसीना सोने के पीछे आता है, तो यह बात निश्चय है कि रोगी आवश्यकता से अधिक भोजन खाता है। निर्बलता के कारण ही पसीना अधिक आता है।

माजू तथा थोड़ा-सा कासगरी सफ़ेदा गुलरोगन में मिलाकर लेप करना चाहिये। ईषबगोल का लुआब मलना भी लाभदायक है। गिलेइरमानी, मुर्दासिन गुलाब में शुद्ध करके, गुलाब में पीसकर लगाना चाहिये। मोर्द, अनार के फूल, अकाकिया, रसौत, कुन्दरू गोंद इनको गुलाबजल में घोलकर लगाना चाहिये। रोगी को चाहिये कि हवा में बैठे और पसीना न पोंछे। पोंछने से पसीना अधिक आता है।

मोद के पत्ते का पानी, बिही का पानी, गुलरोगन में मिलाकर औटाना चाहिये। यदि गीली मोद न मिले, तो सूखो मोद के पत्ते, अनार के फूल, गुलाब के फूल, कुसुम, बिही पानी में औटाकर छान लेना चाहिये। इसमें चौथाई भाग गुलरोगन मिलाकर तेल पकाना चाहिये। इसमें माजूफल मिला दिया जाय, तो बहुत लाभ होता है। मोद के पत्ते, कहवा और अनार के फूल पीसकर छिड़कना चाहिये।

पसीना लाने की दवाई—अजमोदे का पानी, गुलाब, सिरका, गुलरोगन मिलाकर शरीर पर मलना चाहिये। सौसन का तेल, मूले का पानी मिलाकर लगाना चाहिये। शिकंजबीन बिजूरी कासनी के पानी के साथ पीने को देना चाहिये।

जुवाँ और लीक मारने की विधि—यह रोग मैले व्यक्तियों में होता है। १—खारे पानी से नहाना अच्छा है। २—कनेर के पत्ते, पहाड़ी मुनक्का, चाँदी का मैल और कड़वे बादाम का लेप करना चाहिये। ३—छरीला, कनेर, शिलारस, सफेद मिर्च और अनार की छाल पानी में औटाकर अङ्ग को धोना चाहिये। ४—तुलसी का पानी सिर में डालना भी उत्तम है।

मुँह की फुंसियाँ—यह रोग प्रायः १६ वर्ष की आयु में पुरुषों में, और कभी १२ वर्ष की आयु में स्त्रियों में भी होता है। साधारणतः इसको कील कहते हैं। इसके कारण आदमी का चेहरा खराब हो जाता है।

इसके लिये १—मुँह को ठण्डे पानी से भली प्रकार स्पंज के साथ रगड़कर धोना चाहिये। २—सिम्बल के काँटों को दूध में घिसकर लगाना चाहिये, अथवा ३—लोध्र, बच, धनिया अथवा गोरोचन और मिर्च पीसकर लगाना चाहिये।

यदि फुन्सियाँ बहुत हों, और खाज भी होती हो, तो नीम-छाल और अमलतास का पत्ता पीसकर लेप करना चाहिये। अथवा नीम के पत्तों और अमलतास के पत्तों-द्वारा तेल पकाना चाहिये।

मुँह की झाईं—इसके लिये मनसिल, सरसों और बकुल की छाल पीसकर लगाना चाहिये। रोगी को आकाश-बेल का काढ़ा देना चाहिये। १—अर्जुन की छाल, मजीठ को मधु के साथ या श्वेत घोड़े के खुर की भस्म को मक्खन के साथ लगाना चाहिये। २—लाल चन्दन, मजीठ, कूठ, लोध्र, प्रियंगु, वट के कोमल पत्र, मसूर, इनको पीसकर लेप करना चाहिये। ३—वट के अङ्कुर और मसूर को मधु के साथ प्रलेप देने से मुँह की झाईं नष्ट होती है। ४—जायफल घिसकर या सायंकाल सरसों का तेल मलने से लाभ होता है। ५—तुष-रहित यव का चूर्ण, मुलहठी या लोध्र, इनका लेप या सरसों, हल्दी, दारुहल्दी, मजीठ, गेरू और घी, इनको बकरी के दूध में मलकर लेप करना उत्तम है।

शास्त्रीय औषधि—द्विहरिद्रादि-तैल, कुंकुमाद्य-तैल, मञ्जीष्ठादि-तैल।

मस्से—ये त्वचा में उत्पन्न होते हैं। बिना किसी लक्षण के और बिना किसी तकलीफ से निकलते हैं। यदि इनको अकेला रहने दिया जाय,

तो स्वयं अच्छे हो जाते हैं। परन्तु जब मस्से की गर्दन मजबूत हो, तो उसको मोम के धागे से या घोड़े के बाल से बाँध देना चाहिये। दो-चार दिन बाद मस्सा गिर जायगा, पीछे से इस स्थान पर फिटकिरी लगाना चाहिये। २—गरम पानी से धोने से और रात्रि में सिरके के पानी में भिगोया हुआ कपड़ा रखने से आराम हो जाता है। मस्सों को जलाने के लिये एसिटिक एसिड या नाइट्रिक एसिड को भली प्रकार सँभालकर लगाना चाहिये। एसिड तबतक लगाते रहना चाहिये, जबतक दर्द का होना बन्द न हो जाय। ३—अपामार्ग-क्षार या अर्क-तैल अथवा चूना या प्याज लगाना भी उत्तम है।

कदर—तंग जूता पहनने से या एक पार्श्व पर बैठने से अँगुली या गिट्टों पर आँख बन जाती है। इसमें चमड़ी मोटी हो जाती है। इसमें दर्द प्राय: नहीं होता।

उपाय—इसको काटना नहीं चाहिये। काटने से बहुत बढ़ता है। प्रथम गरम पानी से धोकर पीछे पुल्टिस आदि से नर्म करके जला देना चाहिये। इसके ऊपर बाइकर आरसैनिक कैलिस को लगातार लगाना भी उत्तम है।

पाददारि—पाँव में प्राय: बिवाई फट जाती है। इसके लिये स्थान को गरम पानी से धोकर, पीछे से पुल्टिस बाँध देना चाहिये। जब किनारे नर्म हो जायँ, तब तेज उस्तरे से इनको काट देना चाहिये, या पिण्ड-तैल या मोम और तैल को मिलाकर लगाना चाहिये। २—मोम, शिलाजीत, घृत, गुड़ गुग्गुल, राल और गेरू, इन सबका प्रलेप लगाने से बिवाई अच्छी हो जाती है।

अलसक—यह रोग बरसात में लगातार जूते और मोजे पहनने से होता है। इसमें पाँव की अँगुलियों के बीच का स्थान और नीचे का भाग गल-सा जाता है। इसमें बहुत खाज होती है। १—प्रथम स्थान को शराब या कांजी से धोकर, उसपर परवल, कसीस, नीम-पत्र और त्रिफला; इनको पीसकर लगाना चाहिये। २—जायफल पीसकर लेप करना चाहिये। ३—कण्टकारी के रस में सरसों का तेल पकाकर ऊपर से मन:शिला, कसीस और गोरोचन का लेप करना चाहिये। ४—करञ्ज का तेल लगाना चाहिये।

वृषण-कच्छु—वृषण (अण्ड-कोष) को स्वच्छ न रखने से, पसीना

बहुत आने से अण्ड-कोषों में खाज उत्पन्न हो जाती है। इससे कभी-कभी पानी भी निकलता है, जिसमें एक विशेष प्रकार की बदबू होती है।

उपाय—१—राल, कूठ, सेंधानमक और श्वेत सरसों का लेप करना चाहिये। २—त्रिफला के काढ़े में कत्था मिलाकर उससे धोना चाहिये। ३—इकथ्योल और जिंक ऑक्साइड का प्रलेप उत्तम है। खाज और कण्डु की चिकित्सा करनी चाहिये।

शय्या-व्रण—ये व्रण रोगियों में हो जाते हैं। जो रोगी एक पार्श्व में लेटे रहते हैं, उनके नितम्ब और कटि-प्रदेश पर व्रण हो जाते हैं। इसके लिये आवश्यक है कि रोगी को करवट बदलते रहना चाहिये। यदि ये व्रण हो जायँ, तो स्थान पर बोरिक एसिड या जिंक ऑक्साइड लगाना चाहिये। शीत परिसेक या शीतल जल की गद्दी बाँध देना चाहिये। इनसे बचाने का उपाय यह है कि इन स्थानों को कांजी या शराब में पानी मिलाकर उससे धो देना चाहिये। कार्बोलिक लोशन का लगाना भी उत्तम है।

गुद-भ्रंश—निर्बल बच्चों में या निर्बल मनुष्यों में जोर से मल-प्रवाहण करने पर अथवा अतिसार-रोग के बार-बार होने से गुदा बाहर निकल आती है।

उपाय—१—रोगी को चाहिये कि वह दबाकर अन्दर प्रविष्ट कर दे और ऊपर से लँगोटी बाँध ले। २—कमल के पत्ते को शर्करा के साथ खाना चाहिये। ३—गौ की चर्बी या चूहे के मांस से सेंक करने पर गुद-भ्रंश रोग निश्चय आराम हो जाता है। ४—मूषिका-मांस और दशमूल इनसे तैल पकाकर लगाना चाहिये। ५—चौपतिया का रस लगाना भी उत्तम है। चौपतिया का घी खाना भी उत्तम है।

शास्त्रीय औषधि—मूषिकाद्य-तैल, चाङ्गेरी-घृत।

निरुद्ध-प्रकर्ष—इस रोग में शिश्न के अग्रभाग के ऊपर रहनेवाली त्वचा शिश्न के साथ चिपक जाती है। साधारणतः यह त्वचा पीछे हटाई जा सकती है। इसके हटाने से शिश्न-मुण्ड नग्न हो जाता है। परन्तु जिस समय शिश्न-मुण्ड और इसके ऊपर की त्वचा के मध्य में मल भर जाता है, उस समय यह त्वचा शिश्न-मुण्ड के साथ चिपक जाती है। इसके चिपकने से मूत्र-छिद्र भी बन्द हो जाता है। यह रोग बालकों में प्रायः होता है; क्योंकि उनमें

मैल प्रायः निकलती है। यह मैल श्वेत बदबूदार होती है। मुसलमान लोग इस त्वचा को काट डालते हैं। छिद्र के तंग होने से पेशाब आने में भी दर्द होता है, रोगी चिल्लाता है।

उपाय—यदि यह रोग बचपन से हो, तो इसकी चिकित्सा उसी समय करनी चाहिये। १—एक पतली शलाखा को शिश्न-मुण्ड और त्वचा के बीच में डालना चाहिये। इसपर तेल या घृत लगाते रहना चाहिये। धीरे-धीरे इस शलाखा को बढ़ाते जाना चाहिये। यदि इससे सफलता न मिले, तो त्वचा को काट डालना चाहिये। यदि इसका कारण शोथ आदि हो, तो शीत या उष्ण परिसेंक करना चाहिये।

परिवर्त्तिका—इस रोग में त्वचा पीछे उलट जाती है, और फिर अपने स्थान पर वापस नहीं आती, इससे शिश्न-मुण्ड नंगा ही रहता है। इस अवस्था के कारण शोथ, रक्तिमा, दर्द और कभी-कभी मूत्र-प्रवाहण में कष्ट होता है। इस रोग का कारण बल-पूर्वक मैथुन या हस्त-दोष है।

उपाय—१—प्रथम बरफ या शीत पानी का परिसेंक करना चाहिये। फिर शिश्न-मुण्ड को अँगुलियों और अँगूठे से दबाना चाहिये, मानों रक्त निचोड़ रहे हों। फिर ठीक इसी समय शिश्न-मुण्ड को पीछे दबाते हुये त्वचा को आगे की ओर खींचना चाहिये। यदि इस प्रकार बार-बार यत्न करने से भी सफलता न मिले, तो चाकू से थोड़ा छेदन करना चाहिये। २—सेंक करना चाहिये, घी लगाना चाहिये, उड़द की पुल्टिस बाँधनी चाहिये। जब चमड़ा अपने स्थान पर आजाय, तब गरम मांस का सेंक करना चाहिये।

अवपाटिका—यदि स्त्री का योनिद्वार तंग हो, और पुरुष का शिश्न मजबूत और दृढ़ हो, तो बल-पूर्वक मैथुन करने से अथवा हस्त-दोष से अग्रचर्म उलट जाता है। इस रोग की चिकित्सा परिवर्त्तिका के समान है।

शूक-दोष—यह रोग उन लोगों में होता है, जो अनुचित उपाय से शिश्न की वृद्धि चाहते हैं। आजकल यह रोग प्रायः कम मिलता है। यदि यह रोग हो जाय, तो जोंक लगानी चाहिये, रेचन लेना उत्तम है। २—त्रिफला के काढ़े में गुग्गुल मिलाकर पीना चाहिये। ३—ठण्डे दूध का शिश्न के ऊपर सिंचन करना चाहिये। ४—दारुहल्दी, मुलहट्ठी, गृह-धूम, हल्दी, तुलसी के पत्ते, इनके कल्क का लेप करना चाहिये। ५—रसौंत का लेप करना चाहिये।

शिश्न-वर्धक उपाय—अश्वगन्धा को घी में मिलाकर, या सुहागे को घी और शहद में मिलाकर लगाना चाहिये। भिलावा, बड़ी कटेरी का फल, अनार की छाल, इनके कल्क को चतुर्गुण जल में कटु तैल पकाकर लिंग पर मर्दन करना चाहिये।

साधारणतः त्वचा का काटना उत्तम नहीं, क्योंकि शिश्न-मुण्ड के नंगा रहने से और कपड़ों के स्पर्श होने से इसमें उत्तेजना आती है। और फिर लगातार स्पर्श से शिश्न-मुण्ड की नाड़ियों में ज्ञान भी घट जाता है।

शोथ—चोट लगने से अथवा अन्य किसी कारण से स्थान सूज जाता है। शोथ का अर्थ यह है कि उस स्थान पर रक्त-संचार बढ़ गया, अथवा वहाँ पर स्राव या लसीका रुक गई, जो वापस नहीं जाती, या धीरे-धीरे जाती है। इसमें अन्तः-अवयवों की शोथ बहुत भयानक होती है। जिस स्थान पर शोथ होती है, वह स्थान गरम, सूजा हुआ, लाल तथा दर्द-युक्त होता है। दर्द का कारण दबाव का बढ़ना है। यदि शोथ अधिक हो, तो यह शरीर के अन्दर व्यापी लक्षण उत्पन्न कर देती है। अर्थात् रोगी को ज्वर हो जाता है, नाड़ी की गति बढ़ जाती है, प्रायः मलबन्ध रहता है और मूत्र गाढ़ा हो जाता है। यदि यह शोथ शान्त न हो, तो इसमें स्राव उत्पन्न हो जाता है। यह स्राव धीरे-धीरे गाढ़ा होकर पीव का रूप धारण कर लेता है।

क—इसके लिये सबसे प्रथम यह उपाय करना चाहिये कि पीव उत्पन्न न हो। इसके लिये १—शीत पानी की गद्दी रखनी चाहिये। २—सिरके में पानी मिलाकर उसकी गद्दी रखनी चाहिये। ३—शीतल लोशन रखना चाहिये। ४—रोगी के अङ्ग को पूर्ण विश्राम देना चाहिये। इसके लिये अंग को ऊँचा करके रखना चाहिये। ५—दूर्वा, नलमूल, मुलहठी, लालचन्दन, इन शीतल द्रव्यों का लेप करना चाहिये। ५—पंचवल्कल-क्वाथ को शिला पर पृष्ठ करके, घी में मिलाकर लेप करना चाहिये। ७—पुनर्नवा, सहजन, देवदारु, दशमूल, सोंठ, इन सब द्रव्यों को पीसकर थोड़ा गरम करके लगाना चाहिये।

ख—परन्तु यदि रोगी को कँपकपी हो, या रोगी चुभते हुए दर्द की शिकायत करे, तब यह यत्न करना चाहिये कि शोथ पक जाय और उसमें मुख हो जाय। इसके लिये—

१—पुल्टिस बाँधनी चाहिये। २—गरम उपनाह, सेंक करना चाहिये। आटे की पुल्टिस, हल्दी, नमक और अलसी का लेप करना चाहिये। पोस्त के डोडों का सेंक करना चाहिये। ३—जोंक लगानी चाहिये। ४—सन-बीज, मूली के बीज, सहजन-बीज, तिल, सर्षप, अलसी, इनके चूर्ण को तथा किएव-बीज को, अथवा गेहूँ, जौ का आटा लगाना चाहिये। ५—ईषबगोल मुर्गी के अण्डे की सफेदी में मिलाकर लेप करना चाहिये। ६—अलक गोंद और अंजीर कूटकर लेप करना चाहिये, या कनूचा के बीज दूध और शहद में मिलाकर, अथवा ७—ज्वार का चून ४ भाग, एलुवा १ भाग, मेथी के बीज १ भाग, इनको दही में औटाकर गुनगुना बाँध देना चाहिये। इस प्रकार दिन में दो बार लगाना चाहिये।

ग—जब पक जाय, तब उसको फोड़नेवाली दवाइयों से फोड़ना चाहिये। ये औषधियाँ निम्न हैं--

१—गेहूँ का खमीरा आटा, कनूचा के बीज, कबूतर की बीट, बिना बुझा चूना, मुर्गे के अंडे की जर्दी शहद मिलाकर लेप करना चाहिये। २—करञ्ज, भिलावा, चित्रक, जमालगोटा, करवीर, कबूतर की बीट, इनका लेप व्रण को विदीर्ण करता है। ३—अपामार्ग या जौखार लगाने से व्रण विदीर्ण हो जाता है। ४—यदि इस प्रकार से भी व्रण न फटे, तो चिकित्सक-द्वारा विदीर्ण करवा लेना चाहिये।

घ—जिस समय व्रण में मुँह हो जाय और पीव निकल जाय, उस समय उसको धोना चाहिये। इसके लिये निम्न क्वाथ उत्तम हैं—

१—वट, गूलर, नीम, पीपल, जामुन, त्रिफला, इनमें से किसी भी क्वाथ से व्रण को धोना उत्तम है। २—तिल, सैन्धव लवण, मुलहठी, निशोथ, नीम के पत्ते, हल्दी, दारुहल्दी, इन सब वस्तुओं को पीसकर, घी के साथ लेप करने से व्रण का शोधन होता है। ३—त्रिफला, खैर, दारुहरिद्रा, न्यग्रोधादि-गण, बला, कुश, नीम के पत्ते, बेर के पत्ते, इनका कषाय व्रणों के धोने के लिये उत्तम है। ४—करंज, नीम, सम्भालु या लहसुन अथवा नीम-पत्र, हींग, बच, नमक, घी, सरसों, इनका लेप व्रण को शोधन करता है; कृमियों को मारता है।

ङ—जब व्रण साफ़ हो जाय, उस समय उसका रोहण करना चाहिए; जिससे वह भर जाय। इसके लिये—

१—मुर्दा-शङ्ख को घी में लगाना चाहिये। २—तिल, मुलहठी को मधु में मिलाकर लगाना चाहिये। ३—शहद के साथ शरफोंका का कल्क लगाना चाहिये। ४—नीम का पत्ता, घी, मधु, हल्दी, मुलहठी, इनके कल्क से बत्ती बनाकर व्रण में रखने से वह शीघ्र भर जाता है। ५—अश्वगन्धा, कटुकी, लोध्र, कायफल, मुलहठी, धाय के फूल, मजीठ, इनका प्रलेप करना चाहिये। ६—पंचवल्कल-छाल और बेर के वृक्ष की छाल का चूर्ण लेप करना चाहिये। ७—मनुष्य के सिर की अस्थि का चूर्ण गोमूत्र में मिलाकर लगाने से असाध्य व्रण भी अच्छे हो जाते हैं।

बुरकेन की दवा—एलुवा, कुन्दरू गोंद, हीरा दु:खी गोंद।

शास्त्रीय औषधि—रोगी की शक्ति को बनाये रखने के लिये उसको अन्तः-औषधि देना भी उत्तम है। इसके लिये—त्रिफला-गुग्गुल, गौराद्य-घृत उत्तम है। बाहर लगाने के लिये—दोषघ्न-लेप, दशांग-लेप, जात्यादि घृत या तैल, दूर्वाद्य-घृत, करञ्ज तैल उत्तम हैं।

नाड़ी-व्रण—जिस समय मनुष्य विद्रधि की उपेक्षा कर देता है, उस समय इसका मुख अन्दर की ओर खुल जाता है। वहाँ जाकर शिरा, स्नायु, मांस, सन्धि-कोष्ठ सब अवयवों को विदीर्ण करने लगता है। चूँकि पीब बहुत गमन करती है, इसलिये इसको गति-व्रण कहते हैं। इस रोग में एक पतली नली-सी होती है। पीठ पर व्रण का मुख तंग रहता हैं, परन्तु व्रण अन्दर बहुत गहरा होता है। इसका मुख कई बार दूसरी ओर निकल आता है। तब भगन्दर-रोग हो जाता है। इस व्रण के गम्भीर होने से भरना कठिन होता है।

उपाय—१—विडंग, त्रिफला और पिप्पली इनका सेवन मधु के साथ करना चाहिये। २—अमलतास-मूल की छाल, हल्दी, आक का दूध इन सबकी बत्ती बनाकर व्रण में रखना चाहिये। ३—गुग्गुल, त्रिफला, त्रिकटु इनका लेप नाड़ी-व्रण में उपकारी है ४—कड़ुवी तुम्बी की छाल, मैनफल, सुपारी की छाल, सैन्धव इनको थोर और आक के दूध में मिलाकर, बत्ती बनाकर व्रण में भर देना चाहिये। ५—उत्तम यह है कि शास्त्र-चिकित्सक की सम्मति लेकर इसको विदीर्ण करवा दिया जाय। ६—समुद्र के खारे पानी से अथवा साबुन के पानी से घाव को धोना चाहिये। इसमें हरताल और नौसादर मिला दिया जाय, तो उत्तम है। फिर पुरानी

रुई को शराब में तर करके निम्न लेप में मिलाकर व्रण में रखना चाहिये। लेप जरूर, अञ्जफर अंजरूत, एलुवा, बूल, हीरा दुखी गोंद, कुन्दरू गोंद, अफीम, केशर, ७—नासूर को भरनेवाला लेप—३५ माशे कुन्दरू गोंद, गन्दा विरोजा, जंगर, प्रत्येक ३॥ माशे, शहद में मिलाकर लगाना चाहिये। ८—नासूर को सिरके, शहद और शराब से धोना चाहिये। पीछे से मनुष्य के बाल की राख, अङ्गूर की लकड़ी की राख, कनेर की राख, झाऊ की राख, कड़ुवे बादाम की राख, घाव में भरना चाहिये।

भगन्दर—इस रोग में दो छिद्र होते हैं। एक छिद्र तो स्वाभाविक होता है, और दूसरा रोग-जन्य होता है। उदाहरण के लिये एक छिद्र गुदा का है। अब यदि एक दूसरा छिद्र गुदा के समीप ही में हो जाय, जिसका सम्बन्ध अन्दर-गुदा से हो और बाहर स्वतंत्र मुख रखता हो, तो उसको भगन्दर कहते हैं। नाड़ी-व्रण या नासूर में एक ही मुख रहता है, परन्तु भगन्दर में दो मुख होते हैं। इस रोग का कारण गुदा के पास विद्रधि का होना है। इस स्थान के व्रण की चिकित्सा बहुत होशियारी से करवानी चाहिये। इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिये कि व्रण नीचे से भरना प्रारम्भ करे। इस रोग की चिकित्सा शास्त्र-चिकित्सा ही है।

उपाय—गुह्य-स्थान पर शोथ दिखाई देने पर सबसे प्रथम उपवास, विरेचन करना चाहिये। पीछे जोंक लगवाकर रक्त का दबाव कम कर देना चाहिये।

लेप—१—काले तिल, हरड़, लोध्र, नीमपत्र, हल्दी, दारुहल्दी, बच, कूठ और गृहधूम इनका लेप देना चाहिये। २—खदिर-क्वाथ लगातार पीना चाहिये; अथवा त्रिफला-क्वाथ गुग्गुल के साथ पीना चाहिये। ३—पाताल यंत्र-विधि से मनुष्य की हड्डी के टुकड़े का तेल निकालकर लगाना चाहिये। यदि दैव विपरीत नहीं है, तो अवश्य लाभ होगा। ४—बिल्ली के अस्थि का लेप करना चाहिये।

शास्त्रीय औषधि—नवकार्षिक गुग्गुल, त्रिफला गुग्गुल, खदिर-क्वाथ खाने के लिये उत्तम हैं।

पथ्यापथ्य—भगन्दर मिटने के एक साल पीछे तक कसरत, मैथुन, युद्ध और घोड़े की सवारी नहीं करनी चाहिये।

गुमड़ा—कई बार मुँह या अन्य स्थान पर एक छोटी-सी फुंसी

निकलती है, परन्तु इसके कारण दर्द बहुत होता है। इसकी जड़ बहुत कठोर और फैली होती है। उसकी उपेक्षा करने से यह बढ़ती जाती है। इसका स्पर्श बड़ा कठिन होता है। चक्कर मारकर इसकी जड़ घेर लेती है। फिर धीरे-धीरे पककर मुख पर से फूट जाती है। फूटने पर पीप और एक कील निकलती है। उस कील के निकलने से गड्ढा-सा हो जाता है। उसके पीछे घाव शीघ्र भर जाता है।

उसके लिये जब फुंसी छोटी हो, तो शीत परिसेंक करना उत्तम है। इस अवस्था में बैलेडोना प्लास्टर लगाना चाहिये, अथवा चूने और शहद का लेप करना उत्तम है। यदि अब भी शान्त न हो, तो कार्बोलिक एसिड की १ बूंद रुई से अन्दर डालना चाहिये। इससे लाभ न होता देखे, तो पुल्टिस आदि उपनाह बाँधकर विदीर्ण कर लेना चाहिये और अन्दर से सब मैल निकाल देना चाहिये। पीछे से ठण्डे पानी की गद्दी या पीयेल की छाल को घी में मिलाकर लगाना चाहिये। प्रारम्भ में सस का लेप करके ऊपर से सेंक देना उत्तम है। यदि पीप बहुत निकलती हो, तो चन्द्रप्रभा, कञ्चनारगुग्गुल, को मंजीष्ठादि क्वाथ या त्रिफला क्वाथ के साथ खाना चाहिये।

नहरुवा—त्वचा के अन्दर से श्वेत रंग का धागे-जैसा पतला कृमि निकलता है। इस रोग को नहरुवा कहते हैं। इस रोग के अंडे पानी में रहते हैं। गँदला पानी पीने से या उसमें नहाने से ये अण्डे शरीर में चले जाते हैं और वहाँ बढ़ते हैं। जब कृमि बड़ा हो जाता है, तब अपने अंडे बाहर देने के लिये वह अपना मुख त्वचा में निकालता है। इसके निकलने के समय निम्न लक्षण होते हैं—

प्रथम एक फुन्सी उत्पन्न होती है। उसका छाला बनता है। इसमें एक छेद हो जाता है। इसमें से एक पतला धागा-सा निकलता है। इसका रंग लाल स्याही लिये हुए होता है। यह जब बाहर आता है, तो एक बिलान्द तक आजाता है। त्वचा के किनारे कीड़ा चलता प्रतीत होता रहता है। प्रायः यह घुटने के आसपास निकलता है।

चिकित्सा— यत्न यह करना चाहिये कि यह टूटने न पाये। इसके लिये जितना निकले, उतने को लकड़ी पर लपेटते जाना चाहिये। फुन्सी पर पलुवा को धनिये के पानी, तासनी के पत्तों के पानी में मिलाकर लेप करना

चाहिये। २—ईषबगोल, सिरका इनको गुलाब के अर्क में औटाकर लेप करना चाहिये। ३—कनूचा के बीज, सिरका और गुलाब का लेप भी यही गुण करता है। ४—एलुवा को कासनी के पानी के साथ बराबर बढ़ती हुई मात्रा में देने से लाभ होता है। ५—त्रिफला, तुबुंद, सोंठ, कमीला इनको तिगुने बूरे में मिलाकर माजून बनाना चाहिये। इसकी मात्रा ७ माशे है। इससे इस रोग का मवाद दूर हो जाता है। ६—आक के दूध का या सहजन की छाल का अथवा जहरकुचला तथा संखिये का लेप करना उत्तम है।

अर्बुद (रसौली)—रसौलियाँ कई प्रकार की हैं; परन्तु सादी और दुष्ट दो प्रकार की मुख्य हैं। इनमें किसी प्रकार का दर्द नहीं होता। ये त्वचा के अन्दर, अवयवों के अन्दर, अवयवों के ऊपर किसी स्थान में उत्पन्न हो जाती हैं। कोई-कोई तो इस प्रकार की होती हैं, कि काटने पर फिर निकल आती हैं। कई इस प्रकार की होती हैं, जिनके काटने से आदमी की मृत्यु निश्चित है। कई रसौलियाँ इस प्रकार की होती हैं, जिनसे मनुष्य को कोई हानि नहीं होती।

उपाय—१—अर्बुद के होने पर योग्य चिकित्सक की सलाह लेनी चाहिये। साधारणत: रक्त-शोधन के लिये काढ़ा या गुग्गुल आदि खाना चाहिये। सहजने का स्वरस या त्रिफला के काढ़े में मधु मिलाकर पीना उत्तम है। २—छरीला, राख, कनेर के बीज, चून, साबुन, हरताल, गुलरोगन इनका लेप करना चाहिये। यदि रसौली दिखाई दे और स्थान आज्ञा देता हो, तो उसपर सीसे का भारी टुकड़ा बाँध देना चाहिये।

श्लीपद—इस रोग में पाँव हाथी के समान हो जाता है। यह रोग मदुरा, दक्षिण-भारत में प्राय: मिलता है। जिस देश में बहुत-सा पुराना पानी भरा रहता है और सब ऋतुओं में शीतलता रहती है, उस देश में यह रोग विशेषकर होता है। यह रोग प्राय: पाँव में होता है। इसके अतिरिक्त कान, नाक, लिंग, ओष्ठ और स्त्रियों के गुप्त भागों में भी हो जाता है। इस रोग में पाँव हाथी के समान भारी हो जाता है। अनार्य-चिकित्सा में इस रोग का कारण एक कृमि माना जाता है।

उपाय—१—रोगी को आकाश-बेल का काढ़ा पिलाना चाहिये। २—सहजन की छाल के काढ़े में गो-मूत्र मिलाकर पीना चाहिये। ३—धतूरा, एरण्ड, सम्भालु, पुनर्नवा, सहजन, सरसों, इनको पीसकर लेप करना

चाहिये। ३—सरसों, सहजन, देवदार, सोंठ, इनको गो-मूत्र में पीसकर, ४—चीतामूल, देवदार, सरसों, सहजन-मूल, इनको गो-मूत्र में पीसकर लेप करना चाहिये। ५—गिलोय के काढ़े को सरसों के तेल के साथ पीना चाहिये। ६—नीम की छाल, खैर की छाल समान भाग लेकर, काढ़ा करके पीने से लाभ होता है।

शास्त्रीय औषधि—नित्यानन्द-रस।

अनुपान—शीतल जल।

मेदोरोग—कफ करनेवाले पदार्थों के सेवन करने से, शारीरिक श्रम के अभाव में, आलसी पड़े रहने से, दिन में सोने से शरीर के अन्दर वसा का भाग बढ़ने लगता है। सबसे प्रथम वसा पेट में एकत्रित होने लगती है। इससे पेट बढ़ जाता है। उसके पीछे नितम्ब, भुजा, गाल आदि भी मोटे होने लगते हैं। पेट के भारी होने से फेफड़ों को फैलने का अवकाश कम मिलता है, विशेषतः चित्त लेटने पर। लेटने से हृदय के ऊपर भी दबाव पहुँच जाता है, इससे हृदय भी निर्बल पड़ जाता है। इन व्यक्तियों को पसीना बहुत आता है, खूराक अधिक खाते हैं, चलने पर साँस चढ़ने लगती है, नींद बहुत आती है। पुरुषत्व कम हो जाता है। इस प्रकार के व्यक्ति में विसर्प, भगन्दर, मधुमेह, अर्श, श्लीपद आदि रोग बहुत जल्दी असर करते हैं। इस व्यक्ति में जो रोग हो जाता है, वह कठिनता से हटता है।

उपाय—१—कसरत का करना सबसे प्रथम उपाय है। सुश्रुत में कहा है कि व्यायाम से अच्छी कोई वस्तु नहीं, जो शरीर की चर्बी पिघला दे। इसके साथ रूक्ष तथा वायुकारक पदार्थ खाने चाहिये। कफवर्धक पदार्थों को छोड़ देना चाहिये। जागरण, मैथुन, चलना, मुसाफिरी, जौ की रोटी, पुराना धान्य खाना उत्तम है। २—मधु को पानी में मिलाकर पीना चाहिये, मद्य का पीना उत्तम है। ३—गिलोय और त्रिफला का काढ़ा मधु के साथ पीना चाहिये। ४—अग्निमन्थ काढ़ा में शिलाजीत मिलाकर पीना चाहिये। ५—गोमूत्र के साथ हरताल पीसकर मक्खन में मिलाकर लगाने से शरीर की दुर्गन्धि नष्ट होती है। ६—वासक या बिल्व-पत्र के रस में शङ्ख-चूर्ण मिलाकर प्रलेप देने से शरीर की दुर्गन्धि दूर होती है। ७—अजवायन, सौंफ, तुलसी, किर्मानी, जीरा, प्रत्येक १४ माशे, सूखा दौना मरुवा पौने दो माशे, फिटकिरी, जरावन्द, कुटकिया, पाषाण-भेद, प्रत्येक ९॥

रत्ती। इनको कूट-छानकर १२ रत्ती की मात्रा में देना चाहिये। ८—धुली हुई लाख ३॥ माशे सिरके के साथ देना चाहिये। रोगी को बहुत प्यासा रखना उचित है।

शास्त्रीय औषधि—अमृत-गुग्गुल, नवकार्षिक-गुग्गुल, योगराज-गुग्गुल देर तक खाना चाहिये।

कार्श्य—कई व्यक्ति प्रारम्भ ही से निर्बल होते हैं। निर्बल व्यक्ति मोटे आदमियों से अच्छे हैं। इनके नितम्ब, गाल, भुजायें पतली-पतली होती हैं। इनकी खुराक भी कम होती है। इसके लिये—

१—कफकारी भोजन करना चाहिये। दिन में सोना, मांस-रस, शीतल पानी में स्नान, तेल मलना, नर्म कपड़ों का पहनना, इत्र सूँघना, खेल कूद में भाग लेना, चिन्ता न करना है। २—मीठे बादाम की मींगी, खसखस, बुन्दक, चिरौंजी, सनोवर का फल, इन सबको महीन करके, गौ के घी और बूरे में मिलाकर संध्या-सबेरे खाना चाहिये। ३—लाल तुदरी, सफेद खसखस के बीज, प्रत्येक १७॥ माशे, हब्बुलनौलहब, सोंठ, फिल्फिल, दालचीनी, शकाकुल, प्रत्येक १०॥ माशे; चिरौंजी, बुजीदान जोज; जन्दुम हब्ब, प्रत्येक ३॥ माशे: केशर ३५ माशे, मीठे बादाम की मींगी १ सेर, बुन्दक छिले हुये आधा सेर, अखरोट ६५ माशे, चावल का चून १ सेर, थोड़ा-सा शहद लेकर १ सेर सफेद बूरा, २ सेर सफेद कन्द, १ सेर कतीरा, आधा सेर बाकला का चून, चने का चून, ६५ माशे लेना चाहिये। बूरे और कन्द की चाशनी बनाकर शेष चीजों को कूट-छानकर इसमें मिलाना चाहिये। और पीछे से केशर को गुलाबजल में घोलकर, मिलाकर गरम करे, जिससे मोहन-भोग-सा बन जाय। मात्रा १७॥ माशे। ४—असगन्ध के चूर्ण को घी या दूध के साथ खाना चाहिये। ५—शरीर पर बला-तैल या अश्वगन्धा-तैल मलना चाहिये।

पाषाण-गर्दभ (मम्प्स)—यह एक संक्रामक रोग है। परन्तु इस रोग में मृत्यु का भय नहीं। इस रोग के कारण हनु-सन्धि की लाल ग्रन्थियाँ सूज जाती हैं। यह रोग प्राय: बच्चों में होता है। और एक बार होकर दूसरी बार बहुत कम होता है। इसके साथ थोड़ा-सा ज्वर भी होता है। कुछ घण्टों बाद या दो या तीन दिन के पीछे यह शोथ पत्थर की भाँति कठोर हो जाती है। अब दर्द भी बढ़ जाता है। रोगी को बोलने, निगलने में कष्ट होता है। त्वचा

लाल हो जाती है। इस रोग में एक पार्श्व की (कभी दोनों पार्श्वों को) ग्रन्थियाँ आक्रान्त होती हैं। रोगी की जीभ मैली रहती है। श्वास में दुर्गन्धि आती है। कई बार इस रोग की उपस्थिति में अथवा इसके अच्छा होने पर अण्ड-कोष और स्तनों में भी सूजन आजाती है।

उपाय—यदि निगरण में कठिनता हो, तो जलौका लगानी चाहिये। प्रायः गरम पानी का सेंक, बैलोडोना ग्लैसरीन का लेप पर्याप्त होता है। दर्द को कम करने के लिये पोस्त के डोडों से सेंक करना चाहिये, और रुई रखकर पट्टी बाँधनी चाहिये। सनाय या मैगनेशियम सल्फेट को अवश्य देना चाहिये, जिससे रोगी को विरेचन भली प्रकार हो जाय। रोगी को बिस्तर पर लेटे रहना चाहिये और द्रव भोजन खाना चाहिये।

रसायन और वाजीकरण

देवताओं के आदि चिकित्सक भगवान काशीपति धन्वन्तरि ने आयुर्वेद-शास्त्र के दो उद्देश्य बताये हैं—१—रोग से पीड़ित व्यक्तियों को स्वस्थ करना। २—स्वस्थ व्यक्ति जिससे रुग्ण न हों, वह स्वस्थ ही बने रहें, उन बातों की शिक्षा देना। अर्थात् आयुर्वेद-शास्त्र में बाधक (Preventive) और Curative दोनों प्रकार के इलाज हैं। इनमें से Curative चिकित्सा का वर्णन संक्षेप में हो चुका है। अब बाधक (Preventive) चिकित्सा के लिये कुछ लिखना आवश्यक है।

क्षेत्रीकरण—जिस प्रकार बीज बोने से पूर्व खेत का कर्षण करके उसे बीज के योग्य बनाया जाता है, अथवा जिस प्रकार कपड़े पर रंग चढ़ाने से पूर्व उसको धोकर साफ करना आवश्यक है, उसी प्रकार रसायन-विधि का प्रयोग करनेवाले व्यक्ति के लिये शरीर का शोधन आवश्यक है।

इसके लिये तैल-मर्दन, वमन और विरेचन का प्रयोग करना चाहिये। साधारणतः निम्न विधि से शरीर की शुद्धि हो सकती है।

रोगी भोजन में दूध, चावल, शर्करा, दलिया, खीर आदि नर्म और मीठी वस्तुओं का उपयोग करे। यथासम्भव नमक, तामसिक पदार्थों से बचे। यदि दाल लेनी भी हो, तो मूँग की दाल का उपयोग करे। उत्तम यही है कि दूध के ऊपर रहे। भोजन में परिवर्तन करने से पूर्व ३-५-७ दिन का

उपवास अपनी शक्ति के अनुसार करे। उपवास के दिनों में पानी यथेच्छ पीना चाहिये। यदि रोगी पानी पर न रह सके, तो दूध पीना चाहिये। दूध के साथ भी एनीमा लेना चाहिये। यदि टट्टी नियमपूर्वक आये, तो एनीमा लेने की कोई आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार १५-२० दिन तक नर्म भोजनों का पथ्य पालन करके, विरेचन और बस्ति से कोष्ठ को साफ़ कर लेना चाहिये।

किस आयु में—रसायन-विधि का प्रयोग करने के लिये युवावस्था का आरम्भ या यौवन के बुझते हुये चिराग का अन्तिम समय उत्तम है। क्योंकि बालक और वृद्ध व्यक्ति दवाइयों की शक्ति को सहन नहीं कर सकते; साथ ही बुढ़ापे में शरीर परिपक्वावस्था में पहुँच चुका होता है। इसलिये जबतक शरीर में पित्त उत्तम अवस्था में रहे, तबतक इस विधि का प्रयोग करना चाहिये।

विधि—औषधि का सेवन प्रातःकाल करना चाहिये, और भोजन में सात्विक भोजन दूध, घी, चावल, मूँग, शर्करा आदि का इस्तेमाल करना चाहिये। इस विधि के पालन करने के समय, क्रोध, धूप, स्त्री-स्पर्श, दिन में सोना, रात्रि में जागना आदि बातों को सर्वथा छोड़ देना चाहिये। अपने नित्य-नैमित्तिक कार्यों का पालन भली प्रकार करना चाहिये, अपने धंधे को करते हुये शारीरिक श्रम, व्यायाम, घूमना आदि भी अवश्य करना चाहिये।

रसायन-कार्य के लिये बहुत-सी वस्तुयें पृथक्-पृथक् या एक साथ ही बरती जाती हैं। इनको बरतने के लिये धैर्य्य और मेहनत, तथा आलस्य-परित्याग की आवश्यकता होती है। रसायन विधि का लाभ रसायन-विधि समाप्त करने के पीछे दिखाई देता है। जैसे कि घोड़े या बैल को खुद खिलाने के पीछे ही उसका लाभ दिखाई देता है।

पशु पालनेवाले एक बात ध्यान में रखते हैं कि फागुन और आश्विन मास में घोड़े या बैल को दूर करके गदरी खिलाते हैं। इसको वे 'खुद देना' कहते हैं। इसको खिलाते समय वे घोड़े या बैल को किसी भी सवारी में नहीं जोतते। यह गदरी कच्चे जौ या कच्ची जवी, अथवा कच्चे चने होते हैं। इस नये और हरे घास के कारण से घोड़े या बैल को अतिसार हो जाता है, उसे ये अपनी भाषा में "छेरा लगाना" कहते हैं। इसके पीछे वे बैल को तेल या घी पिलाते हैं। इससे अतिसार बढ़ता है, और पीछे बन्द हो जाता

है। बस, उनका पशु तैय्यार होगया। अब वे इसको साल भर आराम से बाहते हैं। इस विधि से उस पशु के सब पुराने बाल गिर जाते हैं। उसका बदन साफ और सुथरा निकल आता है। उसपर आब आजाती है। हाथ फेरिये, जरा भी मैल आप को नजर नहीं आयेगी। धूल भी इसके बदन पर नहीं जमती। यह पशु-पालने की अपनी रसायन-विधि है।

जिस प्रकार प्रत्येक पशु के लिये साल में दो बार यह विधि बरती जाती है, उसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति के लिये दोनों आयनों के प्रारम्भ में इस विधि को बरतना चाहिये। अर्थात् दक्षिणायन के प्रारम्भ में आश्विन में, और उत्तरायण के प्रारम्भ में फाल्गुन या चैत्र में इस विधि को बरतना चाहिये। प्रकृति स्वयं चाहती है कि यह विधि बरती जाय, इसीसे वह बसन्त-ऋतु में नाना प्रकार के रोग यथा टाइफाइड, चेचक आदि को उत्पन्न करती है। इसी प्रकार शरद्-ऋतु के प्रारम्भ में मलेरिया रोग को फैलाती है। शायद इसीसे किसीने कहा है कि "रोगाणां शारदी माता"—अर्थात् रोगों की माता शरद् ऋतु है। इस लिये साल में दो बार नहीं, तो कम से कम एक बार शरद्-ऋतु में रसायन-विधि का प्रयोग करना चाहिये।

औषधियाँ

१—रसायन के लिये सबसे सरल और सस्ता उपाय बड़ी काबुली हरड़ का या पीली हरड़ के चूर्ण का सेवन करना है। यह रसायन बारह महीने बदला जा सकता है। यथा—वर्षा-ऋतु में—हरीतकी ६ माशे, नमक सैन्धव २ माशे, शरद्-ऋतु में हरीतकी ५ माशे, शर्करा ४ माशे शीतल-जल से पीना चाहिये। हेमन्त-ऋतु में हरीतकी ३ माशे, शुण्ठी २ माशे, शिशिर ऋतु में हरीतकी ३ माशे, पिप्पली २ माशे, गरम जल से पीना चाहिये। बसन्त-ऋतु में मधु के साथ, ग्रीष्म-ऋतु में गुड़ के साथ, हरीतकी खानी चाहिये।

२—दूसरी वस्तु भाँगरा है। भाँगरे के स्वरस के दूध के साथ पीना चाहिये। भाँगरा वर्षा-ऋतु में बहुत होता है, और पानी के पास मिलता है,

इससे नदी, जोहड़, पोखर आदि के किनारे मिलता है। इसका रस निकालने से बाल या हाथ काले हो जाते हैं। इसको शरद-ऋतु में उखाड़कर रख लेना चाहिये। इसका चूर्ण गरम दूध या पानी के साथ खाना चाहिये। यह सिद्ध प्रयोग है। इसका प्रयोग करने के समय दूध विशेष-रूप में पीना चाहिये।

३—आमला—चरक में आंवले को सबसे उत्तम रसायन बताया है। जिस अवलेह को खाकर बुड्ढे च्यवन ऋषि भी जवान होगये थे, उस अवलेह में मुख्य वस्तु यह आँवला ही है। लोग पूछते हैं कि आँवले को किस प्रकार खायँ? इसका एक उत्तर मेरे पास है, जिस प्रकार भी तुमसे बने, उसी रूप में खाओ, पर खाओ सही। सबसे उत्तम आँवला माघ और फागुन मास का होता है, जिसमें छिलके के ऊपर कुछ लालिमा आजाय, और स्वाद में मधुरता आजाय, कड़ुवा और कषैला रस कम हो जाय। माघ और फागुन में आँवला अपनी पूर्ण उन्नति पर पहुँच जाता है। इसके अन्दर के रस पक चुके होते हैं। इसको कच्चा-कच्चा खाना चाहिये। मुरब्बे के रूप में, चटनी में, अचार में और अवलेह में, चूर्ण के रूप में, शीत कषाय के रूप में जिस प्रकार भी बने, उस प्रकार से खाना चाहिये। आँवला और हरड़ में लोह का भाग है, इससे यह रक्त का शोधन करने के साथ रक्त में रक्ताणुओं को पुष्ट करता है। चरक में आँवले खाने का बहुत लाभ बताया है। यह प्रयोग कम से कम ४-५ मास करके देखना चाहिये।

४—प्रातःकाल गाय का दूध या रात्रि का बासी पानी उठते ही पीना चाहिये। इससे कास, श्वास, कटि-शूल, मेह, मूत्राघात, ऊपर का विकार, अर्श-शोथ आदि शान्त होते हैं।

५—असगन्ध के चूर्ण को घी में मिलाकर या दूध में पकाकर पीना चाहिये।

६—मुलहठी के चूर्ण को दूध के साथ; गिलोय के रस को मधु के साथ; शंखपुष्पी के चूर्ण या स्वरस को मधु के साथ; मण्डूकपर्णी ब्राह्मी के रस को मधु के साथ; इन चारों में से किसी एक प्रयोग का व्यवहार करना चाहिये।

७—दूध और घी को, धारोष्ण दूध को नित्य-प्रति पीना चाहिये।

८—आँवले का चूर्ण, काले तिल और भँगरे का चूर्ण इनको दूध के साथ खाना चाहिये।

९—बिधारे के चूर्ण को शतावरी-रस की ७ भावना देकर १ तोले की मात्रा में दूध में खाना चाहिये।

१०—आमलकी-चूर्ण ८ सेर को आमलकी-स्वरस से २१ बार भावना देकर' इसमें मधु ८ सेर, घी ८ सेर और पिप्पली-चूर्ण १ सेर, शर्करा २ सेर मिलाकर मिट्टी की हाँड़ी में रख देना चाहिये। इस हाँड़ी को वर्षा-ऋतु के पीछे निकालकर सेवन करना चाहिये।

११—गिलोय, अपामार्ग, विडंग, शंखपुष्पी, बच, हरड़, कूठ, शतावरी, इनके चूर्ण को घी के साथ खाना चाहिये। इससे बुद्धि बढ़ती है।

१२—भाँगरे का चूर्ण १ भाग, तिल आधा भाग, आँवला आधा भाग, इनको शर्करा या गुड़ के साथ खाना चाहिये।

१३—उत्तम लोह-भस्म, प्रवाल-भस्म, अभ्रक-भस्म को लेकर पृथक्-पृथक् मधु के साथ खाना चाहिये।

१४—शिलाजीत को उचित विधि से सेवन करके दूध के साथ खाना चाहिये।

१५—शुद्ध किये हुये भिलावे के चूर्ण को तिल-चूर्ण के साथ गरम दूध या घी में मिलाकर खाना चाहिये।

शास्त्रीय-औषधि—च्यवन-प्राश, अभयावलेह, बसन्त-कुसुमाकर, अभ्रक, लोह-भस्म, बृहत्पूर्ण-चन्द्ररस, मकरध्वज-रसायन, नीलकण्ठ-रस।

अर्थात—रसायन-विधि के प्रयोग करने से मनुष्य दीर्घायु प्राप्त करता है। उसकी स्मृति-शक्ति और बुद्धि बढ़ती है। वह निरोगी एवं बलवान् रहता है, सदा युवा बना रहता है। उसकी इन्द्रियाँ और शरीर बलवान रहते हैं। मुख पर कान्ति रहती है।

एक बार सुकरात से पूछा गया कि कितनी बार सम्भोग किया जाना चाहिये? उसने कहा—सारी उम्र में एक बार। उससे कहा गया, यदि पुरुष न रह सके तो? उसने कहा—दो बार। उससे कहा गया, यदि इस पर भी संतोष न हो तो? उसने कहा—कफन का सामान तैयार करके जितनी बार चाहे, सम्भोग करे। ऐसे ही गृहस्थियों के लिये यह वाजीकरण-विधि लिखी है।

१—अल्प आयु में या कच्ची आयु में अस्वाभाविक उपायों से शुक्र क्षय करने से असंख्य रोगों का बीज बच्चों के अन्दर बोया जाता है। इसके पीछे जीवन-संगिनी प्राप्त करके उठती हुई जवानी के मद से पागल बनकर, इन्द्रिय-लालसा को पूर्ण करने के लिये, जो शुक्र-नाश किया जाता है, वह स्वास्थ्य का एक प्रकार से श्राद्ध करना है। वेश्याओं के समीप जाने से, या उनके दर्शन से मन का अधिक आकर्षण उनकी ओर होता है। आकर्षण से उत्तेजना होती है, और उत्तेजना से सर्वनाश होता है। इस प्रकार के अन्य उपायों से शुक्र की निर्बलता हो जाती है। सामने देखने से कोई प्रत्यक्ष रोग दिखाई नहीं देता; परन्तु रोगी प्रतिदिन घटता जाता है। उसे रात्रि में भली प्रकार नींद नहीं आती, पेट में वायु भरी रहती है, रोगी को रात्रि में स्वप्न आते हैं।

रोगी को स्वप्न-दोष हो जाता है। थोड़ी-सी उत्तेजना मिलने पर भी शिश्न के अग्रभाग पर चिकना पदार्थ आजाता है। रोगी की स्फूर्ति, कान्ति नष्ट होजाती है। गुरुजनों के सामने आँख रखकर बातचीत नहीं करता। रोगी एक विषय में मन नहीं लगा सकता। एक काम अभी पूरा नहीं होता कि दूसरा काम करने लगता है, उसे अधूरा छोड़कर तीसरा कार्य पकड़ता है। रोगी का चेहरा सदा चिन्ता-ग्रस्त रहता है। उसे सब जगह डर मालूम होता है। बाल अकाल में श्वेत होजाते हैं, बाल गिर जाते हैं। आँखों के नीचे काले दाग पड़ जाते हैं। अण्ड-कोष शिथिल एवं नीचे लटक जाते हैं। दृष्टि-शक्ति निर्बल हो जाती है।

जो लड़के प्रथम श्रेणी में आगे रहते हैं, यह रोग होने पर वे पीछे हट जाते हैं। किसी रोगी एक वस्तु पर श्रेणी-बद्ध बात नहीं कर सकता। स्मरण-शक्ति नष्ट हो जाती है। कोई-कोई व्यक्ति जीवन से निराश हो जाते हैं। कइयों को मलबन्ध रहता है, और कइयों को अतिसार हो जाता है। रोगी को बवासीर, कास, क्षय, पाण्डु, हाथ-पाँव में जलन, नाक से रक्तस्राव, हृदय पर धड़कन होती है। मूत्र का रंग गँदला हो जाता है, मूत्र के साथ लार की भाँति चिकना शुक्र बाहर आता है। पीछे से शिश्न भी निर्बल हो जाता है, उसमें उत्थान नहीं होता।

२—व्यक्ति कई प्रकार के होते हैं—१—जो स्वभावतः स्त्रियों में शक्त होते हैं। दूसरे वे हैं, जो स्त्रियों में जन्म ही से अशक्त होते हैं। इसके साथ ही स्त्रियों में शक्त पुरुष भी दो प्रकार के हैं।

१—वे लोग, जो हाथी की भाँति वीर्य का रक्षा करते हैं। अर्थात् बहुत दिनों में सम्भोग करते हैं। जब सम्भोग करते हैं, तो बहुत देर में वीर्य च्युति होती है। एक बार वीर्य-च्युति होने के पीछे बहुत दिनों में इच्छा होती है। २—दूसरे व्यक्ति वे हैं, जिनका स्वभाव चिड़ियों की भाँति का होता है। अर्थात् शीघ्र इच्छा होती है, और शीघ्र ही वीर्य स्खलित हो जाता है। वीर्य के स्खलित होने के १॥ या १ घण्टे पीछे फिर इच्छा उत्पन्न हो जाती है। ये दोनों अवस्थायें स्वाभाविक हैं।

प्रथम प्रकार के व्यक्तियों के लिये भी बाजीकरण की आवश्यकता है, और दूसरे व्यक्तियों के लिये तो आवश्यकता है ही। क्योंकि यदि स्त्री का धातु जल्दी क्षरण हो जाय, तो उसे मनुष्य से पहले तृप्ति नहीं मिल सकती। इसलिये पाक में उनके लिये भी प्रयोग दिये हैं। इन व्यक्तियों के लिये शुक्र-वर्धक उपाय बरते जाते हैं। प्रायः यह देखा गया है पित्त-प्रकृतिवाले पतले व्यक्तियों का स्वभाव चिड़ियों की भाँति का होता है, और कफ एवं वात-प्रकृति-वाले व्यक्तियों का स्वभाव हाथी के भाँति का होता है। जो शुक्र का नाश बहुत करता है, उसे बाजीकरण औषधियों का सेवन करना चाहिये।

बाजीकरण औषधियों को १६ वर्ष से पूर्व और ७० वर्ष के पीछे सेवन नहीं करना चाहिये। और न इस आयु से पूर्व या पीछे सम्भोग करना चाहिये। बाजीकरण औषधियों को बरतने से पूर्व शरीर का शोधन कर लेना चाहिये।

३—तीसरा कारण यह है कि काम-शास्त्र में लिंग-भेद से स्त्री और पुरुष के भेद किये हैं। जैसे शश, अश्व, वस ये पुरुषों के और मृगी, बड़वा, एवं हस्तिनी ये स्त्रियों के तीन भेद किये हैं। यदि इनका सम्बन्ध आपस में ठीक प्रकार से हो जाय, तो उत्तम है। यदि विषम रूप में हो जाता है, तो लिंग-वर्धक उपायों का प्रयोग करना होता है। इसी प्रकार योनि-संकोचन के उपायों की ज़रूरत पड़ती है।

औषधियाँ

१—गोखरू, तालमखाना, शतावरी, कौंच के बीज, अतिबला इनके चूर्ण को रात्रि में दूध के साथ खाना चाहिये।

२—बिदारीकन्द के चूर्ण को घी, दूध और गूलर के रस के साथ सेवन करना चाहिये।

३—बिदारीकन्द के चूर्ण को बिदारी के स्वरस से भावना देकर मधु के साथ खाना चाहिये।

४—मुलहठी-चूर्ण २ तोले, घी और मधु के साथ मिलाकर खाना चाहिये। ऊपर से दूध पीना चाहिये।

५—इमली-चूर्ण को आँवले के रस से सात बार भावना देकर बरतना चाहिये।

६—मूसली के चूर्ण को मखाने के साथ घी और शहद में खाना चाहिये।

७—शतावरी २ तोले, दूध १ पाव, जल १ सेर, शेष १ पाव इसको सिरका के साथ मिलाकर खाना चाहिये।

८—घी और दूध को खानेवाला निरोगी व्यक्ति सदा वीर्यशाली रहता है।

९—अकरकरा, जायफल, जावित्री, छोटी इलायची, कस्तूरी, केशर हिंगुल शुद्ध इनको एक पोटली में बाँधकर दूध के अन्दर डालकर पकाना चाहिये। जब दूध आधा रह जाय, तो पोटली निकालकर इस दूध में मिश्री मिलाकर देना चाहिये।

१०—असली नागकेशर के चूर्ण को दूध में पकाकर पीना चाहिये।

११—संखिया, अफीम, हिंगुल, इनको वट के दूध से पीसकर गोलियाँ बना लेनी चाहिये। दूध में घी और चीनी मिलाकर उसके साथ खाना चाहिये।

१२—छुवारे की मज्जा को दूध के साथ पीना चाहिये।

१३—उटंगन की जड़ के चूर्ण को शर्करावाले दूध के साथ पीना चाहिये।

१४—सोंठ, मोच-रस, मेदा लकड़ी, अकरकरा, लोहबान, तिल, पिप्पली, मिश्री इनके चूर्ण को बराबर मिश्री मिलाकर खाना चाहिये।

१५—सोंठ, मोच-रस, लोहबान, इनके चूर्ण को दूध से अथवा मोच-रस और लोहबान को ६ रत्ती की मात्रा में दूध के साथ पीना चाहिये।

१६—कौड़िया लोहबान १२ तोले, जातिफल, लवंग, हरताल प्रत्येक चार तोले, इन सब वस्तुओं को मिलाकर ,पाताल-यंत्र से तैल निकाल लेना चाहिये। इस तैल को तीन बूँद पान में रखकर खाना चाहिये। हरताल को बकरी के दूध में तीन बार भावित करना चाहिये।

१७—बादाम रोगन, कस्तूरी, केशर, जायफल, जावित्री, प्रत्येक एक-एक रत्ती लेकर शिश्न पर मलना चाहिये। और १ रत्ती की मात्रा में पान के साथ खाना चाहिये।

१८—रीछ की इन्द्रिय या कुत्ते की इन्द्रिय किसी इत्र में मिलाकर, लिंग पर मलना चाहिये। कुत्ते की इन्द्रिय को पानी में पीसकर लेप करना चाहिये। इससे स्तम्भन और लिंग-वृद्धि होती है।

१९—अकरकरा के चूर्ण को कपड़े में छानकर सिल पर पीसना चाहिये। इसको घी में मिलाकर शिश्न पर लेप करना चाहिये।

२०—अकरकरा-चूर्ण के साथ नरगिस के फूलों को मिलाकर शिश्न पर रात्रि में मलना चाहिये। इससे शिश्न में शिथिलता नहीं आती।

२१—प्रातःकाल बिना मुख धोये हुये दालचीनी को चबाकर शिश्न पर मलना चाहिये। इससे लिंग में ताकत आती है।

२२—वट के दूध के साथ अफीम एवं बादाम की मींगी को पीसकर गोली बनाकर खाने से वीर्य-स्तम्भन होता है।

२३—अकरकरा, केशर, जायफल, गाँजा इनको वट के दूध में पीस-कर गोली बनाना चाहिये। गोली चने के बराबर बनाना चाहिये। ऊपर से दूध पीना चाहिये।

२४—वट के वृक्ष में गड्ढा करके, उसमें अफीम भर देना चाहिये। १५ दिन पीछे इस अफीम को निकालकर केशर, इलायची, कपूर, कस्तूरी, जायफल, स्वर्ण-भस्म इनको मिलाकर वट के दूध में चने के बराबर गोली बनानी चाहिये। इससे वीर्य-रोध होता है।

२५—अम्बर का तेल पाताल-यंत्र से निकालकर पाँव के तलुवे में लगाने से शुक्र-रोध होता है।

२६—माजू-फलों को इनके रस से या जामुन के नये पत्तों के रस से पीसकर बाँधना चाहिये। इससे शुक्र रुक जाता है।

२७—धतूरे के बीज, शुद्ध कुचला, पारा, गन्धक, जायफल इनको पान के स्वरस से पीसकर एक-एक रत्ती की गोली बनाना चाहिये। यह वीर्य-रोधक है।

२८—बथुये के बीजों को मुलहठी के चूर्ण और मधु के साथ मिलाकर खाने से वीर्य-रोध होता है।

२९—विदारीकन्द, गोखरू, कांच-बीज इनको मधु और घी के साथ मिलाकर खाने से शुक्र-वृद्धि होती है।

३०—दूध में भाँग और बड़ की दाढ़ी डालकर प्रातःकाल हाँड़ी में पकने के लिये रख देना चाहिये और दिनभर पकने देना चाहिये। रात्रि में इसको छानकर मिश्री के साथ पीना चाहिये।

३१—प्याज के रस में शहद मिलाकर १५ से ३० दिन तक पीने से काम-दीप्ति होती है।

३२—उड़दों को घी में भूनकर, दूध के साथ पकाकर, शर्करा मिलाकर खाना चाहिये।

३३—कौंच के बीज, तालमखाना-चूर्ण मधु और चीनी के साथ खाना चाहिये।

३४—उटंकन का चूर्ण, गोखरू, कौंच के बीज का चूर्ण शहद या दूध के साथ पीना चाहिये।

३५—तुलसी या सूरनकन्द को पानी के साथ पीने से वीर्य स्खलित नहीं होता।

३६—गुल-नीलोफर, श्वेत कमल, मधु और शर्करा, इनको मिलाकर नाभि पर लेप करने से वीर्य-स्तम्भन होता है।

३७—बकरी, ऊँटनी और गो-घृत; इन तीनों को मिलाकर पाँव पर लेप करने से वीर्य-स्तम्भन होता है।

३८—काला तिल, गोखरू का बीज इनको बकरी के दूध में पकाकर, शहद मिलाकर खाना चाहिये।

३९—संकल्प—चिन्तन करना सबसे उत्तम उपाय है।

४०—कपूर-टंकण, पारा समान भाग लेकर अगथिया के रस में पीसकर इन्द्रिय पर लगाना चाहिये। और ३ घण्टे तक लगे रहने देना चाहिये। पीछे धो देना चाहिये, स्त्री के पास जाना चाहिये।

४१—असगन्ध, सुहागे की खील को मक्खन और शहद में मिलाकर लगाना चाहिये।

शास्त्रीय औषधि—कामिनी-विद्रावण-रस, अश्वगन्धादि-घृत, अश्वगन्धादि-तैल, चन्द्रोदय-मकरध्वज, कामेश्वर-मोदक, मन्मथाभ्र-रस, वानरी-गुटिका, दरशाङ्क, पूर्णचन्द्र-रस, शुक्र-वल्लभ-रस, कामदेव-घृत, अनङ्ग-कुसुमाकर, भल्लातक-तैल।

योनि-संकोचन—

४२—हल्दी, दारुहल्दी, कमल-केशर, देवदार—इनको पानी में पीसकर योनि में लेप करना चाहिये।

४३—धाय के फूल, हरड़, बहेड़ा, आँवला, जामुन की छाल, मुलहठी इनके चूर्ण को मधु और घी में लगाना चाहिये।

४४—कमल के केशर. कमल के फूल; इनको पानी में पीसकर लेप करना चाहिये।

४५—नीम के पत्ते, हल्दी, कमल, माजूफल, धाय के फूल, जामुन की छाल, इनको समान भाग लेकर लेप करना चाहिये।

४६—पंचवल्कल, मुलहठी, चमेली के फूल; इनके कल्क से पानी पकाकर उससे योनि का प्रक्षालन करना चाहिये।

४७—कस्तूरी, जायफल, कपूर या माजू के फल, इनको मधु के साथ योनि में लेप करना चाहिये।

४८—ढाक के फल, गूलर, तिल का तैल, मधु, इनके मर्दन करने से योनि में दृढ़ता आती है।

४९—बच, कूठ, हल्दी, गुलनीलोफर, मिर्च और असगन्ध, इनका प्रलेप योनि में करना चाहिये।

एक बात—यहाँ पर वाजीकरण के प्रयोग दिये गये है। ये प्रयोग और प्रयोगों की भाँति व्यर्थ नहीं हैं। इनको विश्वस्त स्थानों से लेकर लिखा गया है। इनमें से बहुत प्रयोग तो तत्काल फल दिखानेवाले हैं।

पथ्यापथ्य—जो अन्न मधुर, स्निग्ध, बृंहण, पचने में भारी हैं, एवं मन को प्रसन्न करनेवाले हैं, वे सब पथ्य हैं। अत्यन्त उष्ण, कटु, तिक्त, कषाय, अम्ल एवं क्षार, पत्तों का शाक, अधिक लवण नहीं खाना चाहिये।

प्रकरण दसवाँ

स्त्री-रोग-चिकित्सा

गर्भाधान—स्वस्थ स्त्री और स्वस्थ पुरुष के ऋतुकाल में संयुक्त होने से गर्भ-धृति होती है। इस गर्भ-धृति का ज्ञान किसी-किसी स्त्री को उसी समय हो जाता है, और कइयों को दो या तीन महीने में होता है। गर्भाधान से लेकर जबतक बच्चा बाहर नहीं होता, तबतक इस अवस्था को 'गर्भावस्था' कहते हैं। यह समय साधारणतः २८० दिन या ९ महीने १० दिन का होता है। कइयों में कम या अधिक हो जाता है। इसलिये हम तालिका से प्रसव या बच्चे जानने की तारीख जान सकते हैं। इस तारीख में थोड़ा अन्तर होना संभव है। जिस स्त्री को अन्तिम ऋतु जिस तारीख में आई हो, उसमें २८० दिन जोड़ने से वह दिन आजायगा। (तालिका के लिये देखिये परिशिष्ट)

पशुओं में जब गर्भकाल का समय आता है, उस समय इस इच्छा की प्रबलता के कारण वे चिल्लाना आरम्भ कर देते हैं। पक्षी भी चुलबुलाहट करने लगते हैं। पशुओं में जबतक गर्भ-धृति नहीं होती, तबतक वह साँड़ या भैंसे के आगे से नहीं हटती, और गर्भ-धृति होने पर या उसकी तृप्ति हो चुकने पर वह नर को अपने पास नहीं आने देती। इस गर्भ-धृति से साधारणतः हिसाब लगा लिया जाता है कि अमुक पशु कब बच्चा देगा। प्रत्येक पशु में यह समय भिन्न-भिन्न है। गाय में ९॥ महीने, भैंस में ११ महीने, हाथी में १ साल, इसी प्रकार सब पशुओं का भिन्न है। सिद्धान्त यह है कि गर्भ-धृति की निश्चित तिथि से प्रसव की सम्भवित तिथि सुगमता से जानी जा सकती है।

गर्भ रहने के पीछे स्त्री के शरीर और मन के अन्दर कुछ परिवर्तन आजाता है, और इन परिवर्त्तनों के आधार पर यह समझा जाता है कि यह स्त्री गर्भवती है। यह चिन्ह या परिवर्त्तन कुछ निश्चित और कुछ अनिश्चित हैं। उदाहरण के लिये—

१—गर्भाधान हो जाने पर कामेच्छा नहीं रहती, अर्थात शान्ति और तृप्ति का अनुभव होता है।

२—गर्भ-धृति होने पर आर्त्तव का आना बन्द हो जाता है।

३—प्रातःकाल उठने पर मुँह से पानी या वमन होता है, यह प्रायः दूसरे-तीसरे महीने में होता है।

४—स्तनों में वृद्धि होने लगती है, स्तनों में भारीपन होता है। चूचक के चारोंओर काली रेखा आजाती है। यह अवस्था प्रायः तीसरे महीने में होती है, कइयों में पहले भी हो जाती है।

५—शरीर में भारीपन, गुरुत्व का अनुभव होने लगता है।

६—उदर में वृद्धि होने लगती है, विशेषतः तीसरे मास में।

७—गर्भ की गतियों का अनुभव होने लगता है, प्रायः चौथे या पाँचवें महीने में।

८—गर्भ का हृदय-शब्द सुनाई देने लगता है, चौथे महीने के पश्चात्। यह शब्द तकिये के नीचे रक्खी हुई घड़ी के समान होता है।

९—स्वभाव में परिवर्त्तन, खाने के लिये विशेष अभिरुचि हो जाती है।

गर्भिणी के लिये यह सब लक्षण प्रायः तीन या चार महीने के पीछे स्पष्ट अनुभव होने लगता है। इसलिये तबसे गर्भिणी को विशेष रूप से आहार-विहार की ओर विशेष ध्यान रखना चाहिये।

गर्भिणी का आहार-विहार

आजकल अकाल प्रसव एवं शिशु-संख्या के आँकड़ों में दिन-प्रतिदिन वृद्धि हो रही है। उसके जहाँ और भी अनेक कारण हैं, वहाँ गर्भिणी-सम्बन्धी कारण मुख्य रूप से हैं। गर्भिणी के आहार-विहार का शिशु (गर्भ) पर अच्छा या बुरा प्रभाव पड़ता है।

कारण—(क) गर्भ का पोषण माता के रक्त से हो रहा है। यह रक्त माता के अन्न से बनता है। अतः इस रक्त के द्वारा, माता के अन्न-द्वारा शिशु को पोषण या शक्ति मिलती है।

(ख) माता का रक्त शरीर के सब भागों में घूमता है। शिर से

पैर तक चक्कर काटकर हृदय में आता है। वहाँ से फिर गर्भाशय की ओर जाता है। इस रक्त में शरीर के विचार घुले रहते हैं।

(ग) उपनिषदों में कहा है कि मन अन्न से बनता है। अत: जैसा आहार होगा, वैसा मन होगा। और जैसा मन होगा, वैसी बुद्धि होगी।

अत: गर्भिणी के लिये आवश्यक है कि वह अपने तथा अपनी आत्मा के प्रतिबिम्ब की रक्षा के लिये आहार-विहार की ओर विशेष ध्यान दे। आहार-विहार को विशेष-रूप से नियमित करे। इसके लिये—

१—तंग वस्त्र न पहने; क्योंकि शरीर के रक्त-संचार में बाधा आ जाती है। विशेषत: कटि-प्रदेश पर तङ्ग वस्त्र के द्वारा रक्त-संचार रुक जाने से एवं उष्णिमा के बढ़ने से गर्भपात या गर्भस्राव का विशेष भय रहता है।

२—ऊँची एड़ीवाला जूता न पहने; क्योंकि इसके द्वारा विषमता आने से चलने में यदि कहीं पैर फिसला, तो निश्चय ही गर्भस्राव होता है। अथवा गर्भाशय का स्थान भ्रंश हो जाता है।

३—बहुत देर तक उत्कट आसन (कुर्सी आदि पर) न बैठे, कारण अधोभाग में रक्तस्राव की वृद्धि होने से गर्भस्राव का भय रहता है।

४—मल, मूत्र आदि का कोई भी स्वाभाविक वेग नहीं रोकना चाहिये; कारण, इससे स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। उदावर्त्त, आनाह और मूत्राघात रोग हो जाते हैं।

५—बहुत मेहनत या दारुण व्यायाम नहीं करना चाहिये; क्योंकि इससे शरीर के थक जाने से रक्त की मात्रा थके अङ्गों में विशेष-रूप से बढ़ जायगी, जिससे गर्भ को पूर्ण रक्त नहीं मिलेगा। इसके कारण वह निर्बल रह जायगा। उदाहरण के लिये, एक स्त्री मस्तिष्क-श्रम करती है। इस श्रम के कारण थके हुये अंगों को पोषण देने के लिये रक्त विशेष-रूप से मस्तिष्क में जायगा, जिसके कारण गर्भाशय में रक्त की न्यूनता हो जायगी।

अथवा अति मेहनत के कारण गर्भाशय में रक्त-वृद्धि होने से गर्भ-स्राव होगा या रक्त की न्यूनता के कारण गर्भ सूख जायगा। दोनों ही अवस्थायें अवाञ्छित हैं।

६—बहुत उपवास (व्रतादि) या भूखा न रहना चाहिये ; क्योंकि इसके कारण गर्भ का पोषण घट जाता है। वह निर्बल रह जायगा।

हाँ, शरीर की रक्षा एवं स्वास्थ्य के लिये, अथवा अजीर्ण रोग के प्रतीकार में एक या आधे दिन का पूर्ण उपवास या फलाहार अथवा पानी पर रहकर उपवास किया जा सकता है।

७—बहुत भीड़ में नहीं जाना चाहिये; क्योंकि इससे गर्भपात हो जाता है।

८—डरावने दृश्य नहीं देखने चाहियें; क्योंकि गर्भपात होने के साथ पुत्र भी डरपोक उत्पन्न होता है। अत: सिनेमा, नाटक या जासूसी उपन्यास नहीं पढ़ना चाहिये।

९—अति संक्षोभी सवारी पर न बैठना चाहिये; विशेषत: पांचवें मास के बाद; क्योंकि, गर्भपात का भय रहता है। अथवा असमय ही में प्रसव हो जाता है। बैलगाड़ी, साइकिल, घोड़े की सवारी (नवें मास में रेल-यात्रा) से विशेषत: बचना चाहिये।

१०—अप्रिय वार्ता नहीं सुनना चाहिये; क्योंकि इससे मन, मस्तिष्क पर शोक, चिन्ता की झलक आती है। उसी झलक का प्रतिबिम्ब रक्त-द्वारा शिशु के मन और मस्तिष्क पर भी पहुँचता है, जो अनभिप्रेत है।।

११—बहुत देर तक चित्त (पीठ के भार) नहीं लेटना चाहिये; क्योंकि इसके द्वारा पीठ की नसों पर विशेषत: त्रिकवर्ती नसों पर दबाव पड़ता है। जिस प्रकार युवाओं में पीठ के भार सोने से रात्रि में स्वप्न-दोष हो जाता है, उसी प्रकार स्त्रियों में त्रिक की नसों पर दबाव आने से मैथुनेच्छा उत्पन्न होती है, जिसके कारण उत्पादक अंगों में रक्तस्राव बढ़ जाता है और गर्भपात की सम्भावना हो जाती है।

१२—शोक, कलह, चिन्ता आदि न करना चाहिये।

१३—खूब आनन्द मनाना चाहिये; क्योंकि इससे मस्तिष्क की वृत्तियाँ खिली रहेंगी। उनमें रक्त की मात्रा बढ़कर उनकी और भी खिल आयेगी। इन खिली हुई वृत्तियों की छाप गर्भ के ऊपर भी उत्तम-रूप से पड़ेगी। शिशु भी प्रसन्न-चित्त उत्पन्न होगा।

१४—उत्तम विचार करना; क्योंकि जैसा विचार माता करेगी, वैसा ही पुत्र होगा।

१५—मैथुन न करना चाहिये (विशेषत:पाँचवें मास के बाद); क्योंकि इस क्रिया से उत्पादक अंगों का स्राव, उत्पादक अंगों में रक्त-वृद्धि हो जाती है। जिसके कारण एकदम रक्त के बढ़ने से तथा दबाव से एवं गर्भ के निर्बल होने से, इसके साथ ही मैथुन के समय रक्त-संचार में परिवर्त्तन होने से शिशु की (गर्भ की) मृत्यु हो जाती है।

मैथुन की इच्छा या क्रिया से रक्त के गुण एवं उसकी क्रिया तथा उसके संचार में भी परिवर्त्तन आजाता है। इस परिवर्त्तन का प्रभाव गर्भस्थ बालक पर भी पड़ता है।

१६—दिन में बहुत नहीं सोना चाहिये। क्योंकि दिन में सोने से रात्रि को नींद देर में आती है या पूर्णरूप से नहीं आती। दिन में सोने से कफ बढ़ता है। शरीर में भारीपन आता है। और पाचन-शक्ति निर्बल होती है। स्वास्थ्य गिर जाता है।

१७—शुद्ध वायु में सदा घूमने जाना चाहिये; क्योंकि गर्भावस्था में रक्त विशेष-रूप से अशुद्ध होता है। प्रथम तो माता को केवल अपना ही अशुद्ध रक्त शुद्ध करना पड़ता था और अब गर्भ का तथा अपना दोनों का रक्त शुद्ध करना होता है। इसलिये आवश्यक है कि विशेष खुली वायु मिले। घूमने से शरीर का साधारण व्यायाम भी हो जाता है। शुद्ध वायु मिलने से फुप्फुस और हृदय को जीवन मिलता है। इससे वे अपना कार्य भली प्रकार कर सकते हैं। शुद्ध रक्त पहुँचने से गर्भ का पोषण भी सुचारु रूप से होगा।

१८—रात्रि को नहीं जागना—नींद उत्तमता से लेना; क्योंकि रात को जागने से शरीर में रूक्षता आजाती है। वायु कुपित होती है।

१९—अनन्नास और कच्चा पपैया कभी भी नहीं खाना चाहिये; क्योंकि इनसे गर्भपात एवं शिशु की आँखों में रोग उत्पन्न होता है। अनन्नास से गर्भाशय संकुचित होता है। गर्भ अन्दर ही पिचक जाता है।

२०—तैल की मालिश न करना चाहिये; क्योंकि शरीर का रक्त-स्वकुम्थ रक्त-वाहिनियों की ओर विशेष-रूप से बहने लगता है, जिससे गर्भ और गर्भाशय का पूर्ण रक्त नहीं मिलता।

२१—स्तन धोकर सदा साफ़ रखना चाहिये, विशेषतः सातवें मास के बाद।

२२—कभी भी पेटेन्ट दवाइयाँ नहीं बरतनी चाहिये; क्योंकि उनकी बनावट मालूम नहीं होती।

गर्भिणी और गर्भ का सम्बन्ध

१—खुले मैदान में सोनेवाली और रात्रि में घूमनेवाली गर्भिणी की प्रजा पगली हो जाती है।

२—लड़ाकू, चुगलखोर और झगड़ालू स्त्री मृगीवाली संतान उत्पन्न करती है।

३—सदा भोग में तत्पर रहनेवाली स्त्री निर्लज्ज एवं स्त्री-स्वभाव-वाली प्रजा उत्पन्न करती है।

४—सदा शोक-ग्रस्त गर्भिणी की संतान थोड़ी आयुवाली, निर्बल और शुष्क उत्पन्न होती है।

५—ईर्षा करनेवाली स्त्री की संतान ईर्षालु, लड़ाकू और दूसरों को दुःख देनेवाली होती है।

६—क्रोधी स्त्रियों की सन्तान चण्ड, क्रोधी और निन्दाखोर होती है।

७—रात-दिन सोनेवाली स्त्रियों की सन्तान आलसी, मन्द-बुद्धि और मन्दाग्निवाली उत्पन्न होती है।

८—हमेशा मद्यपान करनेवाली स्त्री की सन्तान मद्य पीनेवाली और अस्थिर चित्तवाली होती है।

९—हमेशा मिठाई खानेवाली स्त्री की सन्तान प्रमेही (मधुमेही), मेदोरोगवाली और बड़े पेटवाली होती है।

१०—सदा खट्टा, अम्ल, चरपरा खानेवाली स्त्री की सन्तान रक्त-पित्त, त्वक्-रोगवाली और शीघ्र बाल सफेद होनेवाली होती है।

११—कड़ुवा, तीखा (मिर्चादि) खानेवाली स्त्री की सन्तान अल्प शुक्रवाली, कृश एवं पुत्र-शून्य उत्पन्न होती है।

१२—बहुत कषाय-रस खानेवाली की संतान मलबन्ध-रोग-ग्रस्त, बड़े पेटवाली एवं निर्बल उत्पन्न होती है।

१३—बहुत मांस-प्रिय स्त्रियों की सन्तान क्रूर, सुअर-जैसे बाल-वाली या रीछ के बालोंवाली, लाल आँखोंवाली, मूत्र-रोगवाली होती है।

गर्भिणी का दोहद

गर्भिणी को विचित्र प्रकार का अनुभव होता है। गर्भिणी और गर्भ का हृदय रस वाहिनियों-द्वारा बँधा हुआ होता है। इसलिये माता के भावों का असर गर्भ के ऊपर अवश्य पहुँचता है। इसलिये गर्भिणी को कभी भी नाराज़ नहीं करना चाहिये। जिस वस्तु के खाने, पहनने का मन चाहे, उसको वही लाकर देना चाहिये। यदि कोई इच्छा गर्भ को नुक़सान करनेवाली हो (जैसे, लड्डू, खट्टा या तीखा खाने को मन चाहे), तो उसको पूरा नहीं करना चाहिये। गर्भिणी को समझा देना चाहिये कि इस प्रकार करने से गर्भ को हानि होगी। यदि इसपर भी उसकी उत्कट इच्छा बनी रहे, तो हितकारी वस्तुओं के साथ उसको वह भी थोड़ी-सी दे देनी चाहिये। गर्भिणी की प्रार्थना के अस्वीकार करने से गर्भिणी अप्रसन्न हो जाती है, इससे वायु कुपित हो जाती है। वायु के कुपित होने से गर्भ का या तो नाश हो जाता है, अथवा गर्भ विरूप जन्मता है। इसलिये गर्भिणी की इच्छाओं को पूर्ण करना चाहिये।

सगर्भावस्था के कुछ रोग

वमन—यह प्रायः सब स्त्रियों में होता है, विशेषतः जो स्त्रियाँ बहुत कमज़ोर होती हैं, उनको यह बहुत ही कष्टदायक होता है। साधारणतः इसकी चिकित्सा की आवश्यकता नहीं होती। परन्तु कई बार रोग बढ़ने पर दवा की ज़रूरत पड़ जाती है। इसके लिये—

१—एरण्ड का तेल या कोई मृदु-विरेचक (हरीतकी खण्ड या गुलकन्द) लेकर पेट साफ़ कर लेना चाहिये, अथवा एनिमा ले लेना चाहिये।

२—बिस्तर से उठते ही गरम पानी में नीबू निचोड़कर, उसमें थोड़ा नमक या खाँड़ मिलाकर थोड़ा-थोड़ा पीना चाहिये। अथवा सोडा डालकर पीना चाहिये। बरफ़ का पानी भी घूँट-घूँटकर पीना उत्तम है। नितरा हुआ चूने का पानी भी वमन को बन्द कर देता है।

३—भूने हुये चने अथवा जौ का सत्तू खाना चाहिये। पका हुआ आम खाना चाहिये।

४—बरफ़ का टुकड़ा मुँह में रखकर चूसना चाहिये। नारियल का पानी देना उत्तम है।

५—पूर्ण विश्राम लेना चाहिये।

६—कई बार राई की पट्टी लगाने से भी आराम हो जाता है, और साथ में शान्त औषधियाँ देनी चाहिये।

ज्वर—गर्भिणी को ज्वर होने पर हल्का भोजन तथा विश्राम देने के साथ निम्न कषाय देना चाहिये—

१—मुलहठी, लाल चन्दन, उशीरमूल, सारिवा, पद्माख और तेजपत्र, इनका क्वाथ शर्करा और मधु के साथ देना चाहिये।

२—चन्दन, सारिवा, लोध्र, मुनक्का, इनका क्वाथ शर्करा के साथ देना चाहिये।

३—क्युनीन और तीव्र-विरेचक औषधि से यथासम्भव बचना चाहिये।

पाचन-क्रिया के रोग—गर्भावस्था में प्राय: सब भागों में उत्तेजना होती है। इसलिये प्राय: खट्टे डकार, मन्दाग्नि, पेट का चढ़ना, शूल, मलबन्ध, अपचन आदि हैं। इनके लिये साधारणत:—

१—एरण्ड-तैल, कास्करा सैगरेटा लिक्विड या कॉस्करा की गोली ले लेनी चाहिये। तीव्र विरेचक औषधियाँ, जैसे, ऐलोज-मुसब्बर अथवा मैगनेशियम सल्फास या पारे की बनावटवाली औषधियों से बचना चाहिये।

२—हल्की, सुपच खूराक खाने को देना चाहिये। अजीर्णावस्था में भोजन नहीं करने देना चाहिये। फलों के रस या गेहूँ का दलिया, मटर आदि का शाक उत्तम है।

३—अरुचि होने पर खट्टी वस्तुएँ, यथा, शिकञ्जबीन, नीबू आदि दिया जा सकता है। इससे भोजन में रुचि हो जाती है।

अतिसार—गर्भवती स्त्री को यदि अतिसार या संग्रहणी हो जाय, तो एरण्ड-तैल २ ड्राम देना चाहिये, जिससे कोष्ठ की शुद्धि हो जाय। यदि इसका निश्चय हो जाय कि कोष्ठ शुद्ध है, तो ग्राही और स्तम्भक औषधि देनी चाहिये, जैसे, चूने का पानी, बिल्व का चूर्ण अथवा निम्न योग—

१—मजीठ, कूठा-छाल और लोध्र, इन तीनों को पीसकर काढ़ा करना चाहिये।

२—आम और जामुन दोनों की छालों का काढ़ा पीने से लाभ होता है।

३—खीवेरादि क्वाथ उत्तम है।

इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि दवाइयाँ शीत, संग्राही हों, तेज और उष्ण दवाइयाँ अतिसार को तो आराम कर देंगी, परन्तु रक्त में उष्णता उत्पन्न करके शिशु को हानि पहुँचायेंगी।

लार-स्राव—कई बार किसी-किसी स्त्री के मुँह से दिन भर में १॥-२ सेर लार गिरती है। इससे वह तङ्ग आजाती है। इसके लिये साधारणतः मृदु विरेचन देने से और हल्का-सुपच भोजन करने से आराम हो जाता है। यदि इससे भी लाभ न हो, तो स्तम्भक औषधियों के गरारे करवाने चाहिये। जैसे—पंचवल्कल क्वाथ, फिटकिरी के गरारे अथवा कीकर की छाल के गरारे कराने चाहियें। रात्रि को भोजन बहुत देर से नहीं करने देना चाहिये।

पेशाब में सफेदी जाना—कई स्त्रियों में मूत्र के अन्दर धातु (एल्ब्युमन) जाने लगती है। प्रायः थोड़ी मात्रा में सब स्त्रियों को सातवें मास के पीछे जाती है। इसका कारण वृक्क के ऊपर बढ़ते हुए गर्भ का दबाव है। परन्तु जब यह अधिक मात्रा में जाने लगता है (जिसकी निशानी आँखों पर, योनि-प्रदेश पर, पाँव पर सूजन होना है), तो विष का चिन्ह होता है। इसलिये—

१—आवश्यक है कि समय-समय पर मूत्र की परीक्षा करवाते जाना चाहिये।

२—यदि थोड़ी मात्रा में हो, तो गर्भिणी को चाहिये कि मृदु विरेचक का इस्तेमाल करती रहे।

३—पानी यथेच्छ पीना चाहिये, विशेषतः जौ का सत्तू या यवोदक। स्नान गरम पानी में करना चाहिये।

४—भोजन हल्का और सुपच लेना चाहिये। दूध यथेच्छ पीना चाहिये।

शिर-दर्द—कई बार गर्भवती स्त्री को शिर-दर्द इतने जोर का होता है कि उसको नींद नहीं आती। इसके लिये भोजन की मात्रा कम करनी चाहिये। विरेचन देना चाहिये। नित्य-प्रति स्नान, हल्का व्यायाम और यथेच्छ पानी बरतना चाहिये।

भग-कण्डू—कई स्त्रियों के योनि-प्रदेश में कण्डू आरम्भ हो जाती है। इसके लिये स्थान को पूर्णतः कृमि-नाशक साबुन या घोलों से

धोना चाहिये। अथवा त्रिफला या पंचवल्कल काढ़े से साफ करना चाहिये।

दन्त-शूल—किसी समय दाँत में तीव्र दर्द उत्पन्न हो जाय, उस समय दाँत को कभी भी नहीं उखड़ना चाहिये; बल्कि किसी योग्य चिकित्सक की सलाह लेनी चाहिये।

मिट्टी खाने की आदत—प्राय: स्त्रियों में चिकनी मिट्टी या चूल्हे की राख खाने की आदत होती है। इस मिट्टी के खाने से या अधिक खट्टी वस्तु के खाने से गर्भ और गर्भिणी दोनों को हानि होती है। इसलिये इस आदत को रोकना उत्तम है। यदि यह आदत न छूटे, तो वंशलोचन थोड़ा-सा दिया जा सकता है।

निद्रा-नाश—गर्भिणी स्त्री प्राय: नींद न आने की शिकायत करती है। इसका मुख्य कारण यह है कि वह दिन में जरा भी मेहनत न करके पड़ी रहती है। वह खाना अधिक खाती है, जो अपचन उत्पन्न करता है। इसके लिये भोजन सुपच, हलका रखना चाहिये। दिन में व्यायाम तथा खुली वायु में सोना, स्नान उत्तम है। मलबन्ध हो, तो उसकी चिकित्सा करनी चाहिये। चाय और कॉफी का उपयोग यथासम्भव कम करना चाहिये।

ऋतुस्राव—साधारणत: गर्भ-धृति होने पर ऋतु-दर्शन नहीं होता। परन्तु कई बार यह थोड़ी-थोड़ी मात्रा में ऋतुकाल के दिनों में आता रहता है। उस समय यह चूकर आता है। इसके लिये कोई विशेष औषधि की आवश्यकता नहीं होती। गर्भ-कालीन साधारण आहार-विहार का नियमित रीति से पालन करना पर्याप्त है। ऋतुकाल के दिनों में पूर्णत: आराम करना चाहिये। हल्की, सुपच खुराक लेनी चाहिये। परिश्रम से बचना चाहिये।

बहुमूत्रता—गर्भवती स्त्री को बार-बार मूत्र-प्रवाहण की इच्छा होती है, यह एक स्वाभाविक बात है। इसलिये इसकी विशेष चिन्ता नहीं करनी चाहिये।

श्वेत-प्रदर—कई बार गर्भवती स्त्री की योनि से श्वेत पानी झरता है। यह रोग का चिन्ह है। इसका कारण मुख्यत: योनि-प्रदेश में विक्षोभ का होना है। यह विक्षोभ चाहे गर्भ-धृति होने से पहले का हो अथवा पीछे का हो, इसके लिये स्तम्भक औषधियों के काढ़े से योनि-प्रक्षालन करना चाहिये।

पंचवल्कल-क्वाथ में भिगोया हुआ कपड़ा योनि में रखना चाहिये। सम्भोग से बचना चाहिये।

रक्त-स्राव—यह रक्त-स्राव दो प्रकार का है—१—गर्भाशय से होनेवाला और २—गर्भाशय के अतिरिक्त अन्य प्रदेशों में; जैसे—नाक, मुख आदि से।

गर्भाशय से होनेवाले रक्त-स्राव—यदि यह अधिक मात्रा में हो, तो भयानक है। उस समय उचित है कि किसी योग्य धात्री या चिकित्सक की सलाह ली जाय। साधारणत: रक्त-स्राव को रोकने के लिये—

१—पूर्ण विश्राम करना चाहिये, बिस्तर के पायंत ज़रा ऊँचे कर देने चाहिये। योनि और योनि-प्रदेश में भीगा हुआ शीतल कपड़ा रखना चाहिये। खाने के लिये द्रव-भोजन के सिवा और कुछ नहीं देना चाहिये।

२—मुलहठी, काकोली, शतावरी, देवदारु, मजीठ, सारिवा, गोखरू, पखाख आदि प्राप्य शीत वस्तुओं का कषाय देना चाहिये।

३—कबूतर की विष्ठा को चावलों के धोवन के साथ देना चाहिये।

४—पेड़ू पर कर्दम या कुम्हार की चिकनी मिट्टी का लेप करना चाहिये।

नाक आदि से यदि रक्त-स्राव हो, तो शीत उपचार करना चाहिये। भोजन द्रव करना चाहिये।

गर्भिणी के सेवन करने योग्य गर्भस्थापन-औषधियाँ—गिलोय, ब्राह्मी, विदारी, दूर्वा, आँवला, मुलहठी, लक्ष्मणी, नागकेशर आदि। इनको दूध में उबालकर पीना चाहिये, अथवा इनसे बनाया हुआ घी थोड़ा खाना चाहिये। इससे गर्भिणी और गर्भ दोनों का पोषण होता है।

नवम मास में ध्यान रखने योग्य बातें—

१—आँवला, मुलहठी आदि मधुर और वातहर औषधियों से बने तैल में उत्तम रुई का फाहा भिगोकर योनि में रखना चाहिये। इससे योनि-मार्ग और गर्भ-स्थान चिकना रहता है, वायु का अनुलोमन होता है। प्रसव-काल में कष्ट नहीं होता।

२—मल और मूत्र में कब्जियत नहीं रहने देना चाहिये। एरण्ड-तैल

लेते रहना चाहिये। प्रसव के दिन एरण्ड-तैल लेकर बिस्तर पर लेट जाना चाहिये।

३—स्तनों के चूचकों को धोकर साफ़ रखना चाहिये।

४—अनुभवी और वृद्ध स्त्रियों के पास बैठना चाहिये। उनसे बातें करना चाहिये।

५—पर्यटन (घूमना-फिरना) नहीं करना चाहिये।

६—झूठी दर्द उठने पर एकदम चिल्लाना नहीं चाहिये।

प्रसव

प्रसव—उस अवस्था का नाम है, जबकि शिशु गर्भाशय से बाहर आकर अपना जीवन स्वतन्त्र रूप से व्यतीत करने लगता है। यदि छठे मास से पूर्व शिशु बाहर आजाता है, तो इसका नाम गर्भस्राव या 'मिसकैरेज' है। और यदि पूरे मास तक गर्भ बाहर हो जाता है, तो उसको गर्भपात कहते हैं। यदि ६ से ९ मास के बीच में बाहर आजाता है, तो इसका नाम पूर्व-कालीन प्रसव है। प्रसव को साधारणतः दो भागों में विभक्त कर रक्खा है।

(१) स्वाभाविक प्रसव—जिसमें गर्भिणी को किसी प्रकार की विशेष पीड़ा नहीं होती, चूँकि यह एक स्वाभाविक क्रिया है, जिस प्रकार मलमूत्र का त्याग करना।

(२) अस्वाभाविक प्रसव—जिसमें कठिनता से तथा अन्य बाह्य-साधनों के द्वारा प्रसव कराया जाय।

प्रसूतिका-गृह—अपने देश में प्रसूतिका-गृह सबसे अन्धकारमय और मैला घर चुना जाता है। सर्दियों में उसमें कोयलों की धधकती अंगीठी भी रक्खी जाती है। सारा गन्दा सामान इकट्ठा किया जाता है। यह सब अवस्थायें माता तथा नवजात शिशु के लिये हानिकारक सिद्ध होती हैं। साधारणतः इस कार्य के लिये घर बड़ा प्रकाश-युक्त और स्वच्छ वायुवाला चुनना चाहिये। आवश्यक और उपयोगी सामान के सिवा सब सामान बाहर कर देना चाहिये। घर का दरवाज़ा पूर्व या उत्तर दिशा में रखना

चाहिये। घर इस प्रकार का होना चाहिये कि प्रत्येक ऋतु में सुखकर हो सके। सब आवश्यक सामग्री उसमें रखनी चाहिये।

सूतिका-गृह में तैयार रखने योग्य वस्तुयें—

१—बिस्तर के लिये दो-तीन वाटर प्रूफ (जो पानी पड़ने से गीले न हो जायँ) रखना चाहिये। यदि इस प्रकार का बिस्तर न मिले, तो नरम, कोमल वस्त्र, नया गुद्द, कम्बल, श्वेत चद्दर रखना चाहिये। मैला, दुर्गन्धित वस्त्र बिलकुल वहाँ पर नहीं आने देना चाहिये।

२—दो चौड़ी, लम्बी पट्टियाँ, पेडू और पेट पर बाँधने के लिये।

३—दो चार अँगौछे।

४—शुद्ध रुई किसी जन्तुघ्न घोल में उबाली हुई।

५—उत्तम धारवाली कैंची।

६—हाथ आदि धोने के लिये साबुन।

७—पानी की चिलमची, डोल, ताम्बलोट आदि।

८—लाइजोल आदि कृमिघ्न औषधियाँ।

९—सुख-प्रसवकारक औषधियाँ, जैसे—साँप की केंचुल, वछनाग, एरण्ड-पत्र आदि।

१०—वातघ्न-तैल, जैसे—बला-तैल, प्रसारणी तैल आदि।

११—द्राक्षासव, कुण्डी, एपिकाक आदि, देवदार्व्यादि क्वाथ आदि औषधियाँ।

१२—पलँग।

१३—दो-चार पत्थर।

बच्चे के लिये तैयार रखने योग्य वस्तुयें—

१—दो, तीन, चार गरम फलालैन के कपड़े।

२—छोटा-सा पलँग और उसकी गद्दी।

३—बच्चों की आँख धोने के लिये बहुत ही हल्का बोरिक लोशन और आधा कास्टिक लोशन।

४—शुद्ध रुई आँखों को धोने के लिये।

५—कृमिघ्न वस्तुओं में उबाला हुआ सूत का धागा नाभि बाँधने के लिये।

प्रसव के लक्षण—

१—प्रसव होने से दो-तीन दिन पूर्व पेट में हल्कापन मालूम होता है। उदर नीचे की ओर, सामने उतर आता है, मूत्र-प्रवाहण की इच्छा बार-बार होती है।

२—योनि में चिकना स्राव आने लगता है, जिससे योनि गीली रहती है।

३—उल्टी अथवा खाली उबकाई आती है।

४—उदर, हृदय, वंक्षण, वस्ति में दर्द होता है।

बिस्तर—प्रसवकालीन लक्षण उपस्थित होने पर बिस्तर तैयार करना चाहिये। एक कठोर गद्दा बिछाकर, इसके ऊपर श्वेत चद्दर बिछा देना चाहिये। चद्दर के ऊपर चार-पाँच तहें करके कम्बल बिछा देना चाहिये। इसके ऊपर फिर चद्दर बिछा देना चाहिये। यदि सम्भव हो, तो कम्बल के नीचे वाटर प्रूफ कपड़ा बिछाना चाहिये। प्रसव होने के पीछे कम्बल आदि वस्तुयें हटाने पर बिस्तर सूखा हुआ मिल सकता है। एक लम्बा अँगौछा पायंत पर बाँध देना चाहिये। इस अँगौछे के सहारे प्रसूता को आराम मिल जायगा। इसको पकड़कर वह प्रवाहण के लिये जोर लगा सकेगी, दर्दों के समय इसको पकड़कर विश्राम ले सकेगी।

गर्भिणी के वस्त्र—इस समय इस प्रकार के वस्त्र होने चाहियें, जो सुगमता से हटाये जा सकें। उत्तम यही है कि कोई वस्त्र शरीर पर न रक्खा जाय, सिवा एक चद्दर के। रात की पोशाक भी काम दे सकती है, जबकि इसको कोष्ठ पर लपेट दिया जाय, जिससे खराब न हो।

यदि छः घण्टों के बीच में कोई मल-त्याग न हुआ हो, तो एनिमा दे देना चाहिये। उत्तम है कि प्रसव के दिन एरण्ड-तैल दे दिया जाय। आँतों के स्वच्छ होने से गर्भाशय की क्रिया बहुत सरल हो जाती है।

प्रसव का प्रारम्भ दर्दों से प्रारम्भ होता है, जो उदर से आरम्भ होकर कटि, नितम्ब, वंक्षण और योनि में आने लगता है। इस समय योनि से पानी भी आने लगता है। इस समय गर्भिणी को चाहिये कि वह बैठ जाय, या घूमना आरम्भ करे, जिससे प्रसव में सहायता पहुँचे। यदि जरूरत हो, तो मल और मूत्र का त्याग कर लेना चाहिये। ज्यों-ज्यों दर्द का वेग बढ़ता जायगा, त्यों-त्यों दर्द के बीच का अन्तर कम होता जायगा।

स्थिति—प्रसव करने के समय किस स्थिति में रहना चाहिये, इसके लिये मत-भेद है। फ्रांस में स्त्रियाँ चित्त लेटकर बच्चा जनती हैं। किसी देश में बैठकर जनती हैं, और किसी देश में घुटनों के ऊपर हाथों का ज़ोर देकर, आसन से बैठकर जनती हैं। किसी देश में वाम-पार्श्व में लेटकर पाँव को पेट पर मोड़कर, जंघाओं में तकिया रखकर जनती हैं, और कोई दाहिने पार्श्व में लेटकर जनती हैं।

प्रसव-क्रिया—सम्पूर्ण प्रसव-क्रिया को तीन भागों में विभक्त कर रक्खा है। जैसे—

१—दर्द आरम्भ होने से लेकर गर्भाशय के अन्तः-मुख के खुलने तक।

२—गर्भाशय के अन्तः-मुख के खुलने से लेकर शिशु के बाहर आने तक।

३—शिशु के बाहर आने से लेकर कमल के गिरने तक।

प्रथमावस्था—इस अवस्था में प्रायः झूठा दर्द उत्पन्न होता है, अथवा दर्द इस प्रकार का होता है, जो ज़रा मन की दृढ़ता से सहा जा सकता है। इसलिये इस अवस्था में बिस्तर पर न लेटकर घूमना-फिरना चाहिये। जब दर्द बढ़ने लगे, तब गर्भिणी को चाहिये कि वाम-पार्श्व पर बिस्तर के किनारे पर इस प्रकार से लेटे कि उसके नितम्ब बिस्तर के किनारे पर आजाय। घुटने पेट पर मुड़ जायँ, दोनों घुटनों में तकिया दबा लेना चाहिये। अथवा पीठ के भार लेटकर दोनों घुटनों को पेट पर मोड़ लेना चाहिये। जब तीव्र दर्द आरम्भ हो जाय, तब गर्भिणी को चाहिये कि वह श्वास को रोक ले, और पाँवों को पायंत पर बँधे तख्ते के साथ या पायंत की ओर बैठे मनुष्य की ओर तान दे, और हाथों से पायंत पर बँधे अँगौछे को खींचना चाहिये। इस तरह करने से मांस-पेशियों को सहायता पहुँचेगी।

यदि गर्भाशय का अन्तः-मुख खुल जाय और कलायें न फटें, तो धात्री को चाहिये कि उनको जन्तुघ्न कैंची से फाड़ दे, जिससे गर्भोदक बह जाय। कई बार बच्चा इस जरायु में लिपटा हुआ ही बाहर आता है। उस समय प्रसव कठिन और दुःखदायी होता है। जब स्वाभाविक दर्द उठ रहा हो, तभी गर्भिणी को बल-प्रयोग (कींचना) करना चाहिये।

द्वितीयावस्था—कलाओं के फटने पर और गर्भोदक के बाहर

आने से दर्द कुछ समय के लिये रुक-सा जाता है, परन्तु फिर थोड़े समय में जोर से होने लगता है। इस बार के दर्द का वेग बहुत तीव्र होता जाता है और समय घटता जाता है। अन्त में एक तीव्र आह-भरी वेदना के साथ गर्भ का शिर योनि-मुख में आजाता है। इस समय फिर दर्द रुक जाता है, जिससे गर्भिणी को क्षणिक विश्राम मिल जाता है। इसके पश्चात् फिर दर्द आरम्भ होता है, और शिर योनि-मुख से निकलकर सीवन की ओर आजाता है। शिर के पीछे स्कन्ध और धड़ तथा अन्त में पाँव निकल आते हैं। इस समय हाथ रखकर सीवन, गुदा और योनि के बीच के स्थान को बचाना चाहिये। प्राय: १०० प्रसवों में से ९५ प्रसवों में शिर प्रथम आता है। इसका मुख्य कारण इसका गुरुत्व है।

तीसरी अवस्था—गर्भ के आने के पीछे दर्द रुक जाता है। गर्भाशय नीचे की ओर संकुचित होने लगता है। इस संकोच के कारण गर्भाशय में लगा हुआ कमल पृथक् हो जाता है, जो एक तीव्र संकोच के कारण गर्भाशय से बाहर फेंक दिया जाता है। साधारणत: यह क्रिया बच्चे के बाहर आने के १० से २० मिनट के बीच में बाहर आजाती है। कई बार देरी भी हो जाती है। यदि देरी हो जाय, तो इसको खींचना नहीं चाहिये। बल्कि—

१—अरगट लिक्विड १५ बूँद, टिंचर ओपाई ३ बूँद के साथ देना चाहिये।

२—साँप की केंचुल का धुँवा योनि में देना चाहिये।

३—बछनाग हाथ, पाँव, पेड़ू और योनि पर लगाना चाहिये।

४—गले में अँगुली से खारिश करनी चाहिये।

५—गर्भाशय को हाथ से पेड़ू की ओर दबाना चाहिये।

नाल का काटना—जबतक नाल में धड़कन दीखती रहे, तबतक उसको नहीं बाँधना चाहिये। धड़कन बन्द होने पर नाभि से ३ अंगुल ऊपर एक बन्द लगाना चाहिये, और दूसरा बन्द नाभि से १॥ अंगुल ऊपर। इन दोनों के बीच में से नाभि को तेज चाकू से काट देना चाहिये। यदि नाल ठीक प्रकार से काटी जायगी, तो किसी प्रकार का रक्त-स्राव नहीं होगा।

प्रसव-काल में धात्री का कर्तव्य—सबसे प्रथम उसका कर्त्तव्य

है कि सीवन की रक्षा करे। दूसरा यह कि शिशु उत्पन्न होने पर उसके श्वास, प्रश्वास का ध्यान रक्खे। जिस समय शिशु उत्पन्न होता है, वह रोता है। रोने से उसके फेफड़े काम करने लगते हैं। उसका पहला खास काम अन्तः-श्वास होता है। यदि उसका मुँह प्रथम साफ़ नहीं किया जायगा, तो बलगम अन्दर चली जायगी। इसलिये सबसे प्रथम उसके मुँह आदि को रुई के फाहे से साफ़ कर देना चाहिये। तीसरा कार्य शिशु के प्रसव के पीछे गर्भाशय की परीक्षा है। जबतक गर्भाशय पेडू में आकर एक कठोर गेंद की भाँति अनुभव न हो, तबतक उसको अपने हाथों के साधारण दबाव से दबाये रखना चाहिये। यदि गर्भाशय संकुचित नहीं होगा, तो तीव्र रक्त-स्राव होने का भय है। चतुर्थ काम नाल का छेदन करना है।

प्रसव-क्रिया के समय—चाय, दूध, ठण्डा या गरम पानी दिया जा सकता है। किसी भी प्रकार का ठोस भोजन हानिकारक होता है। यदि दर्द के समय गर्भिणी सो जाय, तो उसको जगाना अच्छा नहीं।

साधारणतः प्रसव में ६ से १२ घण्टे लगते हैं; परन्तु प्रथम बार गर्भ-धारण करनेवाली स्त्रियों में बहुत समय लग जाता है। कई बार प्रसव-क्रिया झूठे दर्दों के कारण कई दिन और कई घण्टे ले लेती है। इस प्रकार का दर्द पेट में मालूम होता है, पीठ में नहीं। झूठे दर्द प्रायः आँतों के विक्षोभ से होते हैं, जो एरण्ड-तैल या मृदु विरेचन से सुगमता से हटाये जा सकते हैं।

प्रसूता की देख-भाल—१—बच्चा जन्मने के पीछे माँ की देख-भाल विशेष-रूप से करने की आवश्यकता है। उसे पूर्ण विश्राम देना चाहिये। जन्मने के पीछे दो-चार घण्टे बिना हिले-जुले पार्श्व के भार सोते रहना चाहिये। प्रथम दो-तीन दिन तक विशेष आराम की आवश्यकता है।

२—प्रसूति के पीछे योनि से से १०-१२ दिन तक रक्त तथा अन्य प्रवाही पदार्थ बाहर आता रहता है। यदि पूर्णतः स्वच्छता का ध्यान न रक्खा गया, तो इसमें से बहुत दुर्गन्धि आती है। इसमें दुर्गन्धि का होना इस बात का चिन्ह है कि प्रसूता भय से खाली नहीं है। जन्तु-नाशक घोल में भिगी हुई रुई का फाहा योनि में रखना चाहिये और समय-समय पर बदलते रहना चाहिये।

३—पेट के ऊपर तैयार रक्खी हुई पट्टियाँ बाँध देनी चाहिये, जिससे

वायु कुपित होकर पेट को फुला न दे। अपने देश में पेट पर पट्टी बाँधने की प्रथा नहीं; परन्तु चलानी चाहिये।

४—प्रसव के पीछे साधारणतः दो-एक दिन प्रसूता को मल-त्याग नहीं होता। इसके लिये तीसरे या चौथे दिन एरण्ड-तैल देना चाहिये, जिससे पेट हलका हो जाय।

५—शरीर पर वातघ्न तैल का मर्दन करना चाहिये। भूख लगी हो, तो दूध में पंचकोल (सोंठ, मिर्च, पिप्पली, पिप्पली-मूल, चित्रक) मिलाकर पीना चाहिये, अथवा जौ की दलिया या अन्य सुपच वस्तु, पुष्टिकारक भोजन देना चाहिये।

६—खट्टा या भारी तथा वायुकारक भोजन नहीं देना चाहिये।

७—गरम करके ठण्डा किया हुआ पानी अथवा सुवा का पानी पीना चाहिये। सुवा का उपयोग खाने में, पीने में, धूनी देने में विशेष-रूप से करना चाहिये।

८—प्रसूता को पूर्ण विश्राम देना चाहिये। पति या अन्य आवश्यक आदमियों के सिवा और किसीको ५-६ दिन तक घर में नहीं जाने देना चाहिये।

९—यदि प्रसूता थक गई हो, तो द्राक्षासव, चाय आदि देकर उसको सुला देना चाहिये।

१०—प्रसव के ६ घंटे पीछे तक मूत्र-प्रवाहण होना चाहिये, और यदि न हो, तो पेड़ू पर सेंक करना चाहिये। यवक्षार को गरम पानी से देना उत्तम है।

११—साधारणतः प्रसव के ३६ या ४८ घण्टे के पश्चात् मल-त्याग हो जाता है। यदि न हो, तो एरंड-तैल या सनाय की चाय देना चाहिये। यदि आँतों का निचला भाग अवरुद्ध हो, तो एनिमा देना चाहिये। और यदि माता बच्चे को दूध न पिलाती हो, तो विरेचन दिया जा सकता है।

१२—जबतक स्तनों में दूध न आये और ज्वर का समय बीत न जाय, तबतक माता को दूध या चाय देना चाहिये। इसके पीछे हलकी, शक्ति-वर्द्धक खुराक देनी चाहिये। जैसे—जौ का दलिया।

१३—स्राव की ओर अवश्य ध्यान रखना चाहिये। साधारणतः प्रसव के समाप्त होने के आध घण्टे के पीछे तक भी स्राव होता है।

बिस्तर से उठते समय या मूत्र-त्यागने के समय यह बढ़ जाता है। जबतक स्राव या दर्द बहुत न हो, किसी दवा की आवश्यकता नहीं है। आवश्यकतानुसार 'क्लोरल हाईड्रेट' को दे सकते हैं। प्रथम इसका रंग थोड़ा या बहुत लाल होता है, फिर पतला और पानी-जैसा; फिर रंग बदलकर हरा-पीला-सा हो जाता है, और अन्त में गँदले पानी की भाँति होकर बन्द हो जाता है। कइयों में थोड़े दिनों में बन्द हो जाता है, और निर्बल स्त्रियों में महीने तक चालू रहता है। योनि-मार्ग को दोनों समय साफ करना चाहिये। गर्भाशय को धोना नहीं चाहिये।

१४—माता को बारह दिन तक बिस्तर पर रहना चाहिये। उसके खराब कपड़ों को बदल देना चाहिये, जिनमें गर्भाशय के रुग्ण होने की सम्भावना हो। उसको एक मास तक बिस्तर पर रहना चाहिये।

१५—उसकी छाती का वस्त्र इस प्रकार का होना चाहिये, जो छाती और स्तनों को दबाये नहीं।

सुख-प्रसव करने के कुछ उपाय—

१—पिप्पली, बच, इनको जल के साथ पीसकर एरण्ड-तैल में मिलाकर नाभि पर लेप करने से सुख-पूर्वक प्रसव होता है।

२—बिजौरा नीबू की जड़, मुलहठी, इनको मधु के साथ पीसकर घी के साथ लेने से सुख-पूर्वक प्रसव होता है।

३—केश-वेष्ठित अँगुली से ग्रीवा के अन्दर घर्षण करना चाहिये।

४—पाठा, लाँगली, वासक, अपामार्ग इनमें से किसीकी जड़ पेषण करके योनि, भग पर लेप करना चाहिये।

५—वासक-मूल पेषण करके नाभि, वस्ति और योनि पर लेप करके, काँजी के साथ गृहधूम खाने से सुख-प्रसव होता है।

६—गर्भिणी के सिर पर स्नुही का दूध लगाने से मृत शिशु बाहर आजाता है।

७—कड़वी तुम्बी, साँप की केंचुल, सरसों इनको कटु तैल में मिलाकर धुवाँ देने से कमल बाहर आजाता है।

अस्वाभाविक प्रसव—

१—प्रसव का लम्बा और कठिन होना—यह कमजोर औरतों

में होता है, दर्द मन्द रहता है, अथवा पानी आने के पीछे मन्द पड़ जाता है। यदि चार घण्टे तक कोई भी दर्द न हो, तो चिकित्सक को बुलाना चाहिये। इस बीच में विश्राम और नींद लाने का यत्न करना चाहिये, पौष्टिक भोजन देना चाहिये।

२—गले में चारोंओर नाल का आना—यह प्राय: नहीं मिलता, प्राय: १२ केसों में १ बार देखने में आता है। जब यह होता है, तब ग्रीवा लम्बी होती है। ज़रा-से खिंचाव से ढीला करके इसमें से उसके कन्धे निकाल देने चाहियें। यदि नाल लम्बी हो, तो इसको बच्चे के सिर पर से फिसला देना चाहिये।

३—नितम्ब के भार उतरना—शिर न आकर कई बार नितम्ब नीचे आता है। यह प्राय: ६० केसों में १ होता है। इसका कारण गर्भाशय, वस्ति-गह्वर या गर्भ का विकार है, जिससे उसका सिर नीचे नहीं आता। उदाहरण के लिये, शिर का बड़ा होना, वस्ति का उत्थल या चौड़ा होना, गर्भोदक का अधिक होना, जिससे शिशु इसमें तैरता रहता है, और सिर ठीक तरह नहीं बैठ सकता।

चूँकि नितम्ब वस्ति-गह्वर के निचले भाग में उतने ठीक नहीं बैठते, जितना शिर, इसलिये कलायें प्राय: पहले फट जाती हैं और गर्भाशय का अन्त:-मुख पीछे खुलता है। नितम्ब आने की परीक्षा सुगमता से की जा सकती है। कलाओं के फटने से मल भी आता दिखाई पड़ सकता है। और उदर-परीक्षा से गर्भाशय के ऊपरी भाग में नितम्ब न मिलकर सिर का अनुभव होता है। सिर और नितम्ब में इतना अन्तर रहता है कि धड़ से ग्रीवा के द्वारा पृथक् किया जाता है। और नितम्ब में इस प्रकार का कोई भेद नहीं मिलता।

पाँव का अवतरण—यह प्राय: नितम्बोदक में होता है। एक या दोनों पाँव एक साथ पहले निकल आते हैं। यह प्राय: १०० प्रसवों में १ बार होता है। यह उद्यन माता के लिये सुरक्षित हो सकता है, परन्तु बच्चों के लिये नहीं, चूँकि इसमें नाल के ऊपर अवश्य थोड़ा या बहुत दबाव आता है। इस अवस्था में शीघ्र प्रसव कराने का कभी भी यत्न नहीं करना चाहिये; क्योंकि नितम्बों के द्वारा भग का विस्तार हो रहा होता है, जिससे सिर के निकलने में आराम रहता है। नितम्ब के निकलने के पीछे नाल की परीक्षा करनी

चाहिये। यदि नाल में स्पन्दन बन्द होगया हो, तो दर्द के समय स्कन्धों को खींचकर बाहर निकालने का यत्न करना चाहिये। पाँव के अँगूठों को, माता की पीठ को ओर घुमा देने से शिर के निकलने में बहुत सुगमता हो जाती है और जब नितम्ब बाहर आजायँ, यदि इस समय अँगूठे सामने की ओर घुमा दिये जायें और सहायक दोनों हाथों से नितम्बों को पकड़कर दूसरे दर्द के वेग में एक चक्कर दे दे, तो सुगमता से सब शरीर बाहर हो जाता है। यदि नाल में धड़कन हो, तो स्कन्धों को शीघ्र निकालने का यत्न करने की कोई आवश्यकता नहीं। परन्तु यदि धड़कन न प्रतीत हो, तो स्कन्धों को खींचकर शिर शीघ्र बाहर निकाल लेना चाहिये। जब शिर निकल आये, तब यदि नाल में स्पन्दन हो, तो उसे कुछ मिनटों तक माता से अलग नहीं करना चाहिये, जबतक कि वह चिल्लाये नहीं।

मुख का उदयन—शिर के उदयन को अपेक्षा कई बार मुख पहले निकल आता है। जब यह होता है, तब प्रसव लम्बा और कठिन हो जाता है। इसमें बच्चे को कम तकलीफ़ होती है, परन्तु उसके मुँह का आकार बदल जाता है, चेहरा सूज जाता है। इस प्रसव में हस्तक्षेप करने की ज़रूरत नहीं। शान्ति से इस बात की प्रतीक्षा करनी चाहिये।

हाथ का अवतरण—हाथ, कोहनी, स्कन्ध का अवतरण २३० प्रसवों में एक होता है। इस समय चिकित्सक की सहायता आवश्यक है।

युगल-प्रसव—यह ७० प्रसवों में एक होता है। उदयन प्रायः उल्टा होता है। यदि एक शिर के बल निकलता है, तो दूसरा नितम्ब के बल। इसी प्रकार यदि प्रथम प्रसव नितम्ब के रूप में होता है, तो दूसरा शिर के भार। एक बच्चे के निकलने पर दूसरे बच्चे की उपस्थिति सुगमता से जानी जा सकती है, क्योंकि गर्भाशय पूरा संकुचित नहीं होता। साधारणतः एक प्रसव के पीछे दूसरा बच्चा स्वयं सुगमता से बाहर आजाता है। कई बार कई घण्टे लग जाते हैं। इस अवस्था में गर्भिणी को चाहिये कि आराम करे और ठण्डी चाय या जौ का सत्तू पीना चाहिये। दूसरा प्रसव पहले प्रसव की अपेक्षा शीघ्र होता है। दूसरे बच्चे के प्रसव के पीछे तथा कमल निकलने के पीछे गर्भाशय संकोच की ओर ध्यान देना चाहिये। जबतक गर्भाशय कठोर गेंद जैसा अनुभव न हो, तबतक हाथ से दबाना चाहिये। और फिर पट्टी बाँध देनी चाहिये।

रक्त-स्राव—रक्त-स्राव प्रसव के पहले या पीछे हो सकता है। प्रसव के पहले जो रक्त-स्राव होता है, उसका मुख्य कारण यह है कि कमल गर्भाशय के मुख पर स्थित होता है। जब गर्भाशय फैलता है, तो कमल से रक्त-स्राव निकलता है। यह प्राय: ६ मास से पीछे होता है, और अधिकतर ८ वें से ९ वें मास में होता है। सब प्रकार के रक्त-स्रावों में गर्भिणी को पूर्ण विश्राम देना चाहिये। उसका कमरा हवादार होना चाहिये, उसका भोजन द्रव तथा शक्ति-वर्धक होना चाहिये। योनि-प्रदेश पर शीत परिसेक या पंच-वल्कल क्वाथ का परिसेक करना चाहिये। जब रक्त-स्राव अन्तिम मास में हो, तो चिकित्सक की सम्मति लेनी चाहिये।

प्रसव के पीछे जो रक्त-स्राव होता है, वह कमल के निकलने से पहले या पीछे होता है। यह प्रसव के कुछ घण्टे पीछे या कई दिन पीछे होता है। जबकि रक्तस्राव प्रसव के तुरन्त पीछे हो, तब इसका कारण गर्भाशय का मन्द संकोच है। कमल के निकलने के पीछे रक्त-स्राव का होना स्वाभाविक है। इस रक्त-स्राव से गर्भिणी को किसी प्रकार की कमजोरी नहीं आती। इस रक्त-स्राव की मात्रा ८ से १० औन्स होती है। यदि इस राशि से अधिक रक्त-स्राव हो, तो गर्भिणी मूर्च्छित हो जाती है। उसका शरीर पीला और ठण्डा हो जाता है। श्वास-काठिन्य आजाता है। गर्भाशय नर्म होता है। उसको पकड़कर दबाना चाहिये। आँतों के निचले भाग पर दबाव देने से गर्भाशय पर भी दबाव पड़ जाता है। ठण्डे पानी में भीगा हुआ वस्त्र भग-प्रदेश पर रखना चाहिये। बर्फ या ठण्डा पानी पीने को देना चाहिये। बच्चे को दूध पिलाना चाहिये। २ या ३ फीट की ऊँचाई से आँतों पर ठण्डा पानी गिराना चाहिये। यदि सम्भव हो, तो ठण्डे पानी की पिचकारी योनि-मार्ग में लगाना चाहिये। यदि सम्भव हो, तो २० ग्रेन एपिकेथाकना २० औन्स पानी के साथ देना चाहिये। किसी प्रकार की उत्तेजक औषधि नहीं देना चाहिये। रोगी को सीधा खड़ा नहीं करना चाहिये। लिक्विड एक्सट्रैक्ट ऑफ आर्ट १ ड्राम मात्रा में प्रत्येक ३ घण्टे के अन्तर से देना चाहिये।

जब रक्त-स्राव प्रसव के कुछ घण्टे या दिनों पीछे हो तो यह प्राय: कमल के कुछ भाग के अन्दर रहने से या रक्त का चकवा जम जाने से; जिससे पूर्ण संकोच नहीं होता अथवा भय के कारण होता है। इसके लिये शीत परिसेक तथा शीत पानी की वस्ति करनी चाहिये।

आक्षेप—प्रसव के पहले या पीछे आक्षेप होते हैं। सब कपड़े ढीले कर देने चाहिये। रोगी को ताज़ी, शुद्ध वायु पहुँचानी चाहिये। पानी के छींटे मुख पर छिड़कना चाहिये। दाँत कट न जायँ, इसलिये मुँह में एक नर्म लकड़ी फँसा देना चाहिये। यदि सिर गर्म हो, तो माथे पर ठंडा पानी रखना चाहिये।

सीवन का फटना—यह प्रायः प्रथम प्रसव में होता है। सिर के निकलते समय हाथ का सहारा देकर इसको बचाना चाहिये। यदि यह थोड़ा विदीर्ण हुआ होगा, तो स्वयं रोहण हो जायगा। केवल स्वच्छता ही का ध्यान रखना आवश्यक है। यदि विदीर्णता बहुत अधिक हो, तो गर्भिणी को बिस्तर पर रखकर उसकी टाँगों को मिलाकर रखना चाहिये। व्रण को रोज़ साफ़ करना चाहिये। जब यह गुदा तक विदीर्ण हो जाय, तो चिकित्सक की आवश्यकता होती है।

दूध-जन्य ज्वर—साधारण अवस्थाओं में १२ से १८ घण्टों के अन्दर दूध आने लगता है। परन्तु यदि रोगी को सर्दी लग जाय, तो कँपकपी होती है। त्वचा की गरमी रहती है, नब्ज़ तेज़ रहती है। दोनों स्तनों में या एक स्तन में सूजन तथा दर्द रहता है। प्रसव के पीछे जब कँपकपी रहे, उस समय रोगी को गरम बोतलों में रखना चाहिये। उसको गरम औषधियाँ मकरध्वज आदि देना चाहिये। एरण्ड-तैल-द्वारा आँतों को खुलाकर देना चाहिये। छाती पर गरम सेंक करना चाहिये। यदि स्तन शोथ-युक्त तथा कठोर हों, तो इनपर सैलड ऑयल मलना चाहिये। और शिशु को बार-बार स्तन पिलाना चाहिये। यदि स्तनों में विद्रधि बन जाय, तो ज्वर उत्पन्न हो जाता है। बहुत पसीना आता है। कई बार बिस्तरों के बहुत गरम होने या कमरों के बहुत अधिक गरम होने से ज्वर आजाता है।

सूतिका-ज्वर—यह बहुत ही खतरनाक ज्वर है, जो प्रसव के पीछे कभी-कभी हो जाता है। इसका कारण रक्त का दूषित हो जाना है, जो गर्भाशय में स्थित दूषित पदार्थ के विलयन होने से होता है। यदि गर्भिणी को प्रसव के पीछे कँपकपी होना बन्द हो जाय, उसको गरम एवं पसीना अनुभव हो तथा स्तनों की सूजन को आराम प्रतीत हो, तो इसे दूध-जन्य ज्वर समझना चाहिये। परन्तु जब नाड़ी का स्पन्दन एक मिनट में १२० से अधिक हो, पसीना आने पर भी आराम न प्रतीत हो, स्तन नर्म और छोटे हो जायँ,

स्राव थोड़ा या बन्द हो जाय, तो समझना चाहिये कि सम्भवतः सूतिका-ज्वर है। यदि अशक्ति हो, श्वास में काठिन्य हो तथा दूध का आना बन्द हो जाय, तो इस ज्वर का निश्चय कर लेना चाहिये। आँतों में दर्द तथा कठोरता का होना एक मुख्य लक्षण है। पित्त-जन्य वमन, प्यास, बहुत पसीना, श्वास में दुर्गन्धि, जिह्वा की मलिनता, चेहरा निस्तेज, अतिसार आदि लक्षण होते हैं। यदि उचित चिकित्सा न की गई, तो रक्त दूषित होकर "पाईयीमा" रोग उत्पन्न होता है। कभी-कभी एक या दो सन्धियाँ भी सूज जाती हैं। यह ज्वर यदि संक्रामक होता है, तो एक स्त्री से दूसरी में भी पहुँच सकता है।

इसमें सबसे प्रथम त्वचा और आँतों को क्रियाशील करना चाहिये। शरीर से विष को निकलने के ये दो मुख्य अवयव हैं। एरण्ड-तैल की वस्ति भी देना उत्तम है। मैगनेशियम सायट्रेट को पानी में घोलकर घूँट-घूँट करके पीने देना को चाहिये। योनि को जन्तुघ्न घोलों से धोना चाहिये। पेट पर अलसी की पुल्टिस बाँधनी चाहिये। कमरे में शुद्ध हवा आने देना चाहिये। भोजन में दूध देना चाहिये।

प्रसव के पीछे मलेरिया-ज्वर—दुग्ध-जन्य या सूतिका-ज्वर के अतिरिक्त गरम देशों में प्रसव के पीछे शीत लगकर भी ज्वर हो जाता है। इसके लिये सबसे उत्तम यह है कि शिशु उत्पन्न होने के पीछे क्युनीन दे दी जाय। उत्तम यह है कि क्युनीन और आटि को मिलाकर दिया जाय। यदि यह हो जाय, तो दूध को बन्द नहीं करना चाहिये। इस ज्वर में सूतिका-ज्वर की भाँति आँतों में दर्द न होगा। इस ज्वर की चिकित्सा साधारण ज्वर की भाँति करनी चाहिये।

सूतिका-जन्य उन्माद—प्रायः प्रसव के पीछे या दूध छुटाते समय, अथवा अधिक दिनों तक दूध पिलाने पर यह रोग मिलता है। इसका प्रारम्भ थोड़े-से ज्वर से या आक्षेपों से अथवा सूतिका-ज्वर से होता है। इसकी पहचान प्रायः हँसने, चिल्लाने, प्रलाप आदि लक्षणों से हो जाती है। कई बार शिशु को मार डालने की अभिरुचि भी देखी गई है। यदि रोग वंश-क्रमागत होगा, तो इसके अच्छा होने में समय लगेगा। शिशु को कृत्रिम दूध देना चाहिये। शक्ति-वर्धक औषधियाँ, पौष्टिक भोजन तथा चित्त को प्रसन्न रखने का यत्न करना चाहिये। आँतों को साफ़ करना चाहिये। यदि रोग बढ़ा हुआ हो, तो चिकित्सक की सम्मति लेनी चाहिये। रोगी को आत्मघात या दूसरे को

हानि पहुँचाने से बचाना चाहिये। क्योंकि इस रोग के आक्रमण की सम्भावना रहती है, इसलिये माता को चाहिये कि वह बच्चे को दूध न पिलायें।

गर्भपात या गर्भस्राव

गर्भपात से अभिप्राय यह है कि ३ मास से पूर्व डिम्ब का गर्भाशय से बाहर आना। कई बार यह पूरा बाहर नहीं आता, इसका कुछ भाग बाहर आजाता है। कई बार मृत डिम्ब बाहर आता है, और कई बार मर जाता है; परन्तु बाहर नहीं आता। कई बार थोड़ा-सा भाग पृथक् होता है, और शेष भाग वहीं लगा रहता है, जीता भी है।

कारण—गर्भपात बहुत साधारण है, प्रायः ५० प्रतिशतक विवाहित औरतों को एक या अधिक बार गर्भपात हुआ करता है। और प्रत्येक अवस्था में कारण का ढूँढ़ना कठिन होता है। प्रायः गर्भपात तीसरे महीने में और गर्भस्राव छठे मास में होता है। क्योंकि तीसरे महीने में एकदम से गर्भ के आकार की वृद्धि होती है, और छठे मास के पश्चात गर्भाशय का सिर नीचे आकर वस्ति-गह्वर में टिकने लगता है। साधारण कारण निम्न हैं—

१—रोग, जिनके कारण गर्भाशय की अन्तःकला को हानि पहुँचती है। जैसे, हृदय रोग, वृक्क, यकृत-रोग, संक्रमण-जन्य गर्भाशय-कला की शोथ, गर्भाशय-भ्रंश, गर्भाशय की दीवारों का मोटा होना, वस्ति-गह्वर के रोग, गठिया, मलबन्ध, उपदंश आदि।

२—चिरकालीन ज्वर, उदर-शूल।

३—पेट के ऊपर आघात, चोट या धक्का पहुँचने से भी गर्भपात हो जाता है। पाँव फिसलकर गिर जाने से भी यही परिणाम होता है।

४—अति मेहनत से, भारी वस्तु उठाने से, मल-त्याग के समय कींचने से, अधिक हँसने से, खाँसने से।

५—गुस्सा, हर्ष, दुःख आदि मानसिक अवस्था के कारण।

६—पाप-जन्य गर्भपात, जो जानकर औषधियों-द्वारा या अन्य उपाय से किया जाय।

लक्षण—शरीर में बेचैनी, अंगों में दर्द, जोड़ों में दुखाव, अङ्गों का टूटना, निर्बलता, प्रसव-कालीन-जैसे दर्दों का होना। यह दर्द यदि अन्तर से और

अनियमित हो, तब गर्भपात की इतनी आशंका नहीं होती, जितनी नियमित और अन्तर से होनेवाली दर्द में होती है। प्रसव-द्वार में रक्तस्राव, पीठ, कटि, पेट, जंघाओं में तीव्र-शूल होकर गर्भपात हो जाता है। किसी-किसीमें यह लक्षण तीव्र रूप में होते हैं, और किसी में कम। प्रायः प्रथम बार गर्भ धारण करनेवाली स्त्रियों में ये लक्षण तीव्र रूप में देखे जाते हैं। यदि गर्भाशय में दो बच्चे इकट्ठे हों, और उनका जरायु भी इकट्ठा हो, और एक बच्चा मर जाय, तो उसमें गर्भपात या गर्भस्राव के सब लक्षण दिखाई देते हैं, परन्तु बच्चा पूर्ण समय पर आयेगा। गर्भपात या गर्भस्राव जितना शीघ्र होगा, उतना ही रक्त अधिक पड़ेगा।

उपाय—यदि रक्त बहुत न आता हो, और दर्दों का वेग भी अभी बहुत न बढ़ा हो, तो योग्य चिकित्सा से गर्भपात रोका जा सकता है। इसके लिये गर्भिणी को एकदम शान्त, अन्धकारमय, हवादार घर में कोमल बिस्तर पर लेटा देना चाहिये। पायंत को ऊँचा कर देना चाहिये। योनि में शीत परिसेक या पंचवल्कल-क्वाथ का परिसेक करना चाहिये। इसीका फाहा योनि में रखना चाहिये। खाने को केवल दूध या फलों के रस को छोड़कर और कुछ ठोस भोजन नहीं देना चाहिये। मलबन्ध हो, तो एरण्ड-तैल देना चाहिये। मल और मूत्र भी लेटे-लेटे ही कराना चाहिये। स्तम्भक औषधि, जैसे क्लोरोडीन ३० बूँद अथवा लौडेनम १० से १५ बूँद एक औन्स पानी में देना चाहिये। जबतक दर्दों का वेग बिल्कुल शान्त न हो जाय, और गर्भपात का भय दूर न हो जाय, तबतक गर्भिणी को बिस्तर से नहीं उठने देना चाहिये। यदि रक्तस्राव के कारण स्त्री निर्बल प्रतीत हो, तो द्राक्षासव या ब्राण्डी उचित मात्रा में देनी चाहिये। जिन स्त्रियों में गर्भपात की अभिरुचि हो, अर्थात् बार-बार गर्भपात होता हो, उनको चाहिये कि वे एक साल तक गर्भ-धारण न करें। वे पति के पास न जायँ। गर्भपात को रोकने के लिये सबसे सरल और उत्तम उपाय यह है कि गर्भाशय को आराम देकर उसको पुष्ट किया जाय, जिससे वह गर्भ के बोझ को उठा सके। इसके लिये पौष्टिक औषधियाँ, विदारी, मुलहठी, अश्वगन्धा आदि खाना चाहिये। जिन स्त्रियों को तीसरे मास में गर्भपात की अभिरुचि हो, उनको इस मास में विशेषतः बिस्तर पर आराम करना चाहिये, हलकी खुराक खानी चाहिये। मलबन्ध का विशेष ध्यान रखना चाहिये।

सुवा-रोग

प्रसूति के पीछे या गर्भस्राव के पीछे जो रोग हो जाता है, उसका नाम सुवा-रोग है। इस रोग के मुख्य लक्षण ज्वर, कास, वमन, अतिसार, शूल, अरुचि इत्यादि हैं। प्रायः वात-प्राधान्य लक्षण होते हैं। कइयों को हाथ-पाँव की तलियों में दाह रहता है। मूत्र में दाह रहता है, मुँह पक जाता है, बहुत पसीना आता है, अर्थात् पित्त के लक्षण रहते हैं।

उपाय—१—देवदार्व्यादि-क्वाथ नवीन सुवा-रोग में विशेष उपयोगी है। २—दशमूलादि-क्वाथ प्रसूता की शिकायतों को दूर करता है। वायु के लक्षण हों, तो सौभाग्य-शुण्ठी-पाक देना चाहिये। पित्त के लक्षण होने पर विरेचन देकर स्त्रीरोगादि-क्वाथ देना चाहिये।

शुष्क गर्भ (अर्बुद)

लक्षण—गर्भ रहने के पीछे कुछ समय पश्चात् गर्भ के आकार में वृद्धि होनी रुक जाता है। माता को गर्भ का स्पन्दन जो पहले होता था, वह अब नहीं होता। यह अन्दर शुष्क होकर रक्तस्राव के साथ बाहर आजाता है। परन्तु कई बार ऐसा हो जाता है कि गर्भाशय के अन्दर मांस का अर्बुद बढ़ता जाता है, अथवा कई बार गर्भ नष्ट होकर इसके अस्तर मांस के टुकड़े की भाँति हो जाते हैं, अथवा इन अस्तरों के बीच में रक्तस्राव होने के कारण गर्भ का टुकड़ा बन जाता है। गर्भ की मृत्यु होने पर उसका पोषण इस मांस के टुकड़े को पहुँचता है, जिससे वह बढ़ता जाता है। इसके बढ़ने से पेट भी बढ़ता जाता है, इससे यह प्रतीत होता है कि गर्भ जीवित है। कई बार यह मांस का अर्बुद भी बढ़ता जाता है, और कुछ समय तक गर्भ भी बढ़ता है। परन्तु पीछे से यह अर्बुद उसकी वृद्धि को रोक देता है। अर्बुद की परीक्षा करने का काम कठिन है। अनुभवी धात्रियाँ या चिकित्सक इस बात का निर्णय कर सकते हैं।

गर्भ के मरने पर या शुष्क होने पर माता के चेहरे पर उदासी आ जाती है। उसकी नाड़ी कमजोर हो जाती है।

बाँझपन

सम्भोग के समय दर्द का होना—यह कई कारणों से होता है। उदाहरण के लिये—१—नवविवाहिता स्त्री में भय के कारण, अयोग्य विवाह से, अथवा २—योनि-द्वार के चारोंओर की मांस-पेशियों के संकोच के कारण (विशेषत: गुदोत्थापन पेशी के कारण), ३—रचना-सम्बन्धी विकार से ; यथा—योनि-द्वार और भग के छोटा होने से; भग, योनि-द्वार और योनि-मार्ग के शोथ के कारण। गर्भाशय-शोथ के कारण।

चिकित्सा—यदि तृतीय कारण हो, तो उसकी चिकित्सा करनी चाहिये। यदि छिद्र छोटा हो, तो उसे वैजलीन आदि से चिकना कर लेना चाहिये। योनि-छेद को काट देना चाहिये। यदि दर्द होने का भय हो, तो आधा से १ ग्रेन कोकीन की पैसरी योनि-द्वार में सम्भोग से १०-१५ मिनट पहले रख देना चाहिये।

यदि स्त्री हिस्टिरीया की अभिरुचि रखती हो, तो शामक औषधियाँ, पोटाशियम ब्रोमाइड और हाई सायस आदि देने चाहियें।

वन्ध्यत्व—इसके कारण दो भागों में विभक्त किये हुये हैं—

१—वह अवस्थायें, जिनके कारण शुक्राणु और डिम्ब का पारस्परिक संयोग नहीं होने पाता।

२—वह अवस्थायें, जिनके कारण संयोग होने पर आगे वृद्धि नहीं होती।

प्रथम अवस्थायें—१—आयु—साधारणत: यौवनावस्था से पूर्व गर्भ-धारण नहीं होता। साधारणत: १६ से २५ वर्ष की आयु में गर्भ-धृति विशेष-रूप से होती है; पीछे घटती जाती है।

चालीस साल की आयु के पीछे गर्भ का धारण करना स्त्री के लिये कठिन हो जाता है।

वन्ध्यत्व निश्चय करने के लिये निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिये—

१—वन्ध्यत्व का निश्चय विवाह के तीन साल पीछे करना चाहिये।

२—जब गर्भ-धृति होने की आशा शीघ्र हो, तो वन्ध्यत्व की सम्भावना शीघ्र की जा सकती है।

३—कभी-कभी अस्थायी वन्ध्यत्व हो सकता है। उदाहरण के लिये एक औरत दो-तीन बच्चे उत्पन्न करने के पीछे ३ या ४ साल तक और किसी बच्चे को जन्म नहीं दे सकती।

इन सबमें अपवाद हो सकता है। विवाह के दस और पन्द्रह साल पीछे भी बच्चों की उत्पत्ति देखी गई है।

डिम्ब की निर्बलता—यदि डिम्ब-कोष अपूर्ण हों, तो वन्ध्यत्व हो जाता है। इसी प्रकार यदि विवाह की आयु बीत जाय, तो डिम्ब-कोष क्षीण होने लगते हैं। इससे भी बाँझपन आ जाता है। डिम्ब-कोष के रोग, जैसे, अर्बुद, सिष्ट आदि भी वन्ध्यत्व पैदा कर देते हैं।

गर्भाशय की निर्बलता—जब गर्भाशय बहुत छोटा हो, मासिक-धर्म न होता हो, या दुर्गंधि-युक्त हो, तो वन्ध्यत्व निश्चित है। मासिक-धर्म में देरी होना या सर्वथा न आना पूर्ण वन्ध्यत्व का लक्षण है।

अपूर्ण सम्भोग—यह या तो योनि-द्वार के तंग होने से, अथवा योनि-छेद के तंग होने से होता है।

किसी प्रकार की रुकावट—चाहे वह योनि-द्वार में हो, या डिम्ब-प्रणालियों में हो, जिसके कारण शुक्राणु डिम्ब में न मिल सके। योनि-मार्ग का अवरोध प्रायः जन्म ही से होता है।

दुर्गन्धित स्राव—संक्रमण कीटाणु-जन्य और गनोरिया आदि का दुर्गन्धित स्राव शुक्राणु को नष्ट कर देता है। इसी प्रकार तीव्र कृमिनाशक औषधियाँ, उत्तर-वस्ति से योनि का धोना भी गर्भ-धृति को रोक देता है।

द्वितीयावस्था—जबकि गर्भ-धृति हो जाय, परन्तु गर्भ में वृद्धि न हो, इसका कारण मुख्य रूप से विरूपावस्था है, यथा गर्भाशक के बाहर डिम्ब-प्रणाली में शुक्राणु और डिम्ब का संयोग होना। दूसरा कारण गर्भाशय की रुग्णावस्था है, जिसके कारण गर्भपात हो जाता है।

वन्ध्यत्व की चिकित्सा—सबसे प्रथम चिकित्सक को यह देखना चाहिये कि वन्ध्यत्व का कारण दूर भी हो सकता है या नहीं। गर्भाशय और डिम्ब-कोष की स्थिति देखनी चाहिये। यदि वे अभी अपूर्ण हैं, तो चिकित्सा निष्फल है। अवरोध की चिकित्सा की जा सकती है। यथा योनि-द्वार का

परदा काटा जा सकता है, गर्भाशय-द्वार विस्तृत किया जा सकता है। गर्भाशय की ग्रीवा भी ठीक हो सकती है। गर्भाशय की शोथ की भी चिकित्सा की जा सकती है। नुकसान-दायक स्रावों की भी उचित चिकित्सा की जा सकती है।

शारीरिक कारणों के कारण जब बन्ध्यत्व हो, तो वह प्रायः औषधियों से ठीक नहीं होता। इसके लिये प्रायः आचरण-सम्बन्धी चिकित्सा सफल होती है। इस अवस्था में एक न्यायशील पति अच्छा चिकित्सक होता है, अपेक्षा एक हकीम या डाक्टर के।

गर्भोत्पादक कुछ औषधियाँ—

१—पुष्य नक्षत्र में लक्ष्मणा-श्वेत कण्टकारी का मूल पीसकर दूध के साथ लेने से, अथवा घृतकुमारी का मूल पीसकर घी के साथ ऋतु-स्नान के पीछे तीन दिन लेने से गर्भोत्पत्ति होती है।

२—अश्वगन्धा का क्वाथ करके घी के साथ लेने से गर्भ रहता है।

३—पिप्पली, सोंठ, नागकेशर, मिर्च इनको घी के साथ लेने से बन्ध्या के भी पुत्र उत्पन्न होता है।

४—स्वर्ण-भस्म, रजत-भस्म, ताम्र-भस्म प्रत्येक १ माशा २ तोले घृत के साथ सेवन करने से गर्भ-क्षेत्र शुद्ध हो जाता है।

५—बला, शर्करा, मुलहठी, अतिबला, बड़ की जटा, नागकेशर, इनको मधु में मिलाकर दूध के साथ लेने से पुत्र उत्पन्न होता है।

६—कुरण्ड-मूल, धातकी के फूल, वट की जटा, नील-कमल इनको पीने से गर्भ रहता है।

७—पलाश के पत्ते को दूध के साथ पीसकर पीने से वीर्यवान पुत्र उत्पन्न होता है।

८—नागकेशर का चूर्ण दूध के साथ पीने से अवश्य गर्भ-धारण होता है।

गर्भ-निरोध के उपाय—

१—पिप्पली, बिडंग, सुहागा, इनकी बराबर मात्रा ऋतु-काल में पीने से गर्भोत्पादक शक्ति नष्ट हो जाती है।

२—जपा के फूल को कांजी में पीसकर गुड़ के साथ खिलाने से गर्भ-धारण नहीं होता।

३—आमलकी, अर्जुनछाल, हरीतकी, इनका चूर्ण जल के साथ ऋतु-काल में सेवन करने से गर्भ नहीं रहता।

४—रसौत, हरीतकी, आमलकी, इनके चूर्ण को शीतल जल के साथ लेने से रजोनाश हो जाता है।

५—चूहे की मींगनी को पीसकर स्त्री के मूत्र-स्थान पर लगाने से गर्भ नहीं रहता।

योनि-रोग

आयुर्वेद-शास्त्र में २० प्रकार के योनि-रोग गिने हैं। मिथ्या आहार-विहार, दूषित रज या आर्त्तव, एवं पुरुष के दूषित वीर्य के कारण ये रोग होते हैं। इन रोगों के कारण योनि या योनि-मार्ग में दर्द रहता है। ऋतु कठिनता से आती है। सन्धियों में पीड़ा रहती है, सम्भोग में कष्ट अनुभव होता है। योनि-कन्द आदि रोगों के कारण गर्भाशय में गर्भ-धृति नहीं हो सकती।

भग के त्वचा-सम्बन्धी रोग—एरीथीमा, विसर्प, उपदंश, श्लीपद, भग-शोथ।

एरीथीमा—इसका कारण योनि-मार्ग का दुर्गन्धित या विक्षोभ उत्पन्न करनेवाला स्राव है। साथ ही स्थानिक अस्वच्छता भी है। इसके लिये आराम, स्वच्छता तथा जस्त का या और कोई सुखानेवाले चूर्ण का उपयोग प्रतिसारण में करना चाहिये।

विसर्प—यह शरीर के अन्य स्थानों की अपेक्षा भग-प्रदेश पर भी मिलता है। इसमें छोटी-छोटी फुन्सियाँ निकलती हैं। वह फटती हैं। उनका रस निकलकर और स्थान पर लगता है। वहाँ फिर फुन्सियाँ हो जाती हैं। फुन्सियों पर खुरण्ड जम जाता है, खाज होती है। इसका कारण आमवात, गठिया अथवा योनि-मार्ग से दुर्गन्धित स्राव का होना है। अथवा मूत्र का बूँद-बूँद करके भग-प्रदेश पर लगना है।

इसकी चिकित्सा के लिये हाइड्राजराई एमोनियेटम १ भाग और लैनोलीन ३२ भाग मिलाकर लगाना चाहिये। पानी बहुत आता हो, तो जस्त के लोशन का चूर्ण छिड़कना चाहिये। खाज बहुत हो, तो इक्थ्योल का मलहम लगाना चाहिये।

भग पर छोटी-छोटी फुन्सियाँ—इस रोग में छोटी-छोटी फुन्सियाँ समूह के रूप में भग-प्रदेश पर हो जाती हैं। इनमें कुछ सूजन भी रहती है। इनकी चिकित्सा विसर्प के समान है।

उपदंश—यह रोग "सैंकर" के रूप में होता है। रोगी को पूर्ण विश्राम देना चाहिये। पारद का प्रलेप लगाना चाहिये।

श्लीपद—इस रोग का कारण लसीका-ग्रन्थियों की चिरकालीन शोथ है। साथ में लसीका घुणालियों का विस्तार हो जाता है। त्वचा की रचना मोटी हो जाती है। लसीका-संस्थान में एक प्रकार का अवरोध हो जाता है। प्राय: वृहत् भगोष्ठ आक्रान्त होता है। भगशिश्निका और लघु भगोष्ठ प्राय: बचे रहते हैं। प्राय: यह रोग गरम प्रदेशों में होता है। इस रोग के साथ प्राय: करके रक्त में कृमि मिलता है।

भग-शोथ—इस रोग में भग की त्वचा में सूजन आ जाती है। इसका कारण नाड़ियों के छोरों का आक्रान्त होना है। प्रथम स्थानिक त्वचा गरम और लाल होती है। पीछे से त्वचा पीली हो जाती है और घसूँटने के निशान-से मालूम होते हैं। इसके लिये "लेडलोशन" या शीत परिसेक करना चाहिये।

कुरोसिस वैल्व—इस रोग में रोगी भग के विक्षोभ की शिकायत करता है। सम्भोग के समय बहुत दर्द होता है, साथ ही मूत्र-प्रवाहण में कठिनता होती है। पीला-सा स्राव आता है। यदि रोगी गरम बिस्तर पर सोये, तो दर्द बढ़ जाता है। स्वास्थ्य गिर जाता है, भूख कम हो जाती है। यह रोग प्राय: ४० साल के पीछे होता है, कारण का अभी पता नहीं।

इस रोग की चिकित्सा के लिये शीत एवं उड़नेवाले परिसेक बरतने चाहिये।

उदाहरण के लिये—बैलेडोना, ग्लेसरीन, अफीम या कोकीन अथवा लेडलोशन। साधारणत: १ औंस ग्लैसरीन, १० औंस हल्का एसिटिक एसिड और १:२० में बना कार्बोलिक एसिड का घोल उत्तम है।

भग-कण्डू—यह साधारणत: लक्षण है, जो निम्न कारणों से उत्पन्न होता है—

१—विक्षोभक स्राव, जैसे, मधु-मेह, मूत्राशय-शोथ, श्वेत-प्रदर।

२—भग-प्रदेश के रोग—शोथ, भग-प्रदेश में रक्त का संचित होना। विटप के बालों में रहनेवाली जूँ आदि। इसके लिये बालों को साफ करके मर्करी परक्लोराइड (१:१०००) के घोल से धोना चाहिये।

३—दूरवर्ती विक्षोभ—गुदा के कारण (जैसे, गुदा में कृमि, गुद-भ्रंश, गुदार्शस) गुदा की खुजली भी भग-प्रदेश में खाज उत्पन्न कर देती है।

मूत्राशय के कारण—बार-बार मूत्र-प्रवाहण करने से भी कण्डू हो जाती है। इसके लिये हाईसोमस और बैलेडोना का उपयोग करना चाहिये।

गर्भाशय के कारण—गर्भावस्था कई बार कण्डू उत्पन्न कर देती है।

चिकित्सा—कारण के अनुसार करनी चाहिये।

भग-प्रदेश पर आघात—यह प्राय: तीन कारणों से होता है—१—आकस्मिक, २—सम्भोग-जन्य, ३—प्रसव के समय।

आकस्मिक आघात—यह प्राय: बहुत कम होता है। यह या तो लात मारने से या गिरने से होता है। चूँकि इस प्रदेश में रक्त-वाहिनियाँ हैं, इसलिये रक्त-स्राव भी बहुत होता है। इसके लिये साधारण शीत-चिकित्सा पर्याप्त होती है। शोथ पर थोड़ा-थोड़ा सेंक भी करना चाहिये। दूर्वा को खूब बारीक पीसकर, शहद में मिलाकर लगाने से रक्त-स्राव बन्द हो जाता है।

सम्भोग-जन्य आघात—साधारणत: योनि-छेद के फटने पर थोड़ा-सा रक्त-स्राव होता है। परन्तु जब योनि-छेद ज़ोर से विदीर्ण होता है, तब यह योनि की पश्चिमीय भित्ति तक फट जाता है, जिससे बहुत रक्त-स्राव होता है। इसकी चिकित्सा के लिये सब जमे हुये रक्त को बाहर कर देना चाहिये। विदीर्ण प्रदेश को सी देना चाहिये। यदि रक्त चूता हो, तो इसको गद्दी या फाहे-द्वारा रोकना चाहिये।

प्रसवकालीन आघात—इसके साथ प्राय: सीवन भी विदीर्ण हो जाती है। प्राय: योनि की पश्चिमीय भित्ति फटती है। इसका कारण प्रसव-कालीन असावधानी है।

योनि के आघात—यह प्राय: अपूर्ण आयुवाली स्त्री के साथ बलात्कार करने पर मिलते हैं। ज़बर्दस्ती सम्भोग करने के कारण योनि में बहुत-से चीर आजाते हैं। इसका कारण योनि-मार्ग का तंग होना और शिश्न का दृढ़ होना है।

कई बार औरतें गर्भपात करने के लिये तेज औज़ार से स्वयं आघात कर लेती हैं, अथवा अपनी कामेच्छा को पूर्ण करने के लिये अनुचित वस्तुओं का उपयोग करने से आघात कर बैठती हैं।

चिकित्सा—रक्तावरोध का उपाय करना चाहिये। विदीर्ण प्रदेशों को सी देना चाहिये।

वाह्य वस्तु—छोटी लड़कियाँ अपनी उत्सुकता से या खेलते-खेलते पेंसिल, बटन, बीज, गुठली, पत्थर या पिन आदि अन्दर डाल देती हैं। जवान लड़कियाँ स्पंज, रुई आदि इसलिये डाल देती हैं, जिससे गर्भ-धारण न हो। इसको यथासम्भव निकाल देना चाहिये।

योनि-शोथ—योनि-शोथ के मुख्य दो कारण हैं—पहला आघात-जन्य और दूसरा संक्रमण-जन्य।

आघात-जन्य शोथ—वाह्य वस्तु के कारण, शल्य-कर्म के कारण, पैसरी आदि के रखने से, अनुचित सम्भोग से, गर्भाशय में दाहक औषधि लगाने के समय सावधानी न बरतने से शोथ हो जाता है।

संक्रमण-जन्य शोथ—गनोरिया, सैप्सिस या यक्ष्मा के कारण होता है।

शोथ के कारण और स्थानों की भाँति यह प्रदेश भी लाल, गरम, रक्त से परिपूर्ण हो जाता है। योनि-मार्ग से जो स्राव आता है, उसको श्वेत-प्रदर के नाम से पहचानते हैं। यह पानी-जैसा पतला होता है।

भेद—साधारणत: योनि-शोथ के चार भेद हैं। जैसे—

१. साधारण योनि-शोथ—यह प्राय: आघात-जन्य या बलात्कार (अनुचित रीति से किया गया सम्भोग) से होता है।

लक्षण—उष्णिमा, योनि में चुभता हुआ दर्द, श्वेत-प्रदर, मैथुन में दर्द और कभी-कभी वाह्य अवयवों में भी शोथ होता है। उपेक्षा करने से रोग बढ़ जाता है।

इसकी चिकित्सा करने से यह शीघ्र शान्त होजाता है। रोगी को बिस्तर पर आराम देना चाहिये। गरम परन्तु विक्षोभ न उत्पन्न करनेवाले लोशन, जैसे, लेड-लोशन, बोरिक-लोशन आदि बरतना चाहिये। सम्भोग से यथासम्भव बचना चाहिये।

२. भग-शोथ से मिश्रित योनि-शोथ (बच्चों में)—१—इसके मुख्यतः कई कारण हैं, जैसे; कमज़ोर और मैले रहनेवाले बालकों में धूल आदि से या यक्ष्मा के कारण हो जाता है। २—बलात्कार से, ३—गनोरिया से ग्रसित बच्चों के कपड़ों से एक दूसरे में फैल जाता है।

लक्षण—रोगी दर्द की शिकायत करता है, मूत्र गँदला या कण्डू पैदा करनेवाला होता है। कई बार यह भी देखा गया है कि 'थ्रेडवर्म' (एक प्रकार का धागे की तरह का कृमि) योनि में जाकर सूजन पैदा कर देता है। रोगी को मूत्र-प्रवाहण और सम्भोग में कष्ट होता है। योनि से स्राव होता है। योनि की दीवारें शोथ-युक्त, लाल और गरम होती हैं। दबाने से इनमें दर्द होता है। स्राव पीला या हरा होता है और बाह्य भागों पर बहता रहता है, यहाँ तक कि योनि पर भी आता है। यदि उचित चिकित्सा न की जाय, तो गर्भाशय भी आक्रान्त हो जाता है।

३. श्लैष्मिक कला के कारण योनि-मार्ग की शोथ—यह प्रायः किसी दाहक वस्तु के कारण या संक्रमण से हो जाता है। इसके लिये योनि को कृमिनाशक घोलों से धोना चाहिये। योनि को आयडोफार्म गौज से भर देना चाहिये।

आर्त्तव-सम्बन्धी रोग

इस शीर्षक के नीचे ऋतु-सम्बन्धी विकारों का वर्णन किया जायगा। जैसे—ऋतु का आना, कष्ट से आना, बहुत आना तथा अकाल में रक्त-स्राव एवं ऋतु का बन्द हो जाना है। साधारणतः यह कोई स्वयं रोग नहीं है, रोगी के लक्षण हैं। इनकी चिकित्सा में सफल होने के लिये आवश्यक है कि असली कारण का पता अवश्य लगाया जाय।

ऋतु का न आना—बहुत-से लेखकों के अनुसार यह रोग दो प्रकार का है, प्राइमरी और सेकन्डरी। इनको फिर चार भागों में विभक्त किया है। जैसे—

१—वह अवस्थायें, जब युवावस्था देर में आये।

२—पूर्ववर्त्ती और स्थिर ऋतु का न आना।

३—द्वितीय कारण से ऋतु का न आना।

४—ऋतु का रुक जाना।

इनमें चतुर्थ प्रकार की ऋतु का रुक जाना इस विभाग के अन्दर नहीं आता। क्योंकि इसका कारण कई बार योनि-छेद का द्वार बन्द रहना है। इसलिये ऋतु नहीं आता। अतः इस अवस्था को इस विभाग के अन्दर नहीं रखना चाहिये।

नष्टार्त्तव—इसका अर्थ यह है कि ऋतु-काल में ऋतु का न आना। प्राइमरी का अभिप्राय यह है कि जो कन्या युवती होगई है, और इस योग्य है कि इसमें ऋतु-दर्शन होना चाहिये, उसमें यदि ऋतु-दर्शन न हो, तो यह अवस्था समझनी चाहिये।

सेकन्डरी एमीनोरिया—इसका अभिप्राय यह है कि ऋतु का अस्थायी रूप से, गर्भ-धृति होने के समय में बन्द हो जाना है।

क्रीप्टो मेनोरिया—इसमें ऋतु तो होती है, परन्तु उत्पादक मार्ग के अवरोध के कारण इसका कुछ भाग अन्दर रुक जाता है।

प्राइमरी एमीनोरिया के कारण—(१) शरीर सम्बन्धी अवस्थायें, जैसे, रक्त की न्यूनता, पाण्डुता, क्षय आदि शरीर को निर्बल करनेवाले रोग, वामनापन भी इसका कारण है।

२—गर्भाशय और डिम्ब-कोष की दूषित रचना।

३—गर्भावस्था।

४—फलने का अभाव, शरीर-सम्बन्धी रोग के बिना, अथवा अन्तः उत्पादक अवयवों की अशुद्ध रचना के कारण।

यह बात स्मरण रखनी चाहिये कि ऋतु-दर्शन होने से पूर्व भी गर्भ-धृति हो सकती है।

१००० रोगियों में ऋतु-दर्शन आने का समय निम्न प्रकार से पाया गया है—

२८.८ प्रतिशतक लड़कियों में ऋतु-दर्शन १६ वर्ष की आयु से पूर्व नहीं मिला।

१३.७	"	"	"	१७	"	"	"
६.१	"	"	"	१८	"	"	"
३.३	"	"	"	१९	"	"	"
१.५	"	"	"	२०	"	"	"
०.९	"	"	"	२१	"	"	"
०.६	"	"	"	२२	"	"	"

यह स्मरण रखना चाहिये कि गरम देशों में ऋतुदर्शन १२-१३ वर्ष की आयु मे हो जाता है।

पूर्व-कथन—कारण की परीक्षा करते समय वस्ति-गह्वर, अंग-प्रदेशों के बालों की तथा स्तन आदि की परीक्षा करनी चाहिये।

चिकित्सा—रक्त की न्यूनता के लिये लोह, संखिया, कुचला या अन्य शक्ति-वर्धक औषधि देना चाहिये। बिना कारण निश्चय किये दवाई दे-देकर रोगी को थकावट नहीं देना चाहिये। रोगी को अलग छोड़कर उसका विवाह कर देना चाहिये। विवाहित जीवन से शीघ्र लाभ हो जाता है।

सेकन्डरी एमीनोरिया के कारण—

१—शरीर-सम्बन्धी अवस्थायें—

२—गर्भावस्था, देर तक दूध पिलाना।

३—शीत का लग जाना, जैसे, ऋतुकाल में पाँवों को गीला रखना।

४—मस्तिष्क के कुछ रोग।

५—मस्तिष्क का धक्का।

६—कुछ चिरकालीन विष यथा "मार्फोमेनिया" और ज्वर-जन्य विकार।

परीक्षा—रक्त की न्यूनता के कारण जब ऋतु-दर्शन नहीं होता, तब इसका विचित्र रूप होता है। अर्थात् रोगी का इतिहास बताता है कि ऋतु-दर्शन धीरे-धीरे बन्द हुआ है, सर्वथा बन्द होने से पहले यह गँदला हो जाता है। कई महीनों की या सालों की अनियमितता का इतिवृत्त होता है। रोगी का श्वास छोटा हो जाता है। वह जल्दी थक जाता है, ओष्ठ और नख

पीले हो जाते हैं। और यदि ऋतु-दर्शन में शीत लगा हो या ज्वर हो, तो उसका इतिहास रोगी से पूछा जा सकता है। डिप्थीरिया, चेचक, टाइफ़ाइड, स्कारलेट ज्वर आदि के कारण कई महीनों तक ऋतु-दर्शन नहीं होता। दूध पिलाने का प्रभाव ऋतुकाल पर भिन्न-भिन्न रूप में पड़ता है। कई अवस्थाओं में दूध पिलाने के कुछ दिनों बाद ऋतु-दर्शन होने लगता है, और कइयों में एक साल तक दूध पिलाने पर गर्भाशय में विकार हो जाता है, जिससे दूध घुटाने पर भी कुछ महीनों तक ऋतु-दर्शन नहीं होता। इस अवस्था में यह भी सम्भव है कि समय से पूर्व ऋतु का आना सर्वथा बन्द हो जाता है। मस्तिष्क के रोगों में ऋतु को बन्द करनेवाले कारण मस्तिष्क का अर्बुद, पागलपन हैं।

चिकित्सा—यदि सर्दी के कारण ऋतु बन्द हुआ हो, तो ऋतु-दर्शन के समय से पूर्व पाँव को गरम पानी में रखना चाहिये, नितम्ब स्नान लेना चाहिये, गरम पानी की उत्तर वस्ति लेनी चाहिये। शक्ति-वर्धक औषधि देनी चाहिये। आँतों को साफ़ करने के लिये तीव्र विरेचक देना चाहिये।

क्रीप्टोमेनोरिया—युवती होने के एक या दो साल बाद सबसे पहले इस रोग का अनुभव होता है। रोगी इस बात की शिकायत प्रतिमास नियत अन्तर से करता है कि उसको रक्त-स्राव होता प्रतीत होता है, परन्तु बाहर किसी प्रकार का ऋतु-दर्शन नहीं होता। उसकी दूसरी शिकायत यह होती है कि कोष्ठ का निचला भाग फूल रहा है, जो प्रतिमास बढ़ता जाता है, और महीने के बीच में कुछ घट-सा जाता है। आसपास के अवयवों पर दबाव पड़ता है। इसकी चिकित्सा के लिये चिकित्सक की सलाह लेनी चाहिये।

अत्यार्त्तव—इसका अर्थ यह है कि ऋतु-काल के दिनों में बहुत अधिक रक्त-स्राव होता है। किसीमें यह ३ दिन रहता है, और किसीमें ७ दिन तक रहता है।

अकाल में ऋतु—ऋतु-काल के बिना भी गर्भाशय से रक्त-स्राव होने का नाम अकाल में ऋतु है। प्रायः अत्यार्त्तव ही बढ़कर इस अवस्था को उत्पन्न कर देता है। इसलिये दोनों का विवेचन एक साथ करना अच्छा है।

यह स्मरण रखना चाहिये कि अत्यार्त्तव या अकाल में ऋतु-दर्शन ये कोई स्वतन्त्र रोग नहीं, बल्कि रोगों के लक्षण हैं। इसलिये चिकित्सा करने से पूर्व कारण का पता अवश्य लगाना चाहिये। इन दोनों में मुख्य भेद यह है कि अत्यार्त्तव का कारण शरीर-सम्बन्धी या रचना-सम्बन्धी कोई विकार होता है। और अकाल में ऋतु-दर्शन का कारण कोई रोग-जन्य विकार होता है।

आयु	अत्यार्त्तव	अकाल में ऋतु
२५ वर्ष से पूर्व का कारण	गर्भाशय की शोथ जो ऋतुकाल में शीत लगने से हो सकती है। गर्भाशय का भ्रंश	म्युकस पोलीपस
२५ वर्ष से ४० वर्ष की आयु में उत्पन्न कारण	गर्भाशय की शोथ-गर्भाशय में रक्त का संचय होना गर्भाशय भ्रंश किसी प्रकार का अर्बुद	म्युकस पोलीपस, गर्भाशय के विकार अर्बुद आदि गाँठ पड़ जाना
४० वर्ष की आयु के पीछे	किसी प्रकार का अर्बुद गर्भाशय शोथ, गर्भाशय में रक्त-संचय, गर्भाशय-भ्रंश	पूर्ववर्त्ती सब कारण

(१) **अत्यार्त्तव के कारण**—शरीर-सम्बन्धी अवस्थायें—परप्युरा, शरीर में रक्त की अधिकता, यकृत-शोथ, अधिक खाना या अधिक मद्य-पान, उष्ण ऋतु।

(२) **स्थानिक कारण**—गर्भाशय में रक्त का संचय होना या स्थान-भ्रंश, गर्भाशय की शोथ, प्रसव के कुछ पदार्थ का अन्दर रुक जाना, गर्भाशय में तन्तुओं का बनना, डिम्ब-प्रणाली का शोथ या अर्बुद।

(३) **अकाल में ऋतु**—स्थानिक कारण—प्रसव-कालीन किसी पदार्थ का अन्दर रुक जाना, गर्भाशय के बाहर रज और शुक्राणु का संयोग, गर्भावस्था से मिला हुआ रक्त-स्राव, गर्भाशय में नवीन रचना का होना (जैसे, अर्बुद आदि का)।

इस बात का स्मरण रखना चाहिये कि अकाल में ऋतु का कारण शरीर सम्बन्धी अवस्थायें नहीं हैं। इसका मुख्य कारण गर्भाशय-सम्बन्धी विकार ही है।

सुगमता के लिये इन दोनों लक्षणों को दो भागों में विभक्त कर रक्खा है। जैसे—

१—वह अवस्था जबकि रुग्णा अविवाहिता हो।

२—वह अवस्था जबकि रुग्णा विवाहिता हो।

वह अवस्था जबकि रुग्णा विवाहिता हो—इसके भी दो भेद हैं। १—जब रुग्णा कभी भी गर्भवती नहीं हुई हो; २—जब रुग्णा गर्भवती हो; या जब गर्भवती हो चुकी हो।

जब रुग्णा गर्भवती नहीं हुई हो—जब रुग्णा का विवाह कुछ समय पूर्व हुआ हो, और वह अत्यार्त्तव की शिकायत करे, साथ में गनोरिया के लक्षणों को भी बताये (जैसे—दुर्गन्धि-युक्त स्राव, गँदला मूत्र), तो वह सम्भवतः गनोरिया से आक्रान्त हुई होगी। परन्तु जहाँ कोई संक्रमण का इतिवृत्त न हो, और अत्यार्त्तव के साथ कटि-शूल, श्वेत योनि-स्राव हो, तो वहाँ पर गर्भाशय में रक्त-संचय की संभावना करनी चाहिये। यदि अकाल में ऋतु-दर्शन गर्भावस्था के किसी लक्षण के बिना होता है, तो 'पोलीपस' का अनुमान करना चाहिये। और यदि अकाल में ऋतु-दर्शन होने पर दर्द भी हो, तथा कुछ समय के लिये ऋतु बन्द हो जाय, और फिर आरम्भ हो जाय, तो समझना चाहिये कि गर्भाशय के बाहर रज और शुक्राणु का संयोग हुआ है। ३५ साल की औरत में यदि अत्यार्त्तव के पीछे अकाल में ऋतु-रोग हो जाय, तो गर्भाशय के अर्बुद की सम्भावना करनी चाहिये।

जब रुग्णा गर्भवती हो—यदि ऋतु-दर्शन बन्द होने के कुछ दिनों बाद फिर रक्त-स्राव हो, तो वह गर्भपात या गर्भ-स्राव को सूचित करता है। अनियमित रक्त-स्राव हो, रक्त की मात्रा थोड़ी परन्तु काला, और थोड़े समय में बन्द होकर आता हो, तो डिम्ब-प्रणाली में गर्भ-क्षति की सम्भावना करनी चाहिये। गर्भावस्था के ६ ठे या ७ वें मास में यदि रक्त-स्राव हो, तो इसका कारण कमल का गर्भाशय के निचले मुख पर लगा होना अथवा उसके

कुछ भाग का गर्भाशय से पृथक् होना है। गर्भाशय-ग्रीवा का अर्बुद भी अकाल में ऋतु उत्पन्न कर देता है।

जब रुग्णा गर्भवती हो चुकी हो—नूतन गर्भावस्था में अपक्व डिम्ब के टूटने से रक्त-स्राव हो सकता है। परन्तु जब यह रक्त-स्राव बन्द न हो और अकाल में भी होता रहे, तो इसका कारण कमल का कुछ भाग गर्भाशय में बचा समझना चाहिये। यदि रुग्णा ४० साल से ऊपर हो, और कई बार गर्भवती हो चुकी हो; उसमें यदि रक्त-स्राव होता है, तो इसका कारण गर्भाशय-ग्रीवा का कैन्सर या गर्भाशय-शोथ होता है। वृद्धावस्था-जन्य गर्भाशय-शोथ के कारण भी ऋतु-दर्शन बन्द होने पर अकाल में ऋतु-रोग हो जाता है। इसके अतिरिक्त अर्बुद आदि के कारण भी रक्त-स्राव हो जाता है।

चिकित्सा—शरीर-सम्बन्धी कारण की चिकित्सा करनी चाहिये। स्वास्थ्य-सम्बन्धी बातों का जैसे, खान पान का, थकान से बचने का, गर्म या दुर्गन्धित वायु-मण्डल से दूर रहने का तथा सम्भोग से बचने आदि का ध्यान रखना चाहिये। अति सम्भोग से गर्भाशय में शोथ हो जाती है।

गर्भाशय के रक्तस्राव को रोकनेवाली औषधियों में उत्तम औषधि अर्गट और अर्गोटीन हैं। प्रथम दवाई लिक्विड एक्सट्रैक्ट के रूप में १ ड्राम की मात्रा में देना चाहिये और अर्गोटीन ३ ग्रेन की मात्रा में गोली के रूप में। यह उत्तम है कि अर्गट को टिंचर हैममैलिड या हाईड्रैसटिस (१५ से २० बूँद) के साथ मिलाकर दें। रोगी को चाहिये कि समय से दो-तीन दिन पूर्व दवाई आरम्भ कर दे।

इसके अतिरिक्त ऋतु आने से दो-तीन दिन पूर्व रोगी को बिस्तर पर रहना चाहिये और विरेचन ले लेना चाहिये। मलबन्ध के कारण बस्ति में प्रायः रक्तसंचय होजाता है।

ऋतु का बन्द होना—जिस समय आर्त्तव बन्द होता है, उस समय यह कई रूप ले लेता है। जैसे—औरतों को बिल्कुल बेचैनी या किसी प्रकार की शिकायत नहीं होती। आर्त्तव ठीक प्रकार से होता हुआ अपने आप बन्द हो जाता है। यह प्रायः अविवाहिता औरतों में होता है। दूसरी अवस्थाओं में मासिक-धर्म अनियमित हो जाता है, रक्त की मात्रा बदल जाती है और

एक लम्बे समय के पश्चात् अन्तिम बार जोर से बड़ी मात्रा में रक्तस्राव होता है और फिर सदा के लिये बन्द हो जाता है। परन्तु कइयों में वातिक लक्षण उत्पन्न होते हैं। जैसे—चक्कर आना, छाती में दर्द होना और जोड़ों का टूटना। पाचन-शक्ति बिगड़ जाती है, मलबन्ध तथा अफारा रहता है, चर्बी बढ़ने लगती है। बहुत-सी स्त्रियाँ गिर जाती हैं और पागलपन की सीमा के समीप पहुँच जाती हैं।

वस्ति-गह्वर में रचना-सम्बन्धी अन्तर आने लगता है, डिम्बकोष छोटे हो जाते हैं और सिकुड़ जाते हैं। योनि-द्वार संकुचित हो जाता है। गर्भाशय आकार में छोटा हो जाता है। भग-प्रदेश के बालों का रङ्ग धीरे-धीरे बदल जाता है। भगोष्ठ (बृहत्) छिप जाता है, चूँकि इसके नीचे की वसा क्षीण हो जाती है।

कष्टार्त्तव—इसका अर्थ यह है कि आर्त्तव के समय पीड़ा होती है। साधारणत: ६० से ७० प्रतिशतक औरतों को ऋतु-काल में कष्ट होता है। परन्तु यहाँ पर उस पीड़ा से अभिप्राय है, जिसके कारण रुग्णा को बिस्तर पर सोना पड़े या उचित चिकित्सा की आवश्यकता पड़े।

प्रत्येक रोगी में दर्द का स्वभाव भिन्न-भिन्न होता है। जैसे—किसीमें दर्द कोष्ठ में नाभि या आमाशयिक प्रदेश पर शूल के रूप में होता है। यह दर्द नीचे नितम्ब और जंघाओं में से होकर घुटनों तक पहुँचता है। किसी में दर्द कटि-भाग में होता है। रोगी को ऐसा प्रतीत होता रहता है कि उसकी कमर टूट रही है। कभी-कभी सारे निचले भाग पर दर्द होता रहता है।

कारण—इस लक्षण के कारण साधारणत: दो भागों में विभक्त किये जा सकते हैं। यथा—१—शरीर-रचना-सम्बन्धी, २—स्थानिक।

स्थानिक कारण फिर चार प्रकार के हैं। जैसे—

(१) वस्ति-गह्वर में रक्त-संचय होना—इसके कारण जब पीड़ितार्त्तव होगा, तब शरीर के निचले भाग पर दर्द होता रहेगा। पीठ, पार्श्व, कोष्ठ और जङ्घाओं में यह दर्द निकलता है। ऋतु आने से एक या दो दिन पूर्व दर्द आरम्भ होता है, और ऋतु के एक या दो दिन बाद तक रहता है। शरीर में भारीपन मालूम होता है। आर्त्तव के बीच के समय में

श्वेत पानी योनि से आता है। रोगी को प्रायः मलबन्ध रहता है। ऋतु-काल में भग सूजा प्रतीत होता है।

(२) **बनावट-सम्बन्धी दोष**—जब गर्भाशय का मार्ग तंग हो, या गर्भाशय की भित्तियाँ मोटी हों, जिससे आर्त्तव आने में दर्द होता है, गर्भाशय का झुकना या गर्भाशय के मुख का अवरोध होना, जो शोथ के कारण से हो जाता है।

(३) **स्थिति का दोष**—गर्भाशय का बाहर निकल आना या उलट जाना भी पीड़िताार्त्तव को उत्पन्न कर देता है।

(४) **वस्ति-गह्वर की शोथ**—यह प्रायः विवाहित औरतों में पीड़िताार्त्तव या कष्टार्त्तव का कारण होता है। इसमें गर्भाशय की शोथ, गर्भाशय की कला की शोथ, डिम्बकोष की शोथ, वस्ति-गह्वर के आवरण की शोथ का भी समावेश है, जिसके कारण दर्द होता है।

शरीर-सम्बन्धी कारण—अपूर्ण पोषण के कारण जब शरीर निर्बल रह जाता है, गर्भाशय भी साधारण आकार से छोटा रह जाता है। मज़दूर लोगों में, जिनको देर तक काम करना पड़ता है, दूकान में काम-काज करनेवाली अथवा जिनको बहुत देर तक खड़ा रहना पड़ता है, या जो भीड़ या बुरी हवा में काम करती हैं, उनको कष्टार्त्तव की शिकायत रहती है। बाल-प्रकृति की औरतों में भी यह शिकायत पाई जाती है।

चिकित्सा—रोगी के स्वास्थ्य की ओर विशेष ध्यान देना चाहिये। व्यायाम, सादा परन्तु पुष्टिदायक भोजन, विश्राम आदि की ओर उसका ध्यान खींचना चाहिये। दर्द कम करने के लिये ऋतु-काल से एक या दो दिन पूर्व विरेचन देना चाहिये। इससे रक्त-संचय घट जायगा। गरम पानी में पाँव रखना या गरम पानी में बैठना उत्तम है। दर्द को कम करने के लिये द्राक्षासव को घूँट-घूँट करके गरम पानी में पीना चाहिये। गर्भाशय के दर्द-युक्त संकोचों को रोकने के लिये 'फिनस्टीन', 'एममोननोल' या 'फिनैलेजीन' १० ग्रेन की मात्रा में सुगमता से दी जा सकती है। इन दवाइयों को लेने के पीछे रोगी को बिस्तर पर लेट जाना चाहिये।

आयुर्वेदिक औषधियाँ

१—दही ६ तोला, सौवर्चल १ मासा, कालाजीरा, मुलहठी, नीला कमल, प्रत्येक ४ आना, मधु आधा तोला इनको २ घंटे के पश्चात् २ तोला मात्रा में खाने से प्रदर नष्ट होता है।

२—रोहितक-मूल को जल के साथ पीसकर, आमलकी को जल के साथ पीसकर मधु और घृत के साथ खाने से अथवा कार्पास मूल को तण्डुलोदक के साथ पीने से प्रदर को लाभ होता है ।

३—रसौत, चौलाई की जड़ इनको शहद और तण्डुलोदक के साथ पीने से प्रदर में आराम होता है।

४—कुशमूल को तण्डुल-जल से पीसकर प्रदर-रोग में पीने से आराम होता है।

५—गूलर के रस को मधु के साथ पीने से सब प्रकार के प्रदर-रोग में आराम होता है।

६—बेर का चूर्ण या लाख का चूर्ण घी के साथ और कच्चा केला दूध के साथ पीने से प्रदर-रोग में आराम करता है।

७—अशोक को छाल को दूध के साथ पीने से प्रदर-रोग शान्त होता है।

८—शङ्ख पुष्पी की जड़ को तण्डुलोदक के साथ पीसकर पीने से प्रदर रोग में लाभ होता है।

९—जपा के फूल को काँजी के साथ पीसकर अथवा मालकंगनी के पत्तों को घी में भूनकर अथवा दूर्वा को पीसकर काँजी के साथ लेने से स्त्री ऋतुमती होती है।

१०—कटुतुम्बी के बीज, दन्तीमूल, पिप्पली, गुड़, मैनफल, सुवा, मुलहट्ठी, मिलित ८ माशे और थोरका दूध ८ माशे इनको आग में पकाकर बत्ती बनाकर योनि में रखने से लाभ होता है।

११—ढाक के फल, गूलर, तिल तैल इनको मधु में मिलाकर लगाने से योनि में गाढ़ता आती है।

शास्त्रीय औषध—कुमारिकासव, प्रदरान्तक लौह, रजः प्रवर्त्तनी गुटिका, एलुवा (एलोज) की गोली।

गर्भाशय शोथ

गर्भाशय की श्लैष्मिक कला में शोथ दो प्रकार का होता है—एक नवीन और दूसार पुराना।

नवीन शोथ का कारण—प्राय: कीटाणुवों का संक्रमण है, जो गर्भपात या प्रसव के समय अथवा योनि परीक्षा के समय शुद्धताई का ध्यान न रखने से हो जाता है। इस रोग के कारण शारीरिक लक्षण भी उत्पन्न हो जाते हैं। जैसे—ज्वर रहता है, जो९९ से १०५ तक पहुँच जाता है। कभी-कभी मृदु ज्वर रहता है, रोगी शिकायत करता है कि वस्ति प्रदेश में दर्द रहता है और दुर्गन्धयुक्त, पीब मिश्रित या रक्त मिश्रित स्राव भी कभी-कभी योनि मार्ग से आता रहता है। परीक्षा करने पर योनि उष्ण मालूम पड़ती है, और स्राव सूखा हुआ होता है। यदि यह रोग सूतिका रोग से मिला हो तो भयानक होता है, नहीं तो उचित उपायों से चला जाता है।

इस रोग की चिकित्सा—रोगी को पूर्ण विश्राम देना चाहिये। ज्वर की साधारण चिकित्सा करनी चाहिये। स्थानिक चिकित्सा के लिये योनि मार्ग और गर्भाशय का प्रक्षालन उत्तर वस्ति से करना चाहिये। इसके लिये निम्न औषधियाँ उत्तम हैं। जैसे—बिनी-आयोडाईड ऑफ मर्करी (१:१०००८), कार्बोलिक एसिड (१: ४०), सिल्वर नाईट्रेट (१: ५००), जिंक क्लोराइड (१%)। धोने के पीछे गर्भाशय को किसी तेज दाहक वस्तु से लिप्त कर देना चाहिये। जैसे—आयोडाईज्ड फिनोल (आयोडीन १ भाग, कार्बोलिक एसिड ४ भाग) या, जिंक क्लोराइड १०% का या लिनिमैन्ट आयोडीन इनको रुई में लगाकर उसके द्वारा गर्भाशय में लेप करके रुई को बाहर फेंक देना चाहिये। साथ में रोगी को गरम पानी के अन्दर भी बिठाना चाहिये। दर्द के लिये निचले भागों पर और सीवन पर उष्ण सेक करना चाहिये।

चिरकालीन गर्भाशय शोथ—इसका कारण नूतन शोथ होता है। अथवा गनोरिया या अन्य कोई संक्रमण। तीसरा कारण गर्भपात है।

लक्षण—१—दर्द जो कमर में रहता है, वहाँ से जङ्घाओं में आता है, कोष्ठ में भारीपन रहता है। २—श्वेत प्रदर—योनि-मार्ग से श्वेत अण्डे

की भाँति का स्राव होता है, जिसमें म्युकस-श्लेष्मा तथा एपीथीलीयम होते हैं। कभी-कभी इस स्राव में पीव भी होती है। ३—अत्यार्त्तव—ऋतुकाल में अधिक रक्त आता है।

इस रोग की चिकित्सा—इसके लिये उष्ण वस्ति तथा वातहर तैल बरतने चाहिये। जैसे—एरना तैल, मूसिकादि तैल।

गर्भाशय भ्रंश—इसके कई रूप हैं।

कारण—१—गर्भाशय को बाँधनेवाले स्नायु तन्तुओं का ढीला हो जाना। इसका कारण बार-बार गर्भवती होना होता है।

२—गर्भाशय के सिर ऊर्ध्व भाग में भार का बढ़ना, जो गर्भाशय में रक्त-संचय होने से, गर्भावस्था से अथवा अर्बुद से हो जाता है।

३—गर्भाशय के सन्मुख किसी प्रकार का भार पड़ने से।

४—किसी प्रकार के आकस्मिक आघात से या गिरने से।

५—वस्तिगह्वर की सूजन के कारण तीव्र संकोचों के कारण।

उपरोक्त भेदों के अतिरिक्त कई बार गर्भाशय गुदा की भाँति बाहर भी आजाता है। इस अवस्था में उचित रूप से इसको अन्दर वापिस करके पेसरी या मूषिकादि तैल आदि का उपयोग करना चाहिये।

डिम्ब कोष की शोथ—कई बार कीटाणुओं के संक्रमण के कारण डिम्बकोष में भी सूजन हो जाती है। इससे पेडू की बाजू में दर्द रहता है, मूत्र लाल, पार्श्व में गाँठ आम की गुठली जैसी सूजन प्रतीत होती है। मल-त्याग में दर्द होता है, ज्वर, वमन आदि लक्षण होते हैं। यदि यह पक जाय तो अन्दर फटकर विष को सारे शरीर में फैला देती है। इसकी चिकित्सा विद्रधि की भाँति करनी चाहिये। अफीम और वेलेडोना को ग्लैसरीन में मिलाकर लगाना चाहिये। पकने पर चिकित्सक के चाकू से चिकित्सा करवानी चाहिये। रोगी को पूर्ण आराम देना चाहिये। विरेचन से आँतों को खुला रखना चाहिये।

गर्भाशय-मुख का व्रण—गर्भाशय के मुख पर आघात पड़ने से कई बार रक्तस्राव हो जाता है। प्राय: यह आघात औजार के उपयोग करते समय हो जाता है। इसके कारण कमर में दर्द रहता है, योनि से रक्त या स्राव जाता रहता है।

उपाय—पंचवल्कल काढ़ा से अथवा माजुफल के काढ़ा से धोना चाहिये। फिटकड़ी या जस्त के पानी की पिचकारी मारनी चाहिये। टैनिक एसिड की बत्ती रखनी चाहिये। टैनिक एसिड ग्लैसरीन का लगाना भी उत्तम है।

श्वेत प्रदर

साधारणत: योनि, योनिमार्ग आदि को चिकना रखने के लिये इन स्थानों की ग्रन्थियों से पानी भरता रहता है और सम्भोग के समय संघर्षण को बचाने के लिए पानी कुछ अधिक मात्रा में भी आजाता है। इससे यह भाग तर रहता है। परन्तु निम्न कारणों से यह स्राव बढ़ जाता है, जिससे यह बाहर आकर कपड़ों को भी खराब करने लगता है। इस स्राव में दुर्गन्ध तथा भित्तियों के सैल्स या कोष्ठक भी होते हैं। इसके कारण रोगी का शरीर क्षीण होता जाता है।

कारण—विरुद्ध आहार-विहार से, अति मैथुन से, बार-बार गर्भपात होने से, प्रसव के पीछे या निर्बलता की अवस्था में सम्भोग करने से, अनुचित उपायों से कामेच्छा पूरी करने से, या शरीर को निर्बल करनेवाले अन्य रोगों के कारण योनि से श्वेत स्राव जाता रहता है।

लक्षण—स्राव देखने में पतला, पीला श्वेत, यदि पीब से मिला होगा तो हरा और मात्रा में बहुत अधिक होता है। इसकी प्रतिक्रिया बहुत ही हल्की अम्लीय होती है, या उदासीन होती है अथवा बहुत ही तीव्र क्षारीय होती है। सूक्ष्मदर्शक यन्त्र से इसमें पीब के सैल, भित्तियों के सैल्स और कीटाणु मिलते हैं। शारीरिक लक्षणों में—जोड़ों का टूटना, दर्द, शरीर में दुर्बलता, भ्रम, चक्कर आना, कटि में शूल, प्यास आदि लक्षण होते हैं।

चिकित्सा—(अन्त: उपाय)—साधारणत: रोगी की शक्ति बढ़ाने का यत्न करना चाहिये। पौष्टिक औषधियाँ तथा स्वास्थ्य के नियमों का पालन करना आवश्यक है। रसायन चूर्ण, चन्द्रप्रभा, बसन्त-कुसुमाकर, बंगेश्वर, मधूकाद्यवलेह, न्यग्रोधादि चूर्ण उत्तम है। अथवा—१—गूलर को मधु के साथ खाना चाहिये। २—अशोक की छाल को दूध में उबालकर पीना चाहिये।

३—रस-सिन्दूर को वासा के रस के साथ लेना चाहिये। स्वर्णमाक्षिक-भस्म को शहद के साथ देना चाहिये।

(बाह्य उपाय)—पंचत्वक् कषाय से, कदम्ब की छाल के काढ़े से, त्रिफला के काढ़े से, फिटकड़ी के पानी से योनि का प्रक्षालन करना चाहिये।

सोम रोग

स्त्रियों में यह रोग बहुत कम होता है। परन्तु कभी-कभी अति मैथुन करने से, शोक से या श्रम आदि से मूत्र-मार्ग से बहुत पानी जाने लगता है। यह पानी श्वेत, निर्मल, शीत, निर्गन्ध, बिना दर्द के प्रवाहित होता है, इसका रङ्ग श्वेत होता है। इसके कारण स्त्री निर्बल हो जाती है, उसमें शिथिलता आ जाती है, मुख, तालू और गला सूख जाता है। हाथ-पाँव में जलन, अरुचि हो जाती है।

इसकी चिकित्सा के लिये पक्का केला, आँवले का रस, मधु तथा शर्करा खानी चाहिये। २—केला, विदारी, शतावरी इनको दूध के साथ। ३—मुलहठी, विदारी इनको दूध के साथ खाना चाहिये। ४—नागकेशर को खट्टी छाछ के साथ लेना उत्तम है।

न्यग्रोधादि-चूर्ण, चन्द्रप्रभा, बसन्तकुसुमाकर, बंगेश्वर, धात्री-घृत उत्तम हैं।

स्तन का पकना

कई बार स्त्रियों का स्तन पक जाता है। इसका मुख्य कारण यह होता है कि चूचुक का मुँह इतना तङ्ग होता है कि वह बह नहीं सकता या थोड़ा-थोड़ा करके आता है। अथवा दूध के विकार से दुग्ध ग्रन्थियाँ पककर विद्रधि उत्पन्न कर देती हैं। अथवा शिशु के मर जाने पर जब दूध नहीं निकलता उस समय विद्रधि बन जाती है।

लक्षण—प्रायः सब लक्षण विद्रधि से मिलते हैं। स्तन सूज जाता है, उसका स्थान गरम और लाल होता है। छूने से दर्द होता है। कभी-कभी इसके साथ ज्वर, अनिद्रा आदि लक्षण भी मिल जाते हैं।

चिकित्सा—ब्रेस्ट पम्प के द्वारा स्तनों से दूध निकाल देना चाहिये, दर्द को कम करने के लिये उष्ण उपनाह, पुल्टिस (अलसी, आटा, हल्दी, नमक की) या पोस्त के डोडों का सेंक करना चाहिये। जबतक लक्षण तीव्र न हों, तबतक शीत उपचार करना चाहिये। जैसे, चन्दन और लाल-चन्दन का लेप करना चाहिये। जोंक लगवाकर रक्त को निकलवा देना चाहिये। दर्द की वेदना को कम करने के लिये धतूरा और हल्दी का लेप करना चाहिये। पकने पर विद्रधि की चिकित्सा करनी चाहिये।

जिस स्त्री के स्तन या चूचक छोटे हों, उसको चाहिये कि वह उनको खींचे, बार-बार बच्चे के मुँह में देवे अथवा काशीसादि तैल का उपयोग करे।

मेद-रोग

कई स्त्रियाँ शरीर से इतनी फूल जाती हैं, कि वह रोग की भूमि बन जाती हैं। शरीर में चर्बी के बढ़ने से ऋतु आना बन्द हो जाता है, इससे ये औरतें प्रायः बाँझ रहती हैं। इसके अतिरिक्त पेट विशेष फूल जाता है। कइयों में यह रोग एक बच्चे के जन्मने के पीछे ही हो जाता है।

कारण—व्यायाम न करने से, दिन में सोने से, श्लेष्माकारक भोजन के खाने से पेट में चर्बी बढ़ जाती है। इस चर्बी के बढ़ने से अन्य धातुओं का पोषण नहीं होता। इससे स्त्री सब कामों में अशक्त हो जाती है।

उपाय—इस रोग की चिकित्सा में औषधि उतना कार्य नहीं करती, जितना आहार-विहार के नियम करते हैं। स्त्रियों को चाहिये कि (१) सादी खूराक (जौ आदि) लेवें, परिश्रम करें, दिन में न सोयें, व्यायाम करें (२) पेट को साफ करनेवाली औषधियाँ तथा जैलेप, एलुवा, हींग आदि देने चाहिये। (३) ऋतु लाने का उपाय करना चाहिये।

औषधियाँ—१—त्रिफला क्वाथ को मधु के साथ पीना चाहिये।
२—अमृतादि गुग्गुल (गिलोय १ भाग, छोटी इलायची २ भाग, विडंग ३ भाग, कुटज ४, इन्द्रजौ ५, हरीतकी ६, आमलकी ७ और गुग्गुल ८

भाग) इनको मधु के साथ सेवन करना चाहिये । योगराज गुग्गुल, रास्नादि क्वाथ, दशमूल क्वाथ भी उत्तम है । जौ या गेहूँ का सत्तू खाना चाहिये ।

हिस्टीरिया

आर्य-चिकित्सा के पण्डित इस रोग का समावेश वात-व्याधि में या अपस्मार में करते हैं, और अनार्य चिकित्सा के विद्वान इसकी गिनती मस्तिष्क रोगों में करते हैं, जो बहुत कुछ समान ही है ।

कारण—इस रोग का कारण मस्तिष्क-स्नायुवों की निर्बलता है । यह निर्बलता या तो पैतृक होती है, अथवा स्वयं उत्पन्न हुई होती है । उदाहरण के लिये यदि अपूर्ण अवस्था ही में उसके मस्तिष्क मे प्रेम तथा कामेच्छा को उत्पन्न कर दिया जाता है, तो उसको यह रोग हो जाता है । कइयों में यह रोग ऋतु के बन्द होने से या ऋतु-विकार के कारण होता है । भय, शोक, मैथुनेच्छा, काम-विकार आदि मानसिक अवस्थायें भी इस रोग का कारण बन जाती हैं । कई बार पुरुष या पति से विरक्ति होने पर या पेट में कृमि या मलबन्ध रहने से भी यह रोग हो जाता है ।

लक्षण—इस रोग के लक्षण असंख्य हैं । रोगी अचानक गिर पड़ता है, हँसता है, रोता है, मुँह लाल हो जाता है, चिल्लाता है । इन रोगों की शिकायतें प्रायः भय-सम्बन्धी होती हैं । जैसे—मैं जल रही हूँ, पानी दो । मुँह से बदबू आती है । जीभ बेस्वाद हो जाती है । दाँत भिंच जाते हैं ।

उपाय—इस प्रकार का यत्न करना चाहिये कि रोगी किसी प्रकार से अपने शरीर को नुक़सान न पहुँचाये । उसको बिस्तर पर लेटाकर ठण्डे पानी के छींटे देने चाहिये, पंखे से वायु करनी चाहिये, गले आदि के सब तंग वस्त्र खोल देने चाहिये । बेसुधि दूर करने के लिये नौसादर और चूना मिलाकर सुँघाना चाहिये । जबतक रोगी होश में न आये, तबतक कोई भी दवाई मुँह से नहीं देनी चाहिये । दौरा शान्त होने पर कारण के अनुसार चिकित्सा करनी चाहिये । पेट को साफ करने के लिए विरेचन देना चाहिये । ऋतु-सम्बन्धी विकार हो, तो उसकी चिकित्सा करनी चाहिये । साधारणतः पौष्टिक औषधियाँ एवं सम्भोग की तृप्ति इस रोग को शान्त कर देती हैं ।

पौष्टिक औषधियों में--योगेन्द्ररस, स्वर्ण बसन्तमालती, चिन्तामणि चतुर्मुख, योगराज गुग्गुल, रास्नादि काढ़ा के साथ देना चाहिये।

रोग को शान्त करने के लिये हींग को जिंक वेलरीयन के साथ (जिंग वैलरीनास ३ ग्रेन और पिलएसे फिटेडा कम्पाउन्ड २ ग्रेन) देना चाहिये। इसके साथ एक्स्ट्रैक्ट वैलेडोना तिहाई ग्रेन एक्स्ट्रैक्ट कैनेबिस इन्डिका चौथाई ग्रेन भी मिला सकते हैं।

कुछ युनानी औषधियाँ

रज न आने पर—१—बूल १०॥ माशे, तिर्विस १७॥ माशे, तुलसी के पत्ते, पोदीना, पहाड़ी पोदीना, मजीठ, हींग, कुन्दल, गोंद, जवाशीर प्रत्येक ७ माशे, इनकी टिकिया बनाकर देवदारु के काढ़े के साथ देना चाहिये। २—जुन्दबेदस्तर १॥ माशे, नीले सौसन की जड़ ९ माशे, पुदीने का पानी दो गिलास, शहद ३१॥ माशे, ये दो बार में पिलावे। ३—लाल लोबिया, मेथी, रूमी सौंफ प्रत्येक १०॥ माशे, मजीठ अधकुचली १४ माशे, इनका काढ़ा करके शिकंजबीन ४५ माशे के साथ दे। ४—पुदीना १४ माशे, देवदार २८ माशे, तुलसी ३५ माशे, मुनक्का ७० दाने इनको कूट-छानकर बैल के पित्ते में मिलाकर भग, योनि-द्वार पर लगाने से रज आने लगता है।

अत्यार्त्तव में—१—कतीरा, नशास्ता, समग अर्बी, ककड़ी, खीरे की मींग प्रत्येक ३॥ माशे, अनार के फूल ७ माशे, अकाकिया कहरुवा ३॥ माशे, बारतंग के पानी में इनकी गोली बनावे। मात्रा ४ माशे। अनुपान खुर्फा का शरबत या शर्बत अंजबार। २—सुर्मा, अनार के फूल, फिटकिरी, सुहागा, कुन्दरू के गोंद का बुरादा, माजू अकाकिया समान भाग लेकर, इनकी लम्बी-लम्बी बत्ती बनाकर योनि-द्वार में रखने से रज बन्द हो जाता है।

गर्भ रहने की दवाई—पाषाण भेद और मेंहदी को पीसकर हाथ पर लगाने से गर्भ नहीं रहता। संभोग से पूर्व पुदीने को योनि में रखने से भी यही लाभ होता है।

गर्भवती स्त्री की पहचान—२२॥ माशे शहद को ठण्डे पानी में मिलाकर सोती औरत को पिला देना चाहिये। यदि नाभि के आसपास दर्द

मालूम पड़े, तो स्त्री गर्भवती है, नहीं तो नहीं। २—अगर अथवा किसी सुगन्धित वस्तु को किसी बर्तन में बन्द करके, इस प्रकार से धुंवा मूत्रमार्ग पर दे कि कहीं और जगह से धुंवा न जाय। यदि अगर की गन्ध स्त्री की नाभि पर पहुँचे, तो गर्भवती है, नहीं तो नहीं। ३—जराबन्द को कूटकर शहद में मिलावे। इसमें ऊन मिलाकर मूत्रमार्ग में रक्खे, दोपहर तक कुछ न खाये। यदि स्त्री गर्भवती होगी, तो मुँह में इसका स्वाद मालूम होता है, नहीं तो नहीं। मीठा स्वाद मालूम पड़े, तो लड़का, और कड़ुवा स्वाद मालूम होने पर लड़की होती है।

गर्भपात को रोकने के लिये—१—कचूर, दरूनज अकरबी प्रत्येक ७ माशे, अनबिधे मोती, कहरवा, अगर, प्रत्येक १०॥ माशे, छड़ीला बालछड़ प्रत्येक १० माशे, कूट-छानकर शहद में मिलावे। मात्रा ४॥ माशे।

२—दिवालमुश्क—अनबिधे मोती, कहरुवा, मूँगे की जड़, कच्चा रेशम, कतरा हुआ कचूर, दरूनज अकरबी, प्रत्येक ४॥ माशे, बहमन सफेद, इलायची, बालछड़, लौंग, तेजपात, छरीला, प्रत्येक ३॥ माशे, जुन्दबेदस्तर, पोपल, सौंफ, प्रत्येक १॥। माशे कोई-कोई हकीम जुन्दबेदस्तर ३॥ माशे कस्तूरी ३ रत्ती मिलाते हैं। इनको कूट-छानकर तिगुने शहद में माजून बनावे। मात्रा ४॥ माशे।

शीघ्र प्रसव के उपाय—१—अमलतास का छिलका १८ माशे कूटकर बनफशे के शर्बत के साथ देना चाहिये। २—हींग और जुन्दबेदस्तर, दालचीनी इनके चूर्ण को शहद में खाना चाहिये। ३—जुन्दबेदस्तर शिलारस १॥ माशे प्रत्येक, दालचीनी और देवदार प्रत्येक १॥ माशे, इनको शहद में चटावे।

मृत बालक को बाहर निकालना—१—इन्द्रायन का गूदा, कूठ, सूखी तुलसी प्रत्येक १०॥ माशे, दूल ३॥ माशे, कूट-छानकर बेल के पत्ते में मिलाकर नाभि पर लेप करना चाहिये। २—कूल, जवाशीर, कुन्दरू, गोंद बराबर लेकर गोली बनावें। मात्रा १०॥ माशे। ३—इन्द्रायन का गूदा योनि में रक्खे या कबूतर की बीट और साँप की केंचुल की धूनी देनी चाहिये।

प्रसव के पीछे का रक्त रुक जाने पर—अजवायन के बीज,

सौंफ, हन्सराज, जङ्गली पुदीना, इनको औटाकर, मिश्री मिलाकर पिलाना चाहिये। गधी के दूध से गर्भ-स्थान को धोना चाहिये।

गर्भ गिराने का उपाय—हजार स्पन्द के बीज खाना और बिलासाँ का तेल कपड़े में लगाकर मूत्र के स्थान पर रखना बालक को गिराता है। हींग, गन्दा पिरोजा, बखूर मरियम इनका भग-स्थान पर लेप करना चाहिये। इन्द्रायन का गूदा, कूठ, तुलसी के पत्ते, प्रत्येक ७ माशे सबको महीन करके, बेल के पत्ते में मिलाकर नाभि पर लेप करना चाहिये।

अँग्रेज़ी दवाइयाँ

गर्भपात को रोकने के लिये—अफीम और इसके समास, हाईड्रैसरिस, वाईवरनम।

एमैनोरिया नष्टार्तव—सीमीसीप्युज, एलोज, नौसादार, अरगट एविओल, पलसेटिल्ला, आर्सैनिक क्युनीन, गरम स्ट्रिजवाल, ग्वायकम।

कष्टार्तव—सीमीसीप्युज, स्प्रिट ईथर नाईट्रोसी, एनीमोनीन, फीनेजोन, एपिओल, क्युराईल क्लोरल हाईड्रेट. कैनबिस इंडिका, गोसीफाई, सोडियम ब्रोमाइड, पलसेटिल्ला, वाइवरनम, एकोनाईट, एलोज।

अत्यार्तव—एसिड गैलिक, कैलशियम क्लोराईड, अरगट, डिजीटेलस आयर्न, फिटकिरी, बर्फ, फीनेजोन, कैटक्यु, एडरनैलिन क्लोराईड।

रक्त-स्राव प्रसूति के पीछे का—अर्गट, कैनबिस इंडिका, एक्सट्रैक्ट गोसिफाई, लिक्विड हाईड्रैसरिस, नक्सवोमिका, अफीम, डिजीटैलिस सीमीसीप्युज।

दूध बढ़ाने की—लैक्टिक एसिड, टिंचर जैबरैन्डि, पिलोकारपीन मौल्ट, ग्लीसरी फौस्फेट, एरण्ड-तैल की मालिश।

दूध घटाने की—औरेसीन, बैलेडोना एट्रोपीन, अरगट, तीव्र विरेचन, आयोडाइड ब्रोमाईड। लगाने के लिये ग्लैसरीन बैलेडोना।

प्रकरण ग्यारहवाँ

बाल-रोग-चिकित्सा

इस शीर्षक के नीचे तीन बातों का समावेश किया जाता है।

१—शिशु की परिचर्य्या

२—प्रसवकालीन रोग

३—प्रसव के पीछे होनेवाले रोग

शिशु-परिचर्य्या—नवजात शिशु के जीवित होने का साक्षी मिल जाने पर सबसे प्रथम कार्य नाभिनाल को काटना होता है। नाभिनाल के पीछे जबतक पानी गरम हो, शिशु को फुलालेन में या और वस्त्र में लपेटकर रखना चाहिये। शिशु चूँकि इस प्रकार के गर्म स्थान से आ रहा होता है, जहाँ का ताप-परिमाण १०० अंश फारनाहिट के करीब होता है, इसलिये उसे एकदम शीत से बचाना चाहिये। इसके पीछे शिशु की आँखों को हल्के बोरिक लोशन से धोकर साफ़ कर देना चाहिये और इनमें कास्टिक लोशन (½) डाल देना चाहिये। इसके कारण यद्यपि शिशु की आँख लाल हो जायगी, तथापि वह कई संक्रामक रोगों से उत्पन्न होनेवाली अक्षि-शोथ से बच जायगा।

इससे पीछे उसके स्नान का प्रबन्ध करना होता है। स्नान के पानी की उष्णिमा ९७ अंश फारनाहिट के लगभग होनी चाहिये। यदि थर्मामीटर पास में न हो, तो कोहनी से छूकर देख लेना चाहिये, जिसको कोहनी की त्वचा सहन कर सके। पानी में स्नान कराने से पूर्व उबटन मलने की प्रथा है। इसके द्वारा शरीर पर को मैल जो गर्भोदक से शिशु की त्वचा की रक्षा करती है, उतर जाती है। कक्षा, वंक्षण, पलकों आदि पर विशेष रूप से मलना चाहिये, जिससे वह उतर जाय। उत्तम है कि साबुन यथा-सम्भव न बरता जाय, चूँकि आँख पर लगाने से कष्ट होता है। स्पंज बहुत ही कोमल होना चाहिये। शिशु को पानी के टब में ३ या ४ मिनिट से अधिक

नहीं रखना चाहिये, और इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि उसको गोता न दें, जिससे नाल गोली हो जाय। स्नान कराने से पूर्व नाल पर कपड़े या रुई की गद्दी बाँध देनी चाहिये। इस गद्दी में छेद करके नाल को बाहर निकाल देना चाहिये। इसपर पाउडर या कोई शुष्क चूर्ण छिड़क देना चाहिये। इसके पीछे शिशु को आराम देना चाहिये। इसके लिये शिशु को कोमल बिस्तर पर या धात्री के घुटनों पर रखना चाहिये, और वहीं पर शुष्क अँगोछे से साफ़ कर देना चाहिये। उसके पीछे एक पतले फ़लालैन के कपड़े पर लपेट देना चाहिये।

नाभि-नाल—इसके पीछे अब नाल का ध्यान करना चाहिये। एक चार या पाँच इंच का बोरिक लिन्ट का टुकड़ा या किसी स्वच्छ कपड़े की चार पाँच तहें करके उसको आग पर जरा गरम करके, उसमें एक गोल छिद्र बना देना चाहिये। इस छिद्र में से नाल को निकालकर इस कपड़े के दोनों सिरे पीठ की ओर बाँध देने चाहिये। पाँच-छः दिन में नाल सूखकर अपने आप गिर जाती है। यदि यह स्वयं न गिरे, तो इसको खींचना नहीं चाहिये।

नवजात शिशु को औषधि देना—बहुत-सी दाइयाँ जन्मते हुए शिशु को एरण्ड तैल, या अन्य औषधियाँ देना पसन्द करती हैं; परन्तु साधारणतः इस प्रकार की किसी औषधि की आवश्यकता नहीं होती। शिशु को प्रायः सोने देना चाहिये। उसकी आँखों को प्रकाश से और त्वचा को शीत वायु से बचाना चाहिये। किसी भी प्रकार के पोषण आदि के निमित्त उसको जगाना नहीं चाहिये। साधारणतः ५ या ६ घण्टे के पीछे बच्चा रोता हुआ जागेगा। उस समय इसको स्तन देना चाहिये। इससे दो लाभ होंगे, १—माता के स्तनों से दूध आयेगा। २—गर्भाशय संकुचित हो जायगा। प्रथम दूध जो स्तनों से आता है, वह मृदु विरेचक गुण रखता है। इससे उसकी आँतें साफ़ हो जाती हैं, और किसी अन्य विरेचन की आवश्यकता नहीं रहती। परन्तु जहाँ पर यह दूध प्राप्त न हो सके, एरण्ड तैल आधा ड्राम की मात्रा में शिशु को दे देना चाहिये। शिशु का मल प्रथम पीला होता है, जिसको 'म्युकोनियम' कहते हैं। यदि तीसरे दिन मल पीला होने की अपेक्षा काला हो, तो आधा ड्राम एरण्ड तैल अवश्य देना चाहिये।

नवजात शिशु का भोजन—जन्मते ही बच्चे को दूध पिलाना अच्छा नहीं है। साधारणत: १० या १२ घण्टे तक शिशु कोई भोजन नहीं माँगता। माता के स्तनों का दूध इतना पर्याप्त होता है, कि शिशु की सब आवश्यकताओं को पूर्ण कर सकता है। द्वितीय प्रसव में माता प्रथम घण्टों में पर्याप्त दूध शिशु को दे सकती है। यदि दूध न आये, तो अपर्याप्त हो, तो शिशु को दूध और पानी मिलाकर देना चाहिये। और जब माता के स्तनों में दूध उतर आये, तो उसको यह देना चाहिये। प्रथम दस दिनों में जब बच्चा जागे, उस समय दूध देना चाहिये, और पिछले बीस दिनों में दिन के समय प्रत्येक दो घण्टे के अन्तर से और रात्रि मेंप्रत्येक ३ घण्टे के अन्तर से दूध पिलाना चाहिये। अथवा प्रथम महीने मे अधिकतर स्तन पिलाना चाहिये। इससे स्तनों मे दूध का जोर कम हो जाता है। यदि इस बात का अभ्यास डाल दिया जाय कि १० बजे सायङ्काल से ५ बजे प्रात:काल तक बच्चे को दूध न दिया जाय, तो माता को बड़ा आराम रहता है। प्राय: शिशु जब रोता है, तो वह भूख से नहीं रोता, बल्कि प्यास के कारण रोता है। इसलिये उसे गरम करके ठण्डा किया हुआ पानी थोड़े शहद के साथ देना चाहिये। शहद से उसे मृदु विरेचन भी होगा। बच्चे को बदल-बदलकर स्तन पिलाना चाहिये।

वस्त्र—शिशु के वस्त्र हल्के, ढीले और गरम होने चाहिये। इसके लिये पतली फुलालेन या रेशम और सूत का कपड़ा उत्तम है। कपड़े इस प्रकार से सीने चाहिये कि सुगमता से निकल सकें, पहनाये जा सकें और उनसे शिशु की गति में किसी प्रकार की बाधा न हो। वस्त्र सदा स्वच्छ और शुष्क रहना चाहिये। बच्चा मूत्र और मल प्राय: प्रवाहण करता रहता है। इसके लिये उसके कपड़े उसी समय बदल देने चाहिये। यदि यह न बदले जायँगे, तो त्वचा लाल और सूज जायेगी। पोतड़ा इस प्रकार के कपड़े का होना चाहिये, जो पानी को चूस ले। जब यह ख़राब हो, उसी समय बदल देना चाहिये। कभी भी उन्हें खुश्क नहीं होने देना चाहिये।

शिशु को दूध पिलाना—सबसे उत्तम है कि माता अपना दूध बच्चे को पिलाये। इस दूध से जहाँ उसका शरीर विकसित होता है, वहाँ उसकी मानसिक वृत्तियों पर भी प्रभाव पड़ता है। इसलिये माता को चाहिये

कि दूध पिलाने के समय सदा प्रसन्न रहे। क्रोध के आवेश में, मानसिक चिन्ता में या विमनस्कता में बच्चे को दूध न देवे। यदि वह थोड़ा ध्यान देगी, तो सुगमता से उसके दूध पीने का समय अनुमान कर सकती है। दूध पिलाते समय शिशु की नाक स्तन पर नहीं लगनी चाहिये। दूध पिलाने का समय निश्चित होना चाहिये। प्रथम महीने में दो-दो घण्टे के अन्तर से, दूसरे महीने में भी ढाई-ढाई घण्टे के अन्तर से, और फिर तीन घण्टे के अन्तर से, और फिर चार घण्टे के अन्तर से दूध देना चाहिये। रात्रि में एक या दो बार से अधिक दूध नहीं देना चाहिये। शिशु को पास में अलग बिस्तर पर सुलाना चाहिये। रोते हुये शिशु को चुप करने के लिये दूध देना बुरी आदत है। जबतक रोने का कारण भूख न हो, स्तन नहीं देना चाहिये। माता के गुण बच्चे में इस दूध के साथ उतरते हैं, यह समझकर दूध पिलाना चाहिये। यदि दूध न आता हो, तो दूध बढ़ाने का उपाय करना चाहिये। जैसे—

१—दूध और विदारी कन्द का उपयोग विशेष रूप में करना चाहिये।

२—वीरण की जड़, शाठी चावल, तालमखाना, दर्भ, कुश, कास, गन्ना, मोथा आदि औषधियों का सेवन करना चाहिये।

३—खूब आनन्द में रहना चाहिये। बार-बार स्तन बच्चे को चुसाना चाहिये।

४—जिस प्रकार प्रेयसी को देखने से, या प्रेम की बातों से कामेच्छा उद्दीप्त हो जाती है, उसी प्रकार बच्चे का शब्द सुनने से, या उसको देखने से माताओं के स्तनों से दूध झरने लगता है। जिस प्रकार गाय बच्चे का शब्द सुनकर दूर से रम्भाने लगती है।

धात्री—कई बार माता के स्तनों में दूध नहीं आता, उस समय दाई का बन्दोबस्त करना पड़ता है और कई बार ऐसा होता है कि फैशन-परस्त औरतें बच्चे को दूध पिलाना अच्छा नहीं मानतीं। तीसरी अवस्था यह है कि (जो प्राय: यूरोपियन औरतों में होती है) एक या दो बच्चे जन्मने के पीछे उनके स्तनों में दूध नहीं आता। इसका कारण स्तनों को अधिक भींच के रखना है। गुजरात में भी बहुत तङ्ग आँगी पहनने की प्रथा है,

इससे उनके स्तन प्रायः छोटे होते हैं।

बच्चे को यदि माता दूध पिलाये, तो उसमें निम्न लाभ होते हैं—

१—बच्चे को दूध पिलाने का काम माता को सन्तोष देनेवाला है।

२—बच्चे को दूध पिलाने से माता और पुत्र में प्रेम बढ़ता है।

३—दूध पिलाने से कामेच्छा उद्दीप्त नहीं होती। स्तनों का और गर्भाशय का आपस में बड़ा सम्बन्ध है।

४—सम्पूर्ण पशु या पक्षी-जगत में यही दिखाई देता है कि माता बच्चे को दूध पिलाती है।

धात्री के गुण—युवती, बच्चे की माँ के समान वर्णवाली, विश्वासी, निरोगी, व्यसन-रहित, देखने में सुन्दर, हँसमुख, गुस्सा न करनेवाली, समान जाति की, कुलवती, जिसका बच्चा जीता हो और दूसरे बच्चे की समान आयु का हो, पुष्कल दूधवाली, कुशल, योग्य कद-वाली, स्वच्छता-प्रिय और उत्तम दूधवाली होनी चाहिये।

उसके स्तन न तो बहुत ऊँचे, न बहुत नीचे, न बहुत लम्बे या न बहुत छोटे, न बहुत मोटे या न बहुत पतले होने चाहिये। स्तनों के चूचक खड़े हुये, कोमल और सुगमता से बच्चे के मुँह में आने योग्य होने चाहियें।

दूध की परीक्षा—शुद्ध दूध पानी में गेरने से तुरन्त पानी में घुल जाता है, पचने में हल्का होता है, मधुर स्वाद-युक्त एवं पानी-जैसा पतला होता है। इसका रङ्ग नीला, श्वेत होना चाहिये। प्रतिक्रिया क्षारीय होनी चाहिये। यदि सूक्ष्मदर्शक यन्त्र से देखें, तो वसा के टुकड़े पृथक-पृथक तैरते हुए दिखने चाहिये, यह नहीं कि एक चक्का बना हो। पानी में गिराने से शुद्ध दूध डूब नहीं जाता। दूध की परीक्षा धात्री के बच्चे को भी देखकर की जा सकती है। इस बात का विश्वास कर लेना चाहिये कि जो बच्चा धात्री ने दिखाया है, वह उसी-का है।

कृत्रिम दूध—कई बार जब माता के स्तनों में दूध नहीं होता, या रोग के कारण माता का दूध पिलाना उचित नहीं होता, अथवा शिशु दूध स्तनों से न पी सकता हो, या धात्री का प्रबन्ध न हो, तब कृत्रिम दूध का प्रबन्ध करना पड़ता है।

१—गाय, भैंस, बकरी, जिसका भी दूध देना हो, वह निरोगी होना चाहिये। उसको शुद्ध पानी पिलाना चाहिये। उत्तम खाना देना चाहिये,। उसको स्वच्छ रखना चाहिये। उसका दूध स्वच्छ बरतन में दुहकर रखना चाहिये। उसपर मक्खी आदि नहीं पड़ने देना चाहिये। ग्वाला निरोगी होना चाहिये।

२—कभी भी दो प्राणियों का दूध मिलाकर बच्चे को नहीं देना चाहिये।

३—बासी, ठण्डा दूध कभी भी नहीं देना चाहिये।

४—दूध को गरम करके, ठण्डा करके पिलाना चाहिये। बच्चे का दूध जब गरम करना पड़े, तो इसको गरम पानी में रखकर गरम करना चाहिये, सीधा आग पर गरम नहीं करना चाहिये।

५—दूध पचता न हो, तो इसमें एक छोटा चम्मच चूने का पानी मिला देना चाहिये। अथवा बीच-बीच में 'डिल वाटर' देना चाहिये।

६—दूध को बराबर ढककर रखना चाहिये।

७—निम्नलिखित विधि से दूध को हलका करके देना चाहिये :—

	गाय का दूध	पानी
१ मास के बच्चे को	दूध एक भाग	२ भाग पानी
२ मास से ३ मास के बच्चे को	दूध एक भाग	१ भाग पानी
३ " ४ " " "	"	$\frac{१}{२}$ " "
४ मास से ५ " " "	"	$\frac{१}{३}$ " "

छठे मास के बच्चे को गाय का दूध दिया जा सकता है।

८—यदि दूध बोतल से पिलाया जाता है (प्याले की अपेक्षा बोतल से दूध पिलाना उत्तम है) तो इसको पूर्णत: साफ़ रखना चाहिये। उत्तम यह है कि दो शीशियाँ बरती जायँ, इनको राख, गरम पानी और सोडे से साफ करना चाहिये। साथ ही टोंटियों को भी भली प्रकार साफ़ कर लेना चाहिये।

९—बोतल में दूध छानकर डालना चाहिये, जिससे मलाई न चली जाय। जितना दूध एक बार में पिलाना हो, उतना ही दूध बोतल में डालना चाहिये।

पेटेन्ट फूड्स (डिब्बों का दूध)—भारतवर्ष जैसे अपने देश में इस प्रकार के भोजनों की आवश्यकता नहीं है, जो कई सालों के बन्द हुये डिब्बों में बन्द होकर यहाँ दिन प्रतिदिन आ रहे हैं, और सुन्दर मन-मोहक विज्ञापनों के द्वारा औरतों का चित्त लुभाते हैं। जहाँ पर शुद्ध दूध नहीं मिलता, वहाँ पर शायद इनका कुछ उपयोग भले ही हो। साधारणतः इनकी आवश्यकता नहीं है। ग्लैक्सो, एलनवरी, मैलन्स आदि अनेक प्रकार के दूध चल रहे हैं। कुछ दूध चूर्ण रूप में होते हैं, और कुछ द्रव रूप में। इस प्रकार के दूध पर पाले हुए बच्चे शरीर में निर्बल होते हैं। उनके दाँत टेढ़े-मेढ़े तथा जल्दी सड़ जाते हैं। इनकी पाचन-शक्ति कमजोर रहती है। उत्तम यही है कि यथाशक्ति इनसे बचाया जाय। इनकी अपेक्षा जौ का पानी थोड़े-से शहद या नमक के साथ अधिक उपयोगी है।

दूध छुटाना—शिशु का दूध कब छुटाना चाहिये ? इसमें मत-भेद है। बच्चे के दाँत छठे मास में निकलने प्रारम्भ होते हैं। इधर शिशु का शरीर भी बढ़ रहा होता है। इस अवस्था में केवल दूध उसके शरीर के लिये सब प्रकार का पोषक भोजन नहीं दे सकता, इसलिये आवश्यक होता है कि भोजन में कुछ मिलावट की जाय। यह मिलावट इस प्रकार की होनी चाहिये, जो उसको पचा जाय अर्थात् अब उसके भोजन में थोड़ा-सा ठोस भाग मिला-कर आधा द्रवित कर देना चाहिये। इसके लिये सागु, अरारूट या काँजी उत्तम है। इस प्रकार करने से शिशु में जहाँ शक्ति बढ़ती है, वहाँ वह दूध को शनैः-शनैः छोड़ता हुआ ठोस भोजन पर आजाता है। इसका यह अभि-प्राय नहीं कि अब उसको दूध दिया नहीं जायगा। दूध तो दिया जायगा; परन्तु वह माता का या धात्री का न होकर गाय आदि का होगा। साथ में उसका भोजन दूध के अतिरिक्त और ठोस वस्तु भी होगी। इस प्रकार करने से नौ मास में या बारह मास में स्तन का दूध छुटाया जा सकता है। १॥ साल के पीछे कभी भी स्तन का दूध नहीं पिलाना चाहिये। इससे माता का स्वास्थ्य गिर जाता है।

बालकों की सँभाल

१—कभी भी बहुत ठण्डक में या गरमी में बालक को बाहर नहीं

घुमाना चाहिये।

२—इसके वस्त्र साफ-सुथरे खुश्क रखने चाहियें। मल-मूत्रवाले कपड़े तुरन्त बदल देने चाहिये। यदि नये कपड़े न हों, तो उनको सुखाकर, धूप देकर काम में लाना चाहिये।

३—बालक को कभी भी डराना नहीं चाहिये। उनके खिलौने इस प्रकार के होने चाहिये, जिनसे उनको नुकसान न पहुँचे। कैंचो, चाकू आदि वस्तुयें नहीं देना चाहिये। या जो वस्तुयें मुख में आसकें, वह नहीं देनी चाहिये।

बालकों के लिये दवाइयाँ

१—सोने को दूध में घिसकर या सोने को आग में तपाकर दूध में बुझाकर देना चाहिये।

२—मधु के साथ सोना घिसकर या स्वर्णभस्म $\frac{1}{2}$ चावल देना चाहिये।

३—बच, ब्राह्मी और शंखपुष्पी का चूर्ण शहद के साथ चटाना चाहिये।

४—बच और अकरकरा को पानी में घिसकर, इसमें थोड़ा शहद मिलाकर देने से बुद्धि बढ़ती है, श्वास या फेफड़ों के रोगों को आराम होता है।

५—अश्वगन्धा $\frac{1}{4}$ तोला, दूध $\frac{1}{2}$ सेर, पानी $\frac{1}{2}$ सेर इनको उबालकर जब दूध शेष रहे, तब छानकर, शहद मिलाकर देना चाहिये। इससे शरीर पुष्ट होता है।

६—सितोपलादि चूर्ण या बंशलोचन, प्रवाल, मोती आदि की पिष्ठि या भस्म शहद के साथ देना चाहिये।

साधारणतः किसी प्रकार को औषधि को आवश्यकता नहीं होती। परन्तु जिन लोगों को सबर नहीं आता, और अँग्रेजी पेटन्ट दवाइयों पर या डिब्बों के दूध पर विश्वास जमा हुआ है उनको चाहिये कि एक बार आर्य-चिकित्सा की अश्वगन्धा, विदारी, प्रवाल आदि औषधियाँ को योग्य वैद्य की सम्मति से बरतकर देख लें।

स्वस्थ शिशु का भार और ऊँचाई—

आयु	ऊँचाई	भार
जन्मते समय		७ पौण्ड
१ म मास	१९॥	७॥ ”
२ यं मास	२०॥	९॥ ”
३ य मास	२१	११ ”
४ र्थ मास	२२	११॥ ”
५ म मास	२३	१४ ”
६ ष्ठ मास	२३॥	१५ ”
७ म मास	२४	१६ ”
८ म मास	२४॥	१७ ”
९ म मास	२५	१८ ”
१० म मास	२६	१९ ”
११ वाँ मास	२६॥	२० ”
१२ वाँ मास	२७	२१ ”

यह भार और ऊँचाई स्तन पीनेवाले शिशु की है।

प्रसवकालीन रोग

कई बार शिशु रुग्ण उत्पन्न होता है, और उसकी चिकित्सा की आवश्यकता पड़ती है। उदाहरण के लिये कई बार शिशु की गुदा के स्थान पर एक झिल्ली रहती है, जिसको काटना होता है।

शिशु में श्वास-अवरोध—कई बार ऐसा होता है कि उत्पन्न होने पर शिशु चिल्लाता नहीं। उसका चेहरा मुरझाया हुआ, त्वचा लाल, और नाल कठोर तथा स्पन्दन-युक्त रहती है। इस अवस्था में सबसे प्रथम उसके मुँह को, तालु को, गले को रुई के फाहे से अँगुली भर को सहायता द्वारा साफ कर देना चाहिये। सब श्लेष्मा या द्रव बाहर निकाल देना चाहिये। तब एक बन्धन नाभि से तीन इञ्च की दूरी पर बाँधना चाहिये, और दूसरा बन्धन १ इञ्च की दूरी पर इसको बहुत कसकर नहीं बाँधना चाहिये। अब नाल को बीच से काटकर ऊपर के बन्धन को कस देना

चाहिये। और जबतक थोड़ा-सा रक्त नाल से न निकल जाय, निचला बन्धन नहीं कसना चाहिये। जिस समय शिशु रोयेगा या श्वास लेगा, उस समय थोड़ा-सा रक्त बाहर हो जायगा। यदि श्वास न चले, तो बारी-बारी से शीत एवं गरम पानी-द्वारा शिशु के हाथ-पाँव, कमर मलना चाहिये, और हृदय तथा छाती पर थोड़ा-सा दबाव देना चाहिये।

कई बार शिशु का चेहरा पीला, शरीर मूर्च्छित, ओष्ठ नीले, जबाड़ी गिरी हुई, हाथ-पाँव ठण्डे होते हैं। नाल में किसी प्रकार का स्पन्दन नहीं होता। इससे पूर्व की नाल बाँधी और काटी जाय, गरम और ठण्डे पानी के छींटे छाती पर देने चाहियें। और मुँह को, गले को साफ़ करना चाहिये। मुँह और नितम्बों पर ठण्डा पानी लगाना चाहिये। गले में अँगुली या एरण्ड-नाल से गुदगुदी करानी चाहिये। नाल के काटने पर शिशु को गरम पानी का स्नान देना चाहिये।

स्तनों का सूजना—प्रायः लड़का और लड़की दोनों में देखा जाता है कि दबाने से श्वेत स्राव चूचकों में से आता है। इसके लिये ठण्डे पानी की गद्दी बाँधनी चाहिये। स्तनों को साफ़ रखना चाहिये।

शिर में शीत लगना—यह प्रायः होता है। उत्पन्न होते ही शिशु को छींके आती हैं। इसके लिये शिशु को शीत से बचाना चाहिये। उसके शिर पर तेल का फाहा रखना चाहिये।

क्लेफ्ट पैलेट (तालु का गिरना)—कई बार शिशु का तालु गिरा होता है, इसके कारण वह दूध चूचकों से नहीं पी सकता। इसके लिये शिशु को चम्मच से दूध देना चाहिये और शल्य-चिकित्सा करनी चाहिये।

नीलिमा—यह स्थिति प्रायः अस्थाई होती है। शरीर की त्वचा ठण्डी और काली रहती है। यह हृदय के विकार के कारण होती है।

शिर के आकार में परिवर्तन—कई बार प्रसव होते समय (विशेषतः औजारों के द्वारा) शिर का आकार बदल जाता है। कई बार इसमें रक्त या पानी भी भर जाता है। इन पिछली अवस्थाओं के लिये बहुत ही कोमल सेंक तथा हलका दबाव करना चाहिये।

नाल से रक्त-स्राव—नाल में दिये हुये बन्धन के खुल जाने से या ढीले हो जाने से रक्त-स्राव हो जाता है। इसके लिये दूसरा बन्धन बाँध देना

चाहिये। रक्त-स्राव को बन्द करने के लिये रुई की गद्दी या बोरिक लिन्ट रख-कर वहीं बाँध देना चाहिये। यदि इससे आराम न हो, तो फिटकिरी २० ग्रेन १ औन्स पानी में मिलाकर लगानी चाहिये।

अक्षि-शोथ—इस रोग के कारण आँखें सूजी हुई, लाल तथा स्राव-युक्त होती हैं। यह प्रायः अस्वच्छता के कारण, प्रसव-मार्ग के संक्रमण से अथवा साबुन के लगाने से, या गनोरिया के कारण होती है। इसके लिये आँख को मृदु बोरिक लोशन से तीन-चार बार दिन में साफ़ करना चाहिये। और आँख में आरजीऐल ५ ग्रेन १ औन्स में डालना चाहिये।

मूत्र की अम्लता—कई बार शिशु बार-बार मूत्र-त्याग करता है, परंतु राशि १०-१५ बूँद होती है। इसका कारण मूत्राशय का विक्षोभ है। जिसका कारण मूत्र की अम्लता है। इतना मूत्र वस्त्रों में सूख जाता है, इससे मूत्र-त्याग का पता नहीं चलता। परन्तु मूत्र बहुत गाढ़ा होता है, इससे कपड़े पर दाग आजाता है। इसके लिये जौ का पानी और साईट्रेट आफ़ मैगनेशिया (२ या ३ ग्रेन) देना चाहिये।

मूत्राघात—कई बार शिशु प्रथम २४ घण्टों में मूत्र-प्रवाहण नहीं करता। जब ऐसा होता है, तो बच्चा रोता है, पाँवों को नाभि पर मोड़ता है, दर्द होता है। इसके लिये उष्ण सेंक आदि पेड़ू पर करने चाहिये। थोड़ा जौखार ½ रत्ती गरम पानी में चम्मच से दे देना चाहिये। यदि शिशु पुल्लिङ्ग हो, तो त्वचा को हटाकर कारण को देखना चाहिये। कई बार छिद्र के तङ्ग होने से या त्वचा के तङ्ग होने से (फाईमोसिस या पैरा फाईमोसिस) ऐसा हो जाता है। इसलिये यदि यह कारण हो, तो इसकी चिकित्सा करनी चाहिये।

वमन—कई बार शिशु स्तन पीने के पीछे तुरन्त ही वमन कर देता है। इसका कारण दूध का अधिक मात्रा में भरना है या शिशु का जल्दी-जल्दी पीना है, जिसको उसका आमाशय पचा नहीं सका। इसको रोकने के लिये चूची के पास अँगुली रखनी चाहिये, जिससे वह शीघ्र पी न सके।

कामला—प्रायः थोड़ी मात्रा में कामला प्रत्येक नवजात शिशु में मिलता है। साधारणतः इस रोग की चिकित्सा की कोई आवश्यकता नहीं होती। यदि त्वचा, आँख पीली हो जाय, मूत्र का रङ्ग गाढ़ा पीला हो, मल श्वेत आता हो।

तो हाइड्राजराई कमकीटा ½ ग्रेन, सोडा बाई कार्ब १ ग्रेन के साथ देना चाहिये और एरण्ड तैल १ ड्राम देने से विरेचन करा देने पर भी आराम हो जाता है। हल्दी, देवदारु, सालकाष्ठ, गजपिप्पली, बृहती, कण्टकारी, पीठपर्णी, सौंफ इनको मधु और घी के साथ खाने से कामला, ग्रहणी ज्वर रोग नष्ट होते हैं।

प्रसव के पीछे होनेवाले रोग

जिस प्रकार कई रोग बड़ी आयु में मिलते हैं, उसी प्रकार कई रोग छोटी आयु में भी मिलते हैं। जैसे, दाँत के आने से उत्पन्न विकार, अथवा गर्भिणी स्त्री का दूध पीने से विकार बच्चों में मिलते हैं।

बालकों के रोगों का कारण—ऋतु, हवा, पानी, संक्रमण आदि सामान्य कारणों के अतिरिक्त और बहुत-से कारण माता के साथ सम्बन्ध रखते हैं। उदाहरण के लिये—(१)माताओं का मिथ्या आहार-विहार शिशु को भी रोगी बना देता है। माता को दी हुई विरेचक दवाई (एरण्ड तेल या अफीम) या स्तम्भक दवाई शिशु पर भी प्रभाव करती है। (२) दूसरा कारण दाँतों का निकलना है। इस समय प्रायः सब शिशु थोड़े या बहुत रोगी हो जाते हैं। (३) खाने या भोजन-सम्बन्धी विकार से।

परीक्षा—बच्चों के रोग की परीक्षा बहुत ही कठिन काम है। डाक्टर हैचिन्सन के शब्दों में "बच्चों की चिकित्सा करनी उसी प्रकार की है, जिस प्रकार किसी देश की भाषा न जानते हुये वहाँ के मनुष्यों का इलाज करना है"। शिशु अपरिचित आदमी को देखकर रो पड़ता है, हाथ से छूने नहीं देता, मुँह से बोल नहीं सकता, दूसरे से बता नहीं सकता। उसके विषय में जो कुछ ज्ञान प्राप्त होता है, वह उसकी माता से या दाई से मिलता है। साधारणतः शिशु का मल, मूत्र और दूध लेने की अवस्था बहुत कुछ बता देती है। साधारणतः दर्द वाले स्थान पर शिशु हाथ नहीं लगने देता। पेट में दर्द होने पर पाँव को नाभि या कोष्ठ पर मोड़ लेता है। मूत्र में शर्करा या पथरी होने पर इन्द्रिय को खींचता है।

ज्वर—इस रोग का कारण अजीर्ण, कोष्ठ-बद्धता या शीत होता है। यदि प्रथम दो कारण हों, तो उत्तम यह है कि शिशु को हरड़ या

रेवतचीनी अथवा एरण्ड तैल का मृदु विरेचन देना चाहिये। और लंघन कराकर गरम पानी यथेष्ठ थोड़ा-थोड़ा चम्मच से देना चाहिये। इसमें थोड़ा-सा सैंधा-नमक मिला देना चाहिये। यदि नमक न ले, तो शहद मिला देना चाहिये। कैलोमल या हाइड्राजराई कमक्रीटा को उचित मात्रा में सोडा बाई कार्ब के साथ मिलाकर देना चाहिये। जब मल साफ हो जाय, तो अतीस को (२ से ५ ग्रेन) मधु में मिलाकर चटाना चाहिये। कृष्णादि चूर्ण और घनादि चूर्ण को मधु के साथ देना चाहिये। क्युनोन को भी उचित मात्रा में पल्व रिह्राई कम्पाउन्ड के साथ देने से लाभ होता है। दवाई को माता के दूध में या गरम पानी में घोलकर देना चाहिये।

अतिसार और मरोड़ा—भेद रोग प्रायः शिशुओं में होता है। इन रोगों का वास्तविक कारण माता का शिशु-पालन-सम्बन्धी अज्ञान है। अजीर्ण और मलबन्ध प्रायः इसके कारण होते हैं। इस अवस्था में प्रायः एरण्ड तैल या कोई भद्र विरेचन देना उत्तम है। और दूध पिलाने का अन्तर बढ़ाकर गरम पानी या चूने का पानी देना चाहिये। अतिसार या मरोड़ा रोग में बिना यह निश्चय किये कि आतें साफ होगईं, किसी प्रकार की स्तम्भक औषधि अफीम आदि नहीं देनी चाहिये। यदि दस्तों का रङ्ग हरा पीला हो, तो कैलोमल या ग्रे पाउडर को पल्व रिह्राई कम्पाउंड के साथ देना चाहिये। और जब यह निश्चय हो जाय कि आँतें साफ हैं, तो पल्व एपिकाक कम्पाउन्ड सोडाबाई कार्ब के साथ दे सकते हैं।

कुछ सरल उपाय—(१) मजीठ, धाय के फूल, पद्माख, आँवला, शूकशिम्बी मूल इनके कल्क को मधु के साथ देने से; (२) मोचरस, मजीठ, धातकी, पद्मकेसर मधु के साथ देने से, (३) तिल और मुलहठी के चूर्ण को तिल तैल, शर्करा और मधु से मिलाकर सेवन करने से अतिसार, (४) अंकोठ की जड़ या बड़ की जड़ इनको पीसकर देने से, (५) बिल्व, इन्द्रजौ ह्रीबेर, मोचरस और नागरमोथा मिलित २ तोला, बकरी का दूध १ पाव, जल एक सेर पाक करके १ पाव दूध शेष रखकर देने से अतिसार नष्ट होता है (६) आम, जामुन इनकी छाल के चूर्ण को मधु के साथ देना चाहिये। माता को लङ्घन करना चाहिये।

ज्वरातिसार—ज्वर के साथ यदि अतिसार रहता हो, तो पाचक औषधि देनी चहिये। जैसे अतीस इसको दिन में तीन बार मधु के साथ

(१ से ३ रत्ती मात्रा में) चाटना चाहिये। शृंग्यादि चूर्ण भी उत्तम है।

(१) धाय के फूल, बिल्व, धनिया, लोध्र, इन्द्रजौ, बाला इनको मधु के साथ (२) बिल्व, धातकी, लोध्र, गजपिप्पली, इनको क्वाथ को मधु के साथ (३) सोंठ अतीस, मेथी, इन्द्रजौ बालक, इनका काथ प्रातः देना चाहिये।

कास—यह एक ऐसा रोग है, जिसके साथ बहुत-से रोग लगे हुये हैं। अतः इसकी उपेक्षा कभी भी नहीं करनी चाहिये। शिशु को शीत से बचना चाहिये, उसकी छाती पर कपूर और मीठा तेल मलना चाहिये। खाँसी का वेग वमन करने से कम हो जाता है।

(१) पोहकर मूल, अतीस, काकड़ाश्रृंगी, पिप्पली, धमासा, इनके चूर्ण को मधु के साथ सेवन करने से (२) द्राक्षा, धमासा, हरीतकी, पिप्पली, इनके चूर्ण को घी और मधु के साथ सेवन करने से, (३) पिप्पली, नागरमोथा, अतीस, काकड़ाश्रृंगी के चूर्ण को मधु के साथ देने से कास रोग शान्त होता है।

कुक्कुर कास—यह रोग संक्रामक माना जाता है। इसमें शिशु लगातार १ या दो मिनट तक खाँसता रहता है, फिर एक 'हुप' की आवाज के साथ समाप्त करता है। इस तरह खाँसने में उसे श्वास में कठिनता होती है, चेहरा लाल होता है, आँखें बाहर आजाती हैं, कोष्ठ की मांस-पेशियां कड़ी हो जाती हैं, और कभी-कभी इस परिश्रम से उसे ज्वर भी हो जाता है। यदि इस परिश्रम में उसे वमन हो जाय, तो कुछ समय के लिये शान्ति पड़ जाती है। यह रोग एक बच्चे से दूसरे बच्चे में पहुँच जाता है। खाँसते-खाँसते कभी आक्षेप भी हो जाते हैं, विशेषतः यदि पेट में कृमि होते हैं तो।

इसके लिये शिशु को गरम रखना चाहिये। और शामक औषधियाँ यथा—ब्रोमाईड, टिंचर बैलेडोना, टिंचर कैनबिस इन्डिका, अफीम आदि का समास देना चाहिये।

काकड़ाश्रृंगी, नागरमोथा और अतीस इनके चूर्ण को मधु के साथ चटाने से कास, श्वास, ज्वर रोग शान्त होते हैं। अथवा अतीस ही को शहद के साथ चटाना चाहिये।

ससर्णी—इस रोग का कारण फेफड़ों में श्लेष्मा का रुक जाना है। बच्चे के अन्दर इतनी शक्ति नहीं होती कि वह बाहर फेंक सके। इसके लिये

क्षार देने चाहियें, जिनसे श्लेष्मा पिघलकर बाहर आजाय। इसके लिये एमोनिया कार्ब, पोटाशियम आयोडाईड, वाइनम एन्टोमेनियल, स्प्रिट एमोनिया एरोमैटिक उत्तम औषधियाँ हैं। अथवा पिप्पली, कायफल और काकड़ाश्रृंगी को शहद में चाटना चाहिये। छाती पर पान और आक के पत्ते घी लगाकर गरम करके बाँधने चाहिये। मयूरपिच्छा (मोर के पङ्ख) के भस्म के पिप्पली चूर्ण के साथ चाटना चाहिये।

वमन—अजीर्ण के कारण प्रायः वमन होता है। कभी-कभी दूध के दोष से भी वमन होता है। यदि शिशु दूध पीकर तुरन्त या कुछ समय पश्चात् वमन करता है, तो इसका कारण अजीर्ण होता है। इसके लिये मृदु विरेचन देकर चूने का पानी या डिलवाटर देना चाहिये। भोजन में दूध और गरम पानी देना चाहिये। अथवा छोटी इलायची, लौंग और पोदीने का पानी पकाकर देना चाहिये। आम की गुठली, लाजा और सैन्धव इनको मधु के साथ मिलाकर चटाने से; छोटी और बड़ी कटेरी का रस अथवा पंचकोल (पिप्पली, पिप्पलीमूल, चविका, चित्रक, सोंठ) के साथ दूध पकाकर देना चाहिये।

शूल—वायु के कारण, कृमि के कारण अथवा कब्ज के कारण या बीज आदि के सबब पेट में दर्द होता है। इसके लिये विरेचन देकर मल को साफ करना चाहिये। हरड़ के घिसकर उसमें काला नमक या सोडा मिलाकर देना चाहिये। एरण्ड तैल पिलाना चाहिये। आँतों को साफ करने के लिये 'ग्लैसरीन सपोजैटरी' गुदा में रखनी चाहिये अथवा ग्लैसरीन की पिचकारी करनी चाहिये। गरम पानी में फुलालेन उबालकर उस पर तारपीन के तेल के छींटे देकर पेट पर बाँधना चाहिये। पेट के ऊपर हींग, सेन्धा-नमक, यवक्षार, शोरा, बकरी की लेंड़ी का गरम लेप करना चाहिये।

सैन्धव, बिल्व, इलायची, हींग, भारंगी इनके चूर्ण के घी के साथ चाटने से अथवा जल के साथ पान करने से बालकों का वातिक शूल नष्ट होता है।

कृमि-रोग—बालक के पेट में छोटे-बड़े कृमि होते हैं। इससे वमन, पेट में दर्द, आक्षेप, नींद में रोना या चौंक उठना, नींद में दाँत बजाना, अतिसार आदि उपद्रव होते हैं। इसके लिये सैन्टोनीन के उचित मात्रा में

कैलोमल या सोडा बाई कार्ब के साथ देकर ऊपर से विरेचन देना चाहिये। इन्द्रजौ, वायविडङ्ग, अतीस, अजवायन खुरासानी, ढाक के बीज, ये सब वस्तुयें कृमियों को मारनेवाली हैं। ऊपर से विरेचन अवश्य देना चाहिये। भोजन में दूध देना चाहिये। मिठाई या गेहूँ आदि वस्तु नहीं देनी चाहिए।

पेट में भार (मलबन्ध)—इसके लिये बच्चे को एरण्ड-तैल देना सबसे उत्तम है। अथवा आजकल बाजार में 'लीक्विड-पैराफीन' के कई रूप बिक रहे हैं, जैसे, केलोल, पेट्रोगोल आदि। इनमें से कोई एक वस्तु नियमित रूप में देनी आरम्भ कर देनी चहिये। यदि माता के दूध में वसा कम हो, तो ऊपर का दूध देना चाहिये। यदि यह सम्भव न हो, तो रेवतचीनी को घिसकर देना चाहिये।

दाँत फुटने लगें—इस समय साधारणतः किसी विशेष चिकित्सा को आवश्यकता नहीं होती। जो उपद्रव खड़े होते हैं, वे सब स्वयं शान्त हो जाते हैं। दाँतों के निकलने के समय यदि मृदु विरेचन बालक को दे दिया जाय, तो उत्तम रहता है। मसूड़ों पर पिप्पली को घिसकर मधु के साथ लगाना चाहिये। अथवा आँवला घिसकर लगाना चाहिये। साधारण रूप में बच्चों के बीचवाले दो दाँत सबसे प्रथम निकलते हैं; परन्तु यदि ऊपर के दाँत पहले निकल आयें, तो यह अशुभ लक्षण है। बालकों में यह समय इस प्रकार का होता है, जब कि सारा शरीर दुःखी होता है।

आक्षेप—बच्चों में रोग विशेषतः पाया जाता है। इसके कारण मलबन्ध या पेट के कृमि हैं। इनके कारण इतने जोर से आक्षेप होते हैं कि शिशु के दोनों हाथों की मुट्ठी बन्द हो जाती है। वह पाँव को मारता है या कोष्ठ पर मोड़ लेता है। रोता है, आँखें बन्द होती हैं या सो जाता है। कोष्ठ के आकुञ्चनों के साथ हाथ-पाँव तन जाते हैं।

चिकित्सा के लिये—साधारणतः शिशु को गरम रखना चाहिये। उसको गरम राई के पानी में स्नान कराकर पोंछ देना चाहिये। यत्न करना चाहिये कि किसी प्रकार दस्त हो जाय। यदि दवाई का मुख से देना सम्भव न हो, तो गुदा में साबुन को बत्ती ग्लैसरीन सपोजैटरी लगानी चाहिये। मुख से पीड़ा-शामक औषधियाँ देनी चाहिये। योग्य चिकित्सक २-३ मिनट तक गरम और ठंडे पानी का स्नान शिशु को देते हैं। इससे उसके आक्षेपों का

वेग कम हो जाता है। पेट में कृमि हों, तो उसका उपाय करना चाहिये।

अपस्मार—बालकों में यदि यह रोग मिलता है, तो इसका कारण पैतृक क्रमागत है। इसलिये साधारणतः चिकित्सा निष्फल होती है। तथापि मस्तिष्क स्नायुओं को पुष्ट करनेवाली औषधियाँ देनी चाहिये, जिससे कि सम्भवतः भविष्य में लाभ हो। वे ओषधियाँ ये हैं—(१) स्वर्ण-भस्म, वच, शङ्खपुष्पी का चूर्ण मधु के साथ। (२) पेठे के रस में मुलहठी का चूर्ण देना चाहिये। ब्राह्मी का स्वरस मधु के साथ देना उत्तम है।

पारिगर्भिक—इस रोग का कारण गर्भवती स्त्री का बच्चे को दूध पिलाना है। इसके कारण बच्चे को पूरा पोषण नहीं मिलता। उसका पेट बढ़ जाता है और हाथ-पाँव निर्बल रह जाते हैं। गर्भवती स्त्री के दूध में कुछ अन्तर आ जाता है। क्योंकि साधारणतः प्रकृति का यह नियम है कि एक समय एक हो को पोषण मिलना चाहिये। इस रोग की चिकित्सा के लिये छोटी पिप्पली सबसे उत्तम है। पिप्पली का चूर्ण मधु के साथ चटाना चाहिये, अथवा दूध में पिप्पली उबालकर देना चाहिये। पिप्पली से उतरकर दूसरी वस्तु बंशलोचन, प्रवाल भस्म या पिष्टि है। इनको मधु के साथ चटाना चाहिये।

मुख-पाक—यह रोग मुख की अस्वच्छता से अथवा स्तनों के मैला रहने से होता है। इस रोग में कोष्ट बहुत सहायक होती है, आवश्यक है कि स्तनों को पिलाने से पूर्व और पीछे गरम पानी से (जिसमें एसिड बोरिक या सेंधानमक पड़ा हो) धो लेना चाहिये। दूध पिलाने के पीछे शिशु के मुख को गीली रुई से साफ कर देना चाहिये। जब यह रोग हो जाय तो सुहागे को शहद में मिलाकर या तबाखीर को मुँह में लगाना चाहिये। पेट साफ करने के लिये एरण्ड तेल अवश्य देना चाहिये। चन्दन (गोपी) को दूध में पीसकर लगाना भी उत्तम है।

नाभि-पाक—कई बार असावधानी से नाभि पक जाती है। उस समय इस पर गरम पानी का सेंक करना चाहिये। हल्दी, लोध्र अथवा जस्त तथा टैनिक एसिड का चूर्ण छिड़कना चाहिये। हरिद्रादि तैल नाभि पर लगाना चाहिये। बकरी की लेंडी दूध में पीसकर जरा गरम करके नाभि पर लगाना चाहिये। दालचीनी और चन्दन का चूर्ण उत्तम रूप से पीसकर लगाना चाहिये।

गुद-पाक—कई बार अतिसार के कारण शिशु की गुदा और नितम्ब लाल हो जाते हैं। या कृमि के कारण इस भाग पर कण्डू होती है और फिर पक जाती है। इसके लिये शीत और स्तम्भक औषधियाँ लगानी चाहिये। उदाहरण के लिये—मुर्दाशङ्ख, कत्था, इलायची या स्वर्ण गैरिक मक्खन में अथवा घी में मिलाकर लगाना चाहिये। रसौत को पानी में घिसकर लगाना चाहिये। गुदा को पंचवल्कल क्वाथ से धोना चाहिये। चूने के पानी का तर कपड़ा भी गुदा पर रखना उत्तम है। मलबन्ध का उपाय करके शिशु की पाचन-क्रिया की ओर ध्यान रखना चाहिये।

मूत्र-स्राव—बहुत-से बच्चों में यह शिकायत रहती है कि वह रात्रि में बिस्तर पर पेशाब कर देते हैं। इसका मुख्य कारण यह होता है कि उनके अंदर मूत्र-निग्रह का केन्द्र जागृत नहीं होता। और जबतक यह जागृत नहीं होता, तबतक औषध से लाभ नहीं होता। साधारणत: इसके लिये यही उपाय है कि उसको सुलाते समय और बीच में उठाकर मूत्र करवा देना चाहिये। मूत्र रोकने के लिये स्तम्भक औषधि देनी चाहिये। अफीम का उपयोग करना उत्तम नहीं। इससे बच्चे में नशे की आदत नहीं पड़ती। तवाखीर या बंशलोचन, पिप्पली, सोंठ, मिरचा, छोटी इलायची, सेंधानमक इनके बारीक चूर्ण को शर्करा के साथ चाटना चाहिये। असगन्ध तथा पुष्टिदायक वस्तु खाने को मक्खन के साथ देना चाहिये।

मिट्टी खाना—बच्चों में यह आदत बहुत पड़ती है। इसके लिये उनकी पूरी देख-रेख रखनी चाहिये। चूल्हे की पक्की मिट्टी, या खारी मिट्टी वे बहुत खाते हैं। इसके कारण बच्चों को यकृत के रोग हो जाते हैं। जिन बच्चों में यह आदत हो, उन्हें यह आदत छुटाने के लिये बन्शलोचन का चूर्ण शहद के साथ देना चाहिये। इन बच्चों को विरेचन दूसरे-तीसरे दिन देते रहना चाहिये। यह विरेचन इस प्रकार का होना चाहिये, जिससे पित्त का निकास होता रहे। पारा या कैलोमल एक उत्तम विरेचक दवाई है। साइट्रेड ऑफ मैगनेशिया भी उत्तम है। साधारण विरेचन के लिये मिल्क आफ मैगनेशिया भी बरतना उत्तम है। औषधियों के लिये मण्डूर-भस्म, त्रिफला, त्रिकटु, चित्रक, वायविडङ्ग के साथ अथवा अकेली मण्डूर भस्म मक्खन के साथ देनी चाहिये।

दुर्बलता—कई शिशुओं में वसा नहीं चढ़ती। इसका कारण दूध में वसा की न्यूनता है। इसलिये इस न्यूनता को बढ़ाने के लिये शिशु के भोजन की ओर ध्यान देना चाहिये। यदि दूध में वसा कम हो, तो उसको पृथक देना चाहिये। यदि सम्भव हो, तो सितोपलादि चूर्ण को मक्खन के साथ देवे। शरीर पर अश्वगन्धा तैल या बला तैल मलना चाहिये। औषध में अश्वगन्धा घृत देना चाहिये। चेहरे पर फीकापन हो, तो मण्डूर भस्म या लोह भस्म चटाना चाहिये।

अस्थि-दोष—इसका कारण अस्थियों की निर्बलता है। यह निर्बलता भोजन की न्यूनता, स्वच्छ वायु की कमी तथा पैतृक निर्बलता से होती है। साधारणत: इस निर्बलता के कारण पसलियों के और उपपर्शुकाओं के सन्धि-स्थान सम्मुख भाग में सूजे रहते हैं। ये बच्चे यदि शीघ्र खड़े होने दिये जायँ, या चलने दिये जायँ, तो इनकी टाँगें मुड़-सी जाती हैं। इसका कारण यह है कि टाँगों के अन्दर इतना बल न था कि वह सारे शरीर के भार को उठा सकतीं। इस निर्बलता को दूर करने के लिये हाईपोफॉस्फेट उत्तम औषधि है। इसको शरबत के रूप में या 'डोंगरे का बालामृत' के रूप में देना उत्तम है। आनार्य-चिकित्सा में 'ओस्टेलीन' का अन्त: उपयोग तथा 'काड लिवर आयल' की मालिश करना उत्तम गिना जाता है। आर्य-चिकित्सा में इस रोग के लिये खपरिया भस्म या अश्वगन्धा घृत तथा बला तैल या माष-तैल की मालिश उत्तम कही जाती है। इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि निर्बल बच्चा जल्दी खड़ा न हो। जब उसे खड़ा करना या चलाना हो, तो सहारा देकर चलाना या खड़ा करना चाहिये। उसकी टाँगों पर प्लास्टर आफ पैरिस की पट्टी बाँध देनी चाहिये। धूप में और खुली वायु में अवश्य रखना चाहिये।

शीतला का टीका—भारतवर्ष में बच्चों की मृत्यु के जितने कारण हैं, उनमें से एक कारण टीका-सम्बन्धी अज्ञान है। परन्तु यदि देखा जाय, तो इससे हानि की अपेक्षा लाभ कई गुना अधिक होता है। टीका लगवाने के लिये सबसे उत्तम समय शीतकाल होता है। शीतला का टीका लगाने की आयु ६ मास के पीछे है। आजकल माता-पिताओं की स्वाभाविक प्रतिशक्ति (रोगों से बचने की शक्ति) निर्बल होगई है, इसीसे कृत्रिम साधनों का आश्रय लेना पड़ता है। जो बच्चे माता के स्तन से मोटे नहीं हो सकते,

अथवा जिनके लिये माता का दूध अपर्याप्त रहता है, वे बच्चे रोगों से किस प्रकार स्वयं अपनी रक्षा कर सकते हैं ? इसीसे कृत्रिम उपाय (टीका लगवाने) की आवश्यकता पड़ती है। टीका लगवाने से या तो शीतला निकलती नहीं और निकलती है तो उसका जोर कम रहता है।

बच्चों की औषधि-विधि तथा मात्रा

साधारणतः बालकों के सब रोगों के कारण वे ही हैं, जो बड़े पुरुषों के, जैसे, मिथ्या आहार-विहार। इसलिये कुछ एक रोगों को छोड़कर प्रायः सब वही रोग हैं, जो बड़े पुरुषों में होते हैं। और जो रोग अपवाद हैं, वे प्रायः दूध-सम्बन्धी हैं। इसलिये रोगों की चिकित्सा भी वही है, जो बड़े पुरुषों के रोगों को है। केवल मात्रा छोटी होती है। यथा—

१—प्रथम मास में औषधियों की मात्रा १ रत्ती होनी चाहिये।

२—एक वर्ष तक प्रत्येक मास में एक-एक रत्ती मात्रा बढ़ाते जाना चाहिये।

३—एक वर्ष के पीछे प्रति वर्ष ५-५ रत्ती मात्रा बढ़ाते जाना चाहिये।

४—औषधि मधु, मक्खन, मिश्री के शरबत अथवा दूध में मिलाकर देना चाहिये।

५—जो दवाई देनी हो, उसका चूर्ण शहद में मिलाकर स्तनों के चूचकों पर मल देना चाहिये। बच्चा धोखे से पी जायगा।

६—कोई भी तीक्ष्ण, उष्ण अथवा पेटेन्ट दवाई बच्चे को नहीं देनी चाहिये, विशेषतः जिसका कम्पोजीशन मालूम न हो, या योग्य वैद्य के हाथ से नहीं दी गई है।

७—यदि बच्चा स्तनों का दूध पीता हो, तो दवा उसकी माता या धात्री को देनी चाहिये।

थोड़ी-सी सामान्य सूचनायें

१—सोते समय बच्चे का मुँह खुला नहीं रहना चाहिये। यदि खुला रहता हो, तो उसको बन्द कर देना चाहिये। अथवा उसके मुँह पर

पट्टी बाँध देनी चाहिये। मुँह से श्वास लेने के कारण उसका गला खराब हो जाता है।

२—नाक से श्वास लेने की और दाँतों से रोटी चबाकर खाने की आदत डालनी चाहिये।

३—प्रातः या सायं, विशेषतः सायंकाल स्नान देकर कपड़े से शरीर को पोंछना चाहिये।

४—बच्चों को कभी डराना नहीं चाहिये। उसे यथासम्भव खुली वायु में रखना चाहिये।

५—दूध, घी, मक्खन, फल आदि पदार्थ विशेषतः देने चाहिये।

६—बच्चे को बहुत प्यार नहीं करना चाहिये।

प्रकरण बारहवाँ

विष

विवेचन—विष क्या वस्तु है ? इसका निर्णय करना कठिन है। जो भोजन शरीर के लिये आवश्यक और पुष्टिदायक समझा जाता है, वही भोजन विसूचिका और अलसक आदि भयानक रोगों को उत्पन्न करके मृत्यु का कारण बनता है, और जो संखिया या अफीम।'विष' गिने जाते हैं, वे भी लोगों के प्राण बचाने में काम आते हैं। इसलिये कौन-सी वस्तु विष मानी जाये, इसका कोई निर्णय नहीं है। साधारणत: जिस वस्तु को सुगमता से व्यवहार में प्रत्येक मनुष्य न ला सके, और जिससे बहुत शीघ्र नुकसान या हानि पहुँचने की अधिक सम्भावना रहती है, वह 'विष' माना जाता है।

विष दो प्रकार का है। एक स्थावर और दूसरा जंगम। स्थावर विष में खनिज विष तथा संखिया आदि का समावेश होता है, जङ्गम विष में साँप, बिच्छू आदि के विष का। इन दोनों के सिवा एक तीसरे प्रकार का भी विष है, जिसको 'गर' शब्द से कहा जाता है, यह दो अविष पदार्थों के संयोग से होता है।

विष-सम्बन्धी सामान्य ज्ञान प्रत्येक मनुष्य को रहना चाहिये।

कारण—इस सामान्य ज्ञान के कारण मनुष्य स्वयं सर्प विष आदि से बच सकता है और दूसरों को बचा सकता है। विष प्राणी अनेक हैं, विष भी बहुत प्रकार के हैं। यहाँ पर मुख्यत: विषों ही का उल्लेख किया जायगा।

संखिया—दूसरे आदमी के प्राण लेने के लिये भारत में जो विष दिये जाते हैं, उनमें संखिया सबसे प्रथम विष है। क्योंकि इसमें कोई स्वाद नहीं होता रङ्ग श्वेत होता है। इसके देने से वैसे ही लक्षण उत्पन्न होते हैं,

जैसे विसूचिका या हैजे के होते हैं। उदाहरण के लिये—खाने से पेट में दर्द उत्पन्न होता है, दस्त होते हैं, वमन होते हैं, उदर में आकुञ्चन होते हैं, शरीर में आक्षेप होता है। यह दर्द दबाने से बढ़ जाता है। शरीर ठण्डा हो जाता है, पसीना आता है, मूत्र में जलन होती है और मूत्र थोड़ा-थोड़ा आता है। कई बार पेशाब बन्द हो जाता है, या उसमें रक्त पड़ता है। दर्द के कारण रोगी चिल्लाता है, नाड़ी पतली, कँपकपी-युक्त और निर्बल रहती है। इस विषयवाला रोगी साधारणतः होश में रहता है।

उपाय—२॥ ग्रेन संखिया आदमी के प्राण लेने के लिये पर्याप्त है। परन्तु संखिया का बहुत कुछ भाग वमन और विरेचन के मार्गों से बाहर हो जाता है। इसलिये इस विषय के बहुत-से रोगी उचित उपायों से बचाये जा सकते हैं।

विष को निकालने के लिगे सबसे उत्तम उपाय वमन है। रोगी को वमन कराने के लिये मैनफल या सुवा का काढ़ा देना चाहिये। राई का घोल भी उत्तम है। यदि रोगी दवाई पीकर वमन न कर सके, तो रबर की नली-द्वारा (अभाव में एरण्ड-नाल से) वमन करवा देना चाहिये। इसके लिये प्रतिविष लोह का जङ्ग है। इसको पानी में घोलकर देना चाहिये। दाह को शान्त करने के लिये ईसबगोल को, बिहीदाने को, गुलाबजल में लुवाब बनाकर, मिश्री डालकर देना चाहिये। अण्डे की सफेदी भी उत्तम है। खाने के लिये चिकनी लुवाबदार, ठण्डी वस्तु के सिवा और कुछ नहीं देना चाहिये।

चूने का पानी भी उत्ताम माना जाता है। तिब्बे अकबरी में लिखा है कि "पुरानी शराब, शहद का पानी, लेसदार चीजें, खितमी का पानी और भूसी का शीरा देना चाहिये।" वमन कराने के लिये ताजे करैले को कूटकर उसका पानी निचोड़कर पीना चाहिये। इससे वमन हो जाता है। पपड़िया कत्था महीन पीसकर पानी में घोलकर पिलाने से झटपट उसके काम को नष्ट कर देता है। घी और दही का देना बहुत उत्ताम है।

हरताल और मनःशिला—ये दोनों संखिया के समास हैं। इसलिये संखिये के भाँति इसकी चिकित्सा करनी चाहिये। इसमें गर्म पानी, बादाम का तेल, गौ का घी और मक्खन ये सब वस्तुयें मिलाकर

देनी चाहिये, जिससे वमन हो जाय और दाह शान्त हो जाय। फिर जौ का दलिया गेहूँ या अलसी की दलिया शहद के साथ खाना चाहिये। खम्बाजी का पानी और शहद भी लाभदायक है।

पारा—पारा अपने आप इतना भयानक विष नहीं, जितने इसके समास। रस कपूर या हाइड्राजराई परक्लोराईड, कैलोमल आदि यदि मात्रा से अधिक लिये जायँ, तो शरीर में विष उत्पन्न करते हैं। इनके विष का अधिक प्रभाव मूत्र-संस्थान पर पड़ता है, क्योंकि पारा विशेषत: इस मार्ग से निकलता है। पारे के विष में वमन से बचना चाहिये। लुआबदार वस्तुवें, जैसे—ईसबगोल, अण्डे की सफेदी, अलसी की दलिया, गोंद को दूध में घोलकर, घी आदि वस्तुवें देनी चाहियें। यदि पारा कच्चा दवाई के रूप में खाया जाय, तो यह शरीर में इकट्ठा होता रहता है, और कालान्तर में शरीर पर फुंसियों के रूप में फूटता है। इसके लिये भाँगरे का रस पीना चाहिये। तिब्बे अकबरी के अनुसार नील के पौदे को जड़-समेत उखाड़कर, उसको पानी में खूब बारीक पीसकर, बहुत-से पानी में घोलकर पीने लगे। इस प्रकार आध-आध घण्टे के अन्तर से पीने पर सब पारा मूत्र-मार्ग से निकल जायगा। इस मूत्र को अलग प्याले में एकत्रित करना चाहिये, जिससे पारे के आने का प्रमाण मिल जाय। इस दिन सर्वथा भोजन नहीं करना चाहिये। एक रोगी को अमृत भल्ला तक के खाने से आराम होगया था।

नीलातुत्थ—कभी तो धोखे से या कभी भूल से यह विष खाया जाता है, या दूसरे को दिया जाता है। नीलातुत्थ ताँबे का समास है। यह साधारणत: वमन के लिये दिया जाता है। इसलिये बड़ी मात्रा में दिये जाने से यह स्वयं वमन के रूप में बाहर हो जाता है। परन्तु यदि कदाचित् बाहर न हो, तो शूल, अतिसार, आक्षेप उत्पन्न करता है। इसके लिये सबसे प्रथम वमन कराना चाहिये। इसके पीछे लुआबदार वस्तुवें, दूध, गेहूँ का या अलसी की दलिया देना चाहिये। नीबू का रस और शक्कर देनी चाहिये। कत्थे का पानी भी देना उत्तम है।

सीसक—इसका विष "पलम्बाई एसिटेट" (शुगर ऑफ लैड) से होता है; क्योंकि यह देखने में श्वेत और तौल में भारी है। इससे मर्करी परक्लोराइड के धोखे में बरते जाने का भय है। इसके खाने से मुँह में धातु

का मीठा स्वाद, गले में अम्लता, वमन, मल का अवरोध, पेट में तीव्र शूल, हाथ-पाँव में खैंच-तान होती है।

उपाय—एप्सम साल्ट देना चाहिये। सिरके को पानी मे घोलकर देना भी उत्तम है। गोंद का पानी, दूध, काञ्जी और दूसरी लुवाबदार वस्तुओं का उपयोग करना चाहिये। तिब्बे अकबरी में लिखा कि अंजीर, सोया और पापड़ी नोन के काढ़े से वमन करना चाहिये। दस्तावर जवारीश देनी चाहिये। साढ़े तीन माशे करफयून डेढ़ माशे मिर्च को शराब के साथ देने से पसीना आता है। मुँह से लार लाने का यत्न करना चाहिये। अजवायन के अर्क के साथ अफसन्तीन, बूल और अजवायन के बीज ९ माशे प्रत्येक देना चाहिये, इससे मूत्र आता है। दस्तों के लिये ७ रत्ती सकमूनियां देना भी उत्तम है।

काँच—जबतक इसका चूरा अधकचरा रहे तभी तक यह खतरनाक है। बहुत बारीक चूर्ण इतना नुकसान नहीं देता। इसके कारण आँतों और आमाशय से रक्त-स्राव होता है। पेट में दर्द और तीव्र आकुञ्चन होते हैं।

उपाय—दूध, दही या इमली खूब पिलानी चाहिये। घी का उपयोग विशेषतः करना उत्तम है। साधारणतः काँच कोई विषैली वस्तु नहीं; परन्तु इसके खाने से व्रण होकर आमाशय और आंत्रों में हानि पहुँचती है। स्वामी दयानन्द सरस्वती को यही विष दिया गया था।

हाइड्रो सोनिक एसिड या साईनाइड—यह विष प्रायः आत्महत्या के प्रयोग में बरते जाते हैं। इसलिये चिकित्सा की सहायता पहुँचे, उससे पूर्व काम हो चुका होता है। ये विष बहुत तीक्ष्ण हैं। यदि चिकित्सा का अवसर मिल जाय, तो बहुत शीघ्रता करनी चाहिये। शिर और छाती पर ठण्डा पानी या बर्फ का टुकड़ा रखना चाहिये। कृत्रिम श्वास चलाना चाहिये। स्मेलिंग साल्ट या लाइकर एमोनिया एसिटेट सुँघाने के लिये देना चाहिये, जिससे रोगी होश में आजाये। स्प्रिट एमोनिया एरोमैटिक पीने के लिये देना चाहिये। इसका प्याला रोगी की नाक के सामने कर देना चाहिये। खुली वायु में रखना, पङ्खा करना चाहिये। सम्भव हो तो वमन कराना चाहिये। वमन के लिये घी का उपयोग करना सबसे उत्तम है।

यदि मुँह से वमन देना सम्भव न हो, तो १⁄₁₀ ग्रेन एट्रोपीन सल्फेट का इंजेक्शन देना चाहिये। यदि हाइड्रोजन पर-ऑक्साइड का सैल्युशन या क्लोरीन वाटर मिल जाय, तब रोगी को पिला देना चाहिये।

फौस्फोरस—इसका विष दियासलाई का मसाला खाने से अथवा कभी टॉनिक-शक्ति की दवाई के खाने में भूल से अधिक चले जाने से होता है। इससे धीरे-धीरे विष में यकृत विकृत होकर कामला रोग हो जाता है। इसके लिये पुराना या फ्रेन्च टरपनटाइन ४० बूँद और पानी १ औन्स। इसको प्रत्येक १५ मिनट बाद देना चाहिये। 'म्युरल' का कहना है कि ३ ग्रेन कॉपर सल्फेट को पानी में घोलकर प्रत्येक ५ मिनट के अन्तर से देना चाहिये, जबतक रोगी को वमन न हो। विरेचन के लिये एप्सम साल्ट देना चाहिये। पोटाशियम पर-मैंगनेट का हलका घोल या हाइड्रोजन पर ऑक्साईड पीने को देना चाहिये। यदि दर्द बहुत हो, तो मोरफ़िया सल्फेट को इन्जेक्शन की रीति से देना चाहिये। तेल और चर्बी से यथासम्भव बचना चाहिये।

एसिड (अम्ल)—सल्फ्युरिक, नाईट्रिक एसिड आदि दाहक विष माने जाते हैं। इनके पीने से शरीर के अन्दर की श्लैष्मिक कला जल जाती है। इस अवस्था में कभी भी वमन नहीं देना चाहिये। मैगनेशिया आधा औन्स से १ औन्स पानी में मिलाकर देना चाहिये। चौक, कलई दीवारों पर से खुरचकर पानी में घोलकर देना चाहिये। सोडाबाई कार्ब या वाशिंग सोडा दूध में या पानी में देना चाहिये। नीबू का शरबत पीने को देना चाहिये। लुवाबदार वस्तुयें, जैसे, अण्डे की सफेदी, ईसबगोल का लुवाब चीनी के साथ देना चाहिये।

एलकीलीज (क्षार)—अमोनिया, पोटाशियम, सोडा आदि के कारण कई बार विष हो जाता है। इसके लिये सिरका और पानी समान भाग लेकर पिलाना चाहिये। नीबू का शर्बत उत्तम है। किसी प्रकार का वमन नहीं देना चाहिये। तैल या चिकनी वस्तु का देना उत्तम है।

एन्टीमनी—इस विष के कारण रोगी को वमन हो जाता है। इस वमन को बढ़ाने के लिये गरम पानी पीने के लिये देना चाहिये। कत्था

अथवा माजूफल का पानी या टैनिक एसिड देना चाहिये। मैगनेशिया विरेचन के लिये देना चाहिये।

जस्ता—दूध, सोडा, मैगनेशिया को यथासम्भव शीघ्र पीने के लिये देना चाहिये। पम्प या वमन नहीं देना चाहिये।

लोह—इसके खाने से शिर-दर्द, मुँह में खुश्की और पेट में दर्द होता है। इसके लिये वमन और विरेचन देना उत्तम है। तिब्बे अकबरी में लिखा है कि "इस रोग में बहुत-सा ताजा दूध पिलाना चाहिये, जिससे दस्त हो जाय। इसके पीछे मक्खन और गाय का घृत खाने को देना चाहिये। गुलरोगन, बनफसे का तेल और वेद का तेल सिर्के में मिलाकर सिर में लगाना चाहिये। खाने को चकमक पत्थर खिलाना चाहिये, जिससे बिखरा हुआ लोहचूर इकट्ठा हो जाय। जब तक लोहे के टुकड़े आमाशय से न निकल जायँ, वमन बहुत लाभदायक है।"

सिल्वर नाईट्रेट—यह दाहक विष है। इसके लिये सेंधानमक पानी में मिलाकर वमन कराना चाहिये। पम्प नहीं करना चाहिये।

मद्य—शराब को अधिक मात्रा में पीने से आदमी बेहोश हो जाता है। श्वास में शराब को गन्ध रहती है। उसकी पुतली फैल जाती है। रोगी को वमन कराना चाहिये। एमोनिया सूँघने को तथा पीने के लिये देनी चाहिये। शिर पर ठण्डा पानी डालना चाहिये। रोगी को आवाजों से, उठाये रखना चाहिये। कृत्रिम श्वास प्रचलित कराना चाहिये। भुजाओं को गरम रखना चाहिये।

कोकीन—इसका व्यवहार प्रायः बाजीकरण या कामेच्छा की तृप्ति के लिये किया जाता है। इसका विष होने पर शरीर में उत्तेजना होती है। शरीर प्रायः ज्ञान-रहित हो जाता है। पुतलियाँ संकुचित रहती हैं, रोगी बेसुध पड़ा रहता है। इसके लिये आमाशय को पम्प के द्वारा धो देना चाहिये। उत्तेजक औषधियाँ जैसे, ब्रांडी या अमोनिया मुँह से पानी के लिये देनी चाहिये। एमाईल नाइट्रेट या एमोनिया के वाष्प नाक पर सुँघाने चाहिये। कृत्रिम श्वास देना चाहिये। मौरफिया सल्फेट चौथाई ग्रेन को इंजैक्शन से देना चाहिये।

अफीम—भारतवर्ष में जिस प्रकार संखिया दूसरे के प्राणों को लेने के लिये काम में आता है, उसी प्रकार अफीम आत्म-हत्या के काम में आती है। कई बार दाइयाँ बच्चे को सुलाने के लिये अफीम का प्रयोग करती हैं। उनकी गलती से प्रायः मृत्यु हो जाती है। दूसरी अवस्था में शिशु-हत्या के लिये मातायें बच्चे को अफीम दे देती हैं। अथवा मातायें यह समझकर कि उनके अफीम खाने से गर्भ मर जायगा, इसलिये अफीम का इस्तेमाल करती हैं। अफीम चूँकि सुगमता से मिल सकती है, इसीसे इसका व्यवहार अधिक होता है। अफीम के खाने से या खिलाने से रोगी को चक्कर आता है, शिर में दर्द होता है, अफीमची की भाँति झोंका खाता है, बोलने से सुनता नहीं, जोर से आवाज देने पर चौंकता है और फिर गिर जाता है। आँखों की पुतली बहुत ही अधिक संकुचित होती है। श्वास बहुत धीरे-धीरे चलता है। श्वास में अफीम की गन्ध रहती है। यदि वमन होता है, तो उसमें अफीम मिल जाती है। अफीम के विष में चिकित्सा का समय मिल जाता है। तीन रत्ती अफीम प्राण नाश कर सकती है।

इसकी चिकित्सा के लिये रोगी को आवाजों से या शोर आदि से उठाते रहना चाहिये। उसको वमन कराना चाहिये। पम्पों द्वारा सम्भव हो, तो "पोटाशियम पर मैगनेट" को ६ से १० ग्रेन २० औन्स पानी में घोलकर आमाशय में पहुँचाना चाहिये। और थोड़ी-थोड़ी देर बाद लेते रहना चाहिये। रोगी के मुँह पर ठण्डा पानी छिड़कना चाहिये। भुजाओं को गरम बोतलों से गरम रखना चाहिये। गरम चाय या काँफी पीने को देना चाहिये। "कैफीन सायट्रेट" का उपयोग उत्तेजना देने के लिये करना चाहिये। आँख की पुतली जब फैलने लगे, तब समझना चाहिये कि रोगी स्वस्थ होगया। कृत्रिम श्वास चलाना चाहिये। आधा ग्रेन एट्रोपीन सल्फेट का इंजैक्शन करना चाहिये। तिब्बे अकबरी में लिखा है कि सोया और मूली के काढ़े में शहद और नमक मिलाकर वमन कराना चाहिये। अकरकरा और तिरियाक अरबा भी लाभदायक है। मिर्च, हींग, देवदारु समान भाग लेकर, इनकी गोली बनाकर खाना चाहिये। हकीम खंजंदी का कहना है कि शराब में अकरकरा, जुन्दबेदस्तर, दालचीनी मिलाकर देवे। इसी प्रकार केसर और कस्तूरी आदि से बने हुये गरम माजूम भी देने चाहियें।

ज़हरकुचला (नैक्सवोमिका)—यह विष प्राय: गल्ती से खाया जाता है; क्योंकि इसका स्वाद बहुत कड़वा है। इस विष का रोगी सदा सचेत रहता है। इसका एक एलक्लोईड निकलता है, जिसको 'स्ट्रिकनीन' कहते हैं। यह रंग में श्वेत, स्वाद में कड़वी है, इसीसे इसका धोखा क्युनीन से हो जाता है। इस रोग का सबसे बड़ा लक्षण यह है कि रोगी के मुंह की जबाड़ी खिंच जाती है। पीठ ज़मीन से उठ जाती है, हाथ-पाँव तन जाते हैं। प्राय: सब लक्षण 'टिटैनिक' से मिलते हैं। इस विष का प्रभाव नसों पर और स्नायुवों पर बहुत होता है। अत: उनको ढीला करने का उपाय करना चाहिये। रोगी को क्लोरोफार्म रूमाल पर गेरकर सुँघाना चाहिये। आमाशय तथा गुदा-द्वारा पोटाशियम ब्रोमाईड अथवा क्लोरल हाईड्रेट पानी में घोलकर देना चाहिये। वमन कराना सम्भव हो, तो वह भी उपाय करें। यदि मुँह से दवाई न जाय, तो एपो-मॉर्फीन हाइड्रो क्लोराईड को इंजैक्शन से देना चाहिये। कृत्रिम श्वास चालू करना चाहिये। टैनिन का देना भी उत्तम है। घी को यथेष्ट मात्रा में पिलाना चाहिये।

धतूरा—यह विष किसीके प्राण लेने के उद्देश्य से नहीं दिया जाता; परन्तु किसीका माल लूटने के उद्देश्य से इसके बीजों का व्यवहार मिठाई में, तम्बाकू में किया जाता है। इस विष के कारण गला और मुँह सूख जाता है, निगरण कठिन हो जाता है, पुतली फैल जाती है, श्वास में रुकावट आजाती है, मूत्र बन्द हो जाता है और कठिनता से आता है। आँखों के सामने तारे से दिखाई देता है। रोगी उनको पकड़ना चाहता है। इस विष के प्रतीकार के लिये यथासम्भव सबसे प्रथम वमन देना चाहिये। रोगी को अफीम का उपयोग कराना चाहिये। एक औन्स पानी में आधा ड्राम अफीम का टिंचर मिलाकर देना चाहिये। पिलोकार्पिन नाइट्रेड आधा ग्रेन अथवा मॉरफीन सल्फेट तिहाई ग्रेन सूची वेध विधि से देना चाहिये। उत्तेजक औषधियाँ और गरम चाय पिलानी चाहिये। कैथेटर से मूत्र निकालना चाहिये। कृत्रिम श्वास प्रचलित करना चाहिये। समुद्र-फल गोमूत्र में घिसकर देना चाहिये। घी का यथेष्ट उपयोग कराना भी अच्छा है। अफीम धतूरे का प्रतिविष माना जाता है। दूध चावल या दही भात खाने को देना चाहिये।

बछनाग (एकोनाइट)—इसके खाने से मुँह, जीभ और ओष्ठ पर जलन और झनझनाहट होती है। मुँह से पानी निकलता है, आँखों के सामने अँधेरा होता है, शरीर में कँपकँपी रहती है, कान में आवाज़ सुनाई देती है, श्वास धीमा, नाड़ी निर्बल और छोटी हो जाती है। हाथ-पाँव ठण्डे हो जाते हैं, और अन्त में मृत्यु हो जाती है।

उपाय—शलगम के बीज से वमन करना चाहिये। शाहबलूत के काढ़े में ३ रत्ती कस्तूरी घोलकर देना चाहिये। अधिक शराब पिलाये, जिससे रोगी को वमन हो जाय। अथवा शलगम के बीजों का काढ़ा करके घी, जैतून का तेल और तिल के तेल के साथ देना चाहिये। कॉफी पिलानी चाहिये। ईथर, डिजीटेलस या स्ट्रिकनीन इनको इंजैक्शन द्वारा देना चाहिये। रोगी के बिस्तर की पाँयत को सिर से ऊँचा कर देना चाहिये। सूंघने के लिये एमाईल नायट्रेट का उपयोग करना चाहिये। कृत्रिम श्वास चालू करना चाहिये। अश्वगन्धा का चूर्ण घी के साथ देना चाहिये।

भाँग—इसका विष प्रायः लूटने के लिये अथवा मज़ाक में बरता जाता है। इसके खाने से जिस भी स्थिति में रहकर दौरा उठता है, उसी स्थिति में वह जाता है। रोगी हँसता रहता है या रोता है, थोड़ी-थोड़ी देर में सो जाता है, अचेतनता आ जाती है, चक्कर आता है। इसकी चिकित्सा के लिये वमन कराना चाहिये, विरेचक औषधियाँ देनी चाहिये। शिर के ऊपर ठण्डा पानी गिरवाना चाहिये। रोगी को पानी की धारा के नीचे बाँध देना चाहिये। रोगी को अमोनिया सुँघानी चाहिये। रोगी को सोने देना चाहिये। दही या खट्टी छाछ खाने को देना चाहिये। वमन कराने के पीछे अंजीर का काढ़ा तथा बादाम का तेल, मक्खन तथा शराब देनी चाहिये।

कनेर—यह एक विषैला वृक्ष है। इसके पत्ते पशु भी नहीं खाते। मूल विषैला तथा तीक्ष्ण है। इसके कारण मूठ गर्भ सुगमता से बाहर हो जाता है। चिन्ह—वमन, चक्कर, बेशुद्धि, खींच-तान, नाड़ी निर्बल रहती है। रोगी ठण्डा हो जाता है, श्वास बन्द हो जाता है। मूत्र बन्द हो जाता है, जीभ में सूजन और पेट में गुड़गुड़ाहट रहती है। रोगी को वमन कराना चाहिये। वमन के पीछे ताजे दूध का कुल्ला करना चाहिये। जौ के दलिये में

गुलरोगन मिलाकर पीना चाहिये।

तमाखू—तमाखू एक विषैला पदार्थ है। नवजात शिशु के पेट पर यदि तमाखू का पत्ता मिला करके या किसी बढ़िया सिगरेट का तम्बाकू पानी के साथ पीसकर बाँध दिया जाय, तो बच्चा २४ घण्टे में मर जाता है। इसमें से 'निकोटीन' नाम का विषैला पदार्थ निकलता है। नये आदमी को यदि पान में तम्बाकू खिला दिया जाय, तो उसको चक्कर आने लगते हैं। इसके विष के कारण नाड़ी तेज चलती है, उल्टी आती है और पीछे नाड़ी मन्द पड़ जाती है। शरीर में अशक्ति मालूम पड़ती है। रक्ताशय की क्रिया बन्द होकर परिणाम में मृत्यु होती है। वमन कराकर घी पर्याप्त मात्रा में पिलाना चाहिये। माजूफल का काढ़ा भी वमन के लिये उत्तम है। एरण्ड-तैल का, सनाय का विरेचन देना उत्तम है।

भिलावा—भिलावा अग्नि के समान गरम है। इसके खाने से मुख, गाल, जिह्वा और गले में फफोले पड़ जाते हैं। पेट में जलन, शूल होता है। ९ माशा भिलावा मृत्यु का कारण बन सकता है। शरीर की त्वचा पर लगने से त्वचा लाल हो जाती है, सूज जाती है, फुन्सियाँ निकल आती हैं, उनमें पानी पड़ जाता है। इस रोग के लिये ठण्डी और चिकनी वस्तुओं का उपयोग करना चाहिये। बादाम का तेल, घी, घिया का तेल खिलाना चाहिये। अखरोट की गिरी और पिस्ता भी खाना उत्तम है। बाहर लगने पर स्थान खट्टे मट्ठे से धोना चाहिये और अखरोट की मींग, नारियल की गिरी, चिरौंजी, काले तिल इनको महीन कूटकर लेप करना चाहिये। फिर मट्ठे से धो डालना चाहिये। यदि इमली का निर्मल पानी मिल जाय, तो इसमें नारियल की गिरी चन्दन की तरह घिसकर लेप करना चाहिये। बिना ब्याई हुई भैंस का गोबर मलना चाहिये। विरेचन देना चाहिये। दूषित रक्त को निकालने के लिये रक्तमोक्षण (शिरावेध) करवाना चाहिये। दशांग लेप का उपयोग भी उत्तम है।

जमालगोटा—इसके खाने से वमन, अतिसार एवं पेट में, गले में जलन होती है। इसके लिये इलायची दही में पीसकर खाने को देनी चाहिये। दही, भात, शर्करा तथा घी खाना चाहिये। पीने के लिये लुवाबदार वस्तुयें ईसबगोल, बिहीदाने का लुवाब या अण्डे की सफेदी देना चाहिये। दर्द को

कम करने के लिये टिंचर ओपयाई २० बूँद या मॉर्फिया लाइकर हाइड्रोक्लोर देना चाहिये। मक्खन को तबाशीर आदि के साथ देना चाहिये।

आक—इसका दूध विषैला होता है। इसका दूध लगाने से छाला उठ आता है।

उपाय—इमली के पत्ते पीसकर लगाने चाहिये।

वाष्पीय विष—क्लोरीन, कार्बनडाई ऑक्साइड, कोलगैस आदि कई प्रकार की वायु इस प्रकार की हैं, जिनके कारण आदमी का मरण हो जाता है। उदाहरण के लिये—कोयलों या गन्धक को जलाने से जो वायु उत्पन्न होती है, उसको सूँघने से आदमी मर जाता है। दूषित वायु के कारण मनुष्य का साँस तंग हो जाता है। इसके लिये रोगी को यथासम्भव एकदम से खुली वायु में ले जाना चाहिये। उसको कृत्रिम श्वास देना चाहिये। ऑक्सीजन को सूँघना चाहिये। रोगी को गरम रखना चाहिये और उत्तेजक औषधि देनी चाहिये।

जान्तविक विष

सर्प-विष—सर्प के काटने पर रक्त थोड़ा-सा निकलता है और दाँत के निशान व्रण के दोनों ओर दो-दो होते हैं। सर्प के काटने पर जहर रक्त-वाहिनियों द्वारा शरीर में फैल जाता है। इससे मनुष्य में बेहोशी आती है।

उपाय—(१) सबसे प्रथम दंश के स्थान से ऊपर रबड़ की नली या कोई कपड़ा कसकर बाँध देना चाहिये, जिससे रक्त-संचार रुक जाय। अब इसस्थान को मुँह से चूसना चाहिये। चूसने से पूर्व इस बात का निश्चय कर लेना चाहिये कि मुख में किसी प्रकार का व्रण न हो। चूसने से पहले मुख को गुलरोगन और बनफसे के तेल में चिकना कर लेना चाहिये। चूसने से पूर्व कुछ खा लेना चाहिये। खाली पेट चूषण करना उत्तम नहीं। पीछे से सब थूक निकालकर शराब से कुल्ला करना चाहिये और थोड़ा-सा पी भी लेना चाहिये।

(२) दंश के स्थान पर चाकू से चीरा देकर रक्त निकालना चाहिये। रक्त निकालने पर नमक, कार्बोलिक एसिड या पोटाशियम पर मैंगनेट, एसिड, नाइट्रिक आदि से जला देना चाहिये। यदि यह सम्भव न हो, तो अग्नि में शलाखा को लाल करके उससे जला देना चाहिये। अथवा प्याज को कूटकर रक्त निकलने पर बाँध देना चाहिये।

(३) रोगी को उत्तेजक औषधियाँ स्ट्रिकनोन, शराब आदि देनी चाहिये। रोगी को शोर आदि से जगाते रहना चाहिये।

(४) पोटाशियम परमैगनेट का घोल, नमक का घोल या गरम घी पिलाना चाहिये, जिससे रोगी को भली प्रकार वमन होता रहे। जबतक पित्त बाहर न आये, घी पिलाते रहना चाहिये। घी के पिलाने से रोगी के बचने की बहुत सम्भावना है।

(५) अनार्य-चिकित्सा की 'एन्टी वेनोम सीरम' को भी सूची वेध द्वारा देकर देखना चाहिये।

(६) हुक्के का गुल या गाँजे का गुल इस विष में उपयोगी माना जाता है। रासायनिक दृष्टि से यह 'निकोटीन' तीव्र विष है। दंश के स्थान पर रक्त निकालकर इसको मलना चाहिये। यदि दंश के स्थान पर रक्त न मिले, तो दंश से ऊपर कहीं भी जहाँ पर कि लाल रक्त मिल जाय, वहीं पर इसको मलना चाहिये। इसके मलने से यह विष सर्प-विष को नष्ट कर देता है।

(७) हुक्के का पानी, तुलसी का रस, केले का रस, लहसुन का रस, ये वस्तुयें यथासम्भव शीघ्र पिलानी चाहिये। इनसे रोगी को वमन होगा।

(८) साँप को पकड़कर काटने से भी साँप का जहर कम हो जाता है। अथवा दंश के स्थान पर मुर्गी की गुदा को रखना चाहिये। इस विष की गरमी से मुर्गी मर जायगी, फिर दूसरी मुर्गी रखनी चाहिये। इस प्रकार जबतक मुर्गी का मरना बन्द न हो, तबतक मुर्गी को रखना चाहिये। बकरी की मींगनी का लेप भी उत्तम है।

(९) (१) गृह-धूम, हल्दी, दारुहल्दी, चौलाई, इनको दधि और घृत में मिलाकर लगाने से, पीने से साँप का काटा हुआ अच्छा होता है। (२) घृत, मधु, मक्खन, पिप्पली, शृङ्गबेर, मिर्च और सेंधव इनको पीना चाहिये। (३) हुब्बविलसा, सूखा जूफा, जङ्गली शलगम के बीज, सफेद मिर्च, कालीमिर्च, पिप्पली, बच, रूमी सौंफ, अजवायन, तगर, जीरा, भाँग के बीज प्रत्येक १४ माशे, बालछड़, फूका हुआ गन्दबेल प्रत्येक २१ माशे, इनको कूट-छानकर शहद में मिलाना चाहिये। (४) कलौंजी, हजार स्पन्द के बीज, जीरा प्रत्येक ७ माशे, गोल जरावन्द, पाषाणभेद प्रत्येक ३॥ माशे,

सफेद मिर्च, बूल प्रत्येक १½ माशे, इनको शहद में मिलाकर पीछे से शराब में घोलकर देना चाहिये।

(१०) साँप के काटे हुये को नीम का पत्ता कड़वा मालूम नहीं होता। परन्तु विष उतर जाने पर कड़वा मालूम होने लगता है।

(११) दंश पर गाल और जैतून का तेल औटाकर लगाने से भी दाह हो जाता है। इसमें नमक भी मिला लेना चाहिये।

बिच्छू का विष—बिच्छू के काँटा होता है। जिस प्रकार ततैया अपना काँटा चुभो देता है, उसी प्रकार बिच्छू भी अपना काँटा चुभो देता है। इस काँटे के चुभने से विष शरीर में पहुँच जाता है।

उपाय—(१) दंश पर लाइकर अमोनिया कैम्फर लगा देना चाहिये, अथवा कोई ऐसी दवाई जो स्थान को बेभान बना दे। जैसे—क्लोरोफार्म, कोकीन का इन्जैक्शन आदि।

(२) एपिकॉक क्वैना पाउडर या टार्टरिक एसिड को पानी में मिलाकर लगाना चाहिये।

(३) सुहाञ्जने के गोंद को पानी में पीसकर स्थान पर चिपका देना चाहिये।

(४) मीठा तेलिया, जमालगोटा, नौसादर, नमक, हरताल, नीलेतुत्थ में से किसी दवाई को पानी में पीसकर लगा देना चाहिये।

(५) जीरे को पीसकर घी और सेंधानमक में लगाने से लाभ होता है। घी को गरम करके नमक के साथ मिलाकर उस प्रदेश पर लगाना चाहिये।

(६) पुल्टिस का बाँधना भी उत्तम है। नमक का खाना भी उत्तम है।

(७) गिले इरमानी और सिरके का लेप भी उत्तम है। जुन्दबेदस्तर और परफयून को लगाना चाहिये।

(८) पछने लगाकर रक्त निकलवा देना चाहिये।

चूहे का विष—कई बार चूहा सोते हुये काट लेता है। इसमें ज्वर भी चढ़ता है।

उपाय—(१) टार्टीर एमिटिक का इंजैक्शन देना चाहिये।

(२) गृहधूम, मजीठ, हल्दी, नमक के लगाने से और रक्तमोक्षण कराने से चूहे का विष अच्छा हो जाता है। पारा, गन्धक, कपूर और शिरीष इनको आक के दूध में मिलाकर लेप करना चाहिये।

(३) आखुकर्णी के पत्तों का रस और सनाय को बहुत दिनों तक पीना चाहिये।

कुत्ते का विष—पागल कुत्ता जब आदमी को काट खाता है, तब वह आदमी पानी से डरने लगता है। इसका उत्तम इलाज 'कसौली' में जाने से होता है। स्थानिक उपाय निम्न है—

(१) काटने के स्थान को जला देना चाहिये, या लाल मिरचों को पीसकर लगा देना चाहिये।

(२) अंकोल की जड़ या धतूरे के पत्तों या मूल का रस पिलाना चाहिये। और इतना पिलाना चाहिये कि वह आदमी पागल कुत्ते के समान पागल हो जाय। फिर उसको धूप में बाँधकर घी पिलाना चाहिये, जिससे खूब वमन हो। जब लक्षण शान्त हो जायँ, तब उसको छोड़ देना चाहिये।

(३) शिरीष के बीजों को थोर के दूध में पीसकर लगाने से लाभ होता है।

(४) कुचले को घिसकर ज़ख्म पर लगाना चाहिये।

(५) आकाश बेल और हरड़ का काढ़ा देना चाहिये। सनाय साढ़े सत्रह माशे, काबुली हरड़ साढ़े चौबीस माशे, आकाशबेल सवा दो माशे, नमक साँभर पौने दो माशे, बिस्फायज, हिज्र इरमानी प्रत्येक साढ़े चार माशे, गारीकून, बेल का गूदा प्रत्येक पौने दो माशे महीन पीसकर बिल्ली लोटन के पानी में गोली बनानी चाहिये। मात्रा ९ माशे।

मधुमक्खी या ततैया—इनके दंश से प्रायः काँटा वहीं रह जाता है। इसके लिये ताली को इस पर रखकर जोर से दबा देना चाहिये, जिससे रक्त के साथ डंक भी बाहर निकल आये। ताली इस प्रकार की लेनी चहिये, जिसमें छिद्र हो। (२) लाइकर अमोनिया या स्प्रिट अमोनिया, या सिरका अथवा मिट्टी का तेल लगाना चाहिये। (३) मुलतानी मिट्टी या कपूर का लेप करना चाहिये। (४) धनिये के रस में सिरका और कपूर मिलाकर लगाना चाहिये।

मकड़ी—मकड़ी के मूत्र में विष होता है। इनके लगने से त्वचा लाल हो जाती है और फुन्सियाँ निकल आती हैं, जलन होती है।

उपाय—१—ठण्डे पानी की गद्दी बाँधनी चाहिये। २—सिरका और पानी को मिलाकर बरतना चाहिये। ३—लेड लोशन उत्तम है। ४—हल्दी, दारुहल्दी, पद्माख मजीठ, नागकेसर इनको गुलाबजल में पीसकर लेप करना चाहिये।

रक्त में विष—कई कारणों से रक्त के अन्दर विष पहुँच जाता है। कई रोगों में रक्त थोड़ा या बहुत विषैला बन जाता है, जैसे, टाइफ़स और टाइफ़ाइड में। पर यहाँ पर 'रक्त में विष' का अभिप्राय यह है कि कीटाणु अस्वास्थ्यकारक वस्तु को उत्पन्न करें, और वह वस्तु शरीर के अन्दर लीन हो जाय, जिससे दूषित संकमण "सैप्टिक इन्टॉक्सिकेशन" हो जाता है। इस विष से दो प्रकार के रोग होते हैं—एक 'शैप्टीसीमिया और दूसरा पाईयीमिया।

यह संक्रमण यकृत विद्रधि से, गर्भाशय से, मिश्रित अस्थि-भङ्ग से, जलने से अथवा शवच्छेद के समय की भूल से हो जाता है।

इसका कारण निर्बलता, कँपकपी, नाड़ी का तेज होना, त्वचा का गरम होना, सूखो जिह्वा, पृष्ठ पर शोथ, श्वास में विशेष गन्ध, गाढ़ा और अमोनिया की गन्धवाला मूत्र और अस्थायी रूप में व्रण के स्राव का बन्द हो जाना है। यदि "पाईयीमीया" का प्रथम लक्षण मालूम हो जाय, जो २४ घण्टे में मालूम पड़ जाता है, जैसे, चुभता हुआ दर्द, भिन्न-भिन्न भागों में शोथ, तो विद्रधि के मुख का होना होता है।

इस अवस्था में रोगी की शक्ति को बनाये रखना चाहिये। इसके लिये पोषक भोजन, उत्तेजक औषधियाँ देनी चाहिये। दर्द कम करने के लिये क्लोरल देना चाहिये। विद्रधि की स्थानिक चिकित्सा करनी चाहिये।

भोजन के कारण विष—कई बार अजीर्ण के कारण आमाशय में भोजन विद्रधि होकर विष उत्पन्न कर देता है। यह विष शरीर के अन्दर लीन होकर विष के लक्षण उत्पन्न कर देता है। इससे वमन, अतिसार या मलावरोध, ज्वर, कँपकपी होती है।

इसके लिये रोगी को लंघन करना चाहिये। आमाशय को साफ़ करने

के लिये वमन देना चाहिये। नमक का पानी या साईट्रेट ऑफ मैगनेशिया का देना उत्तम है। रोगी यदि ठण्डा हो रहा हो, तो उसे गरम रखने के लिये उत्तेजक औषधियाँ देनी चाहिये।

कई बार सड़े हुये फल या मांस के खाने से भी विष के लक्षण हो जाते हैं। इसके लिये भी ऊपर ही की चिकित्सा उत्तम है।

विषैले जानवरों को भगाने का उपाय

१—गोरखर की सींग, बकरी के खुर, सौसन की जड़ और अकरकरा की जड़, धनिया इनके धुवें से या इनको रखने से साँप भाग जाता है।

२—बच, राई, लहसुन या कोई तेज गन्धवाली वस्तु, कपूर, क्लोरोफार्म, अमोनिया आदि से साँप भाग जाता है। राई का पानी साँप पर गिरने से वह कुछ समय के लिये सुस्त हो जाता है।

३—तुलसी के वृक्ष से साँप डरता है।

४—शिलारस, बकरी की मींगनी, हरताल और बकरी की चर्बी, इनको मिलाकर बिच्छू के छेद पर रखने से बिच्छू नहीं निकलता। मूली के पत्तों के स्वरस से बिच्छू मर जाता है।

५—इन्द्रायन का पानी मकान में छिड़कने से या गन्धक का धुवाँ देने से अथवा कनेर के पत्ते जलाने से पिस्सू भाग जाते हैं।

६—यदि सेह की चर्बी एक लकड़ी पर लगाकर रख दें, तो सब पिस्सू उसपर इकट्ठे हो जाते हैं।

७—छरीला और फिटकिरी के धुएँ से या सर्स की लकड़ी या पत्ते को बिस्तर पर रखने से मच्छर भाग जाते हैं। भूसी को जलाने से या धुएँ से भी मच्छर भाग जाते हैं।

८—चिनार के पत्तों की धूनी से दीमक भागती है।

९—हरताल, और नकछिकनी के धुएँ से मक्खियाँ भागती हैं। अथवा पीली हरताल को पीसकर दूध में मिला दे। इसको खुले बर्त्तन में रखने से सब मक्खियाँ इसमें गिरकर मर जाती हैं।

१०—नेवला तुलसी की गन्ध से भागता है। चूहा फिटकिरी की गन्ध से भागता है।

११—यदि किसी चूहे को पकड़कर, उसको नीला रङ्ग कर या उसके अण्ड-कोष निकालकर अथवा उसका चमड़ा उतारकर छोड़ दें, तो और सब चूहे भाग जाते हैं।

१२—मुर्दाशङ्ख, कूठ, लोहे का मैल, भाँग के बीज, केसर, सुक इनकी गोली बनाकर बिलों में डालने से चूहे मर जाते हैं। संखिये को आटे में मिलाकर देना भी यही गुण करता है।

१३—चींटियों के बिल में हींग, हल्दी, नमक और लहसुन का धुँवा देने से ये भाग जाती हैं।

१४—गन्धक के धुएँ से या लहसुन से बर्रं भागती है।

१५—अफसन्तीन, कलौंजी, नीम के पत्ते, नीबू का छिलका, पुदीना अथवा फिनैल की गोलियाँ रखने से 'सूत' नाम का कीड़ा भाग जाता है। यह वह कीड़ा है, जो गरम कपड़ों में लगकर कपड़ों को खराब कर देता है।

१६—सर्रू, मनुष्यों के बाल, चौपायों के खुर, हींग, राल, इनके धुएँ से सब कीड़े-मकोड़े भाग जाते हैं।

१७—प्लास्टर ऑफ पेरिस ६ भाग, चीनी का चूर्ण एक भाग, आटा २ भाग, इनको मिलाकर खुले स्थान में एक तश्तरी में रख देना चाहिये। तश्तरी के किनारे पर थोड़ा-सा घी मल देना चाहिये। इससे चूहे खिंचकर आयेंगे।

१८—मच्छरों से बचने के लिये लोशन—

क्युनीन सल्फेट	१ ड्राम
अलकोहल (९५%)	४ औन्स
पानी	१।। औन्स

शरीर के नंगे भाग पर लगाना चाहिये।

१९—मच्छरों से बचने के लिये प्रलेप—

कैरोसिन ऑयल मिट्टी का तेल	१ औन्स
नारियल का तेल	१ औन्स
सिट्रोनीला ऑयल	१ औन्स

त्वचा पर लगाना चाहिये।

२०—मच्छरों और खटमलों से बचने के लिये—

नैपथीलीन का चूर्ण	९६ भाग
क्रीयेजोट	२ भाग
आयडोफार्म	२ भाग

इसको कपड़ों पर छिड़क देना चाहिये और कपड़ों पर मलना चाहिये।

प्रकरण तेरहवाँ

तात्कालिक चिकित्सा

आवश्यक वस्तुयें—

औजार—(१) प्रोब—चाँदी की तार का बना होता है, इसकी सहायता से किसी वस्तु को व्रण में ढूँढ़ सकता है, पर्याप्त मजबूत होता है और मुड़ने से नहीं टूटता।

२—**डायरेक्टर (राषणी)**—यह ज़रा मोटे तार का बना होता है। किनारे पर चम्मच-सा बना होता है और दूसरी तरफ़ एक लम्बा 'प्रव' (कुल्या) सी बनी होती है। इस कुल्या में चाकू रखकर चिकित्सक आराम से व्रण को चीर सकता है। इस प्रकार करने से नीचे को ओर पार्श्व को रचनायें बच जाती हैं और चिकित्सक का काम सरल हो जाता है।

३—**एब्सस नाइफ (उत्पन्न पत्र)**—इसका फलका चौड़ा और सीधा होता है।

४—**कर्व्ड नाइफ (वृद्धि पत्र)**—यह चाकू बीच से घूम खाये हुये होता है। इसलिये गहरी विद्रधियों को सुगमता से काटने में काम आता है, और पहला चाकू त्वचा की विद्रधियों में काम आता है।

५—**ब्लन्ट नाइफ**—इसकी नोक आगे से कुन्द होती है।

६—**टैनेक्युलम**—यह एक तार के हुक की भाँति होता है। इसकी सहायता से रक्तवाहिनी को पकड़ सकते हैं।

७—**फ़ोरसेप्स (संदश)**—यह किसी वस्तु को पकड़ने के काम आता है।

८—**गमलैन्सट**—यह मसूड़ों को काटने के काम आता है।

९—**वैक्सी नेकहींग लैनसिट**—छोटी विद्रधियों को खोलने में या लेखन करने के काम आता है।

१० —**सुइयाँ टेढ़ी**—व्रणों को सीने के लिये टेढ़ी, चपटी सुइयाँ चाहियें ।

११—**कैंची**—तेज और जिसका एक फलका आगे से कुन्द हो ।

१२—**कैथेटर**—यह रबर और धातु के बने होते हैं । इनमें रबर के कैथेटर साधारण काम के लिये उत्तम हैं । बाज़ार में ये १ से १२ नम्बर के आते हैं । इनमें से २, ४ और ८ नम्बर के ये तीन कैथेटर पर्याप्त हैं । इनको सँभालकर रखना चाहिये । प्रयोग करने से पूर्व इनको देख लेना चाहिये कि इनकी आँख खुली है, या नहीं; कड़े तो नहीं हो गये ।

१३—**पट्टियाँ**—श्वेत कोमल वस्त्र की पट्टियाँ गोल लपेटकर रखनी चाहिये । हाथों के लिये २ इञ्च चौड़ी और ८ गज लम्बी, टाँगों के लिये २॥ इञ्च चौड़ी और १० गज लम्बी, छाती आदि के लिये ३ इञ्च चौड़ी १२ गज लम्बी पट्टियाँ चाहियें । पट्टी में सिलावट, सिकुन किसी प्रकार का नहीं होना चाहिये । इसके अतिरिक्त T (टी) के आकार की या अन्य प्रकार की पट्टियाँ भी रखनी चाहिये ।

१४. **प्लास्टर**—प्राय: एड्हैसिव प्लास्टर बरता जाता है । यह बाज़ार में तैयार मिलता है । जहाँ पर पट्टी बाँधना मुश्किल होता है, वहाँ पर इसकी सहायता से ड्रेसिंग को रोका जाता है ।

१५. **लिन्ट**—यह व्रणों को धोने के लिये या गद्दी बनाने के काम आता है ।

१६. **स्पंज और रुई**—व्रणों पर पानी गेरने के लिये या व्रणों को धोने के लिये रुई की आवश्यकता रहती है ।

१७. **टौर्नीक्वेन्ट (बन्धन)**—१॥ इञ्च चौड़े मज़बूत कपड़े के पट्टे होते हैं, जिनमें पैड (गद्दी) और बकल लगा होता है । दो-चार रुमालें भी इनका काम दे सकती हैं ।

१८. **रेशम का धागा**—व्रणों को सीने के लिये, रक्त-वाहिनियों को बाँधने के लिये यह काम आता है । रेशम के धागों को प्रथम उबाल लेना चाहिये ।

तात्कालिक चिकित्सा के कुछ आवश्यक निर्देश

१—यदि रोगी होश में हो और बोल सके, तो उससे आकस्मिक घटना के सम्बन्ध में दो-चार स्पष्ट प्रश्न पूछने चाहियें। यदि वह न बोल सके, तो पासवाले से पूछना चाहिये।

२—रोगी यदि अचेत न हो, तो उसको समान भूमि या फर्श पर लेटा देना चाहिये। यदि सम्भव हो, तो उसको दक्षिण पार्श्व के भार लेटाना चाहिये। इस प्रकार लेटने से वह सुगमता से साँस ले सकेगा। सिर को किसी तकिये से या कोट की तह से ज़रा-सा ऊँचा उठा देना चाहिये, जिससे वह शरीर के समानान्तर हो जाय। फिर कोट के बटन तथा अन्य तंग वस्त्र ढीले कर देने चाहियें।

३—रोगी के मुँह और छाती पर ठण्डे पानी के छींटे देने चाहियें और हवा करनी चाहिये। यदि रोगी निगल सके, तो थोड़ा-सा ठंडा पानी पिला देना चाहिये। शराब या ब्रांडी तबतक नहीं देना चाहिये, जबतक इसकी आवश्यकता का पूर्णरूप से निश्चय न कर लिया जाय।

४—रोगी के शिर और एक-एक अङ्ग को क्रमशः परीक्षा करनी चाहिये। यदि रक्त-स्राव हो रहा हो, तो देखना चाहिये कि कहाँ से हो रहा है। शरीर के मुख्य भागों की बहुत धीरे से परीक्षा करनी चाहिये। यदि कोई अंग वस्त्रों से ढका हो, तो वस्त्रों को काटकर (न कि उतारकर) उसकी परीक्षा करनी चाहिये। यदि वस्त्र उतारने हों, तो प्रथम स्वस्थ भाग के उतारने चाहियें।

५—यदि यह स्थानिक आघात हो, तो इसकी तात्कालिक चिकित्सा करनी चाहिये।

६—फ़िज़ूल की बातें या बकवाद वहाँ पर करने नहीं देना चाहिये। और जो आदमी निरर्थक हैं, उनको वहाँ से हटा देना चाहिये। ताज़ी हवा पर्याप्त मात्रा में आनी चाहिये।

७—यथासम्भव शीघ्र से शीघ्र चिकित्सक की सहायता के लिये यत्न करना चाहिये।

८—यदि रोगी को हिलाना आवश्यक हो, तो (जैसे शिर के आघात में) लेटे हुये ले जाना चाहिये। घोड़े पर बैठाकर या चलाकर ले जाना

अच्छा नहीं। हाथ के रोगी इस नियम में अपवाद हैं। इसके लिये चारपाई या किसी मज़बूत कपड़े में चारों ओर चारपाई के आकार से बाँस बाँधकर काम लिया जा सकता है।

रक्त-स्राव—यह रक्त-वाहिनियों से होता है। यह रक्त-वाहिनियाँ दो प्रकार की हैं—एक लाल रक्त को बहानेवाली और दूसरी काले (नीले) रक्त को बहानेवाली है। लाल रक्त को बहानेवाली रक्त-वाहिनियों में स्पन्दन मालूम होता है। इसलिये जो रक्त इनमें से निकलता है, वह लाल होता है। इसमें रुक-रुककर धक्के के साथ रक्त-स्राव होता है। नीली रक्त-वाहिनियों में से रक्त काला (नीला) बहता है, इसमें स्पन्दन नहीं होता। रक्त सीधा धारावाहिक रूप में बहता है। हृदय के समीप व्रण के पास दबाव देने से धमनी का रक्त-स्राव रुक जाता है। इसी प्रकार हृदय से दूर व्रण के पास दबाव देने से शिरा का रक्त रुक जाता है। दूसरे अर्थों में व्रण के ऊपरी भाग में दबाव देने से धमनी का रक्त-स्राव रुक जाता है। व्रण के निचले हिस्से पर दबाव देने से शिरा का रक्त बन्द होता है। परन्तु शिर और ग्रीवा के रक्त-स्रावों में इससे विपरीत नियम है। बड़ी धमनी से होनेवाला रक्त-स्राव ख़तरनाक है। यह बिना शास्त्र-क्रिया के बन्द नहीं होता; परन्तु जो धमनी आक्रान्त नहीं हुई, उससे होनेवाला रक्त-स्राव इतना भयानक नहीं होता। शिरा का रक्त-स्राव भयानक नहीं होता। यह प्रायः अपने-आप बन्द हो जाता है। धमनी और शिरा की बनावट में तथा रक्त-संचार के बहाव में अन्तर है। इस कारण धमनी का रक्त-संचार स्वयं बन्द नहीं होता तथा भयानक होता है। और शिरा का रक्त स्वयं बन्द हो जाता है और वह भयानक नहीं होता।

धमनी से होनेवाला रक्त-स्राव—रक्त चमकता हुआ लाल होता है, धक्के के साथ बाहर आता है, व्रण के उपरी भाग में हृदय के समीप दबाव देने से रक्त-स्राव बन्द हो जाता है। बड़ी धमनी का रक्त-स्राव खतरनाक है और बन्द नहीं होता।

शिरा से होनेवाला रक्त-स्राव—रक्त काला होता है, लगातार एक धार बहता है। व्रण के निचले भाग में हृदय से दूर दबाव देने से रक्त-स्राव बन्द हो जाता है। यह प्रायः खतरनाक नहीं है और अपने आप बन्द हो जाता है।

रक्त-स्राव को रोकने का उपाय जब वह तीव्र न हो—जब व्रण से रक्त-स्राव बह रहा हो और वह तेज न हो, तो स्थान को बहुत गरम या बहुत ठण्डे पानी से स्पंज करने पर रक्त-स्राव बन्द हो जाता है। यदि रक्त-स्राव अधिक हो, तो धमनी को अस्थि की तरफ अँगुली से, रुई से, गद्दी से या कार्क से दबाना चाहिये। रक्त-स्राव के स्थान को यथासम्भव हृदय से ऊँचा उठा देना चाहिये; परन्तु यदि इसमें सफलता न मिले, तो व्रण के दोनों किनारे ऊँचा करके धमनी को देखना चाहिये कि रक्त-स्राव कहाँ से हो रहा है। धमनी के मुख को ढूँढ़कर संदश से पकड़कर मरोड़ना चाहिये; परन्तु इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि वह टूटे नहीं। यदि इससे भी रक्त-स्राव बन्द न हो, तो इसको रेशम के धागे से बाँध देना चाहिये। इस समय धमनी को 'टैनीक्युलम' से ऊँची करके (हुक की नोक को धमनी की दोनों दिवारों में फँसाना चाहिये) इसके नीचे बाँध देना चाहिये। गाँठ बहुत कसकर नहीं बाँधनी चाहिये। फिर व्रण के दोनों किनारों को पास में रखकर प्लास्टर से बन्द कर देना चाहिये। गाँठ के दोनों प्रान्त व्रण से बाहर रखना चाहिये। चार-पाँच दिन में, जब व्रण अच्छा हो जायगा, रेशम के तागे स्वयं बाहर आ जायँगे। टैनीक्युलम के स्थान में संदश भी काम आ सकता है।

यदि ऊपर की किसी विधि से रक्त-स्राव बन्द न हो, तो व्रण को गद्दियों से भर देना चाहिये। व्रण में थोड़ी-सी गद्दी रखकर, उस पर दूसरी गद्दी रख देनी चाहिये। इस पर कसकर पट्टी बाँध देनी चाहिये। इस दबाव से रक्त-स्राव बन्द हो जाता है। यह पट्टी २४ घण्टे तक रखनी चाहिये। उतारते समय इस पट्टी को गरम पानी से गीला करके उतारना चाहिये। यदि प्लास्टर न मिले, तो गीले, नर्म वस्तु की गद्दी बाँध देनी चाहिये।

रक्त-स्राव को रोकने का उपाय जब वह तीव्र हो—जब रक्त-स्राव बहुत तेज हो, तो वह शीत परिसेक, बाँधने से, मरोड़ने से रुक जाता है।

शिर और ग्रीवा से होनेवाले रक्त-स्राव को रोकने के लिये व्रण को गद्दी से भरकर ऊपर से पट्टी बाँध देनी चाहिये। शिर और मुख से होनेवाला रक्त-स्राव को रोकने के लिये "कैरोटिड आर्टरी" पर दबाव देना

चाहिये। क्योंकि शिर और मुख से जो रक्तस्राव होता है, वह इस धमनी का होता है। धमनी को अन्दर और पीछे की ओर दबाना चाहिये, जिससे वह पृष्ठ-वंश की अस्थियों को ओर पहुँचे। अँगूठे और अँगुली से बहुत उत्तम दबाव दिया जा सकता है।

भुजा से कक्षा के पास से होनेवाले रक्तस्राव को रोकने के लिये कॉलर बोन के मध्य में और पीछे को ओर सबक्लेवियन (कक्षा) धमनी पर दबाव देना चाहिये। दबाव देने के लिये बड़ी चाभी, या किसी ऐसी वस्तु को कपड़े में लपेट करके तीन-चार कपड़ों की तह में लपेटकर कॉलर बोन के मध्य में रखकर दबाना चाहिये। इससे रक्तस्राव बन्द हो जाता है।

भुजा से होनेवाले रक्तस्राव को ब्रेकियल आर्टरी (प्रगण्डास्थि-धमनी) पर दबाव देने से रोका जा सकता है। इस धमनी को कोहनी से ऊपर भुजा के मध्य में दोनों हाथों की अँगुलियों से अस्थि की तरफ दबाना चाहिये। यदि इससे काम न चले, तो रूमाल को बाँधकर उसमें लकड़ी फँसाकर ऐंठना चाहिये, अथवा 'टैर्नीकेन्ट' बन्धन बाँध देना चाहिये।

हथेली से होनेवाले रक्तस्राव—इसके रोकने के लिये रेडियल आर्टरी (वहिः प्रकोष्ठास्थि धमनी) पर गद्दी रखकर पट्टी बाँध देनी चाहिये और इसी प्रकार की गद्दी अल्ना आर्टरी (अन्तः प्रकोष्ठास्थि) पर रखकर पट्टी बाँध देनी चाहिये। गद्दी रखने का स्थान वही है, जहाँ पर नब्ज या नाड़ी देखते हैं। इससे रक्तस्राव बन्द हो जायगा। यदि बन्द न हो, तो व्रण को पिचु से भर देना चाहिये। फिर हथेली पर तथा हथेली की पीठ पर गद्दी रखकर उन पर कोई कड़ी वस्तु रखकर कसकर पट्टी बाँध देनी चाहिये। फिर प्रकोष्ठ पर भी पट्टी बाँध देनी चाहिये। कोहनी को मोड़कर हाथ को दूसरे कन्धे पर रखना चाहिये और हाथ को स्लिंग में लटका देना चाहिये। इस प्रकार २४ घण्टे तक रखना चाहिये। अथवा हाथ में गेंद (रबर) या कोई कड़ी गोल वस्तु पकड़ाकर उसपर अँगुलियों को मोड़कर पट्टी बाँध देनी चाहिये।

घुटने से ऊपर होनेवाले रक्तस्राव को रोकने के लिये जंघा के बाहर की तरफ मध्यरेखा में फीमरल (और्वी) धमनी पर दोनों अँगूठों से

दबाव देना चाहिये, क्योंकि प्रायः सब रक्त-वाहिनियाँ इससे निकलती हैं। साले की चर्बी का दबाव भी उत्तम है।

जंघा के मध्य में से घुटने के नीचे से होनेवाले रक्तस्राव को रोकने के लिये 'हौर्नीक्वेन्ट' या रूमाल या हौर्नीक्वेन्ट बन्धन बाँधना चाहिये। रूमाल को एक या दो बार अङ्ग के चारोंओर लपेटकर (व्रण से थोड़ी ऊँचाई पर) लकड़ी को रूमाल और त्वचा के बीच में से गुजरना चाहिये। फिर लकड़ी को ऐंठना चाहिये, इससे उस रूमाल को कस देना चाहिए। इसके कारण रक्तस्राव बन्द हो जायगा। रूमाल के नीचे कार्क या पैड रखने से भी काम निकल सकता है।

पाँव से होनेवाले रक्तस्राव को रोकने के लिये—यदि तलुवे से रक्तस्राव हो रहा हो, तो रुई की गद्दी रखकर दोनों टखनों के मध्य में कसकर पट्टी बाँध देनी चाहिये। यदि रक्तस्राव न रुके, तो व्रण पर गद्दी रखनी चाहिये और पैड भर देना चाहिये। सब अवस्थाओं में पाँव को शरीर से ऊँचा उठाकर रखना चाहिये।

धमनी को दबाने के पीछे रक्तस्राव को रोकने का उपाय—जब दबाव से रक्तस्राव रुक जाय, तब सब कपड़े, पट्टी, पिचु आदि को धीरे-धीरे हटाकर ठण्डे पानी से व्रण को धोना चाहिये। इसमें से जमे हुए रक्त को पानी से धोकर बाहर कर देना चाहिये। बन्धन या दबाव को थोड़ा-सा ढीला कर देना चाहिये। व्रण के किनारे उठाकर अच्छी प्रकार से देख लेना चाहिये कि अब रक्तस्राव कहीं से हो तो नहीं रहा है। फिर ऊपर से पट्टी बाँधनी चाहिये।

नाक से होनेवाला रक्तस्राव—यह रक्तस्राव या तो चोट से होता है, अथवा नकसीर के रूप में स्वयं हो जाता है। इसके लिये नाक पर ठंडा पानी लगाना चाहिये। माथे पर, शिर पर ठंडा पानी गिराना भी उत्तम है। यदि इससे रक्तस्राव बन्द न हो, तो पानी में फिटकिरी और नमक घोलकर नाक में पिचकारी लगानी चाहिये। यदि पिचकारी न मिले, तो फिटकिरी का चूर्ण सूँघना चाहिये। नाक से होनेवाले सब प्रकार के रक्तस्रावों में रोगी को सीधा रखना चाहिये। उसके दोनों हाथ शिर के ऊपर सीधे रखने चाहिये। शिर के ऊपर बर्फ का टुकड़ा या शीत पानी की पट्टी

रखनी चाहिये। माथे और ग्रीवा पर भी शीत परिसेक करना उत्तम है। यदि सम्भव हो, फेशियल आर्टरी पर जहाँ गाल और नाक पर सम-कोण बनाकर जाती है, तो वहाँ पर दबाव देना चाहिये। नथनों को थोड़ी देर दबाकर रखना चाहिये। पाँव और टाँगों को राई के गरम पानी में रखना चाहिये। यदि इनसे सफलता न मिले, तो नथनों को बत्ती से भरना चाहिये

साधारणत: रोगी की स्थिति का ध्यान रखना चाहिये। उसको विरेचन, हल्का भोजन देना चाहिये। फलों के रस उत्तम हैं। हैजेलीन की पिचकारी भी उत्तम है। रुई को एन्टीपाईरीन के घोल में एन्टीपाईरीन ३० ग्रेन, पानी गरम १ चम्मच छोटा या एडरनैलीन क्लोराईड के घोल में अथवा स्टील के टिंचर में भिगोकर रुई को रखना चाहिये। रोगी को हल्का सल्फ्युरिक एसिड पिलाना चाहिये।

दाँत से निकलनेवाले रक्तस्राव को रोकने के लिये—जहाँ से दाँत उखाड़ा हो, उस स्थान को रुई से अथवा टिंचर आफ स्टील में रुई को भिगोकर रखने से आराम हो जाता है। बाहर चिबुक पर पट्टी बाँध देना चाहिये, जिससे रोगी मुख को न खोल सके। दूध के गलाले भी उत्तम हैं।

दाँत से निकलनेवाले रक्तस्राव को रोकने के लिये—शीत पानी का परिसेक या फिटकिरी का चूर्ण छिड़कना चाहिये।

अन्त: अवयवों से रक्तस्राव—कई बार फेफड़ों से, आमाशय से, आंत्रों से और मूत्र-मार्ग से रक्त आने लगता है। इस रक्तस्राव के कारण निर्बलता, मूर्च्छा, शीत स्वेद, निर्बल, रुक-रुककर धमनी चलती है। शिर के अन्दर रक्तस्राव होने से श्वास-काठिन्य भी हो जाता है। इसकी चिकित्सा के लिये पूर्ण विश्राम देना चाहिये। अम्ल पीने को देना चाहिये जैसे, नीबू का रस और पानी। रोगी के शरीर को ठण्डा रखना चाहिये। पाँव गरम रखना चाहिये।

हीमोफीलिया—यह प्राय: स्त्रियों में होती है और उनसे वंश के अनुक्रम में पुरुषों में भी आ जाती है। इस रोग में थोड़े-से भी आघात से रक्तस्राव होने लगता है। कई बार बिना आघात के स्वयं हो जाता है, विशेषत: नाक और मसूड़ों से रक्तस्राव के होने पर जोड़ प्राय: सूज जाते हैं। कपड़े को फिटकिरी के पानी में भिगोकर रक्तस्राव के स्थान पर रखना

चाहिये। खाने के लिये लोह-भस्म, खण्ड कुष्माण्ड, दूर्वाद्य घृत, वासा घृत देना चाहिये।

रक्तस्राव में किस समय गरम दवाई देनी चाहिये—गरम दवाई देने में जल्दी नहीं करना चाहिये। रोगी का ठण्डा होना रक्तस्राव को रोकता है। गरम दवा रक्तस्राव को बढ़ाती है। परन्तु यही शीतलता यदि अधिक मात्रा में हो जाती है, तो खतरनाक है। यदि रोगी मूर्च्छित हो, रक्तस्राव अधिक न हुआ हो, चोट भी भयानक या तीव्र न हो, तो मूर्च्छा का कारण रक्तस्राव नहीं, बल्कि भय है। इस अवस्था में रोगी को गरम कम्बलों और गरम बोतलों के बीच में लेटाना चाहिये। ब्राण्डी और गरम पानी, दूध, अरिष्ट आदि मद्य देने चाहिये। मद्य को दूध में मिलाकर देना उत्तम है; परन्तु यदि रक्तस्राव अधिक हो, तो ब्रांडी मद्य की मात्रा थोड़ी रखनी चाहिये और इसको ठंडी देनी चाहिये। प्यास को रोकने के लिये बर्फ चुसानी चाहिये।

छाला—इस शब्द से यह अभिप्राय है कि त्वचा के ऊपर और मध्य स्तर में पानी एकत्रित हो जाय। यह प्रायः रगड़ से हो जाता है, जैसे, बूट के पहनने से या जिमनास्टिक में झूलने से। यह जलने से या गरम वस्तु के लगने से भी पैदा हो जाता है। यदि यह छोटा हो तो इस पर 'कोलोडियम फलैक्सीवल' लगाकर गद्दी और पट्टी से दबाव देना चाहिये। इससे पानी विलीन हो जायगा और ऊपर की त्वचा अपने आप गिर जायगी। यदि छाला बड़ा हो, तो इसमें छेद करके पानी निकाल देना चाहिये और बहुत बड़ा हो, तो इसको चाकू से काटकर सब पानी निकाल देना चाहिये। ऊपर से जन्तुघ्न गद्दी रखकर पट्टी बाँध देनी चाहिये। ऊपर की त्वचा को यथासम्भव बचाना चाहिये। लिन्ट पर वैजलीन या चिकनाई लगाकर स्थान पर रख देना चाहिये।

क्षत—इन आघातों में त्वचा विदीर्ण नहीं होती। ये आघात तीव्र और छोटे दोनों प्रकार के हो सकते हैं। छोटे आघातों में त्वचा आक्रान्त होती है। पृष्ठवर्त्ती रक्त-वाहिनियाँ फट जाती हैं। रक्त त्वचा में जम जाता है, जिससे त्वचा का रङ्ग बदल जाता है। पहले यह काला होता है, पीछे जामुनी; हरा या पीला हो जाता है और अन्त में दस-पन्द्रह दिन में सर्वथा लोप हो जाता है।

जब तीव्र क्षत होता है, तो त्वचा का रङ्ग २४ घण्टे के पीछे या और भी पीछे जाकर बदलता है। इस अवस्था में रक्तस्राव बहुत होता है, त्वचा बची रहती है। छोटे आघातों में भूरे कागज़ को ब्रांडी या स्प्रिट कैम्फर मे भिगोकर लगा देना चाहिये। तीव्र क्षतों की अवस्था में रोगी के आघात-वाले अवयव को ऊँचा उठाकर रखना चाहिये, और उस स्थान पर गरम पानी तथा फुलालैन का सेंक करना चाहिये। अथवा ह्विस्की तथा पानी को समान भाग मिलाकर इसका कपड़ा रखना चाहिये। यदि क्षत तीव्र होगा, तो छाला उत्पन्न हो जायगा। इसको चाकू से छेदकर पानी निकाल देना चाहिये, और ऊपर की त्वचा को बचाकर रखना चाहिये। प्रथम दो दिन के पीछे गरम सेंक को धीरे-धीरे कम करके शीत परिसेक (सिरका १ भाग, पानी ४ भाग) करना चाहिये। पीछे से ब्रांडी या सोप लिनीमैन्ट की मालिश करवानी चाहिये।

कई बार ऐसा होता है कि क्षत वाला भाग सूज जाता है, बड़ी रक्त-वाहिनियाँ फट जाती हैं और तन्तुओं में रक्त एकत्रित हो जाता है। इस अवस्था में विद्रधि बन जाती है, त्वचा फट जाती है और अन्दर से पीब आती है। इस अवस्था में पुल्टिस का बाँधना उत्तम है, जिससे व्रण साफ़ हो जाय।

अग्नि से जलना— इसकी तीन अवस्थायें होती हैं। १—जब त्वचा लाल हो जाय या सूज जाय। २—जब अधिक गरमी से छाला उत्पन्न हो जाय। ३—जब त्वचा और इससे निचली रचनायें नष्ट हो जायँ और स्थान काला या पीला हो जाय, और इस स्थान में जीवन न रहे।

थोड़े-से जलने के लिये सैलड ऑयल में कपड़ा भिगोकर अथवा बर्फ़ कूटकर उस स्थान पर बिछा देनी चाहिये। बर्फ़ को तथा स्थान को यथासम्भव खुश्क रखना चाहिये। यदि यह न मिले, तो रुई को रखकर पट्टी बाँध देनी चाहिये। मुख्य उद्देश्य यह है कि क्षतवाले स्थान से वायु को निकाल दिया जाय। अग्नि से जले हुवों के लिये चूने का पानी और नारियल का तेल (कैरन ऑयल) सबसे उत्तम चिकित्सा है। कपड़ों में आग लगाने से कई बार भयानक आघात पहुँचता है। आक्रान्त व्यक्ति को चाहिये कि वह भागे नहीं। भागने से वायु आग को और बढ़ायेगी। उसको चाहिये कि वह भूमि पर लेटकर लेटता फिरे। इससे आग बुझ जायगी। यदि पानी

मिल जाय, तो रोगी पर तुरन्त गेर देना चाहिये। पीछे से रोगी को बिस्तर पर लेटा देना चाहिये, और यदि रोगी मूर्छित हो (जैसा कि प्रायः हो जाता है,) ठण्डा हो जाता हो, कम्पकपी हो, शरीर और चेहरा पीला हो, तो रोगी को गरम चाय. ब्रांडी देना चाहिये। पाँव पर गरम बोतलें रखनी चाहिये।

जब मूर्छा कम हो जाय, पीछे से अफीम और क्लोरल उचित मात्रा में रोगी को पीने के लिये देनी चाहिये। कपड़ों को काटकर उतारना चाहिये। जो त्वचा जलकर गिराने हो, उसको वहीं पर छोड़ देना चाहिये, और जो जल गई हो, उसको अलग कर देना चाहिये। दस्तानों को थोड़ी देर ठण्डे पानी में भिगोकर रक्खा जाय, तो सुगमता से उतर सकते हैं। स्थान को अँगौछे से पूर्ण शुष्क कर देना चाहिये। पीछे से कैरन ऑयल में कपड़ा भिगोकर रख देना चाहिये। कैरन ऑयल न मिले तो मैदा और पानी के घोल में अथवा दूध तथा पानी के घोल में कपड़ा भिगोकर रख देना चाहिये। तीव्र जलने की अवस्था में शीत परिसेक हानिकारक है। कैरन ऑयल को गरम करके लिन्ट पर मोटा-मोटा चुपड़कर स्थान पर रख देना चाहिये। इसको दो दिन से पहले नहीं हटाना चाहिये। यदि सम्भव हो, तो ५ ग्रेन बोरिक एसिड भी मिला देना चाहिये। लिन्ट को उतारने से पूर्व इनको गरम पानी से गीला कर लेना चाहिये। जब त्वचा स्वस्थ हो जाय, तो ठण्डे पानी की गद्दी रखनी चाहिये। कोष्ठ का जलना हाथ-पाँव को जलने की अपेक्षा अधिक भयानक है।

कुछ शीतल लेप—१—तिल और जौ को भस्म करके उस स्थान पर लगाना चाहिये। २—कीकर के बुरादे की बुरकी देनी चाहिये। ३—तिल और मक्खन का लेप, ४—वंशलोचन, चन्दन, पिलखन, पीपल, गेरू इनका लेप करना चाहिये। ५—ओलों का पानी लगाना भी अच्छा है।

(१) गिले इरमानी का पानी सिर्के में मिलाकर लगाना चाहिये। २—लिखने की काली स्याही में कपड़ा भिगोकर अथवा अण्डे की सफेदी का लगाना शीतल करता है। ३—गुलरोगन और मुर्गे के अण्डे की सफेदी या जौ का आटा, मुर्गे की अण्डे की सफेदी और गुलरोगन मिलाकर लगाना चाहिये। काशभरी सफेदी और गीले धनिये का पानी, खुब्बाजी का शीतल काढ़ा, इनको मिलाकर मलहम बनाकर लगाना भी उत्तम है।

मूर्च्छा—यह बहुत तीव्र चोट के कारण होती है, यथा बन्दूक का आघात, सन्धि का फटना, आमाशय पर या गुह्य-प्रदेश पर चोटें। मूर्च्छा ज्वर से, शीत से और कुछ विषों से भी हो जाती है। कई रोगियों में बेचैनी, हिचकी, वमन प्रथम आरम्भ होते हैं। वमन का होना स्वस्थ होने का भी चिन्ह है। जो रोगी स्वस्थ होने लगते हैं, उनकी त्वचा गरम हो जाती है, रोगी बेचैनी का अनुभव करने लगता है और पार्श्व के भार लेटने की चाहना करता है। थोड़ी देर पीछे चेहरा लाल हो जाता है, शरीर गरम और नाड़ी तेज हो जाती है। अच्छे रोगियों में ये लक्षण कुछ समय पीछे अपने आप शान्त हो जाते हैं। बुरे रोगियों में शरीर ठण्डा, नाड़ी धीमी, हिचकी, प्रलाप बेचैनी रहती है।

चिकित्सा—इसमें यह सिद्धान्त रखना चाहिये कि हृदय और फेफड़ों का कार्य भली प्रकार चलता रहे और रोगी की शारीरिक उष्णिमा बनी रहे, जबतक रोगी खतरे से पार नहीं हो जाता है। यदि किसी स्थान पर रक्तस्राव हो, तो उसकी चिकित्सा करनी चाहिये। रक्तस्राव न होने पर रोगी को गरम बोतलों में, कम्बलों में रखना चाहिये। गरम पानी की बोतलें कक्षा में, पाँव में रखनी चाहिये। इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि रोगी इनसे जल न जाय। रोगी को ब्रांडी, कस्तूरी, मकरध्वज आदि उष्ण वस्तुयें देनी चाहियें। जबतक रोगी स्वस्थ न होने लगे, उसको खड़ा न होने देना चाहिये। स्वस्थ होने के पीछे रोगी को ज्वर आ जाता है। इस अवस्था में शीत विरेचन (साइट्रेट ऑफ मैगनेशिया) देना चाहिये। बुरे रोगों में वातिक उपद्रवों को रोकने के लिये क्लोरल हाइड्रेट देना चाहिये और चाय आदि से उसकी शक्ति बचानी चाहिये।

सन्धि-भ्रंश और अस्थि-भंग

कई बार गिरने से या आघात से अस्थि टूट जाती है, अथवा जोड़ अपने स्थान से खिसक जाता है। बच्चों में अस्थियाँ नरम होती हैं, इसलिये ये टूटती कम हैं और टूटने पर शीघ्र जुड़ जाती हैं।

लक्षण—स्थान पर दर्द होता है। रोगी उस स्थान को बचाता है। असाधारण स्वरूप आजायगा, अर्थात् दूसरे पार्श्व से उसकी स्थिति नहीं

मिलेगी। तीसरा लक्षण यह होगा कि वह अंग अपना कार्य नहीं कर सकेगा। स्थान पर शोथ होती है।

चिकित्सा—सन्धि-भ्रंश को उसके वास्तविक स्थान पर बैठाकर पट्टी बाँध देनी चाहिये, और अंग को पूर्ण विश्राम देना चाहिये। अस्थि-भंग में भी अस्थि को उसकी वास्तविक स्थिति में लाकर फलक आदि से सहारा देकर बाँध देना चाहिये।

बाह्य वस्तुओं का निकालना

नाक के अन्दर बाह्य वस्तु का जाना—मटर, बीज, पत्थर की कंकीर, पेंसिल के टुकड़े आदि वस्तुओं को बच्चे खेलते हुये नाक में डाल देते हैं। नाक को पकड़कर सिड़कने से या नाक से साँस को बलपूर्वक बाहर करने से यह वस्तुयें निकल जाती हैं। यदि इनसे सफलता न मिले, तो नकछिकनी या छींकों की दवाई सुँघानी चाहिये। नाक में पिचकारी मारनी चाहिये। और इससे भी सफलता न मिले, तो राई को घोलकर वमन देना चाहिये। वमन करते समय मुँह को हाथ से बन्द कर लेना चाहिये। इससे पानी नाक से निकलेगा, जिससे वस्तु भी निकल आयेगी। यदि नाक में जोंक चली जाय, तो नमक के पानी का नस्य लेना चाहिये, या पिचकारी मारनी चाहिये।

कान के अन्दर बाह्य वस्तु का जाना—सबसे प्रथम कान की परीक्षा करके वस्तु का आकार और उसकी स्थिति जाननी चाहिये। जब वस्तु इस प्रकार की हो, जो पानी से न फूले, जैसे, मटर, तब पिचकारी का उपयोग करना चाहिये। प्रथम गरम पानी की पिचकारी मारनी चाहिये। पिचकारी से पूर्व यदि तेल की दो-तीन बूँदें कान में डाल दी जायँ, तो कार्य सरल हो जाता है। यदि कोई वस्तु रत्ती आदि हो और वह पिचकारी से बाहर न आये, तो शलाखा पर गोंद लगाकर उसको कान में डालकर रत्ती के साथ चिपकाकर कुछ देर तक वहीं छोड़ देना चाहिये। पीछे खुश्क होने पर खींच लेना चाहिये अथवा पतले संदश से पकड़कर वस्तु को निकाल लेना चाहिये। सब बातों में इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि परदे पर आघात न पहुँचे।

कर वस्तु निकाली जा सकती है अथवा नाक को बन्द करके श्वास रोकने से (जिससे आँखों में रक्त का दबाव बढ़ जाय) निकाली जा सकती है। अथवा आँख को खोलकर रूमाल की नोक से वस्तु को निकाल देना चाहिये। यदि वस्तु खुरदरी हो, तो कैस्टर ऑयल या मधु आँख में लगा देना चाहिये। पलक को उलटने की सरल विधि यह है कि प्रोब या झाड़ू के तिनके को पलक के समानान्तर रखकर इसको जरा आगे की ओर दबाकर पलक को इसके ऊपर मोड़ देना चाहिये।

आँख में चूना गिरने पर चूने को चुन-चुनकर बाहर करना चाहिये। और आँख को नीबू का पानी या सिरके से ($\frac{1}{3}$ भाग सिरका $\frac{2}{3}$ भाग पानी) धोकर कैस्टर ऑयल लगा देना चाहिये।

गले में या अन्न-प्रणाली में बाह्य वस्तु के फँस जाने से— प्रायः मृत्यु हो जाती है। यह वस्तु कृत्रिम दाँत, भोजन का टुकड़ा, मछली की अस्थि आदि होती है। इससे श्वास-प्रणाली का अवरोध हो जाता है। इसके लिये रोगी को प्रकाश में इस प्रकार से बैठाना चाहिये कि प्रकाश गले में सीधा आ सके। फिर अँगुली को जिह्वा के पीछे तक पहुँचाकर देखना चाहिये। यदि यह वस्तु कठोर प्रतीत हो, तो इसको नीचे आगे की ओर ढकेल देना चाहिये, और यदि नरम हो, तो इसको बाहर निकालने का यत्न करना चाहिये। इस समय रोगी को चाहिये कि वह जीभ को बाहर निकालकर कपड़े से पकड़ रक्खे। यदि अँगुली वहाँ तक न पहुँच सके, तो पीठ पर हाथ से एक प्रहार करना चाहिये। यदि रोगी बच्चा हो, तो इसको घुटनों में दबाकर, जिससे पेट खिंचा रहे, प्रहार करना चाहिये। अथवा गले में अँगुली डालकर वमन कराने से भी वस्तु बाहर आजाती है। कृत्रिम दाँत आदि को लम्बे संदश से पकड़कर निकालना चाहिये।

यदि यह सब उपाय निरर्थक जायँ, तो रोगी को कुरसी पर बैठाकर उसका सिर पीछे की ओर मोड़ देना चाहिये। फिर एरण्ड नाल या कमल नाल अथवा पतली लकड़ी लेकर उसके साथ स्पंज के छोटे-से टुकड़े को बाँधकर गले में ले जाना चाहिये। वहाँ से इसको शनैः-शनैः आगे और नीचे, आमाशय की ओर प्रविष्ट करना चाहिये, जिससे वस्तु को शनैः-शनैः आमाशय में उतार दे। यह कार्य चिकित्सक ही को करना चाहिये।

श्वास-प्रणाली में बाह्य वस्तु—इसके फँसने से श्वास में कठिनता होती है, खाँसी आती है; जिससे कभी-कभी वस्तु बाहर भी आजाती है। यदि रोगी बच्चा या औरत हो, तो पाँव से पकड़कर शिर के भार उलटा करके पीठ पर हल्के-हल्के प्रहार करने चाहिये। यदि रोगी युवा हो, तो उसको तिरछा लेटाना चाहिये, जिससे टाँगें ऊपर रहें और शिर नीचे। पैसे आदि वस्तुयें इस प्रकार से बाहर निकल आयेंगी। यदि इससे सफलता न हो और बेचैनी बढ़ रही हो, तो तुरन्त चिकित्सक को बुलाना चाहिये।

आमाशय में बाह्य वस्तु—सिक्का, दाँत आदि कड़ी वस्तु जब आमाशय में पहुँच जायँगी तो, वह स्वयं मल के रास्ते बाहर हो जायँगी। इनमें किसी प्रकार के विरेचन की आवश्यकता नहीं होती। रोगी को पानी अधिक पीना चाहिये। यदि कोई धातु पेट में चला गया हो, तो किसी प्रकार का अम्ल नहीं देना चाहिये। भोजन गरिष्ठ करना चाहिये, जिससे मल कठिन बनकर वस्तु को बाहर निकाल दे।

जोंक के पेट में चले जाने पर नमक का पानी पीना चाहिये। इससे या तो जोंक मर जायगी अथवा वमन के रास्ते बाहर आजायगी।

त्वचा में बाह्य वस्तु—लकड़ी की फाँस, काँटा, सुई, पिन आदि वस्तुयें त्वचा में चुभ जाती हैं। फाँस, काँटे आदि को नखचिमटी, मोचना या संदंश से पकड़कर निकाल देना चाहिये। अथवा व्रण को थोड़ा-सा बढ़ाकर फिर निकाल लेना चाहिये। इनको एक या दो दिन वहीं छोड़कर ऊपर से पुल्टिस बाँधनी चाहिये, या सेंक करना चाहिये, जिससे वह स्थान पक जाय अथवा ये ढीले हो जायँ, तब निकालना चाहिये। सुई आदि वस्तु की जबतक वास्तविक स्थिति और स्थान मालूम न हो जाय, तबतक निकालना कठिन होता है। क्योंकि सुई चुभती है किसी रूप में और अन्दर किसी रूप में रहती है। इसलिये स्थान मालूम करके, इसको चीरकर बाहर करना चाहिये।

नाखून के नीचे बाह्य वस्तु—फाँस, काँटा आदि निकालने के लिये नाखून को बारीक काटना चाहिये, जिससे वस्तु चिमटी में पकड़कर खींची जा सके। यदि इस प्रकार से सफलता न मिले, तो फाँस के अगले भाग को नष्ट नहीं करना चाहिये, बल्कि नाखून को यथासम्भव पतला

छीलना चाहिये। इसमें त्रिभुजाकार टुकड़ा ऊपर से काटना चाहिये। अब फाँस सुगमता से पकड़ी जा सकेगी। यदि इसमें भी सफलता न मिले, तो दो-तीन पुल्टिस बाँधनी चाहिये, जिससे फाँस ढीली पड़ जाय।

अन्य भागों में बाह्य वस्तु—कई बार बाह्य वस्तु गुप्त भागों में, स्त्रियों के योनि-द्वार में और पुरुषों के मूत्र-मार्ग में फँस जाती है। इसके लिये चिकित्सक की सहायता लेनी चाहिये।

पानी में डूबना

पानी में डूबने की कई अवस्थायें हैं। यदि मनुष्य गरम पानी में गिरेगा, तो श्वास-काठिन्य होगा, श्वास बन्द हो जायगा। पानी इतना ठंडा होता है कि रोगी मूर्च्छित हो जाता है। इसके अतिरिक्त मनुष्य पानी में गिरकर भय से या आघात से मर जाता है।

पानी में डूबे हुये व्यक्ति के लिये कृत्रिम श्वास का चलाना सब से आवश्यक है। इसके पीछे उसको गरम रखना तथा रक्त-संचार का चालू करना दूसरा काम है।

रोगी को समान भूमि पर पीठ के भार लेटा देना चाहिये। यदि संभव हो, तो पाँव की ओर ज़रा-सा नीचा रखना चाहिये और शिर को थोड़ा-सा ऊँचा। उसके गले और छाती तथा पेट के सब वस्त्र ढीले कर देने चाहिये। उनको लपेटकर कन्धे और शिर के नीचे रख देना चाहिये। अनावश्यक भीड़ को हटा देना चाहिये। रोगी के मुँह और नाक को साफ़ कर देना चाहिये और जीभ को बाहर निकालकर पकड़ लेना चाहिये। यदि पास का आदमी रूमाल से पकड़ ले, तो उत्तम है। रोगी को पेट के भार लेटाना चाहिये। उसके पेट के नीचे कपड़ों को लपेटकर रख देना चाहिये। पीछे से पीठ को दबाना चाहिये। इस दबाव से पेट का पानी बाहर आ जायगा। फिर फेफड़ों को दबाना चाहिये। इसके पीछे जल्दी से रोगी को पीठ के भार लेटा देना चाहिये और जिह्वा को मुँह से बाहर रखना चाहिये।

कृत्रिम श्वास—चलाने के लिए चिकित्सक को रोगी के सिरहाने खड़े होकर दोनों हाथों को शिर के पार्श्व में सीधा पकड़कर, ऊपर उठाकर दो सेकन्ड तक तानना चाहिये। इस प्रकार से पसलियों के ऊपर

खींची जाने पर रोगी अन्तःश्वास न लेगा। श्वास निकलने के लिये दोनों हाथों को कोहनी पर मोड़कर, छाती पर रखकर दबाना चाहिये। यह भी दो सेकण्ड तक करना चाहिये। पसलियों के दबने से श्वास बाहर निकल जायगा। इस विधि को १ मिनट में १५ बार दुहराना चाहिये।

इस उपाय के साथ-साथ स्मेलिंग साल्ट, सुँघनी आदि वस्तुएँ सुँघानी चाहिये। गले में गुदगुदी करनी चाहिए। छाती को मलना चाहिये। मुँह और छाती पर क्रमशः ठंडे और गरम पानी के छींटे देने चाहिये। शुष्क फलालैन से सोंठ से, कांसी के गरम बर्त्तन से हाथ-पाँव को मलना चाहिए। यह काम तबतक करते रहना चाहिए, जबतक चिकित्सक न आए अथवा नाड़ी और श्वास को बन्द हुए एक घंटा न हो जाय।

जब श्वास चलना आरम्भ हो जाय, तब रोगी को गरम करने का उपाय करना चाहिए। रोगी को कम्बलों में लपेटकर फलालैन से हाथों-द्वारा मलना चाहिए। रबरों की बोतलों में पानी भरकर पाँव, कक्षा, पेट पर रखना चाहिए। जब रोगी निगलने लगे तब दूध, चाय, ब्रांडी, गरम पानी पीने को देना चाहिए। रोगी को बिस्तर पर रखना चाहिए और उसको सुलाने का यत्न करना चाहिए। छाती पर या पीठ पर कन्धों के नीचे राई का प्लास्टर लगाने से श्वास-काठिन्य हट जाता है।

फाँसी—यदि लटकाने के पीछे शरीर कुछ ऊँचाई पर से गिर जाय, जिससे ग्रीवा का सन्धि-भ्रंश हो जाय, तो मृत्यु तुरन्त हो जाती है। यदि ऐसा न हो, तो रस्सी का दबाव धमनियों को दबा देता है, जिससे मस्तिष्क में रक्त-वाहिनियाँ फट जाती हैं। रक्त-वाहिनियों के फटने से—संन्यास के कारण मृत्यु हो जाती है। तीसरी अवस्था यह है कि रस्सी का दबाव (शनैः-शनैः) श्वास-नलिका पर पड़े और श्वास-काठिन्य हो जाय। यदि इस अवस्था में रोगी मिल जाय, तो उसमें कृत्रिम श्वास चलाकर देखना चाहिये।

बिजली से आघात—मनुष्य जब बिजली से पीड़ित होता है, तो उसकी चेतनता थोड़ी या बहुत अवश्य नष्ट हो जाती है। यदि भय से चेतनता नष्ट हुई होती है, तो वह शीघ्र अच्छी हो जाती है। रोगी ऐसा अनुभव करता है कि वह मूर्च्छा से उठा है। बिजली के कारण दाह हो जाता है। कई बार थोड़ा त्वचा का लाल होना, कई बार छाला पड़ना और कई बार

अधिक दाह होता है। इसी प्रकार का प्रभाव आजकल की बिजली के तारों से होता है। इसके अतिरिक्त अस्थि का टूटना, आँख से न दीखना, कम दीखना, कान, नाक, वाणी की शक्तियों का नष्ट होना हो जाता है, जो स्थायी या अस्थायी होता है। इन रोगियों की चिकित्सा के लिये कृत्रिम श्वास तथा मूर्च्छा की चिकित्सा करनी चाहिये।

बिजली के गिरने से बचने का उपाय

१—किसी ऊँची वस्तु के समीप नहीं खड़ा होना चाहिये, जैसे, वृक्ष, ऊँचे मकानात।

२—किसी बहती हुई दरिया के पास नहीं खड़ा होना चाहिये, जब तक तुमसे ऊँची कोई वस्तु पास में न हो।

३—भीड़ में नहीं जाना चाहिये।

४—रत्न (हीरा), माणिक्य आदि अथवा धातु को, अँगूठी, चाभी, घड़ी आदि वस्तुओं को दूर कर देना चाहिये, चूँकि ये वस्तुवें बिजली को अपनी ओर खींचती हैं।

५—घर के बीच में, दीवारों से दूर होकर बीच में बैठना चाहिये।

६—चटाइयों पर बैठना उत्तम है। इसी प्रकार लोहे के पलँग पर सोना भी उत्तम है।

७—यदि बरसात में वस्त्र गीले हो गये हैं, तो तुम बिजली से सुरक्षित हो गये।

गरमी से आघात—सफेद त्वचावाले व्यक्ति प्रायः सूर्य की गरमी से आक्रान्त हो जाते हैं। इनको बचाने के लिये सिरके का पानी, या कपूर का मरहम लगाना चाहिये।

गुप्त अङ्गों पर चोट—अण्ड-कोषों पर प्रायः आघात से चोट लग जाती है। इसके कारण अण्ड-कोष सूज जाते हैं, रोगी मूर्च्छित हो जाता है सब से प्रथम रोगी को उत्तेजित रखना चाहिये। स्थान पर शीत परिसेक करना चाहिये। यदि इससे लाभ न हो, तो उष्ण परिसेक करना चाहिये। इन चोटों की उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। यथासम्भव चिकित्सक की सहायता प्राप्त करनी चाहिये।

मूत्राघात—इस रोग में वृक्कों से मूत्र उत्पन्न होता है, मूत्राशय में

भी आता है; परन्तु मूत्राशय से बाहर नहीं आता। मूत्र-मार्ग में अवरोध होने से अथवा अष्ठीला के बढ़ने से मूत्र-मार्ग में अश्मरी के फैसने से, मूत्राशय की पेशियों के पक्षाघात होने से, हिस्टीरिया से, श्रोणास्थि के टूटने से मूत्र रुक जाता है। कई बार गिरने से मूत्र-मार्ग फट जाता है। उस समय मूत्र भी रुक जाता है। प्रत्येक कारण की चिकित्सा भिन्न-भिन्न है। परन्तु जब मूत्र आघात के कारण रुक जाय, उस समय टाँगों के बीच में आँतों पर सेंक करना चाहिये। रोगी को क्लोरल हाईड्रेट पानी के लिये देना चाहिये, अन्यथा शलाका यंत्र (कैथीटर) गुजारना चाहिये।

ज़ख्म और कटाव

शस्त्र या औजार के स्वभाव के कारण आघात या जख्म का स्वभाव भी भिन्न-भिन्न होता है। किसी शस्त्र से त्वचा सीधी कट जाती है, जैसे, चाकू से, किसी औजार से जर्जी थोड़ी रह-रहकर कटती है, जैसे, आरे से, किसी से सीधा गहरा छेद होता है, यथा लम्बी सुई से। भाले और गोली का स्वभाव और ही प्रकार का होता है। किसी अवस्था में अङ्ग कुचला जाता है।

सीधे कटाव में सबसे प्रथम रक्त को रोकना चाहिये। सब धूल आदि को दूर करना चाहिये। रक्त-स्राव को रोकने के लिये अङ्ग को ऊँचा करना चाहिये, शीत परिसेक करना चाहिये, स्पंज से दबाव देना चाहिये। दूब को कूटकर मधु से मिलाकर लगा देना चाहिये। धूल आदि को हटाकर, व्रण को जन्तुघ्न घोल से धोकर दोनों किनारों को पास में लाकर सी देना चाहिये, अथवा प्लास्टर से दोनों किनारों को समीप में रखकर चिपटा देना चाहिये। इसके ऊपर सूखी रुई रखकर पट्टी बाँध देनी चाहिये। यदि कटाव छोटा हो, तो व्रण के दोनों किनारों के पास लाकर कोलोडियम फ्लैक्सीबल लगा देना चाहिये।

सीते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि व्रण में धूल आदि न रहे। व्रण के किनारे ठीक मिल जायँ, धागा और सुई उबाल लिये जायँ, सुई बहुत गहरी न जाय, जिससे मांस-पेशियाँ स्नायु में न फँस जायँ। इसी प्रकार इतने पास से न ले जाना चाहिये कि व्रण का किनारा कट जाय। प्रत्येक इंच के लिये एक टाँके की आवश्यकता होती है।

कटे हुये, घिसे हुये या छिले हुये व्रणों में, जहाँ व्रणों के किनारे पास में लाना सम्भव न हो, वहाँ पर पुल्टिस बाँधकर पीछे से पानी की पट्टी बाँधनी चाहिये। नाखूनों के घावों को गरम पानी से धोना चाहिये।

जबतक ड्रेसिङ्ग तैयार हो या ड्रेसिङ्ग बदला जाय, तबतक एन्टीसैप्टिक लोशन में कपड़े को भिगोकर व्रण पर रख देना चाहिये। जो कटाव सीधे और साफ़ हों, उनकी पट्टी तीसरे दिन बदलनी चाहिये। प्लास्टर को उतारते समय प्रथम दोनों किनारों को अलग करके फिर दोनों किनारों को पकड़कर केन्द्र की ओर प्लास्टर उतारना चाहिये। सड़े हुये सब स्राव को दूर कर देना चाहिये।

व्रणों की चिकित्सा में सबसे मुख्य सिद्धान्त स्वच्छीकरण (ऐन्टीसैप्टिक) है। जो व्रण जितना स्वच्छ रहेगा, वह उतना ही शीघ्र भरेगा। कटे हुये भागों को सुरक्षित रखना चाहिये। सम्भव है कि वे उचित उपाय से जोड़ जा सकें। जैसे, अँगुली का कटना, नाक या कान का अलग हो जाना।

स्वच्छीकरण के लिये कार्बोलिक एसिड लोशन और टिंचर आयोडीन सबसे उत्तम वस्तु हैं। व्रण में यदि कोई दूषित पृष्ठ जम जाय, तो उसे उखाड़ देना चाहिये। जिस व्रण में किसी प्रकार का स्राव न हो, किनारे लाल और त्वचा के समान हो; पृष्ठ लाल तथा दानों (लाल अंगारों) से भरा हो, वह व्रण शीघ्र भर जाता है। जिस व्रण के भरने पर दर्द न हो, गाँठ न बने, चिबुक न मारे, वह व्रण भली प्रकार भरा हुआ समझना चाहिये। व्रणों में रोगी को आवश्यकतानुसार विश्राम देना चाहिये।

गोली आदि के व्रण प्राय: घातक होते हैं। विशेषत: जब इनमें धूल आदि चली जाय। धूल आदि के साथ कीटाणु जाकर धनुर्वात रोग उत्पन्न कर देते हैं। इन व्रणों में यथासम्भव रक्त को रोकने के लिये शीत परिसेक करना चाहिये। यदि रोगी को ज्वर हो जाय, तो व्रण पर पुल्टिस बाँधनी चाहिये, रोगी को विरेचन देना चाहिये। साइट्रेट ऑफ मैगनेशिया का देना उत्तम है।

आँतों में व्रण—इसकी दो अवस्थायें हैं। जब आघात कोष्ठ की पेशियों तक ही सीमित रहता है, तो आँतों को आघात का स्पर्श नहीं होता। यदि इसमें से आंत्र दिखाई दें, तो उनकी परीक्षा करनी चाहिये कि वे आक्रान्त हुई हैं या नहीं। यदि मल के साथ रक्त आये अथवा व्रण में से

मल दिखाई दे, तो इस बात की साक्षी है कि आँतें आक्रान्त हुई हैं। यदि आंत्र आक्रान्त न हुई हों, तो व्रण को साफ करके दोनों किनारों को पास लाकर सुई से सी देना चाहिये अथवा प्लास्टर से चिपका देना चाहिये। पीने के लिये द्रव भोजन देना चाहिये। जहाँ सींग आदि से आंत्र के विदीर्ण होने का भय हो, वहाँ पर चारकोल की पुल्टिस बाँधनी चाहिये। यह स्मरण रखना चाहिये कि आमाशय और आंत्र भरे होने पर जल्दी आक्रान्त होते हैं।

यदि आंत्र आक्रान्त हो जाय, तो गरम पानी से धोकर सब धूल साफ कर देनी चाहिये। यदि आँतें स्वयं फटी हैं, तो व्रण छोटा होगा, जो सिल सकेगा। व्रण के किनारे अन्दर की ओर मोड़ देना चाहिये, जिससे पृष्ठ समीप में आजाय। सीने के लिये रेशम बारीक लेना चाहिये और पास-पास सीना चाहिये। रेशम के प्रान्त भी छोटे-छोटे काटने चाहियें। फिर से आँतों को उसके स्थान पर बैठा देना चाहिये। जब व्रण अच्छे होंगे तब धागे वहीं गिर जायँगे। बाहर के व्रण को सी देना चाहिये। उस पर बर्फ लगानी चाहिये। २४ घण्टे तक किसी प्रकार का भोजन नहीं देना चाहिये और ३ सप्ताह तक द्रव भोजन देना चाहिये।

वृक्क—मूत्र-पिण्ड के आघात से मूत्र में रक्त आने लगता है। बार-बार मूत्र-प्रवाहण करने की इच्छा होती है। अण्ड-कोष ऊपर को खिंच जाते हैं और रोगी सीधा खड़ा नहीं हो सकता। इसकी चिकित्सा के लिये कटि-प्रदेश और आँतों पर वृक्क के स्थान पर क्रमशः सेंक करना चाहिये। पीने के लिये द्रव वस्तु नहीं देना चाहिये। यह यत्न करना चाहिये कि रोगी को पसीना आये। जब मूत्र में रक्त की मात्रा आनी कम हो जाय, तब समझना चाहिये कि रोगी अच्छा हो रहा है। प्यास को रोकने के लिये बर्फ या दूध और पानी देना चाहिये। यवोदक भी देना उत्तम है।

गले का व्रण—यह व्रण प्रायः आत्मघात करने के उद्देश्य से किये जाते हैं। इसमें शिरा, धमनी तथा श्वास-नलिका कट जाती है। यदि बड़ी धमनी न कटे, केवल श्वास-नली कटी हो, तो बड़ी धमनी के कटने पर बचने की आशा बहुत कम रहती है।

इसकी चिकित्सा के लिये सबसे प्रथम रक्त-स्राव बन्द करना चाहिये। रक्त-स्राव बन्द होने पर रोगी को गरम कमरे में रखना चाहिये। रक्त-स्राव

बन्द होने पर (उससे पहले नहीं) रोगी को तकिये का सहारा देकर इस प्रकार से बिठा देना चाहिये कि कन्धे उठे रहें और सिर आगे झुका रहे। इस स्थिति में रोगी को स्थिर कर देना चाहिये। व्रण पर लगाने के लिये स्पंज को उबालकर उस पर एरीस्टोल छिड़ककर रख देना चाहिये। यदि श्वास-नलिका आक्रान्त हो गई हो, तो रुई से ढीला ढक देना चाहिये। यदि अन्न-प्रणाली भी कट गई हो, तो रोगी को नलिका से भोजन देना चाहिये। प्यास के लिये बर्फ या गीला कपड़ा चुसाना चाहिये। रोगी की पूरी देख-भाल रखनी चाहिये।

जिह्वा का व्रण—ये व्रण मृगी, हिस्टीरिया, मूर्च्छा आदि रोगों में हो जाते हैं। विशेषत: जब दाँतों में जीभ फँस जाती है। ये प्राय: अपने आप अच्छे हो जाते हैं। यदि ये अच्छे न हों, तो मधु और ग्लैसरीन लगानी चाहिये।

प्राणियों के काटने से उत्पन्न व्रण

घोड़े और ऊँट के काटने से उत्पन्न व्रण—कई बार तेज दाँत धमनी में आघात पहुँचा देता है, यथा अन्त: प्रकोष्ठास्थि धमनी में। रक्त-स्राव को बन्द करके गरम पानी से धोना चाहिये। इस पर पुल्टिस बाँधनी चाहिये, और पीछे से सादा ड्रेसिंग करना चाहिये।

कुत्ते और बिल्ली के काटने पर—व्रणों को गरम पानी से धोकर चारकोल या नीम की पुल्टिस भी बाँधनी चाहिये। यदि दर्द हो, तो स्थान पर पोस्त के ढोड़ों का सेंक करना चाहिये। जब व्रण अच्छा हो जाय, तो पानी की पट्टी बाँधनी चाहिये।

बिल्ली का नोचना—स्थान को गरम पानी से धोकर पुल्टिस बाँध देनी चाहिये और पीछे से शीत परिषेक करना चाहिये।

शेर और भालू का काटना—यदि हाथ काटता है, तो वह टुकड़े-टुकड़े हो जाता है, छाती में आघात होने पर दाँत और पंजे फेफड़ों को जख्मी कर देते हैं। जङ्घा की अवस्था में बड़ी धमनी विदीर्ण हो जाती है। रक्त-स्राव को सबसे प्रथम बन्द करके व्रण को ऐन्टी सैप्टिक लोशन से धोना चाहिये। यदि आघात थोड़े हों, तो प्रथम कुछ दिनों तक पुल्टिस बाँधकर पीछे से पानी

का परिषेक करना चाहिये। यदि कार्बोलिक एसिड मिल जाय, तो उसका तेल या घोल लगाना चाहिये।

मच्छर का काटना—साधारणतः इसका कारण भयानक नहीं होता है। परन्तु कई बार मच्छर विष को, जैसे मलेरिया के कीटाणु को, शरीर के अन्दर पहुँचा देता है। मच्छर के काटने से केवल जख्म ही नहीं होता, बल्कि उसमें से पानी भी निकल आता है। इसके लिये अमोनिया स्प्रिट लगानी चाहिये। सिरका या कार्बनेट ऑफ पोटाश का घोल भी बरतना उत्तम है।

जोंक के काटने पर—कुछ रक्त-स्राव होता है। इसके काटने से थोड़ा दर्द होता है। सबसे प्रथम रक्त-स्राव को बन्द करना चाहिये, पीछे से शीत परिषेक करना चाहिये।

खटमल का काटना—इससे खुजली, शोथ, रक्तिमा और कभी श्वेत चिन्ह होता है। सिरके को पानी में मिलाकर लगाना चाहिये। सामान को जिसमें खटमल हों, गरम पानी से या तारपीन के तेल से धोना चाहिये।

जूँ का काटना—जूँ के काटने से खुजली होती है, ये प्रायः बालों में रहती हैं और वहीं अण्डे देती हैं। इनको मारने के लिये बालों को कार्बोलिक लोशन से धोना चाहिये। बालों को उस्तरे से साफ कराकर मर्क्युरल ऑयन्टमेन्ट लगाना चाहिये। मिट्टी के तेल से सिर को धोना भी अच्छा है। जिस समय मिट्टी का तेल सिर पर लगा हो, उस समय आग के पास नहीं जाना चाहिये। पीछे साबुन से धो देना चाहिये।

सर्प-दंश-जन्य व्रण—भारत में २१३ प्रकार के साँप हैं। इनमें ३३ साँप विषैले हैं। इन तैंतीस साँपों के दो भेद हैं। एक 'वीपेरीन' और दूसरा 'कोल्युब्रीन'। वीपेरीन साँपों की पूँछ मोटी होती है और इनका शिर त्रिभुजाकार होता है। 'कोल्युब्रीन' साँप फनदार होते हैं। विषैले साँपों के ऊपर के जबड़े में दो दाँत होते हैं, जिनपर विष की रेखा का चिन्ह होता है। तलुवे पर और भी दाँत होते हैं; परन्तु असली जबड़े पर और कोई दाँत नहीं होता। दाँतों की जड़ में एक छेद होता है। इस छेद से विष दाँत में आता है और काटने पर शरीर में पहुँचता है।

लक्षण—विषैले साँप के काटने पर दंश के स्थान पर.. इस

प्रकार का चिन्ह होता है। परन्तु यदि दंश पर : : इस प्रकार का चिन्ह हो, तो यह दंश विष-रहित साँप का होता है अथवा विष-युक्त दाँत से नहीं बना होता। साँप प्राय: अँगुली, अँगूठे, गिटके, हाथ आदि पर सोते समय काटता है। इसके कारण दर्द होता है, जो एक लहर के रूप में होता है; परन्तु बहुत तीव्र नहीं होता। काटने से मूर्च्छा, रुग्णावस्था, टाँगों में निर्बलता, निद्रा का आना, सम्भवत: वमन भी होता है। श्वास कठिनता से आता है और छोटा हो जाता है। नाड़ी तेज और रुक-रुककर चलती है। बोलने और निगरण की शक्ति नष्ट हो जाती है, जीभ मुड़-सी जाती है और मुँह से लार बहने लगती है। मांस-पेशियों में ऐंठन आरम्भ हो जाती है, उनमें हिलने-डुलने की शक्ति नहीं रहती। दर्द ऊपर की ओर चढ़ता प्रतीत होता है। विलीन करनेवाली रक्त-वाहिनियाँ सूज जाती हैं। व्रण बे रंग हो जाता है, अङ्ग सूज जाता है। आक्रान्त स्थान के पास छाला उठ आता है। कक्षा और वंक्षण की लसिका-ग्रन्थियाँ सूज जाती हैं। कई बार अतिसार हो जाता है। दंश से रक्तस्राव होता है। कई बार मूत्र में रक्त आता है, अथवा नाक, आँतों या मसूड़ों से रक्तस्राव होता है।

चिकित्सा—बाँधना, चूसना और जलाना है। ब्राण्डी की मात्रा रोगी को सबसे प्रथम पिलानी चाहिये। रोगी को उत्तेजित रखना चाहिये। कक्षा या वंक्षण में सूजन होने पर पुल्टिस बाँधनी चाहिये। यदि बन्धन के आध घण्टे के पीछे तक विष का कोई लक्षण न हो, तो बन्धन खोल देना चाहिये। एन्टीवीनाइन का इञ्जेक्शन भी उत्तम है।

मस्तिष्क-सम्बन्धी विचार

यह एक मशहूर कहावत है कि 'जितने मुँह उतनी बात'। अर्थात् सब लोग एक विचार के नहीं हो सकते। वास्तव में बात भी यही है कि आप सब बच्चों को एक ही नियम में रखिये। उनको एक ही प्रकार की शिक्षा दीजिये। फिर भी सब में अन्तर दिखाई देगा। कोई छात्र आगे निकल जायगा, कोई बीच में रह जायगा और कोई फेल हो जायगा। इसी तरह किसी को गणित भली प्रकार आती है और किसी को बिल्कुल नहीं आती। इसी प्रकार किसी को संगीत में प्रेम और अभिरुचि बहुत होती है

और किसी को उसमें बिल्कुल ही रुचि नहीं होती। 'साँप' बीन के ऊपर जान दे देता है और भैंस के आगे वही बीन रेते में पानी की भाँति फ़िज़ूल है।

इसी प्रकार आप बहुत-से छात्रों को एकत्रित करके उनके ब्रह्मचर्य की शिक्षा दीजिये और कड़े नियमों में भी रखिये। परन्तु इनमें कुछ छात्र ऐसे निकलेंगे, जो 'संयम' या निग्रह को सुगमता से पाल सकते हैं। साथ ही कुछ व्यक्ति इस प्रकार के होंगे, जिनमें यत्न करने पर भी सफलता नहीं मिल सकती, अर्थात् वे संयम नहीं कर सकते। वे स्वयं समझते हैं कि हमको संयम करना चाहिये, पर हो नहीं सकता।

एक तीसरी बात यह है कि बहुत-से रोगों में पैतृक कारण भी होता है। उदाहरण के लिये—क्षय-रोग से ग्रस्त माता-पिता की सन्तान में क्षय-रोग हो जाता है। अपस्मार रोगवाले माता-पिता से मृगी-रोगवाला बच्चा होता है। जिस बच्चे के माता-पिता पागल हों, उस बच्चे के पागल होने की ९८ प्रतिशत आशा रहती है। यह एक नियम है, जैसा बीज बोया जायगा, वैसा ही उत्पन्न होगा।

परन्तु साथ में यह भी देखना पड़ता है कि अन्धे माता-पिता से सूजाखे बच्चें उत्पन्न होते हैं और सुजाखे माता-पिता से सूरदास उत्पन्न हो जाते हैं। इस विषमता का कारण भी कुछ होता ही है। लोग श्वेत कबूतरों से नीले या गुलाबी कबूतर भी बना लेते हैं। इसके लिये वे कबूतर को जिस रंग का बनाना चाहते हैं, उस रंग में दोनों नर और मादा को रंग देते हैं। और उनके रहने के स्थान में भी वही रंग दीवारों पर, छत पर, जमीन पर करवा देते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि उनकी सन्तति उसी रंग की होती है। अर्थात् परिस्थितियों का प्रभाव उन पर पड़ जाता है।

जिस प्रकार प्रत्येक वृत्ति में शारीरिक विषमतायें देखने में आती हैं, उसी प्रकार मानसिक विषमतायें भी प्रत्येक व्यक्ति में मिलती हैं। जो कारण शारीरिक विषमताओं के हैं, वे ही कारण मानसिक विषमताओं के हैं; क्योंकि दोनों का उत्पत्ति-कारण वह शुक्र और रज का संयोग है, अथवा वही पंच महाभूत दोनों को बनाते हैं। इन मानसिक विषमताओं का केन्द्र-स्थान अपना देव-कोष (हिरण्यमय कोष) मस्तक है। क्योंकि सब

प्रकार के मानसिक कार्य यहीं से फैलते हैं।

इस मस्तक में पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ रहती हैं और कर्मेन्द्रियों को नियंत्रित करनेवाले साधन भी इसी अपने मस्तक में हैं। इन्द्रियों को उपनिषदों में 'देव' या 'देवता' शब्द से कहा गया है। चूँकि इसमें देवताओं का निवास होता है, इसलिये इसको 'देव-कोष' कहते हैं।

इस देव-कोष की उपमा भगवान् कृष्ण ने "अश्वत्थ" वृक्ष से दी है। "अश्वत्थ" का शब्दार्थ कभी नष्ट न होनेवाला है। इस पाँच भौतिक शरीर के अन्दर एक आत्मा ही ऐसी वस्तु है, जो कि कभी नष्ट नहीं होती। इस अविनाशी वस्तु का स्थान देव-कोष है। साथ ही इस "अश्वत्थ" का रूप इस प्रकार से बताया है कि इसकी शाखायें नीचे को फैली हैं और जड़ ऊपर को है। साधारणत: अश्वत्थ पीपल वृक्ष की शाखायें ऊपर को होती हैं और जड़ नीचे। शास्त्र में लिखा है कि जो आदमी इस अश्वत्थ को समझ लेता है, उससे कोई भी वस्तु अविदित नहीं रहती; अर्थात वह सब कुछ समझता है। इस अश्वत्थ को समझने के लिये ही नचिकेता ने यम से प्रश्न किया था। उसने इस उत्तर को बहुत कठिनाई से दिया है; क्योंकि यह वस्तु ही ऐसी है कि कोई व्यक्ति इसे आश्चर्य के साथ देखता है, कोई व्यक्ति इसे आश्चर्य के साथ कहता है और कोई आश्चर्य के साथ इसे सुनता है, और कोई सुनकर भी इसको समझ नहीं सकता।

इस देव-कोष-मस्तक से सब प्रकार की 'संज्ञावहा' और 'चेष्टावहा' क्रियायें उत्पन्न होती हैं, और यहीं आकर समाप्त होती हैं। अर्थात् 'चेष्टावहा' तन्तु त्वचा के उपरि पृष्ठ से, नखों के प्रान्तों से चलकर मस्तिष्क में पहुँचते हैं, और मस्तिष्क से संज्ञावहा तन्तु चलकर त्वचा के पृष्ठ एवं नखों के प्रान्तों तक पहुँचते हैं। इन तन्तुओं से सारा शरीर ओत-प्रोत है। ये ही तन्तु मस्तक में फैले हुये हैं। इन तन्तुओं के अन्दर 'प्राणवहा' रस बहता है। यह रस भी तन्तुओं के या सूत्रों के रूप में चलता है। यदि ये तन्तु कट जाते हैं, तो स्थानिक पक्षाघात या लकवे की बीमारी हो जाती है। उदाहरण के लिये हाथ के तन्तु कटने से हाथों का पक्षाघात हो जाता है। इसलिये आचार्य ने इसको 'प्राणों का स्थान' कहा है; क्योंकि सब प्राणवहा स्रोतसों का यही केन्द्र है। प्राणों का स्थान होने से इसको "उत्तमांग" (सब अंगों में श्रेष्ठ) कहते हैं।

जिस प्रकार प्रत्यक्ष रूप में श्रोत्र, जिह्वा, नाक, कान आदि में परस्पर भेद दिखाई देता है, उसी प्रकार से मस्तिष्क के अन्तरावयवों में भी अन्तर-भेद है। इन अवयवों को मानस-अवयव या प्राणावयव कहते हैं। इस भिन्नता के कारण ही प्रत्येक व्यक्ति अपनी भिन्न मानसिक रुचि रखता है।

जिस प्रकार शरीर के अन्य भागों में वृद्धि या क्षय होता है, उसी प्रकार मस्तक के अवयवों में वृद्धि या क्षय होता है। यथा—यकृत के बढ़ने से या घटने से जिस प्रकार शरीर के अन्दर परिवर्त्तन आ जाता है; उसी प्रकार मानसिक अवयवों में वृद्धि या क्षय होने से रोगी की मानसिक अवस्थाओं में भी अन्तर आ जाता है। अर्थात् रोगी को नींद नहीं आती या बहुत आती है; चित्त विभ्रम हो जाता है; क्रोध, लज्जा, आदि बहुत हो जाते हैं; मनुष्य की स्मृति नष्ट हो जाती है। ये सब लक्षण मानसिक अवयवों में अन्तर आने से होते हैं।

इन मानसिक अवयवों को सामुद्रिक शास्त्र की दृष्टि से देखने पर विशेष लाभ होता है। यथा—

१—स्त्री, पुरुष एवं बालकों के स्वभाव, चारित्र्य आदि की योग्यता की परीक्षा।

२—बालकों के स्वभाव और शिक्षण का निर्णय।

३—विवाह-योग्य स्त्री-पुरुषों के गुण, कर्म, स्वभाव की परीक्षा।

४—नौकर-चाकर, गुमाश्ता आदि की पसन्दगी।

५—सदाचारी, दुराचारी, धर्मात्मा या पापी आदि मनुष्यों के गुण, कर्म, स्वभाव की परीक्षा।

६—पागल, उन्माद रोगी की परीक्षा एवं अनेक प्रकार के मानस-रोगों की परीक्षा।

७—मुख-सामुद्रिक शास्त्र के सिद्धान्तों के अनुसार मनुष्य की आँख, नाक, कान, ओष्ठ, भ्रमर, चिबुक आदि चेहरे के अवयव, एवं चेहरे के ऊपर की रेखाओं को देखकर मनुष्य के मानसिक अवयवों को देख सकते हैं। इससे स्त्री एवं पुरुष तथा बालकों के चारित्र्य या स्वभाव का निर्णय सुगमता से हो सकता है। इसलिए मुख-सामुद्रिक शास्त्र के सामान्य सिद्धान्तों का ज्ञान भी अति आवश्यक और उपयोगी है। चेहरा मनुष्य के भावों के लिये एक रण-स्थली है इस पर सब अवयव आकर अपना-अपना भाव दिखाते

हैं। एक ही चेहरा प्रेम, क्रोध, लज्जा, उपेक्षा आदि अनेक भावों को एक-एक क्षण में दिखाता है।

इन भावों को समझाना ही मस्तक-विद्या और मुख-सामुद्रिक शास्त्र का मुख्य उद्देश्य है। इस स्थानों पर इन विद्याओं के सामान्य सिद्धान्तों का वर्णन किया गया है। इन सिद्धान्तों का उपयोग हम प्रतिदिन और अनेक प्रसङ्गों में कर सकते हैं।

मानसिक वृत्तियों को आठ समूहों में बाँटा गया है। ये समूह शरीर के अवयवों की भाँति अपना कार्य पृथक्-पृथक् रूप में करते हैं। जिस प्रकार रक्त-संचार का कार्य और श्वास प्रचार का कार्य पृथक्-पृथक् है, उसी प्रकार इन वृत्तियों का कार्य और स्थान भी मस्तक में भिन्न-भिन्न है। प्रत्येक अवयव का स्थान, रूप और कार्य भी सर्वथा परस्पर भिन्न है।

आगे का नक़शा देखिये।—

मानस-वृत्तियों के समूह, प्रमाण, विभाग, नाम, स्थान नम्बर आदि

नम्बर	मानस अवयवों के नाम	मस्तक के अन्दर इनका स्थान	सामुद्रिक लक्षण	अन्य चिन्ह
१	जीजीविषा	कान का पिछला मस्तक का उन्नत भाग…नं० १	कान के निचले खण्ड की लंबाई और चौड़ाई	लम्बी अस्थियोंवाला, लम्बे हाथ-पाँववाला, पूर्ण संधियों-वाला, भरावदार मांसपेशियों वाला, कठोर अँगुलियों एवं तलुवोंवाला।
२	क्षुधावृत्ति	कान के समीप का मस्तक का उन्नत भाग…नं० २	कान के पास का गालों का भरावदार भाग	करभ—हथेली का निचला भाग मोटा, खुरदरा और बिना ढङ्ग की लिखावट होती है।
	सुस्वाद	अनुभाग	,,	
	सुप्रमाण	पिछला भाग	,,	,,
३	पिपासा	नं० ३ वाला चौड़ा और भराव-दार भाग	मुख के समीप का गाल का ऊपरवाला विभाग	
४	वैश्यवृत्ति	दोनों कान के बीच का विशाल चौड़ा प्रदेश		अँगुलियाँ तथा पहुँचा अन्दर की तरफ झुका होता है।
	१ प्राप्ति	कान का ऊपर का उन्नत और अग्रभाग	नासिका का मूल भाग चौड़ा-मोटा होता है।	
	२ योगक्षेम	मध्य भाग	मांस से भरी हुई चिबुक	
	३ लोभ	पिछला भाग	नाक की डंडी मोटी और विस्तृत	
५	निग्रह वृत्ति	कान के शिखर के ऊपर का मस्तक का उन्नत भाग		धीरे-धीरे करके लिखावट

नम्बर	मानस अवयवों के नाम	मस्तक के अन्दर इनका स्थान	सामुद्रिक लक्षण	अन्य चिन्ह
	संयम	पीछे का ” ”	नाक के चौड़े नथने	
	युक्ति	मध्य ” ”	नोकदार झुकी हुई नाक	
	निग्रह	अग्र ” ”	” ” ”	
६	उद्योग—कार्य-शक्ति	कान के ऊपर का समीप का उन्नत भाग	बाहर की तरफ गिरते हुये कान	अँगूठा और अनामिका के पास का मांसवाला भरावदार भाग, मोटे अक्षर।
	१—क्रिया-शक्ति	अग्रभाग	गाल की अस्थि उन्नत होती है।	
	२—विनाशक शक्ति	पिछला भाग	कान का परदा मोटा होता है।	
७	शौर्य या युयुत्सा	नं० ७ वाला भाग ऊँचा उठा हुआ होता है।	नाक की ऊँचाई	करतल पृष्ठ उठा हुआ होता है।
	हिम्मत	”	नासिका की मूल की ऊँचाई होती है।	
	बचाव	अग्रभाग	नासिका का मध्य उठा हुआ भाग	
	हमला करना	पीछे का और नीचे का विभाग	तोते के समान नाक	
८	कामवासना, प्यारवृत्ति	लघु मस्तिष्क के उन्नति प्रमाण में नं० ८	उपरिओष्ठ भरावदार, रक्त से परिपूर्ण, वर्ण, मध्य भाग आगे को लटकता रहता है।	अँगुष्ठ की जड़ मोटी, एवं अक्षर बड़े और मोटे मोटे होते हैं।
	संयोगाभिलाष	गरदन का मध्य भाग मोटा और मांसपेशी युक्त	बीच में विस्तृत चिबुक, चौड़ा नीचे का जबड़ा	
	सहवास-प्रियता	विस्तृत गरदन और लघु मस्तिष्क	शरीर का घनश्याम रङ्ग	

नम्बर	मानस अवयवों के नाम	मस्तक के अन्दर इनका स्थान	सामुद्रिक लक्षण	अन्य चिन्ह
९	दाम्पत्य-प्रेम	लघु मस्तिष्क का भरावदार मध्य प्रदेश नं० ९		मज़बूत और प्रमाणों में मोटा अँगूठा।
	विवाहेच्छा	अन्तर विभाग		
	एकान्तिक प्रेम	वाह्य विभाग		
१०	वात्सल्य-स्नेह	मस्तिष्क का निचला भरावदार प्रदेश		बहुत गोल-मरोड़वाले अक्षर
	अपनी संतति पर का प्रेम	ऊपर का विभाग	बाहर की तरफ गिरता हुआ ऊपर का लाल ओष्ठ	
	बच्चों पर का स्नेह	मध्य का विभाग	ऊपर की ओठ के दोनों तरफ़ के प्रान्त मोटे होते हैं	
	प्रजा-पालन-वृत्ति	अधोविभाग	निचले ओष्ठ के नीचे गड्ढा रहता है	
११	मैत्रीभाव	वात्सल्य स्नेह के ऊपर का भाग उन्नत होता है।	गोल विस्तृत चिबुक	अनामिका की जड़ के समीप में हथेली का मांस उन्नत होता है।
	जल्दबाज़ी	अधो विभाग		
	कौटुम्बिक-स्नेह	मध्य विभाग	गाल का उपरला भाग पूर्ण होता है	
	सहवास-प्रियता	ऊपर का विभाग	गाल का निचला भाग भरा होता है	

नम्बर	मानस अवयवों के नाम	मस्तक के अन्दर इनका स्थान	सामुद्रिक लक्षण	अन्य चिन्ह
१२	स्वदेशानुराग	मस्तिष्क का पिछला उन्नत मध्य विभाग	ओष्ठ के रक्त विभाग से निचला चिबुक की तरफ़	
	निवासेच्छा	मैत्री भाव के ऊपर का मध्य विभाग।	ढलता हुआ गड्ढेवाला भाग	
१३	तत्परायणता	निवासेच्छा के ऊपर का नं० १३ वाला विभाग		
	संलग्नता	मध्य भाग	ओठ और नासिका के बीच का विस्तृत विभाग	
	संवाध्यता	वाह्य विभाग	ओष्ठ का मध्य वी० (v) के आकार का	
१४	सावधानता	नं० १४ का उन्नत प्रदेश	दोनों ओष्ठ भली प्रकार से बन्द हो जाते हैं।	
	अक़्लमन्दी, बुद्धिमानी	अग्रभाग	चौड़े नथने और लम्बी नोकीली नाक	
	संभाल	मध्य भाग		
	भीरुता	पीछे का अधोविभाग		
१५	उत्कर्षाभिलाष	'स्वमान' अवयव के दोनों प्रान्तोंवाले अवयव उन्नत होते हैं।	छोटे नथने	
	चारित्र्य			

म्बर	मानस अवयवों के नाम	मस्तक के अन्दर इनका स्थान	सामुद्रिक लक्षण	अन्य चिन्ह
	डोल-दमाम	स्वभाव के बाजु का भाग	गाल पर पड़ती हुई रेखायें	
		ऊपर का भाग	गाल पर पड़ती हुई तथा ऊपर	
	उत्कर्ष	अधोविभाग	का ओष्ठ छोटा होता है।	
१६	स्वमान	माथे के पीछे का उन्नत भाग	जिससे कि दाँत खुले हुए दिखाई देते हैं, या मुख का कोण ऊपर को खिंच जाता है	
	स्वतन्त्रता	अधो विभाग	सीधी और लम्बी गर्दन	
	प्रतिष्ठा	मध्य ,,	ऊपर का ओष्ठ सीधा होता है	
	अहंभाव	अग्र ,,	नाक का मूल प्रदेश उन्नत होता	
१७	दृढ़ता		है, उस पर आड़ी रेखा पड़ी होती है।	घुमे हुये छोटे अक्षर
	मनोबल	नं० १७ का उन्नत भाग	मोटी नाक और भरी हुई दाढ़ी	
		पीछे काग	कान के पास में से निकलती हुई अधो हनुसन्धि का अधिक कोण।	
	धैर्य	मध्य भाग		
	खन्त (दृढ़ता)	अग्र भाग	दाढ़ के पास जबड़ा चौड़ा होता है	
१८	पूज्यभाव	मध्य मस्तिष्क का ऊपर का भाग	आगे को गिरती हुई चिबुक	
	अन्ध-विश्वास	पिछला भाग	नासिका का सेतु का ऊँचा होना	
	भक्ति-भाव	मध्य भाग	आँख के पलक नीचे को ढलते हुये दिखाई देते हैं।	

नम्बर	मानस अवयवों के नाम	मस्तक के अन्दर इनका स्थान	सामुद्रिक लक्षण	अन्य चिन्ह
	विनय या मानवृत्ति	अग्र भाग	ऊपर के ओष्ठ का मध्य भाग नीचे को झुकता हुआ	
१९	अध्यात्म-रति	नं० १९ का उन्नत प्रदेश	आँख की पलकों और भ्रमरों के मध्य का चौड़ा भाग	
	श्रद्धा	ऊपर भाग	आँख और भ्रमर के अन्तः प्रान्त (नाक की तरफ से) की दूरता	
	विश्वास	मध्य ,,	दोनों भ्रमरों के बीच का अन्तर अधिक होता है	
	आश्चर्य-प्रियता	अधो ,,		
२०	आशा	नं० २० की उन्नतवाला भाग		
	सट्टा	अधो विभाग	आँख के पलकों पर और ओष्ठ के उपरले प्रान्तों पर पड़ती हुई रेखायें	
	वर्त्तमान-आशा	मध्य ,,		
	भावी-आशा	अग्र ,,	माथे पर पड़ती हुई तरङ्गों जैसी रेखायें	
२१	आत्म-निष्ठा	मस्तिष्क के पिछले भाग की लगभग चौरस उन्नत दिखाई देना		
	न्याय निष्ठा	ऊपर का विभाग	दोनों भ्रमरों के बीच में दो,	

नम्बर	मानस अवयवों के नाम	मस्तक के अन्दर इनका स्थान	सामुद्रिक लक्षण	अन्य चिन्ह
			तीन, चार खड़ी रेखाओं का होना	
	सत्य-प्रियता	मध्य-भाग	आँख की बराबर सीधी स्थिति	
	बुद्धिमानी	अधो-भाग	एक समान बढ़ते हुये बाल	विस्तृत चिबुक
२२	परोपकार-वृत्ति	नं० २२ का गोल उठा हुआ भाग		
	दया	अग्र भाग	भरा हुआ अपूर्ण ओष्ठ	
	उदारता	मध्य भाग		
	सहानुभूति	पीछे का भाग	आँख की ऊपर के पलक के बाल मुड़े हुये	
२३	कला-कौशल्य	पार्श्व कपाल का भरावदार-परिपूर्ण दर्शन	नथुनों के उपरले भाग में नाक के दोनों पार्श्वों की भरावदार स्थिति	अंगुलियों का अगला नाखून वाला पोटा बड़ा होता है। अक्षर और लिखावट एक खास प्रकार की घूमी हुई होती है।
	योजना-शक्ति	अग्र-विभाग		
	शोधक-शक्ति	मध्य-विभाग		
	चापल्य	पिछला भाग		
२४	सौन्दर्य्य-प्रेम	माथे के ऊपर का पूर्ण से खिला हुआ नं० २४ का विभाग		अँगूठे की जड़ का मांस वाला भाग भरा हुआ होता है, और कलई का भाग चौड़ा होता है। स्टाइल लिखावट, मरोड़दार अक्षर स्पष्ट लाइन।
	प्रावीण्य	अग्र-भाग	नाक के नथुने चौड़े	

नम्बर	मानस अवयवों के नाम	मस्तक के अन्दर इनका स्थान	सामुद्रिक लक्षण	अन्य चिन्ह
	सुसंस्कारिता	मध्य भाग में		
	कवित्व	पिछले भाग में		
२५	औदार्य	नं० २५ वाला मस्तिष्क का विस्तीर्ण भाग		हथेली के अनुपात में छोटी अँगुलियाँ
	आश्चर्य-प्रियता	अग्र विभाग		मोटे अक्षर वाली लिखावट
	गाम्भीर्य-भाव	पिछला विभाग		
२६	अनुकरण-शक्ति	शिर के अन्दर नं० २६ वाला विस्तृत भाग		नम्र और मृदु अँगुलियाँ, अस्थिर ढङ्ग की लिखावट, लिखते समय काग़ज़ को हिलाने-जुलाने की आदत।
	मानसिक-अनुकरण	ऊपर का भाग	नासिका के नरकरों की लंबाई	
	हाव-भाव	मध्य का भाग	आँख और मुख के स्नायुओं की नम्रता, मृदुता।	
	शाब्दिक-अनुकरण	अधो भाग	चौड़ा मुख	करभ—हथेली का निचला भाग मोटा एवं स्नायुओंवाला; चञ्चल और चपल लिखावट।
२७	हास्यवृत्ति	शिर का २७ वाँ पूर्ण भाग		
	आनन्द	अधो विभाग	मुख के प्रान्त पर से ओष्ठ का ऊपर को चढ़ा होना।	
	खिलवाड़	ऊपर का विभाग	आँख के पलकों पर से ऊपर जाती हुई रेखायें	

नम्बर	मानस अवयवों के नाम	मस्तक के अन्दर इनका स्थान	सामुद्रिक लक्षण	अन्य चिन्ह
२८	आकृति ज्ञानशक्ति	नं० २८ वाला विस्तृत विभाग	नासिका की मूल के समीप में अस्थियों की चौड़ाई	तर्जनी अँगुली का प्रथम पौरा चौड़ा मोती की भाँति एक समान लिखावट।
२९	क़द या प्रमाण ज्ञान	नं० २९ का खिला हुआ विभाग	एथिमैायड् अस्थि का विस्तार	एक सीधी रेखा में, समान अंतर से; अक्षरों की लिखावट।
३०	अवलोकन-शक्ति	नं० ३० वाला विस्तृत विभाग	आंख के भ्रमर नाक की तरफ़ कुछ झुके होते हैं और इनके बीच का स्थान मांसल होता है।	अँगुली के पोरे प्रायः चौरस दीखते हैं। अक्षरों की बनावट बारीक, परन्तु पढ़ने में स्पष्ट रहती है।
	मानसिक अवलोकन	ऊपर का विभाग		
	पदार्थ सम्बंधी ,,	नीचे का विभाग		
३१	गुरुत्व और वज़न	नं० ३१ वाला उन्नत विभाग		बराबर सीधी रेखा और अक्षरों की एक समान बनावट, एक समान झुकाव।
३२	रंग ज्ञानशक्ति	नं० ३२ वाला मस्तिष्क का बढ़ा हुआ भाग		अक्षरों के मूल स्वरूप को छोड़कर शेष लिखावट में मोटाई रहती है।
३३	क्रम और व्यवस्था	नं० ३२ वाला मस्तिष्क का भाग	भ्रमर एक समान लम्बी, गोल और बाहर का प्रान्त एक समान झुका होता है।	अँगुलियों के पोटवे चौरस, अँगुलियों के पोरवों की सन्धि मोटी होती है। विराम, अल्प विराम, काउंस आदि चिन्हों का पूर्ण ध्यान रखता है।

नम्बर	मानस-अवयवों के नाम	मस्तक के अन्दर इनका स्थान	सामुद्रिक लक्षण	अन्य चिन्ह
	स्वच्छता	अन्दर का विभाग		
	व्यवस्था	बाह्य-विभाग		
३४	गणित-ज्ञान	नं० ३४ वाला मस्तिष्क का भाग उन्नत होता है		स्वच्छता, स्पष्टता और व्यवस्था-युक्त लिखावट
	अङ्क-ज्ञान	भ्रमरों के अन्दर का भाग भरा होता है।	बाह्य पार्श्व की तरफ वृद्धि होती है,	
	अटसटा [झगड़ालू]	भ्रमरों का बाह्य-विभाग	आँख के प्रान्त और भ्रमरों के बाह्य प्रान्तों के बीच का अधिक होता है।	
३५	स्थल-ज्ञान	नं० ३५ वाला मस्तिष्क का भाग भरा हुआ होता है	माथे के नीचे का भरावदार प्रदेश	बहुत लम्बे, पूँछवाले, विस्तृत-अक्षर जल्दी की लिखावट
	शोधक-शक्ति	नीचे का विभाग		
	भूगोल-शक्ति	ऊपर का विभाग		
३६	ऐतिहासिक-ज्ञान अथवा स्मृति	मस्तिष्क में नं० ३६ का उन्नत प्रदेश	माथे के मध्य में उठा हुआ होता है।	लिखावट स्पष्ट होती है।
	घटनाओं का ज्ञान	अधोभाग		
	सांवधिक-ज्ञान	ऊपर का भाग		
३७	समय-ज्ञान	नं० ३७ का मस्तिष्क का प्रदेश	माथा लगभग चौकोर दिखाई देता है।	हाथ और अँगुलियाँ चौरस होती हैं
	काल-ज्ञान	अन्दर का विभाग		एक समान लिखने की झड़प

नम्बर	मानस-अवयवों के नाम	मस्तक के अन्दर इनका स्थान	सामुद्रिक लक्षण	अन्य चिन्ह
३८	ताल-ज्ञान	बाह्य-विभाग		
	संगीत-शक्ति	भ्रमर के बाह्य प्रदेश पर उठा हुआ मस्तिष्क का नं० ३८ वाँ भाग	कपाल का झुकता हुवा भाग भरावदार, लम्बी भ्रमर, विस्तृत आँख और पलकें, छोटी नाक और भरे हुये गाल	अक्षरों के ऊपर और बाहर के भाग में घुमाव
	सुस्वर	ऊपर का भाग (कपाल पर का)		,,
	आलाप	नीचे का भाग ,, ,, ,,		,,
३९	वक्तृत्व-शक्ति	आँख के ऊपर के और नीचे के विस्तृत भरावदार पलक	आँख के निचले पलकों का भरावदार भाग	संयुक्ताक्षरवाली लिखावट
	शब्द-स्मरण-शक्ति	नं० ३९ वाला मस्तिष्क का भाग		,,
	वक्तृत्व-शक्ति	,,		,,
४०	तर्क-शक्ति	ऊपर का मस्तिष्क ऊँचा और विस्तृत	विशाल-कपाल	
	समाज-शक्ति	अन्तर-विभाग		
	योजना	बाह्य-विभाग		
४१	तुलना-शक्ति	मस्तिष्क के उपर का भरावदार मध्य विभाग	नाक के नथने अन्दर की ओर झुके होते हैं	शब्दाक्षरों का यथार्थ सम्बन्ध स्पष्ट लिखावट
	समालोचना-शक्ति	मध्य-विभाग	नाक के नथने चौड़े होते हैं	,,
	पृथक् करण	अधोविभाग	नासिका का पर्दा नीचे की तरफ़ झुका रहता है	,,